चाँद

फरवरी १९३९ से

जून १९३९ ई०

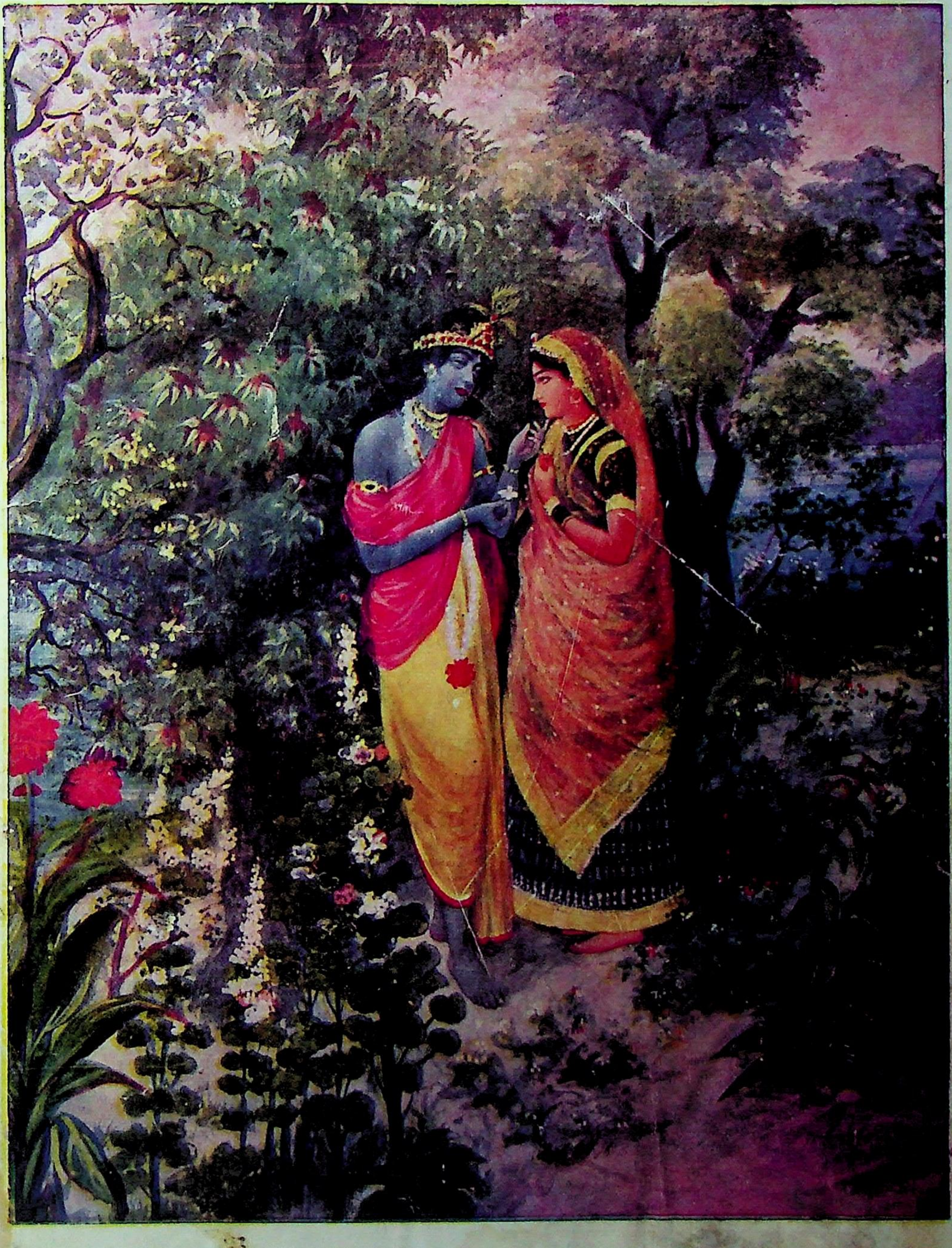
P. Moons

नवम्बर '३२ से अप्रैल '३३ तक
की विषयसूची पृ० ७४० के बाद है।

फ़रवरी, १९३३

चाँद

वर्ष ११, खण्ड १
सं० ४, पू० सं० १२४



वार्षिक चन्दा ६॥)
छः माही चन्दा ३॥)

सम्पादक :—
मुन्शी नवजादिकलाल श्रीवास्तव

विदेश का चन्दा ८॥)
इस अङ्क का मूल्य ॥=)

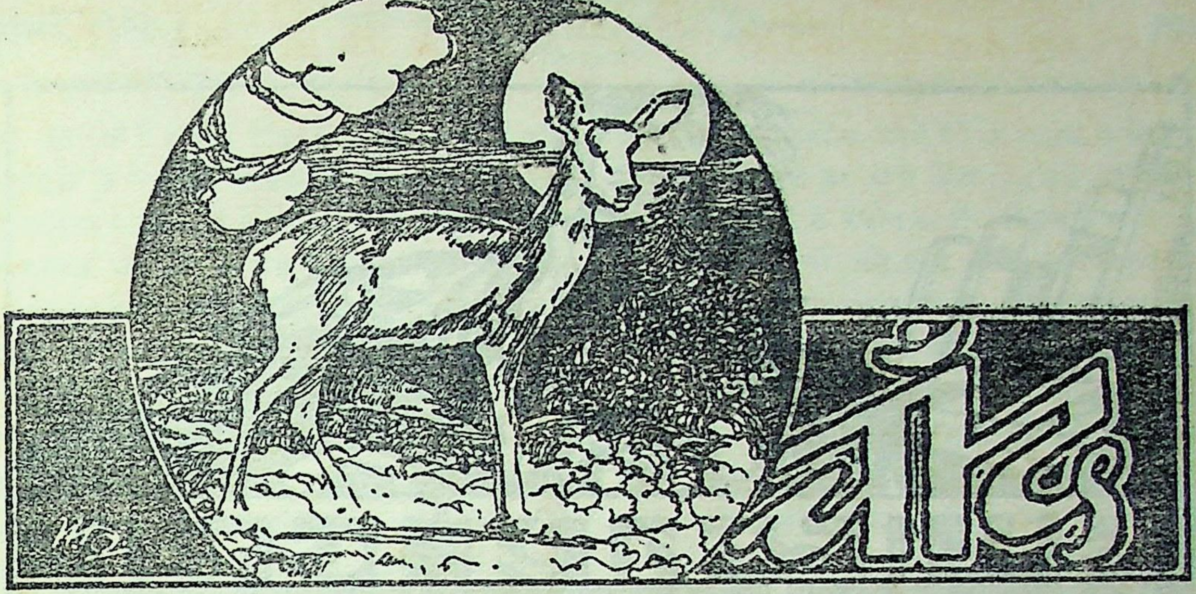

संगीत सौरभ



शृङ्गार

FINE ART PRINTING COTTAGE
ALLAHABAD

[चित्रकार—श्री० भुवन, बी० ए०



आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रेम हमारी प्रणाली है, जब तक इस पावन अनुष्ठान में हम अविचल हैं, तब तक हमें इसका भय नहीं, कि हमारे विरोधियों की संख्या और शक्ति कितनी है।

वर्ष ११, खण्ड १ | फ़रवरी, १९३३ | सं० ४, पू० सं० १२४

ओ पीलेपन !

[प्रो० रामकुमार जी वर्मा, एम० ए०]

ओ पीलेपन !
तुमसे ही तो जीवित है मुकुलित वसन्त का मञ्जुल यौवन,
पङ्खड़ियों में शयित बेन छूते हो नव पराग के मधुकन,
अन्य रँगों के साथ कर रहे, इन्द्र-धनुष का तिरछा चुम्बन,
प्राची करती है सज्जित तुमसे प्रिय रवि का रञ्जित आसन ;

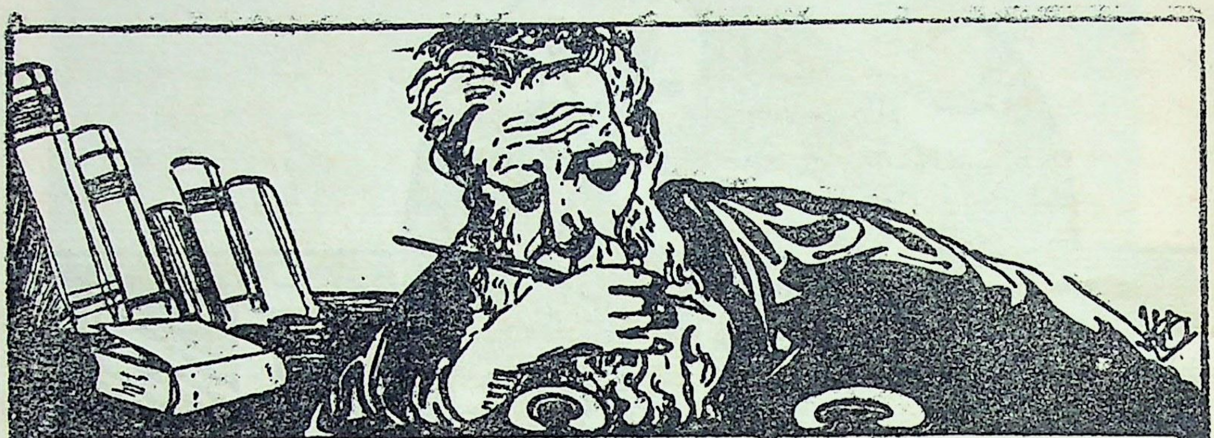
ओ पीलेपन !

पल्लव में जाकर समाप्त करते हो उसका छोटा जीवन !
विद्युत में हँस, रुला रहे हो, दर्शन के अभिलाषी नव घन,
सुप्त नेत्र में हँसते आकर, स्वर्ण स्वप्न का लेकर वाहन,
लपटों के हाथों से छूकर, भस्म बनाते हो जग के तन,

ओ पीलेपन !!

स्वर्ण तुम्हारे ही द्वारा मेरे उर का है नव आभूषन
श्याम-मुरारी के कटि के पट का करते रहते हो शासन !
नव-परिणीता की उँगली को चूमा करते हो प्रियतम बन ;
आओ, मेरे यौवन के कुसुमों का तो कर लो आलिङ्गन !

ओ पीलेपन !!!



सम्पादकीय विचार

चाँद

फ़रवरी, १९३३

विश्वव्यापी अर्थ-सङ्कट

पिछले कई वर्षों से संसार की आर्थिक परिस्थिति जैसी भीषण और विचित्र हो गई है, वैसी आधुनिक इतिहास-काल में और भी कभी हुई थी, यह नहीं कहा जा सकता। अब तक तो लोग यही जानते थे कि जब अवर्षण या किसी अन्य प्रकार के दैवी प्रकोप के कारण पृथ्वी की पैदावार घट जाती है, तो अकाल पड़ जाता है और साधारण लोगों को भूखों मरना पड़ता है, परन्तु आजकल सुनने में आता है, कि चूँकि पिछले तीन-चार वर्षों में पैदावार बहुत अधिक हुई है और कारख़ानों में बनने वाले माल का परिमाण भी बहुत बढ़ गया है, इसलिए लोगों को अन्न-वस्त्र का अभाव हो रहा है! पहले ज़माने में लोग मँहगी के कारण कष्ट पाते थे, परन्तु इस समय सस्ती के कारण मर रहे हैं! आजकल एक ओर तो करोड़ों मनुष्य भूखों मर रहे हैं अथवा भरपेट रोटी नहीं पाते और दूसरी ओर असंख्य मन अन्न तथा अन्य खाद्य-सामग्री खेतों में ही अनावश्यक समझ कर नष्ट कर दी जाती है। एक ओर लोग चिथड़े लपेटे फिरते हैं तथा शीत में ठिठुरते हैं और दूसरी ओर कपड़ा बनाने के हज़ारों कारख़ाने, इसलिए बन्द पड़े हैं या आधा चौथाई काम करते हैं, कि उनके बनाए हुए माल की बाज़ार में माँग नहीं है!

इस विचित्र परिस्थिति के अनेक कारण बतलाए जाते हैं। कुछ लोगों का कहना है कि लोगों के पास रुपए नहीं हैं, इसीलिए वे पहले की तरह जीवन-निर्वाह की आवश्यक सामग्री नहीं ख़रीद सकते। परन्तु प्रश्न यह पैदा होता है कि आख़िर रुपए चले कहाँ गए? यदि यह परिस्थिति किसी एक देश की होती तो कल्पना की जा सकती थी कि वहाँ के रुपए किसी अन्य देश में चले गए; परन्तु आजकल तो संसार के प्रत्येक देश में यह सस्ती, बेकारी और भूखों मरने का रोना मचा हुआ है। अमेरिका आधुनिक काल में संसार का सब से अधिक वैभवशाली देश समझा जाता है और संसार के २२० करोड़ पौण्ड सोने का एक बड़ा भाग उसी के पास है; परन्तु अमेरिका में ही इस समय सबसे अधिक बेकारी पाई जाती है और लाखों मनुष्य सरकारी सहायता अथवा अन्य लोगों के दान के भरोसे प्राण-

रहा कर रहे हैं ! कुछ दिन हुए वहाँ की 'रेड क्रॉस सोसाइटी' के चेयरमैन ने प्रकाशित किया था कि उनकी संस्था द्वारा सन् १९३२ के आरम्भ से दो करोड़ व्यक्तियों को सरकार की ओर से अन्न वितरण किया जा चुका है और डेढ़ करोड़ व्यक्तियों को सरकारी कपास से बना कपड़ा दिया जाने वाला है। रेड क्रॉस वालों का अनुमान है कि जितने लोगों को यह कपड़ा बाँटा जायगा, उससे क़रीब पचगुने लोग वस्त्रों के बिना कष्ट पा रहे हैं। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि इस दुरवस्था का वास्तविक कारण रुपए का अभाव नहीं है। यदि अमेरिका की बात छोड़ दें और केवल भारत की दशा पर विचार करें, तो यहाँ भी रुपए की कमी सिद्ध नहीं होती। पहले सरकार को क़र्ज़ लेने की आवश्यकता पड़ने पर ६-६॥ रुपए प्रति सैकड़ा ब्याज देना पड़ता था, पर अब उसे ५ प्रति सैकड़े पर ही ज़रूरत से अधिक रुपया मिल रहा है। बैङ्कों में अमानती रुपए पर पहले जितना सूद दिया जाता था, अब उससे कम दिया जा रहा है। इतने पर भी लोग उनमें इतना रुपया जमा कर रहे हैं कि बैङ्क वाले सूद की दर और भी घटाने का विचार कर रहे हैं। पहले सरकार पोस्ट ऑफ़िस के 'कैश सर्टीफ़िकेट' पर ६ सैकड़ा सूद देती थी, अब उसे घटा कर उसने ५॥ सैकड़ा कर दिया है। परन्तु अब भी लोग पहले की अपेक्षा कहीं अधिक 'कैश सर्टीफ़िकेट' ख़रीद रहे हैं। इन सब बातों से तो यही प्रकट होता है कि देश का रुपया कहीं चला नहीं गया है, वरन् उसका चलन रुकता जा रहा है और वह बैङ्कों तथा सरकारी ख़ज़ानों में इकट्ठा होता जा रहा है, जिससे साधारण लोगों को जीवन-निर्वाह की ज़रूरी चीज़ें ख़रीदने में दिक़्क़त पड़ रही है।

रुपए के इस प्रकार एक जगह इकट्ठे हो जाने और उसके फल से समस्त संसार के व्यापार में उथल-पुथल मच जाने का मुख्य कारण गत यूरोपीय महायुद्ध है। उसमें यूरोप के समस्त युद्धशील देशों को बहुत अधिक ख़र्च करना पड़ा था, और जब उनका भण्डार ख़ाली हो गया, तो उन्होंने अमेरिका से ऋण लेकर अपना काम चलाया। यह ऋण अधिकांश में युद्ध-सामग्री तथा अन्य आवश्यकीय वस्तुओं के रूप में लिया गया था। इस घटना के फल-स्वरूप अमेरिका एकाएक संसार के समस्त देशों की अपेक्षा धनवान हो गया और उसने अपने ख़ज़ाने में कमी न पड़ने देने के ख़याल से विदेशों के माल पर भारी कर लगा दिया। इसके साथ ही उसने अपने यहाँ के उद्योग-धन्धों की उन्नति के लिए भी चेष्टा आरम्भ की और शीघ्र ही वह स्वावलम्बी हो गया। अमेरिका कृषि-प्रधान देश है। वहाँ इतना अधिक अन्न और अन्य चीज़ें उत्पन्न होती हैं कि अपना ख़र्च चला लेने के बाद भी बहुत सी खाद्य-सामग्री तथा अन्य वस्तुएँ बच रहती हैं। पहले इस बचे हुए माल को यूरोपियन देश ख़रीद लेते थे, पर इस समय वे उसके ऋण-भार से इतने अधिक दबे हैं कि और अधिक माल ले सकने की उनमें सामर्थ्य ही नहीं है। इस प्रकार ग्राहकों के अभाव से अमेरिका को अपना माल बहुत सस्ते दर से बेचना पड़ता है और उसके कारण समस्त संसार के बाज़ार का भाव बिगड़ जाता है।

अमेरिका से भी कठिन समस्या जर्मनी की है। वह युद्ध में पराजित तो हुआ ही, साथ ही वार्सेलीज़ की सन्धि द्वारा मित्र-राष्ट्रों ने उसके सर पर हर्जाने का इतना अधिक बोझ लाद दिया कि बेचारे का दम घुटने लगा। महायुद्ध में भी उसे अन्य समस्त राष्ट्रों की अपेक्षा अधिक ख़र्च करना पड़ा था, जिससे उसकी आर्थिक अवस्था बड़ी शोचनीय हो गई थी। पर कुछ भी हो, वह ऋण चुकाने को बाध्य था। अन्यथा फ़्रान्स नङ्गी तलवार लिए उसके सर पर खड़ा था। ऐसी परिस्थिति में उसे अपनी सम्पूर्ण शक्ति कारख़ानों में लगा कर तथा कम से कम लागत में माल तैयार करके सस्ते से सस्ते भाव में बेचना पड़ा। उसकी प्रतियोगिता कर सकना अन्य देशों के कारख़ानों के लिए असम्भव हो गया। उनमें कितनों ही को अपना कारबार बन्द कर देना पड़ा और कितनों ही को घाटा सह कर माल बेचना पड़ा।

वस्तुओं के मूल्य घटने का एक और कारण अर्थ-शास्त्र-विशारद बतलाते हैं। गत यूरोपीय महायुद्ध के समय प्रत्येक वस्तु का दाम इतना अधिक बढ़ गया तथा उनकी खपत इतनी अधिक होने लगी कि कारख़ाने वालों तथा अन्य व्यवसाइयों ने कल्पनातीत लाभ उठाया और अपने कारबार की ख़ूब वृद्धि की। इसके फल-स्वरूप कच्चे माल की माँग भी उसी हिसाब से बढ़ी और कृषि-प्रधान देशों में उसकी पूर्ति के लिए विशेष रूप से चेष्टा की जाने लगी। इस प्रकार संसार में व्यवसाय-

वाणिज्य की उन्नति की बाढ़ सी आ गई और लोग बिना इस बात का विचार किए कि ऐसी अवस्था कब तक क़ायम रह सकती है, अधिक से अधिक माल बनाने और बेचने में लग गए। इस चेष्टा के फल-स्वरूप सन् १९२६ से १९२८ तक संसार के व्यवसाय की ऐसी काया-पलट हुई, जैसी पिछले ज़माने में देखने में नहीं आई थी। कारख़ाने वालों ने पुरानी मैशीनों और पुराने तरीक़ों को त्याग कर नवीन आविष्कृत मैशीनों से काम लेना आरम्भ किया, जिससे थोड़ी मज़दूरी और कम ख़र्च द्वारा पहले की अपेक्षा अधिक माल तैयार होने लगा। खेती में भी नए-नए यन्त्रों और वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग आरम्भ हुआ, जिससे पैदावार बहुत बढ़ गई। यद्यपि व्यवसायिक क्षेत्रों में इस प्रकार की उन्नति और परिवर्तन सदा से होता आया था, परन्तु इस बार परिवर्तन की गति ऐसी तीव्र हो गई और वह ऐसे व्यापक रूप से हुआ कि संसार की उत्पत्ति में अकस्मात् बड़ा अन्तर पड़ गया। आरम्भ में तो माल बनाने वालों ने चेष्टा की कि वे परस्पर में सहयोग करके माल का दाम पूर्ववत् स्थिर रक्खेंगे, पर साधारण लोगों के पास रुपए का अभाव होने से यह चेष्टा सफल न हो सकी। फल यह हुआ कि इस समय प्रत्येक देश में सब तरह के माल के गोदाम भरे हुए हैं, पर उसका कोई ख़रीदार नहीं है।

यूरोप और अमेरिका के राजनीतिज्ञ, जिनकी दृष्टि अपने स्वार्थ पर ही रहती है, इस अर्थ-सङ्कट का कुछ और ही कारण बतलाते हैं। उनका कथन है कि भारत और चीन आदि एशियाई देशों में बहुत सा सोना और चाँदी लोगों ने ज़ेवरों के रूप में फँसा रक्खा है अथवा ज़मीन में गाड़ रक्खा है, इसीलिए संसार में रुपए की कमी हो गई है। इन लोगों के मतानुसार भारत में सात-आठ अरब रुपए का सोना है, जिसमें से अभी केवल एक अरब का सोना बाहर गया है। चाँदी का बहुत बड़ा भण्डार भी इन देशों में बतलाया जाता है। हम नहीं कह सकते कि यूरोपियन राजनीतिज्ञों के इस कथन में कुछ सचाई है अथवा वे अपनी दूषित अर्थ-नीति का लाञ्छन मिटाने के लिए या इन ग़रीब देशों को और भी लूटने के लिए इस तरह की बातें करते हैं। परन्तु यह अवश्य सच है कि पिछले कुछ वर्षों से इन एशियाई देशों में यूरोपियन देशों के साम्राज्यवाद तथा उनकी अपहरण-नीति के विरुद्ध बहुत अधिक घृणा तथा विद्रोह का भाव फैल रहा है तथा वे यथाशक्ति इनके आर्थिक दासत्व से छूटने की चेष्टा कर रहे हैं। इसी प्रवृत्ति ने चीन और भारत में विदेशी माल के बहिष्कार आन्दोलन को जन्म दिया है और इसके फल-स्वरूप इन देशों के कल-कारख़ानों की अभूतपूर्व उन्नति होने लगी है। अब इन देशों में जीवन निर्वाह की साधारण चीज़ों के बनाने के बहुत से कारख़ाने खुल गए हैं और वे प्रायः विदेशी कारख़ानों के मुक़ाबले की चीज़ें तैयार कर रहे हैं। इस कारण कपड़े, दियासलाई, साबुन, सेण्ट, खिलौने, सिगरेट आदि अनेक चीज़ों का, जिनके द्वारा यूरोप वाले अब तक करोड़ों रुपए इन देशों से खींच ले जाते थे, आना लगभग बन्द हो गया है या बहुत घट गया है।

इस अर्थ-सङ्कट के कुप्रभाव से बचने के लिए विभिन्न देश जिस प्रकार स्वार्थपरता से काम ले रहे हैं और दूसरे देशों के माल पर भारी कर लगा कर अपने ही माल को बेचने तथा लाभ उठाने की चेष्टा कर रहे हैं, उससे अवस्था और भी गुरुतर होती जाती है। उदाहरणार्थ, अगर जर्मनी भारत से जूट और अलसी ख़रीदता है तो उससे भारत के किसानों के पास रुपया आता है। उस रुपए से वे इङ्गलैण्ड का कपड़ा ख़रीदते हैं। इङ्गलैण्ड के लोग शायद उस रुपए से स्पेन वालों की बनाई शराब लेंगे, स्पेन वाले अमेरिका से फल मँगाएँगे और अमेरिका जर्मनी से रङ्ग ख़रीदेगा। इस प्रकार एक ही रुपए से कई देशों की चीज़ों का परस्पर में विनिमय हो गया और इस तरह जर्मनी का रुपया फिर जर्मनी में ही पहुँच गया। परन्तु यदि जर्मनी भारत के किसानों से पाट या अलसी न ख़रीदे तो भारत के किसानों, इङ्गलैण्ड के कपड़ा बुनने वालों, स्पेन के शराब बनाने वालों, अमेरिका के फल पैदा करने वालों और जर्मनी के रङ्ग बनाने वालों का माल घर में ही रक्खा रहेगा और इन चीज़ों को तैयार करने वाले श्रमजीवी बेकार हो जायेंगे। आजकल यही दशा अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय-क्षेत्र में सर्वत्र देखने में आ रही है। प्रत्येक देश चाहता है कि वह दूसरे देशों के हाथ अधिक से अधिक माल बेच सके और उनका माल स्वयं कम ख़रीदे, जिससे उसका सोना उसे मिल जाए। नतीजा यह होता है कि कोई किसी का माल नहीं ख़रीदता और

तमाम कारबार तथा व्यापार दिन पर दिन मन्दा पड़ता जाता है।

इस मन्दी और कारबार की सुस्ती का सब से बुरा नतीजा कारख़ानों और खेतों के मज़दूरों को भोगना पड़ता है। धनवानों और मालिकों की तो केवल नफ़े की हानि हो रही है, पर श्रमजीवियों के सामने तो रोटियों का सवाल है। जब कारबार अच्छी तरह चलता रहता है, तब भी उन ग़रीबों का गुज़ारा मुश्किल से होता है, तो इस मन्दी की हालत में उनकी कैसी दुर्दशा होती होगी, इसका अनुमान सहज ही किया जा सकता है। इसके लिए हमको कहीं दूर जाने की आवश्यकता नहीं है; स्वयं हमारे देश में नौकरी और मज़दूरी की कमी से लाखों व्यक्ति जैसी असुविधा भोग रहे हैं, उसी से हम स्थिति की वास्तविकता को भली-भाँति समझ सकते हैं। जिस कार्यालय में एक या दो वर्ष पहले सौ आदमी काम करते थे, वहाँ अब केवल दस-बीस आदमी दिखलाई देते हैं। अकेले रेलवे-विभाग से सात लाख से अधिक व्यक्ति निकाले गए होंगे। सरकारी दफ़्तरों में भी निरन्तर नौकरों की संख्या घटाई जा रही है। इस प्रकार जो लोग नौकरी से अलग होते हैं, उनको महीनों तक इधर-उधर मारे-मारे फिरने पर भी दूसरा काम नहीं मिलता तथा उनको और उनके परिवार वालों की अकथनीय दुर्दशा होती है। कितने ही लोग किसी छोटे-मोटे व्यापार या दुकानदारी का सहारा लेते हैं, पर उसमें भी गुञ्जायश न होने तथा अनुभव की कमी से पास की थोड़ी सी पूँजी को भी गँवा बैठते हैं। यही दशा इस समय संसार के प्रत्येक देश की हो रही है और जहाँ देखिए, बेकारों की एक बड़ी फ़ौज 'हाय नौकरी, हाय मज़दूरी, हाय काम' पुकारती फिरती है। नीचे हम विभिन्न देशों के बेकारों की एक सूची देते हैं, जिससे पाठकों को परिस्थिति की गम्भीरता का किञ्चित ज्ञान हो सकेगा। यह अङ्क सन् १९३० के अन्त के हैं:—

अमेरिका (संयुक्त राष्ट्र) ...	... ९०,००,०००
दक्षिण अमेरिका ...	... ४०,००,०००
मेक्सिको ...	... ६,००,०००
जर्मनी ...	... ४५,००,०००
इङ्गलैण्ड ...	... ४०,००,०००
पोलैण्ड ...	... ४,००,०००
ऑस्ट्रिया ...	... ४,००,०००
इटली ...	... १०,००,०००
स्पेन ...	... ४,००,०००
जैकोस्लोवेकिया ...	... ४,००,०००
जापान ...	... १५,००,०००
यूगोस्लैविया ...	... २,५०,०००
बेलजियम ...	... १,५०,०००
डेनमार्क ...	... १,००,०००
हॉलैण्ड ...	... १,२०,०००
स्वीज़रलैण्ड ...	... १,००,०००
क्यूबा ...	... ५,००,०००
कैनेडा ...	... ३,००,०००
मध्य अमेरिका ...	... १०,००,०००

इस हिसाब से मालूम होता है कि सन् १९३० के अन्त में बेकार मज़दूरों की संख्या क़रीब ३ करोड़ थी। तब से यह संख्या बराबर बढ़ती ही जाती है और आज-कल अनुमानतः ६ करोड़ से कम न होगी। पर यह हिसाब भी संसार में फैली हुई वास्तविक बेकारी और अर्थकष्ट को प्रकट नहीं करता। प्रथम तो इसमें उन पेशों के बेकारों की गणना नहीं की गई है, जिनके मज़दूरों का कोई सङ्घ वा सङ्गठन नहीं है। दूसरे भारत और चीन जैसे देशों का, जिनमें संसार की आधी आबादी निवास करती है और जहाँ बेकारी तथा दरिद्रता का सब से अधिक प्रभाव पाया जाता है, इसमें ज़िक्र ही नहीं किया गया है। यदि इन सबका हिसाब लगाया जाय, तो निश्चय ही यह संख्या दुगुनी-तिगुनी जान पड़ेगी।

यद्यपि पश्चिमी देशों में इन बेकार लोगों की ख़बर भी सरकार लेती है और उनको सार्वजनिक भण्डार से इतनी सहायता दी जाती है, जिससे उनकी प्राण-रक्षा हो सके, तो भी यह स्थिति किसी दृष्टि से सन्तोषप्रद नहीं कही जा सकती और बेकार लोगों को तरह-तरह के भयङ्कर कष्ट भोगने पड़ते हैं। हाल ही में इङ्गलैण्ड और अमेरिका में जिस प्रकार के 'हङ्गर-मार्च' (बुभुक्षा-प्रदर्शन) हुए हैं, उनसे उन लोगों की दुर्दशा बहुत-कुछ प्रकट होती है और यह भी मालूम पड़ता है कि वर्तमान परिस्थिति का अन्त दिखलाई न देने से लोगों का धैर्य छूटता जाता है।

इस अवस्था का प्रतिकार किस प्रकार हो सकता है, इसके सम्बन्ध में जितने मुँह उतनी ही बातें सुनने

को मिलती हैं। जिन देशों को अमेरिका का क़र्ज़ा चुकाना है, वे कहते हैं कि जब तक समर-ऋण रद्द न कर दिया जायगा अथवा उसमें विशेष कमी न की जायगी, तब तक इस अवस्था का सुधार नहीं हो सकता। अमेरिका कहता है कि यूरोपियन देश आजकल अपनी आमदनी का एक बहुत बड़ा अंश युद्ध-सामग्री और सैन्य-शक्ति की वृद्धि में ख़र्च कर रहे हैं, यदि वे उसे बन्द कर दें या एकदम घटा दें तो बहुत रुपया बच सकता है और बेकारों के लिए ख़र्च दिया जा सकता है। व्यवसायिक क्षेत्र के मुखियाओं का मत है कि जब तक पूर्वीय देशों की क्रय-शक्ति नहीं बढ़ाई जायगी और किसी उपाय से उनको अपना सोना-चाँदी निकाल कर यूरोपियन कारख़ाने वालों का माल ख़रीदने को बाध्य नहीं किया जायगा, तब तक कुछ नहीं बन सकता। एक अन्य दल वालों का कहना है कि लोग अर्थ-सङ्कट की पुकार से घबरा कर अपना खर्च घटा रहे हैं और रुपए को दबा कर रख रहे हैं, इसीसे परिस्थिति विशेष बिगड़ती जाती है।

पर इस प्रकार केवल अपने मतलब की बात कहने से काम नहीं चल सकता, यह समझ कर संसार के प्रधान-प्रधान देशों ने आगामी अप्रैल या मई महीने में लण्डन में विश्व-अर्थ-नीति सम्मेलन की योजना की है। इस सम्मेलन में इस प्रश्न पर विचार किया जायगा कि संसार की वर्तमान अस्वाभाविक आर्थिक अवस्था का प्रतिकार किस प्रकार किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में कितने ही लोगों ने अनेक प्रस्ताव तैयार किए हैं, जिनमें से मुख्य इस प्रकार हैं—(१) जर्मनी से युद्ध का हर्जाना लेना बन्द कर दिया जाय। क्योंकि इससे जर्मनी व्यवसाय-वाणिज्य के क्षेत्र में फिर मस्तक उठा सकेगा और उसमें अन्य देशों का माल ख़रीदने की शक्ति उत्पन्न होगी। (२) हर्जाने का अदा करना बन्द करने के साथ ही वह समर-ऋण भी रद्द कर दिया जाय, जो मित्र-शक्तियों (इङ्गलैण्ड, फ्रान्स, इटली) को अमेरिका को चुकाना है; क्योंकि ऐसा न होने से मित्र-राष्ट्रों की दशा जर्मनी के समान ही हो जायगी, जिससे संसार के व्यवसाय-वाणिज्य में फिर उथल-पुथल मच जायगी। (३) इस समय विभिन्न देशों ने विदेशी माल पर अतिरिक्त कर लगा कर व्यवसाय-वाणिज्य की स्वाभाविक गति को रुद्ध कर दिया है। इस नीति को त्याग दिया जाय। (४) समर-ऋण के अतिरिक्त एक देश को दूसरे देश का जो क़र्ज़ देना है, उसका ब्याज कम कर दिया जाय। (५) संसार के समस्त देशों में, जिससे थोक माल की दर बढ़े, ऐसी व्यवस्था की जाय। (६) भविष्य के लिए कोई ऐसी योजना की जाय, जिससे एक देश दूसरे देश को बहुत सा रुपया उधार देकर बाद में उसका सर्वस्व अपहरण न कर सके।

पर ये उपाय कहाँ तक कार्य-रूप में परिणत हो सकेंगे और इनसे विश्वव्यापी अर्थ-सङ्कट के मिटाने में किस सीमा तक सफलता प्राप्त हो सकेगी, इसमें बहुत सन्देह है। क्योंकि इन तमाम देशों में सदा बड़ी प्रतियोगिता चलती रहती है और ये प्राणपण से अपनी प्रधानता को अक्षुण्ण रखने की चेष्टा किया करते हैं। ऐसी दशा में सब देशों का इन प्रस्तावों को स्वीकार कर लेना और हृदय से उनके अनुसार व्यवहार करना कठिन जान पड़ता है। इन प्रस्तावों के अनुसार विशेष स्वार्थ-त्याग अमेरिका को ही करना पड़ेगा, और उसके वर्तमान रुख़ से जान पड़ता है कि जहाँ तक सम्भव होगा, वह अपना क़र्ज़ा कौड़ी-कौड़ी वसूल करने की चेष्टा करेगा। वह चाहे तो दो-एक देशों को लालच दिखा कर अपना साथी बना सकता है और उनकी सहायता से इस सम्मेलन को सहज में ही असफल बना सकता है।

सच तो यह है कि राजनीतिज्ञ या व्यवसायी, जिनका इस मामले में किसी तरह का स्वार्थ है, इस प्रश्न की उचित मीमांसा नहीं कर सकते। वे जब विचार करने बैठेंगे तो अपने व्यक्तिगत या राष्ट्रीय हित का ख़्याल सबसे पहले करेंगे और जहाँ स्वार्थ की प्रधानता होगी, वहाँ समझौता होने की आशा व्यर्थ है। इसलिए हमको इस सम्बन्ध में उन लोगों के मतानुसार विचार करना चाहिए, जो व्यवसाय-वाणिज्य अथवा साम्राज्य-विस्तार की दृष्टि से नहीं, वरन् एक सिद्धान्त की दृष्टि से इस समस्या की विवेचना करते हैं। ऐसे लोगों को हम दो श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं। एक अर्थ-शास्त्रवादी और दूसरे साम्यवादी। वैसे ये दोनों ही तरह के व्यक्ति अर्थ-शास्त्र के अनुयायी होते हैं, पर एक अमीरों अथवा पूँजीपतियों के दृष्टि-विन्दु से विचार करते हैं और दूसरे ग़रीबों

अर्थ-शास्त्रवादियों का सिद्धान्त है कि व्यवसाय-क्षेत्र में इस प्रकार का सङ्कट समय-समय पर आना एक स्वाभाविक नियम है और इससे उन्नति तथा विकास की गति में सहायता मिलती है। अब तक इस प्रकार के जितने अर्थ-सङ्कट आए हैं, उन सबके पहले और पीछे व्यापार ख़ूब चमकता है। इस प्रकार का उतार-चढ़ाव आर्थिक जीवन में स्वाभाविक है और इससे व्यवसाय को नवीन जीवनी शक्ति प्राप्त होती है। पर वर्तमान अर्थ-सङ्कट में पिछले अर्थ-सङ्कटों की अपेक्षा कुछ विशेषता है। पिछले अर्थ-सङ्कट जहाँ नियमित थे, वहाँ वर्तमान अर्थ-सङ्कट युगान्तरकारी है। यह पश्चिमी देशों के व्यवसाय में उसी प्रकार की क्रान्ति की सूचना दे रहा है, जैसी क्रान्ति अठारहवीं शताब्दी के अन्त में हुई थी और जिसके फल से यूरोप का व्यापार समस्त संसार में फैल गया था। तब से यूरोपियन देश समस्त पूर्वीय देशों को जीवन-निर्वाह की साधारण तैयार वस्तुएँ पहुँचाते रहे हैं और इससे अपरिमित लाभ उठाते रहे हैं। पर अब पूर्वीय देशों ने भी इस सम्बन्ध में कुछ उन्नति की है और इन साधारण वस्तुओं को स्वयम् तैयार कर सकने की शक्ति उनमें आ गई है। ऐसी दशा में कितनी भी आर्थिक योजनाएँ बनाई जाएँ, पश्चिमी देशों के व्यापार का तब तक घटते जाना अनिवार्य है, जब तक वे अपने कार-बार के ढङ्ग को न बदलें। इसके लिए सबसे पहले उनको साधारण चीज़ों का बनाना छोड़ कर केवल उन वस्तुओं के बनाने का प्रबन्ध करना होगा, जो पूर्वीय देशों में अभी नहीं बनाई जा सकतीं। ऐसी वस्तुओं में सबसे प्रधान मैशीन हैं, जिनकी आवश्यकता पूर्वीय देशों में दिन पर दिन बढ़ती जायगी। इसके सिवा पश्चिमी देशों को अपनी पूँजी कृषि-कार्य में लगानी चाहिए और अपने देशों में वैज्ञानिक विधियों से काम लेने वाले कृषि-उपनिवेश स्थापित करने चाहिएँ। इससे वहाँ के शहरों की बढ़ती हुई आबादी घटने लग जायगी और बेकारी की समस्या भी किसी हद तक हल हो सकेगी।

साम्यवादी भी अर्थ-सङ्कट से बचने का उपाय वर्तमान आर्थिक पद्धति को बदलना बतलाते हैं, पर उनका रास्ता दूसरा है। उनका कहना है कि इस आपत्ति का मूल कारण व्यवसाय-वाणिज्य पर थोड़े से पूँजीपतियों का अधिकार होना है और जब तक यह पद्धति स्थिर रहेगी, तब तक इस प्रकार की घटनाएँ बराबर होती रहेंगी और प्रत्येक बार अवस्था की भीषणता पहले की अपेक्षा अधिक होगी। कारण यह है कि कारख़ानों के मालिक मज़दूरों से जब एक या डेढ़ रुपए का काम करा लेते हैं, तब उनको दस-बारह आना मज़दूरी देते हैं। इस प्रकार मज़दूर जितना माल तैयार करते हैं, उसका केवल आधा या दो तिहाई भाग ख़रीद सकते हैं। शेष आधा या एक तिहाई भाग मालिकों के लिए बचता है। पर मालिकों की संख्या मज़दूरों की अपेक्षा बहुत कम होती है, इसलिए वे चाहे जितना खा लें और ख़र्च कर लें, उनका भण्डार दिन पर दिन बढ़ता ही जाता है। पहले तो वे इस वृद्धि का उपयोग अपने कारबार को बढ़ाने में करते हैं, इसके बाद उसे अन्य देशों में नवीन-नवीन व्यवसाय आरम्भ करने में लगाते हैं, पर अन्त में ऐसा समय आता है, जब कि व्यवसाय को बढ़ाने की गुञ्जायश नहीं रहती और पूँजी तथा माल बेकार पड़ा रह कर दिन पर दिन इकट्ठा होने लगता है। ऐसी अवस्था में उनको लाचार होकर तब तक के लिए कारबार स्थगित कर देना पड़ता है, जब तक दशा सुधर न जाय। पर कारबार बन्द होने से साधारण जनता की आमदनी और भी कम हो जाती है और पहले वे माल का जो आधा भाग ख़रीद लेते थे, उसकी बिक्री भी बन्द हो जाती है। इस प्रकार ऐसी अवस्था उत्पन्न हो जाती है, जिसमें से निकलने का मार्ग ही कहीं दिखलाई नहीं देता। कारख़ाने वाले सोचते हैं कि जब हमारे भरे हुए गोदाम ख़ाली हो जायँ, तो हम फिर से माल तैयार कराना शुरू करें और मज़दूर कहते हैं कि अगर कारबार शुरू हो और हमको वेतन मिले तो हम माल ख़रीदें। यह उलझन दिन पर दिन बढ़ती ही जाती है और जब तक व्यवसाय-नीति में जड़मूल से परिवर्तन नहीं किया जाता, तब तक इसका स्थायी सुधार हो सकना असम्भव होता है।

यह सच है कि वर्तमान अर्थ-सङ्कट अन्तिम नहीं है और न इसके पश्चात् साम्यवादियों की कल्पना के सफल होने की कोई आशा ही है, पर इतना अवश्य है कि इस प्रकार की प्रत्येक घटना के फल से वर्तमान पूँजीवादी अर्थ-पद्धति की त्रुटियाँ प्रकट होती जाती हैं और जनसाधारण का झुकाव साम्यवादी आदर्श की तरफ़ अधिक होता जाता है। यद्यपि निकट भविष्य में

अर्थ-शास्त्रवादियों का अनुमान ही कार्यरूप में परिणत होता दिखलाई देता है, पर वह अवस्था भी अधिक समय तक स्थायी नहीं हो सकती। वरन् संसार में कारख़ानों की संख्या बढ़ने और व्यवसाय-वाणिज्य का अधिक विस्तार होने से इस प्रकार का अर्थ-सङ्कट और भी जल्दी-जल्दी आने लगेगा। अन्त में कोई ऐसी व्यवस्था होने से ही, जिससे पूँजीपति मनमाना लाभ न उठा सकें और उनके पास बहुत अधिक परिमाण में अतिरिक्त सामग्री इकट्ठी न हो सके, यह जटिल समस्या हल हो सकेगी।

१० वर्ष पूर्व

चाँद—फ़रवरी, १९२३

भेड़-चाल

[श्रीमती विद्यावती सहगल]

भारतवर्ष निस्सन्देह हज़ारों वर्ष की गहरी नींद से जाग रहा है। भारतीय बच्चा-बच्चा अपने स्वत्वों की रक्षा करना सीख रहा है। भिन्न-भिन्न प्रकार की राजनैतिक, सामाजिक तथा नैतिक उन्नति के लिए आज हम जी तोड़ कर प्रयत्न कर रहे हैं। हमने मनन करने के बाद अपने ह्रास का कारण ही नहीं जान लिया है; बल्कि हम इस बात को भली प्रकार स्वीकार कर चुके हैं कि बिना अपने समाज का सङ्गठन किए हुए अथवा देश के स्त्री-अङ्ग को बिना सुधारे हुए, स्वतन्त्रता की आशा करना उतनी ही बेबुनियाद बात है, जितना नाटे होकर चाँद को छूने का प्रयत्न करना।

देश का शिक्षित समाज अपनी इस भूल पर हाथ मल-मल कर पछता रहा है। वह उसे पुनः राह पर लाने का यथाशक्ति प्रयत्न भी कर रहा है। पर सफलता की बात तो दूर रही, समाज के अधिकांश भाग में उसकी रसाई उतनी भी नहीं हो रही है; जितनी हवा की दीवारों में। इस उन्नति के युग में भी हमारे उद्धार की कोई सूरत क्यों नहीं निकल रही है? यह प्रश्न आज प्रत्येक विचारशील मनुष्य के कानों पर रेंग रहा है। अनेक उदार-हृदय सज्जन बेचारी बाल-विधवाओं का पुनर्विवाह करना हितकर समझते हैं, पर स्वयं अपने घर में इसलिए नहीं कर सकते, कि समाज के चौधरी उन्हें जाति से निकाल देंगे। अनेक समझदार माताएँ इस बात को हृदय से चाहती हैं कि छोटी-छोटी अबोध कन्याओं की शादी न की जावे, पर अपने घर की कन्याओं का विवाह उन्हें आठवें वर्ष, इसलिए कर देना पड़ता है, कि कुल के पुरोहित जी ने छपा हुआ वेदों का मन्त्र* दिखला दिया है। उसमें साफ़-साफ़ लिखा है :—

अष्टवर्षा भवेद् गौरी नव वर्षा च रोहिणी,
दशवर्षा भवेद् कन्या ततऊर्ध्वं रजस्वला।
माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च,
त्रयस्ते नर्कं यान्ति द्रष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम्॥

अपने घर की लड़कियों का विवाह छोटी ही अवस्था में कर देने का एक और भी कारण है कि समाज की निगाह में वे कहीं 'हेठे' न समझे जावें और तीसरा कारण एक और है, वह यह कि 'मुन्नी की माँ' कहेंगी कि "लड़की में कुछ न कुछ दोष ज़रूर है, नहीं तो अब तक शादी क्यों न ठीक हो जाती?" दहेज की ज़्यादती को लोग हृदय से धिक्कारने लगे हैं। सैकड़ों, हज़ारों सभाएँ और व्याख्यान इस विषय पर हो चुके हैं; Social Conference (सामाजिक परिषदों) में भी बहुमत से इसके विरुद्ध प्रस्ताव पास हो चुके हैं, पर स्वयं उसके सभासद लोग 'बड़ों का मान रखने के लिए' स्वयं दहेज इसलिए ले लेते हैं

---

* अक्सर देखा गया है कि कुछ पाखण्डी और स्वार्थी पण्डित लोग मनगढ़न्त तथा बेबुनियाद बातों को वेद की आड़ में कह कर भोली स्त्रियों को ठगते हैं। इसीलिए 'वेदों' से हमारा मतलब उन झूठी पुस्तकों से है, जो स्वार्थ साधने के लिए धर्म-ग्रन्थों में जोड़ दी गई हैं।

—लेखिका

कि "सदा से ऐसा होता आया है।" कहने का सारांश यह कि समाज का अधिकांश भाग यह कह कर बाधा डाल रहा है कि "हमेशा से ऐसा होता आया है।" यदि घर की किसी बड़ी-बूढ़ी स्त्रियों से आप पूछें—"फ़लाँ रस्म करने का मतलब (उद्देश्य) क्या है और इसकी उत्पत्ति किस प्रकार और कब से हुई है?" तो यहाँ भी आपको वही पेटेण्ट जवाब मिलेगा कि "सदा से ऐसा होता आया है।" इसी 'भेड़-चाल' के कारण आज भारत की उन्नति में भारी बाधा पड़ रही है। इस दलील से यह बात स्पष्ट सिद्ध होती है कि हमारा अधिकांश भाग अभी अशिक्षित है और समाज के डर से उसे अपनी बुद्धि और विवेक से काम लेने का कोई हक़ ही नहीं है।

सरकार से लड़-झगड़ कर एम० ए० की डिग्री प्राप्त की, जर्मनी की ओर से पी-एच० डी० की डिग्री प्रदान की गई है। भारत में ही नहीं, अन्य सभ्य देशों में उनकी विद्वत्ता की प्रशंसा हो रही है। ऐसे योग्य सज्जनों को भी रस्मोरिवाज (Rites & Customs) के सामने इसलिए सिर झुका देना पड़ता है कि सामाजिक क्षेत्र से उन्हें कुछ भी दिलचस्पी नहीं है। वे बेचारे अङ्गरेज़ी साहित्य की खोज में मतवाले हो रहे हैं। यदि कुछ शिक्षित लोगों ने इन कुरीतियों पर कुछ भी असन्तोष प्रकट किया तो डपट कर घर वालों का उत्तर मिलता है—"बस चुप रहो। सदा से ऐसा होता आया है। तुम तो अङ्गरेज़ी पढ़ कर पूरे आरिया हो गए हो!"

हमारे समाज में इन सामाजिक कुरीतियों का होना कई कारणों से अनिवार्य है। प्रकृति का नियम स्पष्ट तौर से यह बतलाता है कि बहुमत (Majority) सदा अल्पमत (Minority) पर विजय पाता है। यह एक निसर्ग-सिद्ध नियम है और चूँकि हमारे समाज के अधिकांश लोग उचित शिक्षा से सर्वथा वञ्चित हैं, यही कारण है कि शिक्षिता स्त्रियाँ तथा विचारशील पुरुषों की इच्छाओं का खून हो रहा है। "नई रोशनी" के लोग हृदय से नाना प्रकार की उन्नति और समयानुसार रीति-रिवाजों और अपने रहन-सहन में एक बहुत बड़ा परिवर्तन करने का उद्योग करते हैं, पर बहुमत को अपने पक्ष में न कर सकने के कारण उन्हें इसमें सफलता नहीं होती और हो भी नहीं सकती। कारण स्पष्ट ही है।

भारतीय हिन्दू-समाज में इतनी कुरीतियाँ भरी पड़ी हैं कि उनमें से एक का $\frac{1}{8000}$ अंश लेकर उसी को दूर करने में यदि कोई व्यक्ति अपना सारा जीवन लगा दे, तब भी सफलता कदापि प्राप्त नहीं हो सकती है। "हमेशा से ऐसा होता आया है" इस बात का सिक्का आज प्रत्येक घर-गृहस्थ की स्त्रियों के कोमल चित्त पर इस बुरी तरह बैठा हुआ है कि दो-चार पीढ़ी तक उसका निकलना असम्भव सी बात है।

किसी भी इतिहास के विद्यार्थी से यह बात छिपी न होगी कि अभागे भारत के पतन का "श्रीगणेश" महाभारत के युद्ध के बाद ही से आरम्भ हो गया था, पर आज हज़ारों वर्षों के बीत जाने पर भी भारतवासियों के कान पर जूँ तक न रेंगी। चाहे इधर की दुनिया उधर हो जावे, पर वे तो बस वही करेंगे, जो "सदा से होता आया है" एक से एक विद्वान भले ही अपना ज्ञान-भण्डार खोल कर उनके सामने रख दें, एक से एक बढ़ कर मार्मिक दलीलें ही चाहे क्यों न आप उनके सामने रख कर हार जाएँ, पर होगा वही "जो सदा से होता आया है।"

सैकड़ों नहीं, बल्कि हज़ारों वर्षों से 'कलियुग' की इस भूमि पर पलने वाले हमारे पण्डित, पुरोहित और पाधा लोग आर्य-पवित्रता की ऐसी लम्बी-चौड़ी डींगें हाँकते हैं कि बहुत हद तक, उनसे आज शिक्षित समाज घृणा प्रकट करने लग गया है। वे चाहे पढ़े एक अक्षर भी न हों, पर शास्त्रों, पुराणों की आड़ में मनगढ़न्त धर्म-ग्रन्थों की दोहाई देकर सङ्कीर्ण, भयङ्कर और गन्दे घेरे के अन्दर हमें रख कर अपने स्वार्थ-सिद्धि में अन्धे हो रहे हैं। वे अन्ध-परम्परा के चक्कर में स्वयं तो पड़े ही हैं, पर साथ ही हमें भी डुबा रहे हैं। कहने का मतलब यह कि अपने बुद्धि, विवेक और ज्ञान के रहते हुए भी हम उनके हाथों की कठपुतली बने हुए हैं।

धर्म-ग्रन्थों की रचना हमारे लिए होती है, न कि हमारा जन्म धर्म-ग्रन्थों के लिए। मतलब यह कि ये धर्म-ग्रन्थ, जिनकी रचना हज़ारों वर्ष पहिले हो चुकी है, वे ही आज दिन भी काम में आ रहे हैं।

प्रत्येक धर्म और रिवाज प्रायः अनेक कारणों के परिणाम हुआ करते हैं। प्रत्येक धर्म अथवा कोई भी रिवाज उस धर्म अथवा रिवाज के जन्मदाता के अपने

सिद्धान्त मात्र होते हैं। जो सांसारिक और आध्यात्मिक सिद्धान्त या निश्चय महात्मा बुद्ध के थे, वे ही बौद्ध-धर्म के सिद्धान्त कहलाते हैं। मुहम्मद साहब का जो कुछ अपना "यक़ीन" था, वही मुसलमानों का ईमान है। स्वामी दयानन्द के जो अपने ज़ाती अनुभव थे और उन्हें मथ कर जो सिद्धान्त उन्होंने निकाले थे, प्रत्येक आर्य-समाजी के लिए वही मन्तव्य है। इन सब बातों से हमारे पाठकों को यह बात समझने में अवश्य ही सुविधा हुई होगी कि प्रत्येक धर्म एक व्यक्ति-विशेष के निजी (उसके अपने) सिद्धान्त मात्र हैं। पर यह सिद्धान्त अथवा किसी व्यक्ति-विशेष का सामाजिक आचार-विचार सर्वथा उसकी निजी-धारणा (Conviction) मात्र होते हैं, जिनका जन्म उस समय की परिस्थिति के अनुकूल ही ऐसी महान आत्माएँ दिया करती हैं। पर यहीं हमारी बुद्धि चक्कर में पड़ जाती है और हम निरुपाय होकर आज भी उन्हीं सिद्धान्तों पर चलने को बाध्य किए जाते हैं, जिन पर हमारे पुरखे वंश-परम्परा से चले आए हैं।

हमारे इस कहने का मतलब यह समझना भूल होगी कि हम अपने बड़ों को मूर्ख समझती हैं। हमारी निगाह में अपने बड़ों की उतनी ही इज़्ज़त है, जितनी एक आज्ञाकारी बालक अथवा बालिका की निगाह में अपनी जन्मदात्री माता की। हमें तो केवल यह सिद्ध करना है कि जिन बातों में एक समय लाभ होता है, समय के फेर से उन्हीं से भारी अनिष्ट भी हो जाता है। पर हमारा समाज इस तर्क को एक क्षण के लिए भी मानने को तैयार नहीं है। वह तो बस एक ही महामन्त्र का जाप करता है कि बस "सदा से ऐसा ही होता आया है।"

परिवर्तन और वृद्धि प्रकृति की दो बड़ी शक्तियाँ हैं। संसार की समस्त हलचलें इन्हीं के सहारे हुआ करती हैं। अङ्गरेज़ी में इसी परिवर्तन को विकास अथवा Evolution कहते हैं।

तात्पर्य यह कि कोई भी एक धर्म अनन्त काल के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता। प्रत्येक देश के उत्थान (Rise) अथवा पतन (Fall) के समय उसका स्वरूप सदा बदलता रहता है। संसार के इतिहास से भी यह बात स्पष्ट रूप से प्रकट होती है कि सारे धर्म, समाज तथा सभ्यता के उत्कर्ष और व्यक्ति की उन्नति के अनुसार परिवर्तन हुआ करते हैं, पर भारतवासी इस तर्क को नहीं मानते। वे तो वही करेंगे, जो "सदा से होता आया है।"

यदि उनके पिता ने शादी में २०००) 'दहेज' में लिए थे, तो वे उससे एक पैसा भी कम, केवल इसलिए नहीं कर सकते कि "सदा से ऐसा होता आया है" और कन्या के पिता ने यदि अपनी पहली लड़की के विवाह में १०००) ही दहेज के स्वरूप में दिए हैं, तो दूसरी लड़की के विवाह में वह एक कौड़ी भी इससे ज़्यादा देने को केवल इसीलिए तैयार नहीं है कि "सदा से ऐसा होता आया है।" चाहे अभागिनी बालिका को आयु-पर्यन्त अविवाहिता ही क्यों न रहना पड़े!

इस छोटे से लेख में हम इन कुरीतियों के हर एक पहलू पर विचार न कर केवल यह सिद्ध करना चाहती हैं कि लगभग सभी कुरीतियों का एकमात्र कारण हमारी "भेड़-चाल" है।

संसार के सभी अन्य पशुओं में 'भेड़ें' सब से अधिक मूर्ख समझी जाती हैं। भेड़ों का झुण्ड बिना कुछ भेड़ों के अगुआ हुए कभी नहीं चलता। अतएव उन्हें हँकाने के लिए सब से पहले एक क़तार में कुछ भेड़ों को, पहिले मार-मार कर चलाना पड़ता है। जहाँ वे चलीं कि फिर पीछे की भेड़ें बिना कहे ही उनका अनुसरण करती हैं। जिधर आगे की भेड़ें जायँगी, उधर ही बिना विचारे पीछे वाली भेड़ें भी। यदि आगे वाली भेड़ें गड्ढे अथवा दुर्भाग्यवश कुएँ में गिर जावें तो बिना विचारे पीछे वाली भी अकारण अपनी जानें दे देंगी; पर अपनी बुद्धि और विवेक से काम न लेंगी। 'भेड़ों' का जो उदाहरण दिया गया है, यह कवियों की कल्पना अथवा कपोल-कल्पित नहीं है। यह सच्ची बात है और हम नित्य अपनी आँखों से इस उदाहरण को कार्य-रूप में भी देखते हैं।

यदि हम अपने समाज की तुलना भी इन्हीं भोली भेड़ों से करें तो अनुचित न होगा। इनमें भी "अगुआ भेड़ों" की ज़रूरत है। पर उनकी नहीं, जो लम्बी-लम्बी धोतियाँ अथवा दुपट्टे फटकार कर केवल व्याख्यान देना ही जानते हैं। बल्कि हमारा समाज इस समय ऐसे 'अगुआ' चाहता है, जो स्वयं अपने सिद्धान्त के अगुआ

बनें। अर्थात् यदि हम बाल-विवाह के विरोधी हैं, तो कन्या को चाहे आयु-पर्यन्त अविवाहिता रहना पड़े, पर इस बात की प्रतिज्ञा कर लें कि हज़ार कठिनाइयों का सामना, और समाज का खुला विरोध ही क्यों न करना पड़े, पर समाज के भय से, आठ वर्ष की भोली कन्या का विवाह कदापि न करेंगे। यदि हम परदे की प्रथा उठाना चाहते हैं, तो पहले अपने घर से इस प्रथा का जन्म देना हमारा कर्तव्य होना चाहिए। महात्मा गाँधी यदि स्वयं कोट-पतलून और कॉलर पहिन कर आज कॉङ्ग्रेस में खड़े होकर स्वदेशी वस्तुओं का प्रचार करने की सलाह जनता को द, तो अवश्य ही उनका अपमान होगा। पर नहीं; आज महात्मा गाँधी का अन्य नेताओं की अपेक्षा अधिक आदर केवल इसलिए ही होता है कि वे स्वयं कार्यशाली (Practical) हैं, उन्होंने जब स्वयं खद्दर की कोपीन धारण कर ली है, तभी ऐसा उपदेश देने का साहस किया।

आज हमारा शिक्षित समाज यदि सामाजिक सुधारों का महत्व समझ ले और साथ ही इस बात की प्रतिज्ञा कर ले कि देशवासी चाहे जो करें, पर हम अपने घर में अपनी धारणा (Conviction) के अनुसार ही कार्य करेंगे, तो बात की बात में सामाजिक कुरीतियों का अन्त हो सकता है। एक अङ्गरेज़ विद्वान का यह कहना अक्षरशः सत्य है :—

"Progress is made more economically by rational than by natural selection and the time has arrived for man to control his own evolutions instead of leaving it to the blind forces of nature."

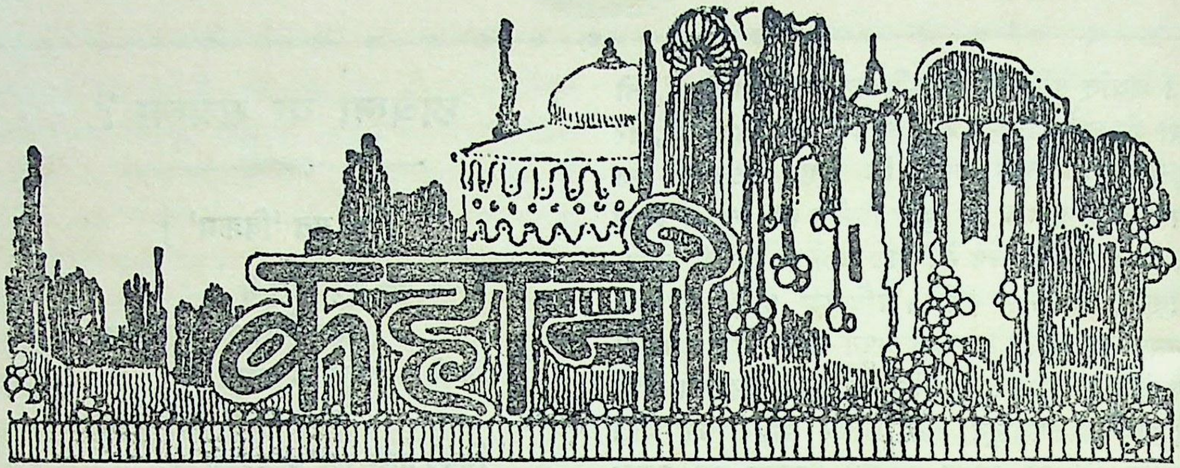
अर्थात्—"संसार में प्रकृति के नियमों की अपेक्षा विवेक से काम लेने से शीघ्र और सरलता से उन्नति हो सकती है। मनुष्यों के लिए अब ऐसा समय उपस्थित हुआ है कि "दैवेच्छा बलीयसी" के भरोसे न रहें, बल्कि अपने विवेक से प्रकृति के नियमों को ढूँढ़ निकालें।"

हमारे कहने का सारांश यह कि अपने निजी धारणा (Self-conviction) पर लोक-निन्दा तो क्या, यदि अपने जीवन की बलि भी करनी पड़े तो उसे सहर्ष स्वीकार करना ही सच्चे सुधारकों का लक्ष्य होना चाहिए।

अबला या सबला ?

[श्रीयुत 'विक्रम']

जिनके एक बूँद आँसू में
हिम-गिरि को बहते देखा।
जिनके नयनाहत को हमने
'त्राहि-त्राहि' कहते देखा॥
जिनके प्रखर रूप की ज्वाला
में जग को जलते देखा।
जिनके मृदु शासन का सिक्का
त्रिभुवन में चलते देखा॥
जिनके हित मानव-समाज में
महासमर होते देखा।
जिनके प्रबल मोह में मुनियों
को विवेक खोते देखा॥
जिनके सँग सानन्द कृष्ण से
योगी को रमते देखा।
जिनकी कोमल धाक जगत में
जीवन पर जमते देखा॥
जिनके मधुर हास की सुख से
सदा भुवन भरते देखा।
जिनके करुणा-सम क्रन्दन को
दुखमय जग करते देखा॥
जिनकी कृपा-कोर का सारी
दुनिया को इच्छुक देखा।
जिनके प्रणय-द्वार पर लाखों—
खड़े हुए भिक्षुक देखा॥
जिनके गुण का गान जगत के
कवियों को करते देखा।
जिनके मुसकाते अधरों से
सुघर सुमन झरते देखा॥
जो श्रीहरि के वक्षस्थल पर
जा बैठीं बन कर कमला।
मुझे बता दें कवि-कोविद गन;
वे अबला हैं या सबला ?



वेश्या

[श्री० प्रेमचन्द जी]

छः महीने बाद कलकत्ते से घर आने पर दयाकृष्ण ने पहला काम जो किया, वह अपने प्रिय मित्र सिंगारसिंह से मातमपुरसी करने जाना था। सिंगार के पिता का आज तीन महीने हुए देहान्त हो गया था। दयाकृष्ण बहुत व्यस्त रहने के कारण उस समय न आ सका था। मातमपुरसी की रस्म पत्र लिख कर अदा कर दी थी। लेकिन ऐसा एक दिन भी नहीं बीता कि सिंगार की याद उसे न आई हो। अभी वह दो-चार महीने और कलकत्ते रहना चाहता था। क्योंकि वहाँ उसने जो कारोबार जारी किया था, उसे सङ्गठित रूप में लाने के लिए उसका वहाँ मौजूद रहना ज़रूरी था और उसकी थोड़े दिन की ग़ैरहाज़िरी से भी हानि की शङ्का थी। किन्तु जब सिंगार की स्त्री लीला का परवाना आ पहुँचा, तो वह अपने को न रोक सका। लीला ने साफ़-साफ़ तो कुछ न लिखा था, केवल उसे तुरन्त बुलाया था, लेकिन दयाकृष्ण को पत्र के शब्दों से कुछ ऐसा अनुमान हुआ कि वहाँ की परिस्थिति चिन्ताजनक है और इस अवसर पर उसका वहाँ पहुँचना ज़रूरी है। सिंगार सम्पन्न बाप का बेटा था, बड़ा ही अल्हड़, बड़ा ही ज़िद्दी, बड़ा ही आरामपसन्द। दृढ़ता या लगन उसे छू भी नहीं गई थी। उसकी माँ उसके बचपन ही में मर चुकी थी, और बाप ने उसके पालने में नियन्त्रण की अपेक्षा स्नेह से ज़्यादा काम लिया था। उसे कभी दुनिया की हवा नहीं लगने दी। उद्योग भी कोई वस्तु है, यह वह जानता ही न था। उसके महज़ इशारे पर हरेक चीज़ सामने आ जाती थी। वह जवान बालक था, जिसमें न अपने विचार थे, न सिद्धान्त। कोई भी आदमी उसे बड़ी आसानी से अपने कपट-बाणों का निशाना बना सकता था। मुख़्तारों और मुनीमों के दाँव-पेच समझना उसके लिए लोहे के चने चबाना था। उसे किसी ऐसे समझदार और हितैषी मित्र की ज़रूरत थी, जो स्वार्थियों के हथकण्डों से उसकी रक्षा करता रहे। दयाकृष्ण पर इस घर के बड़े-बड़े एहसान थे। उस दोस्ती का हक़ अदा करने के लिए उसका आना आवश्यक था।

मुँह-हाथ धोकर सिंगारसिंह के घर पर ही भोजन करने का इरादा करके दयाकृष्ण उससे मिलने चला। नौ बज गए थे और हवा और धूप में गर्मी आने लगी थी।

सिंगारसिंह उसकी ख़बर पाते ही बाहर निकल आया। दयाकृष्ण उसे देख कर चौंक पड़ा। लम्बे-लम्बे केशों की जगह उसके सिर पर घुँघराले बाल थे (वह सिक्ख था), आड़ी माँग निकाली हुई। आँखों में न आँसू थे, न शोक का कोई दूसरा चिन्ह, चेहरा कुछ ज़र्द अवश्य था, पर उस पर विलासिता की मुस्कराहट थी। वह एक महीन रेशमी कमीज़ और मख़मली जूते

पहने हुए था। मानों किसी महफ़िल से उठा आ रहा हो। सम्वेदना के शब्द दयाकृष्ण के ओठों तक आकर निराश लौट गए। वहाँ बधाई के शब्द ज़्यादा अनुकूल प्रतीत हो रहे थे।

सिंगारसिंह लपक कर उसके गले से लिपट गया और बोला—तुम ख़ूब आए यार, इधर तुम्हारी बहुत याद आ रही थी। मगर पहले यह बतला दो, वहाँ का कारोबार बन्द कर आए या नहीं? अगर वह झञ्झट छोड़ आए हो, तो पहले उसे तिलाञ्जली दे आओ। अब आप यहाँ से जाने न पाएँगे। मैंने तो भई, अपना कैंड़ा बदल दिया। बताओ कब तक तपस्या करता। अब तो आए-दिन जलसे होते हैं। मैंने कहा यार, दुनिया में आए तो कुछ दिन सैर-सपाटे का आनन्द भी उठा लो। नहीं एक दिन योंही हाथ मलते चले जायँगे। हसरत क्यों दिल में रह जाय।

दयाकृष्ण विस्मय से उसके मुँह की ओर ताकने लगा। यह वही सिंगार है या कोई और! बाप के मरते ही इतनी तब्दीली!

दोनों मित्र कमरे में गए और सोफ़े पर बैठे। सरदार साहब के सामने इस कमरे में फ़र्श और मसनद की अमलदारी थी। अब दर्जनों गद्देदार सोफ़े और कुरसियाँ हैं, क़ालीन का फ़र्श है, रेशमी परदे हैं, बड़े-बड़े आईने हैं। सरदार साहब को सञ्चय की धुन थी, सिंगार को उड़ाने की धुन है।

सिंगार ने एक सिगार जला कर कहा—तेरी बहुत याद आती थी यार, तेरी जान की क़सम।

दयाकृष्ण ने शिकवा किया—क्यों झूठ बोलते हो भाई, महीनों गुज़र जाते थे, एक ख़त लिखने की तो आपको फ़ुर्सत न मिलती थी, मेरी याद आती थी।

सिंगार ने अल्हड़पन से कहा—बस इसी बात पर मेरी सेहत का एक जाम पियो। अरे यार, इस ज़िन्दगी में और क्या रक्खा है। हँसी-खेल में जो वक़्त कट जाय उसे ग़नीमत समझो। मैंने तो वह तपस्या त्याग दी। अब तो आए-दिन जलसे होते हैं, कभी दोस्तों की दावत है, कभी दरिया का सैर, कभी गाना-बजाना, कभी शराब के दौर। मैंने कहा, लाओ कुछ दिन यह बहार भी देख लूँ। हसरत क्यों दिल में रह जाय। आदमी संसार में कुछ भोगने के लिए आता है। यही ज़िन्दगी के मज़े हैं। जिसने यह मज़े नहीं चक्खे, उसका जीना वृथा है। बस दोस्तों की मजलिस हो, बग़ल में माशूक़ हो, और हाथ में प्याला हो। इसके सिवा मुझे और कुछ न चाहिए।

उसने अलमारी खोल कर एक बोतल निकाली और दो ग्लासों में शराब ढाल कर बोला—यह मेरी सेहत का जाम है। इन्कार न करना। मैं तुम्हारी सेहत का जाम पीता हूँ।

दयाकृष्ण को कभी शराब पीने का अवसर न मिला था। वह इतना धर्मात्मा तो न था कि शराब पीना पाप समझता, हाँ उसे दुर्व्यसन समझता था। गन्ध ही से उसका जी मालिश करने लगा। उसे भय हुआ कि वह शराब की घूँट चाहे मुँह में ले ले, उसे कण्ठ के नीचे नहीं उतार सकता। उसने प्याले को शिष्टाचार के तौर पर हाथ में ले लिया, फिर उसे ज्यों का त्यों मेज़ पर रख कर बोला—तुम जानते हो, मैंने कभी नहीं पी। इस समय मुझे क्षमा करो। दस-पाँच दिन में यह फ़न भी सीख जाऊँगा। मगर यह तो बताओ, अपना कारोबार भी कुछ देखते हो, या इसी में पड़े रहते हो?

सिंगार ने अरुचि से मुँह बना कर कहा—ओह, क्या ज़िक्र तुमने छेड़ दिया यार, कारोबार के पीछे इस छोटी सी ज़िन्दगी को तबाह नहीं कर सकता। न कोई साथ लाया है न साथ ले जायगा। पापा ने मर-मर कर धन सञ्चय किया। क्या हाथ लगा? पचास तक पहुँचते-पहुँचते चल बसे। उनकी आत्मा अब भी संसार के सुखों के लिए तरस रही होगी। धन छोड़ कर मरने से फ़ाक़े मस्त रहना कहीं अच्छा है। धन की चिन्ता तो नहीं सताती, यह हाय तो नहीं होती कि मेरे बाद क्या होगा! तुमने ग्लास मेज़ पर रख दी। ज़रा पियो, आँखें खुल जाएँगी। दिल हरा हो जायगा। और लोग सोडा और बरफ़ मिलाते हैं, मैं तो ख़ालिस पीता हूँ। इच्छा हो तो तुम्हारे लिए बरफ़ मँगाऊँ?

दयाकृष्ण ने फिर क्षमा माँगी, मगर सिंगार ग्लास पर ग्लास पीता गया। उसकी आँखें लाल-लाल निकल आईं, ऊल-ज़लूल बकने लगा, ख़ूब डींगें मारीं, फिर बेसुरे राग में एक बाज़ारी गीत गाने लगा। अन्त में उसी कुरसी पर पड़ा-पड़ा बेसुध हो गया।

२

सहसा पीछे का परदा हटा और लीला ने उसे इशारे से बुलाया। दयाकृष्ण की धमनियों में शतगुण वेग से रक्त दौड़ने लगा। उसकी सङ्कोचमय, भीरु प्रकृति भीतर से जितनी ही रूपासक्त थी, बाहर से उतनी ही विरक्त। सुन्दरियों के सम्मुख आकर वह स्वयं अवाक् हो जाता था, उसके कपोलों पर लज्जा की लाली दौड़ जाती थी और आँखें झुक जाती थीं। लेकिन मन उनके चरणों पर लोट कर अपने आपको समर्पित कर देने के लिए विकल हो जाता था। मित्रगण उसे बूढ़े बाबा कहा करते थे। स्त्रियाँ उसे अरसिक समझ कर उससे उदासीन रहती थीं। किसी युवती के साथ लक्खा तक रेल में एकान्त यात्रा करके भी वह उससे एक शब्द भी बोलने का साहस न करता। हाँ, यदि युवती स्वयं उसे छेड़ती तो वह अपने प्राण तक उसकी भेंट कर देता। उसके इस सङ्कोचमय, अवरुद्ध जीवन में लीला ही एक युवती थी, जिसने उसके मन को समझा था और उससे सपाक सहृदयता का व्यवहार किया था। तभी से दयाकृष्ण मन से उसका उपासक हो गया था। उसके अनुभव-शून्य हृदय में लीला नारी-जाति का सब से सुन्दर आदर्श थी। उसकी प्यासी आत्मा को शर्बत या लेमनेड की उतनी इच्छा न थी, जितना ठण्डे, मीठे पानी की। लीला में रूप है, लावण्य है, सुकुमारता है, इन बातों की ओर उसका ध्यान न था। उससे ज़्यादा रूपवान, लावण्यमयी और सुकुमार युवतियाँ उसने पार्कों में देखी थीं। लीला में सहृदयता है, विचार है, दया है, इन्हीं तत्वों की ओर उसका आकर्षण था। उसकी रसिकता में आत्म-समर्पण के सिवा और कोई भाव न था। लीला के किसी आदेश का पालन करना उसकी सब से बड़ी कामना थी, उसकी आत्मा की तृप्ति के लिए इतना काफ़ी था। उसने काँपते हाथों से परदा उठाया और अन्दर जाकर लीला के सामने खड़ा हो गया और विस्मय-भरी आँखों से उसे देखने लगा। उसने लीला को यहाँ न देखा होता तो पहचान भी न सकता। वह रूप, यौवन और विकास की देवी इस तरह मुरझा गई थी, जैसे किसी ने उसके प्राणों को चूस कर निकाल लिया हो। करुण स्वर में बोला—यह तुम्हारा क्या हाल है लीला! बीमार हो क्या? मुझे सूचना तक न दी।

लीला मुसकिरा कर बोली—तुमसे मतलब! मैं बीमार हूँ या अच्छी हूँ, तुम्हारी बला से। तुम तो अपने सैर-सपाटे करते रहे। छः महीने के बाद जब आपको याद आई है, तो पूछते हो बीमार हो! मैं उस रोग में ग्रस्त हूँ, जो प्राण लेकर ही छोड़ता है। तुमने इन महाशय की हालत देखी। उनका यह रङ्ग देख कर मेरे दिल पर क्या गुज़रती है, यह क्या मैं अपने मुँह से कहूँ तभी समझोगे? मैं अब इस घर में ज़बरदस्ती पड़ी हूँ और बेहयाई से जीती हूँ। किसी को मेरी चाह या चिन्ता नहीं है। पापा क्या मरे, मेरा सोहाग ही उठ गया। कुछ समझाती हूँ तो बेवक़ूफ़ बनाई जाती हूँ। रात-रात भर न जाने कहाँ ग़ायब रहते हैं। जब देखो नशे में मस्त। हफ़्तों घर में नहीं आते कि दो बातें तो कर लूँ। अगर इनके यही ढङ्ग रहे तो साल दो साल में रोटियों को मुहताज हो जायँगे।

दया ने पूछा—यह लत इन्हें कैसे पड़ गई? यह बातें तो इनमें न थीं।

लीला ने व्यथित स्वर में कहा—रुपए की बलिहारी है और क्या। इसीलिए तो बूढ़े मर-मर के कमाते हैं और मरने के बाद लड़कों के लिए छोड़ जाते हैं। अपने मन में समझते होंगे, हम लड़कों के लिए बैठने का ठिकाना किए जाते हैं। मैं कहती हूँ, तुम उनके सर्वनाश का सामान किए जाते हो, उनके लिए ज़हर बोए जाते हो। पापा ने लाखों रुपए की सम्पति न छोड़ी होती तो आज यह महाशय किसी काम में लगे होते, कुछ घर की चिन्ता होती, कुछ ज़िम्मेदारी होती। नहीं तो बैङ्क से रुपए निकाले और उड़ाए। अगर मुझे विश्वास होता कि सम्पत्ति समाप्त करके वह सीधे मार्ग पर आ जायँगे, तो मुझे ज़रा भी दुःख न होता। पर मुझे तो यह भय है कि ऐसे लोग फिर किसी काम के नहीं रहते। या तो जेलख़ाने में मरते हैं, या अनाथालय में। आपकी एक वेश्या से आशनाई है। माधुरी नाम है। और वह इन्हें उल्टे छुरे से मूँड़ रही है, जैसा उसका धर्म है। आपको यह ख़ब्त हो गया है कि वह मुझ पर जान देती है। उससे विवाह का प्रस्ताव भी किया जा चुका है। मालूम नहीं, उसने क्या जवाब दिया। कई बार जी में आया कि जब यहाँ किसी से कोई नाता ही नहीं है, तो अपने घर चली जाऊँ, लेकिन डरती हूँ कि तब तो यह

और भी स्वतन्त्र हो जायँगे। मुझे किसी पर विश्वास है तो वह तुम हो। इसीलिए तुम्हें बुलाया था कि शायद तुम्हारे समझाने-बुझाने का कुछ असर हो। अगर तुम भी असफल हुए तो मैं एक क्षण यहाँ न रहूँगी। भोजन तैयार है, चलो कुछ खालो।

दयाकृष्ण ने सिंगारसिंह की ओर सङ्केत करके कहा—और यह?

"यह तो अब कहीं दो-तीन बजे चेतेंगे।"

"बुरा मानेंगे।"

"मैं अब इन बातों की परवाह नहीं करती। मैंने तो निश्चय कर लिया है कि अगर मुझे कभी आँखें दिखाईं तो मैं भी इन्हें मज़ा चखा दूँगी। मेरे पिता जी फ़ौज में सूबेदार मेजर हैं। मेरी देह में उनका रक्त है।"

लीला की मुद्रा उत्तेजित हो गई। विद्रोह की वह आग, जो महीनों से पड़ी सुलग रही थी, प्रचण्ड हो उठी।

उसने उसी लहजे में कहा—मेरी इस घर में इतनी साँसत हुई है, इतना अपमान हुआ है और हो रहा है कि मैं उसका किसी तरह भी प्रतिकार करके आत्मग्लानि का अनुभव न करूँगी। मैंने पापा से अपना हाल छिपा रक्खा है। आज लिख दूँ तो इनकी सारी मशीख़त उतर जाय। नारी होने का दण्ड भोग रही हूँ। लेकिन नारी के धैर्य की भी सीमा है।

दयाकृष्ण उस सुकुमारी का वह तमतमाया हुआ चेहरा, वह जलती हुई आँखें, वह काँपते हुए होंठ देख कर काँप उठा। उसकी दशा उस आदमी की सी हो गई, जो किसी रोगी को दर्द से तड़पते देख कर वैद्य को बुलाने दौड़े। आर्द्र कण्ठ से बोला—इस समय मुझे क्षमा करो लीला, फिर कभी तुम्हारा निमन्त्रण स्वीकार करूँगा। तुम्हें अपनी ओर से इतना ही विश्वास दिलाता हूँ कि मुझे अपना सेवक समझती रहना। मुझे न मालूम था कि तुम्हें इतना कष्ट है, नहीं शायद अब तक मैंने कुछ युक्ति सोची होती। मेरा यह शरीर तुम्हारे किसी काम आए, इससे बढ़ कर सौभाग्य की बात मेरे लिए और क्या होगी।

दयाकृष्ण यहाँ से चला तो उसके मन में इतना उल्लास भरा हुआ था, मानों विमान पर बैठा हुआ स्वर्ग की ओर जा रहा है। आज उसे जीवन में एक ऐसा लक्ष्य मिल गया था, जिसके लिए वह जी भी सकता है, मर भी सकता है। वह एक महिला का विश्वासपात्र हो गया था। इस रत्न को वह अपने हाथ से कभी न जाने देगा, चाहे उसकी जान ही क्यों न जाय।

३

एक महीना गुज़र गया। दयाकृष्ण सिंगारसिंह के घर नहीं आया। न सिंगारसिंह ने उसकी परवाह की। इस एक ही मुलाक़ात में उसने समझ लिया था कि वह इस नए रङ्ग में आने वाला आदमी नहीं है। ऐसे सात्विक जनों के लिए उसके यहाँ स्थान न था। वहाँ तो रँगीले, रसिया, अय्याश, बिगड़े दिलों ही की चाह थी। हाँ, लीला को हमेशा उसकी याद आती रहती थी।

मगर दयाकृष्ण के स्वभाव में अब वह संयम नहीं है। विलासिता का जादू उस पर भी चलता हुआ मालूम होता है। माधुरी के घर उसका आना-जाना भी शुरू हो गया है। वह सिंगारसिंह का मित्र नहीं रहा, प्रतिद्वन्द्वी हो गया है। दोनों एक ही प्रतिमा के उपासक हैं। मगर उनकी उपासना में अन्तर है। सिंगार की दृष्टि में माधुरी केवल विलास की एक वस्तु है, केवल विनोद का एक यन्त्र। दयाकृष्ण विनय की मूर्ति है, जो माधुरी की सेवा में ही प्रसन्न है। सिंगार माधुरी के हास-विलास को अपना ज़रख़रीद हक़ समझता है, दयाकृष्ण इसी में सन्तुष्ट है कि माधुरी उसकी सेवाओं को स्वीकार करती है। माधुरी की ओर से ज़रा भी अरुचि देख कर वह उसी तरह बिगड़ जायगा, जैसे अपनी प्यारी घोड़ी की मुँहज़ोरी पर। दयाकृष्ण अपने को उसकी कृपा-दृष्टि के योग्य ही नहीं समझता। सिंगार जो कुछ माधुरी को देता है, गर्व भरे आत्म-प्रदर्शन के साथ, मानो उस पर कोई एहसान कर रहा हो। दयाकृष्ण के पास देने को है ही क्या, पर वह जो कुछ भेंट करता है, वह ऐसी श्रद्धा से, मानों देवता को फूल चढ़ाता हो। सिंगार का आसक्त मन माधुरी को अपने पिंजरे में बन्द रखना चाहता है, जिसमें उस पर किसी की निगाह न पड़े। दयाकृष्ण निर्लिप्त भाव से उसकी स्वच्छन्द क्रीड़ा का आनन्द उठाता है। माधुरी को अब तक जितने आदमियों से साबिक़ा पड़ा था, वे सब सिंगारसिंह की ही भाँति कामुक, ईर्ष्यालु, दम्भी और कोमल भावों से शून्य थे, रूप को भोग की वस्तु समझने वाले। दयाकृष्ण उन

सभों से अलग था, सहृदय, भद्र और सेवाशील, मानों उस पर अपनी आत्मा को समर्पण कर देना चाहता हो। माधुरी को अब अपने जीवन में कोई ऐसा पदार्थ मिल गया है, जिसे वह बड़ी एहतियात से सँभाल कर रखना चाहती है। जड़ाऊ गहने अब उसकी आँखों में उतने मूल्यवान नहीं रहे, जितनी यह फ़क़ीर की दी हुई तावीज़। जड़ाऊ गहने हमेशा मिलेंगे, यह तावीज़ खो गई तो फिर शायद ही कभी हाथ आए। जड़ाऊ गहने केवल उसकी विलास-प्रवृत्ति को उत्तेजित करते हैं, पर इस तावीज़ में तो कोई दैवी शक्ति है, जो न जाने कैसे उसमें सदनुराग और परिष्कार-भावना को जगाती है। दयाकृष्ण कभी प्रेम-प्रदर्शन नहीं करता, अपनी विरह-व्यथा के राग नहीं अलापता, पर माधुरी को उस पर पूरा विश्वास है। सिंगारसिंह के प्रलाप में उसे बनावट और दिखावे का आभास होता है। वह चाहती है, यह जल्द यहाँ से टले। लेकिन दयाकृष्ण के संयत भाषण में उसे गहराई तथा गाम्भीर्य और गुरुत्व का आभास होता है। औरों की वह प्रेमिका है, लेकिन दयाकृष्ण की आशिक़, जिसके क़दमों की आहट पाकर उसके अन्दर एक तूफ़ान उठने लगता है। उसके जीवन में यह नई अनुभूति है। अब तक वह दूसरों के भोग की वस्तु थी, अब कम से कम एक प्राणी की दृष्टि में वह आदर और प्रेम की वस्तु है।

सिंगारसिंह को जब से दयाकृष्ण के इस प्रेमाभिनय की सूचना मिली है, उसके ख़ून का प्यासा हो गया है। ईर्षाग्नि से फुँका जा रहा है। उसने दयाकृष्ण के पीछे कई शोहदे लगा रक्खे हैं कि उसे जहाँ पाएँ उसका काम तमाम कर दें। वह ख़ुद पिस्तौल लिए उसकी टोह में रहता है। दयाकृष्ण इस ख़तरे को समझता है, जानता है; पर अपने नियत समय पर माधुरी के पास बिला नाग़ा आ जाता है। मालूम होता है, उसे अपनी जान का कुछ भी मोह नहीं है। शोहदे उसे देख कर क्यों कतरा जाते हैं, मौक़ा पाकर भी क्यों उस पर वार नहीं करते, इसका रहस्य वह नहीं समझता।

एक दिन माधुरी ने उससे कहा—कृष्ण जी, तुम यहाँ न आया करो। तुम्हें तो पता नहीं है, पर यहाँ तुम्हारे बीसों दुश्मन हैं। मैं डरती हूँ कि किसी दिन कोई बात न हो जाय।

शिशिर की तुषार-मण्डित सन्ध्या थी। माधुरी एक काश्मीरी शाल ओढ़े हुए अँगीठी के सामने बैठी हुई थी। कमरे में बिजली का रजत प्रकाश फैला हुआ था। दयाकृष्ण ने देखा, माधुरी की आँखें सजल हो गई हैं और वह मुँह फेर कर उन्हें दयाकृष्ण से छिपाने की चेष्टा कर रही है। प्रदर्शन पर सुखभोग करने वाली रमणी क्यों सम्वरणशील हो गई है, यह उसका अनाड़ी मन न समझ सका। हाँ, माधुरी के गोरे, प्रसन्न, सङ्कोच-हीन मुख पर लज्जा-मिश्रित मधुरिमा की ऐसी छटा उसने कभी न देखी थी। आज उसने उस मुख पर कुल-वधू की भीरु आकांक्षा और दृढ़ वात्सल्य देखा और उस अभिनय में सत्य का उदय हो गया।

उसने स्थिर भाव से जवाब दिया—मैं तो किसी की बुराई नहीं करता, मुझसे किसी को क्यों बैर होने लगा। मैं यहाँ किसी का बाधक नहीं, किसी का विरोधी नहीं। दाता के द्वार पर सभी भिक्षुक जाते हैं। अपना-अपना भाग्य है, किसी को एक चुटकी मिलती है, किसी को पूरा थाल। कोई क्यों किसी से जले? अगर किसी पर तुम्हारी विशेष कृपा है, तो मैं उसे भाग्यशाली समझ कर उसका आदर करूँगा। जलूँ क्यों?

माधुरी ने स्नेह-कातर स्वर में कहा—जी नहीं, आप कल से न आया कीजिए।

दयाकृष्ण मुसकिरा कर बोला—तुम मुझे यहाँ आने से नहीं रोक सकतीं। भिक्षुक को तुम दुत्कार सकती हो, द्वार पर आने से नहीं रोक सकतीं।

माधुरी स्नेह की आँखों से उसे देखने लगी, फिर बोली—क्या सभी आदमी तुम्हीं जैसे निष्कपट हैं?

"तो फिर मैं क्या करूँ?"

"यहाँ न आया करो।"

"यह मेरे बस की बात नहीं।"

माधुरी एक क्षण तक विचार करके बोली—एक बात कहूँ मानोगे, चलो हम तुम किसी दूसरे नगर की राह लें।

"केवल इसलिए कि कुछ लोग मुझसे ख़ार खाते हैं।"

"ख़ार नहीं खाते, तुम्हारी जान के गाहक हैं।"

दयाकृष्ण उसी अविचलित भाव से बोला—जिस दिन प्रेम का यह पुरस्कार मिलेगा, वह मेरे जीवन का

नया दिन होगा माधुरी, इससे अच्छी मृत्यु और क्या हो सकती है। तब मैं तुमसे पृथक् न रह कर तुम्हारे मन में, तुम्हारी स्मृति में रहूँगा।

माधुरी ने कोमल हाथ से उसके गाल पर थपकी दी। उसकी आँखें भर आई थीं। इन शब्दों में जो प्यार भरा हुआ था, वह जैसे पिचकारी की धार की तरह उसके हृदय में समा गया। ऐसी विकल वेदना! ऐसा नशा! इसे वह क्या कहे।

उसने करुण स्वर में कहा—ऐसी बातें न किया करो कृष्णा, नहीं मैं सच कहती हूँ, एक दिन ज़हर खाकर तुम्हारे चरणों पर सो जाऊँगी। तुम्हारे इन शब्दों में न जाने क्या जादू था कि मैं जैसे फुँक उठी। अब आप ख़ुदा के लिए यहाँ न आया कीजिए, नहीं देख लेना मैं एक दिन प्राण दे दूँगी। तुम क्या जानो, हत्यारा सिंगार किस बुरी तरह तुम्हारे पीछे पड़ा हुआ है। मैं उसके शोहदों की ख़ुशामद करते-करते हार गई। कितना कहती हूँ, दयाकृष्ण से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं, उसके सामने तुम्हारी कितनी निन्दा करती हूँ, कितना कोसती हूँ, लेकिन उस निर्दयी को मुझ पर विश्वास नहीं आता। तुम्हारे लिए मैंने इन गुण्डों की कितनी मिन्नतें की हैं, उनके हाथों कितना अपमान सहा है, वह तुमसे न कहना ही अच्छा है। जिनका मुँह देखना भी मैं अपनी शान के ख़िलाफ़ समझती हूँ, उनके पैरों पड़ी हूँ। लेकिन ये कुत्ते हड्डियों के टुकड़े पाकर और भी शेर होते जाते हैं। मैं अब उनसे तङ्ग आ गई हूँ और तुमसे हाथ जोड़ कर कहती हूँ कि यहाँ से किसी ऐसी जगह चले चलो, जहाँ हमें कोई न जानता हो। वहाँ शान्ति के साथ पड़े रहें। मैं तुम्हारे साथ सब कुछ झेलने को तैयार हूँ। आज इसका निश्चय कराए बिना मैं तुम्हें न जाने दूँगी। मैं जानती हूँ, तुम्हें मुझ पर अब भी विश्वास नहीं है। तुम्हें सन्देह है कि मैं तुम्हारे साथ कपट करूँगी।

दयाकृष्ण ने टोंका—नहीं माधुरी, तुम मेरे साथ अन्याय कर रही हो। मेरे मन में कभी ऐसा सन्देह नहीं आया। पहले ही दिन मुझे न जाने क्यों, कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि तुम अपनी और बहिनों से कुछ पृथक् हो। मैंने तुममें वह शील और सङ्कोच देखा, जा मैंने कुल-बधुओं में देखा है।

माधुरी ने उसकी आँखों में आँखें गड़ा कर कहा—तुम झूठ बोलने की कला में इतने निपुण नहीं हो कृष्णा कि एक वेश्या को भुलावा दे सको। मैं न शीलवती हूँ, न सङ्कोचवती हूँ और न अपनी दूसरी बहिनों से अभिन्न हूँ। मैं वेश्या हूँ, उतनी ही कलुषित, उतनी ही विलासान्ध, उतनी ही मायाविनी; जितनी मेरी दूसरी बहिनें, बल्कि उनसे कुछ ज़्यादा। न तुम अन्य पुरुषों की तरह मेरे पास विनोद और वासना-तृप्ति के लिए आए थे। नहीं, महीनों आते रहने पर भी तुम यों अलिप्त न रहते। तुमने कभी डींग नहीं मारी, मुझे धन का प्रलोभन नहीं दिया। मैंने भी कभी तुमसे धन की आशा नहीं की। तुमने अपनी वास्तविक स्थिति मुझसे कह दी। फिर भी मैंने तुम्हें एक नहीं, अनेक ऐसे अवसर दिए कि कोई दूसरा आदमी उन्हें न छोड़ता। लेकिन तुम्हें मैं अपने पञ्जे में न ला सकी। तुम चाहे और जिस इरादे से आए हो, भोग की इच्छा से नहीं आए। अगर मैं तुम्हें इतना नीच, इतना हृदयहीन, इतना विलासान्ध समझती तो इस तरह तुम्हारे नाज़ न उठाती। फिर मैं भी तुम्हारे साथ मित्र-भाव रखने लगी। समझ लिया मेरी परीक्षा हो रही है। जब तक इस परीक्षा में सफल न हो जाऊँ, तुम्हें नहीं पा सकती। तुम जितने सज्जन हो, उतने ही कठोर हो।

यह कहते हुए माधुरी ने दयाकृष्ण का हाथ पकड़ लिया और अनुराग और समर्पण भरी चितवनों से उसे देख कर बोली—सच बताओ कृष्णा, तुम मुझमें क्या देख कर आकर्षित हुए थे। देखो, बहानेबाज़ी न करना। तुम रूप पर मुग्ध होने वाले आदमी नहीं हो, मैं क़सम खा सकती हूँ।

दयाकृष्ण ने सङ्कट में पड़ कर कहा—रूप इतनी तुच्छ वस्तु नहीं है माधुरी। वह मन का आईना है।

"यहाँ मुझसे रूपवान स्त्रियों की कमी नहीं है।"

"यह तो अपनी-अपनी निगाह है। मेरे पूर्व संस्कार रहे होंगे।"

माधुरी ने भवें सिकोड़ कर कहा—तुम फिर झूठ बोल रहे हो, चेहरा कहे देता है।

दयाकृष्ण ने परास्त होकर पूछा—पूछ कर क्या करोगी माधुरी? मैं डरता हूँ, कहीं तुम मुझसे घृणा न

करने लगो। सम्भव है, तुम मेरा जो रूप देख रही हो, वह मेरा असली रूप न हो।

माधुरी का मुँह लटक गया। विरक्त सी होकर बोली—इसका खुले शब्दों में यह अर्थ है कि तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं है। ठीक है, वेश्याओं पर विश्वास करना भी नहीं चाहिए। विद्वानों और महात्माओं का उपदेश कैसे न मानोगे।

नारी-हृदय इस समस्या पर विजय पाने के लिए अपने अस्त्रों से काम लेने लगा।

दयाकृष्ण पहले ही हमले में हिम्मत छोड़ बैठा। बोला—तुम तो नाराज़ हुई जाती हो माधुरी। मैंने तो केवल इस विचार से कहा था कि तुम मुझे धोखेबाज़ समझने लगोगी। तुम्हें शायद मालूम नहीं है, सिंगारसिंह ने मुझ पर कितने एहसान किए हैं। मैं उन्हीं के टुकड़ों पर पला हूँ। इसमें रत्ती भर भी मुबालग़ा नहीं है। यहाँ आकर जब मैंने उनके रङ्ग-ढङ्ग देखे और उनकी साध्वी स्त्री लीला को बहुत दुखी पाया तो सोचते-सोचते मुझे यही उपाय सूझा कि किसी तरह सिंगारसिंह को तुम्हारे पञ्जे से छुड़ाऊँ। मेरे इस अभिनय का यही रहस्य है। लेकिन उन्हें छुड़ा तो न सका, ख़ुद फँस गया। मेरे इस फ़रेब की जो सज़ा चाहो दो, सिर झुकाए हुए हूँ।

माधुरी का अभिमान टूट गया। जल कर बोली—तो यह कहिए कि आप लीलादेवी के आशिक़ हैं। मुझे पहले से मालूम होता तो तुम्हें इस घर में घुसने न देती। तुम तो एक ही छिपे रुस्तम निकले।

वह तोते के पिंजरे के पास जाकर उसे पुचकारने का बहाना करने लगी। मन में जो एक दाह उठ रही थी, उसे कैसे शान्त करे।

दयाकृष्ण ने तिरस्कार भरे स्वर में कहा—मैं लीला का आशिक़ नहीं हूँ माधुरी, उस देवी को कलङ्कित न करो। मैं आज तुमसे शपथ खाकर कहता हूँ कि मैंने कभी उसे इस निगाह से नहीं देखा। उसके प्रति मेरा वही भाव था, जो अपने किसी आत्मीय को दुख में देख कर हरेक मनुष्य के मन में आता है।

"किसी से प्रेम करना तो पाप नहीं है, तुम व्यर्थ में अपनी और लीला की सफ़ाई दे रहे हो।"

"मैं नहीं चाहता कि लीला पर किसी तरह का आक्षेप किया जाय।"

"अच्छा साहब, लीजिए लीला का नाम न लूँगी। मैंने मान लिया वह सती है, साध्वी है और केवल उनकी आज्ञा से ××× "

दयाकृष्ण ने बात काटी—उनकी कोई आज्ञा नहीं थी।

"ओहो, तुम तो ज़बान पकड़ते हो कृष्ण। क्षमा करो, उनकी आज्ञा से नहीं, तुम अपनी इच्छा से आए थे। अब तो राज़ी हुए। अब यह बताओ, आगे तुम्हारे क्या इरादे हैं। मैं वचन तो दे दूँगी, मगर अपने संस्कारों को नहीं बदल सकती। मेरा मन दुर्बल है। मेरा सतीत्व कब का नष्ट हो चुका है। अन्य मूल्यवान पदार्थों की ही तरह रूप और यौवन की रक्षा भी बलवान हाथों से हो सकती है। मैं तुमसे पूछती हूँ, तुम मुझे अपनी शरण में लेने पर तैयार हो? तुम्हारा आश्रय पाकर, तुम्हारे प्रेम की शक्ति से, मुझे विश्वास है, मैं जीवन के सारे प्रलोभनों का सामना कर सकती हूँ। मैं इस सोने के महल को ठुकरा दूँगी, लेकिन इसके बदले मुझे किसी हरे वृक्ष की छाँह तो मिलनी चाहिए। वह छाँह तुम मुझे दोगे? अगर नहीं दे सकते तो मुझे छोड़ दो। मैं अपने हाल में मगन हूँ। मैं वादा करती हूँ, सिंगारसिंह से मैं कोई सम्बन्ध न रक्खूँगी। वह मुझे घेरेगा, रोएगा, सम्भव है गुण्डों से मेरा अपमान कराए, आतङ्क दिखाए, लेकिन मैं सब कुछ झेल लूँगी, तुम्हारी ख़ातिर से ×××।"

आगे और कुछ न कह कर वह तृष्णा भरी, लेकिन उसके साथ ही निरपेक्ष नेत्रों से दयाकृष्ण की ओर देखने लगी, जैसे कोई दूकानदार गाहक को बुलाता तो है, पर साथ ही यह भी दिखाना चाहता है कि उसे उसकी परवाह नहीं है।

दयाकृष्ण क्या जवाब दे? सङ्घर्षमय संसार में उसने अभी केवल एक क़दम टिका पाया है। इधर वह अङ्गुल भर जगह भी उससे छिन गई है। शायद ज़ोर मार कर वह फिर वह स्थान पा जाय, लेकिन वहाँ बैठने की जगह नहीं है, और एक दूसरे प्राणी को लेकर तो वह खड़ा भी नहीं रह सकता। अगर मान लिया जाय कि अदम्य उद्योग से दोनों के लिए स्थान निकाल लेगा, तो

आत्म-सम्मान को कहाँ ले जाय ? संसार क्या कहेगा ! लीला क्या फिर उसका मुँह देखना चाहेगी, सिंगार से वह फिर आँखें मिला सकेगा ? यह भी छोड़ो। लीला अगर उसे पतित समझती है समझे, सिंगार अगर उससे जलता है जले, उसे इसकी परवाह नहीं है, लेकिन अपने मन को क्या करे ? विश्वास उसके अन्दर आकर जाल में फँसे पक्षी की भाँति फड़फड़ा कर निकल भागता है। कुलीना अपने साथ विश्वास का वरदान लिए आती है। उसके साहचर्य में हमें कभी सन्देह नहीं होता। वहाँ सन्देह के लिए प्रत्यक्ष प्रमाण चाहिए। कुत्सिता सन्देह का संस्कार लिए आती है। वहाँ विश्वास के लिए प्रत्यक्ष—अत्यन्त प्रत्यक्ष—प्रमाण की ज़रूरत है। उसने नम्रता से कहा—तुम जानती हो, मेरी क्या हालत है ?

"हाँ, ख़ूब जानती हूँ।"

"और उस हालत में तुम प्रसन्न रह सकोगी ?"

"तुम ऐसा प्रश्न क्यों करते हो कृष्णा, मुझे दुख होता है। तुम्हारे मन में जो सन्देह है, वह मैं जानती हूँ, समझती हूँ। मुझे भ्रम हुआ था कि तुमने भी मुझे जान लिया है, समझ लिया है। अब मालूम हुआ, मैं धोखे में थी।"

वह उठ कर वहाँ से जाने लगी। दयाकृष्ण ने उसका हाथ पकड़ लिया और प्रार्थी भाव से बोला—तुम मेरे साथ अन्याय कर रही हो माधुरी। मैं सत्य कहता हूँ, ऐसी कोई बात नहीं है × × ×

माधुरी ने खड़े-खड़े विरक्त मन से कहा—तुम झूठ बोल रहे हो, बिलकुल झूठ। तुम अब भी मन से यह स्वीकार नहीं कर रहे हो कि कोई स्त्री स्वेच्छा से रूप का व्यवसाय नहीं करती। पैसे के लिए अपनी लज्जा को उघाड़ना, तुम्हारी समझ में कुछ ऐसी आनन्द की बात है, जिसे वेश्या शौक़ से करती है। तुम वेश्या में स्त्रीत्व का होना सम्भव से बहुत दूर समझते हो। तुम इसकी कल्पना ही नहीं कर सकते कि वह क्यों अपने प्रेम में स्थिर नहीं होती। तुम नहीं जानते कि प्रेम के लिए उसके मन में कितनी व्याकुलता होती है, और जब वह सौभाग्य से उसे पा जाती है, तो किस तरह प्राणों की भाँति उसे सञ्चित रखती है। खारे पानी के समुद्र में मीठे पानी का छोटा सा पात्र कितना प्रिय होता है, इसे वह क्या जाने, जो मीठे पानी के मटके उँडेलता रहता हो।

दयाकृष्ण कुछ ऐसे असमञ्जस में पड़ा हुआ था कि उसके मुँह से एक भी शब्द न निकला। उसके मन में जो शङ्का चिनगारी की भाँति छिपी हुई है, वह बाहर निकल कर कितनी भयङ्कर ज्वाला उत्पन्न कर देगी। उसने कपट का जो अभिनय किया था, प्रेम का जो स्वाँग रचा था, उसकी ग्लानि उसे और भी व्यथित कर रही थी।

सहसा माधुरी ने निष्ठुरता से पूछा—तुम यहाँ क्यों बैठे हो ?

दयाकृष्ण ने अपमान को पीकर कहा—मुझे सोचने के लिए कुछ समय दो माधुरी !

"क्या सोचने के लिए ?"

"अपना कर्त्तव्य।"

"मैंने अपना कर्त्तव्य सोचने के लिए तो तुमसे समय नहीं माँगा। तुम अगर मेरे उद्धार की बात सोच रहे हो, तो उसे दिल से निकाल डालो। मैं भ्रष्टा हूँ और तुम साधुता के पुतले हो—जब तक यह भाव तुम्हारे अन्दर रहेगा, मैं तुमसे उसी तरह बात करूँगी जैसे औरों के साथ करती हूँ। मैं अगर भ्रष्टा हूँ तो जो लोग मेरे यहाँ अपना मुँह काला करने आते हैं, वे कुछ कम भ्रष्ट नहीं हैं। तुम जो एक मित्र की स्त्री पर दाँत लगाए हुए हो, तुम जो एक सरला अबला के साथ झूठे प्रेम का स्वाँग करते हो, तुम्हारे हाथों अगर मुझे स्वर्ग भी मिलता हो तो उसे ठुकरा दूँ।

दयाकृष्ण ने लाल आँखें करके कहा—तुमने फिर वही आक्षेप किया !

माधुरी तिलमिला उठी। उसकी रही-सही मृदुता भी ईर्ष्या के उमड़ते हुए प्रवाह में समा गई। लीला पर आक्षेप भी असह्य है, इसलिए कि वह कुलवधू है। मैं वेश्या हूँ, इसलिए मेरे प्रेम का उपहार भी स्वीकार नहीं किया जा सकता।

उसने अविचलित भाव से कहा—आक्षेप नहीं कर रही हूँ, सच्ची बात कह रही हूँ। तुम्हारे डर से बिल खोदने नहीं जा रही हूँ। तुम स्वीकार करो या न करो, तुम लीला पर मरते हो। तुम्हारी लीला तुम्हें मुबारक

रहे। मैं अपने सिंगारसिंह ही में प्रसन्न हूँ। उद्धार की लालसा अब नहीं रही। पहले जाकर अपना उद्धार करो। अब से ख़बरदार, कभी भूल कर भी यहाँ न आना, नहीं पछताओगे। तुम जैसे रँगे हुए सियार पतितों का उद्धार नहीं करते। उद्धार वही कर सकते हैं, जो उद्धार के अभिमान को हृदय में आने ही नहीं देते। जहाँ प्रेम है वहाँ किसी तरह का भेद नहीं रह सकता।

यह कहने के साथ ही वह उठ कर बराबर वाले दूसरे कमरे में चली गई और अन्दर से द्वार बन्द कर लिया। दयाकृष्ण कुछ देर वहाँ मर्माहत सा बैठा रहा, फिर धीरे-धीरे नीचे उतर गया, मानों देह में प्राण न हो।

४

दो दिन दयाकृष्ण घर से न निकला। माधुरी ने उसके साथ जो व्यवहार किया, इसकी उसे आशा न थी। माधुरी को उससे प्रेम था, इसका उसे विश्वास था। लेकिन जो प्रेम इतना असहिष्णु हो, जो दूसरे के मनोभावों का ज़रा भी विचार न करे, जो मिथ्या कलङ्क आरोपण करने में भी सङ्कोच न करे, वह उन्माद हो सकता है, प्रेम नहीं। उसने बहुत अच्छा किया कि माधुरी के कपट-जाल में न फँसा, नहीं उसकी न जाने क्या दुर्गति होती।

पर दूसरे क्षण उसके भाव बदल जाते और माधुरी के प्रति उसका मन कोमलता से भर जाता। अब वह अपनी अनुदारता पर, अपनी सङ्कीर्णता पर पछताता। उसे माधुरी पर सन्देह करने का कोई कारण न था। ऐसी दशा में ईर्ष्या स्वाभाविक है और वह ईर्ष्या ही क्या, जिसमें डङ्क न हो, विष न हो। माना, समाज उसकी निन्दा करता। यह भी मान लिया कि माधुरी सती भार्या न होती। कम से कम सिंगारसिंह तो उसके पञ्जे से निकल जाता। दयाकृष्ण के सिर से ऋण का भार तो कुछ हलका हो जाता, लीला का जीवन तो सुखी हो जाता।

सहसा किसी ने द्वार खटखटाया। उसने द्वार खोला तो सिंगारसिंह सामने खड़ा था। बाल बिखरे हुए, कुछ अस्त-व्यस्त।

दयाकृष्ण ने हाथ मिलाते हुए पूछा—क्या पाँव-पाँव ही आ रहे हो, मुझे क्यों न बुला लिया?

सिंगार ने उसे चुभती हुई आँखों से देख कर कहा—मैं तुमसे यह पूछने आया हूँ कि माधुरी कहाँ है। अवश्य तुम्हारे घर में होगी।

"क्यों, अपने घर पर होगी, मुझे क्या ख़बर? मेरे घर क्यों आने लगी?"

"इन बहानों से काम न चलेगा, समझ गए। मैं कहता हूँ, मैं तुम्हारा ख़ून पी जाऊँगा, वरना ठीक-ठीक बता दो, वह कहाँ गई।"

"मैं बिलकुल कुछ नहीं जानता, तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ। मैं तो दो दिन से घर से निकला ही नहीं।"

"रात को मैं उसके पास था। सवेरे मुझे उसका यह पत्र मिला। मैं उसी वक़्त दौड़ा हुआ उसके घर गया। वहाँ उसका पता न था। नौकरों से इतना मालूम हुआ, ताँगे पर बैठ कर कहीं गई है। कहाँ गई है, यह कोई न बता सका। मुझे शक हुआ, यहाँ आई होगी। जब तक तुम्हारे घर की तलाशी न ले लूँगा, मुझे चैन न आएगा।

उसने मकान का एक-एक कोना देखा, तख़्त के नीचे, अलमारी के पीछे। तब निराश होकर बोला—बड़ी बेवफ़ा और मक्कार औरत है। ज़रा इस ख़त को पढ़ो।

दोनों फ़र्श पर बैठ गए। दयाकृष्ण ने पत्र लेकर पढ़ना शुरू किया—

"सरदार साहब! मैं आज कुछ दिनों के लिए यहाँ से जा रही हूँ। कब लौटूँगी, कुछ नहीं जानती। कहाँ जा रही हूँ, यह भी नहीं जानती। जा इसलिए रही हूँ कि इस बेशर्मी और बेहयाई की ज़िन्दगी से मुझे घृणा हो रही है, और घृणा हो रही है उन लम्पटों से, जिनके कुत्सित विलास का मैं खिलौना थी और जिनमें तुम मुख्य हो। तुम महीनों से मुझ पर सोने और रेशम की वर्षा कर रहे हो। मगर मैं तुमसे पूछती हूँ, उससे लाख गुने सोने और दस लाख गुने रेशम पर भी तुम अपनी बहिन या स्त्री को इस रूप के बाज़ार में बैठने दोगे? कभी नहीं। उन देवियों में कोई ऐसी वस्तु है, जिसे तुम संसार भर की दौलत से भी मूल्यवान समझते हो। लेकिन जब तुम शराब के नशे में चूर, अपने एक-एक अङ्ग में काम का उन्माद भरे आते थे, तो तुम्हें कभी

ध्यान आता था कि तुम उसी अमूल्य वस्तु को किस निर्दयता के साथ पैरों से कुचल रहे हो? कभी ध्यान आता था कि अपनी कुल-देवियों को इस अवस्था में देख कर तुम्हें कितना दुख होता? कभी नहीं। यह उन गीदड़ों और गिद्धों की मनोवृत्ति है, जो किसी लाश को देख कर चारों ओर से जमा हो जाते हैं और उसे नोच-नोच कर खाते हैं। यह समझ रक्खो, नारी अपना बस रहते हुए कभी पैसों के लिए अपने को समर्पित नहीं करती। यदि वह ऐसा कर रही है, तो समझ लो उसके लिए और कोई आश्रय, और कोई आधार नहीं है। और पुरुष इतना निर्लज्ज है कि उसकी दुरवस्था से अपनी वासना तृप्त करता है, और इसके साथ ही इतना निर्दय कि उसके माथे पर पतिता का कलङ्क लगा कर उसे उसी दुरावस्था में मरते देखना चाहता है। क्या वह नारी नहीं है? क्या नारीत्व के पवित्र मन्दिर में उसका स्थान नहीं है? लेकिन तुम उसे उस मन्दिर में घुसने नहीं देते। उसके स्पर्श से मन्दिर की प्रतिमा भ्रष्ट हो जायगी। ख़ैर, पुरुष-समाज जितना अत्याचार चाहे कर ले। हम असहाय हैं, अशक्त हैं; आत्माभिमान को भूल बैठी हैं। लेकिन× × ×"

सहसा सिंगारसिंह ने उसके हाथ से वह पत्र छीन लिया और जेब में रखता हुआ बोला—क्या बड़े ग़ौर से पढ़ रहे हो, कोई नई बात नहीं है। सब कुछ वही है, जो तुमने सिखाया है। यही करने तो तुम उसके यहाँ जाते थे। मैं कहता हूँ, तुम्हें मुझसे इतनी जलन क्यों हो गई? मैंने तो तुम्हारे साथ कोई बुराई न की थी। इस साल भर में मैंने माधुरी पर दस हज़ार से कम न फूँके होंगे। घर में जो कुछ मूल्यवान था, वह मैंने उसके चरणों पर चढ़ा दिया, और आज उसे साहस हो रहा है कि वह हमारी कुल-देवियों की बराबरी करे। यह सब तुम्हारा प्रसाद है। सत्तर चूहे खाके बिल्ली हज को चली। कितनी बेवफ़ा ज़ात है! ऐसों को तो गोली मार दे। जिस पर सारा घर लुटा दिया, जिसके पीछे सारे शहर में बदनाम हुआ, वह आज मुझे उपदेश करने चली है। ज़रूर इसमें कोई न कोई रहस्य है। कोई नया शिकार फँसा होगा। मगर मुझसे भाग कर जाएँगी कहाँ। ढूँढ़ न निकालूँ तो नाम नहीं। कम्बख़्त कैसी प्रेम-भरी बातें करती थी कि मुझ पर घड़ों नशा चढ़ जाता था। बस कोई नया शिकार फँस गया। यह बात न हो तो मूँछ मुड़ा लूँ।

दयाकृष्ण उसके सफ़ाचट चेहरे की ओर देख कर मुसकिराया—तुम्हारी मूँछें तो पहले ही मुँड़ चुकी हैं।

इस हलके से विनोद ने जैसे सिंगारसिंह के घाव पर मरहम रख दिया। वह बेसरो-सामान घर, वह फटा फ़र्श, वह टूटी-फूटी चीज़ें देख कर उसे दयाकृष्ण पर दया आ गई। चोट की तिलमिलाहट में वह जवाब देने के लिए ईंट-पत्थर ढूँढ़ रहा था। पर अब चोट ठण्डी पड़ गई थी और दर्द घनीभूत हो रहा था, और दर्द के साथ सौहार्द्य भी जाग रहा था। जब आग ही बुझ गई तो धुआँ कहाँ से आता।

उसने पूछा—सच कहना, तुमसे भी कभी प्रेम की बातें करती थी?

दयाकृष्ण ने मुसकिराते हुए कहा—मुझसे! मैं तो ख़ाली उसकी सूरत देखने जाता था।

"सूरत देख कर दिल पर क़ाबू तो नहीं रहता।"

"यह तो अपनी-अपनी रुचि है।"

"है मोहिनी, देखते ही कलेजे पर छुरी चल जाती है।"

"मेरे कलेजे पर तो कभी छुरी नहीं चली। यही इच्छा होती थी कि इसके पैरों पर गिर पड़ूँ।"

"इसी शायरी ने तो यह अनर्थ किया। तुम जैसे बुद्धुओं को किसी देहातिन से शादी करके रहना चाहिए। चले थे वेश्या से प्रेम करने।"

एक क्षण के बाद उसने फिर कहा—मगर है बेवफ़ा, मक्कार।

"तुमने उससे वफ़ा की आशा की, मुझे तो यही अफ़सोस है।"

"तुमने वह दिल ही नहीं पाया, तुमसे क्या कहूँ।"

एक मिनिट के बाद उसने सहृदय भाव से कहा—अपने पत्र में उसने बातें तो सच्ची लिखी हैं, चाहे कोई माने या न माने। सौन्दर्य को बाज़ारी चीज़ समझना कुछ बहुत अच्छी बात तो नहीं है।

दयाकृष्ण ने पुचारा दिया—जब स्त्री अपना रूप बेचती है तो उसके ख़रीदार भी निकल आते हैं। फिर यहाँ तो कितनी ही जातियाँ हैं, जिनका यही पेशा है।

"वह पेशा चला कैसे?"

"पुरुषों की दुर्बलता से।"

"नहीं, मैं समझता हूँ, बिस्मिल्लाह पुरुषों ने की होगी।"

इसके बाद एकाएक जेब से घड़ी निकाल कर देखता हुआ बोला—ओहो! दो बज गए और अभी मैं यहीं बैठा हूँ। आज शाम को मेरे यहाँ खाना खाना। ज़रा इस विषय पर बातें होंगी। अभी तो उसे ढूँढ़ निकालना है। वह है कहीं इसी शहर में। घर वालों से भी कुछ नहीं कहा। बुढ़िया नायका सिर पीट रही थी। उस्ताद जी भी अपनी तक़दीर को रो रहे थे। न जाने कहाँ जाकर छिप रही।

उसने उठ कर दयाकृष्ण से हाथ मिलाया और चला।

दयाकृष्ण ने पूछा—मेरी तरफ़ से तो तुम्हारा दिल साफ़ हो गया?

सिंगार ने पीछे फिर कर कहा—हुआ भी और नहीं भी हुआ। और बाहर निकल गया।

५

सात-आठ दिन तक सिंगारसिंह ने सारा शहर छाना, पुलिस में रिपोर्ट की, समाचार-पत्रों में नोटिस छपाई, अपने आदमी दौड़ाए, लेकिन माधुरी का कुछ भी सुराग़ न मिला। फिर महफ़िल कैसे गर्म होती! मित्रवृन्द सुबह-शाम हाज़िरी देने आते और अपना सा मुँह लेकर लौट जाते। सिंगार के पास उनके साथ गपशप करने का समय न था।

गरमी के दिन। सजा हुआ कमरा भट्टी बना हुआ था। ख़स की टट्टियाँ भी थीं, पङ्खा भी, लेकिन गरमी जैसे किसी के समझाने-बुझाने की परवाह नहीं करना चाहती, अपने दिल का बुख़ार निकाल कर ही रहेगी।

सिंगारसिंह अपने भीतर वाले कमरे में बैठा हुआ पेग पर पेग चढ़ा रहा था, पर अन्दर की आग न शान्त होती थी। इस आग ने ऊपर की घास-फूस को जला कर भस्म कर दिया था और अब अन्तस्तल की जड़ विरक्ति और अचल विचार को द्रवित करके बड़े वेग से ऊपर फेंक रही थी। माधुरी की बेवफ़ाई ने उसके आमोदी हृदय को इतना आहत कर दिया था कि अब अपना जीवन ही उसे बेकार सा मालूम होता था। माधुरी उसके जीवन में सबसे सत्य वस्तु थी, सत्य भी और सुन्दर भी। उसके जीवन की सारी रेखाएँ इसी बिन्दु पर आकर जमा हो जाती थीं। वह बिन्दु एकाएक पानी के बुलबुले की भाँति मिट गया और अब वह सारी रेखाएँ, वह सारी भावनाएँ, वह सारी मृदु स्मृतियाँ, उन झल्लाई हुई मधु-मक्खियों की तरह भनभनाती फिरती थीं, जिनका छत्ता जला दिया गया हो। जब माधुरी ने कपट-व्यवहार किया तो और किससे कोई आशा की जाय? इस जीवन ही में क्या है? आम में रस ही न रहा तो गुठली किस काम की?

लीला कई दिन से महफ़िल में सन्नाटा देख कर चकित हो रही थी। उसने कई महीनों से घर के किसी विषय में बोलना छोड़ दिया था। बाहर से जो आदेश मिलता था, उसे बिना कुछ कहे-सुने पूरा करना ही उसके जीवन का क्रम था। वीतराग सी हो गई थी। न किसी शौक़ से वास्ता था, न सिंगार से।

मगर इस कई दिन के सन्नाटे ने उसके उदास मन को भी चिन्तित कर दिया। चाहती थी कुछ पूछे, लेकिन पूछे कैसे? मान जो टूट जाता। मान ही किस बात का। मान तब करे जब कोई उसकी बात पूछता हो। मान-अपमान से उसे कोई प्रयोजन नहीं। नारी ही क्यों हुई।

उसने धीरे-धीरे कमरे का पर्दा हटा कर अन्दर झाँका। देखा, सिंगारसिंह सोफ़ा पर चुपचाप लेटा हुआ है, जैसे कोई पत्ती साँझ के सन्नाटे में परों में मुँह छिपाए बैठा हो।

समीप आकर बोली—मेरे मुँह पर तो ताला डाल दिया गया है, लेकिन क्या करूँ, बिना बोले रहा नहीं जाता। कई दिन से सरकार की महफ़िल में सन्नाटा क्यों है। तबीयत तो अच्छी है?

सिंगार ने उसकी ओर आँखें उठाईं। उनमें व्यथा भरी हुई थी।

कहा—तुम अपने मैके क्यों नहीं चली जातीं लीला?

"आपकी जो आज्ञा। पर यह तो मेरे प्रश्न का उत्तर न था।"

"वह कोई बात नहीं। मैं बिलकुल अच्छा हूँ। ऐसे बेहयाओं को मौत भी नहीं आती। अब इस जीवन से जी भर गया। कुछ दिनों के लिए बाहर जाना चाहता हूँ। तुम अपने घर चली जाओ तो मैं निश्चिन्त हो जाऊँ।"

"भला आपको मेरी इतनी चिन्ता तो है।"

"अपने साथ जो कुछ ले जाना चाहती हो, ले जाओ।"

"मैंने इस घर की चीज़ों को अपनी समझना छोड़ दिया है।"

"मैं नाराज़ होकर नहीं कह रहा हूँ लीला। न जाने कब लौटूँ। तुम यहाँ अकेली कैसे रहोगी?"

कई महीनों के बाद लीला ने पति की आँखों में स्नेह की झलक देखी।

"मेरा विवाह तो इस घर की सम्पत्ति से नहीं हुआ है, तुमसे हुआ है। जहाँ तुम रहोगे वहीं मैं भी रहूँगी।"

"मेरे साथ तो अब तक तुम्हें रोना ही पड़ा।"

लीला ने देखा, उसकी आँखों में आँसू की एक बूँद नीले आकाश में चन्द्रमा की तरह गिरने-गिरने हो रही थी। उसका मन भी पुलकित हो उठा। महीनों की क्षुधाग्नि में जलने के बाद अन्न का एक दाना पाकर वह उसे कैसे ठुकरा दे। पेट नहीं भरेगा, कुछ भी नहीं होगा, लेकिन उस दाने को ठुकराना क्या उसके बस की बात थी?

उसने बिलकुल पास आकर अपने अञ्चल को उसके समीप ले जाकर कहा—मैं तो तुम्हारी हो गई। हँसाओगे हँसूँगी, रुलाओगे रोऊँगी, रक्खोगे तो रहूँगी, निकालोगे तो भी रहूँगी, मेरा घर तुम हो, धन तुम हो, धर्म तुम हो, अच्छी हूँ तो तुम्हारी हूँ, बुरी हूँ तो तुम्हारी हूँ।

और दूसरे क्षण सिंगार के विशाल सीने पर उसका सिर रक्खा हुआ था और उसके हाथ थे लीला की कमर में। दोनों के मुख पर हर्ष की लाली थी, आँखों में हर्ष के आँसू और मन में एक ऐसा तूफ़ान, जो उसे न जाने कहाँ उड़ा ले जायगा।

एक क्षण के बाद सिंगार ने कहा—तुमने कुछ सुना, माधुरी भाग गई और पगला दयाकृष्ण उसकी खोज में निकला है।

लीला को विश्वास न आया—दयाकृष्ण!

"हाँ जी, जिस दिन वह भागी है, उसके दूसरे ही दिन वह भी चल दिया।"

"वह तो ऐसा आदमी नहीं है। और माधुरी क्यों भागी?"

"दोनों में प्रेम हो गया था। माधुरी उसके साथ रहना चाहती थी। वह राज़ी न हुआ।"

लीला ने एक लम्बी साँस ली। दयाकृष्ण के वह शब्द याद आए, जो उसने कई महीने पहले कहे थे। दयाकृष्ण की वह याचना-भरी आँखें उसके मन को मसोसने लगीं।

सहसा किसी ने बड़े ज़ोर से द्वार खोला और धड़धड़ाता हुआ भीतर वाले कमरे के द्वार पर आ गया।

सिंगार ने चकित होकर कहा—अरे! तुम्हारी यह क्या हालत है कृष्णा! किधर से आ रहे हो?

दयाकृष्ण की आँखें लाल थीं, सिर और मुँह पर गर्द जमी हुई, चेहरे पर घबराहट, जैसे कोई दीवाना हो।

उसने चिल्ला कर कहा—तुमने सुना, माधुरी इस संसार में नहीं रही!

और दोनों हाथों से सिर पीट-पीट कर रोने लगा, मानों हृदय को और प्राणों को आँखों से बहा देगा।

"कितने ही मनुष्य ऐसे हैं, जो यदि कोई उपकार करने में समर्थ न हों तो उसे इस रीति से व्यक्त करते हैं कि उससे ही हमें प्रसन्नता होती है; कितने ही ऐसे हैं जो उपकार इतनी भद्दी तरह से करते हैं कि जितनी हमें उनके उपकार से प्रसन्नता न हो, उससे अधिक उनके उपकार करने की रीति से दुःख होता है। यदि हमारा रूमाल अकस्मात् पृथ्वी पर गिर पड़े और कोई उसे चिमटी से उठा कर दे तो हमें कितना बुरा लगे।"

—काल्टन

"यह अच्छा है कि तुममें ऐसी योग्यता हो जाय, जिससे दूसरे तुम्हारा आदर करने लगें। लेकिन अगर तुम केवल चिकने-चुपड़े बन कर—अच्छे-अच्छे कपड़े पहन कर—अपना आदर चाहो, तो यह बहुत बुरा है। बदचलन अमीर आदमी की अपेक्षा भलामानस ग़रीब आदमी कहीं ज़्यादा अच्छा और आदर के योग्य है। सीधा-सादा ग़रीब आदमी उस बदमाश से अच्छा है, जो ख़ूब बन-ठन के रहता हो और गाड़ी-घोड़ा रखता हो।"

—स्माइल्स

देवदूत

[श्री० बाबूलाल प्रेम]

जिसने पश्चिम के प्रवाह को,
उलट दिया प्राची दिशि को।
जिसने सहस्रार्चि सम नाशी,
रूढ़ि अविद्या की निशि को॥
पीड़ित हुआ हृदय-तल जिसका,
ध्वंस देख कर वैदिक धर्म।
जो अनाथ अबला विलाप सुनि,
हो जाता था आहत मर्म॥

आलोकित, अतीत अम्बर में,
विमल कीर्ति अङ्कित जिसकी।
जिसकी प्रभापूर्ण किरणों से,
पथ की तमोराशि खिसकी॥
जिसके तर्क-अस्त्र के सम्मुख,
नैय्यायिक तार्किक थे मौन।
आर्य-जाति सुन तुझे बता दू,
देवदूत वह ऋषि था कौन॥

श्वासोच्छ्वास आर्त्त दीनों का,
अन्त्यजों का अश्रु विपात।
मूक वेदना ललनाओं की,
वह्नि-रूप जलती दिन-रात॥

क्षार-क्षार होकर ऋषि-संस्कृति,
बहु रज-कण-वत् हुई विभक्त।
विचर रहे थे महाशून्य में,
पञ्चतत्व सम यह अव्यक्त॥

ज्यों सुयोग पाकर भू-उत्थित,
जलकण बन जाते घनश्याम।
दावानल कवलित भूतल से,
उगते अङ्कुर नवल ललाम॥
त्यों अदृष्ट में निहित तत्व वह,
पाकर काल सुलभ अनुरूप।
दिव्य विभूति-युक्त अवनी पर,
प्रकटे दयानन्द के रूप॥

इसीलिए उस अन्तस्थल में,
थी अबला अनाथ की हूक।
दग्धीभूत किया करती थी,
वह्नि-वेदना नीरव मूक॥
वैदिक संस्कृति से निर्मित तन,
वेद चतुष्टय उसके प्राण।
कारण सदृश कार्य होता है,
ऋषि का जीवन प्रबल प्रमाण॥

विभु विभूतियुत वह वरेण्य नर,
जब उतरा भूमीतल पर।
क्षुधा तृषा अघ ओघ ताप बहु,
उपजे थे जगतीतल पर॥
सामग्री सञ्चित जो गृह पर,
उससे ही होता अर्चन।
इसी हेतु तेरे स्वागत में,
हुए व्यङ्ग पत्थर वर्षन॥

पुष्प पत्र अमि फल सुस्वादु हवि,
मणि माणिक शुभ स्तुति गेय।
सांसारिकता में प्रवृत्त जो,
उन मनुजों को हैं यह देय॥

हे महर्षि! तू लोकोत्तर था,
सृष्टि-सुधारक रुद्र अजेय।
आशुतोष ही तुझे जान कर,
दिया हलाहल का था पेय॥

इसीलिए तूने निज घातक,
प्राण-दण्ड से छुड़वाए।
वरद हस्त से धन आशिष दे,
उसके बन्धन खुलवाए॥
कैसे कहूँ कि तू मानव था,
जब थे तव देवोपम कार्य।
काया-पलट विश्व की कर दी,
प्रकटित किए भूमि पर आर्य॥

आत्मा की कल्पना

[श्री० सत्यभक्त]

आध्यात्मवादी दार्शनिक हज़ारों वर्षों से आत्मा के स्वरूप, उसके लक्षण, उसके स्वभाव और शरीर में उसके स्थान के विषय में विवेचना तथा वादविवाद करते आए हैं। हिन्दू-धर्मशास्त्रों में इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुख और ज्ञान—ये आत्मा के लक्षण माने गए हैं। इनके सिवा साँस लेना और बाहर निकालना ; आँख बन्द करना और खोलना ; चलना ; भूख-प्यास और हर्ष, शोक अनुभव करना ; सोचना ; स्मरण करना आदि भी आत्मा के गुण माने गए हैं। आत्मा शरीर के किस भाग में निवास करती है, इस सम्बन्ध में विभिन्न दार्शनिकों के विभिन्न मत हैं। भारतीय दार्शनिकों के मतानुसार आत्मा समस्त शरीर में व्याप्त है। यूरोप का डेसकार्टिस नामक दार्शनिक आत्मा का स्थान मस्तिष्क की 'पाइनल' नाम की एक ग्रन्थि में, जिसका आकार मटर के बराबर है और जिसका वर्ण भूरा है, बतलाता है। अन्य दार्शनिकों की सम्मति में आत्मा मस्तिष्क के तीसरे आवरण में व्याप्त है। इस प्रकार दार्शनिकगण सदा से आत्मा के विषय में छान-बीन करते आए हैं, परन्तु उनमें से किसी ने इस बात का पता लगाने की चेष्टा नहीं की कि आत्मा की कल्पना ने मनुष्य के हृदय में किस प्रकार प्रवेश किया और किस प्रकार उसमें वृद्धि तथा परिवर्तन होता गया।

आदि युग में, जब कि मनुष्य नितान्त जङ्गली अवस्था में रहता था, तब वह वर्तमान समय की अपेक्षा अधिक आदर्शवादी था और प्रत्येक पदार्थ में आत्मा के अस्तित्व की कल्पना कर लेता था। उसके दिमाग़ में मनुष्य-जीवन और प्रकृति सम्बन्धी अनेक समस्याएँ उठा करती थीं, जिनका निर्णय वह अपनी योग्यता और ज्ञान के अनुसार करता था। यद्यपि उसके निर्णय अधिकांश में भ्रमपूर्ण होते थे, परन्तु धीरे-धीरे उन्होंने अकाट्य सत्य का रूप ग्रहण कर लिया और उनके आधार पर बड़े-बड़े दर्शन-शास्त्रों की रचना की गई। यद्यपि ये सिद्धान्त असत्य थे, परन्तु उनको मिटाने के लिए सैकड़ों वर्ष तक चेष्टा करनी पड़ी। उदाहरण के लिए पृथ्वी के गिर्द सूर्य की परिक्रमा करने का सिद्धान्त, जो अत्यन्त प्राचीन काल से चला आता था, कई सौ वर्ष पूर्व विज्ञान द्वारा असत्य सिद्ध किया जा चुका है, पर अब भी करोड़ों अपढ़ और पढ़े व्यक्ति उसे सच समझते हैं और जो लोग उसे नहीं भी मानते, वे भी बोलचाल में 'सूर्य का उदय हुआ' अथवा 'सूर्य अस्त हुआ' जैसे मुहावरों का प्रयोग करते हैं।

स्वप्न क्या है और किस लिए आता है, इस समस्या का निर्णय भी आज तक सन्तोषजनक रीति से नहीं हो सका है। प्राचीनकाल का जङ्गली मनुष्य भी इस समस्या के कारण बड़े सोच-विचार में पड़ा रहता था। वह स्वप्न में अपने को यात्रा करते, युद्ध करते अथवा शिकार खेलते देखता था, परन्तु जब जागता था तो जहाँ सोया था वहीं पड़ा पाता था। वह बहुत सोच-विचार करने पर भी इसका कारण न समझ पाता था कि आख़िर ये दृश्य उसे किस प्रकार दिखलाई देते हैं? इसका सबसे सरल और सम्भव उत्तर उसकी बुद्धि के अनुसार यही हो सकता था कि मनुष्य का शरीर दो भागों में बँटा है। एक स्थूल शरीर, जो आँखों से दिखलाई देता है और छूने से जान पड़ता है, और दूसरा सूक्ष्म शरीर, जो कि हवा की तरह न दिखलाई देता है, न पकड़ा जा सकता है। बहुत-कुछ विचार करने पर वह इसी निर्णय पर पहुँचा कि रात के समय निद्रा आ जाने पर सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर से पृथक् होकर शिकार खेलने या युद्ध करने जाता है और फिर वापस

आकर स्थूल शरीर में समा जाता है। ऑस्ट्रेलिया के निवासियों का विश्वास है कि जब मनुष्य खर्राटे लेने लगता है तो उसका सूक्ष्म शरीर बाहर चला जाता है। अगर किसी कारणवश यह सूक्ष्म शरीर वापस न आए तो मनुष्य जाग्रत नहीं हो सकता। इसलिए किसी भी व्यक्ति को इस दूसरे शरीर को अप्रसन्न करने का कोई काम नहीं करना चाहिए, अन्यथा सम्भव है वह देह को छोड़ कर चल दे। इसी कारण गहरी नींद में सोते हुए किसी व्यक्ति को एकाएक जगाना अनुचित माना जाता है। क्योंकि सम्भव है कि उसकी आत्मा किसी दूरवर्ती स्थान पर हो और जल्दी न लौट सके। कुछ प्रदेशों में सोते हुए आदमी का चेहरा रौग़न वग़ैरह लगा कर बदल देना या उसके नक़ली मूँछ वग़ैरह लगा देना हत्या के तुल्य समझा जाता है। क्योंकि उस व्यक्ति की आत्मा अपने निवास-स्थान को न पहिचान कर लौट जायगी और व्यक्ति की मृत्यु हो जायगी। यह भी विश्वास किया जाता है कि यदि किसी व्यक्ति के जीवन-काल में उसकी आत्मा देह को छोड़ कर चल दे, तो उस व्यक्ति का शव बहुत दिनों तक बिना गले-सड़े रक्खा रह सकता है। हमारे यहाँ और अन्य देशों में भी अनेक ऐसे क़िस्से प्रसिद्ध हैं, जिनमें कोई सिद्ध पुरुष या जादूगर अपने शरीर को छोड़ कर किसी अन्य व्यक्ति के मुर्दा शरीर में प्रविष्ट हो जाता है और दो-चार महीने या इससे भी अधिक समय तक उसी में बना रहता है। जङ्गली मनुष्य जब स्वप्न में अपने किसी पूर्व पुरुष के सम्बन्धी को देखता था, तो वह समझता था कि वे पुनर्जीवित होकर उससे मिलने आए हैं। उस युग में लोगों की मृत्यु प्रायः हथियार अथवा किसी अन्य दुर्घटना द्वारा होती थी, इसलिए जब कोई व्यक्ति बुढ़ापे अथवा बीमारी के कारण मरता था तो ख़याल किया जाता था कि किसी जादूगर ने उसके सूक्ष्म शरीर को रोक लिया है या किसी दुष्ट आत्मा ने उसे बहका दिया है।

इस प्रकार स्वप्न की क्रिया के आधार पर जङ्गली मनुष्यों के मस्तिष्क में सूक्ष्म शरीर की कल्पना उत्पन्न हुई और उस पर विचार करते हुए स्वभावतः उसने अन्य अनेकों ऐसी कल्पनाओं की सृष्टि कर डाली, जो बाद में परिष्कृत और विकसित रूप में मज़हबों और दार्शनिक प्रणालियों में सम्मिलित हो गईं। इस विचार-प्रणाली द्वारा जङ्गली मनुष्य को दृश्य जगत की अनेक ऐसी घटनाओं के विषय में समाधान हो गया, जिनका प्राकृतिक कारण जान सकने में वह असमर्थ था। इस दृष्टि से यह दो शरीरों का सिद्धान्त, जिसने सभ्यता की वृद्धि होने पर आत्मा के महान सिद्धान्त का रूप ग्रहण कर लिया, मानवीय मस्तिष्क का सर्व-प्रथम वैज्ञानिक तर्क अथवा अनुमान था।

आत्मा शरीर का प्रतिरूप है। उसके भी मस्तक, हाथ, पैर, हृदय, पेट आदि समस्त अङ्ग माने गए हैं। शरीर के साथ-साथ वह भी आकार और शक्ति में बढ़ता-घटता रहता और उसीके अनुसार बुड्ढा या जवान होता है। उत्तरी ध्रुव के निवासी एस्किमो, जो किसी मौसम में ख़ूब ख़ुशहाल रहते हैं और किसी में आधा ही पेट खाने को पाते हैं, समझते हैं कि उनका सूक्ष्म शरीर भी स्थूल शरीर के साथ मोटा और दुबला होता है। आत्मा का प्रत्येक अङ्ग शरीर के उसी अङ्ग में अवस्थित है। यह सूक्ष्म शरीर छाया के समान स्पर्श से जाना न जा सकने वाला समझा जाता है, इसलिए कितने ही लोग शरीर की छाया को ही आत्मा समझते हैं। भूमध्य-रेखा पर रहने वाले जङ्गली दोपहर के समय अपने घर से बाहर निकलने में डरते हैं, क्योंकि वहाँ उस समय सूर्य के ठीक सर पर होने से छाया बिल्कुल दिखलाई नहीं देती और ऐसी दशा में वे मृत्यु की सम्भावना करने लगते हैं। हमारे देश में अनेक लोग छाया-पुरुष का साधन करते हैं और उसके द्वारा भूत-भविष्यत् की बातें जानने की चेष्टा करते हैं। निर्मल पानी या किसी चमकदार चीज़ में दिखलाई देने वाला किसी व्यक्ति का प्रतिबिम्ब उसकी आत्मा का प्रतिबिम्ब माना जाता है, जिसे हथियार द्वारा मारा या घायल किया जा सकता है। अगर किसी व्यक्ति का चित्र बना कर अपने पास रख लिया जाय, तो यह उसकी आत्मा को अपने पास रख लेने के बराबर है। इस भय से कितने ही जङ्गली अब भी अपनी तस्वीर नहीं उतारने देते।

यूनान के प्राचीन निवासी आत्मा को अति सूक्ष्म वायु की तरह मानते थे, जिसका शब्द कानों से सुना जा सकता है। ऑस्ट्रेलिया वाले समझते हैं कि उनकी आत्माएँ पेड़ों पर रहती हैं और एक डाली से दूसरी डाली पर कूदती फिरती हैं। वे आत्माओं की आवाज़ भी सुनते हैं। बहुत से लोगों का ख़याल है कि आत्मा

नाक, मुँह, आँख आदि के रास्ते से बाहर निकलती है और चेष्टा करने से उसे पकड़ा जा सकता है या किसी खोखली चीज़ में बन्द किया जा सकता है। भारतवर्ष के देहातियों में बहुत दिनों तक यह क़िस्सा प्रसिद्ध था कि जब महारानी विक्टोरिया मरने लगी, तो डॉक्टरों ने उसे शीशे के एक बक्स में, जिसमें से हवा निकलने का कोई रास्ता न था, बन्द कर दिया। परन्तु जैसे ही मरने का नियत क्षण आया, उसकी आत्मा शीशे को तोड़ कर बाहर निकल गई।

आत्मा देह से पृथक् हो जाने पर भी किसी न किसी रूप में उससे संलग्न रहती है। आरम्भ में यह शव के साथ संलग्न रहती है और जब मांस गल-सड़ जाता है, तो हड्डियों के साथ। हड्डियों में भी मस्तक की हड्डी के साथ आत्मा का विशेष सम्बन्ध माना जाता है। कितनी ही जङ्गली जातियों में अपने पूर्वजों के मस्तक और अन्य हड्डियों को भी इसलिए सुरक्षित रक्खा जाता है, कि उनकी आत्मा घर में ही बनी रहे और अपनी सन्तान की सहायता करती रहे। यूनानी लोग मृत व्यक्तियों की कन्धे की हड्डी को बड़ी सावधानी से घर में रखते थे। हमारे देश में भी महात्मा समझे जाने वाले व्यक्तियों की हड्डियाँ साधारण लोगों की हड्डियों की तरह जल में नहीं बहाई जातीं, वरन् उनको सुरक्षित रखने के लिए उन पर समाधि या छतरी बना दी जाती है और उसकी मानता मानी जाती है। ईसाई धर्म वाले भी अपने सन्त पुरुषों की हड्डियों को यत्नपूर्वक रखते थे। कई शताब्दी पूर्व यूरोप के प्रत्येक शहर और गिर्जे में किसी न किसी सन्त की हड्डियाँ सुरक्षित रक्खी जाती थीं, जिससे उसकी आत्मा वहाँ मौजूद रहे। वेनिस के प्रजातन्त्र राज्य ने पोप और टर्की के सुलतान के आक्रमणों से अपने देश की रक्षा करने के लिए सिकन्दरिया (मिश्र) से सेण्ट मार्क की हड्डियाँ मँगाई थीं और सेण्ट रोकेस की हड्डियाँ तक अन्य स्थान से चोरी कराई थीं। इसी उद्देश्य से कितनी ही प्राचीन जङ्गली जातियों में अपने सम्बन्धियों के शव को खा लेने की प्रथा थी। कारण यही था कि वे अपने प्रियजन की आत्मा को कुटुम्ब से पृथक् नहीं होने देना चाहते थे। मिश्र के प्राचीन निवासी शव को कोई विशेष मसाला लगा कर रख देते थे, जिससे वह चिरकाल तक सुरक्षित रहे और उसकी आत्मा को इधर-उधर न भटकना पड़े। उन लोगों की समाधियों में, जिनका पता यूरोपियन अन्वेषकों ने लगाया है, कितनी ही मूर्तियाँ भी मिलती हैं। मैसपेरो नामक विद्वान की सम्मति है कि उन मूर्तियों को इसलिए रक्खा गया है, जिससे शव के नष्ट हो जाने की दशा में आत्मा उनमें रह सके।

प्राचीन काल में लोगों का यह भी विश्वास था कि मृत व्यक्ति की आत्मा क़ब्र के पत्थरों में रहती है। इस विश्वास के कारण तस्मानिया में स्त्रियों और पुरुषों की क़ब्रों का विवाह करने की प्रथा प्रचलित हो गई थी। क़ब्रों पर जो वृक्ष उग आते हैं अथवा उनमें जो प्राणी रहने लगते हैं, उनमें भी आत्मा का अंश माना जाता है। क़ब्रों के आस-पास यदि कोई पुराना सर्प दिखलाई देता है, तो उसे मृत व्यक्ति का अवतार समझ लिया जाता है।

प्राकृतिक नियमों से अनभिज्ञ होने के कारण जङ्गली मनुष्य की धारणा होती है कि वह मन्त्र-तन्त्र द्वारा प्राकृतिक शक्तियों को भी अपने कुटुम्बियों की तरह वश में कर सकता है और उनसे इच्छानुसार काम ले सकता है। वह मन्त्र पढ़ कर सूर्य को रोक सकता है, पानी बरसा सकता है और तूफ़ान उठा सकता है। इस तरह की शक्ति मृत आत्माओं में जीवित व्यक्तियों की अपेक्षा बहुत अधिक मानी जाती है। इसलिए जब जङ्गली मनुष्य स्वयम् इन कामों को नहीं कर सकते, तो वे मृतात्माओं से प्रार्थना करते हैं। अमेरिका के रेड इण्डियन शिकार को जाते समय उनसे बहुत सा शिकार मिलने की प्रार्थना करना कभी नहीं भूलते। आत्माएँ मामूली लोगों की अपेक्षा सरदार लोगों की प्रार्थनाएँ विशेष ध्यान से सुनती हैं। इसलिए जब कोई बड़ी आपत्ति पड़ती है, तो लोग सरदारों से प्रार्थना करने को कहते हैं और यदि उनको सफलता नहीं मिलती तो उनके प्राण सङ्कट में पड़ जाते हैं। जब अफ़्रीका के हबशी अपनी प्रार्थना से दीर्घकालीन दुर्भिक्ष का प्रतिकार नहीं कर सकते, तो वे अपने राजा को उसके पूर्व पुरुषों की समाधियों पर घसीट ले जाते हैं और उससे पानी बरसाने के लिए प्रार्थना कराते हैं। यदि इस पर भी पानी नहीं बरसता, तो वे राजा को ख़ूब पीटते अथवा मार डालते हैं। क्योंकि वे समझते हैं कि उसने ठीक ढङ्ग से प्रार्थना नहीं की। नवीं शताब्दी में ओलाफ़ नाम का बादशाह इसलिए जीता जला दिया गया, क्योंकि

वह अपने पूर्वजों की आत्माओं से दुर्भिक्ष का अन्त नहीं करा सका।

विभिन्न प्रकार की बीमारियों और शारीरिक कष्टों का आत्माओं के साथ बड़ा गहरा सम्बन्ध है। यदि बीमारी साधारण दवादारू से अच्छी न हो अथवा उसका कोई कारण समझ में न आवे तो लोग उसे तुरन्त भूत-प्रेत की करनी समझ लेते हैं। इस विश्वास का हमारे देश में इतना प्रावल्य है कि आधे से अधिक बीमारों का इलाज वैद्यों के स्थान पर ओझों और स्यानों से कराया जाता है। तस्मानिया देश के रहने वाले बीमार लोगों को किसी मरते हुए व्यक्ति के बिस्तरे के आसपास खड़ा कर देते हैं, ताकि उसकी आत्मा उनको आरोग्य कर दे। खेती-बारी पर तो आत्माओं का प्रभाव इतना अधिक माना जाता है कि प्रायः सभी देशों के जङ्गली और अर्द्ध-सभ्य निवासी उनसे सफलता की कामना करते हैं। न्यू गायना में जब खेत में बीज डाला जाता है, तो किसान उसके बीच में कुछ केला और गन्ना रख देते हैं और अपने पूर्वजों का नाम लेकर कहते हैं—"आपके लिए यह भोजन रक्खा है। हमारी फ़सल को प्रचुर और उत्तम बनाइए। यदि वह प्रचुर और उत्तम न हुई तो यह आपके और हमारे लिए भी बड़ी लज्जा की बात होगी।"

मृत व्यक्तियों की आत्माएँ अपने कुटुम्ब और फ़िक्रें के लिए बड़ी लाभजनक मानी जाती हैं। वे स्वप्न में उनके पास आकर उनको अच्छी सलाह देती हैं, जीवित और मृत शत्रुओं से उनकी रक्षा करती हैं और उनकी तरफ़ से युद्धों में भाग लेकर लड़ती हैं। प्लूटार्क नाम के सुप्रसिद्ध इतिहासकार ने लिखा है कि जब ईरान वालों ने यूनान पर हमला किया, तो थीसियस नामक मृत योद्धा की आत्मा ने दर्शन देकर यूनानी सेना का नायकत्व किया। कितनी ही बार इस प्रकार का विश्वास रखने वाले लोग किसी महान व्यक्ति को इसलिए मार डालते हैं, कि उसकी शक्तिशाली आत्मा उन्हीं के बीच में रहे। उत्तरी पश्चिमी सीमाप्रान्त के आसपास रहने वाले पठान लोगों के गाँव में अगर कोई धर्मात्मा या साधु पुरुष पहुँच जाता है, तो वे उसे सदा अपने ही यहाँ रखने की चेष्टा करते हैं और यदि वह जाना चाहता है, तो उसे मार कर उसकी क़ब्र गाँव में बना देते हैं, जिससे वह सदा उनकी सहायता करता रहे। ताहिती टापू के निवासी यद्यपि कप्तान कुक को बहुत अधिक आदर की दृष्टि से देखते थे, पर इस डर से कि वह कुछ समय में इङ्गलैण्ड लौट जायगा, उन्होंने उसकी हत्या कर डाली। अङ्गरेज़ी शासन के आरम्भ में सर रिचार्ड बर्टन नाम का एक उच्च अङ्गरेज़ पदाधिकारी एक बार ब्राह्मण का रूप धारण करके भारतवर्ष के अनजान प्रदेशों की खोज कर रहा था। उसके दिखावटी धर्माचरण और साधुता को देख कर लोग इतने प्रभावान्वित हो गए कि एक गाँव में उसके मार डालने का षड्यन्त्र किया गया, जिससे उसके प्राण बड़ी कठिनाई से बचे।

मृतात्माएँ तभी तक जीवित व्यक्तियों के मनोरथों को पूर्ण कर सकती हैं, जब तक वे अपनी समाधियों में रहें और उनको जीवन-निर्वाह की आवश्यक वस्तुएँ मिलती रहें। समाधियों पर रात के समय दिया जलाया जाता है और उन पर वस्त्र तथा फूल, बताशे, मिठाई आदि चढ़ाए जाते हैं। ऑस्ट्रेलिया के निवासी समाधियों के पास आग जलाते हैं, जिससे आत्माएँ वहाँ आकर ताप सकें। उनके भोजन के लिए खाद्य पदार्थ और पीने के लिए दूध, शराब आदि पहुँचाए जाते हैं। जब ज़मीन इन पेय पदार्थों को सोख लेती है तो समझा जाता है कि उन्हें आत्माओं ने पी लिया।

आत्माओं को इस प्रकार भोजन देने से मानवीय सभ्यता के आरम्भ में एक बहुत बड़ा लाभ हुआ है। ग्राण्ट ऐलन नामक विद्वान के मतानुसार खेती का आविष्कार विशेषतया इसी प्रथा से हुआ है। जब जङ्गली मनुष्य किसी मृत व्यक्ति की आत्मा के लिए तरह-तरह के बीज और फल उसकी क़ब्र पर रखता था या गाड़ देता था तो समय पाकर वे पौधे के रूप में परिणत हो जाते थे। क़ब्र की मिट्टी के ख़ूब नर्म और साफ़ होने तथा उस पर समय-समय ख़ून और अन्य पीने की चीज़ें पड़ते रहने से ये पौधे अन्य जङ्गली पौधों की अपेक्षा अधिक बड़े तथा पुष्ट होते थे, पर जङ्गली मनुष्य अपने परिश्रम का महत्व न समझ कर इसे मृतात्मा की कृपा समझता था। तब वह क़ब्र के आसपास की ज़मीन में भी बीज बोता था और आशा करता था कि आत्मा वहाँ भी अपना भाव डालेगी। इस प्रकार उसने धीरे-धीरे खेती के रहस्य को समझ लिया, परन्तु आत्मा के सहयोग का भाव, जिसकी जड़ बड़ी गहरी जम चुकी थी,

उसके मस्तिष्क से दूर न हो सका, और आज तक विभिन्न रूपों में देखने में आता है।

जङ्गली मनुष्य अधिक संख्या तक गिनती कर सकने में असमर्थ था और अपनी उम्र का भी उसे ज्ञान नहीं रहता था, इसलिए अमरत्व का भाव उसके दिमाग़ में घुस सकना असम्भव था। वह आत्मा का अस्तित्व तभी तक मानता था जब तक उसकी स्मृति क़ायम रहे। उस काल के व्यक्ति अपने पिता, पितामह और उन्हीं पूर्वजों की आत्मा के अस्तित्व में विश्वास करते थे, जिनको वे जानते थे या जिनके सम्बन्ध में उन्होंने सुना था। वे उन लोगों की आत्मा में भी विश्वास करते थे, जिनकी स्मृति किसी विशेष कारणवश स्थिर रह जाती थी। इस प्रकार के व्यक्तियों का चरित्र प्रायः कहा-सुना जाता था और उसमें नए-नए अद्भुत कर्म या करिश्मे जुड़ते जाते थे। धीरे-धीरे अधिक समय व्यतीत हो जाने पर ऐसे लोग देवताओं अथवा अवतारों का रूप ग्रहण कर लेते थे।

पर यह भी सम्भव था कि जिन लोगों की स्मृति शेष नहीं है, उनकी भी आत्मा मौजूद हो, इसलिए उनकी भी अभ्यर्थना की जाने लगी। सूदान-निवासी हब्शी जब अपने पित्रों को कुछ अर्पण करता है तो कहता है—"हे पिता, मैं तुम्हारे तमाम सम्बन्धियों को नहीं जानता, तुम उन सबको जानते हो, उनको भी अपने साथ भोजन करने को बुलाओ।" हमारे देश में पितृ-पक्ष के अवसर पर जब परिचित मृत व्यक्तियों का श्राद्ध उनकी मृत्यु-तिथि पर करते हैं, तो अन्तिम दिन समस्त भूले-भटके सम्बन्धियों का श्राद्ध किया जाता है। प्राचीन यूनानी भी भूले हुए व्यक्तियों की आत्माओं से प्रार्थना करते थे और उनको भेंट चढ़ाते थे, क्योंकि उनका विश्वास था कि यदि उनकी अभ्यर्थना न की जायगी, तो वे हमको हानि पहुँचा सकती हैं, पर यदि उनका सम्मान किया जायगा तो वे हमारा कल्याण करेंगी।

जङ्गली मनुष्य प्रत्येक प्राणी में अपनी ही तरह आत्मा मानता था, और यह भी अनुमान करता था कि शायद उनमें से किसी में उसके पूर्वजों की आत्मा मौजूद हो। इतना ही नहीं, वह पृथ्वी, चन्द्रमा, सूर्य, तारागण और वृक्ष तथा अन्य अचैतन्य पदार्थों तक में आत्मा की कल्पना करता था। वेदों में जल, वायु, अग्नि आदि प्राकृतिक शक्तियों को ईश्वरीय आत्मा का स्वरूप माना गया है और इनसे मनुष्यों के कल्याण की प्रार्थना की गई है। जङ्गली और अर्द्ध-सभ्य लोगों के मतानुसार प्रत्येक वस्तु में आत्मा का होना आवश्यकीय था। यही कारण है कि वे क़ब्र या चिता पर जानवरों की बलि देते हैं और बर्तन या हथियारों को तोड़ते हैं। वे समझते हैं कि ऐसा करने से इन पदार्थों की आत्मा मृत व्यक्ति के उपयोग में आ सकेगी।

स्वर्ग और परलोक

मानवीय स्वभाव की यह विचित्रता है कि वह प्रायः अपने ही मस्तिष्क और हाथ द्वारा उत्पन्न की हुई वस्तुओं से डरता रहता है। यही दशा आत्मा के सिद्धान्त की हुई। आरम्भ में जो आत्माएँ मनुष्य की सहायक और कल्याण करने वाली मानी जाती थीं, वे ही कुछ समय बाद उसके भय का कारण बन गईं। जङ्गली मनुष्य जीवित व्यक्तियों की अपेक्षा मृत आत्माओं से अधिक भयभीत रहने लगा। क्योंकि जीवित व्यक्तियों को वह देख सकता था और उनसे बचने का उपाय कर सकता था, पर इन अदृश्य प्राणियों का प्रतिकार कर सकना कठिन था। ये आत्माएँ जीवित अथवा मृत अवस्था में अपने साथ किए गए वास्तविक और काल्पनिक अपकारों का बदला लेने में बड़ी तेज़ समझी जाती थीं, और मनुष्यों को जितने दुःख, विपत्तियाँ और बीमारियाँ आदि भोगनी पड़ती थीं, उनका कारण इन आत्माओं का कोप ही समझा जाता था। आरम्भ में जब लोगों का कोई नियत निवास-स्थान न था, वे किसी व्यक्ति के मरने पर डर के मारे उस जगह को ही छोड़ देते थे। पर जब ऐसा करना असम्भव हो गया, तो वे मृत व्यक्ति के हाथ-पैर बाँध कर उसे ज़मीन में गहरा गढ़ा खोद कर गाड़ देते थे और सावधानी के लिए उस पर बड़े-बड़े पत्थर रख देते थे, जिससे उसकी आत्मा बाहर न निकल सके। जबकि शव किसी शत्रु का होता था तो वे उसकी पीठ की हड्डी तोड़ देते थे और अँगूठा काट डालते थे, जिससे वह धनुष न खींच सके। प्राचीन यूनानी अपने शत्रुओं को दफ़नाने के पहले उनके हाथ-पैर काट डालते थे, ताकि वे लड़ न सकें। इस विश्वास की जड़ यहाँ तक जम गई थी कि इङ्गलैण्ड में कुछ वर्ष पहले तक आत्म-हत्या करने वाले व्यक्ति के शव को ज़मीन में कील से जड़ देते थे, जिससे वह अपनी क़ब्र को छोड़ कर बाहर रहने

वाले लोगों को कष्ट न दे सके। मृतात्माओं के बदला लेने के इसी विश्वास के कारण धीरे-धीरे जङ्गली जातियों में से नर-मांस को खाने और हत्या करने की प्रवृत्ति कम हो गई। कुछ ही वर्ष पहले की बात है कि नार्वे का एक पादरी किसी टापू में जङ्गली जाति वालों के हाथ में पड़ गया, जो उसे मारने को तैयार थे। पर जब पादरी ने कहा कि मेरी आत्मा सदा यहीं रहेगी तो उन्होंने भयभीत होकर उसे छोड़ दिया। जङ्गली और अर्द्ध-सभ्य मनुष्य केवल मनुष्य की मृतात्मा से ही नहीं, वरन् पशु और अन्य प्राणियों की मृतात्मा से भी डरते हैं। एक प्राचीन पुस्तक में इस सम्बन्ध में एक बड़ी मनोरञ्जक प्रथा का वर्णन किया गया है। उससे विदित होता है कि फ़िनलैण्ड के निवासी जिस समय रीछ को मारते और उसकी खाल निकालते थे, उस समय उसकी प्रशंसा के गीत गाते जाते थे, जिससे उसकी मृतात्मा उनसे बदला न ले। वे उसे "परम सुन्दर, कमल-चरण, मनुष्यों के पूर्वज और श्रेष्ठ वीर" आदि के नाम से सम्बोधन करते थे, और उसको मारने वाला उसे विश्वास दिलाने की चेष्टा करता था कि वह भाले से नहीं मारा गया है, वरन् पेड़ से कूदते हुए स्वयम् ही घायल हो गया है।

पर इन तमाम उपायों के करने पर भी जङ्गली मनुष्य का पीछा मृतात्माओं के काल्पनिक भय से नहीं छूटता था और वह सदा यही अनुभव किया करता था कि वे उसे घेर कर खड़ी हैं और अभिशाप दे रही हैं। अन्त में उसके हृदय में उनके निवास के लिए एक स्वतन्त्र प्रदेश नियत कर देने की कल्पना उत्पन्न हुई। यह प्रदेश समुद्र के पार या ऊँचे पहाड़ों की चोटियों पर जहाँ मनुष्य नहीं जा सकते थे, कल्पित किया गया था। आत्माएँ उस प्रदेश को राज़ी से चली जाएँ, इसके लिए विभिन्न उपायों का अवलम्बन किया जाता था। भारत में रहने वाली बोडा जाति वाले अपने मृत-सम्बन्धियों के नाम पर चावल और मदिरा उत्सर्ग करके कहते हैं—"इनको खाओ-पियो। अब तक तुम हमारे साथ खाते-पीते रहे थे, पर अब तुम ऐसा नहीं कर सकते। पहले तुम हममें से ही एक थे, पर अब नहीं हो। अब हम तुम्हारे पास नहीं आएँगे और तुम भी हमारे पास न आना।" बोर्नियो के रहने वाले मृतात्मा से कहते हैं कि "हमारे साथ रहने से अब तुमको टूटी हुई टोकरी के सिवा और कुछ सोने को नहीं मिल सकता।" एक अन्य जाति वाले मृतक-संस्कार के समय एक पक्षी को छोड़ते थे, जो मृतात्मा को जहाँ तक बने जल्दी से ले जाय। पर इतने पर भी कितनी ही आत्माएँ अपने सम्बन्धियों को छोड़ कर जाने को राज़ी नहीं होती थीं, इसलिए उनके साथ बल-प्रयोग किया जाता था। ऑस्ट्रेलिया के निवासी और गोल्ड कोस्ट (अफ्रिका) के हब्शी मृतात्माओं को भगाने के लिए गाँव में चारों तरफ़ दौड़ते-फिरते हैं और हवा में लाठियाँ चलाते जाते हैं, जिससे आत्माएँ वहाँ न ठहर सकें।

आत्माओं से पीछा छुड़ाने के इस अप्रिय और भयपूर्ण मार्ग से बचने के लिए जङ्गली मनुष्य ने एक और उपाय का अवलम्बन किया। उसने मृतात्माओं के निवास-स्थान को, जहाँ तक उसको कल्पना शक्ति से बन पड़ा, सुन्दर और आनन्दपूर्ण बनाने की चेष्टा की, जिससे आत्माएँ वहाँ जाने में आगा-पीछा न करें और न वहाँ से फिर वापस आने की इच्छा करें। इस उद्देश्य से समस्त प्राचीन जातियों ने स्वर्ग या बहिश्त की कल्पना की थी, जहाँ मृतात्माएँ अत्यन्त सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करती हैं। ऑस्ट्रेलिया वालों की आत्मा रस्सी द्वारा चढ़ कर बादलों में बने एक छेद के पास पहुँचती है। इस छेद के दूसरी तरफ़ परलोक अवस्थित है, जहाँ प्रत्येक वस्तु पृथ्वी की अपेक्षा श्रेष्ठ है। ऑस्ट्रेलिया के निवासी जब किसी काङ्गरू (एक प्रकार का जङ्गली पशु) को मोटा-ताज़ा और मस्त बतलाना चाहते हैं तो वे कहते हैं कि वह मेघ-प्रदेश में रहने वालों की तरह दिखलाई देता है। प्राचीन यूनानी भी आत्माओं के स्वर्ग में जाने का मार्ग बादलों के छेदों में होकर मानते थे। अमेरिका के रेड इण्डियनों की आत्माएँ उस रमणीक वनस्थली में हिरणों का शिकार करती फिरती हैं और ग्रीनलैण्ड (बर्फ़िस्तान) के रहने वालों की आत्माओं को उस प्रदेश में, जहाँ सूर्य क्षितिज पर रहता है, बारहसिंहे, समुद्री मछलियाँ और समुद्री पक्षी इच्छानुसार परिमाण में मिलते हैं। हिन्दुओं की आत्माओं को स्वर्ग में अमृतोपम व्यञ्जन, मिष्टान्न, दूध और फल मिलते हैं तथा मुसलमानों के स्वर्ग में शहद और शराब की नहरें बहती हैं। इस प्रकार जिस देश के निवासी जिस तरह रहते

और खाते-पीते हैं, उसी को बढ़ा-चढ़ा कर उन्होंने मृतात्माओं के प्रदेश की कल्पना कर डाली। धीरे-धीरे जङ्गली मनुष्य की इस कल्पना ने इतनी गहरी जड़ जमा ली कि एक ज़माने में स्वर्ग में पृथ्वी की ख़बरें ले जाने के लिए मनुष्यों का बलिदान किया जाता था और कितने ही स्त्री तथा पुरुष इस काम के लिए ख़ुशी से तैयार होते थे। हमारे देश में स्वर्ग जाने का सबसे सीधा रास्ता यज्ञ बना दिया गया था। उसमें जो कोई पशु या मनुष्य मारा जाता था, उसके लिए स्वर्गीय सुख सुरक्षित था। पुराणों में मनुष्यों के सदेह स्वर्ग पहुँचने के क़िस्से पाए जाते हैं। यूनान के पुराण ग्रन्थों में भी 'ओलिम्पस' के सम्बन्ध में इससे मिलती-जुलती बातें मौजूद हैं।

आरम्भ में स्वर्ग का मार्ग प्रत्येक पुरुष और स्त्री के लिए खुला रहता था, चाहे उसमें किसी तरह का गुण हो या न हो। उस समय यह किसी तरह के पुरस्कार की तरह नहीं, वरन् अधिकार की भाँति माना जाता था। इसके सिवाय मृतात्मा से पीछा छुड़ाने के लिए लोग स्वयं उनको वहाँ भेजने को उत्सुक रहते थे। पर जब आत्माओं को ख़ुशी से वहाँ जाने की आदत लग गई तो उससे चरित्र-सम्बन्धी शिक्षा का काम लिया जाने लगा, तब स्वर्ग को विशेष रूप से उन लोगों के लिए सुरक्षित बना दिया गया, जो देश या जाति की रक्षा के लिए प्राण देते हैं। हमारे देश में युद्ध में प्राण देने वाला योद्धा सूर्यलोक को वेध कर सीधा स्वर्ग पहुँच जाता था। उसको ले जाने के लिए देवदूत सोने के रथ में आते थे और स्वर्ग पहुँचने पर अप्सराएँ उसकी सेवा-सुश्रूषा के लिए तैयार रहती थीं। इस भावना के कारण लोग युद्ध से विमुख होने के बजाय उसमें मर जाना अधिक लाभजनक समझते थे। मैक्सिको के प्राचीन निवासियों के विश्वासानुसार शत्रु के मुक़ाबले या उसके अत्याचारों से मरने वाले वीर की आत्मा को 'टिओगामिक' देवी स्वर्ग पहुँचा देती थी! नार्वे के युद्ध में मारे जाने वाले लोगों को स्वर्ग में पहुँचाने के लिए 'वल्कीर' नाम की देव-दूतिकाएँ नियुक्त की गई थीं। कितनी ही जातियों के विश्वासानुसार इन स्वर्गीय स्थानों में केवल युवा पुरुष और स्त्री ही रह सकते थे। बूढ़े लोगों को ऐसी जगह भेजा जाता था, जहाँ सदैव सोते रहना पड़ता है। बालक भी स्वर्ग में नहीं जा सकते, इसके लिए उन्हें दुबारा जन्म लेने की आवश्यकता है। इस विश्वास के कारण कितनी ही जातियों में बच्चों को रास्ते के किनारे गाड़ देने का नियम था, जिससे उनकी आत्मा आने-जाने वाली स्त्रियों के शरीर में प्रवेश करके जन्म ले सके। जब इस परलोक सम्बन्धी विचार की जड़ अच्छी तरह जम गई, तो मृतक के शव को गाड़ने के बजाय जला देने की रीति प्रचलित हुई, जिससे आत्मा शरीर का मोह त्याग कर शीघ्र परलोक को रवाना हो जाय।

आत्मा के सिद्धान्त का लोप

आत्मा का सिद्धान्त, जिसकी कल्पना जङ्गली मनुष्य ने की थी और जो अर्द्ध-सभ्य मनुष्य द्वारा विकसित किया गया था, बीच के युग में प्रायः लोप हो गया। यद्यपि उस समय भी मृतक संस्कार की प्रथा प्रचलित थी, पर उसका महत्व बहुत घट गया था और लोग केवल एक रूढ़ि की भाँति उसका पालन करते थे। इस कारण मृतक संस्कार के समय मनुष्यों और पशुओं का बलिदान करने की प्रथा उठ गई, और उसके साथ केवल दिखावे के लिए कुछ गिनती की चीज़ें जलाई जाने लगीं। क्योंकि अब लोगों को इस बात पर विश्वास नहीं रहा था कि वे मृत व्यक्ति के किसी काम आ सकेंगी।

इस परिवर्तन के फल-स्वरूप लोगों की मानसिक प्रवृत्ति ने एक नया ही रूप ग्रहण कर लिया और दार्शनिक लोग यह शिक्षा देने लगे कि मृत्यु के पश्चात् मनुष्य का सदा के लिए अन्त हो जाता है, परलोक आदि की धारणा मिथ्या है और इसलिए मनुष्य को जब तक जीवित रहे, सुख से समय व्यतीत करना चाहिए। 'एकलेसिएट' नामक प्राचीन ग्रन्थ में, जिसके रचयिता यहूदी दार्शनिक थे, लिखा है—"जैसे पशु का सदा के लिए अन्त हो जाता है, उसी प्रकार मनुष्य का भी अन्त हो जाता है। दोनों के प्राण एक समान हैं और इसलिए मनुष्य को पशु से श्रेष्ठ नहीं समझा जा सकता। × × × कौन कह सकता है कि मनुष्य की आत्मा ऊपर जाती है और पशु की आत्मा नीचे। × × × मेरी सम्मति में यही मार्ग श्रेष्ठ है कि मनुष्य खाए, पिए और अपने परिश्रम के फल का भली-भाँति उपभोग करे। यही ईश्वरीय दान है कि जब तक संसार में

रहो, ख़ुशी के साथ जीवित रहो। × × ×तुमको जो कुछ काम करने को मिले उसे अपनी पूरी शक्ति से करो, क्योंकि क़ब्र में, जहाँ तुमको जाना है, न कोई काम है, न कोई योजना है, न ज्ञान है और न विद्या है।" एक दूसरे कवि ने लिखा है—"पृथ्वी की गोद में मैं बिना किसी तरह के शब्द के एक पत्थर की तरह पड़ा रहूँगा।" भारतवर्ष में भी बृहस्पति आदि आचार्यों ने जो चार्वाक मत चलाया था, उसकी शिक्षा इसी प्रकार की थी। इस मत सम्बन्धी जो उद्धरण 'सर्वदर्शन संग्रह' आदि ग्रन्थों में मिलते हैं, उनसे विदित होता है कि बृहस्पति के मतानुसार "यह देह भस्म हो जाने वाली है, इसलिए मनुष्य को परलोक का ख़याल छोड़ कर सुखपूर्वक जीवन निर्वाह करना चाहिए।.........यदि यज्ञ में मारे जाने वाले पशु को स्वर्ग प्राप्त होता है, तो यज्ञकर्ता अपने पिता को ही मार कर स्वर्ग क्यों नहीं भेज देता।"

यद्यपि इतिहासकारों ने आत्मा के सिद्धान्त के लोप होने और फिर प्रकट होने का वर्णन किया है, पर उन्होंने इस बात पर कभी विचार नहीं किया कि इस आश्चर्य-जनक घटना के वास्तविक कारण क्या थे। इन कारणों का पता लगाना उनके लिए सहज भी न था, क्योंकि उस समय ज्ञान-विज्ञान की उन्नति बाल्यावस्था में थी और खोज करने के बहुत कम साधन उपलब्ध थे। इन कारणों का ठीक पता साम्यवाद के आचार्य मार्क्स और उसके अनुयायी अन्य विद्वानों की विशेष विचारशैली द्वारा हाल ही में लगा है। इन विद्वानों के मतानुसार मनुष्य-जाति के विचारों तथा प्रथाओं में परिवर्तन होने का मुख्य कारण समाज का आर्थिक सङ्गठन है। जङ्गली अवस्था में प्रत्येक फ़िर्क़े या जाति के समस्त प्राणी समान माने जाते थे और उनका जायदाद पर समान रूप से अधिकार होता था। अगर कोई अन्तर था तो यही कि पुरुष शिकार करके भोजन सामग्री लाने का काम करता था और स्त्री घर का प्रबन्ध करती थी, रक्षा करती थी, भोजन पकाती थी और वितरण करती थी। इन महत्त्व-पूर्ण कार्यों के फल-स्वरूप उसकी बौद्धिक उन्नति पुरुष से अधिक हुई और समाज में उसका प्रभाव भी अधिक माना जाने लगा। वही लापरवाह और अदूरदर्शी जङ्गली पुरुष की भाग्य-विधाता थी और जन्म से मरण तक उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करती रहती थी। ऐसी दशा में स्त्रियों का पुरुषों द्वारा विशेष रूप से सम्मान किया जाना स्वाभाविक था। यही कारण था कि अति प्राचीन काल से विद्या, बुद्धि, धन, शक्ति आदि समस्त गुणों की अधिष्ठात्री देवियों को माना गया था। प्राचीन यूनानी अपने भाग्य की अधिष्ठात्री 'मोइरी' और 'परसी' नाम की देवियों को मानते थे, जिनका अर्थ लैटिन भाषा में गृह-प्रबन्ध-कर्त्री से है।

जब आर्थिक अधिकार इस प्रकार समान था, तो अन्य सब विषयों में भी समानता का भाव पाया जाना आवश्यकीय था, क्योंकि मनुष्य की चरित्र और धर्म सम्बन्धी भावनाओं का उदय मुख्यतया आर्थिक स्थिति से ही होता है। इसलिए जब जङ्गली मनुष्य ने आत्मा और परलोक का अन्वेषण किया तो फ़िर्क़े के प्रत्येक व्यक्ति में आत्मा मानी गई और प्रत्येक को स्वर्ग में जाने का अधिकार दिया गया। समस्त पुरुष और स्त्री बिना किसी तरह के अपवाद के उस सुन्दर प्रदेश में पृथ्वी की तरह रहते थे। जब कि पुरुष शिकार करते थे, स्त्रियाँ घर का प्रबन्ध करतीं थीं, और खाल के कपड़े बनाती थीं। परलोक में भी स्त्रियाँ ही गृह की शासिका मानी जाती थीं।

जब तक समाज में सम्मिलित रूप से जीवन निर्वाह करने की प्रथा प्रचलित रही, तब तक स्त्रियों की यह प्रधानता अक्षुण्ण रही। इस युग में विवाह की प्रथा प्रचलित न थी और फ़िर्क़े की समस्त स्त्रियों का समस्त पुरुषों से अबाध रूप से सम्बन्ध रहता था। उनसे जो सन्तानें उत्पन्न होती थीं, वे भी फ़िर्क़े की मानी जाती थीं। ये बच्चे अपने पिता के सम्बन्ध में सर्वथा अनजान रहते थे, केवल माता को पहिचानते थे। इस कारण से भी घर में माता की प्रधानता रहती थी और उसी के नाम से वंश-परम्परा चलती थी। इस प्रकार की वंश-परम्परा को Matriarchal (मातृ-प्रधान) कहते थे। पर जब मनुष्य ने जङ्गली अवस्था से सभ्यता की तरफ़ क़दम बढ़ाया और विवाह-प्रथा की सृष्टि हुई, तब एक फ़िर्क़ा कितने ही कुटुम्बों में बँट गया। ऐसे कुटुम्बों में आरम्भ में कुछ समय तक माता की प्रधानता रही, पर आर्थिक स्थिति के बदल जाने से धीरे-धीरे उसका प्रभाव कम हो गया और पिता की प्रधानता हो गई। इस प्रकार के प्रत्येक कुटुम्ब का अपने घर और आस-पास की ज़मीन

पर पूर्ण अधिकार रहता था। खेती की ज़मीन अब भी सार्वजनिक समझी जाती थी, पर अब उसको सम्मिलित रूप से जोतने-बोने की प्रथा नष्ट हो गई थी और उसे प्रत्येक वर्ष तमाम कुटुम्बों में बाँट दिया जाता था। यह वार्षिक बटवारे की प्रथा भी अन्त में बन्द हो गई और प्रत्येक कुटुम्ब अपने खेतों का स्थायी रूप से स्वामी मान लिया गया।

इस आर्थिक विकास का प्रभाव मनुष्यों की धार्मिक धारणा पर भी पड़ा। इसके फल से परलोक सम्बन्धी विश्वास, जिसके अनुसार वहाँ पर समस्त आत्माएँ सम्मिलित रूप से जीवन निर्वाह करती थीं, नष्ट हो गया। इसके साथ ही मातृ-प्रधान कुटुम्ब-प्रथा के स्थान पर पितृ-प्रधान (Patriarchal) कुटुम्ब की प्रथा प्रचलित होने से मनुष्य के आध्यात्मिक विचारों में एक और आश्चर्यजनक परिवर्तन हुआ। इस समय चूँकि एकमात्र घर का मुखिया या कुलपति ही सम्पत्ति का मालिक था, इसलिए केवल उसी में आत्मा का अस्तित्व माना जाने लगा और कुटुम्ब के शेष व्यक्ति आत्मा-रहित हो गए। स्त्रियों में आत्मा न होने के सिद्धान्त का जन्म इसी समय हुआ और इसकी जड़ यहाँ तक जम गई कि ईसाई धर्म की स्थापना के सैकड़ों वर्ष बाद तक लोग इस पर विश्वास करते रहे। स्त्रियों के साथ ही कुटुम्ब के अन्य व्यक्ति भी बिना आत्मा के माने जाने लगे, क्योंकि उनके पास किसी तरह की जायदाद न थी। परलोक का विश्वास नष्ट हो जाने से कुलपति की आत्मा को घर में ही रखने की ज़रूरत पड़ी और इससे पितृ-पूजन की प्रथा का प्रचार हुआ, जो अब भी संसार के अनेक भागों में विभिन्न रूपों में प्रचलित है। पित्रों का समाधि-स्थान घर के बीच में नियत किया गया, जहाँ किसी बाहरी मनुष्य की दृष्टि उस पर न पड़ सके।

कुटुम्ब के मुखिया अथवा कुलपति में आत्मा का अस्तित्व मानने का एक विशेष कारण था, जैसा कि विभिन्न देशों की पौराणिक कथाओं से प्रकट होता है। स्त्रियों ने पुरुषों की प्रधानता को सहज में स्वीकार नहीं कर लिया, और इसके लिए कुटुम्ब के प्रधान व्यक्तियों को बहुत-कुछ लड़ाई-झगड़ा करने तथा शक्ति से काम लेने की आवश्यकता पड़ी। जमदग्नि ऋषि के क़िस्से में, जिसने अपने छोटे पुत्रों को अपनी स्त्री के मारने का आदेश दिया था और उनके इनकार करने पर उन सबको तथा उनकी माता को बड़े पुत्र परशुराम द्वारा क़त्ल कराया था, इसी तथ्य की झलक पाई जाती है! यूनान में भी पितृ-प्रधान वंश-प्रथा की स्थापना करने वाले ज़ियस को मातृ-प्रधान प्रथा के पक्षपाती टीटन, गाइआ, क्रोनोस आदि से युद्ध करना पड़ा था। ऐसी परिस्थिति में पितृ-प्रधान प्रथा के प्रचलित हो जाने पर भी कुलपतियों को सदैव अपने विरोधियों की तरफ़ से खटका बना रहता था, और इस बात का बड़ा अन्देशा था कि उनके मरने के बाद उनके उत्तराधिकारी के आदेश को, यदि वह कम उम्र हुआ तो, कुटुम्ब के अन्य व्यक्ति मानेंगे या नहीं। इसलिए कुलपति के मरने के बाद भी उसकी आत्मा का घर में बना रहना आवश्यक हो गया। वह अपने उत्तराधिकारी को समय-समय पर ज़रूरी मामलों में सलाह देता रहता था, और उसके प्रभाव तथा श्रद्धा के कारण कुटुम्ब के अधिक उम्र वाले तथा योग्य व्यक्ति भी कम उम्र के उत्तराधिकारी की आज्ञानुसार चलते थे। यदि इस प्रकार का प्रबन्ध न किया जाता, तो कुटुम्ब के विभिन्न व्यक्तियों में फूट हो जाना और फल-स्वरूप पैतृक सम्पत्ति का नष्ट हो जाना बहुत सम्भव था। इसी पैतृक सम्पत्ति की रक्षा के भाव के कारण उस युग के मनुष्य पुत्र का होना अत्यावश्यक समझते थे, और जिसके पुत्र नहीं होता था वह या तो अपनी स्त्री को त्याग कर दूसरा विवाह करता था या स्त्री नियोग-विधि द्वारा किसी अन्य व्यक्ति से संयोग करके सन्तान उत्पन्न करती थी। इस प्रकार की सन्तान प्राचीन काल में सर्वथा वैध मानी जाती थी। इस प्रथा का प्रतिपादन करते हुए मनु ने लिखा है कि "बछड़े पर साँड़ के स्वामी का अधिकार नहीं होता, वरन् गाय के स्वामी का अधिकार माना जाता है।"

मनुष्य की जङ्गली दशा में जो आत्मा बहुत अधिक भय का कारण मानी जाती थी, वह पितृ-प्रधान प्रथा वाले समाज में मनुष्यों की रक्षक तथा शिक्षक बन गई। पूर्वजों की आत्माएँ गृह के मध्य में निवास करती थीं, और वहीं से कुटुम्ब की रक्षा करती थीं, जायदाद का प्रबन्ध करती थीं और अपने उत्तराधिकारी तत्कालीन कुलपति को उचित सम्मति देती रहती थीं।

कुलपति बिना अपने मृत पूर्वजों की सलाह लिए कोई महत्वपूर्ण निर्णय नहीं कर सकता था।

जङ्गली मनुष्य की आत्मा परलोक में अपने जीवन-निर्वाह की सामग्री शिकार करके या जङ्गल से फल इकट्ठे करके स्वयं ही प्राप्त कर लेती थी। पर जब कि परलोक की धारणा नष्ट हो गई और कुलपतियों की आत्माएँ समाधि में ही रहने लगीं, तो उनको खाने-पीने की सामग्री जुटाने का भार उनके सम्बन्धियों पर पड़ा। इस ख़्याल ने पुत्र उत्पन्न करने और वंश की परम्परा को स्थिर रखने की भावना को और भी दृढ़ कर दिया और जब कुछ काल पश्चात् दहेज की प्रथा प्रचलित हो जाने से कुटुम्ब में स्त्री का प्रभाव फिर से बढ़ा और उसने किसी प्रकार व्यभिचार द्वारा सन्तान उत्पन्न कराना स्वीकार न किया, तो दत्तक पुत्र लेने की प्रथा चलाई गई।

अब उस कल्पना में भी संशोधन करने की आवश्यकता का अनुभव होने लगा, जो जङ्गली मनुष्य ने स्वप्न के सम्बन्ध में की थी। जङ्गली मनुष्य का विश्वास था कि स्वप्न में जीवित या मृत व्यक्तियों की आत्माएँ दिखलाई देती हैं। पर अब, जबकि कुलपति के सिवाय किसी जीवित या मृत व्यक्ति की आत्मा का अस्तित्व नहीं माना जाता था, उपरोक्त सिद्धान्त स्वीकार नहीं किया जा सकता था, इसलिए अब यह विश्वास किया जाने लगा कि स्वप्न में दिखलाई देने वाले व्यक्ति देवताओं द्वारा प्रेषित मिथ्या प्रतिविम्ब हैं। इस प्रकार स्वप्न ने एक मानसिक घटना होने के बजाय दैवी सन्देश का रूप ग्रहण कर लिया। कितने ही लोगों का पेशा स्वप्नों का अर्थ बतलाना ही हो गया और उन्होंने जनता की मूर्खता से खूब लाभ उठाया और आज तक उठाते जा रहे हैं।

जङ्गली मनुष्य ने जिन आध्यात्मिक सिद्धान्तों की सृष्टि की थी, वे सामाजिक और आर्थिक दशा के बदल जाने से अधिकांश में नष्ट हो गए। वास्तव में अब उनकी आवश्यकता भी नहीं रही; क्योंकि अब मनुष्यों ने मृत व्यक्ति से डरना छोड़ दिया था। इस विषय में इतना अधिक परिवर्तन हुआ था कि साधारण लोगों को आत्मा से रहित मानने से पूर्व ही परलोक की धारणा का अन्त होने लग गया था।

पितृ-प्रधान युग के सिद्धान्तों में भी सामाजिक तथा आर्थिक विकास के साथ परिवर्तन होता गया। उनका मुख्य उद्देश्य कुटुम्ब के विभिन्न व्यक्तियों को एक मुखिया अथवा कुलपति की अधीनता में सङ्गठित कर देना था, जिससे वे अन्य कुटुम्बों की प्रतिस्पर्धा में अपने स्वत्वों की रक्षा कर सकें। जब यह उद्देश्य सिद्ध हो गया तो आत्मा का सिद्धान्त फिर जीवित हो उठा।

卐 卐 卐

धोखा !

[श्री० श्रीमद्भागवतप्रसाद वर्मा]

माया की वह छलना थी,
धोके में सब कुछ खोया !
अज्ञात देश से गिर कर—
मैं 'कहाँ-कहाँ' कर रोया !!

समझे था इस दुनिया को—
कोई सुन्दर बुतख़ाना !
उफ़ ! अभिशापित जीवन का—
यह तो है बन्दीख़ाना !!

खोया-सा देख रहा हूँ—
निर्मम विनाश की लीला !
हे विश्वनियन्ता कर दो—
माया का बन्धन ढीला !!

मिट्टी का तुच्छ घरौंदा—
ले लो वापस तुम अपना !
जिसका देखा करता था—
मैं वैसा सुन्दर सपना !!

बस, मुक्त मुझे अब कर दो,
उस पार लौट मैं जाऊँ !
कामना-सिन्धु के तट पर—
फिर बैठ तराना गाऊँ !!

जीने का अधिकार किसको ?

[स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक]

संयुक्त राज्य अमेरिका की साउथ डकोटा रियासत में मैं एक किसान के खेत पर काम करने के लिए गया। मैंने कभी भी पहिले इस प्रकार का कार्य नहीं किया था, इसलिए जब मज़दूरों के कपड़े पहिन कर मैं काम करने के लिए तैयार हुआ, तो खेत के मालिक ने बड़े प्रेम से मुझे समझा कर कहा—इस खेत में, जहाँ आप काम करेंगे, बहुत से निकम्मे पौधे जम गए हैं, वे मकई की खेती को नुक़सान पहुँचावेंगे, अतएव आप कृपा करके सबसे पहिले इन्हें उखाड़ कर फेंक दीजिए, ताकि वे जमने न पावें।

मैं ऐसे पौधों को नहीं पहिचानता था, एतदर्थ बड़ी नम्रता से बोला—महाशय, आप एक बार खेत में चल कर मुझे उन पौधों के दर्शन करा दें और कृपया यह भी समझा दें कि वे मक्का की खेती को नुक़सान कैसे पहुँचाते हैं ?

खेत का मालिक मुझे साथ लेकर खेत की ओर चला और वहाँ पहुँच कर उसने कुदाली से उन पौधों को उखाड़ कर बतलाया और मुझे समझाने लगा—देखो नौजवान, यह पौधे उस खाद को खा जावेंगे, जो मैं मक्का की खेती के लिए इस भूमि में डालूँगा। वे केवल खाद ही नहीं खाएँगे, बल्कि मक्का की बढ़ती को रोक देंगे और उसके भोजन को स्वयं उड़ा जायँगे। ऐसी अवस्था में इनका उखाड़ देना ही कल्याणकारी है, ताकि मेरी खेती खूब फूले और फले।

मैं काम में लग गया। मेरा मस्तिष्क भी गहरे विचार में डूब गया। मैं खेत में काम तो कर रहा था, लेकिन मेरे दिमाग़ में विचारों की बाढ़ आ गई थी। मैं सोचने लगा कि संसार में कितने पुरुष और स्त्री इन निकम्मे पौधों की तरह ज़िन्दगी बसर कर रहे हैं। वे दूसरों का भोजन चट कर जाते और समाज को निर्बल बनाते हैं। लाखों भिखमङ्गे, अन्धे, लङ्गड़े-लूले और अपाहिज हैं, जिनसे रत्ती भर भी समाज का कोई काम नहीं होता। हज़ारों हट्टे-कट्टे मुष्टण्डे, फ़क़ीर, साधू, बैरागी आदि हैं, जो कोई सेवा समाज की नहीं करते और अपने हिस्से का अन्न पैदा नहीं करते। वे धोखा-धड़ी से पेट पालते हैं और इस प्रकार दूसरे ईमानदार और परिश्रमी मज़दूरों का भाग खा जाते हैं। सैकड़ों हज़ारों भङ्गड़, चरसी, गँजेड़ी और शराबी हैं, जिनका चौबीस घण्टे धन्धा यही है कि वे राष्ट्र के धन को नशे द्वारा फूँक दें। इसी प्रकार व्यभिचार के मद में चूर हज़ारों व्यक्ति ऐसे हैं, जो बीमार और निर्बल सन्तान उत्पन्न कर समाज का कचरा बढ़ाते हैं। हज़ारों ऐसे स्त्री-पुरुष भी हैं, जो ऐसी व्याधियों से ग्रस्त हैं, जिनका इलाज कभी नहीं हो सकता और जो उन बीमारियों के कीटाणुओं को पीढ़ी दरपीढ़ी अपनी सन्तान को दे जाते हैं। इस भाँति संसार के इस विशाल क्षेत्र में जो सुन्दर पदार्थ प्रभु ने हमें भोगने के लिए दिए हैं, उनका पचास फ़ी सदी भाग बिल्कुल निकम्मे लोगों के लिए ख़र्च होता है और बाक़ी पचास फ़ी सदी ही उनके हिस्से में आता है, जिनके बूते पर समाज आगे बढ़ता है और वंश की वृद्धि होती है।

क्या हमने कभी गम्भीरता से इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर विचार किया है ? सैकड़ों प्रकार के आचार्य, सन्त और धर्माचार्य भिन्न-भिन्न देशों में पैदा हुए और उन्होंने थोथे सिद्धान्तों का प्रचार कर समाज के इन निकम्मे पौधों की रक्षा करने का उपदेश जनता को दिया। कभी किसी ने भी उस साधारण किसान से इस विषय में शिक्षा ग्रहण न की। दूसरे जन्मों के सब्ज़ बाग़ दिखला कर और स्वर्ग-नरक का माया-जाल रच कर उन्होंने जनता को ऐसा बना दिया कि आज तक ऐसे महत्वपूर्ण प्रश्न पर समाज-सुधारकों ने अपनी सारी शक्ति लगा कर कुछ परिणाम निकालने की कोशिश नहीं की। संसार में रोटी के लिए हाहाकार मचा हुआ है और सदा

मचा रहेगा। आबादी की बढ़ती होने से शक्तिशाली राष्ट्र दूसरे निर्बल देशों पर बलपूर्वक क़ब्ज़ा करने का यत्न करते रहेंगे, ताकि उनकी आबादी को बसने का स्थान मिले। इसी जद्दो-जहद में वे समाज के बलिष्ठ सैनिकों को युद्धों में जुझा कर उन्हें तबाह कर देते हैं और उनकी विजय का भोग करने वाले कौन होते हैं? अधिकतर वही निकम्मे पौधे, जिनका धन्धा केवल समाज के परिश्रमी लोगों का भोजन चट करना है। यदि परस्पर युद्ध करने के बजाय, अपने बलिष्ठ सैनिकों की हत्या करने के स्थान पर प्रत्येक वर्ष निकम्मे पौधों का नाश किया जाय, तो संसार में कभी रोटी के लिए हाहाकार न मचे और इस प्रकार आगे बढ़ने वाले 'शों को उन्नति करने का अवसर मिले। जो काम एक साधारण किसान कर सकता है, उसे बड़े-बड़े धर्माचार्य, विद्वान और राजनीतिज्ञ नहीं कर सकते। इसमें क्या रहस्य है? इसके अन्दर यही बात काम कर रही है कि मनुष्य-समाज के उन निकम्मे पौधों को हम स्त्री-पुरुष समझ कर उनकी रक्षा करते हैं और दया-दान का ढकोसला रच कर हम इनकी संख्या-वृद्धि करते हैं। अन्ध-विश्वास ने हमारी बुद्धि पर इतना परदा डाल दिया है कि हम ऐसी स्पष्ट बातों को भी नहीं देख सकते।

ज़रा सोचिए। अच्छी नसल का घोड़ा पैदा करने के लिए हम कितना प्रयत्न करते हैं? हमें अच्छे गाय-बैल चाहिए, इसके लिए कितनी प्रयोगशालाएँ बनती हैं, लेकिन अफ़सोस, मानव-समाज में अच्छी नसल के स्त्री-पुरुष पैदा करने का कोई यत्न नहीं किया जाता। यहाँ आकर हम मिथ्या-विश्वासों के जङ्गल में भटकने लगते हैं। भला सोचिए तो सही कि निर्बल, व्याधि-ग्रस्त और वीर्यहीन स्त्री-पुरुषों को विवाह कर निकम्मे बच्चे पैदा करने का क्या अधिकार है? हमारे इर्द-गिर्द चारों तरफ़ ऐसे निकम्मे झाड़-झङ्खाड़ खड़े हैं और नए उगते चले जा रहे हैं, जो दूसरों का भोजन हज़म कर समाज को बदले में लाभ देने के बजाय भारी हानि पहुँचाते हैं। क्या इन्हें जीने का अधिकार है? क्यों वे पृथ्वी के भू-भागों को घेर कर मुफ़्त की गन्दगी बढ़ावें? जिस प्रकार किसान अपनी खेती की रक्षा करता है, उसे हानिकारक कीड़ों से बचाता है, उसे निकम्मे पौधों से दूर रखता है और सदा बड़ी सावधानी से अधिक से अधिक पुष्ट अनाज पैदा करने का यत्न करता है, उसी प्रकार हमें भी करना चाहिए, तभी मनुष्य-समाज उन्नति के पथ पर चल सकेगा, अन्यथा नहीं।

आप पूछेंगे कि ऐसे निकम्मे भङ्गड़, चरसी, गँजेड़ी, व्यभिचारी-बदमाश, नपुंसक और व्याधिग्रस्त स्त्री-पुरुषों के साथ क्या करना चाहिए? मेरी सम्मति में हम जो सलूक निकम्मे पौधों के साथ करते हैं, वही हमें ऐसे स्त्री-पुरुषों के साथ भी करना चाहिए, तभी वंश बलवान होगा और सुन्दर मस्तिष्क रखने वाले सदस्यों की वृद्धि होगी, जो प्रभु के अनन्त ज्ञान में से अच्छी-अच्छी बातें निकाल सकेंगे। दया और करुणा बड़े अच्छे गुण हैं; परन्तु तभी तक, जब तक कि उनका उपयोग नीरोग और बलिष्ठ बीजों के साथ किया जाता है। भारतवर्ष में तो क़रीब साठ फ़ी सदी संख्या उन स्त्री-पुरुषों की होगी, जो भारतमाता पर केवल भार-रूप हैं; जिनके अन्दर से केवल बुराई के कीटाणु निकलते रहते हैं; जो विवाह कर भारी पाप करते हैं और रोगी सन्तान की वृद्धि कर भारतीय प्रजा के साथ बड़ा अत्याचार करते हैं। ईश्वर ने जो पदार्थ हमें दिए हैं, वे उन्हीं के भोग करने के वास्ते हैं, जो संसार के ज्ञान की वृद्धि करें और अपनी उपयोगिता से समाज को उन्नत बनावें। ऐसे स्त्री और पुरुष, जिनसे समाज को हानि ही हानि है, जीने का कोई अधिकार नहीं रखते। वीर स्पार्टा लोगों ने अपनी समृद्धि के दिनों में ऐसा ही किया था, तभी वे ऊँचे दर्जे के नीरोग और शक्तिशाली स्त्री-पुरुषों को उत्पन्न कर सके थे। वंश की वृद्धि और उसकी उन्नति का प्रश्न बड़े महत्व का है। जो कपोल-कल्पित धर्मों और झूठे आडम्बरों में फँस कर तीर्थों पर मगर पालते हैं, वृन्दावन में कछुओं को हज़ारों मन आटा खिलाते हैं और हनुमान के नाम पर बन्दरों का सितम सहते हैं, ऐसे अज्ञानी लोग दया और करुणा, इन शब्दों का अर्थ भला क्या समझ सकते हैं। वे धन की ख़ातिर दूसरों के मकान नीलाम करा लेंगे; दुधमुँहे बच्चों को उनकी झोंपड़ियों से निकाल कर उन पर क़ब्ज़ा कर लेंगे; विधवाओं पर भारी ज़ुल्म करेंगे, और नारी-जाति के अधिकारों का कभी भी आदर नहीं करेंगे—ऐसे ही लोग दया-धर्म में फँस कर पशु-पक्षियों के लिए तो बड़े धर्मात्मा बन जाते हैं, परन्तु समाज के

उत्थान के प्रश्न पर कभी विचार नहीं करते। अतएव हम बड़ी नम्रता से 'चाँद' द्वारा अपने पाठकों से पूछते हैं कि क्या आपने कभी इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर ध्यान दिया है? यदि नहीं दिया तो कृपा कर अब दीजिए। भारतवासियों को बहुत शीघ्र इस कूड़े-कचरे को साफ़ करना ही होगा, नहीं तो उनकी आबादी उन्हें इस पर मजबूर करेगी; यहाँ घरेलू युद्ध हो जावेंगे; दिन-दहाड़े डाके पड़ेंगे और व्यधियाँ अपना टैक्स वसूल करेंगी।

संक्षेप में हमारा निवेदन यह है कि आज संसार के चिन्ताशील विद्वानों को इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर विचार करना ही होगा। वे युद्ध बन्द करना चाहते हैं, यह बहुत ही अच्छी बात है। युद्धों में तो समाज का सर्वश्रेष्ठ तरुण दल ही मारा जाता है, निकम्मे पौधे तो मज़े में चरते रहते हैं। लेकिन यदि संसार में शान्ति लाने की इच्छा है, यदि रोटी के प्रश्न का हल भली प्रकार करना है, यदि अनन्त ज्ञान की खोज करने के लिए योग्य स्त्री-पुरुषों को मैदान में खड़ा करना है और यदि इस संसार को स्वर्ग बनाने की इच्छा है, तो आपको वैज्ञानिक ढङ्ग से संसार के इस विशाल क्षेत्र में उगने वाले पौधों की छाँट करनी ही होगी। जिन भद्दे क़ानूनों पर आज हम चल रहे हैं, उन्हें हटा कर समाज के लिए नए क़ानून बनाने होंगे और जिन बातों को हम आज धर्म समझ रहे हैं, उन्हें मिथ्या-विश्वासों के गढ़े में ढकेल देना होगा। यदि हम ऐसा नहीं करेंगे, तो फिर प्रकृति तो करेगी ही। परन्तु उससे मानव-समाज की उन्नति शताब्दियों के लिए रुक जायगी, जैसा कि पीछे होता आया है। यदि बौद्धकाल के उत्तम गुणों से विभूषित समाज आगे चल कर झूठी दया और अहिंसा के मोह में न फँस जाता और व्यर्थ के भिक्षुवाद की महत्ता को न बढ़ाता—केवल शक्तिशाली और योग्य स्त्री-पुरुषों को ही समाज में स्थान देता, तो कभी भी उसके लाखों भिक्षु मुसलमानों द्वारा गाजर-मूली की तरह न काट दिए जाते और न बसे हुए नगर उजाड़ दिए जाते। प्रकृति के नियम अटल हैं। वे किसी का लिहाज़ नहीं करते। शताब्दियों का किया हुआ त्यागी बौद्ध भिक्षुओं का काम इसीलिए मिट्टी में मिल गया कि उन्होंने अपने विहारों में निकम्मे पौधों की अत्यन्त वृद्धि कर ली। यही दशा सदा से होती चली आई है। इस कारण मैं मानव-समाज को चेतावनी देकर यह कहता हूँ कि आपको अभी से अपने खेत में फैले हुए निकम्मे पौधों को ठिकाने लगाने का कुछ प्रबन्ध सोचना चाहिए, ताकि यह रोटी का प्रश्न हल हो जाय और समाज अपने आदर्श की ओर चल सके।

सम्भव है, मेरे बहुत से प्रेमी पाठक इस विषय में मुझसे मतभेद रखते हों; या किसी बात को समझाने में मैं ही असमर्थ रहा हूँ, अथवा मेरे अभिप्राय को अधिक स्पष्ट समझने की इच्छा हो, तो वे कृपा कर १३, बारा खम्बा रोड, नई देहली के पते पर मुझसे पत्र-व्यवहार करें। तब मैं एक दूसरा लेख लिख कर सब शङ्काओं का समाधान करूँगा और इस विषय पर और भी अधिक प्रकाश डालूँगा।

पति—यह कौन सी पुस्तक पढ़ रही हो देवी जी?

पत्नी—बड़ी अच्छी पुस्तक है प्यारे! अगर स्त्री और पुरुष इस पुस्तक में बतलाए हुए तरीक़ों पर चलें तो उनका दाम्पत्य जीवन बड़ा प्रेमपूर्ण रह सकता है।

पति—स्त्रियों के लिए इस पुस्तक में क्या-क्या नसीहतें दर्ज हैं?

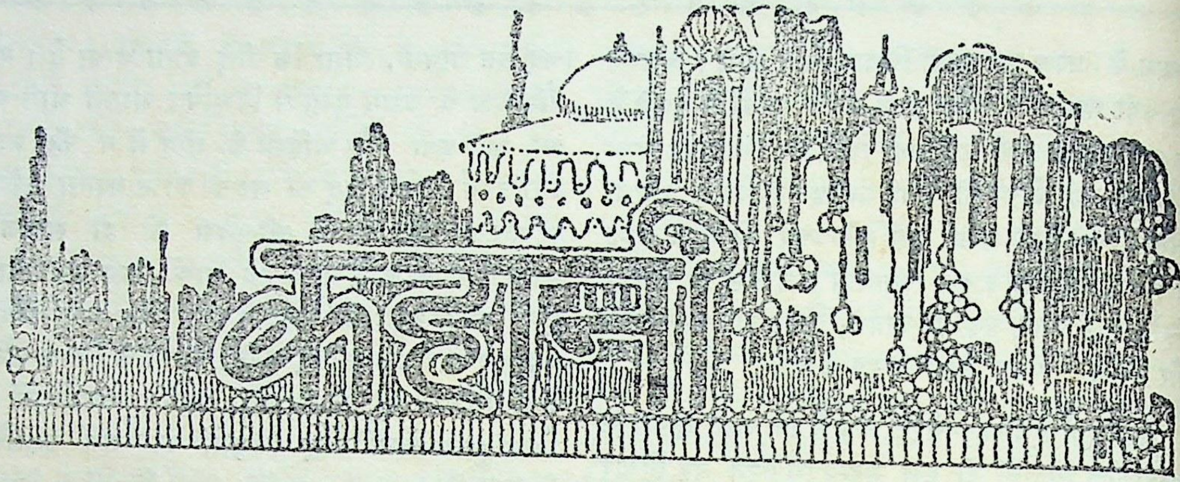
पत्नी—सो तो मैंने पढ़ी नहीं। मैं पुरुषों को बतलाई हुई नसीहतों को पढ़ रही हूँ।

नवयुवक—मेरी स्त्री वैसे तो बड़ी अच्छी है। उसमें एक ख़राबी न होती तो क्या कहना था!

वृद्ध—वह ख़राबी क्या है?

नवयुवक—यही कि अक्सर वह अपने पहिले ख़ाविन्द की चर्चा किया करती है।

वृद्ध—बड़े मूर्ख हो, यह भी कोई ख़राबी है? मेरी स्त्री तो हर समय अपने भावी शौहर की चर्चा किया करती है।



दो आँखें

[श्री० हरिश्चन्द्र वर्मा, विशारद]

दो आँख—भूरी-भूरी, गोल-गोल, छोटी-छोटी सत्येन्द्र ने देखा, वे उसकी ओर निहार रही थीं। वह सड़क के किनारे-किनारे धीरे-धीरे चला जा रहा था। झुटपुटे का समय था, शान्त वायु मन्द गति से अठ-खेलियाँ कर रही थी। सहसा उसकी दृष्टि दाहिनी ओर वाले बँगले की ओर उठ गई। बँगले में सामने कुञ्जों के निकट एक गौराङ्गी सुन्दर बालिका खड़ी निर्निमेष दृष्टि से उसे निहार रही थी। दोनों की दृष्टि मिली, परन्तु केवल क्षण भर के लिए, दूसरे ही क्षण बालिका का मस्तक नत हो चुका था। वह चार पग आगे बढ़ गया। उसने साहस करके एक बार पुनः बालिका की ओर देखा। बालिका के नेत्र भी उसकी ओर ही लगे हुए थे। उसने जल्दी से अपनी दृष्टि फेर ली और आगे बढ़ गया।

परन्तु वही जानता था कि उसके पैर एक बार पुनः वहीं लौट चलने को कितना अनुरोध कर रहे थे।

२

भयानक रात्रि थी, बरसात का मौसम। आकाश घनघोर मेघ-मालाओं से आच्छादित था। कदाचित कुछ हल्की-हल्की फुहार भी पड़ रही थी। उसके कमरे में पूर्ण अन्धकार था। केवल आकाश में चमकने वाली बिजली का प्रकाश कभी-कभी उसकी बन्द शीशेदार खिड़की पर टकरा कर उसे पल भर के लिए प्रकाशित कर जाता था।

वह दुग्ध-श्वेत शय्या पर पड़ी थी, समस्त संसार सुख की नींद सो रहा था, परन्तु उसकी आँखों में नींद न थी। उसमें तो चमक रही थी, एक मनोहर गौर आकृति और उस पर जड़ी दो आकर्षक आँखें—काली-काली, बड़ी-बड़ी और चमक वाली। उसके चारों ओर घूम रही थीं, वही मनोहर शान्त सन्ध्या, उसका मधुर हृदय और उसकी प्रेममयी स्मृति।

कमरे में कहीं पर टँगी हुई टिक-टिक करती क्लॉक जब थोड़ी-थोड़ी देर के उपरान्त टन-टन कर एक, दो, तीन बजाती तो वह चौंक उठती। सिर को एक हलका सा झटका देकर अथवा ऐंड़ा कर तथा करवट बदल कर वह मस्तिष्क से उन समस्त विचारों को निकाल देना चाहती थी। परन्तु क्या किसी बार वह इसमें सफल हुई थी? उसने एक, दो और तीन, तीनों का घण्टा स्पष्ट सुना था। तीन के उपरान्त के अद्धे की भी भनक उसके कान में आई थी, उसके उपरान्त कुछ बजा भी अथवा नहीं, उसे पता नहीं।

दिन निकला अपनी उसी सदैव की सी मनोहर छटा के साथ और चला भी गया अपने उन्हीं धीरे-धीरे

चलने वाले घण्टों और मिनिटों के पैरों पर। बड़ी देर के उपरान्त फिर वही सन्ध्या आई। परन्तु कल की भाँति आज वह उतनी सुहावनी और शान्त न थी। आकाश अब भी मेघों से आच्छादित था। चारों ओर निस्तब्धता सी फैली हुई थी। पवनदेव स्वच्छन्दता या तनिक तेज़ी से अपना कार्य कर रहे थे। वह उसी प्रकार उसी कुञ्ज के निकट खड़ी उत्सुक सी चारों ओर देख रही थी। उसने देखा, वह चला आ रहा था, आज वह कल से कुछ पहले ही आ गया था। उसके नेत्र पहले ही से उस ओर लगे हुए थे। दोनों ने एक दूसरे की ओर देखा, परन्तु किसी की भी पलकें गिरी नहीं। आज दोनों क्षेत्र में डटे रहे। वह बढ़ रहा था, वह भी अपने स्थान से हट रही थी, परन्तु दृष्टि दोनों की अचल थी। सहसा ज़ोर से मोटर के 'हॉर्न' की आवाज़ हुई। सत्येन्द्र चौंक उठा। एक मोटर-साइकिल सर्र से उसके सामने से होकर बँगले में घुस गई। लज्जावश उसने सिर झुका लिया और आगे बढ़ गया। तुरन्त ही उसने सुना कि किसी ने कहा—शशि, यह क्या?

उसका हृदय तड़प उठा। उसने दृष्टि फेरी, देखा उसका समवयस्क एक युवक मोटर-साइकिल पर बैठा उससे बातें कर रहा था। युवती अपराधी की भाँति नतमस्तक साइकिल के हैण्डिल पर हाथ रक्खे खड़ी थी। युवक ने दृष्टि सत्येन्द्र की ओर फेरी। इसने भी जल्दी से आगे पैर बढ़ाए।

३

दूसरे दिन सन्ध्या-समय वह पुनः उधर गया, हृदय में उठती आशाओं, आकांक्षाओं तथा विचारों के समुद्र में डुबकी लगाता हुआ। आज उसकी दृष्टि सशङ्कित सी चारों ओर फिरती चलती थी, जैसे कि वह कोई चोर हो। अन्त में उसके नेत्र शरीर से पहले वहाँ पहुँच गए और लगे उसे खोजने, परन्तु × × × वह न मिली। बढ़ती आशा की डोंगी में एक धक्का सा लगा। वह चकराने लगी।

इसी प्रकार दूसरी, तीसरी, चौथी × × × न जाने कितनी सन्ध्याएँ आईं अपने चित्र-विचित्र रूपों में, अपने रूप-वैभव पर मुस्कराती, इठलाती और इतराती और चली भी गईं, इस निर्मोही कठोर-हृदय संसार के हाथों उसे लुटा कर पछताती, बिलखती, अन्धकार में मुँह छिपा कर। वह प्रतिदिन अभिलाषाओं के बड़े-बड़े क़िले बनाता हुआ उधर आता और उन्हें धूल में मिला कर लौट जाता। वह उसे न मिलती।

अन्त में उसका हृदय बैठ गया। उसने उस ओर जाना छोड़ दिया। इसके बाद और भी परिवर्तन हुए। उसका मन काम से भागने लगा। दिन-रात सोचना, सोचना और सोचना ही उसका एक कार्य रह गया। अवसर पा वह किसी दूर एकान्त स्थान—पार्क आदि में जा बैठता और घण्टों उसी चिन्ता, उसी दुराशा में बिता देता। आह! कितनी थी उसकी मानसिक व्यथा?

४

समय के साथ-साथ संसार भी साढ़े तीन वर्ष आगे बढ़ गया। परन्तु वह? वह तो कदाचित् साढ़े तीन वर्ष पीछे चला गया। लगातार परीक्षा की असफलता के कारण पढ़ना छूटा, अनेक प्रयत्न करने पर भी कोई नौकरी न मिली, व्यापार चला नहीं और अन्त में रह गई पास में वही, जो भारत के सहस्रों नवयुवकों के दुर्भाग्य में है—बेकारी।

माता-पिता ने विवाह करना चाहा। चाहते भी क्यों नहीं? कन्या वाले आँखें मूँदे द्वार पीट रहे थे। उन्हें इसकी चिन्ता तो थी नहीं कि लड़का क्या खाएगा, क्या खिलाएगा? क्योंकि उनका तो कथन था—'जिसने मुख दिया वही खाने को भी देगा।' उन्हें तो केवल यह चिन्ता थी कि कन्या के हाथ पीले हो जावें। उन्होंने उसके पिता का पीछा करना आरम्भ किया। परन्तु उसने विवाह से साफ़ नाहीं कर दी, न जाने क्या-क्या सोचते हुए, किन-किन कारणों से? इसी, तथा और भी न जाने किस-किस प्रकार यह साढ़े तीन वर्ष का समय समाप्त हो गया।

एक दिन सन्ध्या-समय वह नगर से दूरस्थ एक पार्क में टहल रहा था। एक लॉन के ऊपर बेञ्च पर एक युवती बैठी थी। कुछ ही दूर पर एक दासी एक बच्चे को गाड़ी में घुमा रही थी। उसने पहचाना। वह युवती और कोई नहीं, शशि थी। जैसे ही वह उसके समीप पहुँचा, शशि खड़ी हो गई और कुछ आगे बढ़ते हुए हर्ष-युक्त स्वर में बोली—धन्य भाग्य! आइए!

शशि के इस वाक्य ने उसकी विचित्र दशा कर दी। हृदय में उठते आशा-निराशा के भावों को दबा कर वह बेञ्च पर बैठ गया। शशि एक मिनट तक उसके मुख की ओर देखती रही; कदाचित् उसके भावों को पढ़ रही थी। उसके उपरान्त धीरे से बोली—बहुत दिनों के उपरान्त मिले।

सत्येन्द्र के मन में एक बार तो आया कि हृदय की सारी व्यथा खोल कर उसके सामने रख दे, परन्तु जिह्वा ने साथ न दिया। उसने केवल इतना कहा—आया तो कितनी ही बार, परन्तु आप ही × × ×

वह रुक गया। इस बार शशि पर विशेष प्रभाव पड़ा। उसका हृदय विचलित हो उठा, कदाचित् किसी बीती बात की याद आने के कारण! अपने को बहुत सँभाल कर उसने कहा—जी हाँ; अनेक अनिवार्य कारणों से मुझे उसी दिन यहाँ से जाना पड़ा। उसके उपरान्त ही विवाह हुआ और गृहस्थी में फँसी। अब यहाँ आना मिला है।

गाड़ी में छोटे शिशु को ओर देख उसने वेदना-भरी एक दीर्घ स्वाँस छोड़ी। सत्येन्द्र का हृदय तड़प उठा। वह व्यथित-निराशा के अथाह सागर में ग़ोते खाने लगा। कुछ क्षण पुनः उसकी ओर देखते हुए शशि ने पूछा—इन दिनों आप क्या करते हैं? विवाह आदि तो हो गया होगा?

"नहीं; और न कुछ कर ही रहा हूँ।"—दुःखित स्वर में उसने उत्तर दिया।

"क्यों?"

सत्येन्द्र चुप रहा। बहुत विचारने पर भी उसे यही प्रतीत हुआ कि इसका उत्तर उसके पास न था। दुःखी हृदय पर-पीड़ा का अनुभव शीघ्र कर लेता है। शशि को भी उसकी व्यथा समझते देर न लगी।

वह बोली—भाई, यह संसार है। इसमें एक-दो नहीं, अनेक स्थानों पर हमें अपनी इच्छा, अभिलाषा और हृदय को कुचल कर कार्य करने पड़ते हैं। समाज के सम्मुख सिर झुकाना पड़ता है। इसकी चिन्ता कर अपने को नष्ट करना ठीक नहीं।

वह मुस्कराई, परन्तु इस मुस्कान में वेदना की कितनी कसक थी? आह! सत्येन्द्र ने दृष्टि उठा कर उसकी ओर देखा। एक बार आँखें चार हुईं, परन्तु पलक मारते ही नेत्र झुक गए।

उस समय दोनों की आँखें डबडबा आई थीं।

सरस वेदना

[श्री० श्यामसुन्दर श्रीवास्तव]

आशा की मृग-तृष्णा में,
जब स्वयं मिटा लेने को।
उनके चरणों में अपना
सर्वस्व चढ़ा देने को।

आती हूँ लेकर उर में,
जब पागल-सी अभिलाषा।
वे हो जाते हैं ओझल,
हँस देती निठुर निराशा।

जब गुथी हुई आहों में,
मैं अपनी व्यथा सुनाती।
आँखों में पानी भर कर
मैं अपनी आग बुझाती।

घायल से मेरे उर में,
जब है पीड़ा घिर आती।
उनके निर्दय होठों पर
मुस्कान बिखरती जाती।

क्या पूछ रहे हो मुझसे
तुम मेरी करुण कहानी।
रोना निशि-दिन रोना ही
मैं हूँ दुख की दीवानी।

यह प्रेम-पन्थ पागल है,
है यहाँ ज्ञान नादानी।
उनके ही उर में देखो
तुम मेरी करुण कहानी।



संसार

यह भीषण कङ्काल ! इसी में था सौन्दर्य अनूप !
ओ सुकुमार शरीर ! देख ले अपना अन्तिम रूप !!

—कुमार

FINE ART PRINTING COTTAGE
ALLAHABAD

नवीन संस्कृति में दाम्पत्य जीवन

[श्री० चन्द्रराज भण्डारी, विशारद]

संसार में आजकल एक महान नवीन संस्कृति के उत्पन्न होने की तैयारियाँ हो रही हैं। प्राचीन संस्कृति की सभी संस्थाओं में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे हैं। क्या समाज, क्या धर्म और क्या राजनीति, सभी प्रकार की संस्थाओं के चोले एक अद्भुत ढङ्ग से बदल रहे हैं। मनुष्य जाति के आदर्श, व्यवहार, सिद्धान्त, उसूल आदि सब में परिवर्तन हो रहे हैं। प्राचीन संस्कृति का क़िला धूल-धूसरित हो रहा है और उसके स्थान पर नवीन संस्कृति के भव्य-भवन का निर्माण हो रहा है।

इस संस्कृति का सङ्गठन किन सिद्धान्तों पर होगा, उसमें इन भिन्न-भिन्न संस्थाओं की क्या स्थिति रहेगी, इस विषय पर हम अपने भिन्न-भिन्न लेखों में यथा-साध्य प्रकाश डाल चुके हैं। इस लेख में हम इस नवीन संस्कृति में दाम्पत्य जीवन का क्या रूप रहेगा, इस विषय पर कुछ विचार करने का प्रयत्न करेंगे। क्योंकि दाम्पत्य जीवन भी समाज-संस्था का एक प्रधान अङ्ग है। जिस संस्कृति के दाम्पत्य जीवन में उच्चता, सरसता और प्रेम की जाह्नवी नहीं बहती और जिसके दाम्पत्य जीवन में रूक्षता, कलह, निरसता, अधिकार और प्रतिस्पर्द्धा के भाव फलते-फूलते रहते हैं, उस संस्कृति का सङ्गठन कभी अभिनन्दनीय नहीं कहा जा सकता। दूसरे, संस्कृति की सफलता और उसके स्थायित्व के लिए यह आवश्यक है कि उस संस्कृति की भावी सन्तानें स्वस्थ और मेधावी हों, जोकि बिना सुन्दर दाम्पत्य जीवन के कभी नसीब नहीं हो सकतीं।

अभी तक संसार के अन्तर्गत जितनी भी महान संस्कृतियों का उदय हुआ है, सभी ने अपने दाम्पत्य जीवन को सुखमय और आनन्दपूर्ण बनाने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया है। इस सम्बन्ध में संसार की प्रायः सभी संस्कृतियों के आचार्यों ने अपनी-अपनी बुद्धि और अपने अनुभव के अनुसार व्यवस्थाओं और विधानों के बड़े-बड़े पोथे लिखे हैं, और उनके अनुसार व्यवहार भी किया है। परन्तु सत्य की समुचित रक्षा के लिए यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि इन सब व्यवस्थाओं में आर्य-संस्कृति की खोज सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और वैज्ञानिक है। यह दूसरी बात है कि आज के विकास-मय युग में मनुष्य के लिए वह अधिक उपयोगी सिद्ध न हो, मगर इससे उसकी मौलिकता या उसके विधायकों की दूरदर्शिता के सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता।

दाम्पत्य जीवन के सम्बन्ध में आर्य-संस्कृति के आचार्यों ने जिन अनुपम विधानों को तैयार किया, वे उस समय न केवल भारत में, प्रत्युत समस्त संसार के साहित्य में सर्वोत्कृष्ट थे। आर्य-संस्कृति के साथ तथा उसके पीछे संसार में और भी महान संस्कृतियों का उदय हुआ, परन्तु दाम्पत्य जीवन के सम्बन्ध में ऐसा मधुर विवेचन अन्यत्र कहीं भी नहीं पाया जाता। आर्य-संस्कृति के दाम्पत्य जीवन में नारी को गृहलक्ष्मी के रूप में चित्रित किया गया है। इसी गृहलक्ष्मी की योग्यता पर हमारे सामाजिक गृहों का सुख, शान्ति, आनन्द, विषाद और सम्पत्ति, विपत्ति आदि निर्भर रहती है। जिस घर की गृहलक्ष्मी जितनी चतुरा, सद्गुण-सम्पन्ना और सुलक्षणा होगी, उस घर में आनन्द, मङ्गल, रस और सम्पत्ति की धाराएँ भी उतने ही अधिक परिमाण में बहेंगी। हमारे यहाँ के पुरुष

जिस तरह हमारे वाह्य-सामाजिक जीवन के राजा हैं, उसी प्रकार हमारे यहाँ की स्त्रियाँ हमारे समाज के अन्तर्जीवन की रानियाँ हैं।

मगर इतना सब कुछ होने पर भी हमको यह मानना ही पड़ेगा कि हमारे इस विधान में कुछ ऐसी मौलिक कमज़ोरियाँ हैं, जिनकी वजह से इतने सुन्दर विधान के होने पर भी हमारा दाम्पत्य जीवन यथेष्ठ नहीं पनपने पाया। इन कमज़ोरियों में सबसे प्रधान कमज़ोरी यह है कि हमारे देश में इस प्रकार की सब व्यवस्थाओं के विधाता पुरुष ही रहे हैं। दाम्पत्य जीवन सम्बन्धी विधानों की व्यवस्था भी पुरुषों ही के हाथ में रही है। इसका भयङ्कर परिणाम यह हुआ कि हमारे पुरुष विधाताओं ने, इस प्रकार की व्यवस्थाएँ देते समय नारी-हृदय के स्वाभाविक मनोविकारों को समझने की और उनको मद्देनज़र रखने की कोशिश नहीं की। उन्होंने कुछ तो अधिकार-लिप्सा से और कुछ लापरवाही से नारी के सामाजिक अस्तित्व को एकमात्र पुरुष की आवश्यकता-पूर्ति का साधन समझा। और पुरुषों की ज़रूरतों के मान से उनके ऊपर कर्त्तव्य-परायणता का एक ऐसा भारी बोझ रख दिया, जिसको किसी प्रकार का नैतिक आधार न था। एक चोर द्वारा—अधिकार और बल के भरोसे—चोरी के विरुद्ध बनाए हुए क़ानून को अथवा एक व्यभिचारी द्वारा दी हुई ब्रह्मचर्य की व्यवस्था को जितना नैतिक समर्थन प्राप्त हो सकता है, उतना ही भारतीय पुरुषों द्वारा यहाँ की नारियों के लिए दी हुई सामाजिक व्यवस्था को भी प्राप्त है। ये विधायक जिन विधानों के द्वारा पुरुषों को बहु-विवाह, बहु-पत्नीत्व और विधुर-विवाह आदि की व्यवस्था देने में आगा-पीछा नहीं सोचते, उन्हीं विधानों के द्वारा ये नारियों के लिए अखण्ड पातिव्रत्य और अनन्त वैधव्य की व्यवस्था देते हैं! इतना ही नहीं, प्रत्युत स्त्री-जाति इस पक्षपात के प्रति कहीं बग़ावत न कर बैठे, इसके लिए उन्होंने उसके लिए पठन-पाठन भी बन्द कर दिया और कहीं-कहीं तो परदे की अमर क़ैद में उसको आजन्म बन्दी की तरह डाल दिया। इस प्रकार की व्यवस्थाओं और विधानों को कितना नैतिक समर्थन प्राप्त हो सकता है, यह प्रत्येक विचारवान सोच सकता है।

इस स्थान पर 'कर्त्तव्यनिष्ठा' और 'कर्त्तव्य की ग़ुलामी' इन दोनों शब्दों के तात्विक अन्तर पर कुछ विवेचन करना असङ्गत न होगा। जिस कर्त्तव्य के पीछे किसी प्रकार का नैतिक समर्थन होता है, उस कर्त्तव्य का पालन कर्त्तव्य-पूजा या कर्त्तव्यनिष्ठा कहलाती है। मगर जिस कर्त्तव्य के पीछे किसी प्रकार का नैतिक समर्थन नहीं होता, जो केवल धन, बल या अधिकार के द्वारा किसी असहाय या दुर्बल के लिए 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' के सिद्धान्त पर निर्धारित किया जाता है, उसकी उपासना—फिर चाहे उसका रूप कितना ही मोहक क्यों न हो—'कर्त्तव्य की ग़ुलामी' कहलाती है। कर्त्तव्य-पूजा या कर्त्तव्यनिष्ठा पुरुष के पुरुषत्व का विकास करती है, नारी के नारीत्व, माता के मातृत्व और पत्नी के पत्नीत्व को प्रस्फुटित करती है। वह मनुष्य को मनुष्यत्व से उठा कर देवत्व की श्रेणी में ले जाती है। कर्त्तव्य की पूजा करने में उत्साह होता है, आनन्द होता है, उससे मनुष्य का स्वास्थ्य बढ़ता है, मनोबल बढ़ता है। मगर इसके विपरीत कर्त्तव्य की ग़ुलामी इन सब गुणों को नष्ट कर मनुष्य को पशुत्व की ओर खींच ले जाती है। आज हम लोग ब्रिटिश साम्राज्य के क़ानून के विरुद्ध सत्याग्रह और असहयोग क्यों करते हैं? इसलिए कि इस क़ानून के पीछे किसी प्रकार का नैतिक समर्थन नहीं है, अतः इस क़ानून का पालन कर्त्तव्य की पूजा नहीं, प्रत्युत कर्त्तव्य की ग़ुलामी है। अगर हम आर्य-संस्कृति के इस सिद्धान्त पर कि "राजा ईश्वर का अंश है", अन्धे होकर इस क़ानून की उपासना करने लग जायँ, तो ज़रूर धीरे-धीरे हम पशुत्व की श्रेणी में चले जाएँगे।

भारतीय स्त्रियों की भी ठीक यही हालत हुई। उनके लिए निश्चित किए हुए विधानों को नैतिक समर्थन न रहने के कारण वे कर्त्तव्य-पूजा की जगह कर्त्तव्य की ग़ुलामी में पड़ गईं। जिसके परिणाम-स्वरूप उनकी सारी मनोवृत्तियाँ जड़ हो गईं। वे एक मैशीन की तरह कर्तव्य के बोझे को ढोने लगीं। वे अपने अस्तित्व को भूल गईं—अपने स्वास्थ्य को भूल गईं—अपने अधिकारों को भूल गईं। इसका अनिवार्य परिणाम यह हुआ कि ऊपर-ऊपर तो पातिव्रत्य और वैधव्य का यह ढकोसला चलता रहा, मगर नैतिक समर्थन न होने की वजह से भीतर ही भीतर गुप्त व्यभिचार और भ्रूण-हत्या का बाज़ार गर्म हो

उठा और इस देश का नारी-अङ्ग भीतर ही भीतर मसोसा जाकर एकदम जीवनहीन और जड़ हो गया। आज हमारे देश के नारी-जीवन की क्या हालत है? शिक्षा की दृष्टि से वे संसार की सभ्य जातियों में सब से पीछे हैं। स्वास्थ्य की दृष्टि से वे पाल में रक्खे हुए आम की तरह ज़र्द, अकाल-वृद्धा और तेजोहीन हैं। मानसिक दृष्टि से वे अत्यन्त दुर्बल और गिरी हुई मनोवृत्तियों की हैं। शील की दृष्टि से भी उनका उतना ही महत्व है, जितना जेल में बन्द एक क़ैदी के शील का होता है। रसिकता का सोता भी उनके अन्दर से सूख चुका है। हमारे भारतीय पुरुषों को आज सेविकाओं की, दासियों की, परिचारिकाओं की कमी नहीं है। मगर जिनके सहयोग से दाम्पत्य जीवन का पौधा फलता-फूलता है, जिनके सहवास से जीवन में आनन्द की धारा बह जाती है, जिनकी वायु से जीवन में सात्विकता, शान्ति और सुख का सञ्चार होता है तथा जिनकी एक हलकी मुस्कान स्वर्ग को लाकर हमारे सम्मुख उपस्थित कर देती है, उन प्रेममयी पत्नियों का एकदम अभाव है। हमारी नारियों में त्याग है, बलिदान है, सेवा-भाव है, मगर कर्तव्य की ग़ुलामी से वे ऐसी जकड़ी हुई हैं कि जिसकी वजह से उनमें आनन्द-रस की धारा एकदम सूख गई है। इसी आनन्द-रस की कमी से आज हमारा दाम्पत्य जीवन नष्ट हो गया है। हमारा सामाजिक जीवन कमज़ोर हो गया है। हमारा नारी-अङ्ग और उसके साथ ही पुरुष-अङ्ग भी अस्वस्थ हो गया है। और उसमें से अशान्ति, कलह, दुराचार और व्यभिचार की लपटें धू-धू करके निकल रही हैं।

हमारे युवकों को विवाह की वेदी पर से एक दासी अथवा एक सेविका, कामवासना को तृप्त करने की एक सामग्री या सन्तान उत्पन्न करने की एक मैशीन अवश्य मिल जाती है, परन्तु उनका हृदय जिस हृदय से प्रेम का प्रतिदान पाने के लिए तड़पता रहता है, जिनके मधुर सङ्ग से उनके जीवन में आनन्द, प्रेम और कवित्व का झरना बह सकता है, जिनके मधुर हास्य से उनके जीवन में उत्साह का प्रवाह और जिनके आँसू से उनके अन्तस्तल में सहानुभूति की धारा बह निकलती है, ऐसी प्रेममयी पत्नियाँ उनको दुर्लभ रहती हैं। ऐसी योग्य-पत्नियों के अभाव से उनका जीवन रूक्ष, निराश और निरर्थक रहता है। कामवासना ही का सम्बन्ध रहने से तथा स्वास्थ्य और दूसरे जीवनी-शक्ति-प्रदायक मधुर सम्बन्धों के न रहने की वजह से उनका स्वास्थ्य भी भरी जवानी में नष्ट हो जाता है और साथ ही समाज में बेहद सन्तान-वृद्धि के कारण जन-संख्या-वृद्धि का कठिन प्रश्न भी उत्पन्न हो जाता है। परदे की प्रथा का अस्तित्व होने की वजह से जीवन के साधारण सरस अवसरों का लाभ उठाने का अवसर भी उन्हें प्राप्त नहीं होता। इस प्रकार कर्त्तव्य की ग़ुलामी, विवाह-नीति की कमज़ोरी, परदा-प्रथा तथा अन्य दूसरे कारणों से हमारे यहाँ योग्य पत्नियों का प्रायः अभाव हो गया है और इस अभाव से हमारे देश का जीवन-स्रोत सूखता चला जा रहा है।

इस सारे कथन का सारभूत तत्व यह है कि अगर हमारे व्यवस्थापक, दाम्पत्य जीवन की व्यवस्था देते समय पुरुष और स्त्री की समानता का ध्यान रखते और पातिव्रत्य के साथ पत्नीव्रत की तथा वैधव्य के साथ विधुरत्व के समान कठोर और निष्पक्ष व्यवस्था देते, विवाह-नीति के समान सामाजिक नीति को पारलौकिक धर्म-नीति के बन्धन में न कसते और परदा-प्रथा के समान नारकीय प्रथा में उनके सारे जीवन को बुरी तरह से न जकड़ देते, तो उनकी व्यवस्था को बहुत कुछ नैतिक समर्थन भी प्राप्त होता और उस हालत में पुरुष तथा स्त्री-समाज को अपने-अपने कर्त्तव्य-पालन में उत्साह और दिलचस्पी भी रहती, दोनों को एक-दूसरे की कठिनाइयों का ध्यान भी रहता तथा दोनों के सहयोग से ऐसी भूमि तैयार हो जाती, जिसमें दाम्पत्य जीवन का ख़ुशनुमा पौधा स्वाधीनता के साथ फलता-फूलता।

पाश्चात्य दाम्पत्य जीवन

पाश्चात्य देशों की हालत इसके बिलकुल विपरीत है। एक समय ऐसा था, जबकि वहाँ भी स्त्रियाँ बहुत हीन दृष्टि से देखी जाती थीं, मगर फ़्रान्स की राज्यक्रान्ति के पश्चात् वहाँ की स्त्रियों में भी जागृति की एक प्रबल लहर फैली। उन्होंने अपनी स्वाधीनता के लिए पूरे नैतिक साहस के साथ आन्दोलन उठाया तथा कुछ ही समय में उन्होंने अपने बहुत से अधिकारों को प्राप्त कर लिया। अब वहाँ की स्त्रियाँ भारतीय स्त्रियों की

तरह आजीवन कारागार में बन्द नहीं हैं। वे स्वाधीन हैं, स्वच्छन्द हैं और स्वस्थ हैं। वे मुक्त तितलियों की तरह नाच-कूद और आनन्द-विलास से वहाँ के सामाजिक जीवन को आनन्दमय बनाए हुए हैं। वे वहाँ के नाचघरों में, वहाँ के समुद्र-तटों पर तथा वहाँ के क्लबों और खेल-घरों में नाना प्रकार की मनोरञ्जनार्थ सामग्रियों से अपने तथा अपने प्रेमियों के जीवन में स्वास्थ्य और आनन्द की धारा बहाती रहती हैं। वहाँ के नारी-जीवन में स्वास्थ्य है, उत्साह है, जीवनी शक्ति है, मनोरञ्जन है, प्रेम का आदान-प्रदान करने की ताक़त है। मतलब यह कि दाम्पत्य जीवन को सरस और हरा-भरा बनाए रखने के लिए जिन उपकरणों की आवश्यकता होती है, उनमें से बहुत से वहाँ की स्त्रियों ने प्राप्त कर लिए हैं।

मगर इतना सब कुछ होने पर भी, नारी-स्वाधीनता के इस आन्दोलन से वहाँ के नारी-जीवन में कुछ ऐसी मौलिक कमज़ोरियाँ उत्पन्न हो गई हैं, जो बहुत ही भयङ्कर हैं। हम स्वाधीनता सम्बन्धी किसी भी आन्दोलन के विरोधी नहीं। हमारा ख़याल है कि स्वाधीनता की भावनाएं या स्वाधीनता का आन्दोलन मनुष्य की सत्प्रवृत्तियों का विकास करता है—उसकी इन्सानियत को जागृत करता है—उसको सारी मनुष्य-जाति से प्रेम करने को उत्साहित करता है। मगर इस आन्दोलन का रूप तभी तक अभिनन्दनीय रहता है, जब तक कि इसका ध्येय शुद्ध स्वाधीनता की प्राप्ति रहता है। इसके विपरीत ज्योंही यह अभिनन्दनीय आन्दोलन मनुष्य के अज्ञान से अधिकारों के आन्दोलन में बदल जाता है, त्योंही इसका रूप विकृत हो जाता है। क्योंकि स्वाधीनता के आन्दोलन में जहाँ मनुष्य की कर्तव्य-निष्ठा आन्दोलन के साथ रहती है, वहाँ अधिकारों के आन्दोलन में कर्तव्य और अधिकारों का कई स्थानों पर विरोध हो जाता है। स्वाधीनता के आन्दोलन से मनुष्य में प्रेम की शुद्ध भावनाओं का विकास होता है—वह अपने साथ सारी मनुष्य जाति को स्वाधीन देख कर प्रसन्न होता है, परन्तु अधिकारों के आन्दोलन से मनुष्य में प्रतिस्पर्धा की घृणामूलक भावनाओं का विकास होता है और वह दूसरे के अधिकारों की क़ब्र पर अपने अधिकारों की इमारत खड़ी करना चाहता है।

हाँ, तो हमारे कहने का तात्पर्य यह है कि पश्चिम के नारी-जीवन में—अन्य कई गुणों के रहने पर भी—यह बहुत बड़ा दोष उत्पन्न हो गया है कि वहाँ की स्त्रियों में पुरुष-जाति के साथ, प्रेम की जगह प्रतिस्पर्धा की घृणामूलक भावनाएँ बहुत ज़ोर पकड़ रही हैं। वे क्या औद्योगिक अञ्चल में, क्या सामाजिक अञ्चल में और क्या राजकीय अञ्चल में—सभी स्थानों पर पुरुषों के साथ होड़ लगाने का प्रयत्न कर रही हैं। न्याय की दृष्टि से देखा जाय तो यह कुछ अनुचित भी नहीं है। इतिहास के प्रारम्भ से लेकर अब तक पुरुष-जाति ने स्त्री-जाति पर जो भयङ्कर अत्याचार किए हैं, उनको देखते हुए स्त्री-जाति अगर इससे भी भयङ्कर प्रतिहिंसा की भावनाओं से काम ले, तो भी बुरा नहीं कहा जा सकता। मगर खेद तो इस बात का है कि इस प्रकार की प्रतिस्पर्धा-मूलक भावनाओं से समाज के अन्तर्गत कोमल भावनाओं का संरक्षण होना कठिन हो रहा है। जिसकी वजह से वहाँ के समाज का दाम्पत्य जीवन ख़तरे में पड़ गया है। वहाँ का मातृत्व नष्ट हो रहा है—पत्नीत्व नष्ट हो रहा है, वहाँ का कौटुम्बिक जीवन प्रायः समाप्त हो गया है। "गृह" नाम की आकर्षक वस्तु वहाँ से नेस्तनाबूद हुई जा रही है। इस प्रकार वहाँ का समाज "गृह" और "गृह-लक्ष्मी" नामक दोनों जीवन-प्रदायिनी वस्तुओं से वञ्चित हो चुका है।

दूसरी महत्वपूर्ण त्रुटि इससे यह उत्पन्न हुई है कि स्त्री के मुख-मण्डल पर तथा उसकी आँखों पर प्रकृति-प्रदत्त शील और लज्जा का जो एक मधुर और आकर्षक भाव झलकता रहता है और जो नारी-जीवन तथा नारी-सौन्दर्य को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए एक बहुमूल्य वस्तु है, वहाँ की स्त्रियाँ उसे खो चुकी हैं। नारी-स्वाधीनता के पूर्ण पक्षपाती होते हुए भी हम नारी को प्रकृति-प्रदत्त इस बहुमूल्य आभूषण से वञ्चित नहीं देखना चाहते। यह वस्तु नारी का गौरव है—नारी का सौन्दर्य है। इसको खोकर नारी-संसार अपने नारीत्व की रक्षा नहीं कर सकता—अपने सौन्दर्य की रक्षा नहीं कर सकता—अपनी स्वाभाविक मधुरिमा की रक्षा नहीं कर सकता। दाम्पत्य जीवन की रक्षा के लिए यह एक आवश्यक वस्तु है।

मतलब यह कि पश्चिम की स्त्रियाँ यद्यपि भारतीय स्त्रियों की अपेक्षा अधिक स्वाधीन, अधिक स्वस्थ, अधिक आकर्षक और अधिक आनन्दमयी हैं, फिर भी वहाँ के दाम्पत्य जीवन में कई ऐसी मौलिक कमज़ोरियाँ हैं, जिनकी वजह से वह पूर्णतया अभिनन्दनीय नहीं कहा जा सकता।

ऊपर हम भारतीय तथा यूरोपीय दाम्पत्य जीवन पर संक्षिप्त प्रकाश डाल चुके हैं। इतने विवेचन से हम सहज ही इस महत्वपूर्ण तथ्य पर पहुँचते हैं कि जिस प्रकार कर्त्तव्य की गुलामी के वायु-मण्डल में दाम्पत्य जीवन का पौधा जीवित नहीं रह सकता, उसी प्रकार कर्त्तव्य की उपेक्षा तथा प्रतिस्पर्धा की मरुभूमि में भी वह हरा-भरा नहीं रह सकता। जिस प्रकार पूर्व का दाम्पत्य जीवन मनुष्य-जाति के लिए अभीष्ट नहीं हो सकता, उसी प्रकार पश्चिम का दाम्पत्य जीवन भी उसके लिए शान्ति का कारण नहीं हो सकता। जब ये दोनों ही पद्धतियाँ अपूर्ण हैं, तो यह निश्चित है कि मनुष्य-समाज की भावी-संस्कृति के लिए इन दोनों पद्धतियों के बीच की, या इन दोनों पद्धतियों से बिलकुल स्वतन्त्र एक ऐसी पद्धति का आविष्कार होगा, जिसका स्वरूप इन दोनों से अधिक वैज्ञानिक, अधिक आनन्दपूर्ण और अधिक आकर्षक होगा। इसी पर हमको थोड़ा सा विचार करना है।

कुदरत ने पुरुष और स्त्री, समाज के इन दोनों अङ्गों की रचना इस ख़ूबी के साथ की है कि यदि विचार, दूरदर्शिता और न्याय के साथ काम लिया जाय तो इन दोनों के बीच न तो कभी प्रतिस्पर्धा की भावनाओं ही का अस्तित्व रह सकता है और न कभी मालिक और गुलाम की निकृष्ट भावनाएँ ही इनके पवित्र और मधुर सम्बन्ध में पनप सकती हैं। प्रतिस्पर्धा की भावनाएँ समाज के अन्तर्गत उन लोगों में पैदा होती हैं, जो समान व्यवसायी हों, और मालिक और गुलाम की भावनाएँ वहाँ उत्पन्न होती हैं, जहाँ एक अङ्ग कर्मशील और दूसरा अङ्ग अकर्मण्य हो। मगर विचारपूर्ण दृष्टि से—प्रकृति की बनावट को मद्देनज़र रख कर—यदि विचार किया जाय तो समाज के ये दोनों अङ्ग न तो समान व्यवसायी हैं और न इनमें कोई अङ्ग ऐसा अकर्मण्य ही है कि जिसकी वजह से मालिक और गुलाम की दूषित मनोभावनाएँ उत्पन्न होना अनिवार्य हो।

प्रकृति ने इन दोनों अङ्गों की रचना में पूर्ण मौलिकता से काम लिया है और इसके साथ ही दोनों में ऐसी अपूर्णताएँ भी रख दी हैं कि जो एक दूसरे के सहयोग के बिना पूर्ण नहीं हो सकतीं। समाज में शान्ति और सुव्यवस्था की रक्षा के लिए यह आवश्यक है कि उसमें विराट और कोमल मनोभावनाओं का समान रूप से योगक्षेम हो। अध्ययनपूर्ण निगाह से अवलोकन करने पर इस बात का पता लगता है कि पुरुष के अन्तर्गत विराट भावनाओं का योगक्षेम करने की और स्त्री के अन्तर्गत कोमल भावनाओं का योगक्षेम करने की विशेष शक्ति प्रकृति ने स्थापित की है। यह सच है कि कई विशेष-विशेष अवसरों पर स्त्रियों ने वीरत्व और विराट भावनाओं के योगक्षेम करने में तथा पुरुषों ने कोमल भावनाओं का प्रचार करने में इतिहास को भी चकित कर देने वाले कार्य किए हैं। मगर फिर भी यह बात निश्चयपूर्वक कही जा सकती है कि इस प्रकार के ये सब उदाहरण इस नियम के अपवाद-रूप हैं, और इस प्रकार के अपवादों से नियम की मौलिकता में कोई अन्तर नहीं आ सकता।

ऐसी स्थिति में अगर समाज के अन्तर्गत कोमल भावनाओं के रक्षण का उत्तरदायित्व स्त्री-जाति पर और विराट भावनाओं के रक्षण का उत्तरदायित्व पुरुष जाति पर रहे, तो न तो इनमें प्रतिस्पर्धा की भावनाओं का ही उदय हो सकता है और न मालिक और गुलाम की भावनाएँ ही ऐसे वायु-मण्डल में पनप सकती हैं। जिस प्रकार राज्य के दो डिपार्टमेण्टों के अधिकारी भिन्न-भिन्न प्रकार के उत्तरदायित्व को वहन करते हुए भी प्रेम, समानता और मैत्री से रह सकते हैं, उनमें कभी गुलामी और प्रतिस्पर्धा की भावनाओं का उदय नहीं हो सकता, उसी प्रकार समाज में स्त्री और पुरुष की स्थिति रह सकती है।

इस स्थान पर आकर एक बड़ा ही महत्व का प्रश्न उपस्थित होता है। वह यह कि कोमल भावना की भावमूलक कल्पना के फेर में पड़ कर अगर स्त्रियाँ औद्योगिक जगत तथा फ़ैक्टरियों और कारख़ानों में जाना छोड़ दें, तो वे आर्थिक दृष्टि से स्वाधीन नहीं हो सकतीं

और जब तक वे आर्थिक दृष्टि से पुरुषों के अधीन रहेंगी, तब तक स्वार्थी पुरुष उन्हें कभी सिर उठाने का मौक़ा न देंगे। ऐसी स्थिति में वे क्या करें? कल-कारख़ानों में जाकर अपने स्वाधीन अस्तित्व की रक्षा करें अथवा कोमल भावनाओं की वेदी पर अपने अस्तित्व का बलिदान कर फिर उसी गुलामी की हालत में पड़ी रहें?

इसमें कोई सन्देह नहीं और यह बात सोलहो आने सत्य है कि जब तक नारी जाति आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र न हो जायगी, तब तक अधिकार-प्रिय पुरुष जाति उनके साथ पूर्णतया न्याय नहीं कर सकती। अपनी स्वाधीनता और अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए, इस अर्थ-युग में प्रत्येक मनुष्य के लिए अनिवार्य हो गया है कि वह आर्थिक दृष्टि से दूसरों का मोहताज न रहे। और मौजूदा समाज का स्टैण्डर्ड ऐसा हो गया है कि बिना कल-कारख़ानों या फ़ैक्टरियों में प्रवेश किए आर्थिक स्वाधीनता प्राप्त करने का दूसरा साधन ही नहीं है। मगर यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि समाज के वर्तमान स्टैण्डर्ड से मनुष्य बहुत तङ्ग आ गया है। इस स्टैण्डर्ड की वजह से समाज के अन्तर्गत जीवन-रस और मधुरता का सोता सूखता हुआ चला जा रहा है। प्रसिद्ध तत्ववेत्ता लेकी ने एक स्थान पर कहा है कि "यूरोप की स्त्रियों ने अपनी सभ्यता में चाहे जितनी उन्नति की हो, पर उनकी वह उन्नति हमेशा पुरुषोचित रही है। स्त्रियोचित गुणों का—जैसे प्रेम, विश्वास, लज्जा, दया, सहानुभूति आदि—पूर्ण विकास यहाँ की किसी सभ्यता के अन्तर्गत नहीं हुआ। अतः हमारे लिए वही समय सबसे ज़्यादा अभिनन्दनीय होगा, जब यहाँ की स्त्रियाँ स्त्रियोचित गुणों में पूर्ण विकास कर स्वाधीनता लाभ करेंगी। यूरोप को अब पौरुषीय सभ्यता की बिलकुल आवश्यकता नहीं है। वह युद्ध, राजनैतिक घात-प्रतिघात और सङ्कीर्ण जातीयता से बहुत घबरा गया है। अब वह पूर्ण शान्ति प्राप्त करना चाहता है। वह शान्ति केवल स्त्रियोचित गुणों के विकास से ही प्राप्त हो सकती है।

आर्यमित्र

आगरा, १५ दिसम्बर, सन् १९३२

'चाँद'

हिन्दी का यह सुप्रसिद्ध मासिक पत्र गत १० वर्षों से बड़ी सफलतापूर्वक प्रकाशित हो रहा है। यह लोकप्रिय बन कर ख्याति भी अच्छी प्राप्त कर चुका है। पिछले नवम्बर मास से इसका ११वाँ वर्ष प्रारम्भ होता है। अब इसके सम्पादक हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक श्री० मुन्शी नवजादिकलाल श्रीवास्तव हैं। मुन्शी जी की सम्पादकता में दो अङ्क निकले हैं, दोनों ही प्रत्येक दृष्टि से प्रशंसनीय और आदरणीय हैं। नवम्बर और दिसम्बर के अङ्कों में कितने ही लेख बड़े महत्वपूर्ण और गम्भीर हैं। श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान की कविताएँ पढ़ कर हृदय हर्षित हो जाता है। 'चाँद' ने सम्भवतः अपने जीवन-काल से ही सामाजिक कुरीतियों और रूढ़ियों पर कुठाराघात करने में कभी सङ्कोच नहीं किया। हिन्दू-हित-रक्षा के लिए भी वह सदैव सन्नद्ध रहा है। हिन्दू-समाज के सुन्दर शरीर को अनुदारता, कट्टरता और स्वार्थान्धता की ज़बरदस्त ज़ञ्जीरों के जकड़बन्दों से मुक्ति दिलाना 'चाँद' का मुख्य उद्देश्य है और होना चाहिए। वह अपने इस लक्ष्य पर अटल रह कर देश की बड़ी सेवा कर सकता है। मासिक, साप्ताहिक या दैनिक कैसा भी पत्र क्यों न हो, उसमें ऐसी कोई बात न आने देनी चाहिए, जिसके पढ़ने में पाठक-पाठिकाओं को किसी प्रकार का सङ्कोच हो। मासिक पत्रों को तो अपने इस कठिन कर्त्तव्य-पालन में विशेष रूप से सतर्क रहने की आवश्यकता है। हम समझते हैं, 'चाँद' इस दूषण से सदैव मुक्त रह कर अपने उद्देश्यानुसार निरन्तर समाज-सेवा करता रहेगा। हम 'चाँद'-सञ्चालक श्री० सहगल जी के प्रचुर प्रयत्न और अद्भुत अध्यवसाय की प्रशंसा करते हुए उन्हें उनकी सफलता पर बधाई देते हैं।

भविष्य में मानव-समाज का विकास पौरुषीय सभ्यता से नहीं, किन्तु स्त्रियोचित सभ्यता की उन्नति से होगा।" मतलब यह कि इन सब लक्षणों को देखने से पता चलता है कि समाज का मौजूदा स्टैण्डर्ड, जोकि प्रायः विराट भावनाओं का सञ्चालक है, बहुत शीघ्र बदलेगा। और नवीन स्टैण्डर्ड में कोमल भावनाओं के प्रचार को भी उतना ही महत्त्व दिया जावेगा, जितना इस समय विराट भावनाओं के परिचय को दिया जा रहा है। ऐसी स्थिति में विराट भावना के सञ्चालक पुरुष-समाज को आर्थिक दृष्टि से जितनी सुविधाएँ प्राप्त होती हैं, उतनी ही समाज में कोमल भावना की प्रचारक स्त्री-जाति को भी रहेंगी। दोनों की समान आवश्यकता मानी जावेगी। कोमल भावनाओं के प्रचार के लिए कौन-कौन से विभाग स्वतन्त्र रूप से रहेंगे तथा विराट भावनाओं के लिए कौन विभाग काम करेंगे, इसका विवेचन एक स्वतन्त्र लेख में किया जावेगा।

इस प्रकार जब दोनों के डिपार्टमेण्ट अलग-अलग स्थापित हो जाएँगे और दोनों अङ्ग आर्थिक दृष्टि से एक-दूसरे पर अवलम्बित न रहेंगे, तब उनमें न तो किसी प्रकार की प्रतिस्पर्धा ही रहेगी और न मालिक और ग़ुलाम की भावनाओं का ही अस्तित्व रहेगा। उस हालत में न तो नारी को ही अपनी कोमल मनोभावनाओं को नष्ट कर कल-कारख़ानों में जाकर अपने जीवन को मरुभूमि की तरह रुक्ष बनाने का अवसर आवेगा, और न पुरुष ही उसके साथ किसी प्रकार की असमानता का व्यवहार करने को उत्साहित होगा। समाज के इस नवीन स्टैण्डर्ड में विवाह-नीति, आचार-नीति तथा दाम्पत्य नीति के धोरण ही बदल जावेंगे।

इसी अनुकूल परिस्थिति में पड़ कर दाम्पत्य जीवन का पौधा भी अपनी पूर्ण कलाओं के साथ हरा-भरा होकर फलने-फूलने लगेगा। उस स्थिति के अन्तर्गत स्त्रियाँ गृह में गृहलक्ष्मी की तरह, कर्मक्षेत्र में कर्मलक्ष्मी की तरह, रमणीक उद्यान और बन में बनलक्ष्मी की तरह, समुद्र-तट पर राजलक्ष्मी की तरह, नृत्य और विलास-भवन में विलासलक्ष्मी की तरह और रोग-शय्या के समीप आरोग्यलक्ष्मी की तरह, जीवन के प्रत्येक क्षण में आनन्द और उत्साह की धारा बहाती हुई दृष्टिगोचर होंगी। वे आदर्श माताएँ होंगी और उनके पुत्र लव, कुश और अभिमन्यु की तरह वीर, देशभक्त और आत्माभिमानी होंगे, वे आदर्श पत्नियाँ होंगी और उनके पति कृष्ण की तरह आनन्दमय, रसिक-शिरोमणि और गीता के समान दिव्य सन्देश-वाहक महापुरुष होंगे।

कहने का तात्पर्य यह है कि विषमतापूर्ण अनैसर्गिक सामाजिक वातावरण में दाम्पत्य जीवन का पौधा विकसित नहीं हो सकता। फिर वह विषमता चाहे ग़ुलामी की भावनाओं से उत्पन्न हुई हो, चाहे प्रतिस्पर्धा की भावनाओं से। अगर विषमता ग़ुलामीपूर्ण होगी तो वैधव्य, परदा, अनमेल विवाह और गुप्त व्यभिचार के भयङ्कर आघात इस पौधे की जड़ों को नष्ट करते रहेंगे। और अगर यह विषमता प्रतिस्पर्धापूर्ण होगी तो अनैसर्गिक तलाक़ तथा नीति-विरुद्ध वासना, विलास और उच्छृङ्खलता की ठोकरें इसको चूर्ण-विचूर्ण करती रहेंगी। इसलिए समाज के दाम्पत्य जीवन की रक्षा के लिए यह आवश्यक है कि समाज का वातावरण पूर्णतया समता की भावना से पूर्ण हो। उसमें स्त्री और पुरुष दोनों विभाग पूर्ण स्वतन्त्र रहते हुए भी सहयोग और प्रेम के साथ अपने वैवाहिक जीवन को सम्पन्न करें। दोनों अपने-अपने कर्त्तव्यों के सम्बन्ध में दक्ष रहें, तभी समाज में शान्ति और प्रेम का सोता बह सकता है।

देवी जी—तुम्हारा दावा है कि तुम स्त्रियों का पहनावा देख कर उनकी चाल-चलन के बारे में सारी बातें बतला सकते हो?

पति देवता—जी हाँ।

देवी जी—अच्छा तो मेरी सहेली कृष्णा का पहनावा तो तुम देख चुके हो, उसके बारे में तुम्हें क्या कहना है?

पति देवता—मुझे खेद है, उसके 'अर्द्ध-नग्न' रहने के कारण सबूत की इतनी कमी है कि उसके सम्बन्ध में मैं निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कह सकता।

नवीन रूस का 'आधा अंग'

[लन्दन-स्थित 'चाँद' के विशेष प्रतिनिधि द्वारा]

वर्तमान रूस की असली हालत का जानकार ही वहाँ की मज़ेदार स्थिति का अनुभव कर सकता है। वहाँ जो परिवर्तन हुए हैं, उन्हें देख कर आपको ऐसा प्रतीत होगा, मानों आप किसी बाढ़ में बहे जा रहे हों। आपकी अनेक असम्भव कल्पनाएँ यहाँ सत्य में परिणत होती दिखाई देंगी। करोड़ों नर-नारियों का उत्साह और उनकी श्रद्धा आपको विस्मय एवं प्रशंसा के सागर में बहा देगी। इस गण-तन्त्र में स्त्रियों की संख्या प्रायः आधी है। ये सब बुद्धि-मत्ता के साथ सोची हुई सभ्यता एवं नई मानव-संस्कृति का निर्माण करने के लिए कठिन परिश्रम कर रही हैं। मैंने तेज़ चक्र की रफ़्तार से घूमती इस ज़िन्दगी में सोवियट स्त्री को एक अद्भुत कार्य करते देखा है। वह अपने आपको एकदम परिवर्तित आर्थिक प्रणाली के अनुसार बना रही है और अपने विचारों को भी नवीन रूप में ढाल रही है। वह व्यक्तिगत मिलकियत या जायदाद पर स्थित बाप-दादों से पाई हुई सांसारिक संस्कृति एवं उससे संयुक्त अपने पुराने भावों से भया-नक युद्ध कर रही है। मैंने देखा कि क्रान्ति ने पुरुषों की बनिस्बत स्त्रियों पर अधिक प्रभाव डाला है। वहाँ केवल सरकार एवं गुणों तथा विचारों के क्रम, क़दर, परिमाण और तौल में ही परिवर्तन नहीं हुआ है; बल्कि इस मान-सिक उत्थान ने संसार को हिला दिया है।

नवीन रूस की औरतों से मिलते ही मुझे उनके जीवन पर क्रान्ति का बड़ा भारी प्रभाव दृष्टिगोचर हुआ। जहाज़ से उतरते ही पहले-पहल मेरे एक अमेरिकन साथी की परिचिता रमणी नींवा के किनारे खड़ी मिली। सिवा टूरिस्ट गाइडों के हम और किसी से परिचित न थे। इसलिए हमारी इस नई बान्धवी ने सुशीलता एवं शिष्टाचार के साथ हमें शहर दिखलाने का भार अपने ऊपर लिया। नगर की प्रधान सड़कों से गुज़रते हुए उसने मधुर किन्तु मर्म-भरे स्वर से कहा—"गृहयुद्ध, अकाल एवं तबाही के चिन्ह अभी तक हमारे इस शहर में मौजूद हैं। उस समय इन सब मकानों से आहें गूँजती थीं। सन्ध्या की निस्तब्धता में चीख़-पुकार सुनाई पड़ती थी।" उस लड़की की सुन्दर मधु के रङ्ग की भूरी आँखों में गृहयुद्ध एवं क्रान्ति के समय की पीड़ा चमक रही थी।

उसने उसी ढङ्ग से बिना स्वर को बदले ही कहा—"मैंने एक बार एक औरत को दोनों हाथ फैलाए ज़मीन पर बैठे देखा। वह चुपचाप भीख माँग रही थी। मेरे पास उस वक्त पैसे न थे। कुछ देर बाद मैं पैसे लेकर वापस लौटी। देखती क्या हूँ कि उसके हाथ उसी तरह उसी जगह फैले हुए हैं। मैं ज़रा और पास आई। वह सहायता से परे चली गई थी, शरीर शान्त एवं शीतल था। प्राण छूट गए थे!"

मैंने पूछा—"बहिन! क्या तुम इस शहर में सदा से रहती आई हो?" "नहीं, मैं उकरेन से यहाँ कॉलेज में शिक्षा प्राप्त करने आई थी। इतने ही में ग़दर के बादल टूट पड़े। तब मैंने भी सैनिक की वर्दी धारण की और दो वर्ष तक क्रान्ति के पक्ष में लड़ाई के मैदान में मैं डटी रही।" हम दोनों चुप थे। मैंने ज़रा ध्यानपूर्वक उसकी ओर देखा। उसका अण्डाकार चेहरा शान्त, आँखें सलज्ज एवं बस स्त्रियों के से साधारण थे। मानों मेरे विचारों को भाँप कर वह कुछ कह रही हो। "मैं दो बच्चों की माता हूँ—दो लड़कियों की। उन दिनों भी मेरे एक लड़की थी—तीन वर्ष तक मैं उसे देख भी न पाई। ऐसे वे दिन थे।" मानों वह मुझे उन दिनों की स्थिति को समझाने की कोशिश कर रही हो।

केवल स्त्रियाँ ही अपनी इस नवीन स्थिति से परि-चित नहीं। सोवियट रूस में पुरुषों ने भी इस सत्य

को हृदयङ्गम कर लिया है। एक छोटे शहर में हमने एक घोड़ागाड़ी भाड़े की। कोचवान ने एक रुपया माँगा। मैंने ज़रा उम्मीद के साथ कहा—"दोस्त! इतना टाटफोड़ करारा किराया क्यों वसूल करते हो?" उसने कहा—"घोड़े को भूख लगती है और घास के दाम देने होते हैं, करारे और टाटफोड़ की भली कही। मेरे पॉकेट में पैसों की खान नहीं, जो इसको पूरा करे।" रास्ते में हमारी ज़बान से रुबल का शब्द सुन कर उसने सोचा, शायद हम अब भी किराए की मँहगी के सवाल में ही मशगूल हैं। गुस्सा होते उसे देर न लगी और इस गुस्से में उसने घोड़े, घास और अपनी फटी-पुरानी पोशाक को गालियाँ देनी शुरू कीं। मैंने कहा—"भई, तुम अपना कोट अपनी बीबी से मरम्मत क्यों नहीं करवाते।" ज़रा आश्चर्य और क्रोध की तीखी नज़र से उसने मुझे देखा, घोड़े को दो चाबुक लगाए और कहा—"भगवान की दया बनी रहे। बीबी की बला से तो अभी बचा हूँ। यह रही-सही ख़ुशी भी न चली जाय।" बेचारे घोड़े की शामत आई थी, फिर कोड़े ने पीठ नापी—"कौन बेहूदा आजकल विवाह का उत्सुक है? औरत को सिखाना, समझाना तो अलग रहा, ज़रा भी तुमने इधर-उधर नज़र फिराई और तमाचा कान के नीचे। मैं इन परियों के फन्दे में फँसने वाला मूर्ख नहीं हूँ।"

आधुनिक स्त्रियों को भी इस फन्दे के ख़िलाफ़ अनेक शिकायतें हैं और हैं भी सचमुच मर्दों से ज़्यादा। हम रेलगाड़ी में 'कीअफ़' जा रहे थे। ट्रेन तेज़ रफ़्तार से जा रही थी। कमरे में धूप और गरमी थी। फ़र्श पर एक टोकरी पड़ी थी। मेरे डब्बे में दो औरतें थीं, जो जब-तब इस टोकरी का ढक्कन उतार एक टोमाटो निकाल एक दूसरी के ऊपर फेंक रही थीं, और खाती भी जा रही थीं। टोमाटो के इस तमाशे के साथ-साथ संसार की दशा, तालीम, बच्चों की पैदायश और शादी के प्रश्न भी हल हो रहे थे। एक लड़की क्रान्ति से पहिले दासी और अब कीअफ़ के एक इन्जीनियरिङ्ग कॉलेज की छात्रा थी। छात्रालय पुराने माईकेलोवस्की मठ में है। उसने मुझे वहाँ आने का और उनकी ज़िन्दगी देखने का निमन्त्रण दिया और कहा—"सच पूछो तो हर चीज़ अभी आदर्श नहीं है। क्रान्ति एक तरह की तरङ्ग या लहर थी। प्रारम्भ में हमने सोचा था कि निरक्षरता के भूमितल से एक छलाँग में हम ज्ञान के आसमान पर पहुँच जावेंगे। हम शिक्षा भी प्राप्त करेंगी, साथ-साथ बच्चे भी पैदा करेंगी और एक नई सभ्यता का निर्माण भी। दुनिया के सब दरवाज़े हम लोगों के लिए खुल गए थे। हर एक वस्तु सम्भव प्रतीत होती थी। परिणाम क्या निकला? प्रत्येक छात्री ने विवाह कर लिया और माता बनी। अब छात्रालय में इतना शोर-गुल मचा रहता है कि अध्ययन असम्भव है।" टोकरी फिर खुली और फिर टोमाटो उछलने लगे—"हाँ, निश्चय ही हमें अनुभव से वास्तविक उपदेश प्राप्त होते हैं। ओहो, कल्पना करो, बूढ़ी मौसियों के अगर ऐसे विचार होते। सरकार का कहना वाजिब है कि इच्छा है तो शादी करो, हमें कुछ एतराज़ नहीं; लेकिन शादी से पहिले अपने लिए एक कमरे का इन्तज़ाम कर लो। अगर तीन लड़कियाँ एक कमरे में रहती हों और उनमें से एक विवाह का नाता जोड़ बैठे, तो दम्पति के लिए कमरा ख़ाली कर बेचारी बाक़ी दोनों को किसी दूसरे के कमरे में शरण लेकर भीड़ बढ़ानी पड़े। कितनी कष्टदायक बात है। इन सब बच्चों के वास्ते बड़े हॉल के एक कोने में हम एक धात्रीशाला स्थापित कर रही हैं। रात को बारी-बारी से बच्चों की देख-भाल किया करेंगी, ताकि दूसरी लड़कियाँ उस समय पढ़ सकें।"

दुबली-पतली दूसरी नवयौवना ने स्वीकार किया—"यथार्थ में तज़वीज़ बड़ी अच्छी और अक़्लमन्दी की है। वक़्त आने पर सब काम ठीक ढङ्ग से किए जावेंगे। नवीन सरकार को नए अन्धविश्वास-रहित नागरिकों की आवश्यकता है। अतएव विवाह के लिए सभी को उत्साहित करना चाहिए।" क्राईमियावासिनी, यह बालिका एक तारतार स्कूल में रूसी भाषा की शिक्षिका थी। उसकी राय में अधिकतर बुरे विश्वास धर्मगत या जातिगत हैं। उनका इलाज, उसकी समझ में अन्तर्जातीय विवाह का प्रचलन है, क्योंकि इसके होने से नई सन्तान ज़्यादा स्वस्थ एवं अक़्लमन्द होगी और राष्ट्रों का सच्चा भ्रातृमण्डल तभी स्थापित हो सकेगा। इन अन्तर्जातीय एवं दूर-दूर के लोगों के परस्पर विवाह से जाति में मस्तिष्क एवं कल्पना-शक्ति का अद्भुत विकाश होता है, एवं संस्कृति की सतह बहुत ऊँची उठ जाती है।

लेनिनग्राड में मुझे ग्राम और नगर में एकता स्थापन करने के काम में बड़ी दिलचस्पी हुई। इस ध्येय के लिए

काम करने वाले एक कार्यालय में बुद्धिमती, सावधान एवं सुन्दरी मारुसिया के मुझे दर्शन हुए। अपने कार्य में दक्ष एवं निपुण, वह मनमोहक बाला मेरी समझ में यूरोप और अमेरिका की महिला कार्यकर्त्रियों को भी मात करती थी। वह बड़े एकाग्रचित्त से अपने सहयोगियों को टेलीफ़ोन द्वारा उपदेश दे रही थी कि शोक-ब्रिगेडर कौन से औज़ार गाँवों में ले जावें और कौन से नहीं, कौन सा साहित्य किसानों एवं उनके मज़दूरों में वितरित करें। वह मूर्खता और आलस्य से संग्राम करने वाले कार्यकर्ताओं को उत्साहित करती थी, सहायता एवं सलाह देती थी और उन शोकब्रिगेडरों का बड़ा हार्दिक स्वागत करती थी, जो विभिन्न देहाती ज़िलों से अपनी विजय बखानते वापस लौटते थे। अपनी ओर उसका ध्यान आकृष्ट करने के लिए मुझे कुछ देर इन्तज़ार करनी पड़ी। मैंने एकाएक देखा, कितनी दुबली वह है। उसका सहयोगी उसके डेस्क पर आया, और सभा में जाने से पूर्व उससे कुछ खा लेने की प्रार्थना की। जवाब मिला—"देखो, एक कॉमरेड बाट जोह रहा है, मैं अब तक उससे एक शब्द भी न बोल पाई हूँ।" मुझे उसने अपने काम के बारे में कुछ बातें बतलाईं और कहा कि अगर ज़्यादा जानने की इच्छा हो तो मैं भी उस मीटिङ्ग में चलूँ। साथी के प्रस्ताव पर उसने मुझे अपनी भोजन-शाला दिखलानी स्वीकार की। कुछ देर वह कहीं ग़ायब हो गई। उसके दोनों सहयोगी, उसके स्वास्थ्य के विषय में आशङ्काएँ प्रकट करने लगे। इन सब कामगरों में परिवार का सा प्रेम-बन्धन प्रतीत होता था! मारुसिया लौट आई और अपना कोट पहिनते-पहिनते भारतीय मज़दूरों के बारे में वह मुझसे पूछने लगी। सीढ़ी उतरते-उतरते वह ज़रा मुस्कराई और बोली—"जवानी में मेरे स्वास्थ्य का यह बुरा हाल है। बुढ़ापे के तो विचार ही छोड़ दो।" मैंने कहा—"परन्तु बहिन, इधर भी ज़रा ध्यान दिया करो।" "लेकिन इसके लिए समय कहाँ है! अभी फ़सल के बोने का काम है। जब यह काम समाप्त हो जावेगा, तो मैं काकेशश के पहाड़ों पर स्वास्थ्यकर जल के सोतों में अपनी सेहत सुधारने जाऊँगी। लेकिन इस वक़्त नहीं। फ़सल का बोना पहिले समाप्त हो।"

खाते-खाते क्रान्ति के प्रथम वर्ष में अपने पहिले प्रेम का उसने क़िस्सा शुरू किया। क्रान्ति की तरङ्गें उसे टिफलिसको बहा ले गईं। एक वर्ष तक उससे दूर वियोग की आग में वह जलती रही। रात-दिन उसी की धुन थी, नींद में उसी के सपने देखती थी। आख़िर एक दिन वह आया। एक वर्ष के बाद यह मिलन मुझे मृगभ्रम सा प्रतीत हुआ। हमारे जीवन की धाराएँ दूर, एक दूसरे से अलग नहीं जा रही थीं। और इतनी दूर यह प्रेम कैसे चले? प्रेम के विलीन हो जाने की कल्पना ने मुझे भयभीत कर दिया। कैसे मैं जीवन भर उससे सम्बन्ध बनाए रक्खूँ और अपने हृदय को उजाड़ और सूना न होने दूँ?

"लेकिन मारुसिया, इन बातों में तो पुरानी गन्ध आती है, नवीन क्रान्तिकारी विचारों का तुममें तो लवलेश भी नहीं है।"

वह बहुत उत्तेजित हो गई। बोली—"नहीं, यहाँ मेरा मत विभिन्न है। मैं विश्वास करती हूँ कि क्रान्तिकारी साम्यवादी सोवियट नागरिक जीवन के हर पहलू को एक ही दृष्टि से देखता है। हम उसके ढाँचे को देखते हैं। लेनिन के विचारों को देखो।" कञ्चन की छड़ी सी वह बालिका एकाएक गम्भीर हो गई—"और हमारे वे ही नेता बड़े साबित हुए हैं, जिन्होंने अपने आपको विलासिता एवं मोह में बरबाद न होने दिया। मनुष्य-समाज को कुछ देने की योग्यता न रखने वाले नर-नारियों में ही काम-पिपासा सारे जीवन को व्याप्त किए रहती है। ओह! क्या मेरा यह प्रेम सुन्दर नहीं, बड़ी एवं साथ-साथ ही छोटी यह दुनिया कितनी आश्चर्यजनक है। दुनिया के दो कोनों को छोटा कर हम सम्मिलित होते हैं और मित्रता प्राप्त कर हम फिर जुदा हो जाते हैं। लेकिन दुनिया के ये अन्तर फिर निकम्मे हो जाते हैं। बन्धु, आज तुम मेरे मित्र हो। भारत में उन सबको मेरे हृदय का वह अनन्त प्रेम देना, जिन्हें सोवियट यूनियन से प्रेम है।"

सोवियट यूनियन के कुछ कभी न भूले जाने लायक़ अनुभव मुझे मशहूर एवं दुनिया भर में सबसे लम्बे-चौड़े इस "जायण्ट" फ़ार्म में हुए। मैं वहाँ, अब तक न जोती हुई बेजड़ भूमि को देखने गया, जहाँ घास और झाड़ियों के सिवाय कुछ न उगता था। मैशीनों द्वारा सञ्चालित इस नवीन सोवियट कृषि की पराकाष्ठा-रूप फ़ार्म को देखने की मुझे बड़ी इच्छा थी। भविष्य में संसार की

कृषि का द्योतक उन्नतिशील यह फ़ार्म हज़ारों स्त्री-पुरुषों से आबाद है। हर जगह औरतें। नए तरीक़ों का उपदेश देने वाली औरतें, ऑफ़िस में काम करने वाली औरतें, ट्रैक्टर चलाने वाली औरतें। एक दिन सन्ध्या समय सोवियट फ़िल्म कम्पनी के फ़ॉर्म-स्थित भवन के पास कुछ लड़कियों का दल बैठा था। सरसरी बातचीत में किसी मर्द के मुँह से निकल गया—"ट्रैक्टर चलाना औरतों की सेहत के लिए हितकर नहीं।" यह कहना था कि एक लम्बे-चौड़े सीने वाली साँवली औरत उछल पड़ी—"क्या? क्या कहा, ज़रा फिर तो सुनूँ? किस लिए हमने ये लड़ाइयाँ और युद्ध किए और आज आप ये फ़तवे निकालने चले हैं। ज़रा मेहरबानी करके मुझे कोई काम ऐसा बताइए तो सही जिसे स्त्री, पुरुष से अच्छा नहीं तो कम से कम उसी जैसा न कर सकती हो।" "शान्त, नताशा, शान्त।" "चुप रहो तुम, ज़रा इस मर्दुए से पूछो तो सही, हमने ख़ून आज इसी के लिए बहाया था क्या?"

नताशा ट्रैक्टर-चालिका थी। अपनी मैशीन को सब से दुरुस्त रखने के लिए उसे इनाम भी मिल चुका था। नताशा को विश्वास था कि मैशीनों की मदद से वह अकेली उन हज़ारों एकड़ों को जोत सकती है। उसके लिए क्रान्ति की विजय इसी में थी। इसी के लिए उसने लड़ाई की थी और रक्त बहाया था।

"जायन्ट" फ़ार्म में अनेक ऐसी ग्रामीण किशोरियाँ थीं, जिनको वापस जाने को कोई घर या परिवार न था। इनके न परम्परागत रीति-रस्म रहे ही थे और न उन्हें उनकी ज़रूरत ही महसूस होती थी। वहाँ थे बहुत से नौजवान और खुला मैदान। कुछ मज़दूर लड़कियों के साथ एक दिन मैं एक गोदाम के पास विश्राम लेने को बैठ गया। उन्होंने मुझसे कहा—"हम सब यहाँ साथ-साथ फ़ार्म में आई हैं।" और जब मैंने पूछा कि उनके माँ-बाप, भाई-बहिन आदि साथ हैं, तो उन्होंने अचरज-भरी निगाह मुझ पर डाली और गम्भीरता से कहा—"नहीं, हम यहाँ अकेली आई हैं और सब एकत्रित रहती हैं।"

"और"—मैंने मज़ाक़ के तौर पर कहा—"ज्योंही गरमी ख़तम हुई, तुम सब वधू बनीं।" "नहीं, धन्यवाद।"

"क्या इसके मानी यह हैं कि सोवियट स्त्रियाँ कुमारी साध्वियों की तरह से फिर मठों में रहें?"

"नहीं, मनुष्य दल बना कर चलते फिरते हैं। यही करना औरतों को उचित है। अपने दल बनावें और एक-दूसरे के सुख-दुःख की साथिनी होकर रहें।" उनमें से एक मेरी ओर मुड़ी और अपने भूरे रेशमी बालों में रूमाल बाँधती हुई बोली—"औरत को विवाह से क्या लाभ? पता नहीं कहाँ का पुरुष, और ज्योंही काम ख़तम हुआ, वह दुनिया के चारों कोनों को रवाना हुआ।" कन्धों को फटकारते हुए वह बोली—"और उस समय तक शायद तुम गर्भवती हो जाओ और पुरुष शायद शैतान की घुड़शाल में जोत दिया जावे। तब बताओ, तुम क्या करोगी?"

तब एक दूसरी ज़रा विचारपूर्वक बोली—"तब तुम्हारे ऊपर एक और नया काम आ पड़े। दुनिया भर में इस मर्द के पीछे-पीछे ख़ाक छानती फिरो, ताकि बच्चे के पालन-पोषण का ठीक-ठीक प्रबन्ध हो।" इस पर सब ठहाका मार कर हँस पड़ीं। मैं फ़ार्म में औरतों से वार्तालाप कर बड़ा ख़ुश होता था। कुछ बड़ी पक्की और कार्य-निपुण मज़दूरिनें थीं। कइयों में पुराने ग्रामीण विश्वास और रिवाज अभी तक वर्तमान थे। एक लड़की फ़ार्म के जीवन को इसलिए पसन्द करती थी कि घर पर उसे भूतों का डर था। दूसरी लड़की उसे समझाती कि क्रान्ति के ज़माने से भूतों का अन्त हो गया है। झूठी दन्तकथाओं में विश्वास न करो।

सोवियट रूस की अनेक अज्ञात वीराङ्गनाओं में से एकाध के चेहरे को ज़रा मैंने पेन्सिल की लकीरों से सुस्पष्ट करने की चेष्टा की है। रूसी औरतें, मध्य युग की ग़ुलामी से, बीच के सब नदी, पहाड़ों और जङ्गलों को एक छलाँग में लाँघ कर बिना क्रमशः विकास के एकदम साम्यवाद और उद्योगवाद में कूद पड़ी हैं। पन्द्रह वर्ष के इस छोटे से अर्से में, उन्हें ठहरने, अध्ययन करने, वस्तुओं की परख करने को बहुत कम वक़्त मिला है। उन्हें अपने विभिन्न एवं विस्तृत अनुभव से सब सबक़ सीखने पड़े हैं। वे एक ऐसी दुनिया में हैं, जो उनके माता-पिता को बिलकुल अज्ञात थी।

आजकल मनुष्यों के समान हैसियत रखते हुए रूसी औरतें हरएक काम में भाग लेती हैं। गत पाँच

वर्षों में कोई तीस लाख औरतें सरकारी औद्योगिक धन्धों में दाख़िल हुई हैं। वर्तमान साल में ३,२३,००० औरतें साम्यवादी पार्टी की मेम्बर, पन्द्रह लाख नवयुवतियाँ नवजवान साम्यवादी दल की सदस्य, तीन लाख औरतें सोवियटों (ग्राम या नगर-समितियों) या कार्यकारिणियों या नियन्त्रणकारिणी समितियों की सदस्य, पाँच लाख नई औरतें सरकारी विभागों में और चालीस लाख व्यापार-समितियों में प्रविष्ट होंगी। हज़ारों की तादाद में महिलाएँ डॉक्टर, इञ्जीनियर, कृषि-विशेषज्ञ होकर कॉलेजों और यूनीवर्सिटियों से निकलेंगी।

स्त्रियों की सांस्कृतिक एवं शारीरिक उन्नति के लिए सोवियट सरकार बड़ा ख़र्च कर रही है। केवल शिशु एवं माता की रक्षा के लिए गत तीन वर्षों में ५० करोड़ रूबल ख़र्च किए गए हैं। १९३१ में बच्चों के लिए, खेल-कूद के सामान तथा सुविधा में और किण्डर-गार्टनों में २० करोड़ रूबल ख़र्च किए गए हैं। बच्चों के लिए १४ लाख बिस्तरे और पलङ्ग एकीभूत फ़ार्मों की धात्रीशालाओं में रक्खे गए हैं। ५० लाख किसानों के शिशु धात्री-शालाओं, व्यायामशालाओं और खेल-कूद या आमोद-प्रमोद के क्लबों में भरती किए गए हैं।

इन सब उपायों ने सदियों की पुरानी जड़ता की पीठ तोड़ डाली है। पुराने धार्मिक, सामाजिक एवं नैतिक विचारों का विरोध बड़ा कष्टदायक एवं गड़बड़ पैदा करने वाला साबित हुआ है। सोवियट स्त्रियों की चिन्तनाशक्ति को बड़ा काम करना पड़ा है। इस अन्धकार में एकाएक उन्हें सोचने-समझने की शक्तियाँ प्राप्त करनी पड़ी हैं। अपने आपको नई, दिन-रात बदलती परिस्थिति के अनुसार बनाना पड़ा है। इस भयानक गति ने, जिससे उनकी दुनिया बदल रही है, उनकी विचार-धारा को तेज कर दिया है। वह पुरातन रीति-रिवाजों एवं बन्धनों के मोटे छिलके को फाड़ कर बाहर निकलने की सतत एवं सख़्त कोशिश कर रही हैं। और जीवन में कर्ता के महत्व को प्राप्त करना चाहती हैं, जो उन्हें इतिहास में पहले-पहल मिला है।

⁂ ⁂ ⁂

उद्गार

[श्री० रमाशङ्कर जैतली 'विश्व', बी० एस्-सी०]

भीगी पलकों के छोरों से,
किसी गूढ़ लिपि में अनजान।
अनिल-गर्भ में लिख न चुकी क्या,
निर्दय विधि की कथा महान ?

❀

जीवन की कोमल कोंपल पर,
निर्दयता-नख से सन्ताप।
विकट वेदना की प्रहेलिका,
खींच रहा बैठा चुपचाप॥

प्यासे किन्तु तरल नयनों की,
बुझ न सकेगी आकुल प्यास।
कब तक टूटी आशाओं का,
भाग्य उड़ाएगा उपहास ?

❀

लम्बे मटियाले केशों को,
उन्मादिन निशि फहराती।
पीड़ा की उस अठखेली में,
याद तुम्हारी आ जाती !

चलती बार भरे नयनों से,
हृदय-वेग को सहसा रोक—
प्रश्न किए जो कुछ थे तुमने,
तड़पा रहे हृदय में शोक॥

वर्तमान मुस्लिम-जगत

[डॉ० मथुरालाल शर्मा, एम० ए०, डी० लिट्०]

(गताङ्क से आगे)

अमेरिकन कमीशन

अरबी देशों में सबसे भारी झगड़ा सीरिया में हुआ। इस देश में ईसाई और अरब दोनों बसे हुए हैं। ईसाइयों की रक्षा की दुहाई दिला कर और कई और राजनैतिक बहाने खड़े करके फ्रान्स इस देश पर अपनी संरक्षकता स्थापित करना चाहता था। सीरिया की राष्ट्र-सभा इसका विरोध करती थी और पूर्ण स्वतन्त्रता माँगती थी। वहाँ के ईसाई निवासी फ्रान्स का पक्ष लेते थे। बादशाद हुसैन का पुत्र फ़ैसल, जो इस शान्ति के समय में मौक़ा पाकर सारिया का स्वामी बन बैठा था, वह भी फ्रान्स का विरोध तो करता था, लेकिन ठीक उसी प्रकार जैसे नरम दल के नेता किया करते हैं। इसलिए वास्तविक स्थिति की जाँच करने के लिए सन्धि-परिषद ने एक कमीशन बैठाया। लेकिन अङ्गरेज़ और फ्रान्सीसियों ने इसमें अपने प्रतिनिधि नियत नहीं किए। केवल अमेरिका के दो प्रतिनिधियों का कमीशन सीरिया में जाँच करने के लिए पहुँचा।

सीरिया कॉङ्ग्रेस की माँगें

इस समय लेबनान और पलस्तीन फ्रान्स तथा इङ्गलैण्ड के अधीन थे और शेष भाग पर फ़ैसल का आधिपत्य था। यहाँ उसने तुर्की निर्वाचन के नियम के अनुकूल एक राष्ट्रीय महासभा बनाई, जिसका अधिवेशन दमिस्क में हुआ। यह अधिवेशन पाँच मास तक होता रहा और जाँच-कमीशन को इसने जो बयान लिख कर दिया, उसमें लिखा था कि—"सीरिया के मुसलमान, यहूदी और ईसाई सब पूर्ण स्वतन्त्रता चाहते हैं। हमारी सरकार का स्वरूप नियन्त्रित एक राज-शासन होगा और अमीर फ़ैसल हमारे बादशाह बनेंगे। हम लोग बलगेरियन, सर्बियन, यूनानी या रोमानियन लोगों से कम सभ्य नहीं हैं, इसलिए हम अन्तर्राष्ट्रीय परिषद के उस निश्चय का विरोध करते हैं, जिसके अनुसार हमको अर्द्धोन्नत जाति ठहरा कर किसी उन्नत राष्ट्र की संरक्षकता के योग्य बतलाया गया है। यदि सन्धि-परिषद हमारी इस बात को मानने में आपत्ति करे, तो हम अमेरिका की संरक्षकता स्वीकार कर लेंगे, परन्तु शर्त यह है कि यह संरक्षकता नाम-मात्र की होनी चाहिए, हमको कुचलने का बहाना न होना चाहिए और बीस वर्ष बाद इसका अन्त हो जाना चाहिए। यदि अमेरिका इसको स्वीकार न कर सके तो इसी शर्त पर हम ग्रेट-ब्रिटेन की संरक्षकता को स्वीकार कर सकते हैं। हम इस बात को नहीं मानते कि फ्रान्स का हमारे देश पर या इसके किसी भाग पर भी कोई अधिकार है। सीरिया के दक्षिण में पलस्तीन को यहूदियों का घर बनाने की जो योजना है, उसका हम घोर विरोध करते हैं। जो यहूदी हमारे देश में पहिले से बसे हुए हैं, उनके अधिकार वही हैं जो हमारे; परन्तु नई यहूदी बस्तियों को लाकर यहाँ बसाना, आर्थिक, धार्मिक और राजनैतिक तथा सामाजिक दृष्टि से अनुचित है। हम नहीं चाहते कि सीरिया को पलस्तीन, लेबनान आदि भागों में विभक्त कर दिया जावे। हम ईराक़ के लिए भी पूर्ण स्वतन्त्रता चाहते हैं।"

प्रजातन्त्र और उसका अन्त

१५ सितम्बर, सन् १९१९ को फ्रान्स और इङ्गलैण्ड में सन्धि हो गई, जिसके अनुसार सीरिया से अङ्गरेज़ी सेना हटा ली गई और सीरिया का समुद्र-तट फ्रान्स के अधीन कर दिया गया। पलस्तीन भी सीरिया से अलग मान लिया गया। इस समय फ़ैसल यूरोप में भ्रमण कर रहा था। वापस आकर उसने यह मत प्रकट किया कि फ्रान्स से कुछ समझौता कर लेना चाहिए और

पूर्ण स्वतन्त्रता का हठ न करना चाहिए। उसके इस दब्बूपन को देख कर सीरियावासी बहुत बिगड़े और राष्ट्रीय सभा ने उसको स्वतन्त्रता की घोषणा कर देने के लिए उकसाया। मार्च सन् १९२० में फ़ैसल ने बादशाह की उपाधि धारण कर ली। कॉङ्ग्रेस ने नया शासन-विधान तैयार किया, जिसके अनुसार इङ्गलैण्ड की सी सरकार स्थापित की गई। दमिश्क राजधानी बनाई गई। परन्तु इस नवीन प्रजातन्त्र की घोषणा ही होने पाई थी कि इसका अन्त हो गया। अप्रैल १९२० में सेनरेजो की सन्धि हुई, जिसमें विजयी मित्रों ने फ़्रान्स को सम्पूर्ण सीरिया की संरक्षकता दे दी। फ़ैसल इस संरक्षकता को स्वीकार करने के लिए तैयार था, परन्तु कॉङ्ग्रेस ने अस्वीकार कर दिया। जब फ़्रान्स की सेना आगे बढ़ी और उसने दमिश्क पर क़ब्ज़ा कर लिया तो फ़ैसल भाग गया।

लेबनान के कुछ ईसाइयों के सिवाय फ़्रान्स की संरक्षकता सीरिया में कोई नहीं चाहता था। वहाँ स्वातन्त्र्य-प्राप्ति की अभिलाषा उमड़ रही थी। फिर भी अमेरिका या इङ्गलैण्ड की संरक्षकता स्थापित की जाती तो वहाँ असन्तोष नहीं फैलता।

महासमर के समय सीरिया फ़्रान्स और इङ्गलैण्ड के आधिपत्य में था, पर फ़्रान्स की सभ्यता और संस्कृति का वहाँ अधिक प्रचार होता जाता था। यही कारण था कि फ़्रान्स उस पर दाँत लगाए हुआ था। ज्योंही महासमर बन्द हुआ, लोगों में स्वाधीनता की अभिलाषा उमड़ उठी। इस समय फ़्रान्स के बड़े-बड़े राजनैतिक महारथी सन्धि की गुत्थियों को सुलझाने में लगे हुए थे। सीरिया में जो स्वातन्त्र्यान्दोलन बढ़ता जाता था और नवीन अभिलाषाएँ तथा उमङ्गें पैदा होती जा रही थीं, इसका उनको कुछ भी ज्ञान नहीं था। सन् १९२० में भी वे समझते थे कि सीरिया की जनता वही है, जो १९१५ में थी। इसलिए स्वतन्त्रता के आन्दोलन को इने-गिने शिक्षित और महत्वाकांक्षी लोगों का कार्य समझ कर फ़्रान्स ने उनकी घोर उपेक्षा की और सीरिया में अनियन्त्रित शासन का दौरदौरा हो गया।

फ़्रान्स की नीति और अत्याचार

हम पहले ही बतला चुके हैं कि सीरिया में मुसलमान, ईसाई और यहूदी तीनों रहते हैं। ईसाई लोग स्वभावतः फ़्रान्स की ओर पहिले से ही झुकते थे और मुसलमान और यहूदियों में भी प्रायः धार्मिक झगड़े हो जाया करते थे। लेकिन राष्ट्रीय जागृति के साथ-साथ ये मतभेद शिथिल होते जाते थे और सीरिया के निवासी राष्ट्रीय उन्नति के लिए पारस्परिक एकता का महत्व समझने लगे थे। फ़्रान्स को इस स्थिति का न पता था और न इसको वह पसन्द करता। वास्तव में फ़्रान्स संरक्षकता के कर्तव्य को नहीं समझता था। वह संरक्षकता के बहाने अपने व्यापार की वृद्धि और अपने आर्थिक सङ्कट का निवारण करना चाहता था। इसलिए जहाँ तक हो सके वह सीरिया का रक्त शोषण करना चाहता था। संरक्षता प्राप्त होते ही फ़्रान्स ने अपने प्रभुत्व को चिरस्थायी करने के लिए सीरिया-निवासियों के धार्मिक झगड़ों को बढ़ाना आरम्भ किया। उनके झगड़ों को वह अपना बल समझता था। इसलिए कभी ईसाइयों का पक्ष लेता था और कभी यहूदियों का। कभी एक जाति को अपनी ओर फोड़ने का प्रयत्न करता था और कभी दूसरी को। देश भर की प्रधान भाषा अरबी थी। ईसाई और यहूदियों में फ़्रेञ्च का प्रचार था, परन्तु इन लोगों की संख्या अधिक नहीं थी। इस बात की चिन्ता न करके फ़्रान्स ने फ़्रेञ्च को सीरिया की सरकारी भाषा बनाई। फ़्रान्स के वे काग़ज़ी नोट, जिनका मूल्य घटता जाता था, सीरिया में पूरी क़ीमत पर तलवार के ज़ोर से चलाए गए। अपने देश के व्यवसाय और वाणिज्य को सहायता देने के लिए सीरिया के व्यवसाय और वाणिज्य का ख़ून किया गया। उच्च पदों पर फ़्रान्सीसियों को भर दिया और योग्य सीरिया-निवासियों के अधिकारों पर कोई ध्यान नहीं दिया। शासन-सुधार की तो फिर चर्चा ही क्या थी। इसको फ़्रान्स संरक्षकता के नाम से पुकारता था।

जाग्रत सीरिया-निवासी इन अत्याचारों को कहाँ तक चुपचाप सहते। इस प्रकार के शासन के विरुद्ध आन्दोलन शुरू हुआ। इसमें मुसलमान तो थे ही, परन्तु वे ईसाई, जिन्होंने कुछ समय पूर्व ही फ़्रान्स की संरक्षकता का स्वागत किया था, वे भी सम्मिलित थे। लेबनान के ईसाइयों ने एक सभा करके यह प्रस्ताव पास किया कि फ़्रान्स के क्रूरतापूर्वक सैनिक शासन से तुर्की का शासन अच्छा था। इस समय राष्ट्रीय जीवन को छिन्न-भिन्न

करने के लिए फ़्रान्स ने सीरिया को कई भागों में विभक्त कर दिया था और प्रत्येक भाग का शासन जुदे-जुदे ढङ्ग से किया जाता था। लेबनान के ईसाइयों ने इसका विरोध किया और कम से कम लेबनान के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता की भारी आवश्यकता बतलाई।

इन सब कारणों से सीरिया में सन् १९२५ में भारी राष्ट्रीय बलवा हुआ। लेकिन इसका तात्कालिक कारण और ही था। सन् १९२१ में यह तय पा चुका था कि जबल ऊदद्रूज (एक नगर) का शासक हमेशा द्रूज ही हुआ करेगा और हर चौथे वर्ष उसका चुनाव होगा। प्रथम शासक इस निश्चय के अनुकूल सीरियन ही निर्वाचित हुआ था। लेकिन सन् १९२५ में जब उसका देहावसान हो गया, तो उसके स्थान पर एक फ़्रान्सीसी नियत कर दिया गया। लोगों ने इसका विरोध किया और हाई-कमिश्नर के पास एक डेपूटेशन भेजना निश्चित किया। पर हाई-कमिश्नर ने एक न मानी और डेपूटेशन के सदस्यों को गिरफ़्तारी की धमकी दी गई। बस फिर क्या था, असन्तोष की आग भड़क उठी। होरान में द्रूज लोगों ने बलवा कर दिया और सुलतानपाशा अल-अत्राशी ने उनका नेतृत्व ग्रहण किया।

द्रूज-युद्ध और उसका राष्ट्रीय स्वरूप

द्रूज लोग सीरिया में एक विचित्र जाति हैं। इनके रीति-रिवाज अन्य मुसलमानों से मिलते-जुलते नहीं हैं। ये बड़े स्वतन्त्रता-प्रेमी हैं। तुर्की के शासन-काल में भी ये लोग स्थानीय-स्थानीय स्वतन्त्रता का उपभोग करते थे। उस समय ये लोग ईसाई और मुसलमान दोनों से पृथक् रहते थे। परन्तु पिछले कुछ वर्षों से ये लोग राष्ट्रीय एकता के महत्व को समझने लगे थे। इसलिए इस समय इनके बलवे ने राष्ट्रीय रूप धारण कर लिया। सुलतानपाशा और उसके भाई के नेतृत्व में जिधर द्रूज लोग जाते थे, उधर ही जनता उनका स्वागत करती थी और प्रत्येक प्रकार की सहायता देती थी। इनकी संख्या भी उत्तरोत्तर बढ़ने लगी और अन्य लोग भी इनमें सम्मिलित होने लगे। फ़्रान्स वालों ने इसको पहिले तो साधारण स्थानीय उत्पात समझा, परन्तु दो-तीन मास में ही उनको अनुभव हो गया कि यह देशव्यापी है। फ़्रेञ्च-सरकार दुनिया को तो यह बतलाती रही कि यह राष्ट्रीय बलवा नहीं है, बल्कि कुछ लुटेरों का उत्पात मात्र है। परन्तु यह कहाँ तक छिपा रहता। फ़्रान्स को भी शीघ्र ही विदित हो गया कि जनता के क्रोध का भूकम्प फट पड़ा है और संसार भी समझ गया कि वास्तव में क्या मामला है।

द्रूज-विजय

द्रूज-सेना ने लेबनान पर चढ़ाई कर दी। यहाँ फ़्रान्सीसियों का बड़ा ज़ोर था और ईसाई प्रजा उनका साथ देती थी। उत्पातियों का सामना करने के लिए फ़्रेञ्च-सरकार ने लेबनान के ईसाइयों को सशस्त्र कर दिया। दोनों तरफ़ से ख़ूब युद्ध ठन गया। लगभग ६ मास के अन्दर ही लेबनान के अतिरिक्त शेष सम्पूर्ण सीरिया पर राष्ट्रीय दल का आधिपत्य हो गया। बड़े-बड़े नगरों में भी फ़्रेञ्च शक्ति डाँवाडोल होने लगी। नवम्बर १९२५ में दमिस्क पर भी राष्ट्रीय दल ने क़ब्ज़ा कर लिया और तीन दिन तक उनके हाथ में रहा। फ़्रेञ्च-सरकार ने नगर पर गोलों की घोर वर्षा की। सैकड़ों स्त्री-पुरुष और बच्चे साम्राज्यवादी स्वार्थ की भेंट हो गए। कितने ही मकान धराशायी हो गए। लाखों की क्षति हुई। फ़्रेञ्च-सरकार ने इस समय ईसाई जनता पर भी कोई विशेष दया नहीं दिखाई। अनेक ईसाई परिवारों को इस सैनिक प्रलय के समय मुसलमानों ने शरण दी। दमिस्क फ़्रान्स के हाथ में आ गया, परन्तु राष्ट्रीय युद्ध समाप्त नहीं हुआ। पहिले केवल द्रूज लोगों की लड़ाई थी, अब सम्पूर्ण सीरिया इसमें सम्मिलित हो गया। सैनिकों की संख्या बढ़ने लगी और राष्ट्रीय सेना की सहायता करने के लिए एक कोष की स्थापना की गई, जिसमें देशवासियों ने विपुल धन दिया।

पराजय

फ़्रेञ्च-सरकार अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए सीरिया की स्वतन्त्रता का दमन करने पर तुली हुई थी। संरक्षकता का अभिप्राय यही था कि यथाशक्य अधिक से अधिक लाभ उठाया जावे। इसलिए फ़्रान्स ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति सीरिया का दमन करने में लगा दी। कहाँ फ़्रान्स जैसे समृद्ध राज्य की सैनिक शक्ति और कहाँ सीरिया का परिमित बल। फिर भी दो साल से अधिक यह स्वातन्त्र्य-संग्राम जारी रहा। आख़िर सीरिया का परिमित धन, जन, बल और फ़्रेञ्च-सरकार की विशाल

सैनिक शक्ति तथा कूटनीति और अङ्गरेज़-सरकार के सहयोग के कारण राष्ट्रीय संग्राम शिथिल पड़ने लगा और फ़्रान्स की विजय होने लगी। राष्ट्रीय कोष क्षीण हो गया। सैनिक नेता सुलतानपाशा अलअत्राशी का मार्च सन् १९२७ में देहान्त हो गया। और स्वातन्त्र्य-प्रेमी सीरिया वाले अपने प्यारे देश को छोड़ कर अरबिस्तान, पलस्तीन और मिश्र आदि देशों में जाकर बसने लगे।

प्रथम सुधार-योजना और उसकी विफलता

सीरिया में शान्ति स्थापित करने के लिए फ़्रेञ्च-सरकार ने यह सुधार-योजना की कि उसके सब प्रदेशों को एक में मिला दिया जावे और सारे देश पर एक बादशाह नियत किया जावे। फ़्रेञ्च-सरकार चाहती थी कि यह पद मिश्र के शाही-परिवार के किसी पुरुष को दिया जावे। साथ ही यह भी प्रस्ताव था कि शनैः-शनैः फ़्रेञ्च-सेना सीरिया से हटा ली जावेगी। वास्तव में यह योजना फ़्रेञ्च-शक्ति को और भी प्रबल और चिर-स्थायिनी बनाने की युक्ति थी। जनता को कोई अधिकार थे नहीं। बादशाह अनियन्त्रित शासक होता और वह फ़्रेञ्च-सरकार की कृपा के कारण ही राज्यसिंहासन पर बैठता। इसलिए सदा उसकी अँगुलियों पर नाचता। इसलिए सीरिया के लोगों ने इस योजना को स्वीकार नहीं किया। सैनिक बलवा तो प्रायः शान्त हो गया था, लेकिन फिर भी देश में शान्ति की स्थापना नहीं हुई। सीरिया के राष्ट्रीय नेताओं ने अपनी विपद्-कथा राष्ट्र-सङ्घ के सामने रक्खी, परन्तु फ़्रेञ्च-सरकार के आक्षेप करने पर उसकी कुछ सुनवाई नहीं हुई। राष्ट्र-सङ्घ के संरक्षक कमीशन ने फ़्रेञ्च-सरकार के पास सीरिया के सम्बन्ध में एक प्रश्नावली भेजी, पर उसका भी कुछ उत्तर नहीं दिया गया।

प्रतिनिधि-सभा की स्थापना

जब देखा कि आन्दोलन दबता नहीं है, तो फ़्रेञ्च सरकार ने सैनिक बल के अतिरिक्त अन्य साधनों का उपयोग करना भी आरम्भ किया। ट्रान्स जोर्डन और पलस्तीन की सरकारों से निवेदन किया गया कि जो लोग सीरिया से भाग कर उनके यहाँ जा बसे हैं, उनको वापस किया जावे। इन स्थलों पर अङ्गरेज़ों की संरक्षकता है। उन्होंने सहर्ष सहयोग किया और सीरिया-निवासियों के विरोध या अन्य आन्दोलन को दबाने के लिए फ़ौजी क़ानून जारी कर दिया। देश-देशान्तरों में यह ख़बर फैलाने में भी बड़ा यत्न किया गया कि सीरिया में बलवा करने वाले लोगों का उत्पात दब गया है और शान्ति स्थापित हो गई है। यह सब कुछ करने के बाद, जुलाई सन् १९२८ में नवीन शासन-व्यवस्था की घोषणा की गई। इसके अनुकूल जनता द्वारा निर्वाचित एक प्रतिनिधि-सभा की स्थापना हुई और उसका प्रधान भी एक सीरियन ही बनाया गया। यह सब व्यवस्था अस्थायी थी। फ़्रेञ्च-सरकार इस प्रतिनिधि-सभा से भविष्य के लिए सन्धि करना चाहती थी। उसका ख़याल था कि दमिस्क की गोलेबारी के दिनों की स्मृतियाँ अब भी लोगों को त्रस्त करती होंगी और फ़्रेञ्च सेना की करतूतों से लोग भयभीत होंगे। इसलिए यह प्रतिनिधि-सभा जैसे हाई-कमिश्नर सिखाएगा वैसे कार्य करेगी और साधारण शासन-सुधारों से सन्तुष्ट हो जायगी। जनता को अपनी ओर खींचने के लिए राजनीतिक क़ैदी भी सब छोड़ दिए गए और जो लोग दूसरे देशों में जा बसे थे, उनको वापस आने के लिए और अपने देश में बसने के लिए आर्थिक सहायता भी दी गई।

इस सभा में ६९ निर्वाचित प्रतिनिधि थे और इसका प्रधान हशीमबे अताशी था। यह तुर्की राज्य में उच्चाधिकारी रह चुका था और उसके राष्ट्रीय कार्यों के कारण फ़्रेञ्च-सरकार ने उसको एक बार देश से निर्वासित कर दिया था। इस अस्थायी और नामधारी सरकार का मुखिया शेख़ ताजुद्दीन था, जो फ़्रेञ्च-सरकार का बड़ा कृतज्ञ था। प्रतिनिधि-सभा के सब सदस्य राष्ट्रीय विचार वाले थे, परन्तु फ़्रेञ्च-सरकार को ताजुद्दीन की सहायता का पूरा विश्वास था और उसका अनुमान था कि सैनिक पराजय के बाद सीरिया को स्वतन्त्रता के स्वप्न देखने का साहस न हो सकेगा। प्रतिनिधि-सभा की माँगें बिलकुल हलकी होंगी। जैसे भारतीय व्यवस्थापिका सभा में वॉयसराय भाषण दिया करता है, उसी प्रकार फ़्रेञ्च हाई-कमिश्नर ने इस सभा के प्रथम अधिवेशन में भाषण दिया और ताजुद्दीन ने जनता की ओर से धन्यवाद दिया। हाई-कमिश्नर ने समझा होगा कि बलवाई सीरिया के होश ठिकाने आ गए।

(क्रमशः)



कुमारी हेलेन आलवरेस—आप एक सिंहली महिला हैं जिन्होंने सर्व-प्रथम सिंहल के मन्दिर-सत्याग्रह में प्रमुख भाग लिया था ।



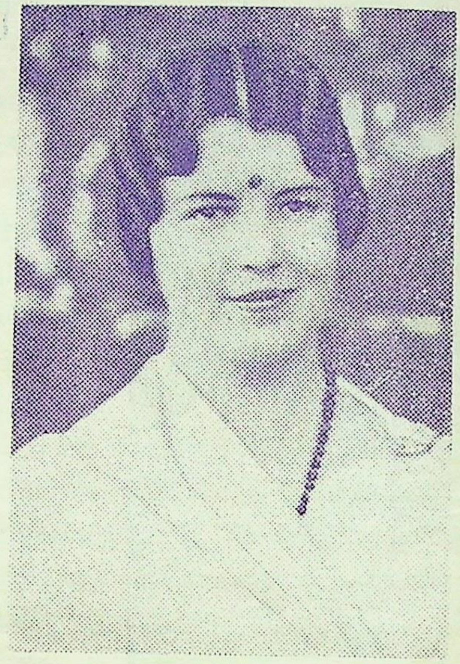
त्यागमूर्ति श्री० केलप्पन का बम्बई के अस्पृश्यता निवारण के सम्बन्ध में एक सभा में व्याख्यान देने का एक दृश्य ।



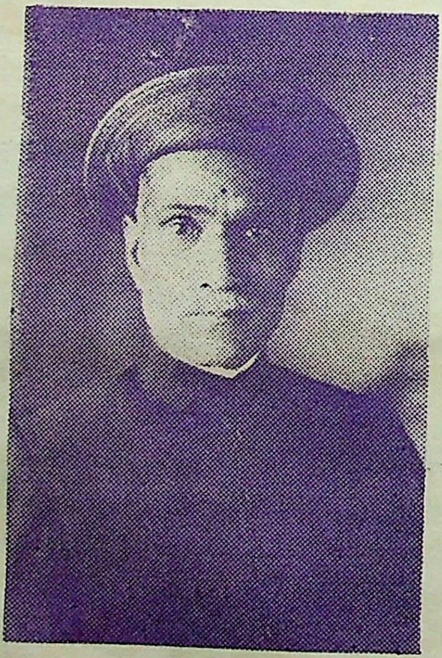
भारतवर्ष की भाँति सिंहलद्वीप (सिलोन) में भी अस्पृश्यता के विरुद्ध आन्दोलन जारी है । इस चित्र में वहाँ के एक विख्यात मन्दिर-सत्याग्रह का एक दृश्य दिखाया गया है, जिसमें सत्याग्रही स्त्री-पुरुष मन्दिर में प्रवेश करना चाहते हैं और पुजारी लोग उन्हें रोक रहे हैं ।



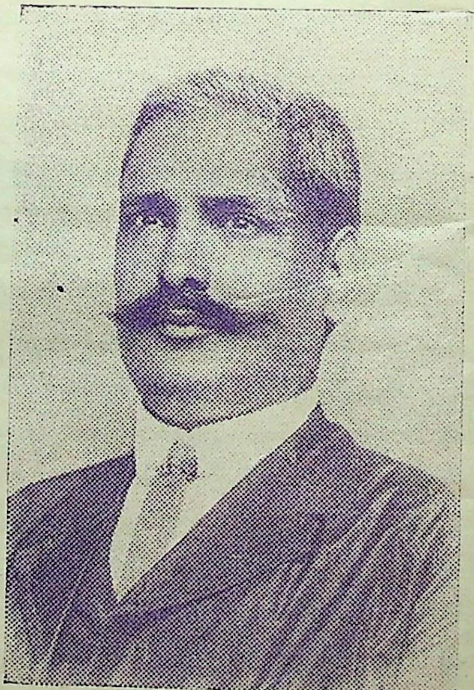
श्रीमती रानी सौभाग्यवती। आप कुरुन्दवद राज्य की रानी हैं और आजकल अछूतोद्धार के सम्बन्ध में अच्छा काम कर रही हैं।



श्रीमती नीला नागिनी देवी। आप एक अमेरिकन महिला हैं, परन्तु कुछ दिनों से हिन्दू-धर्म स्वीकार कर लिया है और अछूतोद्धार के सम्बन्ध में अच्छा कार्य कर रही हैं।



रायसाहब एल० बी० मुले। आप ग्वालियर के गत हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष थे।



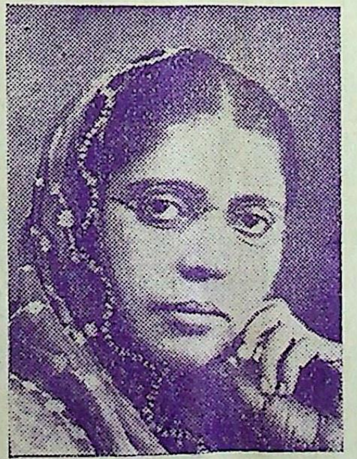
रायबहादुर पण्डित श्यामबिहारी मिश्र। अखिल भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के वर्तमान वर्ष के सभापति।

इन्हें सुयोग प्राप्त हो तो ये क्या नहीं कर सकतीं ?



श्रीमती रामतनुक देवी

आप कृष्णपुर (मुज़फ़्फ़रपुर) के एक उच्च-कुल की महिला हैं। कई लोकोपकारिणी संस्थाओं के सम्पर्क के साथ ही आप सीतामढ़ी-म्युनिसिपैलिटी की शिक्षा-समिति की सभानेत्री भी रह चुकी हैं।



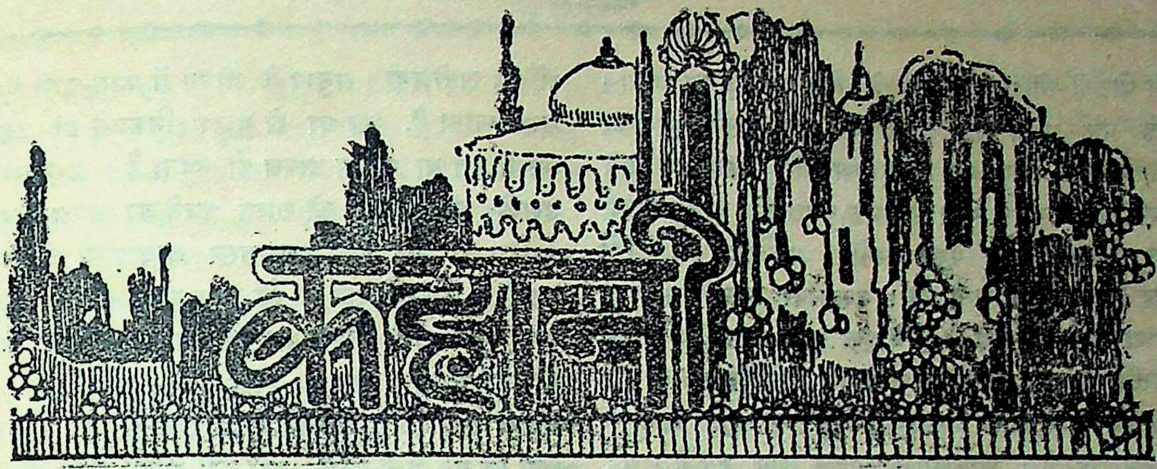
कुमारी शिरीन दलाल, जो कि बम्बई नगर के म्युनिसिपल गुजराती स्कूलों की सुपरिण्टेण्डेण्ट नियुक्त हुई हैं।



कुमारी भीखेजी पालमकोट—आप पहली भारतीय महिला हैं, जो कि लण्डन के ट्रीनिटी सङ्गीत महाविद्यालय की आजन्म सदस्या हैं। पचास अङ्गरेज़ महिलाओं में आप अकेली भारतीय सङ्गीत-कला-विदुषी हैं।



वीरबाला श्रीमती विभा मुकर्जी—जो अम्बाला-निवासी डॉक्टर बी० के० मुकर्जी की धर्मपत्नी हैं। गत १२ दिसम्बर को आपने कुरुक्षेत्र के पास पिण्डारी नामक वन में बन्दूक़ के अचूक निशाने द्वारा दो भीषण वन-वाराहों और एक हिरन का शिकार किया। आपने इस कला में अच्छी पटुता प्राप्त की है।



चाय का एक प्याला

[श्री० जीवानन्द वात्सायन]

रोज़मेरी फ़ेल कोई सुन्दरी न थी और न उसे कोई सुन्दरी कह सकता था। परन्तु यदि उसके शरीर की गठन देखी जाय तो—पर ऐसा करने की आवश्यकता ही क्या है? वह युवती थी, अच्छे-अच्छे वस्त्राभूषणों से सुसज्जित और नवीन साहित्य आदि से पूर्ण रूप से परिचित थी। उसकी बुद्धि तीव्र थी। उसकी दी हुई पार्टियों में प्रभावशाली पुरुषों और ललित कलाविदों का एक अद्भुत समावेश रहता था। ये कलाविद् उसी के चुने हुए विचित्र प्राणी होते थे, जिनमें कुछ तो सचमुच ही भयानक, परन्तु कुछ भले और मनोरञ्जक भी थे।

रोज़मेरी का विवाह हुए दो वर्ष हो चुके थे। उसके एक अति सुन्दर बालक था, जिसका नाम, पीटर नहीं, माइकेल था। उसका पति तो मानों उसकी पूजा करता था। वह धनी था। केवल सामान्य रीति से ही नहीं, किन्तु यथार्थ में धनी था। यदि रोज़मेरी की इच्छा कुछ चीज़ें मोल लेने की होती, तो जैसे हम लोग अनारकली जाते हैं, वैसे वह पेरिस चली जाती। उसे यदि फूल लेने होते तो उसकी कार रीजेण्ट स्ट्रीट की उस बड़ी दुकान के आगे खड़ी हो जाती और वह चकित नेत्रों से चारों ओर देखती हुई कहती—"मुझे वह चाहिए, और वह, और वह। उन फूलों के चार गुच्छे और गुलाबों का वह फूलदान। हाँ, जितने गुलाब हैं, सब। नहीं, मुझे 'लिलाक' नहीं चाहिए, मुझे उससे घृणा है। उनकी शक्ल ही भद्दी है।" दुकानदार लिलाक को उठा कर परे रख देता, मानों यह बिलकुल ठीक ही हो। "मुझे वे छोटे-छोटे ट्यूलिप दो, वह लाल और सफ़ेद।" और इसके बाद उसकी कार तक एक लड़की सफ़ेद काग़ज़ में लिपटा हुआ एक बड़ा बण्डल लिए जाती, जो कपड़ों में लिपटा हुआ एक बच्चा सा मालूम होता था।

जाड़े की ऋतु में एक दिन वह कर्ज़न स्ट्रीट में एक कबाड़िए की दुकान से कुछ मोल ले रही थी। यह दुकान उसको बहुत पसन्द थी। इसका एक कारण यह था कि अक्सर इस दुकान में और कोई न होता था और दुकानदार भी बड़े प्रेम-भाव से उसकी आज्ञा का पालन करता था। जब कभी वह उसकी दुकान पर जाती तो उस दुकानदार का चेहरा खिल उठता। वह हाथ बाँध कर खड़ा हो जाता। कृतज्ञता के कारण उससे ठीक बोला भी न जाता। यह सब ख़ुशामद ही तो थी, परन्तु फिर भी—

वह कहता—"आप जानती हैं, मुझे अपनी चीज़ों से प्रेम है। वे भले ही न बिकें, किन्तु मैं उन्हें ऐसे मनुष्य को कभी न दूँ, जो उनकी क़द्र नहीं जानता, जिसमें वह दुर्लभ विवेचन-शक्ति नहीं है और × × ×" दीर्घ निश्वास छोड़ते हुए उसने एक छोटी सी नीली मख़मल

की पोटली खोली और सामने शीशे की मेज़ पर रक्खा। यह एक छोटा सा डिब्बा था, जो उसने ख़ासकर रोज़मेरी के लिए रख छोड़ा था और किसी ने उसे अभी देखा भी न था। यह एक बहुत ही सुन्दर डिब्बा था, जिसके ऊपर ऐसी मनोहर पॉलिश थी, मानों वह मक्खन की बनी हो। ढक्कन पर एक चित्र बना हुआ था—एक वृक्ष के नीचे एक पुरुष खड़ा है और एक अतीव सुन्दरी स्त्री उसके कन्धे पर सिर रक्खे खड़ी है। उसकी लाल फीते वाली हैट वृक्ष की एक टहनी से लटक रही है। आकाश में बादल छाए हुए हैं। यह सब मनोहर रङ्गों में चित्रित था। रोज़मेरी ने दास्ताना उतारा और डिब्बे को हाथ में लेकर देखने लगी। उसे वह बहुत पसन्द आया। वास्तव में वह एक सुन्दर वस्तु थी और वह उसे अवश्य लेगी। डिब्बे को इधर-उधर घुमाते-फिराते समय उससे यह देखते ही बना कि उस मख़मल से उसके हाथों की शोभा कितनी बढ़ गई है। सम्भवतः दुकानदार ने भी ऐसा ही सोचा हो। अपनी रक्तहीन अँगुलियों से एक पेन्सिल उठा कर उसने कहा—"ज़रा आप क़लम की बारीकी तो देखिए, क्या सुन्दर कपड़े बनाए हैं।" रोज़मेरी भी मन में उसी को सराह रही थी। परन्तु इसका मूल्य क्या है? दुकानदार ने क्षण भर ठहर कर कहा—"तीस पौण्ड।"

"तीस पौण्ड?" परन्तु रोज़मेरी ने अपने आन्तरिक भाव प्रकट नहीं होने दिए। उसने डिब्बा मेज़ पर रख दिया और दस्ताना पहन लिया। उसने फिर कहा—"अच्छा, इसको मेरे लिए रख छोड़ो। मैं × × ×" परन्तु दुकानदार ने पहिले ही झुक कर अभिवादन कर दिया। मानों वह इससे अधिक कुछ नहीं चाहता हो। हाँ, वह उसे निस्सन्देह रोज़मेरी के लिए रख छोड़ेगा।

वह बाहर निकल आई। दुकान का किवाड़ बन्द हो गया। बाहर वर्षा हो रही थी। घोर अन्धकार छाया हुआ था। बड़ी ठण्ढ पड़ रही थी। सड़क की लैम्पों की ज्योति मलिन हो गई थी, मानों उन्हें किसी बात पर पश्चाताप हो रहा हो। लोग छाता ताने जल्दी-जल्दी चले जा रहे थे। रोज़मेरी ने अपनी शाल को अच्छी तरह लपेट लिया और सोचा कि उसे वह डिब्बा ले आना चाहिए था। उसकी मोटर सामने खड़ी थी। उसे केवल सड़क पार करके उसमें बैठना था, परन्तु फिर भी वह खड़ी रही। मनुष्य के जीवन में कभी-कभी ऐसा समय आता है, जब घर से बाहर निकलते ही उसके मन में भय या सन्देह उत्पन्न हो जाता है। उस समय उसको अपने चित्त को शान्त करने का प्रयत्न करना चाहिए और घर जाकर गरमागरम चाय पीनी चाहिए। वह ऐसा सोच ही रही थी कि एक दुबली-पतली लड़की न मालूम कहाँ से निकल कर उसके पास खड़ी हो गई और काँपते हुए स्वर में कहने लगी—श्रीमती जी, मैं आपसे कुछ माँग सकती हूँ?" रोज़मेरी ने घूम कर देखा कि एक थकी-माँदी, बड़ी-बड़ी आँखों वाली लड़की, जो उसकी समवयस्का प्रतीत होती थी, अपने कपड़े समेटे हुए काँप रही है।

"श्रीमती जी, क्या मुझे एक प्याला चाय के लिए पैसे मिल सकेंगे?"—उसने फिर कहा। उसके स्वर में सचाई थी, किसी भिखमङ्गे की आवाज़ न थी।

"एक प्याला चाय के लिए? तो क्या तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है?"

"कुछ भी नहीं, श्रीमती जी।"

"आश्चर्य की बात है!" उस लड़की से मिलना रोज़मेरी को एक आश्चर्यजनक घटना जान पड़ी। यदि वह उसको घर ले जाय? जैसा अधिकतर उपन्यासों या नाटकों में होता है। और अपने मन में उसने अपने आपको मित्रों से यह कहते हुए सुना—"मैं केवल उसको अपने साथ घर ले आई थी।" उसने लड़की से कहा—"चलो, मेरे साथ घर चल कर चाय पी लेना।"

लड़की विस्मित हो कुछ पीछे हट गई। उसका काँपना भी कुछ देर के लिए बन्द हो गया। रोज़मेरी ने मुस्करा कर फिर कहा—"हाँ, चलो, मेरी कार में बैठो।"

"आप—क्या आप यह सच कह रही हैं?"—उस लड़की ने वेदनापूर्ण स्वर में पूछा।

"हाँ, मैं चाहती हूँ कि तुम मेरे साथ चलो।"

लड़की की आँखें उसकी ओर टकटकी बाँधे हुए देख रही थीं—"आप मुझे थाने पर तो न ले जाएँगी?"

"थाने पर!"—रोज़मेरी ने हँस कर कहा—"मुझे ऐसी निष्ठुर बनने की क्या आवश्यकता है? नहीं, मैं केवल तुम्हें सर्दी से बचाना चाहती हूँ।"

भूखे मनुष्य को जल्दी ही विश्वास आ जाता है। नौकर कार का दरवाज़ा खोले खड़ा था। दोनों अन्दर

बैठ गईं। कार चल पड़ी। "हाँ, अब ठीक है"—रोज़मेरी ने उसकी तरफ़ देखते हुए कहा, जिसे वह पकड़ लाई थी। परन्तु उसका हृदय दया से पूर्ण था। वह उसे बता देगी कि अमीरों के भी हृदय होता है और स्त्रियाँ एक दूसरे की बहिनें होती हैं। "डरो नहीं" उसने कहा—"हम दोनों स्त्रियाँ ही तो हैं। यदि मैं अधिक भाग्यवान हूँ तो क्या ?"

कार घर के सामने खड़ी हो गई। नौकर ने किवाड़ खोला। रोज़मेरी लड़की को हाथ पकड़ कर अन्दर ले गई और कहा—" पर चलो, मेरे अपने कमरे में।" वह उसको नौकरों की द्वेषपूर्ण दृष्टि से बचाना चाहती थी। इसलिए उसने अपनी नौकरानी को भी न बुलाया और अपने कपड़े आदि भी स्वयं ही उतारे। उसके लिए सबसे बड़ी बात अपने व्यवहार को स्वाभाविक रखना था। अपने सजे हुए कमरे में पहुँचते ही उसने कहा—"यहाँ बैठो।" अँगीठी में आग जल रही थी, जो कमरे में रक्खी हुई वस्तुओं पर अद्भुत प्रकार का प्रकाश डाल रही थी।

लड़की कमरे में आते ही रुक गई, मानों चौंधिया गई हो। रोज़मेरी ने कुर्सी अँगीठी के पास खींचते हुए कहा—इधर आओ, इस कुर्सी पर बैठो और अपने को गरम करो। तुम तो मारे सर्दी के ठिठुरी जा रही हो।

"मेरा साहस नहीं पड़ता"—कहती हुई वह लड़की कुछ पीछे हट गई।

"अरे, तुम्हें डरना नहीं चाहिए। आओ, यहाँ बैठो। कपड़े उतार कर हम दूसरे कमरे में चलेंगी और चाय पी के आराम करेंगी। तुम डर क्यों रही हो ?" लड़की को उसने धीरे से कुर्सी में ढकेल दिया।

लड़की को कोई उत्तर नहीं आया। उसे जैसे बैठा दिया गया था, वैसे ही बैठी रही। मुँह खोले हुए वह कुछ गँवार सी मालूम होती थी। रोज़मेरी ने उसकी ओर झुक कर कहा—अपना हैट तो उतारो। तुम्हारे सब बाल भींगे हुए हैं।

एक बहुत ही धीमे स्वर में उत्तर मिला—"बहुत अच्छा श्रीमती जी!" और वह पुरानी हैट उतार दी गई।

"और मैं तुम्हारा कोट भी उतार दूँ ?"

लड़की उठ खड़ी हुई, परन्तु उसने एक हाथ से कुर्सी को पकड़ रक्खा। रोज़मेरी ने कुछ कठिनाई से उसका कोट उतारा। लड़की ने उसकी कुछ भी सहायता न की। वह कुछ लड़खड़ा रही थी। रोज़मेरी ने सोचा, यदि लोग सहायता चाहते हैं, तो उन्हें स्वयं भी कुछ करना चाहिए। अब वह कोट को क्या करती ? उसने उसे वहीं फ़र्श पर रख दिया और अपने लिए एक सिगरेट लेने जा रही थी कि लड़की ने विचित्र स्वर में जल्दी से कहा—श्रीमती जी, अगर मुझे शीघ्र ही कुछ खाने को न मिलेगा तो मैं बेहोश हो जाऊँगी।

"अरे, मैं भी कैसी बेपरवाह हूँ!"—रोज़मेरी ने दौड़ कर घण्टी बजाई और चिल्ला कर कहा—"चाय लाओ फ़ौरन और थोड़ी सी ब्राण्डी भी।" परन्तु लड़की ने उसी समय ज़ोर से कहा—"नहीं, मुझे ब्राण्डी नहीं चाहिए। मैं शराब नहीं पीती। मुझे केवल एक प्याला चाय ही चाहिए।" और रो पड़ी।

बहुत ही करुणाजनक दृश्य था। रोज़मेरी उसकी कुर्सी के पास बैठ गई और पुचकार कर कहा—"रोओ मत।" उसने अपने रेशमी रूमाल से उसके आँसू पोंछे और कई प्रकार से उसे चुप कराने का प्रयत्न किया। उसका हृदय सचमुच पिघल गया था।

वह लड़की अब अपना सङ्कोच, ग़रीबी आदि सब भूल गई—उसे केवल इतना ही ज्ञात था कि वे दोनों स्त्रियाँ हैं। वह चिल्ला उठी—मैं इस तरह नहीं रह सकती। मैं आत्म-हत्या कर लूँगी। मुझसे और नहीं सहा जाता।

"तुम्हें ऐसा करने की कोई आवश्यकता नहीं है। मैं तुम्हारी रक्षा करूँगी। बस, अब रोओ नहीं। क्या ही अच्छी बात हुई कि मैं तुम्हें मिल गई! चाय पी के मुझे अपना हाल बताना। मैं वचन देती हूँ कि मैं तुम्हारी सहायता करूँगी। रोना बन्द भी तो करो।"

चाय आई। रोज़मेरी ने मेज़ अपने पास ही रखवा ली और उस लड़की को अच्छी तरह खिलाना शुरू कर दिया। मिठाई, रोटी, मक्खन सब कुछ उसे खिलाया। उसका प्याला ख़ाली होते ही उसे चाय, मलाई और मीठे से भर देती। कहा जाता है कि मीठा बलकारक होता है। उसने स्वयं कुछ न खाया, केवल दूसरी ओर देखती हुई सिगरेट पीती रही, ताकि उसे कोई सङ्कोच न हो।

इस ज़रा से आहार का फल सचमुच आश्चर्यजनक हुआ। उस लड़की की आँखों में नई ज्योति आ गई और उसका चेहरा खिल उठा। कुर्सी में बैठी हुई वह एक

और ही प्राणी मालूम होती थी। रोज़मेरी ने एक और सिगरेट सुलगाई और पूछा—इससे पूर्व तुमने कब भोजन किया था?

इसी समय दरवाज़ा खुला और फ़िलिप ने पूछा—मैं अन्दर आ सकता हूँ?

"हाँ, ज़रूर।"

फ़िलिप अन्दर आते ही एकाएक रुक गया और टकटकी बाँध कर लड़की की ओर देखने लगा—ओह मुझे नहीं मालूम था।

रोज़मेरी ने मुस्करा कर कहा—कोई बात नहीं। ये हैं मेरी मित्र मिस ×××

"स्मिथ, श्रीमती जी!"—कुर्सी में बैठी हुई अचल मूर्त्ति ने कहा।

"और हम दोनों को आपस में बातें करनी हैं।"

"बहुत ठीक।" फ़िलिप ने कहा और अँगीठी के पास आकर उसकी ओर पीठ करके खड़ा हो गया। "कैसा बुरा मौसिम है।" उसने कुर्सी पर बैठी हुई निस्तब्ध मूर्त्ति की ओर देखा और फिर रोज़मेरी की ओर।

"हाँ, बहुत ही बुरा।"—रोज़मेरी ने कहा।

फ़िलिप मुस्कराया—"असल में मुझे तुमसे एक बात कहनी थी। कुछ देर के लिए लाइब्रेरी में चलो। मिस स्मिथ इसका कुछ ख़याल तो न करेंगी?"

उन बड़ी-बड़ी आँखों ने उसकी ओर देखा। परन्तु रोज़मेरी ने शीघ्र ही कहा—"चलो।" और दोनों इकट्ठे कमरे से बाहर चले गए। लाइब्रेरी में आते ही फ़िलिप ने पूछा—"यह कौन है? इस सबका क्या मतलब है?"

रोज़मेरी ने दीवार के सहारे खड़े होकर हँसते हुए कहा—यह मुझे कर्ज़न स्ट्रीट में मिली थी। मुझसे उसने एक प्याला चाय के लिए पैसे माँगे थे और मैं उसे अपने साथ ले आई हूँ।

"परन्तु तुम उसके साथ करोगी क्या?"

"उसके साथ दया का बर्ताव करूँगी। उसे अच्छी तरह रखूँगी। हमने अभी आपस में बातें नहीं की हैं, पर मैं उसे दिखाऊँगी, उसे बता ×××"

"परन्तु प्रिये, तुम सचमुच पागल तो नहीं हो गई? ऐसा हो नहीं सकता।"

"मैं जानती थी, तुम यही कहोगे। क्यों नहीं हो सकता? मैं उसे रखना चाहती हूँ। क्या यही काफ़ी नहीं है? और मैंने निश्चय कर लिया है ×××"

"परन्तु"—फ़िलिप ने सिगार का सिरा काटते हुए कहा—"वह तो अत्यन्त ही सुन्दर है।"

"सुन्दर?"—आश्चर्य से रोज़मेरी के मुँह पर सुर्ख़ी दौड़ गई—"क्या सचमुच ही? मैंने इसका ख़याल नहीं किया था।"

"अरे सुन्दर क्या बिलकुल लावण्य की पुतली है। मैं तो देख कर दङ्ग रह गया था। फिर भी ××× मैं समझता हूँ कि तुम भूल कर रही हो। ××× क्या मिस स्मिथ आज हमारे साथ ही भोजन करेंगी?"

रोज़मेरी ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह लाइब्रेरी से बाहर चली गई। परन्तु अपने कमरे में नहीं, बैठक में गई। मेज़ के पास जाकर कुर्सी पर बैठ गई। "सुन्दर!" "लावण्य की पुतली!" "दङ्ग रह गया था!" उसका हृदय धक-धक कर रहा था। "सुन्दर!" "लावण्य की पुतली!!" उसने अपनी चेकबुक उठाई—परन्तु नहीं, चेक देने से कुछ न होगा। मेज़ का एक दराज़ खोल कर उसने दो एक-एक पाउण्ड के नोट निकाले और अपने कमरे में चली गई।

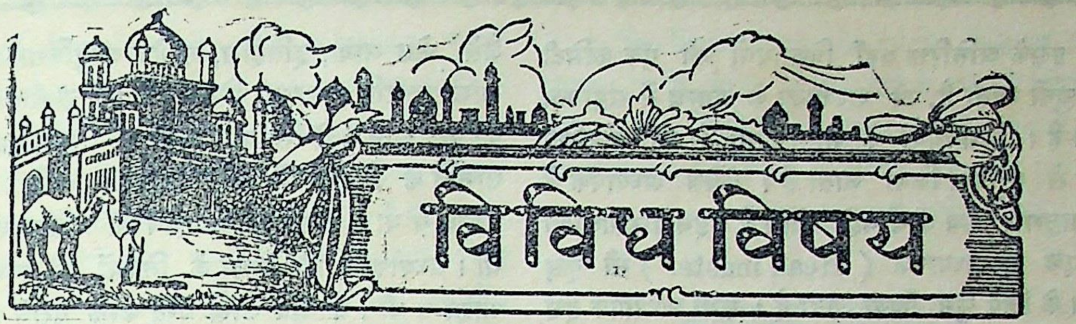
आध घण्टे बाद रोज़मेरी फिर लाइब्रेरी में गई। फ़िलिप अभी बैठा समाचार-पत्र पढ़ रहा था। रोज़मेरी ने कहा—मैं तुमसे यही कहना चाहती थी कि मिस स्मिथ आज यहाँ भोजन नहीं करेंगी।

फ़िलिप ने पत्र रख दिया और पूछा—क्यों? क्या हुआ? क्या उन्हें कोई और कहीं काम था?

रोज़मेरी पास आकर उसकी कुर्सी पर बैठ गई। "वह यहाँ ठहरती ही नहीं थी। इसलिए मैंने उस बेचारी को कुछ पैसे भेंट-स्वरूप दे दिए। मैं उसे उसकी इच्छा के विरुद्ध थोड़े ही रख सकती थी?"

रोज़मेरी ने अपने बाल अभी सँवारे थे। मोतियों की माला पहन ली थी। अँगुली से फ़िलिप की ठोड़ी ऊपर उठाते हुए पूछा—"क्या तुम मुझसे प्रेम करते हो?" उसके स्वर में न जाने क्या था, जिसने फ़िलिप को उद्विग्न कर दिया। उसने रोज़मेरी को अपने बाहुपाश

(शेष मैटर ४५८ पृष्ठ के पहले कॉलम के नीचे देखिए)



यूरोप में शिक्षा के नए आदर्श

युद्ध के पहिले जर्मनी के शिक्षालयों में एक दोष था—बल्कि तमाम जर्मन-समाज में यह बड़ा ऐब था कि हर तरफ़ फ़ौजी तरीक़ों का व्यवहार किया जाता था। जर्मन जाति की उन्नति और एकता के लिए सैन्य-बल ही एक उपयोगी उपाय था। सन् १८७० ई० में जर्मनी ने अपनी उत्साही फ़ौज के द्वारा फ्रान्स को परास्त किया था, इसलिए जर्मनों को सेना और सैनिक शासन पर दृढ़ विश्वास था। फ़ौजी अफ़सरों की वहाँ बड़ी इज़्ज़त होती थी और वे वर्दी पहिने हुए ही सब जगह जाते थे। फ़ौजी प्रबन्ध में नियमपालन, आज्ञा-कारिता और सेवा के गुण सिखाए जाते थे, जिन पर जातोन्नति की नींव अवलम्बित है। परन्तु जर्मनी में इस फ़ौजी प्रकृति को सीमा से अधिक महत्त्व दे दिया गया था। अस्तु, यह गुण वास्तव में दोष में परिवर्तित हो गया था। नियमों की अत्यधिक पाबन्दी और आज्ञा-कारिता से व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का ज़ोर कम हो जाता है और लोगों में आज्ञा के बिना काम करने की शक्ति ही नहीं रह जाती है। अगर अफ़सर ग़ैरहाज़िर हो या कुछ ग़लती कर दे तो सारा काम बिगड़ जाता है। सब लोग एक मैशीन के पुर्ज़ों की तरह हो जाते हैं। कोई अपनी बुद्धि और हिम्मत पर भरोसा नहीं रखता। नियमों की भरमार हो जाती है।

जर्मनी के शिक्षालयों में भी यही दोष पाया जाता था। शिक्षकों को ज़रा भी आज़ादी न थी कि वे अपनी ओर से कुछ पढ़ा सकें, या किसी नई प्रणाली का प्रयोग कर सकें। लकीर के फ़क़ीर बन कर ज़ाब्ते के अनुसार कार्य करना ही उनका कर्तव्य था। सारे देश के सब मदरसे इसी प्रकार से चलाए जाते थे और सारी शिक्षा निकम्मी और नीरस बन गई थी। नियमों की रस्सी ने अध्यापकों का गला ही घोंट दिया था। इसके अतिरिक्त शिक्षालयों के अन्दर भी अध्यापकों और विद्यार्थियों का सम्बन्ध फ़ौजी आदर्श के अनुसार ही रक्खा जाता था। अध्यापक लोग विद्यार्थियों से अलग रह कर उन पर अपना रोब जमाते थे। उनके साथ मिल-जुल कर खेलना या मनोरञ्जन करना अनुचित समझा जाता था। बच्चों में डर का भाव भरा जाता था। प्रेम का कहीं नामो-निशान भी न था। अध्यापक समझते थे कि वे स्वयं तो फ़ौजी अफ़सरों के दर्जे के हैं और बच्चे सिपाही हैं। अस्तु, इसी भूल से वे शिक्षालयों में फ़ौजी प्रबन्ध की नक़ल करते थे। परन्तु थोड़े से विचारशील सुधारकों ने इन दोषों के दूर करने की चेष्टा युद्ध के पहिले ही आरम्भ कर दी थी। उनका आन्दोलन एक छोटे रूप में था। परन्तु सन् १९१८ ई० में हेम्बर्ग नगर के अध्यापकों ने अपनी ज़िम्मेदारी का सुधार शुरू कर दिया। क्योंकि वह क्रान्ति का युग था और हर तरफ़ गड़बड़ मची हुई थी। इन अध्यापकों ने कुछ पाठशालाओं में बच्चों की स्वतन्त्रता और प्रेम के सिद्धान्तों के अनुसार कार्य करना आरम्भ किया। क्रमशः दूसरी पाठशालाओं में भी उनका अनुकरण किया गया। बच्चों को अपनी शक्तियाँ धीरे-धीरे बढ़ाने और उनका विकाश करने का अवसर देकर स्वतन्त्रता के सिद्धान्त पर इन नए शिक्षालयों की नींव रक्खी गई। उनका नाम भी 'स्वतन्त्र शिक्षालय' (Free Schools) रक्खा गया। वहाँ परीक्षा को अधिक महत्त्व नहीं दिया जाता, क्योंकि परीक्षाओं की ओर अधिक ध्यान रहने से उसी पुरानी प्रणाली पर चलना पड़ेगा और सिर्फ़ थोड़े से मुख्य विषयों को रोटी-पानी की तरह बच्चों के अन्दर भर देना होगा। शिक्षा का उद्देश्य केवल यही नहीं है कि बच्चे सिर्फ़ परीक्षा पास कर लें।

इसके अतिरिक्त वहाँ विद्यार्थियों की एक कमिटी भी चुनी जाती है, जो पाठशाला के प्रबन्ध में सहायता देती है। विद्यार्थियों के माता-पिता से भी नियमित रूप से परामर्श लिया जाता है। केवल अध्यापक के इच्छानुसार सब कार्य नहीं होता है। इन पाठशालाओं में एक मुख्याध्यापक (Head master) भी कुछ काल के लिए चुन लिया जाता है। सभी अध्यापक इस चुनाव में भाग लेते हैं। इसी प्रकार हेडमास्टर की पदवी भी किसी एक व्यक्ति के लिए सुरक्षित नहीं है, बल्कि उसका निर्वाचन एक प्रजातन्त्र राज्य के प्रधान के अनुसार होता है और सिर्फ़ कुछ वर्षों के लिए वह प्रधान अध्यापक चुना जाता है। अध्यापकों में इस तरीक़े से भ्रातृ-भाव बढ़ता है और प्रबन्ध में भी सरलता होती है। इन स्वतन्त्र पाठशालाओं की उन्नति से जर्मन जाति की काया-पलट हो जायगी।

इटली में भी शिक्षा-मन्त्री प्रोफ़ेसर "जिवनानी जिण्टले" ने शिक्षा के सम्बन्ध में कई आवश्यक सुधार किए हैं। यहाँ की पाठशालाओं में फ़ीस बहुत कम ली जाती थी और शिक्षा थी साधारण। बहुत सी पाठशालाओं में लड़के और लड़कियाँ साथ-साथ पढ़ते थे। शिक्षा का प्रबन्ध राज्य की ओर से किया जाता था। परन्तु अधिकतर मानसिक शिक्षा पर ज़ोर दिया जाता था, जैसे, फ्रेञ्च भाषा, इतिहास, भूगोल जन्तुविद्या रसायन-शास्त्र इत्यादि। परन्तु विद्यार्थियों को सङ्गीत या कला का कुछ ज्ञान नहीं सिखाया जाता था। उनकी शारीरिक उन्नति के लिए खेलों और व्यायाम आदि का कोई प्रबन्ध न था। केवल पुस्तक-ज्ञान की प्रतिष्ठा की जाती थी। अध्यापकों को शिक्षा के नियमों को बदलने की आज्ञा न थी। वे सब आँखें बन्द करके पुराने मार्ग पर चले जाते थे।

इटली में दो बड़े दल हैं, एक कैथोलिक धर्म का अनुयायी और दूसरा प्रकृतिवादी नास्तिक सम्प्रदाय, इन दोनों में सदैव लाग-डाँट बनी रहती है। प्रकृतिवादी नास्तिक को "फ्रीथिङ्कर" या "लीपरपान्सर" भी कहते हैं। प्रायः शिक्षित लोग और कारख़ानों के मज़दूर प्रकृतिवादी दल में शामिल हैं। परन्तु किसान पुराने ईसाई धर्म के भक्त हैं। इन ईसाई पुजारियों का बड़ा प्रभाव है, क्योंकि वे ब्रह्मचर्यपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं और बहुत त्याग करते हैं। परन्तु ईसाई धर्म के सिद्धान्तों को अब शिक्षित लोग और मज़दूर नहीं मानते। उन्होंने अपना अलग नास्तिक सम्प्रदाय बना लिया है। सन् १९०६ ई० में इटली के सब स्कूलों में ईसाई धर्म की शिक्षा बन्द कर दी गई थी और विश्वविद्यालयों का धार्मिक विभाग भी बन्द कर दिया गया था; क्योंकि उस समय नास्तिकों का ज़ोर था। इटली में एक बड़ी बुराई यह थी कि वहाँ वकील बहुत अधिक संख्या में थे। वकालत की परीक्षा पास करके हज़ारों नवयुवक जूतियाँ चटख़ाते फिरते थे। सरकारी नौकरियों के लिए सबकी राल टपकी पड़ती थी। परन्तु इतनी नौकरियाँ हर साल ख़ाली नहीं हो सकती थीं।

प्रोफ़ेसर "जिण्टले" ने बहैसियत शिक्षा-मन्त्री के बहुत सी सुविधाएँ जारी की हैं। उन्होंने अध्यापकों के सुधार की कोशिश की है। उनकी राय है कि नियम और सिद्धान्त बनाने से कोई लाभ न होगा, यदि अध्यापक योग्य न हों। अध्यापकों के दिलों में नैतिक बल भरना चाहिए, जिससे वे अपने पवित्र कर्तव्य से परिचित होकर अपना जीवन उसके लिए अर्पण कर दें। फिर वे स्वयं उचित उपाय निकाल सकेंगे। सरकार की ओर से बहुत से नियम-उपनियम जारी करने की आवश्यकता नहीं है। बच्चों को शिक्षा देने से अध्यापक के दिल और

(४५६वें पृष्ठ का शेषांश)

में बाँध लिया और एक चुम्बन लेते हुए कहा—"बहुत।"

कुछ क्षण तक निस्तब्धता रही। फिर रोज़मेरी ने स्वप्निल स्वर में कहा—आज मैंने एक छोटा सा अत्यन्त मनमोहक डिब्बा देखा है। उसका दाम है तीस पौण्ड। मैं उसे मोल ले लूँ?

"हाँ"—फ़िलिप ने उसके गाल पर अँगुली से हल्का सा आघात करते हुए कहा—"ले लेना, श्रीमती फ़िज़ूल-ख़र्च।"

परन्तु यथार्थ में रोज़मेरी कुछ और ही चाहती थी। फ़िलिप के वक्षस्थल पर अपना सिर रखते हुए उसने पूछा—क्या मैं सुन्दर हूँ?*

❀ ❀ ❀

*कैथराइन मैन्सफ़ील्ड की एक कहानी का अनुवाद।

दिमाग़ की भी उन्नति होगी, क्योंकि वह इस काम में पूरी दिलचस्पी लेकर अपनी शक्तियों का विकास कर सकेगा। शिक्षा एक जीवित फलदायक कार्यक्रम है। केवल मुर्दा नियमों की पाबन्दी कोई अर्थ नहीं रखती। अस्तु, सीखना और सिखाना साथ होगा। सन् १९२३ ई० में जो सुधार किए गए हैं, उनके द्वारा पुराने नियमों को रद्द कर दिया गया है और यह प्रबन्ध किया गया है कि सब लोग अपने बच्चों को अवश्य पाठशालाओं में भेजें।

इटली में अनिवार्य शिक्षा का क़ानून तो पहले भी प्रचलित था, लेकिन उस पर अमल नहीं किया जाता था। बहुत से किसान और मज़दूर अपने बच्चों को स्कूल में नहीं भेजते थे, परन्तु सरकारी नौकर उनके विरुद्ध कुछ कारवाई नहीं करते थे। अब इस बुराई का परित्याग किया गया है, ताकि अपढ़ लोगों की संख्या कम होती जाय। उच्च शिक्षा के लिए विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों का चुनाव किया जायगा, और आवश्यकता से अधिक विद्यार्थी नहीं लिए जाएँगे। शारीरिक व्यायाम और नैतिक शिक्षा पर अत्यधिक ज़ोर दिया जायगा। प्रारम्भिक पाठशालाओं में धार्मिक शिक्षा फिर प्रचलित की जायगी। यदि कोई मनुष्य ग़ैर-सरकारी स्कूल खोलना चाहे, तो उसको आज्ञा दी जायगी कि वह नया अनुभव प्राप्त कर सके। अभी तक ग़ैर-सरकारी स्कूलों की रोक थी। मुल्क के भिन्न-भिन्न हिस्सों के लिए उचित परिवर्तन किए जा सकेंगे। जिससे प्रजा को स्कूलों के काम में सहानुभूति हो। सर्व-साधारण के लिए मनोरञ्जक साहित्य तैयार किया जायगा, जिससे मदर्सों में प्रजा का भाव बढ़े। मदर्सों को जनता के दैनिक जीवन से गहरा सम्बन्ध रखना चाहिए। खेल, बाग़वानी, हाथ से काम करना, सङ्गीत इत्यादि ऐसे विषयों के लिए समय दिया जायगा।

प्रत्येक सप्ताह ३५ घण्टों में से २४ घण्टे ऐसे उपयोगी और नैतिक लाभदायक विषयों के लिए ख़र्च किए जायँगे, विशेषतः सङ्गीत, चित्रकारी तथा अन्य कलाओं के द्वारा पवित्र भावनाओं की उन्नति की जायगी। प्राचीन जातीय गीत संग्रह करके उनका उपयोग पाठशालाओं में किया जायगा। एक सभा भी स्थापित की गई है, जिसका उद्देश्य नौकरों का सुधार करना है।

धार्मिक शिक्षा में बहुत से गम्भीर सिद्धान्त नहीं सिखाए जायँगे, बल्कि ईसाई धर्म के बड़े-बड़े सिद्धान्त बताए जायँगे, जिनसे नैतिक सुधार हो सके। युद्ध से पूर्व प्रजातन्त्र और प्रकृतिवाद का अधिक प्रभाव था।*

—नारायणप्रसाद अरोड़ा, बी० ए०

❁ ❁ ❁

भयावह अभ्युदय

हमारी ऐश्वर्यशाली हवेलियों में रङ्ग-बिरङ्गे सङ्गमर्मर सुशोभित हैं। मोतियों की झिलमिलाहट हमें चकित कर रही है। स्वर्गीय सौन्दर्य-छटा पृथ्वी पर बहती फिर रही है। अब सहसा दीपक जल उठने के लिए दीपक-राग गवाए जाने की आवश्यकता नहीं। सेवक-सेविकाओं से परिवेष्टित निशानाथ ऐसा सुन्दर नहीं मालूम होता, जैसा कि समृद्धिशाली विभूति-मण्डित प्रतापी अकबर या विश्व-ऐश्वर्य से सजे ज़नानख़ाने में आरामतलब सम्राट जहाँगीर। भोजन की प्रत्येक वस्तु में कैसा स्वाद पैदा किया गया है। कृत्रिम पहाड़ों में नैसर्गिक पर्वत-मालाओं के सौन्दर्य से कहीं अधिक सौन्दर्य दीख रहा है। फ्रान्स का वीर-केसरी नेपोलियन, अमेरिका का स्वातन्त्र्य-विधायक वाशिङ्गटन, बोधिवृक्ष के नीचे सिंहासन लगा कर तपस्या करने वाले दया के अवतार भगवान शाक्य मुनि, अहिंसा और शान्ति का क्रियात्मक ज्ञानी सत्याग्रही मोहन, ग़रीबों के वृक्ष के नीचे बैठने वाला स्पष्टवक्ता और दीनों का हृदय रूसी संन्यासी टॉल्सटॉय, साहित्य-सम्राट शेक्सपियर और होमर आज सारे सभ्य संसार के हाथों में हैं। वे केवल फ्रान्स, अमेरिका, भारतवर्ष, रूस, इङ्गलैण्ड और ग्रीस की ही सम्पत्ति नहीं। आमोद-प्रमोद की सामग्री का तो पार नहीं। यह युग ही आमोद-प्रमोद का युग है। इस युग ने प्रकृति पर भी एक बड़ी विजय प्राप्त की है। आकाश में अब कवि ही नहीं उड़ते, उनके पात्र भी उड़ने लगे हैं। हम सबके लिए आकाश-यात्रा बिल्कुल सरल है। चाहे कालिदास ने शाकुन्तल में

---

* लाला हरदयाल जी, एम० ए० के एक लेख के आधार पर।

या वेदव्यास ने महाभारत में या आदि-कवि बालमीकि ने रामायण में आकाश-यात्रा अपने मन से ही बना कर मानव-मनोवृत्ति की कल्पनाकारिणी लिप्सा का ही परिचय दिया हो। घर बैठे दूर की बात जान लेना अब योगियों की ही सम्पत्ति नहीं। विज्ञानाचार्य बोस और मारकोनी ने भी विज्ञान-बल से योगियों के क्षेत्र में बड़ी उथल-पुथल मचा दी है। सिंह की भयङ्करता अब केवल गर्जन में ही रह गई है। दुनालियों ने उसके मस्तिष्क को भी मार्ग पर ला दिया है। ज्ञान-क्षेत्र का विस्तार कल्पनातीत हो गया। बाल की खाल ही नहीं, उसका अस्थि-पञ्जर भी आपके सामने आ सकता है। वृक्ष रो-रोकर और हँस-हँस कर अपनी रामकहानी हमें सुनाने लगे। निरक्षर गूँगे वृक्ष लिखने लगे। ज्ञान का क्षेत्र गम्भीर भी है, पर विस्तृत अधिक है। केवल ज्ञान-वारि के लिए मनुष्य कोई भी त्याग करने को तैयार है। ज्ञान चाहे उथला मिले गहन नहीं, पर दाँत किटाकिट अवश्य होना चाहिए। मनुष्य एक श्रेष्ठ जीव है। उसकी इच्छाओं को सन्तुष्ट करने के लिए और उसकी रक्षा के लिए २-४ हरिण तथा १०-२५ सर्प इत्यादि जैसे हिंसक जन्तुओं की बलि कोई पातक नहीं। विश्वसंहार के लिए कपिल ऋषि के योग तथा तपस्या-प्रसूत प्रखर तेज की आवश्यकता नहीं, जादू सीखने की आवश्यकता नहीं, चतुरङ्गिणी सेना-सञ्चालन की भी आवश्यकता नहीं; कतिपय हाविड्ज़र तोपें और थोड़ा सा गैस ही पर्याप्त है। मज़दूरों का मूल्य बहुत बढ़ चला है; पर उनकी भी अब आवश्यकता नहीं। यन्त्र बर्तन मलने लगे, यन्त्र पॉलिस करने लगे, यन्त्र टिकिट बेचने लगे, यन्त्र व्याख्यान भी सुनाने लगे। सिनेमा की चलने-फिरने वाली मूर्तियों की मूक चेष्टा भी अब सुनने में आने लगी। यन्त्रों को बढ़ाइए, मालथस का सिद्धान्त आप ही कार्य करने लगेगा और संसार भली प्रकार समझ लेगा कि अब बालकों को जन्म देना पातक है। औषधि-प्रयोग की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी। कामुक वृत्तियों को विवश हो नियन्त्रित करने की आवश्यकता ही न होगी। भूख से कृष ग़रीबों में तपश्चर्या-प्राप्त इन्द्रिय-निग्रह स्वतः आ जावेगा।

अस्त्र-शस्त्रों ने लुटेरों और हिंसक जीवों से हमारी रक्षा की, किन्तु पक्षीगण हमारे पास तक नहीं फटकते। हमारे घर की पूज्य गौ भी हमसे भय खाती है। मनुष्य क्या इतना भयङ्कर जीव हो गया है? क्या हमारा जीवन इतना कुत्सित है? यदि यह सत्य है, तो हमारी इस उत्क्रान्ति का अर्थ क्या है? बन्दरत्व से मनुष्यता प्राप्त होने की क्या विशेषता? पूँछ तथा रूप के बदले हमने क्या कमाया?

हम थोड़ा सा धान्य हाथ में लेकर पक्षियों को चुगाने के हेतु बाहर जाते हैं, किन्तु हमारी बहेलिया-वृत्ति उन्हें अनाज चुगने नहीं देती। हमारे दानवी हाथों में उन्हें रक्त की बास आती है। हमारे दान में उन्हें सात्विकता दृष्टिगोचर नहीं होती। वे दूर से देखते हैं, सशङ्कित हो पास से आकर भी देखते हैं, उन्हें उस सात्विकता का लेश-मात्र भी चिन्ह नहीं दिखता और भक्ति तथा प्रेम से फैलाए हुए हाथों में वे धान्य को देख फुर्र हो जाते हैं। पैर की आहट से वे प्राण लेकर भागते हैं। वह समय कहाँ गया, जब ऋषियों के आश्रमों में खग-मृग आनन्दपूर्वक विचरण करते थे। निर्भयता से खेलते थे और ऋषिगण उनकी सेवा कर अपने को धन्य मानते थे। वे आश्रम कहाँ गए, जिनकी सीमा के भीतर आते ही हिंसक जीवों की दुर्वृत्तियाँ स्वतः नष्ट हो जाती थीं। क्या यह सब कवि का काव्य ही था? जीव फिर हिंसक हो गए। मनुष्य की हिंसक वृत्ति ने पशु-साम्राज्य में भी हिंसा-धर्म का प्रचार कर दिया। इस युग का विश्व अशान्ति, अविश्वास और आतङ्क में शासित है।

बन्दूक़ और तलवार पास है। इससे न सिंह आदि हिंसक जीव और न आततायी ही पास तक फटकते हैं। उसकी निर्भयता तलवार में है, आदमी के अन्तस्तल में निर्भयता नहीं है। परन्तु हिंसक से भी प्रेम करने में, उसके साथ-साथ विचरण करने में और उसके स्वभाव में सात्विकता उत्पन्न कर देने में जो शान्ति और निर्भयता है, वह शक्ति की प्रतिनिधि तलवार में नहीं हो सकती। हथियारबन्द हृदय निर्भय नहीं हो सकता। किन्तु एक अरण्यवासी मनुष्य निहत्था पशुओं में रहता है; घूमता रहता है। वहाँ उसे न कोई भय है और न अविश्वास है। ऋषियों के आश्रम भी तो जनशून्य, हिंसक जीवों से घिरे हुए, सुदूरवर्ती बनस्थलियों में थे। पर वहाँ प्रेम के साम्राज्य में भय को स्थान कहाँ?

ज्ञान बढ़ता जाता है। विश्व-बन्धुत्व और समानता का पाठ पढ़ाया जाता है। किन्तु मृग का शिकार अवश्य होना चाहिए। क्या इस युग का विश्व-भ्रातृत्व इतना घातक है? क्या हम इस उत्क्रान्ति को दानवी उत्क्रान्ति कह सकते हैं? इस सभ्यता-परिप्लावित परिष्कृत युग के ज्ञानी ही क्या घातक हैं? इस समृद्धिशाली युग के सभ्यों का मान्य सिद्धान्त यही प्रतीत होता है कि दुर्बल, सीधा और छोटा होना पाप है। इसलिए हे विश्व के सीधे-सादे, छोटे और दुर्बल जीवो, उस पाप के प्रायश्चित्त में अपने प्राणों से हाथ धो डालो! डार्विन का विकासवाद इसका साक्षी है। सभ्यता के विकाश से मनुष्य अधिक स्वार्थलिप्त, अधिक निर्दयी, अधिक अविश्वासी और अधिक भयङ्कर हो गया है। वञ्चक संसार ने घृणास्पद कुटिल चालों के द्वारा स्वार्थ-साधन का नाम पवित्र राजनीति दिया है।

हमारे सीधे-सादे प्राकृतिक जीवन व्यतीत करने वाले पूर्वज अर्द्ध-सभ्य और असभ्य जङ्गली थे, यद्यपि उनकी अस्थियों के ऊपर ही यह सभ्यता की रम्य इमारत खड़ी की गई है। डार्विन के बानरों में और उनमें कोई विशेष अन्तर नहीं था। सारे संसार को क्षण-स्थायी समझ कर वस्तुओं का परिग्रह करने वाले वास्तव में अपराधी थे। वृक्ष, पत्थर, मेघ और ऊषा इत्यादि का पूजन करने वाले सचमुच असभ्य थे। यदि पहिले के आदमी बहुत प्रबुद्ध और ज्ञानी थे, तो इस संसार ने और मनुष्य जाति ने इतने वर्षों के यत्न में क्या कुछ भी संग्रह नहीं किया?

हिंसक-वृत्ति वाली वासना को प्राणि-प्रेम और दया मत कहो। अविश्वासपूर्ण, घातक और आतङ्कपूर्ण परिस्थिति को सभ्य और निर्भय स्थिति मत कहो। निर्भय होने को हथियारबन्द हृदय की आवश्यकता नहीं। हथियारबन्द हृदय प्रेम और दया का सच्चा सौन्दर्य नहीं देख सकता।

योगी के शान्त योग की जड़ में भी एक अशान्त लिप्सा की भावना है। फिर हमें शान्ति की आवश्यकता नहीं, अशान्ति ही जीवन है। इच्छाशक्ति की वृद्धि होने दो, पर सात्विक तथा फल-वाञ्छा-रहित योगेश्वर-संस्थापित अशान्ति होने दो, जिस अशान्ति की तह में वास्तविक वैराग्य छुपा हुआ है। यदि सारा विश्व इस चिरन्तन तथ्य को क्रियात्मक रूप में हृदयङ्गम कर ले, तो घृणित युद्ध की कहाँ आवश्यकता है? यदि इच्छा-प्राप्ति के उपाय में युद्ध है और कपटपूर्ण भीतरी और बाहरी हिंसा है, तो भ्रातृत्व और दया की भेरी मत बजाओ। विश्व से यह मत छिपाओ कि तुम्हारी वासनाओं में भयङ्करता है और सभ्यता का अर्थ है स्वार्थ-वासना की वेदी पर चाहे जिसका बलिदान कर सकना और तब भी यही कहना कि हम स्वातन्त्र्य, समता और भ्रातृत्व के पक्षपाती हैं। तुम्हारी अभिलाषाओं में सचमुच भयङ्करता है। हृदयहीन खोखला विश्व-प्रेम इस युग की परिचायक भूमिका है। वहाँ उस सात्विक एकतानतामय स्पन्दन का अनुभव नहीं होता।

—बी० एल० सराफ़, बी० ए०, एल्-एल्० बी०,
एम० आर० ए० एस०

❀ ❀ ❀

परदा

मनुष्य चाहे कितना ही शक्तिशाली, साहसी या आत्माभिमानी क्यों न हो, समय का आक्रमण होने पर उसे सर झुकाना पड़ता है। समय के परिवतन से वर्तमान परिस्थिति में परिवर्तन होता है और परिस्थिति में परिवर्तन होने से लोगों के विचारों में परिवर्तन होता है; पुराने विचारों की जगह नवीन विचार पैदा होते हैं। एक समय था, जबकि भारतवर्ष में बौद्ध-धर्म का डङ्का बज रहा था और जैन-धर्म की ध्वजा फहरा रही थी। उस समय सनातन-धर्म अवनति पर था। पर थोड़े वर्षों बाद फिर समय ने पलटा खाया और परिणाम-स्वरूप सनातन-धर्म फिर हरा-भरा होकर लहलहाने लगा।

किसी दिन स्त्रियों का अपने पति की चिता पर जल कर भस्म हो जाना एक गौरव की वस्तु समझी जाती थी, परन्तु आज उसका नमूना भी देखने को नहीं मिलता। मतलब यह कि समय के परिवर्तन के साथ-साथ सब चीज़ों का स्वरूप भी बदल जाता है और अनावश्यक चीज़ों का अस्तित्व मिट जाता है।

शायद कोई समय ऐसा आया होगा, जब समाज को परदे की आवश्यकता का अनुभव हुआ होगा।

यह प्रथा कब से प्रचलित हुई, इस बात का निर्णय करना इस लेख का उद्देश्य नहीं। यदि यह मान भी लिया जाय कि यह प्रथा बहुत पुराने ज़माने से चालू है, तो भी यह मानना पड़ेगा कि उस समय इसका यह रूप न होगा, जो आज हमें दीखता है। क्योंकि प्राचीन ग्रन्थों में हमें कहीं भी घूँघट का उल्लेख नहीं मिलता। इस पक्ष के लोगों को भी इतना तो मानना ही पड़ेगा कि परदे का वर्तमान रूप मुसलमानी ज़माने से ही प्रचलित हुआ। मुसलमानों का शासन अत्याचारों से भरा हुआ था। हिन्दू-ललनाओं का सतीत्व आपत्ति में था। उनके लिए अकेली-दुकेली बाहर निकलना ख़तरनाक था। ऐसी हालत में उनकी धर्म-रक्षा का केवल यही उपाय हो सकता था कि वे घर की चहार-दीवारी के अन्दर बन्द रहें। बड़े घरों की स्त्रियों का तो घर में रहना भी निभ सकता था, पर छोटे लोगों के लिए यह बात कठिन थी। शायद इसी कारण उनके लिए यह रास्ता निकाला गया कि वे दो-चार इकट्ठी होकर और मुँह ढक कर निकल जाया करें।

मुसलमानी शासन की कुछ ही शताब्दियों में इस प्रथा की जड़ इतनी जम गई कि इसका उखड़ना कठिन हो गया। परन्तु अब युग बदल गया है। अब परदे में रहने की आवश्यकता नहीं। अब तो स्त्रियाँ शुद्ध वायु में निर्भीकतापूर्वक घूम सकती हैं। पर इस प्रथा ने इतना भयङ्कर रूप धारण कर लिया है कि एकाएक नहीं हट सकती। लोगों के विचारों में तो ज़ोरों के साथ परिवर्तन हो रहा है, पर अभी विचारों को व्यवहार-रूप लाना शुरू नहीं हुआ है। हमारे पुरुषों की मनोवृत्ति भी इतनी ख़राब हो गई है कि वे भी हमें परदे की चहारदिवारी के बाहर नहीं निकलने देना चाहते। परदे की ओट में घर के अन्दर भला-बुरा चाहे जो होता रहे, इससे उनकी इज़्ज़त में अन्तर नहीं पड़ता, पर हमारा प्राकृतिक ढङ्ग से बाहर निकलना उनकी इज़्ज़त को धूल में मिलाना है। शायद उन्हें इस बात का ख़याल नहीं है कि यह स्वतन्त्रता का युग है, गुलामी का नहीं। वह ज़माना जा चुका, जब स्त्रियाँ पुरुषों के इशारों पर नाचना ही अपना कर्त्तव्य समझती थीं।

परदे में रहने से हमारा शारीरिक, मानसिक और आत्मिक विकाश बिलकुल ही नहीं हो पाता। शारीरिक विकाश के लिए शुद्ध आबहवा तथा परिश्रम की आवश्यकता है। परदे में रहने से शुद्ध आबहवा तो नसीब ही नहीं होती। बड़े लोगों के यहाँ तो फिर भी बड़े घर वग़ैरह होने से तथा उन पर खुली छतें होने से कभी-कभी घूमने को मिल जाता है, पर छोटे घर वालों के लिए क्या साधन है? उनके लिए तो दस फ़ीट लम्बे और आठ फ़ीट चौड़े एक-दो कमरों में ही सारी दुनिया समा जाती है। कहीं-कहीं तो कुछ दिवस तक सूर्य भगवान के दर्शनों का भी सौभाग्य प्राप्त नहीं हो पाता। हमारी बहिनें ज़रा विचार करें कि ऐसी स्थिति में बीमारी को उनसे अच्छा शिकार और क्या मिल सकता है?

घूँघट की प्रथा तो और भी ज़्यादा ख़राब है। इस कारण से श्वास का आना-जाना भी आसानी से नहीं होता। मुँह की अशुद्ध हवा बाहर आती है, पर उसे निकलने की जगह न मिलने से फिर अन्दर चली जाती है। यह तन्दुरुस्ती के नियमों के अनुसार कहाँ तक ठीक है? यही कारण है कि हमारा चेहरा सुस्त और कान्तिहीन रहता है। चेहरों पर का प्राकृतिक तेज धीरे-धीरे निकल जाता है। शादी होते ही एकदम मुँह को ढकना शुरू कर देना कितना अस्वाभाविक है? यदि हम घूँघट के बन्धन से अलग रहें और सबेरे-शाम बिना किसी रोक-टोक के शुद्ध वायु में हमें घूमने को मिला करे, तो हमारा चेहरा प्राकृतिक तेज से पूर्ण रहे। चलने-फिरने का अभ्यास भी रहे, जिससे मौक़ा आने पर ४-५ मील चलने पर भी थकावट मालूम न हो। पर अभी तो हमें इतना भी अभ्यास नहीं कि ४-५ फ़र्लाङ्ग भी आसानी से चल सकें।

आत्मिक तथा मानसिक उन्नति के लिए शिक्षा की तथा विचारों की बदला-बदली की विशेष आवश्यकता है। पर परदे का रिवाज होने से १०-१२ वर्ष की अवस्था से ही घर में बन्द रहना पड़ता है। अतएव न तो अच्छी शिक्षा ही मिल सकती है और न विचारों की बदला-बदली ही हो सकती है। परदे का बन्धन इतना ज़बरदस्त है कि पुरुषों से मिल कर बातचीत करना तो दूर रहा, स्त्रियों से भी आवश्यकता पड़ने पर नहीं मिला जा सकता।

मनुष्य-समाज के दो अङ्ग हैं—एक पुरुष और दूसरा स्त्री। दोनों अङ्गों का विकाश समान होना चाहिए। पुरुष-अङ्ग अपनी उन्नति में ही सारे मनुष्य-समाज की

उन्नति भले ही मानता रहे, पर समाज की वास्तविक उन्नति दोनों अङ्गों की उन्नति पर ही निर्भर है। दोनों अङ्गों का महत्व समान है। एक अङ्ग के बिना दूसरा अङ्ग निर्जीव है। दोनों अङ्गों के समान सहयोग पर समाज की शान्ति निर्भर है। स्त्रियों के सहयोग से किसी कार्य में कितनी सफलता हो सकती है, इसका अन्दाज़ा हाल ही के देश की आज़ादी के आन्दोलन से लगाया जा सकता है।

परदे की चहारदीवारी के अन्दर रहने से और समाजों का तो हमें अनुभव नहीं, पर मारवाड़ी-समाज के विषय में हम कह सकती हैं कि इस समाज में परदे का ढङ्ग बड़ा अनोखा है। जिन लोगों से परदा करने की आवश्यकता है, उनसे तो व्यवहार करने में तनिक भी सङ्कोच नहीं, पर अपने घर के लोगों से कड़ा परदा किया जाता है। गोटा, कपड़ा, चूड़ी आदि सामान बेचने वाले अनजान राहगीर निस्सङ्कोच घर में प्रवेश कर सकते हैं। उनके लिए किसी तरह की बाधा नहीं, पर बाधा है अपने ससुर, जेठ आदि लोगों के लिए, जो पिता और भाई के बराबर हैं। बड़ी-बड़ी उम्र के नौकर घर में रक्खे जाते हैं, उनसे बोलने तथा हँसी-मज़ाक़ करने में लज्जा नहीं जाती, पर यदि छोटे देवर से बोला जाय तो बेशर्मी होती है। वैसे बातें करते हुए देवर, जेठ या ससुर बोली सुन लें, एक बच्चे को बीच में बैठा कर सब बातें सुनाती रहे, तो हानि नहीं; पर उनसे ख़ुद भी बोलने में शर्म का ख़ज़ाना ख़ाली हो जाता है। हमारे यहाँ एक विचित्र बात और भी है। स्त्रियों-स्त्रियों में भी घूँघट नहीं हटाया जाता और बहू अपनी सास, जेठानी या बाहर की बड़ी स्त्रियों से बोल भी नहीं सकती। कहीं-कहीं तो सारी उम्र भी पूरी हो जाती है। वास्तव में पूछा जाय तो हमारे मारवाड़ी-समाज ने 'लज्जा' शब्द की बड़ी ही मट्टी पलीद की है। लज्जा किसे कहते हैं, यह समझे बिना ही इसके नाम पर व्यर्थ का ढोंग रचा जाता है। ब्याह-शादियों या अन्य मौक़ों पर अपने सम्बन्धियों को भद्दी-भद्दी गालियाँ गाने में शर्म नहीं आती, पर लज्जा आती है, अपने सास, ससुर, जेठ, देवर या सम्बन्धियों से आदर का व्यवहार करने में। इस रिवाज के परिणाम-स्वरूप कभी-कभी पुरुषों को भी बड़ी भारी असुविधा होती है। उनकी समुचित सेवा नहीं हो सकती, अतिथियों का योग्य आदर नहीं हो सकता और यहाँ तक कि कभी-कभी तो उन्हें भूखे-प्यासे भी रह जाना पड़ता है। पर अफ़सोस है कि इतना कष्ट होते हुए भी हमारे वृद्ध पुरुषों के कानों पर इस बुराई को दूर करने के लिए जूँ तक नहीं रेंगती।

परदे के पक्षपाती अक्सर कहा करते हैं कि परदे में रहने से आचरण शुद्ध रहता है। पर जहाँ तक हमारा अपना ख़याल है, परदे की ओट में अधिक दुराचार होता है। परदे का और आचरण का कोई सम्बन्ध नहीं। आचरण का सम्बन्ध हृदय की पवित्रता से तथा शुद्ध और सात्विक भावनाओं से है। यदि हमारा मन निर्मल है, हमारी भावना सात्विक और पवित्र है, तो परदा न होने पर भी हम सदैव पवित्र ही रहेंगी। इसके विरुद्ध यदि भावना ही कलुषित है, तो लाख पर्दे में रहने पर भी आचरण शुद्ध नहीं रह सकता।

हम विश्वास के साथ कह सकती हैं कि परदा छोड़ने से लज्जा तथा शील की मात्रा में रत्ती भर भी अन्तर नहीं हो सकता। लज्जा और शील भारतीय ललना का स्वाभाविक आभूषण है। परदा तोड़ देने से यह आभूषण नहीं छीना जा सकता। घूँघट तो केवल ढोंग मात्र है, लज्जा तो आँखों में निवास करती है। स्त्री के शील का स्वाभाविक तेज उसके चेहरे पर चमकता रहता है, जिसके सामने दुष्ट लोगों को आँख उठाने की भी हिम्मत नहीं हो सकती।

परदे को छोड़े बिना हमारी वास्तविक उन्नति नहीं हो सकती। क्योंकि हमारी उन्नति के मार्ग में यह सबसे बड़ी बाधा है। यदि हमें आदर्श भारतीय महिलाएँ बनना है, तो सबसे पहले हमें परदे को छोड़ देना चाहिए। परदे में रह कर न तो हम संसार की गति को जान सकती हैं, न हम सच्ची और पूर्ण शिक्षा पा सकती हैं, न स्वास्थ्य की रक्षा कर सकती हैं, न कुटुम्बियों का आदर तथा अतिथियों का सत्कार कर सकती हैं और न अपनी सन्तानों को सुसङ्गठित बना कर अच्छे मार्ग पर लगा सकती हैं। बहिनो! यदि हमें अपनी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति करना है, यदि हमें अपनी खोई हुई शक्ति फिर से प्राप्त करना है, यदि हमें संसार का सच्चा अनुभव लेना है, तो सबसे पहले हमें परदे की नाशकारी प्रथा को छोड़ देना चाहिए। इसे छोड़े बिना हमारा विकाश होना असम्भव है।

—नजरकला भण्डारी

❀ ❀ ❀

स्त्री-शिक्षा में सुधार की आवश्यकता

पुरुषों की देखादेखी स्त्रियों में भी आधुनिक शिक्षा का ऐसा तूफ़ान उठा है कि जिस यूनिवर्सिटी के परीक्षा-परिणाम पर हम दृष्टि डालें, हमें बीसों एम० ए०, पचासों बी० ए० और सैकड़ों एफ़० ए० तथा मैट्रिक छात्राओं का नाम सफल छात्रों की सूची में मिलेगा। यह हवा जिस रफ़्तार से चल रही है, उसे देखते हुए यह तो मानना पड़ेगा कि कुछ ही दिनों में पुरुषों की तरह स्त्रियाँ भी ऐसी मिल सकेंगी, जो शिक्षिता और बाह्य संसार-क्षेत्र में पुरुष-समाज के कन्धे से कन्धा भिड़ा कर चलने वाली होंगी। मैं ज्योतिषी नहीं, परन्तु मुझे विश्वास है कि मेरा अनुमान सोलहो आना सच निकलेगा कि स्त्रियों की आगामी सन्तति हिन्दू-ललनाओं के दोषों (?) से सर्वथा रहित होंगी और उनकी कुरीतियों को दफ़नाने का कष्ट हमें नहीं करना पड़ेगा। यह सन्तति उन बालिकाओं की होगी, जो बीसवीं सदी में आधुनिक विदेशी शिक्षा-पद्धति के अनुसार अप-टु-डेट शिक्षिकाओं द्वारा शिक्षित हो रही हैं। फिर उनकी सन्तानों में दोष कैसे हो सकता है? अब तो समानता का युग है। स्त्री और पुरुष के अधिकार भी समान हैं? अब आप क्लबों में स्त्रियों के बिना न जा सकेंगे, फ़िल्मों का आनन्द स्त्री को घर में छोड़ कर नहीं उठा सकेंगे। यही नहीं, संसार के सब प्रकार के सुखों में स्त्रियों को सहयोगी बनाना पड़ेगा! अन्यथा इस मोटर के युग में यह छकड़ा नहीं चल सकेगा।

सच पूछो तो स्त्रियों की आश्चर्यजनक उन्नति ने पुरुष-समाज के हृदय में एक प्रकार के भय का सञ्चार कर दिया है। उनका सहस्रों वर्षों का गर्व स्त्री ने खेल में ही मिट्टी में मिला दिया है। उसे रोटी का टुकड़ा छिनने का भय है। यह सब कुछ है, पर मुझे उनसे कोई भय नहीं। मैं तो सिद्धान्त की दृष्टि से स्त्री-शिक्षा की विवेचना कर रहा हूँ। पाठिकाएँ बुरा न मानें, धैर्य से इन पंक्तियों को पढ़ें!

भारतवर्ष में जो यूनिवर्सिटी शिक्षा-पद्धति चल रही है, वह लॉर्ड मैकॉले के मस्तिष्क की उपज है। उसका उद्देश्य है ऐसे भारतीय पैदा करना, जो बाहर से भारतीय होते हुए भी भीतर से पूरे अङ्गरेज़ हों, उसके रक्त में अङ्गरेज़ी ग़ुलामी भरी हुई हो। अब तक बालकों की शिक्षा उस प्रणाली से होती थी। उन्हीं पर इसके गुण-दोष का प्रभाव पड़ता था। उसका फल हमें दिखाई पड़ रहा है। हज़ारों नवयुवक बी० ए०, एम० ए० की उपाधि प्राप्त करके भी नौकरियों के लिए दर-दर टक्कर मारते फिरते हैं। रोटी के सवाल ने उनकी सारी शिक्षा को बेकाम कर दिया है। चारों तरफ़ त्राहि-त्राहि मच रही है। प्रतिदिन भूख से क्षुब्ध युवकों के आत्म-हत्या के वृत्तान्तों से समाचार-पत्रों के कॉलम रँगे मिलते हैं? यह सब क्यों है? यह लम्बा प्रकरण है। हाँ, इसका सबसे मुख्य कारण यह है कि इनके उच्च शिक्षा प्राप्त करने का ध्येय केवल रोटी था। रोटी से मेरा अभिप्राय जीविका या नौकरी से है। जब यही उद्देश्य पूरा नहीं हुआ, तब निराशा के सिवा हो ही क्या सकता है। इस दृष्टि से नवयुवक किङ्कर्तव्य-विमूढ़ हो रहे हैं। यौवन के पहले तूफ़ान के बाद उनकी आँख खुलती है और वह सोचते हैं कि हम कितने पानी में हैं? भारतीय युवकों के सामने एक बड़ा प्रश्न है—हम क्या करें? कोई उसका हल बताने वाला नहीं।

यह तो हुई युवकों की बात। मैं यही प्रश्न उन युवतियों से करना चाहता हूँ, जिनमें अपने भविष्य पर विचार करने की सामर्थ्य है—"उनके जीवन का लक्ष्य क्या है?" अङ्गरेज़ी शिक्षा उन्हें फ़ैशन की कला का पण्डित चाहे बना दे, परन्तु उन्हें आदर्श गृहिणी नहीं बना सकती। उनमें सुरुचि और शालीनता चाहे पैदा कर दे, पर चौके और चूल्हे का प्रेम नहीं पैदा कर सकती। साहित्य और विज्ञानवेत्री चाहे बना दे, पर गृह-विज्ञान की शिक्षा नहीं दे सकती। यह क्यों? यह पूछने की आवश्यकता नहीं। कारण स्पष्ट है, स्त्रियों के जीवन का क्षेत्र है गृह; पर शिक्षा मिलती है विश्व-विद्यालय की। यही कारण है कि मुझे आजकल की उन नवयुवतियों से, जो स्कूल या कॉलेज में अपने जीवन के बहुमूल्य समय को व्यतीत कर रही हैं, पूछना है—"तुम किधर जा रही हो? तुम्हारे जीवन का लक्ष्य क्या है?"

इस विषय पर विशद विवेचन करने से पहले मैं अपनी स्थिति ज़रा स्पष्ट कर दूँ। मैं स्त्री-शिक्षा का

विरोधी नहीं, उसका घोर समर्थक हूँ। मैं चाहता हूँ, देश का बच्चा-बच्चा, वह बालक हो या बालिका, शिक्षित हो। स्त्रियों में, जिनमें उच्च शिक्षा प्राप्त करने की योग्यता है, उनके उच्च शिक्षा प्राप्त करने का मैं कट्टर समर्थक हूँ। हाँ, मेरी दृष्टि में यह आधुनिक शिक्षा-पद्धति सदोष है। इस पद्धति का विष पुरुषों के तो रग-रग में व्याप्त हो चुका है, परन्तु यदि इस देश की स्त्रियाँ भी इसी विष का प्याला पी गईं, तो भारतवर्ष की करोड़ों वर्ष की सभ्यता और संस्कृति का अन्त हो जायगा। अब तक भारतवर्ष की लज्जा स्त्रियों के हाथों में ही थी; वही यहाँ की संस्कृति की प्रतिनिधि थीं।

किन्तु यह तो इसका एक पहलू है। एक शिक्षा-शास्त्री के नाते यदि मैं इसके दूसरे पहलू पर विशुद्ध शिक्षा की दृष्टि से विचार करूँ, तब भी मैं इसी परिणाम पर पहुँचता हूँ। विद्वानों ने व्यक्तिगत सामाजिक उन्नति को शिक्षा का लक्षण माना है। जो शिक्षा हमारी वैयक्तिक उन्नति के साथ-साथ हमें समाज के उपयुक्त बनावे, वही सच्ची शिक्षा है। व्यक्तिगत उन्नति केवल अक्षर-ज्ञान की नहीं, वरन् सब प्रकार की शारीरिक, सामाजिक, मानसिक होनी चाहिए। साथ ही उसे हमें जीविकोपार्जन के योग्य भी बनाना चाहिए। जब हमारा पेट भरा होगा तभी हम समाज में बैठ सकेंगे और समाज की उन्नति के उपाय सोच सकेंगे।

अब हमें देखना चाहिए कि आधुनिक शिक्षा स्त्रियों को शिक्षा के इस सर्व-सम्मत आदर्श की ओर ले जाती है या नहीं। आजकल जो विषय उनको स्कूलों में पढ़ाए जाते हैं, उसमें उनकी शारीरिक उन्नति की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया जाता।

हाँ, मैशीन की तरह दिन-रात उनसे मेहनत कराई जाती है और संस्थाओं के सञ्चालक सौ फ़ीसदी नतीजे दिखा कर जनता को चकित करना चाहते हैं। इस प्रकार देश का धन और जनशक्ति का अपव्यय हो रहा है। आचार की ओर तो कोई आँख उठा कर भी नहीं देखता। सङ्कोच के मारे माता-पिता इस आवश्यक कर्त्तव्य की ओर ध्यान नहीं देते। माताएँ स्वयं अशिक्षिता हैं, उन्हें अपनी सन्तान पर हुकूमत करना ही आता है। रह गईं शिक्षिकाएँ, उन्हें पाठ्य-विषयों के पढ़ाने से फ़ुरसत कहाँ, जो सदाचार की शिक्षा के लिए कुछ मिनट भी दे सकें। फलतः उनकी एकदेशीय (केवल मानसिक) उन्नति होती है और वह भी अधूरी। परीक्षाओं का भय, परस्पर स्पर्धा का भाव उनके स्वास्थ्य में घुन का काम देता है। यही कारण है कि जो चेहरे गुलाब से चमकने चाहिए, वह हरदम मुरझाए रहते हैं। खाने-पीने और सोने की अव्यवस्था के कारण नाना प्रकार के रोग उन्हें यौवन से पूर्व ही आ दबाते हैं, जिससे उनका सारा जीवन ही दुःखमय हो जाता है। अनेकों बालिकाएँ परीक्षा के पहले (कभी-कभी बाद) इहलीला सम्वरण कर लेती हैं!

यह है इस शिक्षा का प्रभाव। इतनी मेहनत करने के बाद भी कोई फल नहीं। जिन विषयों को रटने में इस देश की भावी माताएँ अपना सर्वस्व स्वाहा कर देती हैं—अफ़सोस! वह शिक्षा उनके जीवन में कभी काम नहीं आती। स्त्री का जीवन केवल अख़बार पढ़ने, उपन्यास का पारायण करने और कभी-कभी गम्भीर पुस्तकें पढ़ने में समाप्त नहीं हो जाता। साधारण गृहस्थ की बात तो जाने दीजिए, बड़े-बड़े सम्पन्न परिवारों में भी स्त्री के कुछ और कर्त्तव्य हैं। यह ज़रूरी नहीं कि स्त्री सब काम स्वयं करे; पर सब कामों की निरीक्षिका तो वही है—इस विभाग का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व भी तो उसी पर है। यदि इसको भी जाने दें, तो स्त्री-जीवन का एक और भी लक्ष्य है। इससे बड़े से बड़े घर की स्त्री भी पीछा नहीं छुड़ा सकती। स्त्री का स्त्रीत्व ही सार्थक तभी होता है। वह है—स्त्री का मातृत्व। मैं बड़े अदब से पूछना चाहता हूँ—स्त्री के इस महान उत्तरदायित्व को समझने और उस विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिए इस प्रचलित शिक्षा-पद्धति में क्या विधान है?" यदि इसका उत्तर नहीं है, तो इस शिक्षा की निरर्थकता भी स्पष्ट है।

यदि स्त्री-शिक्षा की प्रचलित पद्धति को प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान हर्बर्ट स्पेन्सर की कसौटी पर कसें, तब भी यह खरी नहीं उतरती। न तो स्त्रियों को प्रत्यक्ष प्राण-रक्षा के लिए कुछ स्वास्थ्य या आरोग्य-सम्बन्धी पुस्तक पढ़ाई जाती हैं, जिससे यह किसी काम आ सके, न परोक्ष प्राणरक्षा अर्थात् जीविका ही का प्रश्न हल होता है। यद्यपि स्त्रियों के लिए नौकरी का प्रश्न अभी टेढ़ा नहीं पड़ा है, लेकिन अब वह दिन दूर नहीं, जब

उन्हें भी प्रत्येक दफ़्तर के दरवाज़े पर No Vacancy का साइनबोर्ड लगा मिलेगा। इस दिशा में पुरुषों की शिक्षा का इतिहास उनका मार्ग-प्रदर्शक हो सकता है। तीस-चालीस वर्ष पूर्व शिक्षित पुरुषों की भी ऐसी माँग थी। अङ्गरेज़ी की प्राइमर पढ़ कर भी लोग रेल के बाबू हो सकते थे, इन्ट्रेन्स पास करके भी हेडमास्टर बन सकते थे, मिडिल पास भी ऊँचे-ऊँचे पदों पर आसीन थे। वह समय ही ऐसा था। उस वक्त उनको ज़रूरत थी, अब इनको ज़रूरत है। यही हाल शिक्षिता महिलाओं का भी होगा। नौकरी के मैदान में वह पुरुषों की रोटी छीन सकें, यह सम्भव है। पर आख़िर प्रत्येक बात की हद होती है। आवश्यकताओं का भी अन्त हो ही जायगा। उस दिन मातृत्व का मस्तक लज्जा से अवनत हो जायगा, जब स्त्री रोटी के लिए दफ़्तरों का दरवाज़ा खटखटाएँगी। पर उत्तर मिलेगा—'स्थान नहीं है।'

पाठक-पाठिकाएँ यह न सोचें कि मैं व्यर्थ की कल्पना कर रहा हूँ। यह अवश्यम्भावी है। जो शिक्षा कृषक को कृषक न बना कर उसे एम० ए० बना देती है, जो डॉक्टर को डॉक्टर न बना कर वकील बना देती है, जो वैज्ञानिक को वैज्ञानिक न बना कर साहित्यशास्त्री बना देती है, उसका फल भी यही होता है। अब तो प्रत्येक नवयुवक या नवयुवती के अभिभावक को जागना चाहिए और रोज़मर्रा के झञ्झट से थोड़ा समय निकाल कर अपनी सन्तान के सार्वदेशिक विकास की ओर ध्यान देना चाहिए। उसे प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य रूप में देने के बाद पूछना चाहिए—"तुम्हें क्या बनना है? तुम्हारी रुचि किधर है?" बस उधर ही सन्तान को जाने दें। जो शिल्प का प्रेमी है, उस पर साहित्य का बोझा लादना अन्याय है? जो साहित्य का पण्डित होना चाहता है, उसे विज्ञान की शिक्षा देना भूल है? यही एक हल है, जो बालकों के लिए पेश किया जाता है—यही है, जो बालिकाओं की कठिनाई दूर कर सकता है।

रुचि पर ही इस समस्या का हल रक्खा गया है। इससे स्पष्ट है कि जो युवती उच्च शिक्षा में रुचि रखती है, वह बड़ी ख़ुशी से उधर जाय। परन्तु यह रुचि वास्तविक हो—देखा-देखी नहीं। यह ज़रूरी नहीं है कि यदि मेरी सहेली ने बी० ए० पास किया है, तो मैं भी बी० ए० पास करूँ। रुचि के साथ काम करने की क्षमता भी चाहिए। यह रुचि बीमार की भूख की तरह न हो—भूख हो तो सच्ची। इसी से स्त्री-शिक्षा की समस्या हल हो सकती है। इसी में भारतवर्ष की रमणियों की नाक रह सकती है। यूरोप की नक़ल में कुछ नहीं है। वहाँ के प्रवाह में बह कर, वहाँ की बीमारियों का शिकार भी बनना ही पड़ेगा। इसलिए अधिक सावधानता की आवश्यकता है। हाँ, स्त्री-शिक्षा-संस्था के सञ्चालकों को भी एक बार अपने करीकुलम का वाचन कर लेना चाहिए और पाठ्य विषयों में स्त्रियों के योग्य विषयों का समावेश अवश्य कर देना चाहिए।

मैं यह नहीं कहता कि उन्हें स्कूल में न पढ़ाया जाय। अवश्य पढ़ाया जाय, लेकिन अन्य विषयों के साथ कुछ काम की बातों की शिक्षा भी उन्हें दी जाय। युवतियों को गृहस्थ की प्रत्येक बात (चाहे वह छोटी से छोटी क्यों न हो) से पूर्णतया परिचित होना चाहिए। बड़े घर की बेटियों को भी घर के कामों की शिक्षा प्राप्त करने में व्यर्थ की शान को बाधक नहीं बनाना चाहिए। जैसे मनुष्य बीसियों भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करना चाहता है, चाहे उनका काम पड़े या न पड़े, इसी प्रकार युवतियाँ यदि गृह-विज्ञान में दक्ष होंगी, तो इसमें उनकी हानि ही क्या है? जिन्हें विवाह करना है और अपना सारा जीवन गृहस्थी में बिताना है, उनके जीवन से सम्बन्ध रखने वाली गृह-विज्ञान की शिक्षा ही है।

इसके अतिरिक्त शिशु-पालन और स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध की बहुत सी ऐसी बातें हैं, जिनका ज्ञान प्रत्येक स्त्री को होना चाहिए, जो माता बनना चाहती है। अब वह समय है, जब युवतियाँ लज्जा को छोड़ कर पत्नी के कर्त्तव्य, शिशु-पालन, गृहस्थ-धर्म सम्बन्धी शिक्षा को प्राप्त करें। अशिक्षित माताओं के हाथ में पड़ कर बच्चों की जो दशा होती है, वह हमने देख ली। अब तो भावी माताओं पर ही भारत की भावी सन्तति का भला या बुरा होना निर्भर है। परमात्मा नवयुवतियों को सुबुद्धि प्रदान करे, जिससे वह डिग्री प्राप्त करने की उच्चाकांक्षा छोड़ कर, गृहस्थ की डिग्री प्राप्त करें। साथ ही स्त्री-शिक्षा के सूत्रधारों के दृष्टिकोण में परिवर्तन हो, जिससे वह स्त्री-शिक्षा के इस महान आवश्यक अङ्ग की ओर अधिक ध्यान दे सकें। —जगदीशचन्द्र शास्त्री, काव्यतीर्थ

स्त्रियों की समस्या

स्त्री और पुरुष दोनों का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। एक की उत्पत्ति दूसरे पर निर्भर है। मानव-जीवन का अस्तित्व बिना स्त्री अथवा पुरुष के असम्भव है। स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध कभी माता-पुत्र रूप में, कभी पिता-पुत्री रूप में, कभी भाई-बहिन रूप में, कभी पति-पत्नी रूप में, कभी अन्य रूपों में बने ही रहते हैं। ऐसा कोई गल्प, उपन्यास, नाटक तथा काव्य नहीं, जिसमें स्त्री-पुरुष दोनों के चरित्र चित्रित नहीं किए गए हों। इनके बिना मानव-जीवन से सम्बन्ध रखने वाला कोई भी ग्रन्थ अस्वाभाविक और अधूरा समझा जाएगा।

संसार का शासन प्रायः पशु-बल से ही होता आया है और हो रहा है। सबल सदा निर्बल को दबा कर राज्य करना चाहते हैं। न्याय और धर्म तो केवल ढकोसले हैं। जहाँ अपने मतलब में ख़लल पड़ता है, वहाँ बड़े से बड़े न्यायी तथा धार्मिक न्याय की आड़ में अपनी स्वार्थ-सिद्धि को ही प्रधानता प्रदान करते हैं।

इसी स्वार्थ के वशीभूत हो पुरुष जाति अनादि-काल से स्त्रियों पर अत्याचार कर रही है। सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक अधिकारों की बातें जाने दीजिए, घरेलू व्यापार में भी उनकी कोई हस्ती नहीं। वे तो पुरुषों के इशारे पर काम करने वाली पुतलियाँ हैं। पुरुषों के आदेश भले हों या बुरे, उनके मुताबिक़ उन्हें चलना ही होगा। जब कभी बड़ी धारा-सभा में अथवा प्रान्तिक धारा-सभा में स्त्रियों के सुधार अथवा अधिकार की बातें उठती हैं, तो स्वार्थान्ध पुरुषवर्ग प्रस्ताव के उपस्थित करने वाले पर बिल्ली की तरह झपट पड़ता है। हिन्दू वेद, पुराण और स्मृतियों की दुहाई देते हैं, उनके श्लोक उद्धृत कर, गला फाड़ कर प्रस्ताव के विरुद्ध अपनी राय देते हैं। उन्हें यह नहीं मालूम कि इन धर्म-ग्रन्थों के रचयिता उन्हीं की तरह स्वार्थान्ध पुरुष ही थे।

स्त्रियों को सदा अशिक्षित रक्खा गया। उन्हें यह भी ज्ञान न होने दिया गया कि उनकी भलाई-बुराई किस बात में है। उन्हें यह भी ज्ञान नहीं कि उनको पुरुष के वश में रहना पड़ता है, जिससे वे, प्रयत्न करने पर, छुटकारा पा सकती हैं। उनको भोजन, कपड़ा इत्यादि जीवन की सम्पूर्ण आवश्यकताओं के लिए पुरुष के मुँह की ओर ही देखना पड़ता है। उनका जीवन पशु से किसी तरह भी अच्छा नहीं है। सन्तान और सुन्दर आभूषण के लिए जीवन भर हाय-हाय करना ही उनके जीवन का ध्येय है। यदि अभाग्यवश विधवा हो गईं, तो इन दोनों से भी हाथ धो लेना पड़ता है। ऋषि-मुनि आदि महान आत्माओं ने भी स्त्रियों के साथ न्याय नहीं किया। वेदों की आज्ञा है कि स्त्रियाँ वेदों का पठन-पाठन न करें। मनु जी का आदेश है कि वे कभी स्वतन्त्र न रहें। गोस्वामी तुलसीदास जी रामायण में लिखते हैं :—

> विधिहु न नारि हृदय गत जानी,
> सकल कपट अघ अवगुण खानी।
> नारि-स्वभाव सत्य कवि कहहीं,
> अवगुण आठ सदा उर रहहीं।
> साहस अनृत चपलता माया,
> भय अविवेक अशौच अदाया।

संसार में जितने पदार्थ हैं, वे गुण-अवगुणमय हैं, तब क्यों सारे अवगुण स्त्रियों में ही आ गए? जब सारे अव-गुण स्त्रियों में ही समा गए, तब पुरुषों को तो बिलकुल अवगुण-रहित ही होना चाहिए। क्या स्त्रियों में पुण्य का लवलेश नहीं? क्या परमेश्वर ने पुण्य-पुञ्ज का अधिकारी केवल पुरुषों को ही बनाया है? गुसाईं जी की शायद गुणमयी स्त्रियों से कभी भेंट ही नहीं हुई। जब सीता, अहिल्या, मन्दोदरी आदि स्त्री-रत्नों के उदाहरण उनके सामने उपस्थित थे, तब उन्हें ऐसा लिखना उपयुक्त नहीं था। स्त्रियों में असत्यता, भय, अविवेक, अशौच इत्यादि अवगुण के प्रधान कारण अशिक्षा, परदा-प्रथा और पर-वशता हैं।

स्त्रियों का जीवन जन्म से मृत्यु तक दुःख की एक करुण कहानी है। जब वे माता के गर्भ से भूमि पर गिरती हैं, माता-पिता माथा हाथ पकड़ कर मानों मातम मनाते हैं। कहीं-कहीं इन बच्चों को इस पृथ्वी पर आने के कुछ मिनटों अथवा घण्टों के बाद सूतिका-गृह में ही काल के गाल में पहुँचा दिया जाता है! क्या इन नन्हें बच्चे को मारने वाले राक्षस मनुष्य कहलाने के अधिकारी हैं? यह कर्म उन गण्यमान्य हिन्दुओं का है, जो अपने को वेद,

पुराण और शास्त्रों के अनुयायी मानते हैं ! हम लोगों ने लड़के और लड़कियों के भाग्य में अद्भुत विभिन्नता की सृष्टि की है। एक के जन्म पर मङ्गल-गान किया जाता है और दूसरे के जन्म पर मातम मनाया जाता है। लड़के वाले अपने को भाग्यवान समझते हैं, और लड़की वाले अभागे ! एक के सुखी जीवन के लिए देवी-देवता मनाए जाते हैं, दूसरे के शीघ्र अवसान के लिए प्रार्थना की जाती है। मानों स्त्री-रूप में जन्म लेना किसी भीषण पाप का फल हो।

भाग्यतः यदि लड़की सौरि-गृह से जीवित निकल आती है, तो भी उसका जीवन सुखी नहीं होता। पग-पग पर उसे विभिन्नता ज्ञात होती है। शिक्षा में विभिन्नता, लालन-पालन में विभिन्नता, असन-वसन इत्यादि में विभिन्नता। लड़की दूसरे के घर की चीज़ समझी जाती है। उससे न अपने वंश की वृद्धि होगी, न राज-कार्य चलेगा, न पितरों का श्राद्ध-तर्पण होगा, इत्यादि कारणों से लोग लड़कियों की तरफ़ अवहेलना की दृष्टि से देखते हैं। समय के प्रवाह में लड़की स्वयं युवती हो जाती है और माता-पिता उसे विवाह कर किसी के माथे मढ़ कर अपना पिण्ड छुड़ा लेते हैं। लड़कियों का विवाह कर देना माता-पिता उनके प्रति अपने कर्त्तव्य की इति समझते हैं।

यह विवाह का प्रश्न और भी जटिल है। यद्यपि माता-पिता की हार्दिक इच्छा अपनी लड़कियों को किसी अच्छे वर के साथ विवाह करने की रहती है, तथापि अधिकांश लोग अपने सुभीते का ही ध्यान रखते हैं। बच्चिओं और युवतियों को बूढ़ों से, परम सुन्दरी, कोमलाङ्गी शिक्षिता को कुरूप और गँवार से विवाह कर देना भी अनुचित नहीं समझा जाता है। गुसाईं तुलसीदास जी लिखते हैं :—

वृद्ध रोगवश जड़ धन हीना,
अन्ध बधिर क्रोधी अति दीना।
ऐसेहु पति कर किय अपमाना,
नारि पाव यमपुर दुख नाना॥

यदि युवती और युवक विवाह के समय स्वस्थ और अङ्ग-भङ्ग रहित हों और कुछ समय के बाद दुर्भाग्य-वश रोगी अथवा 'अन्ध-बधिर' हो जायँ, तो पति-पत्नी दोनों का परम कर्त्तव्य है कि प्रेमभाव से परस्पर की सेवा कर। किन्तु किसी सुन्दरी युवती स्त्री को बूढ़े अथवा रोगी या अन्धे या बहरे से विवाह कर दिया जाय, तो यह कदापि न्यायसङ्गत नहीं कि वह ऐसे पति की सेवा करे। बल्कि ऐसा पति तो शीघ्र त्याज्य है। क्या कोई स्वस्थ युवक किसी बूढ़ी अथवा रोगिनी—लँगड़ी-बहरी औरत से विवाह करने को तैयार होगा? पुरुष एक स्वस्थ सुन्दरी स्त्री के रहते हुए कई विवाह कर सकता है, किन्तु स्त्री एक पति के मर जाने पर भी दूसरा पति नहीं कर सकती! क्या यही न्याय की पराकाष्ठा और धर्म है? यदि पुरुषों को भी एक पत्नीव्रत की आज्ञा होती, तो पता लगता कि विधुर रह कर जीवन बिताना कितना कष्टकर है। विधवाएँ तो हिन्दुओं के विमल यश की कालिमा हैं। ये पुरुषों के नग्न स्वार्थ और अन्याय की ज्वलन्त उदाहरण हैं। उनकी सम्पूर्ण आशाएँ पति के शव के साथ भस्मसात् हो जाती हैं। उनका जीना-मरना बराबर है। उनके लिए संसार शून्य है।

यदि पति, सास, श्वसुर, ननद और पति के कुटुम्ब के अन्य व्यक्ति अच्छे रहे तो नववधू की कुशल है, नहीं तो श्वसुर का घर नरक से किसी अंश में भी कम नहीं। कुछ ही सौभाग्यशालिनी स्त्रियों का विवाहित जीवन सुखमय रहता है। किसी के पति रोगी, किसी के क्रोधी, किसी के नपुंसक, किसी के शराबी और किसी के वेश्याप्रेमी इत्यादि होते हैं। यदि स्त्री रोगी हो, तो पुरुष उसकी चिकित्सा का प्रयत्न इसलिए नहीं करता है कि एक के मर जाने से दूसरी नववधू मिलेगी। रुग्ना पत्नी के भरोसे न रह कर पुरुष अपनी काम-लिप्सा तृप्त करने के लिए दूसरा विवाह कर लेते हैं। परन्तु यदि पुरुष जन्म-रोगी हो तो उसकी पत्नी को उसी रुग्न-देवता का स्मरण-पूजन करके इस भवसागर को पार करना होगा। उसके लिए तो पुनर्विवाह का स्वप्न देखना भी महापाप है। उन स्त्रियों के दुर्भाग्य की तो कोई सीमा ही नहीं होती, जिनके पतिदेवता क्रोधी होते हैं। उनके लिए जूता-लात शुभाशीस है। जिनके पति शराबी हैं, उनकी क्या हालत होती है, वह भुक्तभोगिनी ही जानती हैं। घर में स्वस्थ-सुन्दरी स्त्रियों को छोड़ कर काम-लोलुप पुरुष वेश्याओं के यहाँ रात-दिन बिता दें, इसके लिए

कोई चूँ नहीं करता, किन्तु यदि स्त्री किसी सच्चरित्र पुरुष से भी दो-चार बातें कर ले, तो उसके ऊपर आपत्ति का पहाड़ टूट पड़ता है।

यह उन्नति का युग है। प्रत्येक देश, प्रत्येक जाति उन्नति की ओर बढ़ रही है। साम्राज्यवादी साम्यवादी हो रहे हैं। परतन्त्र देश स्वतन्त्र हो रहे हैं। जो पिछड़े हुए थे वे आगे बढ़ रहे हैं। फलतः स्त्रियों को भी अब आलस्य छोड़ना चाहिए और पुरुषों की ग़ुलामी से अपने को मुक्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। यद्यपि बड़े शहरों में रहने वाली कुछ गण्यमान्य महिलाओं ने महिला-सभा-समितियाँ क़ायम की हैं, तथापि उनसे साधारण स्त्री-समाज का कोई लाभ नहीं होता। इन समितियों का कार्य व्यापक रूप में होना चाहिए। उन्नत विचार के कुछ पुरुष हैं, जो स्त्रियों के सुधार से आन्तरिक सहानुभूति रखते हैं और प्रकट रूप से कुछ ठोस काम भी करते हैं; किन्तु ऐसे उदार हृदय परस्वार्थी पुरुषों की संख्या बहुत कम है। यदि स्त्रियाँ पुरुषों के अधिकार में रहती हैं, तो इसमें सारा दोष पुरुषों का ही नहीं है, स्त्रियाँ स्वयं भी इसके लिए दोषी हैं। एक पुरुष को घर के दस-बीस व्यक्तियों का भरण-पोषण करना पड़ता है, स्त्रियाँ इसमें तनिक भी आर्थिक सहायता नहीं करतीं। यदि स्त्रियाँ पुरुषों को अल्पांश में भी मदद कर सकतीं, तो पुरुषों की दृष्टि में उनका कहीं अधिक समादर रहता।

स्त्रियों को वर्तमान परवशता से विमुक्त होने के लिए दो प्रधान उपाय हैं—(१) शिक्षा और (२) आत्म-निर्भरता।

अधिकांश स्त्री-पुरुष स्त्री-शिक्षा का नाम सुन कर नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं। उनका कहना है कि स्त्रियों को पढ़ कर क्लर्क या डिपुटी नहीं बनना है, तो उनके पढ़ने की क्या आवश्यकता? उनको तो रसोई बनाना और कपड़ा सीना थोड़ा आ जाय, इतनी ही शिक्षा उनके लिए पर्याप्त है। स्त्रियों को पुरुषों की तरह शिक्षा की आवश्यकता नहीं है, यह परम्परागत धारणा उनमें दृढ़ हो गई है और उनको शिक्षा देने में बहुत बाधा पहुँचाती है। जिस तरह अन्धकार को दूर करने के लिए सूर्य का प्रकाश परम आवश्यक है, उसी तरह अज्ञानान्धकार को दूर करने के लिए ज्ञानरूप सूर्य-रश्मि की ज़रूरत है। जन्म के बाद पशु और मनुष्य का साधारण ज्ञान बराबर ही रहता है। केवल शिक्षा से ही मनुष्य मनुष्य बनता है।

स्त्रियों की शिक्षा से मेरा अभिप्राय केवल यही नहीं कि वे बी० ए०, एम० ए० पास कर क्लर्क अथवा किसी और पद को प्रतिष्ठित करें। जो तीक्ष्ण बुद्धि वाली लड़कियाँ हैं अथवा जो बुद्धि-वैभव में पुरुषों से टक्कर ले सकती हैं, उन्हें स्कूल और कॉलेज की शिक्षा देना परम उपयोगी सिद्ध होगा। इसके सिवा साधारण लड़कियों को प्रारम्भ में मातृभाषा का यथेष्ठ ज्ञान कराना चाहिए, जिससे आवश्यकता पड़ने पर वे सभा-समितियों में कुछ बोल सकें, दूसरे के वक्तव्य को समझ सकें और पत्र-पत्रिकाओं में छोटा-मोटा लेख लिख सकें। मातृभाषा का ज्ञान कराने के साथ-साथ ही सूत कातना, कपड़ा बुनना, कसीदा काढ़ना, बेल-बूटा बनाना, अनेकों प्रकार की भोजन-सामग्रियों का बनाना, बच्चों की सेवा-सुश्रूषा करना आदि गृह-विज्ञान की शिक्षाएँ दी जायँ। इतनी शिक्षा विवाह के पहले अवश्य हो जानी चाहिए। स्त्रियों को शिल्प सम्बन्धी ऐसी व्यवसायिक शिक्षा अवश्य मिलनी चाहिए, जिससे समय पड़ने पर घर में बैठे हुए कुछ पैसे उपार्जन कर सकें, जिससे उनका, उनके बच्चों अथवा पति का भी भरण-पोषण हो सके।

आत्म-निर्भरता—महिलाओं को प्रारम्भ से ही अपने पैर पर खड़ी होने की शिक्षा मिलनी चाहिए, जिससे समय पड़ने पर वे पति के अनाचारों से विमुक्त हो सकें। विवाह के समय अपने वर को अवश्य देख लें, उसके गुण-अवगुण को समझने का प्रयत्न करें। समय पर चूक कर पीछे पछताना मूर्खता है। जब तक अपनी इच्छा के मुताबिक़ घर-वर न मिले, अविवाहित रहने का प्रण करें। दुखी विवाहित जीवन से अविवाहित जीवन लाखों गुणा अच्छा है। अविवाहित जीवन व्यतीत करना असम्भव नहीं है। स्त्री-समाज की अहित करने वाली कट्टर-प्रथाओं का प्रतिकार और अवहेलना करें। उन अहितकारी प्रथाओं में कुछ सार नहीं है। यदि पति का आचार-व्यवहार विरुद्ध और दुखदायी हो, तो उसे समझा-बुझा कर उसे रास्ते पर लाने का प्रयत्न करें, नहीं तो उससे मुक्त होने का प्रयत्न करें।

—(डॉक्टर) रामचरित्र कुँवर

कहानी-कला

[श्री० रामनारायण 'यादवेन्दु', बी० ए०]

प्रभावान्वय

कथा-वस्तु में सामञ्जस्य का निर्वाह करने के लिए कार्यान्वय की विशेष आवश्यकता है। किन्तु यदि कहानी में एकता के सिद्धान्त (Principle of Unities) का पूर्ण रूपेण पालन किया जाय और उसमें एक स्थायी भाव भी निहित हो, तो भी प्रभाव की एकता के बिना कहानी सफल नहीं कही जा सकती। कहानी में प्रभावान्वय (Unity of Impression) उस प्रभाव की पूर्ण एकता का नाम है, जो पाठक-हृदय पर कहानी के सम्बन्ध में अङ्कित हो जाती है।

प्रभावान्वय के लिए सबसे उत्तम उपाय यह है कि कहानी का उद्देश्य (Motive) एकान्त हो तथा परिणाम की अभिव्यक्ति आरम्भ में न की जाय। परिणाम का कहानी के समस्त विकास पर प्रभाव पड़ना आवश्यक है। कहानी के तीन अङ्ग (वस्तु, पात्र एवं दृश्य) अत्यन्त प्रमुख हैं। प्रभावान्वय के सम्पादन के लिए इन अङ्गों में से केवल एक को ही प्रधानता देनी चाहिए। प्रसिद्ध कलाविद एड्गर एलेन पो (Edgar Allan Poe) ने प्रभावान्वय के महत्व के सम्बन्ध में जो शब्द कहे हैं, वे विशेष विचारणीय और उपयोगी हैं। उसका कथन है :—

A skilful literary artist has constructed a tale. If wise, he will not fashion his thoughts to accomodate his incidents; but having conceived with deliberate care a certain unique or single effect, to be wrought out, he then invents such incidents—he then combines such events as may best aid him in establishing this preconceived effect. If his very initial sentence tend not to the outbringing of this effect, then he has failed in his first step. In the whole composition there should be no word written, of which the tendency, direct or indirect, is not to the one pre-established design. And by such means, with such care and skill a picture is at length painted which leaves in the mind of him who contemplates it with a kindred art, a sense of the fullest satisfaction. The idea of the tale has been unblemished, because undisturbed.

इसका संक्षिप्त भावार्थ यह है, साहित्यिक कलाविद् अपनी कहानी की घटनाओं की सजावट में ही अपने विचारों और भावों का उपयोग नहीं करता। पहले वह एक अनुपम भाव या प्रभाव की योजना करता है। तदुपरान्त उस भाव या प्रभाव की सौन्दर्यपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए घटनाओं का सहारा लेता है। कलाकार का प्रत्येक शब्द एवं वाक्य, प्रत्यक्ष या परोक्ष में, उस पूर्व-प्रतिष्ठित भाव और प्रभाव के अनुकूल होना चाहिए।

कहानी का शीर्षक

आजकल जिस प्रकार वाणिज्य-व्यवसाय के लिए विज्ञापन-कला एक उपयोगी साधन है, उसी प्रकार साहित्य-क्षेत्र में कहानी के लिए उत्कृष्ट और आकर्षक शीर्षक भी आवश्यक है। पाठक शीर्षक को देख कर यह निर्णय करता है कि कहानी पठनीय है या अपठनीय; उत्कृष्ट है या निकृष्ट। परन्तु, व्यवहार-जगत में, यह देखने में आता है कि कभी-कभी विज्ञापन जितना मनोहर और आकर्षक होता है, उतनी वह वस्तु नहीं होती,

जिसका विज्ञापन किया जाता है। साहित्य-क्षेत्र में भी इस प्रकार की हेय पद्धति का अनुकरण आरम्भ हो गया है।

कहानी के शीर्षक में निम्न-लिखित [illegible] विशिष्टताओं का समावेश होना चाहिए। शीर्षक उपयुक्त, विशिष्ट, आकर्षक, सुन्दर, नव्य और छोटा होना चाहिए।

१—उपयुक्तता

यह शीर्षक की सर्व-प्रथम विशेषता है। इसका भाव यह है कि कहानी के विषय एवं भावना के अनुकूल ही उसका नामकरण किया जाय। जब शीर्षक कहानी के विषय से सम्पर्क नहीं रखता, तब वह पाठक की अरुचि का कारण बनने के साथ ही कहानी के सौन्दर्य को विनष्ट कर देता है। निष्कर्ष यह है कि शीर्षक को पढ़ कर पाठक कहानी के प्रति जिस भावना की प्रतिष्ठा करता है, वह कहानी पढ़ने के उपरान्त मिथ्या (असत्) सिद्ध हो जाती है।

यथा—यदि किसी कहानी का शीर्षक सत्याग्रह है, तो उसके विषय का सत्याग्रह-आन्दोलन से अवश्य ही सम्पर्क होना चाहिए। क्योंकि लोक-भावना उसमें महात्मा गाँधी के आन्दोलन की झलक देखना चाहती है।

२—विशिष्टता

शीर्षक का दूसरा गुण विशिष्टता है। इसका तात्पर्य यह है कि शीर्षक सामान्य न होना चाहिए। उसमें किसी न किसी प्रकार की विशेषता का सन्निवेश अपेक्षित है। श्री० चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार ने अपनी एक कहानी का नाम 'गोरा' रक्खा है। वैसे 'गोरा' शब्द का बड़ा सामान्य अर्थ लगता है; परन्तु इसका प्रयोग जिस तात्पर्य से यहाँ किया गया है, उससे इसमें विशिष्टता आ गई है। 'गोरा' किसी मानव-पात्र का नाम नहीं है। इस कहानी में एक पात्र 'बैल' है। वह बड़ा हट्टा-कट्टा और सङ्गमरमर जैसा धवल, गौर वर्ण है। बस इसीलिए कहानी का नाम 'गोरा' रक्खा गया है।

३—चित्ताकर्षण

यह उत्कृष्ट शीर्षक की तीसरी विशेषता है। इस गुण के बिना कहानी लोक-प्रिय नहीं बन सकती। हिन्दी कहानियों में इस विषय में सुधार की अति आवश्यकता है। उत्कृष्ट और कलापूर्ण कहानियों के शीर्षक कभी-कभी बड़े [illegible] शुष्क और सामान्य रक्खे जाते हैं। 'असमान समाज' शीर्षक में आकर्षण का अभाव है। 'कानों का कँगना' शीर्षक बड़ा आकर्षक है। पाठक का मन बरबस इसे पढ़ने के लिए लग जाता है। अङ्गरेज़ी में एक कहानी है, जिसका नाम है 'Three Sundays in a week' (एक सप्ताह में तीन रविवार)। यह शीर्षक अपनी आकर्षकता में बड़ा अनूठा है। हिन्दी में भी ऐसे ही आकर्षक शीर्षकों की सृष्टि होनी चाहिए।

४—नवीनता और सूक्ष्मता

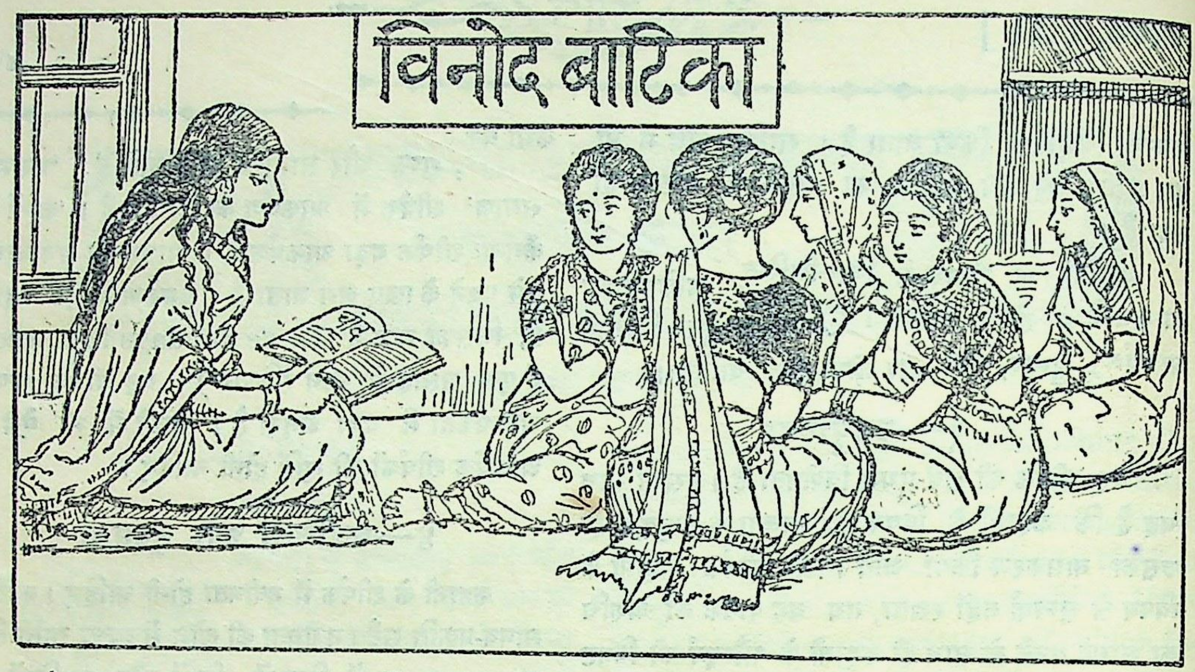
कहानी के शीर्षक में नवीनता होनी चाहिए। क्योंकि मानव-प्रकृति सदैव नवीनता की खोज में व्यस्त रहती है। वह नए-नए दृश्यों, विचारों, चित्रों और पद्धतियों को अपनाने में बड़ी तत्पर रहती है। यही कारण है कि संसार में नवीनता का जैसा स्वागत होता है, वैसा प्राचीनता का नहीं होता। इस सम्बन्ध में अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि विशिष्टता के साथ नवीनता का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है? सूक्ष्मता (Shortness) का गुण सौन्दर्यपूर्ण होने के साथ ही कहानी के लिए बड़ा उपयुक्त है। 'हार', 'आकाश दीप', 'पगली', 'गोरा' इत्यादि शीर्षक सुन्दर होने के साथ ही भावपूर्ण और नवीन हैं। हिन्दी में हमने एक कहानी का शीर्षक बड़ा असाधारण देखा है। वह है—'दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी'। इस शीर्षक में सबसे अन्तिम विशिष्टता का अभाव होते हुए भी, यह विशिष्टतापूर्ण है।

अब हम संक्षेप में, शीर्षकों के प्रकार पर विचार कर लेना चाहते हैं।

(१) कुछ शीर्षक ऐसे होते हैं, जो काल्पनिकता व्यक्त करते हैं। उनके अवलोकन से ऐसा आभास होता है कि कहानी का विषय कल्पना-लोक की घटना पर निर्भर है। यथा :—श्री० जयशङ्कर 'प्रसाद' की 'स्वर्ग के खण्डहर' में।

(२) कुछ शीर्षक कहानी के प्रधान-भाव या रस के आधार पर होते हैं। कहानी के प्रधान भाव या रस से ही उनकी रचना की जाती है। यथा :—पण्डित बेचन पाण्डेय 'उग्र' की 'बुढ़ापा'।

(शेष मैटर ४७३ पृष्ठ के पहले कॉलम के नीचे देखिए)



[मुन्शी कन्हैयालाल, एम० ए०, एल्-एल० बी०]

मगदूम लाला पर वारण्ट

मगदूम लाला स्वभाव के सीधे आदमी थे। उनसे कोई भी प्रेम से बोल कर जो चाहे करा ले। उनके भाई रहसबिहारी बाबू ने जब उन्हें ह्वीलर कम्पनी में नौकर रखा दिया और वे एक 'बुकस्टॉल' पर किताबें और समाचार-पत्र बेचने लगे, तो लोग उन्हें खूब ठग ले जाते थे। कोई आकर उनसे शराब की बातें करने लगता, बस वे मस्त हो जाते और अगर वह आदमी एक-दो किताबें 'पढ़ कर वापस कर देने' का वादा करके ले जाता तो फिर मगदूम लाला उससे वे पुस्तकें माँगने का विचार ही छोड़ देते थे।

साल भर पर जब लाला ने बुकस्टॉल का हिसाब दिया, तो २००) की कमी हुई। रहसबिहारी बाबू ने वे रुपए अपने पास से दे दिए और यही मुनासिब समझा कि मगदूम जी नौकरी छोड़ कर दौलतख़ाने की ही रौनक़ बढ़ाएँ।

अभी लाला जी को नौकरी छोड़े कुछ ही दिन हुए थे कि इलाहाबाद में पहली बार प्लेग फैला। हज़ारों आदमी शहर छोड़ कर दूसरी जगहों में चले गए। रहसबिहारी बाबू भी बाल-बच्चों को लेकर कानपुर चले गए और घर की देख-भाल के लिए मगदूम लाला को यहीं छोड़ दिया।

प्लेग से डर कर मुहल्ले के हज़ारों आदमी भाग चुके थे। मुहल्ला बहुत कुछ ख़ाली हो गया था। बस मगदूम लाला की तरह दस-पाँच आदमी बच गए थे। वे रोज़ शाम को मगदूम लाला के यहाँ आकर बैठ जाते और कुछ देर तक तरह-तरह की बहसें हुआ करतीं।

मगदूम लाला भगवती के उपासक थे और उनके पड़ोसी लल्लामल शिवजी के। इसलिए अक्सर बहस का विषय शराब और भङ्ग ही रहती थी। एक दिन मगदूम लाला की शराब की बोतल को देख कर लल्लामल ने उसे 'क़ारूरे की शीशी' कह दिया।

शराब की बोतल की इतनी कड़ी निन्दा मगदूम लाला के लिए असह्य हो गई। उन्होंने ज़ोर से चिल्ला कर कहा—नालायक़! उल्लू! पाजी! शर्म कर शर्म! देवी का प्रसाद रखने की चीज़ की इस तरह हँसी उड़ाता है। कमबख़्त, तू अन्धा हो जायगा।

लल्लामल ने जब देवी के प्रसाद का नाम सुना तो अपनी ग़लती मान ली और चुप हो गए। परन्तु सम्भूचा (शम्भु चाचा) भला ऐसे अवसर से कब चूकने वाले थे। उन्होंने धीरे से लल्लामल के कान में कुछ कह दिया। लल्लामल कड़क कर बोले—तो क्या मैं इनसे डरता हूँ?

"मगदूम लाला का क्रोध बड़ा भयानक होता है!" सम्भूचा ने मगदूम लाला की ओर देख कर कहा।

यह सुनते ही मगदूम लाला तो सचमुच एकदम जामे से बाहर हो गए और चिल्ला कर बोले—चोरी

और सीनाज़ोरी ! देवी का प्रसाद रखने की चीज़ को 'क़ारूरे की शीशी' कह दिया और तिस पर यह शोख़ी कि 'मैं क्या इनसे डरता हूँ !'

"फिर क्या कहता ?"—कुछ तेज़ होकर लल्लामल ने पूछा ।

"बस, क़ारूरा ही कहना तुझे आता था ?"—मगदूम लाला ने और बिगड़ कर कहा—"अरे ! कहना ही था तो शर्बते-नीलोफ़र कह देता या अर्क़-बादियान कह देता । बेवक़ूफ़ कहीं का, तुझे शर्म नहीं आती ?"

"शर्बते-नीलोफ़र और अर्क़-बादियान क्या ?"—सम्भूचा ने मुस्कराते हुए पूछा ।

"शर्बते-नीलोफ़र तपेदिक़ में दिया जाता है और अर्क़-बादियान हैज़े में ।"—लाला जी ने उन्हें समझाया ।

"और यह तुम्हारी शराब किस मर्ज़ की दवा है ?"—लल्लामल ने व्यंग्य की हँसी के साथ पूछा ।

"फिर शरारत ! अच्छा ठहर ।"—मगदूम लाला ने आस्तीन चढ़ाते-चढ़ाते कहा ।

बस, फिर क्या था । लल्लामल ने भी उठ कर दालान का एक खम्भा थाम लिया और ऐसा मालूम होता था

(४७१वें पृष्ठ का शेषांश)

(३) कहानियों के शीर्षक प्रधान पात्रों के नाम पर भी रक्खे जाते हैं । यथा :—'डोरा', 'चूड़ीवाली', 'पानवाली', इत्यादि ।

(४) कुछ शीर्षकों की रचना प्रधान घटना के आधार पर की जाती है । यथा—'अग्नि-समाधि' ।

(५) कभी-कभी शीर्षक कहानी की मुख्य वस्तु या दृश्य का सूचक होता है। यथा—'आकाश-दीप', 'हार' ।

(६) स्थान-सूचक शीर्षक भी होते हैं। परन्तु इनका प्रयोग अति न्यून होता है ; यथा :—'हिमाचल पर' ।

शीर्षक किसी उद्देश्य का सूचक अवश्य हो, यद्यपि प्रच्छन्न रूप में हो । जो शीर्षक पाठक के मन को भ्रम में डालने वाले होते हैं, वे दूषित समझे जाने चाहिए ; क्योंकि वे पाठक की एक प्रकार की उत्सुकता को जागरित करके उसे दूसरी ओर ले जाते हैं और पाठक को उस कहानी की सम्वेदना से विरत करते हैं ।

❀ ❀ ❀

कि उसी को उखाड़ कर वह मगदूम लाला को मारेंगे । मगदूम लाला को सम्भूचा ने पकड़ लिया । मगर वे चिल्ला रहे थे—छोड़ दो सम्भू ! छोड़ दो यार ! आज मैं इसकी खोपड़ी का कचूमर काढ़ कर ही दम लूँगा ।

"फाँसी हो जायगी !"—सम्भूचा ने समझाया ।

"परवा नहीं, हो जाने दो । बस, तुम हट जाओ बीच में से ।" मगदूम लाला हाथ छुड़ाने की चेष्टा करते हुए कहने लगे ।

इधर लल्लामल ने भी और कस कर खम्भे को थाम लिया और बोले—छोड़ दो इसे सम्भू ! यह अपने को बड़ा बहादुर लगाता है । देखूँ तो यह मेरी खोपड़ी का कचूमर कैसे निकालता है ?

"तुम्हारी खोपड़ी का कचूमर तो ऐसे काढूँ, जैसे कैथ फोड़ कर चटनी के लिए उसका गूदा निकाला जाता है !"—मगदूम लाला ने उसी ज़ोर से कहा ।

"बस ! बस ! अब ज़बान सँभाल लो ! देखो सम्भू, मैं अपने को कितना सँभाले हुए हूँ ?"—लल्लामल ने खम्भा थामे हुए कहा—"मेरी खोपड़ी के साथ कैथ की तुलना बिल्कुल ग़लत है ! कहाँ मेरी इतनी बड़ी खोपड़ी और कहाँ कैथ !"

"क्यों ?"—सम्भूचा और मगदूम लाला, दोनों ने एक साथ ही पूछा ।

"बताऊँ ?"

"हाँ-हाँ, बताओ ।"

"तो सुनो, एक दिन मैं हज़ारी के खेत में कैथ के पेड़ तले बैठा ताश खेल रहा था कि ऊपर से एक कैथ गिरा और मेरी खोपड़ी से टकरा कर दो टुकड़े हो गया ।" लल्लामल ने बात की धुन में खम्भे को छोड़ दिया और कुछ पास आकर कहने लगे—"बस मगदूम भाई, मैं तो यह लीला देख कर अवाक् रह गया और हज़ारी भी मुह बाकर टुकुर-टुकुर ताकता रह गया ।"

ऐसी आश्चर्यजनक घटना का हाल सुन कर भला कौन ऐसा कठोर हृदय है, जो न पसीज जाता । मगदूम लाला भी भूल गए कि अभी-अभी उनसे और लल्लामल से लड़ाई हो रही थी । वे दौड़ कर लल्लामल की सजीव लोथ को उठाने का निष्फल प्रयत्न करने लगे, शायद गले लगाने की इच्छा से । सम्भूचा भी लल्लामल की खोपड़ी को थपकियाँ देकर उसकी मज़बूती की प्रशंसा

करने लगे। लल्लामल का क्या पूछना था। मारे खुशी के 'वाह रे मैं और वाह रे मेरी खोपड़ी' चिल्लाने लगे।

अभी यह चहल-पहल चल ही रही थी कि इतने में बड़े लाला आ पहुँचे। ये प्लेग-ऑफ़िसर नियुक्त हुए थे। उन्होंने मगदूम लाला से अपने घर को Disinfect (सफ़ाई) कराने को कहा। बस, फिर क्या था, दूसरी बहस छिड़ गई।

"अजी, ऐसा करना भी नहीं !"—लल्लामल ने कहा।

"मेरी भी हिम्मत नहीं पड़ती !"—सम्भूचा ने समर्थन किया।

"भई, इसमें हर्ज ही क्या है ?"—बड़े लाला ने पूछा।

"अजी, यह मत पूछो !"—लल्लामल ने गम्भीरता से कहा।

"आख़िर सुनूँ भी तो !"

"लाला, अब तुम सरकारी नौकर हो। तुमसे कुछ कह कर अपनी जान आफ़त में कौन फँसाए ?"

"भाई, अपने मन की बात मुझसे कहो तब तो मैं भी जानूँ कि बात क्या है ?"

"बात यह है"—लल्लामल ने अपने चारों ओर देख कर कहा—"भाई, मैं सुनी कहता हूँ—झूँठ क्यों बोलूँ, मेरी आँख की देखी तो है नहीं—मैंने यही सुना है कि जो तुम लोग घर धुलाते हो, इसी से प्लेग फैलता है और × × ×"

"नहीं भाई, बात यह है"—सम्भूचा ने कहा—"इस साल कुम्भ में लाट साहब आए थे और उन्होंने गङ्गा किनारे बड़ी भीड़ देखी तो कहा—'अभी हिन्दुस्तान में इतने आदमी हैं ?' यह कह कर उन्होंने प्लेग की पुड़िया भीड़ पर छोड़ दी।"

"यह बात नहीं है"—बात काट कर मगदूम लाला ने कहा—"यह सब माई का कोप है !"

"तुम क्या जानों लाला ?"—लल्लामल बोले।

"तुम क्या जानों लल्ला ?"

ग़र्ज़ कि मगदूम लाला और लल्लामल की थमी-थमाई लड़ाई फिर भड़क उठी और उसी गुस्से में मगदूम लाला ने अपने मकान को धुलवाने की भी आज्ञा दे दी।

❀ ❀ ❀

इस घटना के दो-चार दिन बाद ही मानिक बाबू की एक बत्तख़ मर गई। उन्होंने मगदूम लाला को 'पिलाने' का वादा करके बत्तख़ को यमुना में फेंक आने को राज़ी कर लिया। लाला अभी फाटक से निकले ही थे कि लल्लामल से मुलाक़ात हो गई। उन्होंने छेड़ते हुए कहा—क्यों जी, बत्तकी माई को मार डाला ?

मगदूम लाला भी तो आख़िर थे मनुष्य ही, ऐसी अपमानजनक बात कैसे बर्दाश्त कर जाते, और फिर लल्लामल जैसे आदमी की बात ? उन्होंने झल्ला कर कहा—मारा तो है, तुम्हारे बाप का क्या ?

लल्लामल ने उन्हें चिढ़ाते हुए कहा—मुझे क्या करना है, आज तुमने बत्तकी माई को मारा है, कल तुम अपनी कपिला गाय को मार डालोगे !

'गाय मारना !' लल्लामल की यह बात उन्हें बुरी तरह खल गई।

"चुप बेवक़ूफ़ !"—ज़ोर से चिल्ला कर मगदूम लाला ने लल्लामल को डाँटा।

"सच कहे और पड़ोस में न रहे !"—लल्लामल ने फिर उसी व्यंग्य-भरी आवाज़ में कहा—"बत्तकी माई के बाद अब कपिला ही का तो नम्बर है !"

मगदूम लाला को अब इतना ग़ुस्सा चढ़ गया था कि उनके मुँह से शब्दों ने निकलने से जवाब दे दिया। उन्होंने झट बत्तख़ को ज़मीन पर फेंका और पास ही पड़ी हुई एक लम्बी-सी लकड़ी उठा कर लल्लामल को दौड़ा लिया।

लल्लामल को थोड़ी दूर दौड़ाने पर अन्त में मगदूम लाला बुरी तरह थक गए। उनकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। सामने एक गधा चर रहा था। लाला ने उसी को लल्लामल समझ कर लकड़ी उसकी पीठ पर जमा दी। इधर अचानक मार पड़ी तो गधे ने भी ज़ोर से दुलत्ती झाड़ी, जो लाला की खोपड़ी पर जा लगी और बेचारे मूँड़ थाम कर बैठ गए।

इधर लल्लामल जो भागे तो अन्त में सम्भूचा के द्वार पर ही जाकर साँस ली और हाँफते हुए बोले—सम्भूचा ! सम्भूचा !

सम्भूचा ने सिर उठा कर लल्लामल को इतना घबड़ाया हुआ देख कर पूछा—क्यों ? क्या बात है ?

"मैं सती होने जाता हूँ !"

"क्यों भाई, मामला क्या है ?"

"बस, आज अपना बिस्तरा यहीं लाता हूँ और तुम्हारे चबूतरे पर बिछा कर उसमें आग लगा कर सती हो जाऊँगा! मगदूम लाला पागल हो गया है। बत्तख़ी माई को मार कर अब मुझे मारने को लट्ठ लिए आ रहा है। बस, अब मैं सती हो जाऊँगा और साले को फाँसी दिलवाऊँगा।"

अन्त में सम्भूचा ने समझाया कि सती तो केवल स्त्रियाँ ही हो सकती हैं। पुरुषों को यह अधिकार नहीं। इसलिए अगर सती होना है तो पहले पुरुष से स्त्री बनो।

"पुरुष से स्त्री ? यह तो नहीं होने का।"

"तो फिर तुम सती भी नहीं होने के।"

❀ ❀ ❀

सम्भूचा मज़ाक़-पसन्द आदमी थे। वे फ़ौरन मगदूम लाला के घर चले। रास्ते में एक सिपाही मिल गया। उसे चार आने पैसे दिए और धीरे से कुछ समझा-बुझा कर उसे मगदूम लाला के घर आने को कह दिया।

मगदूम लाला का गुस्सा उतर गया था। वे सोच रहे थे कि लकड़ी का भरपूर हाथ खाकर लल्ला अवश्य ही पञ्चतत्व को प्राप्त हो गया होगा। बड़ी मुश्किल हुई। कमबख़्त मरी हुई बत्तख़ ने सारा गुड़ गोबर कर दिया। न वह मरती और न यह झगड़ा खड़ा होता।

"ग़ज़ब हो गया मगदूम।"—सम्भूचा ने पहुँचते ही कहा।

"मैं जानता था सम्भूचा, शुदनी सब कराती है।" रुआँसा होकर मगदूम लाला ने कहा—"ख़ैर, मैं तो चला फाँसी पर। अब कहा-सुना माफ़ करना और तुम भी अब भले आदमियों की तरह रहना, अच्छा!"

"भाई, तुम्हारा गुस्सा भी बड़ा ख़राब है"—सम्भूचा ने कहा—"आख़िर उसकी × × ×"

"तो अब क्या होगा ?"—लाला घबरा कर बीच ही में बोल उठे।

"पकड़े जाओगे!"

"हाय बाप रे!—सम्भूचा! घर देखना और भइया × × ×"

अभी उनकी बात ख़तम भी नहीं होने पाई थी कि बाहर से किसी ने पुकारा—मगदूम लाला हैं।

"बस आ गए मुझे पकड़ने!"—डरते हुए मगदूम लाला ने कहा।

"कोई डर की बात नहीं हैं, मैं तुम्हारी ज़मानत कर दूँगा!"—धैर्य देते हुए सम्भूचा ने कहा।

"देखो, सुनो, मैं पाख़ाने में जाकर छिप जाता हूँ। पुलीस हो तो कह देना कि मैं घर में नहीं हूँ, दूसरा हो तो मुझे बुला × × ×"

"मगदूम लाला हैं? वारण्ट है।"

"बाप रे!"—कह कर मगदूम लाला ने पाख़ाने में जाकर शरण ली।

"कौन है? यहाँ आओ!"—सम्भूचा ने कहा।

सिपाही अन्दर आ गया।

"क्या है?"—सम्भूचा ने मुस्कुराते हुए पूछा।

"वारण्ट है।"

"किसके नाम?"

"मगदूम लाला के नाम!"

"वह तो यहाँ नहीं हैं!"

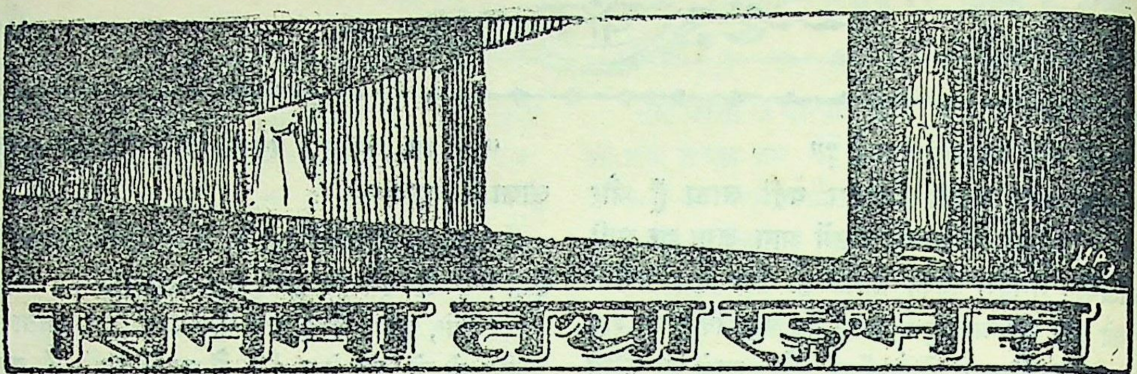
"अच्छा तो मैं फिर आऊँगा!"

"फिर क्यों आइएगा?"—लाला ने ज़नाने स्वर में भीतर से कहा—"आप घर देख लीजिए। आइए, सब जगह देख लीजिए! पाख़ाना भी देख लीजिए!"

लाला की बातें सुन कर सम्भूचा और सिपाही ने बड़ी मुश्किल से अपनी हँसी रोकी। ख़ैर, सिपाही मगदूम लाला को बिना पकड़े ही चला गया।

उसके चले जाने पर मगदूम लाला पाख़ाने से निकले और सम्भूचा की राय से उसी रात को एक इक्के में पर्दा डाल कर और ज़नाने कपड़े पहन कर कानपूर पहुँचे। रहसबिहारी बाबू ने उनके इस तरह आने का कारण पूछा, तो सारा क़िस्सा सुना दिया।

रहसबिहारी ने सारा हाल सुना तो समझ गए कि सम्भू ने इसे बेवक़ूफ़ बनाया है। वे मगदूम पर भी नाराज़ हुए। जब वे बिगड़ चुके तो मगदूम लाला ने अपना सिर नीचे किए हुए कहा—वाह भाई साहब, मैं ऐसी बहादुरी करके घर आया तो आप मुझ पर बिगड़ रहे हैं, और जब ह्वीलर कम्पनी में २००) कम पड़ा तब बिना कुछ कहे ही आपने उसे दे दिया। वाह!



सिनेमा का उत्कृष्ट बालक-ऐक्टर

वास्तव में यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि हमारे देश के छोटे बालकों ने भी सिनेमा-क्षेत्र में पदार्पण करना आरम्भ कर दिया है। ऐसी हालत में यदि भारत में 'सिनेमा इण्डस्ट्री' उन्नति के ऊँचे शिखर पर जा पहुँचे तो कोई आश्चर्य नहीं।

कदाचित् छाया-चित्र-प्रेमियों ने मास्टर मोदक का नाम सुना होगा। इस छोटे से विचित्र बालक ने बहुत थोड़ी अवस्था में भारतीय सिनेमा-क्षेत्र में अद्भुत सफलता प्राप्त कर ली है। मास्टर मोदक का जन्म अहमदनगर में सन् १९१९ ई० में हुआ था। नितान्त अबोधावस्था से ही इसको गाने का बड़ा शौक़ था। उसी उम्र में इसने कई गाने सीख लिए थे। ग्रामोफ़ोन के रेकार्ड सुनने का इसको बड़ा ही चाव था। जब कभी कोई रेकार्ड सुनने लगता, तो ख़ुद भी उसी के साथ गाने की चेष्टा करता। इस प्रकार कुछ दिनों बाद यह भली-भाँति गा लेने लगा। अब क्या था, जहाँ देखो, चाहे स्कूल हो या कोई सामाजिक सभा, मास्टर मोदक की चाह होती थी। होते-होते यह गाने में इस क़दर होशियार हो गया कि इसके गाने की माँग बहुत बढ़ गई। इसी प्रकार की सामाजिक सभा में एक रोज़ मोदक ने अपने चित्ताकर्षक गाने से 'सरस्वती फ़िल्म कम्पनी' के डाईरेक्टर मिस्टर भालचन्द्र को मुग्ध कर दिया। भालचन्द्र से न रहा गया। उनकी इच्छा हुई कि इस होनहार बालक को अपनी कम्पनी में ले जाएँ और टाकीज़ में काम कराएँ। ख़ैर, भालचन्द्र की इच्छा पूरी हुई और मोदक को उन्होंने अपनी कम्पनी में रख लिया और 'श्यामसुन्दर' नामक 'टाकी' में कृष्ण का पार्ट दिया।

मास्टर मोदक की आयु केवल १३ वर्ष की है, इसका सारा शरीर सुडौल और सुन्दर बना हुआ है। मुख से भोलापन टपकता है। उसकी आँखें चित्ताकर्षक तथा हृदय-भेदी हैं। उसकी चाल अनोखी तथा मनोहर है। उसकी आवाज़ सुरीली और हृदय को बस में कर लेने वाली है। थोड़े शब्दों में मास्टर मोदक एक विचित्र बालक है।

मास्टर मोदक को प्रत्येक फ़िल्म में काम करने के बदले दो हज़ार रुपए मिलते हैं। आजकल यह "वेगेबॉण्ड प्रिन्स" नाम के खेल में काम कर रहा है।

'श्यामसुन्दर' नामक खेल में मास्टर मोदक की ऐक्टिङ्ग दिल को लुभाने वाली है। इसमें इसने बड़ी सफलतापूर्वक काम किया है। जब यह कृष्ण के अभिनय में अपनी प्रिया राधा को, उसके पिता के सामने, अपना सच्चा प्रेम तथा अटल स्नेह जनाता है और उसे अपने प्रेम का विश्वास दिलाता है, उस समय इसकी ऐक्टिङ्ग बिलकुल स्वाभाविक होती है। जब यह फलों की दुकान से फल चुराता है, उस समय इसके मुख से इस क़दर भोलापन टपकता है कि जनता मुग्ध होकर अपने को भूल सी जाती है। फिर जब यह गोकुल ग्राम के अधिवासियों को कंस के अत्याचारों का सामना करने के लिए व्याख्यान देकर तथा गाकर उन्हें उत्साहित करता है, उस समय उसकी ऐक्टिङ्ग दर्शकों को चमत्कृत कर देती है, फिर जब वह राधा को डूबने से बचाता है और उससे क्षमा चाहता है, उस समय की ऐक्टिङ्ग भी बड़ी ही सुन्दर है। जब वह 'कंस' को मारने को जाता है, उस समय क्रोध के भाव की स्वाभाविकता का प्रदर्शन लोगों को मुग्ध कर देता है।

मास्टर मोदक भारत के बालक-ऐक्टरों में सब से बढ़ कर है। यह अपनी चित्ताकर्षक मूर्ति से, सुन्दर चमत्कारपूर्ण ऐक्टिङ्ग से और मधुर तथा सुरीली आवाज़ से जनता

(शेष मैटर ४८२ पृष्ठ के पहिले कॉलम के नीचे देखिए)

मानवोद्यान के नव-विकसित कुसुम



गाम्भीर्य



हर्ष



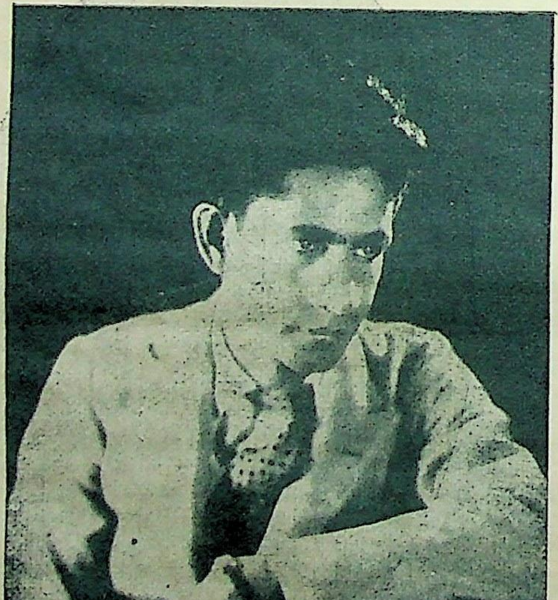
रुदन



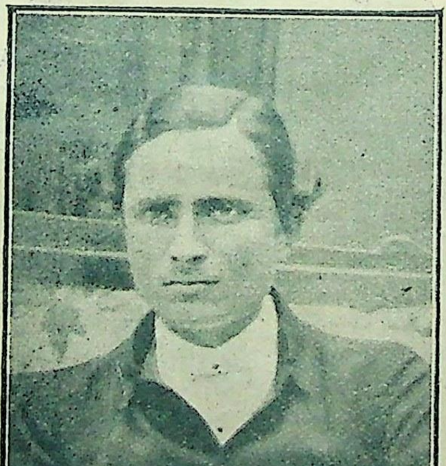
सुप्रसिद्ध फ़िल्म-डाइरेक्टर श्री० भावनानी और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती एनाक्षी रामराव।



कुमारी अमला नन्दी—जो कलकत्ता-निवासी श्री० अक्षय-कुमार नन्दी की कन्या हैं। इनकी उम्र अभी कुल १४ वर्ष की है। इन्होंने यूरोप के विभिन्न देशों में भारतीय नृत्य-कला दिखा कर बड़ी सुख्याति प्राप्त की है।



फ़िल्म-डाइरेक्टर मि० जयगोपाल पिल्लाई।



बम्बई की सरोज मूवीटोन सिनेमा कम्पनी के मालिक श्री० नानूभाई बी० देसाई।

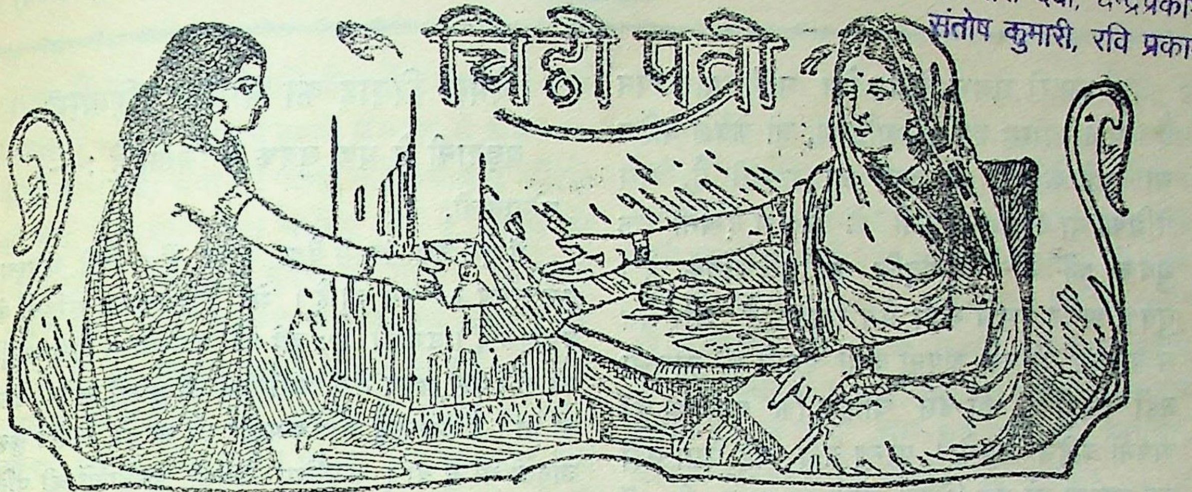


सुप्रसिद्ध सिनेमा-स्टार मिस ज़ुबैदा

इन्होंने इम्पीरियल कम्पनी की 'आलमआरा' तथा सागर कम्पनी की 'सुभद्राहरण', और 'मीराबाई' आदि खेलों में काम करके अच्छा नाम कमाया है।



मिस फ़्लोरेन्स केप, जो लण्डन की एक बहुत पुरानी पोस्ट-वीमेन (पत्र-वाहिका) हैं। आप तीस वर्षों से डाक-विभाग में काम कर रही हैं और अब तक ४०,५०० मील चल चुकी हैं।



ताल्लुक़ेदार की अभागिनी पत्नी

श्रीमान् सम्पादक जी, सादर नमस्ते !

मैं आपकी सेवा में अपनी दुःख-गाथा लिखती हूँ, कृपा करके अपने 'चाँद' पत्र द्वारा उचित उपाय बता कर मेरा सङ्कट दूर कीजिए ।

मैं × × × ज़िले के एक प्रसिद्ध ताल्लुक़ेदार की पत्नी हूँ । पतिदेव एक नीच प्रकृति के मनुष्य हैं । उनकी सङ्गति व्यभिचारी, बदमाशों और गुण्डों की है । हर वक्त उन्हीं कुकर्मी लोगों के साथ मदिरा और मांस के नशे में चूर रहते हैं । अलग एक मकान बनवाया है, उसी में यह सब रहस्य-लीलाएँ किया करते हैं । एक मर्तबा उन पर डकैती का मामला भी चल चुका है । घर तो कभी आते ही नहीं । और अगर कभी कृपा की भी, तो रात को ग्यारह-बारह बजे मदिरा देवी के नशे में मस्त । गालियों से ही मेरा स्वागत करके फिर चले जाते हैं । क़र्ज़ भी काफ़ी हो गया है । मेरे सब गहने तक बिक चुके हैं । हालत ख़राब हो गई है । मुझे उनकी तो कोई फ़िक्र नहीं है, मगर मेरे एक पुत्र और कन्या है । मेरी लड़की की आयु कम से कम १६ साल की है, परन्तु उसकी शादी की कोई परवाह ही नहीं करते ।

लड़का क़रीब १४ साल का है, परन्तु उसका यज्ञोपवीत भी नहीं हुआ । इन सब बातों को देख कर मैं दिन-रात घुला करती हूँ । अब यह सब मेरे लिए असह्य हो गया है । जी में आता है कि विष खाकर इन सब दुःखों से छुटकारा पाऊँ । अब आपकी शरण ली है सम्पादक जी, जो उचित उपाय हो बताइए । आपकी,

—महादुःखिनी बहिन

[इस महादुःखिनी बहिन के कष्टों के प्रतिकार का एकमात्र उपाय यही है कि वे क़ानून की शरण लें और किसी वकील की मार्फ़त एक दरख़्वास्त ज़िला मैजिस्ट्रेट के पास भेजवा दें, ताकि रियासत का प्रबन्ध उनके निकम्मे पति के हाथों से निकल कर स्वयं उनके हाथ में आ जाय। अन्यथा जब ताल्लुक़ेदार साहब की ऐसी ही दशा है, तो क़र्ज़ और भी बढ़ जाएगा, रियासत बिक जायगी और उन्हें तथा उनके बच्चों को और भी कष्ट भोगना पड़ेगा ।

—स० 'चाँद']

❁ ❁ ❁

प्रेम या पागलपन ?

हज़ारीबाग़ से एक युवक ने लिखा है :—

मैं सारन ज़िले का रहने वाला हूँ । मेरा जन्म एक प्रतिष्ठित कायस्थ-कुल में हुआ है । मेरी उम्र १७ साल की है । जब मैं आरा में प्रवेशिका की परीक्षा की तैयारी में था, तो वहीं मैं एक प्रतिष्ठित कुल की सजातीया बालिका से प्रेम करने लगा । बालिका की उम्र ११ वर्ष की थी । वह मुझसे अधिक धनवान कुल की है । परन्तु मैंने प्रतिज्ञा कर ली है कि उसके सिवा दूसरी कोई मेरी जीवन-सङ्गिनी नहीं हो सकती । मैं दिन-रात इसी चिन्ता में रहता हूँ और मेरी समझ में नहीं आता कि मैं क्या करूँ ?

आपका,

× × ×

[हमारी समझ में यह प्रेम नहीं, पागलपन है। एक ग्यारह वर्ष की बालिका, जो केवल बहिन या पुत्री के रूप में देखी जा सकती है, उसे प्रेमिका या जीवन-सङ्गिनी के रूप में देखना उक्त युवक की नीच मनोवृत्ति का परिचायक है। युवक अगर उससे सच्चा प्रेम रखता है और प्रेम में वासना या उसे अपनी बीबी बनाने की लालसा नहीं छिपी है, तो उसे चाहिए कि बालिका को अपनी बहिन समझे। परन्तु यदि वह ऐसा नहीं कर सकता तो वह 'प्रेमी' बनने का दावा भी नहीं कर सकता। क्योंकि सच्चा प्रेम वासना-रहित होता है। इसके विपरीत वह प्रेम नहीं, पाप है। इसलिए युवक को हमारी सलाह है कि इस व्यर्थ के पचड़े में न फँसे, जी लगा कर पढ़े-लिखे और प्रेम क्या होता है, उसे समझने की चेष्टा करे।

—स० 'चाँद']

❀ ❀ ❀

(४७६वें पृष्ठ का शेषांश)

को दीवाना बना देता है। कोई भी ऐसा मनुष्य नहीं, जिसने कि इसकी ऐक्टिङ्ग देख कर तथा इसके मधुर गाने को सुन कर तारीफ़ न की हो।

यह प्रायः देखा गया है कि बहुत से गाने वाले गाते समय अपना मुँह अजीब प्रकार का बना लेते हैं, आँखें बन्द कर लेते हैं, चेहरे पर बल पड़ जाते हैं और ऐसा मालूम होता है कि मानों बड़ी मेहनत पड़ रही है, परन्तु मास्टर मोदक गाते समय अपना मुख स्वाभाविक रखता है।

मास्टर मोदक एक होनहार बालक-ऐक्टर है। यदि इसको चतुर सङ्गीतज्ञ गाने की शिक्षा दें, तो यह सिनेमा-क्षेत्र में अचम्भे का काम करेगा और सिनेमा-इण्डस्ट्री को बड़ा लाभ पहुँचावेगा।

—विक्रमादित्यसिंह निगम, बी० ए०

❀ ❀ ❀

बेमेल विवाह का भीषण परिणाम

बड़वानी से एक युवक ने लिखा है :—

श्रीमान जी,

मैं एक उच्च वंश में पैदा हुआ हूँ। मेरी अवस्था इस समय २० वर्ष की है। मेरे पिता-माता रूढ़ियों के उपासक हैं। उन्होंने १५ वर्ष की अवस्था में मेरी शादी कर दी। उस समय मेरी अर्द्धाङ्गिनी जी मुझसे ड्योढ़ी उम्र की थीं। मैं अल्पायु और कमज़ोर तो था ही, विशेष कुछ जानता भी न था। इसलिए उनकी इच्छाओं की पूर्ति नहीं कर सकता था। इस अपराध में उन्होंने एक दिन चाँटों और घूँसों से मेरी अच्छी तरह मरम्मत कर दी। अब वे कई वर्षों से अपने नैहर में हैं और मैं परदेश में हूँ। कुछ उनके साथ रहने के कारण तथा कुसङ्गत में पड़ जाने के कारण मुझे हस्त × × × की बुरी लत पड़ गई है। अब तक २१९ बार यह कुकर्म कर चुका हूँ। दिन में दो-दो, तीन-तीन बार तक की नौबत आ जाती है। कभी अपने को लानत-मलामत करता हूँ। शपथ खाता हूँ कि ऐसा काम न करूँगा, परन्तु फिर सब भूल जाता हूँ, मेरी हालत उत्तरोत्तर ख़राब होती जाती है। परन्तु मेरा विश्वास है कि यदि मैं अपनी पत्नी के साथ रहूँ, तो मेरी दशा सुधर सकती है। परन्तु पत्नी जी के नैहर वाले उन्हें भेजने का नाम ही नहीं लेते। मैंने पत्नी जी को सब हाल लिख भी दिया है। परन्तु वह भी कुछ ध्यान नहीं देतीं। अब मैं क्या करूँ? क्या दूसरी शादी कर लूँ या आत्महत्या कर लूँ?

भवदीय,

—एक पतित

[वास्तव में युवक की दशा बड़ी ही दयनीय है; बल्कि यों कहना चाहिए कि उसके सामने जीवन-मरण का प्रश्न उपस्थित है। ऐसी विकट परिस्थिति में हमारी सलाह है कि वह व्यर्थ की लोक-लज्जा छोड़ कर अपने तथा अपनी पत्नी के अभिभावकों पर सारी बातें प्रगट कर दे। अगर स्वयं ऐसा करने का सत्साहस उसमें न हो, तो अपने किसी मित्र द्वारा करा दे। और पत्नी के अभिभावकों से पूछ ले कि आख़िर वे क्या करना

चाहते हैं ? यद्यपि हमारे देश में तलाक़ की प्रथा प्रचलित नहीं है और न इसके सम्बन्ध में अभी तक कोई क़ानून ही बना है। परन्तु नैतिक दृष्टि से पत्नियों को यह अधिकार होना चाहिए कि वे पतिदेव को त्याग सकें। यदि इस युवक की पत्नी ने आजीवन इसके साथ कोई सम्बन्ध न रखने का निश्चय कर लिया है, तो युवक अपने जीवन की रक्षा के लिए दूसरा विवाह भी कर सकता है, जैसा कि उसने अपने पत्र में लिखा है। परन्तु यह सब कुछ होने पर भी अपनी वह बुरी कुटेव तो उसे छोड़नी ही पड़ेगी। उसे अपने मन पर अधिकार करना चाहिए; ब्रह्मचर्यपूर्वक जीवन बिताने का अभ्यास करना चाहिए और मन की इस गन्दी दुर्बलता पर विजय प्राप्त करने की चेष्टा करनी चाहिए। हमें विश्वास है कि वह अगर दृढ़तापूर्वक अपनी आदत से बाज़ आने की चेष्टा करेगा, तो इस गन्दी आदत का सदा के लिए छूट जाना कोई असम्भव बात नहीं है। दृढ़-प्रतिज्ञ मनुष्य सब कुछ कर सकता है। इसके साथ ही इस युवक को कदापि कभी एकान्त में नहीं रहना चाहिए। मन से भी उस भावना को दूर करना चाहिए और सारे मित्रों पर यह बात प्रगट कर देनी चाहिए। ऐसे भयङ्कर ऐब को छिपाना कदापि बुद्धिमानी की बात नहीं।

—स० 'चाँद']

❀ ❀ ❀

कुरूपता का परिणाम

एक बहिन लिखती है :—

श्रद्धेय सम्पादक जी,

मेरे स्वामी साक्षात् देवता हैं। परन्तु मेरे और उनके दुर्भाग्यवश मेरा और उनका पाणिग्रहण संस्कार बिना एक दूसरे की इच्छा के हो गया। वह जैसे सुन्दर हैं, उन्हें स्त्री भी वैसी ही सुन्दरी मिलनी चाहिए। परन्तु दुर्भाग्यवश ऐसा न हुआ। क्योंकि मैं रूपवती तो हूँ ही नहीं, साथ ही मेरा रङ्ग भी श्याम है। इसलिए वे मुझे बिलकुल नहीं पसन्द करते। यद्यपि मेरा रङ्ग घोर काला नहीं है, परन्तु चेहरे पर मुँहासों के अधिक निकलने के कारण चेहरा भद्दा हो गया है। इसीलिए वे मुझसे सदैव दूर ही रहते हैं। उनके इस तरह किनाराकशी से मेरे दिल पर क्या बीतती है, उसे मैं कैसे बताऊँ ? अच्छा होता, अगर मैं मर जाती ! परन्तु मेरी जैसी अभागिनियों को मौत कहाँ ? मैंने मुँहासे की बहुत दवा की, परन्तु वह अच्छा नहीं होता। इसलिए 'चाँद' की पाठिकाओं और पाठकों से मेरी विनम्र प्रार्थना है कि यदि किसी को इस रोग की कोई आज़माई हुई दवा मालूम हो, तो 'चाँद' द्वारा मुझे बताने की कृपा करें, नहीं तो अब तो मैं इस जीवन से ऊब उठी हूँ।

आपकी,

—कृष्णदेवी

[आशा है, 'चाँद' के पाठक-पाठिकाओं में से कोई सज्जन मुँहासे की कोई आज़माई हुई दवा बता कर इस दुःखिनी का उपकार करेंगे। साथ ही इस बहिन के पतिदेव से हमारी प्रार्थना है कि केवल रूप के मोह में पड़ कर अपनी पाणिगृहीता पत्नी का तिरस्कार न करें। उन्हें स्वयं मुँहासे की दवा तलाश करनी चाहिए और इस बेचारी अबला को सान्त्वना देनी चाहिए। आख़िर, उस बेचारी का इसमें अपराध ही क्या है ?

—सं० 'चाँद']

❀ ❀ ❀

सास-बहू का झगड़ा

दिल्ली से एक भाई ने लिखा है :—

सम्पादक जी महोदय,

सादर नमस्ते !

गत ज्येष्ठ मास में मेरा विवाह हुआ था और गौना हुए तो अभी बहुत थोड़े ही दिन बीते हैं। परन्तु अभी से मेरे घर में कलह का सूत्रपात हो गया है। मेरी माता जी का स्वभाव कड़ा है। वे बात-बात में नाराज़ हो जाती हैं। बहू अभी हाल की आई है, वह बहुत कम बोलती है। बस, यही उसका अपराध है। माता जी उसे बात-बात में कोसा करती हैं। वह बेचारी घबरा रही है कि अभी से यह हाल है तो आइन्दे इस घर में कैसे जीवन कटेगा। वह बार-बार मुझसे कहती है कि मुझे नैहर भेज

दो। मैं परेशान हूँ कि आख़िर क्या करूँ? माता जी से कुछ कहने की हिम्मत नहीं पड़ती। स्त्री मानती ही नहीं, इधर स्त्री से मुझे प्रेम भी काफ़ी हो गया है। मेरी बड़ी सेवा करती है। परन्तु रङ्ग-ढङ्ग से मालूम होता है कि माता जी के साथ उसका निभना कठिन है। अब आपही बताइए कि मैं किसे छोड़ूँ, माता को या स्त्री को? मैं कोई रोज़गार भी नहीं करता। अगर स्त्री को लेकर माँ से अलग रहूँ, तो ख़र्च कहाँ से आवेगा। कृपया आपही कोई उपाय सोच कर बताइए।

आपका,
×××गुप्त

[गुप्त जी की समस्या तो वास्तव में बड़ी विकट है और इसके सुलझने का सीधा रास्ता यही है कि या तो उनकी श्रीमती जी बूढ़ी सास की बातों का ख़याल न करें या गुप्त जी अपनी स्त्री को लेकर प्रगट रूप से अपनी माता से अलग रहें। ऐसी दशा में उन्हें पहले इस योग्य बनना चाहिए कि अपना और अपनी स्त्री का भरण-पोषण कर सकें और तब तक के लिए पत्नी जी को नैहर में ही रहने दें। —स० 'चाँद']

❀ ❀ ❀

विषम समस्या

ग्वालियर राज्य से एक सज्जन ने लिखा है—

श्रीमान एडीटर साहब, सादर प्रणाम!

मेरे एक मित्र, जो माथुर कायस्थ हैं और इस समय शिक्षा पा रहे हैं, एक बड़ी ही कठिन समस्या में पड़ गए हैं। थोड़े दिन हुए एक स्वजातीय लड़की से उनका प्रेम हो गया है। वह लड़की भी उनसे प्रेम करती है। दोनों में दीर्घ काल से पत्र-व्यवहार भी चल रहा है। परन्तु लड़की के अभिभावकों ने उसकी शादी एक दूसरे पात्र से ठीक कर ली है, जिसे वह बिलकुल पसन्द नहीं करती। उसने एक पत्र द्वारा अपने पिता से निवेदन भी कर दिया था कि वे उसकी इच्छा के विरुद्ध उसका विवाह न करें, परन्तु पिता जी पर इसका कोई असर नहीं पड़ा। अब परिस्थिति ऐसी विकट हो गई है कि उसकी कल्पना करते ही दिल घबरा उठता है। क्योंकि प्रेमी और प्रेमिका दोनों ही अपने प्रण पर दृढ़ हैं। उधर शादी भी पक्की है। लड़की चाहती है कि मुझे अब इस सम्बन्ध में शर्म न खोना पड़े और यह शादी भी, जो उसकी इच्छा के विरुद्ध हो रही है, न होवे। बड़ी विकट समस्या है। कृपा करके आप कोई उचित उपाय सोच कर बताइए।

आपका,
—एक जानकार

[विवाह का सम्बन्ध जीवन से है। उसका परिणाम पति और पत्नी दोनों को ही आजीवन भोगना पड़ता है। इसलिए सङ्कोच और लोक-लज्जा में पड़ कर आजीवन के लिए एक मनोकष्ट सिर पर लाद लेना कदापि उचित नहीं। ऐसी दशा में सीधा-सादा उपाय तो यही है कि दोनों प्रेमी और प्रेमिका खुल्लमखुल्ला अपने अभिभावकों को बता दें कि हम दोनों एक दूसरे को चाहते हैं और लड़की स्पष्ट शब्दों में साहस करके अपनी इच्छा के विरुद्ध पक्के किए हुए विवाह से इन्कार कर दे। परन्तु यदि ऐसा होना किसी तरह भी सम्भव न हो तो पत्र-प्रेरक महाशय स्वयं अग्रसर होकर लड़की और लड़के के अभिभावकों पर सारी बातें प्रगट कर दें और अगर मुमकिन हो तो उनका पत्र-व्यवहार भी उनके अभिभावकों के सामने रख दें।

—स० 'चाँद']

❀ ❀ ❀

एक विपद्-ग्रस्ता

एक विपद्ग्रस्ता रोगिनी ने लिखा है :—

सम्पादक जी,

मैं एक अत्यन्त ग़रीब स्त्री हूँ। मेरे पति साधारण कृषक हैं। मेरे गर्भाशय में सूजन है, जिससे हर घड़ी थोड़ी-थोड़ी पीड़ा बनी रहती है। परन्तु कभी-कभी पीड़ा इतनी बढ़ जाती है कि मैं कोई काम नहीं कर सकती, इससे मेरे पतिदेव और मेरे बच्चे भूखे रह जाते हैं। पतिदेव भी खाना पकाने में असमर्थ हैं। क्योंकि लगाव पड़ जाने से उनका दाहिना हाथ एकदम ख़राब हो

गया है। मुझसे पति और बच्चों का भूखा रहना नहीं देखा जाता। मैंने शफ़ाख़ाने में जाकर अपने रोग का इलाज कराया, परन्तु उससे कोई फ़ायदा नहीं हुआ। दवा में ख़र्च करने के लिए पैसे मेरे पास नहीं हैं। इसलिए मैं चाहती हूँ कि कोई दयालु भाई या बहिन मुफ़्त में मेरा इलाज करा दें। इसके लिए वे मुझे जहाँ बुलावें, मैं आने को तैयार हूँ। मैंने अपना पता 'चाँद'-सम्पादक को दे दिया है। जो सज्जन या बहिन मेरी सहायता करना चाहें, कृपया जवाबी कार्ड भेज कर उनसे मेरा पता पूछ लें।

आपकी,

—एक विपदग्रस्ता

[आशा है, कोई दयालु सज्जन इस विपद्-ग्रस्ता बहिन की सहायता करेंगे।

—स० 'चाँद']

❀ ❀ ❀

एक सज्जन की उदारता

नीचे लिखे सज्जन लिखते हैं :—

श्रीमान् जी,

मैंने अपने समाज की अनाथा विधवाओं की यथा-साध्य सेवा करने का विचार किया है, इसलिए आपसे मेरी प्रार्थना है कि यदि कायस्थ जाति की कोई विधवा आपसे किसी प्रकार की सहायता की याचना करे या कोई विधवा पुनर्विवाह करने की इच्छा प्रगट करे, तो कृपया नीचे लिखे पते पर मुझे सूचना दें। मैं यथासाध्य उस बहिन की अवश्य सहायता करूँगा। मेरी शक्ति अल्प है, इसलिए अभी मैंने केवल कायस्थ जातीय विधवाओं की सेवा का ही विचार किया है और मेरी यह भी धारणा है कि परदा आदि कुप्रथाओं के कारण इसी जाति की विधवाओं को सबसे अधिक कष्टों का सामना करना पड़ता है।

आपका,

रामसरूप निगम,

इगज़्क्यूटिव इञ्जीनियर्स ऑफ़िस

बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवे, रतलाम

[हम श्री० रामसरूप जी निगम महोदय की इस उदारता के लिए उन्हें धन्यवाद देते हैं। हमारी समझ में केवल कायस्थ जाति ही नहीं, वरन् सभी जातियों की विधवाओं को कष्ट भोगना पड़ता है, और जब तक हिन्दू जाति में अबाध रूप से विधवाओं को पुनर्विवाह का अधिकार नहीं प्राप्त हो जायगा, तब तक उनका कष्ट भी दूर न होगा। तथापि जिससे जितनी भी सेवा इन अनाथा बहिनों की बन पड़े, करनी चाहिए।

—सं० 'चाँद']

❀ ❀ ❀

स्वप्नदोष का रोगी

एक युवक ने लिखा है :—

श्रीमान् सम्पादक जी,

नमस्ते! मैं कॉलेज का विद्यार्थी हूँ। मेरी उम्र प्रायः १९ वर्ष की है। प्रायः पाँच वर्षों से मैं कुसङ्गति में पड़ कर स्वप्नदोष से कष्ट पा रहा हूँ। कभी-कभी रात में दो-दो बार मुझे स्वप्नदोष हो जाता है। प्रायः एक महीने से पेशाब के साथ धातु भी जाने लगा है। शरीर और मस्तिष्क कमज़ोर होने लगा है। मैं ग़रीब विद्यार्थी हूँ। तथापि प्रायः ५०) की दवाएँ खा चुका हूँ। परन्तु कोई फ़ायदा नहीं मालूम होता। आप अपने 'चाँद' द्वारा कृपा करके कोई ऐसा उपाय या दवा बताइए, जिससे मेरे जीवन की रक्षा हो।

आपका,

× × ×

[इस सम्बन्ध में 'चाँद' के इन 'चिट्ठी-पत्री' के स्तम्भों में कई पत्र, दवाओं के नुसख़े और कई तरह के प्राकृतिक उपाय छप चुके हैं। और इससे अधिकांश रोगियों का उपकार भी हुआ है। अतः थोड़े शब्दों में हम यहाँ फिर उन्हीं उपायों का उल्लेख कर देना उचित समझते हैं। स्वप्नदोष बहुधा उसी अवस्था में होता है, जब मनुष्य पीठ के बल अर्थात् चित सोया होता है। स्त्री-प्रसङ्ग की चिन्ता, दूसरे मनोविकार, गुरुपाक भोजन और शारीरिक थकावट आदि और भी कई कारण इसके होने के हैं। हमारे ख़याल में

यह कोई मारात्मक रोग नहीं है और इससे घबराना नहीं चाहिए। व्यर्थ दवाएँ खाने से भी यह दूर नहीं होता। इससे बचने का एकमात्र उपाय है, मन को तथा अपने आहार-विहार को संयत रखना; इसकी चिन्ता भूल जाना और नियमित रूप से व्यायाम करना। उक्त नवयुवक भाई को चाहिए कि रात को ज़मीन पर चटाई बिछा कर या लकड़ी की चौकी पर सोया करें। कमर में पीछे की ओर एक गेंद या ऐसी कोई चीज़ बाँध लें, जिससे पीठ के बल सोने में बाधा पड़े। इसके साथ ही पाख़ाना जाने के समय, दोनों वक्त नीचे की दोनों इन्द्रियों के मध्य भाग पर बीस मिनिट तक ठण्ढे पानी के छींटे दिया करें। सूर्योदय से पूर्व कम से कम पाँच मील टहलें। मन को संयत रक्खें और देर से पचने वाली तथा मसालेदार चीज़ें न सेवन करें और एकान्त में न सोवें। हमारे ख़याल में इन नियमों का सम्यक् पालन करने से उनकी बीमारी दूर हो जायगी ?

—स० 'चाँद']

विद्यार्थी की पत्नी

'चाँद' की एक ग्राहिका लिखती हैं :—

सम्पादक जी महोदय,

आपके 'चाँद' में बहुत से स्त्री और पुरुष पत्र द्वारा अपने हृदय के उद्‌गार प्रगट किया करते हैं और आप भी उन्हें यथोचित उत्तर देकर सान्त्वना प्रदान किया करते हैं। इसलिए मैं भी यह पत्र आपकी सेवा में भेजती हूँ। कदाचित् आपके उत्तर से मेरे हृदय को कुछ शान्ति मिले।

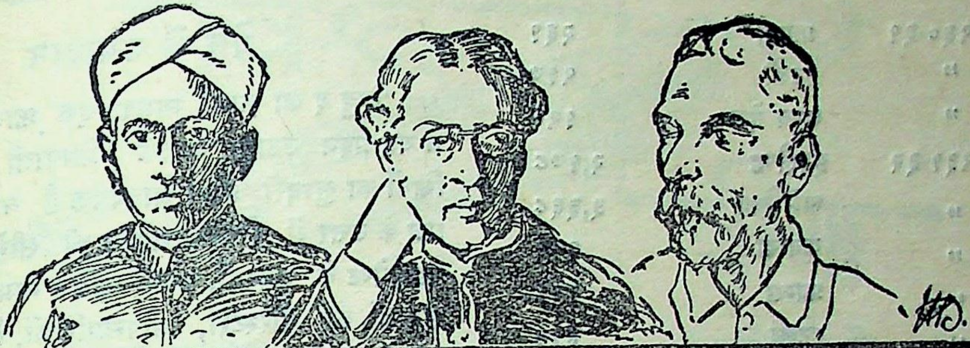
मेरा विवाह हुए ९ वर्ष बीत गए और मेरे तीन बच्चे भी हैं, किन्तु पतिदेव का विद्यार्थी-जीवन अभी तक समाप्त नहीं हो पाया है। विवाह इण्ट्रेन्स पास होने पर हुआ था। वे आजकल एल्-एल्० बी० पढ़ते हैं। मुझे विश्वास है कि अभी तीन-चार वर्ष तक और कॉलेज के कीड़े रहेंगे और मैं तो गृहस्थी की मक्खी बनी ही हूँ। उन्होंने अपने लिए नहीं, अपने माता-पिता के पास क़ैद रखने के लिए मेरे साथ ब्याह किया है। सम्पादक जी, मैं सास-ससुर के पास रहना और उनकी सेवा करना बुरा नहीं समझती। किन्तु मेरे भी तो हृदय है। ब्याह से पहले मैं क्या-क्या कल्पनाएँ किया करती थी। कितनी आशाओं से भरा हुआ हृदय लेकर पतिदेव के गृह में आई, उन सब पर पानी फिर गया! वे स्वयं तो कॉलेज में सब प्रकार के आमोद-प्रमोद के साथ रहते हैं। परन्तु मैं रोकर समय बिताती हूँ, या हँस कर, इसकी उन्हें परवाह नहीं। डिग्री तो उन्हें वृद्धावस्था तक मिल ही जायगी। परन्तु जब पढ़ाई समाप्त करके घर आवेंगे, तो मेरे पास क्या रह जाएगा—एक टूटा हुआ सूखा हृदय! उस समय मैं बच्चों की और गृहस्थी की देख-भाल करूँगी या उनकी सेवा करूँगी! सम्पादक जी, इन्हीं सब विचारों से मेरा हृदय व्यथित हो जाता है। कभी-कभी यही इच्छा होती है कि परमात्मा की कृपा से उनकी पढ़ाई आजीवन जारी रहे और मेरा जीवन समाप्त हो जाए। अब अधिक कहाँ तक सहन करूँ, इतने दिन तो हो गए। इति।

—'चाँद' की एक ग्राहिका

[इस बहिन का पत्र हमने ज्यों का त्यों उद्धृत कर दिया है। इसमें जितने मर्मभेदी शब्द आए हैं, वे हमारे नहीं, उन्हीं के हैं। इन शब्दों में कितनी मर्मवेदना छिपी है—कितनी विकल पीड़ा निहित है, उसे प्रत्येक सहृदय मनुष्य समझ सकेगा। परन्तु अफ़सोस है कि वह डिग्री-लोलुप विद्यार्थी-हृदय इसे समझने की चेष्टा नहीं करता। आश्चर्य तो यह है कि ये तीन लड़कों के पिता जी अभी अपने को 'कॉलेज का लड़का' ही समझते होंगे। इसे इस अभागे देश की शिक्षा-प्रणाली का दोष कहें या डिग्री प्राप्त करने में ही सारा जीवन नष्ट कर देने की निरर्थक प्रवृत्ति का? ऐसे हीन-हृदय विवाह ही क्यों कर लेते हैं?

अन्त में इस दुःखिनी बहिन से निवेदन है कि वे बच्चों के लिए इस कष्ट को सहन करें और पतिदेव को डिग्री प्राप्त करने दें।

—स० 'चाँद']



विज्ञान तथा वैचित्र्य

मुर्दे जीवित होने लगे

एक जर्मन वैज्ञानिक का अद्भुत आविष्कार

जर्मनी के विख्यात वैज्ञानिक डॉक्टर अलबर्ट एस० हाईमैन ने एक ऐसा यन्त्र तैयार किया है, जिसके द्वारा एकाएक हृदय की गति के रुक जाने के कारण मरे हुए मनुष्य पुनर्जीवित हो सकते हैं। इस यन्त्र की परीक्षा ऐसे मनुष्यों पर की गई है, जिनके हृदय में किसी प्रकार की ख़राबी न थी और केवल किसी आतङ्क के कारण मर गए थे। ऐसे प्रतिशत ६० मुर्दों को पुनर्जीवन प्रदान करने में यह यन्त्र सफल हो चुका है। शर्त्त यह है कि मृत्यु हो जाने के दस मिनट के भीतर ही इस अद्भुत यन्त्र का प्रयोग किया जाय।

इस यन्त्र में एक ऐसी सुई लगी है, जिसके द्वारा हृदय में इञ्जेक्शन लगा कर उसमें कृत्रिम बिजली भर दी जाती है। इससे हृदय की रुकी हुई गति फिर से जारी हो जाती है। डॉक्टर अलबर्ट के इस नए आविष्कार ने वैज्ञानिक दुनिया में एक हलचल सी पैदा कर दी है। जर्मनी की एक कम्पनी ने इस यन्त्र को तैयार करने और उसे बेचने का अधिकार उक्त डॉक्टर महोदय से ले लिया है।

❀

भारत में मोटर गाड़ियाँ

सन् १९३१-३२ में संसार के विभिन्न देशों से ७,२२० मोटर गाड़ियाँ भारत में आई हैं। गत सन् १९२२-२३ के बाद, इतनी कम मोटर गाड़ियाँ इस देश में कभी नहीं आई थीं। नीचे १९२२-२३ से १९३१-३२ तक किस साल कितनी गाड़ियाँ आईं, उनका एक विवरण दिया जाता है :—

ईस्वी सन्			गाड़ियों की संख्या
१९२२-२३	...	...	४,३२३
१९२३-२४	...	...	७,९८४
१९२४-२५	...	...	९,३८०
१९२५-२६	...	...	१२,७५७
१९२६-२७	...	...	१३,११७
१९२७-२८	...	...	१५,१२२
१९२८-२९	...	...	१९,५६७
१९२९-३०	...	...	१७,३९९
१९३०-३१	...	...	१२,६०१
१९३१-३२	...	...	७,२२०

किसी देश से कितनी गाड़ियाँ आईं।

१९२८-२९	इङ्गलैण्ड से	३,६४५
,,	अमेरिका	१०,१४५
,,	कनाडा	२,३१८
,,	फ़्रान्स	३६४
,,	इटली	१,१५०
,,	अन्य देश	१८९
१९३०-३१	इङ्गलैण्ड	२,८८५
,,	अमेरिका	५,०९८
,,	कनाडा	३,२५०

१९३०-३१	फ़्रान्स	२६१
"	इटली	९१७
"	अन्य देश	१९०
१९३१-३२	इङ्गलैण्ड	२,१७८
"	अमेरिका	३,३६८
"	कनाडा	६७६
"	फ़्रान्स	१६१
"	इटली	९१०
"	अन्य देश	३२७

१९३१-३२ में जो ७,२२० गाड़ियाँ आईं, उनमें बम्बई प्रान्त में ३,३२५, बङ्गाल में १,८०१, मद्रास में ८६०, सिन्ध में ८२४ और बर्मा में ४१० आईं।

मोटर साइकिलें

१९३१-३२ में कुल ९२६ मोटर साइकिलें आईं। परन्तु इससे पहले के सालों में १,५०१ आई थीं। इनमें से अधिकांश मोटर साइकिलें इङ्गलैण्ड से आईं।

मोटर लॉरियाँ, बसें और मोटरवान

उपर्युक्त सालों में कुल ६७ लाख रुपए के मूल्य की मोटर लॉरियाँ, बसें और मोटरवान आए। इनमें ४७ लाख के मूल्य की लॉरियाँ और बसें इङ्गलैण्ड से तथा अवशिष्ट दूसरे देशों से आईं।

सन् १९३१-३२ में जो मोटर गाड़ियाँ आई थीं, उनका मूल्य १ करोड़ ४८ लाख रुपए था। इससे पहले वर्ष में २ करोड़ ५८ लाख रुपए की मोटरें आई थीं।

गत १९३२ साल के मार्च महीने तक भारत के विभिन्न प्रदेशों के मोटर गाड़ियों की संख्या २,१०,७२६ थी। इनमें मोटर साइकिलों की संख्या भी शामिल है।

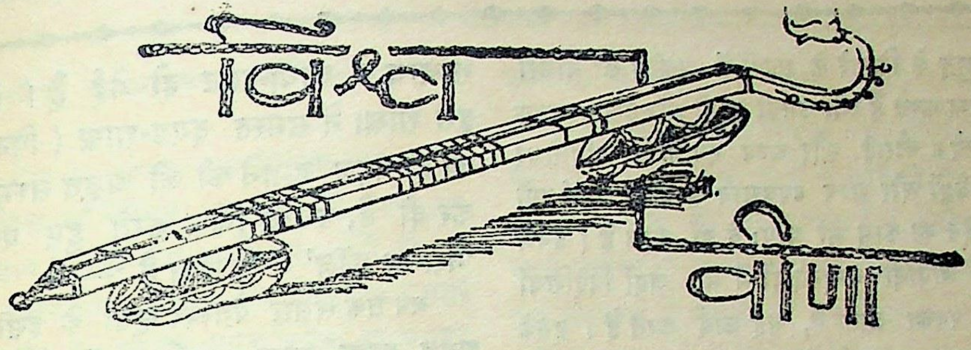
वर्तमान वर्ष

गत अप्रैल से लेकर अक्टूबर तक सात महीनों में आने वाली मोटरों और टेक्सी गाड़ियों की संख्या २,३७४ थी। गत वर्ष के इन्हीं सात महीनों में ४,७८३ गाड़ियाँ आई थीं। इन सात महीनों में जो गाड़ियाँ आई हैं, उनका मूल्य ४९,४२,७८० रुपए हैं।

प्रेम के उपादान

'रेव्यु द ला फ़ाम' नामक एक फ़्रान्सीसी अख़बार ने यह प्रश्न उठाया था कि "प्रेमपात्री होने के लिए स्त्रियों का सुन्दरी होना आवश्यक है या नहीं ?" इस प्रश्न के उत्तर में विश्वविद्यालय की सीनेट के सदस्यों, पार्लामेण्ट के सदस्यों, कमेटी फ़्रासेज नाम की संस्था के सदस्यों, कई बैरिस्टरों, औपन्यासिकों, शिल्पियों तथा दर्ज़ियों आदि हज़ारों मनुष्यों ने अपनी-अपनी राय 'रेव्यु द ला फ़ाम' के सम्पादक के पास लिख कर भेजी हैं। इन उत्तरदाताओं में कुछ सज्जनों की सम्मति तो यह है कि प्रेमपात्री बनने के लिए रूपवती होना अत्यावश्यक नहीं। परन्तु कुछ सज्जनों की राय में रूप एक अत्यावश्यक वस्तु है और इसके बिना कोई स्त्री प्रेमपात्री नहीं हो सकती। इसके सिवा बहुत उत्तरदाताओं ने इस सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार के मत प्रदान किए हैं। फलतः इन तमाम उत्तरों की जाँच करके उपर्युक्त पत्र के सम्पादक महोदय ने निश्चय किया है कि प्रेम के पाँच उपादान हैं, जैसे—सौन्दर्य, दैहिक गठन, मानसिक गठन, बुद्धिवृत्ति और उदारता। आपकी राय में उम्र जितनी ही कम हो, प्रेमपात्री के लिए सौन्दर्य की आवश्यकता उतनी ही अधिक होती है। परन्तु उम्र की वृद्धि के साथ-साथ सौन्दर्य की आवश्यकता क्रमशः कम होती जाती है।

किस उम्र की स्त्री के लिए किस उपादान की कितनी आवश्यकता है, इसकी एक तालिका भी उक्त पत्र के सुयोग्य सम्पादक महोदय ने दे दी है। आपका कहना है कि सोलह वर्ष की लड़की के लिए सौन्दर्य की मात्रा सौ में अस्सी भाग और मानसिक गठन बीस भाग होनी चाहिए। २० वर्ष के लिए सौन्दर्य प्रतिशत ७०, दैहिक गठन १० और मानसिक गठन २० ; २५ वर्ष के लिए सौन्दर्य ६० भाग, दैहिक गठन १०, मानसिक गठन १५, और बुद्धिवृत्ति १५ भाग ; ३० वर्ष—सौन्दर्य ५० भाग, दैहिक गठन १०, मानसिक गठन १५, बुद्धिवृत्ति १५ और औदार्य १०; ४० वर्ष—सौन्दर्य ३०, दैहिक गठन १०, मानसिक गठन १०, बुद्धिवृत्ति १५ और उदारता १५; ५० वर्ष—सौन्दर्य १०, दैहिक गठन १०, बुद्धिवृत्ति ४० और औदार्य प्रतिशत १० भाग होना चाहिए।



दरिद्र-भारत

कुछ समय हुआ भारतीय व्यवस्थापक सभा के सदस्य सर हरीसिंह गौड़ चीन, जापान आदि की यात्रा करने गए थे। इस यात्रा का जो मनोरञ्जक वर्णन आपने 'इण्डियन रिव्यू' में प्रकाशित कराया है, उसका एक अंश इस प्रकार है :—

कोलम्बो से रवाना होने के बाद सबसे पहले हम सिङ्गापुर ठहरे। उसे देखने से जान पड़ता था कि ग़रीब भारत के मुक़ाबले में इन पूर्वीय देशों ने ख़ासी तरक़्क़ी की है। क्योंकि पीनाङ्ग, मनीला, मलाया स्टेट्स, चीन, जापान, जहाँ कहीं भी हम गए, हमने आधुनिक ढङ्ग से बसे बड़े-बड़े नगर देखे। इन नगरों में सब प्रकार की आधुनिक सामग्रियाँ पाई जाती हैं और ये सब सुन्दरता, वैभव और उन्नति की दृष्टि से एक दूसरे की प्रतियोगिता करते हैं। इस परिस्थिति की भारत और भारतवासियों के भाग्य से तुलना कीजिए।

इन तमाम देशों में हज़ारों की संख्या में भारतवासी पाए जाते हैं, पर उनमें से अधिकांश, मेहतरों और नालियाँ साफ़ करने का काम करते हैं। इस कारण यहाँ पर भारतवासी 'कुलियों की जाति' समझे जाते हैं। मैंने इन स्थानों में जो भारतवासी देखे, वे ख़ासकर तीन विभागों में बाँटे जा सकते हैं। मज़दूर, जिनकी संख्या सबसे अधिक है ; दुकानदार और फेरी वाले, जो बड़े शहरों में पाए जाते हैं, और थोड़े से इधर-उधर बिखरे हुए व्यक्ति, जो अपना गुज़ारा भाषाओं की शिक्षा देने, डॉक्टरी, पूजा-पाठ, ज्योतिष या धर्मोपदेश आदि तरह-तरह के कामों से करते हैं।

भारतीय कुली

बड़े शोक का विषय है कि ऊँची श्रेणियों के भारतवासी इन देशों में बहुत कम पाए जाते हैं। इससे विदेशियों को भारत तथा भारतवासियों के सम्बन्ध में बड़ी भ्रमपूर्ण धारणा हो जाती है। यहाँ पर मैं केवल एक उदाहरण देता हूँ, जो मेरे आशय को स्पष्ट कर देगा। जब मैं टोकियो (जापान की राजधानी) में था, तो मैंने प्राइमरी स्कूल से लेकर यूनीवर्सिटी तक सब तरह की शिक्षा-संस्थाओं का निरीक्षण किया। एक प्राइमरी स्कूल में मैंने एक आलमारी में रक्खी कितनी ही मूर्तियाँ देखीं, जो संसार के विभिन्न देशों के अधिवासियों की थीं। इनमें एक का रङ्ग काला था, उसकी कमर में एक छोटा सा गमछा लपेटा हुआ था, जिससे वह अर्द्ध-नग्न जान पड़ती थी, उसके काले बाल हवा में उड़ रहे थे। इस मूर्ति के नीचे लिखा था, 'भारतीय !'

स्कूल की प्रधान अध्यापिका, जो मेरी बग़ल में ही खड़ी थी, मेरी दृष्टि उस मूर्ति पर पड़ते देख कर कुछ लजा गई और मेरे समाधान के लिए कुछ ऐसा कारण बताने लगी जो ठीक न था। वास्तव में ऐसी मूर्तियाँ कारख़ानों में बनाई जाती हैं और अबाध रूप से स्कूलों में भेजी जाती हैं। यह भारतीय कुली की प्रतिमूर्ति है, जिसे चीन या मलाया आदि के किसी भी बन्दरगाह में देखा जा सकता है। एक मज़ेदार बात यह है कि इन कुलियों में से अधिकांश मद्रास की तरफ़ के होते हैं, जबकि दक्षिण भारत में इस प्रकार का काम प्रायः उत्तर भारत के अधिवासी करते हैं।

सिख और सिन्धी

इस प्रकार यद्यपि अधिकांश भारतवासी इन प्रदेशों में नीचे दर्जे की मज़दूरी करते हैं, तो भी कुछ लोग ऐसे हैं जो अच्छी स्थिति में कहे जा सकते हैं। इस ओर के

समस्त समुद्र के किनारे के शहरों में पुलीस की नौकरी प्रायः सिक्ख करते हैं और उनकी लम्बी और देखने लायक़ आकृति प्रत्येक चौराहे और अन्य स्थानों में दृष्टिगोचर होती है। बैङ्कों और अन्य व्यवसाय सम्बन्धी कार्यालयों पर पहरा देने का काम भी प्रायः वे ही करते हैं। उनमें से कुछ तो जापानी बन्दरगाहों में भी, जहाँ विदेशियों को दूर ही रक्खा जाता है, यह कार्य करते हैं। इनके अतिरिक्त क़रीब ३०० सिन्धी भी इन शहरों में रहते हैं, जो यहाँ से भारत में और अन्य देशों में रेशम भेजने का व्यवसाय करते हैं। पर वे थोक माल का काम करते हैं और सर्वसाधारण को उनसे परिचित होने का अवसर बहुत कम मिलता है।

❀ ❀ ❀

अपराध और दण्ड

बीसवीं शताब्दी से पूर्व अपराध और दण्ड के विषय में साधारण लोगों में प्रायः यही ख़याल फैला हुआ था कि अपराधियों को जितना अधिक और कड़ा दण्ड दिया जायगा, उतना ही जनता पर उसका प्रभाव पड़ेगा और लोग इस प्रकार के वर्जित काम करने से डरते रहेंगे। इतना ही नहीं, एक ज़माना वह था जबकि इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपराधियों को अधिक से अधिक यन्त्रणा देने के उपाय खोजे जाते थे। अपराधियों को जलते तेल के कड़ाह में डाल देना, कुत्तों से नुचवाना, हाथी से कुचलवाना, दीवार में चुनवा देना, पत्थरों से मार डालना आदि उसी बर्बर-युग की स्मृतियाँ हैं। पर जैसे-जैसे ज्ञान-विज्ञान की उन्नति होती गई और जीव-दया का भाव वृद्धि पाता गया, अपराधियों को दण्ड देने में कम क्रूरता से काम लिया जाने लगा। इधर जब से मनोविज्ञान ने विशेष रूप से उन्नति की है और मनुष्यों के कामों और आन्तरिक विचारों की नियमित रूप से जाँच-पड़ताल की जाने लगी है, तब से तो इस सम्बन्ध में काया-पलट हो गई है। विज्ञान की इस शाखा ने समस्त दण्ड-शास्त्र (पिनल कोड) को ही बदल डालने की जो अद्भुत सम्भावना पैदा कर दी है, उसका ज़िक्र करते हुए एक लेखक 'नेशनल कॉल' में लिखता है :—

अब तक संसार पैग़म्बर मूसा के इसी नियम पर अमल करता आया था कि 'आँख के बदले आँख निकाल लो।' सभ्यता की वृद्धि के साथ इस नियम में अनेकों सुधार किए जाते रहे हैं, तो भी हमारे वर्तमान समस्त क़ानूनों का मूल आधार यही नियम है। जब हम न्यायालयों में होने वाले मुक़दमों की कार्यवाही और कठोर दण्डों का वर्णन पढ़ते हैं, तो हमारे चित्त में यही भाव उत्पन्न होता है कि 'यह उचित ही किया गया।'

जीवदया-प्रचारक कितने ही समय से इस पाशविक भावना के विरुद्ध उद्योग कर रहे हैं। पर उनकी चेष्टा का आधार केवल अनुकम्पा का भाव है। ऐसे लोगों ने वर्षों तक क़ानूनदाँ लोगों की बेवक़ूफ़ियों के ख़िलाफ़ लड़-झगड़ कर जेलख़ानों के नियमों में कितनी ही तरह के सुधार कराए हैं। पर इस सम्बन्ध में वास्तविक और स्थायी कार्य मनोविज्ञानवेत्ताओं ने किया है, और वे ही आजकल उन लोगों का पक्ष समर्थन कर रहे हैं, जिन्हें समाज ने समस्त प्राणियों में जघन्य मान रक्खा है।

अस्वाभाविक मस्तिष्क

पर जीव-दया से प्रेरित सुधारकों और मनोविज्ञान-वेत्ताओं में एक बड़ा अन्तर है। जहाँ ये सुधारक अपराधियों के लिए केवल दया की भिक्षा माँगते हैं अथवा जेलख़ानों के सुधार की चेष्टा करते हैं, मनोविज्ञान वाले इस प्रथा को ही ग़लत बतलाते हैं। उनके मतानुसार अपराधियों के साथ जो व्यवहार आजकल किया जाता है, वह बर्बर और अमानुषिक होने के साथ ही अवैज्ञानिक और निरर्थक है। वे लोग यहाँ तक आगे बढ़ते हैं कि जेलों में ठूँसे जाने वाले अपराधी और बड़े-बड़े मतों के प्रचारक, जिनके नामों की लोग माला जपते हैं, एक ही प्रणाली द्वारा उत्पन्न होते हैं। ये दोनों प्रकार के व्यक्ति अनियमित अथवा असाधारण स्वभाव के होते हैं। मस्तिष्क की जिस विषम परिस्थिति के फल से एक व्यक्ति महात्मा बुद्ध या महात्मा ईसा बनता है, उसी से

दूसरा चङ्गेज़ ख़ाँ या नादिरशाह या ताँतिया भील बन जाता है।

पर इस लेख का उद्देश्य इस विचित्र प्रकार की परस्पर-विरोधिता का विवेचन करना नहीं है, और हम यहाँ मनोविज्ञान के उसी अंश पर विचार करेंगे, जिससे अपराधों के उत्तरदायित्व, उद्देश्य और प्रोत्साहक कारणों पर प्रकाश पड़ता है। क्योंकि प्रत्येक विवेक पर आधार रखने वाले न्याय-शास्त्र में सबसे अधिक ध्यान अपराध के उत्तरदायित्व पर ही दिया जाना आवश्यक है। उदाहरण के लिए यदि कोई व्यक्ति, जिसे नींद में उठ कर चलने-फिरने की बीमारी हो, वैसी अवस्था में अपनी स्त्री को गोली से मार दे तो उसे न्यायपूर्वक इसके लिए उत्तरदायी नहीं बतलाया जा सकता। यही सिद्धान्त मनोविज्ञान के अनुसार विचार करने से अधिकांश अपराधों पर लागू होता है।

समाज का उत्तरदायित्व

फ्रूड नाम के विद्वान का कथन है कि हमारे जीवन भर के कार्यों और उनकी प्रतिक्रियाओं पर बहुत बड़ा प्रभाव हमारे माता-पिताओं के विचारों और अनुभवों का पड़ता है, जिन्हें हम जानते भी नहीं। एडलर नाम के एक अन्य विद्वान् ने इस मत का समर्थन करते हुए लिखा है कि बाल्यावस्था के अनुभव और उसके बाद की परिस्थिति हमारे जीवन के मार्ग को निर्धारित करती है। इसलिए किसी व्यक्ति के कार्य का उत्तरदायित्व उसका नहीं वरन् समस्त समाज का है। किसी व्यक्ति के कार्य की निन्दा करते समय हम केवल एक आदमी की निन्दा नहीं करते वरन् उस युग की अथवा उस समाज की सभ्यता की निन्दा करते हैं, जिसमें वह उत्पन्न हुआ है।

आगे चल कर लेखक ने उदाहरण देकर बतलाया है कि किस प्रकार हत्या आदि अपराधों का विचार ऐसे व्यक्तियों के हृदय में, जिनका समस्त जीवन निर्दोष रहा है, अकस्मात् उत्पन्न हो जाता है। मनोविज्ञानवेत्ताओं ने इस प्रकार की घटनाओं की जाँच करके पता लगाया है कि इस प्रकार के भावों के बीज निकट और दूरवर्ती सम्बन्धियों के कार्यों अथवा स्वभाव के द्वारा अज्ञात रूप से मस्तिष्क में स्थान पा जाते हैं और फिर कभी अकस्मात् अप्रत्याशित रूप में प्रकट होते हैं। ऐसे अपराधियों को उनके कार्य के लिए दोषी ठहराना हमारी अज्ञता का परिचायक है। ऐसे लोगों के साथ वास्तव में कैसा व्यवहार किया जाना चाहिए इस सम्बन्ध में लेखक का मत है :—

इन उदाहरणों से एक बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है कि अपराध या जुर्म की समस्या बड़ी दुरूह है और वर्तमान दिखावटी दण्ड-संग्रह उसकी तह तक कदापि नहीं पहुँच सकते। अगर दुनिया का विवेकपूर्ण सङ्गठन हो जाय तो अपराधियों के साथ वही व्यवहार किया जाने लगे जो आजकल बीमारों के साथ किया जाता है। ऐसी दुनिया में मुक़दमे अदालतों के अक्षम्य-मूर्ख जजों के सम्मुख पेश नहीं होंगे वरन् सब प्रकार के यन्त्रों से पूर्ण किसी रोग-परीक्षा-गृह में मनोविज्ञान के ज्ञाताओं द्वारा उनकी जाँच की जायगी।

❀ ❀ ❀

रूस के बच्चे क्या पढ़ते हैं

जब से रूस में नवीन शासन की स्थापना हुई है तब से वहाँ छोटे बच्चों के पढ़ने की पुस्तकों पर बहुत अधिक ध्यान दिया जाता है और देश के श्रेष्ठ विद्वान्, शिक्षाविज्ञ और कलाविद् मिल कर यह निर्णय करते हैं कि बच्चों के लिए पुस्तकें किस प्रकार लिखी जायँ। इन लोगों के मतानुसार केवल सीधी-सीधी और अर्थहीन कहानियों से बच्चों में रचनात्मक कल्पना-शक्ति का विकास हो सकना असम्भव है। इसलिए वे आरम्भ ही से उनके हाथों में ऐसी पुस्तकें देना चाहते हैं, जिससे वे जीवन की समस्त आवश्यकीय समस्याओं का परिचय प्राप्त कर सकें। रूसी शिक्षा-विभाग के इस नवीन उद्योग का वर्णन करते हुए एक लेखक ने अमेरिका के 'न्यू-रिपब्लिक' नामक पत्र में लिखा है :—

यद्यपि सामाजिक समस्याओं के आलोचक बहुत वर्षों से कहते आए हैं कि वर्तमान युग में सबसे अधिक

ध्यान देने का विषय बालकों की शिक्षा है, पर इस सिद्धान्त के सम्बन्ध में व्यवहारिक कार्य रूस वालों ने ही आरम्भ किया है। वहाँ बच्चों की किताबें लिखने वालों का पद वैसा ही महत्वपूर्ण समझा जाता है जैसा कि महान व्यवसायों और उद्योग-धन्धों के सञ्चालकों का। जिस प्रकार उद्योग-धन्धों के डाइरेक्टरों की कॉन्फ्रेन्सें प्रायः हुआ करती हैं, उसी प्रकार ये लेखक भी प्रायः एक साथ बैठ कर अपने विषय पर विचार किया करते हैं। प्रत्येक पन्द्रहवें दिन सरकारी शिक्षा-विभाग के कार्यालय में बच्चों की किताबों के लेखकों, चित्रकारों, शिक्षकों, पुस्तकालयाध्यक्षों, मनोविज्ञानवेत्ताओं और साहित्य-समालोचकों की कॉन्फ्रेन्सें होती हैं।

इस अवसर पर बच्चों के आदर्श, रुचि और भावनाओं को ध्यान में रख कर पुस्तकों के सम्बन्ध में वाद-विवाद होता है। ये कॉन्फ्रेन्सें केवल विभिन्न लेखकों की भूलों का ही पता नहीं लगातीं वरन् यह भी निर्णय करती हैं कि वर्तमान समय में बच्चों के लिए क्या लिखा जाय और किस तरह लिखा जाय। उदाहरणार्थ, इनमें विचार किया जाता है कि परियों और जादूगरों की अद्भुत रसपूर्ण कहानियाँ बच्चों को पढ़ाई जायँ या नहीं? प्राकृतिक विषयों की कहानियों में दैवी शक्ति सम्पन्न समझे जाने वाले व्यक्तियों का वर्णन किया जाय? क्या उद्योग-धन्धों की चर्चा और शिल्प-विद्या सम्बन्धी विचारों को शिक्षा में प्रमुख स्थान दिया जाय? आदि। इन वाद-विवादों के फल-स्वरूप बच्चों की किताबों के सम्पादकों और प्रकाशकों को अपने कार्य के लिए सहायकों की एक मण्डली मिल जाती है।

कभी-कभी बच्चे भी इन कॉन्फ्रेन्सों में बुलाए जाते हैं, क्योंकि रूस वाले स्वभाग्य निर्णय पर बहुत अधिक विश्वास रखते हैं। वे लेखकों का कथन सुनते हैं, अपने विचार प्रकट करते हैं और पुस्तकों की आलोचना करते हैं। कभी-कभी ये बच्चे विशेषज्ञों के समान बातें करते हैं, जिनसे बड़ा अहङ्कार प्रकट होता है। उदाहरणार्थ, एक बार दस साल की उम्र के बच्चों के एक समूह ने किसी पुस्तक के सम्बन्ध में निम्न-लिखित सम्मति लिख कर भेजी थी—"हमने इसको पढ़ा और निश्चय किया कि इसे छापना अनुचित न होगा।"

बच्चों के लिए जितनी पुस्तकें तैयार की जाती हैं वे सब कुछ न कुछ ज्ञान प्रदान करने वाली होती हैं, ऐसी ख़ाली तस्वीरों की किताबें भी जो चार-चार, पाँच-पाँच साल के अक्षर-ज्ञान-विहीन बच्चों के लिए छापी जाती हैं, जीवन सम्बन्धी वर्तमान समस्याओं से सम्बन्ध रखती हैं। उनमें लाल सेना की कवायद, मास्को की नई इमारतें, श्रमजीवियों के विश्राम-गृह आदि के दृश्य दिखलाए जाते हैं। ऐसी पुस्तकों में जानवरों, फूलों, जहाज़, सर्कस आदि की आकर्षक तस्वीरें भी होती हैं। यद्यपि प्रत्यक्ष में इनका कोई सम्बन्ध साम्यवादी पुनर्सङ्गठन से नहीं जान पड़ता, पर तो भी उनमें इस तरह का कुछ न कुछ भाव छिपा रहता है।

जैसे ही बच्चा कुछ पढ़ने लगता है उसे ऐसी पुस्तक मिल जाती हैं, जिनसे उसे संसार की गतिविधि का बहुत कुछ ज्ञान हो जाता है। ऐतिहासिक, भौगोलिक, सामरिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक कैसी भी घटना क्यों न हो, जैसे ही उसका हाल अख़बारों में छपता है वैसे ही बच्चों के लिए उसका ज्ञान चित्रों की पुस्तकों द्वारा करा दिया जाता है। इन पुस्तकों में सब से अधिक आकर्षक अन्तर्राष्ट्रीय विषयों की पुस्तकें होती हैं। इनमें छोटे हबशी बच्चों, चीन, भारत, मैक्सिको के मज़दूरों आदि के चित्र छापे जाते हैं। कहीं गुलामी की जञ्जीरों में बँधा हब्शी पीठ पर भारी बोझा ढो रहा है, कहीं भारतीय मज़दूर रुई की भारी गाँठें उठा रहा है, कहीं थकी-माँदी चीनी बालिकाएँ सूत कात रही हैं, और उनका निरीक्षक चुपचाप खड़ा हुआ उनका काम देख रहा है।

यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि इस प्रकार की पुस्तकों का मुख्य उद्देश्य बच्चों के सम्मुख एक ऐसा नवीन आदर्श उपस्थित करना है, जिससे साम्यवाद और संसार के श्रमजीवियों की एकता का भाव उनके हृदयों में अङ्कित हो जाय। रूस के शिक्षा-विभाग के अधिकारी भी इससे इनकार नहीं करते। इस सम्बन्ध में डॉ० मेकसिन ने स्पष्ट कहा है कि "प्रत्येक महान् सामाजिक और राजनीतिक उथल-पुथल के पश्चात् बच्चों के साहित्य की गति बदल जाती है और विजय प्राप्त

करने वाला दल अपने आदर्शों को उनके हृदयों में भरने की चेष्टा करता है।"

बच्चों की शिक्षा के सम्बन्ध में सब से अधिक ध्यान आकर्षित करने वाली वस्तु लेनिनग्राड का नवीन 'बाल-साहित्य स्कूल' है। इस स्कूल में क़रीब बीस युवक और युवतियों का एक समूह है जो किसी न किसी विषय के विशेषज्ञ हैं। ये लोग एक स्थान में सम्मिलित होकर बाल-साहित्य के सम्बन्ध में वाद-विवाद करते हैं और अपने-अपने विषय में आवश्यकीय सम्मति देते हैं। इस स्कूल के प्रधान सी० मर्शक हैं, जिनके पद्य बच्चों को बहुत अधिक पसन्द आते हैं। बच्चों के पढ़ने की पुस्तकों के सम्बन्ध में इन्होंने जो विचार प्रकट किए हैं; वे बड़े महत्वपूर्ण हैं। उनका कथन है :—

"हम चाहते हैं कि बच्चों की पुस्तकों के लेखकों को उन विषयों का पूर्ण अनुभव हो जिनको वे लिखते हैं। हमको बच्चों के सामने ख़ाली हाथ नहीं आना चाहिए और न निरर्थक बातें बता कर उनको ठगना चाहिए। विज्ञान युद्ध-क्षेत्र है न कि एक चेतना-शून्य वस्तु। प्रत्येक व्यक्ति को जो इस क्षेत्र में पैर रक्खे कोई नई चीज़ जाननी चाहिए। जैसा कि तुम जानते हो मानव-जीवन में बच्चा नाटक के तीसरे अङ्क के समान है और उसमें सौन्दर्य और अभिनय को अनुभव करने की शक्ति बड़ी प्रबल होती है। हमारे बच्चों के बस्तों में वर्तमान काल की समस्याओं का इतिहास होना आवश्यकीय है। वे अपने लिए केवल दर्शक की भाँति न समझें, क्योंकि उनमें से प्रत्येक भावी समाज का निर्माता है।"

पाठक इस लेख को पढ़ने के पश्चात् क्षण भर के लिए अपने देश के बाल-साहित्य पर दृष्टिपात करें। विशेष रूप से हिन्दी में इस अत्यावश्यक और महत्वपूर्ण विषय की जैसी दुर्दशा हो रही है, उसे सोच कर कलेजा मुँह को आने लगता है। विशेषज्ञों और कॉन्फ्रेन्सों की कथा तो दूर, यहाँ बच्चों की किताबें सबसे गए बीते और टकैहल लेखकों से तैयार कराई जाती हैं। ऐसी पुस्तकों द्वारा हमारे बच्चों का कैसा चरित्र निर्माण होगा और भविष्य में वे क्या बनेंगे यह बतलाना निरर्थक है।

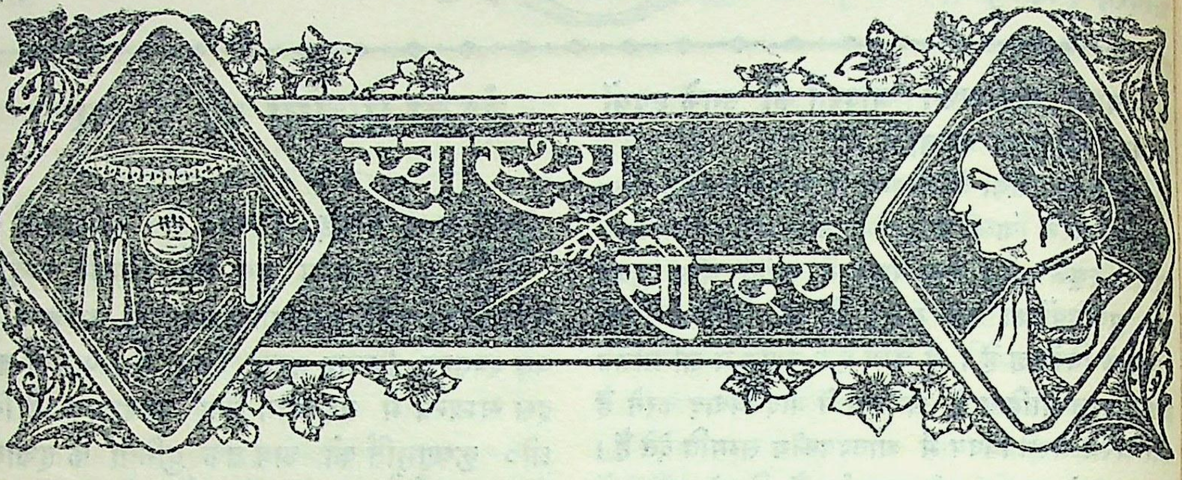
ईश्वर-प्रार्थना की असारता

हाल में बम्बई में श्री० जे० कृष्णमूर्ति के कई भाषण हुए थे, जिनमें उन्होंने धर्म, ईश्वर और आध्यात्मिकता के सम्बन्ध में बड़े स्वतन्त्र विचार प्रकट किए हैं। पाठकों को इस सम्बन्ध में यह जान लेना आवश्यक है कि श्री० कृष्णमूर्ति को अब तक दुनिया के हज़ारों शिक्षित और सभ्य व्यक्ति ईश्वरीय अवतार मानते रहे थे और वे 'ऑर्डर ऑफ़ दी स्टार ऑफ़ ईस्ट' नामक धार्मिक समुदाय के प्रधान धर्मगुरु थे। नीचे हम आपके एक भाषण का आशय, जो 'बॉम्बे-क्रॉनिकल' में प्रकाशित हुआ है, देते हैं, जिससे उनके वर्तमान विचारों पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है :—

वर्तमान समय में लोग मज़हबों के ग़ुलाम बने हुए हैं। इससे मनुष्यों की कार्य करने की स्वतन्त्रता में बड़ी बाधा पड़ती है। मज़हब का जन्म तभी हुआ, जब कि मनुष्य ने एक व्यक्ति की हैसियत से अपने उत्तर-दायित्व को भुला दिया। पर इस बुराई का प्रतिकार मज़हब और धर्मगुरुओं के नाश करने से नहीं हो सकता। स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करने के लिए आवश्यक है कि मनुष्य प्राचीन काल के अनुभवों और प्रचलित रूढ़ियों के बन्धन से मुक्त हो जाय। जब तक मनुष्य का दिमाग़ सामाजिक या धार्मिक धारणाओं द्वारा कुण्ठित रहेगा, तब तक वह अविनाशी सत्य को नहीं समझ सकता।

मैं ईश्वर-प्रार्थना की उपयोगिता में विश्वास नहीं रखता। क्योंकि इसका मूल कारण भय है। जबकि मनुष्य किसी अवाञ्छनीय बात से भयभीत होता है, तो वह उससे बचने के लिए प्रार्थना करता है। पर कष्टों से पीछा छुड़ाने का उपाय प्रार्थना करना नहीं है, वरन् अपनी बुद्धि और विवेक से काम लेकर कष्ट के कारण को मालूम करना है।

मनुष्य ने ईश्वर की सृष्टि अपनी आकृति और वासनाओं के अनुसार कर ली है। यह बतला सकना असम्भव है कि ईश्वर क्या चीज़ है।



नेत्र और उनके रोग

[श्री० बुद्धिसागर वर्मा, बी० ए०, एल-टी०]

नेत्र बड़े ही सुकुमार अङ्ग हैं। इसीलिए प्रकृति ने उन्हें इतना सुरक्षित रक्खा है। परन्तु हमारी असावधानी से उनमें फूली, जाला, माँड़ा, खुजली, ढरका, रतौंधी आदि अनेक रोग उत्पन्न होकर हमारे कष्ट का कारण हो जाते हैं। फलतः यथाशक्ति इन रोगों को दूर करने का उपाय शीघ्र से शीघ्र करना चाहिए। इसी से यहाँ पर हम नेत्र-रोग सम्बन्धी कुछ साधारण बातें बता देना चाहते हैं; किन्तु फिर भी नेत्रों का मामला नाज़ुक है, इसलिए किसी भी भयङ्कर रोग की दशा में किसी जानकार वैद्य अथवा डॉक्टर की सलाह अवश्य लेनी चाहिए।

एक माशा फिटकिरी का फूला प्रायः आधी छटाँक पानी में मिला कर 'लोशन' (Lotion) बना लिया जाय। इस लोशन को आँखों में डालने से धुन्ध, पानी जाना और जाला आराम होता है। जिनकी निगाह बुढ़ापे के कारण निर्बल पड़ गई हो, उन्हें सदा भीमसेनी कपूर आँखों में डालते रहना चाहिए। घेकुआर (घृतकुमारी) के गूदे पर पिसी हल्दी डाल कर गरम करके बाँधने से नेत्रों की पीड़ा, चोट की पीड़ा और लाली आदि दूर होती है। लाल चन्दन को जल में घिस कर पलकों पर लेप करने से भी नेत्रों की लाली और पीड़ा जाती रहती है। घेकुआर के रस की २-३ बूँदें कान में टपकाने से भी नेत्र-पीड़ा को लाभ पहुँचता है। २-३ माशे काली-मिर्च महीन पीस कर और उसमें इतना ही घी तथा कुछ मिश्री मिला कर सायं-प्रातः खाने से दुखती आँखें अच्छी हो जाती हैं। यदि इसका सेवन लगातार कुछ समय तक किया जाय, तो दृष्टि की निर्बलता दूर हो सकती है। सुनते हैं, मुण्डी बूटी की कुछ घुण्डियाँ बिना पानी के निगल जाने से एक वर्ष तक आँख नहीं दुखती। डेढ़ माशा अफ़ीम गरम पानी में घोल कर आँखों पर लगाने से भी आँखों का दुखना बन्द हो जाता है। रसौत को स्त्री के दूध में घिस कर नित्य लगाने से नेत्रों के बहुत से रोग दूर होते हैं। भोजनोपरान्त दोनों हथेलियों को आपसमें खूब रगड़ कर नेत्रों पर नित्य ४-५ बार फेर देना नेत्रों को नीरोग एवं स्वस्थ रखने का अनुभूत प्रयोग है।

पित्तपापड़ा के क्वाथ (जुशाँदा) में शहद मिला कर पीने से नेत्रों की जलन दूर होती है। गाय के कच्चे दुग्ध में कपड़ा भिगो कर उसकी तही करके ऊपर से पिसी हुई फिटकिरी डाल कर रखना भी यही गुण करता है। गाय का मक्खन भी लगाया जा सकता है। यह अनुभव-सिद्ध है कि साबुन को पानी में घिस कर आँखों में लगाने से रतौंधी रोग जाता रहता है। रतौंधी के रोगी को नित्य प्रातः ३ तोले शुद्ध गोघृत खिलावे और काली मिर्च तथा लौंग घोड़े की राल में महीन पीस कर अञ्जन की भाँति लगावे, तो बहुत लाभ होने की सम्भावना है। सम्हालू के पत्तों का रस आँखों में टपकाने से या प्याज़ अथवा पान के रस की २-३ बूँदें नेत्रों में डाल कर शीतल जल से धो डालने से भी रतौंधी जाती रहती है। स्त्री के दूध अथवा जल में रीठे की गुठली घिस कर आँजने से भी रतौंधी को बड़ा लाभ पहुँचता

है। बड़ के दूध में कपूर का बारीक चूर्ण मिला कर आँजने से और त्रिफले के जल से प्रतिदिन धोने से नेत्रों की खुजली दूर होती है। यदि नेत्रों से पानी जाता हो तो यह उपचार करे—बबूल की पत्तियाँ ८ गुने पानी में उबाले, जब पानी आठवाँ भाग रह जाय, तो मल कर छान ले और फिर आग पर चढ़ाए। जब वह शहद की भाँति गाढ़ा हो जाय, तो उसमें $\frac{1}{2}$ भाग स्वच्छ शहद मिला कर शीशी में रख ले। इस दवा को सलाई से अथवा योंही नित्य आँखों में लगावे तो नेत्रों की खुजली और ढरका आदि में बड़ा फ़ायदा होता है। शहद वैसे भी आँखों के लिए अमृत है। यदि नीम का शहद मिल सके तो और भी अच्छा। इसे नित्य आँखों में आँजते रहने से आश्चर्यजनक लाभ होता है। निर्मली को शहद में पीस कर लगाने से मोतियाबिन्द अच्छा हो जाता है। मिश्री और कलमी शोरा सम भाग महीन पीस कर नित्य सायं-प्रातः आँजते रहने से एक ही सप्ताह में माँड़ा कट जाता है। यह प्रयोग रतौंधी, आदि के लिए भी उत्तम प्रमाणित हुआ है। यदि आँखें नीली हो जायँ अर्थात् पहले तो स्याह हों फिर बाद में नीजगूँ हो जायँ तो हरे इन्द्रायन का अर्क़ नित्य आँखों में टपकाते रहना चाहिए। वाग्भट्ट का मत है कि यदि दातौन बाँई दाढ़ से चबाई जाय, तो नेत्रों में कोई रोग नहीं होता।

आँखों के रोहे

वैसे तो यह रोग किसी भी अवस्था में हो सकता है, किन्तु अधिकांश में रोग का प्रारम्भ बचपन में ही होता है। प्रारम्भ में रोगी को कोई विशेष कष्ट नहीं होता, केवल पढ़ने, धुआँ लगने या आँख के ऊपर अधिक प्रकाश पड़ने से पानी निकला करता है। प्रातःकाल आँख में ऐसी खटक होती है, मानों उसमें कुछ पड़ गया हो। रात को अधिक समय तक जागने पर खटक और भी अधिक होती है। पलक को उलट कर देखने से लाली मालूम पड़ती है और पलक के भीतरी भाग में बारीक-बारीक साबूदाने के समान कुछ-कुछ सफ़ेद या गुलाबी रङ्ग के दाने भी दिखलाई देते हैं। यह रोग जितना ही पुराना होता है, उतनी ही कठिनता से अच्छा होता है। इस रोग में कभी-कभी आँखों में छोटे-छोटे व्रण भी हो जाते हैं और उस समय मस्तक में तथा नेत्रों में असह्य वेदना होती है। आँखों से खूब पानी बहता है तथा प्रकाश सहन नहीं होता। यदि रोग अधिक समय तक टिक जाता है तो आँखों में छुरी पड़ जाती है और चमकीले गोल भाग की चमक कम हो जाती है। छुरी देखने में वैसी ही प्रतीत होती है जैसे घिसा हुआ काँच। ज्यों-ज्यों रोग की वृद्धि होती है, त्यों-त्यों छुरी गाढ़ी होती जाती है और निगाह कम होती जाती है। कभी-कभी तो छुरी के कारण आँख के भीतरी भाग में सूजन होकर दृष्टि बिल्कुल नष्ट हो जाती है। कितने ही रोगियों की पुतली का मध्य भाग पतला होकर सामने टेंट-सा निकल आता है। प्रायः ग्रामीण और मूर्खा स्त्रियाँ रोहों को खाँड़ की डली, मरे हुए पशुओं की जीभ अथवा अन्य किसी खुरखुरी और गन्दी वस्तु से रगड़ देती हैं। इससे खून निकलता है और पलक में सूजन उत्पन्न हो जाती है। यदि सूजन अधिक हुई या पलक को अधिक बार घिसा गया, तो वह भीतर को मुड़ जाती है और 'परबाल' हो जाते हैं।

प्रत्येक पलक के किनारे एक बालों की क़तार होती है। ऊपर की पलक के बाल नीचे और कुछ बाहर की ओर और नीचे की पलक के बाल ऊपर की ओर कुछ बाहर की ओर मुड़े हुए होते हैं। परन्तु पुराने रोहों के फल-स्वरूप ये बाल आँखों की पुतली की ओर मुड़ जाते हैं। बस इसी स्थिति का नाम 'परबाल' है। यह आँखों के लिए बड़ा ही ख़तरनाक होता है।

रोहों वाली आँख को लगा हुआ हाथ या कपड़ा, जैसे रूमाल या धोती का किनारा आदि, यदि दूसरी तन्दुरुस्त आँख में लग जाता है तो उसमें भी रोहे हो जाने की सम्भावना रहती है। यदि रोहों वाले रोगी के साथ दूसरे लोग खुली हवा में घूमें-फिरें, तब तो कोई डर नहीं, किन्तु जिन स्थानों में काफ़ी हवा या रोशनी नहीं पहुँचती, उनमें रोगी के साथ सोने से तन्दुरुस्त आँखों वाले व्यक्तियों को भी यह रोग हो जाता है। रोहों के रोगी को धूल, धुवाँ, धूप और धूम्रपान से बचना चाहिए। उन्हें अधिक लिखने-पढ़ने का काम भी न करना चाहिए।

रोहों की कोई रामबाण औषधि तो आज तक नहीं निकली। परन्तु कुछ दवाएँ अधिक बरती जाती हैं, उन्हीं का वर्णन यहाँ किया जाता है। नीलेथोथे

की सलाई रोहों की एक विशेष औषधि है। परन्तु इसका प्रयोग करने से प्रथम तीन बातों का निश्चय कर लेना चाहिए—(१) पुतली के ऊपर लाली न हो, (२) पुतली पर बारीक-बारीक घाव न हों, और (३) रोगी की आँखों को सूर्य के प्रकाश से बहुत नफ़रत न हो। नीलाथोथा का प्रयोग करने की अनेक विधियाँ हैं। उनमें से कुछ ये हैं—

(१) पलक को उलट कर उस पर नीलेथोथे की सलाई फेरने का अधिक रिवाज है। नीलेथोथे का एक टुकड़ा चिकने पत्थर पर पानी डाल कर घिस कर सलाई बनाई जा सकती है। यह सलाई उलटी हुई पलक पर मामूली तेज़ी से एक या दो बार फेर कर तुरन्त थोड़ी सी विलायती रूई आँख के कोए में दबा दें, इससे नीलेथोथे का पानी उधर को खिंच आएगा और पुतली को हानि न पहुँचेगी। यदि यह सँभाल न रक्खी जाय तो आँख के शुक्ल-मण्डल में घाव हो जाते हैं। उक्त सलाई पहले तीसरे दिन और फिर नित्य लगानी चाहिए।

(२) एक औन्स वेसलीन में ५ ग्रेन तक नीलाथोथा डाल कर मलहम बना लें और उसी को आँजें।

(३) एक औन्स पानी में २ से ४ ग्रेन तक नीलाथोथा डाल कर लोशन बना लें और आँखों में उसकी बूँदें टपकाएँ।

(४) १ तोला नीलाथोथा; १ तोला फिटकिरी; ४ तोला शोरा; सबको पीस कर एक चीनी के पात्र में आग पर चढ़ावें। सब चीज़ों के पिघल जाने पर उसमें ३ माशे भीनसेनी या सादा कपूर मिला दें और साँचे में ढाल कर सलाइयाँ बना लें। यह सलाई उलटी हुई पलक पर दिन में एक बार फेर लें।

यहाँ यह बतला देना भी आवश्यक है कि रोहों के लिए कोई भी दवा ६ मास से लेकर १२ मास तक लगातार नियमपूर्वक इस्तेमाल की जानी चाहिए।

ट्रेनिक एसिड का चूर्ण २० ग्रेन, एक औन्स शहद में मिला कर नित्य एक वक्त आँख में आँजा करें अथवा एक चम्मच सिरस के पत्तों के रस* में ४ चम्मच शहद मिला कर आँख में आँजते रहने से भी रोहों को लाभ होता है। यदि रोहों के कारण आँख में व्रण या छरी हो जाय, तो शीघ्र किसी नेत्र-चिकित्सक की सलाह लेनी चाहिए। छरी के लिए लाल गुञ्जे (घुँघची) का पानी अच्छा काम देता है। ६ दाने लाल गुञ्जे अधकचरे करके एक औन्स ठण्डे पानी में २४ घण्टे तक भिगो रक्खें, फिर छान कर २-३ दिन तक नित्य आँख में उसकी बूँद टपकाया करें। दूसरे या तीसरे दिन रोगी की आँख सूज जायगी और उससे पानी बहने लगेगा। तीसरे दिन पानी डालना बन्द कर दें और आँख को नित्य गरम जल अथवा बोरिक एसिड (Boric Acid) के पानी से धोता रहे।

साधारण रीति से नित्य व्यवहार के लिए रोहों के रोग में बोरिक एसिड का चूर्ण सुरमे की भाँति आँख में लगाया जाता है। आरजीरोल और प्रोटारगल एक औन्स पानी में २०-२५ ग्रेन तक डाल कर लोशन बना लिया जाय और इसकी बूँदें नित्य आँख में दोनों समय डाली जायँ।

भोजन—घृत का सेवन नेत्रों के लिए अत्यन्त हितकर है। धारोष्ण दुग्ध भी नेत्रों के लिए बहुत उपयोगी है। आँवला नेत्रों का ख़ास पोषक है। इसे जिस प्रकार जिस अवस्था में भी हो सके, नित्य सेवन करते रहना चाहिए। भोजनोपरान्त नियम से सदा सौंफ़ चबाना या पान में रख कर खाना कठिन से कठिन नेत्ररोगों से आयु-पर्यन्त सुरक्षित रखता है। शलजम, नारियल, मिश्री, हल्दी, ज़ीरा, केशर, दालचीनी, लौंग, मेवे, मुलहठी, हड़, कालीमिर्च, हींग आदि पदार्थों का सेवन नेत्रों के लिए हितकर है। नेत्रों को सुरक्षित रखने वालों को तेल, खटाई, बैगन तथा समस्त बादी पदार्थ, भुने हुए चने, जुवार आदि की अधिकता से यथाशक्ति बचना चाहिए। मदिरा, गाँजा, चरस तथा अन्य मादक-द्रव्यों को आँख का शत्रु समझो। कोकेन का अधिक सेवन भी नेत्रों के लिए अहितकर है। तम्बाकू खाने-पीने और सूँघने का आम रिवाज पड़ गया है। आरोग्यता-पद्धति के रचयिता श्रोत्रिय पं० लक्ष्मीधर शर्मा वैद्यराज तम्बाकू के विषय में लिखते हैं:—"परीक्षा से अच्छी तरह निर्णय हो चुका है कि तम्बाकू खाने से आँख, दाँत एवं मस्तिष्क निर्बल पड़ जाते हैं तथा बुद्धि भी मन्द हो जाती है।" शिलाजीत, ब्राह्मी, च्यवनप्राश, शङ्खपुष्पी बूटी आदि का नियमपूर्वक सेवन नेत्रों की ज्योति को ख़ूब बढ़ाता है।

* यह रस ४ दिन से अधिक अच्छा नहीं रहता। —लेखक



मेरी आह—लेखक, श्रीयुत परिपूर्णानन्द जी वर्मा। आकार डबल क्राउन सोलह पेजी, पृष्ठ-संख्या १०७, मूल्य ।।।) छपाई और काग़ज़ साफ़ और आवरण-पृष्ठ सचित्र।

श्रीयुत परिपूर्णानन्द जी वर्मा हिन्दी के विचित्र लेखक हैं। जिस विषय पर क़लम उठाते हैं, उसी पर कुछ न कुछ लिख डालते हैं। कहानी, दर्शन, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, अर्थशास्त्र—लीजिए, एक उपन्यास भी लिख डाला। ख़ुदा जाने कोई विषय छोड़ेंगे या नहीं। अस्तु, 'मेरी आह' एक छोटा सा सामाजिक उपन्यास है और 'हिन्दू-मुस्लिम सांस्कृतिक ऐक्य का प्रतिपादन तथा मानवी जीवन की विडम्बना और निस्सारता का किञ्चित् प्रदर्शन' कराने के उद्देश्य से लिखा गया है। हमारे ख़याल में लेखक ने अपने उद्देश्य में सफलता भी प्राप्त की है। कथानक और वर्णन-शैली रोचक है। हिन्दू-मुस्लिम दङ्गों के तुच्छ कारणों पर भी अच्छा प्रकाश डाला गया है। भाषा भी बोलचाल की है।

मीना बाज़ार—लेखक, श्रीयुत हनूमानप्रसाद शर्मा। पृष्ठ-संख्या १४८; मूल्य १)

इस पुस्तक में लेखक महोदय की तेरह कहानियाँ संग्रहीत हैं और इसकी भूमिका हिन्दी के सिद्धहस्त भूमिका-लेखक श्री० शिवपूजनसहाय जी ने लिखी है। ये कहानियाँ सामयिक पत्रों में भी एक बार छप चुकी हैं, परन्तु भूमिका-लेखक के कथनानुसार लेखक ने, जो वैद्यशास्त्री भी हैं, इन्हें 'मकरध्वज खिला कर' पुस्तक-रूप में प्रकाशित कराया है। कुछ भी हो, कहानियाँ अच्छी हैं। इनमें कला है या नहीं, यह तो कलाविद ही बता सकते हैं, परन्तु इनमें शिक्षा अवश्य है। कहानियों की भाषा सीधी-सादी और परिमार्जित है।

विदेशी दैनिक पत्र—लेखक, श्रीयुत विनोदशङ्कर व्यास। पृष्ठ-संख्या ३४; मूल्य ।)

यह फ्रेडरिक कार्टर की लिखी 'सिक्रेट्स् ऑफ़ योर डेली पेपर' नाम की पुस्तक के आधार पर लिखा हुआ, व्यास जी का एक लेख है, जो काशी के पाक्षिक 'जागरण' के कई अङ्कों में छप चुका है। प्रकाशकों ने इसे पुस्तिक का रूप देकर बड़ा काम किया है। क्योंकि हिन्दी के अख़बार वालों के लिए इसमें बड़े काम की बातें हैं। साधारण पाठक भी इससे बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

प्रेम-कहानी—लेखक, श्री० विनोदशङ्कर जी व्यास। पृष्ठ-संख्या ५४, मूल्य ।।)

विक्टर ह्यूगो फ्रान्स का विश्वविख्यात उपन्यास-लेखक था और डोस्टावेस्की रूस का। इस छोटी सी पुस्तिका में इन्हीं दोनों साहित्य-महारथियों की आप-बीती प्रेम-कहानियाँ हैं और हैं, बड़ी ही रोचक। पुस्तक में दोनों लेखकों और उनकी प्रेमिकाओं के चित्र भी हैं।

विनोदशङ्कर व्यास की ४१ कहानियाँ—आकार डबल क्राउन १६ पेजी, पृष्ठ-संख्या ३७७; मूल्य २)

'मनसुखा' के शब्दों में 'व्यास जी गल्प-लेखकों की नाक हैं।' परन्तु हमारे ख़याल में कोई गल्प-लेखक व्यास जी को अपनी नाक के रूप में चेहरे पर चिपकाना स्वीकार न करेगा, इसलिए व्यास जी नहीं, वरन् उनकी

कहानियाँ, हिन्दी कहानियों की नाक हो सकती हैं। क्योंकि वे सुन्दर होती हैं और सुडौल भी ! व्यास जी छोटी कहानी लिखने में सिद्धहस्त हैं और जिस तरह महाकवि बिहारी के दो सतर के दोहे में भावगाम्भीर्य लहराता है, उसी तरह व्यास जी की छोटी सी कहानी में भी मनों 'कहानीपन' निहित होता है। यह संग्रह व्यास जी की कहानियों के कई संग्रहों का समष्टि है। सभी कहानियों में रोचकता और मौलिकता, भाषा का सौष्ठव और सुन्दर वर्णन-शैली है।

महाकवि चच्चा—लेखक, श्रीयुत अन्नपूर्णानन्द जी वर्मा; आकार डबल क्राउन १६ पेजी, पृष्ठ-संख्या १४१, मूल्य १)

'मेरी हजामत' और 'मगन रहु चोला' के बाद 'महाकवि चच्चा' के रूप में यह तीसरी हास्य-रस की पुस्तक श्री० अन्नपूर्णानन्द जी ने लिखी है और ख़ूब सफल भी हुए हैं। इसमें देश की सामाजिक, साहित्यिक, राजनीतिक और धार्मिक त्रुटियों पर बड़ा ही मज़ेदार विद्रुप किया गया है। कहीं-कहीं तो लेखक ने कमाल कर दिया है। शैली भी सम्पूर्ण मौलिक है। 'चाँद' के पाठकों से हमारा साग्रह अनुरोध है कि 'महाकवि चच्चा' अवश्य पढ़ें। क्योंकि इसमें मनोरञ्जन भी है और शिक्षा भी।

अश्रुदल—लेखक, श्रीयुत मङ्गलाप्रसाद विश्वकर्मा, विशारद। आकार डबल क्राउन १६ पेजी, पृष्ठ-संख्या १५६; मूल्य ।॥)

इसमें विश्वकर्मा जी की स्मृति, प्रताड़ित, कुसुम, अदृष्ट और ज़हर के टुकड़े—ये पाँच कहानियाँ संग्रहीत हैं। इस संग्रह के सम्बन्ध में 'दो शब्द' 'सरस्वती' के भूतपूर्व सम्पादक श्री० पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी ने लिखा है। सचमुच कहानियों में भावुकता और मौलिकता है। कई कहानियाँ तो बड़ी ही हृदयग्राहिणी हुई हैं।

उपर्युक्त सभी पुस्तकें बलदेव-मित्र-मण्डल, राजा दरवाजा, बनारस सिटी से मिल सकती हैं और वही इनका प्रकाशक भी है।

'सुधा' (विशेषाङ्क)—सम्पादक श्री० दुलारेलाल भार्गव।

लखनऊ की सहयोगिनी 'सुधा' ने अपना दिसम्बर का अङ्क एक बृहद् विशेषाङ्क के रूप में निकाला है। 'चाँद' के आकार के ४८२ पृष्ठों का यह विशेषाङ्क हिन्दी के बहुत से प्रतिष्ठित लेखकों और कवियों की रचनाओं का यह सुन्दर संग्रह है। एकरङ्गे और बहुरङ्गे चित्र भी हैं। अङ्क संग्रह करने योग्य बना है। मूल्य १॥) मिलने का पता—'सुधा' कार्यालय, ३६, लाटूश रोड, लखनऊ।

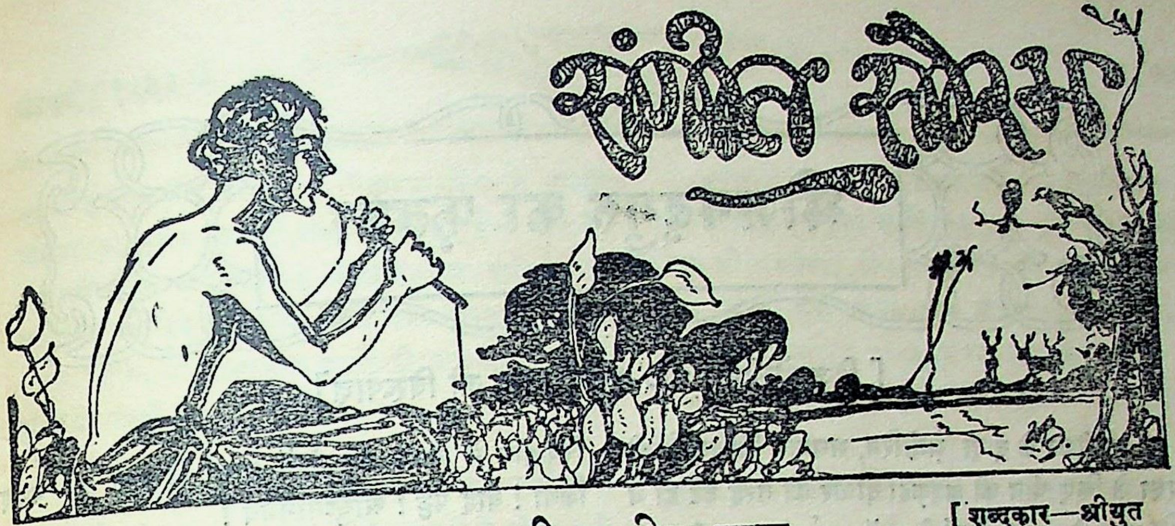
'विश्वमित्र'—(मासिक) सम्पादक डॉ० हेमचन्द्र जी जोशी, डी० लिट् और श्री० इलाचन्द्र जोशी। आकार 'चाँद' जैसा, वार्षिक मूल्य ६), एक संख्या का मूल्य ।॥) ; प्रकाशक विश्वमित्र कार्यालय, कलकत्ता।

साप्ताहिक और दैनिक के साथ ही 'विश्वमित्र' अब मासिक रूप में भी प्रकाशित होने लगा है। सम्पादन, चित्र, छपाई और सफ़ाई आदि सभी दृष्टियों से मासिक 'विश्वमित्र' सुन्दर हो रहा है। अब तक जितने अङ्क निकले हैं, सभी सुन्दर और उपयोगी विषयों से पूर्ण हैं। हम सहयोगी का सादर स्वागत करते हुए उसकी उन्नति की कामना करते हैं।

'प्रकाश'—सम्पादक श्री० नरसिंहराम जी शुक्ल, आकार क्राउन, पृष्ठ-संख्या १८, वार्षिक मूल्य २॥), मिलने का पता—प्रकाश कार्यालय, रीवाँ।

यह साप्ताहिक पत्र अभी हाल से ही निकलने लगा है। इसमें सामयिक समाचार-संग्रह के अतिरिक्त अन्य उपयोगी विषय भी रहते हैं। सम्पादन अच्छा होता है, परन्तु उन्नति की गुञ्जाइश है। भारत के एक देशी राज्य से निकलने के कारण इस नवीन सहयोगी का हम तहे-दिल से स्वागत करते हैं। यह चिरञ्जीवी हो।

—'गुणग्राही'



[स्वरकार—श्रीयुत नीलू बाबू

भूपाली—तीन ताल

[शब्दकार—श्रीयुत नीलू बाबू]

स्थायी—समझ लो मतलब का संसार ।
सुख हित लोग जगत में अपना, करता है व्योपार ॥
अन्तरा—मातु पिता सुत दारा परिजन, प्रेम करे दिन चार जगत में ।
कष्ट पड़े जब बात न पूँछे, बन्धु सखा अरु नार ॥

स्थायी

	१				×				३				०		
सं	ध	सं	प	—	ग	प	ध	प	ग	प	ग	रे	स	—	—
स	म	झ	लो	—	म	त	ल	ब	का	आ	स	ं	सा	—	र
ग	ग	रे	ग	रे	—	रे	रे	स	रे	ग	रे	स	स	ध़	—
सु	ख	हि	त	लो	—	ग	ज	ग	त	में	ए	अ	प	ना	—
प़	ध़	स	रे	ग	प	ध	प	सं	ध	रें	सं	ध	प	ग	रे
क	र	ता	आ	ह	ए	वे	यो	पा	आ	आ	आ	आ	आ	आ	आर

अन्तरा

ग	—	ग	ग	प	—	ध	प	सं	—	सं	—	ध	रें	सं	सं
मा	—	तु	पि	ता	—	सु	त	दा	—	रा	—	प	रि	ज	न
ध	—	ध	ध	सं	—	रें	रें	सं	रें	गं	रें	सं	सं	ध	—
प्रे	—	म	क	रे	—	दि	न	चा	आ	र	ज	ग	त	में	—
गं	—	गं	गं	रें	—	गं	गं	सं	—	रें	रें	ध	—	सं	—
क	—	ष्ट	प	ड़े	—	ज	ब	बा	—	त	न	पू	—	छे	—
ग	—	ग	रे	ग	प	ध	सं	ध	रें	सं	ध	प	ग	रे	स
बं	—	धु	स	खा	आ	अ	रु	ना	आ	आ	आ	आ	आ	आ	आर

श्रीजगद्गुरु का फ़तवा

[हिज़ होलीनेस श्री० वृकोदरानन्द जी विरूपाक्ष]

कालीकट के दादा ज़मोरिन, भगवान विश्वमूर्ति की रक्षा के लिए चीन की क़हक़हा दीवार की तरह डटे ही थे कि ऊपर से सनातनियों ने उन्हें 'धर्म-धीर महावीर' की उपाधि दे डाली। लीजिए, फिर क्या है—'एक तो तित-लौकी दूसरे नीम चढ़ी!'

❀

ख़ैर, 'महावीर' के पीछे यह 'धर्म-धीर' शब्द वैसा ही फ़िट हो गया है, जैसे हनूमान जी के पीछे उनकी लम्बी दुम। बस, अब बाबा विश्वमूर्ति के अभिभावकों को चाहिए कि लगे हाथ कुछ चिथड़े और दो-चार टीन किरासन तेल का भी जुगाड़ कर डालें, ताकि इन कलि-युगी हनूमान जी को अपनी बुद्धि की अन्तिम बानगी दिखाने का भी काफ़ी सामान मुहय्या हो जाए।

❀

क्योंकि पक्की 'महावीरता' का प्रदर्शन तो तभी होगा, जब अछूतोद्धारक मनोषियों की चिताओं में आग लगाने पर—"पूँछ बुझाई खोइ श्रम धरि लघु रूप बहोरि" ये सनातनी महावीर जी डट जायँगे मूँछों पर ताव देते हुए बाबा विश्वमूर्त्ति के सामने, जैसे हनूमान जी लङ्का जला कर सीता जी के सामने जा डटे थे।

❀

तब तक सनातनियों को चाहिए कि अपनी पेंदी का बल यह सिद्ध करने में लगा दें कि—'हरिजन हिन्दू ही नहीं हैं।' वल्लाह, यह नुसख़ा सबसे अधिक मुजर्रब साबित होगा और सनातनधर्म का भविष्य पॉलिश किए हुए जूते की तरह चमक उठेगा!

❀

अपने राम को यह जान कर प्रसन्नता हो रही है कि इस सम्बन्ध में चिरञ्जीव 'वर्णाश्रम स्वराज-सङ्घ' ने ठुमुक कर अपना क़दम आगे भी बढ़ा दिया है। अन्यान्य सनातनी तो डाल ही थामे रह गए थे, परन्तु हमारे चिरञ्जीव ने लपक कर दोनों हाथों से मूल ही पकड़ लिया! वाह पट्ठे! आयुष्मानभव!

❀

यानी, उस दिन ख़ास गुरुवायूर में 'वर्णाश्रम स्वराज-सङ्घ' (वल्लाह, ऐसा श्रुति-मधुर नाम है, जैसे इस्लाम कुली पाँड़े!) का एक जलसा हुआ और उसके स्वागता-ध्यक्ष ने बग़ैर किसी शर्म व-लिहाज़ के बरजस्ता कह डाला कि 'हरिजन हिन्दू नहीं हैं!' और क्या? भाड़ में जाय हरामज़ादी हया! कौन पड़ा रहे, उसके फेर में जो है सो?

❀

इसी सभा में एक चण्डूख़ोर से चिपके चेहरे वाले बङ्गाली तर्करत्न जी भी विराजमान थे। ये जब गुरुवायूर के मन्दिर में जाने लगे थे, तो पण्डों ने इन्हें मत्स्यभोजी बङ्गाली कह कर बाहर निकाल दिया था। मगर चूँकि लज्जा और आत्माभिमान आदि व्यर्थ के बखेड़ों को आपने बङ्गाल में ही छोड़ दिया था, इसलिए निर्विकार चित्त से—'शालारा बड़ो पाजी तो!' गुनगुनाते हुए बाहर निकल आए थे। ख़ैर—

❀

बङ्गमाता के यशस्वी 'खोका बाबू' अर्थात् पण्डित-प्रवर तर्करत्न जी ने फरमाया—'ये अस्पृश्य जो हैं सो आर्यों की जारज सन्तान हैं!' भई वाह, ऐसी पावरत्ती बावन तोले की कही कि सभा वाले फड़क कर रह गए और अपने पूर्व-पुरुषों की प्रशंसा सुन कर होंठ चाटने लगे। अपने पूर्वजों की ऐसी प्रशंसा सुन कर भला, कौन ख़ुश न होता।

❀

मगर आपने क्या समझा? अच्छा, सुनिए—बक़ौल तर्करत्न, सनातनियों के पुरखे पक्के लम्पट थे; घर-घर में घुस कर जारज सन्तान उत्पन्न करते फिरना उनका काम

था और अन्त में इतने दोग़ले पैदा कर दिए कि उनकी तादाद इस समय करोड़ों तक पहुँची हुई है ! वाह रे, सनातनियों के बाबा-दादा ! वल्लाह, उस समय अगर सुप्रसिद्ध अमेरिकन कुमारी मिस मेयो भारत का भ्रमण करने आतीं, तो तत्कालीन आर्यों की करामात देख कर मुग्ध हो जातीं ।

❀

सो जनावआली, अगर आप 'तुख़्म की तासीर' के क़ायल हैं, तो समझ सकते हैं कि बुज़ुर्गों के औसाफ़ से औलाद ख़ाली नहीं रह सकती । ऐसी हालत में वर्णाश्रम स्वराज-सङ्घ वाले जो कुछ कर रहे हैं, बजा कर रहे हैं, अपने बाप-दादों की अमर कीर्ति को अमर और अक्षुण्ण रखने की चेष्टा कर रहे हैं । योग्य पिता की योग्य सन्तान को यही तो चाहिए ।

❀

कुछ भी हो साहब, दादा सनातन-धर्म के प्रत्येक आशिक़ेज़ार को यह जान कर परम प्रसन्नता होगी कि गाँधी बाबा के आन्दोलन का असर दादा जी के अनुयायियों के दिमाग़ की तह तक पहुँच गया है और अगर ख़ुदा ने चाहा तो अब की 'पागलपन' की दवा बेचने वालों की पौ-बारह रहेगी !

❀

अच्छा तो हाँ, महात्मा गाँधी जी इस मुल्क में कैसे आए और उन्होंने इतनी सफलता कैसे प्राप्त कर ली ; इसका भी एक राज़ उक्त बङ्गाली तर्करत्न ने फ़ाश कर दिया है । आख़िरश जब खोपड़ी का 'पिहान' खुल ही गया था, बेचारे कुछ बाक़ी कैसे छोड़ देते ?

❀

कलकत्ते के एक पत्र में आपने यरवदा-जेल से जाकर गाँधी जी से मिलने का विवरण छपवाया है । उसमें आप लिखते हैं—"मैंने गाँधी जी से कहा, जब आप अफ़्रिका में काम कर रहे थे तो मैंने आपकी सफलता के लिए ईश्वर से प्रार्थना की थी कि हे ईश्वर, इस वीर पुरुष को यहाँ भेज दो । यहाँ आने पर आपके लिए गीतामृतवल्ली का पाठ कराया । भगवान ने मेरी प्रार्थनाएँ पूरी कीं । अब अगर आपके द्वारा धर्म की हानि हो तो मुझे भी उसके लिए अपराधी होना पड़ेगा ।"

❀

अपराधी ? एकदम कुम्भिपाक में जाना पड़ेगा और वह भी पुश्त-दर-पुश्त के लिए ! साथ ही वह कमबख़्त ईश्वर भी न बचेगा, जिसने तर्करत्न की बातों में आकर गाँधी जी को यहाँ भेजा था । फलतः जनाब, अपनी मूर्खतावश ये तर्करत्न जी ख़ुद तो नरकगामी होंगे ही, साथ ही अपने ईश्वर को भी लेते जाएँगे । वही कहावत होगी कि—

"कुटुम्ब सहित नरकहिं चला, साथ लिए जजमान !"

❀

ख़ैर, "नहीं बोया तुख़्म अच्छा तो कब पाएगा फल अच्छा !" अभागे तर्करत्न जी को अपना कर्म-फल भोगने दीजिए और गाँधी-युग के इतिहास की यह अनूठी सामग्री संग्रह कर लीजिए कि महात्मा गाँधी की वर्तमान सफलता के हेतु यही तर्करत्न जी हैं । न ये बङ्गमाता के अनूठे लाल जन्म लेते और न गाँधी जी का आविर्भाव होता ।

❀

पड़ोस के धोबी का गधा रोज़मर्रा हाजी साहब के चबूतरे पर चढ़ जाता और वहाँ लीद करके गन्दा कर जाता । हाजी परेशान थे । रोज़ दुआ माँगते कि या अल्लाह, धोबी का यह गधा मर जाय । इत्तफ़ाक़ की बात, एक रोज़ हाजी का घोड़ा बीमार पड़ा और मर गया ! अब तो हाजी बिगड़ उठे और आस्मान की ओर मुँह करके बड़े ज़ोर से अल्लाह को डाँटा—इतने दिन ख़ुदाई करते बीते, मग़र अभी तक तुम्हें घोड़े और गधे की भी तमीज़ न हुई !

❀

ठीक यही दशा उपर्युक्त तर्करत्न के ईश्वर की है । उसने उनके कहने से गाँधी जी को अफ़्रिका से यहाँ भेज तो दिया, परन्तु साथ ही उनसे ऐसा काम कराना आरम्भ किया कि बेचारे तर्करत्न की आक़बत ही बिगड़ गई । इसलिए अपने राम की राय है कि अब तर्करत्न जी अपने ईश्वर की मतिगति दुरुस्त करने के लिए 'गीतामृतवल्ली' का पाठ आरम्भ करें ।

❀

केवल बङ्गाल के तर्करत्न ही नहीं, काशी के विद्यावाचस्पति, तर्कवागीश, वेदान्तशास्त्री और व्याकरणाचार्य भी इस अस्पृश्यता-विरोधी आन्दोलन के कारण कुकरौंछी-विताड़ित जीव विशेष की तरह व्याकुल हैं ।

यहाँ तक कि जब 'हँपों-हँपों' करते-करते कण्ठ सूखने लगता है तो फ़ौरन 'दुलत्ती' झाड़ना आरम्भ कर देते हैं।

❀

आइए, काशी का एक क़िस्सा सुनावें। उस दिन श्री० भगवानदास जी के सभापतित्व में एक सभा हो रही थी। उद्देश्य था, यह निर्णय करना कि अस्पृश्यता शास्त्र-सम्मत है या नहीं? सनातनी शास्त्रियों ने ढेले बरसा कर अपने कुल-परम्परागत पाण्डित्य और शास्त्र-ज्ञान का ऐसा परिचय दिया कि बेचारी सभ्यता को दुम दबा कर वहाँ से नौ-दो-ग्यारह हो जाना पड़ा।

❀

परन्तु बी बेहयाई तो कुछ ऐसे कमज़ोर दिल की हैं नहीं; उन्होंने चट लहँगा समेटा और उछल कर जा पहुँचीं एक शास्त्री-सुवन की खोपड़ी पर और तुरन्त ही खाद-पानी का प्रयोग करके इसकी (खोपड़ी की) उर्वरता की ऐसी वृद्धि कर दी कि देखने वाले चकित रह गए!

❀

बी बेहाई के गोबर-पानी की गन्ध मिली तो सनातनी-सरस्वती के मुँह में भी पानी भर आया। वे फ़ौरन अपने मन्जुल कर-कञ्जों में वीणा लिए उपर्युक्त टेल्हाराम अर्थात् शास्त्री-सुवन की जिह्वा पर आ विराजीं और वे बोल उठे—'सभापति (आचार्य भगवानदास जी) संस्कृत कम जानते हैं, उन्होंने मनुस्मृति का जो श्लोक सुनाया है, उसका अर्थ ग़लत बताया है।' वाह पट्ठे! 'बाप न मारी मेंडकी और बेटा तीरन्दाज़!'

❀

किसी ने पूछा—तो आपही कृपा करके मनुस्मृति के उस श्लोक का शुद्ध अर्थ बता दीजिए। लाहौल बिला कुव्वत! अजी, ये टेल्हाराम कोई तोता-मैना थोड़े ही थे, जो मनुस्मृति का श्लोक और अर्थ उन्हें याद होता। उन्होंने एक बार सिर खुजलाया और फिर कृतज्ञ दृष्टि से पृथिवी की ओर देखा, जिसकी छाती पर उनके जैसे बहुत से भू-भार मौजूद हैं, परन्तु वह उफ़ तक नहीं करती!

❀

ख़ैर, एक दूसरे चिरञ्जीव चहक उठे—'मनुस्मृति का श्लोक क्या कोई दोहा है, जो कोई उसे रट कर आवे!' बोल सनातनधर्म की जय! वल्लाह, कैसी मार्केदार बात कह डाली! धन्य हो दादा सनातनधर्म! सचमुच विधाता ने तुम्हारी तक़दीर बड़े ही मज़बूत क़लम से लिखा है। जब ऐसे-ऐसे सभाचतुर प्रत्युत्पन्नमति पण्डित तुम्हारे सहायक हैं, तो दो-चार दर्जन सूर्य और चन्द्र तो तुम्हारे आस-पास का अन्धकार दूर ही नहीं कर सकते, फिर गाँधी और मालवी की क्या हस्ती है!

❀

यह प्रसन्नता की बात है कि काशी की विद्वन्मण्डली अस्पृश्यता और स्पृश्यता के निर्णयार्थ पोथी-पत्रा और शास्त्र-पुराण के झगड़े में नहीं पड़ना चाहती। अजी, जब लाठी-सोंटा, ढेला-ईंट और परमपिता परमात्मा का प्रदान किया हुआ, हाथ, दाँत और नख मौजूद ही हैं, तब नाहक़ बेचारी पोथियों को क्यों तकलीफ़ दी जाय। मतलब तो धर्म-रक्षा से है, न कि पाण्डित्य-प्रदर्शन से।

❀

और ये बेचारी पोथियाँ इन बाल की खाल निकालने वाले पण्डितों के सामने रखने के लिए थोड़े ही हैं। इनकी रचना तो आचार्यों ने की थी, उनके लिए जो उन पर श्रद्धा रखते हैं, फूल और चन्दन द्वारा उनकी पूजा करते हैं और उन पर 'नग़द-नारायण' चढ़ाते हैं। जिससे जो है सो भगवती तोंद की पूर्त्ति होती है और—मगर किसी से कहिएगा नहीं—जजमानों की आँख बचा कर कभी-कभी दाल की मण्डी की भी सैर हो जाती है।

❀

इस समय अगर शास्त्रों के अर्थ आदि पर बहस-मुबाहसा हो तो कमबख़्त अख़बार वाले उसे छाप कर भण्डाफोड़ कर दें और जनता उसका वास्तविक अर्थ समझने लगे। तो फिर आप ही अपने बाप के मत्थे पर हाथ धर कर बताइए, कि दक्षिणा की डौल पर पानी फिर जाय या नहीं? कहीं लोगों को मालूम हो जाए कि धर्म और ईश्वर सबके लिए हैं तो धर्म की ठीकेदारी ही टूट जाए।

❀

आपको पता नहीं, पञ्जाब के जालन्धरियों ने वहाँ कोई दलितोद्धार मण्डल क़ायम कर रक्खा है। इस मण्डल ने कुछ हिन्दी जानने वाले अछूतों को पुरोहिती

की शिक्षा देनी आरम्भ कर दी है। अब ये अपना ब्याह और श्राद्ध आदि स्वयं कर लेंगे और दक्षिणा रक्खेंगे, सँभाल के अपनी अण्टी में! भला, यह अनर्थ नहीं तो क्या है?

❀

इसीलिए कहते हैं, कि भैया, अगर अपना कल्याण चाहते हो, और बाल-बच्चों को जठर-ज्वाला से बचाए रखना चाहते हो, तो इस अवसर पर पोथियों को पवित्र विदेशी कपड़े के पीले बेठन में कस कर बाँध लो और उठा कर पण्डिताइन जी की गहने वाली पिटारी में बन्द कर दो। सभा-समितियों का काम तब तक दाँतों और नखों से चला लो। धर्म के नाम पर इनका भी सदुपयोग हो जायगा और दक्षिणा का डौल भी बना रहेगा।

❀

अर्थ का अनर्थ मूर्खों के सामने चल सकता है, विद्वानों के सामने नहीं। परन्तु लाठी-ढेले और दाँत-नख की गति तो अबाध है। चाहो तो बाप का भी मुँह नोंच लो। ज़बान को लगाम देने की आवश्यकता नहीं, कुछ घोड़े थोड़े ही हैं, जो लगाम दें। फलतः आचार्य के लकड़दादा जी भी जिस विद्वान की जूतियों का तसमा खोलने की योग्यता न रखते हों, उसके सम्बन्ध में भी यह कह देने में कि 'ये संस्कृत नहीं जानते', कुछ बुराई नहीं! क्योंकि अपने तो बाबा विश्वनाथ की कृपा से 'धृष्ट' ठहरे। अपने को क्या?

❀

ज़रा परदादा के लकड़दादा को तो देखो, कैसे चतुर-चूड़ामणि त्रिकालदर्शी महापुरुष थे। पहले से ही एक श्लोक बना कर रख दिया कि शास्त्र पढ़ने का अधिकार सबको नहीं है। यही नहीं, अगर उनके मुँह से निकला हुआ कोई वेद-मन्त्र किसी शूद्र के कानों में घुस जाता तो वे न तो अपने मुँह को पीटते और न उस मन्त्र को गोबर और गोमूत्र से धोकर शुद्ध करते, बल्कि उसी शूद्र को पकड़वा मँगाते और उसके कानों में सीसा गला कर ढलवा देते! आख़िर धर्मपरायण ऋषि थे कि नहीं?

❀

और उसी पवित्र कुल में उत्पन्न होकर तुम ऐसे नालायक़ हो जाओगे कि शरीर में शक्ति रहते और दाँतों में समूची सुपारी तोड़ने का बल रखते हुए, सभा में—शूद्र और अस्पृश्य आदि सबके सामने शास्त्रों के अर्थ पर विचार करने बैठोगे? राम-राम! भला ऐसा अनर्थ! ऋषियों का विमल वंश डूब थोड़े ही गया है।

❀

इस समय प्रत्येक असली ऋषि-सन्तान का कर्त्तव्य है कि वह सनातन-धर्म के शरीर पर जमी हुई युग-युगान्तर की काई को रत्ती भर भी अलग न होने दे। शास्त्र और पुराण तो क्या, वेदों के बाप भी अगर आकर कहें कि हिन्दू-मात्र को मन्दिरों में जाने का अधिकार है, विधवा-विवाह शास्त्र-सम्मत है, बाल-विवाह बेवक़ूफ़ी है और वृद्ध-विवाह पाप है, तो कदापि नहीं मानना चाहिए। इसके लिए जितनी भी बेवक़ूफ़ी करते बने, कर डालो। यही तो अवसर है; इसी दिन के लिए तो बेचारी (बेवक़ूफ़ी) मस्तिष्क में पैर फैलाए बैठी है।

❀

ख़ैर, जिस तरह महात्मा गाँधी ने अस्पृश्यों के लिए आन्दोलन करके सनातन-धर्म की जड़ में मट्ठा डाल दिया है, उसी तरह इलाहाबाद हाईकोर्ट के माननीय जजों ने भी एक भीषण अनर्थ कर डाला है।

❀

क़िस्सा यों है कि अलीगढ़ के बाबा देवीनाथ ने अपने चेले को देवी की बलि चढ़ा दी! सो, इस सम्पूर्ण धर्मानुमोदित कार्य के लिए बाबा को 'धर्मधीर महावीर' की पदवी देना तो दूर रहा, उलटे अलीगढ़ के सेशन जज साहब ने उन्हें बलिदान का 'टेस्ट' लेने के लिए फाँसी पर चढ़ जाने की आज्ञा दे दी और इलाहाबाद-हाईकोर्ट ने सेशन जज के फ़ैसले को बहाल रक्खा!

❀

आशा है कि काशी के सनातनी पण्डित और उनका टेलहा-मण्डल शीघ्र ही इलाहाबाद हाईकोर्ट के विरुद्ध कोई 'फ़तवा' देगा। क्योंकि हाईकोर्ट ने दिन-दहाड़े एक पवित्र धर्म-कार्य में हस्तक्षेप करके एक देवी-भक्त के धर्म-विश्वास को धक्का पहुँचाया है। हालाँकि ब्रिटिश-सरकार की अटल प्रतिज्ञा है कि वह किसी के धर्म-विश्वास पर आघात न करेगी।



पूछते हैं सब तबीयत किस पे है आई हुई,
तेरी बदनामी का बायस[1] मेरी रुसवाई हुई।
इसमें है आँधी की ताक़त, इसमें है दरिया का ज़ोर,
क्या तबीयत रोकने से रुक सके आई हुई।
जो हमें वह बेवफ़ा भी, बेवफ़ा कहने लगा,
तर्के-उलफ़त[2] से हमारी और रुसवाई हुई।
हो गए ख़ुश जब कोई मजमा नज़र आया मुझे,
रो लिए जी खोल कर जिस वक़्त तनहाई हुई।

—"नूह" नारवी

ज़िन्दगी पहले बहुत फिरती थी इतराई हुई,
आख़िर-आख़िर मौत की ख़ुद ही तमन्नाई[3] हुई।
दे पयामे-गुल[4] क़फ़स[5] वालों को ऐ बादेसबा,[6]
क्या दबे पाँवों चली जाती है कतराई हुई।
हो गए क्या-क्या न जलवे बज़्मे-आलम[7] से निहाँ,
मेरी आँखें ढूँढती हैं उनको घबराई हुई।

—"ज़िया" देवान्दपुरी

तोड़ कर दिल को उसी ने दिल के टुकड़े कर दिए,
जिस पे थी मेरी तबीयत टूट कर आई हुई।
दम के दम में दम पलट आया हमारा वक़्ते-नज़आ,[8]
तुम जो आए, तो क़ज़ा भी टल गई आई हुई!

—"कुश्ता" गयावी

क्या तबीयत मनचली भी रङ्ग है लाई हुई,
इस पे मचली, उस पर आई, इसकी शैदाई हुई,

१—कारण, २—प्रेम का त्याग, ३—अभिलाषिनी, ४—फूलों का सन्देश, ५—पिंजड़ा, ६—पूर्वी हवा ७—संसार की महफ़िल, ८—अन्तिम समय।

शमआ कहती है पतिङ्गे ख़ाक जल कर हो गए,
क्या भरी महफ़िल में मेरी आज रुसवाई हुई।

—"हुनर" गयावी

तू दिखा कर एक झलक ऐ छुपने वाला छुप गया,
क्या ख़बर तुझको कि दुनिया तेरी शैदाई हुई।
हम तो समझे थे कि क़ैदे-ज़िन्दगी से छुट गए,
टल गई लेकिन हमारी मौत भी आई हुई!

—"बेदिल" इलाहाबादी

इश्क़ोउलफ़त की कहानी लब पे है आई हुई,
फिर वही दुहरा रहा हूँ, बात दुहराई हुई।
आपके वहशी को वहशत में भी अच्छा शग़ल है,
गिन रहा है धज्जियाँ दामन की सुलझाई हुई।

—"शैदा" आज़मगढ़ी

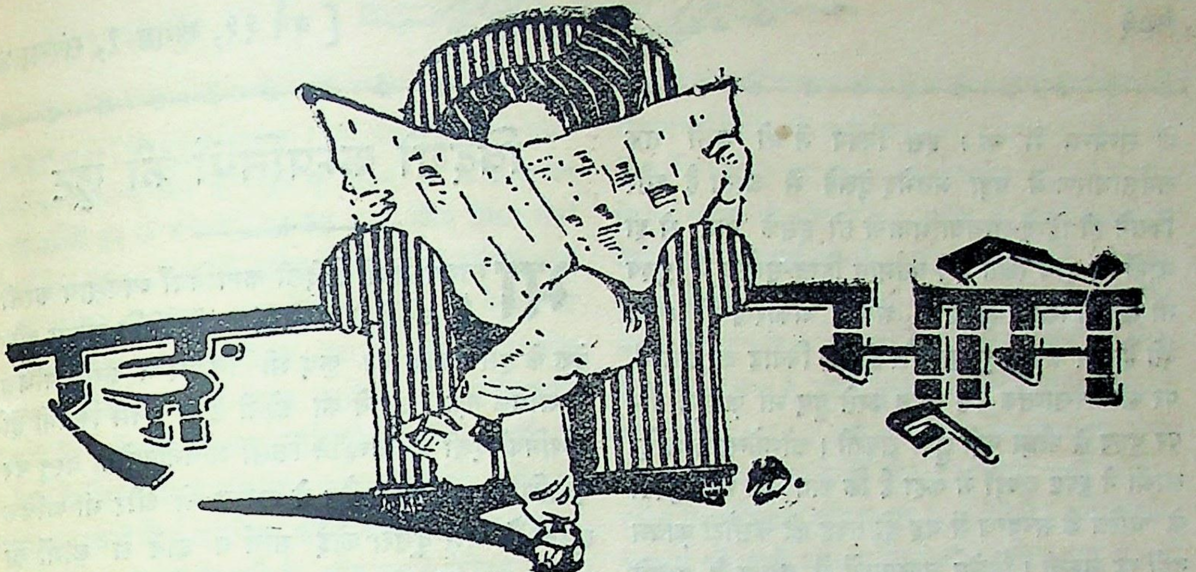
सहने-गुलशन[9] में यह किसकी जलवा-फ़रमाई[10] हुई,
नाज़ से बादेसबा चलती है इठलाई हुई।

—"हक़ीर" रायबरेलवी

बाद एक मुद्दत के दोनों में शिनासाई हुई,
ज़िन्दगी थी मौत से इस दर्जा घबराई हुई।
नक़्श ज़र्रे-ज़र्रे पर तस्वीरे-रुसवाई हुई,
मेरी मुश्ते-ख़ाक[11] है दुनिया की ठुकराई हुई।
पुरसिशे-आमाल[12] से ख़िलक़त[13] है घबराई हुई,
हश्र की दुनिया में, दुनिया भर की रुसवाई हुई।
क्यों न ऐ सय्याद, अब रग-रग में बिजली दौड़ जाय,
दिल जलाने को गुलों पर है बहार आई हुई।

—"बिस्मिल" इलाहाबादी

९—बाग़ का मैदान, १०—शुभागमन, ११—मुट्ठी भर ख़ाक, १२—करतूत की पूछताछ, १३—दुनिया।



[सम्पादकीय]

महिला-सम्मेलन

इस बार का महिला-सम्मेलन, जिसका अधिवेशन बड़े दिन की छुट्टियों में लखनऊ में हुआ था, इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि भारतीय महिलाएँ भी संसार-व्यापी परिवर्तन के प्रभाव से बची नहीं हैं। यह सच है कि वे अभी तक पहले के समान ही घर-गृहस्थी के झमेले में पड़ी हैं और उसी भाँति पुरुषों की सेवा में जीवन बिता रही हैं, पर उनके मानसिक क्षेत्र में महान परिवर्तन हो रहे हैं। यद्यपि इन परिवर्तनों की ध्वनि अभी बहुत सौम्य है, पर उससे इतना अवश्य प्रकट होता है कि स्त्रियाँ अब अधिक समय तक वर्तमान अधिकारविहीन अवस्था में नहीं रह सकेंगी। उनके ऊपर जो सामाजिक अन्याय सैकड़ों-हज़ारों वर्षों से होते आ रहे हैं, उनका अब वे स्वयं अनुभव करने लगी हैं और उनके विरुद्ध आवाज़ भी उठाने लगी हैं। अब तक हमारे यहाँ सामाजिक अथवा अन्य सार्वजनिक मामलों में स्त्रियों का कोई स्थान न था ; पुरुष ही इन विषयों में निर्णयकर्ता समझे जाते थे। पर अब स्त्रियाँ समस्त क्षेत्रों में 'पूर्ण समानता' का दावा करने लगी हैं। वे अपने लिए नागरिकता के उन तमाम अधिकारों को माँग रही हैं, जो पुरुषों को प्राप्त हैं। केवल वादविवाद करने वाली कमिटियों और कौन्सिलों में ही नहीं, वरन् सब प्रकार की सरकारी नौकरियों और व्यवसायों में भी वे अपने लिए स्थान चाहती हैं। उत्तराधिकार और सम्पत्ति के अधिकार के सम्बन्ध में भी वे बराबरी का दावा करती हैं और अनिवार्य रूप से किसी न किसी पुरुष की आश्रिता बन कर रहना पसन्द नहीं करतीं। ख़ैर, ये परिवर्तन और सुधार तो ऐसे हैं, जिनकी चर्चा स्त्रियों में बहुत समय से किसी न किसी रूप में होती चली आई है, पर कॉन्फ्रेन्स ने दो प्रस्ताव ऐसे पास किए हैं, जो स्त्रियों के दृष्टिकोण में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो जाने की सूचना देते हैं। जिन प्रश्नों के सम्बन्ध में अभी अधिकांश पुरुष भी हिचकिचाते हैं, उनको स्त्रियों ने साहसपूर्वक उठाया है और उनके सम्बन्ध में मार्के के प्रस्ताव पास किए हैं। ये प्रस्ताव सन्तान-निग्रह और तलाक़-प्रथा के सम्बन्ध में हैं। सन्तान-निग्रह का प्रस्ताव गत वर्ष भी कॉन्फ्रेन्स में पेश किया गया था। पर प्रतिनिधियों की बहुत बड़ी संख्या ने उसके विरुद्ध मत दिया और उसके पक्ष में केवल सात मत आए थे। पर इस बार तख़्ता आश्चर्यजनक रूप से लौट गया। प्रस्ताव के विरुद्ध केवल सात हाथ उठे और वह बहुत बड़े बहुमत से पास हो गया। यह घटना बतला रही है कि हवा किस रुख़ को बह रही है। प्रस्ताव में केवल सन्तान-निग्रह का औचित्य और आवश्यकता ही स्वीकार नहीं की गई है, वरन् म्युनिसिपैलिटियों और लोकल बोर्डों से अनुरोध किया गया है कि वे इसके लिए विशेष रूप से 'क्लिनिक' क़ायम करें, जहाँ पर जनसाधारण को इस सम्बन्ध में व्यवहारिक उपाय बतलाने का प्रबन्ध हो। दूसरा प्रस्ताव तलाक़-प्रथा

के सम्बन्ध में था। इस विषय में भी अभी तक सर्वसाधारण में बड़ा मतभेद देखने में आता है और कितने ही हिन्दू-सभ्यताभिमानी तो इसके नाम से ही कानों पर हाथ रखते हैं। वर्तमान हिन्दू-समाज में पुरुष तो स्त्री को किसी कारण से अथवा अकारण ही त्याग देते हैं और अपना दूसरा और तीसरा विवाह कर लेते हैं, पर स्त्री मरणान्तक कष्ट सहन करते हुए भी क़ानूनी तौर पर पुरुष से पीछा नहीं छुड़ा सकती। कॉन्फ्रेन्स में महिलाओं ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि अब स्त्री और पुरुषों के चरित्र के सम्बन्ध में यह दो तरह की कसौटी क़ायम नहीं रह सकती। विशेष अवस्थाओं में तलाक़ दे सकने का अधिकार स्त्रियों को मिलना आवश्यकीय है। वे वैवाहिक सम्बन्ध को कितनी ही पश्चिमी महिलाओं की भाँति खिलवाड़ की चीज़ नहीं बनाना चाहतीं, पर जहाँ पति-पत्नी का सम्बन्ध निभ सकना असम्भव हो और शोचनीय परिणाम उत्पन्न हो रहे हों, वहाँ स्त्री को इसकी अनुमति मिलनी ही उचित है। उदाहरण के लिए यदि पति कुष्ठ-रोग में ग्रसित हो अथवा वह नपुंसक हो, तो उस दशा में पत्नी को उसके साथ रहने को विवश करना अन्याय है। यदि कोई स्त्री उस अवस्था में भी उसे त्यागना न चाहे, तो यह उसकी इच्छा की बात है, पर जो इस अवस्था को अपने और अपनी सन्तान के लिए हानिकर समझती हैं, उनके लिए कोई मार्ग अवश्य होना चाहिए। इन दो प्रस्तावों के अतिरिक्त कॉन्फ्रेन्स ने अछूतों के सम्बन्ध में भी एक प्रस्ताव पास किया है, जिसमें इस प्रथा को मिटाने पर बहुत अधिक ज़ोर दिया गया है। अब तक स्त्रियाँ ही मुख्यतः रूढ़ियों की पोषक समझी जाती हैं और अनेक बार वे ही सुधार के कार्य में पुरुषों की बाधक होती हैं और इस दृष्टि से यह प्रस्ताव विशेष महत्वपूर्ण है। कॉन्फ्रेन्स की समस्त कार्यवाही पर दृष्टिपात करने से भारतीय रमणियों की जागृति में सन्देह नहीं रह जाता। सम्भव है, कुछ लोगों को ये लक्षण चिन्ताजनक प्रतीत हों, पर संसार की गति को देखते हुए ये अनिवार्य हैं। भावी राष्ट्र-निर्माण में स्त्रियों का स्थान बहुत बड़ा और महत्वपूर्ण है और इस दृष्टि से स्त्रियों में स्वाधीनभाव का उदय मङ्गल-जनक ही समझा जाना चाहिए।

❀ ❀ ❀

विदेशी कम्पनियों की लूट

भारतवर्ष में जो विदेशी कम्पनियाँ व्यवसाय करती हैं, उनमें से अधिकांश की नीति जनता और देश के हानि-लाभ का कुछ भी विचार न करके अधिक से अधिक नफ़ा उठाने की होती है। इनमें कितनी ही कम्पनियाँ ऐसी हैं, जिन्होंने किसी जीवनोपयोगी वस्तु पर एकाधिपत्य कर लिया है। ये जनता को और भी अधिक लूटती हैं और दूसरा कोई मार्ग न होने से लोगों को उनका अन्याय सहन करना पड़ता है। इस बात की सचाई का एक बहुत स्पष्ट उदाहरण हाल में मिला है। भारतवर्ष में मिट्टी के तेल और पेट्रोल का व्यवसाय मुख्यतया बर्मा-शेल आयल कम्पनी के हाथों में है। इस कम्पनी के डायरेक्टर, शेयर होल्डर और मैनेजिङ्ग एजेण्ट आदि सब विदेशी हैं। इसका कोई विशेष प्रतिद्वन्दी न होने से यह अब तक तेल और पेट्रोल आदि के मनमाने दाम लिया करती थी। यदि कभी कोई साधारण प्रतिद्वन्दी उत्पन्न हो जाता था तो उसे भी अन्य कम्पनियों के समान ही ऊँची दर में माल बेचने को लाचार किया जाता था, और यदि वह इस पर राज़ी नहीं होता था तो माल की दर एकदम घटा कर उसके कारबार को नष्ट कर दिया जाता था। पर इस बार इस सम्बन्ध में एक विशेष घटना हुई है। बम्बई में एक नई कम्पनी 'वेस्टर्न इण्डिया कम्पनी' के नाम से स्थापित हुई है, जो रूस से पेट्रोल और तेल मँगा कर भारत में बेचती है। इसका पेट्रोल इस देश में बिकने वाले पेट्रोल से बहुत सस्ता और बढ़िया होने के कारण ख़ूब बिकने लगा है। यह देख कर बर्मा-शेल आयल कम्पनी में हलचल मच गई है। उसने तुरन्त अपने पेट्रोल का दाम बम्बई में १ रु० १० आना गैलन से घटा कर १ रु० गैलन कर दिया है, क्योंकि नई कम्पनी १-)॥ अथवा १=) गैलन के हिसाब से अपना पेट्रोल बेचती थी। पर अन्य स्थानों में पहली दर से ही माल बेचा जा रहा है, वरन् कहीं-कहीं उसका दाम दो पैसा फ़ी गैलन और बढ़ा दिया गया है। यह शायद इसलिए कि जिससे बम्बई-ब्राञ्च का घाटा पूरा हो सके। पर अब 'वेस्टर्न इण्डिया कम्पनी' भी अपना क्षेत्र बढ़ा रही है और आशा की जाती है कि उसका तेल थोड़े ही दिनों में भारत के

समस्त शहरों में पहुँच जायगा। जब ऐसा होगा तो बर्मा-शेल कम्पनी अवश्य ही वहाँ भी बम्बई की तरह अपना माल सस्ते दर से बेचेगी। पर वह इसके लिए तैयार नहीं कि बिना इस प्रकार की प्रतिद्वन्दिता के ही वाजिब नफ़ा लेकर जनता के हाथ माल बेचे। बम्बई में पेट्रोल का भाव एकाएक १० आने गैलन घटा देने से यह तो स्पष्ट है कि बर्मा-शेल कम्पनी बहुत अधिक नफ़ा लेकर माल बेचती है और यदि वह चाहे तो अपने माल की दर हमेशा के लिए कम से कम चार-छः आने गैलन के हिसाब से घटा सकती है। पर ऐसा करने के बजाय वह व्यापार की मन्दी का रोना रो रही है और उसके मैनेजर साहब कहते हैं कि यदि रूस का तेल इसी तरह फैलता गया तो ढाई लाख हिन्दुस्तानियों और बर्मियों की रोज़ी मारी जायगी। उनका आशय यह है कि रूस के तेल से भारत का तेल-व्यवसाय चौपट हो जायगा और उसमें लगे हुए भारतीय मज़दूर बेकार हो जायँगे। पर इस प्रकार का भय निरर्थक है और इस भय के कारण भारत के करोड़ों ग़रीब लोग, जिनके लिए एक पैसा भी बड़ी चीज़ है, सदा मँहगे दर से तेल ख़रीदते रहें, यह भी न्यायोचित नहीं कहा जा सकता। जब संसार के समस्त देशों में सस्ते दर से तेल और पेट्रोल बिक रहा है, तो कोई कारण नहीं कि बर्मा-शेल आयल कम्पनी वैसा न कर सके।

क्या अछूत हिन्दू नहीं?

स्वार्थ और हठवादिता जो न करा दे वही थोड़ा है। यह बात आजकल कट्टरपन्थी सनातनियों के विषय में पूरी तरह चरितार्थ होती है। जब से अछूतों के मन्दिर-प्रवेश का आन्दोलन चला है, तब से वे सच-झूठ, उचित-अनुचित, न्याय-अन्याय का विचार त्याग कर हर तरह से उसका विरोध करने को तुल गए हैं। इस आवेश में वे यह भी भूल जाते हैं कि उनके मुँह से जो बात निकल रही है, वह युक्ति-सङ्गत भी है या नहीं और उससे उनका कल्याण होगा अथवा अकल्याण। ऐसी ही भावना के वश होकर उनमें से कुछ लोग यहाँ तक कह बैठते हैं कि 'अछूत हिन्दू ही नहीं हैं!' पाठक इसको कोरी दिल्लगी न समझें। गुरुवायूर में होने वाली सनातनधर्मियों की कॉन्फ़्रेन्स की स्वागत-समिति के चेयरमैन दीवान बहादुर रामचन्द्र अय्यर ने, जो मद्रास के एक बहुत बड़े और प्रसिद्ध वकील हैं, अपने भाषण में केरल प्रान्त के अछूतों को अहिन्दू बतलाया है। उनका कहना है कि ये अछूत 'हिन्दू-लॉ' की सीमा से बाहर हैं, उनके देवता और मन्दिर अन्य जाति के हिन्दुओं से भिन्न हैं, और वे अब से पहले किसी ज़माने में हिन्दू-मन्दिरों में नहीं गए। इन तमाम कारणों से वे अछूतों का हिन्दू होना स्वीकार नहीं करते और इस प्रकार उनके मन्दिर-प्रवेश के अधिकार की जड़ ही काट देते हैं। यदि दीवान बहादुर की बातों को हम थोड़ी देर के लिए सच मान लें तो क्या वे अन्य प्रान्तों के अछूतों का, जिनका शासन 'हिन्दू-लॉ' के अनुसार होता है और जिनका कोई पृथक् देवता या मन्दिर नहीं है, हिन्दू होना स्वीकार करेंगे और उनको मन्दिर-प्रवेश का अधिकार देने को राज़ी होंगे? केरल प्रान्त के अछूतों में कुछ प्रथाएँ ऊँची जाति के हिन्दुओं से भिन्न होंगी, पर इनके आधार पर उनको 'हिन्दू-लॉ' से बाहर नहीं समझा जा सकता। हिन्दुओं की सैकड़ों अन्य जातियों में भी कुछ अपनी विशेष प्रथाएँ प्रचलित हैं और अदालत को 'हिन्दू-लॉ' के साथ उनका भी ध्यान रखना पड़ता है। 'हिन्दू-लॉ' में साधारणतया तलाक़ का विधान नहीं है, पर कितनी ही जातियों में पति-पत्नी का सम्बन्ध विच्छेद हो सकने का नियम पाया जाता है, इससे क्या वे अहिन्दू हो जायँगी? केरल प्रान्त के नायरों में विवाह और उत्तराधिकार की जो अद्भुत प्रथा प्रचलित है और जिसके अनुसार पुत्र के बजाय पुत्री घर की मालकिन बनती है, उससे क्या उनको अहिन्दू कहा जायगा? हिन्दू-समाज तो अनगिनती जातियों और उनसे भी बहुसंख्यक प्रथाओं का अजायबघर है, इसमें भिन्नता के आधार पर किसी को हिन्दुत्व से अलग कर सकना सम्भव नहीं। यही बात देवताओं और मन्दिरों के बारे में है। हिन्दू किसी एक देवता की पूजा नहीं करते। वे ३३ करोड़ में से कम से कम एक हज़ार देवताओं की तो मूर्ति बना कर पूजा करते ही होंगे। उत्तरी प्रान्तों में कितने ही लोग कबीरपन्थी हो गए हैं, जिनके मन्दिर हिन्दुओं के साधारण मन्दिरों से बिलकुल निराले होते हैं। यही हाल राधास्वामी और अन्य अनेक पन्थ वालों का है, तब इनको भी हिन्दू-जाति

के दायरे से बाहर निकालना चाहिए। जैनियों का धर्म तो हिन्दुओं से सर्वथा भिन्न है और उनके देवता तथा मन्दिर भी सर्वथा अलग होते हैं। तब उनकी गिनती हिन्दुओं में क्यों की जाती है और उनको हिन्दू-मन्दिरों में घुसने से क्यों नहीं रोका जाता? सच तो यह है कि 'हिन्दू' शब्द का दायरा बहुत फैला हुआ है और जो कोई व्यक्ति अपने को हिन्दू कहता है और हिन्दू-संस्कृति के अनुसार आचरण करता है, वही हिन्दू है। विशेषकर अछूतों को, जो हिन्दू-जाति के स्तम्भ हैं, हिन्दू न मानना तो परले सिरे की मूर्खता और अज्ञानता है। आज भी जब हिन्दू जाति और धर्म पर विपत्ति आती है और जब ऊँची जाति के हिन्दू दुम दबा कर घरों में घुसने लगते हैं, तो ये अछूत ही रक्षक बनते हैं। यदि कट्टरपन्थियों की बात मान कर चार या पाँच करोड़ अछूतों को हिन्दुओं से पृथक् कर दिया जाय, तो कुछ ही दिनों में समस्त हिन्दू जाति स्वयं अछूतों की दशा को प्राप्त हो जायगी।

❀ ❀ ❀

भारत का वस्त्र-व्यवसाय

बम्बई की 'मिल ओनर्स एसोसिएशन' की तरफ़ से हाल ही में एक रिपोर्ट प्रकाशित हुई है, जिससे भारत के वस्त्र-व्यवसाय पर अच्छा प्रकाश पड़ता और यह भी विदित होता है कि भारतवासी अगर निश्चय कर लें तो जीवन-निर्वाह की इस आवश्यकीय सामग्री के सम्बन्ध में शीघ्र ही स्वावलम्बी बन सकते हैं। उक्त रिपोर्ट के अनुसार इस समय समस्त भारत में कपड़े की ३४० मिल हैं, जिनमें ३१७ पिछले वर्ष चलती रही हैं। इन मिलों में ४० करोड़ २२ लाख रुपए लगे हैं, जो गत वर्ष की अपेक्षा १२ लाख अधिक हैं। काम करने वाले मज़दूरों की संख्या क़रीब ४ लाख है, जिनमें रात में काम करने वाले सम्मिलित नहीं हैं। रिपोर्ट से प्रतीत होता है कि गत वर्ष के स्वदेशी आन्दोलन का प्रभाव इस व्यवसाय के लिए बहुत शुभ हुआ है। क्योंकि पिछले वर्ष जहाँ कुल मिला कर २६ लाख १० हज़ार रुई की गाँठें (१ गाँठ ४ मन ३० सेर की होती है) इन मिलों में खपी थीं, इस वर्ष २९ लाख १० हज़ार गाँठों की आवश्यकता पड़ी। तकुओं और करघों की संख्या में भी क्रमशः २ लाख और ४ हज़ार की वृद्धि हुई है। इस वृद्धि में सबसे पहला स्थान अहमदाबाद का है, जहाँ ९० हज़ार नए तकुए और २½ हज़ार करघे लगाए गए हैं। बङ्गाल भी इस सम्बन्ध में अच्छी उन्नति कर रहा है और आशा है कि कुछ दिनों में वह इस व्यवसाय का ख़ासा केन्द्र बन जायगा। बङ्गाल में स्वदेशी कपड़े की खपत बहुत अधिक है, पर अधिकांश माल बम्बई और अहमदाबाद से ही आता है। इस वर्ष वहाँ २० नई मिलों के खोलने की तैयारी हो रही है। इन लक्षणों से इस व्यवसाय का भविष्य बहुत आशापूर्ण जान पड़ता है। अगर मिलों के मालिक अपने प्रबन्ध में और अधिक उन्नति करें तथा कम से कम कुछ समय के लिए अधिक से अधिक लाभ उठाने की प्रवृत्ति को त्याग कर देशहित की दृष्टि से काम करें, तो इससे अधिक वृद्धि हो सकेगी और देश की आर्थिक स्थिति बहुत-कुछ सुधर जायगी।

❀ ❀ ❀

भारत के पतन का कारण जात-पाँत

लाहौर में होने वाली जात-पाँत-तोड़क कॉन्फ्रेन्स के सभापति सर हरीसिंह गौड़ अपने अभिभाषण में हिन्दू-जाति की निर्बलता का ज़िक्र करते हुए प्रश्न करते हैं:—

"जिस जाति की आध्यात्मिकता की ज्योति से अब भी समस्त एशिया प्रकाशित हो रहा है और जिसकी किरणें दूरवर्ती मेक्सिको और नार्वे तक जा पहुँची थीं, जैसा कि हाल की खोजों से प्रकट हुआ है, उसके वर्तमान शोचनीय पतन का क्या कारण हो सकता है? इस देश के मनुष्य ज्यों के त्यों हैं, वे उसी आबहवा और परिस्थिति में रहते हैं, उनकी संख्या पहले से दस गुनी हो गई है। तो भी वे संसार की समस्त छोटी-बड़ी जातियों की अपेक्षा अत्यन्त निर्बल और असहाय बने हुए हैं, इसका क्या कारण है?" वे स्वयं इस प्रश्न का उत्तर देते हैं—"हमारे समाज के ढाँचे के सिवाय और कोई चीज़ नहीं बदली है। इस ढाँचे ने समाज की जीवनी शक्ति का शोषण कर लिया है और उसकी एकता के आधार को नष्ट कर डाला है। इसने एक भाई को दूसरे भाई से लड़ाया है और उनको परस्पर में विश्वासघाती बना

दिया है। हमारे चरित्र का, जिसकी प्राचीन काल के लेखकों ने अत्यन्त प्रशंसा की है, पतन हो गया है, हमारा जीवन आनन्दशून्य हो गया है और हम कुत्ते-बिल्ली की तरह ज़िन्दगी बिताने लगे हैं।"

इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दू-समाज की वर्तमान दुर्दशा और निर्बलता का मूल कारण जात-पाँत का अभिशाप ही है। कहने वाले कह सकते हैं कि जाति-प्रथा किसी समय बड़ी उपयोगी थी और इसी ने विदेशियों के आक्रमण से समाज के अस्तित्व और विशुद्धता की रक्षा की है। ऐसे लोगों की ख़ातिर अगर थोड़ी देर के लिए चतुर्वर्ण की उपयोगिता स्वीकार भी कर ली जाय, तो उन ३॥ हज़ार जातियों का, जिनका वर्णन मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट में पाया जाता है, औचित्य किसी प्रकार सिद्ध नहीं हो सकता। इनके कारण केवल हमारे फूट के भाव की वृद्धि होती है, हम छोटे-छोटे टुकड़ों में बँट जाते हैं और किसी महान कार्य के लिए अपनी शक्ति का उपयोग सम्मिलित रूप से नहीं कर सकते। इसी के फल-स्वरूप हमको अपने से कहीं छोटी और कम योग्यता वाली जातियों के पञ्जे का शिकार होना पड़ता है। यही हमारे यहाँ की अनेक राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक बुराइयों का मूल कारण है। अगर हम अब भी अपनी जाति और देश की रक्षा करना चाहते हैं, और चाहते हैं कि संसार की दूसरी जातियाँ हमको तिरस्कार और घृणा की दृष्टि से न देखें, तो हमको पूर्ण शक्ति लगा कर अपनी जड़ खोखली करने वाली इस महा-व्याधि से छुटकारा पाने की चेष्टा करनी चाहिए।

❀ ❀ ❀

शक्कर के कारख़ानों की उन्नति

जब से टेरिफ़ कमिटी की सिफ़ारिश के आधार पर सरकार ने विदेशी शक्कर पर सवा सात रुपया प्रति हण्डर की चुङ्गी लगाई है, तब से भारतीय शक्कर के कारख़ानों की बड़ी उन्नति हुई है और उनकी संख्या दिन पर दिन बढ़ती जाती है। सन् १९३०-३१ में भारत में ३,५५,००० टन शक्कर तैयार हुई थी, जिसका परिमाण सन् १९३१-३२ में ४,२०,००० टन तक पहुँच गया है। अकेले संयुक्त-प्रान्त में इस वर्ष १८ नए कारख़ाने खोलने की तैयारी हो रही है। तो भी अभी इस सम्बन्ध में उन्नति की बड़ी गुञ्जायश है, क्योंकि इस समय भी भारत में जितनी शक्कर तैयार होती है, उससे कहीं अधिक विदेशों से आ रही है। टेरिफ़ कमिटी की रिपोर्ट से मालूम होता है कि सन् १९०८ में विदेश से ५ लाख टन शक्कर भारत में आई थी। सन् १९३० में इसका परिमाण बढ़ कर १० लाख टन तक जा पहुँचा। यद्यपि आर्थिक सङ्कट और अन्य कारणों से यह संख्या सन् १९३१ में ६ लाख टन रह गई, तो भी इसके लिए एक बहुत बड़ी धन-राशि देश से बाहर चली जाती है। इस वृद्धि का एक मुख्य कारण जनता में गुड़ के स्थान में शक्कर का उपयोग बढ़ाते जाने की प्रवृत्ति है। अन्यथा कोई कारण न था कि इस समय देश में शक्कर के इतने कारख़ाने खुल जाने पर भी विदेशों से सन् १९०८ की अपेक्षा अधिक शक्कर आती। इस परिस्थिति का प्रतिकार केवल इस देश में नए कारख़ाने खोल कर उनमें बढ़िया सफ़ेद शक्कर तैयार करने से ही हो सकता है। भारत में गन्ने के लिए उपयोगी भूमि की कमी नहीं है और यहाँ की आबहवा भी उसके अनुकूल है। गत वर्ष क़रीब २७ लाख एकड़ भूमि में गन्ना बोया गया था। अभी तक इसका अधिकांश गुड़ बनाने के काम आता है। पर गुड़ की क़ीमत इन दिनों बेहद घट गई है और इसलिए किसानों की अपार क्षति हो रही है। गुड़ के अलावा कितने ही स्थानों में पुराने तरीक़े से शक्कर भी बनाई जाती है, पर उसमें लागत बहुत अधिक पड़ती है और वह किसी तरह फ़ैक्टरियों में बनने वाली शक्कर से प्रतियोगिता नहीं कर सकती। फ़ैक्टरी में जहाँ गन्ने से ९-१० प्रति सैकड़ा शक्कर निकलती है, वहाँ पुराने तरीक़े से केवल ५ या ६ प्रति सैकड़ा निकलती है। इसलिए किसानों को गन्ने का उचित मूल्य भी तभी मिल सकता है, जबकि उससे बढ़िया शक्कर बनाई जाय। विशेषज्ञों के कथनानुसार गुड़ या पुराने तरीक़े से शक्कर बनाने से जहाँ किसानों को गन्ने का मूल्य ३-४ आना प्रति मन के हिसाब से मिलता है, वहाँ फ़ैक्टरी वाले अगर ईमानदारी से काम लें तो कम से कम ६-७ आना मन दे सकते हैं। इस दृष्टि से शक्कर के कारख़ानों की उन्नति देश की आर्थिक दशा और किसानों के हित दोनों की दृष्टि से वाञ्छनीय है।

❀ ❀ ❀

आत्म-निवेदन

गत मास के 'चाँद' में पाठकों ने संस्था पर होने वाले कुछ नए प्रहारों का विस्तृत विवरण पढ़ा होगा। पाठकों ने देखा होगा, कि गवर्नमेण्ट का कहना है कि जब तक संस्था से मेरा सम्बन्ध रहेगा, तब तक यहाँ से प्रकाशित होने वाले पत्र-पत्रिकाओं में "ऐसे प्रकाशनों की सम्भावना है, जो भारतीय दण्ड-विधान की कई धाराओं तथा ऑर्डिनेन्सों के अनुसार दण्डनीय हैं.... इत्यादि !"

पाठकों को विस्मरण न करना चाहिए कि मैंने संस्था का जन्म व्यापारिक दृष्टि से नहीं दिया था। मेरा एकमात्र लक्ष्य देश तथा समाज की सेवा करना था और मुझे इस बात का सन्तोष है कि पिछले लगभग ग्यारह वर्षों से मैंने अपने इस व्रत का ईमानदारी से पालन किया है, पर उस समय मैं संस्था का एकमात्र स्वामी था; मेरी नीति में हस्तक्षेप करने का अधिकार किसी को न था, मैंने जो चाहा किया और अपनी स्वतन्त्र प्रकृति के कारण लाखों रुपए स्वाहा भी कर दिए; पर गत वर्ष से भविष्य में और भी ठोस एवं व्यापक सेवा करने की भावनाओं से प्रेरित होकर मैंने संस्था को एक लिमिटेड कम्पनी का रूप दिया। मेरा अनुमान था कि देश में ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं है, जो निःस्वार्थ भाव से कम्पनी के हिस्से ख़रीद कर इस पुनीत कार्य में संस्था की सहायता करेंगे। पर मुझे पिछले एक वर्ष के अनुभव ने यह बतला दिया है कि यह मेरा भ्रम था। पूँजीपतियों की मनोवृत्ति आज भी वैसी ही ठोस एवं अवाञ्छनीय है, जैसी आज से १०० वर्ष पूर्व थी। वे कोई 'जोखिम' उठाने को तैयार नहीं हैं। अस्तु—

कम्पनी के डाईरेक्टर्स भविष्य में जिस व्यापारिक नीति से संस्था का सञ्चालन करना चाहते हैं, उससे मेरा घोर मतभेद है। इस प्रकार के मामलों में समझौता हो भी नहीं सकता—आत्मा की पुकार के सामने अपना सर्वस्व बलिदान कर देना ही एक ऐसी वसीयत है, जो मुझे बाप-दादों से मिली है और मैं भी अन्त तक उसकी रक्षा करने का पक्षपाती रहा हूँ। इस गुत्थी को सुलझाने के लिए, कम्पनी के अन्य डाईरेक्टरों के अतिरिक्त, कराची से रावबहादुर सेठ शिवरत्न जी मोहता (श्रद्धेय सेठ रामगोपाल जी मोहता के छोटे भाई) भी यहाँ पधारे थे। वे ४ रोज़ तक यहाँ रहे। बराबर मीटिङ्गस् होती रहीं। ये सारे सज्जन एकमत होकर इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि वे लोग वर्तमान परिस्थिति से तभी मुक़ाबला करके संस्था को आर्थिक कष्टों से मुक्त कर सकते हैं, जबकि मैं संस्था से एक बार ही अलग हो जाऊँ। इस बहुमत के आगे मुझे मस्तक झुकाना पड़ा

और फल-स्वरूप मैंने पहिली जनवरी, १९३३ को अपने मैनेजिङ्ग डाइरेक्टरी के पद को त्याग दिया है।

प्रयाग के सुप्रसिद्ध व्यवसाई और धन-कुबेर पं० निरञ्जनलाल जी भार्गव ने कृपा-पूर्वक मेरे परित्यक्त-पद को सुशोभित करना स्वीकार कर लिया है। कम्पनी के डाइरेक्टर्स की हैसियत से अन्य कई व्यापार-कुशल मित्रों का सहयोग भी सौभाग्य से संस्था को प्राप्त है। जिसमें श्री० विशुननाथ जी सक्सेना, बी० ए०, एल्-एल्० बी० (जो यहाँ के एक धनी एडवोकेट होने के अतिरिक्त इलाहाबाद ज़िला कॉपरेटिव बैङ्क के मैनेजिङ्ग डाइरेक्टर भी हैं) तथा श्री० राजा श्रीराम सेठ तथा रायबहादुर लाला प्रयागनारायण साहब (भूतपूर्व एम० एल० सी०) ताल्लुक़ेदारान के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त सुप्रसिद्ध देशभक्त तथा समाज-सेवी रावबहादुर सेठ शिवरतन जी मोहता, (जिनका भारत में करोड़ों रुपयों का कारोबार है) के परामर्श का सौभाग्य भी संस्था को प्राप्त है। आपने यथाशक्ति संस्था को हर प्रकार की सहायता करते रहने का विश्वास दिलाया है।

मेरी स्थिति स्पष्ट है। आज से ११ वर्ष पूर्व मैंने जिन शुभ सङ्कल्पों को हृदय के एक कोने में छिपा कर काँपते हुए हाथों से जिस संस्था की नींव डाली थी, उसे यौवनावस्था में केवल अपने कार्यक्षेत्र की सीमा और भी विस्तृत करने के अभिप्राय से ही देशवासियों को सौंपा था, अतएव संस्था की उत्तरोत्तर वृद्धि देखना ही मेरे जीवन का लक्ष्य रहेगा। 'भविष्य' तथा 'चाँद' द्वारा भविष्य में देश तथा समाज की जो भी सेवाएँ होंगी, उसका सारा श्रेय इन कार्य-कर्ताओं को होगा और सारी त्रुटियों के लिए, जब तक संस्था क़ायम रहेगी, मैं अपने को ज़िम्मेदार समझता रहूँगा।

अन्त में मैं उन मित्रों, ग्राहकों, लेखकों, कवियों, चित्रकारों तथा संस्था के समस्त कर्मचारियों को हृदय की सारी पवित्रता और सचाई से धन्यवाद देता हूँ, जिनकी कृपा और सहयोग के फल-स्वरूप ही संस्था की सेवाओं का क्षेत्र इतना विस्तृत हो सका और मुझे आशा है, संस्था के नए प्रबन्धकों को भी उनका वैसा ही सहयोग प्राप्त होता रहेगा, जिसका उपभोग मैंने पिछले ११ वर्षों में किया है। कविवर 'मीर' के शब्दों में :—

अब तो जाते हैं बुतकदे से 'मीर'
फिर आएँगे, गर ख़ुदा लाया।

चन्द्रलोक, इलाहाबाद
१ ली जनवरी, १९३३

रामरिख सिंह सहगल

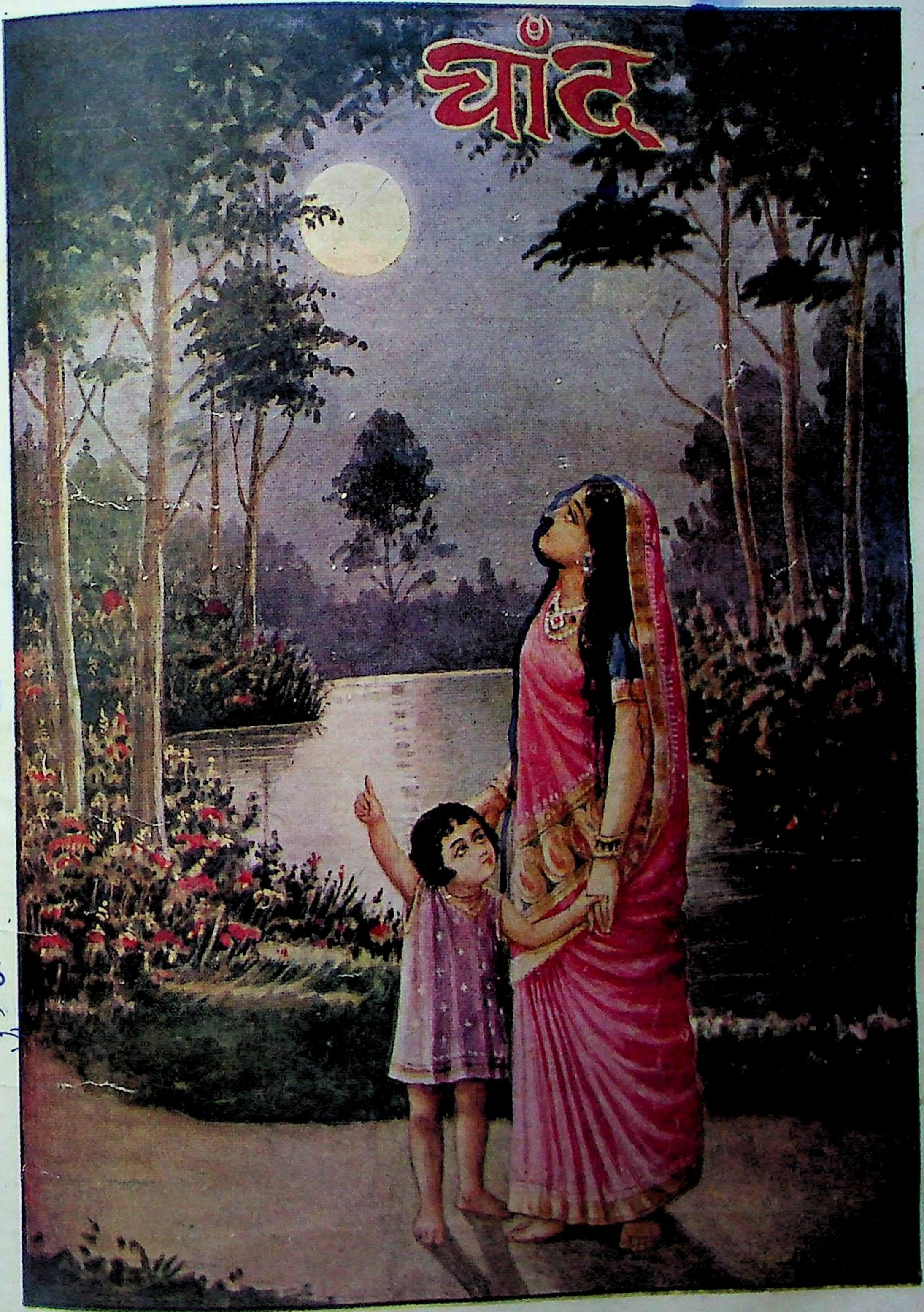
रीवाँ के ४० हज़ार दास

कितने ही पाठकों के लिए शायद आश्चर्य होगा कि ग़ुलामी की प्रथा अब भी इस देश में मौजूद है और कितनी ही देशी रियासतों में लाखों की संख्या में ऐसे अभागे व्यक्ति पाए जाते हैं, जिनको पशुओं की तरह ख़रीदा और बेचा जाता है और जो बिना किसी प्रकार के वेतन के जन्म भर एक व्यक्ति की सेवा करने को बाध्य होते हैं। ऐसी रियासतों में से एक रीवाँ की रियासत है, जहाँ सरकारी रिपोर्ट के अनुसार इस समय भी क़रीब चालीस हज़ार ग़ुलामों का अस्तित्व है। वहाँ इस प्रथा के प्रचलित रहने का एक विशेष कारण बतलाया जाता है। इस प्रदेश में ज़मीन के मालिक प्रायः उच्च जाति के लोग हैं, जो प्राचीन सामाजिक प्रथा के अनुसार हल छूना पाप समझते हैं। ऐसी दशा में खेती-बारी के काम के लिए उन्हें स्वभावतः अन्य लोगों से सहायता लेने की आवश्यकता पड़ती है। पर यदि वे मज़दूरों से काम लें तो एक तो ख़र्च अधिक करना पड़े और दूसरे यदि समय पर काम करने वाले न मिलें तो बड़ी दिक़्क़त उठानी पड़े। इसलिए उन्होंने एक बड़ी सरल तरकीब यह निकाल ली कि किसी ग़रीब व्यक्ति को २०-२५ रु० में ख़रीद लिया और उससे इच्छानुसार काम लेते रहे। ऐसे ख़रीदे हुए व्यक्ति जो कुछ काम करते हैं या कमाते हैं, वह सब मालिक का ही समझा जाता है और इसलिए वे कभी इस योग्य नहीं हो पाते कि मालिक को अपना मूल्य चुका कर स्वतन्त्र हो सकें। हर्ष की बात है, अब रीवाँ के महाराज का ध्यान इस अमानुषिक प्रथा की ओर गया है और उन्होंने इस सम्बन्ध में जाँच करने के लिए पाँच व्यक्तियों की एक कमिटी नियत की है। साथ ही उन्होंने स्वयं अपने हाथ से हल चला कर ऊँची जाति वालों के लिए एक आदर्श भी उपस्थित कर दिया है, ताकि आवश्यकता पड़ने पर वे अपना खेती-बारी का काम ख़ुद ही कर सकें और दासों के ऊपर ही निर्भर न रहें।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का २२वाँ अधिवेशन दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में ग्वालियर में सानन्द समाप्त हो गया। अधिवेशन के व्यय के लिए स्वागत-समिति को ग्वालियर सरकार से १५००), म्युनिसिपल-बोर्ड से ८००) और महाराज की बड़ी बहिन श्रीकमला राजा से ५००) की सहायता मिल गई थी। इसके अतिरिक्त ग्वालियर आजकल व्यवसाय और उद्योग-धन्धों का एक केन्द्र बना हुआ है और वहाँ इस तरह के कार्य के लिए आवश्यक धन मिल सकना कठिन नहीं है। इसलिए धूमधाम, प्रतिनिधियों के स्वागत, पण्डाल की सजावट आदि की दृष्टि से अधिवेशन में किसी तरह की त्रुटि रहने की आशङ्का न थी। सभापति पं० श्यामबिहारी मिश्र का भाषण विद्वत्तापूर्ण था। मिश्र जी सुप्रसिद्ध साहित्यिक और हिन्दी-साहित्य के इतिहास के पूर्ण ज्ञाता हैं, इसलिए आपके भाषण में हिन्दी-साहित्य के विकास और उसके महत्व का विशेष रूप से विवेचन होना स्वाभाविक ही था। प्रस्ताव भी काफ़ी तादाद में विभिन्न विषयों पर पास किए गए हैं। एक प्रस्ताव द्वारा आगामी वर्ष पं० गौरीशङ्कर हीराचन्द जी ओझा को, उनकी ७०वीं वर्षगाँठ के उपलक्ष में सम्मेलन द्वारा एक अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट करने का निश्चय किया गया है। आचार्य द्विवेदी जी के पश्चात् ओझा जी का यह सम्मान सर्वथा उचित है। अपने पूज्य साहित्य-सेवियों का सम्मान करना प्रत्येक भाषाभाषी का कर्तव्य है, और इस दृष्टि से सम्मेलन का प्रस्ताव निस्सन्देह उपयोगी है। और भी कई काम के प्रस्ताव पास किए गए हैं। तो भी उन सबको पढ़ने से ऐसा जान पड़ता है कि सम्मेलन के कार्य में शिथिलता आती जा रही है और यही दशा रही तो आज नहीं तो कल वह एक लकीर पीटने वाली संस्था मात्र रह जायगा। वर्तमान युग में कोरी सद्भावनाओं और महान आकांक्षाओं का उतना मूल्य नहीं है, जितना कि किसी ठोस कार्य का।

वर्ष ११, खण्ड १] मार्च, १९३३ [सं० ५, पू० सं० १२५



वार्षिक चन्दा ६॥)
छः माही चन्दा ३॥)

सम्पादक :—
मुन्शी नवजादिकलाल श्रीवास्तव

विदेश का चन्दा ८॥)
इस अङ्क का मूल्य ॥=)

THE CHAND PRESS, LIMITED, CHANDRALOK—ALLAHABAD



सुखी दम्पति

[चित्रकार—श्री० एच० बागची



आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा [illegible] है, जब तक हम [illegible] में हम अविचल हैं, तब तक हमें [illegible] भय नहीं, [illegible] है।

वर्ष ११, खण्ड १ | मार्च, १९३[illegible] | सं॰ [illegible] पूर्ण सं॰ [illegible]

वे देखे किसी पे मर रहे हैं!

[कविवर "बिस्मिल" इलाहाबादी]

हस्ती[1] को ज़लील कर रहे हैं,
जीने के लिए जो मर रहे हैं।
उल्फ़त[2] में वह काम कर रहे हैं,
मरने के लिए जो मर रहे हैं।

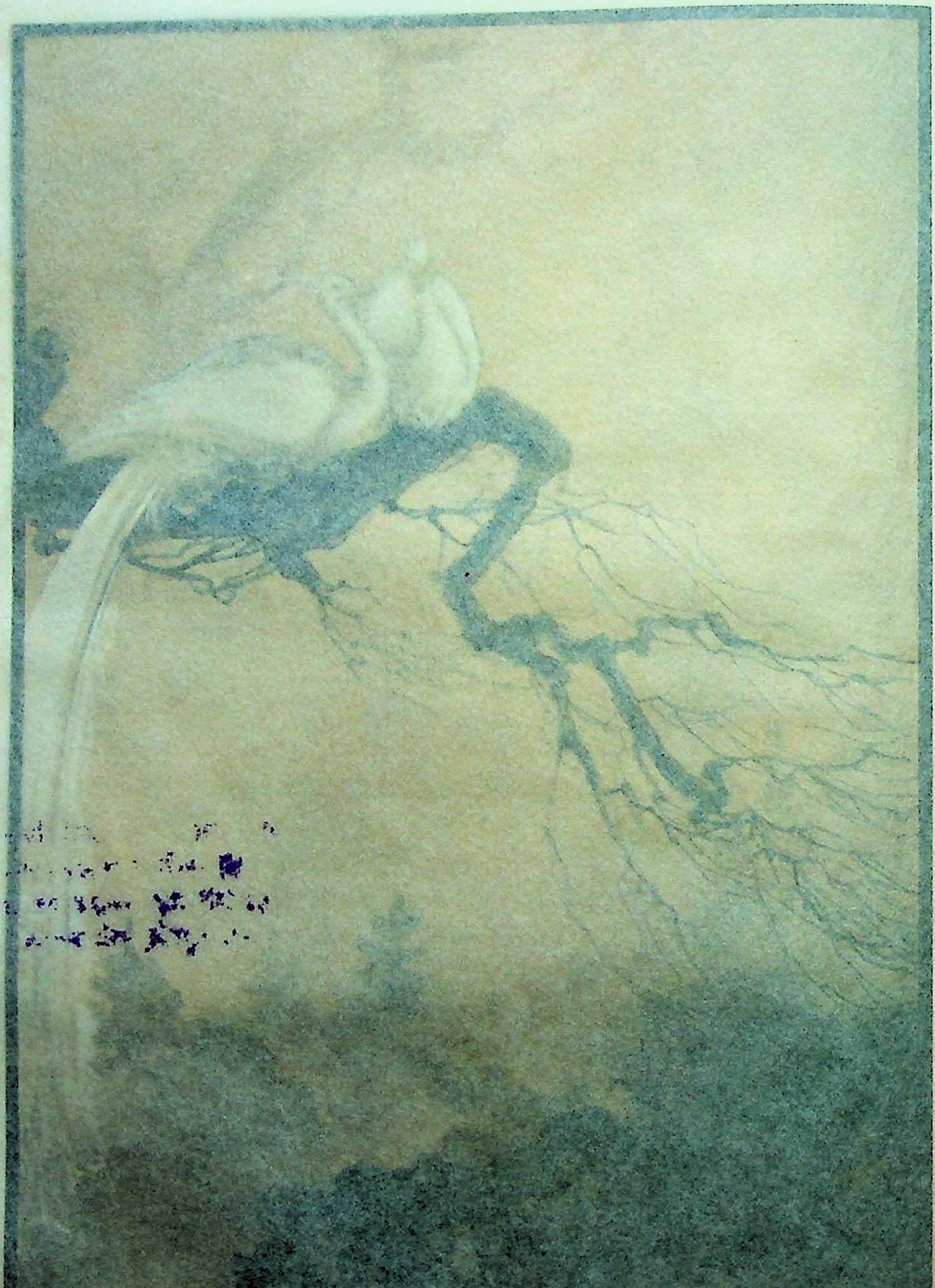
वह हैं कि नहीं कहीं भी मिलते,
हम हैं कि तलाश कर रहे हैं।
दुनिया भी नहीं निगाह में कुछ,
दुनिया पे निगाह कर रहे हैं।

मन्ज़िल का कहीं पता नहीं है,
किस राह से हम गुज़र रहे हैं।
दर्शन न हुआ नसीब लेकिन,
वे देखे किसी पे मर रहे हैं!

बस उनकी क़बूल बन्दगी है,
बन्दे जो ख़ुदा से डर रहे हैं।
मन्ज़िल के क़रीब हम पहुँच कर,
एक-एक क़दम पे डर रहे हैं!

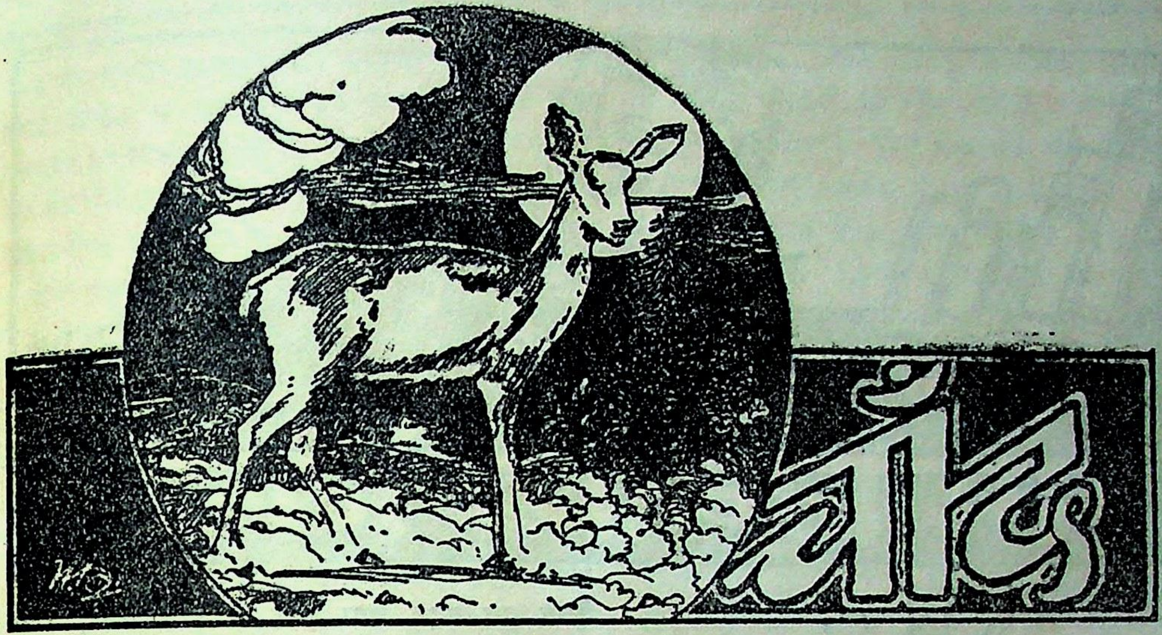
अल्लाह रे आलमे[3] तसव्वुर,
हम बात किसी से कर रहे हैं।
दिन रात तड़पने का सबब क्या,
"बिस्मिल" भी किसी पे मर रहे हैं!

१—जीवन, २—प्रेम, ३—ध्यान।



सुखी दम्पति

[चित्रकार—श्री० एच० बागची



आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रेम हमारी प्रणाली है, जब तक इस पावन अनुष्ठान में हम अविचल हैं, तब तक हमें इसका भय नहीं, कि हमारे विरोधियों की संख्या और शक्ति कितनी है।

वर्ष ११, खण्ड १ | मार्च, १९३३ | सं० ५, पू० सं० १२५

'बे देखे किसी पे मर रहे हैं!'

[कविवर "बिस्मिल" इलाहाबादी]

हस्ती[1] को ज़लील कर रहे हैं,
जीने के लिए जो मर रहे हैं।
उल्फ़त[2] में वह काम कर रहे हैं,
मरने के लिए जो मर रहे हैं।

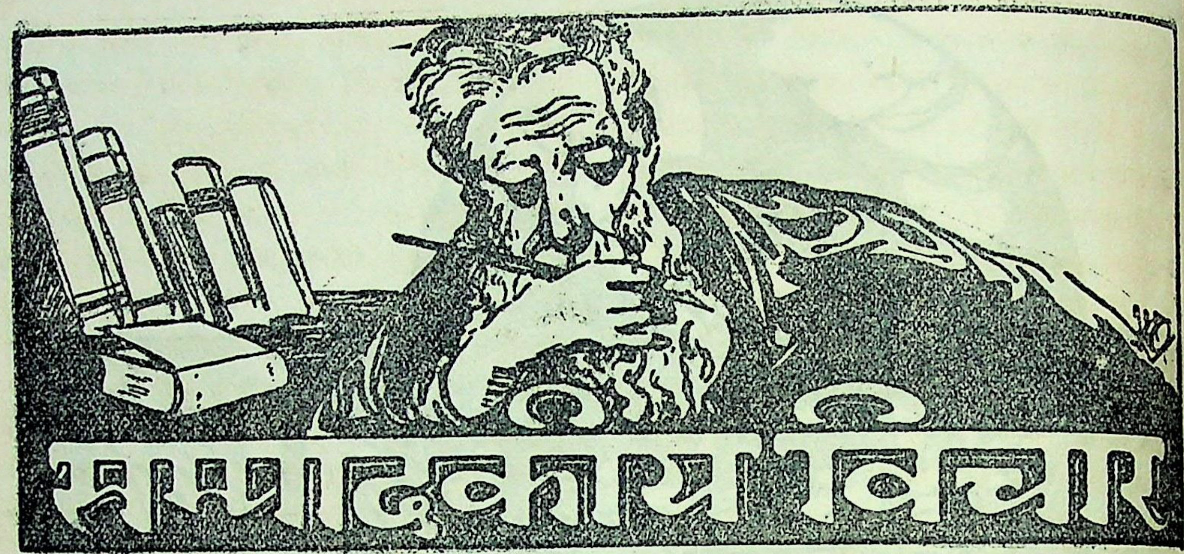
वह हैं कि नहीं कहीं भी मिलते,
हम हैं कि तलाश कर रहे हैं।
दुनिया भी नहीं निगाह में कुछ,
दुनिया पे निगाह कर रहे हैं।

मञ्ज़िल का कहीं पता नहीं है,
किस राह से हम गुज़र रहे हैं।
दर्शन न हुआ नसीब लेकिन,
बे देखे किसी पे मर रहे हैं!

बस उनकी क़बूल बन्दगी है,
बन्दे जो ख़ुदा से डर रहे हैं।
मञ्ज़िल के क़रीब हम पहुँच कर,
एक-एक क़दम पे डर रहे हैं!

अल्लाह रे आलमे[3] तसव्वर,
हम बात किसी से कर रहे हैं।
दिन रात तड़पने का सबब क्या,
"बिस्मिल" भी किसी पे मर रहे हैं!

१—जीवन, २—प्रेम, ३—ध्यान।



चाँद

मार्च, १९३३

स्वदेशी

कुछ वर्ष पूर्व स्वदेशी के केवल दो प्रधान उद्देश्य माने जाते थे ; एक आर्थिक और दूसरा राजनीतिक । एक श्रेणी के लोग इसका समर्थन इसलिए करते थे कि इससे देश के भूखों मरते हुए लोगों और नौकरी की तलाश में फिरने वाले नवयुवकों को कुछ सहारा मिलेगा और दूसरी श्रेणी वाले देश की राजनीतिक निर्बलता को दूर करने की दृष्टि से इसका पक्ष ग्रहण करते थे। इस प्रकार उस समय स्वदेशी केवल ऐसे ही देशों का साधन समझा जाता था, जिनकी आर्थिक अवस्था हीन थी अथवा जो किसी शक्तिशाली विदेशी शासन के नीचे दबे हुए थे। पर देखते-देखते युग बदल गया और आज इङ्गलैण्ड, फ़्रान्स और अमेरिका जैसे देशों में भी, जो संसार के सुवर्ण के स्वामी बने हुए हैं और जिनकी राजनीतिक शक्ति के सम्मुख संसार के शेष सभी देश मस्तक झुकाते हैं, स्वदेशी की पुकार मची हुई है। इङ्गलैण्ड की सड़कों पर, थिएटर और सिनेमाओं में, ट्राम और रेलवे के डिब्बों में 'इङ्गलैण्ड का बना माल ख़रीदो' के पोस्टर दिखलाई पड़ते हैं। फ़्रान्स में भी 'फ़्रान्सीसी माल ख़रीदो' की ध्वनि सुनाई देती है। अमेरिका के प्रसिद्ध समाचार-पत्रों में छपता है—"यदि तुम अमेरिकन हो तो अमेरिका की बनी चीज़ें ख़रीदो।" जिन देशों में इस प्रकार का प्रत्यक्ष आन्दोलन नहीं हो रहा है, वे भी बाहरी माल पर नए-नए कर लगा कर तथा स्वदेशी व्यवसाइयों को तरह-तरह से उत्साह प्रदान करके इस बात की चेष्टा में लगे हैं कि जहाँ तक सम्भव हो, उनको विदेशी माल कम ख़रीदना पड़े और देश का रुपया देश ही में रहे।

स्वदेशी धर्म

इन तमाम स्वाधीन और समृद्ध देशों की इस गतिविधि को देखने से प्रतीत होता है कि अब स्वदेशी केवल एक राजनीतिक और आर्थिक आन्दोलन मात्र ही नहीं रह गया है, वरन् उसने राष्ट्रीय धर्म का रूप ग्रहण कर लिया है। यह धर्म सब युगों और सब देशों के लिए समान रूप से आवश्यक और हितकारी है। इसका ध्येय केवल देश की भौतिक उन्नति ही नहीं है, वरन् कला-सम्बन्धी सौन्दर्य तथा आध्यात्मिक एकता का

वृद्धि भी इसके अन्तर्गत है। स्वदेशी-धर्म का पालन करने से देश में अन्तर्हित उन समस्त शक्तियों और सद्गुणों का विकास होता है, जिनके बिना मानव-जीवन निरर्थक और शुष्क जान पड़ता है। इससे जनता में आत्म-विश्वास की उत्पत्ति होती है और पीढ़ियों की निराशा तथा आलस्य का भाव शीघ्र ही विलुप्त हो जाता है। ऐसा स्वदेशी-धर्म किसी व्यक्ति या जाति को क्षति नहीं पहुँचाता, किसी के मार्ग में बाधक नहीं बनता, किसी को लूटने या ठगने की चेष्टा नहीं करता। उसका उद्देश्य केवल अपनी उन्नति करना और त्रुटियों को मिटाना होता है। ऐसा स्वदेशी-धर्म राष्ट्रीय उन्नति के साथ-साथ संसार की श्रीवृद्धि में भी सहायक होता है।

जब स्वदेशी-धर्म संसार के शक्तिशाली और सामर्थ्यवान देशों के लिए इतना उपयोगी है, तो भारत जैसे पिछड़े हुए और सब प्रकार से निर्बल देश के लिए तो उसकी अनिवार्यता में सन्देह किया ही नहीं जा सकता। इसकी आवश्यकता केवल भूखों मरने वाले करोड़ों किसानों, बेकार मज़दूरों और कष्ट-पीड़ित मध्यम श्रेणी वालों की दशा सुधारने के लिए ही नहीं है, वरन् देश के उठते हुए उद्योग-धन्धों की रक्षा, भारतीय पूँजी की अकर्मण्यता का नाश और खनिज तथा अन्य नैसर्गिक सम्पत्ति का विकास भी मुख्यतया इसी पर निर्भर है। इसके अतिरिक्त हमारे और भी अनेक कष्टों और त्रुटियों को मिटाने के लिए यह एक रामबाण उपाय है। स्वर्गीय लाला लाजपतराय ने स्वदेशी के इसी महत्व को अनुभव करते हुए आज से बहुत वर्ष पहले लिखा था :—

"जिस दिन से मैंने देशभक्ति शब्द का ठीक अर्थ समझा, उसी दिन से मैं स्वदेशी का सहायक बन गया हूँ। अब मेरे लिए स्वदेशी और देशभक्ति पर्यायवाची शब्द हैं। हमारे देश के कष्टों को दूर करने की यदि कोई अमोघ औषधि हो सकती है, तो वह स्वदेशी का ठीक-ठीक और निरन्तर प्रयोग ही है। मैं तो इसे अपने देश के मोक्ष का रूप समझता हूँ। स्वदेशी से हममें आत्माभिमान, आत्म-विश्वास, आत्म-निर्भरता और आत्म-त्याग का भाव उत्पन्न हो जायगा और हममें पुरुषत्व आ जायगा, जो अन्तिम गुण है; पर किसी गुण से कम नहीं है। स्वदेशी हमें बतलाएगी कि हम अपनी पूँजी का, अपने उपायों का, अपने परिश्रम का, अपनी शक्तियों का और अपनी योग्यता का भारतीयों के लाभार्थ, बिना जात-पाँत, धर्म और रङ्ग का विचार किए अधिक से अधिक सदुपयोग किस प्रकार कर सकते हैं। हमारे धार्मिक और मत-मतान्तर सम्बन्धी भेदभावों के रहते हुए भी स्वदेशी हम सबको आपस में मिला देगी। उसके द्वारा हमको वह वेदी (Altar) प्राप्त हो जायगी, जिसके सामने खड़े होकर हम सच्चे हृदय से और पूर्ण आत्म-विश्वास के साथ अपनी प्यारी मातृभूमि की भलाई के लिए प्रार्थना कर सकेंगे। हम सबका यही दृढ़ सङ्कल्प होगा कि हम सब एक साथ हैं और साथ ही मिल कर काम करेंगे। मेरी सम्मति में तो स्वदेशी ही संयुक्त-भारत का सार्वलौकिक धर्म हो सकता है।"

भारत की विशेष परिस्थिति

यदि न्याय और औचित्य की दृष्टि से विचार किया जाय, तो भारत का स्वदेशी आन्दोलन अन्य यूरोपियन देशों की अपेक्षा कहीं अधिक स्वाभाविक और आपत्ति-रहित है। जब कि यूरोपियन और अमेरिकन जातियाँ अपना माल अन्य देशों के बाज़ारों में बेच कर वहाँ का रुपया अपने यहाँ खींच लेना चाहती हैं, उस दशा में भारत अपने उद्योग-धन्धों की उन्नति केवल अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के उद्देश्य से करना चाहता है। वह अन्य देशों की भाँति संसार के बाज़ार में अपनी सत्ता नहीं जमाना चाहता, न किसी का प्रतिद्वन्दी बनने की चेष्टा करता है। यदि वह अपनी चेष्टा से अपनी ज़रूरत के लायक़ माल बना ले और इस विषय में उसे विदेशियों का मुखापेक्षी बन कर न रहना पड़े तो वह पूर्णतया सन्तुष्ट हो जायगा। ऐसा होने से ही वह उस भयङ्कर लूट से मुक्त हो सकेगा, जिसका इस समय शिकार हो रहा है। इस समय औद्योगिक उन्नति के अभाव से वह केवल संसार के अन्य देशों को कच्चा माल पहुँचाने वाला बना हुआ है। जिन पदार्थों को वह स्वयं उत्पन्न करता है, उन्हीं से बनी हुई चीज़ों के लिए उसे प्रति वर्ष करोड़ों रुपए दूसरों को देना पड़ता है। फल यह होता है कि विदेशी लोग यहाँ के व्यापार की बदौलत धनकुबेर बन गए हैं और ऐश-आराम की ज़िन्दगी बिता रहे हैं और

यहाँ के लोगों के जीवन-निर्वाह का मान (Standard of living) दिन पर दिन गिरता जा रहा है। यद्यपि इस देश में प्रतिवर्ष करोड़ों मन रुई उत्पन्न होती है, पर तो भी यहाँ के अधिकांश निवासी पर्याप्त वस्त्र नहीं पाते और कितनों ही को तो घोर शीत के समय भी केवल एक चिथड़ा लपेट कर पड़ा रहना पड़ता है! इस देश में चमड़े की कमी नहीं है, वरन् प्रतिवर्ष लाखों मन चमड़ा विदेश भेजा जाता है, पर तो भी यहाँ करोड़ों व्यक्तियों को जलती हुई धूप में नङ्गे पैर चलना पड़ता है। कितने ही ग़रीब तो अपने और अपने बच्चों के पैरों में चिथड़े लपेट कर असह्य आतप से बचने की चेष्टा करते हैं। कहाँ तक गिनाया जाय, जिस तरफ़ निगाह डाली जाय, यही दृश्य दिखलाई देता है। इस अस्वाभाविक अवस्था का एकमात्र कारण यही है कि हम अपनी ज़रूरत का माल स्वयं न बना कर विदेशियों से बनवाते हैं और उनकी मज़दूरी तथा नफ़ा, और कच्चा माल भेजने और बनी हुई चीज़ें मँगाने के भाड़े तथा सरकारी चुङ्गी आदि में हमारी पैदावार का बहुत बड़ा हिस्सा निकल जाता है। हमारे यहाँ के किसानों और मज़दूरों को केवल अपने ही भरण-पोषण के लिए सामग्री उत्पन्न नहीं करनी पड़ती, वरन् विदेशी कारख़ानों के मालिक, उनमें काम करने वाले मज़दूर और क्लर्क, जहाज़ी कम्पनियों के मालिक तथा कर्मचारी, कितने ही तरह के दलाल, आढ़तिए, एजेण्ट आदि तथा सरकार का पेट भी उनको भरना पड़ता है। जब एक कमाने वाले पर इतने अधिक खाने वाले निर्भर हों, और वे खाने वाले भी ऐसे कि जिनका पेट बहुत बड़ा हो, तो मूल उत्पादक का सदैव अभावग्रस्त बना रहना एक अनिवार्य सी बात है।

भूतकालीन दशा

अङ्गरेज़ी शासन के आरम्भिक युग में भारत की औद्योगिक स्थिति कैसी समुन्नत थी और उसके पश्चात् किन-किन उपायों से उसे नष्ट किया गया या वह नष्ट हो गई, इसके वर्णन में अनेक लेखकों ने हज़ारों पृष्ठ काले किए हैं। इनमें से कितनों ही ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा किए गए अन्यायों को ही इस शोचनीय परिवर्तन का मुख्य कारण माना है। पर हमारी शिल्पकला के नाश का इससे भी बड़ा कारण वाष्प-शक्ति का आविष्कार था। यदि उस युग में इङ्गलैण्ड में स्टीम इञ्जिन का आविष्कार न हुआ होता और उसके द्वारा सब प्रकार की चीज़ें कम ख़र्च और कम परिश्रम में तैयार न होने लगी होतीं तो ईस्ट इण्डिया कम्पनी कभी उस शिल्पकला को नष्ट करने में समर्थ न हो सकती, जिसकी जड़ हज़ारों वर्षों से जमी हुई थी और जिसके फलों का आस्वादन करके प्राचीन रोम साम्राज्य की कुलीना रमणियाँ भी मुग्ध हुआ करती थीं। पर जब स्टीम इञ्जिन और नई-नई मैशीनों के आविष्कार के कारण यूरोपीय देशों में एक अभूतपूर्व व्यवसायिक क्रान्ति हुई, तो उसकी प्रबल लहरें संसार के समस्त देशों के औद्योगिक क्षेत्रों से टकराने लगीं और उन्होंने उन देशों के कला-कौशल को, जो सदा से हाथ द्वारा होता आया था, चूर्ण-विचूर्ण कर डाला।

पर इसमें सन्देह नहीं कि यदि उस अवसर पर भारत स्वतन्त्र होता अथवा उसके ऊपर किसी ऐसी जाति का शासन होता, जिसका स्वार्थ इसी देश में निहित होता, तो अनेक अंशों में इस आकस्मिक आक्रमण से देश की रक्षा की जा सकती थी और देशी व्यवसाइयों को विशेष सहायता प्रदान करके यहाँ भी कुछ समय में आधुनिक मैशीनों का प्रचार किया जा सकता था। ऐसे अवसर पर प्रत्येक राष्ट्र बाहरी माल पर अतिरिक्त कर लगा कर उसका देश में आना कम करता है और अपने यहाँ के उद्योग-धन्धों को हानि न होने देने की गारण्टी देकर उत्साहित करता है। पर शासन की प्रतिकूलता के कारण उस समय भारत में सर्वथा विपरीत मार्ग का अवलम्बन किया गया। जब कि भारत से इङ्गलैण्ड जाने वाले माल पर वहाँ की सरकार ने ४०० प्रति सैकड़ा तक की चुङ्गी लगा रक्खी थी, इङ्गलैण्ड का माल इस देश में केवल २॥ प्रति सैकड़ा की चुङ्गी देकर धड़ल्ले के साथ बिकता था। फल यह हुआ कि जहाँ सन् १८१३ में कलकत्ता से लन्दन के लिए ३ करोड़ रुपए का सूती कपड़ा रवाना किया गया था, सन् १८३० में लन्दन से ३ करोड़ का सूती कपड़ा कलकत्ते में आया।

स्वदेशी और राजनीति

जहाँ का शासनतन्त्र स्वदेशी उद्योग-धन्धों के प्रति ऐसी उपेक्षा का भाव रखता है, वहाँ स्वभावतः ही यह

भार राजनीतिज्ञों को अपने कन्धों पर उठाना पड़ता है। वे ही जनता में फैले हुए आर्थिक असन्तोष को प्रत्यक्ष रूप में व्यक्त करते हैं। वे लोगों को समझाते हैं कि किस प्रकार देशवासियों को खाने के लिए भरपेट रोटी मिल सकती है और उनकी दरिद्रावस्था में सुधार हो सकता है। ऐसे व्यक्ति अर्थशास्त्र के विशेषज्ञ नहीं होते और न किसी बड़े उद्योग-धन्धे के सञ्चालन का उनको ज्ञान होता है। वरन् वे सर्व-साधारण के सामने उदाहरण उपस्थित करने के लिए यदि कोई छोटा-मोटा कारबार स्थापित भी करते हैं, तो उसमें प्रायः उनको घाटा उठाना पड़ता है। तो भी वे जनता के हृदय में देश के साधनों से काम लेने और उद्योग-धन्धों की वृद्धि करने का बीज वपन कर देते हैं, जो समय पाकर महान वृक्ष के रूप में परिणत हो जाता है। राजनीतिज्ञों और उद्योग-धन्धों में बहुत बड़ा प्रकृति-वैचित्र्य होने पर भी उपर्युक्त कारणवश प्रत्येक पराधीन देश में यही नियम सार्थक होता दिखलाई देता है। इसी नियम के अनुसार हमारे देश में स्वदेशी-आन्दोलन का श्रीगणेश ताता, हुकुमचन्द या करीमभाई जैसे किसी सुप्रसिद्ध व्यवसायी द्वारा न होकर जस्टिस महादेव गोविन्द रानाडे और लोकमान्य तिलक जैसे राजनीतिक व्यक्तियों द्वारा हुआ। यद्यपि बहुत से सङ्कीर्ण विचारों के सरकारी कर्मचारी और ऐङ्गलो इण्डियन समझते हैं कि राजनीतिज्ञ अपने दल के कार्यक्रम की सफलता के लिए स्वदेशी की आवाज़ उठाते हैं अथवा अपने कार्यक्रम को लोकप्रिय बनाने के लिए उसमें 'स्वदेशी' को भी शामिल कर देते हैं, पर यह उनकी बड़ी भूल है। क्योंकि स्वदेशी और राजनीतिज्ञों का सम्बन्ध अनिवार्य कारणों से उत्पन्न होता है और जब तक परिस्थिति बदल नहीं जाती, तब तक स्थिर रहता है।

व्यवसाय के मार्ग में बाधाएँ

इस समय यद्यपि भारत की औद्योगिक परिस्थिति में बीस-पचीस वर्ष पहले से बहुत भारी अन्तर हो गया है और सरकार स्वयं कितने ही उद्योग-धन्धों का संरक्षण कर रही है, तो भी व्यवसाइयों और कल-कारख़ाने वालों के मार्ग में ऐसी कितनी ही बाधाएँ हैं, जिनको दूर कराने के लिए राजनीतिज्ञों को बाध्य होकर आन्दोलन करना पड़ता है। यह समझना भ्रान्तिपूर्ण है कि केवल देश में कारख़ानों के खुल जाने और उनमें माल बनना आरम्भ होने से जनता का आर्थिक सङ्कट दूर हो जायगा अथवा देश की सम्पत्ति बढ़ जायगी। वर्तमान समय में करेन्सी और एक्सचेञ्ज आदि की पेचीदगियाँ इतनी अधिक बढ़ गई हैं और अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में इतनी चालें चली जाती हैं कि हम चाहे अपने देश में ज़रूरत से अधिक पदार्थ उत्पन्न कर लें और उससे कारख़ानों में चीज़ें भी बना लें तो भी सम्भव है कि देश की आर्थिक अवस्था वैसी ही दुर्दशापूर्ण बनी रहे और जनता अभावग्रस्त बनी रहे। हम अपनी आँखों से देख रहे हैं कि जापान वाले इसी देश से रुई मँगाते हैं और उसका कपड़ा बना कर यहाँ भेजते हैं। उस कपड़े पर जहाज़ और रेल का भाड़ा तथा मज़दूरी के अतिरिक्त ५० प्रति सैकड़ा सरकारी चुङ्गी देनी पड़ती है। पर इतने पर भी जापानी कपड़ा देशी मिलों के कपड़े से सस्ता बिकता है। हम यह मान लेते हैं कि जापानी मिलों का सङ्गठन तथा प्रबन्ध भारतीय मिलों की अपेक्षा बहुत उन्नत है और वहाँ के कारीगर अधिक कुशल तथा परिश्रमी हैं, तो भी यदि वे केवल स्वाभाविक उपायों से काम लें तो भारत में इतना सस्ता कपड़ा कभी नहीं बेच सकते। उन लोगों ने यह अवस्था विनिमय (एक्सचेञ्ज) की कृत्रिम दर से तथा जहाज़ी कम्पनियों के भाड़े में उचित से अधिक कमी करके उत्पन्न की है। जो दशा जापानी माल की है, वही क़रीब-क़रीब लङ्काशायर और मैञ्चेस्टर के माल की है। अब तो इम्पीरियल प्रीफ़रेन्स की नीति के प्रत्यक्षतः स्वीकार कर लिए जाने के कारण उनको और भी अधिक सुभीते दिए जा रहे हैं। विदेशी व्यापारियों को मिले हुए इन तरह-तरह के सुभीतों और विशेष अधिकारों तथा भारतीय व्यवसाय के मार्ग में पड़ी हुई कठिनाइयों का अन्तिम परिणाम क्या होता है, इसका एक छोटा सा उदाहरण हम एक भारतीय राजनीतिज्ञ के भाषण से यहाँ देते हैं :—

"नेटाल (अफ़्रिका) से बम्बई में एक टन कोयला लाने में उतना ख़र्च नहीं बैठता, जितना कि झरिया (बिहार) से बम्बई तक एक टन कोयला लाने में! पञ्जाब से बङ्गाल तक एक मन गेहूँ भेजने का जितना भाड़ा लगता है, उससे कम भाड़े में ऑस्ट्रेलिया से एक मन गेहूँ बङ्गाल आ जाता है। नतीजा यह होता है कि यद्यपि भारत में आजकल अपने ख़र्च लायक़ भी गेहूँ

उत्पन्न नहीं होता, तो भी पञ्जाब का लाखों मन गेहूँ कराची के बन्दरगाह द्वारा विदेश भेजा जाता है और दूसरी तरफ़ ऑस्ट्रेलिया का गेहूँ बङ्गाल में मँगाना पड़ता है। इस प्रकार के लेन-देन में दोनों तरफ़ भारत की ही आर्थिक हानि होती है। एक और उदाहरण लीजिए। बम्बई से बार्सी तक सफ़ेद चीनी भेजने का किराया ६ आना प्रति मन लगता है और बार्सी से बम्बई तक पीली देशी शक्कर, जिसे ग़रीब लोग खाते हैं, भेजने का किराया ९ आना ९ पाई प्रति मन, अर्थात् ड्योढ़े से भी अधिक लिया जाता है। अगर हम किसी भारतीय व्यवसाय की तरफ़, जैसे चीनी का व्यवसाय, दृष्टि डालते हैं तो वहाँ भी यही परिस्थिति दिखलाई देती है। बम्बई से कानपुर को, जिसका फ़ासला ८५० मील है, विदेशी चीनी भेजने का भाड़ा १३ आना ६ पाई मन लगता है और कानपुर से देशी चीनी अकोला तक भेजने के लिए, जिसका फ़ासला ६४९ मील है, १ रु० २ आना ४ पाई मन भाड़ा लिया जाता है।"

सरकारी नीति

उपर्युक्त अवतरण भारतीय व्यवसाय सम्बन्धी बाधाओं के केवल एक पहलू अर्थात् माल मँगाने और भेजने के ख़र्च पर प्रकाश डालता है। इसका आशय यह नहीं कि इसकी समस्त ज़िम्मेवारी भारतीय सरकार पर है। क्योंकि जहाज़ी कम्पनियाँ भारतीय सरकार के अधिकार से सर्वथा बाहर हैं और वे विदेशी व्यवसाइयों को जो विशेष सुभीते प्रदान करती हैं, उससे भारत सरकार का कोई सम्बन्ध नहीं होता। वे अपने देश के हित को लक्ष्य में रख कर अथवा अपने यहाँ की सरकार के दबाव से ऐसा करती हैं। हमारे कथन का उद्देश्य यही है कि जिस प्रकार अन्य देशों अथवा उपनिवेशों की सरकारें अपने यहाँ के व्यवसाय की वृद्धि के लिए सब तरह से उसकी सहायता करती हैं, उतनी सहायता भारतीय सरकर नहीं करती। यदि वह इस नीति का अवलम्बन करती तो कोई कारण न था कि नेटाल का कोयला और ऑस्ट्रेलिया का गेहूँ हज़ारों मील की दूरी से आकर यहाँ उत्पन्न होने वाले गेहूँ और कोयले से सस्ता बिक सकता। पर भाड़े के सिवाय और भी कितने ही विषयों में भारतीय व्यवसाइयों को घोर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है और देश का करोड़ों रुपया व्यर्थ में ही बाहर जाता है। इन कठिनाइयों का सम्बन्ध विशेषतः सरकार की करेन्सी और विनिमय की नीति से है और लोग प्रायः इस सम्बन्ध में योग्य आलोचकों के विचार समाचार-पत्रों में पढ़ते रहते हैं। कुछ वर्ष पहले रुपए के १८ पेन्स की विनिमय दर पर जो विवाद चल चुका है और आजकल ओटावा बिल के सम्बन्ध में जो विरोध हो रहा है, वह इस बात को समझाने के लिए काफ़ी है कि भारत-सरकार की अर्थनीति केवल भारतीय उद्योग-धन्धों के हित को दृष्टि में रख कर स्थिर नहीं की जाती, वरन् उसमें विशेष ध्यान इङ्गलैण्ड या साम्राज्य के हित पर दिया जाता है। पर ये तमाम विषय ऐसे गूढ़ और अन्योन्याश्रित होते हैं कि चतुर से चतुर अर्थशास्त्रज्ञ भी अपने देश के लिए हितकर अथवा अहितकर होने का निर्णय करते समय चक्कर में पड़ जाते हैं। इसलिए एक साधारण व्यक्ति केवल इन क़ानूनों और नियमों के फल से ही उनके भले-बुरे होने का निर्णय कर सकता है। इस दृष्टि से विचार करने पर पता लगता है कि यद्यपि सरकार द्वारा लगाए गए संरक्षण करों से देश के कितने ही व्यवसायों को लाभ पहुँचा है और पिछले पाँच-सात वर्षों में भारतीय उद्योग-धन्धों ने कई दिशाओं में अभूतपूर्व उन्नति की है, पर अन्य देशों से मुक़ाबला करने पर अब भी वे बहुत अधिक पिछड़े हुए और परावलम्बी जान पड़ते हैं। वर्षों तक चलते रहने के बाद भी आज किसी भारतीय व्यवसाय में इतना दम नहीं है कि वह बिना संरक्षण के एक दिन भी विदेशी व्यवसायों का मुक़ाबला कर सके। यदि आज सरकार मुक्तद्वार वाणिज्य (Free Trade) की नीति का अवलम्बन करने लगे तो साल भर में समस्त भारतीय कारख़ानों और कम्पनियों का दिवाला निकल जाना अनिवार्य है। यह तथ्य जहाँ भारतीय व्यवसाइयों की अयोग्यता और सङ्गठन-शक्ति के अभाव का द्योतक है, वहाँ सरकारी नीति की त्रुटियों पर भी प्रकाश डालता है। इससे विदित होता है कि सरकार भारतीय व्यवसायों को हिसाब लगा कर उतना ही संरक्षण देती है, जिससे वे जीवित रह सकें, पर कभी इतने शक्तिशाली न हो सकें कि स्वावलम्बी बन कर विदेशी व्यवसाइयों की खुले तौर पर प्रतियोगिता कर सकें।

आन्दोलन की आवश्यकता

शासकवर्ग की इस उदासीनता और सहानुभूति की कमी के कारण ही राजनीतिज्ञों को विवश होकर स्वदेशी आन्दोलन उठाना पड़ता है और राजकीय सहायता के अभाव की पूर्ति जनता में प्रचार-कार्य करके और स्वदेशी मेलों आदि के द्वारा करनी पड़ती है। यद्यपि इस उपाय से सरकारी संरक्षण की कमी से होने वाली समस्त हानि पूरी नहीं हो सकती, तो भी इससे जनता में अपने देश में प्राप्त साधनों का ज्ञान उत्पन्न होता है और अपने देश की बनी चीज़ों के प्रति सर्व-साधारण का अनुराग बढ़ता है। स्वदेशी मेलों और प्रदर्शिनियों द्वारा लोगों को पता चलता है कि हमारे देश में कौन-कौन सी चीज़ें बनने लगी हैं और किन चीज़ों की अभी तक कमी है। ऐसे स्थानों में हमको देश के विभिन्न भागों में बनने वाली चीज़ों के दर्शन एक ही समय में हो जाते हैं, और ऐसी चीज़ों का भी ज्ञान प्राप्त होता है, जिनका देश में बन सकना हम अभी तक असम्भव समझे हुए थे। यदि ये प्रदर्शिनियाँ न होतीं तो हमको न मालूम कब इस बात का पता लगता कि भारत में ग्रामोफ़ोन, बिजली के पङ्खे, सीने की मैशीनें, ग्रामोफ़ोन के रिकार्ड, बिजली के लेम्प आदि जैसी चीज़ें भी बनने लग गई हैं। जिस देश में केवल पच्चीस वर्ष पहले कवि के मुख से यह निराशामय उद्गार निकल रहा था,

सुई छड़ी तक निकृष्ट दियासलाई,
लेता सदैव सुख से फिरता पराई !

वहाँ आज इन उच्च श्रेणी की वैज्ञानिक और यान्त्रिक वस्तुओं को बनते देख कर किसका हृदय देशाभिमान से पूरित न हो जायगा। ऐसे प्रदर्शनों से पुराने कारबार करने वालों का उत्साह बढ़ता है और नए लोगों को काम करने का रास्ता दिखलाई देने लगता है। इस उपाय से देश में बनने वाली वस्तुओं की त्रुटियों का पता चलता है और उनके बनाने वाले उन्हें दूर करने के उपाय सोचने लगते हैं। इस प्रकार के कार्य की जाँच केवल बिक्री के आधार पर करना भ्रमात्मक है। क्योंकि प्रदर्शिनियों में जो दर्शक जाते हैं वे सब के सब कुछ ख़रीदने के उद्देश्य से वहाँ नहीं जाते। पर जब वे वहाँ नई-नई और बढ़िया स्वदेशी वस्तुओं से भरी दुकानें देखते हैं तो उनके मन से पहले का जमा हुआ स्वदेशी चीज़ों की निकृष्टता का भाव लोप हो जाता है और वे उनके भावी ग्राहक बन जाते हैं।

चर्ख़ा और खद्दर

पर यह देख कर कि चाहे कितनी भी चेष्टा की जाय, भारतीय कल-कारख़ानों की मनोवाञ्छित उन्नति तब तक नहीं हो सकती, जब तक कि भारतीय सरकार देश के प्रतिनिधियों के मतानुसार ही काम करने को बाध्य न हो, और ऐसी स्थिति के प्राप्त करने में अभी न मालूम कितना समय लगे, भारतीय राजनीतिज्ञों ने चर्ख़े और खद्दर का आन्दोलन उठाया है। ऊपरी दृष्टि से विचार करने पर मैशीन और चर्ख़े तथा करघे का कोई मुक़ाबला नहीं जान पड़ता और आधुनिक भाफ़ और बिजली से चलने वाले दैत्याकार तथा आश्चर्यजनक रूप से शीघ्र काम करने वाले यन्त्रों के सम्मुख लकड़ी का बना दस-बारह आने का चर्ख़ा खिलौने से भी गया-बीता जान पड़ता है। पर जब हम भारत की विशेष परिस्थिति पर विचार करते हैं और उन करोड़ों देहाती लोगों की समस्या पर ध्यान देते हैं, जो आर्थिक कारणों अथवा प्रकृति की प्रतिकूलता के कारण महीनों तक हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते हैं, और जब हम यह भी जान लेते हैं कि उन सब के काम कर सकने लायक़ कारख़ाने दस-बीस वर्षों में भी बन सकने की सम्भावना नहीं है, तो हमको चर्ख़े और खद्दर की उपयोगिता स्वीकार करनी ही पड़ती है। यदि इस प्रकार बेकार रहने वाले स्त्री-पुरुषों और बच्चों में से चार-पाँच करोड़ भी इस धन्धे को करने लग जायँ, तो दो-तीन पैसे प्रति दिन के हिसाब से भी साल भर में वे कम से कम पचास-साठ करोड़ रुपया कमा लेंगे और इतना माल तैयार कर डालेंगे कि उससे भारत ही नहीं, आस-पास के छोटे-मोटे देशों की आवश्यकता भी पूरी हो सकेगी।

अन्य सम्भावनाएँ

इतना ही नहीं, यदि कोई उद्योगी और चतुर सङ्गठन-कर्त्ता हो तो ये लोग हाथ से और हाथ की मैशीनों से खिलौने, मोज़े, बनियाइन, जूते, सिगरेट, साबुन, वैसलीन, पोमेड और अन्य बीसियों प्रकार की चीज़ें, जिनके लिए हमको प्रति वर्ष करोड़ों रुपया विदेश भेजना पड़ता है, तैयार कर सकते हैं। बहुत से लोग इन सब चीज़ों का

साधारण देहातियों द्वारा बनाया जा सकना कठिन समझते होंगे, पर जैसा कि भारत-सरकार के एक प्राचीन अर्थ-सचिव सर जॉन स्ट्रैची ने, जो भारतीय हितों के कट्टर विरोधी थे, स्वीकार किया था, दुनिया के परदे पर कोई ऐसी चीज़ नहीं है, जिसे चेष्टा करने पर भारतवासी अपने ही देश में प्राप्त होने वाले साधनों द्वारा न बना सकें। पाठकों को यह जान कर आश्चर्य होगा कि भारत में आजकल जो बम्बई की बनी दियासलाइयाँ विशेष रूप से प्रचलित हैं, उनका बहुत सा काम जङ्गली समझे जाने वाले जरायम-पेशा लोगों से उनके घरों पर ही कराया जाता है। बढ़िया सिगरेट विदेशी कारख़ानों में भी हाथ द्वारा ही बनाई जाती हैं। हाथ का बना काग़ज़ आज भी मैशीन के काग़ज़ से स्थायी और दृढ़ माना जाता है और मँहगा तथा बदसूरत होने पर भी कितने ही स्थानों में दस्तावेज़, बहीख़ाते और अन्य ऐसे ही कामों में उसका ही उपयोग किया जाता है। इन बातों पर विचार करने से हाथ द्वारा काम किया जा सकना अब भी असम्भव नहीं है, आवश्यकता है केवल उसमें आधुनिक युग के अनुसार परिवर्तन करने की। यदि भारतीय पूँजीपति या कोई सुसङ्गठित संस्था, जिसकी आर्थिक स्थिति सन्तोषजनक हो, इस काम को अपने हाथ में ले और देहातियों के छोटे-छोटे समूह बना कर उनके लिए आवश्यकीय औज़ार और छोटे-छोटे हाथ के यन्त्र संग्रह कर दे तथा उनकी बनाई चीज़ों की बिक्री का यथोचित प्रबन्ध कर दिया जाय, तो भारतीय व्यवसाय की काया-पलट हो सकती है। यदि इन दस्तकारियों का बड़े कारख़ानों से संयोग कर दिया जाय, अर्थात् बनने वाली वस्तुओं का कुछ अंश, जिसके हाथ से तैयार करने में कठिनाई पड़ती है या देर लगती है, कारख़ाने में बना दिया जाय और शेष काम दस्तकार लोगों द्वारा कराया जाय तो और भी अधिक सफलता प्राप्त हो सकती है। लोग पूछ सकते हैं कि ऐसे जो दस्तकार अब भी मौजूद हैं, वे विदेशी चीज़ों के मुक़ाबले की चीज़ें क्यों नहीं बना सकते? तो इसका उत्तर संक्षेप में यही दिया जा सकता है कि उनमें सङ्गठन का अभाव है। ऐसे दस्तकारों को न कोई शिक्षा और सलाह देने वाला होता है, न उनको कोई आधुनिक आवश्यकताओं के सम्बन्ध में सूचना देता है, न उनके पास काफ़ी पूँजी होती है, न उनके माल के बेचने के यथोचित साधन होते हैं। ऐसी अवस्था में वे बेचारे अपनी साधारण बुद्धि से जितना सोच सकते हैं, उसीके अनुसार भोंडी और घटिया दर्जे की चीज़ें बना कर स्वयं ही उनको लेकर सड़क पर बैठते हैं, और जब तक वे बिक नहीं जातीं तब तक पूँजी के अभाव से बेकार रहते हैं। ऐसी परिस्थिति में किसी भी व्यवसाय की सफलता की आशा दुराशा मात्र है। पर जब यही काम पूँजीपति, शिल्प-विद्या के ज्ञाता, विक्रय-कला के अनुभवी लोगों के सहयोग से होने लगेगा और जब जनता के सामने कम दाम में काम लायक़ और अधिक टिकाऊ चीज़ रख कर स्वदेशी की अपील की जायगी, तो कोई कारण नहीं कि हम विदेशी वस्तुओं के मुक़ाबले में सफलता प्राप्त न कर सकें।

वर्तमान दशा

भावी सम्भावनाओं को छोड़ कर जब हम स्वदेशी की वर्तमान प्रगति पर विचार करते हैं, तो उसे पूर्णतया तो नहीं, पर कुछ अंशों में सन्तोषजनक ही पाते हैं। आज से ४२ वर्ष पूर्व जब स्वर्गीय रानाडे ने प्रथम बार स्वदेशी की तरफ़ जनता का ध्यान आकर्षित किया था, उस समय किसी को इस बात की आशा नहीं होती थी कि हमारा देश कल-कारख़ानों के सम्बन्ध में कभी इङ्गलैण्ड और अन्य उन्नतिशील राष्ट्रों का सफलतापूर्वक मुक़ाबला कर सकेगा। उस समय यहाँ के उद्योग-धन्धों की दशा और भी गिरती जा रही थी और विदेशी माल की आमदनी दिन पर दिन बढ़ती जाती थी। उस समय तक भारत में मैशीनों का प्रवेश बहुत कम हुआ था और हाथ की कारीगरियाँ विदेशी कारख़ानों के बनाए हुए सस्ते तथा भड़कीले माल के आगे नष्ट होती जा रही थीं। सन् १९०५ में बङ्ग-भङ्ग के आन्दोलन ने स्वदेशी उद्योग-धन्धों में नव-जीवन सञ्चार किया और लाखों व्यक्तियों ने स्वदेशी-वस्तु-व्यवहार का व्रत लिया, पर कोई सङ्गठनात्मक चेष्टा न होने से विशेष सफलता न हो सकी और व्यक्तिगत उत्साह समय के प्रभाव से धीरे-धीरे क्षीण होता गया। स्वदेशी की वर्तमान लहर का जन्म सन् १९२० में हुआ, जबकि महात्मा गाँधी के असहयोग आन्दोलन ने भारतवासियों के हार्दिक भावों की काया-पलट करके अभूतपूर्व जागृति पैदा कर दी और उनको केवल राजनीतिक ही नहीं, वरन् जीवन सम्बन्धी सभी विषयों में स्वावलम्बी

होने का पाठ पढ़ाया। इसी समय से स्वदेशी-प्रचार का कार्य सङ्गठित रूप में आरम्भ हुआ और वह कॉङ्ग्रेस के कार्य-क्रम का प्रमुख अङ्ग बना दिया गया। उस समय से कॉङ्ग्रेस के प्रत्येक अधिवेशन के समय स्वदेशी प्रदर्शिनी का होना भी अनिवार्य हो गया और अब तो प्रत्येक छोटी-बड़ी कॉन्फ़्रेन्स के साथ भी इस प्रकार की कोई योजना अवश्य की जाती है। गत वर्ष से, जब से कॉङ्ग्रेस का कार्य राजनीतिक हलचल के कारण अनियमित रूप से होने लगा है, स्वदेशी-सङ्घ का पृथक् अस्तित्व हो गया है और शायद ही कोई महीना ऐसा गुज़रता होगा, जबकि दो-एक स्थानों में स्वदेशी-प्रचार के लिए दर्शिनियाँ और मेले आदि न होते हों। यद्यपि अभी यह आन्दोलन बाल्यावस्था में है, तो भी इसने जनता की मनोवृत्ति को बदलने में बड़ा काम किया है और लोगों में एक ऐसी भावना उत्पन्न कर दी है, जिससे वे विदेशी वस्तु लेने में एक प्रकार का सङ्कोच अनुभव करने लगे हैं।

जैसा हम ऊपर कह चुके हैं, यद्यपि अभी इस आन्दोलन ने पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं की है, तो भी कितने ही भारतीय उद्योग-धन्धों की इतनी उन्नति हो चुकी है कि उसके आधार पर हम कुछ ही वर्षों में जीवन-निर्वाह की कितनी हो वस्तुओं के सम्बन्ध में स्वावलम्बी होने की आशा कर सकते हैं। ऐसी वस्तुओं में सबसे प्रधान स्थान वस्त्र का है और इस सम्बन्ध में भारत की दशा सन्तोषजनक है। महायुद्ध से पूर्व जहाँ इस देश में ख़र्च होने वाले कपड़े का ७० प्रति सैकड़ा विदेशों से आता था और केवल ३० प्रति सैकड़ा यहाँ बनता था, आजकल ८० प्रति सैकड़ा यहाँ बन रहा है और केवल २० प्रति सैकड़ा बाहर से आता है। जिस विदेशी चीनी की आमदनी सन् १९०५ के आन्दोलन के समय तरह-तरह का धार्मिक भय दिखला कर भी नहीं रोकी जा सकी थी, वह अब केवल एक-दो वर्षों में आधी रह गई है। अब भारतवष में प्रति वर्ष ३ लाख टन चीनी बनने लगी है और कोई आश्चर्य नहीं, यदि साल दो साल के भीतर ही उसका परिमाण दुगने से भी अधिक हो जाय। साबुन, दियासलाई, सुगन्धित पदार्थ आदि का विदेशों से आना भी बहुत घट गया है। सिगरेट बनाने वाली बीसियों कम्पनियाँ हाल ही में खुली हैं, जिनका माल विदेशी कारख़ानों के माल का सफलतापूर्वक मुक़ाबला कर रहा है। अब जो चीज़ें विशेष रूप से विदेशों से आ रही हैं, वे मैशीनें, मोटरें, इञ्जिन और ऐसे रासायनिक पदार्थ आदि हैं, जिनके तैयार करने में विशेष वैज्ञानिक ज्ञान और निपुणता की ज़रूरत पड़ती है और जिनके सम्बन्ध में पर्याप्त ज्ञान रखने वाले लोग हमारे देश में थोड़े ही हैं।

एक समय वह था, जब भारतवर्ष संसार का सबसे अधिक सम्पत्तिवान और वैभवशाली देश समझा जाता था। हमारे प्राचीन साहित्य तथा विदेशी इतिहासकारों के ग्रन्थों से विदित होता है कि उस काल में यहाँ पर कदाचित् ही कोई व्यक्ति भूखा, नङ्गा दिखलाई पड़ता था और सैकड़ों वर्षों में कभी एक बार दुष्काल का नाम सुनने में आता था। उस युग में शस्य-श्यामला भारत-भूमि कामधेनु बनी हुई थी और यहाँ सचमुच ही घी-दूध की नदियाँ बहती थीं। यहाँ के सोने, चाँदी और जवाहरातों का वर्णन सुन कर यूरोप वालों के मुँह में पानी भर आता था और वे इस देश का मार्ग ढूँढ़ने के लिए व्याकुल होकर इधर-उधर भटकते फिरते थे। पर जब से हमारे ऊपर विदेशियों का आधिपत्य हुआ और हम अपनी चीज़ों का आदर करना भूल कर दूसरों का अनुकरण करने लगे, तभी से हमारा पतन आरम्भ हुआ और लक्ष्मी-स्वरूपिणी भारतमाता दीन-हीन भिखारिणी बन गई। यदि हम इस शोचनीय अवस्था से निकल कर फिर अपने प्राचीन वैभव को प्राप्त करना चाहते हैं, तो इङ्गलैण्ड, फ़्रान्स, अमेरिका आदि देशों के निवासियों की भाँति हमको भी 'यदि तुम भारतवासी हो तो भारतीय वस्तु व्यवहार करो' इस आदर्श-वाक्य (Motto) के अनुसार आचरण करना चाहिए। यदि भारतीय नर-नारी मनसा-वाचा-कर्मणा यह प्रतिज्ञा कर लें कि वे स्वदेश में प्राप्त हो सकने वाली वस्तुओं को त्याग कर कभी विदेशी वस्तुओं की आकांक्षा न करेंगे, चाहे वे कैसी भी सस्ती और सुन्दर क्यों न हों, और जो वस्तुएँ अभी देश में प्रस्तुत नहीं होतीं, उनका प्रयोग जहाँ तक बन पड़ेगा कम कर देंगे, तो थोड़े ही समय में हमारी वर्तमान आर्थिक दुरवस्था में आश्चर्यजनक परिवर्तन हो जायगा और हम संसार के अन्य स्वाधीन राष्ट्रों के निवासियों के समान ही सुख तथा स्वच्छन्दतापूर्वक जीवन व्यतीत कर सकेंगे।

❀ ❀ ❀

१० वर्ष पूर्व

चाँद—मार्च, १९२३

स्त्रियों की शिक्षा और उनका कर्तव्य

[स्व० कुमारी सुधालता दुआरा, एम० ए०; बी० टी०]

जिस समय हम भारतीय स्त्रियों की वर्तमान दशा पर विचार करने बैठते हैं, उस समय देखते हैं कि जिस प्रकार आजकल स्त्रियाँ, सार्वजनिक जीवन से बिल्कुल अलग रख कर केवल घर के काम-धन्धों की सामग्री समझी जाती हैं, वैसा प्राचीन समय में नहीं हुआ करता था, किन्तु यह कृत्य अभी थोड़े काल से ही होने लगा है। इस कथन को सिद्ध करने के लिए कि प्राचीन समय में भारत की देवियाँ मस्तिष्क सम्बन्धी कार्यों तथा सार्वजनिक कार्यों में पुरुषों का समान रूप से हाथ बटाया करती थीं, हम धृतराष्ट्र की स्त्री गान्धारी का नाम पेश कर दिखलाएँगी कि एक स्त्री भी राज्य के शासन-कार्य में, युद्ध में और अराजकों को दमन करने में, राजा-महाराजाओं को सम्मति दिया करती थी। इस बात को पुष्ट करने के लिए दूसरा उदाहरण हम गार्गी का देंगी, जिन्होंने महाराज जनक की राज-सभा में अनेक धुरन्धर पण्डितों के समूह के साथ, समय के अद्वितीय विद्वान याज्ञवल्क्य ऋषि से शास्त्रार्थ किया था। परन्तु ये बातें इतनी पुरानी हो गई हैं कि हमें स्वप्न की तरह मालूम होती हैं और उनका प्रभाव हम पर नहीं पड़ता। प्राचीन समय को तो जाने दीजिए, उसके बहुत काल के पश्चात् का भारत का इतिहास भी ऐसी-ऐसी महिलाओं के नामों से भरा पड़ा है, जो अपने-अपने समय में अद्वितीय योद्धा, शासक, महाराणी, देशभक्ता और विदुषी थीं। चित्तौर की महारानी पद्मिनी जैसी वीर, मारवाड़ की शायरा (कवि) मीराबाई जैसी विदुषी, अहमदनगर की रक्षा करने वाली चाँदबीबी जैसी योद्धा और इन्दौर की महारानी अहिल्याबाई, जो सन् १८०५ तक जीवित थीं, जैसी शासक और देशभक्ता आदि भारतीय महिला-रत्नों के नाम भारत के आकाश में नक्षत्रों की भाँति आज तक प्रदीप्तमान हैं। ये देवियाँ मातृभूमि के लिए उत्पन्न हुईं और उसी के लिए ही मरीं, उन्होंने स्वप्न में भी यह नहीं विचार किया कि यह कार्य स्त्रियों की शक्ति से बाहर है, किन्तु जब कभी देश के लिए जिस सेवा की आवश्यकता हुई, उसे उन्होंने सहर्ष किया।

इस प्रकार जब तक भारत के पुरुष-समाज और स्त्री-समाज के रहन-सहन में अन्तर नहीं हुआ और शिक्षा भी एक ही भाषा में दी जाती थी, तब तक का भारतीय महिलाओं के कार्यों का इतिहास सदा शानदार रहा है, किन्तु जब से पुरुष-समाज ने अङ्गरेज़ी शिक्षा प्राप्त कर, एक नई सभ्यता और शिक्षा के मार्ग का अनुसरण कर संसार के नए ही जीवन में प्रवेश किया और स्त्रियाँ इस नई शिक्षा तथा सभ्यता से दूर रख कर पुरुष-समाज से अलग कर दी गईं, उस समय से स्त्री-समाज पुरुषों के साथ-साथ सार्वजनिक कार्यों तथा देश-हित के कार्यों में योग देने से वञ्चित रह गया और इस तरह देश का आधा अङ्ग निष्काम हो गया। इस समय से स्त्रियों और पुरुषों में विभिन्नता आ गई और वह भी इतनी, जितनी कि दो आँखों में होती है। एक ही आँख से कोई भी मनुष्य अथवा एक ही अङ्ग से कोई भी राष्ट्र अपना हित नहीं कर सकता। स्त्री और पुरुष वैसे तो देखने में एक नहीं हैं, किन्तु वास्तव में बिना एक दूसरे के वे अपूर्ण हैं। स्त्री और पुरुष एक दूसरे के बिना पूर्ण नहीं हो सकते। वे इसी प्रकार हैं, जैसे एक जीव की दो आँखें और एक पक्षी के दो पङ्ख। स्त्रियों को अशिक्षिता रखने के कारण राष्ट्रीय जीवन स्त्रियों की शक्ति के बिना अधूरा और लँगड़ा है।

यह दशा तो है स्त्री-समाज की। अब बालकों की ओर, जो कि भविष्य में भारत के नागरिक बनेंगे, और जिनको देश टकटकी लगाए आशा भरी नज़रों से देख रहा है—तनिक दृष्टि फेरिए। इन बालकों में से बहुत से ऐसे होते हैं, जिनकी माताएँ आरोग्य-शास्त्र और

स्वास्थ्य-रक्षा के विषय में बहुत ही थोड़ा ज्ञान रखती हैं और बहुत कम उसकी परवाह करती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि बच्चे दुबले हो जाते हैं, प्रायः उनका सिर बड़ा और शरीर छोटा हो जाता है, उनकी पाचन-शक्ति नष्ट हो जाती है। दाँत टूट-टाट कर अधूरे हो जाते हैं और उनका मस्तिष्क मन्द हो जाता है और फिर उसका विकाश नहीं होता। बालकों के स्वास्थ्य का आधे से अधिक उत्तरदायित्व माताओं पर ही रहता है, क्योंकि यह कोई नहीं कह सकता कि वर्तमान समय में स्त्रियाँ तन्दुरुस्त और ताक़तवर सन्तान उत्पन्न करने और पालन-पोषण करने के लिए पूर्ण रीति से योग्य हैं। घर की आरोग्य और स्वास्थ्य सम्बन्धी दशा को सुधारने और बालकों का स्वास्थ्य ठीक रखने तथा उनके रहन-सहन पर ध्यान रखने के लिए स्त्री-शिक्षा की बड़ी आवश्यकता है। बालक बचपन ही से शिक्षा पाने लगते हैं और केवल माता ही उन्हें उस अवस्था में शिक्षा दे सकती है। स्त्रियों को अशिक्षिता रख कर हम राष्ट्र की काफ़ी शक्तिशाली ताक़त से अपने आपको वञ्चित रख रहे हैं। बच्चों को पढ़ी-लिखी माताएं नहीं मिलतीं। उनका प्रभाव बच्चों पर बुरा पड़ता है और इस कारण घर में मस्तिष्क सम्बन्धी विरोध फैल जाता है। माताओं के अनपढ़ी होने से ही आज भारत में कवियों, तत्वज्ञानियों, राजनीतिज्ञों, कला-कौशल माताओं और मौलिक विचार वालों की कमी है।

यह बातें पुरानी हो गई हैं और हमेशा इन्हीं बातों को सुनने के कारण हमारे हृदय पर उनका प्रभाव अब नहीं पड़ता। इस समय भारतीय जनता के सामने बड़े-बड़े जटिल प्रश्न उपस्थित हैं। किन्तु स्त्री-शिक्षा से बढ़ कर आवश्यक और महत्वपूर्ण कोई प्रश्न नहीं हो सकता। इसलिए मातृभूमि के नाम पर, मनुष्यता और सभ्यता के नाम पर मैं अपनी समस्त बहिनों की ओर से बड़े आदर के साथ अपील करती हूँ कि स्त्री-शिक्षा के आन्दोलन को विस्तृत कर, स्त्री-समाज के सुधार की नींव डाली जाय। जब तक स्त्री-समाज में शिक्षा का विस्तृत रूप से प्रचार नहीं किया जाता, तब तक बड़े और शक्तिशाली राष्ट्र का मानसिक तथा नैतिक सङ्गठन नहीं हो सकता और वह शक्तिशाली होकर अन्य राष्ट्रों के साथ समान अधिकार पाने की आशा नहीं कर सकता।

अब अन्त में इस लेख को समाप्त करने के पहिले हम अपनी बहिनों से थोड़ी प्रार्थना करेंगी। बहिनो! आप माता हो या बहिन, स्त्री हो या पुत्री, चाहे जिस पद पर आप हों, आपका इस समय क्या कर्तव्य है? क्या आप अब भी हाथ पर हाथ रक्खे बैठी रहेंगी? समय तेज़ी से परिवर्तन कर रहा है। संसार की अवस्था जो दस वर्ष पहिले थी, वह अब नहीं रही। क्या आप यह नहीं विचार करतीं कि यह अमूल्य समय है और इस समय आपको उठने और अपने पैरों खड़े होने का, जिस स्थिति में आप हैं, उस पर ग़ौर करने और उसे सुधारने का भरसक प्रयत्न करना चाहिए? अब आपको इस उन्नति के युग में एक मिनट भी असहाय, निस्तब्ध और दर्शक की भाँति नहीं रहना चाहिए। राष्ट्र को उन्नत करने की आप पर भी उतनी ही ज़िम्मेदारी है, जितनी पुरुषों पर। अपने आपको शिक्षिता बनाइए और सांसारिक कठिनाइयों को झेलने की परीक्षा में उत्तीर्ण होने के योग्य बनिए। नैतिक और धार्मिक आदर्शों की प्राप्ति का भाव हृदय में रख कर शिक्षा ग्रहण कीजिए। आज-कल की भाँति केवल परीक्षा पास करने और पद को प्राप्त करने की ग़रज़ से नहीं। याद रखिए, आप गार्गी और मैत्रेयी की पवित्र भूमि में उत्पन्न हुई हैं; आप गार्गी और मैत्रेयी की उस शिक्षा को प्राप्त कीजिए, जो दैवी और उच्च है।

बाहरी दुनिया से आपके अधिकार छीन लिए गए हैं, किन्तु आप अपने हृदय और अपने घर की एकमात्र अधिकारिणी हैं। आप अन्दर से ही अपने उतने ही राज्य में पूर्ण अधिकार रख कर उसका शासन कीजिए। अपनी आत्मा की खिड़कियों पर दृष्टि रक्खे रहिए। यदि वे गन्दी हैं, उन पर धब्बे पड़े हैं और उन पर बाहरी चीज़ें जम गई हैं, तो आपको संसार गन्दा दिखलाई देगा और उस पर धब्बे नज़र आएँगे। आप अपने दुखड़ों को रोना बन्द कीजिए, संसार को ख़राब दृष्टि से देखना छोड़ दीजिए। आप अपने हृदय से क्रोध, ईर्षा, द्वेष, सदा दूसरों के दोषों को ढूँढ़ना, दूसरों की निन्दा करना आदि दोषों को निकाल कर अपनी आत्मा की खिड़कियों को साफ़ कर डालिए। ऐसा करने से आपकी अन्तरात्मा शुद्ध और हलकी हो जायगी और संसार का सच्चा आनन्द आपको प्राप्त होगा। मनसा-वाचा

और कर्मणा किसी प्रकार भी घृणा तथा द्वेष को हृदय में स्थान न दीजिए। इन बुराइयों से आप अपना अहित तो करेंगी ही, आपके पास रहने वालों और आपकी बातों को सुनने वालों पर भी इसका विषैला प्रभाव पड़ेगा। आप मन, वचन और कार्य से ऐसा कीजिए और ऐसी उत्तम वार्तालाप कीजिए कि सुनने वाले भी सुधर जाएँ।

निस्सन्देह आपको साहित्यिक ज्ञान के लिए स्कूल, कॉलेजों और अध्यापकों की आवश्यकता होती है और इन्हीं की सहायता से आप यह ज्ञान लाभ कर सकती हैं, किन्तु आप वास्तविक शिक्षा और ज्ञान की ओर ध्यान नहीं देतीं। वह वास्तविक शिक्षा है मानसिक और हार्दिक विकास। यह शिक्षा, आप अपना बचा हुआ समय उत्तम बातों को सोचने तथा मनन करने में लगा कर और सत्कार्य करके ही प्राप्त कर सकती हैं। इस प्रकार अपनी स्थिति सुधारने के बाद आप अपनी सन्तान के सुधार की ओर झुकिए। समाज में माता द्वारा सन्तानों के सुधार का प्रश्न वर्षों से चला आ रहा है। वास्तव में माता ही सन्तान की प्रत्येक दृष्टि से निरीक्षक और सहायक है। इसलिए ध्यान रहे कि आप केवल सन्तान को उत्पन्न कर देने ही मात्र की ज़िम्मेदार नहीं हैं, किन्तु अपनी सन्तान के भाग्य का निर्माण कर भारत के भविष्य भाग्य को निर्माण करने का उत्तर-दायित्व भी आप ही पर है, क्योंकि आप लोगों की सन्तान ही भारत के भविष्य नागरिक बनेंगे। पुरुष तो अपनी सन्तान को उत्तम शिक्षा दिलाने का भरसक प्रयत्न करते हैं। किन्तु वह एकतरफ़ी (One sided) रह जाती है, क्योंकि दूसरी ओर से—अर्थात् माताओं की ओर से—तो सन्तान की शिक्षा का कुछ ध्यान ही नहीं किया जाता। इसलिए आप अपनी सन्तान को स्वयं उत्तम शिक्षा दीजिए और शिशु-शिक्षा का भली प्रकार प्रचार करके राष्ट्र की उन्नति में सहायक हूजिए।

आप अपनी मानसिक उच्च शिक्षा के लिए झगड़ती आई हैं, यह बहुत शुभ कार्य है। इसके लिए आप झग-ड़िए और ख़ूब झगड़िए, किन्तु इसके नैतिक पहलू पर भी ध्यान रखिए। आप अपना आन्दोलन तीव्र करती जाइए, शीघ्र ही आपको यह शुभ फल देगा। सफलता आपके चरणों पर लोटेगी, क्योंकि आदर्श स्त्री 'शक्ति' (देवी) का अवतार है। इस प्रकार आत्मसुधार करके भारतीय स्त्रियाँ जब स्त्रीत्व की पूर्णता को प्राप्त कर लेंगी, उस समय पुरुष-समाज को यह अनुभव करना पड़ेगा कि वे स्त्री-समाज के सहयोग के बग़ैर जीवन के उद्देश्य को प्राप्त नहीं कर सकते। उस समय वे स्त्रियों को भार-स्वरूप नहीं, सहायक और गुलाम नहीं, किन्तु समान हिस्सेदार समझने पर बाध्य होंगे। स्त्री-समाज को स्वतन्त्र करने पर ही भारत भी स्वतन्त्र होगा और इस प्रकार मातृभूमि की पराधीनता की बेड़ी तथा स्त्रियों की गुलामी का बन्धन एक साथ ही टूटेगा।

❀ ❀ ❀

चाँद का हृदय

[श्रीयुत "मयङ्क"]

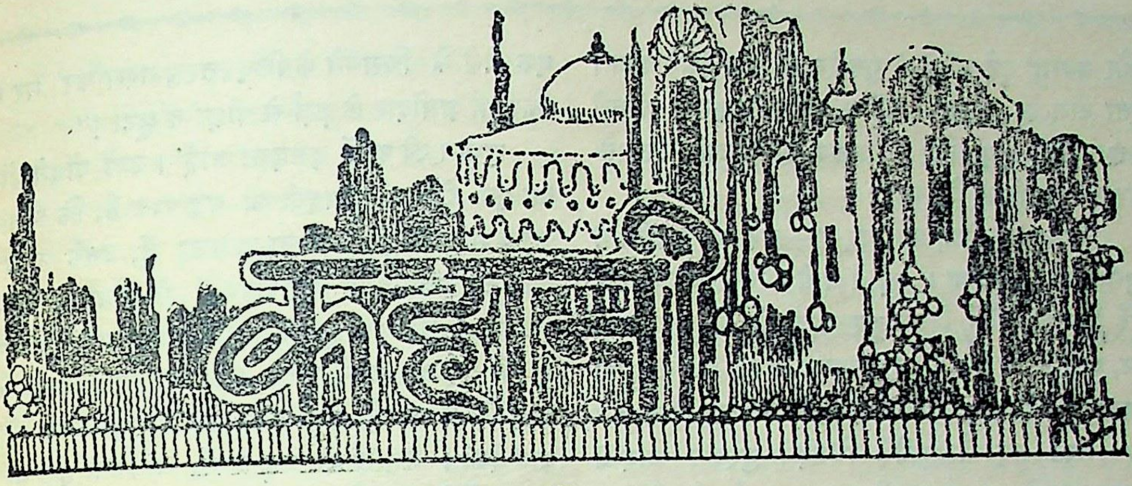
देखा नहीं कभी क्या तूने, विरही जन का हृदय सखे!
या प्रेमी जन के नयनों में प्रेम-विन्दु का उदय सखे!
रोते हुए पपीहागन की प्रिय वियोगियों के मन की।
दशा, वारि बिन मञ्जु मीन की सुन्दर कोकिल के तन की॥

उन्हीं कामनाओं को लेकर चाँद-हृदय आगे आया।
भूरि भावनाओं का आहा! सागर मन में लहराया॥
वही प्रेम-मुरली की लीला नवल नवीला रङ्ग नया।
मन्द-मन्द मुसुकानि अधर पर गुण गौरव वह प्रेम दया॥

छाई छिति के छोर-छोर में छटा निराली मतवाली।
रसिक मधुप का खिला कञ्ज, या आया वन से बनमाली॥
प्रणयी के हे प्रणय-देव! विष-व्याल जाल विरही जन के।
विषम वियोग विपिन के माली, प्रेम-खिलौना शिशु-जन के॥

कितने ही आहत हृदयों ने तुम्हें कलङ्की कह डाला।
इसी हृदय पर वज्र व्यङ्ग को हँस कर तुमने सह डाला॥
देखा सदा प्रसन्न-वदन हे प्रेम-सदन! तुमको नभ में।
पाया परम पुण्यमय तुमको तरल नेहमय सब जन में॥

आओ हे हृदयेश! हृदय बन बालक तुम्हें बुलाता है।
सुमन-कली का प्रेम-बिछौना तेरे लिए लगाता है।
मन-मन्दिर के इष्टदेव! अब तेरी प्रेम-प्रतीक्षा है।
"खिले रहो आँखों के आगे" यही हमारी भिक्षा है॥



बुधिया

[श्री० ज़हूरबख़्श, 'हिन्दी-कोविद']

घर लौटते-लौटते जुम्मन को शाम हो गई थी। सूर्य दिन भर के कठिन जीवन-संग्राम से विरक्त होकर क्षितिज के अञ्चल में छिपने की चेष्टा कर रहा था। ठण्ढी हवा के मीठे-मीठे झोंके प्रवाहित होने लगे थे; जैसे शरद्-ऋतु के निर्मल नीर वाले कलकल करते हुए नदी-नाले। पक्षी दल बाँध-बाँध कर अपने-अपने बसेरों को ओर किसी कवि की कल्पना के समान उड़े जा रहे थे। चारों ओर एक मनोहर शान्ति छाई हुई थी। परन्तु आनन्द और स्फूर्ति के उस सुखद राज्य में जुम्मन की कङ्काल-मूर्ति धीरे-धीरे रेंग रही थी, जैसे वह जीवन-यात्रा की पीड़ा से बिलकुल थक चुकी हो, उत्साह और बल उसे अयोग्य समझ कर कभी के त्याग चुके हों, और पैर भी उसे जवाब दे रहे हों।

जुम्मन ने अपने घर—घर क्या, झोपड़े के सामने—पहुँच कर देखा, नीम की ठण्ढी छाया में गुरुदीन चौधरी अपना मोटा लट्ठ सँभाले हुए बैठे हैं और उसकी बुढ़िया माँ शकूरन उनसे बातें कर रही है।

गुरुदीन चौधरी गाँव के ज़मींदार के यहाँ नौकरी करते थे। तकाज़े के लिए जाना, आसामियों को पकड़ कर लाना और फ़ुरसत के समय डेवढ़ी पर बैठे-बैठे गधे हाँकना तथा क्षण-क्षण पर चिलम फूँकते रहना—यही उनकी नौकरी थी। कोई दिन था, जब वे भी गाँव के बड़े आदमियों में गिने जाते थे। उनके द्वार पर मस्त बैलों की जोड़ी झूमती रहती थी और खलिहान से गाड़ियाँ भर-भर कर अनाज चला आता था। परन्तु छप्पन की साल ने उनके दिन बिगाड़ दिए। बैलों की जोड़ी बिक गई, खेत हाथ से निकल गए और चौधरी जी को नौकरी की शरण लेनी पड़ी। पहले वे किसी की ओर सीधी आँखों न देखते थे; परन्तु जब विपत्ति की चोटों ने उनके हृदय को कोमल बना दिया, तब वे दिनोंदिन गाँव वालों के निकट होने लगे। दीनता के उत्पीड़न ने सहज ही उनके हृदय में सहानुभूति के साथ उदार विचार उत्पन्न कर दिए। एक दिन वे अपने आसामियों को सता कर प्रसन्न होते थे, अब ज़मींदार के आसामियों की दीन दशा देख कर उनके हृदय में हलचल-सी होने लगती थी। सच तो यह है, कि ज़मींदार और उसके आसामियों के बीच चौधरी जी एक पतली चादर के समान थे। यह चादर ज़मींदार के आक्रमण को पहले अपने ऊपर झेलती थी, जिससे आसामियों पर होने वाले आघातों की तीव्रता में थोड़ी-बहुत कमी हो जाती थी। अस्तु—

गुरुदीन को देखते ही जुम्मन का दिल बैठ गया, जैसे कोई भयङ्कर विपत्ति उसके सामने मुँह फैलाए हुए खड़ी हो। वह एक क्षण के लिए जहाँ का तहाँ थम गया

और घबराई हुई आँखों से गुरुदीन की ओर देखने लगा। फिर नीम की छाया में पहुँचा, और 'राम-राम चौधरी कक्का' कहते हुए, सिर से अनाज की पोटली उतारते-उतारते धरती पर बैठ गया।

"राम-राम बेटा, आ गए?"—कह कर गुरुदीन ने जुम्मन की ओर देखा। गढ़े में धँसी और कीचड़ से भरी हुई निष्प्रभ आँखें, पिचके हुए गाल, पीठ से सटा हुआ पेट, एड़ी से चोटी तक गहरी उदासी के रङ्ग से रँगा हुआ काला शरीर, और शरीर पर धोती तथा फतुही के नाम पर लिपटे हुए मैले-कुचैले चिथड़े। गुरुदीन आए थे तकाज़ा करने, पर करुणा की वह कुम्हलाई हुई मूर्ति देख कर उनके मुँह से एक शब्द तक न निकल सका। वे केवल जुम्मन का मुँह देखते रह गए।

जुम्मन की बुढ़िया माँ शकूरन बोली—गुरुदीन लाला, जब तुम्हीं हमारा दर्द नहीं समझते, तब हम किसे अपना रोना सुनावें। तुमसे कोई दुराव तो है नहीं। दिन भर में एक बार पेट भर भोजन तक तो मिलता नहीं। कहाँ से रुपए आवें, कहाँ से क़र्ज़ चुकावें? मेरे बच्चे की तरफ़ देखो, भरी जवानी में ही यह फूल किस तरह सूख गया है। तुम्हीं बताओ, अब क़र्ज़ चुकाने के लिए हमारे पास बचा ही क्या है?

गुरुदीन ने उत्तर दिया—सब जानता हूँ, सब समझता हूँ, सब देखता हूँ भाभी! पर ज़मींदार साहब तो ये सब बातें नहीं जानते—नहीं समझते। उन्हें क्या समझाऊँ, कैसे समझाऊँ—कहाँ तक समझाऊँ? आख़िर मैं तो नौकर ही हूँ, मालिक की बात कहाँ तक टाल सकता हूँ?

"या अल्लाह!"—एक ठण्ढी साँस छोड़ कर जुम्मन बोला—"कक्का, अब्बा ने जीजी की शादी के लिए ज़मींदार से सौ रुपए लिए थे। इसी क़र्ज़े ने उनकी जान ली। डेढ़ सौ रुपए की जोड़ी बिक गई, सौ रुपए की गाय-भैंसें निकल गईं, तीन सौ रुपए की धरती से हाथ धोना पड़ा, फिर भी ज़मींदार का क़र्ज़ न चुका, और इसी चिन्ता में जल-जल कर अब्बा ने अपनी जान दे दी। उनके बाद मेरे ऊपर यह मुसीबत आई। दस बरस में और नहीं, तो सौ-डेढ़ सौ रुपए अदा किए होंगे, इसी फ़िक्र में यह शरीर सूख कर काँटा हो गया, इसी फ़िक्र में बच्चों की माँ का जी टूट गया, वह बीमार हुई और एक धेले के चिरायते के लिए तरस-तरस कर मर गई; फिर भी ज़मींदार के क़र्ज़ से पीछा न छूटा!"

जुम्मन की आँखें छलछला आईं। उन्हें पोंछते-पोंछते वह पुनः बोला—आमदनी का यह हाल है, कि दिन भर जङ्गल में लकड़ियाँ बीनता-बटोरता हूँ, उनके गट्ठे को लाद कर तीन कोस दूर शहर में ले जाता हूँ, दर-दर भटकता हूँ, तब कहीं मुश्किल से दो-चार आने पैसे मिलते हैं। मैं अकेला कमाने वाला और चार खाने वाले—एक आदमी की कमाई कहाँ तक ज़ोर मारे? आज की ही बात देखो। बैसाख की यह गर्मी, धधकती हुई धरती, ज्वालाओं से भरा हुआ आकाश, मन-प्राणों को झुलसा डालने वाली गरम-गरम हवा; दिन भर की कड़ी धूप सिर पर से निकल गई, पानी के घूँट पी-पीकर किसी तरह दिन काटा, कोसों दौड़-धूप की, तब कहीं यह डेढ़ सेर अन्न लेकर लौटा हूँ, जिसके साथ न एक पैसे की दाल है, न धेले का नमक। अब बताओ, क्या मैं खाऊँ, क्या बूढ़ी माँ और बच्चों को खिलाऊँ और क्या क़र्ज़ में दूँ? ऐसी ज़िन्दगी से तो मौत ही भली। न खाने का सुख, न पहिनने का आराम, न तबीयत में चैन।

कहते-कहते जुम्मन का गला भर आया। उसके हृदय में छिपा हुआ वेदना का सागर उमड़ उठा और ज्योतिहीन नेत्रों से आँसुओं की धारा बहने लगी।

शकूरन भी रोने लगी। वह जुम्मन के निकट खिसक आई और उसकी आँखों पर हाथ फेरती हुई बोली—या अल्लाह! हमारे दुश्मनों को भी ऐसे दिन न देखने पड़ें। मेरे लाल, रोओ मत। मालिक की मर्ज़ी को देखो, उसने हमारे भाग्य में यही लिख दिया है।

माता की यह कोमल सहानुभूति मिली, तो जुम्मन और भी अधीर हो उठा, सिसक-सिसक कर रोने लगा। इसी समय जुम्मन के दोनों बच्चे वहाँ आ पहुँचे, बिलकुल नङ्गे, हड्डियों पर केवल चमड़ा मढ़ा हुआ। दादी और पिता को रोते देख, वे भी उनसे लिपट कर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगे।

दीनता के कठोर हाथों से मसले हुए उन असहाय प्राणियों का वह कातर क्रन्दन सुन कर गुरुदीन का हृदय भी भीतर ही भीतर रोने लगा। उनकी आँखें डब-डबा आईं। उन्हें अपनी नौकरी पर बड़ी घृणा हुई। वे मन ही मन सोचने लगे—हाय! मेरा कर्तव्य भी कितना

घृणित है! मैं तक़ाज़ा करने क्या निकलता हूँ, पिशाच बन कर आसामियों के सामने पहुँचता हूँ। मेरी सूरत देखते ही उनकी जान साँसत में पड़ जाती है। उनके जीवन का अन्धकार और भी गहरा हो जाता है। उन्होंने जुम्मन के सिर पर हाथ रख कर कहा—कैसे पागल हो बेटा! घबराने से क्या होगा? रोने से तो मुसीबत कटती नहीं। धीरज धरो। भगवान सबका बेड़ा पार लगाते हैं! मुझे ही देखो, पहले क्या था, अब क्या हो गया हूँ! क्या मुझे रुलाई नहीं आती? नहीं, मुझे भी रुलाई आती है, पर मैं मन ही मन रो लेता हूँ। वह रोना ही क्या, जिसे दुनिया देखे और देख कर हँसे।

आँसुओं का बोझ उतर जाने से जुम्मन का हृदय कुछ हलका हुआ, उसने गुरुदीन से कहा—कक्का, तुम्हीं बताओ, मैं कैसे अपने हृदय को समझाऊँ? हाय! मेरे सब्र का प्याला लबालब भर चुका है, फिर भी तुम मुझसे सब्र करने की बात कहते हो! हमारी सोने की मड़ैया धूल में मिल गई, हम दाने-दाने को मुहताज हो गए, तब भी क़र्ज़े से मुक्ति न मिली। मेरे ये अबोध बच्चे माघ-पूस का तुषार ठिठुर-ठिठुर कर, दँतौरी बजा-बजा कर पार कर देते हैं, फिर भी कपड़े का एक तार तक नहीं पाते। बेचारे एक-एक रोटी के लिए तड़पा करते हैं, भूख की ज्वाला से रो-रोकर पहाड़ से दिन बिता देते हैं! और मैं इनका पेट काट-काट कर एक मुद्दत से ज़मींदार का घर भरता आ रहा हूँ, इतने पर भी आठ पहर चौंसठ घड़ी क़र्ज़ का दुधारा मेरे सिर पर नाचता रहता है। साल में जितने रुपए देता हूँ, उतने ही बाक़ी बने रहते हैं। न जाने इस ज़िन्दगी में इस मुसीबत से पीछा छूटेगा या नहीं?

गुरुदीन बोले—बेटा, ज़मींदार के क़र्ज़ से किसी का पीछा छूटा है, कि तुम्हारा ही छूटेगा? तुम तो क्या, शायद तुम्हारे बच्चे भी इस मुसीबत से छुट्टी न पा सकेंगे। अब तो हिम्मत और धीरज से ही काम लो। समझ लो, हम ज़मींदार के यहाँ अमानत जमा कर रहे हैं, जो उनसे परलोक में वसूल कर ली जायगी।

कहते-कहते गुरुदीन चुप हो गए, कुछ सोचने लगे। फिर घड़ी भर बाद बोले—बड़े ठाकुर आठ रोज़ से तुम्हें बुला रहे हैं, और मैं बहाने बना-बना कर उन्हें टाल रहा हूँ। न हो, घड़ी भर के लिए चले चलो। अधिक टालने से मैं आफ़त में फँसूँगा।

इसी समय वहाँ सहसा हलकू नाई आ निकला। वह ज़मींदार साहब का मुँहलगा ख़िदमतगार था। उसे देख कर गुरुदीन और जुम्मन दोनों सहम गए।

जुम्मन ने गुरुदीन से कहा—कक्का, अभी गाँव से लौट रहा हूँ। बिलकुल थक गया हूँ। पैर उठाने की हिम्मत नहीं है। भूख-प्यास के मारे बेचैन हो रहा हूँ। आज छोड़ दो। कल मैं बिना बुलाए ही हवेली में हाज़िर हो जाऊँगा।

गुरुदीन उच्च स्वर में बोले—बेटा, आज कई दिन बाद हाथ लगे हो। मैं तुम्हारी एक न सुनूँगा। बोलो, सीधे चलते हो या नहीं?

गुरुदीन का यह भाव-परिवर्तन देख जुम्मन काँप उठा, उसने उनके पैर पकड़ लिए, और गिड़गिड़ा कर कहा—कक्का, तुम्हें रामदुहाई है, आज दया कर दो। क़सम ले लो, कल सबेरे मैं बिना बुलाए ही सरकार के सामने पहुँच जाऊँगा। न पहुँचूँ तो जो चोर की सज़ा, सो मेरी सज़ा।

गुरुदीन उठ कर खड़े हो गए। उन्होंने लपक कर जुम्मन का हाथ पकड़ा और कहा—चुपचाप चले चलो। नहीं तो मार-मार के कचूमर निकाल दूँगा। कब से समझा रहा हूँ, मानते ही नहीं।

फिर जुम्मन ने कुछ नहीं कहा। बेचारा चुपचाप गुरुदीन के पीछे-पीछे चलने लगा। उसके दोनों बच्चे भी 'अब्बा-अब्बा' पुकारते और चीख़ते-चिल्लाते हुए उसके साथ हो लिए।

शकूरन ज़ोर से पुकार उठी—"गुरुदीन लाला! × × मेरा बच्चा × × ×!" फिर उसने अञ्चल फैला कर सूनी आँखों से आसमान की ओर देखा और करुण स्वर में पुकारा—"या अल्लाह!" इसके आगे वह और कुछ न कह सकी, और न रो ही सकी; जैसे संसार की समस्त वेदना ने उसका गला दबा दिया और हृदय में धधकते हुए दावानल ने उसकी आँखों में भरा हुआ सम्पूर्ण सागर सोख लिया। सच है, विपत्ति की चरम सीमा में पहुँचने पर आदमी न तो बोल सकता है, और न रो ही पाता है।

गुरुदीन ने जुम्मन को गाँव के ज़मींदार बड़े ठाकुर शेरबहादुर के सामने पेश कर दिया। ठाकुर साहब सहन में एक ऊँची मसनद पर तकिए के सहारे बैठे हुए थे।

एक सेवक उन पर पङ्खा हिला रहा था। सामने एक सुन्दर थाल रक्खा हुआ था, जिसमें शराब की बोतल, प्याला, कोफ़्ते, कबाब, सिगरेट का डिब्बा, दियासलाई का बक्स आदि सामग्री बड़ी सफ़ाई के साथ सजी हुई थी। ठाकुर साहब ने प्याला ढालते-ढालते जलती हुई आँखों से जुम्मन की ओर देखा।

जुम्मन हाथ बाँधे हुए खड़ा था, और इस तरह काँप रहा था, जैसे तूफ़ानी सागर पर तैरती हुई नौका। वह एक दार्शनिक के सदृश ठाकुर साहब की ओर ताक रहा था, मानों उनकी काया में छिपे हुए, उदारता, दया-शीलता, निष्ठुरता, स्वार्थ-लिप्सा आदि भावों का विश्लेषण कर रहा हो।

"हरामज़ादे!"—जैसे निर्जन वन में एकबारगी शेर दहाड़ उठा, और वह भयङ्कर गर्जना सुन कर दशों दिशाएँ काँप उठीं। प्याला ख़ाली करते हुए ओठों को चाटते-चाटते ठाकुर साहब ने जुम्मन से कहा—"इतने दिनों से कहाँ था?"

"सरकार! ×××" भयभीत बच्चे की वाणी के समान जुम्मन के स्वर में कम्पन हो रहा था। ठाकुर साहब का वह रोबीला चेहरा, वे जलते हुए नेत्र और हृदय को हिला देने वाला वह भीषण स्वर! मारे भय के जुम्मन का कलेजा धक्-धक् करने लगा। 'सरकार' कह कर वह ज़मीन पर औंधा लेट गया, जैसे क्रूरता के उस पिशाच से दया की भिक्षा माँगने लगा।

"सूअर के बच्चे! ×××"—फिर वही गर्जना हुई। ठाकुर साहब ने बाक़ी शराब गले में उड़ेल कर "हरामी के पिल्ले! तुझसे कितनी बार तकाज़ा किया जाय?" कहते हुए बोतल खींच कर जुम्मन के सिर पर मारी। परन्तु अभी जुम्मन की ज़िन्दगी के दिन बाक़ी थे, उसकी मुसीबतों का प्याला भरने में अभी विलम्ब था। ठाकुर साहब का निशाना चूक गया। बोतल धम् से जुम्मन की पीठ पर गिरी। उसके आघात से वह मृत प्राणी बिलबिला उठा और हृदय को पानी-पानी कर देने वाली कातर ध्वनि में पुकार उठा—"सरकार! माई-बाप!"

परन्तु निशाना चूक जाने से ठाकुर साहब का सुलगता हुआ क्रोध भभक उठा। मारे ताव के वे स्वयं जुम्मन को ठीक करने उठे। परन्तु नशे की हालत, क्रोध का आवेग, पैर लड़खड़ा गए। ठाकुर साहब जहाँ के तहाँ बैठते हुए किचकिचा कर गुरुदीन से बोले—बेईमान के बच्चे! देखता क्या है, कुचल दे बदमाश को। न कुछ दस रुपए के लिए ×××। अबे सुनता है कि नहीं?

गुरुदीन ने हाथ जोड़ कर दबी हुई आवाज़ से कहा—अन्नदाता! आज मैंने इसे बहुत पीटा है। पीटते-पीटते कुन्दी बना दिया है। इसने कल रुपए देने का वादा भी किया है। अब जैसी आज्ञा हो!

ठाकुर साहब 'हो-हो' करके हँस पड़े, बोले—"ख़ूब किया। ये बदमाश सीधे-सीधे तो मानते ही नहीं।" फिर जुम्मन की ओर घूर कर बोले—"सुना बे! कल शाम तक चुपके-चुपके रुपए दे जाना, नहीं तो मुझसे बुरा कोई न होगा। घर में आग लगवा दूँगा, और तेरा चमड़ा खिंचवा कर उसमें भुस भरवा दूँगा।

इसके बाद उन्होंने कड़क कर गुरुदीन को आज्ञा दी—अबे ऊँट के माफ़िक़ क्या देख रहा है? इस पापी को मेरे सामने से हटा दे। और हाँ, हलकुआ से कह दे, उन राँड़ों को बुला लावे। शाम हो चुकी है, कुछ मज़ा-मौज ही हो।

अपमान के उस हलाहल को पीकर जुम्मन डेवढ़ी से बाहर निकला। उसके दोनों बच्चे, बाहर एक ओर खड़े-खड़े सिसक रहे थे। पिता को देखते ही वे 'अब्बा-अब्बा' कह कर उसके पैरों से लिपट गए। परन्तु इस समय जुम्मन आपे में नहीं था। उसकी दशा उस यात्री के समान हो रही थी, जो पथ भूल कर निर्जन वन की भूलभुलैयों में जा फँसता है, जिसे अमावस्या का सघन अन्धकार चारों ओर से ग्रस लेता है, और जिसके अगल-बग़ल में रह-रह कर हिंस्र पशु चीत्कार कर उठते हैं। जुम्मन चुपचाप धीरे-धीरे घर की ओर पैर उठा रहा था। कल का भीषण भविष्य पिशाच के समान उसके नेत्रों में नाच रहा था, और उसकी भयङ्कर कल्पना रह-रह कर उसके एक-एक रोम में कम्पन उत्पन्न कर देती थी।

घर पहुँच कर जुम्मन ने देखा, उसकी बुढ़िया माँ अब तक नीम के नीचे बैठी हुई है और अनाज की छोटी सी पोटली ज्यों की त्यों उसके सामने पड़ी है। जुम्मन को देखते ही शकूरन स्नेह-स्वर में पुकार उठी—बेटा!

जुम्मन डाल से टूटे हुए फल की तरह धरती पर गिर पड़ा और धीरे से बोला—अम्माँ!

शकूरन ने पुनः पुकारा—बेटा!

जुम्मन ने भर्राए हुए गले से उत्तर दिया—अम्माँ!

पत्तों के वितान से चाँदनी छन-छन कर जुम्मन के पिचके हुए चेहरे पर रोशनी डाल रही थी। शकूरन ने देखा, उसके कलेजे का टुकड़ा चुपचाप रो रहा है। शकूरन के हृदय में ज्वार उमड़ उठा। वह जुम्मन के पास सरक गई और उसके सिर को अपनी गोद में रख कर रुँधे हुए स्वर में बोली—"बेटा! क्या हुआ?" शकूरन की आँखों से वेदना की बड़ी-बड़ी बूँदें गिरने और जुम्मन के सूखे हुए कपोलों को तर करने लगीं।

जुम्मन के धीरज का बाँध टूट गया। उसकी आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई। उसने अटक-अटक कर कहा—अम्माँ, अब क्या होगा?

शकूरन ने अपने फटे हुए अञ्चल से जुम्मन के आँसू पोंछे और उसे दिलासा देते हुए कहा—बता तो क्या हुआ? बड़े ठाकुर ने क्या कहा?

"क्या बताऊँ अम्माँ! मेरा दुर्भाग्य मेरे सिर पर खेल रहा है। बड़े ठाकुर ने कहा है, कि अगर कल तक रुपए अदा न कर दिए जायँगे, तो मेरी यह झोपड़ी जला दी जायगी और मेरा चमड़ा खिंचवा कर उसमें भुस भरवाया जायगा! हाय! कल का दिन × ×!" कहते-कहते जुम्मन का हृदय फटने लगा, और वह दाढ़ मार कर रो पड़ा।

भोले-भाले बच्चे बाप की मुसीबत को क्या समझते। उसे रोता देख उनका जी योंही बेचैन हो रहा था, अब उसकी रुलाई सुन, वे उसके शरीर पर गिर पड़े, और 'अब्बा-अब्बा' कह कर फुक्का फाड़-फाड़ कर रोने लगे। इन दुखियों के करुण-क्रन्दन से वृक्ष पर बसी हुई चिड़ियों की नींद उचट गई। वेदना की अनुभूति से वे अपने चारों ओर देखने, चें-चें करने और इस डाल से उस डाल पर फुदकने लगीं, हँसती हुई प्रकृति में चारों ओर एक गहरी उदासी सी छा गई!

शकूरन एक मुद्दत से मुसीबतों से युद्ध करती आ रही थी, मुसीबतों से युद्ध करते-करते ही उसके बाल सफ़ेद हो गए थे। अपनी सन्तान का वह दुख देख, उसने अपने थके हुए साहस को सँभाला। काँपते हुए हाथों अपने आँसू पोंछे। बच्चों को पुचकार कर चुप कराया, और फिर आवेशपूर्वक जुम्मन से कहा—बेटा, इस तरह घबराते हो! छिः! लोग देखेंगे तो हँसेंगे और कहेंगे कि तुम क़र्ज़ चुकाते रोते हो। उठ कर बैठो, और हिम्मत से काम लो। जब तक दम में दम रहे, क़र्ज़ चुकाओ। अब भी ज़मींदार को देने के लिए हमारे पास बहुत-कुछ है। कल बड़े ठाकुर के नाम पर बुधिया को निछावर कर दो।

माँ की बात सुन कर जुम्मन चौंक उठा। उठ कर बैठ गया, और उसकी ओर आँखें फाड़-फाड़ कर देखते हुए बोला—कहती क्या हो अम्माँ?

"ठीक कहती हूँ बेटा! कल बाज़ार का दिन है। बुधिया को ले जाकर बेच दो, और जो कुछ मिले, ज़मींदार को दे दो।"—शकूरन ने उसी आवेशपूर्ण वाणी में कहा।

बुधिया जुम्मन की एक पुरानी गाय थी। जुम्मन शैशव-काल से ही उसे अपने घर में देखता आ रहा था। वह गाय उसके अब्बा ने उस समय ख़रीदी थी, जब जुम्मन माँ की गोद में खेलता था, माँ के दूध नहीं होता था, और वह दूध की एक-एक बूँद के लिए तरसा करता था। जुम्मन इसी गाय का दूध पी-पीकर पला था। इसीलिए वह जुम्मन के माँ-बाप को बहुत प्रिय थी। वे दोनों जुम्मन को बुधिया की ही देन समझते थे। जुम्मन के बाप पर बड़ी-बड़ी विपत्तियाँ आईं, उसके हाथ से पत्नी के आभूषण निकल गए, खेत बिक गए, सभी गाय, बैल और भैंसों से हाथ धोना पड़ा, पर उसने कभी बुधिया के बेचने का विचार तक न किया। अपने जीवन भर उसे बड़े प्यार से—बड़े आराम से रक्खा। उसके बाद बुधिया जुम्मन को बहुत दिन तक पीने के लिए दूध, घर लीपने के लिए गोबर और जलाने के लिए उपले देती रही। परन्तु अब वह बूढ़ी हो गई थी। ज़मींदार की कृपा से गाँव में चरोखर का अभाव था ही, ऊपर से जुम्मन की दरिद्रता ने बूढ़ी बुधिया को और भी निर्बल बना दिया था। परन्तु बुधिया अब भी अपने कर्तव्य से विरत नहीं हुई थी, वह बराबर जुम्मन को घर लीपने के लिए गोबर और जलाने के लिए उपले देती जाती थी। हाँ, असमर्थता के कारण केवल पीने के लिए दूध नहीं दे सकती थी। परन्तु जुम्मन तथा उसकी माँ की नज़रों

में बुधिया का वही मूल्य था। वे यथाशक्ति उसे चारा-पानी देते और फ़ुरसत के समय उस पर प्यार करते थे।

जो बुधिया इतने दिनों तक, बड़ी-बड़ी आफ़तों में इस परिवार की सङ्गिनी रही है, जो बुधिया इतने दिनों तक मेरे कुटुम्ब के एक प्राणी के सदृश रही है, वही बुधिया अब अपने बुढ़ापे में ज़मींदार के ऋण पर निछावर कर दी जाय—यह बात जुम्मन सोच भी न सका था। माँ की बात सुन कर वह सन्नाटे में आ गया, और क्षण भर मौन रह कर बोला—बुधिया को बाज़ार में ले जाकर बेच दूँ—यह काम मुझसे न हो सकेगा अम्माँ!

"क्यों न हो सकेगा?"—शकूरन ने दृढ़तापूर्वक पूछा।

"यह अपने हृदय से पूछो, अम्माँ! बुधिया हमारे पास अब्बा की सबसे बड़ी धरोहर है, जिसकी हम अभागे कुछ भी हिफ़ाज़त न कर सके! बुधिया हमारे भले दिनों की एक मिटती हुई, पर सुन्दर निशानी है। यदि हमने अब्बा की यह धरोहर इस तरह खो दी, तो परलोक में उनकी आत्मा कितनी व्यथित होगी! यदि हमने अपने खोए हुए वैभव की यह बची-खुची निशानी इस तरह मिटा दी, तो पुरा-पड़ौस के लोग क्या कहेंगे? हमारा मुँह देखते-देखते बुधिया बूढ़ी हो गई, हमारी ही चिन्ता में घुल-घुल कर वह हड्डियों का ढाँचा मात्र रह गई। अब इस अवस्था में मैं उसे बाज़ार में ले जाकर अपमानित करूँ—यह तो बड़ा विश्वासघात होगा अम्माँ! मेरे लिए बुधिया को बेच डालना, या तुम्हें ले जाकर बाज़ार में खड़ी कर देना, एक ही बात है।"—जुम्मन ने अपनी मर्म-व्यथा को दबाते हुए उत्तर दिया।

"आह! बड़े ठाकुर का क़र्ज़ चुकाने के लिए मैं कहीं बाज़ार में बिक सकती! पर मैं तो बुधिया से भी गई-बीती हूँ। बुधिया के तो भला दस-पाँच रुपए भी खड़े हो जायँगे, पर मुझे तो कोई दमड़ी को भी न पूछेगा।"—कहते-कहते शकूरन के नेत्रों में जल भर आया।

क्षण भर चुप रहने के बाद वह पुनः बोली—परन्तु बेटा, अब बुधिया को बेचने के सिवा हमारे पास उपाय ही क्या रह गया है? तुम्हारे प्राणों से तो बुधिया के प्राणों का मूल्य अधिक है नहीं। जब कल ज़मींदार का आदमी तकाज़ा लेकर आएगा, तब उसे क्या उत्तर दोगे? बुधिया को न बेचोगे तो क्या करोगे?

"क्या करूँगा अम्माँ?"—जुम्मन ने टूटे हुए हृदय से उत्तर दिया।

वह रात जुम्मन के लिए पहाड़ हो गई। न उसके हृदय में शान्ति थी, न आँखों में नींद। रह-रह कर उसके सामने बुधिया का पुराना इतिहास चक्कर काटने लगता था। रह-रह कर उसकी आँखों में वे दिन झूलने लगते थे, जब वह उसका मीठा-मीठा दूध पीता था, ताज़ा-ताज़ा मक्खन खाता था, घण्टों उसके साथ खेलता था, सबेरे-सबेरे उसे हाँकने के लिए उसके पीछे-पीछे दूर तक उछलता-कूदता चला जाता था, और शाम होते-होते बड़ी बेचैनी से उसके लौटने के मार्ग की ओर ताका करता था। अतीत की ये सुखद स्मृतियाँ रह-रह कर उसके टूटे हुए हृदय पर आघात करती थीं। कलेजे में एक हूक उठती थी, और वह धीमे स्वर में, तप्त उच्छ्वास छोड़ते हुए कह उठता था—हाय बुधिया! तू इसी दिन के लिए इतने दिनों से इस शाप-ग्रस्त घर में बसेरा किए थी! हाय! तूने इसी दिन के लिए इस अधम को, बरसों अपना दूध पिलाया था।

दूसरे दिन का प्रातःकाल शायद जुम्मन के संसार का सबसे कठोर प्रातःकाल था। वैतालिक गायन के सदृश शकूरन ने जुम्मन की तन्द्रा भङ्ग की और कहा—बेटा, मैं तुम्हारा क्लेश समझती हूँ। परन्तु कर्त्तव्य का पालन करने के लिए, धीरज के साथ वेदना की ये चोटें सहनी ही पड़ेंगी। देर मत करो, देर करने से आकाश से बरसती हुई यह आग तुम्हें और बुधिया को और भी जलाएगी।

"या अल्लाह!"—कह कर जुम्मन ने एक ठण्ढी साँस खींची। फिर वह एक दुधमुँहे बच्चे की भाँति उठा, और मरे हुए हाथों, बुधिया के गले में रस्सी बाँध कर, उसे बाज़ार ले जाने के लिए तैयार हुआ।

शकूरन बुधिया के लिए दो मोटी-मोटी रोटियाँ और एक कठौते में थोड़ा सा ठण्ढा पानी ले आई। परन्तु बुधिया की दिव्यआत्मा जैसे सारी परिस्थिति समझ रही थी। उसने न पानी में मुँह डाला, न रोटियों की ओर देखा। वह केवल शकूरन की ओर देख रही थी, और उसके भोले-भोले नेत्र जैसे उससे कह रहे थे—"अब इस घर में क्या खाऊँ और क्या पीऊँ!"

शकूरन ने देखा, जैसे बुधिया के बड़े-बड़े नेत्रों में उदासी की घटाएँ घिर रही हैं। शकूरन की आत्मा उद्वेलित हो उठी, और आँखों में जल-बिन्दु लहराने लगे। "बुधिया! मेरी बुधिया!" कहते हुए उसने बुधिया के सिर पर हाथ फेरा। इसके साथ ही शकूरन का धीरज जाता रहा। वेदना की धारा हाहाकार करके प्रवाहित हो उठी। शकूरन अटकते हुए स्वर से "बुधिया! मेरे सुख-दुख की साथिन!" कह कर बुधिया के गले से लिपट गई, और इस तरह विलाप करने लगी, जैसे कोई माता अपनी लाड़ली बेटी को सदा के लिए बिराने देश में भेज रही हो। हृदय के उस रोदन से बुधिया की आत्मा मिल गई, और वह भी चुपचाप शकूरन के साथ आँसू बहाने लगी।

बेचारा जुम्मन अब तक हृदय पर धीरज का पहाड़ रक्खे हुए चुपचाप खड़ा था। परन्तु नदी के समान बढ़ती हुई शोक की वह धारा देख कर, अब वह अपने को और अधिक न सँभाल सका। बुधिया के कन्धे पर सिर लटका कर, फूट-फूट कर रोने लगा। जब आँसुओं का वेग कुछ कम हुआ, तब "या अल्लाह! मेरे भाग्य में यह दिन देखना भी बदा था!" कह कर, इस तरह आकाश की ओर ताकने लगा, जैसे उसके नेत्र वहाँ किसी खोई हुई वस्तु को ढूँढ़ रहे हों।

जब जुम्मन बुधिया के गले में बँधी हुई रस्सी को खींचते हुए आगे बढ़ा, तब शकूरन ने बड़ी आतुरता-पूर्वक कहा—बेटा, मेरी बुधिया को ऐसे आदमी के हाथ बेचना, जहाँ बेचारी सुख से रह सके।

"अम्माँ, पागल तो नहीं हो! भला हड्डियों के इस ढाँचे को क़साई के सिवा कौन ख़रीदेगा?"—कहता हुआ जुम्मन कुछ और आगे बढ़ा। इतने में उसके दोनों बच्चे न जाने कहाँ से वहाँ आ निकले। वे बुधिया से लिपट गए। अब जुम्मन बुधिया को आगे खींचता था, और बच्चे बार-बार चिल्लाते-चीख़ते थे—"अब्बा! हमारी बुधिया! अब्बा! हमारी बुधिया!"

बूढ़ी बुधिया के पैर आगे नहीं बढ़ते थे। वह बार-बार रँभाती और पीछे मुड़-मुड़ कर उस घर की ओर ताकती थी, जहाँ उसका जीवन बड़ी शान्ति से बीता था। मानों घर का प्रेम बुधिया के पैर आगे न उठने देता था, और उसकी करुणा भरी आँख बार-बार मूक वाणी में शकूरन से प्रश्न करती थीं—"मुझे घर से बाहर क्यों निकाल रही हो? क्या इस घर पर अब मेरा कुछ अधिकार नहीं रहा? मैंने तुम्हारा क्या अपराध किया है?"

बुधिया के ये भाव जुम्मन के कलेजे पर आरा चलाने लगे। वह लौट पड़ा और शकूरन से बोला—अम्माँ! अब नहीं सहा जाता। मेरी बुधिया मेरे हाथों क़साई की छूरी तले जाय—यह पाप मुझसे न हो सकेगा। अल्लाह अभी न जानें किन गुनाहों की ये सज़ाएँ दे रहा है, अब यह गुनाह करूँगा, तो आक़बत में ख़ुदा जाने मेरी क्या गति होगी। क़र्ज़ चुके चाहे न चुके।

शकूरन ने सन्तोष की साँस लेकर कहा—अच्छी बात है बेटा! बुधिया हमारी लक्ष्मी है, वह हमारे पास ही रहेगी। क़र्ज़ चुकाने के लिए यह घर बेच दो। हम किसी झाड़ के नीचे घास-फूस की छोटी सी झोपड़ी बना लेंगे, और उसी में रह कर ज़िन्दगी के बाक़ी दिन काट देंगे।

❖

"मनुष्य को प्रतिदिन अपने चरित्र की आलोचना करना चाहिए और यह सोचना चाहिए कि मेरा आचरण पशु के तुल्य है, किम्बा सत्पुरुष के सदृश।"

"शिष्टाचार आन्तरिक विनय का वाह्य लक्षण है।"

"परोपकार-रहित पुरुष के जीवन को धिक्कार है, जितने पशु हैं उन सबका चर्म भी उपकार करेगा, मनुष्य का नहीं।"

❖

"जिस आत्मा के बन्ध-मोक्ष की बात हम लोग किया करते हैं, वह बन्ध-मोक्ष तन-मन के आधार पर है।"

"तन और मन का नित्य सम्बन्ध होने से परस्पर के आश्रय बिना उनकी उन्नति अशक्य है।"

"छोटी उम्र में जो अच्छी आदतें पड़ जाती हैं, उन्हीं से हमारे चरित्र की रक्षा होती है।"

कौशाम्बी

[श्री० वेणीप्रसाद जी शुक्ल, मेम्बर इलाहाबाद आर्कोलॉजिकल सोसाइटी]

कौशाम्बी की गणना भारत की अति प्राचीन समृद्धिशाली नगरियों में की जाती है। किसी समय यह नगरी धन, जन, दुर्ग, प्रासादों, मन्दिरों, ऊँची मीनारों तथा रमणीक उद्यानों से अलङ्कृत थी और भारत के कितने ही इतिहास-प्रसिद्ध प्रतापी नरेशों की राजधानी होने का इसे गौरव प्राप्त था। परन्तु संसार की परिवर्तन-शीलता और काल के कराल धक्के के कारण, कौशाम्बी का स्मृति-स्वरूप, प्रयाग से पैंतीस मील पश्चिम, यमुना-किनारे 'कोसम' नाम का एक छोटा सा ग्राम और उसके आस-पास पड़े हुए ईंटों के कुछ ढेर रह गए हैं, जिन्हें देख कर अब यह अनुमान भी नहीं किया जा सकता कि यहाँ कभी कोई महानगरी रही होगी।

हमने कौशाम्बी का नाम सुना था। उस इतिहास-प्रसिद्ध नगरी का भग्नावशेष एक बार देख लेने की भी इच्छा थी, परन्तु संयोग और सुयोग के अभाववश मन की इच्छा मन में ही रह गई थी। अन्त में हमें प्रयाग के सुप्रसिद्ध मुद्रातत्त्वविद तथा म्युनिसिपल म्यूज़ियम के संस्थापक पण्डित ब्रजमोहन जी व्यास की अनुप्रेरणा से कौशाम्बी का भग्नावशेष देखने का अवसर मिला। एतदर्थ हम व्यास जी महोदय के अत्यन्त आभारी हैं।

रेलगाड़ी द्वारा 'कोसम' जाने के लिए भरवारी जाना पड़ता है, जो प्रयाग से सोलह मील है। इसके आगे पैदल या किसी दूसरी सवारी द्वारा जाना पड़ता है। इसलिए मोटर-गाड़ी से जाना ही विशेष सुविधाजनक है। इससे उत्तर भारत के विशाल राजपथ—ग्रेण्डट्रङ्क रोड की भी थोड़ी सी सैर हो जाती है। इस ऐतिहासिक राजपथ की मरम्मत करा कर सम्राट शेरशाह और सम्राट अकबर ने उसके किनारे-किनारे कुएँ, सराएँ और मसजिदें बनवाई थीं, जो अब भी अपनी टूटी-फूटी दशा में मुग़ल-काल की याद दिलाती हैं। भरवारी से एक पक्की सड़क यमुना-किनारे होकर राजापुर को गई है। इस पर आठ मील चलने पर एक कच्ची सड़क मिलती है। यहाँ से 'पबूसा' ग्राम बारह मील है, जहाँ से प्रभर्षण नामक पहाड़ी कुछ फ़ासले पर दिखाई देती है, जो जैनियों का तीर्थस्थान है। बहुत दूर-दूर से जैन यात्री इस स्थान के दर्शनार्थ आते हैं। ग्रेण्डट्रङ्क रोड से कौशाम्बी को जाने वाली यह सड़क अवश्य ही किसी समय अच्छी दशा में रही होगी। परन्तु इस समय तो वह भी एक धूल और गड्ढों से भरी हुई स्मृतिमात्र ही रह गई है। धर्मात्मा जैन यात्री कभी-कभी इसकी मरम्मत करा देते हैं, अन्यथा अब तक यह पतली पगडण्डी के रूप में ही परिणत हो गई होती।

पबूसा (जैन कौशाम्बी)

यमुना के किनारे प्रायः तीन सौ फ़ीट ऊँची एक छोटी सी ऊजड़ पहाड़ी है, जिस पर हरे तिनके का नाम भी नहीं दृष्टिगोचर होता। इसी पहाड़ी पर एक प्राचीन जैन-मन्दिर है। मन्दिर तक पहुँचने के लिए १६० सीढ़ियाँ बनी हैं। इसी पहाड़ी के नीचे उपर्युक्त 'पबूसा' नाम का ग्राम है। यहीं से कौशाम्बी का खण्डहर आरम्भ होता है और यमुना के किनारे-किनारे प्रायः चार मील तक चला गया है। चारों ओर ईंटों के असंख्य ढेर दिखाई पड़ते हैं, जिससे कौशाम्बी के विस्तार का अनुमान लगाया जा सकता है। प्राचीन कौशाम्बी के इस उजड़े दयार पर तीन ग्राम बसे हैं—(१) पबूसा (जैन कौशाम्बी), (२) कोसम (गुप्त या हिन्दू कौशाम्बी) और (३) गढ़वा (बौद्ध कौशाम्बी)। गढ़वा के पास यमुना के किनारे प्राचीन कौशाम्बी के बहुत से चिन्ह पाए जाते हैं। पुराने इतिहास से पता लगता है कि प्राचीन कौशाम्बी यमुना और कौशिकी नाम्नी नदियों के सङ्गम-स्थल पर बसी थी। परन्तु कौशिकी का

अस्तित्व अब एक सूखे नाले के रूप में रह गया है, जो गढ़वा के नीचे है। यहाँ ईंटों के कई ढेर, एक टूटा-फूटा अशोक-स्तम्भ और कुछ टूटी-फूटी मूर्त्तियाँ पड़ी हैं।

बौद्ध कौशाम्बी का प्राचीन इतिहास

अति प्राचीन काल से ही कौशाम्बी नगरी पुराण-प्रसिद्ध कौशिक-नरेशों की राजधानी थी, जिस वंश में गायत्री मन्त्र के कर्त्ता महर्षि विश्वामित्र पैदा हुए थे। परन्तु विश्वामित्र के बाद कुश-वंश में कोई प्रतापी राजा नहीं हुआ, इसलिए महाभारत-काल में कौशाम्बी कुरु-साम्राज्यान्तर्गत एक प्रान्तीय नगरी मात्र थी।

महाभारत-समर के आठ सौ वर्ष बाद महात्मा गौतम बुद्ध के जन्म-काल तक को आधुनिक ऐतिहासिक विद्वान भारत के इतिहास का आरम्भ-युग मानते हैं। इसी समय एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना हुई, जिसका कौशाम्बी से विशेष सम्बन्ध है। अर्जुन के पौत्र सम्राट जन्मेजय ने नागों के नाश के लिए तक्षशिला[1] नगरी को अपनी राजधानी बनाया। फलतः पौरव-साम्राज्य की दो राजधानियाँ हो गईं। सम्राट जन्मेजय की छठीं[2] पीढ़ी में पाण्डव निचक्षु नाम का राजा हुआ। जिसके राजत्व-काल में एक बार गङ्गा नदी में ऐसी बाढ़ आई कि सारी हस्तिनापुरी जलमग्न होकर तहस-नहस हो गई। फलतः राजा निचक्षु उसे छोड़ कर कौशाम्बी चला आया और उसे ही अपनी राजधानी बनाई। कौशाम्बी का एक बार फिर भाग्योदय हुआ। अस्तु—

वत्सराज उदयन

इसी निचक्षु का पौत्र शतानीक था, जिसका पुत्र वत्सराज उदयन हुआ। यह वही प्रसिद्ध वत्सराज उदयन था, जिसका उल्लेख बौद्ध जातकों और बृहत्कथा आदि प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। बुद्ध-पद-प्राप्ति के पश्चात् जिस समय महात्मा गौतम राजगृह में आए थे, उस समय पूर्व भारत में चार प्रसिद्ध नरेश राज्य करते थे—(१) राजगृह का राजा बिम्बसार (श्रेणिक), (२) कोशल श्रावस्ती के महाराज प्रसेनजित, (३) कौशाम्बी-नरेश महाराज उदयन, और (४) उज्जयिनी के राजा चण्ड प्रद्योत। उदयन का सम्बन्ध उज्जयिनी और राजगृह, दोनों राजघरानों से था। क्योंकि उदयन की दो रानियाँ थीं, जिनमें एक प्रद्योत की राजकन्या वासवदत्ता और दूसरी राजा बिम्बसार की पुत्री पद्मावती थी। बौद्ध जातकों में उदयन और कौशाम्बी का विस्तृत वर्णन पाया जाता है। साथ ही इस बात का भी उल्लेख है कि गङ्गा नदी की बाढ़ में हस्तिनापुरी के बह जाने पर अर्जुन के पुत्र शतानीक ने कौशाम्बी में जाकर निवास किया था। जातकों में यह भी लिखा है कि इसकी एक रानी को गरुड़ पक्षी उठा ले गया था और उत्कल प्रदेशस्थ उदय गिरि नामक पर्वत की गुफा में छोड़ दिया था। बेचारी रानी इधर-उधर भटक रही थी, इतने में उसे एक मुनिकुमार मिल गया। वह रानी को अपने स्थान पर ले गया। अन्त में दोनों में प्रेम हो गया और फल-स्वरूप उदयन की उत्पत्ति हुई। बालक का जन्म उदय गिरि की गुफा में हुआ था, इसीसे उसका नाम भी उदयन पड़ा। मुनि ने अपने पुत्र उदयन को हस्ति-वश विद्या की शिक्षा दी और किसी नागराज से उसने एक मोहिनी वीणा भी प्राप्त कर ली। इन्हीं दो साधनों से बलवान होकर उसने एक महती सेना तैयार की और अन्त में कौशाम्बी पर अधिकार प्राप्त किया।

बृहत्कथा

पैशाची भाषा के इस प्रसिद्ध ग्रन्थ को गुणाढ्य कवि ने सवा लक्ष श्लोकों में तैयार किया था। परन्तु अब यह दुष्प्राप्य है और इसके स्थान पर इसके दो छोटे-छोटे संस्कृत अनुवाद पाए जाते हैं। जिनमें एक का नाम 'बृहत्कथा-मञ्जरी' और दूसरे का 'सरित्सागर' है। इन ग्रन्थों से पता चलता है कि बृहत्कथा के मूलकर्त्ता वररुचि हैं, जो मगध-सम्राट योगानन्द के मन्त्री और कौशाम्बी के रहने वाले थे। इन्होंने यह कथा काणभूति को सुनाई

१—वैशम्पायन ने महाभारत की कथा पौरव जन्मेजय को तक्षशिला के महलों में सुनाई थी। —लेखक

२—तस्यापि जन्मेजय श्रुत सेनो प्रसेन भीमसेना पुत्राश्चत्वारो भविष्यन्ति तस्यापरः शतानीको भविष्यति। यो सौ विषय विरक्त चित्तो निर्वाण माप्स्यति। शतानीक मदश्व मेघदत्तो भविता तस्मादधिसीम कृष्णः। अधिसीम कृष्णात् निचक्षुः यो गङ्गायापहृते हस्तिनापुरे कौशम्ब्यां निवत्स्यति। (विष्णु-पुराण अध्याय ११)

थी और काणभूति ने गुणाढ्य को। परन्तु बृहत्कथा का उदयन सम्बन्धी वर्णन बौद्ध ग्रन्थों के उदयन सम्बन्धी वर्णन से नहीं मिलता। कौशाम्बी-निवासी पण्डित वररुचि ने उदयन को कुलीन क्षत्रिय माना है। महाराज उदयन और उनके पुत्र नरवाहनदत्त ही बृहत्कथा के नायक हैं। उदयन का सम्बन्ध कौशाम्बी से वैसा ही है, जैसा विक्रम का उज्जयिनी से अथवा ख़लीफ़ा हारूँ-उल-रशीद का बग़दाद से। प्रद्योतराज-कन्या वासवदत्ता और उदयन के सम्बन्ध में भी एक विचित्र कथा पाई जाती है। एक बार शिकार खेलते-खेलते उदयन अवन्ति देश की सीमा में चला गया। वहाँ प्रद्योतराज के सैनिकों ने उसे पकड़ लिया और उसे अपने राजा के पास ले गए। राजा ने उसे अपनी विद्या राजकुमारी वासवदत्ता को सिखाने को विवश किया। गुरु और शिष्या के बीच में एक परदा लटका दिया गया, ताकि एक दूसरे को देख न सकें। साथ ही वासवदत्ता से यह भी कह दिया गया कि उदयन का चेहरा राक्षस की तरह कुरूप है, इसीलिए परदे की व्यवस्था की गई है। परन्तु एक दिन दैवात् हवा के झोंके से परदा हट गया और दोनों एक-दूसरे को देख कर मोहित हो गए। परिणाम-स्वरूप एक दिन दोनों हाथी पर सवार होकर वत्सदेश चले आए।

कौशाम्बी में बौद्ध-धर्म

बौद्ध ग्रन्थों से पता लगता है कि भगवान तथागत बुद्ध उपदेश देने के लिए कई बार कौशाम्बी के राजमहलों में आए थे और पैंतालीस चातुर्मासों में नवाँ चातुर्मास भी कौशाम्बी में ही बिताया था। इससे विदित होता है कि बुद्ध के जीवन-काल में ही कौशाम्बी में बौद्ध-धर्म का प्रचार हो गया था। परन्तु कौशाम्बी का राजवंश अधिक दिनों तक नहीं चला। क्योंकि उदयन के बाद नरवाहन, खण्डपाणि, नरमित्र और क्षेमक इन्हीं चार राजाओं के नाम मिलते हैं। प्रद्योतवंश के पाँच राजाओं में अन्तिम अर्थात् पाँचवें का नाम नन्दिवर्द्धन था। पौराणिकों ने मगध के शिशु-नाग वंश और प्रद्योतवंश को एक में मिला दिया है। परन्तु इससे साफ़ मालूम होता है कि अजातशत्रु के पौत्र नन्दिवर्द्धन के समय में उज्जयिनी और कौशाम्बी उदीयमान मगध साम्राज्य के अन्तर्गत हो गई थी। अथवा मगध साम्राज्यान्तर्गत कौशाम्बी एक प्रसिद्ध नगरी थी। अस्तु।

राजवंश नष्ट हो जाने पर भी उदयन का नाम संस्कृत साहित्य में बहुत प्रसिद्ध है। 'रत्नावली', 'स्वप्न वासवदत्ता,' और 'प्रतिज्ञा यौगन्ध नारायण' ग्रन्थों के नायक उदयन ही हैं। इसके सिवा महाकवि कालिदास ने भी अपने 'मेघदूत' में इनका उल्लेख किया है।*

मगध साम्राज्य के अन्तर्गत कौशाम्बी की दशा अत्यन्त समुन्नत थी। सम्राट प्रियदर्शी अशोक की इस नगरी पर विशेष कृपा थी। मौर्य सम्राट प्रायः कौशाम्बी में ठहरा करते थे। इन्होंने एक प्रस्तर-स्तम्भ पर अपनी राजाज्ञाएँ खुदवा कर भी कौशाम्बी में स्थापित कराया था, जो आज तक गढ़वा ग्राम के पास मौजूद है। यद्यपि यह स्तम्भ टूट गया है, परन्तु उसके टुकड़े वहीं मौजूद हैं। केवल ऊपर का सिंह नहीं है। इस भग्न स्तम्भ से कौशाम्बी के तत्कालीन वैभव, ऐश्वर्य, धर्म और स्थान का बहुत-कुछ पता चलता है। इसके सिवा बौद्ध कौशाम्बी की याद दिलाने के लिए यहाँ बहुत से ईंटों के ढेर और उनके निकट बुद्ध की मूर्तियाँ पड़ी हैं, जिसके द्वारा यात्रियों को कौशाम्बी के प्राचीन वैभव का किञ्चित् आभास मिल जाता है।

हिन्दू या गुप्त कौशाम्बी (कोसम)

ईसा की पहली शताब्दी में मौर्यवंशियों को हटा कर विदिशा के मित्रवंश वालों ने मगध और कौशाम्बी पर अधिकार कर लिया। उस समय बौद्ध-धर्म की ज्योति क्षीण हो चली थी और यमुना के किनारे फिर वेद-ध्वनि होने लगी थी। कालक्रम से ईसा की तीसरी शताब्दी में कौशाम्बी पर प्रबल प्रतापी गुप्त वंशीय राजाओं का आधिपत्य स्थापित हुआ। परम भट्टारक परम वैष्णव गुप्त सम्राटों के शासन-काल में कौशाम्बी ने फिर एक बार अपनी उन्नति की। उसी समय इसकी बस्ती यमुना किनारे पश्चिम की ओर हटने लगी। एक नवीन सुदृढ़ दुर्ग, अनेक सुन्दर महल और अनेकानेक विष्णु-मन्दिर बने। सम्राट समुद्रगुप्त और

---

* नागवम् विहारशीलं च माया मतङ्गान्निर्गता महासेन सैनिका वत्सपतिं न्ययसिपुः। —'हर्षचरित'

* प्राप्त यावन्ती उदयन कथा कोविद ग्राम वृद्धान् प्रद्योतस्य प्रेच दुहितरम् वत्सराजोत्रजह।

चन्द्रगुप्त ने इसे ही अपनी राजधानी बनाई थी, इससे नवीन कौशाम्बी का वैभव और भी बढ़ गया। परन्तु अब तो गढ़वा की तरह यहाँ भी धूहों के ढेर ही रह गए हैं। न वे मन्दिर ही हैं और न उन गगनचुम्बी राजमहलों का ही कहीं पता है। केवल कोसम से आधे मील पर ईंटों और पत्थरों के ढेर में एक अत्यन्त सुन्दर और भव्य विष्णु-मूर्ति है, जो गुप्त साम्राज्य की याद दिला रही है।

ईसा की छठीं शताब्दी में कौशाम्बी कन्नौज के प्रतापी सम्राट हर्षवर्द्धन के अधीन थी और सातवीं शताब्दी में कन्नौज के परिहार-नरेश महाराज चन्द्रवर्मा ने कौशाम्बी पर अधिकार किया। इसके बाद दो सौ वर्षों तक कौशाम्बी परिहार वंशीय नरेशों के अधिकार में रही। ग्यारहवीं शताब्दी में महमूद ग़ज़नवी के आक्रमणों से परिहारों के निर्बल हो जाने पर त्रिपुरी के चेदि नरेश गाङ्गेयदेव ने कौशाम्बी पर अपना अधिकार जमाया। गाङ्गेयदेव के पुत्र कर्ण से कन्नौज के गहरवारों के कौशाम्बी के लिए कई युद्ध हुए और अन्त में कौशाम्बी का क़िला गहरवार गोविन्दचन्द के अधिकार में आ गया।

कौशाम्बी का नाश

सन् ११९३ ई० में शहाबुद्दीन मुहम्मद ग़ोरी ने तलावटी के युद्ध में पृथ्वीराज चौहान से दिल्ली का राज्य जीत लिया और सन् ११९४ ई० में चन्द्रवार के युद्ध में महाराज जयचन्द गङ्गा में डूब गए। इस तरह गहरवारों के राज्य का अन्त तो हो गया। परन्तु प्रधान राज-वंश से राज्य निकल जाने पर भी कौशाम्बी पर गहरवारों का अधिकार बना रहा। तेरहवीं शताब्दी में बादशाह फ़ीरोज़ तुग़लक़ के राज्य-काल में कड़े के तुर्क सूबेदार ने कौशाम्बी पर आक्रमण किया और अपनी महती सेना द्वारा क़िले को घेर लिया। राजपूतों ने छः महीने तक घिरे रह कर भी बड़ी वीरता से क़िले की रक्षा की, परन्तु अन्त में उन्हें परास्त हो जाना पड़ा। बचे-खुचे राजपूत नावों पर चढ़ कर यमुना पार चले गए। धर्मान्ध मुसलमानों ने क़िले पर अधिकार किया और क्रुद्ध होकर क़िले के अन्दर के महलों तथा मन्दिरों को आग लगा कर बर्बाद कर दिया। इस समय उस विशाल युग की याद दिलाने के लिए कोसम गाँव के पास एक बुर्ज और टूटी-फूटी दीवार रह गई है। इसके सिवा एक अशोक-स्तम्भ, गढ़वा का क़िले का एक बुर्ज, कोसम में पबूसे का जैन-मन्दिर, और कुछ इधर-उधर पड़ी हुई मूर्त्तियाँ, अतुल वैभवशालिनी और काल की विचित्र क्रीड़ास्थली प्राचीन कौशाम्बी की स्मृति-चिन्ह-स्वरूप रह गई हैं। *

* यह लेख हमें इलाहाबाद आर्कोलॉजिकल सोसाइटी के संस्थापक पण्डित ब्रजमोहन व्यास की कृपा से प्राप्त हुआ है, इसके लिए हम व्यास जी के कृतज्ञ हैं।

—स० 'चाँद'

卐 卐 卐

मधुर पत्र

[श्री० सन्तप्रसाद वर्मा]

मानस की विह्वलता में,
दुखभरी रागिनी बजती।
भावुक विचार-लहरी भी,
नाना विधि प्रति पल सजती॥
उत्सुकता की छाया में,
अन्तर की भड़की ज्वाला।
भर गया विषाद विरस से,
जीवन का छोटा प्याला॥

मैं मौन साध बैठा था,
'निष्ठुरता' विहँस रही थी।
'ममता' चुटकी लेती थी,
प्रिय 'करुणा' खेल रही थी॥
पर तेरे पत्र-प्रणय ने,
जीवन-सङ्गीत सुनाया।
झङ्कृरित हो उठी वीणा,
मैंने नव-जीवन पाया॥

प्रकृति-पूजा

[श्री० सत्यभक्त]

संसार में जब से मनुष्य का आविर्भाव हुआ है और उसमें सोचने-विचारने की शक्ति उत्पन्न हुई है, तभी से वह प्राकृतिक शक्तियों और मनुष्य-जीवन की वास्तविकता पर विचार करता आया है। उस आदि-युग में उसे प्रकृति की प्रत्येक घटना अद्भुत जान पड़ती थी और वह उनके मूल कारण के विषय में अपनी बुद्धि, अनुभव और भावना के अनुसार तरह-तरह की कल्पनाएँ किया करता था। प्रातःकाल नियमित रूप से सूर्योदय होना, चन्द्रमा का घटना-बढ़ना, ग्रहण का लगना, तारों का टूटना, बादलों का गर्जना, बिजली का गिरना, आँधी का चलना, आकाश में इन्द्रधनुष का दिखलाई देना, आदि सभी घटनाएँ उसे रहस्यपूर्ण जान पड़ती थीं। लाखों वर्ष व्यतीत हो जाने पर आज यह तो ठीक-ठीक बतलाया जा सकना असम्भव है कि आरम्भ में मनुष्य की विचारधारा किन दिशाओं में प्रवाहित हुई थी, पर मानवीय सभ्यता के इतिहास के पर्यालोचन से इतना अवश्य विदित होता है कि जब मनुष्य वस्तुओं और घटनाओं के स्वभाव पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने लगा, तो उसने संसार के प्रत्येक पदार्थ में, चाहे वह चैतन्य हो अथवा अचैतन्य, आत्मा की कल्पना कर ली। उसने निर्णय किया कि ये आत्माएँ ही प्रत्येक वस्तु की सत्ता को स्थिर रखती हैं। केवल जानवरों और पेड़ों में ही नहीं, वरन् प्रत्येक पत्थर की चट्टान, प्रत्येक पौधे, प्रत्येक फूल, प्रत्येक झरने, प्रत्येक नदी, प्रत्येक हवा, प्रत्येक बादल में आत्मा का अस्तित्व माना जाने लगा। इस सिद्धान्त को जीववाद के नाम से पुकारा जा सकता है और आज भी करोड़ों व्यक्ति उस पर विश्वास रखने वाले मिल सकते हैं। थोड़े समय पश्चात् जब मनुष्य की बुद्धि कुछ और विकसित हुई और उसे विचारों को परिमित रखने की किञ्चित् शक्ति प्राप्त हुई, तो वह जीवधारियों की संख्या में धीरे-धीरे कमी करने लगा। उदाहरणार्थ उसने प्रत्येक पेड़ में आत्मा मानने के बजाय समस्त जङ्गल में एक आत्मा की कल्पना की, जिसकी तुलना हम भारतीय पुराणों और काव्य ग्रन्थों में वर्णित बनदेवियों से कर सकते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक झरने के बजाय बड़ी-बड़ी नदियों और समुद्र में; प्रत्येक पत्थर की चट्टान के बजाय बड़े-बड़े पहाड़ों में; प्रत्येक बादल के बजाय समस्त मेघ-प्रदेश में एक शक्तिशाली आत्मा अथवा देवता की कल्पना की गई। हमारे देश के प्राचीन साहित्य में जगह-जगह हिमालय और विन्ध्याचल आदि पर्वतों, गङ्गा, गोदावरी, नर्मदा आदि नदियों और समुद्र आदि के अधीश्वर देव-देवियों का जो वर्णन किया गया है, उससे स्पष्ट है कि मनुष्य ने इन अचैतन्य पदार्थों की आत्माओं को अपनी ही तरह शरीरधारी और दुःख-सुख तथा रागद्वेष आदि भावनाओं से संयुक्त माना था। अन्तर इतना ही था कि उनकी शक्ति मानवीय शक्ति की अपेक्षा कहीं अधिक प्रबल थी और उसका प्रयोग वे अदृश्य रूप से मनुष्यों को हानि या लाभ पहुँचाने के लिए कर सकते थे। इस प्रकार इन प्राकृतिक शक्तियों ने ऐसा भीषण और आतङ्कपूर्ण स्वरूप धारण कर लिया कि मनुष्य सदा उनसे भयभीत रहने लगा। उसकी चेष्टा यही रहती थी कि वह किसी प्रकार इनका कोप-भाजन न हो, वरन् उस पर इनकी दृष्टि सदैव कृपापूर्ण बनी रहे! इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए वह उनकी स्तुति करता था और उनको यज्ञ-हवन आदि अथवा

बलिदान के रूप में भेंट चढ़ाता था। यही प्रकृति-पूजा का आदि स्वरूप था, जिसमें तत्पश्चात् विभिन्न कारणों से अनेक परिवर्तन हो गए।

आकाश की उपासना

समस्त प्राकृतिक तत्त्वों में सर्वप्रधान सम्भवतः आकाश ही है। यह एक ऐसा आवरण है, जो संसार की प्रत्येक जाति और प्रत्येक देश के निवासियों को आच्छादित किए हुए जान पड़ता है। यद्यपि पृथ्वी के साथ हमारा अधिक निकट सम्बन्ध है, पर समुद्र के बीच में जाने से पृथ्वी लोप हो जाती है और केवल जल तथा आकाश ही दिखलाई देते हैं। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं, यदि ऐसे सर्वव्यापी और प्रभावजनक तत्त्व ने मनुष्य के हृदय में सब से पहले विस्मय और भय का भाव उत्पन्न किया हो और वह उनकी धामक उपासना का प्रधान अङ्ग बन गया हो।

वेद

संसार की जातियों में सबसे उच्च और प्रतिष्ठित स्थान आर्य जाति का माना जाता है। आज तक जितनी ऐतिहासिक खोजें हुई हैं, उन सब से यही सिद्ध होता है कि प्राचीन काल में इसी जाति द्वारा संसार में सभ्यता तथा नाना प्रकार के ज्ञान का प्रसार हुआ था। आर्य-जाति के वेद ही विश्व-साहित्य के सर्व-प्रथम ग्रन्थ माने जाते हैं। धार्मिक इतिहास का अध्ययन करने वालों की दृष्टि से वे बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। इनके द्वारा पाठकों को पुराकालीन प्रकृति-पूजा के उस विशुद्ध रूप का दर्शन होता है, जिसका किसी अन्य जाति के धार्मिक ग्रन्थ में पाया जा सकना असम्भव है। यद्यपि अन्य असभ्य और अर्द्ध-सभ्य जातियों ने प्राकृतिक शक्तियों को पूर्णतया भूत-पिशाच या मनुष्य के अनुरूप बना दिया है, परन्तु वैदिक ऋषियों के रूपकों में प्राकृतिक शक्तियों का वास्तविक स्वरूप अनेकांश में प्रस्फुटित होता है और उनके नामों में भी बहुत कम परिवर्तन किया गया है। वैदिक साहित्य के ज्ञाताओं का मत है कि तत्कालीन आर्य प्राकृतिक तत्त्वों को जीवधारी और पवित्र मानते थे और विश्वास करते थे कि उनकी प्रार्थना या स्तुति करने से मनुष्य का कल्याण होता है। पर उनकी उपासना-पद्धति जङ्गली जातियों की भाँति निम्न श्रेणी की न थी और उनके देवता श्रेष्ठ मानवीय गुणों से युक्त तथा अमर थे।

वैदिक साहित्य में आकाश के देवता की उपासना दो नामों से की गई है। एक द्यौ और दूसरा वरुण। ऋग्वेद में द्यौ शब्द का प्रयोग सैकड़ों स्थानों में जड़ आकाश के लिए किया गया है और उसमें देवत्व का कोई भाव नहीं पाया जाता। पर कितने ही स्थानों में उसका वर्णन विश्व-पिता के रूप में किया गया है। पृथ्वी को उसकी पत्नी, ऊषा को उसकी पुत्री और अग्नि, सूर्य तथा मरुत को उसका पुत्र माना गया है। एक मन्त्र में द्यौ का वर्णन गर्जते हुए साँड़ के रूप में और दूसरी जगह मुक्ताभूषित काले घोड़े के रूप में किया गया है। ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों में मनुष्यों के कल्याण, युद्ध में विजय प्राप्त करने, कृषि के उत्तम होने के लिए द्यौ और पृथ्वी की प्रार्थना की गई है और उनको भेंट चढ़ाने का वर्णन पाया जाता है।

आकाश के दूसरे देवता वरुण का जो वर्णन वेदों में किया गया है, उसमें द्यौ की अपेक्षा व्यक्तित्व का भाव बहुत अधिक पाया जाता है। उसे देवता, मनुष्य तथा समस्त जगत् का अधीश्वर माना गया है। वह प्रकृति के नियमों का नियन्त्रण करता है; उनको शक्ति प्रदान करता है; वह समस्त संसार में व्याप्त है, उसी ने सूर्य को आकाश में स्थित किया है और उसके लिए विस्तृत मार्ग बना दिया है; वायु उसकी साँस है, उसकी आज्ञा से चन्द्रमा रात्रि में चमकता है और तारे अपने स्थान में स्थिर हैं, वह नदियों को प्रवाहित करता है, जल उसका वस्त्र है और उसी में वह निवास करता है, समुद्र के भीतर उसका सहस्रों द्वार वाला सुवर्ण का गृह है, मनुष्य उससे मेह के लिए प्रार्थना करते हैं और वह अपने घड़ों को जौट देता है, जिससे आकाश, वायु और पृथ्वी पर पानी की वर्षा होती है; वही अन्नों में तेज और फूलों में मधु उत्पन्न करता है; उसी की शक्ति से पर्वत मेघावृत रहते हैं; उसकी शक्ति और कोप से मनुष्य कदापि रक्षा नहीं पा सकता, चाहे वह आकाश से परे चला जाय; वह प्रत्येक बात को जानता है और समस्त गुह्य रहस्यों का उसे ज्ञान है, मनुष्यों के समस्त सत्य और असत्य कर्म उसे विदित रहते हैं और वे जो कुछ करते हैं या विचारते हैं या योजना करते हैं, उस सबको वह जानता है।

सृष्टि के एक आदर्श शासनकर्ता की दृष्टि से वरुण का दर्जा समस्त वैदिक देवताओं में उच्च है। किसी पाप-कार्य अथवा उसके बनाए धार्मिक नियमों के विरुद्धाचरण करने से उसका क्रोध भड़कता है और इसके लिए वह कठोर दण्ड देता है। वह पापियों को त्रिगुण और सप्तगुण वाली पाश में बाँधता है। असत्यभाषी उस पाश में फँस जाता है और सत्यभाषी बाहर निकल जाता है। पर वह जिस प्रकार दण्ड देने में कठोर है, उसी प्रकार पश्चात्ताप करने पर दयालु भी शीघ्र ही होता है। वेद में वरुण की प्रार्थना के जितने मन्त्र पाए जाते हैं, वे सब प्रायः अपराधों की क्षमा-प्रार्थना के रूप में हैं।

प्राचीन ईरानी, यूनानी और रोमनों में आकाश-पूजा

ईरान के प्राचीन निवासी, जो वर्तमान पारसी जाति के पूर्वज थे, मूल आर्य जाति की ही एक शाखा थे और उनके धार्मिक विचारों तथा भाषा में वैदिक आर्यों से बहुत-कुछ समानता पाई जाती है। वे लोग अहुरामज़्द को आकाश का देवता मानते थे। वही स्वर्ग, पृथ्वी और मनुष्यों का सृष्टिकर्ता और सम्राटों का संरक्षक था। ईरान के प्रसिद्ध बादशाह दारा ने कहा था कि उसे अहुरामज़्द और अन्य देवताओं ने ही सम्राट बनाया है। सूर्य को उसकी आँख तथा अग्नि और पानी को उसकी पत्नियाँ बतलाया गया है।

यूनान के प्राचीन निवासी ज़ियस और यूरैनस नाम के दो आकाश-देवों की पूजा करते थे, जिनके नाम वैदिक देवता द्यौ और वरुण से मिलते-जुलते हैं। यूरैनस ने भी द्यौ की भाँति पृथ्वी से विवाह किया था। उन दोनों के संयोग से समुद्र की उत्पत्ति हुई। उनके रिआ नाम की पुत्री, क्रोनस नाम का पुत्र और अन्य कई सन्तानें हुईं। पर यूरैनस स्वभाव का निर्दयी था और उसने अपनी तमाम सन्तानों को एक गुफा में बन्द करके रक्खा। अन्त में पृथ्वीदेवी से यह अन्याय न देखा गया और उसने क्रोनस को एक शस्त्र दिया, जिससे उसने यूरैनस की लिङ्गेन्द्री को काट डाला और स्वयं स्वर्ग का शासक बन गया। अन्त में क्रोनस की भी अपने पुत्र ज़ियस के हाथ से ऐसी ही गति हुई। क्रोनस और ज़ियस का संग्राम दस वर्षों तक चलता रहा और अन्त में ज़ियस तथा उसके पक्ष वालों ने क्रोनस तथा उसके सहायकों को पाताल लोक में ढकेल दिया। इसके पश्चात् ज़ियस आकाश का अधीश्वर तथा समस्त देवताओं का प्रधान बन गया और सैकड़ों वर्षों तक प्राचीन यूनानियों द्वारा पूजा जाता रहा। ज़ियस का यूनानी पुराणों में वही स्थान है जो भारतीय पुराणों में इन्द्र का है। कवियों और कलाकारों ने उसके व्यक्तित्व को इतना बढ़ाया है कि उसका अस्तित्व ही आकाश से पृथक् हो गया है। इन लोगों की कल्पना के अनुसार वह एक शक्तिशाली देव है, जो स्वर्ग का अधीश्वर है। पर जब हम विश्लेषणपूर्वक उन कथाओं की जाँच करते हैं, तो इसमें सन्देह नहीं रह जाता कि आरम्भ में वह आकाश-देव के रूप में ही था। यूनान के आदि-कवि होमर ने ज़ियस को काले बादलों से ढका हुआ, विद्युत का अस्त्र चलाता हुआ, गर्जने का शब्द करता हुआ बतलाया है। यह लक्षण आकाश-देव के सिवाय और किसी के नहीं हो सकते। प्राचीन काल में यूनान के अनेक पहाड़ों पर ज़ियस के मन्दिर बने हुए थे, जिनमें लोग पानी बरसने के लिए बलिदान करते थे। एक बार समस्त यूनान में अवर्षण के कारण घोर अकाल पड़ा और भूखे-प्यासे लोग कीड़े-मकोड़ों की तरह मरने लगे। तब समस्त प्रदेशों के प्रतिनिधि इकट्ठे होकर एजीना टापू के बादशाह इयाकस के पास पहुँचे और उससे प्रार्थना की कि आप अपने पिता ज़ियस की प्रार्थना करके वर्षा कराइए। लोगों की प्रार्थना स्वीकार करके इयाकस पहाड़ के ऊपर चढ़ा और उसने हाथ उठा कर देवताओं के अधीश्वर ज़ियस की स्तुति की। उसकी स्तुति समाप्त भी नहीं हुई थी कि गर्जने का घोर शब्द हुआ और समस्त आकाश काले बादलों से ढक गया। इसके पश्चात् लगातार इतना मेह बरसा कि जल-थल एक हो गया। अपनी प्रार्थना के इस प्रकार स्वीकार किए जाने से प्रसन्न होकर इयाकस ने कृतज्ञतापूर्वक पैनहैलीनस के पहाड़ पर ज़ियस का एक बहुत विशाल मन्दिर बनवाया। प्राचीन काल के लोग जब इस पर्वत की चोटी पर बादलों को जमा होते देखते थे, तो इसे वर्षा होने का लक्षण मानते थे।

यूनान का लिकास नामक पर्वत, जो अर्केडिया प्रान्त में है, ज़ियस का विशेष प्रिय स्थान माना जाता था, क्योंकि उसका पालन-पोषण उसी जगह हुआ था। उस पहाड़ पर एक झरना है, जिसका पानी जाड़े और गर्मी में

एक ही स्थिति में रहता बतलाया जाता है। जब कभी उस प्रदेश में अधिक समय तक वर्षा नहीं होती थी और खेती-बारी नष्ट होने लगती थी, तो लिकास के मन्दिर का पुजारी उस झरने की तरफ़ देख कर प्रार्थना करता था और नियमानुसार बलिदान करके ओक वृक्ष की एक डाली झरने के पानी में डुबा देता था। पानी के हिलने से कुछ धुँए की सी भाफ निकलने लगती थी जो शीघ्र ही बादल का रूप धारण कर लेती थी। यह बादल अन्य बादलों को भी अपनी तरफ़ आकर्षित करके आर्केडिया प्रदेश में वर्षा कर देता था।

मेह बरसाने के साथ ओलों और बिजली का गिरना भी ज़ियस का कार्य समझा जाता था और लोग इनसे बचने के लिए उसकी प्रार्थना करते थे तथा बलिदान देते थे। एथेन्स नगर के परकोटे पर विद्युत-रूपी ज़ियस का एक मन्दिर बना था, जहाँ से एक पुजारी बरसात के महीनों में बिजली के चमकने का निरीक्षण किया करता था। इसके अतिरिक्त अन्य स्थानों में जहाँ बिजली गिरने की घटनाएँ अधिक हुआ करती थीं, लोग चारों तरफ़ एक मेंड बना कर उस स्थान को ज़ियस के नाम पर अर्पण कर देते थे और वहाँ उसकी एक वेदी बना देते थे, जिस पर समय-समय पर बलिदान किया जाता था। एथेन्स में अब भी ऐसी वेदियों के चिह्न पाए जाते हैं।

वायु पर भी ज़ियस का अधिकार समझा जाता था। एक बार एजीना टापू में बहुत गर्मी पड़ी और सूर्य की प्रखर रश्मियों ने खेती-बारी और पेड़-पत्तों को जला दिया। साथ ही गर्मी की अधिकता से मनुष्यों और पशुओं में एक विशेष प्रकार की कष्टदायक बीमारी फैल गई। व्यथा-पीड़ित लोगों ने अपोलो देवता के पुत्र समझे जाने वाले ऐरिसटियस की प्रार्थना की कि वह अवर्षण और महामारी का अन्त करने के लिए देवताओं की स्तुति करे। उसने पहाड़ पर जाकर आर्द्रता के देवता के रूप में ज़ियस का मन्दिर बनाया और बलिदान दिया। इससे सन्तुष्ट होकर ज़ियस ने चालीस दिन तक ठण्डी हवा चलाई, जिससे समस्त प्राणियों का कष्ट दूर हो गया। इसके पश्चात् इस घटना ने प्रथा का रूप ग्रहण कर लिया और पुजारी लोग प्रत्येक वर्ष आर्द्रता रूपी ज़ियस की पूजा करने और बलिदान देने लगे। जिस प्रकार हमारे देश में प्राचीन काल में प्राकृतिक उपद्रवों के लिए इन्द्र की प्रार्थना की जाती थी और अब भी वर्षा में देर होने पर इन्द्र-यज्ञ आदि किए जाते हैं, उसी प्रकार यूनान-निवासी ज़ियस की उपासना करते थे और उसमें समस्त प्राकृतिक उपद्रवों से रक्षा कर सकने की शक्ति का अस्तित्व मानते थे।

रोम के निवासियों के आकाश-देव का नाम जुपिटर था, जो वेद के द्यौपितर और यूनान के ज़ियसपेटर से मिलता-जुलता है। इन्द्र और ज़ियस की भाँति जुपिटर भी रोम के देवकुल का स्वामी है। आकाश-देव के रूप में जुपिटर मेह, बादलों के गर्जने और बिजली का कर्ता माना जाता है। रोम में जब वर्षा का अभाव होता था, तो स्त्रियों का एक जुलूस नङ्गे पैर और बाल खोले हुए कैपिटोल पहाड़ की तलहटी में जाता था और वहाँ बने हुए जुपिटर के मन्दिर में पानी के लिए प्रार्थना करता था। कहा जाता है कि इससे प्रायः तुरन्त ही घोर वर्षा आरम्भ हो जाती थी और जुलूस की स्त्रियाँ पानी में सराबोर होकर घर लौटती थीं। टरट्यूलियन नाम के ईसाई पादरी ने इस प्रथा का मज़ाक़ उड़ाते हुए रोम-निवासियों से कहा था—"तुम मेह के लिए जुपिटर के नाम पर बलिदान देते हो; तुम लोगों को नङ्गे पैर जाने को कहते हो; तुम कैपिटोल पर आकाश ढूँढ़ते हो और मकान की छत से बादलों के आविर्भाव की आशा करते हो।"

पर जुपिटर की स्वर्गीय शक्तियों में सबसे अधिक प्रधान मेघ-ध्वनि और बिजली माने जाते हैं। रोम के पास मार्स के मैदान में विद्युत रूपी जुपिटर का विशाल मन्दिर बना हुआ था। रोमन सम्राट ऑगस्टस एक बार रात्रि के समय स्पेन में यात्रा कर रहा था, जबकि संयोगवश उसके जुलूस पर बिजली गिरी और उसके सामने मशाल लेकर चलने वाला ग़ुलाम मर गया। सम्राट ने अपने प्राण बच जाने की ख़ुशी में कैपिटोल में गर्जने वाले जुपिटर का मन्दिर बनवाया और वह प्रायः भक्तिपूर्वक उसमें प्रतिष्ठित मूर्ति का दर्शन करने जाया करता था। एक बार स्वप्न में कैपिटोल के प्राचीन जुपिटर ने सम्राट को दर्शन दिया और शिकायत की कि गर्जने वाले जुपिटर के नए मन्दिर के कारण उसके उपासकों की संख्या घटती जाती है। सम्राट ने देवता के क्रोध से

परित्राण पाने के लिए बहाना किया कि मैंने गर्जने वाले जुपिटर की स्थापना केवल आपके द्वार-रक्षक की हैसियत से की है। इस घटना के पश्चात् उसने गर्जने वाले के मन्दिर में बड़े-बड़े घण्टे लटकवा दिए, जिनको बजा कर दर्शकगण प्रमुख देव को अपने आने की सूचना दे देते थे और यह भी निश्चय कर लेते थे कि वह अपने गृह में है या नहीं, ठीक उसी प्रकार जैसे कि रोम के भद्र पुरुष अपने मित्रों के यहाँ जाने पर करते थे। इस घटना से प्रतीत होता है कि सभी देशों में देवताओं का स्वभाव वैसा ही ईर्ष्यापूर्ण होता है, जैसा कि हमारे देश की धार्मिक कथाओं में वर्णन किया गया है। हमारे यहाँ जब श्रीकृष्ण ने इन्द्र की पूजा बन्द कराके लोगों में गोवर्द्धन पर्वत की पूजा का प्रचार किया, तो इन्द्र समस्त ब्रज-भूमि को जल में डुबा देने को तैयार हो गया। इसी प्रकार यज्ञों में सर्व-प्रथम किसकी पूजा की जाय, इस पर देवताओं में प्रायः लड़ाई-झगड़ा और विवाद हुआ करता था।

चीन

चीनी भाषा में आकाश का नाम 'थीन' है और आकाश के देवता को 'शाङ्गटी' के नाम से पुकारा जाता है, जिसका अर्थ है 'ऊर्ध्व लोक का सम्राट'। वहाँ के निवासी 'शाङ्गटी' को परमात्मा की तरह मानते हैं और यह भी विश्वास करते हैं कि उसकी आकृति मनुष्य के समान ही है। पर इस आकाश-देव की पूजा साधारण लोगों द्वारा नहीं की जाती और न वे उसके विषय में अधिक जानते हैं। 'शाङ्गटी' की पूजा राज्य की तरफ़ से की जाती थी और उसकी स्तुति केवल विद्वान लोग करते हैं। जब विद्यार्थी परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाते हैं, तो वे आकाश-देव को धन्यवाद देते हैं। विवाह के समय वर और बधू उस शक्तिशाली देव को नमस्कार करते हैं। कनफ़्यूशस धर्म के अनुगामियों में से कितने ही भक्त लोग प्रतिपदा और पूर्णमासी के दिन आकाश-देव की पूजा करते हैं, जब कि अन्य लोग साल भर में एक बार ही उसकी पूजा करके सन्तुष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार साधारण लोगों को इस देव की अर्चना करने का अवसर बहुत कम मिलता है। चीन-निवासियों का ख़याल है कि आकाश देव अत्यन्त महान तथा उच्च है और सामान्य लोगों की प्रार्थना उस त[क] कदाचित् ही पहुँच सकती है। अधिकांश लोगों का य[ह] भी विश्वास है कि चीन का सम्राट ही (जिसका अस्ति[त्व] प्रजातन्त्र की स्थापना हो जाने से समाप्त हो चुका है) जो कि स्वर्गीय पुत्र कहा जाता है, आकाश-देव की साङ्गोपा[ङ्ग] पूजा करने की सामर्थ्य रखता है। इस प्रकार यह धार्मि[क] कृत्य चीनी सम्राटों के शासन-काल में राज-दरबार क[ा] एक विशेष कर्तव्य समझा जाता था, और यदि कभी इसं[में] ग़फ़लत होती थी, तो समस्त प्रजा सम्राट के प्रति बहु[त] अधिक अप्रसन्नता का भाव प्रकट करती थी।

यद्यपि चीन का आकाश-देव समस्त प्राकृतिक नियमं[ों] का नियन्त्रणकर्ता है, पर उसका सबसे मुख्य कार्य ऋतुं[ओं] को नियमित रखना माना जाता है। यह एक ऐसा विष[य] है, जिस पर समस्त संसार का कल्याण और मानव-जाति का अस्तित्व निर्भर है। इसलिए ऋतुओं के अनुकू[ल] होने और फ़सल की सफलता के लिए आकाश-देव को भेंट चढ़ाना आवश्यकीय समझा जाता है।

चीन में आकाश-देव की पूजा का सबसे महत्वपू[र्ण] अवसर जाड़े का वह दिन माना जाता है, जोकि वर्ष भ[र] में सबसे छोटा होता है। उसके बाद रात का घटना औ[र] दिन का बढ़ना आरम्भ हो जाता है और यह आकाश के अधीश्वर की वर्षगाँठ या जन्म-दिवस का चिन्ह समझ[ा] जाता है। प्राचीन काल की अन्य कितनी ही जातियाँ भी इस दिन को सूर्य के जन्म-दिवस की भाँति मानती थीं और इसी भावना की रक्षा के लिए ईसाइयों ने बड़े दि[न] के उत्सव को, जो किसी समय ९ जनवरी को हुआ करता था, २५ दिसम्बर से मनाना आरम्भ किया।

इस अवसर पर चीन का सम्राट एक बड़े जुलूस के साथ, जिसमें राज्यकुल के लोग, बड़े-बड़े अधिकारी और सरदार होते थे, 'शाङ्गटी' के मन्दिर की तरफ़ रवाना होता था। यह मन्दिर चीन की राजधानी पेकिन के दक्षिणी भाग में बना है। इसकी मुख्य वेदी के, जिसमें एक के ऊपर एक तीन सङ्गमर्मर के चबूतरे बने हैं, ऊपर छत नहीं है और उसमें से आकाश दिखलाई पड़ता रहता है। इस मन्दिर के चारों तरफ़ बहुत बड़ा बाग़ और मैदान है, जो चारों ओर एक ऊँची दीवाल से घिरा है। यह देवालय जितने क्षेत्रफल में फैला हुआ है, उसमें तीस-चालीस हज़ार जन-संख्या का एक नगर बसाया जा सकता है।

संसार के किसी अन्य देश में इतना विस्तृत देवालय मिल सकना कठिन है। सम्राट का जुलूस धीरे-धीरे चल कर रात के समय इस मुक़ाम पर पहुँचता था। उस समय सैकड़ों बड़ी-बड़ी मशालें जला दी जाती थीं, जिनके प्रकाश में यह दृश्य बड़ा ही प्रभावजनक जान पड़ता था। देवालय की वेदियों और सङ्गमर्मर के र्श पर प्रत्येक राजमन्त्री, उच्च कर्मचारी और सरदार का स्थान नियत होता था। सबसे ऊपर की वेदी पर एक लम्बाकार विशाल पाषाण-फलक (Tablet) जड़ा रहता था, जिस पर 'स्वर्गीय राज्य' और 'सम्राटों का सम्राट' शब्द लिखे रहते थे। इसके सिवा उस देवालय में सम्राट के पूर्वजों तथा सूर्य, चन्द्रमा, सप्त ऋषि, पञ्च ग्रह, अट्ठाइस नक्षत्र तथा अन्य अनेक तारागणों के नामों के पाषाण-फलक लगे हुए थे। इन समस्त फलकों के सम्मुख गाय, बकरे और सूअर का मांस, जो इसी पूजा के लिए मारे जाते थे, रक्खा जाता था। इसके सिवा जब तक पूजा होती रहती थी, आकाश-देव की विशेष भेंट-स्वरूप एक बैल चिता के ऊपर जलता रहता था। इस परम पवित्र पूजा के लिए सम्राट को पहले ही से उपवास करके शुद्ध होना पड़ता था। देवालय में पहुँच कर वह समस्त सम्माननीय दर्शकों के समक्ष ऊपर की वेदी पर चढ़ता था। उसके आगे पुरोहितगण उच्च स्वर में धार्मिक विधियों को बतलाते चलते थे। एक मन्त्र द्वारा, जिसके साथ अनेक मधुर स्वर वाले वाद्य यन्त्र भी बजते रहते थे, आकाश-देव की आत्मा से पाषाण-फलक में प्रविष्ट होने की प्रार्थना की जाती थी। तब सम्राट उस फलक के सम्मुख रेशमी वस्त्र, खाद्य पदार्थ और चावल की मदिरा रखता था। वह फलक के सम्मुख दीनतापूर्वक घुटने टेक कर नमस्कार करता था और बार-बार अपने मस्तक को सङ्गमर्मर के फ़र्श से लगाता था। इसके पश्चात् वह अपने पूर्वजों के फलकों के सम्मुख भी इसी प्रकार की भेंट चढ़ाता था। अन्य राज्यकर्मचारी, जो इस कार्य के लिए नियुक्त किए जाते थे, सूर्य तथा विभिन्न नक्षत्रों के सम्मुख भेंट चढ़ाते थे। अन्त में यह तमाम सामग्री प्रज्वलित अग्निकुण्ड में स्वाहा कर दी जाती थी।

इसी विशाल उद्यान के उत्तरी कोने में एक और गोलाकार मन्दिर था, जिसके ऊपर विशाल गुम्बज बना हुआ था। इस मन्दिर में भी सम्राट प्रत्येक वर्ष प्रथम मास के आरम्भ में नवीन सम्वत् के शुभ होने के लिए पूजा करता था। यथोचित वर्षा होने के लिए ग्रीष्मऋतु के प्रथम मास में पूजा की जाती थी। इस मन्दिर में भी आकाश, वर्षा, मेघध्वनि, बादल और वायु के पाषाण-फलकों के सम्मुख बलिदान दिया जाता था। जब इस पूजा के करने पर भी मेह समय पर नहीं बरसता था, तो पूजा को दूसरी बार किया जाता था। पर यह प्रायः अन्य राजवंशीय लोगों या राजमन्त्रियों द्वारा सम्पन्न की जाती थी, जिन्हें सम्राट अपना प्रतिनिधि बना कर भेजता था।

पर अनेक बार इन तमाम वाह्याडम्बरयुक्त पूजाओं से भी कई वर्षों तक पानी नहीं बरसता था और समस्त साम्राज्य में घोर अकाल पड़ने लगता था। तब सम्राट आकाश के अधीश्वर, अपने पूर्वजों और अन्य देवताओं को बहुत कुछ खरी-खोटी सुनाते थे और उनके निष्ठुर तथा कृतज्ञतारहित व्यवहार की निन्दा करते थे। इस प्रकार के करुणापूर्ण उद्गार चीन के प्राचीन साहित्य में कितने ही स्थानों में मिलते हैं।

कोरिया

चीन की तरह कोरिया में भी आकाश-देव की पूजा की प्रथा है। पर यह पूजा प्रत्येक वर्ष नियमित रूप से नहीं की जाती। जब देश के किसी भाग में अकाल पड़ता था अथवा आवश्यकता से अधिक वर्षा होती थी या कोई महामारी फैलती थी, तो राज्य की तरफ़ से स्थानीय अधिकारियों को पूजा करने का आदेश किया जाता था। नियत दिन के आने पर वह अधिकारी सदलबल पूजा के स्थान में पहुँचता था और बिना खाए-पिए तथा धूम्रपान किए धैर्यपूर्वक शुभ मुहूर्त की प्रतीक्षा करता रहता था। ऐसा शुभ मुहूर्त प्रायः मध्य रात्रि के समय आता था और तब वह सूअर, भेड़ और बकरों का बलिदान करके उनका मांस और रक्त देवता को अर्पित करता था। दूसरे दिन विश्राम करके तीसरे दिन वह फिर इसी प्रकार का धार्मिक कृत्य करता था और यह सिलसिला उस समय तक जारी रहता था, जब तक कि वर्षा न हो। यदि दो-तीन बार पूजा होने पर भी आकाश-देव का हृदय नहीं पसीजता था, तो पूजा का स्थान बदल दिया जाता था। इन बलिदान के स्थानों का निर्णय प्राचीन प्रथा के अनुसार किया जाता

था। पर जब बहुत चेष्टा करने पर भी कोई फल न निकलता तो पूजा का भार राज-मन्त्रियों पर डाला जाता था और उनके भी असफल होने पर स्वयं राजा की बारी आती थी। वह बड़ी धूमधाम के साथ पूजा करने जाता था। इस पूजा के फल से जब जल्दी या देर में पानी बरसने लगता था, तो न तो राजा न कोई अन्य व्यक्ति उस स्थान से हट सकता था। उन सबको आधी रात तक भीगते हुए खड़ा रहना आवश्यक था। यदि कोई व्यक्ति भूल से या जान-बूझ कर हैट या छाता लगा लेता था, तो क्रुद्ध जनसमूह हैट को गिरा देता था, छाते को तोड़ देता था और उस पर चपतों तथा गालियों की वर्षा होने लगती थी, क्योंकि लोगों के ख़याल में इस प्रकार का काम आकाश-देव का अनादर करना था।

जब वर्षा की अधिकता से खेती-बारी नष्ट होने लगती है और सर्वसाधारण कष्ट उठाने लगते हैं, तब भी इसी प्रकार आकाश-देव की पूजा की जाती है। इसके लिए कोरिया की राजधानी सियूल के दक्षिण द्वार पर बलिदान किया जाता था। बलिदान का समय, प्रणाली और नियम वैसे ही होते थे, जैसे कि वर्षा कराने के लिए। जितने दिन तक बलिदान होता रहता था, नगर का द्वार दिन-रात बन्द रहता था और समस्त आवागमन रोक दिया जाता था। कितनी ही बार ऐसे अवसरों पर मुर्दों का शहर के बाहर श्मशान में ले जाना भी बन्द कर दिया जाता था और जो लोग जान-बूझ कर या भूल से मुर्दों को ले आते थे, उनको शव के साथ कई दिन तक मेह में भीगते रहना पड़ता था। अन्त में जब वर्षा बन्द होकर आकाश स्वच्छ हो जाता था, तभी दर्वाज़ा खुलता था और लोग अपने-अपने काम के लिए बाहर या भीतर जा सकते थे।

अनाम

अनाम में आकाश को 'ट्रोई' कहा जाता है। वहाँ के निवासियों की दृष्टि में उसका शरीरधारी होना इतना स्पष्ट है कि वे उसे प्रायः "श्रीमान आकाश" या "श्रीमान नील आकाश" या "पितामह आकाश" के नाम से पुकारते हैं। साधारण बोलचाल में आकाश शब्द को छोड़ दिया जाता है और लोग प्रायः कहते हैं—"पितामह वर्षा कर रहा है"; "पितामह बढ़ा जा रहा है"; "अगर पितामह इसी प्रकार जल गिराता रहा तो हमारी फ़सल चौपट हो जायगी।" अनाम के निवासी आकाश (ट्रोई) को केवल प्राकृतिक घटनाओं का ही नहीं, वरन् मनुष्य जाति के समस्त व्यवहारों और कार्यों का निरीक्षक और निर्णायक समझते हैं।

'ट्रोई' या आकाश-देव सूर्य, चन्द्रमा, तारागण, ग्रह, मेघ-ध्वनि, मेह, पहाड़, नदी और जङ्गल आदि विश्व के समस्त पदार्थों का स्वामी समझा जाता है। उसीके भेजे हुए तीन सम्राटों ने मनुष्य जाति को खेती करना और कपड़ा बुनना सिखलाया है। बादलों के ऊपर ट्रोई का न्यायालय है, जिसमें हमारे यहाँ के धर्मराज के सेक्रेटरी चित्रगुप्त की तरह दो सेक्रेटरी हैं, जो मनुष्यलोक के कारबार को सँभालने में उसे सहायता देते हैं। ये सेक्रेटरी उत्तरी और दक्षिणी तारे हैं, जिनका कर्तव्य मनुष्यों के समस्त शुभ-अशुभ कर्मों को देखते और लिखते रहना है। दक्षिणी तारा जीवित मनुष्यों के कार्य-कलाप का हिसाब किया करता है और उत्तरी तारे पर मृत व्यक्तियों को उनके कर्मों के अनुसार दण्ड देने या उचित जान पड़ने पर पूर्ण या आंशिक रूप में क्षमा करने का भार रहता है। अनाम के कितने ही मन्दिरों में आकाश-देव का जो चित्र देखने में आता है, उसमें वह बादलों के मध्य में पीले रङ्ग का रेशमी चोग़ा पहिने सिंहासन पर बैठा है। उसके हाथ में हाथीदाँत का बना दण्ड रहता है और अगल-बगल दोनों सेक्रेटरी बही-खाता और दावात-क़लम लेकर खड़े रहते हैं और सम्राट जो निर्णय करते हैं, उसे दर्ज करते जाते हैं। पर अनाम में आकाश-देव की पूजा का कोई विशेष उत्सव नहीं होता। वहाँ उसके स्थान में सूर्य और चन्द्रमा की पूजा की जाती है।

अफ़्रिका

पश्चिमी अफ़्रिका के तुनुमा हबशी अपने घरों के चारों तरफ़ बनी हुई मिट्टी की ऊँची चहारदीवारी पर, जो क़िले की शक्ल की होती है, आकाश-देव की पूजा करते हैं। वे एक मुर्ग़ी का गला काट कर उसे ऊपर की तरफ़ उछाल देते हैं और उसके पङ्ख फड़फड़ाने और छटपटाने को देखते रहते हैं। अगर उसकी जान पीठ के बल पड़े हुए निकलती है, तो वे समझते

हैं कि देवता ने भेंट को स्वीकार कर लिया। यदि वह पीठ के बल नहीं मरती, तो इसे अशकुन समझा जाता है और बार-बार इसी प्रकार मुर्ग़ियों का बलिदान किया जाता है, जब तक कि उनमें से किसी की जान पीठ के बल पड़े हुए न निकले। कैसुना नाम की जाति के हब्शी भी विशेषतया जब वे यात्रा करने को निकलते हैं, इसी तरह आकाश-देव के नाम पर बलिदान करते हैं। इन दोनों जातियों के किसी व्यक्ति को यदि जङ्गल में घूमते हुए कोई विचित्र आकृति या रङ्ग का सुन्दर पत्थर मिल जाता है, तो वे उसे आकाश से गिरा हुआ समझ कर घर ले आते हैं और मिट्टी का एक नोकदार चबूतरा बना कर उस पर उसे स्थापित कर देते हैं। इन पत्थरों की उस देश में उसी प्रकार पूजा की जाती है, जिस प्रकार गोलाकार पत्थरों को हमारे यहाँ किसी पीपल के अथवा अन्य वृक्ष के नीचे चबूतरे पर रख कर पूजा जाता है। कुलाङ्गो जाति के हब्शी प्राचीन जाति के जङ्गलियों के पत्थर के हथियारों को मेघ-प्रदेश के अधीश्वर द्वारा फेंका हुआ समझते हैं और जिसके पास ऐसा हथियार होता है वह समय-समय पर उसकी पूजा किया करता है, जिससे उसका कल्याण हो। हावी जाति के लोग पत्थर के तीन खम्भों के रूप में आकाश-देव की मूर्ति बनाते हैं और उसे 'अम्मा' या 'अम्बा' के नाम से पुकारते हैं। वे उससे अपने मनोरथों की सिद्धि की याचना करते हैं और जब मनोरथ पूरा हो जाता है, तो पूजा-स्थान में जाकर 'अम्मा' के नाम पर बकरा या मुर्ग़ा चढ़ाते हैं और उसके मांस को समस्त उपस्थित लोग खा जाते हैं।

इस प्रकार यद्यपि अफ़्रिका की कितनी ही जातियों में आकाश-देव की पूजा का प्रचार है, पर अधिकांश लोग पृथ्वी की पूजा को विशेष महत्व देते हैं और वही उस देश में अधिक प्रचलित है। सर्वसाधारण आकाश को एक सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापी देवता के रूप में मानते अवश्य हैं, पर उनका ख़याल है कि वह मनुष्यों के मामलों में प्रायः हस्तक्षेप नहीं करता। उसने जो नियम बना दिए हैं, उनके अनुसार जगत् के कारबार का सञ्चालन अन्य देवता अथवा आत्माएँ करती हैं। इसलिए जब तक कोई बड़ी भारी विपत्ति सर पर नहीं आ पड़ती, तब तक लोग आकाश-देव की पूजा या प्रार्थना नहीं करते। कितने ही यूरोपियन लेखकों की धारणा है कि हब्शियों ने इस प्रकार के सर्वशक्तिमान ईश्वर की कल्पना ईसाई या मुसलमानी धर्म से ग्रहण की है, पर यह सच नहीं है। ये असभ्य लोग सदा से प्रकृति के सहचर्य में रहते आए हैं। वे अपनी आँखों से नदियों को सूखते और फिर उनमें बाढ़ आते, बिजली द्वारा बड़े-बड़े वृक्षों को गिरते तथा मनुष्य और पशुओं को मरते, और वर्षा के प्रभाव से पृथ्वी में तरह-तरह के पौधों तथा जड़ी-बूटियों को उत्पन्न होते देखते आए हैं। इसलिए उनके हृदय में स्वभावतः ही इस कल्पना का उदय होना कि आकाश में किसी ऐसे महान देव का निवास है, जिसके ऊपर पृथ्वी पर पाए जाने वाले समस्त जीवन का आधार है, असम्भव नहीं है।

आकाश-पूजा का ह्रास

उपरोक्त उदाहरणों से विदित होता है कि आकाश-पूजा का मूल उद्देश्य फ़सल की सफलता के लिए वर्षा के नियमित रूप से होने की प्रार्थना करना था। जब कि मनुष्य प्राकृतिक नियमों से सर्वथा अनजान था और सांसारिक निरङ्कुश शासकों की भाँति प्राकृतिक शक्तियों का भी दास बना हुआ था, उस समय प्राकृतिक शक्तियों की शक्तिशाली देवताओं के रूप में कल्पना करना और उनकी विनय तथा स्तुति करना उसके लिए स्वाभाविक था। पर जैसे-जैसे मनुष्य की विचार-शक्ति विकसित होती गई और ज्ञान-विज्ञान की वृद्धि होने लगी, बहुदेववाद में परिवर्तन होकर एकदेववाद का उदय होने लगा। इसके फल से देवताओं की संख्या में कमी होने लगी और प्रकृति के विभिन्न कार्यों का सञ्चालक, यहूदी, ईसाई और मुसलमानों की तरह एक ईश्वर को अथवा हिन्दुओं की तरह तीन (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) देवों को माना जाने लगा। जब मनुष्य की बुद्धि और अधिक अग्रसर हुई और ईश्वर को संसार में होने वाली प्रत्येक प्राकृतिक घटना का कर्ता मानना भी अनुचित जान पड़ने लगा, तो उसकी फिर से पद-वृद्धि कर दी गई। अब केवल सृष्टिकर्ता के रूप में उसकी आराधना की जाने लगी और प्राकृतिक घटनाओं का भार पूर्णतया भौतिक शक्तियों को, जिनको विज्ञान आकर्षण और विद्युत अथवा केवल विद्युत के नाम से पुकारता है, सौंप दिया गया।

फ़िल्मों की कहानियाँ

परदेशी प्रीतम

[डॉ० धनीराम प्रेम]

ग्राम के शान्त और नैसर्गिक वातावरण में दोनों का पालन हुआ था—लीलू और मनू का। वह ग्राम के ज़मींदार की पुत्री थी और वह उसका क्रीतदास। दोनों की स्थिति में इतना अन्तर था, परन्तु साथ-साथ खेलने और साथ-साथ रहने-सहने से दोनों में एक-दूसरे के प्रति अनुराग उत्पन्न हो गया था। लीलू की माता को यह अच्छा नहीं लगता था, परन्तु लीलू के पिता इन दोनों को एक सूत्र में बाँधने का स्वप्न देखा करते थे।

उस दिन मनू ढोर चराने वन में गया था। लीलू दोपहर को उसके लिए खाना लेकर पहुँची। दोनों ने हँसी-ख़ुशी खाना खाया। मनू उधर नदी से पानी लेने गया, इधर हूणराज तोरमान के सिपाहियों ने लीलू पर आक्रमण कर दिया। वह चिल्लाई। मनू सुन कर दौड़ा आया और उनसे लीलू की रक्षा की।

२

रात्रि का समय था। दोनों एकान्त में बैठे हुए वार्तालाप कर रहे थे।

"मैं तुम्हें पसन्द हूँ ?"—मनू ने पूछा।

"उहुँ !"—लीलू शरारत से बोली।

"मान लो, मेरा विवाह तुम्हारे साथ हो जाय ?"

"उहुँ !"

"तो हमारे भी इतने बच्चे हो जायँ"—मनू ने बिल्ली के बच्चों की ओर इशारा करके कहा—"और वे भी म्याऊँ-म्याऊँ किया करें।" दोनों हँसने लगे।

कुछ देर चुप रह कर मनू ने लीलू की ओर अपना हाथ बढ़ाया। लीलू उसके हाथ पर एक चिन्ह देख कर बोली—यह क्या है ?

"यह ? यह एक चिन्ह है। एक साधू ने कहा है कि यह मुझे राजा बनाएगा।"

"राजा ? तो तुम मुझे अपनी रानी बनाओगे ?"

मनू ने शरारत से उत्तर दिया—उहुँ !

"नहीं ?"

"उहुँ !"

लीलू रूठ गई। मनू हँस कर उसे छेड़ने लगा।

३

तोरमान ने लीलू के सौन्दर्य का समाचार सुना। उसके सिपाही लीलू को लाने में सफल न हो सके थे। अतः वह स्वयं ग्राम की ओर चला। एक तालाब में लीलू उस समय स्नान कर रही थी। तोरमान ने यह देखा, वह उधर से चलने लगा।

"जाइए नहीं। मेरा पैर झाँखड़ में फँस गया है। क्या मुझे निकालेंगे नहीं ?"—लीलू बोली।

"क्यों नहीं, ज़रूर !"—कह कर तोरमान ने उस सुन्दरी को बाहर निकाला, जिसकी खोज में निकला था।

"मैं पानी में किस तरह गिरी, यह आपको मालूम है ?"—वह बोली।

"नहीं, मुझे कैसे मालूम होता ?"

"बात यह थी कि मैं कमल लेने गई, पर मेरा पैर फिसल गया और मेरे सब कपड़े भीग गए।"

"यह तो स्वाभाविक है।"

"कपड़े तो मैंने सूखने को डाल दिए। फिर सोचने लगी कि तब तक क्या करूँ। इसीलिए मैं पानी में गई और शरीर को ठण्डा करने लगी।"

दोनों वन में होकर चलने लगे। लीलू ने प्रथम बार तोरमान के अङ्ग पर बहुमूल्य वस्त्र और अलङ्कार देखे थे। वह कहने लगी, मुझको यह वन बहुत पसन्द है; आपको भी ? परन्तु मुझे सुन्दर वस्तुएँ और भी पसन्द हैं। देखिए न, अपने वस्त्रों को। वे कितने जगमगाते हैं। आपके पास तो ऐसे बहुत होंगे, परन्तु मेरे लिए तो यह सब स्वप्न है। जब मैं एक छोटी सी लड़की थी, तो गाँव की लड़कियों की रानी बना करती थी। अब भी मेरी ऐसी इच्छा होती है कि रानी बन कर वैभव का भोग करूँ !"

"वैभव का ? आनन्द का ?"

"आनन्द का ? हाँ, जीवन के प्रत्येक आनन्द का अनुभव करूँ। एक हाथ से पैसा लूँ और दूसरे से फेंक दूँ। संसार का चाहे जो कुछ हो, मैं सुख का प्याला जी भर के पी लूँ। लेकिन × × ×।"

लीलू ने अपना शिर नीचा कर लिया। उसके बड़े-बड़े नेत्रों से दो आँसू ढलक कर गालों पर आ लटके। तोरमान ने यह देखा। उसने अपने गले से एक हार उतारा और उसे लीलू के गले में पहना दिया। लीलू आश्चर्यचकित होकर कभी अपनी ओर, कभी हार की ओर और कभी तोरमान की ओर देखने लगी।

"क्यों पसन्द है ?"—तोरमान ने पूछा।

"ओह, यह कितना सुन्दर है।"

"अब तो तुम सचमुच रानी लगती हो।"

"सच ?"

"सच। और तुम्हें ऐसे ही अनेक आभूषण मिल सकते हैं, अगर × × ×।"

"अगर ?"

इतने ही में मनू ने लीलू को पुकारा। लीलू दौड़ी हुई मनू के पास गई और कहने लगी—मनू, मनू, देखो मेरा हार !

"हार ? यह तुम्हें किसने दिया ?"

"तोरमान ने।"

"तोरमान ने ? हमारे देश पर आक्रमण करने वाले विदेशी राजा ने ?"

"हाँ ! और वे मुझे और भी बहुत से हार देंगे। उनमें से एक मैं तुम्हें दे दूँगी !"

मनू ने शायद यह सब न सुना। वह भवें चढ़ा कर लीलू की ओर देखता रहा।

५

"आज तुम मेरी ओर इस तरह क्यों देख रहे हो ? ऐसे हार पहन कर मैं सुखी होऊँ, यह तुम्हें पसन्द नहीं ?"

"मुझे पसन्द है, मैं चाहता हूँ, लीलू कि तुम सुखी बनो, परन्तु मैं एक विदेशी द्वारा दिए गए हारों को × × ×।"

मनू अपनी बात समाप्त न कर पाया था कि तोरमान वहाँ आ गया।

"इन बातों पर ध्यान न दो ! यह हार अपनी माँ को जाकर दिखाओ, वे तुम्हें रानी बनने की अनुमति दे देंगी।"—तोरमान ने कहा और एक भेद-भरी दृष्टि मनू की ओर डाल कर वह अपने पड़ाव की ओर चल दिया।

४

अपनी पुत्री के लिए वैभव, मान, सम्पत्ति, पद चाहने वाली माता ने चुपचाप उसे तोरमान के हाथ सौंप दिया। वह तोरमान के साथ लीलू का इस प्रकार भाग जाना सहन कर सकती थी, परन्तु अपने दास को ही अपना दामाद बनाना वह सहन नहीं कर सकती थी।

तोरमान लीलू को लेकर गया ही था कि इस बात का समाचार सारे ग्राम में फैल गया। ज़मींदार ने मनू को उनका पीछा करने के लिए भेजा। कुछ दूर पर ही मनू ने तोरमान के रथ को जा पकड़ा। तोरमान का गला पकड़ कर वह उसे नीचे खींच लाया। इतने ही में लीलू ने उसका हाथ पकड़ लिया।

"यह क्या कर रहे हो ?"

"अपराधी को दण्ड दे रहा हूँ।"

"अपराधी को ? यह अपराधी नहीं मनू, मेरा भावी भाग्य-विधाता है। क्या तुम मेरे सुख में काँटा बनोगे ?"

"तुम्हारा सुख, लीलू ?"

"हाँ, मनू ! मैं रानी बन कर सुख का उपभोग करूँगी। क्या भूल गए, तुम कहा करते थे कि मुझे सुखी बनाने के लिए तुम अपना प्राण भी दे दोगे ? आज तुम उसी व्यक्ति का संहार करने आए हो, जो मुझे सुखी बनाएगा। क्या इसका जीवन लेकर तुम मेरा जीवन भी नष्ट करोगे ?"

"तुम्हारा सुख ? तुम्हारा जीवन ? अच्छा लीलू, तुम्हारा सुख अटल रहे, तुम्हारा जीवन अमर रहे ! मैं जाता हूँ।"

"क्या कभी याद किया करोगे ?"

"तुम्हें याद ? जीवन की जगमगाहट में तुम मुझे भूल जाओगी, परन्तु मैं—ओह, लीलू, जाओ, जाओ, तोरमान को लेकर यहाँ से शीघ्र चली जाओ ।"

५

तोरमान की सेना ने अपने बल से, छल से, कौशल से और अत्याचार से उस प्रदेश के राजा को मार कर उस पर अपना अधिकार कर लिया। राजमाता और राजकुमारी काली के एक मन्दिर में छिपे हुए थे और उनके साथ थे उनके कुछ विश्वासपात्र साथी। उन्हीं में मनू भी अपने राजा के लिए शिर देने के लिए वहाँ मौजूद था। लीलू के पिता का वध किया जा चुका था।

काली की मूर्ति के सामने सब एकत्रित थे। राजकुमारी ने एक कटार काली के चरणों में रख दी और गर्ज कर बोली—जिस व्यक्ति में हूणराज तोरमान का शिर काट कर कालीमाता के चरणों में रखने का साहस हो, वह इसे उठा ले। परन्तु याद रक्खो, यदि वह इस कार्य में असफल होगा, तो उसे स्वयं अपना शिर काली के चरणों में चढ़ाना पड़ेगा। जिसमें इतना आत्मविश्वास, इतना साहस हो, वही सामने आवे।

राजकुमारी चुप हुई। कुछ देर तक सभी उसकी ओर, फिर काली की ओर, फिर उस कटार की ओर देखते रहे। इतने ही में मनू आगे बढ़ा और उसने कटार हाथ में उठा कर काली के सामने अपना मस्तक नवाया। 'कालीमाई की जय' से सारा मन्दिर गूँज गया।

६

तोरमान की छावनी के सामने लीलू खड़ी थी। मनू वहाँ आ गया। लीलू ने उसे देखा। उसे आश्चर्य हुआ और भय भी। वह उसके पास आया।

"मनू, तुम यहाँ ?"

"हाँ, लीलू।"

"यहाँ क्या करने आए हो !"

"अपना कर्तव्य पूरा करने !"

"तुम्हारा कर्तव्य ! अर्थात् ?"

"अत्याचारी तोरमान की हत्या। जिसने हमारे देश को तबाह कर डाला है, जिसने रक्त की नदियाँ बहाई हैं, उसकी बलि कालीमाता पर चढ़ाऊँगा।"

"उसकी बलि चढ़ा कर मुझे दुखी बनाओगे ! क्या अपनी प्रतिज्ञा भूल गए ?"

"इसे तुम सुख समझती हो, लीलू ? देश पर अत्याचार हो रहे हैं, प्रजा त्राहि-त्राहि कर रही है और तुम रानी बनना चाहती हो ? बाहर जाकर देखो, तुम्हें रानी बनाने के लिए प्रजा को कितना मूल्य देना पड़ रहा है। क्या इन आहों के, इन शापों के होते हुए तुम सुख का अनुभव कर सकोगी ?"

"तो यों कहो कि तुम मेरा सौभाग्य चुराने आए हो। जिस हाथ से तुमने मुझे तोरमान को दिया, उसी हाथ से उसे अब छीन लोगे ? यदि ऐसा ही करना था तो उसी समय हमें क्यों न मार डाला ? अगर तोरमान का प्राण ही लेना है, मनू, तो पहले मेरा प्राण ले लो। लो, मैं सामने खड़ी हूँ, चलाओ अपनी कटार, मेरे गले पर—अपनी लीलू के गले पर !"

वह रोने लगी। मनू के नेत्रों से भी अश्रुधारा बहने लगी। जिस उद्देश्य से वह आया था, वह काफ़ूर हो गया। उसकी वीरता, उसका देशप्रेम, उसकी प्रतिज्ञा, उसका कर्तव्य और उसका जीवन सब एक ओर थे और लीलू के आँसू एक ओर। लीलू के आँसुओं की विजय हुई। मनू अपनी कटार म्यान में करके चुपचाप वहाँ से चल दिया।

लीलू मनू की बातों पर विचार कर रही थी। उसे एक चीत्कार सुनाई दी। आगे बढ़ कर उसने तोरमान के कृत्यों का सच्चा चित्र देखा। बालक, स्त्री और वृद्ध चीत्कार कर रहे थे। लीलू ने वे दृश्य पहले कभी न देखे थे। क्या तोरमान ने यह सब कुछ किया है ? क्या मनू सच कहता था ? जिस सिंहासन की ओर वह आशाभरी दृष्टि से देख रही थी, क्या वह रक्तरञ्जित है ! तोरमान अत्याचारी, तोरमान हत्यारा, तोरमान खूनी ! उसे मनू के शब्द याद आ गए, 'तुम्हें रानी बनाने के लिए प्रजा को कितना ल्य देना पड़ रहा है।' उसकी आत्मा रोने लगी। वह चिल्लाने लगी—"ओह, तोरमान, यह खून से डूबा हु । सिंहासन मैं नहीं चाहती। चलो, वन में चल कर शान्ति और पवित्रता का जीवन व्यतीत करें।"

इतने ही में उसे सुन पड़ा—क्या तुम यह सब नहीं देख सकतीं ?

तोरमान एक प्रेयसी के साथ उसके सामने खड़ा था। भीलू ने उसकी ओर देखा, फिर तोरमान की ओर क्रोध से देख कर बोली—तोरमान, मैं यह क्या देख रही हूँ ?

"तुम हमारी चिन्ता क्यों करती हो ? तुम विलास की जो सामग्रियाँ चाहती थीं, वे तुम्हें मिल गईं। और चाहती हो तो और भी माँग लो और आनन्द करो!"—तोरमान बोला।

"हाँ, सच है। तुमने मुझे सुन्दर चीज़ों से लुभाया। मेरे शरीर को सुनहरे वस्त्रों से सजाया और अमूल्य अलङ्कारों से ढक दिया। रानी बनाने का लालच देकर मेरा घर-द्वार छुड़वाया। लेकिन मैं नहीं जानती थी कि मैं तुम्हारे जी बहलाने का एक खिलौना हूँ! आज तक मैं अपनी अन्तरात्मा को धोखा देती रही। परन्तु आज मेरी आँखें खुल गई हैं। आज मैं एक विदेशी अत्याचारी के अत्याचारों को देख रही हूँ।"

जागरण

७ नवम्बर, १९३२

केसर की क्यारी—सम्पादक, कविवर मुं० सुखदेवप्रसाद सिनहा 'बिस्मिल', इलाहाबादी। प्रकाशक, चाँद कार्यालय, प्रयाग। मूल्य ५)

बिस्मिल उर्दू के उन कवियों में हैं, जिनसे हिन्दी-संसार भली-भाँति परिचित है। शायद अकबर को छोड़ कर उर्दू का कोई कवि इतना नहीं पढ़ा जाता, जितना बिस्मिल। जब 'भविष्य' निकलता था, तो उसमें बिस्मिल की रची तथा संगृहीत कविताओं का एक-एक स्थायी कॉलम होता था, जिसे जनता बड़े चाव से पढ़ती थी। उसके पहले भी बिस्मिल से हिन्दी-संसार ख़ूब परिचित हो चुका था। 'केसर की क्यारी' में आपको साम्प्रत-कालीन उर्दू शायरी का बड़ा ही सुन्दर सर्वाङ्गी सङ्कलन मिलेगा। नूह, अकबर, सफ़ी, अज़ीज़, सायल, बिस्मिल, दाग़, अमीर, सभी इस मजलिस में बैठे अपने-अपने कलाम सुना कर आपसे दाद तलब कर रहे हैं। उर्दू शायरी में, ग़ज़ल एक ऐसी चीज़ है, जिसका एक-एक शेर एक विशेष भाव का आईना होता है। पहले मिस्रे में जो उत्सुकता पैदा होती है, वह तुरन्त दूसरे मिस्रे में सन्तुष्ट हो जाती है। पाठक को इन्तज़ार नहीं करना पड़ता। इसलिए ग़ज़ल का रसास्वादन साधारण जनता भी कर सकती है। फिर, मजलिसों में, बाज़ारों में, उत्सवों में, ग़ज़ल ही ज़्यादातर गाई जाती हैं। इससे जनता के हृदय में उसने अपना स्थान प्राप्त कर लिया है। उसकी सामग्री विदेशी है; लेकिन विदेशी कपड़े की तरह उसकी पहुँच जनता तक हो गई है। अच्छा शेर सुन कर सभी फड़क उठते हैं। हज़रत बिस्मिल का यह चयन इस योग्य है कि उसका संग्रह किया जाय। उर्दू शायरी में व्यवहृत साङ्केतिक शब्दों का कोष दे दिया गया है, जिससे कठिन शेरों के समझने में आसानी होगी, जैसे ईसा, काफ़िर, मजनूँ ख़िज़्र, ज़ाहिद, रिन्द, नासेह, फ़रहाद, बुत, मन्सूर आदि। इसके अतिरिक्त हर पृष्ठ के फुटनोट में कठिन शब्दों का अर्थ भी लिख दिया गया है। साम्प्रतकालीन उर्दू कविता का इससे अच्छा सङ्कलन हमने नहीं देखा।

—प्रेमचन्द

जब उसके मुख से ये शब्द निकले, तो उसका मुख अपूर्व प्रतिभा से चमक रहा था। तोरमान का मुख इन शब्दों पर क्रोध से तमतमा उठा।

"तुम्हारी आँखें खुल गई हैं ? लेकिन आज मैं उन्हें बन्द कर दूँगा। सिपाहियो, इसे अन्धी बना कर यहाँ से निकाल दो!"—वह बोला।

"मुझे अन्धी बनाना चाहते हो, मेरी आँखें फोड़ना चाहते हो ! तो आओ, अपने ही हाथों से ऐसा करो!"

वह निश्चल, निःशब्द, गम्भीरता की मूर्ति बनी वहाँ खड़ी रही और अत्याचारी ने सदा के लिए उसके नेत्रों की ज्योति लूट ली!

७

काज़ी जी के मन्दिर में सब मनू की प्रतीक्षा कर रहे थे। मनू आया।

"वह आया, वीर मनू !"—किसी ने कहा।

"मुझे तुम कायर मनू कहो; वीर मनू नहीं; क्योंकि मैं अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण न कर सका।"

"हुआ क्या ?"

"एक व्यक्ति के लिए मैंने देश के साथ द्रोह किया। हाथ में आए हुए शत्रु को जीवित छोड़ दिया। कुण्ड में अग्नि प्रज्वलित करो। शत्रु के बदले अपना शिर देवी को देकर मुझे अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने दो।"

उसने यह कह कर अपना वस्त्र उतारा। उसके गले में एक तावीज़ पड़ा था। राजमाता ने उसे देखा।

"यह तावीज़ कैसा है ?"

"यह सदा से मेरे साथ रहा है। जिन डाकुओं ने मुझे ज़मींदार के हाथ बेचा था, उन्होंने भी इसे नहीं उतारा था। शायद यह मेरी माता ने मुझे पहनाया हो !"

राजमाता ने वह तावीज़ खोल कर देखा और एकाएक चिल्ला उठीं—तू मेरा खोया हुआ पुत्र है ! इस सिंहासन का अधिकारी।

उसने मनू को हृदय से लगा लिया। मनू के नेत्रों से भी उस समय हर्षाश्रु बह रहे थे।

"अब मैं तुझे नहीं मरने दूँगी, बेटा ! तुझे राज्य की, राजवंश की, अपने कुल की मर्यादा की रक्षा करनी पड़ेगी। तुझे सेना लेकर तोरमान से युद्ध करना पड़ेगा और मातृभूमि को विदेशियों के चङ्गुल से बचाना पड़ेगा।"

"परन्तु माँ, मैं प्रतिज्ञा कर चुका हूँ और उसे पूरा करना मेरा धर्म है।"

"तेरा पहला धर्म अपनी माँ की आज्ञा का पालन करना और अपनी मातृभूमि का उद्धार करना है।"

इतने ही में एक सिपाही दौड़ा आया।

"लीलू को तोरमान ने अन्धी बना कर निकाल दिया है।"

"क्या ?"—कह कर मनू ने वस्त्र पहने और सेना को एकत्रित करने का आदेश दिया !

८

कुछ समय बाद, लीलू अन्धी बनी इधर-उधर भटक रही थी। एक दिन उसे कुछ कोलाहल सुन पड़ा। कुछ व्यक्ति चिल्लाते हुए उधर आ रहे थे। वे 'सम्राट मानसिंह जी जय !' पुकार रहे थे। तो क्या मनू तोरमान का नाश करके स्वयं राजा हो गया है ? उसका मुर्झाया हुआ मुख प्रसन्नता से फिर एक बार खिल उठा। उसे अतीत की स्मृतियाँ अपने मन में नाचती हुई दीख पड़ीं। क्या मनू कभी उसे मिलेगा ? वह आप ही आप कहने लगी—वह मेरे पास क्यों आने लगा ? जब मैं रानी बनने को थी, तब उसे छोड़ गई थी। अब जब वह राजा बना है, तो मुझे क्यों याद करेगा ?

इतने ही में उसे सुन पड़ा—नहीं, लीलू, मनू तुझे कभी नहीं भूल सकता।

वह चिल्ला उठी—मनू !

"हाँ, लीलू !"

"तुम यहाँ !"

"तुम्हें खोजता हुआ आया हूँ।"

वह उसके पास आकर बैठ गया। उसने उसके सर पर हाथ फेर कर कहा—तुम्हारा ताज कहाँ है, मनू ?

"ताज ? मैं उसके योग्य नहीं हूँ, लीलू ! मैं उसे त्याग आया हूँ, ताकि वन में शान्त जीवन व्यतीत कर सकूँ !"

"अकेले ?"

"नहीं, अपनी लीलू के साथ !"

"मुझे क्षमा कर सकोगे, मनू ?"

"क्षमा, लीलू ! प्रेम क्षमा से बहुत परे है।"*

*मिस माधुरी के प्रथम सवाक चित्रपट 'परदेशी प्रीतम' की कहानी।

☾

भाग्य, द्वार पर आता है और घर में बुद्धिमत्ता है या नहीं, इस बात की चौकसी करता है।

विद्वान दरिद्री भी अच्छा, परन्तु करोड़पति मूर्ख अच्छा नहीं।

ईश्वर की कृपा होने से सब लोग अनुग्रह करते हैं, अन्यथा कोई नहीं।

☾

कपटी मित्र प्रबल शत्रु से भी अधिक भयानक और दुःखदायी होता है।

भाग्यहीन और अकर्मण्य पुरुषों को कल्पवृक्ष भी पलाश के समान हो जाता है।

मनुष्य अपने करतब से नरक को स्वर्ग बना सकता है और अपनी करतूत से स्वर्ग को नरक बना सकता है।

वर्ण-व्यवस्था का स्वरूप

[श्री० नोखेलाल शर्मा, काव्यतीर्थ]

उपक्रम

बहुतों का मत है कि वर्ण-व्यवस्था प्राकृतिक है और मानव-सृष्टि के साथ-साथ उत्पन्न हुई है। वे इस सम्बन्ध में पुरुष-सूक्त* और गीता † आदि के वाक्यों का प्रमाण देते हैं। कुछ लोगों की, विशेषकर पाश्चात्य विद्वानों की, सम्मति है कि वर्ण-व्यवस्था कृत्रिम है और मनुष्य की सभ्यता के साथ-साथ इसकी उत्पत्ति और वृद्धि हुई है। वर्ण या जाति का लक्षण मेगास्थिनीज़ ने यों लिखा है—"कोई जाति अपनी जाति के बाहर दूसरी जाति के साथ विवाह नहीं कर सकती। अथवा अपनी जाति के रोज़गार के सिवा दूसरा पेशा भी नहीं कर सकती।" भाव यह कि जाति समाज का वह भाग है, जिसका पेशा एक हो और जो विवाह के लिए दूसरी जाति वालों से बेटी-व्यवहार न करें। परन्तु धर्म और आचार-विचार सबका एक रहेगा। आर्य लोग लम्बे, गोरे और ऊँची नाक वाले होते थे और अनार्य काले, चिपटी नाक वाले और रूपहीन होते थे। इसी विभेद के आधार पर वर्ण का अर्थ रङ्ग से पलट कर जाति बन गया। वर्ण-व्यवस्था से तात्पर्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र का विभाजन ही है; न कि आधुनिक सैकड़ों भिन्न-भिन्न पेशे करने वाली जातियों की बनावट। अस्तु।

* ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
उरू तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्याम् शूद्रो अजायत॥
—ऋग्वेद १०।९०।११

† चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
—गीता

अति प्राचीन काल में वर्ण-व्यवस्था

हिन्दू-सभ्यता के प्राचीनतम इतिहास ऋग्वेद में पुरुष-सूक्त को छोड़ कर ऐसा कोई भी मन्त्र नहीं है, जिसमें वर्ण-व्यवस्था का ज़िक्र तक आया हो। पुरुष-सूक्त भी ऋग्वेद के १०वें (अन्तिम) मण्डल में है। वर्ण-व्यवस्था हिन्दू-समाज का एक अति मुख्य अङ्ग है। उसका प्रारम्भ के ९ मण्डलों में बिलकुल निर्देश न रहना खटकता है। इससे हम केवल इसी सिद्धान्त पर पहुँच सकते हैं कि ऋग्वेद के निर्माण के समय वर्ण-व्यवस्था नहीं थी। यद्यपि उस समय ब्राह्मण और क्षत्रिय इन दो श्रेणियों के लोग अवश्य रहे होंगे; क्योंकि आर्य लोग धर्मप्राण थे और उस समय अनार्यों से उनकी लड़ाई-भिड़ाई भी चल रही थी। पुरुष-सूक्त का पीछे से मिलाया जाना सम्भव नहीं, क्योंकि ऋग्वेद के सूक्तों की संख्या गिनी हुई है और शतपथ आदि ब्राह्मण ग्रन्थों में वह संख्या बता भी दी गई है। अतएव यह कहना पड़ेगा कि १०वें मण्डल के निर्माण के समय वर्ण-व्यवस्था का सूत्रपात हो चुका था, और चारों वर्णों का उच्च-नीच भाव भी उत्पन्न हो चुका था। गीता आदि का वचन विकसित समाज के लिए लागू होता है। १०वें मण्डल के निर्माण से पूर्व, वैदिक-काल में यदि जाति-भेद था तो वह आर्य और अनार्य के विषय का था। आर्य लोग अनार्यों को दास या दस्यु (डाकू) कहते थे; यथा—'विजानीह्यार्यान्येच दस्यवः'—'आर्यों को जानो और जो दस्यु हैं, उन्हें भी जानो' (ऋग् १।५१।८)। इस बात के लिए कि ऋग्वेद के समय के अन्तिम भाग में वर्ण-व्यवस्था जो बनी थी वह केवल कामों का विभाजन मात्र था तथा उसमें पेशे और ब्याह-शादी सम्बन्धी कोई रोक-टोक न थी, काफ़ी प्रमाण मौजूद हैं। उदाहरण-स्वरूप निम्नलिखित सूक्त है:—

कारुरहं ततोभि षगुपल प्रक्षिणी नना । नाना-
धियो वसूयवोऽनुगा इन तस्थिमेन्द्रायेन्दो परिस्रव ।

—ऋग् १ । ११ । २ । ३

अर्थात्—"मैं एक कवि हूँ, मेरा पिता वैद्य है, मेरी माता चक्की में अनाज पीसती है। विभिन्न पेशों में लग कर हम लोग धन और आनन्द खोजते हैं, जिस प्रकार गाएँ विभिन्न मैदानों में अपना भोजन खोजती हैं।" इससे सिद्ध होता है कि उस समय काम करने में कितनी स्वतन्त्रता थी। शादी-ब्याह तथा उच्च वर्ण का नीच वर्ण होना वा नीच वर्ण का उच्च वर्ण होना आदि के विषय में उस समय जो स्वतन्त्रता थी, उसका भी प्रमाण आगे दिया जायगा। पहले यही देखना चाहिए कि अति-प्राचीन काल में समाज की क्या दशा थी? पश्चिमी विद्वानों का मत है कि वैदिक काल में इस वर्ण-विभेद का नाम-निशान भी न था। पर पण्डितवर सी० वी० वैद्य जी को यह मत मान्य नहीं। वे कहते हैं कि "हिन्दुस्तान में जिस समय पहले-पहल भारतीय आर्य आए थे, उससे पहले ही उन लोगों में सामाजिक व्यवस्था के कारण जाति-बन्धन का बीज उत्पन्न हो गया था।" आप जाति-बन्धन से ब्याह-शादी तथा पेशा सम्बन्धी कट्टरता का तात्पर्य समझते हैं, जिसके प्रतिकूल कुछ प्रमाण दिया जा चुका है और आगे भी दिया जायगा। किन्तु, फिर भी आप आगे चल कर लिखते हैं—"सारांश, यह देख पड़ता है कि हिन्दुस्तान में ऋग्वेद के समय जब भारतीय आर्य आए, तब उनमें पेशे के कारण दो जातियाँ मौजूद थीं। परन्तु ये जातियाँ उस समय अन्य बन्धनों से जकड़ी न गई थीं। अर्थात् न तो उनके आचार विभिन्न थे और न उनमें बेटी-व्यवहार की या पेशे की कोई सख़्त रुकावट थी। क्षत्रियों और ब्राह्मणों की बेटियाँ परस्पर ब्याही जाती थीं, और चन्द्रवंशी क्षत्रियों में से कुछ क्षत्रिय लोग अपना पेशा छोड़ कर ब्राह्मण हो जाते थे। महाभारत में चन्द्र-वंश का जो वर्णन है, उससे यह बात स्पष्ट होती है। प्रतीप का लड़का देवापि क्षत्रिय का व्यवसाय छोड़ कर वन में तपश्चर्या करने लगा। उसने एक सूक्त भी बनाया है। मतिनार के वंश में कण्व उत्पन्न हुआ था। वह ब्राह्मण हो गया और उसके सभी वंशज ब्राह्मण ही हुए। ये कण्व लोग ऋग्वेद के कई सूक्तों के कर्त्ता हैं।"

इन बातों से स्पष्ट है कि ऋग्वेद के समय में आधुनिक समय की तरह वर्ण-व्यवस्था न थी। यदि वैद्य जी का मत आपाततः मान भी लिया जाय, तो सार यह निकलेगा कि उस समय ब्राह्मण आदि नाम का कोई अलग वर्ग न था। केवल जो पूजा-पाठ में विशेष ध्यान देते थे, उन्हें 'ब्राह्मण' की पदवी दी जाती थी और जिन्हें लड़ाई-भिड़ाई और मारकाट पसन्द थी, उन्हें 'क्षत्रिय' कह कर पुकारा जाता था। यह कुछ बात नहीं कि एक ही घर का कोई व्यक्ति ब्राह्मण हो दूसरा क्षत्रिय। अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि का सम्बन्ध पेशे से था, न कि जाति-पाँति या वंश से। अब यह निश्चय है कि इससे पहले 'ब्राह्मण' और 'क्षत्रिय' आदि उपाधियाँ या पदवियाँ बिलकुल न रही होंगी। हमारा विचार है कि शत्रुओं से मुक़ाबला करने के पहले उनमें क्षत्रियों का विभाजन न किया गया होगा; न ऐसा करने की उन्हें कोई ज़रूरत ही थी। जब आर्यों को भारत में अनार्यों का सामना करना पड़ा, तो वे वीर आर्य अपने में से कुछ धर्मिष्ठ, शान्त चित्त एवं मार-काट में असमर्थ व्यक्तियों को देव-स्तुति और अग्नि-होत्र आदि का काम सौंप कर स्वयं मैदाने-जङ्ग में उतर पड़े। किन्तु तब तक इन्हें कोई विशेष नाम न दिया गया था। क्योंकि ऋग्वेद में इसका कहीं भी उल्लेख नहीं है। ऋग्वेद के अन्तिम समय में, जब विजयी आर्य लोग धीरे-धीरे पञ्जाब में बस गए, तो उनका नाम विश् या वैश्य (साधारण लोग) हो गया, एवं क्रमशः पूजा-पाठ करने वालों तथा युद्ध करने वालों के नाम ब्राह्मण तथा क्षत्रिय रक्खे गए। जिन अनार्यों ने विजेताओं से पनाह माँगी, वे शूद्र कहलाए और शीघ्र ही उनका उच्च-नीच दर्जा भी क़ायम हो गया; जो स्वाभाविक ही था। जिस प्रकार यहाँ ब्राह्मणों को सर्वोच्च पद मिला और एक रुचि तथा पेशे वाले लोगों का एक दल बन गया, उसी प्रकार ईरानियों में 'मोबेद' नाम की एक जाति अलग हो गई थी। ज्यू लोगों में पुजारियों का दल तथा रोमन लोगों में भी 'पेट्रिशयन' (पुजारी) का दल अलग ही बन गया था।

तात्पर्य यह कि जिस समय आर्य लोग भारतवर्ष में आए थे, उस समय उनमें कोई जाति-भेद न था। वरन् वह समय ऐसा था, जब सारी आर्य-जाति एक थी, सब का रहन-सहन, आचार-विचार समान था, और वे अपने

को एक ही समाज का अङ्ग मानते थे। वे बड़े धर्मशील, साहसी और सदाचारी थे। किसी प्रकार की धार्मिक बाधा कदापि नहीं सह सकते थे। अतएव जब अनार्यों से उनकी लड़ाई छिड़ी, तो उन्होंने आपस में, अपनी सुविधा के लिए कार्मों का बँटवारा कर लिया। वायु-पुराण में लिखा है कि कृतयुग में कोई जाति नहीं थी। पीछे ब्रह्मा ने मनुष्यों को उनके व्यवसायों के अनुसार भिन्न-भिन्न जातियों में बाँट दिया। रामायण के उत्तर काण्ड (७४वें अध्याय) में लिखा है कि कृतयुग में जप-योग करने वाले केवल ब्राह्मण थे। पीछे दो, त्रेता में तीन जातियों की उत्पत्ति हुई। आर्यों के भारतवर्ष में आने के पूर्व का काल कृतयुग, उनका अनार्यों से युद्ध होने का काल कृतयुग का अन्तिम भाग, तथा उनका पञ्जाब में आकर बस जाने का समय त्रेता मान लिया जाय तो हमारे कथन की पुष्टि हो जाती है। कृतयुग में सब आर्यों का अविभेद रूप से एक होना तथा सतत धर्म-कार्य में लगा रहना आगे की दृष्टि में उनका ब्राह्मणत्व सिद्ध करता है। पीछे युद्ध के समय दो और विजयी होकर बस जाने और खेती-बारी तथा व्यवसाय करने के समय तीन एवं चार वर्णों का विभाजन हो जाना ऋग्वेद और विकास-सिद्धान्त के अनुकूल उतरता है। पर यह वर्गीकरण अभेद्य नहीं था। जो कोई चाहे एक जाति से दूसरी जाति में जा सकता था या एक पेशा छोड़ कर दूसरा पेशा अख़्तियार कर सकता था। यह केवल कामों का विभाजन था; जिसे जो काम अच्छा लगा, उसने वही उठा लिया। जिस प्रकार आज भी एक ही गृहस्थी का कोई मनुष्य पशु-पालन करता है, कोई खेती-बारी और कोई अध्ययन तथा अध्यापन। पर उनमें कोई जातीय द नहीं हो जाता और न उनमें किसी प्रकार का फ़र्क़ पड़ने पाता है। ठीक यही दशा उस समय के आर्यों की थी; सिवा इसके कि वे हमारे समान जाति के व्यर्थ आडम्बर और जात्याभिमान से फूले हुए न थे। उनका वर्ण-विभेद अपने कामों को समुचित रूप से पूरा करने के लिए एक पारिवारिक प्रबन्ध मात्र था। यह पारस्परिक मेल और सहयोग का एक नमूना था, न कि चिरस्थायी भेद और फूट का अटल पट्टान। अस्तु। संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् मोक्षमूलर का कथन है—"तब, यदि हम अपने सब प्रमाणों को आगे रख कर पूछें कि 'क्या जाति-भेद जैसा कि हम इसे मनुस्मृति में तथा आधुनिक समय में पाते हैं, वेदों के अति प्राचीन शिक्षा का एक भाग होता है या नहीं?' तो इसका उत्तर निश्चित नहीं दे सकते हैं।" * (चिप्स फ्रॉम ए जर्मन वर्कशॉप, भाग २ पेज ८०७)। प्रोफ़ेसर वेबर वैदिक समय के बारे में लिखते हैं—"अब तक जाति-भेद नहीं था; सब लोग एकत्र मिले हुए थे और एक ही नाम 'विशस्' रखते थे।" † (इण्डियन लिटरेचर, पेज ३८) बाबू रमेशचन्द्र दत्त का कहना है कि "समूचे ऋग्वेद में एक भी ऐसा वाक्य-समूह नहीं है, जो यह दिखला सके कि उस समय समाज आनुवंशिक जातियों में विभाजित था।" ‡ महाभारत शान्ति-पर्व में यह प्रकरण आता है—"जातियों में कुछ भी विशेषता या भेद नहीं है। यह समूचा संसार ईश्वर ने ही बनाया है। पहले ईश्वर ने (उन्हें) बनाया, पीछे अपने-अपने कर्म के अनुसार उन्होंने जातीयता पाई।" ¶

अब यह सिद्ध हो गया कि अति प्राचीन काल में कोई जाति-भेद न था। समय और अवस्था ने वर्ण-व्यवस्था की नींव डाल दी। किन्तु हम कह आए हैं कि वह जाति-भेद आजकल के सदृश न था, वरन् केवल कामों ही का विभाजन था। किसी को कोई काम करने की रोक-टोक न थी। ब्याह आदि का भी कोई बन्धन न था। लोग पूजा-पाठ आदि करने से ब्राह्मण कहलाते थे। यदि उनके वंश के लोग वह काम न कर सकते थे, तो वे ब्राह्मण न कहलाते थे। § शूद्रों को भी कदापि नीच दृष्टि

---

* If then with all the documents before us, we ask the question, "Does Caste, as we find it in Manu, and at the present day, form part of the most ancient religious teaching of the Vedas? we can answer with a decided No."

† "There are no castes as yet; the people are still one united whole, and bear but one name, that of Visas."

‡ "In the entire range of the Vedas we have not a single passage to show that the community was cut up into hiriditary castes."

¶ न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्रह्ममिदं जगत्।
ब्रह्मणा पूर्वसृष्टंहि कर्मणा वर्णतां गतम्॥

§ अधर्मचर्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ। —आपस्तम्ब सूत्र।

से न देखा जाता था। वे वेद भी पढ़ते थे। इस सम्बन्ध में निम्न-लिखित सूक्त से बढ़ कर साफ़ प्रमाण और क्या हो सकता है। देखिए—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्याम् शूद्राय चार्य्याय स्वाय चारणाय॥
—यजुर्वेद २६। २

अर्थात्—"जिस प्रकार मैं यह कल्याणकारक वचन (अर्थात् वेद) सबके लिए—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और नौकरों के लिए—घोषित करता हूँ।" शूद्रों के प्रिय होने के लिए भी इस प्रकार प्रार्थना की गई है—

प्रियं मां दर्भ कृणु ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्य्याय च।
यस्मै च कामयामहे सर्वस्मै च विपश्यते॥
—अथर्व १९।३२।८

अर्थात्—"हे न्यायी ईश्वर, मुझे ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र और वैश्यों का प्रिय बनाओ। जिन्हें मैं देखता हूँ, उन सबका मुझे प्रिय बनाओ।" इस प्रकार के और भी प्रमाण भरे पड़े हैं, उन्हें स्थाली-पुलाक न्याय से ही समझ लेना चाहिए। हम यहाँ केवल छान्दोग्योपनिषद् की एक कहानी लिख कर सन्तोष करते हैं। जाबाला के पुत्र सत्यकाम ने अपनी माता से कहा—माँ, मैं ब्रह्मचर्याश्रम ग्रहण करना चाहता हूँ (अर्थात् विद्याध्ययन करना चाहता हूँ)। मुझे मेरे गोत्र का परिचय बतला दो।

माता ने कहा—वत्स! मैं नहीं जानती कि तुम किस कुल के हो। यौवनावस्था में, जब मैं प्रायः दासी की तरह अपना जीवन व्यतीत करती थी, मैंने तुम्हें गर्भ में धारण किया। मैं नहीं जानती कि तुम्हारा गोत्र क्या है। मेरा नाम जाबाला है। तुम सत्यकाम हो। अतः अपने को 'सत्यकाम जाबालि' कहना।

सत्यकाम गौतम हारिद्रुमत के पास गया और उनसे बोला—आर्य, मैं ब्रह्मचारी बनना चाहता हूँ। क्या आपकी शरण में आ सकता हूँ?

हारिद्रुमत ने पूछा—वत्स, तुमने किस गोत्र में जन्म लिया है?

सत्यकाम ने उत्तर दिया—आर्य! मैं किस कुल का हूँ, यह नहीं जानता। मैंने अपनी माता से पूछा, तो उसने उत्तर दिया—यौवनावस्था में, जब मैं प्रायः दासी की तरह अपना जीवन व्यतीत करती थी, मैंने तुम्हें गर्भ में धारण किया। मैं नहीं जानती कि तुम्हारा गोत्र क्या है। मेरा नाम जाबाला है। तुम सत्यकाम हो। अतः आर्य, मैं सत्यकाम जाबालि हुआ।*

हारिद्रुमत ने कहा—सच्चे ब्राह्मण को छोड़ दूसरा कोई इस तरह अपना गुप्त भेद नहीं बता सकता। जाओ मित्र, कुश लाओ, मैं तुम्हें दीक्षा दूँगा। तुम सत्यव्रत से पराङ्मुख नहीं हुए।

सत्यकाम जाबालि के इस उपाख्यान से विदित होता है कि उपनिषदों के समय में भी गुण और विद्या के द्वारा मनुष्य श्रेष्ठता पाने में स्वतन्त्र था। जाति-पाँति उसके मार्ग में अड़चन न हो पाते थे। ऐतरेय ब्राह्मण (२।१९) में भी इलुशात्मज कवष का इसी प्रकार महर्षि बनाया जाना लिखा है। ऐतरेय ब्राह्मण और ऐतरेय उपनिषद् का बनाने वाला महिदास ऐतरेय किसी शूद्रा स्त्री का लड़का था। महाभारत में भी ऐसी बहुत सी कथाएँ हैं। व्यास जी केवट जाति की स्त्री के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। उनके पिता पराशर जी चाण्डाली के गर्भ से जन्मे थे।†

वशिष्ठ की माता एक वेश्या थी।‡ कहाँ तक गिनाया जाय, विश्वामित्र, अरिष्टसेन, त्रय्यारुण, पुष्करिण कपि आदि क्षत्रिय भी इसी प्रकार ब्राह्मण बने थे। गृत्समद जो ऋग्वेद द्वितीय मण्डल के ऋषि थे, उनके

---

*नाहमेतद् वेद भो यद् गोत्रोऽहमस्म्यपृच्छं मातरं सा मा प्रत्यब्रवीद् बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलभे साहमेतन्न वेद यद् गोत्रस्त्वमसि जाबालातुनामाऽहमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसीति सोऽहम् सत्यकामो जाबालोऽस्मि भो इति॥

† जातो व्यासस्तु कैवर्त्याः श्वपाक्यास्तु पराशरः।
बहवोऽन्येपि विप्रत्वं प्राप्ता ये पूर्व मद्विजाः॥
—महाभारत, वन पर्व

‡ गणिका गर्भ सम्भूतो वशिष्ठश्च महामुनिः।
तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तत्र कारणम्॥
—महाभारत

वंश में ब्राह्मण आदि चारों वर्ण हुए।* मेधातिथि (क्षत्रिय) के पुत्र कण्व ब्राह्मण हो गए। इस प्रकार गार्ग्य, मैतरेय और मौद्गल्य आदि भी ब्राह्मण हुए।

मध्य काल में वर्ण-व्यवस्था

उपनिषद्-काल के पश्चात् वर्ण-व्यवस्था अत्यन्त जटिल हो गई। स्मृतियों ने पद-पद पर वर्णों को याद किया। जन्म से मृत्यु तक हर एक काम में प्रत्येक वर्ण का क्षेत्र अलग रहा। यहाँ तक कि दण्ड-विधान में भी वर्ण का ख़याल रक्खा जाता था। जिस अपराध के लिए साधारण लोगों को फाँसी दी जाती थी, उसी के लिए ब्राह्मणों को केवल देश-निकाला मिलता था। यदि इन सब बातों का यहाँ उल्लेख किया जाय, तो निष्पक्ष लोग अवश्य क्रोधित हो उठें। महाभारत में भी बहुत सी जातियों का उल्लेख मिलता है। मेगास्थिनीज़ ने भी सात जातियों का होना बतलाया है।

* ततो ब्राह्मणतां जातो विश्वामित्रो महातपाः।
क्षत्रियः सोऽप्यथ तथा ब्रह्मवंशस्य कारकः॥
—म० अनुशासन पर्व

तत्रारिष्टसेपः कौरव्य ब्राह्मण्यं शंसितव्रतः।
तपसा महता राजन् प्राप्तवान् ऋषिसत्तमः॥
—म० शल्य पर्व

महावीर्य्याद्दुरुक्षयो नाम पुत्रोऽभूत्। तस्य त्रय्यारुण पुष्करिणौ कपिश्च पुत्र त्रयमभूत्। तच्च त्रितयमपि पश्चाद् विप्रतामुपजगाम।
—महाभारत

पुत्रो गृत्समदस्य च सुनको यस्य शौनकः।
ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्तथैवच॥
एतस्य वंशे सम्भूता विचित्रा कर्मभिर्द्विजाः॥ आदि
—वायु-पुराण

आधुनिक काल में जातियाँ और हमारा कर्तव्य

नवीन गणना के अनुसार आज इस अभागे देश में २३७८ जातियाँ हैं और नित्य नई बनती जा रही हैं! आजकल पेशा पर जातियों का होना अवलम्बित है। एक जाति दूसरी जाति के साथ रोटी-बेटी का सम्बन्ध नहीं कर सकती। दो जातियों के बीच मानों बङ्गाल की खाड़ी बहती है। ब्राह्मणों का पतन भी भयङ्कर है। दूसरे वर्ण भी हज़ारों वर्षों से अधःपतित दशा में पड़े रहने के कारण शिर उठाने में असमर्थ हैं। उधर इस्लाम धर्म वाले तथा क्रिश्चियन पादरी लोग हमारी कमज़ोरी से चुपचाप फ़ायदा उठाते जा रहे हैं। यदि कोई आपस में सुधार का प्रस्ताव करे, तो लोग उसे नास्तिक और अधर्मी कह कर उस पर गालियों की बौछार कर देते हैं। अब प्रत्येक सच्चा भारतीय अपना कर्तव्य स्थिर करे। हम इतने अन्ध-विश्वास और धर्म का ढोंग ढोते हुए कब तक जी सकेंगे?

मित्र निष्कपटता से, शत्रु बल से, लोभी धन से, ईश्वर भक्ति से, ब्राह्मण आदर से, निज स्त्री प्रेम से, बन्धु समानता से, बलवान स्तुति से, गुरुजन प्रणाम से, मूर्ख गप्पों से, पण्डित विद्या से और रसिक लोग रस की बातों से वशीभूत होते हैं, किन्तु शीलता से सब लोग वशीभूत हो सकते हैं। अतएव शीलता को ही लोकप्रियता का आधार कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं।

सभ्यतायुक्त आचरण करने से ही मनुष्य सभ्य समझा जाता है।

जीवन में मनुष्य को क्रम-क्रम से जिस-जिस प्रकार मित्र मिलेंगे, उस-उस प्रकार से उसके आत्मा की बाढ़ होगी।

"दैव भरोसे सब काम-धाम छोड़ कर बैठ रहना ठीक नहीं; क्योंकि तिल से भी बिना उद्यम के तेल नहीं निकलता।"

झूठी स्तुति करने वाले को शत्रु के समान भयङ्कर समझना चाहिए।

दयालु श्रेष्ठ पुरुष सब प्राणियों के अकारण ही बान्धव होते हैं।

मन्द प्रारब्ध और दुराचारी लोगों की बुद्धि सर्वथा विपरीत (उलटी) हो जाती है।

सभी समय में सुजनता का प्रकाश करना असम्भव है। किन्तु यथार्थ सहानुभूति रहने से समय-समय पर सुजनता का प्रकाश किया जा सकता है।

माता

[श्री० आनन्दबिहारीलाल चतुर्वेदी]

शुचिता जिसमें नहीं जान्हवी से कुछ कम है।
करुणा का सञ्चार हृदय में रखता शम है।
वसुधा के सम धैर्य सुलभ सन्तोष जिसे है।
विचलित करता कभी नहीं कटु रोष जिसे है॥
वह पावन प्रतिमा प्रेम की,
जननी है संसार में।
अपवर्ग-स्वर्ग-सुख है भरा,
जिसके मञ्जुल प्यार में।

सकल अङ्ग-प्रत्यङ्ग हमारे विमल बनाती।
शय्या सत्त्वर स्वयं सुकोमल अमल बिछाती।
सुखमय निद्रा हेतु चाव से हमें लिटाती।
मृदु-चुम्बन कर सकल हमारा कष्ट मिटाती॥
वह रोदन करते लख हमें,
होती विह्वल खिन्न है।
सचमुच ही माता का हृदय,
सकल सृष्टि से भिन्न है।

घुटनों के बल रेंग-रेंग हम जब चलते हैं।
करने सङ्कित उसे कहीं छिप कर छलते हैं।
भोली-भाली मूर्त्ति वही तब हँस कर आती।
प्यार मार का योग लगा हमको ले जाती॥
हम किलक-किलक कर जब कभी,
भाग निकलते गोद से।
तो माता वह ममतामयी,
झपट पकड़ती मोद से।

खेल खेल कर खेल साथियों के सङ्ग सारे।
आते घर में ठिनकि धूर सब तन में धारे॥
देख हमारा रूप मन्द मन में मुस्काए।
कहती "देखो परमहंस ये कैसे आए!"
वात्सल्यमयी उस जननि के,
देखो उज्ज्वल नेह को।
जो अपने दिव्य दुकूल में,
धरे धूलिमय देह को।

पोट-पाट जब कभी पड़ौसी हम आते हैं।
या होकर भयभीत भाग कर चिल्लाते हैं।
तो हम सब उस काल त्राण उससे ही पाते।
बैठ उसी के अङ्क जगत को ज़ोर दिखाते॥
वह अपने मृदु उपदेश से,
हरती मन का ताप है।
निश्चय ही माँ संसार में,
आप रूप से आप है।

क्षमामयी वह दयामयी शुचि शान्तिमयी है।
पुण्यमयी वात्सल्यमयी कल कान्तिमयी है।
दुरित दारिणी दुःख निवारिणी वर विमला है।
अशिव-हारिणी विभवकारिणी वह कमला है।
वह सरित सुलभ आनन्द की,
उसका यश अवदात है।
मधु मधुर मृदुल ममतामयी,
मञ्जुल मूरति मात है।

कहानी-कला

[श्री० रामनारायण 'यादवेन्दु', बी० ए०]

चरित्र-चित्रण

१—उपकरण

चरित्र-चित्रण के लिए उपकरण-सङ्कलन में निरीक्षण की विशेष आवश्यकता होती है। लेखक अपनी कहानी में मानव-चरित्र की अभिव्यक्ति करने के लिए सतर्क रहता है। परन्तु वह उस अभिव्यक्ति में मौलिकता एवं अद्भुतता का सम्मिलन करके मानव-जाति के लिए एक सुन्दर उपहार देता है। मनुष्य की चरित्र-विशिष्टताओं, मनोभावों, उद्देश्यों, कार्यों और भावात्मक सङ्कटों का उस सीमा तक भली-भाँति अध्ययन तथा निरीक्षण करना चाहिए, जहाँ तक वे उसके आचरण द्वारा व्यक्त हो सकते हैं। चरित्र-चित्रण का कार्य कहानी-कला की दृष्टि से बड़े महत्व का है। इसके बिना कहानी सारहीन है। चरित्र के निरीक्षण के लिए आवश्यक है कि पात्र की अन्तर्वृत्ति और वाह्य अभिव्यक्ति की तुलना की जाय। यदि किसी चरित्र की सृष्टि उन तत्वों के द्वारा की जायगी, जिनका लेखक ने साक्षात्कार न किया हो, तो वह निर्जीव यन्त्रवत् होगा। प्रत्येक पात्र अपना निजी व्यक्तित्व रखता है। किन्तु उस व्यक्तित्व में लेखक के आदर्श, मनोभाव और विचारों की स्पष्ट झलक मिलती है। सारांश यह है कि मानव-जीवन का मनोवैज्ञानिक अध्ययन एवं निरीक्षण चरित्र-चित्रण के लिए नितान्त आवश्यक है।

२—चरित्र-चित्रण का क्षेत्र

कहानी में पात्रों का परिवार, बन्धु-बान्धव, अतीत और भविष्य से कोई सम्पर्क नहीं होता। क्योंकि कहानी में किसी भी पात्र के ऐतिहासिक रूप में जीवन-वृत्तान्त के लिए गुञ्जाइश नहीं।

कहानी में पात्र के जीवन की एक झलक ही प्रदर्शित की जाती है; सम्पूर्ण जीवन नहीं। यदि पात्र का अतीत या भविष्य से सम्बन्ध कराना ही अभीष्ट है, तो वह निर्देश मात्र ही होना चाहिए। पात्र के जीवन-चरित्र का सार कहानी में लिखना उसकी मर्यादा के बाहर है। यदि लेखक चाहे तो पात्र सम्बन्धी सूचनाएँ कथोपकथन में, बिना किसी विशेष आयोजन के दे सकता है।

आचार्य पं० रामचन्द्र जी शुक्ल के वर्गीकरणानुसार सात्विक, राजस् और तामस् इन तीन प्रकृतियों के आधार पर चरित्र-विभाग करने से दो प्रकार के चरित्र हो सकते हैं:—आदर्श चित्रण और सामान्य चित्रण। आदर्श चित्रण में सात्विक और तामस् दोनों आते हैं। आदर्श चित्रण में आदि से अन्त तक सात्विक या तामस् वृत्ति का निर्वाह किया जाता है। उसमें प्रकृति-भेद-सूचक अनेकरूपता के दर्शन नहीं होते। परन्तु, दूसरी ओर, सामान्य चित्रण में प्रकृति-भेद-सूचक अनेकरूपता के दर्शन होते हैं। सामान्य चित्रण के दो भेद माने गए हैं:—(१) व्यक्ति-विशेष का सामान्य चित्रण तथा (२) समुदाय-विशेष की प्रकृति का सामान्य चित्रण; यथा नारी-प्रकृति और बाल-प्रकृति।

यह तो भारतीय चरित्र-विभाग हुआ। अब हम सूक्ष्म रूप से पाश्चात्य साहित्य के चरित्र-विभाग पर विचार करना चाहते हैं। अमेरिका के प्रसिद्ध कला-मर्मज्ञ आलब्राइट (E. M. Albright) ने चरित्र-विभाग निम्न प्रकार से किया है, यथा:—

"Those which change and those which do not change."

अर्थात्—"एक वे जो बदल जाते हैं और दूसरे वे जो नहीं बदलते।"

पात्र में चरित्र-विकास अत्यन्त आवश्यक है। चरित्र-विकास के अभाव में पात्र में सजीवता नहीं रहती। इसलिए वह पाठक के लिए भी रोचक नहीं रहता।

यदि कोई पात्र जैसा आदि में था वैसा ही अन्त में रहता है—अपरिवर्तनशील है—तो उसमें अनुपमता का सन्निवेश कर देना चाहिए, जिससे चरित्र-विकास के अभाव-प्रसूत शैथिल्य का परिहार हो जाय।

कहानी में परिवर्तनशील पात्र बड़ा रोचक और महत्वपूर्ण होता है। सर्वोत्कृष्ट कहानी वही होती है, जिसमें पात्र का चरित्र-विकास सम्पूर्ण रूप में न दिखला कर आंशिक रूप में या सङ्कट के अवसर पर दिखलाया जाता है। पण्डित गोविन्दवल्लभ पन्त की कहानी में चरित्र-विकास बहुत ही उत्कृष्ट है। जैसे—

"वासवदत्ता भुवन-मोहिनी शोभा की राशि है; परन्तु उसका रूप एकपत्नी-व्रत दम्पती के भोग की वस्तु नहीं है। वह वेश्या का जीवन व्यतीत करती है। एक दिन अपने महल के द्वार पर उपगुप्त नामक साधु से उसकी भेंट हो जाती है। वह उस साधु को अपना हृदयेश्वर बनाने की इच्छा प्रगट करती है। परन्तु साधु अनिच्छा प्रगट कर फिर मिलने का वचन देकर प्रस्थान करता है। वर्षों तक वह रमणी वेश्या का जीवन बिताती रहती है। एक दिन एक प्रेमी की हत्या के अपराध में उसे अङ्ग-भङ्ग का दण्ड दिया जाता है—उसके चन्द्रवदन से दो कमल छीन लिए जाते हैं, उसके कर-कमल काट लिए जाते हैं, उसके कर्ण और नासिका का सौन्दर्य नष्ट कर दिया जाता है। उसकी सब सम्पदा छीन ली जाती है।"

सहृदय पाठक! वासवदत्ता के महासङ्कट की कल्पना करें। यह एक ऐसी स्थिति है, जब उसके जीवन में एक क्रान्तिपूर्ण परिवर्तन होने वाला है! क्या आप उसकी कल्पना कर सकते हैं? ऐसी आपत्ति के समय उसकी जीवन-सरिता का प्रवाह किस ओर जायगा—क्या आपने विचार किया है? वास्तव में यह बड़ी तीव्रतम स्थिति है। इस समय सहृदय कलाकार अपनी कला का चमत्कार और अपनी बुद्धि का कौशल दिखाने के लिए वासवदत्ता की सहायता के लिए प्रस्तुत होता है।

इस महासङ्कट में वही साधु उपगुप्त वासवदत्ता के पास आता है। साधु वासवदत्ता के मस्तक पर हाथ रखता है। वासवदत्ता यह पहचान कर कि यह वही साधु है, उसकी भर्त्सना करती है! वह कहती है—'साधु! जब मेरा सौन्दर्य, यौवन, धन, वैभव नष्ट हो गया, तब तुम्हारे आने का क्या प्रयोजन?' इस अवसर पर उपगुप्त ने जो उत्तर दिया है, वह वास्तव में बड़ा मार्मिक और सञ्जीवनी-शक्ति से ओतप्रोत है। उस उत्तर में वासवदत्ता के लिए नवजीवन का सन्देश है। उपगुप्त के शब्द ये हैं:—

"भगिनी! मैं इन्द्रिय-सुख अथवा और किसी स्वार्थ से प्रेरित होकर तुम्हारे पास नहीं आया हूँ। शारीरिक सौन्दर्य व्यर्थ है, तुम्हारा यह शरीर इसकी साक्षी देगा। धन भी निस्सार है, तुम्हारा अतुल वैभव इसका उत्तर देगा।"

वासवदत्ता अन्त में सङ्घ की भिक्षुणी बन कर शेष जीवन शान्ति और आनन्द से बिताती है।

३—पात्र प्रस्तुत करने की पद्धति

(१) वर्णन—

किसी व्यक्ति की जीवन-कथा में उसके जीवन का पूर्ण चित्र मिलता है। परन्तु जब हम उसके जीवन की स्थिति-विशेष का अध्ययन करते हैं, तो उसका इतिवृत्तिआत्मक वर्णन अपेक्षित नहीं होता। किसी पात्र के व्यक्तित्व को सर्वाङ्गपूर्ण वर्णन के रूप में प्रस्तुत करना प्रभावोत्पादक नहीं हो सकता। पात्र के व्यक्तित्व की वाह्य विशिष्टताओं को विकसित रूप में अभिव्यक्त करने से वे हमारे हृदय और मन की सहचरी बन जाती हैं। जहाँ पात्र के शारीरिक अवयवों का विशद और सम्पूर्ण चित्र खींचा जाता है, वहाँ लेखक में कल्पना का अभाव दीख पड़ता है। ऐसा वर्णन पाठक की कल्पना को उत्तेजनशील नहीं बनाता। स्वर्गीय श्री० चण्डीप्रसाद जी 'हृदयेश' की 'विलासिनी' कहानी में विलासिनी का रूप-सौन्दर्य-वर्णन बड़ा शुष्क और निर्जीव है। आलङ्कारिक भाषा और संस्कृतमयी शैली ने उसे और भी कृत्रिम बना दिया है। इसमें वह सौन्दर्य नहीं है, जिसे देखने के लिए पाठक की इन्द्रियाँ विकल होने लगें। ऐसा वर्णन कहानी के लिए सर्वथा अनुपयुक्त है। यहाँ हम एक अवतरण प्रस्तुत करते हैं, जिससे पाठक हमारे उद्देश्य को भली-भाँति हृदयङ्गम कर सकेंगे।

"अलौकिक रूप-राशि से विभूषित होकर वह इस विश्व के रङ्गमञ्च पर अवतीर्ण हुई थी; आकाश-मण्डल से मानों शारदीय सुधाकर की विमल धारा शरीर रख कर प्रकट हुई थी; समुज्ज्वल तारकावली मानों प्रकाश-

मयी प्रतिमा के रूप में आविर्भूत हुई थी ; नन्दन-वन की पारिजात-श्री मानों कान्त-कलेवर धारण करके प्रस्फुट हुई थी ; आनन्द-स्पन्दिनी मोदकला मानो मूर्तिमती होकर अवतीर्ण हुई थी । वह सौन्दर्य-सरोवर की कमल-कमला की भाँति कान्तिमयी थी ।

आनन्द-कादम्बिनी जैसी रसमयी, अरुण-कादम्बरी जैसी मदमयी, स्वर्ग-सङ्गीत-धारा जैसी उच्छ्वासमयी, बसन्त-कोकिल जैसी रागमयी, वह इस धराधाम को अपने आलोकमाला से समुद्भासित करने के लिए आई थी और विमुग्ध विश्व ने अपनी समस्त विमल विभूति से उसका मण्डन किया था ।

नन्दन-निकुञ्ज की शीतल छाया के कृष्णाम्बर से सूक्ष्म तन्तु-पुञ्ज लेकर यदि स्वर्ग ने उसकी आपन्दलवित कलित कुन्तल केश-राशि की कल्पना की थी, तो विश्व ने रत्नाकर के गम्भीर विशाल हृदय में वात्सल्य-सुन्दर भावों के समान लीला करने वाले समुज्ज्वल मुक्ताफलों से उसका शृङ्गार किया था । प्रभात सूर्य की प्रोज्ज्वल प्रभा के सार को लेकर यदि स्वर्ग ने उसके प्रसन्न-शोभा-मय ललाट की रचना की थी, तो विश्व ने मणि-मण्डित काञ्चन-किरीट से उसे विभूषित किया था । त्रिपथ-गामिनी मन्दाकिनी के पवित्र शीतल सलिल में उत्पन्न होने वाले स्वर्ण-कमल की कान्ति से यदि स्वर्ग ने उसके विशाल लोचनों को प्रकाशित किया था × × ×"

—'विलासिनी'

(२) विश्लेषण

प्रधान पात्र के जीवन के सङ्कटों की अभिव्यक्ति के लिए विश्लेषण की विशेष आवश्यकता है । सभी सङ्कटों की अभिव्यक्ति के लिए विश्लेषण अपेक्षित नहीं हैं । कुछ सङ्कट तो स्वाभाविक रूप में भाषण और कार्य द्वारा व्यक्त हो जाते हैं । विश्लेषण का सर्वश्रेष्ठ उपयोग यही है कि चरित्र के उन तत्वों को चुन लिया जाय, जिनका मुख्य कहानी की स्थिति से घनिष्ट सम्पर्क है और इन सम्पादित तत्वों का ही चित्रण में उपयोग किया जाय ।

(३) चरित्र-चित्रण के प्रकार

चरित्र-चित्रण के चार प्रमुख प्रकार हैं—वर्णनात्मक, सङ्केतात्मक, कथोपकथनात्मक और घटनात्मक ।

(क) वर्णनात्मक चित्रण

"वह बहुत ही शरमीले हैं, किसी पराई स्त्री के सामने आँख नहीं उठाते । वह इसे भी सदाचार से गिरा हुआ समझते हैं । मेरी कोई सहेली आ जाती है, तो उठ कर अन्दर चले जाते थे । मैं बहुतेरा समझाती हूँ—कहती हूँ—तुम मर्द हो, यदि स्त्री परदा नहीं करती तो पुरुष क्यों करे, परन्तु वह हँस कर टाल देते हैं । मुझे उन पर पूरा-पूरा विश्वास है । मैं समझती हूँ, सब कुछ हो सकता है, परन्तु उनके मन में मैल नहीं आ सकता । ऐसा पुरुष मिल जाना मेरा सौभाग्य है । उन्होंने अपने आपको मेरे ऊपर छोड़ दिया है ।

घर बाहर स्याह-सफ़ेद सब मेरे हाथ में है । कपड़े तक स्वयं नहीं बदलते । यदि मैं न कहूँ तो पूरा अठवारा निकल जाता है, और उन्हें ध्यान भी नहीं आता कि कपड़े मैले हो गए हैं । उनके दूध का, फलों का, कमरे की सफ़ाई का मुझे ही प्रबन्ध करना पड़ता है । सोचती हूँ, यदि मेरे स्थान पर कोई दूसरी बेपरवा मन वाली स्त्री आ जाती तो क्या होता । घर में धूल उड़ने लगती, थोड़े ही दिनों में बीमार हो जाते । उन्हें अपने दफ़्तर की सफ़ाई का ध्यान नहीं, उसका भी मुझे ध्यान रखना पड़ता है । नौकर सिर चढ़ा रक्खे हैं । वे निगोड़े आप से आप तो कोई काम भी नहीं करते । जब तक सिर पर न खड़े रहो, तब तक हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते हैं । कभी-कभी मुझे उन पर क्रोध आ जाता है । वे क्यों दबदबे से काम नहीं लेते ।"

—'कवि की स्त्री'; सुदर्शन

(ख) साङ्केतिक चित्रण

साङ्केतिक चित्रण से अभिप्राय यह है कि पात्र की शक्ल-सूरत का वर्णन सङ्केत रूप में होना चाहिए । विशद् और विस्तृत वर्णन आकर्षक और रोचक नहीं रहता । इसके प्रमाण के लिए उपर्युक्त 'विलासिनी' का उदाहरण यथेष्ट है । लेखक को शरीर के आकर्षक गुणों की ओर सङ्केत करके छोड़ देना चाहिए । यथा :—

"मुलिया इस ऊसर में गुलाब का फूल थी । गेहुँआ रङ्ग था, हिरन की-सी आँखें, नीचे खिंचा हुआ चिबुक, कपोलों पर हलकी लालिमा, बड़ी-बड़ी नुकीली पलकें । आँखों में एक विचित्र आर्द्रता, जिसमें एक स्पष्ट वेदना, एक मूक व्यथा झलकती थी । मालूम नहीं,

चमारों के इस घर में यह अप्सरा कहाँ से आ गई थी? क्या उसका कोमल फूल-सा गात इस योग्य था कि सिर पर घास की टोकरी रख कर बेचने जाती? उस गाँव में भी ऐसे लोग मौजूद थे, जो उसके तलवों के नीचे आँखें बिछाते थे, उसकी एक चितवन के लिए तरसते थे, जिनसे अगर वह एक शब्द बोलती, तो निहाल हो जाते। लेकिन उसे आए साल भर से अधिक हो गया, किसी ने उसे युवकों की तरफ़ ताकते या बात करते नहीं देखा, वह घास लिए निकलती तो ऐसा मालूम होता, मानों ऊषा का प्रकाश, सुनहरे आवरण से रञ्जित, अपनी छटा बिखेरता जाता हो। कोई ग़ज़लें गाता, कोई छाती पर हाथ रखता; पर मुलिया नीची आँखें किए अपनी राह चली जाती × × ×!"

—'घासवाली'; प्रेमचन्द

(ग) कथोपकथनात्मक चित्रण

"बाबू साहब ने बालक को गोद में उठा लिया, चुमकार-पुचकार कर चुप किया और तत्पश्चात् उसे कुछ पैसे तथा रेलगाड़ी ला देने का वचन देकर छोड़ दिया। बालक मनोहर भयपूर्ण दृष्टि से अपनी ताई की ओर ताकता हुआ उस स्थान को चला गया।

मनोहर के चले जाने पर बाबू रामजीदास रामेश्वरी से बोले—तुम्हारा यह कैसा व्यवहार है? बच्चे को ढकेल दिया! जो उसके चोट लग जाती तो?

रामेश्वरी मुँह लटका कर बोलीं—लग जाती तो अच्छा होता। क्यों मेरी खोपड़ी पर लादे देते थे? आप ही तो मेरे ऊपर डालते थे और अब आप ही ऐसी बातें करते हैं।

बाबू साहब कुढ़ कर बोले—इसी को खोपड़ी पर लादना कहते हैं।

रामेश्वरी—और नहीं किसे कहते हैं? तुम्हें तो अपने आगे और किसी का दुख-सुख सूझता ही नहीं। न जाने कब किसका जी कैसा होता है। तुम्हें इन बातों की कुछ परवाह नहीं। अपनी चुहल से काम है।

बाबू—बच्चों की प्यारी-प्यारी बातें सुन कर तो चाहे जैसा जी हो, प्रसन्न हो जाता है। मगर तुम्हारा हृदय न जाने किस धातु का बना है?

रामेश्वरी—तुम्हारा हो जाता होगा। और होने को होता भी है; पर वैसा बच्चा भी तो हो। पराए धन से भी कहीं घर भरता है।

बाबू साहब कुछ देर चुप रह कर बोले—यदि अपना सगा भतीजा भी पराया धन है, तो फिर मैं नहीं समझता कि अपना धन किसे कहेंगे।

रामेश्वरी कुछ उत्तेजित होकर बोली—बातें बनाना बहुत आता है। तुम्हारा भतीजा है, तुम चाहे जो समझो; पर मुझे ये बातें अच्छी नहीं लगतीं। हमारे भाग ही फूटे हैं। नहीं तो ये दिन काहे को देखने को मिलते। तुम्हारा चलन तो दुनिया से निराला है। आदमी सन्तान के लिए न जाने क्या-क्या करते हैं—पूजा-पाठ करते हैं, व्रत रखते हैं, पर तुम्हें इन बातों से क्या काम? रात-दिन भाई-भतीजों पर मगन रहते हो।

बाबू साहब के मुख पर घृणा का भाव झलक आया। उन्होंने कहा—पूजा-पाठ, व्रत सब ढकोसला है। जो वस्तु भाग्य में नहीं, वह पूजा-पाठ से कभी प्राप्त नहीं हो सकती। मेरा तो अटल विश्वास है।

—'ताई'; विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक

(घ) घटनात्मक चित्रण

चाँदनी के दिन चल बसे। सर पर बदली उमड़ आई। दारा बेचारा सहोदर के हाथ से पटका खा घर-बार, सुख-विलास छोड़ कर वन में भाग गया। औरङ्ग़ज़ेब ने दिल्ली को अपनी मुट्ठी में किया—बुड्ढे बाप पर अपनी लगी बुझाई। फिर भाई-बन्धुओं के अरुण-तरुण रक्त से अपने हाथों में मेहदी लगाई। इतना ही नहीं, प्यास ऐसी थी कि शहज़ादियों के विलास-मधुर अन्तर्तल पर होंठ लपके। एक दिन दारा की दारा पर भी चितवन फिरी। चितवन ही नहीं फिरी, चित्त भी फिर गया। उसने तत्क्षण बाँदी के हाथ एक पत्र लिख भेजा—"प्रिये! मैं तुम्हारी काली-काली खुशबूदार ज़ुल्फ़ों पर मर रहा हूँ।" राजकुमारी क्षण भर चुप रही। फिर बड़े लाड़ से पाले, फूलों से गुथे, चञ्चल-चिकने बालों को चुपचाप काट डाला और हिना के इत्र में उन्हें भिगो कर शाहन्शाह के निकट उनको भेज दिया।

औरङ्ग़ज़ेब ने फिर लिख भेजा—"प्रिये! मैं तुम्हारी इन नर्गिसनुमाँ आँखों का शैदा हो रहा हूँ।" जिस समय बाँदी चिट्ठी लेकर आई, उस समय वह शायद आँखों में सुर्मा लगा रही थी। झट धीरे से सुकुमार सुमीली आँखों को निकाल कर रङ्गीन फूलदार लिफ़ाफ़े में भर कर बाँदी के हाथ भिजवा दिया।

औरङ्गज़ेब की आग भभक उठी। फिर लिख भेजा—"प्रिये! मैं तुम्हारे चाँद से मुँह पर आशिक़ हूँ।" बाँदी ने चिट्ठी पढ़ कर सुना दी। राजकुमारी ने चूँ तक नहीं की। किसी तरह मायावी गुलाबी गालों को काट-कूट कर भिजवा ही दिया। जो कुछ देने योग्य था, सब दे दिया। मगर हृदय नहीं—सत्य नहीं।"

—'वीर बाला'; राजा राधिकारमणसिंह

चरित्र-चित्रण के ये चारों प्रकार अपनी-अपनी विशिष्टता रखते हैं। जहाँ पात्र के रूप-सौष्ठव और शारीरिक सौन्दर्य का वर्णन अपेक्षित हैं, वहाँ साङ्केतिक चित्रण ही उपयुक्त है। घटना के वर्णन से किसी के चरित्र पर प्रकाश पड़ता हो, तो वहाँ अन्तिम प्रकार ही वाञ्छनीय है। परन्तु मानव-प्रकृति और मनोभावों के चित्रण के लिए कथनोपकथनात्मक चित्रण से बढ़ कर और कोई उत्कृष्ट प्रकार नहीं है। यही चित्रण सर्वश्रेष्ठ है।

'वर्तमान कला के रूप में यही × × × चित्रण आदर्श माना जाता है। बात यह है कि पात्रों में जब जीवन की शक्तियाँ आती हैं, तो वे अपना वर्णन—चाहे आप ही क्यों न करें—पाठकों के सामने रखने के लिए दूसरे का मुख नहीं ताकते। यदि वे पाठकों के साथ कल्पना में चल-फिर सकते हैं, तो वे उन्हें अपना परिचय भी दे सकते हैं।' *

४—चरित्र-चित्रण में आधुनिक मनोवृत्ति

आजकल चरित्र-चित्रण का सर्व-प्रथम आदर्श सजीवता माना जाता है। सजीवता से हमारा अभिप्राय यह है कि जिन पात्रों के चरित्र को लेखक अङ्कित करता है, वे इसी जगत के जीवित पुरुष होते हैं।

पात्रों में सजीवता और मानव-हृदय का अस्तित्व उतना ही आवश्यक है, जितना कि कथावस्तु के लिए एक मौलिक भाव। सर्वश्रेष्ठ पात्र वही होते हैं, जो मानव-प्रकृति के अधिक सन्निकट होते हैं। यदि स्पष्ट शब्दों में कहा जाय तो इसका तात्पर्य यह होगा कि चरित्र-चित्रण में यथार्थवाद (Realism) का पालन किया जाय। अर्थात् जैसा मानव-जीवन यथार्थ में है, वैसा ही चित्रित किया जाय। "मनुष्य-जीवन में सर्वत्र प्रकाश नहीं है, अन्धकार भी है। मनुष्य में जैसे क्षमता है, वैसे ही दुर्बलता भी। मनुष्य का पतन हो सकता है, इसलिए उत्थान की भी महत्ता है। अतएव आदर्श चरित्रों में उत्थान-पतन दृग्गोचर होता है। × × × मनुष्य की क्षमता यही है कि वह पतितावस्था से ही उच्चतम अवस्था को पहुँच सकता है। उसकी दुर्बलता यह है कि वह उच्चतम अवस्था प्राप्त करके भी भ्रष्ट हो सकता है।"*

सारांश यह है कि आधुनिक चरित्र-चित्रण में यथार्थवाद का उपयोग किया जाता है। परन्तु विचारपूर्वक देखा जाय, तो यथार्थवाद और आदर्शवाद में विरोध नहीं दीख पड़ता। परन्तु हिन्दी-साहित्य में यथार्थवाद के नाम पर जिस कुत्सित विचार-धारा का प्रसार हो रहा है, वह ठीक नहीं है।

× × ×

यह ठीक है कि कहानी के पात्र युवक हों। क्योंकि यौवन मानव-जीवन का वसन्त है। इस वयस में मनुष्य के अन्दर अदम्य उत्साह, जोश और आशा का सञ्चार होता है।

चरित्र का पतन और उत्थान इसी वयस पर निर्भर हैं। इसी यौवन-काल में मनुष्य में आत्मभाव का उदय होता है; वह अपने विषय में ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील बनता है; वह दूसरों के साथ अपनी तुलना करता है और दूसरों के सम्बन्ध में अपनी सम्मति निश्चित करता है। इसी काल में मनुष्य यह निश्चय करता है कि जन-समुदाय में उसका स्थान क्या है। इस प्रकार अपने निश्चय के अनुकूल अपने कर्तव्य-कर्मों को निर्धारित करता है। इन्हीं कारणों से—यौवन के रूप-सौष्ठव एवं सौन्दर्य के कारण नहीं—अधिकांश पात्र युवक ही होते हैं।

५—प्रभावोत्पादकता के साधन

कहानी के प्रधान पात्र में किसी महत्वाकांक्षा का सन्निवेश आवश्यक है। मनुष्य पूर्ण नहीं है; वह अपूर्ण है। इसलिए उसकी प्रकृति में पूर्णता का समावेश ठीक नहीं है। यदि कोई वयोवृद्ध पुरुष बड़ा उदारमना और दयालु है, किसी से द्वेष-भाव नहीं रखता, तो उसकी

---

* प्रोफ़ेसर रामकुमार वर्मा, एम० ए० लिखित 'साहित्य-समालोचन' नामक ग्रन्थ।

* श्री० पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी, बी० ए० लिखित 'विश्व-साहित्य' नामक ग्रन्थ; पृष्ठ १८९।

पूर्णता को नष्ट करने के लिए उसके चरित्र-चन्द्र में एक काला धब्बा लगा दिया जाय—उसमें अन्यायियों के प्रति द्वेषानल की चिनगारी का प्रादुर्भाव कर दिया जाय। अन्यथा यह साधु पुरुष यथार्थवादी न रहेगा। उसकी गणना मानव-जाति में नहीं, प्रत्युत देव-कोटि में की जायगी। क्योंकि त्रुटि से सर्वथा रहित मानवता कहाँ होती है? 'मिलन-मुहूर्त' कहानी में उपगुप्त साधु का चरित्र जितना अङ्कित किया गया है, वह अति विमल, विशुद्ध, पवित्र और आदर्श है। साधु का चरित्र-अङ्कन हमारे प्रतिष्ठित नियम का उल्लङ्घन करता है। इसे हम नियम का अपवाद कह सकते हैं। परन्तु उसका चरित्र-निर्वाह ऐसे ढङ्ग से हुआ है कि हमें साधु की मानवता में किञ्चित मात्र भी सन्देह नहीं होता।

इसी प्रकार यदि कोई पात्र महादुष्ट है, तो उसमें किसी सद्भावना का उदय कर देना चाहिए। इसी प्रकार यदि आपकी नायिका का सौन्दर्य पूर्ण है; उसमें कोई भी त्रुटि नहीं है, तो उसके गुलाबी कपोलों पर कोई अवाञ्छनीय चिन्ह बना कर उसकी पूर्णता में बट्टा लगा दो। ऐसा करने से वह इसी लोक की रूपवती सुन्दरी बन जायगी। कहने का अभिप्राय यह है कि पात्र इसी जगत के जीते-जागते मनुष्य हों।

चरित्र-चित्रण में नाटकीय वर्णन का निर्वाह अत्यन्त आवश्यक है। हृदय-स्पर्शी वर्णन के बिना अन्य सब विशिष्टताएँ सारहीन हैं। वर्ण, शब्द, रङ्ग, रूप, शारीरिक अवयव, परिधान, आचार-विचार, व्यवहार-शिष्टाचार, सौन्दर्य इत्यादि सभी का मनोहारी और युक्ति-सङ्गत वर्णन होना चाहिए। रङ्गों की नयनाभिराम प्रदर्शिनी देखनी हो, तो श्री० चतुरसेन जी शास्त्री के निम्नलिखित अवतरण में देखिए:—

"मोतीमहल के एक कमरे में शमादान जल रहा था; और उसकी खुली हुई खिड़की के पास बैठी सलीमा रात का सौन्दर्य निहार रही थी। खुले हुए बाल उसकी फ़ीरोजी रङ्ग की ओढ़नी पर खेल रहे थे। चिकन के काम की सजी और मोतियों से गुँथी हुई फ़ीरोजी रङ्ग की ओढ़नी पर कसी हुई कमख़ाब की कुर्ती और पन्नों की कमरपेटी पर अङ्गूर के बराबर बड़े मोतियों की माला झूम रही थी। सलीमा का रङ्ग भी मोती के समान था। उसकी देह की गठन निराली थी। सङ्गमरमर के समान पैरों में ज़री के काम के जूते पड़े थे, जिन पर दो हीरे धक्-धक् चमक रहे थे। × × ×"

—'दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी'

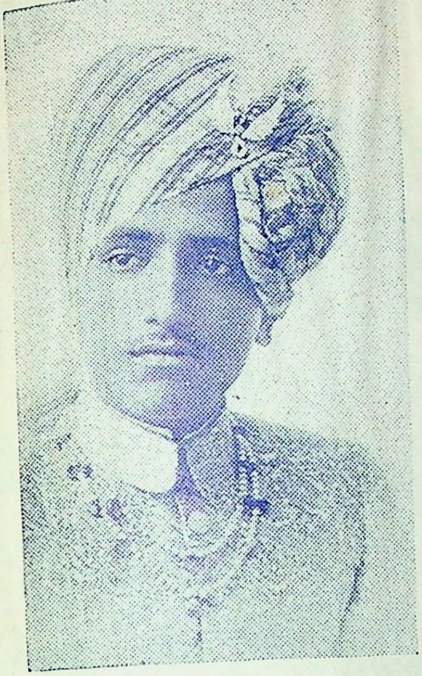
卐 卐 卐

अछूत

[राजकवि पं० अम्बिकाप्रसाद भट्ट, "अम्बिकेश"]

मैले रह, आपके घरों को रखते हैं स्वच्छ,
शीत, बरसात भी न हमें अनुभूत है।
शिशिर की रात जब सोता है जगत सारा,
मार्ग स्वच्छ करना हमारा तब बूत है।
फिर भी न जानें, कैसे घृणित बताते हमें,
छीनते न हम हैं किसी का दूध-पूत है।
मल-मूत्र धोने से ही कहते अछूत हमें,
माता भी कहाती क्यों न किसी की अछूत है।

आपके ललाट में न विधि ने बनाया चन्द्र,
मेरे न विषाण की ही काली करतूत हैं।
हाथ, पाँव, नेत्र आदि सब हैं समान दिए,
अङ्ग भी हमारे दृढ़ और मजबूत हैं।
कार्य में भी आपसे न पीछे रहते हैं कभी,
आपके समान ही हमारे पञ्चभूत हैं।
परमपिता के एक दोनों हम पूत हैं, तो
आप क्यों हैं छूत, और हम क्यों अछूत हैं।



सण्डूर-नरेश श्रीमान राजा साहब घोड़पड़े, जिन्होंने अपने राज्य के सभी देव-मन्दिरों को अछूतों के लिए खोल देने की आज्ञा दी है और ग़रीब अछूतों के लिए एक अन्न-छत्र भी स्थापित किया है।



श्रीमती रानी साहिबा, रियासत औंध—आजकल आप अछूतोद्धार-आन्दोलन में विशेष दिलचस्पी के साथ कार्य कर रही हैं।



सिंहल के अस्पृश्यता-आन्दोलन में भाग लेने वाली कुछ प्रमुख महिलाएँ, जिन्होंने सबसे पहले मन्दिर-सत्याग्रह आरम्भ किया था।

बम्बई की कुछ व्यायामशीला स्त्रियाँ

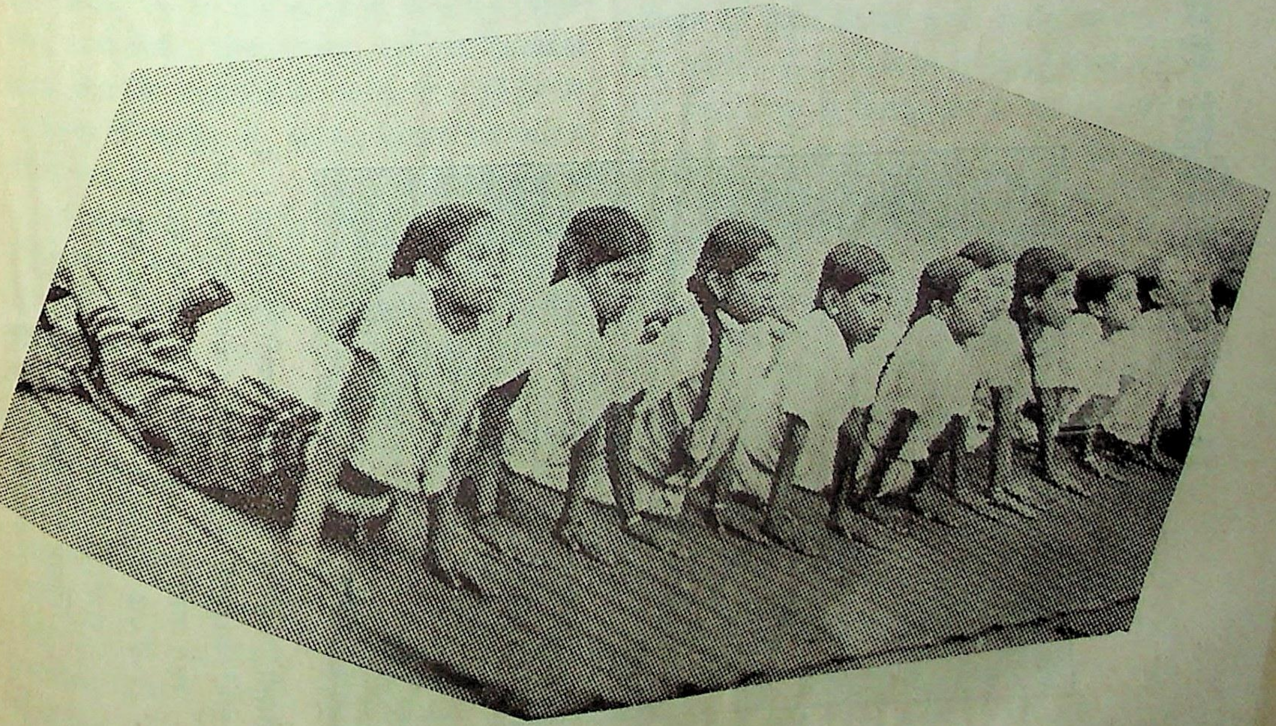


समर्थ व्यायामशाला, दादर, बम्बई में स्त्रियों को लाठी चलाने की शिक्षा देने का एक दृश्य ।

बम्बई की कुछ व्यायामशीला स्त्रियाँ



समर्थ व्यायामशाला, दादर, बम्बई की स्त्रियों के शारीरिक व्यायाम-शिक्षा का एक दृश्य।

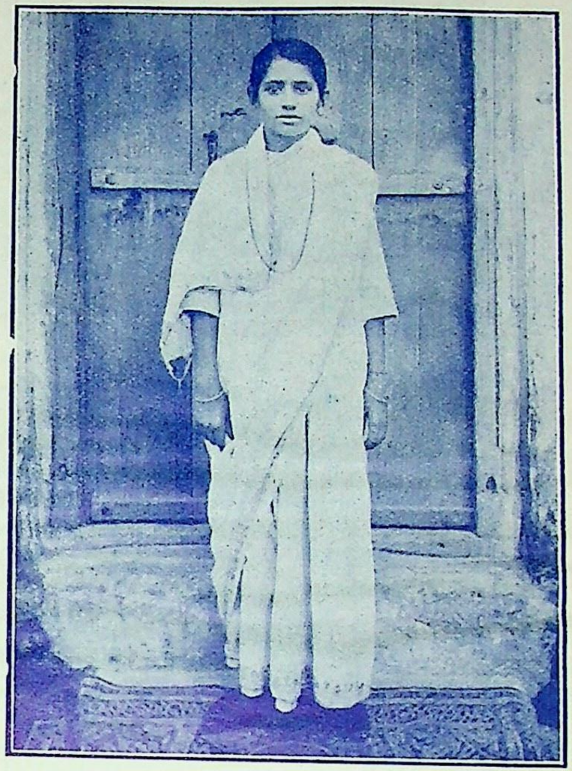


समर्थ व्यायामशाला, दादर, बम्बई की स्त्रियों की व्यायाम-शिक्षा का एक और दृश्य।

भारतीय महिला-समाज महू छावनी (मध्यभारत)



श्रीमती नारायणी देवी और श्रीमती जमनाबाई। ये दोनों महिलाएँ महू छावनी (मध्य भारत) की रहने वाली हैं। महू के किशनपुरा नामक स्थान के एक वृद्ध-विवाह को रोकने के लिए कुछ सुधारकों ने सत्याग्रह आरम्भ किया, जिसमें दोनों देवियों ने प्रमुख और सफल भाग लिया था।



आप मालवा प्रान्त की सर्व-प्रथम मारवाड़ी कन्या हैं, जिन्होंने जालन्धर (पञ्जाब) के कन्या महा-विद्यालय द्वारा पूर्ण शिक्षा प्राप्त करने का विचार किया है। आजकल आप उक्त विद्यालय की पञ्चम श्रेणी में शिक्षा प्राप्त कर रही हैं। विद्याचर्चा और आदर्श जीवन की ओर आपकी बड़ी रुचि है।

धार्मिक नियमों में परिवर्तन

[श्री० यदुनन्दनप्रसाद श्रीवास्तव]

किसी प्रश्न के उपस्थित होने पर सबसे पहिली आवश्यक बात, जिसका हमें निर्णय करना चाहिए, वह यह है कि इससे हमें हानि है अथवा लाभ। किन्तु हमारे देश में एक उल्टी चाल है। हम सबसे पहिले यह देखते हैं कि भगवान मनु के समय में यह प्रश्न उपस्थित था या नहीं? यदि था तो उन्होंने इसका किस प्रकार निर्णय किया? यदि मनुस्मृति में किसी प्रश्न का उल्लेख न हो तो बस ख़ातमा समझिए।

बात-बात में धर्म और शास्त्र डण्डा लिए खड़े रहते हैं। हम मनुस्मृति से एक इञ्च इधर-उधर हुए कि इस धर्मप्राण देश में हाहाकार मच जाता है। खाना-पीना, उठना-बैठना, सोना-जागना, यहाँ तक कि हमारा श्वास लेना भी मनुस्मृति के अधीन है। हमें विचार कर देखना तो चाहिए कि आख़िर हमारा यह व्यापक धर्म है क्या बला?

वास्तव में धर्म के दो हिस्से हैं, एक का ताल्लुक़ है हमारी आत्मा से और दूसरे का ताल्लुक़ है हमारे शरीर से। इन दोनों में से किसी की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। शरीर भी अथवा हमारा भौतिक हिस्सा भी उतने ही महत्व का है, जितना कि आध्यात्मिक हिस्सा—शरीरमाद्यम् खलु धर्म साधनम्। और हिन्दू-धर्म का वास्तविक महत्व भी इसी बात में है कि उसने धर्म के इन दो अङ्गों में अच्छा सामञ्जस्य उत्पन्न कर दिया था। किन्तु इन दोनों का यही सामञ्जस्य, जो किसी समय हमारे लाभ और गर्व की चीज़ थी, आज हमारे गले की फाँसी हो रही है। महाभारत हिन्दू-धर्म का एक अत्यन्त प्रामाणिक ग्रन्थ है, उसमें धर्म की यों व्याख्या की गई है :—

धारणाद्धर्ममित्याहुः धर्मोधारयते प्रजाः।
यत्स्याद्धारणसंयुक्त स धर्म इति निश्चयः॥

धर्म की कल्पना मानव-जाति के व्यक्तिगत एवम् सामूहिक कल्याण के लिए की गई थी तथा उसकी बुनियाद सामयिक आवश्यकताओं को देख कर इस प्रकार डाली गई थी कि जिससे हम सदैव उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होते जायँ।

शासनं त्रायतेति शास्त्रम्।

इसी प्रकार शास्त्र भी इसलिए बने थे कि हम एक शृङ्खला में बँधे रह सकें और हमारी व्यक्तिगत वासनाएँ मर्यादित होकर समाज का कल्याण हो। दोनों का ही ध्येय हमारे कल्याण की साधना कर हमें उन्नति के पथ पर अग्रसर करना था।

इनका उद्देश्य कभी यह न था कि हम उन्नति अथवा परिवर्तन का विरोध कर जड़ अथवा निर्जीव बन जायँ। भाई, परिवर्तन ही तो जीवन का लक्षण है। संसार शब्द 'सृ' धातु से बना है, जिसका अर्थ है सरकना। संसार उसे कहते हैं, जो एक दशा में न रह कर निरन्तर सरकता रहे। संसार निरन्तर परिवर्तनशील है। इसलिए लौकिक व्यवस्थाओं में भी परिवर्तन होना नितान्त आवश्यक है।

कुछ दिनों तक अथवा यों कहें कि जब तक हम धर्म के वास्तविक रहस्य को समझते रहे, हम उन्नति के मार्ग पर बराबर आगे बढ़ते गए, किन्तु किसी की दशा सदैव तो एक सी रहती नहीं। यौवन के बाद जरा, जरा के बाद मृत्यु तथा मृत्यु के बाद पुनर्जन्म, यह नैसर्गिक नियम है। हम भी धर्म के रहस्य को भूल गए। तिलक लगाना, माला ढरकाना आदि बाह्याडम्बर को ही हम धर्म समझने लगे। जब हमें युद्ध करना था तब हमने महामृत्युञ्जय के जप में लीन रहना ही अपना कर्तव्य समझा। परिणाम वही हुआ जो होना था। धर्म का ह्रास हुआ और हमारी अवनति प्रारम्भ हुई।

मृत्यु के बाद प्रसव की पीड़ा का अनुभव हुए बिना पुनर्जन्म कैसे होगा? आज हम इसी प्रसव की पीड़ा का अनुभव कर रहे हैं; किन्तु हमारा पण्डित-समाज इन बातों पर क्यों ध्यान देने लगा। वह तो "धर्म-धर्म" चिल्ला रहा है। अरे बाबा, धर्म है कहाँ? धर्मो-रक्षति रक्षितः।" यदि हमने धर्म की रक्षा की होती तो आज हमें ऐरे-ग़ैरे किसी भी हैटधारी के सबूट चरणों पर मस्तक क्यों झुकाना पड़ता? आप जिसे धर्म कहते हैं वह धर्म कहाँ है? वह तो धर्म का शव मात्र है! धर्म पूजा की नहीं, आचरण की चीज़ है। किन्तु हम पूजा को ही धर्म समझते हैं। एक दर्जन ग़रीबों का रक्त चूस कर, आधी दर्जन सतियों का सतीत्व छीन कर, नाक दबा कर माला जपने वाले को जब से हमने धर्मात्मा की उपाधि दी, उसी दिन से धर्म इस देश को छोड़ कर चला गया।

पहले ही कह चुके हैं कि हम इस समय प्रसव की पीड़ा से गुज़र रहे हैं। मनु महाराज के समय में हम युवावस्था में थे। यह तो एकदम साफ़ बात है कि युवक के लिए जो बात लाभकर होगी, वृद्ध के लिए भी अथवा बालक के लिए भी वह मुफ़ीद हो, यह कोई निश्चित बात नहीं। प्रत्येक अवस्था के खान-पान, रहन-सहन के नियम भिन्न होते हैं। अस्तु, निष्कर्ष यही निकलता है कि मनु महाराज के नियमों में परिवर्तन होना चाहिए। किन्तु इस निष्कर्ष को हमारा पण्डितवर्ग कैसे स्वीकार करे? अगर स्वीकार कर ले तो रोटी की व्यवस्था कौन करेगा? इसलिए उसकी तो यही रट लग रही है कि बस यह शव ही धर्म है। चाहे हम अवनति के गढ़े में गिरते-गिरते रसातल को चले जाएँ, हमारा अस्तित्व नष्ट हो जाय, लेकिन 'मनु' में विन्दु-विसर्ग का भी अन्तर न आवे।

शिवि दधीचि हरिचन्द नरेसू,
सहे धर्महित कोटि कलेसू।

धर्म के लिए अगर अस्तित्व मिट गया तो कौन बड़ी बात हो गई। धर्म खोकर फिर हम अगर रहे भी तो किस काम के? किन्तु पहिली बात तो यह है कि धर्म के नाम पर हल्ला मचाना एक बात है और जान देना बिल्कुल दूसरी बात। अगर धर्म के लिए जान देने की शक्ति हमारे पण्डित-समाज में आ जाय, तब तो फि[र] ये धर्म के रहस्य को भी समझने लगें। दूसरी बात य[ह] कि धर्म है क्या? क्या हमारा पण्डित समुदाय धर्म को पहिचानता है?

हम तो बराबर यही देख रहे हैं कि धर्म के नाम पर जान देना तो अलग, आज हमारा धार्मिक समुदाय धर्म को जीविका का साधन बनाए हुए है और धर्म और शास्त्र का बिल्कुल विपरीत उपयोग कर रहा है। साधारण से साधारण परिवर्तन को यह समुदाय सन्देह की दृष्टि से देखता है और उपयोगी से उपयोगी साम-यिक परिवर्तन में इसे धर्म की हानि दिखाई देती है।

चोरी, व्यभिचार, वेश्यागमन, भ्रूण-हत्या आदि भयङ्कर से भयङ्कर अपराध करने पर भी ब्राह्मण ब्राह्मण ही रहेगा, वह तो पतित हो ही नहीं सकता। और कितनी भी तपस्या करे, किन्तु अछूत अछूत ही रहेगा। सात पुश्त तक बावर्ची का काम करके भी एक निरक्षर भट्टा-चार्य प्रणाम का ही अधिकारी होगा और सात पुश्त तक प्रोफ़ेसरी करने के बाद भी एक धुरन्धर विद्वान अछूत को उस निरक्षर भट्टाचार्य को प्रणाम करना ही होगा। यही है आज का हमारा सनातनधर्म, जिसके निर्णय को नतमस्तक हो स्वीकार करने के लिए हमसे कहा जा रहा है।

मन्दिरों में वेश्याएँ आएँगी, भगतिनें आवेंगी, व्यभिचार होगा, भ्रूण-हत्याएँ होंगी, इससे मन्दिर अप-वित्र न होगा, किन्तु ज्योंही एक अछूत ने मन्दिर में पैर रक्खा कि भगवान वहाँ से खिसके। भगवान को भी इन लोगों ने कितना कमज़ोर बना रक्खा है? लोग कहते हैं कि सार्वजनिक मन्दिरों पर सबका हक़ बराबर है। सार्वजनिक वस्तु वही है, जिस पर सबका समान अधि-कार हो, उसके उपयोग से कोई भी व्यक्ति वञ्चित न रक्खा जाय। बहुत ठीक है। किन्तु सब नियम के अप-वाद होते हैं। भगवान से अधिक सार्वजनिक वस्तु कौन होगी? किन्तु जिन लोगों ने भगवान तक को निजी सम्पत्ति बना डाला, वे भला और किसी वस्तु को सार्वजनिक कब रहने देते हैं?

एक मज़ा और है। आज यदि वह अछूत धर्म-परिवर्तन कर ले, तो उसी क्षण से उसका अछूतपन मिट गया। फिर किसी धर्मधुरीण की यह हिम्मत नहीं है

कि उससे चीं-चपड़ करे अथवा उससे छू जाने में एतराज़ करे। फिर तो वह पवित्र हो गया। अब वह हमें छू सकता है, हमारे जलाशयों का उपयोग कर सकता है और अगर किसी ओहदे पर पहुँच गया, तो मन्दिरों का निरीक्षण भी कर सकता है। छूत उसमें नहीं, उसके पेशे में नहीं, बल्कि उसके हिन्दुत्व में है!

कैसे आश्चर्य की बात है कि मछली, सूअर, वन-मानुष तक में परमात्मा का रूप देखने वाला तथा मिट्टी, पत्थर एवम् लकड़ी की पूजा करने वाला सनातनधर्म भगवान की सर्वश्रेष्ठ प्रतिमा नर-नारायण का इस प्रकार तिरस्कार कर रहा है और अपने इस निन्दनीय कर्म के समर्थन में शास्त्रों की दुहाई दे रहा है। भगवान ने गीता में कहा है :—

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिता।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयका॥

पण्डित-समाज का कहना है कि अछूतों का मन्दिर-प्रवेश शास्त्र के विपरीत है और शास्त्र में सुधार अथवा परिवर्तन हो नहीं सकता। पण्डित-समाज के इस आक्षेप पर विचार करना आवश्यक है।

किन्तु विचार करने पर पता चलेगा कि अछूतों के लिए प्राचीन काल में आज की सी व्यवस्था न थी। महाभारत में व्याधा ब्राह्मणों को कर्मयोग की शिक्षा देता है। रामायण में निषाध को भगवान राम, भरत तथा महर्षि वशिष्ठ गले लगाते हैं। इन दो उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि उस काल में आज की सी बाधाएँ प्रचलित न थीं। न केवल इतना ही, वरन् उस काल में अन्तर्जातीय भोज एवम् विवाह की प्रथा भी प्रचलित थी।

अब यह भी देख लेना चाहिए की शास्त्र अथवा स्मृति में परिवर्तन हो सकते हैं अथवा नहीं। सबसे पहली विचारणीय बात तो यही है कि स्मृतियाँ अनेक हैं। इसका क्या कारण? या तो ये स्मृतियाँ विभिन्न प्रान्तों में प्रचलित थीं या फिर एक के बाद दूसरी बनती गईं। दोनों अवस्थाओं से सिद्ध यही होता है कि इन स्मृतियों को परिस्थिति अथवा समय के अनुसार परिवर्तन स्वीकार है।

इन स्मृतियों में नियम के अपवाद दिए गए हैं। जहाँ सच बोलने की आज्ञा दी गई है, वहीं यह भी बता दिया गया है कि सब स्थान पर सच ही न बोलना चाहिए। जहाँ अहिंसा की तारीफ़ की गई है, वहीं यह भी कह दिया गया है कि सदैव अहिंसा ही श्रेयस्कर नहीं है। इसका तात्पर्य यही है कि हमें परिस्थिति देख कर शास्त्र के नियमों का उपयोग करना चाहिए। मूर्ख की तरह शास्त्र के अक्षरों को लिए बैठे न रहना चाहिए।

न केवल यही, बल्कि इन धर्म-ग्रन्थों में आपद्धर्म भी बताया गया है। महर्षि विश्वामित्र ने इसी व्यवस्था के अनुसार एक चाण्डाल के यहाँ से चुरा कर कुत्ते का मांस खाया था। इसका तात्पर्य तो यही है कि यदि आवश्यकता आ पड़े तो अपने कल्याण के लिए हम शास्त्र की मर्यादा का उल्लङ्घन कर सकते हैं।

अब सवाल यह आ खड़ा होता है कि इस समय शास्त्रों में परिवर्तन की आवश्यकता है अथवा नहीं।

हमारे शास्त्रों में ब्राह्मणों के कर्तव्य इस प्रकार दिए गए हैं :—

शमोदमस्तपः शौचं क्षांतिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्मस्वभावजम्॥
—गीता १८।४२

किन्तु इस परिभाषा के अनुसार तो आज ब्राह्मण नहीं मिलते। क्षत्रिय और वैश्य भी नहीं मिलते। स्पष्ट है कि इस सम्बन्ध में जो मर्यादा स्थापित की गई थी वह बिगड़ गई है। जब अन्य वर्ण इस मर्यादा का पालन नहीं कर रहे हैं, तो फिर अछूतों के ऊपर ही यह क्यों लादी जाय?

जब यह बात तय हो गई कि हमारी प्राचीन मर्यादा अब क़ायम नहीं रही, तब आगे का कार्य यही है कि नवीन मर्यादा क़ायम की जाय। किन्तु प्रत्येक ऐरे-ग़ैरे व्यक्ति को जब उसकी तबीयत में आ जाय, शास्त्र की मर्यादा के उल्लङ्घन का अधिकार नहीं दिया जा सकता। ऐसी अवस्था उपस्थित होने पर धर्म की नवीन मर्यादा क़ायम करने अथवा निर्णय देने का अधिकार सर्व-साधारण अथवा बहुमत को नहीं, बल्कि ख़ास व्यक्तियों को है। ऐसे समय के लिए ही यक्ष के प्रश्न का उत्तर देते हुए युधिष्ठिर कहते हैं :—

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयोविभिन्नाः।
नैकोऋषिर्यस्यवचः प्रमाणम्।

धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायां
महाजनो येन गतः सपंथा ॥

केवल महाजनों को इस निर्णय का अधिकार है। किन्तु इन महाजनों को पहिचानना कैसे ? इसके लिए गीता में कहा है :—

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥

—गीता २-५५

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतराग भयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥

—गीता २-५६

जिनकी बुद्धि नित्य आत्मा के स्वरूप को जान लेने के कारण निरासक्त एवम् वासनारहित हो गई है, तथा इसके कारण जिनकी बुद्धि से अन्याय अथवा चूक होने की सम्भावना कम है, वे ही यह निर्णय देंगे कि ऐसे समय में हमारा क्या कर्तव्य है ?

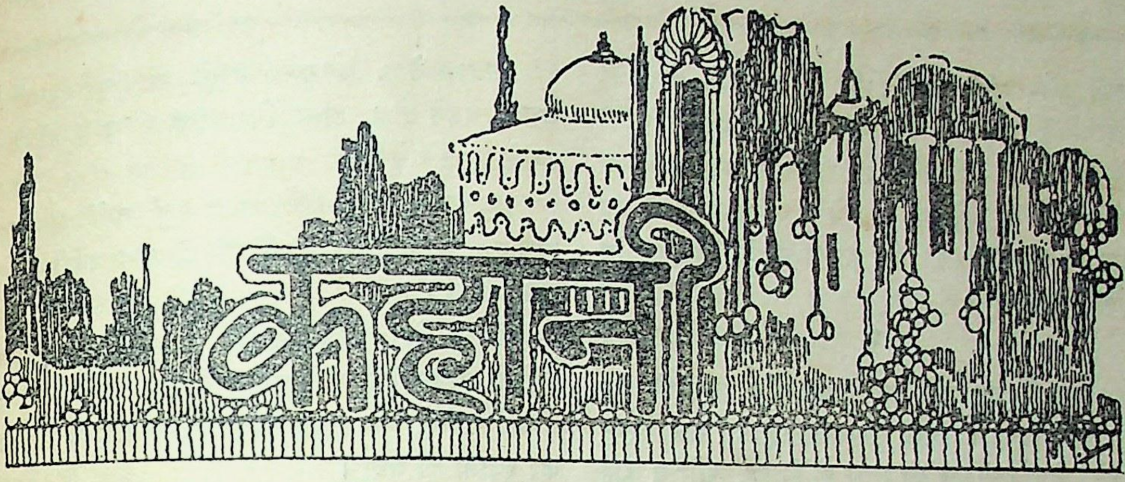
इस बात से कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता कि इस समय यदि कोई स्थितप्रज्ञ की परिभाषा के माप पर उतर सकता है, तो वे हैं जगद्वन्द्य महात्मा गाँधी, मालवीय जी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, बाबू भगवानदास तथा इसी श्रेणी के हमारे अन्यान्य नेतागण। ये ही हमारे समय के मनु हैं तथा ये ही हैं कपिल, वशिष्ठ एवम् बादरायणाचार्य। शास्त्रियों की अपेक्षा इनका निर्णय कहीं अधिक निस्पृह एवम् कल्याणकारी होगा।

यहाँ पर संसार के इतिहास में सदैव से जो बात होती चली आई है, उसे याद कर लेना चाहिए। प्रत्येक देश का एक उन्नति-काल होता है। अपने देश के उस उत्कर्ष के समय एक ख़ास समुदाय अन्य लोगों की अपेक्षा उन्नति के मार्ग पर आगे बढ़ जाता है, अन्य लोगों की अपेक्षा उसमें गुणों की अधिकता हो जाती है। अधिकार का निवास सदैव गुणों में होता है। फलतः उस समाज के अधिकार बढ़ने लगते हैं। अधिकार के बढ़ने पर उस समाज में मद प्रवेश करता है और तम की उसमें वृद्धि होने लगती है ; प्रतिक्रिया प्रारम्भ होती है और गुणों की कमी होने लगती है। पर प्राप्त अधिकार को सीधे छोड़ देना यह मानव-स्वभाव के विपरीत है। अब वह समाज छल-कौशल के सहारे अपने अधिकार को स्थिर रखने का प्रयत्न करता है। जब इससे भी काम नहीं चलता, तो अन्त में वह पशु-बल से काम लेता है। किन्तु इस प्रकार तो काम अधिक दिनों तक चल नहीं सकता—अधिकार तो सदैव पात्र के हाथों में रहता है।

जब बल का उपयोग प्रारम्भ होता है अथवा जब दलितों की दशा बहुत ख़राब हो जाती है, तब वहाँ भी प्रतिक्रिया प्रारम्भ होती है। वे लोग अपने अधिकारों को समझने लगते हैं और उसके लिए माँग पेश करते हैं। माँग के उत्तर में उन्हें मिलती हैं ठोकरें। ठोकरें खाकर दलित समाज चेतता है और शक्ति सञ्चय कर अन्त में अयोग्य हाथों से अपने अधिकार छीन लेता है।

हमारे देश की भी इस समय यही दशा है। इस समय तर्क से काम चलते नहीं दीखता। और केवल तर्क के बल पर आज तक अधिकार किसी को मिले भी तो नहीं हैं। इस समय तो आवश्यकता इस बात की है कि अछूत लोग अपनी मलिनता का त्याग कर अपने को योग्य बनावें।

अछूतों के हितैषियों एवम् इस दृष्टि से कार्य करने वाली संस्थाओं का भी इस समय यही कर्तव्य है कि वे प्रदर्शन के साथ-साथ ठोस काम में भी हाथ लगावें और अछूतों में शिक्षा का प्रचार कर उन्हें इस योग्य कर दें कि हम अधिक दिनों तक उनका तिरस्कार न कर सकें।



हिन्दू पति की दुर्बलता

[श्रीमती सुन्दरकुमारी जी]



"बेटी शान्ति, तू रो मत ; अपने को सँभाल । जिन्होंने तेरे उज्ज्वल चरित्र पर मिथ्या कलङ्क का धब्बा लगाना चाहा है, ईश्वर उनकी इस नीचता का स्वयं बदला लेगा । हम जानते हैं, सारा मुहल्ला जानता है, कि तू निष्कलङ्क है । फिर उन पशुओं की नीचता पर तू इतना अधिक दुःख और सन्ताप क्यों करती है ? जा, इन बातों को भूल जा । हमने समझ लिया कि तेरा ब्याह ही नहीं किया था ।"

एक छोटे से मकान के आँगन में एक स्त्री एक युवती को हृदय से लगाए उसे समझा रही थी और युवती की आँखों से मोतियों की लड़ी की भाँति आँसू की बूँदें झर रही थीं ।

शान्ति एक कुलीन ब्राह्मण की कन्या थी । इसके पिता पं० भगवानदीन एक सीधे-सादे ब्राह्मण थे । शान्ति का घर देहात में था और उसीके अनुसार उसने थोड़ी सी शिक्षा भी पाई थी । वह सीना-पिरोना, कशीदा काढ़ना तथा रसोई बनाने में निपुण थी । रामायण और महाभारत पढ़ कर अपनी माता को सुनाती थी । कहीं से कोई पत्र आता तो उसका उत्तर भी लिख सकती थी । यह पं० भगवानदीन की एकलौती कन्या थी, पिता ने अपने हृदय के सारे स्नेह से सींच कर उसे पाला था । उनकी इच्छा उसे किसी योग्य पात्र को सौंपने की थी । परन्तु धनाभाव के कारण लाख प्रयत्न करने पर भी वे शान्ति का ब्याह जैसे घर में करना चाहते थे, न कर सके । जिनके लड़के पढ़े-लिखे थे, जो खाने-पीने के लिए कुछ सम्पन्न थे, वे दस हज़ार से नीचे की बात ही नहीं करते थे । इधर भगवानदीन अपना सर्वस्व स्वाहा करके भी दो हज़ार से अधिक न दे सकते थे । इसलिए उन्हें अपनी शान्ति का ब्याह एक साधारण घर में साधारण ही वर से करके सन्तोष कर लेना पड़ा ।

ससुराल आकर शान्ति ने घर का सारा काम अपने ऊपर उठा लिया । अपनी शक्ति भर उसने सास-ससुर तथा अन्य परिवार वालों को प्रसन्न रखने का प्रयत्न किया । यद्यपि उसने अपने पिता के घर विशेष परिश्रम का काम नहीं किया था, तथापि उसके ससुराल वाले उसके कार्यों से प्रसन्न थे । अपनी कार्य-कुशलता, प्रेम और सेवा के कारण उसने अपने पति का भी पूर्ण प्रेम प्राप्त कर लिया । किन्तु अपने कुटिल स्वभाव के कारण सास फिर भी उसे भला-बुरा सुनाए बिना न मानती थी । इस कारण शान्ति कभी-कभी दुखी हो जाती थी ।

इस प्रकार प्रायः छः-सात मास व्यतीत हो गए । होली से पहले शान्ति का भाई आया और उसके साथ शान्ति फिर पिता के घर आई । माता ने बेटी को देखा तो उसकी दशा पर फूट कर रो पड़ी । शान्ति दुबली,

काली और दुखी सी हो रही थी। उसके चेहरे की स्वाभाविक प्रफुल्लता, जो पिता के घर रहने पर रहती थी, विलीन हो गई थी। दिन-रात काम करने के कारण उसके हाथों में घट्टे पड़ गए थे। परन्तु माता को यह जान कर सन्तोष हुआ कि शान्ति अपने पति का प्रेम पाकर सन्तुष्ट थी।

२

पिता के घर रहते शान्ति को पाँच मास हो गए थे। इतने दिनों में उसने ससुराल कई पत्र भेजे, परन्तु न तो उसे किसी पत्र का उत्तर ही मिला, और न कोई आया ही। यद्यपि उसे इस बात से चिन्ता होती थी, परन्तु यह सोच कर सन्तोष कर लेती थी कि कदाचित् वे लोग पुराने विचार के हैं, इसी कारण पत्र नहीं लिखते। इसी सङ्कोच के कारण मेरे पति भी पत्र नहीं लिख सकते होंगे। कभी-कभी उसकी सखियाँ उसे इसी कारण ताना दे देतीं! तब वह ससुराल वालों की प्रसंशा और पति-प्रेम का गर्व दिखा कर उन्हें लज्जित कर देती; परन्तु चित्त में अत्यन्त दुखी होती। शान्ति अब फिर पूर्ववत् हृष्टपुष्ट तथा स्वस्थ थी।

वास्तव में शान्ति का अनुमान ग़लत न था, क्योंकि उसका पति यदुनाथ शान्ति को पत्र लिखने के लिए, उसे बुलाने के लिए और स्वयं ससुराल जाने के लिए उत्सुक रह कर भी अपने समाज में प्रचलित शिष्टता और सङ्कोच के कारण मुँह से कुछ कह न सकता था। जब पाँच मास तक उसके घर वालों ने शान्ति का नाम तक न लिया, तो उसके धैर्य का बाँध टूट गया और वह स्वयं ससुराल जाकर शान्ति से मिलने के लिए बहाने ढूँढ़ने लगा।

सावन का महीना था। बनारस की कजली की धूम मची थी। बहुत से देहाती कजली सुनने और बाबा विश्वनाथ को जल चढ़ाने बनारस जा रहे थे। यदुनाथ को अच्छा मौक़ा हाथ लगा। उसने माता के पास जाकर कहा—माँ, मैं बनारस की कजली सुनने जाऊँगा।

माता—बेटा, किसके साथ जायगा? जाना तो मैं भी चाहती थी, परन्तु तेरे दादा कहते हैं कि ख़र्च नहीं है। अगले साल देखा जायगा।

यदुनाथ—नहीं माँ, मैं तो अवश्य जाऊँगा। तू दादा से कह कर मुझे ख़र्च दिला दे। मेरी बड़ी ही अभिलाषा है, कजली सुनने की।

माता—बेटा, आजकल उनके पास रुपए नहीं हैं, अबकी रहने दो। बाबा विश्वनाथ की कृपा होगी तो अगले साल चलेंगे।

यदुनाथ—अगले-अगले साल कुछ नहीं, अगर मुझे ख़र्च नहीं दिला दोगी, तो मैं ऐसे ही चला जाऊँगा, फिर चाहे जो हो।

बेटे की ज़िद को माँ ने रख लिया और कुछ रुपए कहीं से लाकर दे दिए। यदुनाथ ने ससुराल के लिए कुछ मिठाई ख़रीदी और कुछ रुपए रेल-किराए के लिए रख कर रवाना हो गया।

३

जब यदुनाथ ससुराल पहुँचा तो शान्ति तथा उसके माता-पिता के प्रसन्नता की कोई सीमा न रही। यदुनाथ भी बड़ा प्रसन्न था। परन्तु वह घर वालों से छिप कर आया था। कहीं ऐसा न हो कि कोई देख ले, इसलिए वह बहुधा अन्दर ही रहता था। उसके सास-ससुर समझते थे कि शान्ति का प्रेम ही इसे बाँधे हुए रहता है। इससे उन्होंने और भी प्रसन्नता प्राप्त की। इस प्रकार यदुनाथ ससुर के घर नौ दिन रह कर दसवें दिन बड़ा ही प्रेम दर्शाते हुए बिदा हो गया। शान्ति के माता-पिता जामाता की सुशीलता तथा प्रेमभाव देख कर कृतार्थ हो गए। अपने तथा शान्ति के भाग्य की सराहना करते हुए उन्होंने ईश्वर को धन्यवाद दिया। कन्या को अच्छे घर में न ब्याह सकने का अनुताप भी पण्डित भगवानदीन के हृदय से जाता रहा।

सौभाग्य से या दुर्भाग्य से शान्ति के कुछ दिनों में ही गर्भ के स्पष्ट लक्षण दिखाई देने लगे। माता ने गङ्गा नहा कर इष्टदेवता पर फूल-अक्षत चढ़ाया। नाती खेलाने की आशा ने उसे विकल कर दिया। भगवान ने बड़ी भारी मनोकामना पूरी की।

पण्डित भगवानदीन और उनकी स्त्री की आन्तरिक अभिलाषा थी कि प्रसव-काल तक लड़की यहीं रहे और आनन्द-समारोह यहीं हो। इसीलिए साल भर के बाद जब शान्ति के ससुर ने बहू को बिदा कर देने के लिए पत्र भेजा तो पण्डित भगवानदीन ने कुछ दिन और रहने देने की प्रार्थना के साथ पत्र लौटा दिया। परन्तु दूसरी बार जब बिदाई का पैग़ाम लेकर नाई आ धमका तो अगत्या उन्होंने शान्ति को बिदा करने का एक दिन

नियत कर दिया और स्त्री को यह कह कर समझा दिया कि आख़िर, उन लोगों का हौसला भी तो पूरा होना चाहिए। बड़े भाग्य से भगवान ने यह दिन दिखाया है, तो वे भी क्यों इस आनन्द से वञ्चित रहें।

यथासमय शान्ति के ससुर बहू को बिदा कराने आए। भगवानदीन ने बड़े आदर से समधी का स्वागत किया। ख़ातिर-तवाज़ा और दान-दक्षिणा आदि किसी बात में भी कोई कमी नहीं रही। तीसरे दिन शान्ति के ससुर पण्डित जीवानन्द जी ख़ुशी-ख़ुशी बहू को बिदा करा कर ले चले।

जब कहारों ने पालकी उठाई और चलने लगे, तो भगवानदीन से न रहा गया। उन्होंने कहारों से कहा कि धीरे-धीरे ले जाना, जिसमें सवारी हिले नहीं। साथ ही शान्ति के ससुर को भी समझा दिया कि कृपा करके कहारों पर पूर्ण ध्यान रखिएगा। सात मास पूरे हो चुके हैं। यदि धक्का लगा तो अनर्थ हो जाने का भय है। यह सुन कर पण्डित जीवानन्द चौंक पड़े और आश्चर्य से पूछा—सात मास किस बात को पूरे हो चुके हैं?

भगवानदीन ने धीरे से, उनके कानों के पास मुँह ले जाकर कहा—सात मास शान्ति के गर्भ के पूरे हो चुके हैं। इसी से × × ×!

जीवानन्द ने चौंकते हुए कहा—गर्भ! गर्भ कैसा?

भगवानदीन ने अधिक स्पष्ट भाव से समझाया। शान्ति के बचा होने वाला है, क्या आपको मालूम नहीं?

जीवानन्द—बच्चा! आपकी पहेली मेरी समझ में नहीं आती?

भगवानदीन—क्या आपको मालूम ही नहीं?

जीवानन्द—आपकी लड़की दुश्चरित्रा है, उसके गर्भ रह गया है, तो मैं इस बात को किस प्रकार जान जाता? क्या मैं अन्तर्यामी हूँ?

भगवानदीन—महाशय, आप कैसी बात करते हैं? क्या यदुनाथ यहाँ आए थे, यह आपको मालूम नहीं?

जीवानन्द—झूठ! बिलकुल झूठ! मैं स्वप्न में भी विश्वास नहीं कर सकता कि यदुनाथ यहाँ आया होगा। नाई को कहा—कहारों को रोको। हम ऐसी कलङ्किनी को ले जाकर अपने कुल में दाग़ नहीं लगाएँगे। वाह पण्डित जी, आपने तो ख़ूब धोखा दिया!

बेचारे भगवानदीन हक्के-बक्के से रह गए। कुछ देर समधी के मुँह की ओर देख कर उन्होंने कहा—देखिए साहब, ज़रा अपनी ज़बान को सँभालिए। व्यर्थ में किसी को दोष देना बुद्धिमानी नहीं है। यदि आपके लड़के ने आपको नहीं बतलाया कि मैं गया था, तो इसमें मेरा या मेरी लड़की का कोई अपराध नहीं है। आप मुहल्ले वालों से पूछ लें कि वे आए थे या नहीं।

जीवानन्द ने तमतमा कर कहा—क्या कहते हो, मेरे लड़के ने नहीं बतलाया? मेरा लड़का क्या तुम लोगों सा झूठा और बदमाश है। वह तो इतना लज्जाशील है कि ससुराल के गाँव तक का नाम हमारे सामने कभी नहीं लेता। वह कभी भूल कर भी यहाँ पैर नहीं रख सकता। वह घर छोड़ कर कभी कहीं गया भी नहीं। तुम झूठे हो और तुम्हारी लड़की कलङ्किनी है और अपना पाप मेरे सिर मढ़ना चाहते हो।

भगवानदीन ने धैर्य को हाथ से न जाने देकर कहा—अच्छा, आप बड़े बुद्धिमान हैं। परन्तु पहले आप अपने उस लज्जाशील पुत्र से तो पूछिए कि गत सावन में यहाँ आया था कि नहीं, तब फिर कोई कच्ची बात मुँह से निकालिए। व्यर्थ मुँह से अपशब्द निकालना और किसी को अपमानित करना कहाँ की बुद्धिमत्ता है।

पालकी लौटाल ली गई और अभागिनी शान्ति उतार दी गई। जब गाँव वालों की भी जीवानन्द ने एक भी न मानी, तो बहुत वादविवाद के बाद निश्चय हुआ कि यदुनाथ बुलाया जाय और वह कह दे कि मैं आया था, तब तो शान्ति सच्चरित्रा और नहीं तो चरित्रहीना है।

४

तीन दिन बाद एक बहुत बड़े दालान में खचाखच मनुष्य भरे थे। कोई भगवानदीन की खिल्ली उड़ा रहा था और कोई शान्ति को बुरा-भला कह रहा था। कोई अपना ही बड़प्पन हाँक रहा था। कोई कहता था, नहीं भई, शान्ति बेचारी बड़ी ही सीधी और भली लड़की है। उसको नाहक़ कलङ्क लगा रहे हैं। मैंने अपनी आँखों देखा था कि लड़का आया था। कोई कहता, क्या पता कि क्या सच है और क्या झूठ। कोई कहता था कि सावन में तो मैंने यदुनाथ को यहाँ देखा था। वह

अवश्य आया था। यह तो हमारी देखी बात है। इसी प्रकार ढाई चावल की खिचड़ी सभी पका रहे थे। इसी समय एक नवयुवक, जिसके चेहरे पर सङ्कोच और भय का राज्य था, उसकी आँखें लज्जा से झुकी तथा शरीर विषाद की प्रतिमा सा प्रतीत होता था, आया और काँपता हुआ बीच में खड़ा हो गया। सारे दालान के मनुष्यों की दृष्टि उसके मुख पर जा पड़ी। चारों ओर सन्नाटा छा गया। सभी उसके मुख से निकले हुए शब्द को सुनने को उत्सुक थे। शान्ति के माता-पिता को दृढ़ विश्वास था कि यदुनाथ सत्य बोलेगा। अतएव गर्व से उनका मस्तक ऊँचा हो रहा था। शान्ति भी एक अपूर्व आशाभरी आँखों से पति की ओर खिड़की पर बैठी देख रही थी कि अब केवल एक शब्द में ही सत्य द्वारा मेरे पति मेरे कलङ्क को धो देंगे। सबकी दृष्टि यदुनाथ पर और यदुनाथ की नीची दृष्टि पृथ्वी पर गड़ी थी। जब देर तक यदुनाथ कुछ बोल न सका तो जीवानन्द तड़प उठे और बोले—देखो यदुनाथ, देर हो रही है। यदि स्त्री दुश्चरित्रा हो गई, तो उसमें तुम्हारे लज्जित होने की कोई बात नहीं है। तुम्हें जो कुछ कहना है, लज्जा और सङ्कोच छोड़ कर फ़ौरन कह डालो।

यह कह कर पण्डित जीवानन्द चुप हो गए। सभा में फिर सन्नाटा छा गया और सैकड़ों समुत्सुक नेत्र यदुनाथ के पीले मुख पर जा पड़े और सैकड़ों कान उसके मुख से निकले हुए एक 'हाँ' या 'नहीं' की प्रतीक्षा करने लगे।

यदुनाथ ने मानों बड़े कष्ट से अपना सिर ऊपर को उठाया और एक बार अपने पिता की ओर देख कर अत्यन्त धीमी और लड़खड़ाती आवाज़ में बोला—'नहीं!'

उसके मुँह से निकले हुए इस मनहूस शब्द ने सभा में खलबली मचा दी। सैकड़ों मुखों से एक धिक्कार भरी चीख़ निकल पड़ी। लोग खलबला उठे और बेचारी शान्ति मूर्छित होकर अपनी माता की गोद में गिर पड़ी और पण्डित भगवानदीन की आँखों से एक प्रलयङ्करी ज्वाला निकल पड़ी!

निर्झर से—

[श्रीमती कमलादेवी राय]

जीवन के सुख-दुख की गीतें
मन्द मधुर स्वर में गाते,
किस अज्ञात देश से चल कर
किस प्रदेश को हो जाते?

किस दुखिया के कोमल आँसू
किसका मधुर हृदय-सन्ताप,
अन्तस्तल में लिए, छिपाए
कहाँ चले जाते चुपचाप?

निर्निमेष नेत्रों को लेकर
मूक वेदना का सन्देश,
गिरि-गह्वर को अतिक्रम करते
जाते हो किस दूर प्रदेश?

किसने तुम पर अनजाने में
आकर्षण-धागा डाला,
जिसे ढूँढ़ने को निकले हो
लेकर के आँसू-माला।

तनिक ठहर कर निर्झर मेरे
अश्रुकणों को ले लेना,
जिनको फिर 'उनके' चरणों में
मिलने पर बिखरा देना।

सौ वर्ष पूर्व दिल्ली के लाल क़िले में

[श्री० बनारसीदास, बी० ए०]

सौ वर्ष पूर्व और आज ! यदि अभागे लाल क़िले को कोई बोलने की शक्ति दे सके तो वह अपनी करुण-कहानी, काल-चक्र के भीषण प्रकोप, अपनी सूनी गोद की दुखद व्यथा को रो-रोकर सुनावे। जो लाल क़िला महाप्रतापी मुग़ल सम्राटों का लाड़ला घर था ; जहाँ उनका यश-वैभव केन्द्रीभूत था, वह आज उदासी की चादर ओढ़ कर सूनी साँसें भर रहा है और उस दिन की प्रतीक्षा कर रहा है, जबकि अपने स्वामियों की तरह वह भी मिट्टी में मिल जायगा और उसकी जगह ख़ाक उड़ने लगेगी। फिर ये सपने किसे याद रहेंगे !

महान मुग़ल-वंश ने जिस लाल क़िले से अपने वैभव का विश्व में विस्तार किया, जहाँ आमोद-प्रमोद, भोग-विलास के स्वर्गोपम साधन एकत्रित किए, उसी लाल क़िले को वे अपना मृत्यु-स्मारक बना कर छोड़ गए। यदि तुम दिल्ली जाओ तो दो आने का टिकिट लेकर आज उस स्मारक की सैर कर आओ। वहाँ के इन्द्र-भवनों को देख कर अपनी आँखों को सुखी करो, उज्ज्वल सङ्गमरमर के भवनों में बैठ कर शीतल समीर का आनन्द लो, थोड़ी देर विश्राम करो और उनकी मनमोहनी कला पर घण्टों आश्चर्य करो। किन्तु उन भवनों को देख कर क्या यह विचार भी आएगा कि किसी दिन यहाँ स्वर्ग के विलास भी तुच्छ समझे जाते थे। ये सूने भवन किसी दिन अप्सरा-तुल्य शहज़ादियों के श्रुति-मधुर शब्दों से गूँजते रहते थे। 'क़िले में क्या है' इस पर कवि अपनी सारी कल्पना-शक्ति समाप्त करके भी न पहुँच सकते थे। मनुष्य तो क्या, 'फ़रिश्तों का भी वहाँ गुज़र न था'। और आज ! अब तुम जाकर सङ्गमरमर के उस तख़्त पर बेखटके बैठ जाओ, जहाँ 'तख़्त ताऊस' बिछता था। 'दीवाने-ख़ास' में जाकर 'शहन्शाह आलम' के तख़्त पर आसन जमा दो, कोई कुछ न कहेगा।

सौ वर्ष पूर्व ऐसा नहीं हो सकता था। तुम यदि कोई बड़े महाराजा भी होते, तो भाग्य से ही इन तख़्तों के पाए छूने को मिलते। सौ वर्ष पूर्व के इसी लाल क़िले की हम तुम्हें सैर कराएँगे। किन्तु इससे पूर्व इस अभागे की जन्म-कथा जान लो।

१०४८ हिज्री में लाल क़िले की नींव उस्ताद हामिद और अहमद ने डाली। उस दिन दिल्ली में बड़ा उत्सव रहा। नौ-मुहर्रम का रोज़ था। उस्ताद हामिद और अहमद समय से कुछ पहले ही वहाँ पहुँच गए थे। बड़े-बड़े अमीर-उमराव और हाकिम भी आए थे। दर्शकों की अपार भीड़ थी। ठीक बारह बज कर पाँच मिनिट पर क़िले की नींव रक्खी गई। बादशाह क़िले को जल्दी बनवाना चाहते थे, अतः सारे राज्य से शिल्प-कार बुलवाए गए। सबसे पहले प्रबन्ध इज़्ज़त ख़ाँ के सुपुर्द हुआ। उन्होंने पाँच महीने में नींव खुदवा कर, पत्थर, चूना, मसाले इत्यादि एकत्रित किए। इसके बाद दो वर्ष एक महीना ग्यारह दिन तक सूबेदार अलीवर्दी ख़ाँ के तत्त्वावधान में क़िला बनता रहा। इसके उप-रान्त मुकर्रमत ख़ाँ के प्रबन्ध में आया। जब क़िला बन कर तैयार हुआ, तो शाहजहाँ काबुल में था। उसने २४वीं रबी-उल-अव्वल १०५८ हिज्री को क़िले में पदा-र्पण किया। राजधानी ने अपने प्यारे सम्राट का उस दिन बड़े धूमधाम से स्वागत किया। जब बादशाह क़िले में घुसा तो जयजयकार से सारा आकाश गूँज उठा। तोपों की धायँ-धायँ ध्वनि से सारी पृथ्वी हिल उठी। बादशाह ने निर्धनों और बच्चों को बहुत सा धन, वस्त्र और मिठाई आदि बँटवाई।

कहते हैं, पचास लाख क़िले की इमारत में और पचास लाख शाही महलों की तैयारी में व्यय हुए। क़िले में चार सिंहद्वार तथा कई खिड़कियाँ और बाईस बुर्ज हैं। क़िला एक हज़ार गज़ लम्बा, छः सौ गज़ चौड़ा, पच्चीस गज़ ऊँचा तथा ग्यारह गज़ नीचे है। वह अण्डा-कार है। क़िले का वर्ग छः लाख वर्गगज़ और खाई २५×१० गज़ है।

दक्षिणी दरवाज़ा, जिसे देहली दरवाज़ा भी कहते हैं, उस पर की दीहली औरङ्गज़ेब ने तुड़वा कर उसके सामने एक और चौक बनवाया तथा आगे खाई पर एक दूसरा दरवाज़ा बनवाया, जिसे 'घूघस' कहते हैं। इससे बड़े दरवाज़े की ओट हो गई। शाहजहाँ उन दिनों औरङ्गज़ेब का बन्दी था। जब उसे मालूम हुआ तो उसने औरङ्गज़ेब को लिखा—

"ऐ बेटे, तूने क़िले की दुलहिन बनाया, जिसका घूँघट निकाला।"

लाहौरी दरवाज़े पर भी ऐसा ही हुआ। लाहौरी दरवाज़े के आगे नक्कारख़ाना है, बीच में चौक और फिर 'दीवाने-आम'।

दीवाने-आम सत्ताईस दर का एक विशाल भवन है। इसके पार्श्व में तीन-तीन दर और हैं, इस तरह कुल छः दर यह हुए। इसका विस्तार ६७×२४ गज़ का है। यह लाल पत्थर का बना हुआ है; परन्तु क़लई करके उस पर सुन्दर सुनहरा काम किया है और उसे सङ्गमरमर का सा बना दिया गया है। दीवाने-आम के बाहरी दरों पर सङ्गमरमर का कठहरा लगा हुआ था और उस पर सुनहरे कलश थे। परन्तु अब वे कलश नहीं हैं। कठहरा भी टूटा-फूटा थोड़ा बच रहा है।

दीवाने-आम के पास एक दूसरा पत्थर का कठहरा और था, जो अब नहीं है। उसके पास एक बड़ा चौक है, जिसके दक्षिण में एक द्वार है, जो महलों को जाता है। उत्तर का द्वार बाग़ों को जाता है तथा पश्चिमी द्वार की ओर नक्कारख़ाना है।

इम्तियाज़ महल

यह दीवाने-आम के पीछे बना है और सबसे बड़ा महल है। इसके विशाल चौक में सुन्दर नहरें थीं और फ़व्वारे छूटते थे। एक सुन्दर बाग़ था, जहाँ अब एक पौधा भी नहीं है। इस चौक में अब कई सड़ियल मकान बन गए हैं। पहिले इसी चौक में एक हौज़ था, जिसमें पाँच फ़व्वारे तथा इधर-उधर नहरें थीं। उस हौज़ के चारों ओर दो हज़ार सुनहरी कलशियाँ थीं। इस चौक के तीन ओर सुन्दर घर बने हुए थे। इम्तियाज़ महल के आगे कुर्सी देकर एक चबूतरा बना है और उसके नीचे दो गुप्त भवन हैं। इसके ऊपर विशाल दालान है, जो सत्तावन गज़ लम्बा और छब्बीस गज़ चौड़ा है। बीच के दर के आगे चौक की ओर एक सङ्गमरमर का हौज़ है, जिसमें से पानी निकल कर बाग़ की हर रौस पर बहता था। इस महल के कला-कौशल का वर्णन शक्ति से बाहर है। इस महल में अपूर्व सौन्दर्य है। महल में एक हौज़ है, जो विकसित कमल के समान सुन्दर है। महल महराबदार अत्यन्त रमणीक है। इसमें होकर एक नहर दीवाने-ख़ास की ओर जाती है तथा दो नहरें पूर्व और पश्चिम की ओर। महल के चारों ओर ख़स की टट्टियाँ लगाने का प्रबन्ध था। अब वे ख़स की टट्टियों में रहने वाली ही न रहीं तो महल भी सूना पड़ा है। नहरें सूखी पड़ी रहती हैं। हौज़ में सूखे पत्ते उड़-उड़ कर इकट्ठे हो जाते हैं। इस महल की छत पहले सोने की थी, जो फ़र्रुख़सियर के समय में तोड़ दी गई और उसकी जगह ताँबे की छत चढ़ा दी गई। परन्तु अन्त में लुटेरों ने उसे भी न छोड़ा और एक लकड़ी की छत लगा दी। और अब तो वह भी टूट-फूट गई है।

छोटी बैठक इम्तियाज़ महल के दक्षिण में है। इसके पीछे की ओर एक झरोखा है, जिसमें बैठ कर बादशाह तमाशा वग़ैरह देखते थे। इसे 'दर्शनी खिड़की' भी कहते हैं। प्रजाजन अपने प्यारे सम्राट का यहाँ ही से दर्शन किया करते थे। इसके पास ही एक बड़ा बुर्ज है, जिसे असद बुर्ज कहते हैं।

ख़्वाबगाह या बड़ी बैठक—इम्तियाज़ महल के उत्तर की ओर है। इसमें अनेक प्रकार के सुनहरे तथा अन्य शिल्पकारी के काम हैं। इसके आगे सङ्गमरमर का एक सुन्दर दालान है, जोकि बीस गज़ लम्बा और छः गज़ चौड़ा है। इस दालान के दोनों ओर सुन्दर महराबें हैं। इसमें होकर 'दीवाने-ख़ास' को रास्ता जाता है। इसे 'ख़ासी ड्यौढ़ी' भी कहते हैं। दालान के बीच में एक सङ्गमरमर का हौज़ है, जिसमें पुष्प खिलते थे।

दालान के पूर्व में 'बुर्ज तिल्ला' है, जो नीचे से ऊपर तक सङ्गमरमर का बना है। सोने का बढ़िया काम किया हुआ है। इस बुर्ज के पाँच भाग यमुना नदी की ओर हैं, जिनमें सङ्गमरमर की जालियाँ हैं। बेगमें यहाँ से नदी का दृश्य देखती थीं।

शाही महल या दीवाने-ख़ास, ख़्वाबगाह (शयन-कक्ष) के उत्तर में एक विशाल सङ्गमरमर के चबूतरे पर

निर्मित है। इसके उत्तर में हयातबाग़ का रास्ता है और दक्षिण में शाही ड्योढ़ी है। दीवाने-ख़ास में भारत की कला का गौरव मौजूद है। अत्यन्त रमणीक सुन्दर भवन है, जिसके बीच में एक सङ्गमरमर की नहर बहती थी! 'दीवाने-ख़ास' के लिए बादशाह ने वहाँ लिखवा रक्खा था—

"अगर फ़िरदौस बररूए ज़मीनस्त,
हमीं नस्तो हमीं नस्तो हमीं नस्त।"*

इसी से इस भवन के सौन्दर्य का अनुमान हो सकता है। परन्तु अब नहरें सूखी पड़ी हैं। छत की सुन्दर चित्रकारी और पच्चीकारी मिट चुकी हैं। एक सूना सङ्गमरमर का तख़्त पड़ा है, जिस पर कभी शहन्शाह विराजते थे, अब उस पर दर्शक तक बैठ कर विश्राम ले सकते हैं।

इनके अतिरिक्त मोती-महल, सावन-भादों, बुर्ज शुमाली और मोती-मसजिद आदि लाल क़िले की उल्लेखनीय इमारतें हैं। परन्तु सबसे अधिक 'हयात-बख़्श बाग़' ही उल्लेखनीय है, क्योंकि यह रम्य उपवन शहज़ादियों और बेगमों का क्रीड़ास्थल था। वह स्वर्गीय नन्दन-वन की समता रखता था। बाग़ के मध्य में एक बड़ा हौज़ है और उसके चारों तरफ़ लाल पत्थर की नहरें हैं। हर एक नहर में चाँदी के तीस फ़व्वारे छूटते थे। हौज़ में पहिले छियालीस चाँदी के फ़व्वारे लगे हुए थे। अब फ़व्वारों का तो कुछ पता नहीं, परन्तु छेद अब भी हैं—

"अब जिस जगह कि दाग़ है, वहाँ पहिले दर्द था।"

बाग़ प्राकृतिक सौन्दर्य का नमूना था। अब तो केवल कुछ पेड़ बाक़ी हैं, जो वंशविनाश की दुखद कथा को पत्ते झाड़ कर सुनाते हैं। हवा ज़ोर से चलती है तो पेड़ ऐसे हिलते हैं कि अब वे टूटना चाहते हैं और इस सूने बाग़ (बाग़ क्या, मैदान) को सदा के लिए छोड़ना चाहते हैं।

हाँ, तो सौ वर्ष पूर्व!

देखो, बादशाह की वर्षगाँठ समीप आ रही है। चालीस दिन तक महलों में नाच-रङ्ग और तमाशे रहेंगे। निर्धनों को सैकड़ों बहानों से प्रचुर धन वस्त्रादि बाँटे जायँगे। इसको 'जशन' (उत्सव) कहते हैं। चालीस दिन तक 'जशन' का आनन्द रहेगा।

बादशाह के मोती-महल के आगे एक बहुत बड़ा बाग़ है। हयातबख़्श है उसका नाम। बीच में साठ वर्ग-गज़ का एक बड़ा हौज़ है। हौज़ में जलमहल बना है और दक्षिण की ओर आमने-सामने दो भवन 'सावन-महल' और 'भादों-महल' नाम के हैं, जो बिलकुल सङ्गमरमर के बने हैं। उनके बीच में छोटे-छोटे हौज़ हैं, जिनमें पानी की चादरें गिरती हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि मणि-मुक्ता बरस रहे हैं। चारों ओर लाल पत्थर की बड़ी-बड़ी नहरें हैं। उनमें ख़ुशबूदार पानी बहता है। नहरों के दोनों ओर लाल पत्थर की गुलकारी की क्यारियाँ हैं। क्यारियों में गेंदा, गुलमेंहदी, गुलनौरङ्ग, शब्बो, ज़म्बक, गुलतुर्रा, सूर्यमुखी इत्यादि खिल रहे हैं। मोतिया, चमेली, जुही, राइबेली, गुलाब, सेवती, मधु-मालती, मौलश्री के पुष्पों से सारा बाग़ महक रहा है। हरियाली छाई हुई है। देखो, आम, शहतकूज़ा, बादशाह पसन्द, महमदशाही लड्डू, अनार, अमरूद, जसमिन, रङ्गतरा, नारङ्गी, चकोतरा, खट्टा नींबू, अञ्जीर, शहतूत, बिहीदाना, फ़ालसा, खिरनी, आड़ू, शफ़तालू, आलूचा, अङ्गूर, नाशपाती, कमरख, बेरी, कठल, बड़ल, पाखल, करौंदे इत्यादि के वृक्ष फल-फूलों से लदे हुए हैं और झूम रहे हैं। बूँदें बरस रही हैं। मयूर कुहक रहे हैं। कोयल कूक रही है।

यह लो, बाग़ का जशन आरम्भ हुआ और हुक्म हुआ कि सब लाल वस्त्र पहन कर आवें। सबने लाल जोड़े रँगवाए और उन पर बहुत सा गोटा-किनारी लगवाया। बाग़ में ख़ीमें गड़े हुए हैं। हौज़ के चारों ओर लकड़ियों की पाड़े बँधों और उन पर सुन्दर फ़र्श बिछे। एक ओर बादशाह की जहाँनुमा (शाही ख़ीमा) खड़ी हुई। हौज़ में नवाड़े छूटे। दूकानें लगीं। मालिनें, पनवाड़िनें, तरकारी, गोटे-किनारी, मेवे और कपड़े वाली यथास्थान बैठ गईं। दही-बड़े वाली दही-बड़े बेचती फिरती हैं। बिसाती और सौदागरों के लड़के अनेक प्रकार की अँगूठियाँ और छल्ले लिए बैठे हैं। हलवाइयों के लड़के पूरियाँ-मिठाइयाँ इत्यादि बेच रहे हैं।

* संसार में यदि स्वर्ग है, तो यही है, यही है, यही है।

अहाहा, तनिक बछेरा पल्टन को तो देखो। क्या छोटे-छोटे लड़के तिलङ्गों और नजीबों की सी वर्दी पहिने बन्दूक़ तोशदान लगाए, क़तार बाँधे बराबर क़दम से क़दम मिलाए चले आ रहे हैं। और देखो वे मुटकना सी तोपें, छोटे-छोटे गोलन्दाज़, नीली वर्दियाँ पहने तोपें खींचे लिए आते हैं। जहाँ-तहाँ बछेरा पल्टनों के पहरे लग गए। तोपें एक ओर खड़ी कर दीं। लो, बाग़ की तैयारी हो चली।

अब बेगमें और शहज़ादियाँ आईं। सौन्दर्य में स्वर्ग की अप्सराएँ भी तो समता न कर सकेंगी। लाल-लाल चुहचुहाते जोड़े पहिने, रत्न-जटित आभूषणों से सौन्दर्य का विस्तार करती हुई बाग़ में आईं। साथ में अन्ना, मुग़लानियाँ, मानी, दादा-छूछू, हप्पा, नौकर-चाकर लौंडियाँ-बाँदियाँ, हाथों छाओं अच्छा बिस्मिल्ला करतीं, बलिहारी होती चली आ रही हैं। कहती हैं 'बला लूँ, वारी गई, बलिहारी गई' बीच-बीच में 'चलो, सफ़ेद चादर ओढ़ लो, इस छत्ते में भुतना रहता है। दूर पार शैतान के कान भरे! किसी का कहीं साया झपेटा न हो जाय तो यह बूढ़ा चौड़ा कोरे उस्तरे से मुड़ जाय।' जो किसी ने शहज़ादी के बनाव-शृङ्गार को टोक दिया तो ग़ज़ब हो गया। अन्ना, मानी, दादा-छूछू उसके पीछे चिपट गईं—'हुक़, तुम्हारी नज़र! तुम्हारे दीदे में राई-नोन!! देखो, तुम्हारी एड़ी में गू लगा है। अच्छी, देखियो उस जरैलिया ने ऐसा हौंसा, मुझे तो आज अपनी बच्ची का मुँह कुछ फीका-फीका सा दिखाई देता है। ज़रा उस कलहरी के पाँव तले की मिट्टी चूल्हे में जलाइयो।"

देखो अब बाग़ में चारों ओर गाना-बजाना और आपस में अठखेलियाँ प्रारम्भ हुईं। मिल कर झूलों और हिंडोलों में झूलने लगीं। एक-दूसरे पर बोलियाँ ठठोलियाँ मार रही हैं—

"आज तो इस लाल जोड़े पर चोट है। शाबाश, तुमने तो सुनहरी जोड़े पर काली गोट लगा कलेजी फैफटरा कर दिया!"

"वाह, अच्छी यह बुरा मालूम होता है? ख़ाक!"

"अच्छी, क्या तुम्हें नहीं सूझता? दुश्मनों के दीदे पट्म हो गए। ए, लो टाट की अँगिया, मूँज की बखिया! वाह रे तुम्हारी सूरत!! यह मुआ सदक़े का डुपट्टा और उस पर यह भारी मसाला (गोटा किनारी)। अहाहा, कौए की चोंच में अनार की कली! इस कलूटी शक्ल पर क्या यह लाल जोड़ा खिलता है?"

"बी, तुम्हारी वही कहावत है कि आ बहिन लड़ें, लड़े हमारी बला, बला ले जाय तुम्हें चला—चलो होने लगी। ज़रा सी बात तुमसे पूछी थी, तुम तो गुठली सी चुपट गईं।"

और फिर—

"अयहय, देखियो बीबी नौ बहार! अच्छी मैं कहती हूँ, तुम किधर भटक पड़ीं। आदमी किधर उड़ गए जो अकेली पाँयचे फड़काती फिरती हो! ओहोहो, अच्छी तुम्हें हमारी जान की क़सम, जो इस बुढ़ैल को धज को न देखो। सर गला, मुँह बला। सींग कटवा बछड़ों में मिलीं—मुँह में दाँत न पेट में आँत, लाल जोड़ा मट-काए क्या ठसक से बैठी हैं।"

दूसरी उसका साथ देती है—

"यह लो, यह और क़हर तोड़ा कि पोपले मुँह में मिस्सी की धड़ी! और सूखे-सूखे हाथों में मेंहदी भी लगी हुई है। अच्छी यह लाल जोड़े तो ख़ैर बादशाह का हुक्म था, मगर कम्बख़्त इन मिस्सी और मेंहदी के बग़ैर क्या इनकी सरती न थी।"

देखो बाँदियों पर नाराज़ हो रही हैं।

"अरी गुलबहार, नौबहार, सब्ज़ा बहार, चम्पा, चमेली, गुलचमन, नरगिस, मान कुँवर, आनन्द कुँवर, मुबारक क़दम, नेक क़दम, किधर उड़ गईं? ऐ लो बाग़ में कुदकड़े लगाती फिरती हैं, सगड्डे मारती फिरती हैं। भला री, चुड़ैल, मालज़ादी, कज़ाबची, सरमूँडी, नाक-कटी, ऐसी शतर बेमहर हो गईं। ऐसा दीदे का डर निकल गया!! काम-काज पर दीदा ही नहीं लगता, एक जगह पाँव ही नहीं टिकता! जले पाँव की बिल्ली की तरह निचली ही नहीं बैठती। सारे बाग़ के जाले लेती फिरती है। मैं लहू के घूँट बैठी पी रही हूँ, कैसी ख़बर लूँ जो कोई दिन याद रहे।"

देखो रूठी हुई शहज़ादी को मना रही है—

"बुआ तुम भी क्या नैन मुतनी हो? ज़रा सी बात पै टसुए बहाती हो। ऐसी क्या अनोखी अचरज निया-मत की माँ का कलेजा था, चील का मूत, ऐसी क्या

चीज़ थी जो तुम ऐसी रोती हो ? छोटी बहिन थी, उसने ले लिया तो क्या हुआ, आओ मैं तुम्हें और मँगा दूँगी।

अब दिन केवल दो घड़ी और है। बादशाह के आने की ख़बर हुई। वह जसोलनी ने आवाज़ दी—"ख़बरदार सवारी आई।" बछेरा पल्टनों ने सलामी उतारी। छोटी-छोटी तोपें छूटने लगीं। सब हौज़ पर आ बैठीं। बादशाह अपनी 'जहाँनुमा' में गए। सबने खड़े होकर सम्मान किया। हौज़ पर चारों ओर लाल-लाल जोड़े दिखाई देते हैं, जैसे लाल पुष्प खिल रहे हों। यह लो, बाग़ लुटने का हुक्म हुआ।

अहाहा, देखना क्या झपाटे से दौड़ीं और क्षण भर में सारे बाग़ को नोच-खसोट डाला। एक-दूसरे को पुकारती हैं, पर कौन किसकी सुनता है। कोई आमों के पेड़ पर पत्थर मार रही हैं, कोई चाकू-सरौंते से फल काट रही हैं। लौंडियाँ-बाँदियाँ जो ज़रा मनचली थीं चट से पेड़ों पर चढ़ गईं और वहीं बैठ कर खाने लगीं। कोई तो गद से नीचे गिर पड़ी, किसी के काँटा और किसी के खुरच लगी। बैठी-बैठी रो रही है।—"आग लगे इस बाग़ में, मुफ़ सिरमुँडी के तो कुछ हाथ न आया, मुफ़्त में लहू-लुहान हो गई।"

बाग़ लुट चुका।

नीबू, नारङ्गी, अनार, खदों की झोलियाँ भरे हाथों में गन्ने लिए, हँसती-गिरती पड़ती चली आती हैं। कोई बेचारी के जो कुछ हाथ न आया तो शर्म की मारी चुपचाप कतराती आँख चुराती चली आ रही है। सब उसको छेड़ती और झेंपाती चली आती हैं।

"बस, ख़फ़ीफ़, हम झोलियाँ भर-भर कर लाई हैं, हमसे ले लो। तुम अपने जी में न कुढ़ो।"

वह कहती है—बुआ, तुम्हारी तुम्हीं को मुबारक हो। भाड़ में पड़े। क्या मुई चार कौड़ी की चीज़ के लिए काँटों से अपने हाथ-मुँह नुचवाती, एड़ी-चोटी का पसीना बहाती, ऐसी क्या नियामत की माँ का कलेजा था ?

"अहाहा, सच कहती हो। अच्छी, यह बताओ तुम वहाँ गईं क्यों थीं। एक एक का मुँह तकने ? बुआ तुम्हारी वही कहावत है कि लोमड़ी अङ्गूर के पेड़ के नीचे आई तो गुच्छे लटके देख कर बहुत उछली-कूदी, पर कुछ हाथ न आया तो कहती चली गई, कि अङ्गूर अभी कच्चे हैं।"

लो, तम्बुओं में आकर नाच-रङ्ग देखने लगीं।

शाम हुई। झुटपुटा हुआ। चाँदनी खिली। देखो अब हौज़ और नहर की पटरियों पर बैठी चाँदनी मना रही हैं। नवाड़ों में बैठी हौज़ में फिर रही हैं। सफ़ेद फूलों के कर्णफूल और हार पहिन लिए, लाल-लाल जोड़ों पर कैसे सुन्दर दिखाई देते हैं। गाना हो रहा है। कहीं दसघरा, पच्चीस क़िस्से, कहानियाँ-पहेलियाँ हो रही हैं। दस-बीस मिल कर खड़ी हो गईं—आओ भई आँख मिचौनी खेलें। आँख मिचौनी हुई—"अड़ङ्ग, बड़ङ्ग, तू-तू ज़बर नङ्ग, माई जी का थान, खेले चुग़ान (चौहान) हरिया हर बस, यह नौ यह दस।" जिसके नाम पर दस आता गया उसको निकालती गईं। अन्त में जिसके नाम पर दस आया वह चोर बनी। एक बूढ़ी को बीच में दाई बना कर बैठा दिया। इन रूपरानियों की आँख मिचौनी पर तो कोई कवि ही उपमाएँ ढूँढ सकेगा।

सात दिवस तक इसी तरह नाच-रङ्ग इत्यादिक रहेंगे। आठवीं जुमारात (बृहस्पतिवार) को पङ्खे की तैयारियाँ होंगी।

आज सुनहरी काम के लाल-लाल वस्त्र पहिने सोने के आभूषणों में ढकी हुई सारे शहर की स्त्रियाँ उमड़ आईं। जब चार घड़ी दिन रहा तो चाँदनी चौक के बाग़ से पङ्खा उठा। देखो हाथ पर रत्न-खचित स्वर्ण का अनमोल पङ्खा, नीचे सच्ची मोतियों की झालर, ऊपर सोने का मोर, जिसके पेट में गुलाब-केवड़ा भरा हुआ है, पञ्जों में से निकल-निकल कर चारों ओर बौछार कर रहा है। आगे फूलों की छड़ियाँ, नफ़ीरी बजती हुई, हज़ारे छूटते हुए, सिपाही तमन झाँझ बजाते हुए, पीछे सलातीन और अमीर-उमरा हाथियों पर सवार हो, दोनों ओर असंख्य जन-समूह की रेल-पेल। इस तरह पङ्खा क़िले के द्वार तक पहुँचा। सब लोग बाहर ठहर गए। सलातीन पङ्खा लेकर भीतर गए। बादशाह हवादार (पालकी) में सवार हुए। बछेरा पल्टन ने छोटी-छोटी तोपों से सलामी उतारी। आगे बछेरा पल्टनें, पीछे ताशे-बाजे वाले झाँझ, तबल, नफ़ीरी बजाते चलती हैं। उनके पीछे सलातीन पङ्खे लिए हुए। उनके पीछे बादशाह हवादार में। साथ-साथ खोजे मोरछल करते हुए, जसोलनियाँ, कल्पाकनियाँ, कश्मीरिनें (बादशाह

की ये सब बाँदियाँ थीं) 'हटो ! बचो !!' करतीं, शहज़ादे हवादार के पाए पकड़े, पीछे शहज़ादियाँ बेगमें और जनता की स्त्रियाँ हैं। सारा शहर उमड़ पड़ा है। कहीं तिल रखने को जगह नहीं कोठे, छत, गोख, झरोखे सब जगह ठट्ठ जमा है। ऊपर आकाश में काले मेघ घहरा रहे हैं। बूँदें कभी-कभी रिमझिम बरसने लगती हैं, चपला चमक जाती है और इधर पृथ्वी पर लाल घटा घिर आई है। गोटे और मोतियों की चमक से आँखें चकाचौंध हो जाती हैं। नफ़ीरी हृदय हिलाए देती है। आज दिल्ली में आनन्द थिरक रहा है। सन्ध्या-समय दरगाह में पङ्खा पहुँचा। रात भर वहीं नाच-रङ्ग तमाशे रहे। सवेरे सब अपने-अपने घर गईं।

दरबार

देखो सब अमीर-उमरा नक़्क़ारख़ाने के द्वार पर से उतर कर पैदल 'दीवाने-आम' तक चले आते हैं। यह पहली 'आदाबगाह' है। 'दीवाने-आम' के जाली के द्वार में एक लोहे की मोटी जञ्जीर अड़ी पड़ी है, जिससे आदमी सीधा नहीं जा सकता। सब झुक-झुक कर ज़ञ्जीर के नीचे से जाते हैं। यह दूसरी 'आदाबगाह' है। 'दीवाने-ख़ास' के द्वार पर लाल बनात का पर्दा लगा हुआ है। यह 'लाल पर्दा' कहलाता है। मिरदहे, प्यादे, दरबान, सिपाही और क़लार हाथों में लाल-लाल लकड़ियाँ लिए खड़े हैं। जो कोई अपरिचित पुरुष भीतर जाने का प्रयास करे, तो क़लार वहीं आँकड़ेदार लाल लकड़ी गर्दन में डाल कर बाहर निकाल देते हैं। किन्तु 'जशन' के दरबार में हुक्म था कि जिसका जी चाहे पगड़ी बाँध कर भीतर चला जाय।

देखो, सब लाल परदे के पास खड़े होकर झुक कर सलाम करते हैं, क्योंकि यह तीसरी 'आदाबगाह' है। फिर दीवाने-ख़ास के तख़्त के सामने आदाब करके अपने-अपने योग्य स्थानों पर खड़े हो जाते हैं।

दीवाने-ख़ास की सजावट आज अपूर्व है। बनाती परदे लगे हुए हैं। बीच में सङ्गमरमर के चबूतरे (तख़्त) पर सम्राट का तख़्त रक्खा है। तख़्त कितना सुन्दर है! चारों ओर तीन-तीन दर सुन्दर महराबदार बने हैं। दोनों पार्श्व में कठहरा है। पीछे तकिया, आगे तीन स्वर्ण-सोपान, ऊपर बँगलेनुमा गोल छत है, जिस पर सोने की कलशियाँ चमक रही हैं। सामने के महराब पर दो मोर, आमने-सामने मोतियों की माला चोंच में पकड़े खड़े हैं। सारा तख़्त रत्न-खचित स्वर्ण का बना है और चमक रहा है। बीच में रोमी मख़मली ज़रबफ़्त का तकिया लगा है। दो खोजे उभय पार्श्व में खड़े मोरछल कर रहे हैं। पीछे नमाज़ पढ़ने के लिए बहुमूल्य क़ालीन बिछा है।

वज़ीर, बख़्शी, नाज़िर, वकील, राजा मिर्ज़ा, राजा बहादुर, ग़यासुद्दौला बहादुर, मौसुद्दौला बहादुर, सरफ़राज़ुद्दौला बहादुर, मीर आदिल बहादुर, मीर मुन्शी, मीर तुर्क इत्यादि अपने-अपने स्थान पर नियमपूर्वक खड़े हैं। मिरहदे, नक़ीब, चोबदार, अर्ज़बेगी सामने आदाबगाह (लाल परदा) के पास खड़े हैं।

दीवाने-ख़ास के चौक में घोड़े चाँदी-सोने के साज़ से विभूषित एक ओर खड़े हैं। एक ओर हाथी मौलाबख़्श, ख़ुर्शेदजङ्ग, चाँद सूरत (हाथियों के नाम हैं) इत्यादि रँगे हुए, मस्तक पर लोहे की अभेद्य ढाल और स्वर्ण-फूल हैं, कानों में रेशम और कलाबत्तू के गुच्छे लटक रहे हैं। कारचोबी झूलें पड़ी हुई हैं। एक ओर छत्र, ध्वजा, रोशन-चौकी वाले, झण्डियों वाले खड़े हैं। हब्शी क़लार, चाँदी के 'शेर दहान' (सिंह के से मुख वाले) सोटे, ख़ास बरदार बन्दूकें लिए कठहरे के नीचे खड़े हैं।

दीवाने-आम के मैदान में सारी पल्टनें सुसज्जित खड़ी हैं। यह लो, वह जसोलनी ने आवाज़ लगाई— 'ख़बरदार हो !' नक़ीब चोबदारों ने जवाब दिया—'अल्ला रसूल, ख़बरदार है !' अहा, बादशाह पधारे। कहारों ने हवादार (पालकी) झट कहारियों से ले ली। पहिले बादशाह ने तख़्त के पीछे उतर कर नमाज़ पढ़ी। खड़े होकर कुरआॅन की दो आयतें पढ़ीं, परमात्मा से दुआ माँगी। फिर हवादार में सवार हुए। कहारों ने हवादार तख़्त के बराबर लगा दिया। सम्राट सिंहासन पर सुशोभित हुए। ध्वजा फहराने लगीं। धायँ-धायँ तोपें चलीं, सारी सेना ने सलामी उतारी। बाजे बजने लगे। युवराज तख़्त के वामपार्श्व में तथा दूसरे शहज़ादे दक्षिण पार्श्व में तख़्त के समीप और अमीर-उमरा सामने खड़े हो गए।

देखो, पहले वलीअहद (युवराज) नज़र देने को खड़े हुए। वे आदाबगाह पर आए। झुक कर आदाब

(प्रणाम) किया । नक़ीब ने पुकारा—"जहाँपनाह, बादशाह सलामत ! आलमपनाह बादशाह सलामत ! महाबली बादशाह सलामत !" युवराज ने झुक कर सम्राट को भेंट दी । फिर उल्टे पाँव आदाबगाह पर आए, झुक कर सलाम किया (मुजरा करना कहते हैं), ख़िलअत पहिनी, चोग़ा, सरपेंच, गोशवारा, बादशाह ने अपने हाथ से सर पर बाँधे । मोतीमाला तलवार गले में डाली । उसी तरह आदाबगाह पर उल्टे पाँव आकर फिर मुजरा किया । ख़िलअत की नज़र दी । फिर उल्टे पाँव आदाबगाह पर आए और मुजरा करके खड़े हो गए ।

देखो, अब इसी तरह और शहज़ादे, अमीर-उमरा अपने-अपने पदानुसार भेंट दे रहे हैं और अन्दरख़ाने में से ख़िलअत पहिन-पहिन कर आते हैं । बादशाह अपने हाथ से शहज़ादों के सिर पर चोग़ा, सरपेंच, गोशवारा और बड़े-बड़े अमीरों के सर पर गोशवारा बाँध देते हैं । आदाब मुजरे हो रहे हैं । नक़ीब चोबदार पुकार रहे हैं—"मुलाहिज़ा, आदाब से करो मुजरा, जहाँपनाह बादशाह सलामत, आलमपनाह बादशाह सलामत, महाबली बादशाह सलामत !"

लो, बादशाह ने तकिया सरकाया, फ़ातहा को हाथ उठाया । अर्ज़बेगी ने पुकारा—"दरबार बरख़ास्त ।" कहारों ने हवादार तख़्त के बराबर लगा दिया । बादशाह सवार हुए । ख़ासी ड्योढ़ी (ऊपर इसका वर्णन आ चुका है) पर से कहारियों ने हवादार ले लिया । बादशाह महल में पधारे । सब लोग बिदा हुए । चालीस दिन तक नित्यप्रति दरबार, ख़िलअत तथा नज़रें होंगी तथा इनाम बाँटे जाएँगे । सब विभागों और कारख़ानों के दरोग़ाओं को उनके पद के अनुसार पारितोषिक मिलेंगे ।

अब महल का दरबार देखो ।

जशन का महल का दरबार

बहुमूल्य चाँदी का तख़्त रक्खा है । पीछे की ओर तकिया और आगे तीन सीढ़ियाँ हैं । नीचे पायों में कैसे सुन्दर फूल-पत्ते बने हैं । ऊपर करकरी ताश के अमूल्य वस्त्र से तख़्त ढका हुआ है । बाईं ओर बादशाह बेगम (साम्राज्ञी) अपनी मसनद पर बैठी हैं । शृङ्गार-शोभा का वर्णन शक्ति से बाहर है । इनके बराबर दूसरी बीवियाँ अपनी-अपनी सोज़नियों पर बैठी हैं, स्वर्ण और रत्नों से विभूषित, नाक में नथें पहिने हैं । बाँईं ओर शहज़ादियाँ नखसिख शृङ्गार किए बैठी हैं । सामने जशनियाँ, तुरकनियाँ, कल्माक़नियाँ, अर्ज़ बेगनियाँ, जसौलिनियाँ, ख़्वाजा सराय जरेबे पकड़े आदाब से खड़ी हैं । बादशाह महल में आए । जेसालनी ने आवाज़ दी—'ख़बरदार हो' । सब बेगमों ने खड़े होकर सम्मान किया । तख़्त पर से वस्त्र (तख़्तपोश) खोजों ने उठाया । कहारियों ने हवादार तख़्त के बराबर लगा दिया । बादशाह तख़्त पर बैठे । ख़्वाजासरा मोरछल लेकर तख़्त के उभय-पार्श्व में खड़े हो गए । पहिले मलका दौरान (बादशाह बेगम अथवा साम्राज्ञी) ने मुजरा किया । नज़र दी और फिर मुजरा करके बैठ गईं । अब और बीवियों तथा शहज़ादियों ने इसी प्रकार नज़रें दीं । बादशाह ने सबको बहुमूल्य दुपट्टे सबों के पदानुसार अपने हाथ से दिए । सबों ने खड़े होकर दुपट्टे लिए, मुजरा किया और भेंटें दीं । अब नाच-रङ्ग प्रारम्भ हुआ । यह देखो ! नाचने वाली अन्दर बादशाह के सामने नाच रही है, और कलावन्त (साज़िन्दे) पर्दे के पीछे अनेक प्रकार के वाद्य बजा रहे हैं । सारा महल स्वर-लहरी से परिप्लावित हो रहा है । स्वर्गीय आनन्द बरस रहा है । तान रसखान आए । दो-चार तानें उनकी सुनीं । लो, अब ख़ासे (भोजन) की तैयारियाँ हुईं । दरबार समाप्त हुआ । बादशाह ने भोजन किया और सुख लिया ।

तीसरे पहर फिर सब इसी प्रकार एकत्रित हो गए । बादशाह मसनद पर आकर बैठे । मिठाई के थाल और आठ क़ाबीन मिठाई की एक चाँदी की कश्ती में बड़ा सा कलाया, पान के बीड़े, हरी दूब, मिश्री के कूँजे, चाँदी का छल्ला रक्खा हुआ और ऊपर कमख़ाबी वस्त्र और कलाबत्तू की झालरों से ढका हुआ लाया गया । जसोलनी ने विनय की—"हज़रत साहब तशरीफ़ लाए हैं ।" बादशाह स्वयं उनके सम्मान के लिए खड़े हो गए और उन्हें मसनद पर बैठाया । हज़रत साहब ने पहिले आठ क़ानों पर हज़रत फ़ातमा, बाबर बादशाह, इत्यादि की नयाज़ दी । नयाज़ें फिर बाँटी गईं ।

देखो, हज़रत साहब ने कश्ती में से कलाया निकाला । और पहिले 'सुबहान अल्ला, अल् रहमान रहीम' कह कर

उसमें एक गाँठ लगाई। दूसरी गाँठ में पान का बीड़ा बाँधा। तीसरी में हरी दूब, मिश्री की डली, चौथी में चाँदी का छल्ला और पाँचवीं में बादशाह के सिर से छुआ कर उस कलाए में गाँठ लगाई। सबने खड़े होकर सम्मान किया, अभिनन्दन किया और शुभकामना की—"एक साल यह हज़ार साल और ख़ुदा नसीब करे।"

सालगिरह के बाजे बजने लगे। इसी प्रकार चालीस दिन तक नाच-रङ्ग, दरबार, इनाम-इकराम और महमानदारी रहेगी।

यह है केवल बादशाह की वर्षगाँठ का उत्सव। न जाने अभी कितने स्वप्न अवशेष हैं। लाल क़िले की नस-नस को इन सबों का अनुभव है। लेकिन बेचारा बेकस, बेज़ुबाँ क्या कहे?

हुईं दफ़न जो कि वे बेकफ़न
उन्हें रोता अब्रे बहार है।
कि फ़रिश्ते पढ़ते हैं फ़ातहा
न निशान है न मज़ार है॥

—बहादुरशाह 'ज़फ़र'

रुदन

[श्री० श्रीनिधि द्विवेदी]

तमजाल विश्व पर छाया,
छिपते शशि की किरणों से।
क्षितिजाञ्चल भीगा जाता,
रजनी के अश्रु-कणों से॥

छाया-वियोग में रोतीं,
तरु-ततियाँ[1] काली निशि में।
फिर हाहाकार बिहरता,
अविराम शून्य दिशि-दिशि में॥

प्रिय चारु चाँदनी सोती,
संवृत-मुख तम-अञ्चल से।
रजनी नहलाए देती,
कलियों को करुणा-जल से॥

मधु बरसाता निर्जन में,
आकुलता की संसृतियाँ।
पवमान[2] लिए फिरता है,
बीते जीवन की स्मृतियाँ॥

जो सस्मित सुख-संसृति में,
मधु-हास सिहरते अपने।
वे रोते हैं फूलों में,
सुकुमारि! तुम्हारे सपने॥

करते अधीर लहरों को,
झञ्झा समीर के झोंके।
देती है उर में पीड़ा,
कुण्ठित कृपाण-सा भोंके॥

अभिलाषाओं की सुखमा,
नैराश्य-व्यथा बन आई।
जीवन-नभ में निष्फलता,
नीरद-माला सी छाई॥

कोमलता के अन्तर में,
सङ्कुल निष्ठुरता निकली,
मेरी अनन्त आशा में,
हा क्षणभङ्गुरता निकली॥

१—पंक्ति, २—जलाशय।



लोध्रा प्रेस, इगमोर (मद्रास) के सौजन्य से प्राप्त]

दीन भारत का सुदर्शन-चक्र

[FINE ART PRINTING COTTAGE ALLAHABAD

वर्तमान मुस्लिम-जगत

[डॉ० मथुरालाल शर्मा, एम० ए०, डी० लिट्०]

(गताङ्क से आगे)

स्वतन्त्रता की माँग

सितम्बर सन् १९२८ में इस प्रतिनिधि-सभा का अधिवेशन हुआ, जिसमें सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव स्वीकृत किया गया कि सीरिया पूर्ण स्वतन्त्रता चाहता है। हाई-कमिश्नर को स्वप्न में भी आशा न थी कि इतने दमन और नाना प्रकार के प्रलोभनों के बाद भी सीरिया में राष्ट्रीय अभिलाषा वैसी ही बनी रहेगी। इस प्रस्ताव से चकित और क्रुद्ध होकर उसने सभा को तीन मास के लिए मुअत्तिल कर दिया। तब से अब तक सीरिया और फ़्रान्स में वही खींचातानी बनी हुई है। नरम दल वालों को सरकार सदैव अपनी ओर खींचने की कोशिश किया करती है और उनकी दब्बू बातों को ख़ूब प्रकाशित करती है। विगत वर्ष 'अल-निज़ाम' नामक एक पत्र ने लिखा था कि सीरिया को स्वतन्त्रता नहीं चाहिए। वह किसी शक्तिशाली बादशाह का शासन चाहता है, जो मुसलमान हो। प्रतिनिधि-शासन मुस्लिम परम्परा के विरुद्ध है। इस लेख के प्रकाशित होने पर सम्पादक महोदय को बाज़ार में किसी ने ख़ूब पीटा और किसी ने उनको बचाया नहीं। सरकार ने हार कर इस पत्र को बन्द कर दिया। फ़रवरी सन् १९२९ को .फ्रेञ्च पार्लामेण्ट की सोशलिस्ट (साम्यवादी) पार्टी ने यह प्रस्ताव पेश किया था कि .फ़्रान्स को सीरिया का पिण्ड छोड़ देना चाहिए और सीरिया को स्वतन्त्र कर देना चाहिए। प्रधान मन्त्री ने इसका विरोध किया और कहा कि "यदि हम सीरिया से हट जावेंगे तो राष्ट्र-सङ्घ किसी दूसरे राष्ट्र को उसका संरक्षक बनावेगा। हम तो सीरिया को स्वतन्त्र बनाने के लिए तैयार कर रहे हैं; पर दूसरा राष्ट्र शायद ऐसा साम्राज्यवादी हो, जो उसकी ज़ञ्जीरों को और भी कड़ी कर दे।"

सीरिया के दल और संरक्षकता का प्रभाव

सीरिया में इस समय तीन मुख्य दल हैं—(१) शैख लोगों का, जो कहता है कि प्रजातन्त्र शासन इस्लाम-परम्परा के अनुकूल नहीं है। (२) नरम लोगों का, जो त्याग करने से और कष्ट सहने से डरते हैं और जो कुछ फ़्रान्स देता जावे उसी को धन्यवादपूर्वक स्वीकार करना उचित समझते हैं। (३) राष्ट्रीय दल, जो पूर्ण स्वतन्त्रता चाहता है। प्रथम दो दल फ़्रान्स के कृपापात्र हैं और तीसरे पर उसका तृतीय नेत्र प्रायः खुला ही रहता है। फ्रेञ्च संरक्षकता का परिणाम यह हुआ है कि युद्ध-समाप्ति के समय सीरिया में जितना सोना था, उसका अब वहाँ केवल दसमांश रह गया है। परन्तु फ्रेञ्च-सरकार को यह अनुभव अवश्य हो गया है कि उसको शीघ्र अपना बोरिया-बँधना वहाँ से उठाना पड़ेगा।

पलस्तीन

पलस्तीन वैसे तो सीरिया का ही भाग है, पर धार्मिक और सामाजिक कारणों से इसको सीरिया से पृथक् करके महासमर के बाद ग्रेट-ब्रिटेन की संरक्षकता में डाल दिया गया। प्राचीन समय में यह यहूदियों का देश था। यहाँ उनके धर्म, साहित्य तथा संस्कृति का आविर्भाव और विकास हुआ था। ईसाइयों का तो यह तीर्थ-स्थान है। ईसा ने इसी देश में जन्म धारण किया था और ईसाई मत का जन्म तथा प्रचार भी यहीं से हुआ था। अन्त में समय ने पलटा खाया और अरब लोगों का यहाँ प्रभुत्व बढ़ने लगा। तभी से यहूदियों और ईसाइयों के पैर यहाँ से उखड़ने लगे। जब तुर्क लोगों ने इस देश पर आधिपत्य स्थापित कर लिया, तब ग़ैर-मुस्लिमों के दुखों

का ठिकाना न रहा। ईसाई धर्म-स्थानों में ताले लग गए और ईसाई यात्रियों को वहाँ घुसने न दिया जाने लगा। पवित्र स्थान का उद्धार करने के लिए यूरोप के राजा और प्रजा ने कई शताब्दियों तक मुसलमानों से युद्ध किए, पर अन्त में विजय मुसलमानों की ही रही। इसीलिए ईसाइयों की आँखें सदा पलस्तीन पर लगी रहती थीं। १९वीं शताब्दी के अन्त में जब अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति कुछ बदल गई थी, तो यहूदियों ने एक कॉङ्ग्रेस करके यह निश्चय किया कि उनको आदि देश पलस्तीन में वापस जाकर बसना चाहिए।

१९१७ में लॉर्ड बाल्फ़ोर ने घोषणा की थी कि पलस्तीन यहूदियों का "राष्ट्रीय देश" है, उनको वहाँ बसने तथा उन्नति करने का अवसर मिलना चाहिए। यह संयोग की बात थी कि इस घोषणा में न्याय और स्वार्थ दोनों मिले हुए थे।

पलस्तीन में अङ्गरेज़ी संरक्षकता

महासमर के समय जो गुप्त समझौते हुए थे, उनके अनुकूल तो पलस्तीन में अन्तर्राष्ट्रीय राज्य स्थापित होना चाहिए था। परन्तु रूस की राज्य-क्रान्ति और कमालपाशा की विजय तथा फ़्रान्स, इङ्गलैण्ड और इटली के पारस्परिक हित-विरोध के कारण ऐसा न हो सका। फ़्रान्स ने सीरिया पर अधिकार जमाया तो इङ्गलैण्ड कैसे चुपचाप बैठा रहता। वास्तव में ग्रेट-ब्रिटेन नहीं चाहता था कि भारतवर्ष के मार्ग में किसी प्रबल और शक्तिमान राष्ट्र का खटका हो, परन्तु फ़्रान्स की अभिलाषा का वह विरोध भी नहीं कर सकता था। इसलिए उनमें यह आपसी समझौता हुआ कि सीरिया में फ़्रान्स की तथा पलस्तीन में इङ्गलैण्ड की संरक्षकता स्थापित की जावे। तदनुसार वहाँ अङ्गरेज़ी हाई-कमिश्नर आ गया और अङ्गरेज़ों की प्रभुता स्थापित कर दी गई।

पलस्तीन में यहूदी

पलस्तीन एक छोटा सा देश है। इसका क्षेत्रफल लगभग ९,००० वर्गमील और जन-संख्या १०,००,००० के लगभग है, जो इन्दौर राज्य के बराबर है। राष्ट्र-सङ्घ के निश्चय के अनुकूल संरक्षकता का उद्देश्य है रक्षित देश के निवासियों को स्वराज्य के योग्य बनाना। परन्तु पलस्तीन की संरक्षकता के दो उद्देश्य हैं। प्रथम पलस्तीन को स्वराज्य के योग्य बनाना और दूसरा यहूदियों को वहाँ बसने तथा उन्नत होने के सुभीते प्रदान करना। वास्तव में इन दोनों उद्देश्यों में घोर विरोध है। यहूदी लोग अरबस्तानियों से द्वेष करते हैं और उनको अपना प्राचीन शत्रु समझते हैं। जो यहूदी वहाँ पहले से रहते हैं, उनकी तो दूसरी बात है, पर अब जो आए हैं और आते-जाते हैं, उनके कारण पलस्तीन का सामाजिक तथा राजनैतिक जीवन बिगड़ रहा है और स्वराज्य-प्राप्ति के मार्ग में कठिनाइयाँ बढ़ती जाती हैं। यहूदियों ने वहाँ पर बड़े-बड़े खेत मोल ले लिए हैं, कोठियाँ बना ली हैं, व्यापार-सङ्घ स्थापित किए हैं, अपना अलग विश्वविद्यालय खोला है, कई अपने छापेख़ाने हैं और अपने हीब्रू साहित्य को उन्नत कर रहे हैं। इससे अरब के लोग दबते जाते हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि पलस्तीन में मुसलमानों की संख्या कम होती जाती है और यहूदियों की बढ़ती जाती है। सन् १९२२ में मुसलमान वहाँ ७८ प्रतिशत थे और सन् १९२८ में ७३'५ प्रतिशत रह गए। १९२२ में यहूदी ११ प्रतिशत थे और सन् १९२८ में १६'७ प्रतिशत हो गए। मुसलमानों और यहूदियों में वहाँ चाहे जब झगड़े हो जाते हैं। विगत वर्ष "शोक-दीवार" नामक स्थान के विषय में जो उत्पात हुआ था, उसमें १३३ मनुष्य मारे गए थे, और ३३९ घायल हुए थे। इसके सिवाय ६ यहूदी बस्तियाँ बिल्कुल नष्ट कर दी गई थीं।

पलस्तीन में अब भी यहूदियों का प्रवेश जारी है। कहा जाता है कि यह देश दो क़ौमों का राष्ट्र "बाइ-नेशनल" बनेगा, परन्तु मालूम ऐसा होता है कि वहाँ उत्तरोत्तर पारस्परिक कलह की वृद्धि होगी। यहूदियों को अनेक प्रकार के लाभ हैं और सुभीते दिए जाते हैं और समय-समय पर उनकी पीठ ठोंकी जाती है। इसका नतीजा यह होगा कि अरब लोग कुछ समय में केवल निर्धन कृषक और मज़दूर रह जावेंगे। इस भेद-नीति से शासकों को आराम है। निरन्तर कलह के कारण वहाँ शासन-सुधार की माँगें नहीं होती हैं। शासक भी यही चाहते हैं। वे इस समय पलस्तीन से ईरान और वहाँ से भारत में सीधी और बेखटके सेनाएँ भेज सकते हैं। भारत के सिवाय काम पड़ने पर ईरान, रूस और तुर्की को तो दबा सकते हैं। अभी कुछ समय

पूर्व राष्ट्र-सङ्घ के संरक्षक कमीशन ने रिपोर्ट की थी कि ग्रेट-ब्रिटेन पलस्तीन में अपना कर्तव्य पालन नहीं कर रहा है। सन् १९२८ की अरब नेशनल कॉङ्ग्रेस में केवल निर्वाचित व्यवस्थापिका सभा के लिए माँग उपस्थित की गई थी। अभी वहाँ संरक्षकता का विरोध या पूर्ण स्वतन्त्रता की अभिलाषा व्यापक नहीं होने पाई है।

ट्रान्स जार्डन

जिस समय फ़ैसल ने सीरिया पर अपना अधिकार जमा लिया था, उस समय जार्डन नदी के पूर्व का कुछ भाग उसके राज्य में सम्मिलित था। उसके अधःपतन के बाद यह हिस्सा अङ्गरेज़ों के हाथ में आया। इसकी जन-संख्या दो लाख के लगभग है और यहाँ के निवासी जो बेदूयीं कहलाते हैं, वे अत्यन्त पिछड़े हुए और अशिक्षित लोग हैं। सन् १९२२ में अङ्गरेज़ सरकार ने घोषणा की कि यह देश ट्रान्स जार्डन कहलाएगा और एक अलग राज्य माना जावेगा। इसका पलस्तीन से कोई सम्बन्ध न रहेगा और न यहाँ पर यहूदियों को बसाया जावेगा। यहाँ की राजधानी अम्मन में एक अङ्गरेज़ अफ़सर रहता है, जिसके निरीक्षण में यहाँ का शासन-सञ्चालन होता है। यह अफ़सर पलस्तीन के हाई-कमिश्नर का मातहत है। १९२३ में पलस्तीन के हाई-कमिश्नर ने यह घोषणा की कि ट्रान्स जार्डन एक स्वतन्त्र राज्य है और फ़ैसल का भाई अमीर अब्दुल्ला उसका बादशाह है। शर्त यह है कि उसको अङ्गरेज़ी संरक्षकता स्वीकार करनी पड़ेगी। दूसरे साल यह घोषणा सन्धि के रूप में परिवर्तित की गई और शासन-विधान तैयार किया गया। सन् १९२८ में दूसरी सन्धि हुई, जिसके अनुकूल ट्रान्सजार्डन में पार्लामेण्ट की स्थापना की गई।

यह प्रदेश सैनिक दृष्टि से इङ्गलैण्ड के लिए बड़े काम का है। इसमें अङ्गरेज़ों की सत्ता होने से अरबस्थान के जङ्गली घुमक्कड़ लोग पलस्तीन पर आक्रमण नहीं कर सकते। यह देश एक प्रकार की ढाल है। रूमसागर से ईराक़ या भारत का मार्ग भी इसमें होकर गुज़रता है और वायुयान-मार्ग का यह एक स्टेशन है।

अरबस्तान और हज्जाज

अङ्गरेज़ों की सहायता से हुसैन हजाज का बादशाह बन चुका था। सन् १९२४ में उसकी शक्ति शिखर पर पहुँच चुकी थी। उसका एक पुत्र ईराक़ का बादशाह था और दूसरा ट्रान्सजार्डन का। परन्तु मनुष्य की तृष्णा की कोई अवधि नहीं है। उस वर्ष जब उसने सुना कि तुर्की राष्ट्रीय सभा ने सुलतान अब्दुल मजीद को सिंहासन-च्युत कर दिया है, तो वह स्वयं ख़लीफ़ा बनने का स्वप्न देखने लगा। इतना ही नहीं, उसने ख़लीफ़ा की पदवी भी धारण कर ली। लेकिन पलस्तीन और ईराक़ के सिवाय किसी अन्य देश ने उसको ख़लीफ़ा नहीं माना। इधर हुसैन का प्रताप बढ़ता जाता था और उधर अरबस्तान के मध्य भाग में उसके अधःपतन के सामान तैयार होते जाते थे। पिछले एक प्रकरण में हमने वहाबियों का उल्लेख किया है। उन्हीं का सरदार इब्नसऊद नामक इस समय प्रबल होता जाता था। उसके सिद्धान्त वे थे, जो उसके पूर्वजों के थे। समरकाल में तुर्की के विरुद्ध उत्पात करने में अङ्गरेज़ों ने इब्नसऊद की सहायता की थी। उसका दाँत सदैव हज्जाज पर लगा रहता था। कई कारणों से अङ्गरेज़ सरकार नहीं चाहती थी कि हज्जाज उसके हाथ में आ जाए। हज्जाज से उसको दूर रखने के लिए अङ्गरेज़ उसे नौ लाख रुपया सालाना दिया करते थे और एक बार पैंतीस हज़ार बन्दूकें भी दी थीं। इसके अतिरिक्त बादशाह हुसैन को भी उनको प्रतिवर्ष काफ़ी रुपए देने पड़ते थे। १९२४ में पार्लामेण्ट में उसका विरोध हुआ और अङ्गरेज़ सरकार ने दोनों सरदारों को सहायता देना बन्द कर दिया। इस आय की कमी को पूरी करने के लिए हुसैन ने मक्का और मदीना से भी कर लेना आरम्भ कर दिया। यह परम्परा के विरुद्ध था। क्योंकि ये दोनों नगर पवित्र माने जाते थे और तुर्की सुलतान ने भी इनको कर-मुक्त कर रक्खा था। इसलिए हुसैन के विरुद्ध इन नगरों में असन्तोष फैल गया।

इब्नसऊद का उद्देश्य और उसकी विफलता

इस अवसर को देख कर वहाबियों ने हज्जाज की ओर बढ़ना शुरू किया। अक्टूबर १९२४ में इब्नसऊद ने हज्जाज पर क़ब्ज़ा कर लिया और हुसैन को सिंहासन त्यागने को बाध्य किया। १९२६ के आरम्भ में अब्दुल-अज़ीज़ इब्नसऊद हज्जाज का बादशाह बन गया और १९२७ में उसने नज्द के बादशाह की उपाधि धारण कर ली। वह हुसैन की भाँति अङ्गरेज़ों की सहायता से

बादशाह नहीं बना था, वरन् अपने बाहुबल से उसने देश पर आधिपत्य स्थापित किया था। उसकी धार्मिक कट्टरता के कारण अरब के लोग उसको चाहते भी बहुत थे। इसलिए इब्नसऊद का युद्ध वास्तव में स्वातन्त्र्य संग्राम था। उसने अरब को स्वतन्त्र देश बनाया। सिंहासन पर बैठने के बाद उसने चाहा कि सभ्य मुसलमान राष्ट्रों का एक सङ्घ बनाया जावे, जिसमें अरब की प्रधानता हो और इस्लाम के इतिहास में पुनः अबूबकर और उमर के ज़माने की झलक दिखाई देने लगे। इस उद्देश्य से उसने सन् १९२६ में मक्का में एक कॉन्फ़्रेन्स की। उसके पश्चात् प्रतिवर्ष वहाँ इस प्रकार की कॉन्फ़्रेन्सें हुआ करती हैं। परन्तु इब्नसऊद इनके द्वारा जो उद्देश्य पूरा करना चाहता था वह नहीं हुआ। वास्तव में अन्तर्राष्ट्रीय अड़चन तथा राष्ट्रीय भावों की जाग्रति के कारण प्राचीन ख़िलाफ़त पुनः स्थापित नहीं हो सकी। उस समय इस्लाम-धर्म में धर्म, राजनीति, समाज-नीति आदि सब कुछ सम्मिलित माने जाते थे। और क़ुरान के नियमों के अनुकूल देशों का शासन किया जाता था। इतना ही नहीं, मुस्लिम शासक वास्तव में शासक नहीं थे, बल्कि राजशक्ति द्वारा इस्लाम-धर्म के प्रचारक थे। शासन का उद्देश्य था इस्लाम का प्रचार। इसलिए सब मुस्लिम शासक ख़लीफ़ा को अपना स्वामी मानते थे। अब विज्ञानोन्नति और राष्ट्रीयता की वृद्धि के कारण मुसलमानों का दृष्टिकोण और का और ही हो गया है। अब शासन का उद्देश्य इस्लाम का प्रचार, किन्तु जनता का शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक अभ्युदय माना जाता है। धर्म का सम्बन्ध केवल हृदय या मन से रह गया है। समाज और राजनीति से उसका दख़ल उठता जाता है। इन विचारों का प्रचार कहीं कम है और कहीं अधिक। लेकिन इनकी वृद्धि होती जाती है। इसलिए इब्नसऊद का उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता था। इन कॉन्फ़्रेन्सों में यात्रियों के सुविधे के प्रस्ताव पास होते हैं और इनमें उपस्थिति भी अच्छी नहीं होती।

ईराक़

हम पहिले ही बता चुके हैं कि महायुद्ध के छिड़ते ही अङ्गरेज़ों ने ईराक़ पर क़ब्ज़ा जमा लिया था। इस समय अङ्गरेज़ अधिकारियों ने वहाँ की जनता से अनेक प्रकार की मधुर प्रतिज्ञाएँ की थीं और स्वतन्त्रता दिलाने का प्रलोभन दिया गया था। ईराक़ से अङ्गरेज़ों को महासमर में धन और जन दोनों प्रकार की सहायता मिली। ईराक़ की जनता समर-समाप्ति के बाद स्वतन्त्रता-प्राप्ति के सुख-स्वप्न देखा करती थी। महासमर १९१८ में बन्द हो गया, लेकिन ईराक़ पर फिर भी अङ्गरेज़ों का शासन जारी रहा। कहा जाता था कि फ़ैसला हो रहा है। वास्तव में समर-कालीन गुप्त समझौतों के कारण और अनेक अन्य अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के कारण यह विलम्ब हो रहा था। दो साल इसी प्रकार निकल गए और देश इस अनिश्चयावस्था के कारण अधीर हो उठा। इसी समय यह चर्चा वहाँ पहुँची कि ईराक़ पर अङ्गरेज़ों की संरक्षकता स्थापित होने वाली है। बस, फिर क्या था। स्वतन्त्रता का आन्दोलन शुरू हो गया। ईराक़ में इस समय एक प्रकार से फ़ौजी शासन था। इसलिए जनता अपनी आवाज़ को ऊँची नहीं कर सकती थी। उधर १९२० में अमीर फ़ैसल सीरिया में अपना राज्य स्थापित कर चुका था और वह ईराक़ियों को बहुत चाहता था। ईराक़ियों को उसने उच्च पदों पर नियत किया था। यह मौक़ा देख कर देशभक्त ईराक़ी सीरिया में जाने लगे। वहाँ पर उन्होंने "अहदुल ईराक़ी" नामक एक संस्था बनाई और स्वतन्त्रता के लिए आन्दोलन करने लगे। सन् १९२० में जब सीरिया की राष्ट्रीय सभा का अधिवेशन हो रहा था, उसी समय उन्होंने भी ईराक़ी राष्ट्रीय सभा का अधिवेशन किया। इसमें अङ्गरेज़ी संरक्षकता का विरोध किया गया और ईराक़ी स्वतन्त्रता की घोषणा की गई और यह प्रस्ताव पास किया गया कि फ़ैसल के भाई अब्दुल्ला को ईराक़ का बादशाह बनाया जावे।

संग्राम

इसके तीन मास बाद ही सेनरेमों की सन्धि के अनुसार ईराक़ पर अङ्गरेज़ों की संरक्षकता स्वीकार कर ली गई। इस पर जनता में और भी क्रोध और असन्तोष की आग भड़क उठी। जिसका उनको भय था, वही बात हो गई। समरकाल के सब वादे मिथ्या साबित हुए। ईराक़ी लोग तुर्कों की अधीनता से निकले तो अङ्गरेज़ों की अधीनता आ गई। लोग कहने लगे कि इससे तो तुर्क ही अच्छे थे। इस आपत्ति को देख कर राष्ट्रीय सङ्गठन होने लगा। अब तक ईराक़ में सुन्नी

और शिया लोगों में प्रायः उत्पात हुआ करते थे, लेकिन इस समय देश को स्वतन्त्र करने के लिए सब परस्पर मिल गए। उधर अङ्गरेज़ लोग अपने नवीन शासन की व्यवस्था करने लगे। राष्ट्रीय जागृति के चिन्ह देख कर अङ्गरेज़ सरकार ने कुछ सन्धि करनी चाही, पर वह न हो सकी और आख़िर दबा हुआ असन्तोष रक्तमय उत्पात के रूप में प्रकट होने लगा। बग़दाद के अन्दर एक राष्ट्रीय सभा हुई, जिसमें अङ्गरेज़ी संरक्षकता का घोर विरोध हुआ और यह प्रस्ताव किया गया कि तुर्की राष्ट्रीय व्यवस्थापिका सभा यहाँ भी स्थापित की जावे।

तालिब पाशा

सन् १९२० में सर पर्सी कोक्स नामक एक बड़ा विद्वान और धुरन्धर अङ्गरेज़ राजनीतिज्ञ ईराक़ का हाकिम बन कर आया। उसने अपने नीचे बग़दाद के एक बड़े प्रतिष्ठित सरदार को ईराक़ सरकार का प्रधान बनाया और शासन में उसकी सहायता करने के लिए एक अरब लोगों के मन्त्रि-मण्डल की रचना की। इस सरदार का नाम तालिब पाशा था। इसका परिवार ईराक़ के उन चन्द प्रतिष्ठित घरानों में से था, जिनका पैग़म्बर मुहम्मद से सम्बन्ध बतलाया जाता था। इस वृद्ध सरदार के नाम पर वास्तव में अङ्गरेज़ अफ़सर शासन करना चाहता था। अङ्गरेज़ समझते थे कि मुसलमानों को परम्परा से अनियन्त्रित सत्ता के शासन की आदत पड़ी हुई है। इसलिए सरदार तालिब पाशा के शासन को वे आसानी से मान लेंगे। सरदार को शासक बनने का सौभाग्य केवल अङ्गरेज़ों के कारण हुआ था। इसलिए वह अङ्गरेज़ी अफ़सर की आज्ञा का कृतज्ञता-पूर्वक पालन करता रहेगा। परन्तु ईराक़ में राष्ट्रीय जागृति काफ़ी हो चुकी थी। जनता को यह व्यवस्था पसन्द नहीं आई। तालिब पाशा से लोग ख़ास तौर पर नाराज़ थे। वह अङ्गरेज़ों का भक्त था। उसके दो पुत्र इङ्गलैण्ड में पढ़ते थे और स्वयं उसने भी अङ्गरेज़ी लिखना-पढ़ना सीख लिया था। सन् १९२० में जब राष्ट्रीय आन्दोलन अत्यन्त ज़ोर पर था, तो उसने अङ्गरेज़ों को सहायता दी थी। इसलिए लोग उसको देशद्रोही समझते थे। अब लोगों को यह परवाह नहीं थी कि वह किसका वंशज है और उसका कुल कैसा है।

कैरो कॉन्फ्रेन्स

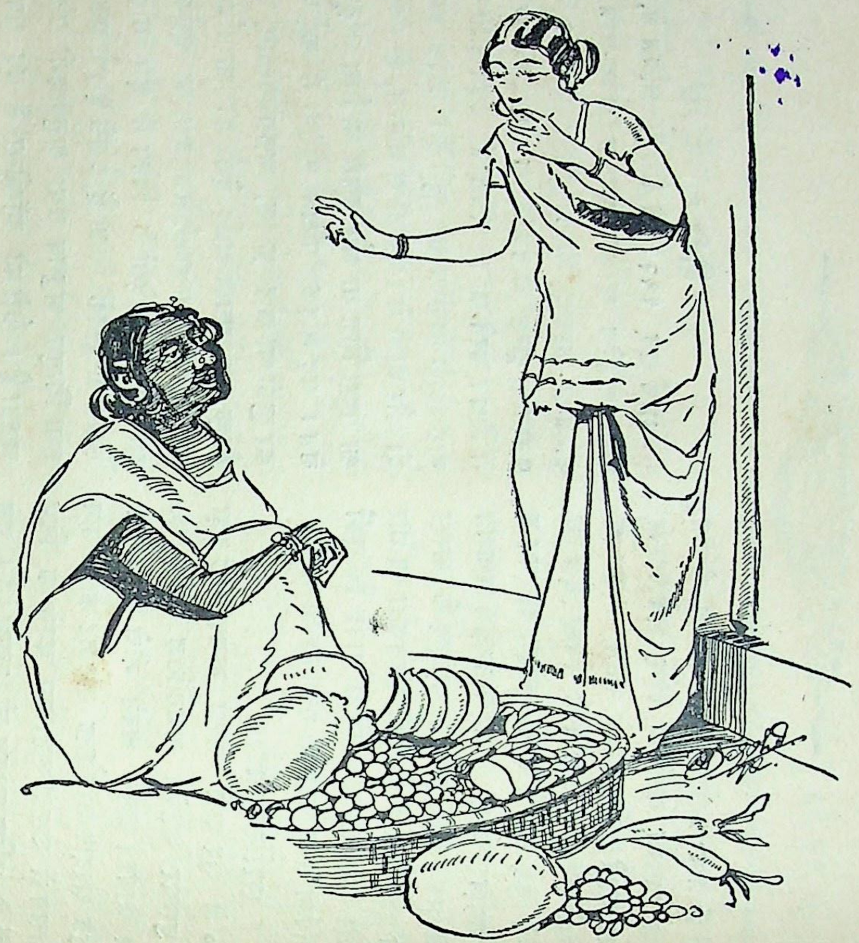
मार्च सन् १९२१ को कैरो में चर्चिल ने, जो उस समय अङ्गरेज़ सरकार का उपनिवेश-मन्त्री था, एक कॉन्फ्रेन्स करवाई थी। इसका कार्यक्रम था अरब, पेलस्तीन, ट्रान्स जार्डन, ईराक़ और मिसिर के विषय में निश्चय करने का। चर्चिल की हड़प-नीति का हम दो बार पहिले उल्लेख कर चुके हैं। उसकी इस नीति के दो और हामी थे। एक टॉम्स लॉरेन्स, जो मक्के के शरीफ़ का गहरा मित्र था और दूसरी थी मिस जरट्रूड लौथियन बेल। यह महिला पश्चिमी एशिया में कई बार भ्रमण कर चुकी थी और फ़ारस, अफ़ग़ानिस्तान, रूस, तुर्की, ईराक़, अरबस्तान आदि देशों की सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक तथा राजनैतिक दशा का इसको अद्भुत ज्ञान था। इन देशों के विषय में इस महिला ने जो लेख तथा पुस्तकें लिखी हैं, उससे इसका प्रखर पाण्डित्य तथा विस्तृत अनुभव तथा अनुवीक्षणी शक्ति का पता चलता है। कैरो की कॉन्फ्रेन्स में यह तय पाया कि फ़ैसल को ईराक़ का बादशाह बनाया जावे, अब्दुल्ला को ट्रान्स जार्डन के सिंहासन पर बैठाया जावे और मिसिर में अङ्गरेज़ों की संरक्षता जैसी की तैसी बनी रक्खी जावे। इस निश्चय के अनुकूल तालिब पाशा को अपने स्थल से हटाना था। इसलिए सर पर्सी कोक्स की सुन्दर पत्नी ने एक जाल रचा। उसने तालिब पाशा को अपने यहाँ चाय पीने बुलवाया और जब वह चाय पीकर जाने वाला था, तो उसको गिरफ़्तार कर लिया और वह लङ्का द्वीप में भेज दिया गया। ब्रिटिश सरकार ने घोषणा कर दी कि ईराक़ के लिए प्रजातन्त्र शासन उपयुक्त नहीं है और फ़ैसल उसके लिए अच्छा योग्य शासक है। दब्बू मन्त्रि-मण्डल ने उसको तत्काल अपना बादशाह मान लिया। ज़िलों में इसकी घोषणा की गई और संसार को दिखाने के लिए जनता द्वारा फ़ैसल के निर्वाचन का ताण्डव रचा गया। ज़िलों में लोगों से नाम-मात्र को पूछा गया कि उनको फ़ैसल की बादशाहत स्वीकार है न। विरोधी मत की उपेक्षा की गई और दबाव में जिन लोगों ने हाँ कर दिया, उसको प्रतिनिधि-मत मान कर घोषणा कर दी गई कि ईराक़ को फ़ैसल की बादशाहत सहर्ष स्वीकार है।

(क्रमशः)

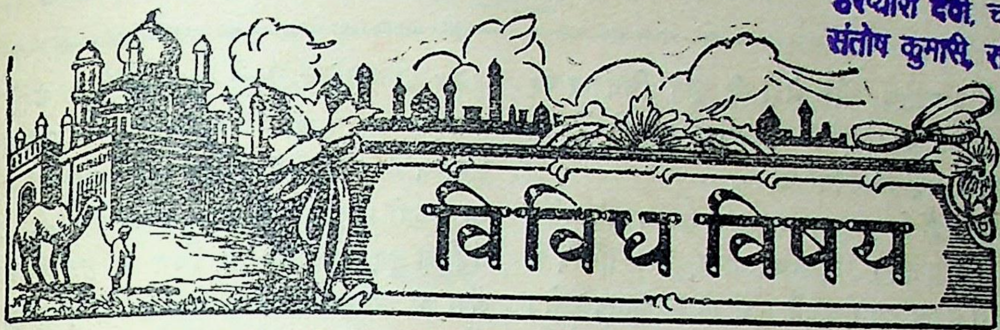
शिक्षिता और अशिक्षिता गृहिणियाँ



"याद कर लो, एक रुपए के जितने सेर एक आने की उतनी ही छटाँक।"



"अधेले की मूली और डेढ़ पैसे के गाजर— कुल कितने हुए?"



प्राचीन भारत में चित्र-कला

भारतीय सभ्यता के प्रधान अङ्ग उन कलाओं के आधार पर स्थित हैं, जिनका साहित्य ने "सत्यं शिवम् सुन्दरं" स्वरूप बतलाया है। कला और साहित्य के समानादर्श द्वारा जीवन को सुखकर, शान्त एवम् माधुर्यमय बनाना, यही हमारी प्राच्य सभ्यता की नींव रही है। इसी कला और साहित्य का एकीकरण करके एक ऐसी अपूर्व सभ्यता का प्रादुर्भाव हुआ, जिसके कारण हम अपनी सभ्यता का अब तक अभिमान करते हैं। हमारी सभ्यता, यही कारण है कि आज भी, मानसिक, नैतिक एवम् अध्यात्मिक क्षेत्र में संसार की सभी सभ्यताओं से बढ़ी हुई है। ऐसे ही उच्च और सद्वातावरण में पल कर भारत में ६४ कलाओं का जन्म हुआ। वात्स्यायन ने अपने कामसूत्र में इन्हीं ६४ कलाओं को नागरिक तथा दाम्पत्य जीवन का आधार-स्तम्भ माना है। ६४ कलाओं ने नागरिक जीवन का प्रधान अङ्ग होने के कारण उन्नति किया। इन्हीं कलाओं में से चित्र-कला भी एक है।

प्राचीन भारत में आदि-काल से ही चित्र-कला वर्तमान थी। आर्य लोग जहाँ कोई विशेष कार्य करते थे, वहाँ वे उस कार्य की स्मृति का भी कोई चिह्न छोड़ देते थे। वह चिह्न बहुत रूपों में होता था। कहीं यूप स्थापित होते थे, कहीं पत्थर की चट्टानों पर ही कुछ खुदाई कर दी जाती थी, और कहीं स्तम्भ खड़े कर दिए जाते थे। कहीं-कहीं गुफाओं में चित्र भी बना दिया जाता था, जिसका उदाहरण अब भी मिरज़ापुर, सरगुजा और मध्य-प्रान्त के बहुत से स्थानों में वर्तमान है। परन्तु यह आदि-कालिक है। इनके विषय में अधिक नहीं कहा जा सकता। यह चित्र केवल रेखा मात्र हैं, उनमें कुलहाड़ी, भाले आदि बने हैं, परन्तु वे समय के चक्र से अभी तक अमिट हैं, उनके रङ्गों में अभी भी एक ऐसा ताज़ापन है, जिससे वे बहुत अल्पकालीन मालूम होते हैं।

गुप्तकाल भारत की सभी ललित कलाओं के लिए स्वर्णयुग था। यही काल था, जब भारत ने अपनी चिरस्थायी सम्पत्ति का सञ्चय किया। इस समय सभी कलाओं का सम्मार्जन हुआ और वे एक नवीन साँचे में ढाली गईं। ऐतिहासिकों का कथन है कि उस समय प्रायः सब पुराण भी पुनः लिखे गए। नाटकों की नवीन आदर्श पर रचना हुई। साहित्य और समाज की उन्नति के साथ कलाओं की भी उन्नति हुई। इसी समय प्रसिद्ध अजन्ता की गुफाओं में भी बुद्ध भिक्षुओं द्वारा (Fresco, and Tempera Painting) चित्र बनाए गए, जो भारतीय चित्र-कला के सर्वोत्कृष्ट नमूने हैं।

इस समय समाज के भिन्न-भिन्न वर्ण की भिन्न-भिन्न चित्ररुचि थी। सम्राट रेखा-चित्र पसन्द करते थे। धनी नागरिकों की रुचि विशेषतः प्रकाश और रङ्गों की छाया पर थी। महिला-समाज रत्नाभरण, वस्त्र और रङ्ग-बिरङ्गे चित्रों का आदर करता था। अतः चित्रकार को समाज-विशेष की रुचि का ख़याल करके चित्र बनाना होता था। इनमें "षडङ्गों" (Six Units) का ध्यान सदैव रक्खा जाता था। वात्स्यायन ने कामसूत्र में षड्अङ्गों का निम्न-लिखित वर्णन किया है :—

१—रूप-भेद	अर्थात्	स्वरूप का ८ ज्ञान
२—प्रमाण	,,	ठीक, रङ्ग आकार, ढाँचा इत्यादि
३—भाव	,,	चित्रण का प्रधान भाव और वैसा ही आकार
४—लावण्य-योजना	,,	चित्रण में सौन्दर्य और कला-विशेषता
५—सादृश्य	,,	समानता
६—वर्णिका भङ्ग	,,	क़लम

इन्हीं ६ प्रमाण और भेदों की पूर्ति चित्रकार का उद्देश्य रहता था। इनकी सम्पूर्णता ही चित्रों की अलौकिकता प्रदर्शित करती थी।

बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार महाउमग्ग जातक ने अनेक सुन्दर चित्र बनाए। यह चित्र बाहर और प्रसाद के अन्तरङ्ग में बनाए गए। इनमें शकों की शानबान, सुमेरु पर्वत, समुद्र और महासागर, चार द्वीप, हिमवत् गिरि, कज्जल का पर्वत, सूर्य और चन्द्र, स्वर्गलोक आदि के चित्र महाराज प्रसेनजित कौशलराज के प्रासाद में वर्तमान थे। प्रसेनजित की श्रावस्ती में चित्रों का बड़ा आदर था तथा चित्र नागरिकों के गृहों का एक आवश्यक अङ्ग था। किसी पर्व के अवसर पर राजा की ओर से तथा नागरिकों द्वारा नगरी सजाई जाती थी। राज-पथ के दोनों ओर रङ्ग-बिरङ्गी ध्वजा-पताकाएँ टाँगी जाती थीं और अनेक सुन्दर चित्र भी साथ ही साथ लगा दिए जाते थे, जिनमें धार्मिक, पौराणिक और प्रणय-दृश्य रहते थे। इसी तरह प्रायः सभी घरों की भीतरी दीवालों पर रङ्गसाज़ी के काम रहते थे। धर्म-प्रचार में भी चित्रकला द्वारा काम लिया जाता था। जहाँ कोई क्लिष्ट भाव स्पष्ट करना होता अथवा किसी समूह पर किसी बात का ध्यान आकर्षित करना होता, वहाँ चित्रों की उपादेयता और भी बढ़ जाती।

चित्रकारी की कला में सर्वज्ञ एवम् निपुण वर्ग "नख" नाम से प्रसिद्ध थे। वे लोग ऐसा चित्राधार (Frame) बनाते थे, जिस पर अनेक प्रकार के चित्र बन सकते थे, जो भले और बुरे कामों के परिणामों को दिखलाते थे। परन्तु इन चित्रों में भी एक तरह का भेद-भाव किया जाता था। प्रेम का दृश्य केवल अन्तःपुर में रक्खा जाता था और कर्मफल दिखाने वाले चित्र मन्दिरों की दीवालों पर बनाए जाते थे। चित्र कई प्रकार से बनाए जाते थे (वात्स्यायन और विष्णुधर्मोत्तर), इनमें किरमिच (Board and Canvas, Slags) के चित्रों का बहुतायत से प्रचार था। एक बार चाणक्य के एक गुप्तचर ने सभा में एक किरमिच के चित्रपट को चन्द्रगुप्त के महलों में फैला कर दिखाया था।

बौद्ध ग्रन्थ तथा ऐतिहासिक खोज के अतिरिक्त पुराणों में भी चित्र-नैपुण्य की अनेक कथाएँ हैं। एक समय ब्रह्मा ने एक राजा का चित्र बना कर एक ब्राह्मण-कुमार को जीवित किया तथा जीवित करने की विधि बताई। अतः ब्रह्मा ने पहले-पहल चित्र बनाया। इस सम्बन्ध में ऊषा और अनिरुद्ध की कथा भी नहीं भुलाई जा सकती। ऊषा की सखी चित्रलेखा ने उसके स्वप्न में मिले हुए प्रियतम का चित्र अङ्कित किया। उसने ऊषा की उत्कण्ठा शान्त करने के लिए अनेक देवताओं और महापुरुषों का चित्र खींचा, जिससे ऊषा अपने प्रियतम को पा सके। यद्यपि इसका इतिहास से कोई सम्बन्ध नहीं, पर चित्र-कला की दृष्टि से यह पौराणिक घटना अवश्य महत्वपूर्ण है। इतिहास की दृष्टि से चित्रकारी पत्थर और गुफाओं के रेखा-चित्र तथा उन्हीं समयों के मनुष्यों की कुल्हाड़ी से ज्ञात होती है। पर यदि पुराणों का आधार मान कर चित्र-कला का इतिहास देखा जाय, तो हमारा दृष्टिकोण बदल जायगा। पुराणों में रामायण तथा महाभारत पढ़ कर लोग इसका अनुमान कर सकते हैं कि इन ग्रन्थकारों की कितनी सुन्दर कल्पना थी। यदि इन्हीं कल्पनाओं का खचित प्रतिबिम्ब बनाया जाय, तो वह कला की कितनी बड़ी निधि हो।

जिस समय भारत में बौद्ध-धर्म का प्राधान्य था, उस समय भिक्षुओं ने धर्म-प्रचार के लिए प्रायः सभी आधुनिक उपायों का अनुसरण किया। अशोक के समय में धर्म-प्रचार के लिए उपदेश, नाटक, व्याख्यान सभी होते थे। इस सम्बन्ध में अनेक स्थानों में अशोक ने स्तूप बनवाए, पत्थर की चट्टानों पर नागरिकों के आत्म-शमन का नियम खुदवाया। इसी समय चित्र-कला का भी आरम्भ हुआ। चित्र-कला के इतिहासकार तारानाथ ने, जो तिब्बत के निवासी थे, १८वीं शताब्दी में एक चित्र-कला का इतिहास लिखा। उनके अनुसार चित्रकारी यक्षों ने आरम्भ की थी। उनके पश्चात् नागार्जुनों ने चित्र-कला का कार्य किया। यह अशोक के समय (ईसा से २५० पूर्व) में राज-सभा का कार्य करते रहे। उनके अनुसार जहाँ कहीं बौद्ध-धर्म का प्रचार हुआ, वहाँ उसकी चित्र-कला ने भी अत्यन्त प्रभाव प्रगट किया।

चित्रकारी में बौद्ध भिक्षुओं ने भी कहीं-कहीं कमाल कर दिखाया है। भारत में अनेक बौद्ध गुफाएँ हैं। पर अजन्ता के गुफा-चित्र संसार-प्रसिद्ध हैं। इतिहास बतलाता है कि ये कन्दराएँ भिक्षुओं की विश्राम-स्थल थीं।

इन कन्दराओं के बारे में एक दन्त-कथा प्रचलित है, जिसका सारांश यह है कि ये सब चित्र देवी-देवताओं के स्वरूप हैं, जो वहाँ स्वयम् इस रूप में वर्तमान हैं।

—शीतलाप्रसाद तिवारी, विशारद;
श्रीशचन्द्र पाण्डेय

❀ ❀ ❀

मुसलमान बादशाहों की प्राचीन राजधानियाँ

भारतवर्ष के प्रायः प्रत्येक मुसलमान बादशाह ने अपने समय में अपनी अलग राजधानी बनाई। उनमें से कुछ तो बिलकुल उजाड़ हो गई हैं और कुछ अब भी मौजूद हैं। ग़ुलाम, ख़िलजी और तुग़लक़ वंश के बादशाहों की राजधानियाँ अब उजाड़ हो गई हैं। इसका कारण केवल यही है कि इन वंशों के बादशाहों ने अपनी नई राजधानी बनाने के लिए पुरानी राजधानियों की सामग्री से काम लिया। परन्तु मुग़ल बादशाहों ने ऐसा नहीं किया, इसीसे इनकी राजधानियाँ और इनके प्राचीन स्मृति-चिन्ह-स्वरूप मौजूद हैं। वास्तव में लॉर्ड कर्ज़न को सैकड़ों बार धन्यवाद देना चाहिए, जिन्होंने प्राचीन स्मृति-चिन्हों तथा इमारतों की रक्षा के लिए सन् १९०४ में प्राचीन स्मारक-रक्षा सम्बन्धी क़ानून (Ancient Monuments Preservation Act) पास किया, जिससे कि भारतीय प्राचीन इमारतों की रक्षा भली-भाँति हो रही है। जब लॉर्ड कर्ज़न भारत में राज-प्रतिनिधि बन कर आए, तो प्राचीन इमारतों को देख कर अति प्रसन्न हुए और 'ताजबीबी के रौज़े' के लिए एक चाँदी का प्रदीप भी भेंट किया।

इन्होंने यह भी देखा कि प्राचीन इमारतों की दशा बड़ी ख़राब हो रही है और अङ्गरेज़ अफ़सरों ने उनमें अपने रहने का स्थान बना रक्खा है। उनसे यह देख कर न रहा गया। उन्होंने उन अफ़सरों को वहाँ से निकल कर दूसरी जगह रहने का हुक्म दिया और इसके बाद शीघ्र ही उपर्युक्त क़ानून पास करा कर प्राचीन इमारतों की मरम्मत तथा रक्षा का प्रबन्ध कर डाला। इस प्रकार बहुत सी प्राचीन इमारतें नष्ट होने से बच गईं।

तेरहवीं सदी में सबसे पहले ग़ुलाम वंश के तीन बादशाहों ने (कुतुबउद्दीन ऐबक, इलतुतमश, बलबन) शहर दिल्ली, क़िला रायपिथौरा में अपनी राजधानी बनाई और बलबन के समय तक यही राजधानी रही। परन्तु इस वंश के बादशाह कैक़बाद ने 'क़िला रायपिथौरा' से कुछ दूर उत्तर की ओर 'किलोखेरी' (Kilokheri) स्थान पर अपनी राजधानी बनाई और यहीं पर एक शहर भी बसाया, जिसका नाम 'नया शहर' रक्खा। अब इसका कुछ पता नहीं है।

ख़िलजी वंश के प्रसिद्ध बादशाह अलाउद्दीन ने भी यहीं पर अपनी राजधानी रक्खी और मङ्गोलों के भयङ्कर आक्रमणों से दो बार 'किलोखेरी' अर्थात् 'नया शहर' को बचाया। परन्तु भय के कारण अन्त में इसे अपनी राजधानी बदलनी पड़ी। 'किलोखेरी' से हट कर कुछ दूर उत्तर की ओर 'सीरी' नामक स्थान पर एक नई राजधानी बनी। यहाँ इसने एक क़िला तथा हज़ार खम्भों का एक महल भी बनवाया था। कहा जाता है कि इस महल की नींव में एक हज़ार मङ्गोलों के सिर दफ़न हैं। यह महल अब बिलकुल उजाड़ हो गया है और इसके कुछ चिन्ह भी नहीं पाए जाते।

फिर चौदहवीं शताब्दी में तुग़लक़-वंश के बादशाहों ने मङ्गोलों के आक्रमणों के भय के कारण 'सीरी' को छोड़ कर उससे कुछ उत्तर की ओर एक सुरक्षित स्थान पर अपनी नई राजधानी बनाई, जिसका नाम तुग़लक़ाबाद रक्खा। इन्होंने इस जगह एक विशाल क़िला भी बनाया था, जिसका खँड़हर अभी तक मौजूद है। इस विशाल खँड़हर से पता लगता है कि अपने समय का यह एक अद्भुत तथा उत्कृष्ट क़िला रहा है।

इसी वंश के मुहम्मद तुग़लक़ ने भी एक नई राजधानी बनाने की अभिलाषा में तुग़लक़ाबाद के पास दो छोटे-छोटे क़िले बनवाए और एक शहर भी बसाया, जिसका नाम अदीलाबाद रक्खा। इसी जगह इसने हज़ार खम्भों का एक लकड़ी का सभा-भवन बनवाया था। इस विशाल सभा-भवन की छत भी लकड़ी ही की बनवाई। यहीं पर एक लकड़ी का एक दूसरा महल भी बनवाया, जिसमें उसके पिता की मृत्यु हुई। इसका पिता इसी महल के गिरने से इसी में दब कर मरा था। यह भी कहा जाता है कि इसने जान-बूझ कर यह महल

अपने पिता को मार डालने की इच्छा से बनवाया था। इसके उस लकड़ी के महल तथा सभा-भवन का अब कोई पता नहीं मिलता। वे अब इतिहास की सामग्री मात्र हैं। इसके बाद इसने मङ्गोलों तथा मेवाती डाकुओं के से सीरी तथा 'किलोखेरी' के मध्य भाग को चारों ओर एक पक्की दीवार से घेरवा लिया और इसका नाम 'जहाँपनाह' रक्खा। बस यही इसकी राजधानी थी, इस दीवार के कुछ खँड़हर अभी हैं। इसने दक्खिन के दौलताबाद को भी अपनी राजधानी बनाई थी। इसके बाद फ़ीरोज़ तुग़लक़ ने दिल्ली ही में फ़ीरोज़ाबाद नाम की एक नई राजधानी बनाई। यहाँ पर इसने एक महल और एक क़िला भी बनवाया था, जोकि 'कोटला फ़ीरोज़शाह' के नाम से प्रसिद्ध है, इसके खँडहर देखने में आते हैं।

इसके बाद पन्द्रहवीं शताब्दी में सय्यद वंश के बादशाहों में खिज़्र ख़ाँ ने अपने नाम पर एक नई राजधानी 'खिज़राबाद' नाम की बनाई। इसके पुत्र मुबारकशाह ने भी अपने नाम की एक अलग राजधानी "मुबारकाबाद" नाम की बनाई थी। इनके बाद 'लोधी' वंश के बादशाहों ने कोई नई राजधानी नहीं बनाई। उन्होंने 'सीरी' में ही अपनी राजधानी रक्खी। परन्तु सिकन्दर लोधी ने अपनी राजधानी आगरा के पूर्व की ओर बनाई। सिकन्दर लोधी ही ने पहली बार आगरा में राजधानी बनाने की बुनियाद डाली थी। इससे पहले किसी भी मुसलमान बादशाह ने आगरा में राजधानी नहीं बनाई थी। इसके बाद सूर वंश के प्रसिद्ध बादशाह शेरशाह सूर ने अपनी राजधानी दिल्ली में बनाई और उसका नाम शेरगढ़ रक्खा। यह आजकल यहाँ 'पुराना क़िला' के नाम से प्रसिद्ध है। इसकी मृत्यु हो जाने के कारण इसकी राजधानी अधूरी ही बन कर रह गई थी। इसलिए इसके पुत्र सलीमशाह तथा बादशाह हुमायूँ ने उसे पूरा किया था। यह क़िला टूटी-फूटी हालत में अब भी मौजूद है।

शेरशाह के पुत्र सलीमशाह ने अपनी राजधानी यमुना नदी में एक टापू पर 'सलीमगढ़' नाम की बनाई। इसी क़िले में बादशाह औरङ्गज़ेब ने अपने भाई मुराद बख़्श को क़ैद कर रक्खा था। यह क़िला अब बिलकुल उजाड़ हो गया है।

इसके बाद मुग़ल बादशाहों में बादशाह बाबर ने अपनी राजधानी आगरा ही में रहने दी। परन्तु इसके पुत्र हुमायूँ ने दिल्ली में राजधानी बनाई। इसके बाद इसके पुत्र सम्राट अकबर ने अपनी राजधानी पहले कुछ साल तक दिल्ली, फिर आगरा, अन्त में फ़तहपुर सिकरी में बनाई। फ़तहपुर सिकरी में राजधानी बनाने के कई कारण थे। पहले तो इसके पुत्र आगरा में नहीं जीते थे। दूसरे इसके दो पुत्र सलीम तथा मुराद सिकरी में शेख़ सलीम चिश्ती की शरण में जन्मे। दोनों पुत्र जिस रङ्गमहल में पैदा हुए थे, वह अब भी मौजूद है। तीसरे यहाँ पर इमारती पत्थर बहुतायत से थे। चौथे यह एक अच्छी जगह थी। राजधानी तथा ब्यूह (Military) दोनों के लेहाज़ से उपयुक्त स्थान था। पाँचवें इनके दादा बाबर बादशाह यहाँ पर वायु-सेवन के लिए आया करते थे और यहीं पर उन्होंने 'बाबरनामा' नाम का प्रसिद्ध फ़ारसी ग्रन्थ भी लिखा था। इसके अतिरिक्त अकबर ने शेख़ सलीम चिश्ती की सेवा करने की अभिलाषा के कारण यहीं पर राजधानी बनाना मुनासिब समझी। यहाँ पर इसने और भी कई इमारतें बनवाईं, जैसे जामए मसजिद, सलीम चिश्ती का मक़बरा, पञ्चमहल, बलन्द दरवाज़ा, रानी जोधबाई का महल, दीवाने-ख़ास और हिरन मीनार इत्यादि। इस प्रकार यह स्थान पाँच साल के अन्दर एक बड़ा शहर हो गया। रैलफ़-फ़िच (Ralph Fitch) सन् १५८५ में लिखते हैं कि आगरा तथा फ़तहपुर सिकरी दो बड़े शहर हैं और हर एक लन्दन से बड़ा है। यहाँ अकबर बादशाह ने पानी का भी बड़ा अच्छा तथा विचित्र प्रबन्ध कर लिया था। परन्तु गरमियों में वह नक़ली झील, जिससे कि शहर भर को पानी मिलता, सूख जाती थी और वर्षा में उसमें बाढ़ आ जाती थी। फलतः एक बार झील का बाँध टूट गया और सारे शहर में बड़े ज़ोरों के साथ बाढ़ आ गई, जिससे कि अकबर को 'सिकरी' छोड़ना पड़ा और फिर आगरा में राजधानी बनाई। इसके पुत्र जहाँगीर ने भी आगरा ही में राजधानी बनाई। आगरा में 'आगरा फ़ोर्ट' ही में राजधानी थी। यह क़िला अभी भी अच्छी हालत में है और सिकरी भी, जोकि आगरा से १९ मील की दूरी पर है, अच्छी हालत में है। यह देखने योग्य

स्थान है। जहाँगीर के पुत्र शाहजहाँ ने फिर दिल्ली में अपनी राजधानी बनाई। यह दिल्ली के क़िले के नाम से प्रसिद्ध है और अच्छी हालत में है। वास्तव में यह भी देखने योग्य है। शाहजहाँ को सङ्गमरमर की इमारत बनाने का बड़ा शौक़ था। 'ताजबीबी का रौज़ा' इसी का बनवाया है। इसकी बनवाई इमारतें क़रीब-क़रीब सब सङ्गमरमर की हैं। इसके पुत्र औरङ्गज़ेब ने भी आगरा में अपनी राजधानी क़ायम रक्खी। इसके बाद इसके वंश के और बादशाहों ने भी दिल्ली ही में अपनी राजधानी रक्खी। बस मुसलमान बादशाहों की यही भिन्न-भिन्न राजधानियाँ हैं। इसी प्रकार आजकल अङ्गरेज़ों ने अपनी राजधानी 'न्यू देहली' (New Delhi) में बनाई है।

—विक्रमादित्यसिंह निगम, एम० ए०

❀ ❀ ❀

बाल-क्रीड़ा

प्राकृतिक नियमानुसार प्राणिमात्र की अवस्थाओं के पृथक्-पृथक् ध्येय होते हैं। वसन्त ऋतु में प्रकृति अपने नवीन पत्तों और पुष्पों से सुशोभित होती है, परन्तु फिर थोड़े समय के बाद वही पुष्प स्वादिष्ट फल के रूप में परिणत होकर अन्त में पुनः बीज रूप में परिणत हो जाते हैं। यही दशा मानव-जीवन की भी है। हमारे जीवन की भी तीन मुख्य अवस्थाएँ होती हैं, जैसे बाल्यावस्था, तरुणावस्था और वृद्धावस्था। बाल्यावस्था में हमें खेल अच्छे लगते हैं। युवावस्था में सौन्दर्य-लिप्सा की वृद्धि होती है और वृद्धावस्था में त्याग की अभिरुचि बढ़ती है। यही कार्यक्रम हमें पशु-जगत और वनस्पति-जगत में भी दिखाई पड़ता है। चौपायों के बच्चे भी बाल्यावस्था में उछलते-कूदते और युवावस्था और वृद्धावस्था में युवा और जरावस्था के कार्यों में संलग्न दिखाई देते हैं। परन्तु पशुओं और वनस्पतियों की अपेक्षा मनुष्यों में इन अवस्थाओं का कार्यक्रम अधिक काल तक जारी रहता है। इन अवस्थाओं में क्रमानुसार शक्ति की भी न्यूनता और अधिकता होती है।

बाल्यावस्था, जिसे हम मानव-जीवन की बुनियाद कह सकते हैं, उसमें शक्ति के आधिपत्य के सिवा और भी अनेक भावनाएँ बलवती होती हैं। परन्तु हमारे लेख का विषय केवल बालक्रीड़ा से सम्बन्ध रखता है, इसलिए हम अन्य अवस्थाओं पर यहाँ प्रकाश डालना असङ्गत समझते हैं। यद्यपि अन्य भावनाएँ ऊँची अवस्थाओं से सम्बन्ध रखती हैं, परन्तु उनके अङ्कुर बाल्यावस्था में ही जम जाते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि बाल्यावस्था में ही सब प्रकार की शारीरिक शक्तियों का प्रादुर्भाव होता है। परन्तु उस समय उनका व्यय बहुत ही कम होता है। शक्तियों को बढ़ाने वाले पदार्थों का प्रभाव पन्द्रह दिन से लेकर अधिक से अधिक नौ महीने तक रहता है। परन्तु यदि हिसाब लगाया जावे तो इस अवस्था में उनका व्यय बिल्कुल ही नहीं होता। बच्चों की कितनी हरकतें शक्ति को पैदा करने के लिए ही अधिक हुआ करती हैं। फिर जैसे-जैसे सुख और दुःख के अनुभव का ज्ञान बढ़ता है, वैसे ही वैसे बच्चे की शक्ति का व्यय भी होता है। पाँच वर्षों तक बच्चों की शक्ति का व्यय अधिकतर खेलों द्वारा ही होता है। परन्तु कतिपय तत्ववेत्ताओं के मतानुसार बच्चों के खेल एक पृथक् वृत्ति होती है और विभिन्न वृत्तियों के अभाव में, बाल्यावस्था में यही वृत्ति प्रबल रहती है। हम अपनी सुविधा के लिए इन दोनों प्रकार के विचारों को एक कर देना चाहते हैं, और तब हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि बाल्यावस्था में वृत्ति के साथ-साथ शक्ति भी अधिक होती है और उसका स्वरूप खेल द्वारा ही प्रगट होता है।

हम नित्य-प्रति के कार्यों द्वारा अनुभव करते हैं कि प्रत्येक कार्य के आरम्भ में बहुत सी युक्तियों तथा अन्य प्रकार के उपादानों की आवश्यकता पड़ती है। जैसे, एक मकान बनवाने के लिए मज़दूर, सामान और रुपए की आवश्यकता पड़ती है, उसी तरह बालक अपने खेलों द्वारा शक्ति आदि जीवनोपयोगी सामानों का संग्रह करता है। अतः खेल बच्चे के लिए खाद्य पदार्थ से भी बढ़ कर उपयोगी वस्तु है। खेल की परिभाषा यही हो सकती है कि उसमें अधिक से अधिक स्वतन्त्रता और मनोरञ्जन हो। बच्चे केवल पहली क्रिया को समझते हैं और दूसरी क्रिया वृत्ति के अन्तर्गत रहती है। इसीलिए आजकल के पाश्चात्य खेल, जैसे हॉकी, टेनिस, फ़ुटबॉल और क्रीकेट आदि छोटे बच्चों के

लिए अनुपयोगी समझे जाते हैं। क्योंकि इनमें स्वतन्त्रता नहीं होती। उनसे केवल हमारे विशेष अङ्ग ही सुडौल और शक्तिशाली बन सकते हैं, सब अङ्गों को उनसे बहुत कम लाभ पहुँचता है। ये खेल कृत्रिम हैं, उनमें नियम आदि की बड़ी कड़ी पाबन्दी रहती है। परन्तु दौड़ना, कूदना, मट्टी के घिरौंदे बनाना, माता-पिता की पीठ पर चढ़ जाना, काठ के घोड़े पर सवार होकर दौड़ना और किसी चीज़ को उठा कर मुँह में डाल लेना और जीवन की घटनाओं का अनुकरण आदि स्वाभाविक हैं—बच्चों के स्वभाव के अनुकूल हैं। साथ ही इन खेलों में भावी जीवन के अधिक सन्तोषजनक चिन्ह दिखलाई देते हैं। दौड़ने से शरीर का कोई भी अवयव ऐसा नहीं होता, जो काम न करता हो। यहाँ तक कि दौड़ने के समय मस्तिष्क को भी काम करना पड़ता है। मेरुदण्ड, मांसपेशियाँ, स्पर्शेन्द्रियाँ आदि सभी अङ्गों को दौड़ने के समय काम करना पड़ता है। उस समय प्रबल सङ्घर्ष के कारण प्रत्येक अङ्ग में रक्त का सञ्चार तेज़ी से होता है और मल इत्यादि स्वतः ही रक्त से पृथक् हो जाते हैं। गेंद खेलने में दृष्टि, ध्यान और निर्णय की अधिक आवश्यकता होती है। अतः जिन अङ्गों से इन क्रियाओं का सम्बन्ध होता है, वे गेंद खेलने से शक्तिशाली होते हैं। यह याद रखना चाहिए कि शरीर के अङ्गों की पुष्टि के लिए बाल्यावस्था ही उपयुक्त समय है। इसके बाद तो नाना प्रकार की चिन्ताओं से ही कम अवकाश मिलता है और उस समय शारीरिक अवयवों की उन्नति की ओर ध्यान देना गौण विषय हो जाता है। ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों की पुष्टि का समय बाल्यावस्था के बाद आता है। परन्तु बाल्यावस्था के खेलों के साथ ही अज्ञात रूप से उनकी उन्नति की नींव भी पड़ जानी चाहिए।

हमारी शक्ति का साठ फ़ीसदी उपयोगी और अवशिष्ट चालीस फ़ीसदी अनुपयोगी कार्यों में व्यय होता है। परन्तु खेल द्वारा बच्चों का उपयोग उपयुक्त अनुपात से कुछ अधिक होता है। परन्तु ज्यों-ज्यों उम्र बढ़ने लगती है, त्यों-त्यों वह ठीक अनुपात की ओर अग्रसर होने लगती है। नौ वर्ष की अवस्था से उपयोगी कार्यों में शक्ति का व्यय होना अधिक हो जाता है। कितने ही विद्वानों का मत है कि ६ वर्ष की अवस्था से ही न्यूनाधिक उपयोगी कार्यों में शक्ति का व्यय होना उचित और आवश्यक है। इस अवस्था में केवल शिक्षा द्वारा ही शक्ति का उचित व्यय होता है। इसलिए प्रत्येक माता-पिता का कर्तव्य है कि बालक के ६-७ वर्ष की अवस्था तक पहुँचते ही खेल के साथ ही उसकी शिक्षा भी आरम्भ करा दें, ताकि उनकी शक्तियों का निरर्थक व्यय न होने पाए। बच्चों का मस्तिष्क बड़ा ही कोमल और कमज़ोर होता है। वह विषय की गम्भीरता को आसानी से ग्रहण नहीं कर सकता। इसलिए बच्चों के अभिभावकों का कर्तव्य है कि वे बच्चों की ज्ञानेन्द्रियों, स्पर्शेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों को पृथक्-पृथक् शिक्षित करने का उद्योग करें। परन्तु उनकी शिक्षा अलग-अलग होने पर कार्य में उनका अविच्छिन्न सम्बन्ध होना चाहिए। श्रोतेन्द्रियों की शक्ति इतनी चेतन होनी चाहिए कि वे शब्दों की विषमता को शीघ्र ही ग्रहण कर सकें। इस देश में बहुत कम ऐसे बच्चे मिलेंगे, जो शब्दों की विषमता को ८ से १२ वर्ष तक की अवस्था से पहले पहचान सकते हों। परन्तु इसके विपरीत यूरोप आदि अन्य देशों के बच्चे इस अवस्था से पहले ही यह ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। यूरोप वाले अपने बच्चों को आठ-नौ वर्ष की अवस्था में ही रेडियो और बेतार के तार के सिद्धान्तों को समझाने की चेष्टा करने लगते हैं। यह कार्य वहाँ खेल द्वारा तथा नाना प्रकार के मनोरञ्जक उपायों द्वारा किया जाता है। किण्डर गार्टन शिक्षा-प्रणाली इसके लिए बहुत ही उपयुक्त है। बच्चों की रचनात्मिका शक्ति को उत्तेजन प्रदान करने के लिए यह प्रणाली बड़ी ही उपयोगी है। फलतः खेल के साथ ही शिक्षा का कार्य भी प्रारम्भ हो जाना चाहिए।

यूरोप वाले अपने बच्चों को खेल के साथ ही स्वच्छता और सामाजिक आचार-विचार की भी शिक्षा प्रदान करते हैं। साथ ही उन्हें निडरता की शिक्षा भी उसी समय दी जाती है। वे अपने बालकों के जीवन को आरम्भ से ही प्रयोगात्मक बनाते हैं। इसी से उनका जीवन हमारी अपेक्षा अधिक सफल होता है।

प्रोफ़ेसर जेम्स नाम के एक विद्वान का कथन है कि बहुत सी मांसपेशियाँ खेल द्वारा ही अपना काम आरम्भ कर देती हैं। इनमें विचारों का समावेश भी खेल द्वारा ही होता है। इसलिए बच्चों के खेल की ओर

उनके अभिभावकों को अधिक ध्यान देना चाहिए और उन्हें ऐसे खेल खेलने देना चाहिए, जिनसे उनकी शारीरिक और मानसिक उन्नति हो सके।

—रामसहाय शर्मा

❀ ❀ ❀

देहाती स्त्रियों में परदा और शिष्टाचार

परदे का मूल रूप है लाज और लिहाज़। लज्जा में परदे का समावेश हो सकता है, पर परदे में लज्जा का नहीं। लाज-लिहाज़ शिष्टाचार का एक प्रधान अङ्ग है। अतः परदा भी शिष्टाचार का एक अङ्ग है। परदे का असल महत्व तभी तक रह सकता है, जब तक वह लज्जा के अन्दर है। लज्जा से स्वतन्त्र होते ही वह शिष्टाचार का अङ्ग नहीं रह जाता; वह तो आवरण मात्र है। प्राचीन परदे का रूप-आधार इसी उद्देश्य पर अवलम्बित था। पर मुसलमानों के संसर्ग और अत्याचार से उसमें कृत्रिमता आ गई और उसका असल तत्व नष्ट हो गया। आधुनिक परदा उसी का विकृत रूप है। पहले उसका जो कुछ भी रूप था, वह परिस्थिति के अनुकूल था। कभी किसी ने उसका विरोध नहीं किया। पर आजकल तो यह समय के बिलकुल विपरीत है। इसमें केवल अन्ध-विश्वास और ढोंग भर गया है, जिससे लाभ के बदले भयङ्कर हानियाँ हो रही हैं। ऐसी हालत में हम लोग उसका पोषण करें और जोंक की भाँति उससे चिपटे रहें, यह कोई बुद्धिमानी नहीं है।

देहाती भारतीय स्त्रियाँ स्वभाव से ही धर्मभीरु होती हैं। अन्ध-विश्वास इनका ख़ास गुण है। एक बार जिस बात को ये धर लेती हैं, अच्छा हो या बुरा, फिर उसे छोड़ना जानतीं ही नहीं। ये स्वतन्त्रतापूर्वक स्वयं किसी बात पर विचार नहीं कर सकती हैं। इसका मुख्य कारण है शिक्षा का अभाव।

हम यहाँ पर मुख्यतया उन देहाती स्त्रियों के परदे और शिष्टाचार के सम्बन्ध में विचार करेंगे, जो अशिक्षिता हैं, या जो अधिक से अधिक प्रायमरी तक की शिक्षा प्राप्त हैं। अस्तु।

इस समय देहात में परदे और शिष्टाचार के दो पहलू हैं—(१) दैनिक या साधारण और (२) सामयिक या विशेष अवसरों पर। ये दोनों एक दूसरे से भिन्न और स्वतन्त्र हैं। पहले में समाज का अवाञ्छित और मूर्खतापूर्ण दबाव और दूसरे में उच्छृङ्खलता और उद्दण्डता का प्रबल प्रभुत्व रहता है।

परदे का आरम्भ प्रायः लड़कियों के ससुराल आने के बाद से होता है। पहले-पहल जब वे ससुराल आती हैं, उनकी दशा बड़ी ही दयनीय रहती है। इस समय वे बड़े-बूढ़े से हो नहीं, बल्कि बड़ी-बूढ़ियों से भी लजाती हैं। अगर गाँव की कोई स्त्री उन्हें देखना चाहे तो बिना घर की किसी स्त्री की सहायता से नहीं देख सकती। बहू चुपचाप आँखें बन्द किए बैठी रहती है और सास या अन्य घर वाली स्त्रियाँ उसके मुख से घूँघट अलग करके उसका मुख दिखाती हैं। यह तो हुआ नैयमिक रूप। पर व्यावहारिक रूप अभी बहुत दूर है। इसके बाद ही अगर उन्हें कम से कम स्त्रियों से भी मिलने की आज़ादी मिल जाती तो ग़नीमत थी। पर ऐसा नहीं होता। एक-दो साल बाद वे और स्त्रियों से मिल सकती हैं, पर बोलने का अधिकार उन्हें तब भी नहीं मिलता है। इतने समय के अन्दर वे केवल अपने घरवाली स्त्रियों या छोटे-छोटे बच्चों से ही बातचीत कर सकती हैं। इस तरह उन्हें विचारवान पुरुषों क्या, स्त्रियों से भी स्वतन्त्रतापूर्वक मिलने और बोलने का अधिकार तब मिलता है, जब वे दो-तीन बच्चों की माँ बन चुकती हैं; अर्थात् क़रीब-क़रीब आधी उमर बीत चुकती है। यह है स्त्रियों के साथ स्त्रियों का परदा।

अब पाठक पुरुषों के साथ उनके परदे का रूप देखें? ये पुरुष परदे के विचार से, दो मुख्य भागों में बाँटे जा सकते हैं—(१) अपने परिवार के और (२) जो परिवार के नहीं हैं। परिवार के लोग भी प्रायः तीन मुख्य सम्बन्धों के अन्दर ही रहते हैं—(१) बड़े, (२) जिनसे हास्य-कौतुक का सम्बन्ध होता है और (३) छोटे। पहले सम्बन्ध वालों से प्रायः कहीं भी किसी अवस्था में अनिष्ट की सम्भावना नहीं हो सकती है। मैं समझता हूँ, शायद ही ऐसा कोई पापिष्ठ होगा, जो अपनी पुत्रीवत् या भगिनीवत् बहू पर कुदृष्टि डाले। दूसरे से, ज़माने की दृष्टि से कहना पड़ेगा कि हर हालत

में अनिष्ट की आशङ्का बनी रहती है। पर कार्य ठीक उल्टा होता है। वे स्त्रियाँ अपने गुरुजनों को तो अपनी छाया तक छूने और देखने नहीं देतीं। पर दूसरे सम्बन्ध वालों से एकान्त-मिलन और हाथा-पाई द्वारा हास-परिहास करने में भी नहीं हिचकती हैं। और की तो बात जाने दीजिए, वे अपने पति से भी स्वतन्त्रतापूर्वक कभी मिल नहीं सकतीं। वरन् पति से पत्नी जितनी ही लज्जा दिखाती है, उतनी ही वह लज्जावती समझी जाती है। लज्जा ही नहीं, अगर उपेक्षा भी दिखावे तो और भी अच्छा। इस तरह दिन में तो वह किसी हालत में भी पति से मिल ही नहीं सकती। रात को जब सब सो जाते हैं, तब पतिदेव दबे पाँव चोर की तरह आते हैं और तिमिराच्छन्न कोठरी में बन्द हो जाते हैं। फिर कम से कम चार बजे सवेरे फिर दबे पाँव ही बाहर निकल जाते हैं, ताकि कोई उन्हें देख न ले। क्योंकि इन्हें भी सामाजिक शिष्टाचार दिखाना पड़ता है। पति-पत्नी में कैसा सम्बन्ध रहता है, यह हमारे इस उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा।

मनुष्य सामाजिक जीव है। यह अकेला रहना नहीं चाहता। पर जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, देहाती स्त्रियाँ, पुरुष क्या, साधारण स्त्रियों से मिलने से भी वञ्चित ही रहती हैं। इस तरह उनकी अन्य जनों से विचार-विनिमय की उल्लसित लालसाएँ आतुर हो-होकर दब जाती हैं और जब उन्हें कभी अभिलषित अवसर प्राप्त होता है, तब उनकी सञ्चित लालसाएँ उद्दीप्त हो उठती हैं। उस समय वे हँसी करने वाले सम्बन्धियों से घण्टों दिल खोल कर बातें करते भी नहीं अघातीं। इसका परिणाम भी कभी-कभी बड़ा ही भयावह होता है। सच तो यह है कि वे स्त्रियाँ उल्लिखित अवगुणों के हटाने का प्रयत्न ही नहीं करती हैं, बल्कि बराबर ऐसे आदमियों की टोह में लगी रहती हैं।

अब ग़ैर शख़्स के साथ उनका परदा देखिए! इनमें भी दो श्रेणियाँ हैं—(१) भद्र और (२) अभद्र। इस दूसरी श्रेणी में मनिहार, धोबी, कहार, घर के नौकर-चाकर, भिखमङ्गे और पीर-फ़क़ीर आदि हैं। प्रथम श्रेणी के लोगों से वे थोड़ा परदा करती हैं। पर दूसरी श्रेणी वालों से बिलकुल नहीं। शायद दूसरी श्रेणी वालों से इसलिए वे परदा नहीं करतीं कि वे गँवार हैं। परदा तो शिष्ट जनों के लिए है। गँवार परदे का रहस्य क्या जानें? कितने शोक और परिताप की बात है कि जिन दुर्जनों के चङ्गुल में पड़ कर लाखों स्त्रियाँ आज दर-दर की ख़ाक छान रही हैं, उन्हीं से ये स्त्रियाँ पूर्ण विश्वास के साथ हृदय खोल कर बातें करने में शर्मातीं तक नहीं। और इधर पिता-तुल्य गुरुजनों से ऐसा भद्दा परदा रहता है कि वे अगर बीमार हो जाएँ और घर में बहू के सिवा कोई भी दूसरा सेवा-सुश्रूषा के लिए न हो, तो भी वह अपनी मर्यादा तोड़ कर उनके पास न जायँगी।

अब विशेष अवसरों पर परदे का हाल सुनिए। इन अवसरों में विवाह-शादी, मेला और यज्ञ आदि का स्थान मुख्य है। इन अवसरों पर उनकी सारी रीति-नीति ताक पर चली जाती है। इस समय उन्हें अपरिमित स्वतन्त्रता प्राप्त रहती है। मालूम नहीं, इस समय उनकी लज्जा कहाँ चली जाती है। शादी-विवाह में तो वे अपने गुरुजनों का भी लिहाज नहीं रखती हैं। वरन् वे गुरुजन ही उलटे उनके मारे लज्जा से भागे-भागे फिरते हैं। वे इन अवसरों पर अपने गुरुजनों का नाम ले-लेकर ऐसे भद्दे और गन्दे गीत गाती हैं कि बेचारी अशिष्टता भी पनाह माँगती है। शादी में एक बात और बड़े मार्के की होती है। इस समय वर को बड़ी आज़ादी रहती है। वह जिसे चाहे देख सकता है और उससे बोल सकता है, पर पहचान किसी को नहीं सकता। उसे उस समय स्त्रियों के अनियन्त्रित आचार-व्यवहार से पता ही नहीं लगता कि कौन सास है और कौन साली। पर यह 'कन्सेशन' उसे शादी के दिन तक ही प्राप्त रहता है। शादी के दश दिन बाद जब वह फिर ससुराल जाता है, तो किसी स्त्री की छाया तक उसे नज़र नहीं आती। उस समय केवल वही अशिष्ट हँसी-मज़ाक़ करने वाली स्त्रियों की भरमार रहती है। और कहीं से आवाज़ तक नहीं आती है। जैसे घर में प्लेग घुस आया हो। हम नहीं समझ सकते कि इन बेटे-पोते सरीखे वरों से लुकने-छिपने में कौन सा रहस्य छिपा हुआ है। हालाँकि यह रिवाज सभी समाजों में प्रचलित नहीं है, पर जिस किसी समाज में भी है, बहुत बुरा है। इसके मूलोच्छेदन की शीघ्रातिशीघ्र आवश्यकता है।

अब रही मेले, यज्ञ आदि की बात। सो आप किसी भी मेले आदि में जाकर निरीक्षण कर लें, सभी

हृदय स्पष्ट दिखाई पड़ेंगे। बस स्त्रियाँ जहाँ घर से निकलीं और घुड़दौड़ करती हुई मेले पहुँच गईं। न शरीर का ठिकाना, न कपड़े का। मेले में बे-सरोकार दूकान-दूकान घूमती फिरेंगी। कोई चूड़ीवालों के नज़दीक अपना हाथ फैला कर घण्टों बैठी रहेंगी, कोई फेरी वालों से बेमतलब मोल-भाव करेंगी। कोई किसी दूकानदार की कोई वस्तु उठा कर उसका सजावट-क्रम ही बिगाड़ देंगी और दुकानदार उन्हें धक्के देगा। कोई किसी को किसी बहाने दो-चार मज़ाक़ की ही बातें कह देगा और गुण्डे क़हक़हे लगाएँगे। पर इन बातों की उन्हें परवाह नहीं। मालूम नहीं, इस समय उनका प्राण-प्रिय परदा कहाँ चला जाता है। यह सब देख कर आजकल के परदे का उद्देश्य कुछ समझ में नहीं आता, बल्कि वह एक विकट समस्या हो जाती है।

एक बात और इसी प्रसङ्ग में कह देना अनुचित न होगा। वह यह है कि जब किसी कन्या के मायके का कोई आदमी उससे ससुराल में भेंट करने जाता है, तब वह हालचाल पूछने के बजाय पहले रोना शुरू कर देती है। अगर यह रुदन हृदय की सच्ची पुकार हो तो एक बात है। पर ऐसा नहीं होता। हमें एक बार ऐसी कन्या से भेंट करने का मौक़ा मिला है। कन्या भी बच्ची नहीं थी। जब मैं आँगन में पहुँचा तो उसने रोना शुरू कर दिया। थोड़ी देर के बाद उसे चुप कराया गया। इतने में कुछ बच्चे उस जगह आकर उधम मचाने लगे। इसी बीच कुछ हँसी की बात हो गई। बस, वह भी रोते ही रोते हँस पड़ी। हमें बड़ी लज्जा आई, और हँसी भी। मालूम नहीं यह कैसा शिष्टाचार है। यह तो एक और विचित्र पहेली है। स्त्रियाँ मायके से जाने और यहाँ आने के समय भी रोती हैं, यह भी बुरा है। यह मैं मानता हूँ कि उन्हें पहले-पहल वियोग-व्यथा ज़रूर सताती होगी, पर इसका यह मतलब नहीं कि वे आध कोस तक गला फाड़-फाड़ कर रोती चली जायँ। इसमें वास्तविक कारण से अधिक नियम की पाबन्दी रहती है। हँसना-रोना तो स्वाभाविक है। इसे अवसर-प्रतीक्षा की आवश्यकता नहीं। इस तरह यह अनैच्छिक है, ऐच्छिक नहीं। जब ज़रूरत होगी, कोई इसे रोक नहीं सकता।

इतने दोष दिखाने का हमारा मतलब यह नहीं है कि ऐसी स्त्रियाँ भ्रष्टा होती हैं। ऐसे वातावरण में भी बहुत सी स्त्रियाँ ऐसी हैं, जो उचित परदा और शिष्टाचार करती हैं और बहुत बातों में आदर्श कही जा सकती हैं। पर हाँ, इतना हम ज़रूर कहेंगे कि यह प्रथा उन्हें भी पतन की ओर लिए जा रही है। यह हम दावे के साथ कह सकते हैं कि कोई भी स्त्री ऐसे वातावरण में पड़ कर अपने को विनाश के गहरे गर्त में गिरने से रोक सके, यह सन्दिग्ध है। परदा बुरा नहीं। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, परदे का मतलब है लाज-लिहाज़, यह शिष्टाचार का एक अङ्ग है। स्त्री क्या, यह तो मनुष्य-मात्र का भूषण है। इस लिहाज़ से तो माँ पुत्र से, बहिन भाई से, और लड़की पिता से परदा करती हैं। इस नाते तो जहाँ तक सम्भव हो, परदा सबसे करना ही चाहिए। यह तो अपेक्षित भी है। लज्जा तो स्त्रियों का ख़ास गुण है, इसे कौन अस्वीकार कर सकता है। पर उपरिलिखित परदे में लिहाज़ की बू तक भी नहीं है। शिष्टतापूर्ण लाज-लिहाज़ के लिए ऐसे अप्रासङ्गिक आडम्बर की आवश्यकता नहीं है। इसके लिए तो परिष्कृत विचार चाहिए। क्या कोई बहिन यह बता सकती है कि सीता आदि आदर्श रमणियों में आप लोगों से परदा कम था?

यह अत्यन्त दुःख की बात है कि जिस समाज की रमणियाँ, इन गए-गुज़रे दिनों में भी गाँधी, मालवीय, ठाकुर और नेहरू आदि जैसे लाड़ले लाल पैदा कर सकती हैं, उसकी ही आज संसार में इन अवगुणों के कारण तौहीन हो रही है।

सौभाग्य से इस समाज में ऐसी भी स्त्रियों का प्रादुर्भाव हो रहा है, जो इस प्रथा की बुराइयाँ समझने लगी हैं, और इसे निकाल बाहर करने का प्रयत्न कर रही हैं। पर इसमें कर्तव्य और सुधार की मात्रा कम नज़र आती है। उच्छृङ्खलता और वासना ही अधिक है। इस सुधार में विदेशी सभ्यता की नक़ल मात्र है, और नक़ल मात्र से सुधार असम्भव है। बिना अपनी आदर्श आर्य-सभ्यता प्राप्त किए हम अपना अभीष्ट सिद्ध नहीं कर सकते। अतः इन बहिनों से मेरा निवेदन है कि वे अपने सुधार का आधार विदेशी सभ्यता की भित्ति पर न रख कर, अपनी आर्य-सभ्यता की भित्ति पर ही रक्खें। जिससे वे नागरिक न बन कर आदर्श गृहिणी बन सकें। क्योंकि यही उनका आदर्श है।

अब हमें पूर्वोक्त ग्रामीण बहिनों से भी कुछ कहना है। उनसे मेरी यह प्रार्थना है कि वे परदा करें, इसमें हानि नहीं, पर ज़रा सोच-समझ कर अन्धाधुन्ध, भेड़िया-धसान की तरह नहीं। उन्हें अपना रूढ़ि-ग्रस्त सङ्कुचित विचार छोड़ कर समय की ओर देखना चाहिए। इससे उनकी सब तरह की हानियाँ हो रही हैं। जैसा हम पहले कह चुके हैं, उनमें परदा बिलकुल विपरीत होता है। अर्थात् जहाँ पर परदा नहीं होना चाहिए, वहाँ तो अनुचित परदे का अखण्ड साम्राज्य है, और जहाँ पर इसकी निहायत ज़रूरत है, वहाँ इसकी मिट्टी पलीद होती है। ऐसा नहीं होना चाहिए। अपने परिवार में उपर्युक्त परदा किसी भी हालत में न होना चाहिए। और अन्य लोगों से तथा विवाह-शादी या यज्ञ-जाप में तमीज़ रखना ज़रूरी है। बल्कि मेरा तो यह अभिप्राय है कि परदे को सामाजिक और सामूहिक रूप न देकर वैयक्तिक रूप देना चाहिए। अर्थात् परदे का उपयोग स्थान विशेष और व्यक्ति-विशेष के अनुसार ही करना चाहिए। इस प्रकार अगर अपने समाज के ही कोई जन दुश्चरित्र जान पड़े, तो उससे भी परदा करें? इस परदे से मेरा यह मतलब नहीं कि वे उससे बराबर भागती फिरें। यह तो विडम्बना मात्र है। बल्कि उससे कोई ख़ास घनिष्ट सम्बन्ध न रख कर बराबर परहेज़ रक्खें। और अगर अन्य समाज के भी कोई लोग चरित्रवान और शुभ सिद्ध हों, तो उनसे उचित परदे में शिष्टाचार के अन्दर रह कर स्वतन्त्रतापूर्वक मिलें और उनसे उपदेश लाभ करें। इसमें कभी कोई अनिष्ट न होगा, और मानसिक, नैतिक और शारीरिक सभी तरह की उन्नति भी होगी।

—मङ्गलानन्दसिंह

❀ ❀ ❀

प्रारब्ध-वक्ता या दैवज्ञ

लोगों को ठगने और धोखा देने का संसार में सबसे पुराना तरीक़ा प्रारब्ध बताना, भविष्य का हाल कहना और हथकण्डेबाज़ी (Quackery) है। इन बातों के भक्त आजकल भी बड़े-बड़े प्रतिष्ठित और रईस आदमी होते हैं। यदि इन पेशों के करने वाले धोखेबाज़ों को सज़ाएँ दी जाती हैं, तो कुछ पढ़े-लिखे लोग तक असन्तुष्ट होते हैं। इन लोगों की ठग-विद्या कुछ ऐसे विचित्र मानसिक विकार उत्पन्न कर देती है कि जो लोग मूर्ख बना कर ठगे जाते हैं, वे ही उन बद-माशों के लिए बड़ी दया दिखलाते हैं; और यदि क़ानून के द्वारा उन धूर्तों को सज़ा दिलाने का प्रयत्न किया जाता है, तो वे मूर्ख उनको बचाने की कोशिश करते हैं।

विलायत में प्रारब्ध बताने वाले लोगों के विरुद्ध बहुत पहले से क़ानून बने हुए हैं। इससे प्रकट होता है कि वहाँ के लोग प्राचीन काल ही में समझ गए थे कि दैवज्ञ आदि निरे ठग होते हैं और वे मूर्ख जनता को केवल धोखा देकर अपना पेट पालते हैं। हमारे देश में इस काम को ज्योतिषी, भड्डरी और रम्माल आदि करते हैं। पाश्चात्य देशों में "जिप्सी" लोगों ने अपनी इस कला को कमाल को पहुँचा रक्खा है। भविष्यवक्ता होने का दावा करने वाले एक जिप्सी की चतुराई का उदाहरण नीचे लिखी हुई कहानी से प्रकट होता है।

लङ्काशायर में एक बार दो उदात्त नागरिक केवल आमोद-प्रमोद के लिए शहर के बाहर घूमने जा रहे थे। उनके पीछे-पीछे एक जिप्सी लड़की आ रही थी। थोड़ी दूर चलने के पश्चात् उस लड़की ने कहा कि यदि आप लोग मेरे हाथ में चाँदी रक्खें, तो मैं आपके प्रारब्ध का हाल बता दू। दो साथियों में से एक की इच्छा हुई कि इस सुयोग से भी आनन्द उठाया जाय। परन्तु दूसरे साथी ने इस बात को बहुत कड़ाई से रोक दिया।

किन्तु पहले साथी ने, आजकल के अन्य लोगों की तरह सोचा कि शायद इसमें भी कुछ हो। उस जिप्सी (Gypsy) लड़की ने कहा कि मुझमें भविष्य बताने की सच्ची प्रतिभा है, क्योंकि यह वरदान मेरी माता और मेरी दादी दोनों को था। अविश्वासी सज्जन ने कहा—"ख़ैर, अच्छी बात है। यह लो एक रुपया। मैं प्रारब्ध जानना नहीं चाहता। किन्तु तुम केवल मेरा नाम और पता मुझे बतलाओ, और बस रुपया तुम्हारा हो गया।"

लड़की बोली—"जनाब यह तो बिलकुल सरल काम है। केवल इतनी ही बात बतलाने के लिए आप मुझे रुपया नहीं दे देंगे।" चतुर नागरिक, अपने को विजयी समझ कर, ख़ूब हँसा और रुपया अपने मित्र के हाथ में देकर बोला—"यह सज्जन यह रुपया तुमको दे देंगे, यदि तुम इन्हें मेरा नाम और पता बतला दोगी।"

लड़की समझ गई कि आदमी है तो ईमानदार। वह उनकी सरलता पर हँसी और बोली—आपका नाम मिस्टर जान 'हेउड' है और 'बोल्टन' नगर के 'पाइक' स्थान में आप रहते हैं।

मिस्टर हेउड और उनके मित्र बहुत प्रसन्न हुए। लड़की ने रुपया ले लिया और एक विचित्र भाव-भङ्गी के साथ उन्हें धन्यवाद दिया। वह चली भी गई होती, किन्तु मिस्टर हेउड ने अपने स्वभाव के अनुसार इस मामले की जाँच अच्छी तरह से करनी चाही और यह समझना चाहा कि इसमें रहस्य क्या है। अतः उन्होंने लड़की को रोक लिया।

अपनी जेब से दूसरा रुपया निकाल कर उन्होंने जिप्सी लड़की से कहा—तुमने मुझे बड़ी होशियारी से ठग लिया है। अब तुम्हें यह रुपया इस बात पर मिलेगा कि मुझे यह बतला दो कि तुमने मुझे कैसे बेवक़ूफ़ बनाया।"

इस रहस्य को बतलाने पर बड़ी टालमटूल और वाद-विवाद होता रहा। लड़की अपनी साधारण सफ़ाई देते हुए यही कहती रही कि "मुझमें दिव्य दृष्टि है और मैं जादू के ज़ोर से सब बातें जान लेती हूँ।" परन्तु मिस्टर हेउड भी बड़े पक्के थे और वह अपनी बात पर डटे रहे। उन्होंने केवल सच्ची बात बताने पर दूसरा रुपया देने की प्रतिज्ञा की और वह किसी हीले-हवाले पर राज़ी नहीं हुए। अन्त में लालच ने विजय पाई और उस लड़की ने अपने पेशे के नियम के विरुद्ध मिस्टर हेउड को सारा रहस्य बतला दिया। वह हँस कर बोली—"जनाब! आपका नाम और पता आपके छाते पर लिखा है।

मिस्टर हेउड कुछ झेंप कर बोले—"हाँ, बात तो पते की है। तुमने बड़ी चतुराई से मुझे मूर्ख बनाया और रुपया कमा लिया। किन्तु तुम्हें अपनी चालाकी के लिए और मुझे अपनी मूर्खता के लिए जेल जाना चाहिए।" इतनी बातचीत होने के पश्चात् दोनों पक्ष बहुत प्रसन्न-चित्त अपने-अपने मार्ग पर चल दिए।

प्रारब्ध बतलाने की सारी सफल विद्या इसी प्रकार के हथकण्डों पर अवलम्बित है। जादू और गुप्त रहस्य की सारी शाखाओं की तरह, इसको भी दैवीशक्ति का रूप दिया जाता है। परन्तु यह रूप अपना प्रभाव उसी समय तक रखता है, जब तक तुम उस मैशीन को समझ नहीं लेते, जिसके सहारे से यह विद्या चलती है। इसके साथ-साथ यह बात भी है कि लोग अपनी चालाकी का गुप्त रहस्य सुगमता से नहीं बताते। यदि मिस्टर 'हेउड' एक रुपए का लालच करते, तो वह चकराए हुए ही अपने घर पहुँचते और उनके मित्र का विश्वास ऐसी बातों पर और भी दृढ़ हो जाता। इस विज्ञान-विकास के युग में भी कुछ ऐसे लोग मौजूद हैं, जो इन प्रारब्ध-वक्ताओं और ज्योतिषियों के हिमायती हैं। यदि इन ठगों के विरुद्ध पुलिस कुछ कार्यवाही करती है, तो इनके संरक्षक इन्हें बचाने का प्रयत्न करते हैं। जिन लोगों को ये ठगते हैं, वे तो इन पर मुक़दमा चलाने की हिम्मत नहीं रखते, परन्तु कभी-कभी ठग लोग स्वयं अपनी मूर्खता और लालची स्वभाव के कारण पुलिस के चङ्गुल में आ जाते हैं। सर ऑलीवर लॉज (Sir Oliver Lodge) सदृश गुप्त-विद्या कृतहस्तों को भी इन ठगों पर मुक़दमा चलाना बुरा मालूम होता है। किन्तु बेचारे करें क्या, वे क़ानून से मजबूर हैं। विलायत में लोगों से प्रारब्ध बतला कर रुपया ठगना दण्डनीय अपराध है।

क्या हमारे भारतवासी भाई उपर्युक्त बातों से फलित ज्योतिष के सम्बन्ध में कुछ शिक्षा ग्रहण करेंगे? हमारे देश में भी फलित ज्योतिष में अन्ध-विश्वास करने वालों की कमी नहीं है। यहाँ के ज्योतिषी, रम्माल और भड्डुरी मूर्ख लोगों से हज़ारों रुपया ठगा करते हैं और जनता की मूर्खता से लाभ उठा कर मौज उड़ाया करते हैं। विलायत के तरीक़े और हैं और यहाँ के और। परन्तु उद्देश्य दोनों स्थानों का एक ही है। यहाँ के पण्डित जी दान-पुण्य और तुला आदि से अपना काम निकालते हैं और वहाँ साफ़-साफ़ माँग लिया जाता है। भोली-भाली भेड़ों के बाल दोनों जगह उतारे जाते हैं। अतः यदि कुछ बुद्धि है तो उसका प्रयोग कीजिए और धूर्तों से सावधान रहिए।

—नारायणप्रसाद अरोड़ा, बी० ए०

हठीली दुल्हन

[श्री० रणवीरसिंह 'वीर', बी० ए०]

मुन्नी की माँ से मैं इसी तरह डरता था, जिस तरह बच्चे 'हव्वा' के नाम से डरते हैं।

मुन्नी अधिक दिन तक जीवित नहीं रह सकी; केवल तीन-चार महीने में ही उसके जीवन का अन्त हो गया और अपने पीछे अपना नाम छोड़ गई। उसकी माँ को हम मुन्नी की माँ कहने लगे। वह थी तो मेरी बीबी, परन्तु उसके साथ मेरी शादी कब, कैसे और क्यों हो गई, यह सब बातें मुझे उतनी ही याद हैं, जितनी कभी-कभी किसी स्वप्न की बातें याद रह जाती हैं।

जब मैंने होश सँभाला, तो मुझे मालूम हुआ कि मैं मुन्नी की माँ का पति हूँ और थोड़े ही दिन में यह भी मालूम हो गया कि मैं मुन्नी का पिता हूँ और इतने में एक दिन मुन्नी मर भी गई। मुझे अफ़सोस हुआ कि मुन्नी अपनी माँ को भी नहीं लेती गई।

मैंने उसे सब प्रकार से प्रसन्न रखने की चेष्टा की, परन्तु वह किसी प्रकार प्रसन्न न हो सकी। उसकी पेशानी पर हमेशा बल पड़े रहते थे, जैसे समुद्र की सतह पर पड़े रहते हैं।

इस समय अगर विधाता मुझे नई सृष्टि बनाने की शक्ति प्रदान कर देता, तो मैं ऐसी सृष्टि बनाता, जिसमें शेर, बाघ, भालू, साँप, बिच्छू, प्लेग, हैज़ा, चेचक और इन्फ़्लुएन्ज़ा आदि सब कुछ होता, परन्तु उसमें मुन्नी की माँ न होती। इस समय अगर कहीं मुन्नी की माँ की निन्दा होती थी, तो मैं वहाँ ऐसी श्रद्धा से खड़ा हो जाता था, जैसे भक्त रामायण की कथा सुनने को खड़े हो जाते हैं। जी चाहता था कि निन्दा करने वाले के मुँह में खाँड़ भर दूँ।

इन दिनों हमारे पड़ोसी शिवसरन की तीन स्त्रियाँ मर चुकी थीं। मैं आकाश की ओर हाथ उठा कर कहता—भगवन्, लोगों की तीन-तीन मर चुकीं और मुझ अभागे की एक भी नहीं!

अब शायद मेरी बातें सुन कर आपको हँसी आती होगी, परन्तु मैं इन दिनों रोता था, जी चाहता था कि आत्म-हत्या कर लूँ। घर फाँसी की कोठरी जान पड़ता था।

अस्तु, मैं मुन्नी की माँ से बहुत कम बोलता था, क्योंकि पहले उसे प्रसन्न करने की सारी चेष्टाएँ कर चुका था, इसलिए सोचा कि शायद सत्याग्रह से काम चल जाए। परन्तु कई दिन बीत गए, मुन्नी की माँ ने इस सत्याग्रह की भी कोई परवा न की।

मैं अकेला ही उससे तङ्ग था, यही बात न थी, वरन् सारे घर के लिए वह एक आफ़त थी। नौकरों के लिए वह ख़ासी पूँजीपति थी और उनका रक्त तक चूस लेना चाहती थी।

एक दिन मैंने ग़लती से कह दिया, इन्हें तुम्हारे साथ कोई शत्रुता थोड़े ही है। बस, वह एकदम गरज पड़ी, जैसे सावन-भादों में बादल गरजते हैं—हाँ-हाँ, मैं झूठी हूँ। बकवास करती हूँ। मेरी इज़्ज़त नौकरों के बराबर भी नहीं है। तुमको भी इन्हीं का ख़याल है। मैं मर जाऊँ तो तुम शहद चाटो।

मैंने मन ही मन कहा—यह तो सोलह आने ठीक है।

तात्पर्य यह कि मेरी ज़िन्दगी ओबाल हो रही थी और अब घर से बाहर रहने पर भी मुन्नी की माँ याद आया करती थी, परन्तु उस तरह नहीं, जिस तरह मजनूँ को लैला याद आया करती थी, वरन् जिस तरह जैसे फोड़े के रोगी को नश्तर की याद आती है।

आख़िर मैंने आए-दिन की इन मुसीबतों से बचने के लिए शराब पीनी आरम्भ की। पहले थोड़ी-थोड़ी फिर ख़ूब। घर में पैसे की कमी न थी। ऐसी दशा में लाल पानी के दरिया का मज़ा क्यों न लेता। दोस्तों के कहने से एक दिन बाज़ार की भी सैर की, जहाँ सौन्दर्य का व्यापार होता है, प्रेम पैसों पर बिकता है और पाप मनुष्य की आँखों पर नृत्य करता है।

× × ×

अलमास हीरे की तरह सुन्दर थी। उसकी आँखों में मादकता और होठों में अमृत था। मैंने उसे देखा,

उसकी बातें सुनीं ; उसके रूप-माधुर्य का दर्शन किया। मुझे ऐसा मालूम हुआ, मानों मैं किसी दूसरी दुनिया में पहुँच गया हूँ। अगर कहीं स्वर्ग है, अगर कहीं आनन्द है और अगर कहीं ईश्वर और पुण्य है, तो बस ××× !

मैंने उसको देखा और उसने मुझको। उसको मेरी दौलत की आवश्यकता थी और मुझे उसकी आँखों में सोई हुई मादकता की। बस, मैं संसार को भूल कर अलमास का हो रहा।

सन्ध्या होती तो मैं उस बाज़ार में पहुँचता, और रात जब मौत की घाटी के निकट आकर पीली होने लगती तो मैं घर लौटता।

मेरा जीवन परियों के देश का सपना बन गया और मुन्नी की माँ उस सपने में एक बन्दरिया बना कर खाट में बाँध दी गई, ताकि किसी राहगीर को काट न खाय।

मैं जानता था कि यह सब पाप है। परन्तु इसमें मेरा अपराध? आप इस दशा में होते तो क्या करते? या तो आत्म-हत्या कर लेते या यही करते जो मैं कर रहा हूँ।

बस, अब अलमास थी और मैं था। वह शराब थी और मैं पियक्कड़ ; वह मूर्त्ति थी और मैं पुजारी।

घर के लोगों ने देखा तो चौंके। पर किसी को बोलने का साहस न हुआ। चुपचाप कानाफूसी होने लगी।

एक दिन—आप सुन कर हँसेंगे—वह अभागिनी मुन्नी की माँ बीमार पड़ी थी। चारपाई पर पड़ी रहती। एक दिन रात को मैं आया और चुपचाप सो रहा। सबेरे उठा तो मालूम हुआ कि उसकी दशा ख़राब है। उसकी चारपाई के पास गया और बोला, क्या हो गया?

उसने तीक्ष्ण स्वर में कहा—इधर आओ।

मैंने अग्रसर होकर हँसते-हँसते कहा—आज्ञा?

उसने उसी तरह कहा—तुम्हारी अक़्ल मारी गई है। सुनते हैं, तुम शराब पीते हो और रण्डी के यहाँ जाते हो।

मैंने हँसते-हँसते कहा—यस सर!

उसे मानों आग सी लग गई। वह उठ कर बैठ गई और बोली—तुमने मुझे भी बाज़ारी औरत समझ लिया है। मसख़री यहाँ नहीं, किसी और से करना।

मैं हँसता हुआ उसके कमरे से बाहर चला गया।

उसके कई दिन बाद घर में रोने की आवाज़ सुनाई दी और पता लगा कि मुन्नी की माँ ××× !

× × ×

मुन्नी की माँ मर गई, परन्तु मुझे शोक नहीं हुआ। साथ ही बड़ी प्रसन्नता भी नहीं हुई। क्योंकि इधर बहुत दिनों से बहुत चेष्टा करने पर भी वह मुझे तङ्ग नहीं कर सकती थी। अलमास और उस कोने में उपदेशक की तरह खड़ी शराब की दूकान—दोनों मुझे किसी प्रकार की चिन्ता नहीं करने देते थे।

अलमास, उसकी छोटी बहिन और नज़ीरा मीरासी, ये तीनों मिल कर जब गाने लगते थे, तो क्या नहीं हो जाता था।

मुन्नी की माँ मर गई तो मैं दिन-रात के लिए अलमास का हो गया। घर आता, परन्तु कभी-कभी, और होश में तो शायद ही कभी आता। एक दिन मेरी माता मुझे देख कर रो पड़ी और बोली—बेटा!

मैं समझ तो सब कुछ गया, पर बोला कुछ नहीं। वह भी फिर कुछ न बोली। पर मैं क्या करता, पाप के समुद्र में आपादमस्तक डूब चुका था, अब उभरने की कोई राह न थी।

माँ के आँसू भूल गए। अब केवल अलमास, शराब और गाना, यही मेरे जीवनाधार थे। कुछ दोस्त भी वैसे ही मिल गए थे। मैं नहीं जाता तो वे पकड़ कर ले जाते थे। मुहफ़िलों और जलसों का बाज़ार रोज़ गरम रहता। धन लुट रहा था, रुपए पानी की तरह बहे जा रहे थे।

अन्त में कुछ सोच-विचार कर मेरी माँ ने मेरी दूसरी शादी कर दी। ग़रीब अगर सोने का बन जाय तो भी उसकी शादी नहीं होती। अगर होती भी है तो किसी अनाथालय में या किसी विधवाश्रम में, परन्तु अमीर अगर पशु-तुल्य भी हो तो उसके लिए सब कुछ मौजूद है। मेरी माँ ने एक अमीर की लड़की से मेरी शादी करा दी। उसका नाम था, शान्ता। शान्ता कुछ बुरी भी न थी। अच्छी थी। बाल सँवारना जानती थी। कुछ पढ़ी-लिखी भी थी। हारमोनियम बजाना और गाना भी जानती थी। परन्तु मुझे शान्ता की कोई ज़रूरत न थी। मेरे लिए तो थी अलमास, दूसरी बाज़ारी औरतें, शराब की दूकानें और गानें।

शान्ता आई तो अलमास का मुजरा हुआ। वह मायके गई तो अलमास का गाना हुआ। फिर वापस आई तो अलमास का गाना हुआ। इसी प्रकार आनन्द-समारोह में दो-तीन महीने गुज़र गए।

अब शान्ता बराबर मेरे घर ही रहने लगी। कुछ दिन मैं भी घर ही रहा, परन्तु पक्षी पिंजड़े में बन्द करके कब तक रक्खा जा सकता है। फिर अलमास, शराब और जलसे! फिर वही दिन और वही रातें।

एक दिन सवेरे घर पहुँचा तो शान्ता ने पूछा—आप सोए नहीं?

मैंने उत्तर दिया—सो लिया।

उसने कहा—बहुत अच्छा। और चुप हो गई।

थोड़ी देर के बाद वह फिर आई और बोली—पानी गरम हो गया, स्नान कर लीजिए।

मैंने जाकर स्नान किया। बाहर निकला तो देखा, एक थाल में रोरी, दही, अक्षत और फूल लिए शान्ता खड़ी है। मैंने पूछा—यह क्या है?

उसने कहा—कुछ नहीं, ज़रा तिलक लगवा लीजिए।

मैंने तिलक लगवा लिया। उसने फूल मेरे चरणों पर डाल दिए। फिर थाल को एक ओर रख कर घुटने टेक कर बैठ गई और हाथ जोड़ कर तथा आँखें बन्द करके बोली—हे भगवान, इनकी सदा रक्षा करो। इनकी धन-सम्पत्ति की वृद्धि करो। मैं शरीर हूँ, ये प्राण बनें।

इसके बाद उसने आँखें खोल दीं। फिर मेरी तरफ़ देखा और मेरे घुटनों में सिर लगा कर थाल लेकर चली गई।

मैं हैरान होकर यह अभिनय देखता रहा और फिर अपने कमरे में चला गया। इतने में नौकर मेरे जूते लेकर आया। आज वे बहुत चमक रहे थे। मैंने पूछा—तूने इन्हें साफ़ किया है?

उसने सङ्कोच के साथ उत्तर दिया—नहीं सरकार, बहू जी ने। अब वे आपका सारा काम स्वयं करती हैं। अगर पता लग जाय कि मैं जूते उठा लाया हूँ तो × × ×

उसी समय शान्ता भी कमरे में आ गई और नौकर को सम्बोधन करके बोली—हरी भाई, जूते वहाँ से तुम उठा लाए हो?

हरी ने डरते-डरते कहा—हाँ जी!

शान्ता हँस कर बोली—डरते क्यों हो? जाओ, मगर फिर ऐसा काम मत करना।

हरी चला गया। शान्ता ने कहा—आपके बाल सँवार दूँ?

मैंने कहा—मैं सँवार लूँगा।

उसने बच्चों की तरह ज़िद करके कहा—मैं सँवारूँगी।

मैंने चुपचाप कङ्घी उसे दे दी। इसके बाद खाने का समय आया। शान्ता ने बिजली का पङ्खा बन्द कर दिया और ताड़ का पङ्खा लेकर झलने लगी।

मैंने पूछा—क्यों?

उसने कहा—उसकी हवा अच्छी नहीं होती।

दोपहर को जब मैं सोने लगा, तो शान्ता आकर पाँव दबाने लगी। शाम को मैं उठा, खाना खाया और अलमास के घर पहुँचा।

रात भर के बाद सवेरे घर आया तो देखा, बिस्तर लगा है और शान्ता बैठी है। मैंने पूछा—तुम सोई नहीं?

शान्ता बोली—आप सोइए तो मैं भी सोऊँगी।

मैं पलँग पर लेट गया और शान्ता पाताने बैठ कर पाँव दबाने लगी।

एक दिन मैंने हरी से पूछा—क्यों हरी, तुम्हारी मालकिन क्या सोती नहीं?

उसने उत्तर दिया—बाबू जी, आप जब आते हैं और वह आपकी सेवा कर लेती हैं, तब सोती हैं।

शान्ता मेरा सब काम स्वयं करती थी। परन्तु उसका स्वास्थ्य ख़राब होता जाता था। दुबली होती जाती थी। एक दिन मैंने पूछा—तुम इतनी दुबली क्यों होती जाती हो?

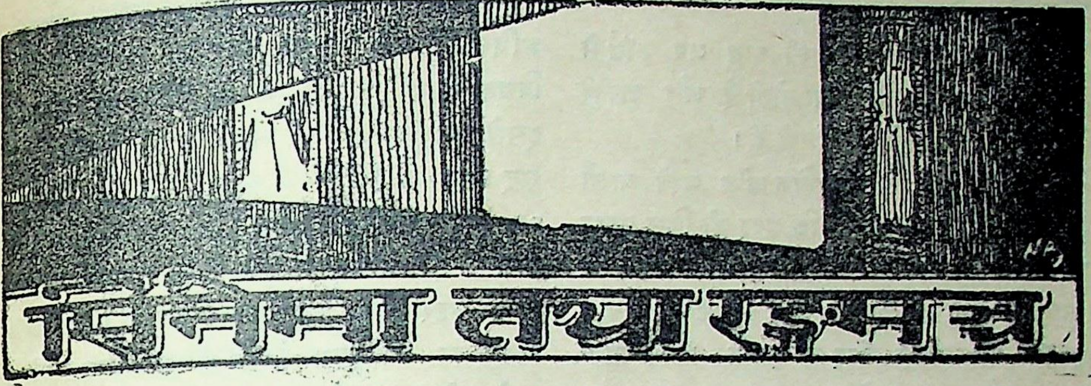
उसने कहा—नहीं तो। परन्तु उस दिन से मैंने अपना कार्यक्रम बदल दिया और ग्यारह बजे से पहले ही घर आ जाने लगा। धीरे-धीरे यह क्रम भी बिगड़ा और अलमास मेरे लिए एक गई-गुज़री याद सी रह गई। शान्ता के सेवा-भाव ने मुझे पशु से आदमी बनने को बाध्य किया।

एक दिन मैंने प्यार से कहा—शान्ता, तुम मेरे लिए इतना तरद्दुद क्यों करती हो, स्त्री को इस तरह दासी बन कर नहीं रहना चाहिए।

शान्ता ने गम्भीरता से उत्तर दिया—दासी तो तब होती है, जब प्रेम नहीं होता। जहाँ प्रेम-भाव होता है, वहाँ न कोई मालिक होता है और न कोई दासी होती है।*

—अनुवादक

* उर्दू 'मिलाप' (लाहौर) से।



सवाक् चित्रपट

[डॉक्टर धनीराम प्रेम]

सवाक् चित्रपट अब एक स्वप्न नहीं, बल्कि एक सत्य माना जाता है। कुछ वर्षों पूर्व ही जो कुछ असम्भव समझा जाता था, वही आज सम्भव हो चुका है। आज हम सिनेमा के पर्दे पर चित्रपटों में विविध प्रकार के शब्द को उसी प्रकार सुन सकते हैं, जिस प्रकार सिनेमा के बाहर अपने वास्तविक जगत में। इस प्रकार के सवाक चित्रपट या बोलते फ़िल्म देखते हुए हमें केवल चार वर्ष के लगभग हुए हैं, परन्तु इस नूतन आविष्कार के पीछे बड़े रहस्य छिपे हैं और इसका इतिहास बहुत विशद, बहुत मनोरञ्जक और बहुत शिक्षाप्रद है। इन पंक्तियों में उन्हीं सब बातों पर विचार किया जायगा।

सवाक् चित्रपट के इतिहास के विषय में जानने से पूर्व हमें यह जान लेना आवश्यक है कि 'शब्द' (Sound) किसे कहते हैं। क्योंकि इसी पर सवाक् चित्रपट की भित्ति का आधार है। हम बोलते हैं, मुख से शब्द होता है। हम पृथ्वी पर कोई वस्तु गिराते हैं, शब्द होता है। हम तालियाँ बजाते हैं, शब्द होता है। घोड़ा सड़क पर दौड़ता है, शब्द होता है। इसके साथ ही कुछ और बातें ध्यान देने योग्य हैं। हम धीरे से हवा में अपने हाथ को या पङ्खा को हिलाते हैं, कोई शब्द सुनाई नहीं देता। हम पङ्खा को ज़ोर से हिलाते हैं, शब्द सुनाई देता है। जब हम बिजली का पङ्खा चलाते हैं, तब शब्द की तीव्रता बढ़ जाती है। बात यह होती है कि वायु-मण्डल में सिकुड़ने और फैलने की अपूर्व शक्ति है। जब वायु में किसी प्रकार की गति पैदा होती है, वह चाहे हमारे पङ्खा से हुई हो, चाहे घोड़े के खुरों से, उस स्थान की वायु सिकुड़ती है और उसके पूर्व के स्थान की वायु फैलती है। यदि गति उत्पन्न करने वाला पदार्थ इसी प्रकार बराबर गति पैदा करता चला जाय, तो वायु में क्रमशः सिकुड़ने और फैलने (Condensation and Rarefaction) की लहरें पैदा हो जायँगी। जब ये लहरें हमारे कान के पर्दे पर जाकर टकराती हैं और ज्ञान-तन्तुओं द्वारा ये मस्तिष्क तक पहुँचती हैं, तो हमें शब्द सुनने का आभास होता है। वायु में इस प्रकार की गति (Vibrations) यदि एक सेकेण्ड में सोलह से कम होती है, तो हमें कोई शब्द नहीं सुन पड़ता। गति जितनी ही अधिक होती है, शब्द उतना ही ज़ोरदार होता जाता है। बिजली के पङ्खे की गति बदल कर इसकी सचाई मालूम की जा सकती है। हम जो कुछ बोलते हैं, उसमें भी इसी सिद्धान्त के अनुसार कार्य होता है। फेफड़ों (Lungs) में वायु ले जाने के लिए हमारे शरीर में एक श्वास-नलिका है, जो हमारी जिह्वा के पिछले भाग के नीचे से प्रारम्भ होती है। इसके ऊपरी भाग को 'लैरिंक्स' (Larynx) कहते हैं। इस नली में दोनों ओर एक-एक झिल्ली जैसा पर्दा है। इन दोनों को 'वोकल कॉर्ड्स' (Vocal Cords) कहते हैं। जिस समय हम बोलना चाहते हैं, ये कॉर्ड सिकुड़ कर सख़्त हो जाते हैं और साथ ही हम साँस बाहर निकालते

हैं। नली में से बाहर आने वाली वायु जब कॉर्ड से टकराती है, तो उसमें गति पैदा होती है और उसकी लहरें शब्द बन कर कानों में पहुँचती हैं।

लगभग ५० वर्षों से वैज्ञानिक खोज करने वालों का यह प्रयत्न होता आया है कि शब्द को किस प्रकार स्थायी रूप दिया जाय। विद्युत् को हम एकत्र करके रख सकते हैं और आवश्यकता होने पर उसका प्रयोग कर सकते हैं। परन्तु शब्द को एकत्रित करके आवश्यकतानुसार उसका प्रयोग करना सरल न था। सन् १८८६ में जगत्-प्रसिद्ध वैज्ञानिक आविष्कर्ता स्वर्गीय टॉमस ई० एडीसन ने एक मैशीन का आविष्कार किया, जिसमें शब्द भरा जा सकता था। इसके पूर्व १८७७ में वह फ़ोनोग्राफ़ का आविष्कार कर चुका था। उन दिनों सिनेमा वालों को यह बात बहुत अखरती थी कि चित्रपट में शब्द नहीं होता। उसकी पूर्ति के लिए उन्होंने कुछ उपाय किए थे। परदे के पीछे कुछ व्यक्ति चित्र में प्रयोग किया गया वार्तालाप करते थे। शेर, कुत्ता, घण्टी आदि के शब्दों को भी इसी प्रकार उत्पन्न किया जाता था। पीछे से ग्रामोफ़ोन और चलित चित्रों को मिला कर सवाक चित्रपट बनाने के प्रयत्न होने लगे। सन् १८९२ में डेमेनी नाम के एक व्यक्ति ने 'क्रोनोफ़ोटोफ़ोन' (Chronophotophone) नाम का एक यन्त्र बनाया, इसमें ग्रामोफ़ोन-रेकॉर्ड से शब्द निकलता था और मैजिक लैन्टर्न द्वारा चित्र दिखाया जाता था। सन् १८९४ में एडीसन ने अपने 'काइनिओफ़ोन' (Kineophone) नामक यन्त्र का आविष्कार किया। इसमें भी डेमेनी के यन्त्र के समान ही कार्य होता था। अन्तर इतना था कि इसमें मैजिक लैन्टर्न के स्थान पर एक शीशा लगे हुए छेद में से चित्र देखना पड़ता था और कानों पर यन्त्र (Earphones) लगा कर शब्द सुनना पड़ता था! परन्तु शब्द और चित्र में सम्बन्ध बिलकुल नहीं होता था। चाहे जिस चित्र के साथ चाहे जौन सा ग्रामोफ़ोन-रेकॉर्ड चढ़ा दिया जाता था।

बहुत दिनों तक वैज्ञानिक यह प्रयत्न करते रहे कि किसी प्रकार 'शब्द' को 'प्रकाश' में परिणत करके उसका चित्र लिया जाय। परन्तु यह सरल न था। बहुत खोज के उपरान्त 'सेलेनियम' नामक एक पदार्थ का पता लगा। इस पदार्थ की विशेषता यह थी कि उस पर अधिक या कम प्रकाश डाल कर उसमें जाने वाली विद्युत् को भी कम या अधिक किया जा सकता था। इससे शब्द-चित्र लेने की खोजों में बड़ी सहायता मिली। सन् १८८० में ही इसकी सहायता से सुप्रसिद्ध आविष्कारक बैल ने 'रेडिओफ़ोन' (Radiophone) नामक यन्त्र बनाया था। इसमें मुख से जो शब्द निकलता था, उसकी लहरें एक 'आर्क लाइट' पर पड़ कर उसमें से निकल कर सेलेनियम सेल (Selenium Cell) पर पड़ने वाले प्रकाश को कम या अधिक कर देती थीं। इस प्रकार सेलेनियम सेल में विद्युत् की लहरें उत्पन्न हो जाती थीं। सेल के बाहर एक टेलीफ़ोन होता था। विद्युत् की लहरें वायु में गति उत्पन्न करके शब्द पैदा करती थीं, जो टेलीफ़ोन द्वारा कान में सुना जा सकता था।

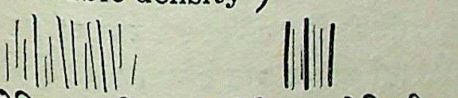
इसी प्रकार का यन्त्र रूमेर (Rhumer) ने जर्मनी में भी बनाया था। इन सब यन्त्रों में सिद्धान्त यह था कि शब्द की लहरों के द्वारा प्रकाश में परिवर्तन होता था, प्रकाश के परिवर्तन के कारण जिस वस्तु पर प्रकाश पड़ता था, उसके ताप में परिवर्तन होता था, इसके कारण उस वस्तु में स्थित वायु में लहरें पैदा होती थीं। इनसे शब्द उत्पन्न होता था, जो कानों में सुनाई देता था।

सन् १९०५ में हार्टमान ने 'फ़ोटोटोन' बनाया, जिसमें शब्द काफ़ी दूर पर सुनाई पड़ता था। इसके बाद रूमेर ने फ़िल्म पर शब्दों की लहरों का चित्र लिया। सबसे बड़ी कठिनता फ़िल्म पर अभिनेताओं के होठों की गति और शब्द को एक ही साथ प्रगट करने (Synchronisation) में थी। कुछ दिनों तक इसीके लिए प्रयोग होते रहे। कुछ मैशीनों में शब्द और चित्र को एक साथ ही दो फ़िल्मों पर लेकर एक साथ ही दर्शकों के सामने एक ही मैशीन द्वारा दिखाया गया। दूसरी में शब्द को ग्रामोफ़ोन रेकार्ड में भर कर सिनेमा में इस प्रकार दिखाया गया कि रेकार्ड और फ़िल्म दोनों साथ-साथ शुरू हुए। सन् १९०६ में लाउस्तर (Lauster) ने शब्दों और अभिनेताओं की गति के चित्र एक ही फ़िल्म पर लिए।

सन् १९१२ से १९२६ तक कोई अधिक कार्य नहीं हुआ। पहले की गई खोजों में ही परिवर्तन होते रहे। प्रकाश में किस प्रकार परिवर्तन किए जायँ, इसी के लिए नए उपाय सोचे गए। सन् १९२६ में वैस्टर्न एलेक्ट्रिक

कम्पनी और वॉर्नर ब्रदर्स ने मिल कर 'वाइटाफ़ोन' (Vitaphone) नामक पद्धति द्वारा सवाक चित्रपट बनाने शुरू किए। सन् १९२७ में फ़ॉक्स-फ़ेस कम्पनी ने 'मूवीटोन' (Movietone) नामक पद्धति से फ़िल्म बनाए। उधर आर० सी० ए० कम्पनी ने 'फ़ोटो-टोन' का आविष्कार किया।

पहले-पहल तो ग्रामोफ़ोन रेकार्ड की भाँति ही शब्द बड़े-बड़े रेकार्डों में भरा जाता था। फ़िल्म की एक रील के लिए एक रेकॉर्ड बनाया जाता था। फ़िल्म लेते समय एक साथ ही ग्रामोफ़ोन-रेकार्ड बनाने की मैशीन तथा कैमरा चलाए जाते थे। इसी प्रकार थिएटर में दोनों एक साथ प्रदर्शित किए जाते थे। कुछ दिनों तक यह प्रणाली जारी रही, परन्तु पीछे से फ़िल्म पर शब्द का चित्र खींचा जाने लगा। रेकार्डों में कई कठिनाइयाँ थीं। एक तो वे बहुत भारी होते थे, अतः ले जाने में कठिनाई होती थी। मार्ग में उनके टूट जाने का भी भय था। दूसरी बात यह थी कि कभी-कभी ख़राब हो जाने से फ़िल्म का कुछ अंश काट देना पड़ता है। परन्तु उसके साथ का रेकॉर्ड का अंश काट कर अलग नहीं किया जा सकता था, अतः शब्द और होठों की गति के समय में अन्तर पड़ जाता था। इन्हीं कठिनाइयों को दूर करने के निमित्त फ़िल्म पर शब्द-चित्र लेने की प्रणाली का ही अब प्रयोग किया जाता है। अधिकतर चित्र और शब्द अलग-अलग दो फ़िल्मों पर लिए जाते हैं। पौज़ीटिव छापते समय दोनों एक ही फ़िल्म पर ले लिए जाते हैं। शब्द का चित्र फ़िल्म के किनारे पर होता है। यह दो प्रकार का होता है—(१) वेरिएबल एरिया (Variable area) (२) वेरिएबल डेन्सिटी (Variable density)



वेरिएबल एरिया वेरिएबल डेन्सिटी

वेरिएबल एरिया में प्रकाश की काली रेखाएँ एक ही मोटाई की होती हैं, परन्तु उनकी लम्बाई भिन्न-भिन्न शब्दों के अनुरूप बदलती रहती है। वेरिएबल डेन्सिटी में रेखाएँ एक ही लम्बाई की होती हैं। उनकी मोटाई शब्दों के अनुसार बदलती रहती है, जैसा कि ऊपर के चित्रों से विदित हो जायगा। दोनों का अर्थ एक ही है, अर्थात् शब्दों की लहरों के अनुसार फ़िल्म में होकर कम या अधिक प्रकाश जाय।

स्टुडिओं में किस प्रकार सवाक् चित्रपट बनाया जाता है, अब यहाँ उसके विषय में कुछ लिखा जायगा और साथ ही उन सभी उपकरणों का वर्णन किया जायगा, जिनका प्रयोग इस कार्य में किया जाता है।

स्टुडिओ उस स्थान को कहते हैं, जहाँ फ़िल्म खींचा जाता है। लकड़ी, काग़ज़ और कपड़े द्वारा इच्छित भाँति के दृश्य स्टुडिओ में बना कर खड़े कर दिए जाते हैं। उस स्थान को आवश्यकतानुसार क़ालीन, मेज़, कुर्सी, पर्दें, चित्र आदि सामान से सुसज्जित कर दिया जाता है। एक ओर अभिनेता खड़े होते हैं। डाइरेक्टर उन्हें सब कुछ समझाता है कि उन्हें क्या काम करना है। कई बार रिहर्सल होता है। अभिनेताओं के सामने कैमरा रहता है और उनके सर के ऊपर, परन्तु इस प्रकार कि फ़िल्म में न आवे, एक यन्त्र टँगा रहता है, जिसको माइक्रोफ़ोन (Microphone) या 'माइक' कहते हैं। माइक्रोफ़ोन और कैमरा दोनों का सम्बन्ध एक लॉरी में रक्खी हुई एक मैशीन से होता है, जो स्टुडिओ के बाहर सुभीते के स्थान पर खड़ी रहती है। उसके भीतर साउण्ड रिकार्डर बैठा रहता है। यही व्यक्ति, जिसे हिन्दी में 'ध्वनि आलेखक' कहने लगे हैं, सवाक् चित्रपट का कर्ताधर्ता होता है।

कैमरा इस प्रकार के फ़िल्मों के लिए ऐसा बनाया जाता है कि उसमें कुछ भी शब्द नहीं होता। शब्द-सञ्चय करने वाली मैशीन और कैमरा एक साथ बटन दबाते ही चलने लगते हैं, ताकि शब्द और अभिनेताओं के होठों की गति एक समय पर ही फ़िल्म में लिए जा सकें।

माइक्रोफ़ोन बहुत ही आवश्यक वस्तु है। यह धातु का एक पतला डायफ़्राम (Diaphragm) है। शब्दों की लहरें जब इसमें जाकर टकराती हैं, तो वे इसमें विद्युत् की लहरें पैदा कर देती हैं। ये लहरें इतनी ज़ोरदार नहीं होतीं कि आगे के यन्त्र से काम ले सकें। उन्हें ज़ोरदार बनाने के लिए (To amplify) एक यन्त्र की सहायता ली जाती है, जिसे वैकुअम ट्यूब (Vacuum Tube) कहते हैं। ये विद्युत् की लहरें कई उपायों से प्रकाश की लहरों में परिणत कर दी जाती हैं, जो फ़िल्म पर खिंचती हैं।

इन उपायों में से सेलेनियम सेल का ज़िक्र पहले किया जा चुका है। उसमें कई प्रकार के दोष होने के कारण उसे अनुपयुक्त क़रार दिया गया। दूसरा उपाय फ़ोटो एलेक्ट्रिक सेल (Photo-electric Cell) है। यह शीशे का एक बल्ब होता है, जिसके भीतर पोटेशियम आदि की क़लई की होती है। यह फ़ोटो एलेक्ट्रिक सेल फ़िल्म को थिएटर में दिखाते समय काम आती है और साथ ही इसके अन्य उपयोग भी हैं, जैसे :—

१—एक रास्ते से जाती हुई मोटर, गाड़ियों आदि का गिनना।

२—रेडिओ द्वारा शब्द दूर तक भेजना।

३—सूर्य की धूप का अन्दाज़ा लगाना।

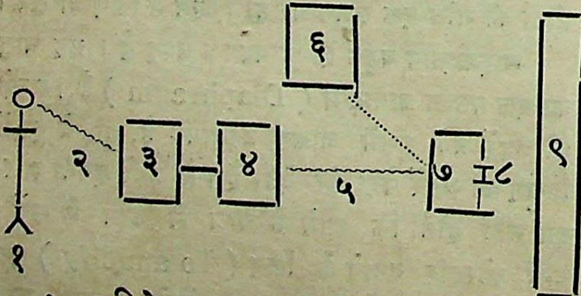
४—बेतार के तार द्वारा चित्र भेजना।

५—टेलीविज़न—दूर के पदार्थों या प्राणियों को पास देखना।

६—अन्धों को पुस्तक स्वयं ही पढ़ देना।

७—रँगीली चीज़ों को छाँटना, आदि।

अन्य उपाय हैं लाइट वाल्व, ग्लो लैम्प, गैल्वेनोमीटर आदि। सिद्धान्त सब में एक ही है, और वह यह है। इन यन्त्रों में एक छिद्र (Slit) होता है, जिस पर एक प्रकार का पर्दा पड़ा रहता है। इस छिद्र के पीछे एक लैम्प में से प्रकाश पड़ता है। सामने फ़िल्म घूमता है। एम्प्ली फ़ायर से आई हुई विद्युत् की लहरें छिद्र के पर्दे को इधर-उधर हटाती हैं। इस प्रकार जो प्रकाश छिद्र में से निकलता है, वह फ़िल्म पर पड़ता है और उसका चित्र खिंच जाता है। यह सब नीचे के चित्र से स्पष्ट हो जायगा।



१—अभिनेता, २—शब्द-लहरें, ३—माइक्रोफ़ान, ४—एम्प्ली फ़ायर, ५—विद्युत-लहरें, ६—प्रकाश का लैम्प, ७—लाइट वाल्व, ८—छिद्र, ९—फ़िल्म।

जिस समय फ़िल्म थिएटर में दिखाया जाता है, उस समय सब बातें इसके विपरीत होती हैं। फ़िल्म प्रकाश और फ़ोटो एलेक्ट्रिक सेल के बीच में दिखाया जाता है। फ़िल्म में होकर प्रकाश की जो लहरें सेल में पड़ती हैं, वे विद्युत् की लहरों में परिणत हो जाती हैं। ये लहरें लाउड स्पीकर में से शब्द की लहर बन कर निकलती हैं और इस प्रकार फ़िल्म लेते समय जो कुछ अभिनेता ने कहा था, हमें वही सुनाई देता है। यह लाउड स्पीकर पर्दे के पीछे लगाया जाता है। इस विषय की और बातें फिर लिखी जायँगी।

सिनेमा-समाचार

बम्बई—इम्पीरियल—'डाकू की लड़की' लगभग तैयार हो चुका है। 'सौभाग्य-सुन्दरी' भी बन रहा है। सुलोचना का काम दोनों में है।

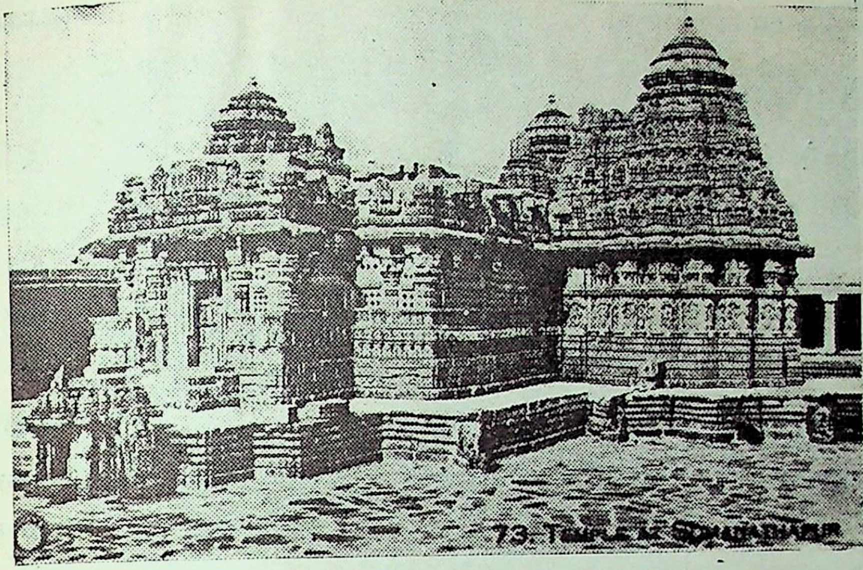
रणजीत—मिस गौहर का 'विश्वमोहिनी' इम्पीरियल सिनेमा में चल रहा है। उसका नया फ़िल्म होगा 'मिस १९३३।' श्रीनन्दलाल जसवन्तलाल का 'परदेशी प्रीतम' (माधुरी के साथ) और श्री० जयन्त देसाई का 'भूल भुलैयाँ' लगभग तैयार हैं। सागर का 'महाभारत', कृष्णा का 'लङ्का-दहन', सरोज का 'ईद का चाँद', शारदा का 'विक्रम-चरित्र' भी तैयार हैं। 'सरस्वती' मास्टर मोदक के साथ 'वेगाबॉण्ड प्रिन्स' बना रही है। कोल्हापुर की प्रभात 'रुक्मिणी-हरण' की तैयारी में है। छत्रपति सीनेटोन का पहला मराठी फ़िल्म बम्बई में चल रहा है।

कलकत्ता—मदन का 'श्रवण-कुमार' बम्बई में दिखाया जा रहा है। न्यू थिएटर्स लिमिटेड 'पूरन भगत' की तैयारी में है। ईस्ट इण्डिया का 'औरत का प्यार' और राधा का 'हातिमताई' बन रहे हैं। बम्बई की कृष्णा भी 'हातिमताई' बना रही है। पता नहीं, इस प्रकार की प्रतिस्पर्द्धा का कब अन्त होगा।

पञ्जाब—पञ्जाब और संयुक्त-प्रान्त में बातें बहुत होती हैं, काम कम होता है। 'लेआर्ट फ़ोटोटोन' ने 'हीर राँझा' और 'राजा गोपीचन्द' निकाल कर लम्बी तानी है। श्री० नन्दा के फ़िल्म 'पवित्र गङ्गा' का समुचित स्वागत नहीं हुआ। वह बम्बई के एक छोटे सिनेमा में चल कर ही रह गया। संयुक्त-प्रान्त की तो अभी नींद ही नहीं खुली।

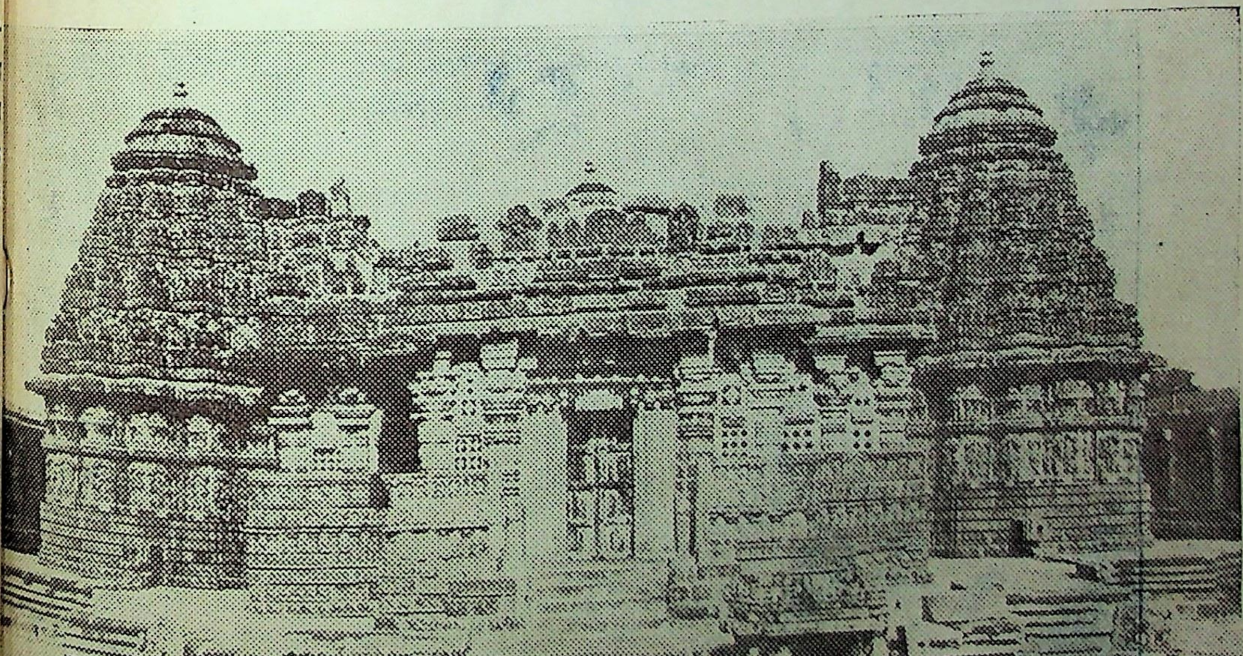
सोमनाथपुर का मन्दिर

सोमनाथपुर (मैसूर) का यह मन्दिर, जिसको बने लगभग दो हज़ार वर्ष हो गए, भारतीय शिल्प-कला का एक प्रशंसनीय नमूना है। इस मन्दिर



की लम्बाई २१५ फ़ीट और चौड़ाई ११७ फ़ीट है। इसकी दीवारों पर सैकड़ों सुन्दर मूर्तियाँ और रामायण तथा भगवद्गीता के श्लोक खुदे हुए हैं।

मन्दिर का पार्श्ववर्ती दृश्य



मन्दिर के सम्मुख भाग का दृश्य

इन्दौर के स्वनामधन्य रईस रावराजा सेठ सर हुकुमचन्द के० टी०। अभी हाल में ही इन्दौर में एक अखिल भारतवर्षीय स्वदेशी प्रदर्शनी हुई थी, जिसे आचार्य पी० सी० राय ने



उद्घाटित किया था, सर हुकुमचन्द उसकी स्वागत-समिति के अध्यक्ष थे। आप भारत के प्रसिद्ध व्यवसायियों में हैं, आजकल स्वदेशी-प्रचार सम्बन्धी कार्यों में खूब भाग लेते हैं।



जबलपुर (सी० पी०) के सुप्रसिद्ध जन-सेवक श्री० सेठ गोविन्ददास और उनकी धर्मपत्नी का हाल ही का चित्र, जो सेठ जी की धर्मपत्नी की भयानक बीमारी के बाद स्वस्थ होने पर लिया गया है।

मारवाड़ी-समाज का एक क्रान्तिकारी दम्पति



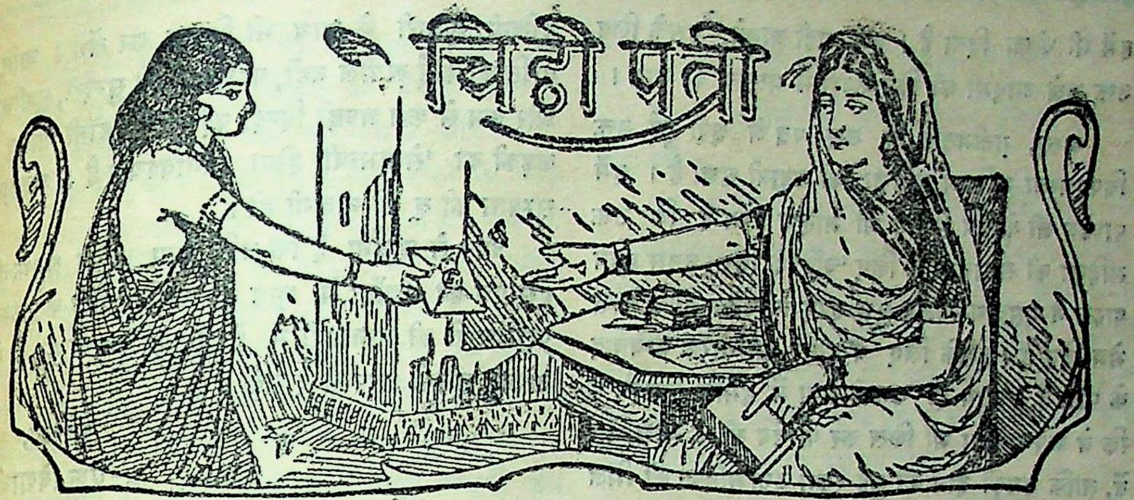
श्री० ख़ुशहालचन्द और श्रीमती सोनाबाई

यह आदर्श जोड़ी औरङ्गाबाद (दक्षिण) की रहने वाली है। कन्या का पिता उसका विवाह एक पचास वर्ष के बूढ़े से करना चाहता था, सगाई हो चुकी थी, परन्तु कन्या ने अपने सहृदय समाज-सुधारक पुरोहित की सहायता से अपना विवाह उपर्युक्त युवक के साथ कर लिया। बौखलाए हुए पिता ने उक्त युवक पर कन्या को भगा ले आने की नालिश की है। मामला विचाराधीन है।



मिस नौर्मा शियरर

हॉलीवुड के सर्व-प्रथम फ़िल्म-स्टारों में से एक।



गङ्गा और नर्मदा-प्रेमियों से निवेदन

मैं श्रीगङ्गाजी और श्रीनर्मदाजी पर दो बड़ी पुस्तकें लिख रहा हूँ। अङ्गरेज़ी और हिन्दी में इनके सम्बन्ध में जो सामग्री प्राप्य है, उसको एकत्रित करने का प्रयत्न कर रहा हूँ। श्रीगङ्गाजी और नर्मदाजी के प्रेमियों से मेरा नम्र-निवेदन है कि—(१) यदि वे इन नदियों तथा इनकी सहायक नदियों के किनारे के किसी महत्वपूर्ण स्थान से परिचित हों, तो उसका संक्षिप्त वर्णन मेरे पास भेजने की कृपा करें। इस वर्णन में प्राकृतिक दृश्यों, घाटों, देवस्थानों, प्राचीन और नवीन मन्दिरों तथा ऐतिहासिक बातों को स्थान देना आवश्यक है। साथ में यह भी बतलाना आवश्यक है कि वह स्थान किस ज़िले में है, किसी बड़े नगर से कितनी दूर है, नदी के किस किनारे पर है, और रेल द्वारा तथा सड़क से उस स्थान को किस प्रकार पहुँच सकते हैं। (२) यदि उनके पास श्रीगङ्गाजी या नर्मदाजी के सम्बन्ध में कोई प्रकाशित या अप्रकाशित कविता या स्तोत्र हो तो उसे मेरे पास भेज दें। (३) यदि उनके पास इन नदियों या इनकी सहायक नदियों के किनारे के किसी दर्शनीय स्थान (मन्दिर, घाट, प्राकृतिक दृश्य) का फ़ोटो या चित्र हो तो उसे मेरे पास अवश्य भेज देने की कृपा करें। (४) यदि उनके पास इन नदियों के किनारे रहने वाले किसी महात्मा, साधु, सन्त या वीर पुरुष का फ़ोटो हो, तो वे उसे भी उनके संक्षिप्त जीवन-चरित्र सहित भेजने की कृपा करें। (५) इन पुस्तकों को उत्तम तथा और भी अधिक उपयोगी बनाने के लिए योग्य सम्मति भी देने की कृपा करें।

जो सज्जन मुझे इन पुस्तकों के लिखने में उपर्युक्त किसी भी तरह से सहायता देने की कृपा करेंगे, उनका शुभ नाम पुस्तक में सधन्यवाद प्रकाशित कर दिया जायगा और प्रकाशित होने पर पुस्तक भी उनको बिना मूल्य भेज दी जायगी। जो सज्जन फ़ोटो या चित्र भेजने की कृपा करेंगे उनको, यदि वे लेना स्वीकार करेंगे, तो उसका उचित ख़र्च भी भेज दिया जायगा। यदि वे चाहेंगे तो ब्लॉक बन जाने पर फ़ोटो या चित्र सधन्यवाद वापस भी कर दिए जावेंगे।

धर्मग्रन्थावली कार्यालय
दारागञ्ज, प्रयाग

दयाशङ्कर दुबे
एम० ए०, एल्-एल० बी०
अर्थशास्त्र-अध्यापक,
प्रयाग-विश्वविद्यालय

❀ ❀ ❀

"एक विपदग्रस्ता मुस्लिम महिला"

गत जनवरी सन् १९३३ के 'चाँद' में उक्त शीर्षक से एक चिट्ठी छपी थी, जिसमें यह लिखा गया था, कि "जबलपुर (सी० पी०) के वकील श्री० आर० पी० पाण्डेय ने हमारे पास विपदग्रस्ता मुस्लिम महिला की करुण-कहानी लिख भेजी है।" इत्यादि। परन्तु खेद की बात है कि उक्त पत्र से पाण्डेय जी का कोई सम्बन्ध नहीं है। उस पत्र के लिखने वाले कोई और ही सज्जन हैं और उन्होंने जान-बूझ कर पाण्डेय जी की ओर से हमें पत्र लिख कर अपनी विचित्र बुद्धि का परिचय दिया है। फलतः उन्होंने केवल व्यर्थ ही पाण्डेय जी को इस मामले में घसीटने की धृष्टता ही नहीं की है, वरन्

हमें भी धोखा दिया है। हम नहीं जानते, इसके लिए उक्त भले आदमी की किन शब्दों में भर्त्सना की जाय।

अस्तु; ग़नीमत है कि उस पत्र में छपी हुई उक्त विपद्ग्रस्ता मुस्लिम महिला की कहानी सच्ची है। हमें पाण्डेय जी के पत्र से यह भी मालूम हुआ है कि उक्त महिला की सहायता के लिए 'चाँद' के किसी उदार हृदय पाठक ने गुप्तदान-स्वरूप कुछ रुपए पाण्डेय जी के पास भेज दिए हैं। इसके लिए वे हमारे आन्तरिक धन्यवाद के पात्र हैं। साथ ही उनकी सेवा में हमारा निवेदन है कि वे अपना पता भी लिख कर पाण्डेय जी के पास भेज दें, ताकि उनकी दान की हुई रक़म उक्त महिला को मिल जाए, क्योंकि वह रक़म अभी तक पाण्डेय जी के पास ही पड़ी है और भेजने वाले का पता जाने बिना पाण्डेय जी उसका कोई उपयोग करना नहीं चाहते। इसकी सारी ज़िम्मेदारी उस मनुष्य पर है, जिसने अकारण ही पाण्डेय जी को इस मामले में घसीटने की मूर्खता की है।

इसी सिलसिले में यह लिखते हुए हमें प्रसन्नता होती है कि बीकानेर राज्य के ट्राफ़िक सुपरिण्टेण्डेण्ट श्री० भक्तिनारायण जी की धर्मपत्नी महोदया ने भी उक्त मुस्लिम महिला की सहायता के लिए १५) हमारे पास भेजा था, जो उनके पास भेज दिया गया है। इसके लिए हम श्री० भक्तिनारायण जी की उदाराशया पत्नी महोदया को कोटिशः धन्यवाद प्रदान करते हैं।

—सम्पादक 'चाँद'

❀ ❀ ❀

एक युवक की सदिच्छा

कानपुर से एक सज्जन ने लिखा है :—

श्रीमान् सम्पादक जी,

सादर नमस्ते। मेरे एक मित्र, जिनकी उम्र २४ साल की है। वे एक सद्वंशजात गुजराती ब्राह्मण हैं। परन्तु गत पाँच वर्षों से संयुक्त-प्रान्त में निवास करते हैं और यहाँ की सुप्रसिद्ध कम्पनी में सेक्रेटरी हैं। मासिक वेतन ११०) है। उच्च शिक्षा प्राप्त की है और बड़े उदार विचार के हैं। उनकी इच्छा किसी बाल-विधवा के साथ विवाह करने की है। अगर बाल-विधवा न मिले तो किसी ग़रीब दुखिनी कुमारी के साथ भी विवाह कर लेंगे। जाति-पाँति का कोई ख़याल नहीं, परन्तु लड़की सुन्दरी, सुशील और कम से कम अच्छी हिन्दी पढ़ी-लिखी होनी चाहिए। लड़की का 'सेवाभावी' होना अत्यावश्यक है। अङ्गरेज़ी सभ्यता की बू भी न लगी हो।

आप से प्रार्थना है कि यदि आप उचित समझें तो इस पत्र को 'चाँद' में छाप दें, ताकि 'चाँद' के पाठक-पाठिकाओं की जानकारी में ऐसी कोई लड़की हो तो वे उसकी सूचना आपको दे सकें।

आपका,

—एक विद्यार्थी

[हमने पत्र-प्रेरक महाशय के विशेष अनुरोध से यह पत्र प्रकाशित कर दिया है और आशा करते हैं, इस सम्बन्ध में कोई सज्जन उनकी सहायता करेंगे। जो भाई इस सम्बन्ध में विशेष जानकारी प्राप्त करना चाहें वे हमें पत्र लिखें।]

—स० 'चाँद'

❀ ❀ ❀

एक सुपात्र की आवश्यकता

एक बालिका, जिसकी आयु १४ वर्ष की है और जो ७वीं कक्षा में अङ्गरेज़ी पढ़ती है; रङ्ग पक्का, आकृति अच्छी, शरीर सुडौल, सुशीला और गृहकार्य में होशियार है। इसे एक वर की आवश्यकता है, जो जात-पाँत के भेद-भाव से परे, स्वतन्त्र विचार का हो। आयु २० से २२ वर्ष की, पढ़ा हुआ या पढ़ता हो। ज़मींदारी या अन्य प्रकार से मासिक आय लगभग १००) हो; परिवार में माता-पिता हों तो और अच्छा। नीचे लिखे पते पर पत्र-व्यवहार करें।

—चुन्नीलाल गुप्त,
C/o आर्य-समाज,
मथुरा

❀ ❀ ❀

पतियों की बेकारी

'चाँद' के किसी गताङ्क में 'पति की बेकारी' शीर्षक एक चिट्ठी छपी थी और उसके लिए एक गुप्तदानी सज्जन ने १००) भी भेजे थे। साथ ही उक्त 'बेकारी'

पति' महोदय को उनकी योग्यतानुसार नौकरी भी मिल गई। इसके बाद से पतियों की बेकारी सम्बन्धी पत्रों का ताँता सा हमारे पास लग गया है और बेकार पतियों को कोई काम दिला देने के लिए इतने पत्र आए हैं कि अगर हम उन्हें 'चाँद' में छाप दें, तो वह लखनऊ की 'सुधा' के विशेषाङ्क की तरह एक ख़ासा मोटा 'बेकारी-विशेषाङ्क' बन जाय। इनमें कितने ही पत्र तो ऐसे हैं, जो पत्नियों द्वारा नहीं, वरन् पत्नियों की ओर से पतियों द्वारा ही लिखे गए मालूम होते हैं। कुछ पत्र वास्तविक दुखिनियों के लिखे हैं और कुछ सुयोग से लाभ उठाने की इच्छा रखने वाले चतुर सज्जनों के। कितने ही पत्नियों के पति बेकार तो नहीं हैं, कुछ काम करते हैं, परन्तु उनकी आमदनी काफ़ी नहीं है, अतः उनके लिए किसी अच्छी नौकरी की आवश्यकता है। एक सज्जन की वकालत अच्छी तरह नहीं चलती, इसलिए उनकी पत्नी महोदया उनके लिए किसी अच्छी नौकरी की तलाश में हैं। कई सज्जन 'हुनरमन्द' हैं; कई प्रकार का हुनर जानते हैं। वे हज़ार-दो हज़ार रुपए उधार चाहते हैं, परन्तु उनकी आज्ञा है कि उनके नाम और पते किसी को मालूम न होने पावें। कुछ विद्यार्थी-श्रेणी के युवकों के पत्र हैं। इनकी इच्छा ऊँची शिक्षा प्राप्त करने की है। ये ऐसे किसी गुप्त दानी की तलाश में हैं, जो उन्हें अपने ख़र्च से बी० ए०, एम० ए० तक पढ़ा दें। एक सज्जन मध्यप्रान्त के कायस्थ हैं। कुछ रुपए के बिना उनका मुक़दमा ख़राब हो रहा है।

ऐसे ही और भी कितने ही पत्र हैं, जिनके लिखने वाले और लिखने वालियों ने ही अकारण ही कुछ पैसों के साथ अपना और हमारा समय नष्ट किया है।

इन पत्र-प्रेरकों और प्रेरिकाओं में जो वास्तविक दुखी हैं, उनके प्रति हमारी आन्तरिक सहानुभूति है। इसलिए 'चाँद' के सहृदय पाठकों से हमारा निवेदन है कि यदि वे कुछ पढ़े-लिखे बेकार युवकों की या वास्तविक दुखिनी बहिनों की कुछ सहायता करना चाहें या योग्यतानुसार उनके पतियों को कोई नौकरी आदि दिला सकें तो हमारे पास लिखें। हम उन्हें ऐसे लोगों के पते देंगे, जो वास्तव में सहायता के पात्र हैं।

—स० 'चाँद'

एक विवाहार्थिनी बाल-विधवा

कटक (उड़ीसा) से एक बहिन ने लिखा है :—

महाशय,

एक पढ़ी-लिखी, गृह-कार्य में निपुण और आर्य-धर्म में विश्वास रखने वाली बाल-विधवा युवती, जिसकी आयु पचीस वर्ष की है, किसी सहृदय, सद्वंशजात पढ़े-लिखे युवक से पुनर्विवाह करना चाहती है। युवती उड़िया कायस्थ की लड़की है। यदि कोई सहृदय युवक इस दुखिनी से विवाह करके इसकी सहायता करना चाहे तो नीचे लिखे पते पर पत्र-व्यवहार करे।

सरलादेवी
पोस्ट जगतसिंहपुर
ज़िला, कटक (उड़ीसा)

एक सुपात्र की आवश्यकता

प्रिय सम्पादक जी,

सादर नमस्ते!

मैं एक सुशिक्षित और प्रतिष्ठित परिवार का युवक हूँ। मैं अपने घर का मालिक हूँ। मेरा पेशा ज़मींदारी है। नाम तो बहुत बड़ा है, परन्तु वास्तविक रूप में मैं अपना जीविकोपार्जन बड़े कष्ट से कर रहा हूँ। इसका एक सबसे बड़ा कारण यह है कि मेरी जायदाद पर क़रीब ५० हज़ार रुपए पैतृक क़र्ज़ है। आमदनी भी आजकल नहीं मिलती। क्योंकि इलाक़े के असामियों को ख़ुद ही कुछ नहीं बचता। यदि कुछ मिला भी तो मेरे घर के ख़र्च में ही लग जाता है। ख़ुद कहीं नौकरी करने की इच्छा होती है, क्योंकि B. Sc. तक की शिक्षा मैंने प्राप्त की है। परन्तु मैं ही अकेला एक पुरुष हूँ और मेरे परिवार में क़रीब २० स्त्रियाँ और बच्चे हैं, जिनका मैं ही एक आधार हूँ। इसके सिवा ज़मींदारी इत्यादि का भी इन्तज़ाम करना पड़ता है।

ऐसी हालत में मेरी एक बहिन है, जिसके विवाह की चिन्ता चार-पाँच वर्ष से मुझे सता रही है। वह आपके 'चाँद' की ग्राहिका भी है। स्वस्थ और सुन्दर है। पढ़ी-लिखी भी है। हर एक क़िस्म के गृह-कार्य में निपुण है। परन्तु यह सब होते हुए मुझे उसके योग्य कोई वर नहीं मिलता। यदि कोई मिलता भी है तो

रुपए-पैसे की माँग ऐसी होती है कि मेरे लिए नामुमकिन हो जाता है। यदि कहीं किसी तरफ़ से रुपए-पैसे की माँग न हुई तो कोई कहता है कि विलायत पढ़ने का ख़र्चा दो या मोटर दो। इत्यादि।

इन सब बातों से घबरा कर मैंने आपकी शरण ली है। मैं अब यहाँ तक तैयार हो गया हूँ कि जात-पाँत का भेद तोड़ कर विवाह करूँ। यदि मुझे एक सुशिक्षित स्वस्थ युवक, जो किसी अच्छे ख़ानदान का हो और जो अपने निर्वाह के लिए किसी दूसरे का आसरा न करने वाला हो, मिले तो मैं प्रसन्नतापूर्वक उससे अपनी बहिन का विवाह कर दूँगा, चाहे वह किसी भी हिन्दू-जाति का हो। हाँ, यह ज़रूरी है कि मैं विवाह-कार्य को केवल एक साधारण रूप में कम ख़र्च में करना चाहता हूँ। जो कुछ मेरे किए ख़र्च हो सकता है, वह सब मैं वर और कन्या के निमित्त ही ख़र्च करना चाहता हूँ। आशा है कि 'चाँद'-परिवार के नवयुवकों में से कोई न कोई समाज की इस रुकावट के विरुद्ध खड़े होकर हमारी सहायता को आवेंगे।

आपका,

× × ×

[यह पत्र पढ़ कर हमें दुःख भी हो रहा है और प्रसन्नता भी। युवक एक प्रतिष्ठित कुल का है। उसके नाम के आगे 'सिंह' की पदवी लगी है। उसकी बहिन पढ़ी-लिखी, सुशीला और सुन्दरी है, परन्तु वह बेचारा पैतृक ऋण से दबा हुआ ग़रीब है; तिलक के नाम पर रुपयों का तोड़ा नहीं दे सकता। इसलिए उसके 'सिंह उपाधिधारी' समाज में उसे कोई ऐसा योग्य युवक नहीं मिलता, जो उसकी बहिन का पाणिग्रहण करके उसे निश्चिन्त कर सके! यह कितने क्षोभ और परिताप का विषय है। कौन कह सकता है, कि जिस समाज में रुपए के लिए सुशीला बालिकाएँ इस तरह ठुकराई जाती हैं, उसकी परिणति कितनी भयावह होगी।

अस्तु, युवक ने जात-पाँत का बन्धन तोड़ कर अपनी बहिन के ब्याह का विचार किया है। इस सत्साहस के लिए हम उसे बधाई देते हैं। उसने रोग की सच्ची दवा ढूँढ़ निकाली है। उसके विचार अनुकरणीय और आदरणीय हैं। हम चाहते हैं कि इसी तरह का कोई साहसी सद्वंशजात युवक इस सुशीला कन्या के पाणिग्रहण के लिए भी तैयार हो जाय। जो भी युवक इसके लिए अग्रसर होगा, वह एक विपद्ग्रस्त भाई की रक्षा के महापुण्य के साथ ही देश के नवयुवकों के सामने एक नवीन आदर्श उपस्थित करेगा। इस सम्बन्ध में जो सहृदय, सुधार-प्रेमी सज्जन कुछ जानना चाहते हों, वे कृपया जवाबी कार्ड भेज कर हमसे जान सकते हैं।

—स० 'चाँद']

❀ ❀ ❀

वेश्यागामी की पत्नी

एक दुःखिनी बहिन लिखती है—

श्रीमान् सम्पादक जी,

नमस्ते!

मैं एक उच्च कान्यकुब्ज ब्राह्मण के घराने की लड़की हूँ। मेरे पिता जी तो साधारण हैसियत के आदमी हैं, परन्तु पतिदेव एक हैसियतदार के लड़के हैं। बी० ए० पास हैं और पुलिस-विभाग के एक प्रतिष्ठित पद पर नियुक्त हैं। तनख़्वाह भी काफ़ी मिलती है। परन्तु उन्होंने अपनी सारी कुल-मर्यादा और प्रतिष्ठा को घोल कर पी लिया है और एक वेश्या से सम्बन्ध कर लिया है। न उन पर किसी के कहने-सुनने का कुछ असर होता है और न उन्हें अपनी प्रतिष्ठा की कोई चिन्ता है। यदि मैं कुछ कहती हूँ—कुछ विनय-प्रार्थना करना चाहती हूँ, तो साफ़ उत्तर देते हैं कि मुझे जो सुहाता है, करता हूँ, तुम्हें जो भाए सो तुम भी करो; मुझे किसी की कोई परवा नहीं है। मेरी भोली-भाली पूजनीया सास अगर कुछ कहती हैं तो उन्हें भुलावा दे देते हैं या कह देते हैं कि अच्छा छोड़ दूँगा, परन्तु नहीं छोड़ते।

हमारे देवर जो उन्हीं की तरह बी० ए० पास हैं, बेचारे बेकार हैं। और भाई से डरते भी हैं। वे अगर कुछ कहने का साहस करते हैं, तो डाँट दिए जाते हैं और उनसे कह दिया जाता है कि हम गृहस्थी का ख़र्च

नहीं चलाएँगे, तुम्हीं चलाओ। बेचारे यह सुन कर सिटपिटा कर रह जाते हैं।

पहले वह मुझे भी साथ रखते थे, परन्तु अब नहीं बुलाते और उसी वेश्या को अपने साथ रखते हैं। मुझे कहते हैं कि तुम अपने पिता के घर चली जाओ। अब तो ऐसी हालत है कि मैं उनके चरणों के दर्शन से भी वञ्चित हो रही हूँ। जी घबराता है, मर जाने को जी चाहता है। मैं हिन्दू-स्त्री हूँ, मुझे पतिव्रत की शिक्षा मिली है। मैं न तो उन्हें छोड़ सकती हूँ और न कहीं जा सकती हूँ। सम्पादक जी, मैं गत तीन सालों से इसी सङ्कट में पड़ी हूँ। आप कोई ऐसा उपाय सोच कर बताइए, जिससे मेरा उपकार हो। परन्तु मुझे तलाक़ देने की सलाह न दीजिएगा। क्योंकि मैं ऐसा नहीं कर सकती। कोई और ही आसान उपाय बताइएगा। आपकी,

एक दुःखिनी बहिन

[इस बहिन ने जो लम्बा पत्र लिखा है, उसका सारांश हमने ऊपर दिया है, परन्तु नीचे की कई लाइनें हमने ज्यों की त्यों उद्धृत कर दी हैं। यह बहिन न तो अपने निकम्मे पति को छोड़ना चाहती है और न उसके विरुद्ध कोई क़ानूनी कार्रवाई करना चाहती है, अथच वह कोई ऐसा उपाय चाहती है, जिससे उसके पतिदेव सुधर जावें। परन्तु अफ़सोस तो यह है कि हम कोई ऐसा जादू-टोना नहीं जानते, जिसके प्रयोग से इनके पतिदेव की मति बदल सकें। इसलिए हमारी समझ में यही आता है कि वह अपने तमाम रिश्तेदारों, हितैषियों और शुभचिन्तकों के सामने यह मामला पेश करें और सब लोग मिल कर उनके पति पर दबाव डालें। शायद इस युक्ति से कुछ काम निकल जाए। —स० 'चाँद']

एक रुग्न पति की पत्नी

एक दुःखिनी ने लिखा है—

श्रीमान् सम्पादक जी,

मेरी शादी एक गृहस्थ के यहाँ हुई है। इस परिवार में बहुत से व्यक्ति हैं। यहाँ स्त्रियों की कोई क़द्र नहीं; खायँ, पहिनें और मर जावें। मेरे पतिदेव, मैं कैसे कहूँ कि मूर्ख हैं, परन्तु एक अक्षर भी पढ़े नहीं हैं। घर के दूसरे लोग हिन्दी और उर्दू मिडिल तक पढ़े हैं। मैं स्वयं अर्द्धशिक्षिता हूँ। परन्तु मेरा विचार सुधारों की ओर है। मेरे पतिदेव का प्रेमभाव मेरे प्रति बिलकुल नहीं है। मेरा उनका ब्याह बिलकुल बेमेल हुआ है। इसके सिवा उन्हें 'बरवट' की बीमारी है, नाक से ख़ून आता है। कुछ दवादारू नहीं होती, बदपरहेज़ी उनमें हद से ज़्यादा है। घर वाले रुपए ख़र्च होने के भय से किसी अच्छे वैद्य या डॉक्टर से उनका इलाज नहीं कराते। उनकी दशा देख कर मेरा दुःख उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। मेरी उम्र २२ वर्ष की है और मेरे एक लड़की ३ वर्ष की है। ऐसी हालत में मैं क्या करूँ। आप कोई ऐसी तदबीर बतलाइए, जिससे मुझे कुछ सान्त्वना मिले।

आपकी,

एक सन्तप्त-हृदया

[इस बहिन को चाहिए कि इस समय पति की मूर्खता और प्रेमाभाव तथा सङ्कोच आदि त्याग कर उसकी अच्छी चिकित्सा का प्रबन्ध करें। अगर सम्भव हो तो इस सम्बन्ध में अपने पिता से भी सलाह और सहायता ले सकती हैं। उनके पिता स्वयं अथवा उनके घर वालों को समझा-बुझा कर चिकित्सा का कोई उत्तम प्रबन्ध करा सकते हैं। आरोग्य हो जाने पर अपने पवित्र प्रेम द्वारा वे उसकी मूर्खता पर भी विजय प्राप्त कर सकती हैं। इस बीमारी की हालत में अन्य बातों तथा दुःख-सुख को भूल कर पति की सेवा करना ही पत्नी का धर्म है। —स० 'चाँद']

विधवा-विवाह की आवश्यकता

छिन्दवाड़ा (सी० पी०) से एक विधवा ने लिखा है:—

सम्पादक महोदय,

सादर जय राम जी की!

मैं नेमा (वैश्य) जाति की विधवा हूँ। मेरी उम्र २० साल की है। मैं आज आठ वर्षों से वैधव्य का दुःख

भोग रही हूँ। मेरा कोई सहारा नहीं है। मैं पढ़ी-लिखी भी नहीं हूँ। मैं दूसरे की सहायता से किसी तरह अपनी मनोवेदना आपके कानों तक पहुँचाती हूँ।

हमारे नेमा-समाज में विधवा-विवाह प्रचलित नहीं है। कुछ ग़रीब विधुर इस प्रथा के पक्षपाती हैं। परन्तु अमीरों के मारे उनकी एक नहीं चलती। अमीरों का काम तो रुपए की बदौलत चल जाता है। वे अपना कई-कई विवाह कर लेते हैं, परन्तु ग़रीब बेचारे एक स्त्री के मर जाने पर आजन्म गृहस्थी के सुख से वञ्चित रह जाते हैं। यही दशा हमारी जैसी अभागिनी बेवाओं की है। इस प्रथा के प्रचार बिना समाज में तरह-तरह की ख़राबियाँ पैदा हो रही हैं, परन्तु मुखिया लोग अपनी ज़िद पर अड़े हैं। एक बार इस प्रश्न पर विचार करने के लिए एक सभा भी हुई थी। समाज के सभी धनी-धोरी एकत्र थे। धनवानों की ओर से प्रबल विरोध हुआ ही, साथ ही एक विधवा ने भी घोर विरोध किया। इस पर पञ्चों ने फ़तवा दे डाला कि हमारे समाज में विधवा-विवाह की ज़रूरत नहीं है। परन्तु इसके कुछ दिन बाद ही वह विधवा, जिन्होंने विधवा-विवाह के विरोध में अपनी सारी शक्ति लगा दी थी, एक 'पाठक' को लेकर उड़ गई। परन्तु इतने पर भी समाज के मुखियों की आँखें न खुलीं और न उन्हें विधवा-विवाह की आवश्यकता का ही अनुभव हुआ। समाज के कुछ नवयुवकों ने 'नेमा-हितवर्द्धक' नाम का एक पत्र भी निकाला है। उसमें विधवा-विवाह की आवश्यकता पर लेख भी छापते हैं। परन्तु समाज के मुखियों के मारे किसी की कुछ नहीं चलती। हम अभागिनियों की कोई सुधि लेना नहीं चाहता। अब आप कृपा करके बताइए कि मेरी ज़िन्दगी कैसे कटे।

—नेमा जाति की एक बाल-विधवा

[इस पत्र से मालूम होता है कि मुखियों के विरोधी होते हुए भी कथित नेमा जाति में एक ऐसा दल है, जो विधवा-विवाह की आवश्यकता का अनुभव करता है। उसे अपना काम करते जाना चाहिए और साहस के साथ विरोधियों का मुक़ाबिला करते रहना चाहिए। हमारा विश्वास है कि उसे शीघ्र ही सफलता प्राप्त होगी। क्योंकि हिन्दू-जाति के शुभचिन्तकों और बुद्धिमानों ने विधवा-विवाह की आवश्यकता का अच्छी तरह अनुभव कर लिया है। विरोधियों की टेंटें में अब कोई दम नहीं है। मुर्दे की अन्तिम साँस की तरह अब वह क्षीण हो चुकी है।

पत्र भेजने वाली नेमा जाति की इस विधवा को हमारी सलाह है कि वह समाज के मुखियों द्वारा विधवा-विवाह सम्बन्धी प्रस्ताव स्वीकृत होने का आसरा न देखें। क्योंकि ये रूढ़ि-व्याधिग्रस्त जीवों की तो हिये की आँखें फूट गई हैं। इनसे किसी प्रकार के सुधार या सुकार्य की आशा करना विडम्बना है। ये तो कुछ दिन टेंटें करेंगे और मर जायँगे। आवश्यकता तो इस बात की है कि जो विधवाएँ या विवाहार्थी युवक इस प्रथा की आवश्यकता का अनुभव कर रहे हैं वे स्वयं साहस करके मैदान में उतर आवें और परस्पर पुनर्विवाह करके अपने अनुयायियों के लिए आदर्श बनें। इस विधवा को चाहिए कि वह किसी के विरोध और प्रतिवाद की परवा न करके अपनी इच्छा से किसी सुयोग्य विधुर से पुनर्विवाह कर लें। इससे उनका भी कल्याण होगा और दूसरों के दिल में भी साहस का सञ्चार होगा।

—स० 'चाँद']

❀ ❀ ❀

गर्भाशय के सूजन का इलाज

महाशय,

'चाँद' के गताङ्क में किसी विपद्ग्रस्ता ने गर्भाशय की सूजन का इलाज पूछा है। उन्हें चाहिए कि अपने रोग का पूरा विवरण लिख कर नीचे लिखे पते पर भेज दें। दवा यहाँ से बिना दाम भेज दी जाएगी। इसके लिए उन्हें कहीं जाने-आने की ज़रूरत नहीं। वहीं से दवा करके वे आरोग्यता लाभ कर सकेंगी। आपका,

-डॉक्टर बी० एल० काश्यप,
अध्यक्ष, रसायनशाला,
शाहजहाँपुर



प्राणायाम-रहस्य—लेखक, श्री० स्वामी सर्वानन्द सरस्वती और प० रामरत्नाचार्य; प्रकाशक, तरुण-भारत-ग्रन्थावली कार्यालय, दारागञ्ज, प्रयाग। मूल्य १।।)

इस पुस्तक में प्राणायाम सम्बन्धी प्रायः सभी ज्ञातव्य विषयों का समावेश है। प्राणायाम क्यों करना चाहिए, कैसे करना चाहिए और प्राणायाम करने से क्या लाभ होता है, इत्यादि बातों का विशद वर्णन है। इसमें बताया गया है कि हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों ने प्राकृतिक उपायों से आध्यात्मिक और शारीरिक उन्नति करने के जो बहुत से उपाय ढूँढ़ निकाले थे, उनमें प्राणायाम मुख्य है। हमने इस विषय की जो दो-एक पुस्तकें हिन्दी में देखी हैं, उन सब में यह अच्छी है।

हमारे बच्चे—लेखक, श्री० महेन्द्रनाथ पाण्डेय, आयुर्वेद-विशारद; प्रकाशक उपर्युक्त तरुण-भारत-ग्रन्थावली कार्यालय, दारागञ्ज, प्रयाग। पृष्ठ-संख्या १५७, मूल्य १)

इस पुस्तक में बच्चों के पालन-पोषण और उनके आहार-विहार के सम्बन्ध में बहुत से अत्यावश्यक ज्ञातव्य विषयों पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही शैशवावस्था में होने वाले रोगों और उनके प्रतिकार का उपाय तथा औषधियाँ भी बता दी गई हैं। थोड़े शब्दों में पुस्तक बड़े काम की है। प्रत्येक गर्भवती तथा प्रसूती को इसे एक बार अवश्य पढ़ना चाहिए।

रति-विलास—अनुवादक, श्री० सन्तराम, बी० ए०; प्रकाशक, नारायणदत्त सहगल एण्ड सन्स, आर्य बुकडिपो, लोहारी दरवाज़ा, लाहौर, पृष्ठ-सं० २०८; मूल्य १।।)

इङ्गलैण्ड की श्रीमती डॉ० मेरी स्टोप्स कामशास्त्र की पूर्ण पण्डिता हैं। इस विषय पर इन्होंने कई पुस्तकें लिखी हैं और सारे संसार में इन पुस्तकों का बहुत प्रचार भी है। प्रस्तुत पुस्तक उन्हीं डॉक्टर साहिबा की एक पुस्तक का हिन्दी अनुवाद है। इसमें पति-पत्नी को अधेड़ उम्र में रति-विलास सम्बन्धी जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, उन्हीं पर प्रकाश डाला गया है और उनके प्रतिकार के उपाय भी बताए गए हैं।

महाशक्ति-साहित्य-मन्दिर, काशी की पाँच पुस्तकें :—

(१) **जीवन-रक्षा**—लेखक, श्री० हनूमान-प्रसाद शर्मा, वैद्यशास्त्री, पृष्ठ-संख्या ११२, मूल्य ।।) इसकी भूमिका श्री० चन्द्रमौलि सुकुल, एम० ए०, एल० टी० ने लिखी है।

यह पुस्तक वैद्यशास्त्री जी ने विशेष रूप से लड़कों के लिए लिखी है, इसलिए इसकी भाषा की सरलता की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। इसमें बालकों को उनकी दिनचर्या, भोजन, पठन-पाठन, व्यायाम और प्राणायाम आदि के सम्बन्ध में बड़ी ही उपयोगी बातें दी गई हैं। निहायत अच्छी पुस्तक है।

(२) **आहार-विज्ञान**—लेखक, उपर्युक्त वैद्यशास्त्री महोदय, पृष्ठ-संख्या ३० + ३४४, मूल्य २)

प्राणिमात्र का जीवन केवल आहार पर ही निर्भर है। इसलिए आहार के सम्बन्ध में आवश्यक बातों का

ज्ञान प्राप्त कर लेना प्रत्येक मनुष्य का प्रधान कर्त्तव्य है। यह पुस्तक पाठकों को इसी अत्यावश्यक कर्त्तव्य का ज्ञान कराने की इच्छा से लिखी गई है, और विद्वान लेखक ने इसे लिखने में यथेष्ट सफलता प्राप्त की है। इस पुस्तक में, भोजन क्यों और कितना करना चाहिए, भोजन के पदार्थ और खाने की विधि, भोजन का समय, अन्नाहार, फलाहार और मांसाहार, समय, जल और भोजन के बाद की क्रिया आदि बहुत से आवश्यक विषयों पर प्रकाश डाला गया है। खाद्य पदार्थों की सूची के साथ उनके गुणावगुण और प्रयोग की विधि भी बता दी गई है। किस वस्तु का प्रयोग किस प्रकार करने से लाभ होता है, किस रोग में कौन सी वस्तु खानी चाहिए और खाद्य-पदार्थों का वर्गीकरण आदि बातें विशद रूप से बतलाई गई हैं। इसकी लेखन-शैली अनूठी और भाषा सरल है। निस्सन्देह इस पुस्तक के लिखने में पण्डित हनूमानप्रसाद शर्मा ने विशेष परिश्रम किया है और एक अत्यन्त उपयोगी पुस्तक आपने हिन्दी-संसार को दी है। इसीलिए बड़े-बड़े विद्वानों ने इस पुस्तक की प्रशंसा भी की है। प्रत्येक गृहस्थ को इस पुस्तक की एक प्रति अपने पास रखनी चाहिए।

(३) सुखी गृहिणी—लेखक, वही वैद्य-शास्त्री महोदय; पृष्ठ-संख्या १७१; मूल्य १)

यह पुस्तक भी वैद्यशास्त्री महोदय ने बड़े काम की लिखी है। आयुर्वेदिक सिद्धान्तों को सामने रख भारतीय महिलाओं को उनके जीवन सम्बन्धी बातों का ज्ञान प्राप्त कराने के उद्देश्य से पुस्तक लिखी गई है—और नारी-जीवन से सम्बन्ध रखने वाली प्रायः सभी बातों पर प्रकाश डाला गया है। उनके रोगों और उनकी दिनचर्या आदि का वर्णन और रोगों के प्रतिकार का उपाय बताया गया है। साधारण हिन्दी जानने वाली महिलाएँ भी इससे लाभ उठा सकती हैं।

(४) आरोग्य-मन्दिर—लेखक, श्री० विजय-बहादुर सिंह, बी० ए०; प्रकाशक उपर्युक्त महा-शक्ति-साहित्य-मन्दिर, पृष्ठ-संख्या १६+४०७ सजिल्द दाम २)

इसमें स्वास्थ्य-रक्षा और स्वास्थ्योन्नति के ऐसे बहुत से साधन बताए गए हैं, जिनका प्रयोग करके मनुष्य आजन्म आरोग्य बना रह सकता है। इस पुस्तक में जिन बातों का उल्लेख किया गया है, उनका ज्ञान प्रत्येक मनुष्य के लिए अत्यावश्यक है। स्वास्थ्य प्रकरण, रोग प्रकरण और चिकित्सा प्रकरण, इन प्रकरणों में पुस्तक बँटी हुई है और आरोग्यता के लिए इन्हीं तीन विषयों को जानने की भी आवश्यकता है। पुस्तक की भाषा सरल है।

दद्रु-चिकित्सा—लेखक, विद्यावाचस्पति, श्री० गणेशदत्त शर्मा गौड़, 'इन्द्र'; प्रकाशक उपर्युक्त महाशक्ति साहित्य-मन्दिर, पृष्ठ-सं० १००, दाम ||)

दद्रु या दाद एक विचित्र व्यापक रोग है। एक बार तो यह रोग प्रायः सबको होता है। कलकत्ते की तो यह ख़ास बीमारी है। इसके होने के कई कारण होते हैं। इस पुस्तक में उन तमाम कारणों का उल्लेख है। दाद से बचने के उपाय और उसकी चिकित्सा का भी वर्णन है।

उपर्युक्त सभी पुस्तकों के मिलने का पता—महा-शक्ति साहित्य-मन्दिर, बुलानाला, बनारस सिटी है।

छात्रहितकारी पुस्तकमाला, प्रयाग द्वारा प्रकाशित, बालकोपयोगी छोटी जीवनियाँ—

शिवाजी—लेखक, श्री० भगवतीप्रसाद वाजपेयी; अकबर—लेखक, श्री० गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' बी० ए०; महाराणा प्रताप—लेखक, श्री० केशवकुमार ठाकुर; लोकमान्य तिलक—ले० श्री० ज्योतिप्रसाद मिश्र निर्मल; श्रीकृष्ण—लेखक, श्री० विद्याभास्कर शुक्ल; महात्मा बुद्ध—ले० श्री० गणेश पाण्डेय; विद्यासागर—लेखक श्री० शिवप्रसाद पाण्डेय, बी० ए०, एल० टी०; स्वामी दयानन्द—लेखक, श्री० केदारनाथ गुप्त, एम० ए०। मूल्य प्रत्येक का ।), सभी जीवनियाँ छोटे बालकों के लिए लिखी गई हैं। इनकी भाषा खूब सीधी-सादी है और कईयों के अक्षर भी बड़े हैं, जिसमें बालक आसानी से इन्हें पढ़ और समझ सकें। लिखने का ढङ्ग भी बालकोपयोगी है।

आदर्श ग्रन्थमाला, दारागञ्ज प्रयाग की ३ पुस्तकें—

घरेलू-विज्ञान—लेखिका, श्रीमती ज्योतिर्मयी ठाकुर, पृष्ठ-संख्या १९२, दाम १।।)

ठकुराइन जी का यह 'घरेलू विज्ञान' गृहस्थ स्त्रियों के लिए ज्ञान की पिटारी है। पुस्तक बड़े परिश्रम से लिखी गई है और इसमें गार्हस्थ्य जीवन सम्बन्धी बहुत सी बातों का समावेश है। जैसे, रोग, दवा, रङ्ग, सफ़ाई, स्वास्थ्य, सुन्दरता आदि-आदि। इन विषयों की जानकारी प्राप्त करना प्रत्येक गृहिणी का कर्तव्य है। पुस्तक की भाषा सरल और मुहावरेदार है।

पाक-विज्ञान—लेखिका, उपर्युक्त श्रीमती जी, पृष्ठ-संख्या ३४१, मूल्य २॥)

इस पुस्तक का विषय तो इसके नाम से ही प्रगट है। मिठाई, खटाई, अचार, मुरब्बा, दलिया, पकवान आदि सैकड़ों प्रकार के खाद्य पदार्थों के बनाने की तरकीबें इसमें दी गई हैं। बड़ी अच्छी पुस्तक है।

स्वास्थ्य के प्राकृतिक साधन—लेखक, श्री० केशवकुमार ठाकुर। पृष्ठ-सं० २१८, दाम १)

यह पुस्तक भी निहायत अच्छी है। इसमें स्वास्थ्य के प्राकृतिक साधनों का वर्णन बड़ी सरल भाषा में किया गया है। स्वस्थ रहने के उपाय, व्यायाम, योगासन और रोगों की उत्पत्ति और चिकित्सा आदि कई उपयोगी विषयों का भी समावेश इसमें है।

स्वास्थ्य का सुगम मार्ग—लेखक, एक अनुभवी चिकित्सक, पृष्ठ-संख्या २९, दाम ।)

यह भी स्वास्थ्य-रक्षा सम्बन्धी पुस्तक है। स्वस्थ और नीरोग रहने के लिए कई उपाय भी इसमें बताए गए हैं।

ज्ञान की पिटारी—सङ्कलयिता श्री० जगपति चतुर्वेदी, पृष्ठ-संख्या १८५, दाम १)

इस पुस्तक में कई विचित्र प्रश्नों के विस्तृत उत्तर दिए गए हैं। जैसे, क्या मछलियाँ बरसती हैं? क्या साँप बोलते हैं? और हम लोग क्यों सोते हैं? इत्यादि-इत्यादि। बच्चों की ज्ञान-वृद्धि के लिए यह पुस्तक बड़े काम की है।

चित्रादर्श—लेखक, श्री० गणेश पाण्डेय, पृष्ठ-संख्या ११५, मूल्य १।)

इसमें संसार के कई उत्कृष्ट लेखकों की कहानियाँ संगृहीत हैं। इस संग्रह में सभी कहानियाँ प्रेम का उच्च आदर्श प्रकट करने वाली हैं। सभी कहानियाँ रोचक हैं। भाषा भी बामुहावरा और शिष्टतापूर्ण है। इसकी भूमिका सुप्रसिद्ध साहित्य-सेवी श्री० गुलाबराय एम० ए०, एल्-एल्० बी० ने लिखी है।

आदर्श ग्रन्थमाला की उपर्युक्त सभी पुस्तक निहायत साफ़ छपी हैं और आवरण-पृष्ठ भी मनोहर हैं। इनके प्रकाशक हैं, श्री० जगपति चतुर्वेदी, आदर्श ग्रन्थमाला कार्यालय, दारागञ्ज, प्रयाग।

ब्रह्मचर्य की महिमा—लेखक, श्री० सूर्यबलीसिंह; प्रकाशक, एस० वी० सिंह एण्ड को०, बनारस सिटी, पृष्ठ-संख्या १५२, मूल्य १)

पुस्तक का विषय उसके नाम से ही प्रगट है। लेखक ने ब्रह्मचर्य से होने वाले लाभ, ब्रह्मचर्य की उपेक्षा का परिणाम और ब्रह्मचर्य-पालन की विधि आदि ब्रह्मचर्य सम्बन्धी कई बातों का विस्तृत वर्णन किया है। पुस्तक विशेष रूप से विद्यार्थियों के काम की है।

माखन-मिश्री—लेखक, श्री० जगन्नारायण देव शर्मा 'कविपुष्कर' विशारद, साहित्य-शास्त्री; प्रकाशक, एस० वी० सिंह एण्ड को०, बनारस सिटी, पृष्ठ-संख्या १२८, मूल्य ।॥)

यह पुस्तक बच्चों के लिए लिखी गई है। इसमें बालोपयोगी गद्य और पद्य दोनों ही हैं। कहानियाँ, बुझौअल और चित्र-चरित्र सारा सामान एक ही पुस्तक में एकत्रित है। छपाई रङ्गीन और आवरण-पृष्ठ मनोहर है।

नारी-धर्म-शिक्षा—लेखिका, श्रीमती मनव्रतादेवी; प्रकाशक, एस० वी० सिंह एण्ड को० बनारस सिटी, पृष्ठ-संख्या १६४, मूल्य १।)

इस स्त्रियोपयोगी पुस्तक में स्त्रियों के लिए बहुत सी काम की बातें संगृहीत हैं। भोजन बनाना, सीना-पिरोना, बच्चे पालना और पति की सेवा करना आदि सब कुछ बता दिया गया है। अन्त में विधवा-कर्तव्य देकर नारी-धर्म-शिक्षा का उपसंहार कर दिया गया है। जो हो, पुस्तक संग्रह करने लायक़ है।

नागरिक-शास्त्र—लेखक, श्री० भगवानदास केला ; प्रकाशक, मध्य-भारत हिन्दी-साहित्य-समिति, इन्दौर, पृष्ठ-संख्या ३३१, मूल्य १॥)

हम अपने देश के 'नागरिक' हैं। हमारा भी कुछ अधिकार और कर्तव्य है। परन्तु हमारे देश में ऐसे लोगों की संख्या बहुत थोड़ी है, जो अपने इन अधिकारों और कर्तव्यों का ज्ञान रखते हों। अपढ़ों की तो कोई बात ही नहीं, यहाँ के बहुत से पढ़े-लिखे कहलाने वाले भी नहीं जानते कि नागरिकता क्या बला है। फलतः ऐसी दशा में यह पुस्तक लिख कर श्रीकेला जी ने बड़ा ही अच्छा काम किया है। आप इस विषय के ज्ञाता हैं, इसलिए अपनी पुस्तक में नागरिकता के सभी पहलुओं पर आपने अच्छी तरह विचार किया है और बताया है कि नागरिकों के क्या अधिकार और कर्तव्य हैं। पुस्तक में प्रतिपादित विषयों के प्रमाण भी दे दिए गए हैं। भाषा सरल और विषय को समझाने का ढङ्ग भी अच्छा है। श्रीकेला जी ने हिन्दी-साहित्य को एक नई और अत्यावश्यक वस्तु प्रदान की है, अतः वे हमारे धन्यवाद के पात्र हैं।

पुत्र—लेखक, आचार्य श्री० चतुरसेन शास्त्री; प्रकाशक, सञ्जीवन इन्स्टीट्यूट, दिल्ली। आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या ४३, सजिल्द मूल्य १)

यह अपने ढङ्ग की निराली पुस्तक है। पुत्र की महिमा, सुपुत्र-प्राप्ति का उपाय और उसकी शिक्षा-दीक्षा आदि पुत्र सम्बन्धी सैकड़ों ज्ञातव्य विषय इसमें हैं। सुपुत्र-प्राप्ति की कामना रखने वाले माता-पिताओं को ज़रूर इसे मँगा कर पढ़ना चाहिए। पुस्तक एक दिवङ्गत होनहार 'पुत्र' की स्मृति में लिखी गई है।

बाल-कथा-मञ्जरी—लेखक, श्री० बाबूलाल भार्गव, बी० ए०; प्रकाशक, मिश्रबन्धु कार्यालय, जबलपुर। पृष्ठ-संख्या ५६, मूल्य ।—)

इसमें बच्चों के लिए बीस पद्य-बद्ध और सचित्र कहानियाँ हैं। कहानियाँ रोचक और पद्यों की भाषा सरल है।

रूपवती—लेखक, श्री० अखौरी वासुदेव नारायण सिंह; प्रकाशक, अखौरी वासुदेव नारायण सिंह, मीठापुर, पटना। पृष्ठ-संख्या ५०, मूल्य ।=)

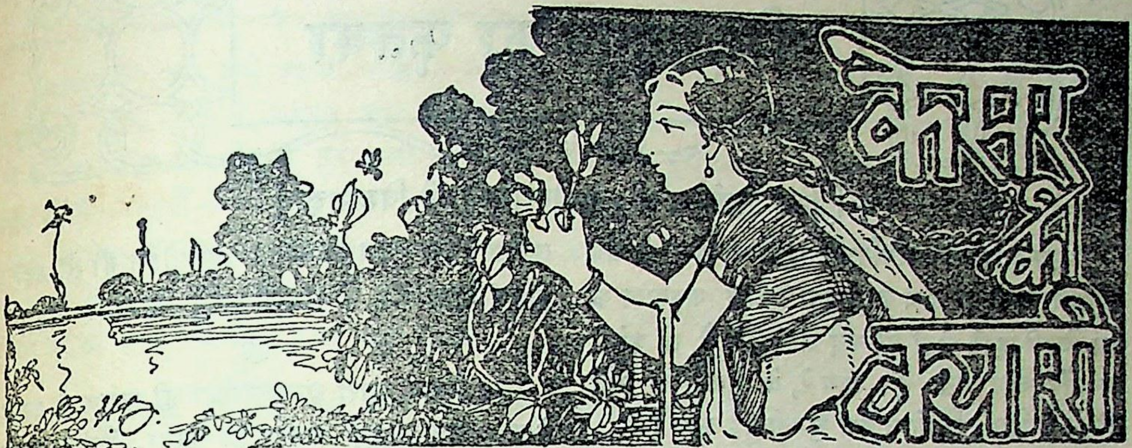
यह एक छोटा सा सामाजिक उपन्यास है और एक सत्य घटना के आधार पर लिखा गया है। इसमें सामाजिक रूढ़ियों के दोष दिखाए गए हैं। कहानी अच्छी है और भाषा साधारण।

हिन्दू-हित की हत्या अथवा प्रधान मन्त्री का साम्प्रदायिक निर्णय—लेखक, श्रीयुत परिपूर्णानन्द वर्मा; प्रकाशक, धर्म ग्रन्थमाला कार्यालय, ब्रह्मनाल, काशी। पृष्ठ-संख्या ६५ ; मूल्य ।)

ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री मि० रैमज़े मेकडॉनल्ड ने अपने साम्प्रदायिक निर्णय से भारत की राष्ट्रीयता के मूल पर जो कुठाराघात किया है, उसकी सामयिक पत्रों में काफ़ी चर्चा हो चुकी है। उसी निर्णय की बुराइयाँ दिखाने की इच्छा से यह पुस्तिका लिखी गई है। लेखक ने इस 'निर्णय' के रहस्य का अच्छी तरह परदाफ़ाश किया है।

स्वास्थ्य और व्यायाम—लेखक, श्री० केशवकुमार ठाकुर ; प्रकाशक, छात्रहितकारी पुस्तकमाला, दारागञ्ज, प्रयाग। आकार मझोला, पृष्ठ-संख्या २१६, मूल्य १॥)

पुस्तक का विषय उसके नाम से ही प्रगट है। स्वास्थ्य सम्बन्धी बहुत सी आवश्यक बातों के सिवा, कई तरह की व्यायाम-प्रणाली का भी इसमें वर्णन है। कई देशी और विदेशी व्यायाम-वीरों के चित्र भी दे दिए गए हैं। हमारे दुर्बल देश को ऐसी पुस्तकों की बड़ी ज़रूरत है और हमें विश्वास है कि ठाकुर साहब की यह पुस्तक उस ज़रूरत की बहुलांश में पूर्ति करेगी। आशा है, देश के नवयुवक इस पुस्तक से लाभ उठावेंगे।



उनसे बीबी ने फ़क़त स्कूल ही की बात की,
यह न बतलाया कहाँ रक्खी है रोटी रात की।

एजाज़[1] बढ़ गया है, आराम घट गया है,
ख़िदमत में है वह 'लेज़ी' और नाचने को 'रेडी'।
तालीम की ख़राबी से हो गई बिल आख़िर,
शौहर-परस्त बीबी, पब्लिक-पसन्द लेडी।

नज़र में तीरगी[2] है और रगों में नातवानी[3] है,
ज़रूरत क्या है परदे की, जहाँ बब्बे का पानी है।

ले ले के क़लम के लोग भाले निकले,
हर सिम्त[4] से बीसियों रिसाले निकले।
अफ़सोस कि मुफ़लिसी ने छापा मारा,
आख़िर अहबाब[5] के दिवाले निकले!

एक मुसीबत में है साधू है कोई या सेठ है,
है तो यह सावन, मगर हुक्मे .ख़ुदा से जेठ है।

सच तो है गरदूँ[6] को राहे मेहरबानी क्यों मिले,
आग जब यूरुप में बरसे, हमको पानी क्यों मिले।

लड़ें क्यों हिन्दुओं से हम, यहीं के अन्न से पनपे हैं,
हमारी भी दुआ ये है, कि गङ्गा जी की बढ़ती हो।
मगर हाँ शैख़ जी की पालिसी से हम नहीं वाक़िफ़,
इसी पर ख़त्म करते हैं, कि जो साहब की मरज़ी हो!

दिल ही बाक़ी नहीं ऐ दोस्त मज़ामीं कैसे,
आप मोती के तलबगार[7] हैं दरिया भी तो हो।

—"अकबर" इलाहाबादी

१—इज़्ज़त, २—अँधेरा, ३—कमज़ोरी, ४—तरफ़, ५—दोस्त, ६—आकाश, ७—गाहक।

दुनिया मेरी तरफ़ है, .ख़ुदाई मेरी तरफ़,
लेकिन नहीं ज़माने में भाई मेरी तरफ़।

मिस्टर यह कह रहे हैं इसमें हिजाब क्या है,
मैं साथ में मिसों के हूँ नाचने को 'रेडी'।
शौहर से कोई कह दे, क़िस्मत को अपनी रोए,
उड़ने लगी हवा पर फ़ैशन-परस्त[8] लेडी।

उड़ेंगी मुल्क में चारों तरफ़ परी बन कर,
रहेंगी परदे में परदे की बीबियाँ कब तक।

पब्लिक से कह रहे हैं यह लीडर अलाव पर,
एक आँच दीजिए अभी आते हैं ताव पर।
फ़ैशन के बाल में न कमी बाल भर रहे,
'फ़ादर' हज़ार बिगड़े तुम्हारे बनाव पर।

ज़बाँ खोली नहीं जाती, दहन[9] खोला नहीं जाता,
हम उनके सामने क्या बोलें, कुछ बोला नहीं जाता।
कहूँ मैं डॉक्टर से किस तरह अब हाले-दिल 'बिस्मिल',
दमे आख़िर ज़बाँ है बन्द कुछ बोला नहीं जाता।

अपने मतलब की सुनाने को वह सर धुनते रहे,
बेदिली से, हम भी चुप बैठे हुए सुनते रहे।

इस दौर में इस अहद[10] में बेहतर नहीं होते,
सर घिसते हैं बङ्गले पे मगर 'सर' नहीं होते।

.ख़ुश होते हैं मन्ज़ूरे नज़र हो गए हम भी,
सरकार की बढ़ती हो, कि 'सर' हो गए हम भी।

—"बिस्मिल" इलाहाबादी

८—फ़ैशन की पुजारी, ९—मुँह, १०—ज़माना।

श्रीजगद्गुरु का फ़तवा

[हिज़ होलीनेस श्री० वृकोदरानन्द जी विरूपाक्ष]

'सुख-दुःख की साथिनियाँ' जूँओं की कृपा से जब दईमारी दाढ़ी पर हाथ जा पड़ता है और लड़कपन के उस चिकने-चुपड़े चेहरे की याद आ जाती है, तो कलेजे पर साँप लोट जाता है। हाय रे, वे मुरादों की रातें उमङ्गों के दिन! किसी ने क्या चुभती हुई कहा है—

असीर पञ्जए अहदे शबाब करके मुझे,
कहाँ गया बचपन मेरा ख़राब करके मुझे!

❀

लाला की 'इमली तर' बालगोपाल-वाहिनी एकत्र हो गई। सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि आज 'कन-दिल्ली' का खेल हो। परन्तु मुन्नू भाई बिगड़ गए। बोले—'कनदिल्ली' नहीं, 'अँखमुदौअल' हो। मुन्नू भाई की यह पुरानी आदत थी। मतभेद उनका पुश्तैनी रोग था। इसीलिए लड़कों ने उनका नाम 'बाँड़ी चिरैया' रख छोड़ा था।

❀

इधर बहुत दिनों से कुछ हाल नहीं मिला; मालूम नहीं, मुन्नू भाई हैं या इस धराधाम से चल बसे! परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि अपना 'बाँड़ी चिरैया' वाला सद्गुण हमारे श्रद्धेय पूज्य नेता श्री० मालवीय जी महाराज को सौंप गए हैं। ज़हे क़िस्मत कि जब तक ये बूढ़े दादा जी रहेंगे, तब तक यह सद्गुण भी रहेगा।

❀

महामना जी की जीवनी के पन्ने उलटना आरम्भ कर दीजिए और पग-पग पर मतभेद के करिश्मे देखिए। तिलक, गोखले, दास, लाला जी और नेहरू जी—सबसे आपका मतभेद रहा है। जब देश के अन्यान्य नेता मीरघाट पहुँचते हैं तो श्रद्धेय महामना जी अपना चोग़ा-चपकन डाटे तीरघाट पर टहलते दिखाई देते हैं।

❀

महात्मा गाँधी के असहयोग आन्दोलन से आपका घोर मतभेद था, मतभेद के कारण ही आपने हिन्दू-सभा छोड़ी, अस्तङ्गत स्वराज-पार्टी से मतभेद के कारण कौन्सिल में आपने उसकी सौत-स्वरूपा 'नेशनल-पार्टी' खड़ी की। परन्तु अन्त में मतभेद के कारण ही उस बेचारी को तलाक़ देकर अलग हो गए। मदनमोहन ही तो ठहरे—

सहज एकाकिन के भवन कबहुँ कि नारि खटाहिं!

❀

सो जनाब, सारा आमालनामा ही ख़राब हो जाता। बेचारा सनातनधर्म अनाथ हो जाता, वैदिक मर्यादा रसातल चली जाती, काशी उलट कर भागीरथी के गर्भ में छिप जाती और बाबा विश्वनाथ अपने कुण्डी-सोटे के साथ कैलास की राह नापते दिखाई देते। राम-राम! अछूतों के मामले में मालवीय जी गाँधी जी के साथ हैं! कोई सुनता तो क्या कहता?

❀

मगर वाह रे बूढ़े बाबा, वल्लाह ख़ूब सँभले! ऐन मौक़े पर ऐसी कलाबाज़ी दिखाई कि गिरहबाज़ कबूतर को भी मात कर दिया। वर्णाश्रम-धर्म की बिगड़ती हुई मर्यादा की तो रक्षा कर ही डाली, साथ ही 'ओ३म् नारायणाय नमः' की दीक्षा लेने वाले अपने अछूत चेलों को भी तार दिया। लेहाज़ा, अब यह बात और भी पक्की हो गई कि दिन भर का भूला अगर शाम को घर आ जाय तो वह भूला नहीं कहलाता!

❀

एक तो विषम वार्द्धक्यजनित अस्थिर बुद्धि, दूसरे कलिकाल का भीषण बवण्डर; बेचारे महामना जी धर्म का विस्तृत राजपथ छोड़ कर कहाँ से कहाँ जा पड़े थे। यहाँ तक कि पवित्र त्रिवेणी-वट पर, श्रीसनातनधर्म-महासभा के महामञ्च से घोषणा भी कर चुके थे कि हरिजनों को मन्दिर-प्रवेश का अधिकार है। अरे भई, भूल किससे नहीं हो जाती? और, फिर मालवीय जी ने अछूतों को मन्दिरों में जाने का कोई पट्टा थोड़े ही लिख दिया था? एक बात थी, जो असावधानी से मुँह से निकल गई थी, फलतः उसे उठा कर फिर से मुँह में रख लेने में हर्ज ही क्या है?

❀

अच्छा तो आपका बेटा जिए, अछूत कहे जाने वालों को मन्दिरों में जाने का अधिकार है; परन्तु इसमें जो

क़ानूनी अड़चन है, वह बनी रहनी चाहिए। क्योंकि ऐसा होने से साँप भी मर जाएगा और निख़ालिस सरसों का तेल लगा कर सँवारी हुई लाठी भी सही-सलामत रहेगी—अछूतों के प्रति महामना जी की असीम अनुकम्पा का डङ्का भी संसार में बज जाएगा और अछूतों के दृष्टि-स्पर्श से कोमलकाय देव-मूर्तियों के अङ्गों में कोढ़ फूट जाने की जो सम्भावना है, वह भी जाती रहेगी।

❀

और सुनिए, शास्त्र सर पीट कर रेंका करेंगे कि अछूत मन्दिरों में जायँ, परन्तु मन्दिरों के दरवाज़े क़ानूनी काँटों से रुँधे रहेंगे। लेहाज़ा देवताओं की जानो-माल का मालिक-मण्डल भी अगर चाहेगा कि अछूत मन्दिरों में जायँ तो न जा सकेंगे। इस प्रकार से, जो है सो, भगवत्कृपा से महात्मा गाँधी का यह अछूत-आन्दोलन ताड़ से गिर कर खजूर पर अटका रहेगा। महामना मालवीय जी की कृपा से, एक बार फिर त्रिशङ्कुलीला देखने को मिलेगी।

❀

महात्मा गाँधी जी बैरिस्टरी पास हैं और सर सप्रू बहादुर क़ानून के कारबङ्कल पर नश्तर चलाने वाले डॉक्टर हैं। अय्यर महोदय भी क़ानून के ककहरा से बेबहरा नहीं माने जा सकते। इन लोगों की दृढ़ सम्मति है कि अय्यर जी के बिलों के पास हो जाने से धर्म-भगवान के ज़हर खाकर मर जाने की कोई सम्भावना नहीं है। परन्तु चूँकि इन महानुभावों ने परई भर कोदो देकर क़ानून पढ़ा था, इसलिए महामना मालवीय जी इनकी क़ानूनदानी के क़ायल नहीं हो सकते।

❀

बेचारे धर्म-भगवान शारदा-एक्ट की मार से कराह ही रहे थे, कि कराल-वदना एसेम्बली ने 'सिविल मैरेज एक्ट' का वज्र प्रहार किया। 'ग्रह गृहीत पुनि वात बश, तेहि पुनि बीछी मार' की तरह सर हरिसिंह गौड़ ने तलाक़-बिल का तीर मारना आरम्भ कर दिया! आख़िर बेचारे मालवीय जी की सहनशीलता कहाँ तक सब्र करती? बक़ौल तुलसीदास—

'कहँ लगि सहिय रहिय मन मारे?'

❀

अब इसके बाद अगर और बिल एसेम्बली की भट्ठी से तप कर निकले तो बेचारे धर्म के धुर्रे उड़ जाने को क्या बाक़ी रह जाएगा। बेचारे मालवीय जी क़ानूनों द्वारा कोंची हुई धर्म की लाश पर ही सब्र किए बैठे थे। परन्तु यारों की फूटी आँखें इतना भी नहीं सह सकीं। लोग नाहक़ हाथ धोकर सनातनधर्म के पीछे पड़ गए! इतना ज़ुल्म भला कोई कैसे बर्दाश्त करे?

❀

अस्तु, इस आड़े समय में धर्म की रक्षा के लिए महामना जी के प्रति आन्तरिक कृतज्ञता प्रगट करना अपने राम का परम कर्त्तव्य है। आपकी त्रिवेणी-तट वाली स्पीच के कारण जिन चेहरों पर हवाइयाँ उड़ रही थीं, उन पर अब ऊषा की लाली दौड़ रही है। मन्दिरा-ध्यक्षों के शिकवे अब दुवाएँ बन के निकलेंगे। आज अपने केम्प में महामना की चरण-धूलि पड़ते देख कर, निज़ामीदल, सरकार, अम्बेदकर-पार्टी, दूसरे मन्दिर-प्रवेश बिल के विरोधी आनन्द-मग्न हो रहे हैं! भला बताइए तो अछूतों के मन्दिर-प्रवेश के समर्थन में यह मज़ा कहाँ था?

❀

उम्मीद है, पुरी के भगवान शङ्कराचार्य महोदय का आशीर्वाद-पत्रक भी महामना जी को मिल गया होगा और वर्णाश्रम स्वराज-सङ्घ की ओर से लम्बे मानपत्र के साथ ही 'धर्मधीर महावीर' की पदवीदान की व्यवस्था भी होती होगी। अगर सरकार इस मौक़े पर थोड़ी सी उदारता दिखा दे और एक दो अक्षर का 'सर' ख़र्च कर दे तो काम बन जाय। आख़िर मालवीय जी के इस विरोध का मूल्य इससे कम और क्या हो सकता है?

❀

आइए, इस उपस्थित बुद्धि के लिए महामना जी को फिर थोड़ी सी 'दाद' दे दी जाय। क्योंकि आपने ऐन मौक़े पर धर्म की रक्षा की है। अछूतपन की बुनियाद हिल चुकी थी, मन्दिरों के द्वार अछूतों के लिए धड़ाधड़ खुल रहे थे, आन्दोलन की लहर देश के कोने-कोने में पहुँच चुकी थी, महात्मा जी ने अपना अनशन अनिश्चित काल तक के लिए स्थगित कर दिया था और इस आन्दोलन की सफलता के रास्ते में जो क़ानूनी अड़ङ्गा था, वह भी दूर हो जाने वाला था। परन्तु महामना जी, ने........! उफ़—

दी मुअज़्ज़न ने अज़ाँ वस्ल की शब पिछले पहर,
हाय! कमबख़्त को किस वक़्त ख़ुदा याद आया!!

❀

उस दिन संयुक्त-प्रान्त की कौन्सिल में एक दिलचस्प दङ्गल हो गया। एक ओर कौन्सिल की सदस्या श्रीमती जे० पी० श्रीवास्तव थीं और दूसरी ओर थे उनके पतिदेव अर्थात् संयुक्त-प्रान्त की सरकार के शिक्षा-मन्त्री श्रीमान् जे० पी० श्रीवास्तव महाशय। श्रीवास्तव जी ने यह आफ़ते नागहानी देखी, तो बग़लें झाँकने लगे। अन्त में कौन्सिल के प्रेसिडेण्ट ने कुछ खा-पीकर ताज़गी प्राप्त कर लेने के बाद अखाड़े में उतरने की अनुमति दी।

❀

श्रीमती श्रीवास्तव महोदया ने प्रस्ताव किया था कि संयुक्त-प्रान्त में लड़कों की तरह लड़कियों की शिक्षा भी अनिवार्य कर दी जाए। लीजिए साहब, ज़रा इस आए-दिन के ठाले को देखिए और देखिए श्रीमती जी के इस फ़िज़ूलख़र्ची के प्रस्ताव को। रुपए की तङ्गी के मारे बेचारी सरकार सवा पाँच पैसे को लिफ़ाफ़ा बेच रही है और आप कह रही हैं कि लड़कियों की शिक्षा अनिवार्य कर दो। लड़कियाँ पढ़-लिख कर सरकार का कौन सा उपकार कर देंगी, जो वह उन्हें अनिवार्य शिक्षा दिलाने के लिए अपनी गाँठ की रक़म ख़र्च करने जाए।

❀

लेहाज़ा जनाब, कुछ सरकारी सदस्यों ने श्रीमती श्रीवास्तव महोदया के प्रस्ताव के प्रति अपनी सहानुभूति दिखा दी और श्रीवास्तव महोदय ने दिखा दी ख़ाली थैली! लाभ में रहे सदस्य, जिन्हें इस मियाँ-बीबी के दङ्गल में क़हक़हे लगाने का अवसर मिल गया था।

❀

परन्तु आश्चर्य की बात तो यह हो गई कि इस प्रस्ताव का श्रीमती सरकार की ओर से घोर विरोध नहीं हुआ। हालाँकि मामला सोलहो आने धर्म से सम्बन्ध रखता है और धर्म के मामले में हस्तक्षेप करने की सरकार ने क़सम खा ली है।

❀

'मगस को बाग़ में जाने न दीजे, कि नाहक़ ख़ून परवानों का होगा!' अर्थात् मधुमक्खी बाग़ में जाएगी तो मधु-सञ्चय कर लाएगी। उसके छत्ते से मोम बनेगा, मोम की बत्ती बनेगी, जलेगी और परवाने जल मरगे। लड़कियाँ पढ़ेंगी, अपने अधिकारों का दावा करें[…] बूढ़ों से ब्याह न करेंगी और पतियों को तलाक़ दें[…] बस, धर्म को धक्का लगेगा और श्रीमती सरकार [...] पतिव्रत-धर्म नष्ट हो जाएगा।

❀

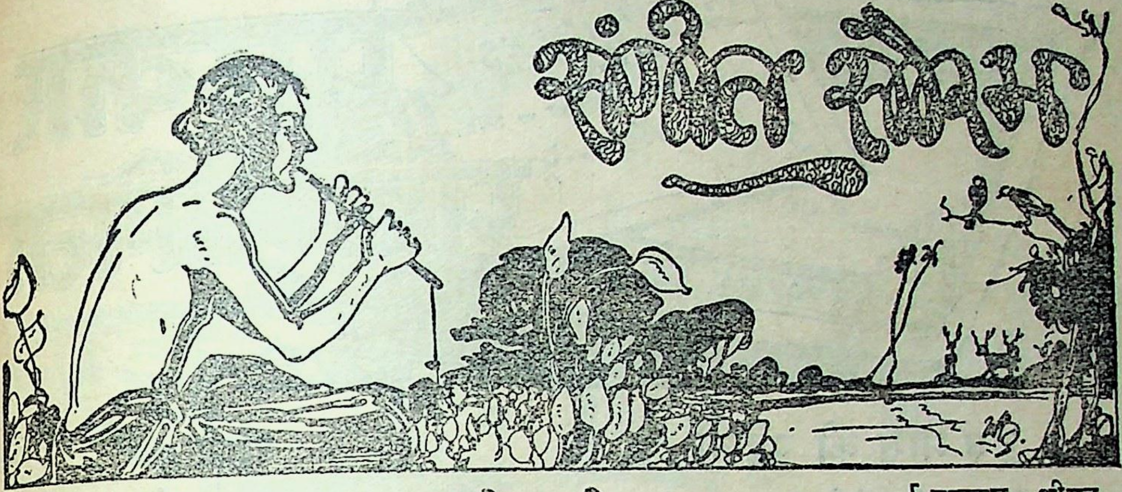
आइए, एक ताज़ा उदाहरण लीजिए। कहीं [...] सुनार गाँव है। वहाँ एक धर्मात्मा सज्जन रहते [...] दुर्भाग्य से उन्होंने अपनी लड़की को कुछ पढ़ा-लि[...] दिया था और उसकी शादी एक साठ वर्ष के अनु[...] युवक के साथ पक्की कर दी थी। कमबख़्त लड़की [...] पहले तो इन्कार किया, परन्तु धर्मभीरु पिता ने [...] फ़ालतू बातों पर कुछ ध्यान न दिया तो दईमारी [...] कर मर गई! देखिए, यह लड़कियों के पढ़ाने-लिखाने [...] भयङ्कर परिणाम!

❀

जब लेने ही लगे तो थोड़ा और लीजिए। सु[...] हैं, 'चाँद'-सम्पादक जी के प्रयाग में कोई 'महिला-मण्ड[...] है। गत ९ फ़रवरी को उसका जलसा था। उस[...] श्रीमती सावित्री देवी सक्सेना ने ऐसा भीषण भा[...] दिया कि बाप रे बाप! क़सम ख़ुदा की दिल धड़क [...] है। या पाक परवर दिगार! क्या होने वाला है प्रभो[...] धरा धस के पाताल को गई तो इस बुढ़ौती में कु[...] सोंटे के साथ ही, झोंपड़ी से भी हाथ धो लेना पड़ेगा[...]

❀

हाँ साहब, तो बहिन सावित्री जी ने व्याख्या[...] क्या दिया, एकदम बम्बार्ट आरम्भ कर दिया! [...] चढ़ाई केवल ग़रीब कायस्थ-समाज पर थी। आप[...] स्त्रियों को ललकारा कि शादी-विवाह के अवसर [...] कबाब-शराब, रण्डी का नाच, तिलक, दहेज़ का लेन-[...] देन, अनमेल विवाह, वृद्ध-विवाह आदि जितने [...] धर्मानुमोदित, मान-मर्यादा को बढ़ाने वाले, नामव[...] प्राप्त कराने वाले और अन्त में स्वर्गधाम पहुँचाने वाले का[...] हैं, उनमें एक न होने दो। दोहाई श्रीमती श्रीवास्तव[...] आप अपना प्रस्ताव वापस ले लें, नहीं तो क़सम ख़ुदा[...] की अनर्थ हो जाएगा। बाज़ आए लड़कियों की अनिवा[...] शिक्षा से, जो है सो।



[स्वरकार—श्रीयुत नीलू बाबू]

काफी—तीन ताल

[शब्दकार—श्रीयुत नीलू बाबू]

स्थायी—हरी के भजन बिनु कैसे जिओगे। नाम बिनु अमि रस कैसे पिओगे ॥

अन्तरा—माया मोह अरु लोभ ने घेरा, मूरख मन बन फिरता घनेरा।

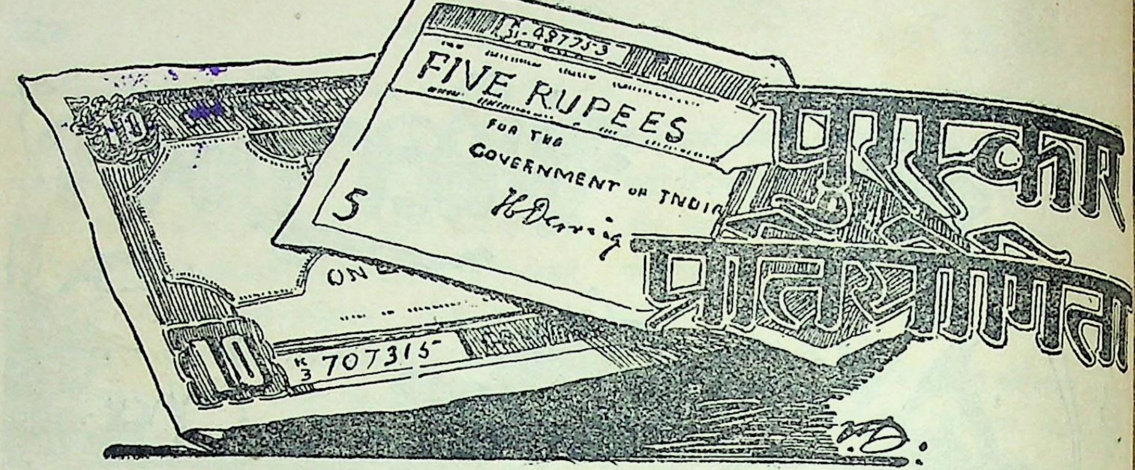
क्यों तू करता हेरा-फेरा, प्रभू के चरण बिनु नाहिं तरोगे ॥

स्थायी

०				१				×				२			
				क	क								क		
स	स	रे	रे	ग	ग	म	म	प	—	ध	प	म	ग	रे	—
ह	री	के	भ	ज	न	बि	नु	कै	—	से	जि	ओ	ओ	गे	—
	क		क										क		
रे	नि	ध	नि	प	ध	म	प	म	ग	म	प	म	ग	रे	—
ना	म	बि	नु	अ	मि	र	स	क	ए	से	पि	ओ	ओ	गे	—

अन्तरा

म	—	म	—	प	—	नि	नि	सं	—	सं	रें	सं	नि	सं	—
मा	—	या	—	मो	ह	अ	रु	लो	—	भ	ने	घे	ए	रा	—
			क									क			
नि	सं	रें	गं	रें	रें	सं	सं	नि	सं	रें	सं	नि	ध	प	—
मू	ऊ	र	ख	म	न	ब	न	फि	र	ता	घ	ने	ए	रा	—
			क					क		क		क			
म	—	म	नि	ध	ध	ध	—	नि	ध	नि	सं	नि	ध	प	—
क्यों	—	तू	ऊ	क	र	ता	—	हे	ए	रा	आ	फे	ए	रा	—
		क		क									क		
प	ध	नि	सं	नि	ध	प	प	म	ग	म	प	म	ग	रे	—
प्र	भू	के	च	र	ण	बि	नु	ना	आ	हिं	त	रो	ओ	गे	—



इस मास की पहेली

नीचे जो पहेली दी जाती है, उसका ठीक-ठीक उत्तर हमारे पास सुरक्षित है। जिसका उत्तर हमारे उत्तर से मिल जाएगा, उसे २५) नक़द इनाम दिए जायँगे। अगर एक से अधिक उत्तर ठीक आएँगे, तो पुरस्कार की रक़म बराबर हिस्सों में बाँट दी जाएगी।

नियम

(१) इस प्रतियोगिता में 'चाँद' के सभी पाठक भाग ले सकते हैं। (२) जो 'चाँद' के स्थायी ग्राहक हैं, उन्हें ।) का और जो ग्राहक नहीं हैं, उन्हें ।॥) का टिकट उत्तर के साथ ही भेजना चाहिए। (३) इस प्रतियोगिता में चाँद प्रेस लि० का कोई कर्मचारी भाग नहीं ले सकता। (४) उत्तर के साथ टिकिट, ग्राहक-नम्बर, प्रतिज्ञा-पत्र और नाम-पता के सिवा और कोई पत्र आदि भेजना अनियमित समझा जाएगा। (५) कटा-छटा या संशोधित उत्तर भी अनियमित समझे जाएँगे। (६) निर्णय का अधिकार केवल 'चाँद' के पहेली-सम्पादक को होगा। (७) पहेली का उत्तर आगामी १५ अप्रैल सन् १९३३ तक नीचे लिखे पते पर आना चाहिए; उसके बाद के आए उत्तर रद्दी समझे जाएँगे।

पता—'चाँद' प्रतियोगिता-विभाग
चाँद प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद।

नीचे के नक़्शे में दी हुई प्रत्येक संख्या एक अक्षर के स्थान पर है। निम्नलिखित सङ्केत से पता चल जायगा कि कौन सा अक्षर कहाँ होना चाहिए! जब सब ख़ाने अक्षरों से भर जायँगे, तो एक प्रचलित कहावत बन जायगी। बताइए, वह कौन सी कहावत है?

पहेली
कहावत की खोज

१	२	३	४	५
६	७		८	९
१०	११		१२	१३

प्रतिज्ञा

मैंने प्रतियोगिता सम्बन्धी नियम पढ़ लिए हैं। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि उन नियमों का पालन करूँगा और सम्पादक का निर्णय मुझे स्वीकार होगा। मैं इस सम्बन्ध में कोई पत्र-व्यवहार न करूँगा।

(यह प्रतिज्ञा उत्तर के नीचे लिख भेजनी चाहिए।)

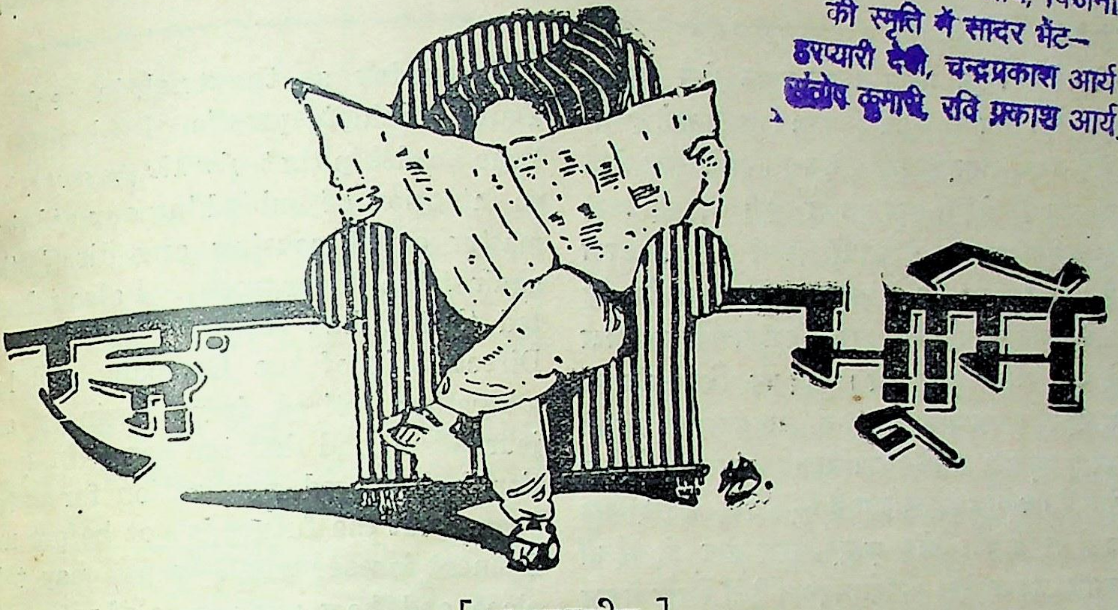
तालिका (सहायतार्थ)

१३+६=एक इन्द्रिय
११+७=चाबुक
१०+१२=खिलाड़ी
४+५=घर की रखवाली करने वाला
३+९=पिता का भाई
२+८=बहादुर
१ =उज्ज्वल करो

उदाहरण—१३वें ख़ाने में 'का' है और छठे में 'न'।

विगत बार की पहेलियाँ

कतिपय अनिवार्य कारणों से विगत बार की पहेलियों का निर्णय इस बार नहीं दिया गया। उनकी सूचना 'चाँद' के आगामी मई वाले अङ्क में दी जायगी।



[सम्पादकीय]

श्री० सहगल जी को सज़ा

हमारे पाठक भूले न होंगे, कि 'चाँद' के संस्थापक और प्रवर्तक श्री० रामरखसिंह जी सहगल पर 'भविष्य' में छपे हुए "आयलैंड और भारत" शीर्षक एक लेख के लिए गत वर्ष के आरम्भ से ही एक अभियोग चल रहा था। गत २४ फ़रवरी को इलाहाबाद-हाईकोर्ट ने उसका निर्णय सुना दिया और निम्न अदालत के फ़ैसले को बहाल रक्खा। इस अभियोग में मैजिस्ट्रेट की अदालत ने सहगल जी को दोषी स्वीकार करके ६ मास की सख़्त क़ैद और ५००) जुर्माने का दण्ड दिया था। इसी फ़ैसले के विरुद्ध हाईकोर्ट में अपील की गई थी। दो दिन की बहस के बाद मि० जस्टिस यङ्ग ने छोटी अदालत के निर्णय को उचित मानते हुए उसी सज़ा को बहाल रखने की आज्ञा दी। जज के फ़ैसले में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि मैजिस्ट्रेट के मतानुसार उन्होंने 'कीपर' को प्रेस में छपने वाले प्रत्येक मैटर के लिए क़ानूनन ज़िम्मेदार नहीं माना है। वरन् उनकी सम्मति में प्रेस-एक्ट की धाराओं का यही अर्थ है कि इस प्रकार छपने वाले लेखों और अन्य विषयों की ज़िम्मेदारी सम्पादक, प्रकाशक और प्रिण्टर पर रहती है। तो भी इस मामले में आपने, विशेष रूप से अप्रत्यक्ष प्रमाणों का आश्रय लेकर श्री० सहगल जी को, जो प्रेस के 'कीपर' मात्र थे, ज़िम्मेदार ठहराया है। न्यायाधीश महोदय के कथन का सारांश इतना ही है कि श्री० सहगल जी इस संस्था के गवर्निङ्ग डाइरेक्टर थे, और कार्यालय में ही निवास करते थे, ऐसी दशा में उनका पत्र में छपने वाले लेखों के सम्बन्ध में ज्ञान रखना स्वाभाविक है। इसके सिवा श्रीमती लक्ष्मीदेवी भी, जिनका नाम पत्र में सम्पादक के स्थान पर छपता था, इसी बङ्गले में रहती थीं। यदि वास्तव में उनका सम्पादन-कार्य से किसी प्रकार का सम्बन्ध था, तो वे भी स्वभावतः ही इस प्रकार के आपत्तिजनक लेख को बिना सहगल जी को दिखलाए कदापि प्रकाशित न करतीं। हमें बाध्य होकर कहना पड़ता है कि जज महोदय ने इस अभियोग को जो स्वरूप दिया है, वह स्वाभाविक नहीं, वरन् घोर अस्वाभाविक है, और उससे चाहे क़ानूनी दिमाग़ वाले लोगों को भले ही सन्तोष हो जाय, पर जो लोग पत्र-सम्पादन के विषय में कुछ भी ज्ञान रखते हैं वे इस धारणा से कदापि सहमत न होंगे। सबसे मुख्य बात तो यह है, जिस लेख के आधार पर यह अभियोग चलाया गया है, वह इतना साधारण है कि सम्पादक को यह ख़याल ही नहीं आ सकता था कि वह सरकार की निगाह में आपत्तिजनक और राजद्रोह-पूर्ण ठहर जायगा। उस लेख में आयलैण्ड के पिछले इतिहास पर एक दृष्टि डाली गई थी और उसकी कुछ बातों की भारत की वर्तमान परिस्थिति से तुलना

की गई थी। इस प्रकार के तुलनात्मक लेख अङ्गरेज़ी और देशी भाषाओं के पत्रों में प्रायः निकलते रहते हैं और कोई उनको राजद्रोही नहीं समझता। इसके सिवा लेखों की पूर्ण ज़िम्मेदारी सम्पादक पर रहती है, वह उनको इच्छानुसार घटाता-बढ़ाता और उनमें परिवर्तन करता है। उसके लिए यह आवश्यक नहीं होता कि वह प्रत्येक बात को पत्र के मालिक अथवा गवर्निङ्ग डाइरेक्टर के पास जाकर पूछा करे। यदि वह किसी लेख को राजद्रोही समझता है तो या तो उसे प्रकाशित ही नहीं करता अथवा उसके आपत्तिजनक अंश को निकाल देता है। क्योंकि वह जानता है कि उसका उत्तरदायित्व उसी पर है और कोई क़ानून-विरुद्ध बात हो गई तो उसका फल उसीको भोगना पड़ेगा। ऐसी स्थिति में यह कल्पना कर लेना कि सम्पादक ने यह लेख सहगल जी को दिखला ही लिया होगा, केवल कष्ट-कल्पना है और कोई वस्तुस्थिति का ज्ञाता इसका समर्थन नहीं करेगा।

इस मुक़दमे में एक विशेष घटना यह हो गई कि बहस के अन्तिम दिन शायद मुक़दमे में विशेष तत्व न देख कर जज ने सहगल जी से पूछा कि क्या आप भविष्य में इस प्रकार के लेखों का लिखना बन्द कर देंगे? सहगल जी ने कहा कि मैंने पत्र तथा प्रेस से पूर्णतया सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया है, इसलिए वर्तमान समय में मुझे किसी तरह का लेख आदि नहीं लिखना है। इस बात को स्थानीय 'लीडर' के सम्बाददाता ने इस तरह छापा, जिससे प्रकट होता था कि सहगल जी ने किसी तरह का आश्वासन दिया है अथवा वचन दिया है कि भविष्य में फिर ऐसा काम न करेंगे। सहगल जी ने जज के सम्मुख जाकर उपर्युक्त रिपोर्ट का खण्डन किया और कहा कि मैंने न तो किसी तरह का वचन दिया है और न देने को तैयार हूँ। जज ने उनसे इस विषय में लिखित वक्तव्य देने को कहा, जो उन्होंने दो घण्टे बाद दाख़िल कर दिया। वह वक्तव्य इस प्रकार है :—

My Lord,

In the above case it was my defence that I had no knowledge of the publication in question and I did not intend to cause disaffection against the Government.

Yesterday at the trial, in reply to Your Lordship's question I submitted to Your Lordship that *for the present* I had no intention of publishing any seditious matter or of causing any disaffection against the Government. I also submitted that I had resigned the Managing Directorship of the Company and had altogether retired from business and journalism, and that the paper in question had ceased publication for over a year. But the future is not before me. I cannot foresee what events may take place and how my course of action will be determined in future having regard to those events.

I do not consider it honourable to give any undertaking what I may not be in a position to fulfil, having regard to the uncertainties of future as it is possible the Government of the future may take a line which may compel a man to take a line of opposition to it.

With this statement I submit to Your Lordship's decision.

(Sd.) R. SAIGAL.

इसका सारांश इस प्रकार है—"इस अभियोग के विषय में मेरा उत्तर यह था कि जिस लेख के लिए यह मुक़दमा चलाया गया है, उसका मुझे कुछ भी पता न था और मैंने गवर्नमेण्ट के विरुद्ध अप्रीति फैलाने की कोई चेष्टा नहीं की। कल आपके प्रश्न का उत्तर देते हुए मैंने कहा था कि वर्तमान समय में किसी तरह का राजद्रोही साहित्य प्रकाशित करने या गवर्नमेण्ट के विरुद्ध अप्रीति का भाव फैलाने का मेरा इरादा नहीं है। मैंने यह भी कहा था कि मैंने कम्पनी के मैनेजिङ्ग डाइरेक्टर के पद से स्तीफ़ा दे दिया है और व्यवसाय तथा पत्र-सञ्चालन कार्य से पूर्णतया पृथक् हो गया हूँ, और जिस पत्र के लिए यह मुक़दमा चलाया गया है वह भी साल भर से बन्द है। पर भविष्य मेरे सामने नहीं है। मैं यह नहीं जान सकता कि भविष्य में क्या घटनाएँ होंगी और उनको देखते हुए

उस समय मेरी कार्य-प्रणाली कैसी रहेगी। भविष्य की अनिश्चित परिस्थिति को दृष्टिगत रखते हुए मैं इस बात को सम्मानजनक नहीं समझता कि जिस बात का मैं सम्भवतः पालन न कर सकूँ, उसके लिए किसी तरह का वचन दूँ। क्योंकि सम्भव है कि भविष्य की सरकार किसी ऐसी नीति का अवलम्बन करे, जिससे एक व्यक्ति को उसके विरोध की नीति स्वीकार करने को बाध्य होना पड़े।"

सहगल जी का उक्त वक्तव्य जहाँ स्वाभिमान तथा स्पष्टवादिता का जीता-जागता नमूना है, वहाँ उसके



श्री० आर० सहगल

औचित्य में भी किसी प्रकार की शङ्का नहीं की जा सकती। किसी ऐसे अपराध के लिए, जिसका एक व्यक्ति को कुछ भी ज्ञान नहीं है, ज़बर्दस्ती अपने लिए दोषी मान लेना और फिर भविष्य में वैसा कार्य न करने की प्रतिज्ञा करना, एक ऐसी असङ्गत बात है, जिसे कोई आत्माभिमानी मनुष्य सहन नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त भारतीय दण्ड-विधान की धारा १२४-ए ऐसी लचीली (Elastic) है कि ब्रिटिश शासन की साधारण से साधारण आलोचना अथवा किसी ऐतिहासिक घटना का यथार्थ वर्णन सहज ही में उसके दायरे में आ सकता है। ऐसी परिस्थिति में उससे बचने का एक मात्र साधन यही है कि या तो प्रतिज्ञा करने वाला व्यक्ति लिखने-पढ़ने को ही सदा के लिए नमस्कार करले अथवा राजनीति, अर्थ-नीति, समाज-नीति आदि समस्त विवादग्रस्त विषयों को छोड़ कर, जिनकी आलोचना करते हुए सरकार पर किसी तरह का आक्षेप किया जा सकता है, धर्म-कर्म की बातें या आशिक़-माशूक़ों के क़िस्से छापा करें। सच तो यह है कि आजकल के न्याय को देखते हुए हिन्दी पत्र का ग़रीब सम्पादक तो क्या, क़ानून का दिग्गज विद्वान् भी इस बात का निर्णय नहीं कर सकता कि कौन सी बात राजद्रोहपूर्ण है और कौन सी उससे मुक्त है। इसका निर्णय एक मात्र सरकारी अधिकारियों की इच्छा अथवा धुन पर आधार रखता है और वे जो कुछ कहते हैं, वही अन्त में क़ानून द्वारा भी सत्य सिद्ध हो जाता है। ऐसी दशा में न्याय अथवा अन्याय की बहस करना अथवा क़ानून की दुहाई देना निरर्थक है, केवल सरकारी आज्ञा को चुपचाप शिरोधार्य कर लेना ही एक मात्र उचित मार्ग है।

धर्म-रक्षा या धर्म-नाश

अब तक अछूतों के मन्दिर-प्रवेश के प्रश्न के सम्बन्ध में दो ही प्रकार के मत सुनने में आते थे। एक पक्ष कहता था कि यदि अछूत हिन्दू हैं, तो उनको अन्य हिन्दुओं के समान मन्दिर-प्रवेश का अधिकार मिलना आवश्यक है; दूसरे दल वालों का कहना था कि यद्यपि अछूत हिन्दू हैं, पर परम्परा से अथवा प्राचीन काल से उनको मन्दिरों में जाने देने का नियम नहीं है, इसलिए अब भी उनको यह अधिकार नहीं दिया जा सकता। इन दोनों दलों का विवाद अथवा सङ्घर्ष कितने ही समय से चल रहा था और आशा थी कि जिस मत का आधार सत्य पर होगा वह कुछ काल में सफल हो जायगा। पर अब माननीय मालवीय जी द्वारा आमन्त्रित तथा आयोजित सनातनधर्म कॉन्फ्रेन्स ने, जिसका अधिवेशन प्रयाग के गत माघ-मेले में हुआ था, एक तीसरे मार्ग की सृष्टि की है, जिसका यदि जनता में विशेष रूप से प्रचार किया गया तो इस आन्दोलन के मार्गच्युत हो जाने की सम्भावना है। कॉन्फ्रेन्स ने

इस सम्बन्ध में जो प्रस्ताव पास किया है, उसमें कहा गया है :—

"इसमें सन्देह नहीं कि अछूत भी सनातनधर्म के अनुयायी हैं और इसलिए उनको मन्दिरों में देव-दर्शन करने का अधिकार है। जहाँ कहीं वे इस दर्शन के अधिकार से वञ्चित रक्खे जाते हैं, वहाँ उनको अन्तरस्थ मण्डप के, जहाँ प्रधान देवमूर्ति प्रतिष्ठित हो, बाहर से दर्शन करने की आज्ञा दी जाय, और उनसे उन तमाम नियमों का पालन कराया जाय, जिनका पालन अन्य दर्शकों को करना पड़ता है।"

यह प्रस्ताव इस बात को उच्च स्वर से घोषित कर रहा है कि यद्यपि कॉन्फ्रेन्स में एकत्रित पण्डितगण कट्टरपन्थियों की अपेक्षा किञ्चित उन्नत तथा उदार विचारों के थे, पर अछूतों को सनातनधर्म का अनुयायी मानते हुए भी वे उन्हें नीच ही समझ रहे थे। यद्यपि प्रस्ताव में कहा गया है कि अछूतों से उन तमाम नियमों का पालन कराया जाय, जिनका पालन अन्य दर्शक करते हैं, पर वास्तव में यह एक प्रकार की धोखेबाज़ी या प्रवञ्चना है। प्रस्ताव के रचयिता ने, हम नहीं जानते कि वह कौन व्यक्ति है, जान-बूझ कर उसे ऐसे गोलमोल और अस्पष्ट ढङ्ग से लिखा है जिससे साधारण पाठकों का भ्रम में पड़ जाना अवश्यम्भावी है। सरसरी निगाह से इसका मतलब यही जान पड़ता है, देवमूर्ति के निकट जाने की आज्ञा किसी दर्शक को नहीं है और उसीके अनुसार अछूतों के लिए भी वही नियम रक्खा गया है। पर बात ऐसी नहीं है। अधिकांश मन्दिरों में उच्च जाति के दर्शक पूजा करने अथवा भेंट चढ़ाने के लिए देवमूर्ति के पास अबाध रूप से जाते हैं, और उक्त प्रस्ताव में जो नियमों की समानता का ज़िक्र किया गया है, उसका आशय स्वच्छता, शान्ति, सुव्यवस्थापूर्वक मन्दिर में जाने तथा आचरण करने के सिवा और कुछ नहीं हो सकता। इस प्रकार का भेद-भाव महात्मा गाँधी के मनोवाञ्छित उद्देश्य से सर्वथा विपरीत है और जहाँ तक हमको स्मरण है, महात्मा गाँधी किसी व्यक्तिगत पत्र का उत्तर देते हुए इस प्रकार के प्रस्ताव का खण्डन भी कर चुके हैं। सम्भवतः उन्होंने इस सम्बन्ध में लिखा था कि धर्म के मार्ग में कोई आधी-मञ्ज़िल (Halfway House) नहीं है। यदि पण्डितों के मतानुसार अछूतों को बाहर से देव-दर्शन करने का अधिकार दे दिया जाय, जिसका अधिकार उनको अब भी अनेक स्थानों में प्राप्त है, और शेष लोग देवमूर्ति के समीप तक जा सकें, तो हिन्दू-समाज का ऊँच और नीच जाति का भेदभाव मिटने के बजाय और भी स्पष्ट हो जायगा। सच तो यह है कि अभी तक इन पण्डितों की समझ में यह नहीं आया है कि अछूतों को मन्दिरों में जाने देना उन पर किसी तरह की कृपा करना नहीं है, वरन् यह उनका जन्म-सिद्ध अधिकार है, जिससे उनको बहुत वर्षों से अन्यायपूर्वक वञ्चित करके रक्खा गया है, और इस अन्याय को मिटा कर अछूतों को समानता का दर्जा देने में अछूतों का उतना हित नहीं है, जितना कि उच्च जाति के हिन्दुओं का। अछूत हिन्दू-जाति के निर्बल अङ्ग हैं और यदि उनकी शक्ति बढ़ेगी तो इससे अछूतों का नहीं, वरन् समस्त हिन्दू-समाज का कल्याण होगा। इसके विपरीत अगर वे दुर्व्यवहार के कारण हिन्दू-जाति के विरोधी बन गए अथवा उसके शत्रुओं से मिल गए तो हिन्दुओं का कहीं ठिकाना न रहेगा और वे अपने धर्म और देव-मन्दिरों की तो क्या, अपने अस्तित्व की रक्षा भी न कर सकेंगे। कुछ लोग इसके उत्तर में कहते हैं कि यदि धर्म को खोकर हमने अपनी शक्ति को बढ़ा भी लिया तो इससे क्या लाभ; क्योंकि धर्म से पतित हो जाने का अन्तिम परिणाम नाश ही है। हमको बाध्य होकर कहना पड़ता है कि ऐसे लोग धर्म की प्रतिष्ठा बढ़ाने के बजाय उसकी मिट्टी ख़राब करते हैं। धर्म और ईश्वरवाद का अन्तिम और सर्वोत्कृष्ट स्वरूप, जिसकी कल्पना आज तक संसार के दार्शनिक कर सके हैं, यही है कि परमात्मा सर्वव्यापी है और विश्व के समस्त प्राणियों में उसका अस्तित्व है। हिन्दुओं के वेदान्त-दर्शन का सार 'अहं ब्रह्मास्मि' है और यह उक्ति चाण्डाल से लेकर महर्षियों तक सबके लिए एक समान लागू होती है। यदि यह सिद्धान्त ठीक है तो एक मनुष्य को दूसरे से उच्च या नीच मानना अपने ही कथन पर स्वयं हरताल फेरने के सिवा और कुछ नहीं है। यह मानते हुए कि ईश्वर सब मनुष्यों में व्याप्त है, एक मेहतर या चमार के छूने से ईश्वर की मूर्ति के भ्रष्ट होने की कल्पना घोर बुद्धिहीनता का द्योतक है। अब समय बदल गया है और

जिस धर्म में मानवीय भ्रातृभाव तथा समानता को स्थान नहीं है, वह इस ज़माने में धर्म नहीं, वरन् अधर्म माना जाता है। हमारे यहाँ के पण्डितगण जितना जल्द इस सचाई को समझ जायँ उतना ही उनके लिए अच्छा है।

❀ ❀ ❀

स्त्रियाँ और मताधिकार

भारतीय स्त्रियों की अधोगति और असहाय अवस्था का एक प्रधान कारण उनका सार्वजनिक जीवन से पृथक् रक्खा जाना भी है। सदैव गृहस्थी के धन्धों में लगे रहने और समाज तथा देश सम्बन्धी कार्यों से किसी प्रकार का संसर्ग न रखने के कारण धीरे-धीरे वे घोर सङ्कुचित विचारों की तथा अदूरदर्शिनी बन गई हैं। इसके फल-स्वरूप उनकी अज्ञानता यहाँ तक बढ़ गई है कि वे अपने परिवार के सुख-दुःख तथा हानि-लाभ के सिवा सामुदायिक सुख-दुःख तथा हानि-लाभ का कुछ भी महत्व नहीं समझतीं और न इस सम्बन्ध में किसी प्रकार की चेष्टा करना अपना कर्तव्य मानती हैं। यह अवस्था देशोन्नति की दृष्टि से घोर अवाञ्छनीय है। इसका अर्थ यह होता है कि देश की जन-संख्या का आधा भाग उसके कल्याण तथा उत्थान की चेष्टा से सर्वथा उदासीन है। इसके साथ ही इसके कारण स्त्रियों की पराधीनता का बन्धन अधिक दृढ़ होता है और वे परमुखापेक्षी बनी रहती हैं, जो उनके अनेक कष्टों का एक मुख्य कारण है। इन दोषों के प्रतिकारार्थ समाज-सुधारकगण कितने ही समय से सार्वजनिक क्षेत्र में स्त्रियों को इस प्रकार के अधिकार दिलाने का प्रयत्न कर रहे हैं, जिससे देश के शासन तथा समाज की व्यवस्था में भाग लेना उनके लिए सम्भव हो सके। यद्यपि पिछले दस-बारह वर्षों से इस सम्बन्ध में कुछ काम किया गया है और कितनी ही स्त्रियाँ म्युनिसिपल तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्डों तथा अन्य सरकारी कमेटियों की सदस्याएँ नियुक्त की गई हैं तथा राजनीतिक आन्दोलन में भी स्त्री-कार्यकर्ताओं की संख्या बढ़ी है, पर अभी तक उन्नति की गति इतनी धीमी है कि उससे सौ-पचास वर्षों में भी स्त्रियों का पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त कर सकना कठिन जान पड़ता है। पिछले शासन-सुधारों में केवल ६ प्रति सैकड़ा स्त्रियों को वोट देने का अधिकार दिया गया है और उनके कौन्सिलों का सदस्य बनने के मार्ग में इतनी बाधाएँ हैं कि अभी तक समस्त प्रान्तों में केवल दो-तीन स्त्रियाँ ही इसमें सफलता प्राप्त कर सकी हैं। आशा थी कि इन दस-बारह वर्षों में स्त्रियों ने शिक्षा तथा सार्वजनिक सेवा के क्षेत्र में जो प्रगति की है, उसे ध्यान में रख कर नवीन शासन-सुधारों में उनको उचित राजनीतिक अधिकार दिए जायँगे। पर राउण्डटेबिल कॉन्फ्रन्स के तीनों अधिवेशनों में जो बहसें हुई हैं और मताधिकार कमेटी ने जो रिपोर्ट दी है, उससे विदित होता है कि सरकार इस बार भी स्त्रियों की माँग पर उचित ध्यान नहीं दे रही है। मताधिकार के सम्बन्ध में लोथियन कमिटी ने सम्मति दी है कि वोट का अधिकार जायदाद और शिक्षा के आधार पर दिया जाय और इसके लिए जो नियम बनाए जाएँ वे स्त्री-पुरुषों के लिए समान रूप से लागू हों। अगर यह सम्मति मान ली गई तो इसका फल यह होगा कि स्त्री-वोटरों की संख्या पुरुषों से चौथाई भी नहीं होगी। क्योंकि शिक्षा की दृष्टि से स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा बहुत पिछड़ी हुई हैं और जायदाद की प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष अधिकारिणी स्त्रियों की संख्या भी बहुत कम है। ऐसी दशा में स्त्रियों और पुरुषों के वोटर होने की एक ही कसौटी रखना कभी न्याययुक्त नहीं कहा जा सकता। इसका सबसे अच्छा उपाय तो, जैसा कि स्त्रियों की माँग थी, यह था कि चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर किया जाता। ऐसा होने से किसी को शिकायत करने की गुञ्जायश न रहती। पर जब ऐसा हो सकना असम्भव है अथवा किन्हीं विशेष कारणों से ऐसा नहीं किया जाता तो आवश्यक है कि स्त्री-वोटरों के लिए ऐसे नियम बनाए जाएँ जिससे उनकी संख्या पुरुष वोटरों के बराबर हो जाए। कहा जाता है कि कुछ प्रान्तीय सरकारें इस प्रकार के प्रस्ताव का विरोध इसलिए करती हैं कि इससे वोटरों की संख्या अधिक बढ़ जायगी और उसका प्रबन्ध कर सकना कठिन होगा। बहुत से अनुदार विचारों के लोग तथा कट्टरपन्थी भी इसका विरोध करते हैं, क्योंकि उनकी निगाह में स्त्रियों का सार्वजनिक जीवन में भाग लेना

अनुचित है। कितने ही सम्प्रदायवादी इससे इसलिए भयभीत होते हैं कि ऐसा होने से किसी विशेष सम्प्रदाय या जाति वालों को अधिक वोट प्राप्त हो जाएँगे। पर इस प्रकार के लोगों की संख्या नगण्य है और सार्वजनिक जीवन में उनका कोई महत्व भी नहीं है। इसके विपरीत शिक्षित तथा देश-हितैषी व्यक्तियों की बहुत बड़ी संख्या स्त्रियों को समान मताधिकार देने के पक्ष में है और इस प्रकार के परिवर्तन को देशोन्नति के लिए कल्याणप्रद समझती है। अन्य देशों तथा इङ्गलैण्ड में भी स्त्री-वोटरों की शक्ति पुरुषों से प्रायः समान ही है। भारत-सरकार भी सदैव पिछड़े हुए और निर्बल समुदायों का पक्ष ग्रहण करती रहती है और उनके अधिकारों की रक्षा का दम भरती रहती है। इन तमाम बातों को दृष्टि-गोचर रखते हुए स्त्रियों को पुरुषों के समान वोट देने की शक्ति प्रदान करना किसी प्रकार अनुचित या अनुपयुक्त नहीं कहा जा सकता और न सरकार ही न्यायपरतः उसे स्वीकार करने से इनकार कर सकती है।

❀ ❀ ❀

भारत में जापानी व्यवसाय

कुछ समय से भारतीय बाज़ार पर जापानी व्यवसाय ने बड़े वेग से आक्रमण करना आरम्भ किया है। सब प्रकार का जापानी माल प्रचुर परिमाण में इस देश में आ रहा है और अत्यन्त सस्ते दामों में छोटे-बड़े समस्त शहरों और क़स्बों तक में बिक रहा है। यहाँ के व्यवसाइयों के बहुत-कुछ पुकार मचाने पर सरकार ने उस पर ५० प्रति सैकड़ा तक चुङ्गी भी लगा दी है, तो भी उसकी बिक्री पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा है और अब भी उसके दामों में भारतीय मिलों तथा कारख़ानों में बने माल के दामों से बहुत कुछ अन्तर है। यह बात ऊपरी दृष्टि से अत्यन्त विस्मयजनक जान पड़ती है, पर जब हम ध्यान देते हैं कि जापान की सरकार पूर्णतया राष्ट्रीय है और वहाँ की जनता भी राष्ट्रीयता के भाव से ओत-प्रोत है तो आश्चर्य करने का कोई कारण नहीं रह जाता। जापान की सरकार आरम्भ ही से इङ्गलैण्ड द्वारा सुवर्णमान (Gold Standard) के परित्याग के फल को ध्यानपूर्वक निरीक्षण कर रही थी और उसने जैसे ही अनुभव किया कि पौण्ड के घटने से उसका प्रभाव जापान के व्यापार पर हानि[कर] पड़ रहा है, वैसे ही उसने भी सुवर्णमान का परि[त्याग] कर दिया और अपने सिक्के 'येन' की दर को ख़ूब [गिरा] दिया। परिणाम यह हुआ कि जापानी माल भार[तीय] कारख़ानों को ही नहीं, इङ्गलैण्ड के वस्त्र-व्यवसाय को [भी] गहरी हानि पहुँचा रहा है। इसके समझने के [लिए] केवल यही एक उदाहरण काफ़ी है कि लङ्काशायर [का] जो कपड़ा अब तक इस देश में १३।) प्रति थान [के] हिसाब से बिक रहा था, जापान उसे केवल १०॥=) [में] दे रहा है। इस भयङ्कर प्रतियोगिता के कारण भार[तीय] मिलों की तो क्षति हो ही रही है, इङ्गलैण्ड का वस्त्र-व्यव[साय] भी उसके सामने टिक सकने में असमर्थ है। [गत] नवम्बर मास में विदेशों से ३ करोड़ ४० लाख गज़ बि[ना] धुला; २ करोड़ ९० लाख गज़ धुला हुआ; ३ करोड़ [...] लाख गज़ रँगा और छपा हुआ, तथा १ करोड़ ५[...] गज़ नक़ली रेशम का कपड़ा भारतवर्ष में आया था। इसमें जापान का भाग क्रमशः २ करोड़ ७० लाख ग[ज़]; १ करोड़ ८ लाख गज़; १ करोड़ ९० लाख गज़ और [...] लाख गज़, तथा इङ्गलैण्ड का ७० लाख गज़, १ करो[ड़] ७३ लाख गज़ और १ करोड़ २६ लाख गज़ था। नक़[ली] रेशम का कपड़ा इङ्गलैण्ड से या तो आता ही न[हीं] या उसका परिमाण नगण्य है। इस हिसाब से विदि[त] होता है कि एक महीने में जहाँ जापान से ६ करो[ड़] ६३ लाख गज़ कपड़ा आया वहाँ इङ्गलैण्ड से के[वल] ३ करोड़ ६९ लाख गज़ आया। नवम्बर के बाद [से] आने वाले जापानी माल का परिमाण और भी बढ़[ता] जा रहा है और उसके फल से बम्बई की मिलों [के] गोदामों में कपड़े की क़रीब दो लाख गाँठें इकट्ठी [हो] गई हैं और कितने ही कारख़ानों को अपना का[म] पूर्णतया या आंशिक रूप में बन्द कर देना पड़ा है। ऐसी परिस्थिति में भारतीय राजनीतिज्ञों तथा सरका[र] का कर्तव्य है कि बिना विलम्ब इसके उचित प्रतिका[र] की चेष्टा करें। इससे हमारा आशय केवल जापानी माल पर चुङ्गी बढ़ाने से नहीं है, क्योंकि यद्यपि उससे सरकारी ख़ज़ाने में बहुत बड़ी रक़म पहुँच जाती है पर स्वदेशी व्यवसाइयों को बहुत कम लाभ पहुँचता है। यदि सरकार सचमुच यहाँ के वस्त्र-व्यवसाय को

सहायता पहुँचाना चाहती है तो उसका कर्त्तव्य है कि अन्य राष्ट्रों की भाँति रेल के भाड़े में कमी करके, कपास की चुङ्गी उठा कर तथा माल के बाहर भेजने में अन्य सुभीते देकर व्यवसाइयों को प्रोत्साहित करे।

स्वदेशी बीमा कम्पनियाँ

जीवन का बीमा करने वाली कम्पनियों का महत्व आर्थिक जगत में दिन पर दिन बढ़ता जाता है। प्रायः सभी सभ्य देशों में राष्ट्रीय सम्पत्ति का एक बड़ा भाग उनके पास रहता है और वे सार्वजनिक जीवन का एक मुख्य अङ्ग बन गई हैं। भारतवर्ष ने भी इस विषय में ख़ासी उन्नति की है। इस देश की समस्त बीमा कम्पनियों की संख्या सन् १९३० में ११५ थी और ७ लाख १६ हज़ार ६६३ व्यक्तियों ने १ अरब ५४ करोड़ रुपए का बीमा उनके पास कराया था। यह एक इतनी बड़ी धन-राशि है, जिसका यदि देशहित को दृष्टि में रख कर सङ्गठित रूप में उपयोग किया जाय तो यहाँ के उद्योग-धन्धों और कारबार की बहुत कुछ वृद्धि हो सकती है। पर खेद का विषय है कि इस रक़म का एक काफ़ी बड़ा हिस्सा विदेशवालों के हाथ में है, जिसका इस देश के हित के लिए उपयोग होने की कोई आशा नहीं की जा सकती। उपरोक्त ११५ कम्पनियों में से यद्यपि देशी कम्पनियों की संख्या ९२ है और विदेशी कम्पनियाँ केवल २३ ही हैं, तो भी ६९ करोड़ ७६ लाख रुपए का बीमा उनके पास किया गया है, जो तमाम रक़म के आधे से कुछ ही कम है। देशी कम्पनियों के पास बीमा कराने वाले व्यक्तियों की संख्या ५ लाख १३ हज़ार ९५५ थी और विदेशी कम्पनियों के पास बीमा कराने वालों की २ लाख २ हज़ार ७०८। इन अङ्कों से प्रकट होता है कि देश के धनवान और उच्च स्थिति के व्यक्ति अब भी अपना बीमा देशी कम्पनियों के बजाय विदेशी कम्पनियों से कराते हैं। यह स्थिति हमारे लिए लज्जा-जनक होने के साथ ही देश के आर्थिक कल्याण की दृष्टि से घोर हानिकारक है। आजकल देशी बीमा कम्पनियों में से कितनी ही बहुत अच्छी स्थिति में हैं और उनकी साख किसी विदेशी कम्पनी से कम नहीं है। ऐसी स्थिति में कोई कारण नहीं कि बीमा कराने वाले लोग देशी कम्पनियों को छोड़ कर विदेशी कम्पनियों के पास दौड़े जायँ और अपने देश का कई करोड़ रुपया प्रति वर्ष विदेशियों की जेबों में भरें।

प्राणघातक परदा

इन दिनों बम्बई में 'स्टोव' (किरासिन तेल का चूल्हा) द्वारा स्त्रियों के जलने की अनेक घटनाएँ हुई हैं और उनकी जाँच करने वाले कॉरोनर ने जनता को इस सम्बन्ध में सावधान रहने की बार-बार चेतावनी दी है। ये घटनाएँ प्रायः गुजराती घरों में होती हैं और इनको लेकर बम्बई के पत्रों में एक आन्दोलन सा उठ खड़ा हुआ है। कॉरोनर का मत है कि गुजराती लोगों का विवाह सहज में हो जाता है और दहेज में बहुत सा रुपया भी मिल जाता है, इसी लालचवश वे अपनी स्त्रियों के प्राणों का कोई मूल्य नहीं समझते। यह आक्षेप कितने ही गुजरातियों को बहुत बुरा लगा है और वे इसके विरोध में बहुत कुछ लिख रहे हैं। बम्बई जैसे शहरों में स्टोव का व्यवहार भोजन पकाने के अन्य तमाम साधनों से सस्ता और सुविधा-जनक होता है और इसलिए सभी जातियों के अधिकांश व्यक्ति इच्छा अथवा अनिच्छा से उसका प्रयोग करते हैं। इन तमाम लोगों में गुजराती स्त्रियाँ ही विशेष रूप से स्टोव की शिकार क्यों होती हैं, इसका कुछ न कुछ कारण अवश्य होना चाहिए। इस सम्बन्ध में जितने लेखकों ने अपने मत प्रकट किए हैं, उन सबकी दलीलों पर विचार करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि न तो गुजराती अपनी स्त्रियों के प्रति अन्य जाति वालों की अपेक्षा अधिक निष्ठुर होते हैं और न गुजराती स्त्रियाँ अन्य स्त्रियों की अपेक्षा मूर्ख होती हैं, वरन् इन घटनाओं का वास्तविक कारण गुजरातियों में प्रचलित परदा है। ये स्त्रियाँ प्रायः अपने पति के गुरुजनों के सम्मुख लम्बा घूँघट निकाले रहती हैं और उसी अवस्था में भोजन बनाती हैं। इसलिए थोड़ी सी असावधानी से ही स्टोव की लपक उनके घूँघट में लग जाती है। यदि स्त्रियाँ झूठी लज्जा को त्याग कर घूँघट निकालना छोड़ दें और

भोजन बनाते समय बहुत ढीला कपड़ा न पहिनें तो ऐसी घटनाएँ बहुत कम हो सकती हैं।

❀ ❀ ❀

जङ्गली जातियों की दुर्दशा

भारतवर्ष में जङ्गली जातियों की जन-संख्या एक करोड़ साठ लाख बतलाई जाती है। इनमें भील, गोंड, सन्थाल, नागा आदि कितनी ही जातियाँ सम्मिलित हैं, जो देश के विभिन्न जङ्गलों और पहाड़ी भागों में रहती हैं। इतिहासकारों का कथन है कि किसी समय ये ही जातियाँ इस समस्त देश की स्वामिनी थीं, पर जैसे-जैसे शक्ति तथा ज्ञान-सम्पन्न सभ्य जातियों के लोग विशेष उपजाऊ, व्यवसायिक दृष्टि से लाभजनक तथा जलवायु की दृष्टि से उत्तम भू-भागों पर अधिकार जमाते गए, ये असभ्य और अशिक्षित जातियाँ पीछे हटती गईं और आजकल वे केवल ऐसे स्थानों में सीमा-बद्ध हो गई हैं, जो अन्य लोगों की दृष्टि में निवास के अनुपयुक्त हैं। इन स्थानों में जीवन-निर्वाह के साधन बहुत कम प्राप्त हैं, ज़मीन के पथरीली अथवा बञ्जर होने के कारण अधिक परिश्रम करने पर भी थोड़ी ही फ़सल उत्पन्न होती है, शिकार करने, पशु पालने अथवा जङ्गली पदार्थ एकत्रित करने के सिवा कोई व्यवसाय नहीं है। आवागमन भी बड़ी कठिनाई से होता है और मनुष्यों को सर्वथा प्रकृति की कृपा पर निर्भर रहना पड़ता है। शिक्षा के अभाव से इन जातियों में जादू-टोने और अन्धविश्वास की बड़ी प्रबलता है। सङ्गठन की कमी से वे अपनी दशा सुधारने की अथवा अपने ऊपर होने वाले अन्यायों को दूर करने की चेष्टा करने में असमर्थ हैं। सरकारी कर्मचारी, बौहरे, दुकानदार आदि सब उनकी अज्ञानता से अनुचित लाभ उठाते हैं और उनको तरह-तरह से ठगते और लूटते हैं। सरकार ने जङ्गल-विभाग के जो क़ानून बनाए हैं उनके कारण इन अभागे प्राणियों की बची-खुची थोड़ी सी स्वतन्त्रता भी नष्ट हो गई है और उनको छोटे-छोटे अपराधों या साधारण भूलों के लिए कठोर दण्ड दिया जाता है। उनसे बेगार में इच्छानुसार काम कराना और कुछ भी मज़दूरी न देना एक नियम सा बन गया है। ऋण देने वाले बौहरे उनसे दु[illegible] तिगुना ब्याज लेते हैं और अन्य दुकानदार भी [illegible] उलटा-सीधा समझा कर घटिया चीज़ का ज़्यादा [illegible] वसूल कर लेते हैं। शराब के ठेकेदार उनको अपने [illegible] में फँसाने की चेष्टा करते रहते हैं। इस प्रकार ये अ[illegible] और सीधे-सादे लोग चारों तरफ़ से सताए औ[illegible] जाते हैं और कोई उनकी सहायता अथवा स[illegible] करने वाला नहीं है। वे पशुओं की तरह उत्पन्न [illegible] हैं और उन्हीं की तरह जीवन बिता कर मर जाते [illegible] केवल न्याय की ख़ातिर ही नहीं, वरन् करुणा की [illegible] से भी ये समाज द्वारा परित्यक्त प्राणी हमारे सदय [illegible] सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार के पात्र हैं। खेद है कि [illegible] तक हमारे देश की सार्वजनिक संस्थाओं और का[illegible] कर्ताओं ने इस तरफ़ बहुत कम ध्यान दिया है [illegible] इन लोगों की उन्नति के लिए कोई सङ्गठित चेष्टा [illegible] की गई है। देश भर में केवल एक संस्था इस उद्दे[illegible] की पूर्ति के लिए स्थापित की गई, जिसकी वा[illegible] रिपोर्ट हाल ही में प्रकाशित हुई है। इसका नाम भी[illegible] सेवा-मण्डल है और इसका प्रधान कार्यालय अहमदा[illegible] के पास दोहद नामक स्थान में है। इसका कार्य[illegible] केवल गुजरात के भीलों में है, जिनकी सेवा तथा उ[illegible] की चेष्टा यह गत दस वर्षों से कर रही है। इसने [illegible] तक भीलों में शिक्षा-प्रचार के लिए सत्तरह स्कूल [illegible] हैं, जिनमें आठ में पढ़ने वाले बालकों के रहने और [illegible] पीने का भी प्रबन्ध किया गया है। यह बीमारों [illegible] दवा-दारू देती है और उपदेशकों द्वारा भीलों में प्रच[illegible] अन्धविश्वासों तथा अन्य कुप्रथाओं के निराकरण [illegible] चेष्टा करती है। यह समय-समय पर भीलों पर [illegible] वाले अन्याय-अत्याचारों का विरोध करती रहती [illegible] और उनकी तरफ़ से उच्च सरकारी कर्मचारियों का ध्या[illegible] आकर्षित करती है। यद्यपि बम्बई प्रान्त के जङ्गलि[illegible] की सत्तरह लाख की जन-संख्या को देखते हुए इस सं[illegible] का विस्तार और शक्ति अत्यन्त कम है, तो भी यदि दे[illegible] के प्रत्येक भाग में, जहाँ ऐसी जङ्गली जातियाँ निवा[illegible] करती हैं, इस प्रकार की संस्थाएँ स्थापित हो जाएँ [illegible] कम से कम इन पश्चात्पद लोगों में जागृति का [illegible] पड़ जाय, और उन पर होने वाले अन्याय-अत्या[illegible] से बाहरी जगत अवगत हो जाय।



[लेखक—सङ्गीताचार्य श्री० किरणकुमार मुखोपाध्याय "नीलू बाबू"]

कोई भी सङ्गीत-प्रेमी ऐसा न होगा, जिसने "नीलू बाबू" का नाम न सुना हो। यह पुस्तक उन्हीं की सर्वोत्कृष्ट रचना है। सङ्गीत सम्बन्धी कोई भी पुस्तक आज तक इसके जोड़ की नहीं प्रकाशित हुई। यदि घर बैठे बिना उस्ताद के सङ्गीत सीखना हो, तो इस पुस्तक को अवश्य मँगाइए! पुस्तक सामने रख कर कोई भी राग-रागिनी आप निकाल सकते हैं। अनेकों राग-रागिनी के अलावा पुस्तक के प्रारम्भ में हारमोनियम बजाने की विधि और स्वर आदि सम्पूर्ण विषयों को ऐसी सरलतापूर्वक समझा दिया गया है कि बिना किसी की सहायता के ही आप सब क्रियाओं का अभ्यास कर सकते हैं। पुस्तक देखने से ही उसकी उत्तमता मालूम होगी।

४० पाउण्ड के आर्ट पेपर पर छपी हुई सुन्दर सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल २॥); स्थायी ग्राहकों से १॥।=) मात्र!

पुस्तक छप रही है! शीघ्र ही प्रकाशित होगी। अभी से अपना ऑर्डर रजिस्टर करा लीजिए; वरना बाद को पछताना पड़ेगा!

चाँद प्रेस, लिमिटेड

चन्द्रलोक—इलाहाबाद

पुस्तक में जिन उत्तमोत्तम राग-रागिनियों का समावेश है, उनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं :—

१-भीम पलासी	१७-तराना विहाग
२-तरज़ थियेटर	१८-मालश्री
३-काङ्गड़ा	१९-चैती
४-देश मलार	२०-काफ़ी
५-सिन्ध	२१-देश
६-वन्देमातरम्	२२-सोरठ
७-बरसाती	२३-कानड़ा
८-झिंझौटी	२४-माँड
९-बहार	२५-केदारा
१०-धानी	२६-भैरव
११-रामकली	२७-श्रीराग
१२-नट बहार	२८-भूपाल
१३-मुलतानी	२९-लावनी
१४-खम्भाच	३०-विभास
१५-मिश्र भैरवी	३१-गुनकली
१६-मालकोस	३२-दुर्गा

इत्यादि-इत्यादि।

Regd. No. A—1

Printed and Published for and on behalf of The Chand Press, Limited, by Munshi Naujadik Lal Srivastava, Editor, at The Fine Art Printing Cottage, 28, Edmonstone Road, Chandralok—Allahabad

अप्रैल, १९३३

चाँद

[वर्ष ११, खण्ड १
सं० ६, पू० सं० १२६]



वार्षिक चन्दा ६॥)
छः माही चन्दा ३॥)

सम्पादक :—
मुन्शी नवजादिकलाल श्रीवास्तव

विदेश का चन्दा ८॥)
इस अङ्क का मूल्य ॥=)



सुप्रसिद्ध अमेरिकन सिनेमा-स्टार—मिस लौरेट्टा यङ्ग

FINE ART PRINTING COTTAGE ALLAHABAD

सर्व-साधारण के लिए मूल्य २॥) से घटा कर २) कर दिया गया !



छप गई ! छप गई !!

[लेखक—सङ्गीताचार्य श्री० किरणकुमार मुखोपाध्याय "नीलू बाबू"]

कोई भी सङ्गीत-प्रेमी ऐसा न होगा, जिसने "नीलू बाबू" का नाम न सुना हो। यह पुस्तक उन्हीं की सर्वोत्कृष्ट रचना है। सङ्गीत सम्बन्धी कोई भी पुस्तक आज तक इसके जोड़ की नहीं प्रकाशित हुई। यदि घर बैठे बिना उस्ताद के सङ्गीत सीखना हो, तो इस पुस्तक को अवश्य मँगाइए ! पुस्तक सामने रख कर कोई भी राग-रागिनी आप निकाल सकते हैं। अनेकों राग-रागिनी के अलावा पुस्तक के प्रारम्भ में हारमोनियम बजाने की विधि और स्वर आदि सम्पूर्ण विषयों को ऐसी सरलतापूर्वक समझा दिया गया है कि बिना किसी की सहायता के ही आप सब क्रियाओं का अभ्यास कर सकते हैं।

४० पाउण्ड के आर्ट पेपर पर छपी हुई सुन्दर सजिल्द पुस्तक का मूल्य २॥) से घटा कर २) कर दिया गया है; फिर भी स्थायी ग्राहकों से केवल १॥)

पुस्तक की माँग बहुत अधिक है। शीघ्र ही अपनी कॉपी मँगा लीजिए; वरना बाद को पछताना पड़ेगा !

चाँद प्रेस, लिमिटेड

चन्द्रलोक—इलाहाबाद

पुस्तक में जिन उत्तमोत्तम राग-रागिनियों का समावेश है, उनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं :—

१–भीम पलासी	१७–तराना विहाग
२–तरज़ थियेटर	१८–मालश्री
३–काङ्गड़ा	१९–चैती
४–देश मलार	२०–काफ़ी
५–सिन्ध	२१–देश
६–वन्देमातरम्	२२–सोरठ
७–बरसाती	२३–कानड़ा
८–झिंझौटी	२४–माँड
९–बहार	२५–केदारा
१०–धानी	२६–भैरव
११–रामकली	२७–श्रीराग
१२–नट बहार	२८–भूपाल
१३–मुलतानी	२९–जावनी
१४–खम्माच	३०–विभास
१५–मिश्र भैरवी	३१–गुनकली
१६–मालकोस	३२–दुर्गा

इत्यादि-इत्यादि।

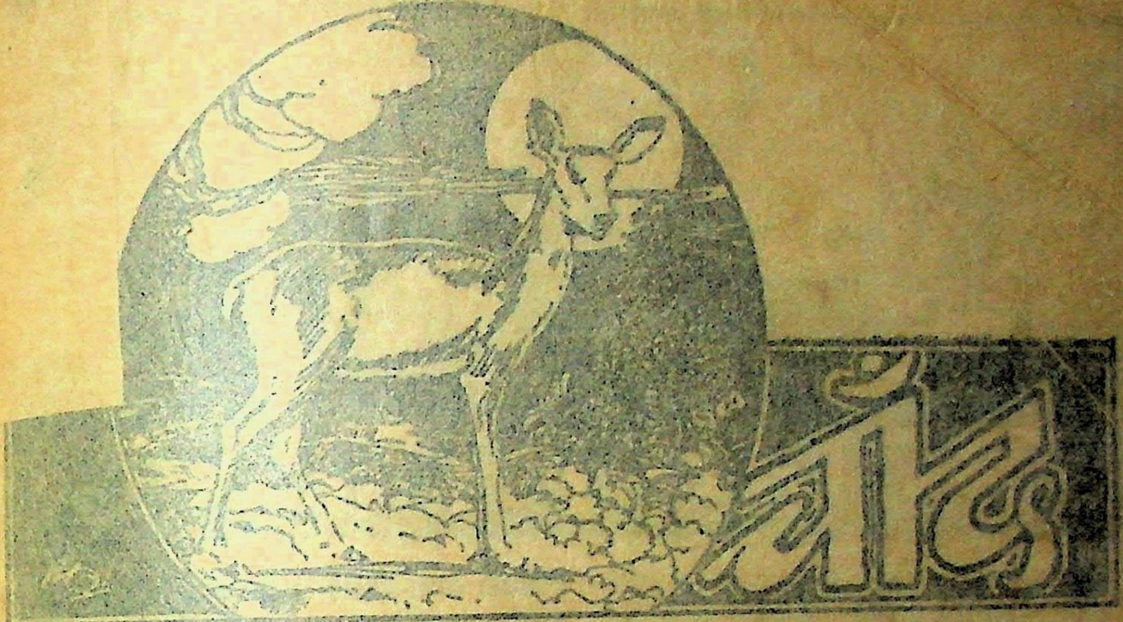


अँगड़ाई

नाज़ो-अन्दाज़ में, आज़ारो-सितम ढाने में,
तुमसे दो हाथ ज़ियादह तेरी अँगड़ाई है !

FINE ART PRINTING COTTAGE, ALLAHABAD.

[चित्रकार---श्री० शफ़ी



आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रेम हमारी प्रणाली है, जब तक इस पावन अनुष्ठान में हम अविचल हैं, तब तक हमें इसका भय नहीं, कि हमारे विरोधियों की संख्या और शक्ति कितनी है।

वर्ष ११, खण्ड १ | अप्रैल, १९३३ | सं० ६, पू० सं० १२६

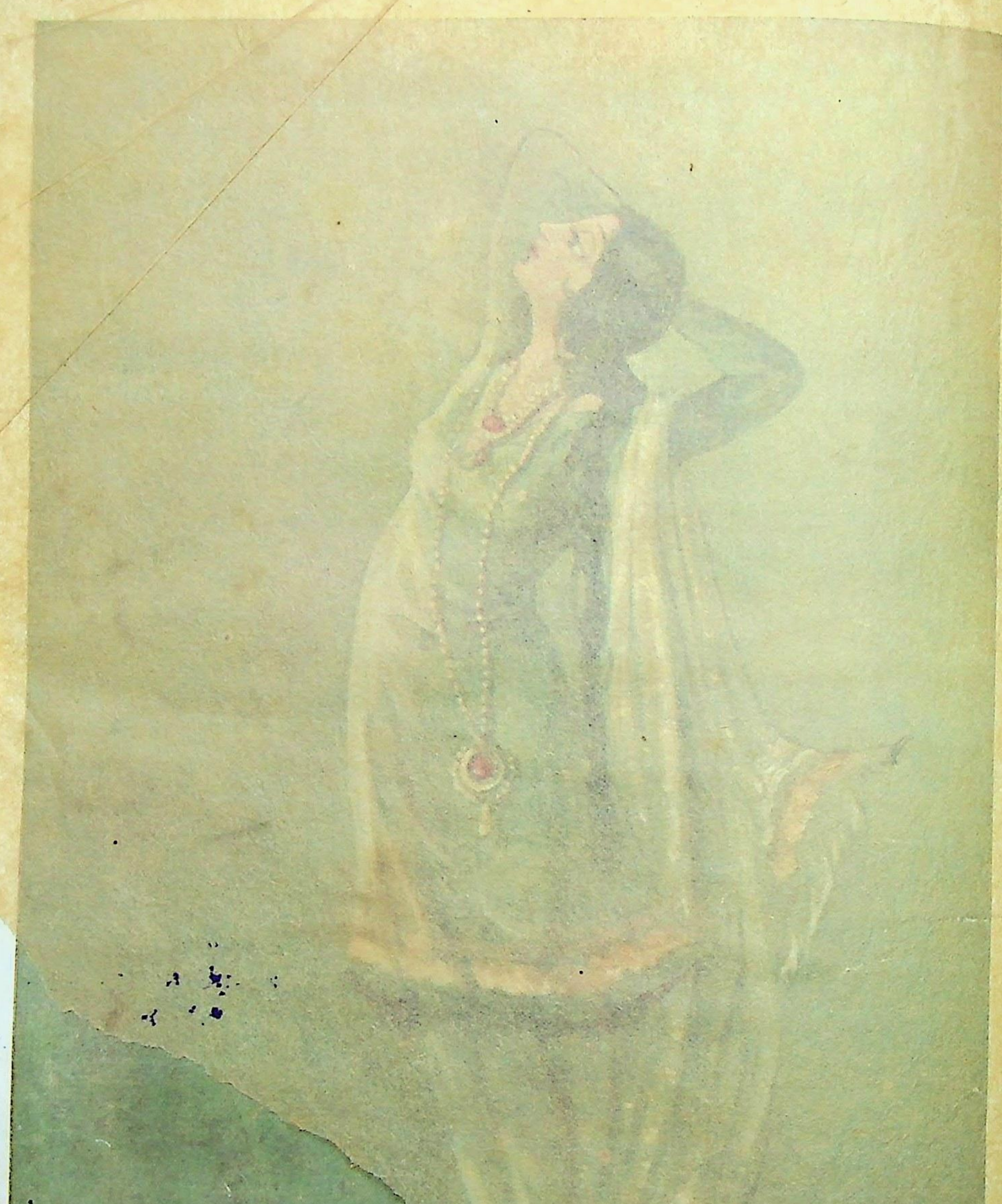
हास्य-रुदन

[प्रोफ़ेसर रामकुमार वर्मा, एम० ए०]

जग क्या है, सुख-दुख के स्वप्नों की अस्पष्ट कहानी,
हास्य एक ध्वनि है, रोदन है केवल खारा पानी।
माया की आँखों ने देखी, इन्द्र-धनुष की रेखा,
अरे, अपरिचित स्वप्न-राज्य में, क्या बनता है ज्ञानी।

आँखों की सद्योदित पुतली में, अन्धकार है छाया,
शुभ्रचन्द्र के कालेपन में, कितना तत्व समाया।
मैं हँसता हूँ, वह रोता है, क्या वैषम्य नहीं है?
हास्य-रुदन इन दोनों शिशुओं की जननी है माया !!

दोनों का है तात्पर्य—विश्व के सत्वभाव का लेखा,
जिसमें है सुख-दुख के अधर की मिलती-सी रेखा।
उसे समझ लें फिर सुख-दुख का कुछ अस्तित्व नहीं है,
बन्द आँख से स्वप्न छोड़, क्या विश्व किसी ने देखा?

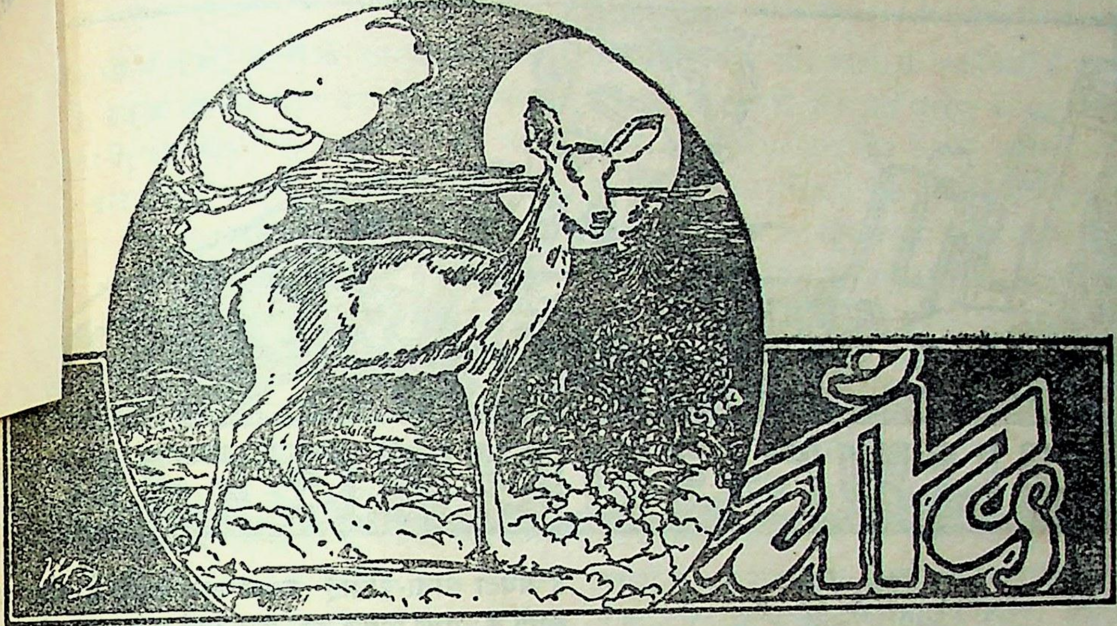


अँगड़ाई

नाज़ो-अन्दाज़ में, आज़ारो-सितम ढाने में,
तुझसे दो हाथ ज़ियादह तेरी अँगड़ाई है !

FINE ART PRINTING COTTAGE,
ALLAHABAD.

[चित्रकार—श्री० शफ़ी



आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रेम हमारी प्रणाली है, जब तक इस पावन अनुष्ठान में हम अविचल हैं, तब तक हमें इसका भय नहीं, कि हमारे विरोधियों की संख्या और शक्ति कितनी है।

वर्ष ११, खण्ड १ | अप्रैल, १९३३ | सं० ६, पू० सं० १२६

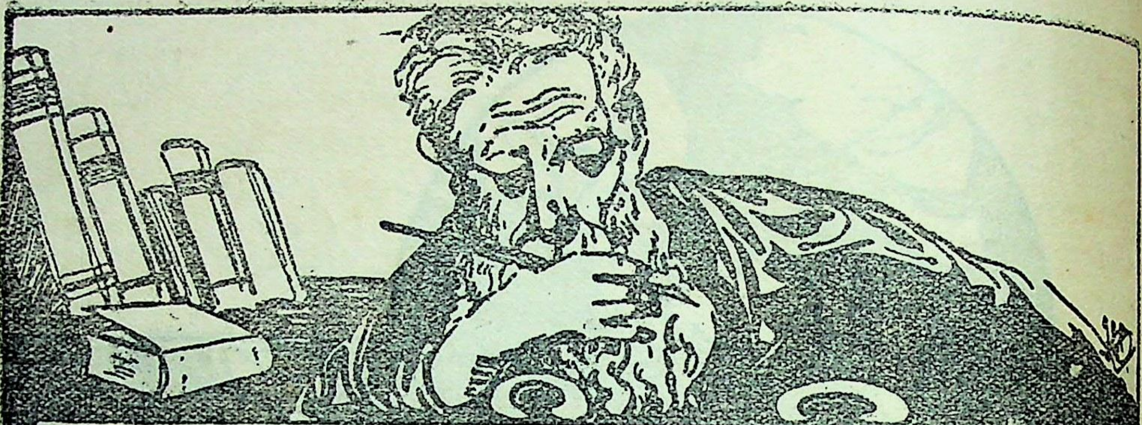
हास्य-रुदन

[प्रोफ़ेसर रामकुमार वर्मा, एम० ए०]

जग क्या है, सुख-दुख के स्वप्नों की अस्पष्ट कहानी,
हास्य एक ध्वनि है, रोदन है केवल तोड़ा पानी।
माया की आँखों ने देखी, इन्द्र-धनुष की रेखा,
अरे, अपरिचित स्वप्न-राज्य में, क्या बनता है ज्ञानी।

आँखों की सज्योति पुतली में, अन्धकार है छाया,
शुभ्रचन्द्र के कालेपन में, कितना तत्त्व समाया।
मैं हँसता हूँ, वह रोता है, क्या वैषम्य नहीं है?
हास्य-रुदन इन दोनों शिशुओं की जननी है माया !!

मैं का है तात्पर्य—विश्व के सत्वभाव का लेखा,
जिसमें है सुख-दुख के अक्षर की मिलती-सी रेखा।
उसे समझ लें फिर सुख-दुख का कुछ अस्तित्व नहीं है,
बन्द आँख से स्वप्न छोड़, क्या विश्व किसी ने देखा?



सम्पादकीय विचार

चाँद

अप्रैल, १९३३

भारत में बेकारी

गत कई वर्षों से बेकारी की समस्या ने जैसा भीषण रूप धारण कर रक्खा है, उससे संसार के सभी राष्ट्र बड़ी चिन्ता और विपत्ति में पड़ गए हैं। वैसे तो व्यवसाय-क्षेत्र में समय-समय पर उलट-फेर होता ही रहता है, परन्तु इस बार आर्थिक हलचल ने जिस प्रकार संसार के सभी भागों पर एक साथ ही आक्रमण किया है और उसकी अवधि जैसी लम्बी होती जाती है, उसका उदाहरण इतिहास में ऐसा कदाचित ही मिल सके। वर्तमान समय में संसार में कोई देश नहीं, जो इस व्याधि से पूर्णतया मुक्त हो। जो देश उद्योग-धन्धे तथा कारीगरी में अग्रगण्य हैं, उनकी दशा तो और भी ख़राब है। ऐसे देशों में मज़दूरों की बहुत बड़ी संख्या बेकार हो गई है अथवा आधा-चौथाई समय काम करती है और ऐसे लोगों के भरण-पोषण का भार वहाँ की सरकारों को उठाना पड़ रहा है। यद्यपि इन बेकार लोगों को इतनी ही सहायता दी जाती है, जिससे वे किसी प्रकार अपनी जीवन-रक्षा मात्र कर सकें, तो भी इस काम में प्रतिवर्ष अरबों रुपए ख़र्च करने पड़ते हैं और फल-स्वरूप जनता पर नए-नए करों का असह्य भार पड़ता जाता है। पर अधिकांश देशों में, जिनकी आर्थिक दशा गिरी हुई है अथवा जहाँ की सरकार जनता के प्रति विशेष उत्तरदायित्व का अनुभव नहीं करती, वहाँ बेकार लोगों को या तो भूखों मरना पड़ता है या किसी की उदारता का आश्रय लेना पड़ता है।

भारत की दशा

इस दृष्टि से भारतवर्ष की दशा अन्य समस्त देशों की अपेक्षा अधिक शोचनीय है। क्योंकि यहाँ की सी बेकारी तथा भीषण दरिद्रता शायद ही कहीं दूसरी जगह मिले। परन्तु जब 'लीग ऑफ़ नेशन्स' जैसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था बेकारों का हिसाब प्रकाशित करती है, तो उसमें भारत का नाम भी नहीं रहता। अन्य देशों की सरकारें प्रतिमास अपने यहाँ के बेकारों की संख्या के घटने-बढ़ने की आलोचना करती हैं, पर इस देश में आज तक किसी ने इस बात का अनुमान भी नहीं लगाया कि यहाँ बेकारों की तादाद कितनी है। इसका प्रधान कारण यह है कि भारत कृषि-प्रधान देश है और यहाँ की अधिकांश जन-संख्या बड़े-बड़े व्यवसाय-केन्द्रों में नहीं, वरन् सात लाख छोटे-छोटे गाँवों और क़स्बों

में रहती है। जो लोग बड़े शहरों के कारख़ानों में मज़दूरी करते हैं, उनका भी एक बहुत बड़ा हिस्सा ग्रामीणों का ही होता है, जो नौकरी छूट जाने पर फिर अपने घरों को ही लौट जाते हैं। ऐसी दशा में जब तक विशेष प्रयत्न न किया जाय, तब तक यहाँ के बेकारों की संख्या तथा उनकी अवस्था का ज्ञान प्राप्त कर सकना सम्भव नहीं है। इसके अतिरिक्त इस देश के ग़रीब तथा भूखों मरने वाले लोग सङ्गठित होकर अपनी शिकायतों को शासकों अथवा संसार के सम्मुख प्रकट करना भी नहीं जानते। वे व्यक्तिगत रूप से कष्टों को सहन करते रहते हैं और सहते-सहते मर जाते हैं। उनके लिए न किसी तरह की योजना बनाई जाती है, न उनको सार्वजनिक सहायता का अधिकारी माना जाता है। यदि कभी यह असन्तोष बहुत बढ़ जाने पर किसी तरह के आन्दोलन के रूप में प्रकट भी होता है, तो उसको राजद्रोह या शासकों का विरोध कह कर दबा दिया जाता है। अधिकार और शक्ति-सम्पन्न लोग ग़रीबों के प्रति कभी सहानुभूति के दो-चार शब्द कह देते हैं, पर उनके वास्तविक उद्धार की कोई चेष्टा नहीं की जाती।

किसानों की दुर्दशा

जैसा हम कह चुके हैं, इस देश में सब से अधिक संख्या किसानों की है और वर्तमान आर्थिक सङ्कट के कारण कहीं-कहीं तो उनकी अवस्था बेकारी से भी अधिक भयङ्कर हो गई है। उदाहरणार्थ गत दो वर्षों से गुड़ का भाव इतना गिर गया है कि ऊख की खेती करने वाले किसानों की लागत भी वसूल नहीं होती और फलस्वरूप वे ऋण के भार से दबते जाते हैं। खेती से उत्पन्न अन्य पदार्थों की दर भी पूर्वापेक्षा बहुत घट गई है, जिससे किसानों की आमदनी दिन पर दिन कम होती जाती है और उनका जीवन-निर्वाह हो सकना अत्यन्त कठिन हो गया है। खेती की आमदनी घट जाने से उनमें काम करने वाले मज़दूरों की मज़दूरी भी कम हो गई है और कितने ही तो बिना काम के ठोकरें खाते फिरते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इन लोगों को सहायता देना तथा इनकी दशा सुधारना बहुत ख़र्च तथा बड़े आयोजन का काम है, पर यदि सरकार इस तरफ़ ध्यान देती और अपनी शक्ति तथा साधनों का उपयोग इन लोगों के हित के लिए करती, तो इनके कष्टों में बहुत-कुछ कमी हो सकती थी। इस अवस्था में सरकार का कर्तव्य था कि टैक्सों तथा रेल के भाड़े आदि में कमी करके तथा अन्य सुविधाएँ देकर किसानों की पैदावार को उपयुक्त मण्डी में पहुँचाने का प्रबन्ध करती; किस चीज़ का बोना विशेष लाभदायक है, इसकी विशेषज्ञों द्वारा जाँच करा के किसानों को सूचना देती रहती और उनमें खेती के ऐसे आधुनिक तथा सरल साधनों का प्रचार करती, जिनसे वे कम ख़र्च में अच्छी फ़सल उत्पन्न कर सकते। वह ज़मींदारों तथा बोहरों की असाधारण लूट से भी किसानों की रक्षा कर सकती थी और ख़ुद भी लगान में इतनी कमी कर सकती थी, जिससे इन ग़रीबों के पास कम से कम इतना तो बच जाता जिससे वे अपने पेट भर सकते और तन ढँक सकते। खेती के अतिरिक्त पशु-पालन, दूध-घी का व्यवसाय, पक्षियों का व्यवसाय, फल उत्पन्न करना आदि और भी कितने ही ऐसे काम हैं, जिनका भूमि से सम्बन्ध है और जिनमें विशेष लाभ रहता है। यदि सरकार गाँव वालों को इन व्यवसायों की तरफ़ प्रोत्साहित करती और आवश्यक सहायता भी देती, तो उनका सङ्कट किसी अंश में टल सकता था।

सरकार ने इस देश की कृषि की उन्नति के लिए एक कृषि-विभाग स्थापित किया है। साल में कई लाख रुपए इसके लिए ख़र्च भी कर देती है। आधुनिक वैज्ञानिक ढङ्ग की खेती की ओर इस देश में किसानों का ध्यान आकर्षित करने के लिए कभी-कभी कृषि-प्रदर्शनियों का भी आयोजन हो जाता है। परन्तु इस कोरे उपदेश से इस देश के ग़रीब किसानों का विशेष उपकार नहीं होता। क्योंकि जो बीज के लिए असाधारण ब्याज देकर महाजनों से रुपए उधार लेते हैं, वे मूल्यवान वैज्ञानिक हल और खाद का प्रबन्ध कैसे कर सकते हैं? इस देश के किसानों को तो ऐसे सरकारी कृषि-विभाग की आवश्यकता है, जो उन्हें नाम मात्र के ब्याज पर रुपए उधार दे, स्वल्प भाड़े पर वैज्ञानिक हल प्रदान करे और खाद आदि के सम्बन्ध में आवश्यक उपदेश प्रदान किया करे। परन्तु सदैव आर्थिक कमी का रोना रोने वाली और हर साल कर पर कर लादते जाने वाली सरकार से ऐसी आशा करना, केवल विडम्बना है।

फलतः सरकारी कृषि-विभाग किसानों के आँसू पोंछने के एक व्यर्थ प्रयास के सिवा और कुछ नहीं है।

कारख़ानों के मज़दूर

यद्यपि भारतवर्ष इङ्गलैण्ड, जर्मनी और जापान आदि व्यवसाय-प्रधान देशों के मुक़ाबले में उद्योग-धन्धे की दृष्टि से बहुत पिछड़ा हुआ है तो भी यहाँ के कारख़ानों, कोयले तथा धातुओं की खानों, चाय के बग़ीचों, रेलवे, बन्दरगाहों आदि में क़रीब दो-डेढ़ करोड़ मज़दूर काम करते हैं। वर्तमान आर्थिक दुरवस्था का प्रभाव इन तमाम मज़दूरों पर बहुत बुरा पड़ा है और उनकी आमदनी पूर्वापेक्षा बहुत घट गई है। आजकल ऐसे कारख़ानों की संख्या बहुत कम है; जिन्होंने अपने मज़दूरों की संख्या अथवा काम करने के घण्टे कम नहीं किए हैं। बम्बई की कपड़े की मिलों में सन् १९२६ में जहाँ १ लाख ४८ हज़ार आदमी काम करते थे, सन् १९३० में उनकी संख्या केवल १ लाख १८ हज़ार रह गई। इसी प्रकार जमशेदपुर के लोहे के कारख़ाने में सन् १९२६ में जहाँ ३२॥ हज़ार मज़दूर काम करते थे, वहाँ १९३० में उनकी संख्या केवल २८॥ हज़ार रह गई। यही दशा अन्य व्यवसायों की भी हुई है। रेलवे वर्कशॉपों में पाँच-छः वर्ष के भीतर मज़दूरों की संख्या लगभग दो तिहाई रह गई है। पर दो-चार स्थानों के मज़दूरों को छोड़ कर इस देश के किसानों की भाँति यहाँ के मज़दूर भी अशिक्षित और सङ्गठनशक्ति-विहीन हैं और बेकारी के कष्टों को चुपचाप सहन करने के सिवा उनको कोई अन्य मार्ग दिखलाई नहीं देता। यदि कहीं उनकी एकाध संस्था स्थापित भी हुई है, तो वह प्रायः आरम्भिक दशा में है और मालिकों के विरोध के कारण उसका अस्तित्व भी अधिक दिनों तक स्थिर रह सकना कठिन होता है। दूसरा कारण यह है कि गाँवों से सम्बन्ध-विच्छेद न करने तथा संयुक्त कुटुम्ब-प्रथा के कारण बेकार रहने वाले कितने ही लोगों को किसी प्रकार खाने को मिल जाता है और बाहरी लोग उनकी दुर्दशा को अनुभव नहीं कर सकते।

मज़दूरों की बेकारी के दो प्रधान कारण हैं। एक बिक्री के घट जाने अथवा विदेशी माल की आमदनी के बढ़ जाने से स्थानीय व्यापार का मन्दा पड़ जाना और दूसरे मैशीनों तथा कारख़ानों के प्रबन्ध में इस प्रकार उन्नति होना, जिससे नियत कार्य पहले की अपेक्षा अल्पसंख्यक मज़दूरों द्वारा कराया जा सके। इनमें से पहली अवस्था तो अस्थायी है और सोने के थोड़े से लोगों के पास इकट्ठे हो जाने, विभिन्न देशों के सिक्के की दर गिर जाने तथा एक देश में दूसरे देशों के माल पर अत्यधिक कर लगाए जाने के फल-स्वरूप उसका जन्म हुआ है। जब पारस्परिक समझौते अथवा अन्तर्राष्ट्रीय विग्रह द्वारा ये कारण दूर हो जाएँगे, तो इस अवस्था में भी परिवर्तन हो जायगा। पर दूसरा कारण, अर्थात् मैशीनों और प्रबन्ध में सुधार तथा परिवर्तन होना एक स्थायी बात है, और इसके कारण जो बेकारी उत्पन्न होती है, वह तब तक दूर नहीं हो सकती जब तक मज़दूरों से वर्तमान समय की भाँति यथाशक्ति अधिक काम कराके थोड़ी मज़दूरी दी जाती है। यह समस्या केवल भारत से ही सम्बन्ध नहीं रखती, वरन् संसार के सभी अर्थशास्त्री, राजनीतिज्ञ तथा व्यवसायी इस पर विचार कर रहे हैं और सभी अन्त में इसी निर्णय पर पहुँचे हैं कि यदि बेकारी को मिटा कर संसार में वास्तविक शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित करना है तो इसका एकमात्र उपाय मज़दूरों के वेतन को बिना घटाए उनसे वर्तमान समय की अपेक्षा कम काम कराना है। हाल में जेनेवा के इण्टर नेशनल लेबर ऑफ़िस ने, जो 'लीग ऑफ़ नेशन्स' का एक अङ्ग है और जिसकी कॉन्फ्रेन्सों में संसार के सभी देशों के सरकारी प्रतिनिधि भाग लेते हैं, एक रिपोर्ट प्रकाशित की थी; जिसमें स्पष्ट कहा गया था कि जब तक मज़दूरों से काम कराने के घण्टों को घटा कर प्रति सप्ताह ४० या ३६ न कर दिया जायगा अर्थात् जब तक उनसे ९-१० घण्टे के बजाय ६-७ घण्टे प्रतिदिन काम न लिया जायगा, तब तक इस समस्या के हल हो सकने की कोई आशा नहीं है। कुछ दिन पहले ब्रिटिश ट्रेड-यूनियन ने भी एक प्रस्ताव पास किया था, जिसमें समस्त देशों की सरकारों से मिल कर ४० घण्टे का सप्ताह जारी करने का आग्रह किया गया था, ताकि आर्थिक जगत में फिर से शान्ति स्थापित हो सके। इटली के प्रतिनिधि सीन्योर मिचेलिस ने इण्टर-नेशनल ऑफ़िस को एक पत्र में सूचना दी थी कि

बेकार मज़दूरों को फिर से काम में लगाने के लिए यह आवश्यक है कि अन्तर्राष्ट्रीय समझौते द्वारा काम करने के घण्टों को घटा कर नियमित कर दिया जाय और जहाँ तक सम्भव हो, इस विषय में सब देश एक ही नियम के अनुसार आचरण करें।" फ्रान्स, जर्मनी, अमेरिका, ऑस्ट्रिया, ज़ैकोस्लोवैकिया और बेलजियम की सरकारें भी इस प्रश्न पर विचार कर चुकी हैं और प्रायः सब इससे सहानुभूति रखती हैं। पर तो भी इस आशङ्का के कारण कि यदि कुछ देश काम करने के घण्टों में कमी कर दें और कुछ पूर्ववत् आचरण करते रहें, तो इससे उनमें घोर असमानता उत्पन्न हो जायगी और वे बाज़ार में एक दूसरे की प्रतिद्वन्दिता न कर सकेंगे, कोई देश इस विषय में उस समय तक क़दम बढ़ाने को राज़ी नहीं होता, जब तक इस आशय के किसी समझौते पर समस्त राष्ट्र सहमत नहीं हो जाते।

यद्यपि अभी तक भारत के कारख़ानों के प्रबन्ध में बहुत कम उन्नति हुई है और मैशीनें भी अधिकांश में पुराने ढङ्ग की ही चल रही हैं, तो भी उपर्युक्त नियम इस देश के श्रमजीवियों की हित की दृष्टि से बहुत लाभजनक है। इसके फल से यहाँ के कई लाख बेकार मज़दूरों को काम मिल जायगा और श्रमजीवियों को पशुओं की तरह रात-दिन पिसते रहने के बजाय मनुष्य-जीवन के सुख उपभोग करने का कुछ अवसर मिल सकेगा। आजकल इन लोगों को प्रायः १० घण्टे काम करना पड़ता है, जिससे उनको ज्ञान-प्राप्ति और मनोविनोद के लिए तो क्या, समुचित विश्राम करने और खाने-पीने के लिए भी यथेष्ट समय नहीं मिलता। यदि कारख़ानों के मालिक तथा पूँजीपति मैशीनों की उपयोगिता तथा उनकी कार्यकारिणी शक्ति के बढ़ने का लाभ अपने ही हिस्से में न रक्खें और श्रमजीवियों को भी उसमें से कुछ बाँट दें, तो इससे संसार का बड़ा उपकार हो सकता है। ऐसा होने से वर्तमान समय की सी विकट आर्थिक हलचल उत्पन्न होने की सम्भावना कम हो जायगी तथा मज़दूरों के कष्टों तथा असन्तोष में भी बहुत अन्तर पड़ जायगा।

पढ़े-लिखे लोग

सबसे अधिक कष्टमय बेकारी हमारे देश में साधारण स्थिति के पढ़े-लिखे लोगों की है। ये लोग न खेती कर सकते हैं, न मज़दूरी करने की उनको आदत है और न वे किसी तरह की कारीगरी जानते हैं। उनके लिए एकमात्र मार्ग सरकारी नौकरी, ऑफ़िसों की क्लर्की, हिसाब-किताब रखना, अथवा किसी व्यवसायी का एजेण्ट आदि बन कर जीवन-निर्वाह करना है। वर्तमान समय में, जबकि सब प्रकार के व्यवसायों में ख़र्च घटाने की चेष्टा की जा रही है और सरकार भी कितने ही विभागों को तोड़ कर तथा कितने ही विभागों को संयुक्त करके थोड़े नौकरों द्वारा काम चलाना चाहती है, इन लोगों की दुर्दशा अवर्णनीय हो गई है। मज़दूरों की तरह इनके लिए यह भी सम्भव नहीं कि चाहे जो काम करके दो-चार आने रोज़ कमा लें और उसीसे आधा पेट खाकर दिन काट लें। इनको सबसे पहले अपनी 'इज़्ज़त' का ख़्याल रहता है और कोई ऐसा काम, जिसे सर्वसाधारण 'छोटा' समझते हैं, ये नहीं कर सकते। पर इसमें इन विचारों का दोष बहुत कम है। इनको जीवन के आरम्भ से शिक्षा ही इस प्रकार की दी गई है कि वे बाबू कहला के १५-२० रुपए की नौकरी करना गौरवास्पद समझते हैं, पर मज़दूरी या शिल्पकला द्वारा २५-३० रुपए कमाना उनके लिए अपमान की बात है। हमारे देश में जो शिक्षा-प्रणाली आज से सौ-सवा सौ वर्ष पूर्व जारी की गई थी वही आज भी प्रचलित है। खेद है कि हमारे शासकों ने समय के परिवर्तन की गति पर ध्यान देकर उसके अनुसार शिक्षा-प्रणाली को बदलते रहने की कभी चेष्टा नहीं की। यद्यपि आजकल यूनीवर्सिटियों के एम० ए० और बी० ए० डिग्रीधारी तीस-चालीस रुपए की नौकरी के लिए एक ऑफ़िस से दूसरे ऑफ़िस में मारे-मारे फिरते हैं और कितने ही एल्-एल्० बी० अदालतों में दस रुपए महीना भी नहीं कमा सकते, तो भी अधिकारियों ने इस प्रकार की शिक्षा देने वाले कॉलेजों को बदस्तूर क़ायम रक्खा है और प्रति वर्ष ऐसे उपाधिधारियों की एक नई सेना तैयार कर दी जाती है। यदि इस देश की यूनीवर्सिटियाँ कुछ वर्षों के लिए साहित्य और क़ानून की परीक्षाओं को बन्द करके विद्यार्थियों को ऐसे विषयों की शिक्षा देने लगतीं, जिनसे उनको रोटी कमा सकने में सुविधा होती तो इससे देश का बहुत-कुछ उपकार हो सकता।

सरकार का कर्तव्य

यह कहना अनावश्यक है कि इस प्रकार की देश-व्यापी समस्या का हल कर सकना किसी व्यक्ति विशेष अथवा किसी सार्वजनिक संस्था का कार्य नहीं है, वरन् उसका भार सरकार पर है। यदि किसी देश के बहु-संख्यक लोग भूखों मरते हैं और नङ्गे फिरते हैं तो इसका उत्तरदायित्व उस देश के शासनकर्ताओं पर ही समझा जाता है। यदि सरकार को सचमुच क़ानून और शान्ति की रक्षा की चिन्ता है तो उसे सबसे पहले इस बेकारी के ख़तरे का मुक़ाबला करना चाहिए। किसी भी देश के क़ानून और शान्ति की रक्षा के लिए इससे बढ़ कर भयानक बात दूसरी नहीं हो सकती कि वहाँ के लाखों पढ़े-लिखे अथवा काम कर सकने योग्य व्यक्ति बेकार फिरते रहें और कोई उनको जीवन-निर्वाह का साधन प्राप्त कराने की चेष्टा न करें। ऐसे देश के भविष्य के उज्ज्वल हो सकने की आशा रखना व्यर्थ है और न ऐसे राष्ट्र के निवासी कभी सच्चे सुख और सन्तोष का अनुभव कर सकते हैं। इसलिए यदि सरकार वास्तव में अपना और जनता का कल्याण चाहती है तो उसको अशान्ति और असन्तोष के मूल पर ही कुठाराघात करना चाहिए और यह तभी हो सकता है जब उद्योग-धन्धों की वृद्धि, व्यवसाय के संरक्षण और शिक्षा-प्रणाली के सुधार द्वारा देश में सर्वत्र फैली हुई बेकारी का प्रतिकार किया जाय।

❀ ❀ ❀

चीन-जापान सङ्घर्ष

जापान के सम्बन्ध में भारतीय पाठकों का ज्ञान बहुत अल्प और अधूरा है। एक समय था जबकि वे जापान को एशिया के उद्धारक की दृष्टि से देखते थे। विशेषतः जब जापान ने विशालकाय रूस को रण-क्षेत्र में पछाड़ दिया तब से उसका सिक्का भारत-वासियों पर अच्छी तरह जम गया और वे उसे आदर्श की भाँति मानने लगे। तभी से उन्होंने जापान को अपना सहधर्मी और आत्मीय बतलाना भी आरम्भ किया और प्रत्येक बात में जापान का पक्ष ग्रहण करना तथा उसका अनुकरण करना प्रशंसनीय समझा जाने लगा। जापान की सफलता तथा उन्नति पर भारतवासी गर्व करते थे और स्वदेशी के अभाव में जापानी वस्तुओं के उपयोग पर विशेष रूप से ज़ोर दिया जाता था। कितने ही लोग तो जापानी माल को अर्द्ध-स्वदेशी तक मानते थे।

परन्तु देखते-देखते ज़माना बदल गया। जो जापान एशिया के निर्बल देशों का उद्धारक तथा रक्षक समझा जाता था, वह साम्राज्यवाद की नीति का अनुयायी बन कर अपने पड़ोसियों को पराधीन बनाने का उद्योग करने लगा। आरम्भ में उसने कोरिया पर हाथ साफ़ किया। वहाँ के निरीह अधिवासियों पर घोर अत्याचार किए गए और उनको सब प्रकार से दुर्दशाग्रस्त कर दिया गया। उन्होंने स्वाधीन होने अथवा शासन-सुधार की जो चेष्टाएँ कीं उनको पाशविक बल द्वारा कुचल डाला गया। कोरिया के पश्चात् जापान ने चीन के मन्चूरिया प्रान्त पर अपना पञ्जा फैलाया। यद्यपि मन्चूरिया की समस्या ने दो-एक वर्ष से ही विकट रूप धारण किया है, पर वहाँ जापानी सत्ता का बीज रूस-जापान-युद्ध के पश्चात् सन् १९०६ से ही बो दिया गया था। दरअसल रूस-जापान संग्राम का एक प्रधान कारण मन्चूरिया के प्रभुत्व का प्रश्न भी था। उससे पूर्व उस प्रदेश पर रूस का प्रभाव था, वहाँ पर रूस वालों ने चीन की सरकार से कितने ही विशेषाधिकार प्राप्त कर लिए थे और ६९० मील लम्बी एक रेलवे लाइन भी बनाई थी, जिसका उद्देश्य युद्ध-काल में जापान की तरफ़ जल्दी से सेना भेजना था। रूस की पराजय के फल-स्वरूप इस रेलवे लाइन पर जापान का अधिकार हो गया और मन्चूरिया में रूस को जो विशेषाधिकार प्राप्त थे वे भी उसको मिल गए। जैसे ही यह रेलवे लाइन जापान के अधिकार में आई और उसे उस प्रदेश में पैर जमाने का अवसर मिला वैसे ही वहाँ की परिस्थिति बदलने लगी और दस-पन्द्रह वर्ष के भीतर ही उसकी कायापलट हो गई। जो रेलवे लाइन रूस ने केवल युद्ध के प्रयोजन से बनाई थी और जिसमें एक कौड़ी के लाभ की भी आशा न थी, वह व्यवसायशील जापानियों के अधिकार में आकर कामधेनु बन गई। जापान ने रेल के आसपास के जङ्गली और उजाड़ प्रदेश को मन्चूरिया के व्यापार-व्यवसाय तथा सभ्यता

का केन्द्र बना दिया। वह इस रेल से केवल मुसाफ़िरों और माल को भेजने का ही काम नहीं करता, वरन् इसके द्वारा उसने मन्चूरिया के सार्वजनिक जीवन के प्रत्येक विभाग में प्रवेश कर लिया है और वहाँ पर अपनी जड़ ख़ूब मज़बूती के साथ जमा ली है। रेल के आसपास पचीस नए नगर बसाए गए हैं और तमाम शहरों में सड़कों, पुलों, रोशनी, पार्क और नालियों का आधुनिक ढङ्ग से प्रबन्ध किया गया है। रेलवे के भूतत्त्व-विभाग ने मन्चूरिया में लोहे और कोयले की खानों का पता लगाया है और रेलवे की प्रयोगशाला ने वहाँ पर कितने ही व्यवसायों की नींव डाली है। जापानियों ने वहाँ पर १६० स्कूल और कॉलेज स्थापित किए हैं, जिनमें क़रीब ३० हज़ार विद्यार्थी शिक्षा पाते हैं। इन सब उपायों से जापान का प्रभाव उस प्रदेश में बहुत अच्छी तरह जम गया और उसके कितने ही सहायक भी उत्पन्न हो गए। इसके अतिरिक्त प्रति वर्ष हज़ारों जापानी वहाँ जाकर बसाए जाने लगे, जिनको जापान-सरकार की तरफ़ से सब प्रकार के सुभीते दिए गए।

जब जापान ने समझ लिया कि अब उसकी स्थिति काफ़ी मज़बूत हो गई है, तो उसने मन्चूरिया में प्रत्यक्ष रूप से अपनी शासन-सत्ता जमाने की चालें चलनी आरम्भ कीं। १८ सितम्बर १९३१ की रात को रेलवे की सीमा में रहने वाले जापानी सिपाहियों ने मुकदन (मन्चूरिया की राजधानी) में रहने वाली चीनी सेना पर अकस्मात् आक्रमण किया और दो-तीन सप्ताह के भीतर उसे उस प्रदेश की सीमा के बाहर खदेड़ दिया। इसके पश्चात् वे अन्य नगरों में स्थित सेना को निकालने लगे और १९३२ के फ़रवरी तक सम्पूर्ण मन्चूरिया जापानियों के अधिकार में आ गया। बाहरी दुनिया को दिखलाने के लिए उन्होंने प्रत्येक प्रान्त में मन्चूरिया ही के किसी सरदार या सेनापति को शासक बना दिया, जो बिना जापानी अधिकारियों की अनुमति के अँगुली भी नहीं हिला सकता था। ९ मार्च १९३२ को मुकदन में समस्त प्रान्तों की प्रतिनिधि-स्वरूप एक केन्द्रीय सरकार की स्थापना की गई और चीन के भूतपूर्व पद-च्युत सम्राट हेनरी पूयी को, जो गद्दी से उतारे जाने के बाद से जापानियों की संरक्षकता में रहता था, उसका अधिपति नियत किया गया। इस नवीन शासन के प्रत्येक विभाग के प्रधान सञ्चालक जापानी नियत किए गए और उन्हीं के द्वारा नियत एक बोर्ड अथवा मन्त्रि-मण्डल इसकी नीति तथा कार्य-प्रणाली का निर्देश करने लगा। नई सरकार ने जापान की सरकार के साथ एक सन्धि की, जिससे मन्चूरिया व्यवहारिक दृष्टि से जापानियों का एक प्रदेश मात्र बन गया।

जापानियों ने चीन की मुकदन-स्थित मुख्य सेना को तो पहले ही हल्ले में चीन की बड़ी दीवार के पार भगा दिया था, पर प्रान्तीय सेनाओं को देश से बाहर निकाल सकना इतना सहज न था। इन स्थानों में रेल तथा सड़कों का अभाव था और सेना के आवागमन में कठिनाई होती थी। चीनी सेनाएँ जापानी सेनाओं का खुले मैदान मुक़ाबला कर सकने में असमर्थ होने के कारण तितर-बितर हो गईं और छोटे-छोटे दलों में बँट कर गुप्त रूप से शत्रु का मुक़ाबला करने लगीं। इसके अतिरिक्त वहाँ कितने ही शक्ति-शाली लुटेरों के दल पहले से मौजूद थे। इन दोनों से जापानियों की आकांक्षाओं में बाधा पड़ने लगी तथा उनको दबाने में बहुत अधिक कठिनाई पड़ने लगी।

जापान के इस अन्याय तथा अपहरण-नीति के विरुद्ध चीन ने 'लीग ऑफ़ नेशन्स' के सामने फ़रियाद की। 'लीग ऑफ़ नेशन्स' के नियमों तथा 'कीलॉग पेक्ट' आदि अन्य अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों के अनुसार जापान का यह कार्य संसार की शान्ति भङ्ग करने वाला था और एक सदस्य की हैसियत से जापान इस विषय में लीग का निर्णय मानने को बाध्य था। पर जब यह प्रश्न लीग की एसेम्बली के सम्मुख पेश हुआ, तो उसके सदस्य बड़ी दुविधा में पड़ गए। क्योंकि एक ओर तो लीग का एक मुख्य सदस्य ऐसा कार्य कर रहा था, जिससे लीग के उद्देश्यों पर हरताल फिरती थी, और दूसरी ओर एक प्रथम श्रेणी के शक्तिशाली राष्ट्र से झगड़ा मोल लेने का भय था। इसके अतिरिक्त लीग के प्रधान सदस्य-राष्ट्र स्वयं ऐसी नीति के अनुयायी थे और चीन के दबे रहने में उनका भी स्वार्थ था। ऐसी दशा में जो होना था, वही हुआ और लीग दोनों राष्ट्रों में समझौता कराने की ऊपरी चेष्टा के सिवा कुछ न कर सकी। इस बीच में ज्यों-ज्यों समय गुज़रता जाता था, जापान मन्चूरिया में

अपनी ताक़त बढ़ाता जाता था और वहाँ के निवासियों में से अपने सहायक बनाता जाता था। इसके विरुद्ध चीन संसार के सामने न्याय की दुहाई दे रहा था। अन्त में कई अधिवेशनों में वादविवाद होने के पश्चात् इस मामले की जाँच के लिए एक कमीशन नियत किया गया। पर इस कमीशन के प्रस्ताव को स्वीकार करते समय जापान ने एक पख यह लगा दी कि इस कमीशन की जाँच के कार्य-काल में डाकुओं और अन्य विद्रोहियों के आक्रमण से मञ्चूरिया-प्रवासी जापानियों के जान और माल की रक्षा के लिए जापान को सैनिक कार्यवाही करने का अधिकार रहेगा। इस विशेषाधिकार की आड़ में जापान को चीनी सेनाओं को, जो इस समय सङ्गठन-हीन होकर स्वतन्त्र रूप से देश की स्वतन्त्रता की रक्षा की चेष्टा कर रही थीं, दबाने का पूर्ण सुयोग मिल गया।

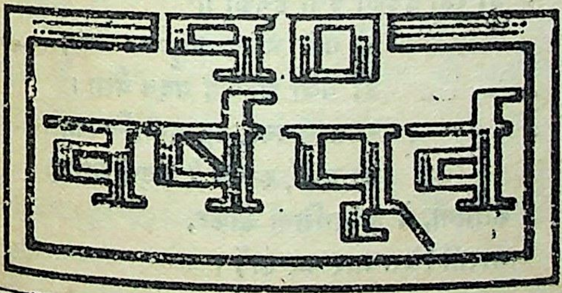
लीग द्वारा नियत लिटन कमीशन ने मौक़े पर जाकर परिस्थिति का अध्ययन किया और उसके सदस्य इस निर्णय पर पहुँचे कि इस घटना में ज़बर्दस्ती जापान की तरफ़ से ही की गई है और न्याय की रक्षा तभी हो सकती है, जब कि वह मञ्चूरिया का शासन-भार पूर्णतया चीन-सरकार को सौंप कर अलग हो जाय। पर जापानी राजनीतिज्ञ ऐसी रिपोर्टों की कब परवाह करने वाले थे। उन्होंने मञ्चूरिया को छोड़ने के बजाय लीग की मेम्बरी से ही स्तीफ़ा देने की धमकी दी।

२१ नवम्बर, १९३२ को लीग की कौन्सिल का अधिवेशन हुआ, जिसमें जापान और चीन दोनों के प्रतिनिधि मौजूद थे। वहाँ पर उन दोनों ने अपने पक्ष-समर्थन में जो बयान दिए उससे एक निष्पक्ष व्यक्ति इसी निर्णय पर पहुँच सकता है कि जापान चीन को निर्बल देख कर अपनी शक्ति का दुरुपयोग कर रहा है। जापानी प्रतिनिधि मत्सुका के कथन का सारांश यह था कि जापान ने गत वर्ष जो कार्यवाही की है, उसका आधार आत्म-रक्षा था। चीन में जो जापानी माल के बॉयकॉट का आन्दोलन चल रहा है, उससे जापान को बहुत हानि पहुँची है। चीन में कम्यूनिज़्म और लुटेरों के कारण जैसी अव्यवस्था हो रही है; वह जापान तथा संसार के लिए बड़े भय का कारण है। जापान ने किसी सन्धि को नहीं तोड़ा है, क्योंकि मि० कीलॉग के सिद्धान्तानुसार "आत्म-रक्षा का अधिकार प्रत्येक स्वतन्त्र राष्ट्र को प्राप्त है और उसे प्रत्येक सन्धि-पत्र में समाविष्ट मान लेना चाहिए।" अमेरिका की शासन-सभा के एक प्रस्ताव में यह भी कहा गया है कि "आत्म-रक्षा के अधिकार का उपयोग अपने राष्ट्र की सीमाओं के बाहर भी किया जा सकता है और प्रायः किया जाता है।" इस सिद्धान्त को दृष्टि-गोचर रखते हुए जापान को दोषी ठहराना अन्याय है। उसने जो कुछ किया है, आत्म-रक्षार्थ किया है। कितने ही वर्षों से चीन की अवस्था संसार के लिए भयजनक हो रही है और जापान सुदूर पूर्व की स्थिति को दृढ़ तथा सुरक्षित बनाने की चेष्टा करता आया है।

जापानी प्रतिनिधि के बयान का खण्डन करते हुए चीन की तरफ़ से वेलिङ्गटन कू ने बतलाया कि यदि चीन की दशा वैसी ही अव्यवस्थापूर्ण होती, जैसा कि कहा जाता है, तो उसे एक राष्ट्र की हैसियत से लीग का सदस्य न बनाया जाता। अन्य राष्ट्रों के साथ उसका व्यापार बराबर बढ़ता जाता है और दूसरे देशों के साथ उसने जो सन्धियाँ की हैं, उनका वह सन्तोषजनक रीति से पालन कर रहा है। मञ्चूरिया और शङ्घाई पर आक्रमण करने से जापान का उद्देश्य यही है कि वह धीरे-धीरे समस्त चीन पर अधिकार कर ले। चीन का बॉयकॉट आन्दोलन आत्म-रक्षा का साधन है और उसका जन्म बाहरी कारणों से हुआ है। गत २५ वर्षों में नौ बार जापानी माल के बॉयकॉट का आन्दोलन उत्पन्न हो चुका है और उसका कारण चीन के स्वत्वों पर जापान का आक्रमण करना ही है। अन्यथा चीन किसी विदेशी जाति से द्वेष नहीं करता। इस समय चीन में ८२०० विदेशी व्यापारिक कार्यालय हैं, जो स्वतन्त्रतापूर्वक व्यवसाय कर रहे हैं। यदि लीग इस समस्या के हल करने में देर लगाएगी तो उसके फल से रक्तपात की वृद्धि होगी और मञ्चूरिया में निवास करने वाले तीन करोड़ चीनियों को अपार कष्ट भोगने पड़ेंगे।

उपर्युक्त बयानों से स्पष्ट प्रकट होता है कि जापान निश्चयात्मक रूप से पश्चिमी साम्राज्यवादी देशों का पथानुसरण कर रहा है और उन्हीं के सिद्धान्तों तथा उद्गारों को अपना आदर्श वाक्य (Motto) मानता है। जिस अपहरण-नीति का उपयोग आज तक यूरोपियन राष्ट्र अफ़्रिका और एशिया के देशों में करते आ

हैं, उसी का प्रयोग आज जापान, जिसे कितने ही लोग 'पूर्व दिशा का जर्मनी' के नाम से पुकारते हैं, अपने पड़ोसियों पर कर रहा है। यूरोपियन कूटनीतिज्ञों की तरह ही वह भी अपनी स्वार्थपरता को परोपकार और संसार के कल्याण के आवरण से ढँकने की चेष्टा करता है। कुछ भी हो, बेचारे चीन को अपनी निर्बलता का फल भोगना ही पड़ेगा। वह न्याय और अपने स्वत्वों की चाहे कितनी भी दुहाई क्यों न दे और अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय का दरवाज़ा कितने ही ज़ोर से क्यों न खटखटाए, सबल के मुक़ाबले में उस निर्बल की सहायता कोई न करेगा। निन्दा का प्रस्ताव पास कर देना एक बात है और अन्याय-पीड़ित की रक्षा के लिए अपना ख़ून बहाना दूसरी। जब तक चीन जीवनी-शक्ति-रहित होकर निश्चेष्ट अवस्था में पड़ा है, तब तक लालची गृद्धों की आँखें उस पर लगी ही रहेंगी। मन्चूरिया की घटना स्पष्ट बतला रही है कि चाहे कितने भी अन्तर्राष्ट्रीय सङ्घ क़ायम हो जायँ और कितनी भी निःशस्त्रीकरण कॉन्फ़्रेन्सें की जायँ, संसार में अभी तक पशुबल की ही प्रधानता है और सम्भवतः ऐसी ही स्थिति बहुत समय तक बनी रहेगी।



चाँद—अप्रैल, १९३३

विधवाओं के कार्य

[श्रीमती पद्माबाई सखोवराव, एम० ए०]

सम्पादक महोदय ने इस बात की इच्छा प्रगट की है कि मैं एक छोटा सा लेख 'चाँद' के विशेषाङ्क के लिए लिखूँ। मैं पहिले तो भारतवर्ष की अभागी विधवाओं के लिए एक विशेष अङ्क निकालने की वजह ही नहीं समझ सकती, क्योंकि मैं ऐसा अनुभव करती हूँ कि जितना कम ज़ोर उनके विधवा होने पर, और जितना कम ध्यान उनकी विशेष अवस्थाओं पर दिया जायगा, उतना ही अधिक, मुझे आशा है कि वे अपने जीवन की तरफ़ हर्षपूर्ण भाव रक्खेंगी और वास्तव में मैं इसी बात को बार-बार अनेक प्रकार से दुहराऊँगी।

मैं इस बात में विश्वास करती हूँ कि वैधव्य का प्रश्न किसी अनिपुण चेष्टा से, जीवन की वाह्य दशा को परिवर्तन करने के लिए, सन्तोषजनक रीति से हल नहीं हो सकता। पहिले इसके कि भारतवर्ष की विधवाओं की दशा की भौतिक उन्नति की जा सके, दो परिवर्तन अत्यन्त आवश्यक हैं।

पहले विधवाओं के प्रति एक मौलिक परिवर्तन की आवश्यकता है। सबसे पहले विधवाओं के प्रति, समाज की दृष्टि में एक मौलिक परिवर्तन होना चाहिए। उसे गृहस्थी का निकृष्ट काम करने वाली दीन-वृत्ति, असहाय, पराश्रिता और अधिक भाग्यशाली कुटुम्बीजनों के दीन-वत्सलता और अनुकम्पा का पात्र न समझना चाहिए।

प्राचीन भारतीय भाव यह था कि वह वैधव्य को, सामाजिक और कुटुम्ब सम्बन्धी शृङ्खलाओं से मुक्त होकर, समाज-सेवा द्वारा जीवन को पवित्र करने का चिह्न समझते थे; किन्तु आजकल अनात्मवादी प्रभावों के कारण यह विचार बदल गया है और लोग विधवाओं को घृणायुक्त असहायता की दृष्टि से देखते हैं। बजाय इसके कि विधवाएँ सांसारिक बन्धनों से निवृत्ति का अनुभव करें, वह आर्थिक और सामाजिक भार विशेष रूप से अनुभव करने लगती हैं। इस बात की अत्यन्त आवश्यकता है कि प्राचीन हिन्दू-भाव, आधुनिक आवश्यकताओं को देखते हुए, फिर से जीवित किया जाय और यह उपर्युक्त परिवर्तन, सिर्फ़ तभी सम्भव है, जब समाज, विधवा के जीवन को समाज-सेवा के लिए ही अर्पित समझे और वैधव्य को एक महान विरक्ति न ख़याल करे। बल्कि यह समझे कि परमात्मा की ओर से यह आज्ञा है कि जीवन के व्यक्तिगत सुखों का त्याग कर दिया जाय और उसे दूसरों के हित में लगाया जाय।

जब तक यह न होगा, तब तक विधवाएँ अपने जीवन में सुख का अनुभव न कर सकेंगी।

आजकल साधारण स्त्री वैधव्य को अत्यन्त दुःखपूर्ण स्थिति, केवल इसलिए समझती है कि इस स्थिति में पड़ कर वह आर्थिक रूप से बिलकुल पराश्रित हो जाती है और जीवन के सब सुखों से उसे ज़बरदस्ती दूर रहने पर मजबूर होना पड़ता है। हम यह भूल जाते हैं कि त्याग का महत्व और सौन्दर्य उसी समय तक है, जब तक कि स्वतन्त्रतापूर्वक किया गया हो। जिस समय कि किसी वाह्य कारणों से त्याग कराया जाता है, तो वह त्याग नहीं रहता, बल्कि अत्याचार हो जाता है। समाज-सुधारकों का विशेष कार्य तो इसी अत्याचार का नाश करना रहा है। किन्तु अभी तक यह कार्य केवल निषेधात्मक ही रहा। हम वैधव्य के प्रश्न का वास्तविक हल उस समय तक न कर सकेंगे, जब तक कि हम विधवाओं को कोई ऐसा काम न दें कि जिससे वह अपना वैधव्य काट सकें, और समाज में ऐसा स्थान दें कि लोग उनकी वास्तविक इज़्ज़त करने लगें।

यह स्पष्ट होता जाता है कि इस सम्बन्ध में रचनात्मक काम करने के लिए एक ऐसी श्रेणी के आदमियों की आवश्यकता है, जिनमें औरों की अपेक्षा स्वार्थ या ख़ुदग़रज़ी नहीं पाई जाती। जिससे कि वह इसी काम में अपना सारा समय लगा सकें। यूरोपीय देशों में परोपकार का अधिकांश काम 'सिस्टर ऑफ़ मारसी' (Sister of mercy) करती हैं। डॉक्टर और नर्सों में भी अधिक संख्या अविवाहिता और विधवा स्त्रियों की होती है। हिन्दुस्तान में इस क़िस्म के काम के लिए बहुत विस्तृत क्षेत्र पाया जाता है। हमें बालिकाओं की शिक्षा के लिए, अध्यापिकाओं की एक बहुत बड़ी संख्या की ज़रूरत है। हमें स्त्री डॉक्टर और स्त्री-वकीलों की ज़रूरत है, जो स्त्रियों की आवश्यकताओं की पूर्ति करें। हमें स्त्री म्युनिसिपिल कमिश्नरों की ज़रूरत है, जो नगर को उतना ही साफ़ और सुथरा रक्खें जितना अपना घर, और जो सार्वजनिक जीवन में शुद्धता और शिष्टता पैदा करें, जो इस समय नहीं पाई जाती। कई और प्रकार के ऐसे क्षेत्र हैं, जहाँ विधवा की सहायता से हमारा जीवन अधिक सुन्दर और गौरवान्वित हो सकता है। हमें भारत के लिए विधवाओं से ही आशा रखनी चाहिए। हमारा मत है कि विधवाओं की अनुपम परोपकार-वृत्ति को जनता के हित के लिए काम में लाना चाहिए और स्वार्थपूर्ण व्यक्तिगत हितों के लिए उनसे कदापि बेजा फ़ायदा न उठाना चाहिए।

* * *

विधवाएँ

[श्री० अनूप शर्मा, बी० ए०]

थी बदी भाग्यहीन भारत की,
इस तरह हाय ! दुर्गती होना।
इन दुराचार के प्रभावों से,
श्रेय था अग्नि में सती होना॥

देश की ये असंख्य विधवाएँ,
बालिकाएँ विदीर्ण-हृदया सी।
रो रहीं फूट-फूट कर दिल में,
कुप्रथा की वृथा बनी दासी॥

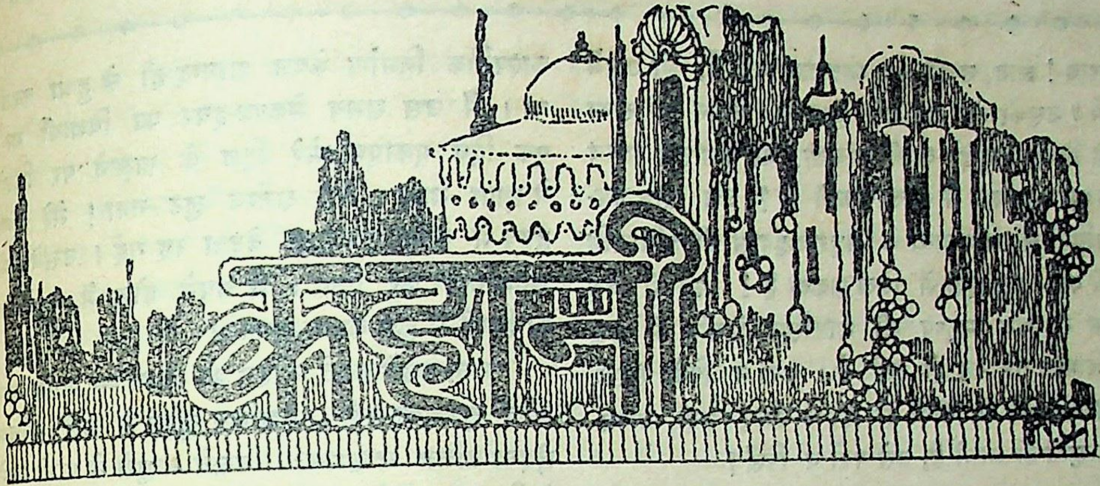
हाय ! इनके जले कलेजे से,
पूछिए तो भला कथा इनकी।
कौन सहृदय सदय न कह देगा,
'हो रही दुर्दशा वृथा इनकी॥'

हो गया भाग्य सङ्कुचित जैसा,
हो चला क्षीण है बदन वैसा।
सास सधवा, बहू बनी विधवा,
हो जहाँ, स्वाँग है सदन कैसा?

कामिनी, ये अस्वामिनी होकर,
मारतीं चित्त मार कर ढाढ़ें।
भस्म सारा समाज हो जावे,
चित्त से आह ! आह ! जो काढ़ें॥

माँग है शून्य, स्वल्प इच्छा है,
लाख की चूड़ियाँ चहें दो ही।
देके छीना कठोरता द्वारा,
ईश लोभी हुआ महा द्रोही॥

जिनके हों भाव वे तहा डालें,
जिनके हो धैर्य वे ढहा डालें।
नेत्र को फोड़-फोड़ कर अपने,
जितने आँसू हों, वे बहा डालें॥



शराबी

[श्री० श्यामसुन्दर खत्री, बी० ए०]

"निर्दय उँगली अरी ठहर जा,
पल भर अनुकम्पा से भर जा;
यह मूर्छित मूर्छना आह सी
निकलेगी निस्सार।"

थोड़ी देर रुक कर माधुरी की स्वर-लहरी कमरे में एक बार फिर गूँज उठी और साथ ही सुरेश की चञ्चल उँगलियों ने भी वीणा को प्रकम्पित कर दिया। उसने शुरू किया ही था—

"छेड़-छेड़ कर मूक तन्त्र को × × ×"

कि इतने ही में किसी ने बाहर से भर्राई आवाज़ में गाया—

"क्या जानिए क्या ज़ेहर था उस शोख़ नज़र में।
एक आग सी भर दी है मेरे क़ल्बोजिगर में॥
अल्लाह री! शोख़ी यह तेरे तीरे-नज़र में।
आँखों से कभी दिल में, कभी दिल से जिगर में॥"

और इसके अन्तिम पद को दोहराता हुआ एक छरहरे बदन का, गोरा और नशे में चूर नवयुवक कमरे में आया। उसने अपनी लाल-लाल आँखों से एक बार चारों ओर देखा और फिर पास पड़े हुए एक कोच पर लुढ़क गया।

"क्यों मोहन, आज फिर?"—सुरेश की वाणी काँप उठी।

शराबी ने अपनी झपकती हुई आँखें प्रयास से उठाईं और पूछा—क्या?

"मैंने कहा, आज तुमने फिर शराब पी!"

"तो और क्या करता? आह प्यारी सुरा—नीरव थी न्यारी रजनी, प्याले पर प्याले ढाले।"

"क्यों कविता को भी अपने साथ दूषित करते हो?" सुरेश अपने मित्र की इस दशा को देख न सका और बोला—"कविता तुम्हारे जैसे पातकी पुरुषों द्वारा नहीं बनाई जानी चाहिए। न जाने क्यों परमात्मा ने तुम्हें व्यर्थ ही प्रतिभा दे दी है। अगर कविता करना चाहते हो तो उसके योग्य बनो।"

मोहन अब न सह सका। यथासम्भव सँभल कर बोला—तो क्या मैं शराब अपनी इच्छा से पीता हूँ?

"अच्छा, अब तुम शराब मत पिया करो।"—माधुरी ने करुणा-भरी वाणी में कहा।

अब मोहन बहुत कुछ सचेत हो चुका था; जैसा कि एक शराबी के लिए सम्भव है। उसने माधुरी से कहा—भाभी, तुम मेरे हृदय की व्यथा नहीं समझ सकतीं और न सुरेश ही समझ सकते हैं। क्या तुम लोग समझते हो कि मुझे सुरा-पान में सुख मिलता है और मैं उसे आनन्द के लिए पीता हूँ? नहीं, मैं केवल उन विगत स्मृतियों को अपने मस्तिष्क से निकाल बाहर करने के लिए शराब पीता हूँ। शराब,

शराब ! आह, उसमें वह मादकता कहाँ है, जो उसमें थी ? उसकी वह प्रेम-भरी मुस्कान, जीवन की सत्ता को विभोर कर देने वाली चपलता, वह क्या इस शराब के शुष्क उन्माद में मिल सकती है ? उस साम्राज्य-वादिनी सी आशामयी के मधुर अट्टहास की प्रतिध्वनि भी क्या इस सुरा में मिल सकती है ? फिर भी यह कम से कम मनुष्य की मानसिक स्थिति में कुछ परिवर्तन तो कर ही देती है। क्यों न पिऊँ सुरेश, जिसको पीने से, थोड़ी ही देर के लिए सही, आत्म-विस्मृति हो जाती है, उसे क्यों न पिऊँ ?

ग़म ग़लत करने को मैं पीता हूँ मै,
इससे बेहतर ग़मरुबा देखी न शै !

कुछ देर चुप रहने के बाद एकाएक मोहन की आँखें अङ्गारे सी प्रज्ज्वलित हो उठीं। उसमें अनायास ही बल का सञ्चार हो गया। व्यथा से तमतमाता हुआ चेहरा भर गया। फिर एकाएक आकृति कुछ कोमल हो उठी। आँखों से आँसू की दो बूँदें निकल कर ज़मीन पर टपक पड़ीं। पर उसका प्रलाप एकदम बन्द हो गया।

सुरेश अब अपने मित्र की ऐसी दशा न देख सका। उसने उठ कर मोहन की जलती हथेलियों को अपने हाथों में ले लिया और बोला—मोहन ! क्षमा करना मित्र, मैं नहीं जानता था कि तुम्हारे हृदय में कोई आँधी चल रही है, अन्यथा मैं इस तरह तुम्हारी भर्त्सना नहीं करता। परन्तु मुझे दुःख है कि आज तक तुमने मुझे अपनी मनोव्यथा की बात न सुनाई। मोहन, तुम्हारा अन्तरङ्ग मित्र होने के नाते क्या उसे जानने का मुझे अधिकार न था ? क्या वह ऐसी गुप्त बात थी, जो मुझसे भी नहीं कही जा सकती थी ? क्या उसके प्रतिकार का उपाय केवल सुरापान ही था, मैं कुछ नहीं कर सकता था ?

शराबी के मुख पर एक सूखी हँसी की क्षीण रेखा दिखलाई दी। उसने कहा—असम्भव है सुरेश, असम्भव। अब वह तुम्हारे या मेरे वश के बाहर की बात है। आह, एक दिन मैं तुमसे भी अधिक सुखी था। उस समय मेरे हृदय पर किसी का अधिकार नहीं था। उसमें हज़ारों आशाएँ और लाखों अभिलाषाएँ थीं। मेरे लिए संसार सोने का था और भविष्य का काल्पनिक निर्माण केवल आनन्द ही से हुआ करता था। मैं उस समय सेकण्ड-इयर का विद्यार्थी था। एक दिन एकाएक मेरे दिल के ख़ज़ाने पर किसी ने छापा मारा। मेरा सर्वस्व लुट गया ! मेरे शून्य हृदय में केवल एक मधुर वेदना रह गई। उसने मुझे आत्मविभोर कर दिया। मैं अपने होश में कहाँ था, जो किसी से कुछ कहता-सुनता।

इतना कहते-कहते मोहन का गला भर आया और आँखें छलछला उठीं। इसलिए सुरेश ने उसे अधिक छेड़ना उचित न समझा। उसने माधुरी से पानी लाने के लिए कहा और स्वयं मोहन के पास बैठ कर उसे सान्त्वना देने लगा।

मुँह-हाथ धोकर किञ्चित् सुस्थ होने पर मोहन ने कहा—अच्छा तो आज मैं तुम्हें अपने दर्दे-दिल का हाल सुनाता हूँ और बिना अनुमति की प्रतीक्षा किए ही कहने लगा—"तुम्हें याद होगा, मेस के जिस कमरे में मैं रहता था, उसके सामने एक बड़ा सा बाग़ था और ठीक उसके दूसरे सिरे पर एक प्रोफ़ेसर का मकान था। मेरी खिड़की के ठीक सामने ही उस मकान की भी एक खिड़की पड़ती थी, जो हमेशा बन्द रहती थी। जानते हो सुरेश, मुझे कविता और गाने का शौक़ है। एक दिन किताबों से ऊब कर मैंने गाना आरम्भ किया। एक गाने के बाद दूसरा और दूसरे के बाद तीसरा। एका-एक हवा के एक झोंके ने दूर देश से मस्त पियानो की एक मधुर ध्वनि को लाकर मेरे कमरे को गुञ्जित कर दिया। मैंने उठ कर देखा, सामने के मकान की खिड़की खुली हुई थी और एक सुन्दरी बालिका तन्मय होकर पियानो बजा रही थी, वह सुन्दरता की देवी थी। मानो प्रकृति स्वयं मूर्तिमान होकर अलाप रही हो।

बस, उसी दिन से प्रतिदिन मैं ठीक समय पर अपने कमरे की खिड़की खोल कर खड़ा हो जाता था, और वंशी की ध्वनि से मन्त्र-मुग्ध हिरण की भाँति उस स्वर्गीय सङ्गीत का आनन्द लिया करता। कभी अगर जी न मानता तो मैं भी उसके स्वर में स्वर मिला कर हारमोनियम बजाने लगता। इस तरह हम दोनों आपस में अपरिचित होते हुए भी परिचित हो जाते थे। वह मुझे परास्त कर देने के लिए न जाने कितने लय, स्वर और रागिनियों को बदला करती थी और मेरी

खिड़की की ओर देख कर कभी-कभी मुस्करा देती थी। पर मेरी उँगलियाँ उसकी चञ्चल आँखों का इशारा पा अनायास ही और चञ्चल हो जाती थीं। मेरा जीवन एक प्रकार की नई धारा में बहने लगा। अगर वह कभी गाती तो मैं उसी के स्वर में स्वर मिला कर बाजा बजाने लगता, कभी वंशी पर और कभी हारमोनियम पर। उसी तरह अगर मैं किसी दिन कुछ गुनगुनाने लगता तो वह अपना पियानो बजाना आरम्भ कर देती। उस समय उसकी चञ्चल उँगलियाँ इस सुन्दरता और तत्परता के साथ मेरा साथ देतीं, मानों मैं सदा से एक ही गाना गाता हूँ और वह अनन्त काल से उसी की गत बजाया करती है।

इस घटना को वर्षों बीत गए, फिर भी उसके सङ्गीत की स्वर-लहरी मेरे कानों में गूँज रही है। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें, उसका भोला चेहरा और उसकी मधुर मुस्कान आज भी मेरी आँखों में नाच रही है। मैं उसे भूलने की चेष्टा करता हूँ, पर भूल नहीं सकता। उसकी पूजा करने के लिए मेरी कल्पना आज भी हृदय-सुमन लिए उसके द्वार पर खड़ी है।

इतना होने पर भी संसार की दृष्टि में हम लोग अपरिचित थे।

२

धीरे-धीरे दिन बीतने लगा और उसके साथ जीवन की कुछ घड़ियाँ भी नित्य नए-नए आमोद-प्रमोदों में पलने लगीं। अब सुशीला मेरे लिए एक पहेली; एक मूक, पर मोहक सङ्गीत ही न रह गई। अब मैं उसके घर जा सकता था, उससे घण्टों बात कर सकता था, उसके साथ टहलने जा सकता था और उसके पियानो-बोर्ड पर सिर रख कर उसके मुख-सौन्दर्य की तुलना उसके सरस सङ्गीत के साथ कर सकता था। अब अनजाने में ही वह मेरा सर्वस्व हो चली थी। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें ही मेरे लिए स्वर्ग के द्वार थीं। उसकी एक चितवन मेरे लिए कुबेर की सम्पत्ति थी। वह मेरे हृदय-साम्राज्य की एकछत्र सम्राज्ञी थी और मैं उसके हाथों बिना मोल बिका हुआ, उसका ग़ुलाम था।

एक दिन मैंने पूछा—सुशीले, अगर हम लोग एक ऐसे जगत में होते, जहाँ केवल सङ्गीत ही सङ्गीत होता; तुम गातीं और मैं सुनता; मैं गाता और तुम सुनतीं; तो क्या ही अच्छा होता।

सुशीला ने एक भेद-भरी दृष्टि मेरे ऊपर डाली। आह! उस दृष्टि में क्या नहीं था। फिर भी और स्पष्ट सुनने के लिए मैंने पूछा—सुशीला, कुछ बोलो, उत्तर दो।

अपने वीणा-विनिन्दित स्वर में उसने बिना आँखें ऊँची किए ही कहा—"क्या वैसा संसार इस संसार में नहीं बनाया जा सकता?" फिर आँखों को ऊपर उठा कर, सहज भृकुटी सञ्चालन करती हुई बोली—"पर इससे कवि लोग नहीं सन्तुष्ट होने के, उन्हें तो कोई संसार ऐसा मिलना चाहिए, जो इस संसार में न बन सके और जिसकी नींव कल्पना-जगत में हो। मोहन, तुम भी तो कवि हो।"

आज यह पहला ही अवसर था, जब उसने मुझे मि० मोहन की जगह केवल 'मोहन' कहा।

मैं उसके कहने का मतलब ख़ूब समझ रहा था, पर समझते हुए भी न समझने का भान कर बोला—पर सुशीला, हम लोग इसी तरह तो जीवन बिता नहीं सकते। कभी तो इस सङ्गीत की दुनिया से दूर, जीवन की प्रबल थपेड़ों में पड़ना ही होगा। पता नहीं, काल का प्रबल प्रवाह हमको कहाँ ले जाकर फेंकेगा। इस संसार में हरएक को अपना रास्ता स्वयं ही ढूँढ़ना पड़ता है। कोई किसी का साथ तो देता नहीं, ख़ास कर स्त्रियों के लिए तो हमारे समाज ने बड़ा ही कठोर नियम बना रक्खा है। तुम्हें भी तो उसी का अनुसरण करना पड़ेगा।

भला सुशीला इसका क्या उत्तर देती। उसने केवल इतना ही कहा—समाज या समाज के नियम किसी के हृदय पर अपना अधिकार नहीं जमा सकते।

इसी तरह प्रतिदिन नाना प्रकार की बातें आपस में हुआ करती थीं। पर अपने दिल की कमज़ोरी के कारण मैं खुल कर सुशीला से कुछ भी नहीं कह सकता था। अपने होस्टल के कमरे में बैठा हुआ मन ही मन जिन बातों को न जाने कितनी बार दुहराता था और प्रतिज्ञा करता था कि आज उन्हें सुशीला पर अवश्य ही प्रगट कर दूँगा, वे सारी बातें उसके सामने जाने पर न जाने क्यों भूल जाती थीं।

अभी कुछ दिन ही बीते थे कि मुझे पिता जी के बीमार होने का समाचार मिला और मैं सुशीला से बिना मिले ही घर चला गया। परन्तु घर आकर मैं सुशीला को नहीं भूल सका। फ़ुर्सत पाने पर उसीकी बातें सोचा करता था। अथवा अपने हृदय के उद्गारों को पद्य का स्वरूप दिया करता था। इस बीच में मैंने सुशीला को दो पत्र भी लिखे, परन्तु कोई उत्तर नहीं आया। धीरे-धीरे पिता जी की अवस्था सुधर गई। प्रायः दो-तीन सप्ताह के बाद मैं फिर अपने होस्टल में लौट आया और आते ही मैंने अपनी खिड़की खोली। पर सामने के मकान की खिड़की बन्द थी। मैं फ़ौरन सुशीला के मकान की ओर गया, परन्तु मकान के दरवाज़े में ताला लगा था। मालूम हुआ कि प्रोफ़ेसर साहब मकान छोड़ कर चले गए। परन्तु यह पता न लग सका कि वे कहाँ गए? वे पेन्शनर थे और विचरणशील। कभी दो महीने इस शहर में रहते और कभी उस शहर में। मैं इस आशा में था कि सुशीला का कोई पत्र मिलेगा, पर वह आशा भी पूरी न हुई। मैं लाचार होकर बैठ गया। मेरी व्याकुलता बढ़ चली और पढ़ना-लिखना सब मिट्टी में मिल गया। मैं रात भर होस्टल के कमरे में पड़ा, सुशीला की मोहनी मूर्ति का ध्यान किया करता था। कभी अगर झपकी आ जाती, तो स्वप्न में भी वही प्रेममयी दिखाई पड़ती थी। दिन भर न जाने कितने करुण-सङ्गीत मेरे हृदय से निकल कर कॉपी पर अङ्कित हो जाते थे। तुमने वे कविताएँ नहीं देखीं सुरेश, उनमें मेरी हृत्तन्त्री के टूटे तारों की झङ्कार भरी है।

३

कुछ ठहर कर मोहन फिर कहने लगा—हमारे कॉलेज में कवि-सम्मेलन होने वाला था। शहर भर के सारे स्कूलों और कॉलेजों में उसकी धूम मची थी। परन्तु मैं अब ज़्यादा हो-हल्ले से बचना चाहता था। मेरी इच्छा कवि-सम्मेलन में जाने की न थी, पर मित्रों की ज़िद से जाना ही पड़ा।

हॉल ठसाठस भरा हुआ था। मञ्च पर हमारे नवयुवक कविगण गप्पें लड़ा रहे थे। मैं भी जाकर एक कोने में बैठ गया। मैं सुस्त था; निराशा के बादल मेरे मानस-पट पर मँडरा रहे थे। इतने ही में अचानक दरवाज़े से अन्दर आती हुई लड़कियों के एक झुण्ड पर मेरी नज़र पड़ी। मेरी बाछें खिल गईं। मैं आनन्दातिरेक से घबरा उठा। क्या यह सम्भव था कि मेरी सुशीला इस प्रकार दिखलाई दे जायगी। उसके साथ ही एक और लड़की थी, वह उसकी सहेली प्रेमा थी। मैं उसको भी पहिचानता था। अचानक मेरी और सुशीला की आँखें चार हुईं। उस समय मेरे हृदय में एक विचित्र हलचल मच गई। मानों मैं जी उठा।"

मोहन का अङ्ग-प्रत्यङ्ग फिर उत्तेजित हो उठा। आँखों से वेदना-मिश्रित उल्लास के स्फुलिङ्ग साफ़ प्रकट होने लगे। चेहरा खिल उठा। सब शान्त थे। वह कहता जाता था और हम लोग उसकी बातें सुनते जाते थे। उसकी बातें शराबी का प्रलाप न थीं। नशा तो कभी का उतर चुका था।

कुछ क्षण ठहर कर उसने फिर कहना आरम्भ किया—"हाँ, मैं जी उठा। लोगों ने अपनी-अपनी कविताएँ सुनाईं, पर उन पर मेरा ध्यान न था। उनका वाह-वाह की ध्वनि से स्वागत किया गया, पर मेरा ध्यान उस तरफ़ नहीं था। मैं अपनी ही कल्पना के संसार में विचरण कर रहा था। सुशीला की तरफ़ देखता भी न था, अथवा यों कहिए कि देख नहीं सकता था। एकाएक मेरा ध्यान टूटा, जब सुशीला की सखी प्रेमा एक भावोत्पादक कविता पढ़ने लगी। अब मेरी समझ में आया कि सुशीला यहाँ कैसे आई थी! क्योंकि सुशीला को सभा-सोसाइटियों से एक प्रकार की नफ़रत सी थी। अस्तु—

प्रेमा की कविता बड़ी ही सुन्दर थी। भाव और भाषा दोनों में उसने कमाल कर दिया था। उसके सहज-सलोने चेहरे और उसकी मधुर वाणी ने तो मानों उसमें जान डाल दी थी। सारा समाज उसकी तान पर मस्त हो गया। करतल-ध्वनि और वाह-वाह की झड़ी सी लग गई। इसके बाद ही मेरा नाम पुकारा गया और लोगों की उत्सुक आँखें मेरी ओर लग गईं।

मैं उठा। पहली निगाह मेरी सुशीला पर पड़ी। वह उत्सुकता से मेरी ओर देख रही थी। मैं पलक मारते ही मैशीन की भाँति मञ्च पर जा पहुँचा। आ

पहला ही अवसर था, जब मेरा हृदय धड़क रहा था और हाथ-पैरों में मान कँपकँपी चढ़ गई थी।

मैंने प्रयत्न करके अपनी सारी शक्ति अपने में सञ्चित की। मैंने कविता का परचा हाथ में लिया। उसका शीर्षक था, 'विरह-वेदना।' मैं अपनी वाणी द्वारा अपने हृदयतल की मार्मिक चोटों को सुशीला के सामने प्रकट करने लगा। अपनी रचना और वाणी द्वारा—अपनी सारी शक्ति द्वारा मैंने विरह-वेदना का शब्द-चित्र श्रोताओं के सन्मुख अङ्कित कर देने की चेष्टा की। उसमें मेरी सारी आशाएँ, सारी अभिलाषाएँ और सारी वेदना भरी हुई थी। जनता स्तब्ध होकर सुनती रही। न किसी ने ताली बजाई और न किसी के मुँह से वाह-वाह ही निकला। परन्तु किसी-किसी की आँखों में दो-एक बूँद मोती के चमक रहे थे।

इसके बाद मैं अपने स्थान पर आकर बैठ गया, उस समय एक बार मेरी और सुशीला की आँखें आपस में मिल गईं। मैंने देखा, उसकी आँखों में स्वाभाविक चमक न थी। चञ्चलता के स्थान को गम्भीरता ने ले लिया था। मेरी दृष्टि पड़ते ही उसने अपनी आँखें नीची कर लीं। उसके गालों का गुलाबी रङ्ग बदल कर लाल हो गया।

सुशीला के पिता ने इसी शहर में, नदी किनारे एक बङ्गला किराए पर ले लिया था। बङ्गला बदलने की खराबी के कारण ही वह मेरे पत्रों का उत्तर भी नहीं दे सकी थी। साथ ही उसे यह भी न मालूम था कि मैं कहाँ हूँ। अस्तु—

इस घटना के बाद मैं नियमपूर्वक दूसरे-तीसरे रोज़ उसके यहाँ जाया करता था। मेरी विरह-वेदना दूर हो चुकी थी। मेरे बुरे दिन बीत चुके थे; मैं सुखी था।

उफ़! उस दिन बड़ी गर्मी थी। लड़के बाहर की लॉन पर बैठे गपशप कर रहे थे। मैंने भी नदी की ओर की राह ली। सरला का बङ्गला हमारे स्थान से कोई डेढ़ मील पर था। मेरा चित्त उस समय कुछ उद्विग्न सा हो रहा था। मैंने सीधी सड़क छोड़ दी और पार्क से होकर जाने लगा। सामने ही नदी थी। पार्क में घुसते ही फूलों के एक झाड़ के पास मुझे लड़कियों का एक झुण्ड दिखलाई पड़ा। उन्हीं में सुशीला भी थी। मैंने ऐसे अवसर पर उसके पास जाना उचित नहीं समझा और एक झाड़ी की आड़ से उन लोगों की अठखेलियाँ देखने लगा। मेरे वहाँ जाने से अवश्य ही वे कुछ गम्भीर सी हो जातीं और मैं उनके सरल स्वाभाविक आमोद-प्रमोद को न देख सकता।

भगवान भास्कर अस्ताचल की ओर जा रहे थे। उनकी अरुण स्निग्ध अन्तिम किरणें सुशीला के सुन्दर मुख पर नृत्य कर रही थीं। वह एकटक नदी की ओर निहार रही थी, मानों उसकी लहरें गिन लेना चाहती हो। उसके घनकृष्ण-केश मन्द वायु के झोंकों से लहरा रहे थे। मैं उसकी इस अनिन्द्य रूप-छटा को अतृप्त नेत्रों से देखता-देखता विमुग्ध सा हो गया था। मानों उसकी ओर देखता हुआ भी नहीं देख रहा था।

एकाएक एक धमाके की आवाज़ से मेरी तन्मयता छितरा गई। जैसे कोई पानी में गिर पड़ा हो। मेरे सारे शरीर में बिजली दौड़ गई, शरीर के रोएँ खड़े हो गए। मेरी विकल दृष्टि वहीं छटपटाने लगी, जहाँ सुशीला खड़ी थी। परन्तु सुशीला गई कहाँ? मैं झाड़ी के पीछे से दौड़ा। मुझे अपने कपड़े उतारने की भी धुन न थी। मैं सीधे कगारे पर जाकर नदी में कूद पड़ा। धारा तेज़ थी। सुशीला, मेरी प्यारी सुशीला कहीं भी न दिखलाई दी। मेरा हृदय काँप उठा। आँखों के सामने अँधेरा छा गया। मैं रहस्यवादी कवि की भाव-धारा की तरह नदी की तेज़ धार में अनन्त की ओर बह चला। इतने में कोई सफ़ेद चीज़ कुछ दूर पर उतराती दिखलाई दी। मैं लहरों को चीरता हुआ बड़ी तेज़ी से लपका और जाकर उसको पकड़ लिया। धारा बहुत तेज़ थी। हम दोनों उसमें बह चले। सुशीला मुझसे लिपट गई। उसी प्रकार जैसे डूबता हुआ मनुष्य बचाने वाले से उलझ जाता है। परन्तु मुझे इस भीषण स्थिति में भी एक प्रकार का आनन्द प्राप्त हो रहा था। उस अथाह जल-राशि में हम दोनों एक साथ ही बहे जा रहे थे। आह! वह कितना आनन्दप्रद समय था। इतना होते हुए भी मैंने सुशीला को अपने से कुछ दूर रखने का प्रयत्न किया, जिसमें परस्पर लिपट कर हम दोनों न डूब जायँ। सुशीला के चेहरे और शरीर पर उसकी धोती इस तरह लिपट गई थी कि उसका चेहरा न दिखलाई देता था। जल से युद्ध

करते-करते उसकी कोमल बाँहें शिथिल हो गई थीं। वह प्रायः मूर्छित सी हो गई थी।

न जाने हम नदी की धारा के साथ बहते-बहते कितनी दूर चले आए। मेरा सारा शरीर शिथिल हो गया था। सुशीला हाथ से छूटने लगी। परन्तु मुझे तैरने का अभ्यास था। सन्तरण-प्रतियोगिता में मैंने कई बार पुरस्कार प्राप्त किया था। मैं सावधान हो गया और मुस्तैदी से अपनी और सुशीला की रक्षा करने लगा। कपड़े भींग कर भारी हो गए थे, इसलिए मैंने एक-एक करके उन्हें उतारना आरम्भ किया। धीरे-धीरे कोट, जूता, कुरता सब उतार फेंका। धोती की जगह हाफ़पैण्ट पहने था, इतना अच्छा था। मैं अपनी सारी शक्ति लगा कर किनारे की ओर बढ़ने लगा। पर मैं कब किनारे लगा, इसका कुछ ज्ञान नहीं। क्योंकि थोड़ी देर बाद ही मैं भी बेसुध हो गया था। पीछे मुझे पता चला कि उस बेसुध गठरी को मेरे हाथ से छुड़ाने में लोगों को बड़ी कठिनाई हुई थी।

मुझे अपनी बेहोशी की हालत में भी ऐसा प्रतीत हुआ, मानों सुशीला घबराई आँखों से मेरी ओर देख रही है। मेरा सिर किसी कोमल चीज़ पर था। शायद वह मेरी भावनाओं वाली सुशीला की हथेली हो।

४

जब मैंने आँखें खोलीं, तो ऐसा मालूम हुआ कि सारा संसार कोहरे के भीतर छिपा हुआ है। सारी वस्तुएँ धुँधली दिखलाई देती थीं। मेरा सारा शरीर टूटा जा रहा था। अङ्ग-अङ्ग में पीड़ा हो रही थी। मैंने आँखें बन्द कर लीं। थोड़ी देर के बाद एक मधुर ध्वनि मेरे कानों में पड़ी। किसी ने पूछा—कैसी तबियत है?

मैंने कोई उत्तर नहीं दिया। मुझसे बोला नहीं गया। फिर किसी ने कहा—चैतन्यता आती मालूम होती है। ईश्वर करे जल्दी आराम हो जाय।

इसके आगे मैं कुछ न सुन सका और मालूम नहीं, कितनी देर तक इस दशा में पड़ा रहा। कुछ देर बाद जब फिर आँखें खोलीं, तो किसी स्त्री को अपनी ओर झुके हुए देखा। ध्यान से देखने पर मालूम हुआ कि चेहरा परिचित है। फिर तो पूर्णरूप से विश्वास हो गया कि वह सुशीला ही है। धीरे-धीरे सारी बातें स्मरण हो आईं। पर नदी के किनारे आने के बाद, इस बि[स्तर] पर किस प्रकार आ पहुँचा, यह समझ में नहीं आया।

मैंने पूछा—मैं कहाँ हूँ?

उसी परिचित स्वर में सुशीला ने कहा—"घबड़ाओ नहीं, तुम मेरे घर पर हो।" उसकी आवाज़ में प्[यार] था और उसकी विश्वविजयिनी आँखों में आह्लाद खे[ल] रहा था। मुझे उठने का प्रयत्न करते देख, उसने कहा—उठो मत। उसने अपने हाथ से मेरा तकिया ठीक क[र] दिया और अपनी हथेली को मेरी छाती पर रख कर मु[झे] उठने से मना किया।

उसके स्पर्श से मेरे सारे शरीर में एक प्रकार [की] तीव्र झिनझिनी नाच उठी। पर मैं आश्चर्य में था [कि] माजरा क्या है? क्योंकि सुशीला को तो मुझसे [भी] अधिक बीमार होना चाहिए था। मुझे तो जल से नि[क]लने तक होश था। पर वह तो जल ही में बेहोश हो [गई] थी। फिर मैं किस प्रकार उसे पूर्ण स्वस्थ और अपने [ही] बिस्तर पर देख रहा हूँ। मुझे अच्छी तरह विश्वास [हो] गया कि मैं स्वप्न देख रहा हूँ। मैंने अपनी आँखें मीं[ज] लीं और पूछा—"क्या मैं स्वप्न देख रहा हूँ?" उत्[तर] मिला—"नहीं, आप स्वप्न नहीं देख रहे हैं।" कण्ठस्[वर] में उत्साह था।

मुझसे अब न रहा गया, मैंने पूछा—सुशीला, मैं तो जल में तुम्हें बचाने के लिए कूदा था। फिर तुम्हें इस समय पूर्ण रूप से स्वस्थ क्योंकर देख रहा हूँ! तुम्हें तो इस समय बिस्तर पर होना चाहिए। य[ह] पहेली मेरी समझ में नहीं आती।

मैंने देखा, उसके गुलाबी गालों पर हँसी की ए[क] रेखा चमक रही थी। उसने प्रेम-भरी दृष्टि से मेरी ओ[र] देख कर मुस्कराते हुए कहा—पीछे सब पता चल जायगा। इस समय अपने मस्तिष्क पर ज़ोर मत दो। डॉक्टर साहब ने मना किया है।

इतना कह वह मेरे बिस्तर के पास पड़ी हुई कुर्सी पर बैठ गई; और अपनी हथेलियों से मेरे ललाट का तपन देखने लगी। दूसरे हाथ को अनायास ही मैंने अपनी हथेली में दबा लिया।

पर मैं शुरू से अन्त तक सारी कहानी जानना चाहता था। मैंने कई बार उससे पूछा, पर उसके इतना कहने पर कि—"अगर तुम इतना बोल कर अभी अपने

मस्तिष्क पर अनुचित ज़ोर डालेंगे तो मैं कमरे से बाहर चली जाऊँगी।" मुझे अधिक आग्रह करने का साहस न हुआ।

५

कहावत है कि 'किसी को बैंगन बादी और किसी को बैंगन पथ्य।' एक के लिए जो चीज़ नरक के समान प्रतीत होती है, वही दूसरों को स्वर्ग से भी अधिक आनन्दप्रद होती है। फलतः इस अस्वस्थता में मुझे जो आनन्द था, सो स्वस्थ शरीर में कहाँ? मैं महीनों तक बिस्तर पर पड़ा रहा। मुझे ज्वर हो गया। सरला बिस्तर के पास दिन-रात बैठी रहा करती थी और नाना प्रकार की वार्ता से मेरा मनोरञ्जन किया करती थी। दिन भर में सहस्रों भाव उसके सुन्दर चेहरे पर बदला करते थे। आह! मैं इतना सुख किस प्रकार बटोर सकता था। मैं कभी-कभी आनन्द-विभोर हो जाने लगा।

सुशीला की सेवा और डॉक्टर की दवा से मैं धीरे-धीरे अच्छा होने लगा। परन्तु मुझे हर घड़ी आने वाले वियोग की आशङ्का होती थी और मैं विचलित हो उठता था। सुशीला की अनुपस्थिति में मैं ऐसे ही ऐसे विचारों में ग़ोते खाया करता था। पर मेरे विचार के विपरीत सुशीला मुझे स्वस्थ होते देख कर प्रसन्न होती थी। पर उसे प्रसन्न देख कर मैं झुँझला उठता था। क्योंकि मेरी शारीरिक स्वस्थता धीरे-धीरे मानसिक अस्वस्थता में परिणत होती जाती थी। अच्छा हो जाने पर मुझे सुशीला से अलग हो जाना पड़ेगा, यह ख़याल मुझे व्याकुल कर देता था। परन्तु धीरे-धीरे मैं पूर्ण स्वस्थ हो गया।

एक दिन मैं बारामदे में टहल रहा था कि सुशीला आ पहुँची। मानों मेरे स्वप्नों की श्रृङ्खला नष्ट हो गई और उसमें से एक दैदीप्यमान मूर्ति का आविर्भाव हुआ। मैंने कितनी ही बार उसके नेत्रों से प्रेम का सन्देश पाया था, पर कभी भी मैं उसका उत्तर न दे सका था। चाहता था कि उससे कह दूँ कि वह कितनी सुन्दर है। उससे कह दूँ कि मैं उसके ही लिए जीवन को हथेली पर रख कर पानी में कूदा था। मैंने कितनी सावधानी से उस गठरी को हाथ में रक्खा, जिसे मैं अपनी सुशीला समझ रहा था। परन्तु कगारे पर से सरला नहीं, प्रेमा गिरी थी। अगर मैं जानता कि सुशीला की जगह प्रेमा उस गठरी में है, तो मैं अवश्य उसे भी बचाने की चेष्टा करता। परन्तु जिस समय मेरे प्राण मुझको ही छोड़ देने के लिए उतावले हो रहे थे, उस समय मैं क्या करता? निश्चय ही मैं अपने प्राणों की रक्षा करता।

मेरे चेहरे पर खेलते हुए इन भावों को पढ़ कर सुशीला बोली—मोहन, क्या कोई कविता सोच रहे हो? माता जी ने तुम्हें कितना पुकारा, पर तुम न बोले। ऐसा क्या सोच रहे थे?

मेरी आँखें आप ही आप उसकी ओर फिर गईं।

मैंने कहा—तुम्हीं बताओ, मैं क्या सोच रहा हूँ?

शायद मेरे भावों को वह समझ गई थी। उसने मुँह बना कर कहा—तुम्हीं जानो, किसको याद कर रहे हो। मैं तुम्हारे भावों को क्योंकर जान सकती हूँ।

मेरे हाथों ने जाने कब उसके हाथों को कस कर जकड़ लिया था। मैं अपने को न रोक सका। धरती पर घुटने के बल अपनी इष्टदेवी के सामने बैठ गया और बोला—"सुशीले क्या तुम्हें बतलाना होगा? क्या तुम प्रेम की मौन भाषा नहीं समझ सकतीं? क्या मुझे स्पष्ट ही कहना होगा कि मैं तुम्हारे प्रेम में पागल हो रहा हूँ, उस दिन से ही, जिस दिन पहले-पहल मैंने तुम्हें देखा था। न जाने कितने दिन और कितनी रातें तुम्हारी चिन्ता में बीत गईं। तुम सब जानती हो, अवश्य जानती हो कि तुम्हारे सिवाय और कोई मेरे ध्यान में नहीं है। मैं तुम्हारे ही लिए नदी में कूदा था। उस समय मेरे हृदय की क्या दशा थी, उसका तुम अनुमान भी नहीं कर सकतीं। सुशीले, कह दो तुम मुझे निराश नहीं करोगी। मेरी जीवन-सङ्गिनी होकर मुझे सुखी बनाओगी। मेरे पास धन नहीं है, पर हृदय है, जो तुम्हारा है।" आगे मैं कुछ न कह सका। सुशीला के नेत्रों में भी आँसू थे, जिसे उसने छिपा लिया। मैं अब खड़ा हो गया था। मैंने कहा—"सुशीला, बोलो! चुप क्यों हो गई? कह दो कि तुम भी मुझसे प्रेम करती हो। तुम्हारी आँखें कहती हैं। बस, मेरी सान्त्वना के लिए एक बार मुँह से भी कह दो। बोलो।" मैंने उसे अपने हृदय से लगा लिया।

सुशीला अपना सिर मेरी छाती पर रख कर अबोध बालक की तरह रोने लगी। भगवान अंशुमाली अस्ताचल की ओर जा रहे थे। प्राची में अरुणिमा छाई थी। जल की तरङ्गें स्तब्ध हो धीरे-धीरे छोटे-छोटे बादलों के टुकड़े को डुलाती हुई बह रही थीं। नदी के उस पार एक दीपक टिमटिमा रहा था। एक नाव दूर-दूर बही जा रही थी, उस पर बैठा हुआ कोई गा रहा था—

"उन आशा की आँखों में,
भर-भर कर आसव-प्याला।
तेरी सुन्दरता देती,
मैं पीता हो मतवाला॥
इस सुरभित सरस हिंडोले,
के झोंकों में लहराती।
इस मिलन साँझ की बातें,
मलयज है ढो ले जाती।"

६

मेरा और सुशीला का हृदय प्रेम के सुदृढ़ सूत्र में बँध गया था। मुझे उसके बिना चैन न पड़ता था और उसे—हाँ, न जाने कितने बहाने मेरे पास आने के लिए करने पड़ते थे। पर मेरे ये सुख के दिन स्थायी न हो सके। मैं पूर्ण स्वस्थ हो गया था। अब सुशीला के घर और ठहरना उचित नहीं प्रतीत हुआ। मैंने एक दिन घर जाने की इच्छा की। कॉलेज भी दशहरा की छुट्टी में बन्द था। जाने की तैयारी हो गई।

"जाते हो मोहन ?"—सुशीला ने कहा। उसकी आँखें भरी हुई थीं।

मैं अपने को न सभाल सका—मैंने अपने रूमाल से उसके आँसू पोंछे। आँखों में आँसू भर कर उसे सान्त्वना दी। कहा—फिर मिलेंगे।

मैं ताँगे पर बैठ गया। जब तक ताँगा आँखों से ओझल नहीं हो गया, तब तक वह द्वार पर खड़ी एकटक मुझे देखती रही और मैं उसे।

परन्तु घर आकर मैं सुखी न हुआ। एक-एक दिन पहाड़ से प्रतीत होने लगे। सुशीला ने पत्र भेजने का वादा किया था। मैं बड़ी उत्सुकता से उसके पत्र की प्रतीक्षा करने लगा। कई दिनों के बाद उसका एक पत्र मिला। उसने लिखा था :—

"प्यारे मोहन! तुमसे अब यह बताने की आवश्यकता नहीं कि मैं तुमसे कितना प्रेम करती हूँ। जिस दिन मैंने तुम्हें पहले-पहल देखा था, उसी दिन से मैं तुमसे प्रेम करने लगी थी। मैं जानती थी कि तुम मुझे कितना प्यार करते हो, फिर भी मैं अपने प्रेम को तुमसे छिपाती रही। पर अन्त तक नहीं छिपा सकी। उस दिन की तुम्हारी कविता ने मुझे विशेष व्याकुल कर दिया। तुम्हारा करुण सङ्गीत मेरे रोम-रोम में समा गया। मैं जानती थी कि मैं भूल कर रही हूँ, तथापि मैंने अपने हृदय को नहीं रोका। पर अब इस समय जो बातें मैं तुमको लिखने जा रही हूँ, उससे तुम मुझे तुच्छ और प्रेम के अयोग्य मत समझ लेना। क्या करूँ, परिस्थिति सब कुछ कराती है। एक ओर कुल की लाज है और दूसरी ओर तुम्हारा प्रेम। परन्तु अन्त में मुझे कुल-मर्यादा और पिता की इच्छा और आज्ञा की बलि-वेदी पर निछावर हो जाना पड़ा। मैं अपने माता-पिता की एकमात्र सन्तान हूँ, अतः उनकी आज्ञा से भाड़ में जा रही हूँ।

जिस दिन तुम यहाँ से गए थे, उसी दिन पिता जी ने मेरी शादी एक जगह पक्की कर ली। बातचीत पहले से ही चल रही थी। पर मुझे इसका कुछ पता न था। तुम समझ सकते हो कि इस अचानक वज्रपात से मेरी क्या दशा हुई होगी। मैंने लाख चाहा कि मैं इस विवाह को वर्ष-दो वर्ष और टाल दूँ, पर अब मुझे प्रतीत होता है कि यह मेरी सामर्थ्य के बाहर की बात है। मेरी शादी को पाँच रोज़ और हैं। आज ही पिता जी ने एक आमन्त्रण-पत्र तुम्हें भी भेजा है, शायद इसी डाक से तुम्हें मिलेगा। पर कृपा कर तुम इसमें सम्मिलित मत होना। क्योंकि तुम्हें देख कर मेरी वेदना और बढ़ जायगी और फिर कदाचित् मैं अपने को न सँभाल सकूँ। मोहन, यहाँ जाति-भेद है। यहाँ हम-तुम नहीं मिल सकते। पर विश्वास रक्खो, स्वर्ग में हम अवश्य मिलेंगे। प्यारे मोहन! मैं जानती हूँ, इस पत्र को पढ़ कर तुम्हारी क्या अवस्था होगी। पर धैर्य धरो। देखो, मैं दुर्बल अबला होकर धैर्य धरती हूँ। बस; विदा!

अभागिनी,
—सुशीला"

× × ×

मुझे ज्वर की दशा में बेहोश पड़े चार दिन हो गए थे। पाँचवें दिन मेरी आँखें खुलीं। सुशीला का वह पत्र अब भी मेरे पास पड़ा था। उस पर नज़र पड़ते ही मेरे हृदय में एक चोट सी लगी और मैं व्याकुल हो गया। तथापि मैंने निश्चय कर लिया कि सुशीला के बिना मेरा जीवन वृथा है। परन्तु एक बार, अन्तिम बार सुशीला को देख लेने की इच्छा को मैं किसी तरह भी रोक न सका।

मैं जानता था कि मेरे पिता-माता इस दशा में मुझे घर से भी बाहर नहीं निकलने देंगे। इसलिए मैं उनकी नज़र बचा कर घर से चल दिया। यद्यपि मैंने चार-पाँच रोज़ से कुछ खाया-पिया नहीं था, परन्तु मैं टेढ़े-मेढ़े रास्ते से होकर ठीक समय पर स्टेशन पहुँच गया।

आज सुशीला का ब्याह था। प्रोफ़ेसर साहब के बङ्गले पर चहल-पहल थी। बारात भी आ गई थी। अपनी एकमात्र कन्या के विवाह में प्रोफ़ेसर साहब ने दिल खोल कर ख़र्च किया था और कर रहे थे। मैं दूर से ही यह सब देख रहा था। क्योंकि इस दशा में आमन्त्रित की तरह प्रगट रूप से वहाँ जाना मैंने उचित नहीं समझा। मैं प्रेमा की तलाश में था। क्योंकि बिना उसकी सहायता के सुशीला के अन्तिम दर्शन की कोई सम्भावना न थी। मैं सोचने लगा कि किस तरह प्रेमा से भेंट हो। इतने में प्रोफ़ेसर साहब के मकान में कुहराम सा मच गया। रङ्ग में भङ्ग हो गया। मालूम हुआ कि सुशीला एकाएक संज्ञाशून्य हो गई है। अब मैंने अपने को छिपाना उचित न समझा और जिस अवस्था में था उसी अवस्था में अन्दर पहुँच गया और बिना किसी रोक-टोक के उस कमरे में पहुँचा, जहाँ मेरी सुशीला थी। कमरा स्त्री-पुरुषों से ठसाठस भरा था। प्रोफ़ेसर साहब और उनकी स्त्री पलङ्ग के पास बैठे नीरव अश्रु-विसर्जन कर रहे थे और डॉक्टर लोग उपचार में लगे थे। मैं भी एक तरफ़ खड़ा होकर यह परम कारुणिक दृश्य देख रहा था। इतने में एक बार सुशीला की आँखें खुलीं। उसने पहले अपने पिता-माता की ओर देखा। मैं भी पास ही था। उसकी दृष्टि मुझ पर भी पड़ी और चेहरा एक अपूर्व ज्योति की तरह चमक कर बुझ गया। आँखें खुली ही थीं, परन्तु इनमें संज्ञा न थी। डॉक्टरों का चेहरा उतर गया और प्रोफ़ेसर साहब बेहोश होकर गिर पड़े।

मैंने अन्तिम बार सुशीला को देख लिया और निश्चय कर लिया कि हम दोनों स्वर्ग में मिलेंगे। मैं तेज़ी से निकल कर शहर में आया। प्यास के मारे गला सूख रहा था। हवास भी ठीक न थे। मैं एक दूकान में घुस गया और एक कुर्सी पर बैठ गया। मैं ख़ुद भी नहीं जान सका कि यहाँ क्यों आया हूँ। दूकान के एक नौकर ने आकर पूछा, क्या लाऊँ?

मैंने कहा—शर्बत पिलाओ।

वह मुस्कुराता हुआ चला गया और बराण्डी की एक बोतल तथा प्याले आदि लाकर टेबिल पर रख दिया। मैंने सुरा ढाली और पी।

मोहन एकाएक चुप हो गया और थोड़ी देर के बाद ही विक्षिप्त की भाँति दौड़ कर कमरे से बाहर हो गया। सुरेश ने नीचे तक उसका पीछा किया। परन्तु वह गलियों में घुस कर न जाने कहाँ ग़ायब हो गया।

इसके कुछ दिन बाद से ही 'चाँद' में धारावाहिक रूप से किसी पागल महाशय की "दिल की आग उर्फ़ दिल-जले की आह!" निकलने लगी!

☾

"मनुष्य स्वतन्त्र है। वह चाहे जो कर सकता है। बीच में दख़ल देने वाला कोई नहीं, इतनी स्वतन्त्रता रहते हुए भी मनुष्य भाग्य के अधीन होकर महाअनर्थ करते हैं।"

"जो तुम होना चाहते थे, वह हो चुके हो; अब तुम जो होना चाहते हो वही हो जाओगे।"

☾

"ग्रह-नक्षत्रादि द्वारा भाग्य-परीक्षा करा लेने और दैव पर ही निर्भर रहने वाले को समझना चाहिए कि मनुष्य के ग्रह-नक्षत्र मनुष्य ही हैं और उसका दैव उसके ही किए का फल है—वह चाहे अच्छा हो या बुरा।"

"मनुष्य को मनुष्य बन कर अपना भाग्य अपने अधीन रखना चाहिए।"

राजा मेहरा

[श्री० अन्तर्वेदी]

लखनऊ के विख्यात दानी और उदार-हृदय मुसलमान शासक नवाब आसिफुद्दौला के दरबारियों में राजा मेहरा नाम के एक सज्जन रहते थे। ये नवाब के निकट पार्श्ववर्तियों में थे और इन पर उसकी विशेष कृपा-दृष्टि भी रहती थी।

राजा मेहरा स्वयं भी बड़े उदार, दानी और धर्मात्मा पुरुष थे। उनकी बनवाई हुई अन्यान्य कीर्त्तियों के सिवा लखनऊ में राजा मेहरा की हवेली और इमामबाड़ा आज भी मौजूद है।

नवाब आसिफुद्दौला का ज़माना 'हातिमे सानी का ज़माना' कहा जाता है। उदारता, गुणग्राहिता और दानशीलता में नवाब आसिफुद्दौला वास्तव में बेजोड़ था। धार्मिक कट्टरता और जातिगत भेद-भाव का उसमें नितान्त ही अभाव था। वह गुणों का प्रेमी था, गुणियों का आदर करना जानता था। उसकी दृष्टि में हिन्दू-मुसलमान और ऊँच-नीच का कोई भेद-भाव न था। वह किसी के ज़रा से सद्गुण पर उसे मालामाल कर देता था। किसी कवि या शायर की एक चुटीली उक्ति पर उसे अयाची कर देता था। उसके शासनकाल में लखनऊ कवियों, शायरों, गायकों, मदारियों, कारीगरों और पहलवानों का प्रधान केन्द्र बना था। नवाब आसिफुद्दौला की उदारता का हाल सुन कर देश-देश से गुनी-ज्ञानी आकर लखनऊ में बस गए थे। उसके राज्य में हिन्दू-मुसलमान और ईसाई सभी सुखी थे। उसकी दानशीलता के सम्बन्ध में यह कहावत प्रचलित थी कि 'जिसको न दे मौला, उसे दे आसिफुद्दौला!'

ऊँचे-ऊँचे सरकारी ओहदों पर हिन्दू और मुसलमान दोनों थे। एक ओर सरफ़राज़ुद्दौला, नवाब हसन रज़ा ख़ाँ, नवाब मुख़्तारुद्दौला, सय्यद मीरतक़ी ख़ाँ, नवाब हैदरबेग ख़ाँ आदि मुसलमान राजकर्मचारी थे, तो दूसरी ओर राजा टिकैतराय, राजा झाऊलाल और राजा मेहरा आदि हिन्दू राजकर्मचारी भी मौजूद थे। नवाब बहादुर की तरह राजा टिकैतराय और राजा झाऊलाल भी बड़े दानी और उदार थे। ये दोनों ही धर्मात्मा राजे साल में लाखों रुपए धर्म-कार्य में ख़र्च करते थे। राजा टिकैतराय और राजा झाऊलाल की बनवाई हुई धर्मशालाएँ, कुएँ, तालाब, मन्दिर और मसजिदें आज भी उनकी पवित्र स्मृति-स्वरूप मौजूद हैं। इसी तरह राजा बलभद्रसिंह नाज़िम भी बड़े शाह-ख़र्च और उदार थे। नवाब आसिफुद्दौला के ज़माने में मुसलमान हिन्दुओं की होली और दीवाली पर आनन्द मनाते थे और हिन्दू उनके मुहर्रम में आँसू बहाते थे। होली और दीवाली पर नवाब-सरकार की ओर से हर साल साठ लाख रुपए ख़र्च होते थे। इन दोनों त्यौहारों के समय हफ़्तों नहीं, महीनों तक एक विचित्र चहल-पहल मची रहती थी।

इसी उदार-हृदय दानी मुसलमान नरेश ने अपनी पालकी ढोने वाले एक कहार की सेवा से प्रसन्न होकर, उसे लाखों रुपए की जागीर, महल, नक़दी और हाथी-घोड़े के साथ राजा की पदवी प्रदान की थी, जो अन्त में 'राजा मेहरा' के नाम से विख्यात हुआ। राजा मेहरा के सम्बन्ध में एक बड़ी मज़ेदार कहानी प्रचलित है।

उन दिनों पालकी सर्वश्रेष्ठ और बड़ी शानदार सवारी समझी जाती थी। राजा, महाराजा, रईस और ज़मींदार अधिकतर पालकियों पर ही सवार होते थे। ऐसा कोई बड़ा आदमी न होता था, जिसके पास एक-दो पालकियाँ और उन्हें ढोने वाले चार-छः कहार नौकर न हों। शहरों में इक्कों और ताँगों की तरह किराए पर पालकी और कहार मिला करते थे। नवाब के दरबारी अपनी-अपनी पालकियों पर ही दरबार में हाज़िरी देने आया करते थे। नवाब बहादुर की भी प्रधान सवारी पालकी

ही थी। यहाँ तक कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के लखनऊ के रेज़ीडेण्ट मि० जॉन चेरी भी नवाब के दरबार में आते थे, तो पालकी पर ही आते थे। पालकी की उन दिनों बड़ी महिमा थी।

एक दिन दरबार में सवारियों की चर्चा चल पड़ी। किसी ने घोड़े की तारीफ़ की और किसी ने हाथी की। ऊँट, बहली और बैलगाड़ी का भी ज़िक्र आया। परन्तु अन्त में पालकी का लोहा सबको मानना पड़ा।

रेज़ीडेण्ट ने कहा—हुज़ूर, मैं पालकी की ख़ूबी का क़ायल हूँ। बेशक वह बड़े आराम की सवारी है। परन्तु हमारे देश में तो आजकल बग्घियों का बड़ा रिवाज है। एक से एक बढ़ कर सुन्दर और तरहदार बग्घियाँ वहाँ तैयार होती हैं। मैंने हाल में अपनी सवारी के लिए एक बहुत ही अच्छी बग्घी इङ्गलैण्ड से मँगवाई है। दो निहायत अच्छे घोड़े भी रख लिए हैं। हुज़ूर एक दिन उस पर सवार हों तो स्वयं अनुभव करेंगे कि आराम और शीघ्र-गमन के विचार से बग्घी और पालकी में ज़मीन-आसमान का अन्तर है। जितनी देर में पालकी चार क़दम जायगी, उतनी देर में बग्घी कोस भर निकल जाएगी।

नवाब का कहार सुरजी पास ही खड़ा था और बड़े ध्यान से रेज़ीडेण्ट साहब की बातें सुन रहा था। रेज़ीडेण्ट का कथन समाप्त होने पर नवाब बहादुर ने सुरजी की ओर देखा। उसने हाथ जोड़ कर रेज़ीडेण्ट साहब से कहा—हुज़ूर, जैसे घोड़ों में बाज़ अड़ियल टट्टू होते हैं, वैसे ही कहारों में भी सात जातियाँ होती हैं। जो अच्छी जाति के कहार हैं, उनकी पालकी बग्घी से चार क़दम आगे जाती है, चढ़ने वाले के पेट का पानी तक नहीं हिलता और न पैरों के चाप की आवाज़ आती है। सवार को इतना आराम मिलता है कि नींद आने लगती है। परन्तु बग्घी की खड़खड़ाहट, घोड़ों की टापों का शब्द और सड़क की विषमता के कारण लगने वाले धक्के अच्छे स्वस्थ आदमी को भी बीमार डाल देते हैं।

रेज़ीडेण्ट ने कहा—अच्छा, यह तो बताओ, तुम नवाब साहब का बोझ हमारी बग्घी के बराबर ले जा सकते हो?

सुरजी ने उत्तर दिया—नवाब बहादुर के इक़बाल से आशा है कि दो कोस तक तो पालकी आपकी बग्घी से दो-चार क़दम आगे ही रहेगी। बस, इससे अधिक शेख़ी यह सेवक नहीं बघाड़ना चाहता।

रेज़ीडेण्ट ने कहा—सुरजी, यह तो तुम हँसने की बातें करते हो। भला, घोड़ों की बराबरी आदमी कैसे कर सकता है। शायद तुमने अच्छे घोड़े नहीं देखे।

सुरजी ने नम्रतापूर्वक निवेदन किया—सरकार, सेवक ने सब कुछ देखा है। अरबी घोड़े भी अच्छे कहारों की बराबरी नहीं कर सकते।

रेज़ीडेण्ट ने कहा—अच्छा, तुम हमारी बग्घी को एक बार देख लो, तब अपने विचार प्रकट करना।

सुरजी बोला—नवाब साहब की बदौलत मैंने बहुत-कुछ देखा-सुना है। आपको विश्वास नहीं होता तो एक दिन बग्घी और नवाब बहादुर के 'बूचे' को एक साथ ही छोड़ कर देख लीजिए।

रेज़ीडेण्ट साहब सुरजी की बातें सुन कर हँस पड़े और नवाब से कहा—हुज़ूर, दिल्लगी ही सही। एक रोज़ आप बूचे पर सवार हों और मैं अपनी बग्घी पर बैठूँ। दोनों का मुक़ाबला करके देखा जाए।

नवाब ने अविश्वासपूर्वक कहा—ऐसा नहीं हो सकता। भला, कहार बेचारे घोड़ों का मुक़ाबला कैसे कर सकते हैं!

सुरजी ने हाथ जोड़ कर कहा—हुज़ूर, एक बार अवश्य परीक्षा करें।

नवाब बोले—परन्तु अगर तुम हार गए तो तुम्हारी सज़ा?

सुरजी ने कहा—हुज़ूर, जो चोर की सज़ा वही मेरी सज़ा।

नवाब ने कहा—अच्छा, अगले सोमवार को रमने के मैदान वाली सड़क पर दोनों का मुक़ाबला हो जाए।

उस समय लखनऊ में यही एक चौड़ी सड़क थी। बात पक्की हो गई। परन्तु नवाब को विश्वास न था कि सुरजी इस दौड़ में विजयी होगा। इसलिए रेज़ीडेण्ट के चले जाने पर उन्होंने कहा—तुमने यह क्या मूर्खता कर डाली?

सुरजी ने विश्वासपूर्वक कहा—हुज़ूर, अगर हार जाऊँगा तो शहर में मुँह नहीं दिखाऊँगा।

नवाब ने कहा—तुम तो अपना मुँह काला करके शहर से चले जाओगे, परन्तु मुझे कितना लज्जित होना पड़ेगा।

सुरजी ने कहा—लज्जित होना पड़ेगा हुज़ूर के शत्रुओं को। मैं श्रीमान के चरणों पर उत्सर्ग न हो गया तो श्रीमान को लज्जित न होना पड़ेगा।

दौड़ के लिए केवल एक कोस का स्थान निर्दिष्ट हुआ। सड़क के ढेले और कङ्कड़ आदि साफ़ करा दिए गए और उस पर सुर्ख़ी बिछा दी गई। कहारों को पाला बदलने के लिए जहाँ-तहाँ निशान भी लगा दिए गए।

सुरजी ने अपनी मदद के लिए आठ कहार चुन लिए और उन्हें आध-आध मील के अन्तर पर खड़ा कर दिया।

सोमवार को नौ बजे रेज़ीडेण्ट साहब अपनी बग्घी पर सवार होकर आ गए। थोड़ी देर के बाद नवाब साहब की सवारी भी आ गई। नवाब साहब का 'बूचा' बग्घी के बराबर रक्खा गया। सुरजी अपने कई साथियों को लेकर एक मील के अन्तर पर खड़ा हुआ। दूसरे कहारों ने 'बूचा' उठाया। साहब ने घोड़ों की रास ढीली की और कहारों ने भी दुलकना आरम्भ किया। आध कोस तक नवाब का बूचा घोड़ों के साथ-साथ रहा; न एक क़दम आगे न एक क़दम पीछे। आध कोस पर सुरजी ने अपने साथियों के साथ पल्ला बदला और बूचा लेकर हवा हो गया। साहब ने घोड़ों को शिशकारना आरम्भ किया, परन्तु वे सुरजी को नहीं पा सके। सुरजी ने बग्घी से पहले ही निर्दिष्ट स्थान पर ले जाकर सवारी रख दी और ईश्वर का नाम लिया।

सड़क के दोनों किनारों पर तमाशा देखने वालों की भीड़ लगी थी। सारा लखनऊ यह अजीब दौड़ देखने के लिए टूट पड़ा था। वाह-वाह की आवाज़ से आकाश गूँज उठा। रेज़ीडेण्ट साहब आश्चर्य में पड़ गए और नवाब को सलाम करके अपनी कोठी पर चले गए।

नवाब बहादुर उसी बूचे पर अपने महल में आए और प्रसन्न होकर सुरजी को 'राजा' की पदवी प्रदान की। साथ ही बहुत से घोड़े, हाथी, झालरदार पालकी, नौकर-चाकर और सवारों का एक रिसाला दिया। साथ ही ख़र्च के लिए यथोचित वेतन नियत कर दिया और नाम रख दिया, राजा सूर्यनारायण। रेज़ीडेण्ट साहब ने भी काफ़ी इनाम-इकराम दिया। परन्तु सुरजी का यह सम्मान दरबार के अन्य राजाओं तथा सरदारों को अच्छा नहीं लगा। उन्होंने नवाब बहादुर की ख़ातिर से इसका विरोध तो नहीं किया, परन्तु इस पर कोई प्रसन्नता नहीं प्रगट की और ईर्ष्यावश होकर उसे 'राजा मेहरा' कहने लगे। कहारों ने भी राजा सूर्यनारायण की पालकी उठाने से इनकार कर दिया था। परन्तु उसने उन्हें समझा-बुझा कर राज़ी कर लिया।

'राजा मेहरा' कुछ पढ़े-लिखे और दरबार के क़ायदे क़ानून से वाक़िफ़ थे। राजा की पदवी प्राप्त करने पर उन्होंने फ़ारसी और थोड़ी सी अरबी तथा संस्कृत का भी अभ्यास किया। कुछ दिनों के बाद ही नवाब ने इन्हें अपने 'पुस्तकालय' का दारोग़ा मुक़र्रर कर दिया, इससे उन्हें विद्या-चर्चा के लिए सुन्दर सुयोग प्राप्त हो गया।

नवाब बहादुर ने गञ्ज नामक मुहल्ले में राजा मेहरा के लिए एक सुन्दर हवेली बनवा दी थी और उसी के आस-पास राजा मेहरा ने अपने लिए कुछ जायदाद भी मोल ले ली थी। अन्त में नवाब ने रूमी दरवाज़ा के पास उनके रहने के लिए एक दूसरा सुन्दर मकान बनवा दिया और वे उसी मकान में आजीवन रहे। यह इमारत अभी तक मौजूद है।

राजा मेहरा जाति के मल्लाह थे। बड़े बुद्धिमान और विचारशील आदमी थे। उनकी जाति वालों ने उन्हें अपना सरपञ्च नियुक्त किया था। उच्च पद प्राप्त करने पर भी वे अपनी बिरादरी वालों की बड़ी ख़ातिर करते थे और उनकी भलाई के लिए नवाब साहब से सदैव सिफ़ारिश किया करते थे।

राजदरबार में उनका यथेष्ट मान था। वे झालरदार पालकी में सवार होकर नवाब के दरबार में जाते थे और दूसरे सरदारों के बराबर के आसन पर बैठते थे। बड़े चतुर और हिसाब-किताब में इतने चौकस थे कि राजा झाऊलाल कभी-कभी हँसी में उन्हें 'कायस्थ का बच्चा' कहा करते थे।

एक बार एक मुसलमान मन्त्री ने नवाब साहब से कहा कि हुज़ूर, आपने एक नीच जाति के मनुष्य को इतना उच्च पद प्रदान करके अपने दरबार के सरदारों को दुखी किया है। वे लोग सदैव उससे जला करते हैं।

नवाब ने कहा, जलने दो। मैंने उसके गुणों का आदर किया है, जो मेरा कर्तव्य था। उच्च वंश में जन्म लेने से ही कोई उच्च नहीं हो जाता। जिसमें सद्गुण होते हैं, वही उच्च पद प्राप्त करता है। सुरजी ईमानदार

है, हमारे राज्य का शुभचिन्तक और धर्मभीरु है। सच बोलता है, झूठी ख़ुशामद नहीं करता और न कभी कोई अन्याय करने की सलाह देता है।

एक दिन नवाब ने कहा—मैंने कहारों का नाच नहीं देखा है। राजा मेहरा ने कई सुन्दरी स्त्रियों को कहारों का नाच, उनका गाना और 'हुडुक' बजाना सिखाया और एक दिन नवाब के सामने उन्हें उपस्थित किया। नवाब बहुत प्रसन्न हुए और उस नाच का नाम 'कहरवा' नाच रख दिया। इस नाच का इतना प्रचार हुआ कि तवायफ़ों और नक़्क़ालों (भाँड़ों) ने भी उसकी नक़ल की।

राजा मेहरा ने बड़ी लम्बी आयु पाई थी। नवाब सआदतअली ख़ाँ और नवाब नसीरुद्दीन हैदर के काल तक जीवित रहे। नवाब आसिफ़ुद्दौला की तरह ही उनके उत्तराधिकारी नवाबों के दरबार में भी राजा मेहरा का बड़ा मान था। नवाब आसिफ़ुद्दौला की तरह ये भी गुणियों का बड़ा आदर करते थे। मुशायरों में बड़े शौक़ से जाते थे और कवियों को अपने घर बुला कर उनका सम्मान करते थे। आग़ा मीर नाम के एक कविता-प्रेमी सरदार से इनकी गहरी मित्रता थी। एक बार लखनऊ के विख्यात कवि 'नासिख़' ने आग़ा मीर की प्रशंसा में एक कविता लिखी। राजा मेहरा ने आग़ा मीर से उन्हें सवा लाख रुपए इनाम दिलवाए। ये स्वयं भी कवियों को बहुत रुपए दिया करते थे। इसके सिवा यदि कोई भी शरीफ़ आदमी इनके पास अपनी किसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए जाता, तो कभी ख़ाली हाथ नहीं लौटता था। चुपके से जो कुछ बन पड़ता, उसे दे देते और कहते, मैं इस योग्य नहीं हूँ कि आपकी कुछ सेवा कर सकूँ। पान खाने के लिए जो कुछ बन पड़ा है, सेवा में उपस्थित किया है। इसे स्वीकार कीजिए। परन्तु इसका कहीं ज़िक्र न कीजिएगा।

अपने काम के लिए राजा मेहरा किसी को कष्ट देना नहीं चाहते थे। एक बार नवाब आसिफ़ुद्दौला ने कहा कि हमारी इच्छा है कि तुम अपना मकान छोड़ कर मेरे पास ही चले आओ। हमारे महल के आस-पास जो जगह पसन्द करो, तुम्हारे लिए मकान बनवा दिया जाए।

राजा ने हाथ जोड़ कर कहा—हुज़ूर, राजमहल के आसपास भले आदमियों की बस्ती है। किसी भले आदमी का मकान तुड़वा कर मेरे लिए मकान बनेगा, तो मैं उसमें सुख से न रह सकूँगा। जहाँ रहता हूँ, वहीं अच्छा है। अथवा फिर किसी ऐसी जगह बनवा दीजिए, जहाँ रहने से किसी को कष्ट न हो।

नवाब ने ऐसा ही किया और नदी किनारे ज़नाना-घाट के पास एक मकान बनवा दिया, जिसका ज़िक्र ऊपर हो चुका है।

नवाब आसिफ़ुद्दौला को मुर्ग़बाज़ी का बड़ा शौक़ था। इसलिए राजा मेहरा ने भी बहुत से लड़ाके मुर्ग़ पाल रक्खे थे। मुहर्रम में ताज़ियादारी भी करते थे। परन्तु अपने धार्मिक विचारों पर दृढ़ थे।

राजा मेहरा अपनी जाति के सच्चे सेवक थे और उसकी भलाई करने से कभी भी पराङ्मुख नहीं होते थे।

निराश जीवन

[श्री० शिवप्रसाद]

सिहर उठते हैं निर्बल मन।
निराशा है जिनका जीवन॥

उन्हीं के जीवन का ले सार।
रात्रि लेती रहती अवतार॥

हँसा करते तारक समुदाय!
यही जग का जीवन है हाय!!

अंगरेज़ों में अन्धविश्वास

[श्री० सत्यभक्त जी]



प्रत्येक देश और प्रत्येक समाज में ऐसी कितनी ही प्रथाएँ और रूढ़ियाँ प्रचलित होती हैं, जो अन्य लोगों की तथा उसी समाज के कितने ही सुधार-प्रिय तथा शिक्षित व्यक्तियों की दृष्टि में भ्रम-पूर्ण और मिथ्या प्रतीत होती हैं। ऐसी रूढ़ियों को 'अन्धविश्वास' के नाम से पुकारा जाता है और जो लोग उनका पालन करते हैं, वे जाहिल अथवा मूढ़ समझे जाते हैं। इसी प्रकार की अनेक रूढ़ियों के आधार पर भारतवर्ष से विद्वेष रखने वाले अनेक विदेशी लेखक इस देश के निवासियों को असभ्य अथवा अर्द्ध-सभ्य कहते हैं। जब कभी भारतवासी उन अधिकारों का दावा करते हैं, जो वर्तमान समय में संसार के स्वतन्त्र, उन्नतिशील राष्ट्रों को प्राप्त हैं, तो इसी प्रकार के अनेक आक्षेप करके उनकी माँग का विरोध किया जाता है। परन्तु ये लोग इस बात को भूल जाते हैं कि इस प्रकार की प्रथाएँ तथा रूढ़ियाँ सभ्य से सभ्य देशों में, जहाँ शिक्षा का पूर्ण-रूप से प्रचार हो चुका है तथा ज्ञान-विज्ञान की भली-भाँति उन्नति हो चुकी है, पाई जाती हैं। इतना ही नहीं, वहाँ के विद्वान उनकी खोज करके तथा उनको लिपि-बद्ध करके इस बात की चेष्टा करते हैं कि लोग इस विषय का अध्ययन करें तथा ऐसे साहित्य का सर्व-साधारण में प्रचार हो। इङ्गलैण्ड तथा अन्य यूरोपियन देशों में इस प्रकार की प्रथाओं तथा साहित्य की आलोचना करने वाली संस्थाएँ स्थापित हो गई हैं। इस विषय के मर्मज्ञों के मतानुसार इस प्रकार की जनश्रुतियों और लोक-कथाओं के द्वारा समाज के अज्ञात इतिहास पर प्रकाश पड़ता है और वर्तमान सामाजिक नियमों की वास्तविकता का प[ता] लगता है। वे लोग इन प्रथाओं को समूल नष्ट करने[के] पक्ष में भी नहीं हैं, क्योंकि उनकी सम्मति में इनमें अधिकांश सिवाय निर्दोष मनोविनोद के कुछ अर्थ न[हीं] रखतीं। हाँ, जो प्रथाएँ समाज के हित की दृष्टि से हानि-कारक तथा नृशंसतापूर्ण हों, उनको मिटाने की चे[ष्टा] अवश्य की जानी चाहिए।

जन्म

भारतीय और अन्य पूर्वीय जातियों की भाँति अं[ग]रेज़ों में भी ऐसी अनेकों रूढ़ियाँ प्रचलित हैं, जिन[का] कोई विशेष उद्देश्य नहीं जान पड़ता और न वे विज्ञा[न] के अनुसार उपयोगिनी सिद्ध की जा सकती हैं। उन[में] से कितनी ही केवल हँसने लायक़ हैं और कितनी [ही] कुसंस्कार की परिचायिका हैं। ये प्रथाएँ साधारण [और] नीची श्रेणी के लोगों में ही नहीं, बड़े-बड़े शिक्षित परिवा[रों] तक में पाई जाती हैं। मि० बाल्डविन ने, जो कुछ [दिन] पहले तक इङ्गलैण्ड के प्रधान मन्त्री थे और अब भी राज[-]नीतिक क्षेत्र में कञ्जरवेटिव पार्टी के सबसे अधिक प्रभाव[-]शाली नेता हैं, सन् १९२६ में एक अवसर पर कहा [था] कि—"जिस दिन मैं पैदा हुआ था, हमारी रसोईदारि[न] जो एक बुढ़िया थी, मुझे कम्बल में लपेट कर सीढ़ि[यों] पर ले गई, ताकि मैं संसार में उन्नति के सोपान पर च[ढ़] सकूँ। उसकी इच्छा थी कि मैं बहुत बड़ी पदवी प्रा[प्त] करूँ, इसलिए वह मुझे एकदम छत पर ले गई और कुर्सी पर चढ़ कर मुझे दोनों हाथों से ऊपर की ओर उ[ठा] दिया।" इस प्रकार के और भी कितने ही अन्धविश्वा[स] प्रसवकाल के सम्बन्ध में वहाँ प्रचलित हैं। हमारे दे[श] की भाँति इङ्गलैण्ड में बच्चे के जन्म-दिन के शुभ-अशु[भ] होने का भी बड़ा ख़याल रक्खा जाता है और इ[स] सम्बन्ध में निम्नलिखित छन्दोबद्ध कहावत वहाँ के लो[गों] में आमतौर पर प्रचलित है :—

Monday's child is fair of face,
Tuesday's child is full of grace,
Wednesday's child is full of woe,
And Thursday's child has far to go,
Friday's child is loving and giving,
And Saturday's child has to work for a living,
But the bairn that is born on sabath day,
Is bonny and lucky and wise and gay.

इसका अर्थ यह है कि सोमवार को उत्पन्न होने वाला बच्चा सुन्दर होता है; मङ्गलवार का श्रीमान होता है; बुधवार का दुखी होता है; बृहस्पतिवार वाले को दूर की यात्रा करनी पड़ती है; शुक्रवार का प्रेमशील तथा उदार होता है; शनिवार वाले को परिश्रम द्वारा जीविका उपार्जन करनी पड़ती है, और रविवार वाला सुन्दर, सौभाग्यशाली, बुद्धिमान और प्रमुदित होता है।

इसी प्रकार बालक का जन्म-समय भी उसके सौभाग्य या दुर्भाग्य का कारण माना जाता है। ४, ८ और १२ अथवा ३, ६, ९ और १२ बजे उत्पन्न होने वाला बालक विशेष रूप से भाग्यशाली ख़याल किया जाता है। अगर जन्म के समय बालक का सिर झिल्ली से ढका हो, तो इसे बड़ा शुभ चिन्ह माना जाता है और उस झिल्ली को सदैव बहुत सँभाल कर रक्खा जाता है। अगर बालक की नाक पर नीली रेखा दिखलाई दे, तो उसके डूब कर मरने की सम्भावना की जाती है। जो व्यक्ति सर्वप्रथम बच्चे को चूमता है, उसका प्रभाव बच्चे पर पड़ता है और इसलिए ऐसा करने से पूर्व माँ की आज्ञा लेना आवश्यक समझा जाता है।

डेवनशायर नामक स्थान में प्रसवकाल के अवसर पर पनीर का एक बड़ा टुकड़ा तैयार किया जाता है और बालक के भूमिष्ठ होते ही उसका एक भाग डॉक्टर को खाना पड़ता है। उत्तरी प्रदेशों में एक 'केक' बनाया जाता है, जिसे बच्चे का जन्म हो जाने पर तमाम सम्बन्धी खाते हैं।

नवजात शिशु के सम्बन्ध में और भी अनेक नियमों का पालन आवश्यक माना जाता है। हमारे यहाँ की भाँति इङ्गलैण्ड वाले भी एक वर्ष की उम्र तक बच्चे के बाल और नाख़ून काटना बुरा समझते हैं। अगर सर्वप्रथम काटे हुए नाख़ूनों को 'ऐश' नामक पेड़ के नीचे गाड़ दिया जाय, तो बालक उच्चकोटि का गवैया होता है। आयु के प्रथम वर्ष में बालक को दर्पण दिखलाना निषिद्ध माना जाता है। बच्चे के दाहिने हाथ को धोने के बजाय गीले कपड़े से पोंछ देना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से वह धन-संग्रह करने में सफल हो सकेगा। लन्दन और कितने ही अन्य नगरों के निवासी बच्चे के तोले जाने को बहुत बुरा समझते हैं; क्योंकि उनकी सम्मति में ऐसा करने से बालक एक वर्ष के भीतर मर जायगा। कितने ही लोग बच्चे का नाम निश्चित करने के लिए बाइबिल को खोलते हैं और जो पृष्ठ सामने आता है, उसी में से कोई नाम चुन लेते हैं।

जब तक बालक का बपतिस्मा न हो जाय, तब तक उसे किसी के घर ले जाना अमङ्गलजनक माना जाता है। जिस समय उसे बपतिस्मा के लिए गिर्जे में ले जाते हैं, उस समय यदि वहाँ कोई नई खुदी क़ब्र दिखलाई दे तो यह बच्चे की मृत्यु का चिह्न है। ऐसे अवसर पर गिर्जे का उत्तरी दरवाज़ा खुला रक्खा जाता है, ताकि बच्चे के भीतर निवास करने वाला शैतान उसमें होकर भाग सके। अगर बच्चा "पवित्र जल" छिड़कने से न रोवे, तो इसे अशुभ माना जाता है और उसे चुपके से चिकोटी काट कर रुला दिया जाता है। अगर बपतिस्मा के लिए एक लड़का और एक लड़की पादरी के सामने एक ही समय लाए जायँ, तो पादरी पहले लड़के को बपतिस्मा देता है; क्योंकि ऐसा न करने से लड़के की दाढ़ी-मूँछें लड़की को निकल आएँगी।

इङ्गलैण्ड के लोगों में प्राचीन-काल से यह विश्वास फैला हुआ है कि बपतिस्मा के नवीन जलपात्र से सबसे पहले जिस बालक का संस्कार किया जायगा, उसकी मृत्यु हो जायगी। यह विश्वास उसी तरह का है जैसे कि हमारे यहाँ लोग विश्वास करते हैं कि कोई नवीन मकान या कुआँ या पुल मनुष्य का बलिदान पाने से ही सन्तुष्ट होता है। इसका एक उदाहरण 'हडर्सफ़ील्ड एकज़ामिनर' नामक पत्र की २५ नवम्बर १९१० की संख्या में प्रकाशित हुआ था। उसमें लिखा था—"डालटन में एक नया गिर्जाघर बनाया जा रहा था। उसी स्थान में एक लुहार था, जिसके सात लड़कियाँ

थीं और हाल ही में एक लड़का उत्पन्न हुआ था। नवीन गिर्जे के उद्घाटन के कुछ दिन पहले वह पादरी के पास पहुँचा और अस्थायी गिर्जे में अपने लड़के को बपतिस्मा देने की प्रार्थना की। पादरी बोला—"जोसफ़, जल्दी क्यों करते हो? वृहस्पतिवार तक ठहर जाओ, तुम्हारे लड़के का बपतिस्मा नए गिर्जे में उद्घाटन के अवसर पर किया जायगा।" लुहार ने कुछ सङ्कोचपूर्वक कहा—"यह तो ठीक है साहब, पर आप जानते हैं, इस बार हमारे यहाँ लड़का पैदा हुआ है और वह मर जायगा तो तमाम घर वालों को बड़ा दुःख होगा। अगर यह लड़की होती तो हमको ज़रा भी परवाह नहीं होती; क्योंकि हमारे यहाँ लड़कियाँ बहुत ज़्यादा होती हैं।"

बपतिस्मा हो जाने के बाद बच्चे को परिचित व्यक्तियों के घर ले जाया जाता है और सब जगहों से उसे कुछ भेंट मिलती है। पुराने विचारों के लोग अण्डा, नमक, डबल रोटी, केक या एक सिक्का देते हैं। कुछ स्थानों में चीनी और चाय भी दी जाती है। कभी-कभी भेंट का पदार्थ बच्चे के कपड़े से बाँध दिया जाता है और घर पहुँचने तक नहीं खोला जाता। लीसेस्टरशायर में बच्चे को देखने के लिए जितने मित्र और सम्बन्धी आते हैं, वे सब उसके हाथ में एक 'फ़्लोरिन' (२ शिलिङ्ग का चाँदी का सिक्का) देते हैं। ये सिक्के दूसरे सिक्कों से बदले नहीं जा सकते और बच्चे के कपड़े के लिए ही ख़र्च किए जाते हैं। जो व्यक्ति उस कपड़े को देखता है वह उसे सौभाग्य की कामना से छू लेता है।

बच्चा जब बड़ा होता है और उसका दूध का दाँत गिरता है, तो उसे आग में डाल कर कहा जाता है—'अच्छा दाँत—बुरा दाँत—भगवान दे मुझे नया अच्छा दाँत।'

विवाह

विवाह के सम्बन्ध में सर्व-साधारण में ऐसी कितनी ही कहावतें प्रचलित हैं, जिनको सिवाय अन्धविश्वास के कुछ नहीं कहा जा सकता। उदाहरण के लिए लोगों की धारणा है कि मई के महीने में विवाह करना अशुभ होता है। इसका फल यह होता है कि प्रायः अप्रैल के अन्त में विवाहों की संख्या बहुत बढ़ जाती है। इसी प्रकार विवाह के दिन के सम्बन्ध में शुभ-अशुभ का विचार किया जाता है। इस सम्बन्ध में निम्न-लिखित जनश्रुति प्रायः सर्वत्र सुनने में आती है:—

Monday for health,
Tuesday for wealth,
Wednesday best day for all.
Thursday for crosses,
Friday for losses,
Saturday no luck at all.

अर्थात्—"सोमवार का विवाह स्वास्थ्य के लिए, मङ्गल का धन के लिए और बुध का सब बातों के लिए शुभ है। वृहस्पति का विवाह असफलता, शुक्र का हानि और शनिवार का भाग्यहीनता का देने वाला है।"

दुलहिन के लिए अपने विवाह की घोषणा सुनना, विवाह की पूरी पोशाक पहिन कर दर्पण देखना, अथवा विवाह की पोशाक को दीपक के प्रकाश में देखना निषिद्ध माना जाता है। दुलहिन की पोशाक के सम्बन्ध में भी एक जनश्रुति प्रचलित है, जो इस प्रकार है:—

Something old, something new,
Something borrowed, something blue.

अर्थात्—"कुछ चीज़ें पुरानी हों, कुछ नई हों, कुछ माँगी हुई हों और कुछ नीले रङ्ग की हों।"

यदि विवाह के समय सूर्य निकला रहे, तो दुलहिन को भाग्यवान समझा जाता है। जब वह गिर्जे के लिए रवाना होती है, तो पहले दाहिना पैर घर की देहरी पर रखती है। गिर्जे में विवाह-कार्य होते समय अपने घर का दर्वाज़ा बन्द रखना बुरा माना जाता है। यदि गिर्जे में प्रवेश करने से ठीक पहले वहाँ की घड़ी बजे तो यह शुभ चिह्न है और इसके लिए देहातों की दुलहिनें जब तक घण्टा नहीं बजता, तब तक बाहर खड़ी रह कर उसकी प्रतीक्षा किया करती हैं। किसी-किसी स्थान में विवाह हो जाने के बाद दो पत्थर खड़े करके और उन पर एक पत्थर आड़ा रख कर अथवा एक लकड़ी की बेञ्च रख कर नव-दम्पति का रास्ता रोक दिया जाता है और उन्हें उछल कर उसे पार करना पड़ता है। जो मित्र उनको इस कार्य में सहायता देते हैं, उनको कुछ भेंट दी जाती है। जिस प्रकार हमारे देश में विवाह के अवसर पर धान की खीलें फेंकने की रीति है, उसी प्रकार अङ्गरेज़ों में भी गिर्जा से लौटते समय नव-दम्पति

पर चावल फेंके जाते थे। पर अब कितने ही वर्षों से चावल का रिवाज प्रायः मिट गया और उसके स्थान में 'कनफैटी' (चमकीले काग़ज़ की बनी छोटी-छोटी टिकुलियाँ) फेंकी जाती हैं। दम्पति पर पुराने जूते फेंकने का रिवाज भी अङ्गरेज़ों में सर्वत्र प्रचलित है। जब दुलहिन अपने पति के घर के पास पहुँचती है, तो उसकी गाड़ी पर या स्वयं उसी पर रकाबी में रख कर एक केक फेंका जाता है और यदि रकाबी गिर कर टूट नहीं जाती या कम से कम उसका किनारा झड़ नहीं जाता, तो इसे अशुभ चिह्न समझा जाता है। कहीं-कहीं पति के मकान की देहली पर पहुँचने पर दुलहिन को गोद में उठा कर भीतर ले जाते हैं। दुलहिन पति-गृह में प्रवेश करते समय एक पत्थर का टुकड़ा साथ में ले जाती है।

मृत्यु

जब कोई व्यक्ति मर जाता है, तो उसके मित्र, पड़ोसी तथा अन्य लोग उसके पास इकट्ठे हो जाते हैं और उसके हाथ को छूते हैं। आजकल इसका कारण यह बतलाया जाता है कि उन व्यक्तियों को मरने वाले के प्रति किसी प्रकार का द्वेष-भाव नहीं है, पर प्राचीन काल में इसका उद्देश्य प्रेतात्मा के कोप से सुरक्षित रहना था। इसी भय से कहीं-कहीं मृत व्यक्ति के कमरे को चारों तरफ़ से पर्दा डाल कर ढक देते हैं।

एक लेखक के मतानुसार अब से दो-तीन सौ वर्ष पहले किसी-किसी स्थान में मृत व्यक्ति के नाम पर एक रोटी, एक प्याला जौ की शराब तथा छः आना पैसा एक व्यक्ति को दिया जाता था, जिसे "पाप-भक्षक" (Sin Eater) कहते थे। वह इन वस्तुओं को खा-पीकर मरने वाले के पापों को अपने ऊपर ले लेता था। अब यह प्रथा तो शेष नहीं रह गई है और कितने ही लोग इसे कल्पित बतलाते हैं, पर अब भी कितने ही लोग मुर्दे के ऊपर रोटी का एक टुकड़ा या नमक से भरा प्याला रख देते हैं। यह भी विश्वास किया जाता है कि मरे हुए व्यक्ति के कपड़े बहुत जल्दी गल जाते हैं।

जिन लोगों की आर्थिक अवस्था अच्छी होती है, वे प्रायः मुर्दे को दफ़नाने में बहुत अधिक ख़र्च करते हैं। सन् १९२४ में एक औरत के शव पर एक सौ हार चढ़ाए गए थे, जिनमें से कितने ही बड़े मूल्यवान थे। मृत्यु के अवसर पर कुछ खाना-पीना भी होता है। कुछ व्यक्ति अब भी ऐसे मिलते हैं, जो प्राचीन काल की भाँति मुर्दे के नाम पर भोजन-सामग्री उत्सर्ग करते हैं। सन् १९२६ में नैण्टविच नामक स्थान के एक परिवार की तीन बहिनें अपनी मृता माता के शव के पास फल, रोटी, मक्खन, चाय आदि से भरी हुई थाली रखती पाई गई थीं। सन् १९२८ में डेवनशायर की एक स्त्री ने एक डिस्ट्रिक्ट बोर्ड पर इसलिए नालिश की थी कि उसे अपने मृत सम्बन्धी की क़ब्र पर भोजन और फूल चढ़ाने से रोका गया। यार्कशायर में एक मृत व्यक्ति की माता और बहिन प्रति सप्ताह उसकी क़ब्र पर चॉकलेट तथा मिठाई चढ़ाया करती थीं।

नवीन गिर्जाघरों के क़ब्रिस्तान में सब से पहले मुर्दा दफ़न करना अमङ्गलजनक समझा जाता है और इसलिए बहुत दिनों तक वे योंही पड़े रहते हैं। इस तरह के एक चर्च-यार्ड में बहुत समय बाद सड़क पर पड़ा हुआ किसी अनाथ व्यक्ति का शव दफ़नाया गया और उसके बाद अन्य लोग उसे काम में लाने लगे। इसी प्रकार एक दूसरे चर्च-यार्ड का उद्घाटन एक यात्री के नौकर के मर जाने से हुआ। चर्च-यार्ड के उत्तरी भाग में शव दफ़नाना भी अशुभ माना जाता है।

हमारे देश की भाँति अङ्गरेज़ों में भी कहीं-कहीं अशौच-पालन का नियम देखने में आता है। ऐसे स्थानों में मृत व्यक्ति के सम्बन्धी रविवार के दिन गिर्जाघर में दूसरे लोगों से अलग रहते हैं और घर लौटते समय बातचीत नहीं करते।

स्त्रियों की ख़रीद-फ़रोख़्त

पुराने ज़माने में इङ्गलैण्ड में प्रचलित राजकीय तथा धामक नियमों के अनुसार कोई व्यक्ति अपनी पत्नी को तलाक़ नहीं दे सकता था। इसलिए वहाँ के निवासी ऐसी आवश्यकता पड़ने पर अपनी स्त्री को बेच डालते थे। अगर स्त्री की क़ीमत एक शिलिङ्ग (१२ आना) से कम न ली गई हो और उसे गले में रस्सी या पट्टा डाल कर ख़रीददार के सुपुर्द किया गया हो तो बिक्री क़ानूनन् जायज़ मान ली जाती थी। वर्तमान समय में तलाक़ की प्रथा प्रचलित हो जाने से स्त्री बेचने की प्रथा की आवश्यकता नहीं रह गई है, तो भी कभी-कभी ऐसी घटनाएँ होती रहती हैं।

सन् १९०८ में एक व्यक्ति ने अपनी स्त्री को मार-पीट कर घर से निकाल दिया था। स्त्री ने अदालत में दावा किया और वहाँ पता लगा कि उसके पति ने उसे सन् १८८० में ५ पौण्ड में ख़रीदा था और इस समय तक उसके १२ बच्चे उत्पन्न हो चुके थे। सन् १९१९ में कुली का काम करने वाली एक स्त्री ने टोटनहम के मैजिस्ट्रेट की अदालत में बतलाया था कि उसके पति ने उसे एक दूसरे व्यक्ति के हाथ बेच डाला है। सन् १९२० में साउथएण्ड की पुलिस-अदालत में एक मुक़दमे की कार्यवाही में प्रगट हुआ कि एक व्यक्ति ने एक चाय की दुकान में बैठ कर किसी अन्य व्यक्ति से एक राज़ीनामे पर दस्तख़त कराया था, जिसमें लिखा था कि दस्तख़त करने वाला व्यक्ति उसकी स्त्री को अपने पास रक्खेगा और उसकी देख-भाल करेगा। सन् १९२४ में 'न्यू कैसिल आन टेन' की अदालत में एक फल बेचने वाले की स्त्री ने बतलाया था कि उसके पति ने एक दूसरे व्यक्ति की स्त्री को ख़रीदने के लिए लिखा-पढ़ी की है। सन् १९२६ में लीड्स के मैजिस्ट्रेट की अदालत में एक मुक़दमे की कार्यवाही में प्रकट हुआ कि एक व्यक्ति ने अपनी पत्नी को उसकी रज़ामन्दी से १० पौण्ड में बेच डाला है। सन् १९२८ में ब्लैकवुड के एक व्यक्ति ने अपनी स्त्री को १ पौण्ड में ही बेच डाला था और अदालत के सामने इस बात को स्वीकार करते हुए कहा था कि—"मैंने अपने बच्चे को इसलिए नहीं बेचा कि वह मेरे ही रक्त-मांस से उत्पन्न हुआ है।" स्त्रियों को इस प्रकार बेचने और ख़रीदने का रिवाज अक्सर ग़रीब लोगों में पाया जाता है; क्योंकि क़ानून के अनुसार तलाक़ देने में बहुत सी उलझनें पड़ती हैं और ख़र्च भी काफ़ी पड़ता है, जिसे ऐसे लोग बर्दाश्त नहीं कर सकते।

कुछ व्यवसाय

कुछ समय पहले तक इङ्गलैण्ड के ग्वालों में यह विश्वास पाया जाता था कि अगर गाय को दुहने से पहले और पीछे हाथ न धो लिए जायँ, तो गाय का दूध सूख जाता है। अगर दुहते समय दूध की कुछ बूँदें गाय के पैर पर पड़ जायँ तो भी उसका दूध सूख जायगा। दुहने से पहले दूध की कुछ बूँदें ग्वाला अपने हाथ पर डाल लेता है। दुहने के आरम्भ में तथा बाद में कुछ बूँदें ज़मीन पर भी डालनी पड़ती हैं। गाय की पूँछ चाहे कैसी भी उलझी हुई हो, उसे तेज़ धार की चीज़ से नहीं काटना चाहिए, अन्यथा उसका बच्चा अधूरा ही उत्पन्न हो जायगा।

जहाज़ों के मल्लाह शकुनों और दैवी चिन्हों का बहुत ख़याल रखते हैं। जहाज़ पर अगर कोई शव या शव रखने का सन्दूक़ हो, या शव की क्रिया-कर्म कराने के लिए कोई पादरी यात्रा कर रहा हो, तो इसे बहुत अशुभ समझा जाता है। सीटी बजाने या मस्तूल में कील ठोकने से आँधी आने का भय रहता है। जिन जहाज़ों का नाम A (ए) पर समाप्त होता है (जैसे Victoria) उनको भाग्यहीन समझा जाता है। अगर जहाज़ में से कोई बिल्ली डूब जाय तो इससे जहाज़ के विपत्ति में पड़ने की आशङ्का होती है। अगर चूहे जहाज़ को छोड़ कर चले जायँ तो समझना चाहिए कि वह डूबने वाला है। यदि कोई स्थल का पक्षी आकर जहाज़ पर बैठ जाय तो यह बुरा समझा जाता है।

मछली पकड़ने वालों का विश्वास है कि ऋतुओं का अधीश्वर चन्द्रमा है और जब शुक्र के दिन नवीन चन्द्रमा उदय होता है, तो इसे ख़राब मौसम का चिह्न माना जाता है। अगर किसी घर की खिड़की के पास एक तरह की छोटी समुद्री चिड़िया आकर उड़ने लगे तो घर का जो व्यक्ति समुद्र में गया हो, उसका जीवन सङ्कटापन्न समझा जाता है। कुछ स्थानों के मछली वालों की औरतें दोपहर के बाद ऊन नहीं काततीं; क्योंकि इससे उनके पतियों को हानि पहुँचने का भय रहता है। जो नावें मनहूस समझी जाती हैं और जिनके चलाने वाले डूब जाते हैं, उनको कभी-कभी जला दिया जाता है।

पशु-पक्षी

भारतवासियों की भाँति इङ्गलैण्ड वाले भी पशु-पक्षियों द्वारा भविष्य घटनाओं का अनुमान करते हैं। लन्दन में अगर किसी के घर पर कबूतर आकर बैठ जाय, तो इसे मौत की निशानी माना जाता है। कबूतर का पङ्ख भी महा अशुभ माना जाता है और यदि किसी के तकिए या गद्दे में कबूतर का पङ्ख हो तो उसके घुल-घुल कर मरने की सम्भावना की जाती है। इङ्गलैण्ड में 'रॉबिन' पक्षी प्रायः शुभ समझा जाता है पर अगर

वह किसी खिड़की पर आकर बैठ जाय, तो इसे मृत्यु का सन्देश समझा जाता है। अगर बतखें किसी झाड़ी के नीचे इकट्ठी हों तो यह झगड़े की सम्भावना प्रकट करता है। कोयल की बोली से विवाह के समय का पता लगाया जाता है। शहद की मक्खियाँ अचानक अपना छत्ता छोड़ कर चली जाती हैं तो इससे लोग अनुमान लगाते हैं कि मक्खियाँ बड़ी जल्दी असन्तुष्ट होती हैं और उनको ख़ुश रखने के लिए घर में होने वाली घटनाएँ उनको सुना दी जाती हैं, ताकि वे अपने को एक कुटुम्बी की तरह समझें।

अन्य शकुन

ऊपर जिन अन्धविश्वासों का वर्णन किया गया है, उनके सिवाय और भी ऐसी सैकड़ों बातें हैं, जिनसे लोग विपत्ति अथवा मृत्यु के आने का अनुमान लगाया करते हैं। तस्वीर का गिरना, घर में बिल्ली का मर जाना, चूहों का मेज़, कुर्सी आदि को काटना, शीशे का टूटना, छछूँदर का घर की तरफ़ आना, कुत्ते का रोना, मुर्ग़े का आधी रात से पहले बोलना, शव-यात्रा के समय घोड़े का धीरे से हिनहिनाना आदि घटनाएँ सदैव अशुभ समझी जाती हैं। अगर किसी व्यक्ति के नाख़ूनों पर धब्बे पड़े हों तो इसे भेंट पाने का चिन्ह माना जाता है। अगर किसी की दोनों भौंहें मिली हों, तो उसके फाँसी पाने या डूब कर मरने की सम्भावना की जाती है। अगर किसी का बाल आग में डालने पर तेज़ी से जले तो इसे दीर्घ-जीवन का परिचायक समझा जाता है। कान में सनसनाहट होने से बदनामी की और नाक में खुजली होने से क्लेश की आशङ्का की जाती है। दाहिना हाथ खुजलाने से रुपया मिलने की और बाएँ हाथ में खुजली होने से रुपया जाने की सम्भावना की जाती है। पैर में खुजली होना यात्रा का चिन्ह माना जाता है। छींकना भी बड़ा महत्व-पूर्ण शकुन समझा जाता है और इसके विषय में यह जनश्रुति प्रसिद्ध है :—

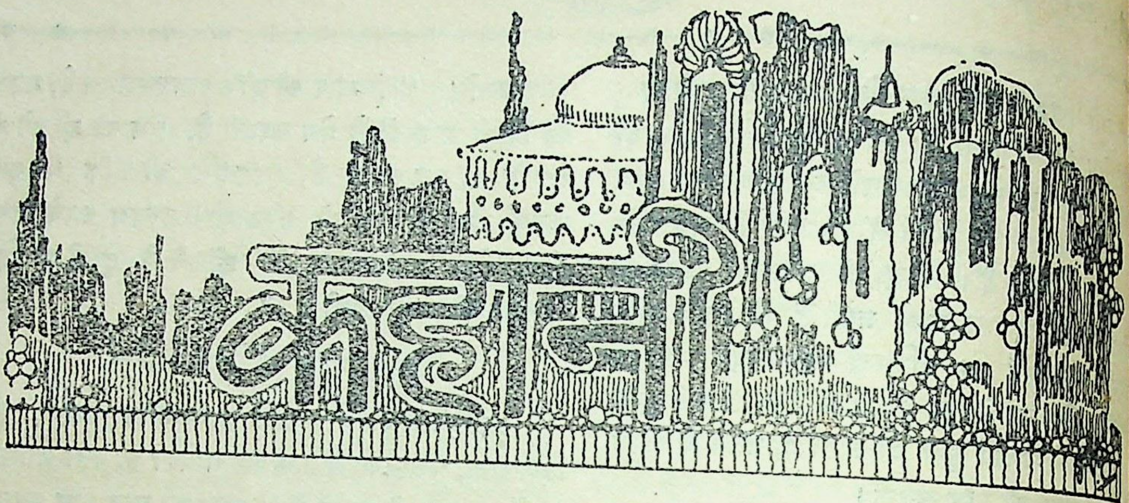
Sneeze on Monday, sneeze for danger,
Sneeze on Tuesday, kiss a stanger,
Sneeze on Wednesday, get a letter,
Sneeze on Thursday, something better,
Sneeze on Friday, sneeze for sorrow,
Saturday, see your true love to-morrow.

अर्थात्—"सोमवार की छींक अमङ्गलजनक है, मङ्गल की किसी अजनबी से प्रेम कराती है, बुध को छींकने से किसी का पत्र आता है, बृहस्पति की छींक से कुछ भलाई होती है, शुक्र की छींक शोक उत्पन्न करने वाली होती है और शनिवार को छींकने से दूसरे ही दिन प्रियजन की प्राप्ति होती है।"

जन्त्र-मन्त्र और तावीज़

अङ्गरेज़ों में ज्योतिषियों से भाग्य-गणना कराना, हाथ दिखलाना, 'क्रिस्टल' में ताक कर भविष्य का पता लगाना; ताशों या चाय के प्याले से होनहार का ज्ञान प्राप्त करना; अङ्कों अथवा प्रश्नावलियों से अपने मनोरथ की सिद्धि का अनुमान करना, तावीज़ बाँधना, जन्त्र-मन्त्र करना आदि अन्धविश्वासों का ख़ूब प्रचार है। लन्दन की कितनी ही कुमारियाँ अपने प्रेमी को प्राप्त करने के लिए "ड्रैगन्स ब्लड" नामक पदार्थ को, जो किसी पेड़ का गोंद होता है या एक पेड़ की जड़ को आग में डालती हैं। अगर किसी के दाँत में दर्द होता हो, तो "ऐश" नामक पेड़ के नीचे बैठ कर पैर के अँगूठे का नाख़ून काटा जाता है। इङ्गलैण्ड में कितने ही लोग तावीज़ बेचने का पेशा करते हैं और कितनी ही स्त्रियाँ और पुरुष अपनी मनोकाम-नाओं की सिद्धि के लिए उनको ख़रीदते हैं। नवजात शिशु के मस्तक की झिल्ली डूबने से बचने के लिए बड़ा अच्छा टोटका मानी जाती है और एक समय था कि मुँहमाँगा दाम देने पर भी वह प्राप्त नहीं होती थी। अब भी कभी-कभी पत्रों में उसकी बिक्री के लिए विज्ञापन छपा करते हैं। कितने ही लोग विपत्ति से बचने के लिए भेड़ के गाल की हड्डी, विशेष शक्ल का आलू, चाँदी की अँगूठी, छछूँदर का पैर, तरह-तरह के पत्थर, कोयला, चमड़े से ढकी पारे की शीशी, इंट का टुकड़ा आदि न मालूम क्या-क्या चीज़ें साथ में लिए फिरते हैं।

ऊपर जिन अन्धविश्वासों का वर्णन किया गया है, वे केवल उदाहरण की भाँति हैं। यदि सब तरह के अन्धविश्वासों का पूरी तरह से वर्णन किया जाय तो एक नहीं, कितने ही बड़े-बड़े पोथे लिखे जा सकते हैं और इस विषय की कितनी ही पुस्तकें अङ्गरेज़ी भाषा में मिलती भी हैं।



मँगरू का भार

[श्री० ललितकिशोरसिंह, बी० एस-सी०]

ग़रीबों के जीवन में भी कभी-कभी सुख की घड़ियाँ आती हैं। हीरा मुसहर की आज वही घड़ियाँ आई हैं। पिछले कई दिनों से उसने ताड़ी की दूकान का मुँह नहीं देखा था। आज दोपहर बाद खलिहान से छूटते ही वह ताड़ीख़ाने में जा पहुँचा और पासिन के छोटे से आँगन में आसन जमा कर बैठ गया। पासिन ने ताड़ी का घड़ा हीरा के आगे रख दिया और वह चुक्कड़ पर चुक्कड़ चढ़ाने लगा। जान पड़ता है, आज उसकी तृप्ति न होगी। एक तो कई दिनों बाद ताड़ी का घड़ा सामने आया है, दूसरे पासिन ने मीठी-मीठी बातों में उत्साह बढ़ाना शुरू कर दिया है। फिर, इस अनुपम रस से जाने कब भेंट हो! इसी से हीरा आज डट कर बैठा है, छक कर ही उठेगा।

पर सुख में विघ्न-बाधाएँ भी अनेक हुआ करती हैं! बाहर से किसी ने पुकार कर पूछा—हिरवा यहाँ आया है, पासिन?

हीरा चौंक पड़ा। उसने पासिन को इशारा किया। वह हीरा का आशय समझ गई और मुस्कुरा कर बोली—"हीरा यहाँ नहीं आया है।" पाँच मिनट तक सन्नाटा रहा। आफ़त टली! हीरा ने फिर पीना शुरू किया।

थोड़ी देर बाद फिर बाहर से किसी ने चिल्ला कर कहा—तू झूठ बोलती है। हीरा अभी-अभी यहाँ आया है।

इस बार पासिन के भी होश उड़ गए। रङ्ग में भङ्ग पड़ गया। हीरा ताड़ी का अधूरा घड़ा छोड़ कर उदासी के साथ पासिन के झोंपड़े से बाहर निकला।

बाहर चार आदमी बड़े-बड़े लट्ठ लिए खड़े थे। उनमें से एक ने हीरा को देखते ही मुँह बना कर कहा—साला, कब से भागा-भागा फिरता है! चल बाबू के सामने। तेरी सारी बदमाशी अभी निकली जाती है।

हीरा उन चारों में से प्रत्येक से ड्योढ़ा था, बलवान था। उसका शरीर भी लम्बा-तगड़ा, गठीला, काला भूत सा था। ज़मींदार के सिपाही अकेले में उससे डरते थे। पर हीरा चुपचाप उनके साथ हो लिया।

हरदत्त बाबू बरामदे में कुर्सी पर बैठे थे। हीरा को देखते ही उनके तेवर चढ़ गए। उन्होंने क्रोध-भरे स्वर में कहा—और बातें पीछे होंगी। पहले इस हरामज़ादे को बीस जूते गिन कर लगाओ।

जूते पड़ने लगे। "एक, दो, तीन, × × ×" हरदत्त बाबू ने गिनना शुरू किया। बीस पूरा होने पर हरदत्त बाबू ने जोश में कहा—"एक और!" एक और पड़ा। हीरा पीठ से धूल झाड़, उठ कर खड़ा हुआ, मानों जूते की मार का उस पर कोई असर ही न पड़ा हो।

हीरा की हैकड़ी देख कर हरदत्त बाबू की आँखें लाल हो उठीं। उन्होंने सिपाही से कहा—जगदेवसिंह, इस बदमाश को रस्सी से बाँध कर धूप में लिटा दो।

हीरा तुरन्त रस्सियों से जकड़ कर धूप में लिटा दिया गया। एक तो ताड़ी का नशा, दूसरे कड़ी धूप की गर्मी! हीरा के बदन से पसीने की धार सी बह चली। हरदत्त बाबू ने कड़क कर पूछा—क्यों बे, तूने खलिहान से धान क्यों चुराया?

हीरा का गला रस्सी से जकड़ा हुआ था। वह धीरे से बोला—"मैंने नहीं चुराया, सरकार!" हरदत्त बाबू ने जगदेवसिंह की ओर देख कर कहा—"अभी इसका नशा नहीं उतरा है। इसे और जूते लगाओ।"

जूते फिर पड़ने लगे।

इतने में हीरा का बूढ़ा बाप मँगरू लाठी टेकता हुआ आ पहुँचा। उसके पीछे गोद में छोटा बच्चा लिए हीरा की जोरू रधिया भी आकर खड़ी हो गई। हीरा को जूते लगते देख रधिया आँचल से मुँह ढँक कर सिसकने लगी। हाँफते-हाँफते मँगरू ने हरदत्त बाबू के सामने माथा टेक दिया और भर्राई हुई आवाज़ में गिड़गिड़ा कर बोला—मालिक, हिरवा ने बड़ा क़सूर किया है। दया कीजिए सरकार! मैंने बूढ़े बाबू की बड़ी सेवा की है। आप ही हम ग़रीबों के माँ-बाप हैं, बाबू जी!

इतना कह कर मँगरू फूट-फूट कर रोने लगा। हरदत्त बाबू ने मँगरू को डाँट कर कहा—चुप रह बुड्ढे, नहीं तो तेरी भी मरम्मत हो जायगी।

मँगरू ने कातर दृष्टि से बाबू जी की ओर देखा और आँखें पोंछता हुआ पीछे हट गया।

हरदत्त बाबू ने सिपाही से कहा—चाबुक लाओ, यह हरामज़ादा जूतों की मार से सीधा न होगा।

नौकर ने चाबुक लाकर दे दिया। हरदत्त बाबू स्वयं चाबुक लेकर यमराज की तरह हीरा के पास आ खड़े हुए और डाँट कर बोले—बोल, तूने चोरी की है या नहीं?

हीरा आँखें बन्द किए पड़ा था। गर्मी के मारे उसका सिर चकरा रहा था। धीरे-धीरे आँखें खोल कर उसने कहा—"नहीं सरकार, मैंने नहीं चुराया।" फिर क्या था। हरदत्त बाबू के क्रोध का पारा और चढ़ गया। उन्होंने सपासप दो कोड़े हीरा की जाँघों पर लगाए। हीरा के मुह से आह निकल कर शून्य में विलीन हो गई और बेचारी रधिया चीख़ उठी। माता को रोती देख कर गोद का बच्चा भी बिलख उठा। मँगरू लड़खड़ाता हुआ आगे बढ़ कर रुँधे हुए स्वर में बोला—चोरी की है तो बता क्यों नहीं देता हीरा?

हरदत्त बाबू ने मँगरू की ओर घूर कर कहा—तू अभी यहाँ से चला जा, नहीं तो इसके साथ ही तेरी भी दुर्गत हो जायगी।

मँगरू हताश होकर बोला—"अच्छा, बाबू जी, मैं जाता हूँ।" फिर रधिया की ओर देख कर बोला—"चल बेटी, तू भी घर चल। बाबू जी दयावन्त आदमी हैं। आप ही छोड़ देंगे। तू घबराती क्यों है?"

मँगरू अन्तिम बार दया की बिनती करके लाठी टेकता हुआ और हरदत्त बाबू को आशीर्वाद देता हुआ वहाँ से चला गया। रधिया भी रोती-रोती उसके पीछे हो ली।

मँगरू के चले जाने पर हरदत्त बाबू ने निर्दय होकर चाबुक फटकारना शुरू किया। चाबुक की सपासप ध्वनि के साथ हीरा के कण्ठ से निकलती हुई आह एक निर्दय-करुण ध्वनि की सृष्टि कर रही थी। वे चाबुक मारते जाते थे और बीच-बीच में पूछते जाते थे—बोल हरामज़ादे, तूने चोरी की या नहीं?

मार खाते-खाते बेदम हो जाने पर उपायान्तर न देख कर हीरा ने लड़खड़ाते शब्दों में स्वीकार किया कि 'चोरी की है।' ज्यों-त्यों करके कोड़ा चलना रुका। हाँफते-हाँफते हरदत्त बाबू ने पूछा—"बता, क्यों चोरी की?" हीरा ने सिसकते हुए कहा—"सरकार, तीन-चार दिनों से ताड़ी नहीं मिली थी।"

इतना सुन कर हरदत्त बाबू फिर उबल पड़े। बोले—"अच्छा, तो अब देख ले ताड़ी का कैसा मज़ा होता है।" और फिर कोड़े लगाने लगे।

अन्त में थक कर हरदत्त बाबू कुर्सी पर जा बैठे। उनके बदन से पसीना चल रहा था। हाँफते-हाँफते उन्होंने बूढ़े मुन्शी को बुला कर कहा—मुन्शी जी, इसे पुलिस के सुपुर्द करना होगा।

बूढ़ा यह सुन कर भौंचक-सा रह गया। हरदत्त बाबू ने फिर कहा—आज ही जाकर पुलिस में रिपोर्ट लिखा दो और इसे दारोग़ा जी के हवाले करो।

मुन्शी ने दबी ज़बान से कहा—हुज़ूर, मार तो इस पर काफ़ी पड़ चुकी। अब इसे × × ×

हरदत्त बाबू ने तीव्र शब्दों में कहा—मार से क्या होता है जी! बिना सज़ा कराए काम नहीं चलेगा!

"बूढ़े सरकार तो ऐसी हालत में तम्बीह करके ही छोड़ दिया करते थे।"

"छोड़ देते होंगे, मैं नहीं छोड़ सकता इस पाजी को। जब तक एक की सज़ा न होगी, तब तक इन सालों की चोरी की आदत न छूटेगी। मैं रोज़-रोज़ का झगड़ा पसन्द नहीं करता।"

मुन्शी जी नम्रता से बोले—हुज़ूर, आख़िर ये अपने ही आदमी हैं। इनके लिए कुछ तो रहम चाहिए।

"मैं रहम-वहम कुछ नहीं जानता। तुम्हें सीधे से काम करना हो तो करो, नहीं तो अपने घर की राह लो।"

मुन्शी का मुँह काला पड़ गया। उनके मुँह से फिर कोई बात न निकली। बूढ़े सरकार का ज़माना याद कर आँखों में आँसू छलछला आए। चलते-चलते उन्होंने सोचा—अब पुराने दिन गए, नए दिन आए। भला मुझ बुड्ढे का इस ज़माने में क्या काम था?

२

आज ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट ठाकुर चन्द्रभानसिंह के इजलास में हीरा के मुक़दमे की तारीख़ है। सवेरे से ही रधिया अपने बच्चों के साथ कचहरी के मैदान में घूम रही है। उसे किसी ने बता दिया था कि वकील-मुख़्तार हाकिम से कह-सुन कर आसामियों को छुड़ा देते हैं। इसीसे वह बहुत से वकील-मुख़्तारों के पास गई। पर किसी ने अलग से ही दुतकार दिया; किसी ने रुपए की माँग पेश की। किसी को दया आई तो उसने समझाया कि चन्द्रभानसिंह के इजलास में वकील-मुख़्तारों की नहीं चलती। वहाँ तो रुपए का राज है। घबराने की कोई बात नहीं। वे तीन महीने से ज़्यादा की सज़ा नहीं कर सकते। पर हीरा की अनुपस्थिति में तीन महीने भी कितने दीर्घ होंगे, यह रधिया ही जानती थी।

रधिया निराश होकर कचहरी के मैदान में एक पेड़ के नीचे जा खड़ी हुई। दस का घण्टा बजा। मुक़दमे-बाज़ों की भीड़ बढ़ने लगी। धीरे-धीरे काफ़ी चहल-पहल हो गई। रधिया बड़ी आतुरता से आते-जाते लोगों का मुँह ताकती, पर कुछ बोलने का साहस नहीं होता। इतने में सिपाहियों से घिरा हुआ हीरा दिखाई दिया। दृष्टि पड़ते ही रधिया का कलेजा फट गया। वह सिपाहियों के सामने जाकर फूट-फूट कर रोने लगी। हीरा को डर हुआ कि कहीं सिपाही जी चिढ़ न जायँ, इसलिए उसने रधिया को डाँट कर चुप रहने को कहा। सिपाहियों ने भी समझाया। जब हीरा हवालात की ओर चला तो रधिया सिपाहियों के पैरों पड़ने लगी और कहने लगी—बाबू जी, इसको किसी तरह छुड़ा दीजिए। नहीं तो बाल-बच्चे बिलट जायँगे। जब तक जाऊँगी, असीसती रहूँगी।

सिपाहियों ने समझा-बुझा कर रधिया को शान्त किया। जब वह चुप हुई तो एक सिपाही से धीरे से बोली—बाबू जी, इसके खाने के लिए कुछ लाई हूँ। आप हुकुम दें तो खिला दूँ।

एक सिपाही ने कहा—पहले क्यों नहीं बोली! अब तो मुक़दमा शुरू होने वाला ही है। अच्छा जल्दी ले आ।

हीरा कचहरी के ओसारे के नीचे ही बैठ गया। रधिया ने एक पोटली में से दो मोटी-मोटी रोटियाँ और कुछ चने का साग निकाल कर हीरा के हाथ पर रख दिया। हीरा खाने लगा और अभी आधा ही खा पाया था कि पुकार हुई। हीरा ने मुँह का कौर किसी तरह गले के नीचे उतारा और जल्दी-जल्दी पानी पीकर सिपाहियों के साथ इजलास में हाज़िर हुआ।

न्यायाधीश चन्द्रभानसिंह पहले ही से 'अग्निशर्मा' बने बैठे थे। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि हरदत्त बाबू का दूत चन्द्रभानसिंह के दरबारे-ख़ास में नज़र लेकर पहुँच चुका था और हीरा के भाग्य का फ़ैसला बहुत पहले ही हो चुका था।

हरदत्त बाबू चतुर आदमी थे। उन्होंने देखा कि इस नीति के बिना राजधर्म का पालन होना कठिन है। इसके सिवा ठाकुर चन्द्रभानसिंह भी ज़मींदार ठहरे। यदि ज़मींदार, ज़मींदार के ऐसे अवसर पर भी काम न आया तो पारस्परिक एकता कैसे रहेगी? इसलिए चन्द्र-भानसिंह हीरा के मुक़दमे में अवश्य न्याय करेंगे। फिर भी सन्धि की शर्तों का स्मरण दिलाने के लिए हरदत्त

बाबू का एक प्रतिनिधि ठाकुर साहब के सामने ही बैठा था।

हीरा को देखते ही चन्द्रभानसिंह बोल उठे—इसकी तो सूरत ही चोर सी मालूम होती है।

हीरा ने सुन कर सर झुका लिया और चुपचाप कटघरे में जा खड़ा हुआ। मुक़द्दमे की पेशी हुई। कुछ गवाहों के इज़हार हुए। जगदेवसिंह ने कहा कि मैंने हीरा को खलिहान से धान का बोझ उठा कर ले जाते देखा था। चौकीदार का बयान हुआ कि उसने हीरा के घर से दो बोझ धान बरामद किया। गाँव के एक-दो प्रतिष्ठित लोगों ने भी इसी बात की पुष्टि की। चौकीदार ने यह भी कहा कि हीरा ने हम लोगों के सामने स्वीकार किया है कि उसने चोरी की है। इसकी भी पुष्टि हो गई।

चन्द्रभानसिंह ने अभियुक्त से पूछा—तेरा नाम क्या है?

"हीरा।"

"वाह! नाम तो बड़ा अच्छा पाया। ज़ात क्या है?"

"मुसहर।"

चन्द्रभानसिंह झुँझला कर बोले—इन मुसहरों के मारे तो लोगों का खेती-बारी करना मुशकिल हो रहा है।

कोर्ट के दारोग़ा साहब ने जोश के साथ सर हिलाते हुए कहा—बेशक हुज़ूर का फ़र्माना बजा है। इन कमबख़्तों का तो पेशा ही चोरी हो गया है।

चन्द्रभानसिंह ने हीरा से पूछा—तूने खलिहान पर से धान चुराया था?

हीरा दुविधा में पड़ गया। कुछ जवाब न दे सका। चन्द्रभानसिंह ने फिर वही बात पूछी। इस बार हीरा ने कहा—सरकार, मैंने चोरी नहीं की।

"चोरी नहीं की है! फिर झूठ बोल रहा है। क्या तूने इतने लोगों के सामने क़बूल नहीं किया है?"

"क़बूल किया है। पर किस दुर्गति पर क़बूल किया, यह भी देख लीजिए मालिक।"—इतना कहते-कहते हीरा का गला भर आया और वह हाकिम को अपने बदन के दाग़ दिखाने लगा।

चन्द्रभानसिंह ने जैसे उधर से निगाह फेर ली और झल्ला कर कहा—यह नाटक रहने दे! बोल, तेरा कोई गवाह भी है?

"बाबू जी, मुझे गवाह कहाँ से मिलेंगे?"

चन्द्रभानसिंह चिल्ला कर बोल उठे—दुनिया क्या तेरी ही तरह चोर है, जो तुझे गवाह मिलेंगे?

इसके बाद दारोग़ा साहब की बहस हुई। चन्द्रभानसिंह ने हीरा से पूछा—तेरे कोई मुख़्तार-वकील हैं?

हीरा रुआसा होकर बोला—मुझ ग़रीब को मुख़्तार-वकील कहाँ से मिलेंगे, सरकार? मेरे लिए तो जो कुछ हैं, वह ऊपर भगवान, नीचे हजूर हैं!

चन्द्रभानसिंह ने झल्ला कर कहा—बस, ज़्यादा बक-बक मत कर! चोरी करके चला है, भगवान की दुहाई देने।

हीरा की रही-सही आस भी टूट गई। उसका मुँह उदास हो गया। मैजिस्ट्रेट ने राय सुनाई—हीरा को दो महीने की सख़्त क़ैद की सज़ा! बेचारी रधिया पास ही खड़ी थी; हाकिम का फ़ैसला सुनते ही बिलख उठी। उसे रोती देख बच्चे भी चिल्ला उठे। कचहरी में शोर मच गया। चन्द्रभानसिंह ने क्रुद्ध होकर पूछा—कौन हल्ला मचा रहा है?

एक सिपाही ने कहा—हुज़ूर, आसामी की जोरू है।

"निकालो यहाँ से। तुम लोग खड़े-खड़े मुँह क्या देख रहे हो?"

रधिया निकाल दी गई। परन्तु जब हीरा को लेकर सिपाही जेलख़ाने की ओर चले, तो वह भी रोती-पीटती पीछे-पीछे चली। हीरा अब तक चुप था, परन्तु जब सिपाहियों ने उसे जेलख़ाने में ढकेल कर बाहर का फाटक बन्द कर दिया, तो उसका धैर्य जाता रहा और वह बच्चों की तरह सिसक-सिसक कर रोने लगा। बाहर रधिया और बच्चों का रोना सुनाई देता था, जिससे वह और भी व्याकुल हो उठा। वह दौड़ कर फिर फाटक की ओर बढ़ा, पर सिपाहियों ने आगे बढ़ने न दिया। हीरा हताश होकर बैठ गया और एक लम्बी साँस खींच कर बोला—जिसने मुझे सताया है, भगवान उसका भला करे।

३

हरदत्त बाबू के खलिहान में मँगरू पयाल से धान निकाल रहा है। उसकी कमर झुक गई है, हाथों में बल नहीं, आँखें भी काम नहीं देतीं। फिर भी वह इस कठिन काम में दत्तचित्त है। हाथ धीरे-धीरे चलते हैं। थक कर हाँफने लगता है तो थोड़ा सुस्ता लेता है। फिर ज़मीन टेक कर उठता है और धान पीटने लगता है।

उसकी ऐसी दशा देख युवक मजूर गुलाब ने कहा—दादा, तुम तो बहुत थक गए। अब थोड़ा सुस्ता लो। आओ, बैठ कर सुरती खा लें। फिर काम करेंगे।

मँगरू भी यही चाहता था। पास ही एक पेड़ की छाया में दोनों बैठ गए। सुरती बनाते-बनाते गुलाब ने पूछा—दादा, क्या हीरा भैया से कभी जेल में तुम नहीं मिले?

मँगरू ने उदास होकर कहा—नहीं भाई। एक तो मैं बूढ़ा आदमी, इतनी दूर जा नहीं सकता। दूसरे कहीं एक-दो दिन भी घर बैठना पड़ा तो हिरवा के बाल-बच्चे भूखों मर जायँगे।

"मैं तो हीरा भैया को देख आया दादा! बातें तो न कर सका, पर आँखों से देख लिया। बूढ़े सरकार की 'बरखी' के लिए सामान खरीदने मुन्शी जी बजार गए थे। मैं भी साथ था। मुन्शी जी भी कैसे दयावन्त आदमी हैं। उन्होंने सिपाहियों से कह-सुन कर हीरा भैया को बुलवाया और उससे पूछा—"कहो हीरा, तुम्हें कोई तकलीफ तो नहीं है?" हीरा भैया ने कहा—"मुन्शी जी, मिहनत-मसक्कत तो सभी जगह करनी पड़ती है। खाना भी भरपेट मिल जाता है। आपके असिर-बाद से अच्छा ही हूँ।"

मँगरू ने आँखों में आँसू भर कर कहा—हीरा ने ठीक ही कहा भैया! हाँ बेटा, वह वहाँ कैसे है?

"दादा, जेल फिर जेल ही है। कहाँ हीरा की वह पट्ठा सी देह, रात को कोई देख ले तो डर से जान निकल जाय। पर अब तो वह आधा रह गया है। महीना भर और मन मार कर रहो। एक महीना तो पूरा हो गया न दादा?"

मँगरू ने लम्बी साँस खींच कर कहा—हाँ भाई, महीना और है। पर एक महीने में तीस दिन हो गुलाब। दुःख के दिन जल्दी नहीं कटते!

गुलाब भी उदास हो गया। उसने मँगरू सान्त्वना देकर कहा—दादा, चाहे जो हो, हीरा को जेल भेज कर बाबू जी ने अच्छा काम नहीं किया।

"अच्छा-बुरा का हाल भगवान जानें। बाबू जी हैं। उनका धरम-करम वे ही जानें। पर हिरवा अपनी करनी का फल भुगत रहा है। मुझे भी बुढ़ापे यह देखना बदा था।"

गुलाब ने दृढ़ता के साथ कहा—मैं तो इसे अच्छा न कहूँगा। भला ताड़ी पीने के लिए हीरा थोड़ा सा धान खलिहान पर से उठा ही लिया तो हुआ? हैं तो हम उन्हीं के बाल-बच्चे! हमें पीस उन्हें क्या बड़ाई मिलेगी? यह जगदेवसिंह ही, बड़ा सच्चा बना फिरता है, 'आधी तेरी, आधी मेरी' करता है। उसे कौन पूछता है? हीरा कभी-कभी छेड़छाड़ किया करता था। इसी से तो जगदेवसिंह ने फन्द रच कर खड़ा किया।

गुलाब की बातों से मँगरू दुखी हुआ, उसने से कहा—बेटा, तुम लोगों की चाल-चलन और बुद्धि मेरी समझ में नहीं आती। मैं पुराने जुग का आदमी हूँ। यही ताड़ी की बात ले लो। जब मैं जवान था तब ताड़ी कोई पूछता न था। इसी से हम लोग खुदि याली के दिन ही ताड़ी पिया करते थे। अब ताड़ी मुहाल हो गई तो तुम लोग उसके पीछे मरते हो। बाल-बच्चे चाहे भूखे रह जायँ, तुम्हें ताड़ी चाहिए। तुम लोगों का हाल देख कर मैं तो अचरज में पड़ जाता हूँ।

गुलाब ने आँखें फाड़ कर पूछा—क्या पहले ताड़ी खूब मिलती थी?

"बूढ़े सरकार ताड़-खजूर पासियों को नहीं देते थे। सब के सब हमारे ही काम आते थे। अब तो छोटे बड़े सभी पेड़ों में मटके लटक रहे हैं। बिना पैसे के उधर कोई ताक भी नहीं सकता। इसीसे अब तुम लोग उसके पीछे पागल बने फिरते हो। हम लोगों ने भी अपने दिनों में बहुत खाया-पिया। पर कभी बाल-बच्चों को भूखों नहीं मारा।"

गुलाब ने लम्बी साँस लेकर कहा—हाँ दादा, अब वे दिन नहीं रहे। बूढ़े मालिक अपने मजूरों को कितना मानते थे। अब तो हम मरें या जिएँ, मालिक को काम से काम।

गुलाब इतना ही कह पाया था कि जगदेवसिंह आता हुआ दिखाई दिया। उसने इन दोनों को बैठा देख दूर ही से चिल्ला कर बोला—तुम दोनों बैठ कर गप्पें लड़ा रहे हो। काम का कोई ख़याल नहीं।

गुलाब ने ज़रा तीखे स्वर में जवाब दिया—अभी तो बैठा था। सुरती खा रहा था। आप तो तुरन्त सर पर सवार हो जाते हैं।

जगदेवसिंह लट्ठ उठा कर बोला—देखूँ तेरी सुरती! बड़ा सुरती खाने वाला पैदा हुआ है।

"जा ही तो रहा हूँ। आप तुरन्त हाथ क्यों छोड़ बैठते हैं?"—इतना कह गुलाब वहाँ से सरक कर काम पर चला गया। जगदेवसिंह ने इस बार गन्दी-गन्दी गालियाँ देकर ही सन्तोष किया।

जगदेवसिंह की ऊपर को उठी हुई लाठी देख बूढ़ा मँगरू सूख गया था। जब तक जगदेवसिंह गुलाब से बातें करे, वह बिल्ली की तरह सिपट कर पीढ़ियों के पास जा पहुँचा और हाथ में धान के डण्ठे उठा कर उन्हें पीटने लगा।

४

मुसहरों की बस्ती, छोटे-छोटे घर; यदि कोई तन कर खड़ा हो तो सर छप्पर में जा लगे। फूस और ताड़ के पत्तों से छाई हुई झोंपड़ियाँ बरसात का पानी खा-खाकर राख के ढेर सी दिखाई दे रही हैं। इन झोंपड़ियों के द्वार इतने छोटे होते हैं कि भीतर घुसने के लिए सर को कमर तक झुकाना पड़ता है। इनमें न किवाड़ें हैं, न टट्टी! सभी घरों में खजूर की डालियाँ और अरहर की सूखी हुई डण्ठलों की टट्टियों से घेर कर छोटा सा आँगन निकाला हुआ है। उन्हीं टट्टियों पर दो-चार बेलें भी चढ़ी हुई हैं जिनसे, यदि ज़मींदार की दया-दृष्टि से बच जायँ तो, इन्हें सब्ज़ी का स्वाद मिल जाता है। उसी छोटे से आँगन के एक किनारे सूअरों के रहने का घरौंदा बना है। किसी-किसी घर एक-दो बकरियाँ भी बँधी दीख पड़ती हैं

इस पन्द्रह-बीस घरों की छोटी सी बस्ती से धुआँ निकल कर सारे आसमान में फैल रहा है। इतना धुआँ सैकड़ों घरों के गाँव से भी न निकलता होगा। जाड़े के दिनों में आग ही इनका एकमात्र जीवनाधार है। बस्ती भर में सब मिला कर शायद सौ हाथ कपड़ा भी न हो। आठ-आठ, दस-दस वर्ष के लड़के और लड़कियाँ नङ्गे ही रहते हैं।

चाँदनी रात थी। एक ओर कुत्ते और सूअर आपस में लड़ रहे थे, जिससे बच्चों की छोटी सी जमात आनन्द के मारे उछल-कूद कर शोर मचा रही थी। उनके माँ-बाप गला फाड़-फाड़ कर उन्हें मना कर रहे थे। एक घर से मृदङ्ग की धीमी-धीमी ध्वनि आ रही थी।

गुलाब ने अपने घर के सामने कुछ सूखी लकड़ियाँ इकट्ठी करके आग जलाई। भीतर से चटाई लाकर अभी वह आग के पास बैठा ही था कि मँगरू आता हुआ दिखाई दिया। वह हीरा के बड़े बच्चे का हाथ पकड़े लाठी के सहारे आ रहा था। उसे देख कर गुलाब ने कहा—आओ दादा, इधर आग के पास आकर बैठो।

मँगरू हाँफते-हाँफते बोला—हाँ भाई, बैठता हूँ, एक काम से आया हूँ गुलाब।

"क्या काम है दादा?"

"दो दिन से मैं बीमार पड़ा हूँ। सारा बदन टूट रहा है। जब ताप चढ़ जाता है, तो आँखों के आगे अँधेरा छा जाता है। इसी से मैं दो दिन घर ही बैठा रहा, काम पर न जा सका भाई।"

गुलाब ने सहानुभूति के स्वर में कहा—मजूरी-मसक्कत की भला तुम्हारी उमर है दादा?

"उमर तो नहीं है गुलाब, पर क्या करूँ? हिरवा का भार तो ढोना ही है। आज घर में एक दाना भी नहीं है। देवा भूख के मारे कब से रो रहा है। तुम्हारे घर कुछ हो तो दो भाई।"

गुलाब गम्भीर होकर बोला—घर में कहाँ से कुछ आएगा दादा? तुम तो सब जानते ही हो। यहाँ तो रोज कमाना, रोज खाना। उस पर आज मजूरी किसी को मिली ही नहीं। बाबू जी के भण्डार में धान न रहा। कल कहीं से आवेगा तो दो दिनों का इकट्ठे मिलेगा।

"भाई, अब नई-नई बात सुनता हूँ। बूढ़े सरकार के आगे कहीं ऐसा होता तो भण्डारी की जान आफ़त में पड़ जाती।"

"दादा, बाबू जी तो इधर मन ही नहीं देते। हम रोते-चिल्लाते हैं तो हमीं पर बिगड़ बैठते और गाली-गलौज करने लगते हैं।"

मँगरू ने आह भर कर कहा—अच्छा, तो किसी और के यहाँ जाऊँ। देखूँ कुछ मिल जाय।

"मेरे ही घर नहीं मिला तो और किसके घर मिलेगा ? छिन भर बैठ जाओ न दादा, घर में देख लूँ।"

भीतर जाकर गुलाब ने देखा कि उसका बच्चा अभी खाने को बैठा ही था। उसने देवा को भी पुकार कर उसी के साथ बैठा दिया। बासी भात पानी में भिगोया हुआ और नमक—यही उनका भोजन था। दोनों बच्चे बड़ी धुन से खाने लगे। बात की बात में थाली साफ़ करके पेट भर पानी पिया। उनका पेट नहीं भरा, पर नित्य का यही अभ्यास था।

इधर गुलाब फिर मँगरू के पास आ बैठा और उत्साह के साथ बोला—देवा को तो पँचकौड़िया के साथ खाने को बैठा दिया। तुम कुछ नहीं खाओगे ?

मँगरू ने सर हिलाते हुए कहा—नहीं भाई, नहीं। दो दिन से मन ऐसा गिर गया है कि नाज तो विष मालूम होता है।

गुलाब निश्चिन्त होकर बोला—दादा, इस बुढ़ौती में तो तुममें यह ताव है। जाने जवानी में क्या करते होगे।

"भाई, मेरी जवानी की क्या पूछते हो ? वे दिन तो अब सपना हो गए गुलाब। जिस दिन मालिक मर कर सरग के राजा हुए, उसी दिन समझा कि अब नया पहरा आया। जिस दिन मालिक हम लोगों को रोता छोड़ कर विदा हो गए, उसी दिन सोचा कि हमारे भाग फूट गए। अब वैसे सरदार कहाँ, गुलाब ?"

इतना कहते-कहते मँगरू का गला भर आया। गुलाब ने उत्सुक होकर पूछा—तुम लोग मालिक को बड़ा प्यार करते थे दादा ? वह कभी मारते-पीटते नहीं थे ?

"बिना मारे-पीटे मुसहरों के साथ भला कोई निभ सकता है ? मारते-पीटते क्यों न थे ? पर वैसे ही जैसे बाप बेटे को मारता है। इसीसे हम भी उन्हें बाप सा ही मानते थे। उनके लिए जान हथेली पर लिए रहते थे।"

गुलाब उत्साह के साथ बोल उठा—और वे भी अपने मुसहरों के लिए जान देते होंगे ?

"भला यह भी कहने की बात है ? जिस दिन हमीरपुर की फौजदारी हुई थी, वह दिन आज भी मेरी आँखों के सामने नाच रहा है। भीखनसिंह से सरहद का झगड़ा था। दोनों ओर से फौजदारी की तैयारी थी। भीखनसिंह की धोती तब आसमान में सूखती थी। उसकी तरफ़ से अनगिनत लोग जमा थे। जब वे मैदान में आकर लाठी भाँजने लगे तो मालिक का मुह सूख गया। उन्होंने उदास होकर मेरी ओर देखा और कहा—मँगरू, अब क्या देखता है ? क्या मेरी पगड़ी उतर के ही रहेगी ! मेरे पीछे कोई बीस मुसहर एक से एक तगड़े खड़े थे।

मैंने कहा—सरकार, आपकी पगड़ी उतर गई तो हम लोग जीकर क्या करेंगे ?

गुलाब ने आश्चर्य के साथ कहा—तुम भी बड़े हिम्मती थे दादा !

"हिम्मती ! मैंने कहा कि मालिक हुकुम दीजिए, अभी धान के खेत में कूदें और बात की बात में धान काट कर गिरा दें। मालिक ने कहा—मँगरू, जान जाने की बात है। देखता नहीं, वे कितने आदमी हैं ? मैंने छाती ठोंक कर कहा—कुछ परवाह नहीं सरकार। मैं मरूँगा तो हिरवा के बाप तो आप तैयार ही हैं। इतना कह मैंने उनके पाँवों की धूल माथे में लगाई और 'जै भवानी माई' कह कर पिल पड़ा। मेरे पीछे बीसों मुसहर कूद पड़े।"

"बड़े साहस का काम किया। मेरे तो हाथ-पैर फूलने लगते। फिर क्या हुआ ? धान काट ही लिया ?"

"भाई, मैं सबके आगे था। इससे मुझी पर लाठियाँ पड़ीं। मुझे होस न रहा कि आगे क्या हुआ। पर पीछे सुना कि दोनों ओर से खूब लाठियाँ चलीं। जब दुश्मनों ने देखा कि मैं गिर गया तो मुझे मरा समझ उनकी हिम्मत टूट गई। भय से उनके पाँव उखड़ गए। मुझे अस्पताल में होस हुआ तो देखा, मालिक सिरहाने बैठे हैं। वे मुझे दिलासा देने लगे। मेरा सारा बदन

चूर-चूर हो गया था। खोपड़ी के दाग़ अभी भी बने हैं। मुझे पीड़ा से कराहते देख मालिक की आँखें भर आईं। उस मुक़दमे में मालिक ने रुपया पानी की तरह बहा दिया। बड़े-बड़े बालिस्टर आए। सबको क़ैद करा के ही छोड़ा। भीखनसिंह उस फ़ौजदारी में जो टूटे सो अभी तक न सम्हल सके।"

गुलाब का कौतूहल बढ़ रहा था। उसने बीच में ही छेड़ कर पूछा—जब तुम अस्पताल में पड़े रहे तो घर-बार कौन देखता था दादा?

"हूँः! घर-बार! अरे मेरे पीछे हिरवा और उसकी माँ को जो सुख बाबू जी ने दिया, वह मैं लाख जनम न दे सकता। हिरवा खा-खाकर पट्ठा हो गया था। उन्हीं दिनों जो उसकी देह बँधी सो अब तक न उखड़ी थी। जेल भुगत कर चाहे उसकी जो दुर्गत हो जाय। और मैं तो तीन महीनों में, जो अस्पताल में रहा, ऐसे-ऐसे पदारथ खाए कि तुम लोगों ने कभी आँख से न देखा होगा। भला हलुवा का नाम कभी सुना था?"

"हलुवा? नहीं दादा, हलुवा तो नहीं देखा। कैसा होता है?"

"हलुवा घी और आटे से बनता है, उसमें चीनी पड़ती है। गीला-गीला होता है। खाने में इतना मुलायम कि मुँह को कुछ मेहनत नहीं पड़ती। मेरा सारा मुँह फूल कर कुप्पा हो गया था। मुँह हिलाना मुसकिल था। इसी से दिन में तीन-चार सेर दूध पीता था और मनमाना हलुवा खाता था।"

गुलाब ने उदासी के साथ आह भरी और कहा—दादा, तुम्हारे भाग बड़े अच्छे थे, जो देवता के ऐसा मालिक पाया था।

मँगरू की रामकहानी सुनते-सुनते रात अधिक हो गई। मँगरू लाठी खटखटाता अपने घर गया। गुलाब वहीं आग के पास पड़ कर खुर्राटे लेने लगा।

५

मँगरू दो दिनों से अपनी टूटी सी खाट पर ऐसा पड़ा है कि हाथ-पैर भी नहीं हिला सकता। सारा शरीर असह्य पीड़ा से टूट रहा है। गाँठें फूल आई हैं। ज्वर के मारे बाहर-भीतर आग की भट्ठी सी दहक रही है। मँगरू के खाट पकड़ लेने से मजूरी का भार रधिया पर पड़ा। वह दिन भर बाहर रहती। शाम को लौटती तो मँगरू का हाल देख घबरा उठती। देवा मँगरू के पास रहता। जब मँगरू पानी माँगता तो वह पिला देता। रधिया दौड़-दौड़ कर पड़ोसियों के पास जाती कि दवा-दारू की कुछ सबील हो। मुसहरों में जो गुनी-ओझा थे, उन्हें गुलाब ने इकट्ठा किया। उन्होंने ने भी अपनी-अपनी हिकमत का अन्त कर दिया; पर कुछ फल न हुआ।

एक दिन जगदेवसिंह सुबह होते ही मजूरों को बुलाने आया। उसने गुलाब से पूछा—दो-तीन दिनों से मँगरू काम पर नहीं जाता। बात क्या है?

गुलाब ने झुँझला कर जवाब दिया—मँगरू की क्या लास उठा कर ले जाओगे? वह तो आप ही अब-तब में है।

"अच्छा! मुझे मालूम नहीं। कुछ दवा-दारू होती है कि नहीं?"

"दवा-दारू कहाँ से होगी सिपाही जी? बाबू जी से आप ही कहिए न, बैद जी से कुछ दवा दिलवा दें।"

"बाबू जी क्या करेंगे रे? कस्तूरी-मकरध्वज से कहीं मुसहरों का रोग गया है? कुछ जड़ी-बूटी, झाड़-फूँक का बन्दोबस्त कर। बचे तो बचे, नहीं तो बूढ़े के मरने का सोच क्या?"

"हाँ साहब! मँगरू के मरने से मालिक का कौन सा काम रुकता है?"—इतना कह कर गुलाब गुस्से में भरा जगदेवसिंह के साथ काम पर चला गया।

शाम को मँगरू की हालत और भी ख़राब हो गई। होश-हवास जाता रहा। दो हाथ का फटा चिथड़ा भी वह बदन पर नहीं रखता। रह-रह कर बेहोशी में डूब जाता है। होश होते ही हीरा का नाम ले-लेकर चिल्लाता। बीच-बीच में 'अरे हिरवा, अरे हिरवा' कह कर उठने की चेष्टा करता, फिर बेहोश होकर गिर पड़ता। रधिया महुए का तेल लेकर मालिश करती और मँगरू का हाल देख-देख कर आँखों से आँसू बहाती।

काल-रात्रि ज्यों-त्यों करके कटी। भोर होते ही मँगरू का कण्ठ बन्द हो गया। शरीर की चेष्टा जाती रही। वह जीवन का अन्तिम श्वास खींचने लगा। रह-

रह कर हिचकियाँ आती थीं। गुलाब काम पर जाने के समय मँगरू को एक बार देख गया। वह जाते-जाते बोला—अब दादा की कोई आस नहीं। बस, हीरा भैया के लिए ही दम अटका हुआ है।

दिन भर मँगरू इसी दशा में पड़ा रहा। हर श्वास पर रधिया समझती कि अब दम नहीं लौटेगा। पर फिर श्वास लौट कर मँगरू को सजीव बना देता।

सन्ध्या हो गई। मँगरू के जीवन से निराश होकर रधिया उसकी खाट के पास बैठी आँसू बहा रही थी। इतने में बाहर किसी के पाँव की आहट सुनाई पड़ी। उसने चौंक कर द्वार की ओर देखा तो एक आदमी आता हुआ दिखाई दिया। सन्ध्या के धुँधले प्रकाश में वह आगन्तुक को पहचान न सकी। इसी से सहम कर कपड़े सँभाल उस आदमी के मुख की ओर एकटक निहारने लगी। जब वह पास आया तो उसने पहचाना। वह हीरा था। रधिया चिल्ला कर रो पड़ी। उसे रोती देख हीरा भौंचक-सा रह गया। रधिया ने मँगरू की खाट की ओर इशारा करके कहा—"दादा की अब कोई आस नहीं।" हीरा ने निकट जाकर देखा, अधखुली आँखों में सुफ़ेदी छा गई है। पलक गिरता नहीं। देर-देर में हिचकियाँ आती हैं। हीरा बाप की अन्तिम अवस्था देख कर रो पड़ा। उसका रोना सुन गुलाब भी आ पहुँचा। उसने हीरा को समझा-बुझा कर चुप कराने की चेष्टा की। हीरा ने सुना कि उसकी अनुपस्थिति में मँगरू ने किस तरह उसके परिवार का पालन किया। सुन कर उसका कलेजा फट गया। उसने रोते-रोते गुलाब से कहा—"मेरे ही कारण मेरे बाप की जान गई, यह टीस मेरे मन से कभी न दूर होगी गुलाब। हाय! मैं कितना बड़ा पापी हूँ!"

गुलाब ने हीरा को धीरज बँधाया। दोनों मँगरू की खाट के पास आ बैठे। देखते ही देखते मँगरू ने अन्तिम साँस खींची। इस बार साँस बाहर निकलते ही धीमी सी आवाज़ हुई और मँगरू के प्राण-पखेरू उड़ गए। सारा जीवन धरती खोद कर भी जिसे सुख और शान्ति न मिली, वह आज मृत्यु की गोद में बड़े चैन से सो गया। हीरा की अनुपस्थिति में जिसने उसका भार उठाया था, वह हीरा का भार हीरा को सौंप कर विदा हो गया!

卐 卐 卐

अन्वेषण*

[श्री० शारदाप्रसाद भण्डारी]

तुझे ढूँढ़ने की इच्छा से,
यत्न किया मैंने सौ बार।
वहाँ निराशा मिली जहाँ,
मैंने समझा था तेरा द्वार।

ऊषा के प्रकाश में ढूँढ़ा,
गोधूली की छाया में।
रजनी की शीतलता में,
फिर इस जीवन की माया में।

दीनों के सकरुण कराह में,
उत्पीड़ित की आहों में।
तेरा पता नहीं था कुछ,
प्रेमी-पागल की चाहों में।

फिर सोचा क्या छिपे हुए हो,
तुम प्रणयी के चुम्बन में।
शिशु के ही क्रन्दन में अथवा,
उस बन्दी के बन्धन में।

खोज-खोज कर हार गया,
मैं प्रासादों के प्राङ्गण में।
धन्य भाग्य है मिले आज,
तुम अब "अछूत के आँगन में।"

* महात्मा गाँधी ने श्री० भण्डारी जी की इस कविता की एक कार्ड लिख कर सराहना की है। —स० 'चाँद'

कविता में अस्पष्टता

[श्री० शान्तिप्रिय द्विवेदी]

सृष्टि के आदि में मानव-समुदाय मूक था। जब वह विश्व के विस्तृत रङ्ग-मञ्च पर पहले-पहल आया, तब उसके हृदय में जिज्ञासा, कौतूहल और विस्मय के भाव थे। उसकी आँखें सब कुछ देखती थीं, किन्तु वह कुछ कह नहीं सकता था, क्योंकि तब तक उसके ओठों पर संसार की कोई भाषा नहीं खिली थी। उसके भाव नीरव थे, उसकी भाषा नीरव थी। आदिम मानव एक-दूसरे की तरफ़ अवाक् दृष्टि से देखते थे, परस्पर इङ्गित द्वारा कुछ कहते थे और फिर मन ही मन मुस्करा कर रह जाते थे।

किन्तु हृदय के भाव भीतर ही भीतर उद्वेलित न रह सके, श्वासों की तरह वे भी बाहर आने के लिए तड़फड़ा उठे। निदान, भावों के आवेग से उनके ओठों के द्वार हिल उठे—कुछ कहने के लिए, कुछ समझने के लिए। परन्तु ओठों के हिलने से जो शब्द पहले-पहल निकले, वे नितान्त अस्पष्ट थे। तो भी, उसी अस्पष्टता के भीतर से स्पष्ट शब्दों का जन्म हुआ, जिनके द्वारा भिन्न-भिन्न दिशाओं में भिन्न-भिन्न भाषाएँ तैयार हो गईं।

इस भाँति हम देखते हैं कि हमारे जीवन में पहले भावों का जन्म हुआ, फिर उनकी अभिव्यक्ति के लिए भाषा का। भाषा, भावों की अभिव्यक्ति के लिए एक प्रतिनिधि अथवा अवलम्ब मात्र है। अतएव हमारे हृदय में जितने भाव अन्तर्हित हैं, उन सबों को वहिर्मुख करने में भाषा समर्थ नहीं हो सकती। क्योंकि भाव तो प्रकृति-सृष्टि हैं, भाषा मानव-सृष्टि। भाव, हमारे जन्म के साथ ही न जाने किस अलौकिक लोक से स्वनिर्मित से चले आते हैं। फिर उस अलौकिक को लौकिक द्वारा पूर्णतः कैसे व्यक्त कर दिया जाय? प्रकृति के निस्सीम भावों को मनुष्य अपनी भाषा की लघु परिधि में कैसे आबद्ध कर दे?

फिर भी, अपने भावों को व्यक्त कर देने के लिए प्राणी प्रयास करता ही है। न व्यक्त कर देने से जीवन भार हो जायगा। अतएव कवि भी इस अभिव्यक्ति के लिए अपनी भाषा को अनेक ढङ्ग से, अनेक साधनों से सामर्थ्यवान बनाता है। दूसरे शब्दों में उसे कला का सहारा लेना पड़ता है। भावों और विचारों की अभिव्यक्ति की सुन्दरता-कुशलता का ही नाम तो कला है। भाषा और कला के मेल से भावों और विचारों को जो मनोरम स्वरूप मिलता है, उसी को साहित्य कहते हैं।

गद्य में साहित्य का उद्देश्य विचारों को प्रस्फुटित करना रहता है; कविता में हृदय के मूक भावों को सशब्द एवं सजीव कर देना। परन्तु जैसा कि प्रारम्भ में कहा जा चुका है—भाषा लौकिक सृष्टि है, भाव अलौकिक। इस अलौकिक को लौकिक द्वारा किस प्रकार पूर्णतः व्यक्त कर दिया जाय? बस यहीं पर तो कवि-कला की परीक्षा हो जाती है। श्रीरवीन्द्रनाथ के शब्दों में—"भाषा के बीच में इस भाषातीत को प्रतिष्ठित करने के लिए साहित्य मुख्यतः दो वस्तुओं को मिलाया करता है, एक चित्र को और दूसरे सङ्गीत को। अतएव चित्र और सङ्गीत ही साहित्य के प्रधान उपकरण हैं। चित्र, भाव को आकार देता है और सङ्गीत, भाव को गति प्रदान करता है।

"किन्तु केवल मनुष्य का हृदय ही साहित्य में पकड़ रखने की वस्तु नहीं है। मनुष्य का चरित्र भी एक ऐसी सृष्टि है, जो जड़ सृष्टि की तरह हमारी इन्द्रियों द्वारा अधीन नहीं होती। वह 'खड़े हो जाओ' कहने मात्र से खड़ा नहीं हो जाता। वह मनुष्य के लिए

अत्यन्त उत्सुकताजनक है, किन्तु उसे पशुशाला के पशु की तरह बाँध कर, बड़े पिञ्जरे में बन्द करके, टकटकी लगा कर देखने का कोई सुगम उपाय नहीं है।

"इन्हीं कड़े नियमों से परे विचित्र मानव-चरित्र है—साहित्य इसी को अन्तर्लोक से बाहर लाकर प्रतिष्ठित करना चाहता है। यह अत्यन्त दुरूह कार्य है। क्योंकि मानव-चरित्र स्थिर तथा सुसङ्गत नहीं है, उसके अनेक अंश और अनेक तहें हैं—उसके बाहर-भीतर बेरोक-टोक गमनागमन करना सुगम नहीं है। इसके अतिरिक्त, उसकी लीला इतनी सूक्ष्म है, इतनी अभावनीय है, इतनी आकस्मिक है कि उसे पूर्ण रूप से हमें हृदयङ्गम करा देना असाधारण शक्ति का ही कार्य है। व्यास, वाल्मीकि और कालिदास आदि यही कार्य तो करते आए हैं।" अस्तु—

मानव-हृदय में जो कुछ अन्तर्हित है, यदि उसे साहित्य-द्वारा, दो-एक युग में ही साकार किया जा सकता, तो संसार में एक दूसरे को ठीक-ठीक न समझ सकने के कारण आज जो इतना द्वन्द्व, इतना राग-विराग फैला हुआ है, उसकी इतिश्री कभी ही हो जाती। अतएव सृष्टि की ही भाँति साहित्य भी अनन्त-कालीन है। हमारे हृदयों में, मैशीन के बारीक से बारीक कल-पुर्ज़े से भी अधिक सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाव अज्ञात पड़े हुए हैं, उन्हें पूर्णतः व्यक्त कर देने के लिए आज भी संसार की किसी भी भाषा में परिपूर्ण शब्द नहीं। इसीलिए तो सृष्टि के अन्त-पर्यन्त नए-नए शब्दों और नए-नए साहित्य की भी सृष्टि होती जाएगी।

ऐसी परिस्थिति में, कवि, अपने सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों को भी, संसार की वर्तमान अपूर्ण भाषा में ही, भिन्न-भिन्न निर्देशों एवं सङ्केतों से व्यक्त करने का प्रयत्न करता है; परिणामतः उसकी कविता चिह्नमय चीनी भाषा की तरह दुर्बोध हो जाती है, अथवा पुष्पों के नीरव गन्ध की तरह केवल अनुभव करने की वस्तु रह जाती है।

हाँ, कविता में जब कला का वाह्य आडम्बर अधिक घुस जाता है, उस समय भी वह दुर्बोध और रहस्य-पूर्ण हो जाती है—भाव उस आडम्बर से उसी तरह आच्छादित हो जाता है, जैसे मेले में जाने वाले एक नन्हें शिशु का सर्वाङ्ग रेशम के ढीले-ढाले भारी कुरते और सितारेदार बड़ी टोपी से ढँक जाता है। श्रीरवीन्द्र ने 'गीताञ्जलि' में लिखा है :—

राजार मत बेशे तुमि साजाओ जे शिशु रे,
पराओ जारे मणिरत्न हार—
खेला धूला आनन्द तार सकलि जाय घुरे,
बसन भूषण हय जे विषम भार।
छेंड़े पाछे आघात लागि,
पाछें धूलाय हय से दागी,
आपना के ताइ सरिए राखे सबार हते दूरे
चलते गेले भावना धरे तार,—
राजार मत बेशे तुमि साजाओ जे शिशु रे
पराओ जारे मणिरत्न हार।

कवि ने इन पंक्तियों में बालक के लिए जिस निराडम्बरता एवं सादगी का सङ्केत किया है, वैसी ही निराडम्बरता, वैसी ही सादगी, कविता के भावों के लिए भी आवश्यक है। अन्यथा जिस प्रकार भूषण-वसन के बोझ से दबा हुआ राजकुमार जन-समाज से बहुत दूर रहता है, वैसे ही आडम्बरपूर्ण कविता के भाव भी, विश्व-हृदय से अपना सामञ्जस्य नहीं स्थापित कर सकते।

अतएव, हृदय के भाव, शरत-पूनो के चाँद की तरह अपनी सादगी में ही जितना अधिक खिल सकें, उतने ही अधिक भले मालूम पड़ते हैं। जो स्वयं सुन्दर है, उसके लिए अलङ्कार की आवश्यकता नहीं। जीवन की तरह ही हमारे हृदय के स्वर और भाव भी सरल होने चाहिए।

हाँ, चन्द्रिका की अलङ्कारहीन शोभा हमारे हृदय को आनन्दित तो करती ही है, परन्तु जब उसके स्निग्ध मुख-मण्डल पर झीने रेशमी बादल का एक हलका-सा अवगुण्ठन छा जाता है, तब देखिए न उसकी शोभाश्री कितनी चित्तोन्मादकारिणी हो जाती है! उसके प्रति हमारा आकर्षण, हमारी उत्सुकता कितनी अधिक बढ़ जाती है। यद्यपि अवगुण्ठनमयी हो जाने के कारण चन्द्रिका की शोभा पहले की तरह चटकीली नहीं रहती, सुस्पष्ट नहीं होती, तथापि इस अस्पष्टता में ही कैसा अनुपम सौन्दर्य है, कैसा मधुर-रस! मानो उसका रूप-रस खूब छन-छन कर बाहर आ रहा हो! इसी भाँति,

कविता-सुन्दरी को भी कभी-कभी अवगुण्ठन की आवश्यकता पड़ती है। इसलिए नहीं कि समाज की तरह साहित्य में भी परदा-प्रथा का प्रचार हो, बल्कि इसलिए कि उसकी शोभाश्री एक कुलवधू की सलज्ज मुसकान की तरह संयमित, गूढ़, गम्भीर एवं प्रतिक्षण नवीन बनी रहे। ऐसी कविताएँ लाज में लिपटी ऊषा के समान सुन्दर मालूम पड़ती हैं।

किन्तु कविता में अस्पष्टता का अभिप्राय यह नहीं है कि उसके भाव, भङ्ग की तरङ्ग की तरह विश्रृङ्खल और पागल के प्रलाप की तरह निरर्थक हों। अपने 'मधुकण' की भूमिका में श्री० भगवतीचरण वर्मा लिखते हैं—"विचारक्रम को अधिक न समझाना भी कला का एक अङ्ग है, मैं इसको ठीक मानता हूँ। पर उस अस्पष्टता और इस अस्पष्टता में भेद है। अच्छा कलाकार यह जानता है कि कहाँ तक अस्पष्ट रहना उचित है। अस्पष्टता वहीं तक स्वाभाविक है, जहाँ तक कल्पना काम करे।"

२

कला की दृष्टि से जो कविताएँ अस्पष्ट लिखी जाती हैं, वे सर्वसाधारण की वस्तु नहीं, केवल भावुक हृदयों के प्रेम की वस्तु हैं। ऐसी कविताओं में लोकोपयोगिता भले ही न हो, परन्तु उनका साहित्यिक महत्व अवश्य है।

एक दिन मैं स्वर्गीय रत्नाकर जी के यहाँ काव्य-चर्चा का आनन्द ले रहा था। प्रसङ्ग हिन्दी की नवीन कविता-शैली पर चल रहा था। उन्होंने अपने कॉलेज-जीवन की एक मनोरञ्जक घटना सुनाई। जब वे बी० ए० में पढ़ते थे, तब टेनीसन की एक कविता का अर्थ पूछने के लिए प्रिन्सिपल के पास गए। किन्तु प्रिन्सिपल महोदय भी उसका अर्थ न समझ सके। तब टेनीसन को पत्र लिख कर उसका अर्थ पूछा गया। उन्होंने उत्तर दिया—"जिस समय मैंने यह कविता लिखी थी, उस समय इसका अर्थ समझने वाले दो थे—एक मैं, दूसरा ईश्वर। मैं तो इसका अर्थ भूल गया, शायद ईश्वर को याद हो।"

टेनीसन ने इन शब्दों द्वारा बड़ा गम्भीर परिहास किया है। जान पड़ता है, लोगों ने अर्थ पूछते-पूछते नाकोंदम कर दिया था, इसीलिए झल्ला कर उसने उपर्युक्त उत्तर दे दिया।

बात यह है कि कविता के भाव भी मानव-हृदय की तरह ही बड़े ही गूढ़ और रहस्यपूर्ण होते हैं। मानव-हृदय एक जटिल पहेली है, उसमें न जाने कब कैसी-कैसी भावनाएँ आ-आकर अपना नीड़ बना लेती हैं, यह शब्दों में नहीं कहा जा सकता। उन भावनाओं को कवि जब शब्दों में व्यक्त कर देना चाहता है, तब वे पूर्णतः प्रस्फुटित नहीं हो पातीं। ऐसी दशा में कवि अपनी कविताओं को जान-बूझ कर केवल कला के लिए ही नहीं अस्पष्ट रखना चाहता, बल्कि भावनाओं की गहनता भी इस अस्पष्टता का कारण बन जाती है। तब, उन अस्पष्ट कविताओं को समझने के लिए हमें कवि के हृदय के साथ अपने हृदय को भी एकरस करना पड़ता है। केवल अन्वय और शब्दार्थ ही उस कविता का रहस्योद्‌घाटन करने में समर्थ नहीं हो सकते, क्योंकि शब्द तो एक सङ्केत मात्र हैं।

टेनीसन की ही तरह रवि बाबू से भी कई बार उनकी भिन्न-भिन्न कविताओं के अर्थ पूछे जा चुके हैं। उन प्रश्नों का उत्तर उनके हृदय ने मूक रह कर दिया। उन अस्पष्ट कविताओं के अर्थ पूछे जाने की प्रवृत्ति की आलोचना करते हुए वे अपनी 'जीवन-स्मृति' में लिखते हैं :—

"क्या कोई मनुष्य किसी बात को समझाने के लिए कविता लिखा करता है? बात यह है कि मनुष्य के हृदय को जो अनुभव होता है, वही काव्य-रूप में बाहर आने का प्रयत्न करता है। यदि ऐसी कविता को सुन कर कभी कोई यह कहता है कि मैं तो इसमें कुछ नहीं समझता, तो उस समय मेरी मति कुण्ठित हो जाती है। पुष्प को सूँघ कर यदि कोई कहने लगे कि मेरी कुछ समझ में नहीं आता, तो उसका यही उत्तर हो सकता है कि इसमें समझने जैसा है भी क्या? वह तो केवल 'आभास मात्र' है। इस पर भी यदि वह यही कहे कि—'हाँ, यह तो ठीक है, मैं भी जानता हूँ; पर इसका अर्थ क्या है?'—और इसी तरह बार-बार प्रश्न करने लगे, तो उससे छुटकारा पाने के लिए दो ही मार्ग हैं—या तो उस विषय की चर्चा ही बदल दी जाय, अथवा यह सुगन्ध फूल में विश्व के आनन्द को धारण की हुई एक साकार आकृति है, यह कह कर उस विषय को और भी गहन बना दिया जाय!" अस्तु—

इन सब बातों से एक बात विदित हो जाती है कि प्रातःकालीन नीहार की तरह उन अस्पष्ट कविताओं में किसी मार्मिक समय की स्मृति, रेखा-चित्र की भाँति अङ्कित रहती है, जो किसी विशिष्ट भाव की याद के लिए किसी भाँति शब्दमय कर दी जाती है। वह स्मृति-चित्र, साधारण दृष्टि से देखने की वस्तु नहीं, बल्कि कवि जैसी आँखें ही उसके रङ्ग-रूप को देख वा समझ सकती हैं।

जनसाधारण जब वस्तु-जगत की ओर देखते हैं, तब उन्हें यहाँ की वस्तुएँ जैसी की तैसी दिखाई पड़ती हैं, परन्तु कवि जब उनकी ओर देखता है, तब केवल चर्म-चक्षुओं से ही नहीं, बल्कि मानसिक नेत्रों से भी। मानसिक नेत्रों के कारण ही वह निपट शून्य में भी एक चित्र खड़ा करके भर आँख देख लेता है। रवि बाबू जब छोटे से बालक थे, तब वे चूने से पुती हुई दीवार की ओर कौतूहलपूर्ण दृष्टि से देखा करते थे। बीच-बीच में चूने के खिसक आने के कारण जो स्थान रिक्त हो जाते थे, उनमें वे अनेक मनोरम आकृतियों और चित्रों को मानसिक नेत्रों से देखा करते थे। वस्तु-जगत् के एक साधारण व्यक्ति की दृष्टि में उस चूने से रिक्त स्थान की कोई विशेषता नहीं है, उसके लिए वहाँ से चूना केवल खिसक भर गया है, परन्तु कवि की दृष्टि के लिए वहाँ चूना खिसक कर अनेक चित्र छोड़ गया है। यदि एक साधारण व्यक्ति से रवि बाबू कहते—देखो भाई, इसमें ये आकृतियाँ अङ्कित हैं, ये चित्र खुदे हुए हैं; तब वह बेचारा कैसे देख पाता, देखने की कोशिश करके भी नहीं देख पाता। और फिर, रवि बाबू ही उसे कैसे दिखा या समझा पाते? तब, क्या दीवार के उस रिक्त स्थान में रवि बाबू द्वारा अङ्कित की हुई काल्पनिक आकृतियों का कोई अस्तित्व हो ही नहीं सकता? क्या चर्म-चक्षुओं से प्रत्यक्ष दीख पड़ने वाली एकमात्र इन बाहरी वस्तुओं का ही अस्तित्व है और जहाँ से इन चर्म-चक्षुओं में प्रकाश आता है, उसका कोई अस्तित्व ही नहीं?

जो हो, बचपन में रवि बाबू के हृदय में उस चूने से रिक्त स्थान के लिए जो भावुकता थी, वैसी ही भावुकता, कवि की अन्तःदृष्टि में समस्त सृष्टि के साथ आजीवन बनी रहती है। कवि भी तो एक बालक ही है, हाँ उसमें तुतलापन नहीं रहता। यह बालक, असुन्दर को सुन्दर कर देता है, शून्य को भी अस्तित्वमय बना देता है। यहीं बालक बतलाता है कि इस दिखाई पड़ने वाले विश्व के अतिरिक्त, इस संसार में और भी कुछ है, जिसके अस्तित्व को हम भूले हुए हैं।

३

कवि जब इस दृष्टिगोचर जगत की ओर देखेगा, तब उसके साथ उसके भावुक हृदय की भावनाएँ मिल कर किस समय कैसा स्वरूप धारण कर लेंगी, यह स्वयं कवि भी तब तक नहीं जानता, जब तक कि उसी मूड (Mood) में नहीं आ जाता। कविता के लिख जाने के बाद, उस मूड से पृथक् होने पर, कुछ समय के लिए वह अपनी ही तरह अपने भावों को भी भूल जाता है। किन्तु एक दिन संयोग से फिर उसी मूड में आ जाने पर वे ही अस्पष्ट भाव, दर्पण की तरह उसके दृष्टि-पथ में सुस्पष्ट हो जाते हैं। छायावाद और रहस्यवाद के कला-कुशल कवि ऐसी ही मूड में अपनी कविताएँ लिखते हैं—अपनी हार्दिक परिस्थिति के अनुसार दुख और सुख का रङ्ग चढ़ा कर, वे वस्तु-जगत की ओर देखते हैं और अपनी कल्पना की सूक्ष्मता अथवा स्थूलता के अनुरूप ही भावों की सृष्टि करते हैं। कल्पना जितनी ही अधिक सूक्ष्म होती है, वह इन चर्म-चक्षुओं से उतनी ही ओझल होती जाती है। वह कल्पना की विहग बालिका अपने मुक्त पङ्खों से उड़ कर कभी अनन्त में लीन हो जाती है और कभी इसी विश्व की एक डाल पर बैठ कर अपने प्राणों का सङ्गीत छेड़ देती है। कभी-कभी वह नीले आकाश में नाचते हुए रङ्गीन काग़ज़ की पतङ्ग की तरह इतनी दूर चली जाती है कि हमारे चर्म-चक्षु, उसे देखने का प्रयत्न करके भी नहीं देख पाते। तो क्या सचमुच उसका कोई अस्तित्व नहीं रह जाता? क्यों नहीं, हृदय के तार की तरह उसकी डोर तो हमारे हाथों ही में रहती है। ऐसी कविताएँ सूक्ष्म होने पर भी हमारे हृदय को आनन्द देती हैं। कला का उद्देश्य हृदय को आनन्दित करना भी तो है।

परन्तु जब कविता, विहग की तरह इसी विश्व की एक डाल पर बैठ कर अपना जीवन-सङ्गीत छेड़ देती है, अथवा सघन कादम्बिनी की तरह अनन्त आकाश में

विचरते हुए भी अपनी बूँद पृथ्वी पर बरसा कर इस भौतिक जगत को सींच देती है, तब वह केवल साहित्य की ही वस्तु नहीं, जनसाधारण की भी वस्तु बन जाती है। क्या हमारे छायावादी कवि इस उपयोगिता को नहीं अपना सकते? हर्ष है कि हमारे चिर नवीन कवि श्री० सुमित्रानन्दन पन्त ने अपने 'गुञ्जन' की कुछ पंक्तियों में इस दृष्टिकोण को अपना लिया है।

४

हाँ तो, बात चल रही थी कविता की अस्पष्टता के सम्बन्ध में। वे अस्पष्ट कविताएँ, वस्तुतः अस्पष्ट नहीं होतीं, हम अपने हृदय को कवि की तत्कालीन परिस्थिति में रख कर उन कविताओं पर दृष्टिपात नहीं करते, इसीलिए वे अस्पष्ट जान पड़ती हैं। अपने को उस परिस्थिति में जाने के लिए अपने भीतर भी भावुकता की आवश्यकता है।

हम लोग प्रायः नित्य देखते हैं :—

नीलाकाश में कितने रङ्गों के कैसे-कैसे, छोटे-बड़े बादल, हृदय के भावों की तरह उड़ते चले जाते हैं। एक दिन उनमें से न जाने किस अज्ञात वर्ण के बादल को देख कर कवि ने उसके साथ आत्मीयता जोड़ ली, उस मूक-मेघ के हृदय की न जाने कैसी-कैसी बातें उसने अपने अन्तर्पट पर लिख लीं, फिर उन्हें वर्णमाला के अक्षरों में अङ्कित कर दीं। बादल आए और अतिथि की भाँति विदा हो गए, केवल उनमें से एक की स्मृति, कवि-हृदय में अवशेष है। आज न वह समय है, न वह बादल। कवि ने उसकी ओर देख-देख कर न जाने क्या-क्या समझा था, उस भाषाहीन वातावरण में न जाने किन-किन सङ्केतों से, चिन्हों से, उसकी स्मृति को अक्षर-मय कर दिया था। कवि के ऐसे भावों का अभिप्राय समझने के लिए हमें भी अपने को उसी मूड में, उसी परिस्थिति में ले जाना होगा।

और भी देखिए, सरिता के प्रशस्त हृदय में, न जाने सौन्दर्य की कितनी सुकुमार वीचियाँ उठतीं और विलीन होती हैं। उन्हीं में से एक के साथ अपने दुख-सुख को खोकर कवि अपने को भूल जाता है। केवल शब्दों में कवि के और उस मृदु-वीचि के हृदय की अभिन्न स्मृति रह जाती है। उस एक लघु वीचि के उठने और विलीन होने की सजीवता एक दिन, एक क्षण के लिए कवि के सम्मुख थी—जब कि वह उसके लिए प्रस्तुत था; परन्तु अब?

इसी भाँति, एक बार नैश गगन के नील-पटल पर एक भुवन-मोहिनी तारिका हँसती हुई दिखलाई पड़ी थी, वह अपना जादू बिखेरती हुई धीरे-धीरे न जाने कहाँ अदृश्य हो गई। वह एक तारिका, कवि की आँखों में न जाने कैसी उज्ज्वल छवि भर कर, कानों में न जाने किस अज्ञात लोक की कहानी चुपचाप कह कर विलीन हो गई! आज उसका अभिप्राय कवि कैसे समझा दे?

आप पूछ सकते हैं—कविता में ऐसी सूक्ष्म दृष्टि की आवश्यकता ही क्या है? सुनिए, मनुष्य की दृष्टि जितनी ही स्थूल होती है, वह स्थूल भौतिक जगत में उतनी ही भटकती रहती है—वह शरीर को देख पाती है, आत्मा को नहीं। अतएव, जीवन की जो मङ्गल निधि उसे अन्तर्जगत में ढूँढ़नी चाहिए, उसे वह इस स्थूल जगत में खोजती फिरती है। ऐसे ही भटकने वालों से कवि ने कहा है—

लैला-लैला पुकारूँ मैं बन में,
प्यारी लैला बसे मेरे मन में!

कवि जब वाह्य विश्व में सूक्ष्मावलोकन करते-करते एक दिन सचमुच अपने अन्तर्जगत में पहुँच जाता है, तब वहाँ वह उस कवीर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः से एक रस हो जाता है, जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म होकर अन्तर्जगत में अन्तर्हित होकर हमारे साथ न जाने कब से आँख-मिचौनी खेल रहा है।

× × ×

कवि के अज्ञात भावों का अर्थ न समझ सकने पर भी वे हृदय को भले लगते हैं, उनमें जैसे प्राणों का स्वर बोलता हुआ मालूम पड़ता है। विहग-कुल के कल-कूजन, सरिताओं की अविरल कल-कल छल-छल, पल्लवों के मृदु मर्मर-मर्मर की ही भाँति कवि के वे अस्पष्ट स्वर भी प्रिय मालूम पड़ते हैं। क्या हम वाह्य प्रकृति के कलरव का अर्थ समझ पाते हैं? नहीं। फिर भी, जब वह कल-कल छल-छल और मर्मर-मर्मर स्वर वन की निस्तब्धता को भेद कर चारो ओर गूँज उठता है, तब उसके साथ हमारे हृदयों में भी न जाने दुख-सुख की कैसी रागिनी बज उठती है! हाँ, उस स्वर

का अभिप्राय, कुछ-कुछ चारों ओर के प्राकृतिक वातावरण से आभासित हो जाता है। वही वातावरण कविता में भी छाया-चित्र की भाँति अङ्कित रहता है। इस छाया-चित्र के सुचारु अङ्कन में ही तो कवि-लेखनी की कला-कुशलता है। मेरे मित्र श्री० नरेन्द्र जोशी अपने एक पत्र में ठीक लिखते हैं—"जो कविताएँ (जैसे रायकृष्ण दास की 'साधना' के गद्य-गीत इत्यादि) अनुभव (Feel) करके लिखी जाती हैं, उनमें से अनेक अस्पष्ट भी होती हैं, पर वह अस्पष्टता हृदय को मोह लेती है। चाँदनी में पेड़ के पत्तों की तरह, उनके भी चारो ओर एक विचित्र वातावरण सा रहता है, जो हमें आकुल कर देता है। साधारणतः दो-तीन बार पढ़ने से वे अस्पष्ट कविताएँ हृदय में चुभ जाती हैं। यदि नहीं चुभतीं, तो वे सम्भवतः बहुत हलकी वा सारहीन होती हैं।"

अस्तु। वाह्य दृश्यावली को देख कर कवि के हृदय में जो स्मृतियाँ लिपिबद्ध होती हैं, वे कभी-कभी वैसे ही खो जाती हैं, जैसे अपने ही घर में अपनी ही कोई विशेष वस्तु। उस समय कवि की दशा सचमुच टेनीसन की सी हो जाती है। हम अपने घर में अपनी उस विशेष वस्तु को बहुत सचेत होकर रखते तो हैं, परन्तु कभी-कभी वह अनिवार्य आवश्यकता के समय ढूँढे भी नहीं मिलती; और एक दिन अचानक न जाने कैसे बिना किसी प्रयास के ही जब वह स्वयं हाथों में आती है, तब हम आश्चर्य-चकित हो जाते हैं।

किन्तु इन सब बातों का निष्कर्ष यह नहीं है कि कला में अस्पष्टता के नाम पर हमारे नवीन कवि उच्छ्ङ्खलतापूर्वक अनर्गल कविताएँ लिखें, बल्कि वे जो कुछ लिखें, उसमें सचमुच आत्मानुभूति और मर्मस्पर्शिता हो।

फूलबाला

[श्री० केदारनाथ मिश्र, "प्रभात"]

परी ! तुम कौन सुकोमल गात,
खेलती जीवन-वन में प्रात ?

अयुत कर से मृदु-मृदु सुकुमार,
खोलती अरुण किरण के द्वार ;
धूल से उठा बिलखता प्यार,
चूम पहराती आँसू-हार !
नाच उठता तृण-तृण तरु-पात,
परी ! तुम कौन सुकोमल गात ?

सुमुखि ! चलती तुम रुक-रुक मौन,
बरसते हरसिंगार के फूल !
फूलबाला-सी फूलों बीच,
भूल जाती तुम फिर-फिर भूल !
याद कर कौन अनोखी बात,
परी ! तुम आह, सुकोमल गात !

क्लान्त सन्ध्या के समय अधीर,
कहाँ से भर-भर लाती नीर ?
गन्ध, मदिरा, रस, सौरभ दान,
माँगता तुमसे मलय समीर !
सदा तुम रही अलख अज्ञात,
परी ! तुम कौन सुकोमल गात ?

कहानी-कला

[श्री० रामनारायण 'यादवेन्दु', बी० ए०]

कथोपकथन

कहानी में कथोपकथन से तात्पर्य उस पारस्परिक कथन से है, जो दो या अधिक पात्रों में होता है। यहाँ हमें कहानी के इसी अङ्ग पर विचार करना है। कथोपकथन द्वारा हमें पात्रों के चरित्र के सम्बन्ध में विश्वस्त ज्ञान या परिचय मिल जाता है। इसके अतिरिक्त उसके द्वारा कथावस्तु के प्रवाह में भी विशेष सहायता मिलती है। कहानी की गति में तीव्रता उत्पन्न करने और शिथिलता को दूर करने में भी कथोपकथन का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार कहानी में कथोपकथन के तीन कार्य हैं :—

१—चरित्र-चित्रण करना।

२—कथावस्तु के प्रवाह में सहायता देना।

३—घटनाओं में तीव्र गति का सञ्चार करना।

इन तीन कार्यों का सफलतापूर्वक निर्वाह करने के लिए दो बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए—प्रथम, यह कि लेखक का अपने पात्रों से पूर्ण परिचय हो; द्वितीय, जब पात्र कथोपकथन करते हों, तो लेखक उन पर पूरा-पूरा ध्यान रक्खे।

कथोपकथन की निम्न-लिखित विशिष्टताएँ अधिक महत्वपूर्ण हैं। अतः उदाहरण सहित उनका उल्लेख किया जाता है :—

१—उत्कृष्ट वार्तालाप की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि वह यथार्थ मनुष्योचित वार्तालाप हो।

"एक दिन मैंने कहा—आप ऊपर की आमदनी करते, तो बहुत रुपया इकट्ठा हो जाता।

उन्होंने मुसकिरा कर कहा—तुम्हें कुछ कष्ट है? मैं तुम्हारे लिए रिश्वत न लूँगा; किन्तु यथासाध्य तुम्हारा कष्ट दूर करूँगा।

मैं कह कर पछताई। खिसिया कर मैंने कहा—मुझे कुछ भी कष्ट नहीं। मैंने इसलिए कहा कि रुपया होता तो किसी समय काम आता।

उन्होंने कहा—यह भूल है। समय आता है तो रुपया क्या, ईश्वर भी चला आता है। सच्ची ज़रूरत कभी नहीं रुकती। हमारा छोटा भाई इस साल इञ्जीनियर हो जायगा। फिर उसे ५०) रुपया मासिक न भेजने पड़ेंगे। सुधाकर का लड़का अगले साल सब-ओवरसियरी में पास हो जायगा। उसे २०) जाते हैं, वे भी बच जावेंगे। ये दोनों काम में लग गए तो ज़रूरत होने पर इनसे सौ रुपया मासिक और मँगा सकते हैं। पाप की कमाई में सबसे बड़ा दोष यह है कि वह जिस काम में लगती है, उसे भी मिट्टी कर देती है। उससे जो सुख मिलता है, वह सच्चा नहीं होता; लिप्सा बढ़ती है और आराम घटता है। सुख तो मन की अवस्था-विशेष का नाम है। वह है, तो ग़रीब भी सुखी है, वह नहीं है तो चक्रवर्ती भी दरिद्र है।"

'भाग्य का चक्र'—पं० ज्वालादत्त शर्मा

यह दम्पति का कथोपकथन जितना मानवोचित है, उतना ही शील का परिचायक है। नारी-हृदय (जो अधिक संस्कृत नहीं हुआ है) का जैसा चित्रण यहाँ किया गया है, वह सर्वथा स्वाभाविक है। यह वार्तालाप गार्हस्थ्य-जीवन की एक सामान्य घटना है। पति ने पत्नी की जिज्ञासा की जिस ढङ्ग से सन्तुष्टि की है, वह बड़ा तार्किक और हृदयग्राही है।

अब हम यहाँ एक निकृष्ट और अ-मानवोचित कथोपकथन का उदाहरण देते हैं :—

"मेरी ससुराल तो, ख़ैर, बहुत दूर है, परन्तु कोई

साले यहीं 'सर्विस' करते हैं। मिलना-जुलना काफ़ी होता है ; इसलिए रिश्तेदारी न रह कर बेतकल्लुफ़ी और हा-हा, ही-ही रह गई थी। तीसरे-चौथे आते ही थे, और बातें भी ख़ूब ही होती थीं।

जहाँ ख़ूब बातें होती हैं, वहाँ किसी क़िस्म का परदा नहीं रहता, यह आप भी ज़रूर जानते ही हैं। वह बेचारे भी अर्से से विरह में थे। बस यों कहूँ—दोनों तरफ़ एक ही आग थी। बात तो ख़ैर मैंने चलाई, पर खुल पड़े हज़रत आप। कहने लगे—यार, बड़ा बुरा लगता है!

"ज़रूर ही लगता होगा!"—उत्फुल्ल स्वर में मैंने उनसे सहानुभूति प्रगट की।

"क्या करूँ, रो-रो पड़ता हूँ।"

"क्यों?"—मैंने बन कर पूछा।

"अरे भई, तुम पत्थर तो नहीं हो! तुम्हें 'फ़ील' नहीं होता?" मैंने अपने रिश्ते को भूल कर ऐसा फ़ोश प्रश्न किया और कहा—"तुम तो मुझसे भी नए हो! अभी दिन कै हुए हैं!"

"हज़रत, यहाँ ऐसे ढलने वाले नहीं हैं। हम तो एक खाट पर सोवें—बरसों सोवें, और बात न करें! आप समझते क्या हैं?" देखा आपने झूठ की हद!!

साले साहब ने प्रशंसा से अधिक व्यंग्य आँखों में भर कर एक ऐसी फ़ोश बात कही, जिसे लिखना औचित्य के बाहर है। अगर आप कर सकें, तो अनुमान कर लीजिए।

जब मैं उनकी फ़ोश बात का मुँह-तोड़ उत्तर दे चुका, और कुछ और बातें भी हो चुकीं, तो मैंने कहा—क्यों जी, ऐसे ही प्राण निकले जाते हैं, तो बाज़ार तो पड़ा है।

साले साहब ने आँखों में अद्भुत रहस्य और सन्देह भर कर कहा—यार, क्या कहूँ!

"क्या?"

"भई, शर्म लगती है?"

"नरक के द्वार पर"—ऋषभचरण जैन

यह कथोपकथन कितना भ्रष्ट और अश्लील है, आप स्वयं जान सकते हैं। वास्तव में साले-बहनोई का रिश्ता बड़ा मर्यादित है; उसमें इस प्रकार की उच्छृङ्खलता के लिए स्थान कहाँ? हमारी भावना और भारतीय विद्वानों की धारणा तो यही है कि साले-बहनोई में इस प्रकार का आचरण सम्भव नहीं है। इस प्रकार का दुराचरण पवित्र सम्बन्ध की सौम्य सीमा के परे है। इसे हम मानवों का कथोपकथन नहीं कह सकते। यह पशुओं की मलीन वृत्तियों का चित्रण है।

२—उत्तम कथोपकथन की दूसरी विशिष्टता है, पात्र की वैयक्तिकता (Individuality)। अर्थात् पात्र के कथोपकथन का ढङ्ग अपना निजी होना चाहिए। उसमें अनुकरण, आडम्बर और अनुपयुक्तता की गन्ध न आवे। पात्र जिस स्थिति का हो, उसीके अनुकूल भाषण करे। यदि अनपढ़ किसान विशुद्ध खड़ी बोली में कथन करे; सीमा-प्रान्त का निवासी काशी के महा-महोपाध्याय के समान संस्कृत-गर्भित भाषा का प्रयोग करे; तो क्या हम उसे पात्रोपयुक्त भाषण कह सकते हैं? यदि पात्र की वैयक्तिकता नष्ट हो जाय, तो उसका भाषण एक व्याख्यान सा लगेगा। यहाँ हम एक उत्कृष्ट पात्रोपयुक्त कथोपकथन का उदाहरण देते हैं:—

"बादशाह का शब्द सुन कर सलीमा ने उनकी तरफ़ देखा और धीमे स्वर में कहा—ज़हे क़िस्मत!

बादशाह ने नज़दीक बैठ कर कहा—सलीमा! बादशाह की बेगम होकर क्या तुम्हें यही लाज़िम था?

सलीमा ने कष्ट से कहा—हुज़ूर! मेरा क़ुसूर बहुत मामूली था।

बादशाह ने कड़े स्वर में कहा—बदनसीब! शाही ज़नानख़ाने में मर्द को भेष बदल कर रखना मामूली क़ुसूर समझती है? कानों पर यक़ीन कभी न करता, मगर आँखों देखी को भी झूठ मान लूँ?

जैसे हज़ारों बिच्छुओं के एक बार डङ्क मारने से आदमी तड़पता है, उसी तरह तड़प कर सलीमा ने कहा—क्या?

बादशाह डर कर पीछे हट गए। उन्होंने कहा—सच कहो, इस वक़्त तुम ख़ुदा की राह पर हो, यह जवान कौन था?

सलीमा ने अचकचा कर पूछा—"कौन जवान?"

बादशाह ने गुस्से से कहा—"जिसे तुमने साक़ी बना कर अपने पास रक्खा था?"

सलीमा ने घबरा कर कहा—हैं! क्या वह मर्द है?

बादशाह—तो क्या तुम सचमुच यह बात नहीं जानतीं ?

सलीमा के मुँह से निकला—या ख़ुदा !"

"दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी"—चतुरसेन शास्त्री

बादशाह और बेगम का यह सम्वाद उनकी स्थिति, सभ्यता, शिष्टाचार और भाषा के विचार से कितना अनुकूल है। यह कथोपकथन जितना स्वाभाविक है, उतना ही सरल और प्रसाद-सम्पन्न है। इस कथोपकथन के ठीक प्रतिकूल यह निम्नाङ्कित सम्वाद है :—

"उसकी सखी ज़ुलेखा के आने से उसकी एकान्त भावना भङ्ग हो गई। अपना अवगुण्ठन उलटते हुए ज़ुलेखा ने कहा—शीरीं ! वह तुम्हारे हाथों पर बैठ जाने वाली बुलबुल, आजकल नहीं दिखलाई देती ?

आह खींच कर शीरीं ने कहा—कड़े शीत में अपने दल के साथ मैदान की ओर निकल गया। बसन्त तो आ गया, पर वह नहीं लौट आया।

"सुना है, यह सब हिन्दोस्तान में बहुत दूर तक चले जाते हैं। क्या यह सच है शीरीं ?"

"हाँ प्यारी ! उन्हें स्वाधीन विचरना अच्छा लगता है। इनकी जाति बड़ी स्वतन्त्र है।"

"तूने अपनी घुँघराली अलकों के पाश में उसे क्यों न बाँध लिया ?"

"मेरे पाश उस पक्षी के लिए ढीले पड़ जाते थे।"

"अच्छा लौट आवेगा, चिन्ता न कर। मैं जाती हूँ।"—शीरीं ने सिर हिला दिया।

ज़ुलेखा चली गई।"

'बिसाती'—जयशङ्कर 'प्रसाद'

अभारतीय मुस्लिम महिलाओं का यह कथोपकथन है ! इन महिलाओं को हिन्दी भाषा से इतना प्रेम कैसे हो गया कि भूल कर भी उर्दू शब्द का व्यवहार नहीं करतीं। 'शीत', 'दल', 'बसन्त', 'स्वाधीन', 'विचरना', 'जाति', 'स्वतन्त्रता-प्रिय', 'अलकों', 'पाश', 'पक्षी', 'चिन्ता', आदि विशुद्ध संस्कृत शब्दों को बोलना उन्हें अति प्रिय लगता है; परन्तु यह प्रेम कृत्रिम और अनुपयुक्त है।

३—कथोपकथन की तृतीय विशिष्टता यह है कि उसमें किसी एक स्थल पर मनोभाव (Feeling) की स्पष्ट अभिव्यक्ति होनी चाहिए। यथा :—

"एक दिन मैंने अपने पुत्र ज्ञानू को, जिसकी उम्र उस समय सात वर्ष की थी, किसी साधारण अपराध पर पीट दिया। वह रोता हुआ अपनी माँ के पास गया। केवल इसी बात पर चमेली ने दूसरे दिन मुझसे कहा—कल तुमने ज्ञानू को बड़ी बुरी तरह मारा।

मैंने कहा—उसने काम ही मार खाने का किया था।

चमेली आँखों में आँसू भर कर बोली—उसे मारा न करो।

मैंने कहा—क्यों ?

चमेली—मुझे बड़ा दुःख होता है।

मुझे उसकी बात पर हँसी आई। सभी बच्चे कुछ न कुछ मारे-पीटे जाते हैं। इसमें इतना दुःख अनुभव करने की क्या आवश्यकता ? मैंने चमेली से कहा—अपराध करने पर तो ताड़ना ही की जाती है। इसमें तुम्हारा इतना दुःख मानना बिलकुल निरर्थक है।

चमेली—मेरे इतना दुःख मानने का कारण है।

मैं—क्या कारण ?

चमेली—वह बिन माँ का है ?

मैं हतबुद्धि होकर बोला—बिन माँ का है ?

चमेली—हाँ, मैं ऐसा ही समझती हूँ। मेरे जीवन का क्या भरोसा है ? मैं अपने को मरी हुई ही मानती हूँ और इसी कारण उसे मातृहीन बालक समझती हूँ।"

'वह प्रतिमा'—विश्वम्भरनाथ शर्मा, कौशिक

इस सम्वाद में मातृ-हृदय का कैसा उज्ज्वल चित्र है। वात्सल्य-भावना की अभिव्यक्ति कितनी सुन्दर हुई है। प्रिय पुत्र के दुःख का सन्ताप कितना असह्य है !

४—कथोपकथन में हास्य, विनोद और व्यंग्य का उत्कृष्ट सामञ्जस्य उसको बड़ा आकर्षक बना देता है। परन्तु इनका प्रयोग समय और परिस्थिति को विचार कर करना चाहिए।

कथोपकथन को मनोरञ्जक और हृदयस्पर्शी बनाने के लिए कुछ नियम हैं, जिनका पालन करने से लेखक उसे मनोरञ्जक बना सकता है। प्रत्येक प्रतिभाशाली कलाकार की रचनाओं में इन नियमों का पालन दृष्टिगोचर होता है। यहाँ हम ऐसे ही कुछ नियम देते हैं :—

जब एक पात्र कथन कर रहा हो और दूसरा पात्र बीच में ही बोलने लगे, तो इससे सम्वाद में दोष नहीं आता। यह तो एक गुण है। क्योंकि इसके द्वारा पात्र के मनोभाव की अभिव्यक्ति बड़ी सुन्दरता से हो जाती है। श्री० प्रेमचन्द जी की 'गृहदाह' कहानी में इस नियम का पालन किया गया है।

दूसरा नियम यह है कि पात्र से किसी प्रश्न का उत्तर सामान्य कथन के रूप में न दिला कर उससे ऐसा उल्लेख कराना चाहिए कि ऐसा क्यों हुआ? तात्पर्य यह कि उत्तर केवल ग्रामोफ़ोन के रिकार्ड के समान न हों। उनमें 'क्यों' और 'कैसे' की जिज्ञासा होनी चाहिए।

तृतीय नियम यह है कि लेखक को चाहिए कि वह पात्र से किसी प्रश्न का उत्तर दिलाने के स्थान में उसमें एक नवीन प्रश्न की जिज्ञासा का आविर्भाव कर देना चाहिए।

इसी प्रकार पात्र यदि किसी प्रश्न का उत्तर दे तो उसे प्रश्न में प्रयुक्त शब्दावली से भिन्न शब्दों का प्रयोग करना चाहिए।

कैसा व्यापार ?

[श्री० नर्मदाप्रसाद खरे]

विकसते जीवन की मनुहार,
तुम्हारा यह कैसा व्यापार ?

निशा जब पहिन तिमिर-परिधान,
जला कर तारक दीप अजान,
विश्व को कर देती सुनसान,
स्वप्न में आ तब तुम साकार;
जतातीं अपना पीड़ित प्यार॥

उषा जब ले सोने का थाल,
पूजने जाती है रवि-बाल,
बिखर तब मेरी आँसू-माल,
तुहिन-मणियों में छा सुकुमार;
जगाती मधुमय सोया प्यार॥

नवल कलियाँ जब प्रातःकाल,
खोल कर घूँघट पीला लाल
बिछाती हैं मधु का मृदु जाल,
मधुप करते तब यह गुञ्जार—
'न पाओगे तुम खोया प्यार'॥

तपा जब रवि-किरणें संसार,
बना देतीं दुख का आगार,
छिपा तब पीड़ा का मृदु भार,
प्राण करते हैं सजल पुकार—
'अरे! यह कैसा पागल प्यार'॥

दिवस की गोधूली अनजान,
सुना विहगों का पीड़ित गान,
उसे देती विनाश का ज्ञान,
तभी करता अनन्त झङ्कार—
'क्षणिक है मधु जीवन का प्यार'॥

वर्तमान मुस्लिम-जगत

[डॉ० मथुरालाल शर्मा, एम० ए०, डी० लिट्०]

(गताङ्क से आगे)

सन् १९२२ की सन्धि और उसका विरोध

इस उपाय से भी ईराक़ की राष्ट्रीयता नहीं दबी। आन्दोलन जारी रहा। फ़ैसल यों तो अङ्गरेज़ों का मित्र था ही, पर सिंहासन पर बैठने पर उसको मालूम हो गया कि केवल अङ्गरेज़ों की कृपा से वह सिंहासन पर नहीं रह सकता। इसलिए उसने राष्ट्रीयता का विरोध नहीं किया और देश की भावनाओं के साथ सहानुभूति करने लगा। अब एक ओर तो ईराक़ और अङ्गरेज़ सरकार में भविष्य के लिए सन्धि की बातचीत होने लगी और दूसरी ओर राष्ट्रीय आन्दोलन बढ़ने लगा। शीया और सुन्नी शताब्दियों के पारस्परिक द्वेष को भूल कर एकमत हो गए और ब्रिटिश सरकार की नीति का घोर विरोध करने लगे। सभाओं में, पत्रों में, परस्पर बातचीत में, गानों में, जहाँ देखो वहाँ अङ्गरेज़ी संरक्षता के विरुद्ध आन्दोलन और घृणा दिखाई देती थी। हाई कमिश्नर के दबाव में आकर मन्त्रि-मण्डल ने सन्धि को स्वीकार तो कर लिया, पर शर्त यह रक्खी कि देश की प्रतिनिधि-सभा जब इसको स्वीकार कर लेगी, तब पक्की मानी जावेगी। हाई कमिश्नर ने इस विषय में कई बार लिखा-पढ़ी की, परन्तु मन्त्रि-मण्डल अपने निश्चय से नहीं टला। साथ ही राष्ट्रीय आन्दोलन दिन-दिन बढ़ता ही जाता था। यह देख कर हाई कमिश्नर ने दमन-चक्र चलाना शुरू किया। जिन हाकिमों में राष्ट्र-प्रेम देखा, उनको निकाल दिया और उनकी जगह अङ्गरेज़ अफ़सर काम करने लगे। सभाएँ करने की मनाही हो गई। राष्ट्रीय पार्टियों पर सख़्त निगरानी रक्खी जाने लगी और सरकार के पिट्ठुओं की पीठ ठोंकी जाने लगी। यह देख कर मन्त्रि-मण्डल ने इस्तोफ़े दे दिए और राजप्रासाद में भी अङ्गरेज़ों की संरक्षता तथा हाई कमिश्नर के विरुद्ध हल्ला होने लगा। यह देख कर प्रजातन्त्र का आडम्बर हाई-कमिश्नर ने हटा दिया, नेताओं को देश-निर्वासित कर दिया और जनता की ज़बान पर ताले लगा दिए। इस प्रकार दमन करने के बाद, अक्टूबर सन् १९२२ में ईराक़ के साथ सन्धि हो गई। इसके अनुकूल अङ्गरेज़ों की संरक्षता बनी रही और बादशाह को हुक्म दिया गया कि वह राष्ट्र-सभा के सामने ऐसा शासन-विधान पेश करे, जो सन्धि की शर्तों के विपरीत न हो। वास्तव में बात यह थी कि सन्धि की शर्तों के अनुसार ईराक़ में अङ्गरेज़ों का इतना आधिपत्य था कि वहाँ उनके रहते हुए स्वराज्य सम्बन्धी कोई भी शासन-विधान सफल नहीं हो सकता था। यह कैसे सम्भव हो सकता था कि चुटिया तो रहे परदेशियों के हाथ में और फिर कहा जावे कि स्वराज्य का मसविदा पेश करो। इस सन्धि के अनुकूल अङ्गरेज़ों की संरक्षता की अवधि बीस वर्ष नियत की गई थी।

सन् १९२३ तथा १९२७ की सन्धि

फिर भी स्वातन्त्र्य संग्राम बन्द नहीं हुआ। फ़ैसल और उसके मन्त्री लोगों ने सन्धि को स्वीकार कर लिया, पर इससे क्या हो सकता था? जनता उसका विरोध करती रही। अङ्गरेज़ों के दमन से भी कुछ नहीं हुआ। उत्पात बढ़ता ही गया और कई जगह लोगों ने अपना शासन अपने ही हाथ में ले लिया। इस सन्धि के अनुकूल जब राष्ट्रीय व्यवस्थापिका सभा का चुनाव होने लगा तो जनता ने उसमें कोई भाग नहीं लिया और उसका

पूर्ण बहिष्कार हुआ। तब अप्रैल सन् १९२३ में अङ्गरेज़-सरकार ने दूसरी सन्धि की और संरक्षता की अवधि बीस साल से हटा कर चार साल कर दी गई। साथ ही यह भी कह दिया कि यदि इससे भी पूर्व ईराक़ राष्ट्र-सङ्घ में सम्मिलित हो सकेगा, तो संरक्षकता हटा ली जावेगी। अङ्गरेज़ी अफ़सरों का सम्बन्ध अब ईराक़-सरकार से रह गया, हाई कमिश्नर से नहीं; और अन्य कई रिआयतें की गईं। इस सन्धि के अनुसार सन् १९२७ में अङ्गरेज़ों की संरक्षकता हट जानी चाहिए थी। परन्तु उसका पालन नहीं किया गया। उसी वर्ष एक दूसरी सन्धि की गई, जिसमें यह शर्त ठहरी कि संरक्षकता सन् १९३२ में हटाई जावेगी। १९३२ में क्या होगा, यह कौन कह सकता है? परन्तु इङ्गलैण्ड नित्य नए मसविदे पेश ही किया करता है। ईराक़ प्रायः अङ्गरेज़ों की नीति के विरुद्ध है, परन्तु फिर भी एक पार्टी ऐसी है, जो इनकी संरक्षकता में ही फल-फूल सकती है। मन्त्रि-मण्डल के अधिकांश लोग इनके कृपापात्र होते हैं। परन्तु राष्ट्रीयता दिन-दिन प्रबल होती जाती है। अङ्गरेज़ सरकार से क्या समझौता हो, इस विषय में गत वर्ष मार्च के महीने में मन्त्रि-मण्डल में बड़ा मतभेद हुआ था, और प्रधान मन्त्री साहूनपाशा ने पदत्याग कर दिया था। फिर जब वर्तमान हाई कमिश्नर सर गिलबर्ट क्लेरन आया, तब कुछ चाटुकार लोगों का मन्त्रि-मण्डल बनाया गया। सर गिलबर्ट ने जो समय-समय पर भाषण दिए हैं, उनसे यही अनुमान होता है कि यदि अङ्गरेज़ों का वश चला तो १९३२ में तो वे ईराक़ से विदा नहीं होंगे। परन्तु ईराक़ पूर्ण स्वतन्त्र होगा, यह भी निश्चय है। केवल दो-चार वर्षों की बात है।

सरकार का पतन

जब यूरोपीय महासमर समाप्त हो गया, तो ईरान के प्रतिनिधि पेरिस गए और वहाँ सन्धि-परिषद् के सामने अपनी राजनैतिक, आर्थिक तथा क़ानूनी माँगें पेश कीं। उस समय फ़ारस पर अङ्गरेज़ों का आधिपत्य था; शाह और उनका मन्त्रि-मण्डल उनके आगे चूँ नहीं कर सकता था। अङ्गरेज़ी व्यापारियों की कम्पनियाँ देश में फैली हुई थीं और ख़ूब मालामाल होती जाती थीं। अङ्गरेज़ों पर फ़ारस-सरकार को कोई क़ानूनी अधिकार नहीं थे। उनके वास्ते अलग कचहरियाँ थीं। फ़ारस को दबाए रखने के लिए वहाँ एक अङ्गरेज़ी सेना भी रहती थी। इस प्रकार के आततायीपन से छुटकारा पाने के वास्ते फ़ारस के प्रतिनिधि पेरिस गए थे। परन्तु याचना से अधिकारों की प्राप्ति नहीं होती। अधिकार शक्ति से ही प्राप्त होते हैं और शक्ति ही उनकी रक्षा कर सकती है। सन्धि-परिषद ने इनकी कोई बात नहीं सुनी और वे वापस आ गए। सन् १९१९ में सर पर्सी कोक्स, जिसका हम ईराक़ के सम्बन्ध में ज़िक्र कर चुके हैं, फ़ारस की राजधानी तेहरान में आया और वहाँ की नामधारी सरकार से उसने एक सन्धि की, जिसके अनुकूल फ़ारस के शाह और उसके मान्त्र-मण्डल की रही-सही शक्ति का भी अपहरण कर लिया गया। फ़ारस का शासन, सेना, अन्तर्राष्ट्रीय नीति, व्यापार आदि सब अङ्गरेज़ों के अधीन हो गए। परन्तु यह सन्धि फ़ारस के बादशाह और उसकी सरकार से हुई थी। जब पार्लामेण्ट का अधिवेशन हुआ तो उसने इसका अनुमोदन नहीं किया, जिसके कारण सन्धि पक्की न हो सकी। देश भर में राष्ट्रीय जागृति हो चुकी थी और स्वतन्त्रता की अभिलाषा उमड़ रही थी। ऐसी सन्धि को जनता कैसे स्वीकार कर सकती थी। १९२० में जनता के विरोध के कारण राज-मन्त्रियों ने पद-त्याग कर दिए और तदनन्तर मन्त्रि-मण्डल को इङ्गलैण्ड के साथ कोई सन्धि करने का साहस नहीं हुआ।

रिज़ाअली का उदय

सन् १९२१ में एक प्रबल सैनिक अफ़सर रिज़ाख़ाँ युद्ध-सचिव बन गया और ज़ियाउद्दीन प्रधान सचिव के पद पर नियत हुआ। ज़ियाउद्दीन ने अनेक शासन-सम्बन्धी सुधार किए। विशेषकर उसने अमीरों की शक्ति और अत्याचारों को कम किया और अपनी सम्पत्ति का कुछ अंश देशोन्नति के लिए दे देने को उनको बाध्य किया। लेकिन रिज़ाअली प्रतिदिन शक्तिशाली होता जाता था। सैनिक शक्ति भी उसके पास थी और जनता भी उस पर विश्वास करती थी। इसलिए चार मास बाद ही ज़ियाउद्दीन भाग गया और रिज़ाअली ने सब प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया। परन्तु कहने को वह केवल युद्ध-सचिव ही बना रहा। पाठकों को आश्चर्य

होगा कि अङ्गरेज़ों का आधिपत्य होते हुए भी रिज़ाअली इतना शक्तिशाली कैसे हो गया। इसके अन्तर्राष्ट्रीय कारण थे।

रूस की सहायता

सन् १९२० में रूसी सेना उत्तर ईरान में घुसी और अङ्गरेज़ी सेना को वहाँ से हटाने लगी। इसके पाँच मास बाद ही फ़ारस और रूस में एक महत्वपूर्ण सन्धि हुई, जिसके कारण फ़ारस का बल बढ़ा और वहाँ से अङ्गरेज़ों के पैर उखड़ गए। रूस अपने नवीन क्रान्तिकारी सिद्धान्तों के अनुकूल अपना राज्य-विस्तार नहीं चाहता था, पर वह अङ्गरेज़ों के सान्निध्य को अपनी भावी उन्नति के लिए अच्छा नहीं समझता था। क्योंकि अङ्गरेज़ संसार में सबसे अधिक साम्राज्यवादी शक्ति है और रूस साम्राज्यवाद का कट्टर विरोधी है। इसलिए रूस ने फ़ारस के साथ सन्धि की, जिसकी शर्तें निम्न-लिखित थीं :—

फ़ारस और रूस की सन्धि

"वर्तमान रूसी सरकार भूतपूर्व साम्राज्यवादी रूसी सरकार की हड़प-नीति का अनुसरण नहीं करेगी। भूतपूर्व रूसी सरकार में और फ़ारस में जो ऐसी सन्धियाँ हुई थीं; जिनके कारण रूस को लाभ और फ़ारस को हानि हो रही है, वे सब रद्द की जाती हैं। ज़ार की सरकार ने यूरोपीय राष्ट्रों के साथ जो ऐसी सन्धियाँ की हैं, जिनसे फ़ारस को हानि होती है, उनको भी वर्तमान सरकार नहीं मानेगी। यदि कोई राष्ट्र फ़ारस पर आक्रमण करेगा तो रूस का कर्तव्य है कि वह फ़ारस की सहायता करे। रूस ने फ़ारस के अन्दर रेल, तार, सड़कें आदि बनाने में जो पूँजी ख़र्च की है, उसको भी रूसी सरकार नहीं माँगेगी। रूसी लोगों को फ़ारस में जो विशेष अधिकार प्राप्त हैं, वे सब रद्द किए जाते हैं। रूस के मकान जो फ़ारस में हैं, वे भी फ़ारस-सरकार को भेंट किए जाते हैं।"

अङ्गरेज़ों की विदाई

ऐसी सन्धि होने पर अङ्गरेज़ों का फ़ारस में ठहरने का क्या साहस हो सकता था। फ़ारस की चतुर्थ पार्लामेंट ने इस सन्धि को पक्की किया और १९१९ में अङ्गरेज़ों के साथ फ़ारस की नपुंसक सरकार ने जो सन्धि की थी, उसको रद्द ठहराया गया। अङ्गरेज़ सैनिक अफ़सर और हिसाब महकमे के सलाहकार बरख़्वास्त कर दिए गए। दक्षिण में जो अङ्गरेज़ी सेना थी और जिसको फ़ारस-सरकार से वेतन मिलता था, वह तोड़ दी गई। कुछ महीनों के अन्दर ही अङ्गरेज़ सैनिक और कर्मचारी ईरान से विदा हो गए। सर पर्सी साइक्स लिखते हैं कि "यह ईरान का महा दुर्भाग्य था कि उसने अङ्गरेज़ों की मित्रता को त्याग दिया। अङ्गरेज़ों ने तो अपना यह कर्तव्य समझ कर कि तीन सौ वर्षों के मित्र को उन्नति-पथ दिखाना चाहिए, फ़ारस के शासन में सहायता करते थे। अब वे लोग ईरान से जा रहे हैं। इस देश का विनाश अवश्यम्भावी है।" परन्तु जब से अङ्गरेज़ महाप्रभु ईरान से पधारे हैं, तब से वहाँ उत्तरोत्तर उन्नति होती जाती है। विदेशियों की सहायता के बिना किसी राष्ट्र का उन्नत होना वास्तव में आश्चर्य की बात है। या तो प्रकृति अपना नियम भूल गई या जो कुछ जगत को फ़ारस में दिखाई देता है, वह सब माया और भ्रम है। क्योंकि सर पर्सी का शाप अवश्य सत्य होना चाहिए।

इस स्वतन्त्रता-प्राप्ति का सम्पूर्ण श्रेय रिज़ाअली को है। वह फ़ारस की सेना का एक साधारण अफ़सर था, परन्तु सन् १९२१ में उसने बड़ी सैनिक निपुणता दिखाई और तभी से वह "सरदारे सिपह" कहलाने लगा। उसके बाद वह युद्ध-सचिव बना और ज़ियाउद्दीन के भाग जाने पर भी वह युद्ध-सचिव ही बना रहा; परन्तु राज्य की सम्पूर्ण सत्ता उसके हाथ में आ चुकी थी। कुछ समय बाद वह प्रधान सचिव बन गया और घोषणा की कि फ़ारस में प्रजातन्त्र राज्य की स्थापना की जावेगी। शैख़, मुल्ला और ऐसे ही और लोगों ने प्रजातन्त्र का विरोध किया। इसलिए वह स्वयं बादशाह बन गया, पर उसने अपनी सत्ता को अनियन्त्रित नहीं बनाया। पार्लामेण्ट, मन्त्रि-मण्डल और बादशाह तीनों मिल कर वास्तव में वहाँ की राजसत्ता बनी है। उसके बाहुबल के प्रताप से आज फ़ारस स्वतन्त्र देश है और संसार के सभ्य देशों के सामने उसका मस्तक ऊँचा है।

अफ़ग़ानिस्तान और १९१९ का युद्ध

पिछले प्रकरण में हम बतला चुके हैं कि अफ़ग़ानिस्तान घरू मामलों में तो स्वतन्त्र था, पर अन्तर्राष्ट्रीय

विषयों में उसको एक ओर से अङ्गरेज़ों ने और दूसरी ओर से रूस ने दबा रक्खा था। सन् १९१७ में जब रूस में राज्य-क्रान्ति हो गई तो वहाँ की नवीन प्रजातन्त्र सरकार ने ज़ार-काल की साम्राज्यवादी नीति का अनुसरण करना छोड़ दिया और पश्चिमी तरफ़ से अफ़ग़ानिस्तान पर बाह्य शक्ति का कोई दबाव नहीं रहा है। महमूद ताज़ी के लेखों से और प्रचार से अफ़ग़ान जनता और अमीर दोनों में स्वतन्त्रता-प्राप्ति की अभिलाषा बढ़ती जाती थी। जब रूस का दबाव हट गया तो वे लोग अङ्गरेज़ों का भी खटका मिटाने का विचार करने लगे। सन् १९१९ में अमीर अमानुल्ला ने अफ़ग़ानिस्तान की पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। तत्कालीन सन्धि के अनुसार उसको अन्य राष्ट्र से भारत-सरकार के द्वारा बातचीत करना चाहिए था, परन्तु उसने इसकी तनिक भी परवाह न करके अपने राजदूत को सन्धि की शर्तें निश्चित करने के लिए रूस भेज दिया। उस समय भारत में और विशेषकर पञ्जाब में घोर असन्तोष था और स्थान-स्थान पर आज़ादी के प्यासे भारतीय उत्पात मचा रहे थे। इसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों पूर्ण रूप से सम्मिलित थे। सरकार ने भी दमन-चक्र चलाने में कोई कमी नहीं की थी। जलियानवाला बाग़ और अनेक नगरों के सैनिक शासन की कथाएँ जब अफ़ग़ानिस्तान में पहुँचीं, तो वहाँ भी लोगों में अङ्गरेज़ों के प्रति घोर घृणा जाग उठी। इस परिस्थिति से लाभ उठा कर अमानुल्ला ने भारत-सरकार के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और अफ़ग़ानी सेना भारत की तरफ़ बढ़ने लगी।

रावलपिण्डी की सन्धि

इस युद्ध में अङ्गरेज़ों ने वायुयानों का विशेष उपयोग किया। जब युद्ध बन्द हुआ तो भारत-सरकार कहती थी कि हम जीते और अमानुल्ला कहता था कि हम जीते। पर वास्तव में ऐसा जान पड़ता है कि दोनों ही जीते और दोनों ही हारे। अगर अङ्गरेज़ जीते होते तो वे पुनः काबुल पर अपना आधिपत्य जमाए बिना तथा अमानुल्ला से हाथ जुड़वाए बिना नहीं रह सकते थे, और यदि अमीर अमानुल्ला जीता होता तो उसकी सेना भारतवर्ष में घुसे बिना नहीं रह सकती थी। बात यह थी कि आगे बढ़ने का दोनों में ही साहस नहीं था। अतः कुछ मास बाद ही रावलपिण्डी में सन्धि हुई, जिसके अनुसार अङ्गरेज़ों ने मान लिया कि अफ़ग़ानिस्तान पूर्ण स्वतन्त्र है और उसके अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध में भारत-सरकार को हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है। सन् १९२१ में, काबुल में दूसरी सन्धि हुई। इसमें पूर्व सन्धि को पक्की माना गया। अफ़ग़ानिस्तान आन्तरिक और बाह्य विषयों में पूर्णरूपेण स्वतन्त्र मान लिया गया। तुर्की और ईरान की भाँति इसकी भी सभ्य और उन्नत राष्ट्रों में गिनती होने लगी।

(क्रमशः)

सुमनों का हार

[कुमारी राधिका चौहान]

सुमन-माल से सजा-सजा कर, छोटी डाली लाई हूँ।
करो इसे स्वीकार, नाथ ! मैं सकुचाई-सी आई हूँ॥
इस डाली के सुमन सभी प्रभु ! परिमल और पराग-विहीन।
मधु मकरन्द मनोहरता से हीन और सब भाँति मलीन॥
किन्तु, प्रेम से भरे सभी हैं, सुमन-हार, हे जगदाधार !
प्रेम-रूप तुमको पहिनाने—आई हूँ, सुमनों का हार॥

प्रयाग महिला-सेवा-सदन

[श्री० अभयङ्कर वर्मा, एम० ए०, एल्-एल्० बी०]

गत सन् १९२२ ई० में, प्रयाग के उत्साही कार्यकर्ता और इलाहाबाद हाईकोर्ट के एडवोकेट श्री० सङ्गमलाल जी ने अपने कतिपय उत्साही मित्रों के सहयोग से प्रयाग महिला-विद्यापीठ की स्थापना की थी। परन्तु उस समय देश की स्त्रियों में ऐसी जागृति न थी, इसलिए विद्यापीठ ने केवल एक परीक्षक संस्था के रूप में ही अपना कार्य आरम्भ किया ; शिक्षा प्रदान करने का कार्य अपने हाथ में न ले सकी थी।

परन्तु सन् १९३० के राष्ट्रीय आन्दोलन ने स्त्री-समाज में एक अद्भुत जागृति पैदा कर दी। परदा तथा दूसरी प्रकार की सामाजिक रूढ़ियों को ठुकरा कर सहस्रों की संख्या में स्त्रियों ने राष्ट्रीय तथा सामाजिक कामों में भाग लिया। सारे देश के स्त्री-समाज में एक अपूर्व उत्साह और साहस का सञ्चार हो गया। उनकी ज्ञानार्जन की पिपासा भी बढ़ चली। फलतः विद्यापीठ ने भी अपने कार्यक्षेत्र को विस्तृत करने का विचार किया और अगस्त सन् १९३० में, पन्द्रह वर्ष या उससे अधिक उम्र की लड़कियों और स्त्रियों की शिक्षा के लिए महिला सेवा-सदन की स्थापना की गई।

यह सेवा-सदन एक उच्चकोटि की शिक्षा-संस्था है। इसके उद्देश्य बड़े ही महान और समयोपयोगी हैं। यहाँ छात्रियों को विद्यापीठ तथा हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन आदि अन्य सार्वजनिक संस्थाओं की परीक्षाओं के लिए शिक्षा दी जाती है। उन्हें ऐसी शिक्षा दी जाती है, जिससे वे समाज की सेविकाएँ बन सकें। समाज-सुधार आदि कामों में निपुणतापूर्वक भाग ले सकें। सेवा-सदन स्त्रियों को ऐसी शिक्षा प्रदान करने की चेष्टा करता है, जिससे वे आवश्यकता पड़ने पर धनोपार्जन कर सकें। वह प्राथमिक स्कूलों के लिए ऐसी अध्यापिकाएँ तैयार करने की चेष्टा करता है, जो साधारण पाठ्य विषयों का ज्ञान रखने के साथ ही सङ्गीत, सिलाई और शिक्षण-कला में भी विशेष निपुण हों। इसके सिवा स्त्रियों को साधारण शिक्षा के साथ-साथ ऐसे कला-कौशल तथा अन्य उपयोगी विषयों की शिक्षा प्रदान करने की आवश्यकता है, जिससे वे स्वतन्त्र आर्थिक जीवन व्यतीत कर सकें। यह भी सेवा-सदन का उद्देश्य है।

सेवा-सदन में इस बात का विशेष ध्यान रक्खा जाता है कि जो स्त्रियाँ किसी कारणवश उच्च शिक्षा प्राप्त करने में असमर्थ हैं, वे दो वर्षों में कम से कम इतनी शिक्षा तो अवश्य ही प्राप्त कर लें, जिससे १५) २०) मासिक उपार्जन करके स्वतन्त्रतापूर्वक अपना जीवन निर्वाह कर सकें। परन्तु जो स्त्रियाँ उच्च शिक्षा प्राप्त करना चाहें, वे जितनी पढ़ाई साधारणतः दो वर्षों में होती है, उसको एक ही वर्ष में समाप्त कर लें।

सेवा-सदन का गत वर्षों का काय-विवरण देखने से पता लगता है कि संस्था अपने उद्देश्य की ओर सफलतापूर्वक अग्रसर हो रही है। अप्रैल सन् १९३२ में सेवा-सदन की १४ स्त्रियाँ गवर्नमेंट की लोअर मिडिल की परीक्षा में सम्मिलित हुई थीं। जिनमें इस सेवा-सदन का परीक्षा-फल, प्रयाग के उन सभी स्कूलों से अच्छा रहा, जिनकी लड़कियों ने ६ या ७ वर्षों तक पढ़ कर परीक्षा दी थी।

उपर्युक्त परीक्षोत्तीर्ण लड़कियों में से तीन प्रयाग-म्युनिसिपल बोर्ड, दो इलाहाबाद डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और एक कानपूर म्युनिसिपल बोर्ड के स्कूल में अध्यापिका का कार्य करके अपने कुटुम्ब का पालन कर रही हैं। इस संस्था की स्त्रियों को शिक्षा-विभागों ने नौकरियाँ देकर यह लाभ उठाया है कि वे साधारण पाठ्य विषयों के अतिरिक्त छात्रियों को सङ्गीत-विद्या और सिलाई की भी शिक्षा प्रदान कर सकती हैं।

लोअर प्राइमरी से आगे की शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा रखने वाली स्त्रियों के लिए भी संस्था ने समुचित प्रबन्ध कर दिया है। अर्थात् उनके लिए प्रवेशिका, विद्या-विनोदिनी और विदुषी कक्षाएँ भी खोल दी गई हैं। इनमें प्रयाग विद्यापीठ की निर्धारित पाठ्य-विधि के अनुसार शिक्षा दी जाती है। इसके अलावा एक 'एडमिशन क्लास' भी खोल दिया गया है, जहाँ काशी-विद्यापीठ की परीक्षा के लिए विद्यार्थिनें तैयार होती हैं। विदुषी कक्षा की वे विद्यार्थिनें, जो अङ्गरेज़ी भी पढ़ती हैं, इस परीक्षा के लिए तैयार की जाती हैं। महिला विद्यापीठ की जो 'विदुषी' उपाधिधारिणी विद्यार्थिनी एडमिशन पास कर लेती हैं, वह सरकार द्वारा स्वीकृत प्रमाण-पत्र पा जाती हैं और भविष्य में अच्छे वेतन पर नौकरी पा सकती हैं। इस समय आठ विद्यार्थिनियाँ एडमिशन परीक्षा की तैयारी कर रही हैं।

सेवा-सदन में तीन ऐसी विशेष कक्षाएँ हैं, जिनमें केवल सङ्गीत, सिलाई या अङ्गरेज़ी सीखने के लिए छात्रियाँ भर्ती की जाती हैं। ऐसी स्त्रियाँ, जो दिन के ११ बजे से लेकर तीन बजे तक घरों में बेकार बैठी रहती हैं, उनके लिए ये कक्षाएँ बड़ी ही उपयोगी हैं।

सेवा-सदन ने गत ढाई वर्षों में जो उन्नति की है, वह वास्तव में सन्तोषजनक और उसके सञ्चालकों की कर्म-पटुता का परिचायक है। पहले वर्ष जहाँ ३७ स्त्रियाँ शिक्षा पाती थीं, वहाँ अब १२५ पा रही हैं। अध्यापिकाओं की संख्या भी चार से बढ़ कर ग्यारह हो गई है।

सङ्गीत-विभाग

सेवा-सदन में सङ्गीत की शिक्षा का अच्छा प्रबन्ध है। इस समय वहाँ भिन्न-भिन्न कक्षाओं में कई स्त्रियाँ सङ्गीत की शिक्षा पा रही हैं। उन्हें कई प्रकार के बाजों की शिक्षा दी जाती है। गत लोअर मिडिल परीक्षा में इस प्रान्त की दस स्त्रियों ने सङ्गीत लिया था, उनमें से नौ सेवा-सदन की विद्यार्थिनियाँ थीं और सभी पास हो गईं। इस वर्ष लोअर और मिडिल दोनों परीक्षाओं में यहाँ की छात्रियाँ सङ्गीत लेकर सम्मिलित हुई हैं।

बोर्ड ऑफ़ हाई स्कूल और इण्टरमीडियट एजूकेशन की "म्यूज़िक डिप्लोमा" परीक्षा की स्वीकृति के लिए भी प्रबन्ध किया जा रहा है। साथ ही इस साल महिला 'आरचेस्ट्रा' का भी प्रबन्ध किया गया है।

सिलाई-विभाग

इस विभाग का प्रबन्ध भी अच्छा है। १११ छात्रियाँ इस समय सिलाई की शिक्षा प्राप्त कर रही हैं। उन्हें कपड़े काटने का काम वैज्ञानिक रीति से सिखलाया जाता है। इनमें कइयों ने तो इतनी योग्यता प्राप्त कर ली है कि वे केवल सिलाई का काम करके ही अपना जीवन निर्वाह कर सकती हैं।

पुस्तकालय और वाचनालय

विद्यार्थिनियों की विशेष सुविधा और ज्ञानार्जन के लिए 'कर्पूरी महिला पुस्तकालय' नाम से एक पुस्तकालय और वाचनालय की भी स्थापना की गई है। इस पुस्तकालय में २,५००के क़रीब पुस्तकें हैं और कई दैनिक, साप्ताहिक और मासिक पत्र भी आते हैं। पण्डित रामनारायण जी चतुर्वेदी ने अपनी धर्मपत्नी कर्पूरी देवी की स्मृति में इस पुस्तकालय की स्थापना कराई है।

नर्सिङ्ग और मिडवाइफ़री

रोगियों की सेवा-सुश्रूषा सम्बन्धी विद्या स्त्रियों के लिए बड़े काम की है। इसे सीख कर वे अनायास ही २५-३० रुपए मासिक उपार्जन कर सकती हैं। सेवा-सदन ने इस शिक्षा का भी प्रबन्ध किया है। योग्य डॉक्टरों की सहायता से एक वर्ष के लिए पाठ्य-क्रम भी प्रस्तुत कर लिया गया है। एक योग्य डॉक्टर महोदय ऑनरेरी तौर पर काम करने के लिए आते भी हैं। इलाहाबाद म्युनिसिपल बोर्ड ने भी इसके लिए ५००) की सहायता दी है। परन्तु संस्था के कार्यविवरण से पता लगता है कि इसकी ओर स्त्रियों का उत्साह बहुत कम है। वास्तव में यह खेद की बात है। परन्तु हमें विश्वास है कि संस्था के सञ्चालक स्त्रियों की इस उदासीनता से हताश न होंगे। आज नहीं, तो दो-एक साल में इसकी उपयोगिता भी अवश्य ही हमारे देश की स्त्रियों की समझ में आ जाएगी।

छात्र-निवास

सेवा-सदन के साथ एक 'छात्री-निवास' या बोर्डिङ्ग हाउस भी है। इसमें आजकल ३७ छात्रियाँ रहती हैं। इसका प्रबन्ध प्रधानाध्यापिका स्वयं करती हैं और अपनी सहायिकाध्यापिका के साथ वहीं रहती भी हैं। बोर्डिङ्ग में रहने वाली छात्रियों के सुख-स्वच्छन्दता और उनके स्वास्थ्य आदि पर सतर्क दृष्टि रक्खी जाती है।

शारीरिक उन्नति

छात्रियों की मानसिक उन्नति के साथ ही सेवा-सदन में उनकी शारीरिक उन्नति की ओर भी विशेष ध्यान दिया जाता है। प्रतिदिन एक घण्टा शारीरिक व्यायाम और खेल के लिए रक्खा गया है। इसका परिणाम भी अच्छा हुआ है। इससे स्त्रियों की बीस फ़ी सदी शारीरिक उन्नति हुई है। बोर्डिङ्ग की सभी छात्रियाँ व्यायाम और खेलों में भाग लेती हैं।

गर्ल्स गाइडिङ्ग

उपर्युक्त व्यवस्थाओं के साथ ही सदन ने अभी हाल में ही गर्ल-गाइडिङ्ग की शिक्षा देने की भी व्यवस्था की है। निस्सन्देह इससे स्त्रियों का विशेष उपकार होगा। इस शिक्षा द्वारा अवसर पड़ने पर वे अपनी विपदग्रस्ता बहिनों की विशेष सेवा कर सकेंगी। इससे स्त्रियों के समाज-सेविका बनने में भी विशेष सहायता मिलेगी।

असहाय महिला-कोष

सेवा-सदन के छात्रावास में अब निःशुल्क भोजन का भी प्रबन्ध हो गया है। इस समय वहाँ पचास स्त्रियों के बिना व्यय रहने और भोजन का प्रबन्ध है। अब तक २१ स्त्रियाँ वहाँ ऐसी हैं, जो इस प्रबन्ध से लाभ उठा रही हैं। इसके भण्डार का प्रबन्ध और इसका कोष सदन की विद्यार्थिनियों के अधिकार में है और वे इसका प्रबन्ध भी बड़े उत्साह से करती हैं।

कुछ और बातें

सेवा-सदन में शिक्षा पाने वाली विद्यार्थिनियों के आने-जाने के लिए बैलगाड़ियों का प्रबन्ध है। इसके लिए दो गाड़ियाँ हैं। दाइयाँ साथ रहती हैं। निकट की रहने वाली छात्रियाँ दाइयों के साथ पैदल भी आती-जाती हैं।

इस समय सेवा-सदन में मध्य-प्रान्त, बङ्गाल, बिहार, राजपूताना, मध्य भारत तथा पञ्जाब तक की स्त्रियाँ शिक्षा पाती और रहती हैं। बड़े धनी घराने से लेकर ग़रीब घराने तक की स्त्रियाँ इस संस्था से लाभ उठा रही हैं। इन बातों से मालूम होता है कि इस संस्था की कितनी आवश्यकता थी।

सेवा-सदन की विशेषता

सेवा-सदन की जो रिपोर्ट हमारे सामने है, उसे देखने से पता लगता है कि इससे केवल ग़रीब और निराश्रया विधवाएँ ही नहीं, वरन् वे सौभाग्यवती और सन्तानवती स्त्रियाँ भी इससे लाभ उठा सकती हैं, जिनके पति या कुटुम्बी अपनी अल्प आय के कारण अपने परिवार का भरण-पोषण करने में असमर्थ हैं। क्योंकि सदन की शिक्षा-प्रणाली ऐसे अच्छे ढङ्ग से बनाई गई है कि केवल दो-तीन वर्ष में ही स्त्रियाँ इतनी योग्यता प्राप्त कर लेती हैं कि आसानी से २०-२५) मासिक उपार्जन कर सकें। इसके सिवा जिन स्त्रियों ने बाल्यावस्था में किसी प्रकार की शिक्षा नहीं प्राप्त की और अब उस त्रुटि का अनुभव कर रही हैं, वे भी बहुत थोड़े दिनों के परिश्रम से संसारोपयोगी आवश्यक शिक्षा प्राप्त कर सकती हैं और पतियों की योग्य सहचरियाँ बन सकती हैं। ऐसी कन्याएँ, जो अपने अभिभावकों के धनाभाव के कारण योग्य वर नहीं पा सकती हैं, वे इस सदन द्वारा शिक्षा और योग्यता प्राप्त करके अनायास ही किसी अच्छे घर में ब्याही जा सकती हैं। हम निसङ्कोच कह सकते हैं कि प्रयाग का यह महिला-सेवा-सदन एक अपूर्व और अद्वितीय संस्था है। इस समय भारत के प्रत्येक छोटे-बड़े नगर में ऐसी संस्था की नितान्त आवश्यकता है।

रिपोर्ट देखने से यह भी पता चलता है कि आमदनी की अपेक्षा सदन का ख़र्च ज़्यादा है और वह ऋण के भार से झुका हुआ है। मन्त्री महोदय के शब्दों में इसका सारा ख़र्च "राम-भरोसे" चलता है और आश्चर्य है कि इस उपयोगी संस्था को न तो सरकार ही कुछ सहायता देती है और न प्रयाग का म्युनिसिपल बोर्ड ही देता है। इसके सिवा हमारे देश में उदार-हृदय धनवानों की भी कमी नहीं है, परन्तु उनकी भी दृष्टि इस ओर नहीं है।

यद्यपि इन पंक्तियों के लेखक का यह विश्वास है कि इस संस्था के सुयोग्य कार्यकर्ता अपने उद्देश्य में सफल होंगे। क्योंकि जिसे "राम-भरोसा" होता है, राम उसकी अवश्य ही मदद करता है। परन्तु देश के धनवानों, सरकार तथा यहाँ की म्युनिसिपैलिटी का भी तो कुछ कर्तव्य है। उन्हें चाहिए कि यथेष्ट सहायता द्वारा इसकी प्रगति की वृद्धि करके यश के भागी बनें।

परित्यक्ता

[श्री० वीरेश्वरसिंह, बी० ए०]

मैं भूल गई हूँ पहले सा झूम-झूम कर गाना,
गा-गा बुनना रेशम से स्वप्नों का ताना बाना।
मैं भूल गई कलियों सा वह ललित, लोल मुसकाना,
अन्तर में स्वर्ग बसाना दुनिया में खेल मचाना।

बातों में हिल-मिल रहना, आँखों में घुल-मिल जाना,
मैं क्या जानूँ क्या होता है उलझ-सुलझ रह जाना!
अधिकार किसी का मुझ पर, मैं स्वयम् किसी की रानी,
उड़ गया, धुआँ था वह तो! बातें हो गईं पुरानी!

अपनी सुन्दर साड़ी मैं अब कभी नहीं रँगती हूँ,
अब हरसिंगार के फूलों का चाव नहीं रखती हूँ।
सिन्दूर, रङ्ग—सब चीजें, अब भी तो वह लाता है,
पर भला बिसाती से औ' मुझसे अब क्या नाता है!

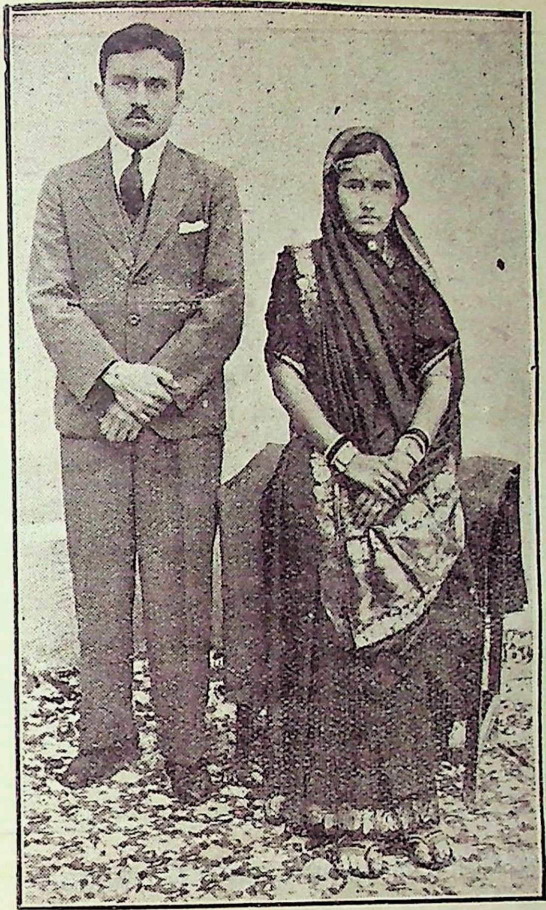
अब नहीं माँग में मेरे वैसी ख़ूबी आती है,
बालों से खीझी कङ्घी अब उलझ-उलझ जाती है।
शीशे में अब क्या देखूँ! क्या मुझको दिखलाना है!
सज कर यों स्वयम् कहो अब मुझको क्या सुख पाना है!

अब गर्वभरी ख़ुश करने की विधि न सोच सकती हूँ,
अब चीजें नई बना कर हँस-हँस न दिखा सकती हूँ।
अब रूमालों में मन से मैं कैसे फूल निकालूँ?
कैसे सब चीजों को मैं रुचि से अब हाय सँभालूँ?

उन गुलदस्तों में फूलों के गुच्छ न अब खिलते हैं,
मेरे ख़ाली मन से वे कितने मिलते-जुलते हैं!
अब नहीं प्रतीक्षा में मैं आँखें खोले रहती हूँ,
पर हाय कसकता है दिल, उनको न लगा सकती हूँ।

मुझमें न किसी को वैसे कुछ दोष और दिखलाता,
पर रङ्ग साँवला मेरा मन को न हाय है भाता।
अब लोग ऊब कर मुझसे बस दूर-दूर रहते हैं,
भूले तो घर में आए, फिर छुड़ा जान चलते हैं।

"हाँ", "नहीं" सु-लघु शब्दों में अब तो जवाब है मिलता,
अब तो बाहर ही दिल का हँस-हँस गुलाब है खिलता।
पक गया हृदय है मेरा, किसको पर हाय दिखाऊँ!
मैं भारतीय नारी हूँ, किस बल पर टेर लगाऊँ!!



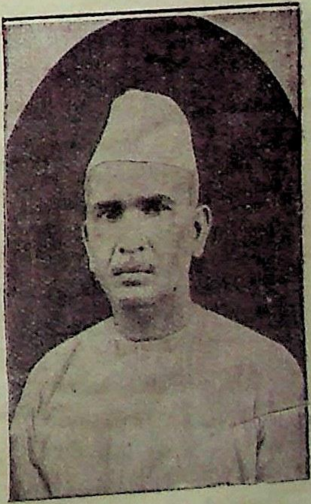
यह चित्र अजमेर के सुप्रसिद्ध रईस तथा कॉङ्ग्रेसमैन पं० गौरीशङ्कर भार्गव के सुपुत्र श्री० रमेशचन्द्र भार्गव तथा जयपुर-निवासी श्रीमती सुशीलादेवी का है, जिनका विवाह-सम्बन्ध हाल ही में सम्पन्न हुआ है। कट्टर-पन्थियों की तरफ़ से घोर विरोध होने पर भी विवाह में परदा नहीं किया गया तथा और भी कितनी ही प्राचीन, पर अनावश्यक रूढ़ियों को त्याग दिया गया। यह अपने ढङ्ग का पहला विवाह है।



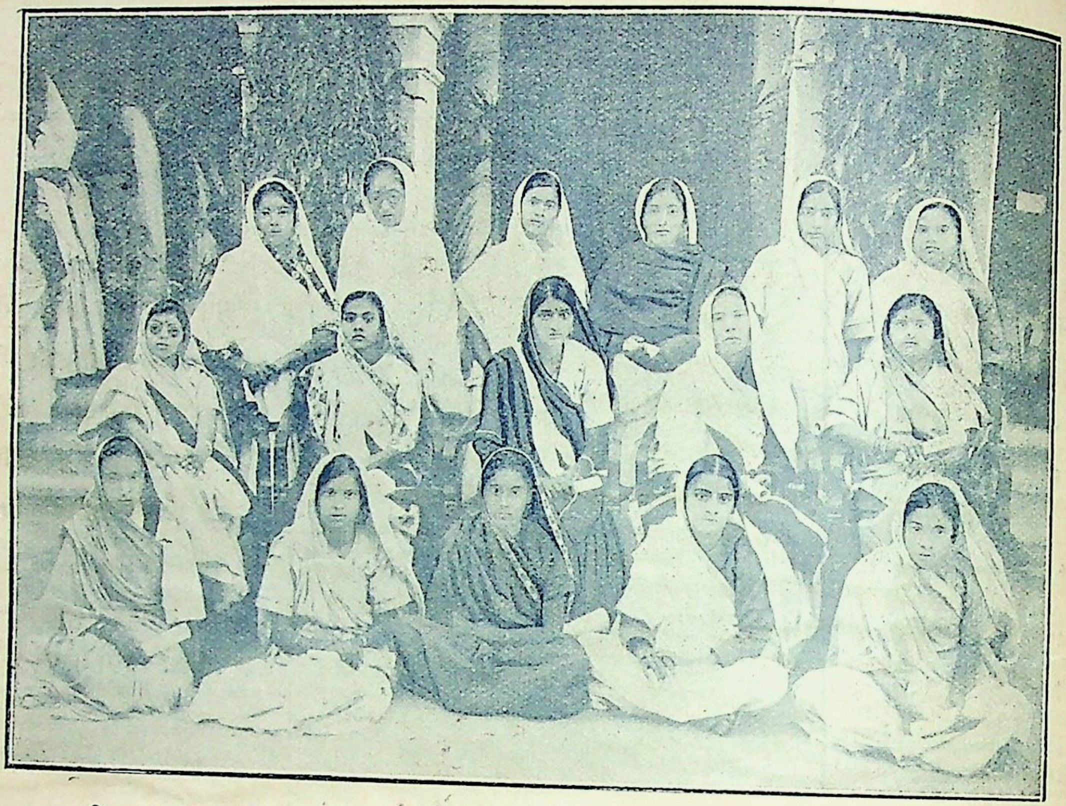
कुमारी शीरीं डी० बहरमजी—आप बम्बई की एक पारसी महिला हैं, पैरिस से 'स्वीडिश' और चिकित्सा-सम्बन्धी मालिश की विद्या सीख कर आई हैं।



श्रीमती एल० एल० हसन रज़ा—आप पहली महिला हैं, जो यू० पी० गवर्नमेण्ट द्वारा उन्नाव डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड की सदस्या नियुक्त हुई हैं। साथ ही आप उन थोड़ी शिक्षिता मुसलमान-महिलाओं में से हैं, जिन्होंने स्त्रियों की स्वतन्त्रता का बीड़ा उठाया है।



श्री० शिवराज जी चूड़ीवाला—आप वर्धा (सी० पी०) के रहने वाले और प्रसिद्ध जाति-सुधारक हैं। आपके विचार राष्ट्रीय हैं और देशोपकारी कार्यों में सदैव प्रमुख भाग लिया करते हैं।



प्रयाग-विद्यापीठ की परीक्षोत्तीर्ण छात्राएँ, जो इस वर्ष के उपाधि वितरणोत्सव के समय उपस्थित थीं।



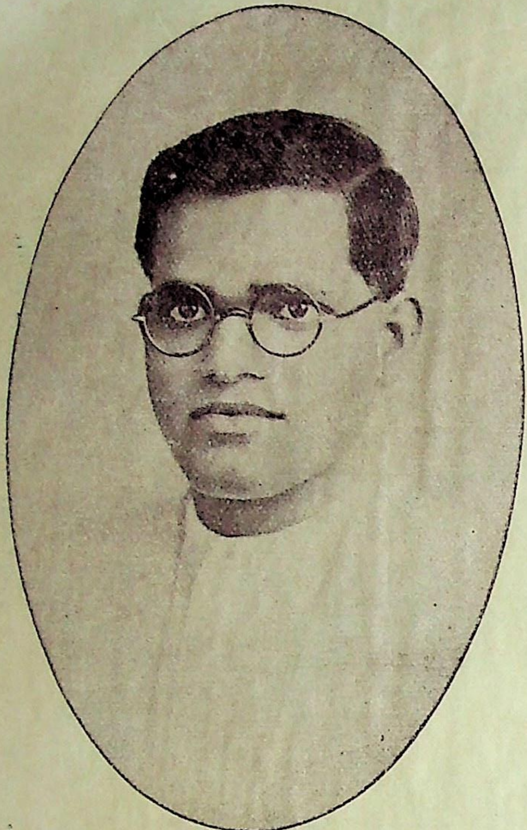
प्रयाग महिला-सेवा-सदन के वार्षिकोत्सव के अवसर पर विद्यापीठ की छात्राओं का गुजराती (गर्बा) नृत्य।



प्रयाग-महिला सेवा-सदन का हस्त-कौशल-विभाग। बड़ी उम्र की स्त्रियाँ बुनाई का काम सीख रही हैं।



महिला-सेवा-सदन का सङ्गीत-विभाग



श्री० रामनारायण जी 'यादवेन्दु', बी० ए०

आप आगरे के एक उदीयमान हिन्दी साहित्य-सेवी हैं। आपकी 'कहानी-कला' शीर्षक लेखमाला धारा-वाहिक रूप से 'चाँद' में छप रही है।



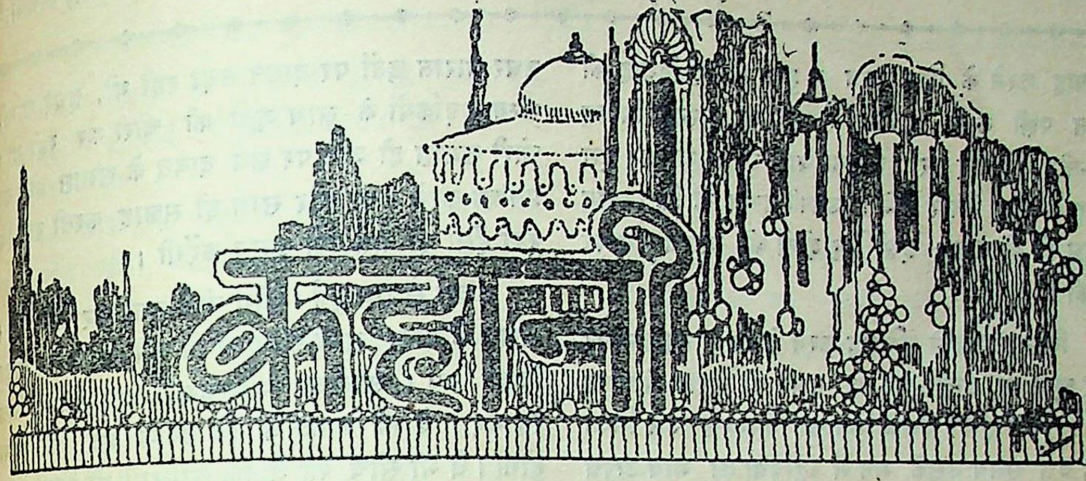
आयुष्मती कान्तादेवी

यह २३ महीने की बालिका सक्कर (सिन्ध) निवासी श्री० युधिष्ठिरलाल स्टेनोग्राफ़र की कन्या है और हारमोनियम, सितार तथा वंशी की ध्वनि और ताल के अनुसार सुन्दर नृत्य कर सकती है। जिस समय यह १४ महीने की थी, तभी से इसने अपनी अद्भुत कला का प्रदर्शन आरम्भ कर दिया था।



श्रीमती चन्दोबीबी

आप देहली के एक धनाढ्य तथा सम्पन्न वैश्य-परिवार की देशभक्त तथा शिक्षा-प्रेमी महिला हैं।



आहुतियाँ

[डॉक्टर धनीराम प्रेम]

एक मित्र के विवाह में हरबिलास मेरठ पहुँचे थे। परन्तु यह पता नहीं था कि वहीं उनका विवाह भी पक्का हो जायगा। जिनके यहाँ बारात गई थी, उनका नाम रामधन था। रामधन की पुत्री का विवाह था। अपने परिवार के अतिरिक्त रामधन के घर में उनकी भानजी शान्ती भी रहती थी। शान्ती के माता-पिता का देहान्त बाल्यकाल ही में हो चुका था। अपने माता-पिता की वह एकमात्र सन्तान थी। पिता की सम्पत्ति दो-ढाई लाख की थी और वह सब कुछ शान्ती के ही नाम कर गए थे। लाला रामधन शान्ती को अपने घर ले आए थे। जो कोई आता, उसीसे वे कहते कि शान्ती के पालन-पोषण के लिए ही उसे वह अपने घर ले आए हैं। जब-तब शान्ती के ऊपर भी वह इस अहसान को जता देते थे। परन्तु वास्तव में शान्ती को वह अपने घर में उसके रुपए के लिए लाए थे। उसकी सम्पत्ति से मास में काफ़ी आय होती थी, और वह सब जाती थी लाला रामधन के घर में। तिस पर भी वह सदा यही शिकायत किया करते थे कि जब से शान्ती के माता-पिता का देहान्त हुआ और उन्हें उसकी जायदाद का भार सँभालना पड़ा, तब से उन्हें अपने काम-काज के लिए ज़रा भी अवकाश नहीं मिलता। इनसे भी अधिक ताने मारा करती थीं उनकी स्त्री। उनके मारे तो शान्ती को तनिक भी चैन नहीं था। इतना रुपया होते हुए भी शान्ती उस घर में आश्रिता की भाँति पड़ी हुई थी। यह तो कहिए कि लाला रामधन के केवल एक पुत्री ही थी। यदि एक भी पुत्र होता तो शान्ती को किसी न किसी प्रकार अपनी अधिकांश जायदाद से हाथ धोना पड़ता।

हरबिलास साधारण स्थिति का नवयुवक था। उसके घर में भी नाम लेने को कोई नहीं था। मैट्रिक में पढ़ता था। सीधा-सादा स्वभाव था। ये सब गुण देख कर ही लाला हरबिलास ने शान्ती के विवाह के लिए उसे चुना था। उनकी समझ में हरबिलास के साथ विवाह करके शान्ती की सम्पत्ति पर वह पहले की ही भाँति प्रभुत्व जमाए रह सकते थे। वह जानते थे कि हरबिलास के घर में कोई बड़ा-बूढ़ा नहीं था, जो किसी प्रकार का उपद्रव कर सके। वसीयत के अनुसार विवाह के बाद हरबिलास का ही सारी सम्पत्ति पर अधिकार होता और वह भोले हरबिलास को आसानी से चकमा देकर अपना उल्लू सीधा कर सकते थे।

परन्तु बीच में एक अड़चन आ उपस्थित हुई। हरबिलास में आधुनिक भाव भरे थे। वह आर्य-समाज के संसर्ग में रह कर सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का विचार कर चुका था। वह तेरह वर्ष की शान्ती के साथ

विवाह करने के लिए उद्यत न हुआ। वह विवाह की बात पक्की करने के लिए तैयार था, परन्तु विवाह दो-तीन वर्ष बाद करना चाहता था। लाला रामधन इस बात के लिए तैयार न थे। उनकी इच्छा थी कि विवाह शीघ्र ही हो जाय। इसीलिए दोनों की बातचीत न पट सकी।

जिस शान्ती से विवाह करने के लिए वह इनकार कर चुका था, उसीके घर वह दूसरे की बारात में आया था। जिस समय उसके मित्र का निमन्त्रण उसे मिला था, उस समय उसके मन में द्विविधा का भाव उत्पन्न हो गया था। क्या वह उस बारात में जाय? वहाँ शान्ती से शायद साक्षात्कार हो जाय, कम से कम उसका सामना होने की तो आशङ्का थी ही। वह इस विवाह के प्रस्ताव के विषय में अवश्य जानती होगी। फिर किस प्रकार वह उसके नेत्रों से अपने नेत्र मिला सकेगा? कहीं शान्ती ने प्रस्ताव की अस्वीकृति का कोई और अर्थ तो नहीं लगा लिया होगा? ऐसा होना सम्भव था। इस प्रकार के प्रस्ताव लड़कियों से छिपे नहीं रहते। इनके विषय में सहेलियों में वार्तालाप होता है, समालोचनाएँ होती हैं, नोक-झोंक चलती हैं। फिर क्या शान्ती इन सब से वञ्चित रही होगी? पता नहीं, उसके मन में हरबिलास के प्रति कैसा भाव हो? इन्हीं सब बातों का विचार करके उसका हृदय बारात में जाने से काँप रहा था। वह अपने मित्र को अप्रसन्न भी नहीं करना चाहता था। इसलिए उसने मित्र को कोई उत्तर न दिया। सोचा कि समय आने पर कोई न कोई बहाना करके पीछा छुड़ा लेगा। परन्तु जिस दिन बारात जाने का समय आया, वह अपने सामान के साथ तैयार होकर उसमें शामिल हो गया। यह अकस्मात हुआ था, उसकी इच्छा के विरुद्ध, उसके बिना जाने; मानो उस समय उसके शरीर के कार्य का सञ्चालन कोई दूसरा कर रहा हो।

२

बारात की पहली दावत थी। उस दिन वर के जूते चुराए जाने का वहाँ नेग था। यह काम करती थीं वर की सालियाँ, कन्या की छोटी बहिनें अथवा पड़ोसियों और सम्बन्धियों की उससे छोटी लड़कियाँ। शान्ती ही घर में छोटी साली थी। उसी को यह कार्य करना पड़ा। उधर बारात छतों पर दावत उड़ा रही थी, इधर शान्ती अन्य लड़कियों के साथ जूतों की चोरी कर रही थी। चोरी समाप्त हो जाने पर सब दावत के समाप्त होने की प्रतीक्षा करने लगीं और साथ ही सलाह करती रहीं कि क्या हँसी की बातें उस समय करेंगी।

दावत समाप्त हुई। लोग नीचे उतर कर आने लगे। बारात के प्रायः सभी लोग अपने जूते पहन कर बाहर निकल गए। ऊपर वर और उसके कुछ अनन्य मित्र रह गए। वे भी जानते थे कि वर के जूतों की चोरी होगी। वे भी सोच रहे थे कि सालियों को किस प्रकार छकाया जाय।

वे नीचे आए। सालियों ने नीचे से ठहाका मारा। वर महाशय सकुचाते हुए सामने आ गए। शान्ती उस ओर से सामने आई।

"लाओ, दे दो जूते, शान्ती, तङ्ग न करो!"—वर महाशय बोले।

"जूते? यहाँ कैसे जूते? जूते तो आपको बहिन कुछ दिनों बाद देंगी।"—शान्ती ने हँस कर कहा और साथ ही सालियों ने फिर एक ज़ोर का ठहाका लगा दिया।

"जो जुर्माना हो, सो माँग लो?"

वर महाशय इतना कह ही पाए थे कि हरबिलास एक कोने में से बोल उठा—अरे भई, कुछ गड़बड़ मालूम होती है। मेरा जूता भी कहीं नहीं मिलता। कहीं मेरी ही चोरी तो नहीं हुई!

सबने उधर घूम कर देखा। कोने में एक फ़ुलस्लिपर का जोड़ा रक्खा हुआ था। वर महाशय उसकी ओर देख कर कुछ सोचने लगे, फिर स्लिपर के पास आकर कहने लगे—यह तो मेरा जूता है। मैं मुफ़्त में ही जुर्माना देने जा रहा था।

"तो जुर्माना मुझे देना पड़ेगा?"—हरबिलास ने पूछा।

"मैं क्या जानूँ? यह तो शान्ती जी से पूछो!"—वर महाशय बोले और साथ ही उन्होंने अपने मित्रों की ओर एक आँख भी मार दी।

मित्रों में से एक बोल उठे—भई, सुना नहीं है, कोयले की दलाली में हाथ काले। फँस गए सो फँस गए। अब या तो प्रार्थना करो या जुर्माना दो।

"मैं नहीं जानता था कि वर के से जूते पहनना भी अपराध है। भई, कोई मेरी ओर से प्रार्थना कर दो!"—हरबिलास ने कहा।

"क्या आप स्वयं प्रार्थना नहीं कर सकते?"—शान्ती बोल उठी। उस समय उसके मुख पर कुछ लाली आ गई थी।

हरबिलास ने शान्ती की ओर कुछ देर देखा और फिर धीरे से कहा—मुझे डर लगता है कि शायद प्रार्थना स्वीकार न हो।

"डर क्यों न लगेगा? जो व्यक्ति दूसरों की प्रार्थना को अस्वीकार करता है, उसे स्वयं प्रार्थना करते भी डर मालूम होता है।"

"प्रार्थना अस्वीकार?"—हरबिलास आश्चर्य से उधर देखने लगा।

"क्या कभी तुमने भी किसी के जूते छिपाए थे?" सब मित्र हँस कर पूछने लगे।

"इसका भेद मैं बताऊँगा।"—कह कर वर महाशय शान्ती की ओर चले। शान्ती ने जूते लाकर उधर डाल दिए और वहाँ से एक ओर चल दी।

३

जनवासे में जाकर हरबिलास वर महाशय को एक ओर ले गया।

"तुम क्या भेद बताना चाहते थे?"—उसने पूछा।

"तुम्हें ही? या सबको?"

"अगर मेरे विषय में ही है, तो मज़ाक़ छोड़ कर मुझे चुपचाप बता दो।"

"क्या?"

"वह लड़की कौन थी?"

"शान्ती।"

"शान्ती तो उसका नाम था!"

"और क्या जानना चाहते हो?"

"वह थी कौन?"

"मेरी साली!"

"तुम्हारे श्वसुर की भानजी?"

"हाँ, वही, जिसके विवाह के लिए तुम्हारे पास इतनी प्रार्थनाएँ गई थीं और तुमने सब अस्वीकार कर दी थीं।"

हरबिलास कुछ सोचने लगा।

"क्या सोच रहे हो?"

"कुछ नहीं।"

"क्या अपनी भूल अब मालूम हो रही है? क्या उस पर × × ×"

"नहीं, तुम तो मज़ाक़ करने लगे।"

"मज़ाक़ पहले कर रहा था, हरबिलास, परन्तु अब तुम्हें कुछ गम्भीर बातें सुनाना चाहता हूँ।"

"क्या?"

"तुम शान्ती के साथ विवाह का प्रस्ताव स्वीकार कर लो!"

"क्यों? क्या लाला रामधन फिर चाहते हैं।"

"लाला रामधन ही नहीं, शान्ती भी!"

"शान्ती भी?"

"हाँ! जब से तुमने उसके साथ विवाह करने से इनकार किया है, वह सूखती चली जाती है। अब वह मेरी साली होती है, इसीलिए मैं उसके लिए चिन्तित हो रहा हूँ।"

हरबिलास ने सब कुछ सुना, परन्तु कुछ कहा नहीं।

"जीवन से कुछ निराश सी वह हो गई है और उसे सारा भविष्य अन्धकारमय प्रतीत होता है। वह अधिक पढ़ी-लिखी नहीं है, न अधिक सुन्दर है। उसके पास एक भावों से भरा हुआ हृदय है और व्यथित आह है। उसे एक सहृदय व्यक्ति की आवश्यकता है। पता नहीं उसे वह मिल सकेगा या नहीं।"

"क्यों नहीं मिल सकेगा? उसके लिए योग्य वरों की क्या कमी?"

"तुम मेरे श्वसुर को नहीं जानते, इसीलिए ऐसा कह रहे हो। योग्य वरों के घर वाले उसे अपनाने को तैयार नहीं हैं। वह मातृ-पितृविहीना है। उसका कोई भाई भी नहीं है। रुपया है, परन्तु सभी जानते हैं कि रुपया उसके मामा के पञ्जे में है और इस विषय में इनका नाम अच्छा नहीं। अब वह शान्ती का विवाह शीघ्र ही किसी बनिए के साथ करने की बात सोच रहे हैं।"

हरबिलास उसी समय नहीं, सारे दिन और सारी रात इसी समस्या पर विचार करता रहा।

४

वर महाशय के प्रयत्न से हरबिलास और शान्ती को कुछ वार्तालाप करने का अवसर प्राप्त हुआ। वर

महाशय शान्ती से कुछ देर बातें करके एक ओर टँगा हुआ चित्र देखने लगे। हरबिलास और शान्ती दोनों कुछ देर चुप बैठे रहे। दोनों ही के लिए ऐसे अवसर पर मौनव्रत का भङ्ग करना कठिन प्रतीत हो रहा था।

"शान्ती !"—धीरे से, सँभल-सँभल कर हरबिलास ने कहा।

"जी !"—धीरे से, सभल-सँभल कर शान्ती बोली।

"तुम समझती हो कि मैंने तुम पर अत्याचार किया है ?"—वह चुप रही।

"तुम नाराज़ हो। शायद तुम मुझे अपराधी समझती हो। शायद तुम समझती हो कि मैंने विवाह इसलिए अस्वीकार कर दिया कि तुमको अनुपयुक्त समझता था !"

"आपका इसमें क्या दोष है। सभी सुन्दरी, सुशिक्षिता, सभ्य लड़कियों से विवाह करना चाहते हैं। ऐसे बहुत कम हैं, जो एक दीना, हीना, अशिक्षिता, असभ्य लड़की को अपनाकर सभ्य और सुशिक्षिता बनावें !"

हरबिलास कुछ देर चुप बैठा रहा। फिर बोला—तुम ठीक कह रही हो, परन्तु मेरे मार्ग में और बाधाएँ थीं, नहीं तो × × ×

शान्ती बीच ही में बात काट कर बोली—ठीक है, मैं सब जानती हूँ। आप मेरे लिए क्यों चिन्ता करते हैं। मैं किस योग्य हूँ ? आपके सिद्धान्तों, आपके विचारों और आपकी महत्वाकांक्षाओं के सामने मेरा क्या मूल्य है ? मैं तो संसार में भार-रूप उत्पन्न हुई थी और इसी प्रकार कुछ दिन जीवित रह कर चली जाऊँगी !

शान्ती जिस समय यह सब कुछ कह चुकी, उस समय उसके मुख पर उद्विग्नता तथा नैराश्य के भाव साफ़ दिखाई पड़ रहे थे। उसके हृदय में वेदना ऊधम मचा रही थी और उसका प्रतिबिम्ब उसकी आँखों में पड़ कर आँसुओं के रूप में बाहर निकल रहा था। हरबिलास कुछ देर तक शान्ती की बातों पर विचार करने लगा। बार-बार उसे उसका वह वाक्य याद आने लगा—'ऐसे बहुत कम हैं, जो एक दीना, हीना, अशिक्षिता, असभ्य लड़की को अपनाकर सभ्य और सुशिक्षिता बनावें।' यह वाक्य उसके हृदय पर रह-रह कर आघात करने लगा। एक ओर उसका सिद्धान्त था और दूसरी ओर एक आहत-हृदया बालिका का मूक करुण-क्रन्दन ? क्या उसके सिद्धान्तों के सामने उस क्रन्दन का कोई मूल्य नहीं था ? वह बार-बार अपने अन्तःकरण से इस प्रश्न को पूछने लगा। अन्त में उसे यही उत्तर मिला कि 'हाँ, उसका बड़ा मूल्य था !' उसने निश्चय कर लिया कि वह शान्ती को अपनाकर उसके जीवन की इच्छा पूरी करेगा, उसे सभ्य और सुशिक्षिता तथा सुखी बनाएगा। अपने जीवन में एक व्यक्ति को सुखी बनाना अधिक अच्छा है अथवा अनेक सिद्धान्तों के गीत गाते रहना ? जीवन में शायद ही वह किसी का कुछ भला कर सके। फिर यदि वह एक व्यक्ति के जीवन को कुछ सन्तोषप्रद बना सके, तो उसकी क्या हानि है। अपना निश्चय बना कर उसने प्रसन्न होकर शान्ती की ओर देखा। वह वहाँ से उठ कर आँगन की ओर जा रही थी।

"शान्ती !"—हरबिलास ने पुकारा !

शान्ती ने मुड़ कर देखा।

"इधर आओ !"—हरबिलास ने इशारे से कहा।

शान्ती पास आगई।

"एक ख़ुशख़बरी सुनाता हूँ !"

"क्या ?"

"मैं तुम्हारे मामा का प्रस्ताव स्वीकार कर लूँगा।"

शान्ती के मुख पर हर्ष की एक क्षीण रेखा दौड़ गई। परन्तु हरबिलास ने उसे नहीं देखा; क्योंकि शान्ती ने अपना शिर नीचा कर लिया था।

"तुम प्रसन्न हो ?"—हरबिलास ने पूछा !

शान्ती बिना कुछ उत्तर दिए शीघ्रता से वहाँ से खिसक गई। पीछे से एक कोने से वर महाशय ने शिर निकाल कर और हँस कर पूछा—और तुम प्रसन्न हो ?

हरबिलास ने शिर घुमा कर उधर देखा और हँस कर कहा—मैं तो प्रसन्न तब हूँगा, जब इस बार तुम्हारे जूतों की चोरी हो जाय !

५

हरबिलास और शान्ती की सगाई पक्की हो गई। हरबिलास को शान्ती के लिए लाला रामधन की यह बात स्वीकार करनी पड़ी कि विवाह शीघ्र से शीघ्र होगा। अगले सहालग तीन मास बाद आने वाले थे, अतः लाला रामधन ने लग्न और विवाह को शुभ तिथियाँ पुरोहित से पूछ कर बाद में लिख देने को कहा। हरबिलास को इन सब बातों की चिन्ता न थी, उसे तो इस विचार

भर से सन्तोष था कि वह एक व्यक्ति को कुछ भी सुखी बनाने में समर्थ हो सका।

बारात बिदा हो रही थी। उधर हरबिलास भी विवाह तक के लिए शान्ती से विदा ले रहा था। इन तीन दिनों में ही दोनों में अपूर्व आत्मीयता और अपनापन उत्पन्न हो गया था। हरबिलास चलने को खड़ा था। शान्ती उदास भाव से पास ही खड़ी थी।

"अब उदास क्यों हो शान्ती ?"—हरबिलास ने पूछा।

"आप जाते हैं।"

"यह कुछ दिनों की बात है। समय फिर हमें एकत्र करेगा। अब तुम अपने शरीर की चिन्ता करो, इसे हृष्ट-पुष्ट बनाओ, क्योंकि अब इस पर दूसरे का अधिकार होने वाला है।"

"मैं उद्योग करूँगी।"

"मैं एक बात पूछना चाहता हूँ, शान्ती !"

"क्या ?"

"पूछते हुए डर मालूम होता है।"

"क्यों ?"

"योंही। बात बहुत मूर्खता की है, परन्तु मन में उठी है, तो पूछने को जी चाह रहा है।"

"फिर पूछिए न !"

"तुम्हारे हृदय में किसी प्रकार की आशङ्का तो नहीं है ?"

"आशङ्का कैसी ?"

"यही हमारे-तुम्हारे विषय की।"

"अब आशङ्का कैसी ?"

"होनी तो न चाहिए। परन्तु मेरे हृदय में कुछ डर मालूम होता है। रहने दो, यह मेरा भ्रम होगा !"

"आज ऐसी बातें न सोचिए, आज हम बिछुड़ रहे हैं। कहीं ये विचार दृढ़ होकर आपको मुझसे विमुख न कर दें।"

"एक और बात बता दो, शान्ती !"

"पूछिए !"

"यदि × × ×"

"हाँ × × ×"

"यदि × × × तुम्हारे मामा पीछे से हमारे विवाह के विरुद्ध हो जायँ तो × × ×"

"परन्तु आप ऐसी बातें क्यों सोच रहे हैं ? मामा आपको पसन्द करते हैं, फिर वह ऐसा क्यों करेंगे ?"

"मान लो !"

"वह कुछ भी करें, परन्तु मैं तो वही रहूँगी। मेरा हृदय तो वही रहेगा। कुछ भी हो, मेरे लिए तो आप ही एक पुरुष हैं। अब इस हृदय में किसी दूसरे का प्रवेश नहीं हो सकता !"

"मैं यही सुनना चाहता था, शान्ती, मैं अब हर्ष से इन तीन महीनों को व्यतीत कर सकूँगा !"

६

स्कूल की छुट्टियाँ थीं, अतः हरबिलास ने एक मास राजपुर में व्यतीत करने का विचार किया। राजपुर मसूरी के पर्वतों के चरणों पर बसा हुआ एक छोटा सा ग्राम है। वहाँ पर एक आश्रम की स्थापना भी हो चुकी है, जहाँ छुट्टियों में विद्यार्थी निवास करके कई प्रकार का लाभ उठा सकते हैं। जिस दिन हरबिलास राजपुर को जा रहा था, उसी दिन उसे लाला रामधन का एक पत्र मिला, जिसमें उन्होंने लग्न और विवाह की तिथियों की सूचना दी थी।

राजपुर में एक मास व्यतीत करके हरबिलास जब घर लौटा, तो उसे तीन पत्र मिले, जो शान्ती के मालूम होते थे और जो कई दिनों के आए हुए पड़े थे। उसने काँपते हाथों से सबसे पहला पत्र खोला। उसमें लिखा था—

"आपको यह पढ़ कर दुःख होगा कि मामा जी की पुत्री का दो दिन हुए अचानक देहान्त हो गया। यहाँ बड़ा दुःख मनाया जा रहा है, क्योंकि अभी कुछ दिनों पूर्व ही विवाह हुआ था। मामा जी उनकी ससुराल गए हैं।

"आप जब से यहाँ से गए हैं, तब से किसी प्रकार का भी समाचार नहीं दिया। क्या इतने रुष्ट हो गए ? या भूल ही गए ? आप तो कह रहे थे कि मामा जी कहीं विवाह के विरुद्ध न हो जायँ और अब स्वयं आप ही विरुद्ध हुए जान पड़ते हैं। यदि मुझे लिखने में सङ्कोच मालूम होता था, तो मामा जी को ही लिख देते। मैं यही जान कर सन्तोष कर लेती कि यहाँ आपका पत्र तो आया है। आप सच न मानेंगे, परन्तु

यहाँ मेरा जी अब बहुत घबराता है। दिन-रात आपकी याद आया करती है। कृपा कर दो-चार लाइनें लिख कर तो भेज ही दीजिए। क्या आप छुट्टियाँ घर पर ही मना रहे हैं, या कहीं बाहर जाने का विचार है ?"

हरबिलास ने दूसरा पत्र खोल कर पढ़ा :—

"आपको मेरा एक पत्र मिला होगा! आपका कोई उत्तर अभी तक यहाँ नहीं आया। आजकल मैं बड़ी उद्विग्न रहती हूँ और मन में प्रति क्षण किसी अमङ्गल की आशङ्का बनी रहती है। उसका कारण है, जिसकी ओर मैं आपका ध्यान आकृष्ट कर रही हूँ।"

"मैं आपको लिख ही चुकी हूँ कि मामा जी की पुत्री का देहान्त कुछ समय पहले हो चुका है। आप मामा जी की नीयत को तो जानते हैं। वह किसी न किसी प्रकार मेरे माल पर अपना आधिपत्य या अपने सगे-सम्बन्धियों का आधिपत्य जमाना चाहते हैं और अपनी आकांक्षा के लिए मेरा बलिदान चढ़ाना चाहते हैं। उनकी और मामी की इच्छा है कि मेरा विवाह अपने जमाई के साथ ही कर दें और आपको कानों-कान ख़बर भी न होने दें, ताकि आप कोई उपद्रव न उठा दें। यह इच्छा ही नहीं, उनका निश्चय है। आप जानते हैं कि मन में मैं ईश्वर के सामने आपको वरण कर चुकी हूँ। एक हिन्दू बालिका एक साथ दो पति नहीं रख सकती। अतः मैं कभी भी ऐसा प्रस्ताव स्वीकार न करूँगी। यदि आपकी इच्छा हो तो यहाँ आकर बातचीत कर जाइए। इसी बहाने आपके दर्शन भी शायद हो जायँ।"

दूसरा पत्र पढ़ कर हरबिलास सन्न पड़ गया। उसे कभी इस बात की आशा नहीं थी। वह सीधे स्वभाव का व्यक्ति था और वह कभी नहीं विश्वास कर सकता था कि लोग उसके साथ इस प्रकार का छल-कपट करेंगे। भाग्य का कैसा खेल था ? जिस लड़की के विवाह का प्रस्ताव वह कई बार अस्वीकार कर चुका था, उसीके साथ विवाह करना अन्त में उसने स्वीकार किया और फिर उसी विवाह के मार्ग में रोड़े। उसका मुख क्रोध से तमतमा उठा। उसने काँपते हाथों से तीसरा पत्र खोला। वह दूसरे पत्र के एक सप्ताह बाद लिखा गया था और हरबिलास के लौटने के एक दिन पूर्व ही वहाँ पहुँचा था। उसमें लिखा था :—

"मालूम होता है कि आप मामा से नाराज़ होकर मुझे त्यागने का निश्चय कर चुके हैं, नहीं तो ऐसी चुप्पी साधते ? न कोई पत्र, न कोई समाचार। कहीं इन लोगों ने आपके ऊपर भी तो कुछ नहीं कर दिया।

"यदि आपको मेरे पत्र मिले हैं, तो आपको यहाँ की परिस्थिति का कुछ ज्ञान तो हो ही गया। अब दशा सीमा के बाहर पहुँच चुकी है। इन लोगों ने वहाँ के विवाह का निश्चय कर लिया है। कुछ दिनों में इनके समधी यहाँ मुझे देखने आएँगे और सम्बन्ध पक्का हो जायगा। मैंने जब यह सब कुछ सुना तो इसका विरोध किया। उनसे मैंने कह दिया कि विवाह मैं दो ही से कर सकती हूँ, या तो आपसे या फिर मृत्यु से। यदि उन्होंने मेरा विवाह अन्यत्र करना चाहा तो मैं आत्म-हत्या कर डालूँगी। इस पर मुझे उन्होंने ऐसे त्रास दिए हैं कि लिखते नहीं बनता। मुझे गालियाँ दीं, कुलटा, दुश्चरित्रा कहा। खाना बन्द कर दिया। यहाँ तक कि मेरे शरीर पर कई प्रकार से आघात भी किया। आप जानते हैं कि आपके अतिरिक्त मेरा इस संसार में और कोई नहीं है। जो कुछ हैं सो आप हैं। इस लोक के सर्वस्व भी और परलोक के सर्वस्व भी। आपकी याद में और आपका नाम लेकर ही मैं ये सारे अत्याचार हँस कर सहन कर रही हूँ। परन्तु अब सहन करने को भी कितना समय है! यदि आप शीघ्र यहाँ न आए और, कुछ न किया, तो आपकी शान्ती आपका नाम होठों पर लेकर इस संसार से कूच कर देगी।"

पत्रों को पढ़ कर हरबिलास बच्चों की भाँति बिलख-बिलख कर रोता रहा। शान्ती को उसके लिए इतने कष्ट मिल रहे हैं और वह पहाड़ों की हवा खा रहा था। उसकी जान पर बन रही है और वह चुपचाप बैठा है। उसने कपड़े भी नहीं उतारे थे, हाथ-पैर भी न धोए थे, भोजन करना तो अलग। बिना कुछ किए, उसी प्रकार वह मेरठ की ओर चल दिया।

७

लाला रामधन के यहाँ हरबिलास पहुँचा, तो उसका ऐसा स्वागत हुआ, मानो वह कोई अछूत था या अपराधी था। उसे घर में जाने की आज्ञा नहीं थी। वह शान्ती से न मिल सकता था, न उसे देख ही सकता था। उसके पास किसी प्रकार का समाचार भेजना तो

और भी कठिन था। इस कठिनता से हरबिलास के हृदय का बुरा हाल था। वह शान्ती को न कोई आश्वासन दे सकता था, न उसके हृदय की कोई बात ही जान सकता था और न उसे भविष्य में कुछ करने की सलाह ही दे सकता था। फिर भी वह क्रोध को चुपचाप पी गया। क्योंकि वह यह नहीं चाहता था कि किसी प्रकार शान्ती का अनिष्ट हो या उसके नाम पर किसी प्रकार की आँच आवे। उसने शान्तिपूर्वक लाला रामधन से वार्तालाप करना शुरू किया। जब वह विवाह के विषय पर आया, तो लाला रामधन ने बड़ा आश्चर्य प्रगट करते हुए कहा—विवाह? विवाह किसका?

"मेरा और शान्ती का!"

"आपका और शान्ती का? मुझे तो इसके बारे में कुछ भी ख़बर नहीं है।"

"ख़बर नहीं है? विवाह की बात आपने मुझसे नहीं की थी?"

"मैं क्यों करता! शान्ती का विवाह तो मेरे दामाद के साथ होगा। जब घर में ही लड़का मौजूद है, तो मैं बाहर क्यों जाऊँ?"

"और वह पत्र जो आपने लिखा था?"

"कौन सा पत्र?"

"जिसमें आपने विवाह की तिथियाँ लिखी थीं?"

"उसमें क्या मेरे दस्तख़त थे? वह मेरे मुन्शी ने लिख दिया होगा।"

"मुझे नहीं मालूम था कि आप इतने कमीने, इतने बेईमान, इतने झूठे निकलेंगे। मैं समझता था कि आप बिरादरी के पञ्च हैं, शहर के समाज के नेता हैं, बड़े-बूढ़ों के अगुआ हैं, इसलिए आपकी बात पत्थर की लकीर होगी। मुझे नहीं मालूम था कि आप जैसे व्यक्ति कोरे ढोंगी, पाखण्डी, रँगे स्यार होते हैं!"

हरबिलास गर्मी में यह सब कुछ कह गया। लाला रामधन ने कुछ देर के लिए गर्दन नीची कर ली और हरबिलास की बातों का कोई उत्तर न दिया।

"आपको मालूम है,"—हरबिलास फिर बोला—"कि आपकी इस करतूत से शान्ती की जान पर आ बनेगी!"

"शान्ती की जान पर क्यों आ बनेगी? उसे विवाह करना है, कहाँ और कैसे, इससे उसे कुछ मतलब नहीं!"

"कुछ मतलब नहीं? आप भूल करते हैं, लाला रामधन! शान्ती इस विवाह को कभी स्वीकार नहीं कर सकेगी!"

"आपको कैसे मालूम है?"

"मुझे सब कुछ मालूम है और मेरे पास इसके लिए प्रमाण मौजूद है।"

"कुछ भी हो। हम उसे मनवा लेंगे!"

"क्या आपको किसी के जीवन का कुछ भी ख़याल नहीं? क्या अपने स्वार्थ में आप इतने अन्धे हो सकते हैं। एक बालिका के जीवन, उसके हृदय, उसके विचारों का ख़ून आप इतनी निर्दयता से कर सकते हैं?"

"इन बातों में कुछ भी नहीं धरा! शान्ती के भविष्य का मैं मालिक हूँ, न कि आप!"

"परन्तु आपको इसका मूल्य चुकाना पड़ेगा। आप देख लीजिएगा!"

"अदालत में जायँगे आप?"

"जो कुछ मुझसे हो सकेगा, मैं करूँगा!"—यह कह कर हरबिलास वहाँ से उठ कर तेज़ी से चल दिया। उसे जितने दिन मेरठ से लौटे हुए थे, उतने दिनों में वह पागल की भाँति इधर-उधर की सोचता रहा। क्या वह शान्ती के पत्रों को पुलिस और मैजिस्ट्रेट के सामने रख कर उनकी सहायता ले। इससे रामधन की ख़बर ली जायगी, परन्तु शान्ती की बदनामी होने का भी डर है। क्या वह जज के यहाँ हर्जाने का दावा कर दे? परन्तु इन बातों के करने पर कहीं शान्ती उसी से नाराज़ न हो जाय। क्या वह इस विषय में बिरादरी की सहायता ले? परन्तु जिन पञ्चों से न्याय की आशा की जा सकती है, वे ही अन्याययुक्त कार्य किया करते हैं और सदा उन्हीं का पक्ष लेते हैं, जिनकी तूती बिरादरी में बोलती है।

वह इन्हीं विचारों में पड़ा हुआ था कि उसे शान्ती का एक पत्र मिला। रोते-रोते उसने पत्र खोला, क्योंकि उसे किसी न किसी भय की आशङ्का होने लगी थी। पत्र में लिखा था :—

"जीवन-धन,

शायद यह पत्र अन्तिम हो, इसीलिए आपको 'जीवन-धन' कह कर सम्बोधित करने की अपनी साध पूरी कर रही हूँ! पता नहीं, यह पत्र आपके पास पहुँचेगा भी या नहीं; क्योंकि मेरे ऊपर आजकल कड़ी

निगाह रक्खी जाती है और पत्र भेजना क्या, लिखने का भी अवसर नहीं मिलता। यह पत्र कई रातों में छिपा-छिपा कर लिख सकूँगी।

"मैंने सुना भर था कि आप यहाँ कुछ देर के लिए आए थे और मामा में और आप में कुछ कहा-सुनी हुई थी। उसके बाद आपका कोई समाचार नहीं मिला। सुना था कि आप उसी समय मेरठ से चले गए। इससे मुझे अनुमान होता है कि आप मामा के अपमान से खिन्न होकर मुझे छोड़ देने का विचार कर चुके हैं। यह स्वाभाविक भी है। हाय, मुझ अभागिनी के पीछे आपका इतना अपमान हुआ, इतना कष्ट मिला। अगर मेरा अनुमान ठीक है तो यह अच्छा ही है। मैं तो किसी प्रकार इस जीवन से छुटकारा प्राप्त कर लूँगी। परन्तु आपके सामने सारा भविष्य पड़ा है। परमात्मा करे, आपको कोई अच्छी सङ्गिनी मिले। मैं तो आपकी कुछ भी सेवा न कर सकी। आशा है, वह सेवा करने का सौभाग्य पाएगी। जिस वृक्ष को मैंने लगाया था, उसको वह सींचेगी और बड़ा करेगी। मेरी साध तो मन की मन में ही रह गई। हाय भगवान, यह शरीर भी चला, यह प्राण भी चले, परन्तु मुझे अपने आराध्य देव के चरणों का अन्तिम दर्शन भी न हो सका।

"मैं अब अपमान और कष्ट सहते-सहते ऊब गई हूँ। जब तक आपकी ओर से आशा थी, तब तक इनके सहन करने में कोई कष्ट नहीं होता था। अब जब आप जीवन में से निकल गए, तो फिर यह जीवन स्थिर रहने योग्य कहाँ रहा? अब मैंने विचार कर लिया है कि चार दिन बाद जब मेरी सगाई का दिन आएगा, उसी दिन इस सांसारिक बन्धन से मुक्त होकर स्वर्ग में पहुँच जाऊँगी। ईश्वर मुझे बल दे?

"मेरे सर्वस्व, मेरी याद न करना। अच्छी तरह रहना। समाज का अग्नि-कुण्ड आहुतियों का भूखा है, मैं उसके लिए आहुति बन रही हूँ।"

❀ ❀ ❀

जिस समय हरबिलास मेरठ पहुँचा, उस समय शान्ती की अर्थी तैयार हो रही थी। उसने एक दृष्टि शान्ती के मुख की ओर डाली और रोकर बोला—शान्ती, समाज के अग्नि-कुण्ड में तुमने तो आहुति डाल दी, अब मेरी भी प्रतीक्षा करना! समाज के अग्नि-कुण्ड में मेरी भी आहुति पड़ेगी।

और सचमुच अग्नि-कुण्ड की धधकती ज्वाला ने दूसरी आहुति भी ले ली।

卐 卐 卐

वसन्त-समीर !

[श्री० कृष्णलाल विशारद, 'हंस']

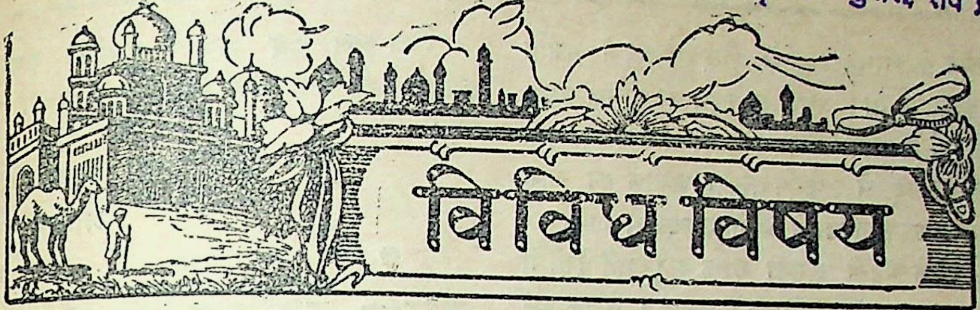
हे वसन्त के सुखद समीर !
किसको ढूँढ़ रहे जल, थल, नभ में उन्मत्त अधीर ?

तरु-पल्लव, कलिका-चितवन में;
सुरभित वन, कानन, उपवन में;
लीला ललित कलित सरिता के, मधुमय मञ्जुल तीर?

ऊषा के आरक्त अधर पर;
स्वर्गिक हास-विलास अमर कर;
किसको रिझा रहे? किस पर यह चढ़ा रहे दृग-नीर?

निर्झर के मादक कलरव से;
कोकिल के कल पञ्चम स्वर से;
किसके जीवन में भरते हो, नवयौवन की पीर?

किन मोहक भावों भूले से?
किन आशाओं पर फूले से?
बिछा रहे किसके स्वागत-हित, सखे! हरित तृण-चीर?



भारतीय चित्रकला के सिद्धान्त

पहले-पहल भारतीय चित्रकला का निरूपण कामसूत्र के रचयिता महामुनि वात्स्यायन ने तीसरी शताब्दि में किया था। चित्रकला को उन्होंने ६ भेदों में विभाजित किया है।

(१) रूपभेद—अर्थात् आकृति और वर्ण-निरूपण।

(२) प्रमाण—अर्थात् क्रम, माप, तौल इत्यादि।

(३) भाव—अर्थात् भावुकता और विकास (Sentiment and Expression)

(४) लावण्य-योजना—अर्थात् बनावट और सौन्दर्य।

(५) सादृश्य—अर्थात् अनुरूपता।

(६) वर्णिका भङ्ग—अर्थात् सामग्री और अन्य वस्तुएँ।

प्राचीन भारत में यद्यपि चित्रकारी की प्रथा अधिक नहीं थी। पर जो कुछ भी थी, उसका चित्रण इसी व्यवस्था के अनुसार किया जाता था। रामायण, महाभारत तथा अन्य पुराणों में चित्रकला का उदाहरण बहुत ही कम मिलता है। उन दिनों अधिकतर तक्षण और मूर्ति-कला अपनी पराकाष्ठा पर पहुँची हुई थीं। भारतीय शिल्पी गृह और भास्कर्य-कला में इतने निपुण थे कि उसकी जितनी भी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। महाभारत में मय दानव की बनाई हुई हस्तिनापुर की पाण्डवों की राजसभा का वर्णन आया है। वह सभा इतनी कुशलता से बनाई गई थी कि दुर्योधन को स्थल में जल का और जल में स्थल का भ्रम हो गया। सादी दीवाल में दरवाज़े के भ्रम में उसे दीवाल से टकराना पड़ा। परन्तु चित्रकारी का कोई अधिक वर्णन नहीं आया है। केवल पुराणों में वाणासुर-सुता की सखी चित्रलेखा का ही एक बार ज़िक्र आया है। जिसने अपनी प्रियतमा सखी ऊषा को अनिरुद्ध का चित्र बना कर दिखलाया था।

ईसा की ४-५ शताब्दि पूर्व बनी पाली और संस्कृत पुस्तकों में राजकीय चित्रशालाओं का वर्णन मिलता है। इसी समय से भारतीय नरेशों एवम् धनीमानी स्त्री-पुरुषों के चित्र-रुचि की बात मिलती है। परन्तु इनका कोई अभी तक प्रत्यक्ष उदाहरण नहीं मिलता है कि उनके दरबार में चित्रकार थे। मुग़ल-वंश के राज्य-कालान्तर यह बात पूर्णतया मिलने लगती है कि उनके दरबार में चित्रकार थे, जो सम्राट के लिए चित्र बनाया करते थे।

अभी हाल ही में कुछ साधारण, पूर्व ऐतिहासिक काल की ड्राइङ्ग और चित्र रावगढ़ स्टेट, मध्य-प्रान्त और मिरज़ापुर में मिले हैं। पर उनके बारे में भी अभी विद्वानों का मत एक ओर स्थिर नहीं है। परन्तु जो हो, पत्थर की चट्टानों पर के ये चित्र (Drawings) जो एक प्रकार से रेखा-चित्र हैं, अवश्य बहुकालीन हैं। बस, आर्य-सभ्यता और संस्कृति के गौरव उत्तरी भारत का यही लिखित-प्रमाण (Record) है।

दक्षिण भारत में उस अतीत की अवश्य ही कुछ गौरवपूर्ण और सुन्दर कृतियाँ प्राचीन आर्य चित्रकला की कौशलता और निपुणता प्रदर्शित कर रही हैं। यह हैं निज़ाम राज्य स्थित अजन्ता की गुफाएँ और ग्वालियर राज्यान्तर्गत बाग़ और इलौरा की गुफाएँ। इन गुफाओं में चित्रकारी के साथ ही साथ पत्थर में बेल-बूटे और बड़ी स्वाभाविक मूर्तियाँ हैं। इन सब में अजन्ता की गुफाएँ जगत-प्रसिद्ध हैं। इनकी ख्याति का कारण इनकी प्रचीनता और चित्र-सौन्दर्य है। अजन्ता की चित्रकारी के विषय में भिन्न-भिन्न विद्वानों का भिन्न-भिन्न मत है। यह ईसा की ३ शताब्दि पूर्व से लेकर ५ शताब्दि बाद तक की है। इलौरा और बाग़ की चित्रकारी भी इसी के समकालीन है।

अशोक के शासन-काल में बौद्धधर्म अपनी उन्नति की पराकाष्ठा पर था। प्रबुद्ध सारिपुत्र की कोमल करुण वाणी से पूर्व में करुणा और स्नेह का स्रोत उमड़ पड़ा था। यौवन-मद से रक्त-पिपासित अशोक का जोश कलिङ्ग की रक्तरण-चण्डी ने अपने ताण्डव से शान्त कर दिया। उसने अपनी समस्त शक्ति सुदूरवर्ती देशों में प्रबुद्ध का करुण सन्देश पहुँचाने में लगाई। वैदिक धर्म कुछ समय के लिए लोप-सा होता प्रतीत होने लगा। इसी काल में अजन्ता में पत्थर की चट्टानों को काट कर विरक्त भिक्षुओं के रहने के लिए सङ्घ का निर्माण हुआ। कला और सजावट के लिए आधुनिक यन्त्राविष्कारों से अनभिज्ञ शिल्पी ने भारतीय आदर्श और अपनी हृदय की अनुभूति से ये चित्र अङ्कित किए। वस्तुतः ये चित्र धर्म-प्रचार के लिए अङ्कित किए गए। परन्तु सब चित्र कुछ न कुछ समयान्तर देकर ३,४०० वर्ष के बीच में बने हैं।

इन धार्मिक स्थानों में मूर्तिकार को सर्व-प्रथम स्थान दिया जाता था। महलों और प्रासादों की दीवारें प्रायः मिट्टी और लकड़ी की बनती थीं। अतः ऐसी दशा में अच्छा से अच्छा चित्र भी ३-४ सौ वर्ष में नष्ट हो गया होगा। मन्दिरों और सङ्घों में की पताकाएँ, जिन पर चित्र बनाए जाते थे, और शीघ्रता से नष्ट हो गई होंगी। ऐसी दशा में चित्र-कला का राज्यप्रासादों और सम्राटों के भवनों में अवश्य अधिक प्रचार और उन्नति रही होगी, पर समय की विनाशकारी गति से वे यवनों के आक्रमण के पूर्व ही नष्ट हो गई होंगी।

सम्भवतः इस समय दरबार का शिल्पी ही राज-चित्रकार रहा होगा और वह चारण एवम् राजकवि के सहयोग से चित्र बनाता रहा होगा। धार्मिक मन्दिरों और सङ्घों में उनके चिरस्थायी रहने के लिए अत्यन्त दृढ़ता, कौशल और कारीगरी से काम लिया जाता था। इनके बनाने वाले भी प्रायः उसी सम्प्रदाय के अनुयायी होते थे। वे अपने उपासक तथा इष्ट-देवता के प्रीत्यर्थ इतनी सुन्दर कारीगरी का काम करते थे, जो मनुष्य-मात्र के लिए एक शोभा एवम् गर्व की वस्तु हो सकती थी। इसी तरह अपनी सर्वोत्कृष्ट कारीगरी द्वारा शिल्पी अपने इष्टदेव विश्वकर्मा को प्रसन्न कर अपने उद्देश्य की पूर्ति कर सकता था।

चित्र-कला कुछ काल के उपरान्त तक्षण-कला से समता करने लगी और इसकी एक अलग शाखा हो गई।

—शीतलाप्रसाद तिवारी विशारद;
श्रीशचन्द्र पाण्डेय

❀ ❀ ❀

सम्राट जहाँगीर की न्यायनिष्ठा

दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो की लोकोक्ति प्रचलित करने वाले सम्राट अकबर के परलोक-गमन के पश्चात् युवराज सलीम का, बादशाह नूरउद्दीन जहाँगीर की उपाधि-सहित अभिषेक हुआ। तत्कालीन राजधानी आगरा में दरबार के सम्राट-दूत ने घोषणा की कि हम लोगों के सम्राट जहाँगीर चक्रवर्ती सम्राट हों। सम्राट ने अपनी प्रजा के हितार्थ और अपना राज्यतिलक चिरस्मरणीय बनाने के लिए घोषणा की—"समस्त राज्य में एक लाख कूप और बावलियाँ बनवाई जायँ और पथिकों के विश्राम के लिए बहुत से पथिकाश्रमों (धर्मशालाओं) का भी निर्माण किया जाय। छः मास के लिए प्रजा हर तरह के राज्य-कर से मुक्त की जाय। दरिद्र और रोगी मनुष्यों की चिकित्सा के लिए सम्राट की तरफ़ से चिकित्सक नियुक्त किए जायँ। शराब की दूकानें आज से बन्द की जाती हैं। छः मास तक दरिद्रों को अन्न-दान दिया जायगा।"

इस घोषणा को सुन कर साम्राज्य के आबाल-वृद्ध-बनिता सभी आनन्द से प्रफुल्लित हो उठे।

सम्राट जहाँगीर प्रतिदिन अपना अधिकांश समय प्रजा का अभियोग सुनने और उस पर न्याययुक्त विचार करने में लगाता था। महल के बाहरी हिस्से में एक सुवर्णमय घण्टा लटका रक्खा था, जिसकी रस्सी खींच कर धनी और दरिद्र बिला रोक-टोक सम्राट के पास अपनी मनोव्यथा पहुँचा सके। रस्सी खींचने पर घण्टा बज उठता था और सम्राट उस मनुष्य को बुला कर स्वयं उसकी नालिश सुनता था। परन्तु दुःख की बात यह थी कि राजमहल के पहरेदारों की यथेष्ट पूजा किए बिना कोई भी रस्सी खींचने न पाता था। परन्तु इतने पर भी दरिद्रों को बड़ी सुविधा थी। दरिद्र की फ़रियाद भी

सम्राट बड़े आग्रह से सुनता था। फ़रियादी का प्रतिपक्षी चाहे कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो, यदि सम्राट के न्याय-विचार में वह अपराधी सिद्ध होता था, तो उसे उपयुक्त दण्ड देने में वह ज़रा भी सङ्कोच नहीं करता था।

एक दिन सम्राट दत्तचित्त होकर राज्य-कार्य देख रहा था। इतने में एकाएक स्वर्ण-घण्टा बज उठा। सम्राट ने मन्त्री को आज्ञा दी कि देखो, किसने रस्सी खींची है। उसे मेरे सामने हाज़िर करो।

सम्राट का आदेश सुनते ही मन्त्री बाहर गया और थोड़ी देर में एक वृद्ध और वृद्धा को उसके सामने लाकर उपस्थित किया। वे पति-पत्नी अत्यन्त दीन और दरिद्र, फटे-चिथड़े पहने हुए रोते-काँपते सम्राट के अभय-प्रद सिंहासन के नीचे लेट गए और पृथ्वी चूमते हुए कहा—"जहाँपनाह, ग़रीबनिवाज, हम अभागों पर दया कीजिए। न्याय-विचार के लिए हुज़ूर की सेवा में बहुत दूर से आ रहे हैं।" सम्राट ने कहा—"तुम लोग शान्त होओ, किसी प्रकार का भय मत करो और अपना अभियोग सुनाओ।"

यह अभय-वाणी सुन कर वृद्ध उठा और हाथ जोड़ कर रुँधे गले से बोला—जहाँपनाह दीर्घजीवी हों।

वृद्ध के मुँह से फिर कोई बात न निकली। वह चुपचाप पत्थर की मूर्ति की तरह खड़ा रहा। अभियोग सुनाने का उसको साहस न हुआ। वृद्ध किसके विरुद्ध फ़रियाद करने आया है, यह सोच कर वह भय से विह्वल हो उठा। वृद्ध को मौन देख कर एक दरबारी ने कहा—"तुम लोगों का अभियोग क्या है; जल्दी और संक्षेप में कहो।" तो भी वृद्ध के मुँह से कोई बात न निकली। पति की यह दशा देख कर वृद्धा ने काँपते-काँपते कहा—"जहाँपनाह! जिसने हमारे प्राणाधिक पुत्र की हत्या की है, उसका नाम लेने में डर लगता है।"

सम्राट ने कहा—तुम निर्भय होकर कहो। यदि अपराधी मेरा पुत्र ही हो तो भी उसे न्याय के अनुसार दण्ड देने में मैं न हिचकूँगा।

सम्राट के आश्वासन से वृद्धा का भय कुछ दूर हो गया। उसने कहा—जहाँपनाह के पास हम लोग बहुत दूर—मुल्क बङ्गाल के बर्दवान शहर से पैदल ही आ रहे हैं। हम लोग बहुत ही दरिद्र हैं। हम लोगों को रास्ते में उदर-पूर्ति के लिए भिक्षा माँगनी पड़ी है। हमारे शरीर पर जो फटा कपड़ा है, इसके सिवाय दूसरा वस्त्र तक नहीं है।

थोड़ी देर चुप रहने पर वृद्धा ने फिर कहा—जहाँपनाह! दरिद्र होने पर भी हमारा दिन किसी प्रकार से कटा जाता था।

देश पर स्थायी सम्पत्ति के नाते रहने का एक घर है। थोड़ी सी ज़मीन भी है। हम लोगों के बुढ़ौती का सहारा—अन्धे की आँख की तरह और लँगड़े की बैसाखी की तरह—एक शिशु पुत्र था। उसी का मुख देख कर हम जीते थे। उसकी तोतली वाणी सुन कर दरिद्रता के सारे कष्टों को भूल जाते थे। आह! आज भी मेरे कानों में उसकी तोतली वाणी गूँज रही है।

शोकावेग से उसकी आवाज़ बन्द हो गई और आँखों से अविरल गति से अश्रुधारा निकल पड़ी।

वृद्धा की करुण कहानी सुन कर सहृदय सम्राट का हृदय करुणार्द्र हो उठा। वृद्धा आत्म-सम्वरण करके फिर कहने लगी—जहाँपनाह! एक दिन मेरा बच्चा सड़क पर खेल रहा था। उसी समय बङ्गाल के सूबेदार साहब हाथी पर चढ़ कर नगर-भ्रमण के लिए निकले थे और मेरे बच्चे के ऊपर अपना हाथी निकाल ले गए। हाथी ने मेरे नन्हें बच्चे को फूल की तरह मसल दिया। दुःख से अधीर होकर हम दोनों हाथी के पीछे-पीछे बड़ी दूर तक दौड़े। न्याय-विचार के लिए प्रार्थना की। किन्तु उन्होंने हम लोगों की प्रार्थना सुनी तक नहीं। बल्कि उलटे उनकी मित्र-मण्डली ने हमारा मज़ाक़ उड़ाया और हमें गालियाँ दीं। जहाँपनाह, मैं उस समय आत्म-ज्ञान-रहित हो रही थी। मैंने भी सूबेदार को गालियाँ दीं। इस पर सूबेदार ने क्रुद्ध होकर मेरा घर-द्वार, सामान और ज़मीन आदि जो कुछ था, ज़ब्त करके हम लोगों को नगर छोड़ देने का आदेश दिया। हम लोग राह के भिखारी हो गए! किन्तु वह भी उनसे न देखा गया। रास्ते से हम लोग मार कर भगा दिए गए।

वृद्धा बोलते-बोलते शोक एवं दुःख से मूर्छित होकर गिर पड़ी। वृद्ध उसकी मूर्छा दूर करने का उपाय करने लगा। यह करुण दृश्य देख कर सम्राट का हृदय भी क्षोभ और दुःख से भर गया। उसने सक्रोध

कहा—"मैं इस अत्याचार का प्रतिकार करूँगा। मन्त्री की ओर देख कर आज्ञा दी कि शीघ्र ही एक आज्ञा-पत्र बङ्गाल के सूबेदार के नाम लिखो और इन लोगों को दस स्वर्ण-मुद्रा दो।" मन्त्री ने तुरन्त ही दस अशर्फ़ियाँ वृद्ध को दीं। वृद्ध पहले अशर्फ़ियाँ लेने में हिचका। किन्तु बादशाह की आज्ञा का उल्लङ्घन होने के डर से ले लिया।

सम्राट के आदेशानुसार मन्त्री लिखने लगे—सूबे बङ्गाल के सूबेदार सैफ़उल्ला ख़ाँ को इसके द्वारा सूचित किया जाता है कि उन्होंने जान-बूझ कर इस वृद्ध और वृद्धा के पुत्र की हत्या की है और इनका सर्वस्व छीन कर इन्हें राह का भिखारी बनाया है। इस अपराध का उपयुक्त दण्ड तो तुम्हें पदच्युत करना था, परन्तु एक बार मैं तुम्हारा अपराध क्षमा करता हूँ। तुम अपने हाथी के महावत को उपयुक्त दण्ड दे दो और इन लोगों की सारी सम्पत्ति लौटा दो। इन लोगों का जो नुक़सान हुआ है, उसकी भी पूर्त्ति कर दो। मेरा यह हुक्म बहुत जल्द ही तामील किया जाय।

आज्ञा-पत्र एक बार फिर सुन कर सम्राट ने अपना हस्ताक्षर और मुहर देकर उसे वृद्धा को दे दिया। आज्ञा-पत्र को सूबेदार को देने के लिए आदेश देकर राह-ख़र्च और सवारी के लिए कुछ रुपए दिला कर उन लोगों को बिदा किया।

वृद्ध और वृद्धा अपनी आशा से अधिक पाकर सम्राट को आशीर्वाद देते हुए बर्दवान लौट गए और आज्ञा-पत्र को सूबेदार के पास भिजवा दिया।

सैफ़उल्ला ख़ाँ यह आज्ञा-पत्र पढ़ते ही क्रोध से लाल हो उठा और उसे फाड़ कर टुकड़े-टुकड़े कर डाला। प्रहरियों को आज्ञा दी कि इन दोनों को क़ैद करके कारागार में डाल दो। जब तक ये अपनी इस गुस्ताख़ी का अर्थात् सम्राट के पास अभियोग ले जाने की शरारत के लिए क्षमा-याचना न करें, तब तक मुक्त न किए जायँ।

कारागार की एक अँधेरी कोठरी में वे दोनों रक्खे गए। तरह-तरह की यातनाएँ नित्य-प्रति उनको दी जाने लगीं। किन्तु वे इतने दृढ़-प्रतिज्ञ थे कि सब अत्याचार सहन करते थे, परन्तु क्षमा-याचना नहीं करते थे। अन्त में सूबेदार ने उन्हें अनाहार रखने की आज्ञा दी। बेचारे कई दिनों तक अनाहार रहे और अन्त में क्षमा माँग ली। क्षमा-याचना करने के बाद वे लोग छोड़ दिए गए।

कारागार से मुक्ति-लाभ करने के बाद वृद्ध और वृद्धा के पास न रहने के लिए घर था, और न कोई दूसरा आश्रय। वृक्ष के नीचे रह कर भी वे एक मुट्ठी अन्न का प्रबन्ध नहीं कर सकते थे। दुर्बल शरीर के कारण रोग ने भी धर दबाया। नगर छोड़ कर दूर एक गाँव में चले गए। ऐसी निराश्रय अवस्था में सदैव रक्षा पहुँचाने वाले अनाथनाथ भगवान ने प्रेरणा कर एक गृहस्थ द्वारा उनकी सेवा आदि का प्रबन्ध करवा दिया। उसकी सेवा से वे आरोग्य हो गए। और एक दिन प्रातःकाल फिर वे लोग आगरा जाने के लिए गाँव से चल पड़े। परन्तु बिदा होते समय अपनी सरल-हृदयता के कारण उन्होंने आगरा जाने का उद्देश्य किसी से कह दिया था।

धीरे-धीरे यह बात सूबेदार तक पहुँच गई। उसने कई घुड़सवारों को उन्हें पकड़ लाने के लिए भेजा। किन्तु वे न मिले।

वृद्ध और वृद्धा बहुत कष्ट-सहन के बाद आगरा पहुँचे। परन्तु सूबेदार के षड्यन्त्र के कारण राजमहल के घण्टे की रस्सी को, जो महल के बाहर लटकती थी, न छू सके। इस समय उनके दुःख और क्षोभ की सीमा न रही। किन्तु उनकी प्रतिज्ञा अटल थी। हृदय में प्रतिहिंसा की ज्वाला धधक रही थी। दोनों ने राजमहल के बाहर एक वृक्ष के नीचे आश्रय लिया और दिन-रात सम्राट के दर्शन की प्रतीक्षा में बिताने लगे। कुछ मिल गया तो खा लिया, नहीं तो निराहार ही सो रहे।

सम्राट कभी-कभी हाथी पर सवार होकर मृगया आदि के लिए अपने दरबारियों के साथ इतनी शीघ्रता से निकल जाता कि वृद्ध दौड़ने पर भी उससे साक्षात्कार न कर पाता। इस प्रकार प्रतीक्षा करते-करते छः मास बीत गए। एक दिन सम्राट यमुना में जल-विहार के लिए बाहर निकले और यमुना किनारे सम्राट एक सुन्दर बजरे में जाने के लिए ज्योंही उद्यत हुए कि लता-कुञ्ज से वृद्ध-दम्पति अचानक निकल कर सम्राट के चरणों पर गिर कर रोने लगे। फिर सँभल कर घुटने टेक कर कहने लगे—संसार के मालिक, शहन्शाह!

न्याय कीजिए। हम न्याय के लिए पुनः श्रीमान की शरण में आए हैं।

सम्राट ने उन्हें पहचाना। वृद्ध की ज़बानी उनका हाल सुन कर उसको दुःख हुआ। उसने आदेश दिया कि सूबेदार बहुत शीघ्र दरबार में हाज़िर होवे।

बङ्गाल के सूबेदार सैफ़उल्ला को सम्राट का परवाना मिला। वह बड़े समारोह के साथ आगरा पहुँचा और अपने आगमन का समाचार दूत द्वारा सम्राट के पास भेजवा दिया।

सम्राट ने आज्ञा दी कि कल प्रातःकाल एक मतवाले हाथी को सजा कर रक्खा जाय और वृद्ध-दम्पति उस पर सवार रहें।

दूसरे दिन प्रातःकाल यमुना पार पहुँच कर सम्राट ने सूबेदार को मज़बूत रस्सी से बाँधने की आज्ञा दी। आज्ञा का तत्क्षण पालन किया गया। सैफ़उल्ला ने अपनी आत्म-रक्षा की चेष्टा व्यर्थ समझ कर कातर दृष्टि से सम्राट की तरफ़ देखा। सम्राट ने वृद्ध-दम्पति की ओर देखने के लिए सङ्केत किया। सूबेदार की समझ में सब बात आ गई। भय के कारण उसके प्राण उड़ से गए। सम्राट की आज्ञा से उस बँधे हुए सूबेदार को सड़क पर लाकर उसके ऊपर मतवाला हाथी चला दिया गया।

सैफ़उल्ला की मृत्यु पर सम्राट क्षुब्ध हृदय से आगरा लौटा। वह उसका स्नेह-भाजन और बाल-बन्धु था। सम्राट ने यथाविधि अपने बाल-बन्धु की अन्त्येष्टि क्रिया की व्यवस्था की। दरबारियों ने दो महीने तक शोक-चिह्न धारण किए। एक दिन सम्राट ने दरबार में कहा—"यद्यपि मैं उससे स्नेह करता था; तथापि राजा तो न्याय-बन्धन से जकड़ा हुआ है; उसके लिए दूसरा उपाय ही नहीं है।"

—भैरवनाथ अग्रवाल 'आनन्द'

सोवियट में सङ्गीत

लोगों को भ्रम-सा हो चला है कि साम्यवादी केवल पूँजीवाद को ही नष्ट नहीं करना चाहते, बल्कि वे सभी प्रकार की ललित कलाओं को भी नष्ट कर देना चाहते हैं। पर बात ऐसी नहीं है। साम्यवादी ललित कलाओं के प्रेम में किसी से कम नहीं हैं। हाँ, उन्हें यह विश्वास अवश्य है कि प्रत्येक काल की कला भिन्न-भिन्न होती है और समाज के पुनर्निर्माण के साथ ही नई कलाओं का और प्राचीन कलाओं का नए रूप में जन्म होता है। १९१७ की क्रान्ति के बाद का रूसी सङ्गीत उसके पहले के सङ्गीत से पूर्णतया भिन्न है।

मास्को की स्टेट पब्लिशिङ्ग सोसायटी में सोवियट-सरकार का सङ्गीत के प्रति रुख़ स्पष्ट शब्दों में यों लिखा हुआ है—"हमें सङ्गीत की उन्नति की ओर पूरा ध्यान देना चाहिए और उच्च श्रेणी का सङ्गीत उत्पन्न करना चाहिए। सङ्गीत द्वारा हम जनसाधारण को सफलता-पूर्वक सङ्गठित कर समाज के पुनर्निर्माण में सहायक होंगे।" सङ्गीत के प्रति लोगों की रुचि उत्पन्न करने के लिए सोवियट-सरकार हर प्रकार के प्रयत्न करती है। कारख़ानों, कलेक्टिव्स, लाल सेना, सभी का उपयोग वह लोगों में सङ्गीत के प्रति प्रेम उत्पन्न करने के लिए करती है। सोवियट-सरकार के इन प्रयत्नों का फल यह हो रहा है कि कारख़ानों में काम करने वाले मज़दूर सङ्गीत को अपने जीवन का एक आवश्यक अङ्ग समझने लगे हैं।

कलेक्टिव्स के सञ्चालक सदा ध्यान रखते हैं कि उनके साथ काम करने वालों में से कौन इस योग्य है कि वह सङ्गीत में शिक्षा प्राप्त कर सके। जिन्हें वे इस योग्य समझते हैं, उन्हें सिफ़ारिश करके इक्सपेरिमेण्टल क्लास में भेज देते हैं। वहाँ सफल होने पर उन्हें मास्को के स्कूल ऑफ़ म्यूज़िक में भेजा जाता है, जहाँ वे पूर्ण रूप से सङ्गीत का अध्ययन करते हैं।

इसके पहिले कि कोई गीत सर्वसाधारण के सम्मुख उपस्थित किया जाय, उस पर काफ़ी वाद-विवाद हो जाता है। उस वादविवाद में स्कूल ऑफ़ म्यूज़िक के विद्यार्थी, वहाँ के शिक्षक, सङ्गीत-विशारद, प्रेस-प्रतिनिधि और समालोचक तो हिस्सा लेते ही हैं, साथ ही कारख़ानों और कलेक्टिव्स में काम करने वाले लोग भी अपना मत उनके सामने रखते हैं।

सङ्गीत का आनन्द उठाने वाले लोगों की संख्या बढ़ाने के लिए सोवियट-सरकार कारख़ानों में काम करने वालों की संस्थाओं और कलेक्टिव्स से काम लेती है और बेतार के तार द्वारा घनी बस्तियों से अलग रहने वाले लोगों तक नवयुग के सङ्गीत को पहुँचाती है।

सङ्गीत सम्बन्धी पाठशालाओं में बहुत से लोग शिक्षित किए जा रहे हैं, जो सङ्गीत सम्बन्धी ज्ञान का विस्तार करने के लिए बेतार के तार द्वारा व्याख्यान देंगे। ऐसे व्याख्यान अब भी होते हैं। बेतार के तार द्वारा दूर-दूर तक भेजे जाने वाले इन व्याख्यानों में सङ्गीत की व्याख्या और समालोचना बहुत ही सरल भाषा में की जाती है। कोई वक्ता ऐसे शब्दों का व्यवहार नहीं कर सकता, जिन्हें जनसाधारण समझ न सकें।

सोवियट-सरकार की ओर से सङ्गीत सम्बन्धी पत्र भी निकलते हैं। बेतार के तार द्वारा भेजे जाने वाले व्याख्यानों की भाँति इनकी भाषा भी बहुत सरल होती है। इन पत्रों और पत्रिकाओं का रूस-निवासियों को शिक्षित बनाने में बड़ा हाथ है। सोवियट-सरकार इस बात का बड़ा ध्यान रखती है कि सङ्गीत की शिक्षा पाने वालों की कठिनाइयाँ दूर की जायँ और सङ्गीत-रचयिताओं की रचनाएँ प्रकाशित हो जायँ।

सोवियट-सरकार द्वारा सङ्गीत-शिक्षा के लिए जो स्कूल खोले गए हैं, वे बहुत ही सङ्गठित हैं। सङ्गीत सम्बन्धी शिक्षा का कोर्स बारह साल का होता है। इस कोर्स को वे तीन भागों में विभाजित करते हैं। सङ्गीत की शिक्षा पाने योग्य समझे जाने वाले सात-आठ साल की उम्र के बच्चे 'टेक्निसम' में भर्ती होते हैं, जहाँ उन्हें चार साल रहना होता है। उन्हें सङ्गीत के साथ ही अन्य विषयों की शिक्षा भी दी जाती है। सङ्गीत सम्बन्धी शिक्षा गाने और बजाने दोनों में होती है। इस अवस्था के बच्चों के गाने के लिए नए गीत प्रतिदिन रचे जा रहे हैं। मास्को में चार 'टेक्निसम' हैं। इनमें क्रान्ति के पहले की 'नेसिन कन्सर्वेटरी ऑफ़ म्यूज़िक' मुख्य है।

हाई स्कूल ऑफ़ म्यूज़िक में टेक्निसम में शुरू किए हुए कार्य को पूरा किया जाता है और बालकों को सङ्गीत के भिन्न-भिन्न विभागों में विशेष शिक्षा दी जाती है। इनमें ज़्यादा उमर के उन लोगों को भी शिक्षा दी जाती है, जो 'इक्सपेरीमेण्टल क्लास' में अपने को सङ्गीत-शिक्षा के योग्य सिद्ध करते हैं। शिक्षा के अन्तिम काल में सङ्गीत के भिन्न-भिन्न अङ्गों की आलोचना सिखाई जाती है और गीतों की रचना का अभ्यास कराया जाता है। गीतों के प्रत्येक वाक्य पर वहाँ विचार होता है और 'मार्क्सिज़्म' की कसौटी पर सारा गीत कस लिया जाता है। इन गीतों का समाज पर क्या प्रभाव पड़ेगा, वह प्रभाव अपेक्षित है अथवा नहीं, इन बातों का विचार करना भी इस स्कूल में सिखाया जाता है। सङ्गीत और समाज के सम्बन्ध का 'शेकेडोनाव' नामक समालोचक और सङ्गीतज्ञ ने विशेष अध्ययन किया है और इसी विषय पर एक पुस्तक भी लिखी है।

'टेक्निसम' और हाई स्कूल ऑफ़ म्यूज़िक के अलावा बेतार के तार द्वारा सङ्गीत-सम्बन्धी व्याख्यान देने वालों, कलेक्टिव्ज़ और कारख़ानों में काम करने वालों की संस्थाओं में सङ्गीत-विषयक शिक्षा देने वालों को शिक्षा देने का भी विशेष प्रबन्ध है।

क्रान्ति के बाद के प्रायः सभी गीत 'मार्चिङ्ग साङ्ग' थे, पर अब अन्य प्रकार के गीतों की रचना भी हो रही है। कम्यूनिस्टों के दृष्टिकोण से छोटे-छोटे गीतों का महत्व बड़े गीतों से कम नहीं है। वे तो गीत के समाज पर पड़ने वाले प्रभाव को देखते हैं। गीत बहुधा ऐतिहासिक विषयों पर होते हैं। क्रान्ति-काल और सोवियट-शासन की महत्वपूर्ण बातें ही उनके विषय होते हैं। इन्हीं गीतों में से एक से लेनिन की मृत्यु से सोवियट-निवासियों को होने वाले महान दुःख का पता चलता है। कुछ गीतों में 'कलेक्टिव लेबर' के लाभ का वर्णन बड़े मनोहर शब्दों में किया है। अतः यह समझना भूल है कि कम्यूनिस्ट सङ्गीत का नाश कर रहे हैं। हाँ, यह बात ज़रूर है कि वे पुराने सङ्गीत के स्थान पर नवयुग के सङ्गीत को जन्म दे रहे हैं।

—अर्जुन अरोड़ा

विभु की विभूति या अछूत

महान चैतन्य की विराट सृष्टि में यों तो एक परमाणु को भी अचेतन कहने में सङ्कोच होता है, किन्तु तत्वज्ञों ने काल्पनिक रूप से इसके दो विभाग किए हैं—एक जड़ और दूसरा चेतन। मानव-शरीर चेतन-जगत का ही एक अङ्ग है, अतः हमें इसी का यहाँ विवेचन करना है।

ज्ञान, बल, आकांक्षा या तद्रूप प्रयत्न तथा सहानुभूति या सेवा चेतन-सृष्टि के प्रधान अवयव हैं। या यों

कहें कि इन गुणों की समष्टि का ही नाम चेतनता है। वेदवित्पुरुषों ने ज्ञान को बल से श्रेष्ठतर माना है और प्रत्यक्ष में भी यह देखने में आता है कि ज्ञानी के सम्मुख नग्न बल व्यर्थ हो जाता है। आकांक्षा, ज्ञान और बल की अनुचरी है; किन्तु इन तीनों से बलिष्ठ सहानुभूति या सेवा है। यद्यपि इसका स्थान उक्त चतुर्गुणों की श्रेणी में अन्तिम है और जनसाधारण की दृष्टि में यह हेय भी प्रतीत होता है, तथापि इसकी गौरव-गरिमा सर्वोत्कृष्ट है। शुष्क ज्ञान या नग्न पौरुष से लोग घबरा उठते हैं, किन्तु यदि उनमें सहानुभूति की किञ्चित् माधुरी मिल जाय, तो उनके सम्मुख स्वर्गीय विभूतियाँ भी हेय प्रतीत होती हैं। यही नहीं, प्रत्युत एकमात्र सहानुभूति ही बड़े-बड़े ज्ञानियों और बलशालियों की उक्तियों और युक्तियों को सर्पवत् कील देती है।

चेतन सृष्टि चार भागों में विभाजित है—१ उद्भिज, २ स्वेदज, ३ अण्डज और ४ जरायुज। उद्भिज या वनस्पतियों में बल का बाहुल्य तथा शेष तीन गुणों का प्रत्यक्षतया बहुत ही कम या नहीं के बराबर अंश होता है। इसी कारण लोग कभी-कभी वृक्षों को अचेतन सृष्टि में गिनने लगते हैं। किन्तु शेष तीन विभागों में उक्त चतुर्गुण न्यूनाधिक अंश में पाए जाते हैं, जिससे इनकी क्रिया तथा व्यापार (Activities & Movements) पूर्णरूपेण प्रतिलक्षित होते हैं। जरायुज सृष्टि के मुख्य दो भाग हैं; द्विपद और चतुष्पद, या यों कहें कि मनुष्य तथा पशु। पशुओं और मनुष्यों में उक्त गुण-चतुष्टय विद्यमान होते हैं; किन्तु समानुपात से नहीं, जिससे दोनों के स्वभाव विभिन्न होते हैं। पशुओं में बल की मात्रा अधिक, किन्तु इतर तीन गुणों की अत्यल्प, जिससे एक निर्बल किन्तु ज्ञान, सहानुभूति तथा प्रयत्न से सम्पन्न प्राणी सरलता से उनको अपने अधीन कर लेता है। सहानुभूति का पद यहाँ भी उच्च है। जिन पशुओं में यह विभूति प्रचुरता से होती है, वे बड़े-बड़े ज्ञानियों और धनुर्धारियों को भी अपना स्वरूप बना लेते हैं। महात्मा भरत तथा मृगशावक और राजर्षि दुष्यन्त तथा कण्वाश्रम-विहारी मृग के आख्यान इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं।

मनुष्य विश्वनियन्ता की चिन्मयी रचना का सर्वोत्कृष्ट विकास है। अतः उक्त चतुर्गुणों का समावेश भी उसने सम्यक् रूप से तथा योग्यानुपात से किया है। इन्हीं दिव्य गुणों की ज्योतिर्मय विभूति के कारण मनुष्य को पुरुष, ईश्वर आदि परमात्मवाचा विशद विशेषण प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। भगवान की इस विशिष्ट रचना में उक्त गुण-चतुष्टय का भी भव्य विकास शिर, बाहु, उदर तथा पाद के रूप में क्रम से हुआ। इनमें भी वही तारतम्य तथा नियम हैं, जो चतुर्गुणों में हैं।

जिस प्रकार भुवन-भावन भगवान ने सहानुभूति के पावन पञ्चाक्षरी महामन्त्र में वह भुवन-विमोहिनी शक्ति दी है; जो विश्व की ऊर्ध्वगामिनी शक्तियों को अधोमुखी कर देती है। जैसे निम्नस्थ भूतल व्योमोड्डीयमान वस्तुओं को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है, ठीक इसी प्रकार जीवात्मा की चिन्मय शक्तियों (शिर, हस्त, उदर, पाद) में अन्तिम तथा निम्नस्थ पदों को भी वही आकर्षण-शक्ति प्राप्त है। इनके भी सम्मुख उर्ध्वस्थ ज्ञान-स्वरूप भूर्भुवः स्वः के प्रतिनिधि शिर को झुकना पड़ता है। सारांश यह कि प्रकृति के विशाल साम्राज्य में निम्न का स्थान बड़ा महत्वशाली है। कदाचित् आर्यतत्त्वज्ञों ने इसी कारण नम्रता को मानव-जीवन का श्रेष्ठतम आभूषण माना है। समृद्धियों को लाद कर कोई शक्ति उन्नतमुखी नहीं हो सकती। महात्मा भर्तृहरि का निम्नाङ्कित श्लोक इस पर प्रचुर प्रकाश डालता है :—

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमै—
र्नवाम्बुभिर्भूरि विलम्बिनो घनाः
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः
× × ×

अर्थात्—"जिस प्रकार फलों के भार से वृक्षों को और जल के भार से बादलों को झुकना पड़ता है, इसी प्रकार समृद्धियों के भार से सत्पुरुषों का भी मस्तक नत हो जाता है।"

व्यक्ति से जाति तथा जाति से राष्ट्र बना करते हैं; यह एक स्वयं-सिद्धि है। चेतनता के सारभूत गुण-चतुष्टय जिस प्रकार व्यक्तियों में शिर, हस्त, उदर तथा पाद-रूप में व्यक्त हुए, वही जातियों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र रूप में चतुर्वर्ण के नाम से प्रख्यात हुए। चतुर्गुणों की समष्टि से चेतनता, चतुरवयवों के योग से व्यक्ति तथा चतुर्वर्णों के समुच्चय से राष्ट्र की सत्ता सिद्ध

होती है। निम्नाङ्कित तालिका चेतन-जगत के विकास का क्रम तथा पारस्परिक सम्बन्ध पर प्रकाश डालती है।

चेतनता

ज्ञान	बल	आकांक्षा या प्रयत्न	सहानुभूति या सेवा
शिर	बाहु	उदर	पाद
ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र

राष्ट्र

परन्तु हाय! उस समदर्शी की सर्वोत्कृष्ट रचना में आज इतनी विषमता है, जिससे इसका प्रतिदिन ह्रास होता चला जाता है। छूत-अछूत की विषाक्त भावनाओं ने हमको चतुष्पदों की श्रेणी से भी नीचे गिरा रक्खा है। धर्म के विधायकों तथा आचार्यों ने निसर्ग के अनिवार्य नियमों को भी तोड़ने का दुस्साहस किया है। कदाचित् वे यह नहीं समझते कि 'मुई खाल की स्वाँस से सार भस्म हो जाय।' निम्नस्थों की आहें उर्ध्वस्थ नश्वर वस्तुओं ही को नहीं, किन्तु स्वर्ग के अजरामर मन्दार कल्पद्रुम तथा गोलोकवासी विष्णु के पावन आगार को भी भस्म कर सकती हैं। अतः आओ भाई, इस वेद की पावन ऋचा पर अपने-अपने जीवनों को ढालें।

सहनाववतु सहनौर्भुनक्तु सहवीर्यं करवा वहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषा वहै।

अर्थात्—"परस्पर एक-दूसरे की रक्षा का पावन भाव हो, हमारा एक साथ भोजन हो, हम एक साथ ही बल-वीर्य को बढ़ाएँ, किसी से द्वेष न हो।"

—बाबूलाल प्रेम

❀ ❀ ❀

गुप्तेन्द्रिय-ज्ञान

कुछ महीने हुए मैंने 'चाँद' के सम्पादकीय स्तम्भों में एक लेख लिखा था। उस लेख पर टिप्पणी करते हुए एक महाशय ने हाल ही में 'सुधा' की एक संख्या में कई पृष्ठ रँगे हैं। उस टिप्पणी पर अन्य टिप्पणियों की भाँति मैं कोई विचार प्रगट करना नहीं चाहता था; क्योंकि मैं जानता हूँ कि ऐसी टिप्पणियाँ किन विचारों वाले व्यक्तियों द्वारा लिखी जाती हैं और उनमें कितना ध्यान देने योग्य मसाला होता है। परन्तु यहाँ पर मैं उसका ज़िक्र इसलिए कर रहा हूँ कि इस प्रकार की टिप्पणियाँ लिखने वाले व्यक्ति अपने विचारों के जोश में शिष्टाचार तक को भूल जाते हैं! इन सज्जनों की राय में काम-विज्ञान की शिक्षा को आवश्यक कहने वाले या विवाह तथा वेश्याओं के विषय में कुछ क्रान्तिकारी विचार प्रगट करने वाले परले सिरे के दुराचारी होते हैं। तभी तो 'सुधा' के इन लेखक महोदय ने मेरे और श्री० सन्तराम जी के लिए लिख डाला कि अपने लेखों में हम लोगों ने अपनी काम-वासना और पाशविक प्रवृत्ति का परिचय दिया है। लेखक महाशय ने अपने लेख का शीर्षक 'पतन की ओर' रक्खा है। इससे विदित होता है कि आप यह समझते हैं कि हमारा समाज इस समय बहुत पवित्र, ऊँचा, सदाचारी आदि-आदि है, और जो व्यक्ति क्रान्तिकारी सामाजिक सुधारों के पक्षपाती हैं, वे इसे पतन की ओर ले जा रहे हैं। भारतीय सभ्यता, सामाजिक सदाचार, शानदार अतीत आदि की ढींग मारने वालों ने ही हमारे देश को पतन के पथ पर डाल दिया है, इसे सभी निष्पक्ष विचारक मानेंगे। परन्तु इन महाशय को इन बातों की परवाह कहाँ? यह तो प्राचीन सभ्यता की दुहाई देकर सबकी टाँग काटने दौड़ पड़ेंगे। आपने मुझे सलाह दी है कि मैं फिर यूरोप जाकर वहाँ के व्यभिचार आदि की बातों का अध्ययन करूँ। इन महाशय से मैं यही कहूँगा कि मुझे तो इन सब बातों का ख़ासा अनुभव है। हाँ, वहाँ जाने की आवश्यकता तो इन्हीं को है, ताकि यह अपनी पुस्तकों और समाचार-पत्रों के ज्ञान को ज़रा परख सकें। यदि इतना नहीं हो सकता, तो कम से कम अपने ही समाज के घरों में ज़रा आँख खोल कर देखने का कष्ट करें। इन्हें इस बात का ज्ञान हो जायगा कि जिस सामाजिक सदाचार पर इन्हें गर्व है, उसकी हत्या वहाँ किस बुरी तरह से हो रही है। यदि इस काम के लिए इनके पास समय न हो तो 'चाँद' में प्रकाशित 'चिट्ठी-पत्री' शीर्षक स्तम्भ को ही समय-समय पर पढ़ने का कष्ट करें।

आपने उक्त सम्पादकीय लेख के आधार पर मुझे वेश्याओं के हामियों का नेता (या संयुक्त-नेता, क्योंकि

श्री० सन्तराम जी का नाम भी मेरे नाम के साथ लिखा हुआ है।) क़रार दिया है। मुझे इस पर कोई आपत्ति नहीं, परन्तु इन महाशय ने उस लेख की बातों को पूरी तरह समझने की भी चेष्टा नहीं की, अन्यथा वे दिन-दहाड़े भ्रमपूर्ण बातें लिखने का दुस्साहस न करते। उस लेख में मैंने लिखा था :—

"इस विषय में हमें एक अत्यन्त आवश्यक प्रश्न पर विचार करना पड़ता है और वह है वेश्याओं का प्रश्न। समाज के लिए यह प्रश्न जीवन-मरण का प्रश्न है। हमारे शास्त्रों ने और धर्माचार्यों ने यह व्यवस्था दे दी है कि वेश्यागमन करना महापाप है। यहाँ तक तो ठीक है। परन्तु उन्होंने इस बात पर विचार नहीं किया कि वेश्यागमन का कारण क्या है, वह किस प्रकार दूर किया जा सकता है और यदि वह पूर्णतया दूर नहीं किया जा सकता, तो उसके स्थान पर अन्य उपाय क्या हो सकता है। वेश्यागमन के कई कारण हैं, परन्तु उनमें एक मुख्य कारण है समाज के वे बन्धन, जिनके कारण अनेक नवयुवक विवाह से वञ्चित रह जाते हैं। जब समाज, शास्त्र और धर्माचार्य उनके इन जन्मसिद्ध अधिकारों को निरङ्कुशता से कुचल डालते हैं, तो उनको अपनी प्राकृतिक पिपासा के बुझाने के लिए वेश्यागमन के अतिरिक्त और क्या साधन हैं? आधुनिक समाज के लिए वर्तमान परिस्थितियों में, इसलिए, वेश्या एक आवश्यक जीव है।"

इस उद्धरण से पाठक समझ सकते हैं कि मैंने वेश्या को आधुनिक परिस्थितियों में आवश्यक बताया है। लेखक महाशय के विचार में क्या आधुनिक परिस्थितियाँ इस प्रकार नहीं हैं? यदि हाँ, तो वे कौन सा उपाय बताते हैं? शायद वे 'ब्रह्मचर्य' का पाठ पढ़ाना चाहें। परन्तु इनका यह नुस्ख़ा आधुनिक परिस्थितियों के लिए सफल होगा, इसमें मुझे बहुत बड़ा सन्देह है। कामेन्द्रिय सम्बन्धी विषयों से लोग इतनी घृणा करते हैं और यदि इस प्रकार के विषयों पर कोई लेख प्रकाशित हो जाता है, तो उसकी कटु से कटु समालोचना करने बैठ जाते हैं। परन्तु वे यह भूल जाते हैं कि कामेन्द्रिय हमारे शरीर का वैसा ही एक भाग है, जैसा कि हाथ, नासिका, मुख आदि। हमारे मात-पिता या गुरु हमें हाथों के विषय में शिक्षा देते हैं—हाथों से हम क्या काम कर सकते हैं, उन्हें कैसे शुद्ध रक्खा जा सकता है आदि—मुख और नासिका के विषय में बातें बताते हैं। ग्रन्थों में लिखा है और हमें गुरुजनों द्वारा बताया जाता है कि जो भोजन हम खाते हैं, वह आमाशय में जाता है। वहाँ वह कुछ घण्टों तक रहता है, जब तक कि आमाशय की पाचन क्रिया चालू रहती है। पाचन क्रिया को सहायता देने के लिए हमें टहलना चाहिए; या फिर इतने श्वास दाहिनी ओर, इतनी श्वास बाईं ओर और इतने श्वास चित लेट कर लेना चाहिए। हमें यह भी बताया जाता है कि मन्दाग्नि होने पर हमें भोजन छोड़ देना चाहिए, किसी प्रकार के चूर्ण का सेवन करना चाहिए, आदि। हमारे गुरुजनों की समझ में हमारे लिए इन सब बातों का ज्ञान होना आवश्यक है। यदि हम बीमार होते हैं तो हमारे गुरुजन हमें किसी वैद्य के पास ले जाते हैं और मनोयोग से चिकित्सा कराते हैं। ये सब बातें आवश्यक हैं। हवा में जाने से सर्दी लग जायगी, गर्मी में बाहर निकलने से लू लग जायगी आदि बातों की हमारे सम्बन्धियों को चिन्ता है। परन्तु कामेन्द्रियों के विषय में हमें कुछ ज्ञान हो, इसकी उनकी समझ में कोई आवश्यकता नहीं, कोई महत्व नहीं। शरीर के इस अत्यावश्यक भाग का क्या कार्य है, वह कार्य किस प्रकार करना चाहिए, मार्ग में कोई आपत्तियाँ और डर हैं या नहीं, यदि हैं तो उनसे कैसे बचना चाहिए, इन सब बातों की उन्हें कुछ भी चिन्ता नहीं। इन सब बातों को वे संसार में प्रवेश करने वाले नवयुवक, बालक की बुद्धि पर ही छोड़ देते हैं। क्यों? क्योंकि ये सारी बातें अश्लील हैं। इनके ज्ञान से समाज में भ्रष्टाचार फैलता है। इन बातों को फिर पिता पुत्र से और भाई भाई से कैसे कहे? परन्तु यह कितनी बड़ी भूल है उनकी।

कामेन्द्रियों के सम्बन्ध में कुछ जानना प्रकृति के एक परमावश्यक रहस्य का अध्ययन करना है। यूरोप में भी वर्षों पूर्व इन विषयों को गोपनीय समझा जाता था और इन पर विचार प्रगट करने वालों को बुरा-भला कहा जाता था। वैज्ञानिक तक इन बातों के विरुद्ध थे। इसीलिए जर्मनी में शोपेनहर तथा निश्शे जैसे विद्वानों के विचारों पर टीका-टिप्पणी हुई थी। परन्तु अब वैज्ञानिकों का मत बदल गया है। हम संसार में कई गुणों को लेकर उत्पन्न होते हैं, जिन्हें अङ्गरेज़ी में Instinct

कहते हैं। इनमें से एक उस कामेन्द्रिय (Sex) का दूसरी कामेन्द्रिय की ओर आकर्षित होना भी है। साथ ही २५० वर्ष पूर्व इस बात का भी पता लगा था कि स्त्री और पुरुष के रज और वीर्य में कुछ कीटाणु होते हैं। पुरुष के कीटाणु Spermatozoa कहलाते हैं और स्त्री के Ova कहलाते हैं। प्रत्येक २८ दिन बाद स्त्री रजस्वला होती है और एक कीटाणु बच्चेदानी में आता है। इस आशा से कि वहाँ शायद कोई पुरुष-कीटाणु हो और दोनों मिल कर एक बालक की सृष्टि करें। इसी कारण प्रत्येक स्त्री २८ दिन बाद विशेष रूप से पुरुष की ओर आकर्षित होती है। यह प्राकृतिक है। परन्तु यह किशोरावस्था के समय ही प्रगट होता है। हाँ, इसका जो मनोवैज्ञानिक भाग है, वह बचपन में ही उत्पन्न हो जाता है। यह प्रत्येक व्यक्ति में उसी प्रकार भिन्न होता है, जिस प्रकार व्यक्तियों के शरीर की बनावट, उनकी आदतें आदि।

इसको Sexual Constitution कहते हैं और यह शिक्षा, रोग, शरीर की बनावट आदि से प्रभावित होता है। यह Constitution प्रत्येक व्यक्ति के लिए अलग होता है। इसी कारण हम देखते हैं कि कोई व्यक्ति अधिक कामातुर होता है, कोई कम। इस कामातुरता पर विजय प्राप्त करने के तथा उसे साधारण स्थिति में लाने के उपाय हैं, फिर भी किन्हीं व्यक्तियों में यह एक प्रकार का रोग हो जाता है। इसको दबाने की चेष्टा निष्फल जाती है और अनेक व्यक्तियों में हानिकर भी सिद्ध होती है। अनेक स्त्रियों में हिस्टीरिया (Hysteria) आदि रोगों का यही कारण होता है। कुछ में पागलपन (Sexual Insanity) का आक्रमण भी हो जाता है। इसी के साथ-साथ कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं, जो दूसरे कामेन्द्रिय के व्यक्ति की ओर आकर्षित होते ही नहीं, चेष्टा से नहीं, प्रकृति से ही। कुछ उनसे घृणा तक करते हैं। कुछ व्यक्तियों में ये बातें स्थिर रूप से नहीं पाई जातीं। उन्हें इन बातों का दौरा होता है। कभी वे प्रेम में पागल हो जाते हैं, कामाग्नि से दग्ध होने लगते हैं। कभी वे भिन्न कामेन्द्रिय के व्यक्तियों से घृणा करने लगते हैं। इसके लिए इन व्यक्तियों को दोष देना सर्वथा उचित नहीं है। क्योंकि जीव-विज्ञान और रसायन-विज्ञान के नियमों के अनुसार ही उनकी इस प्रकार की प्रकृति का निर्माण होता है। और यह प्रकृति उनके जन्म के साथ ही उत्पन्न होती है।

इस प्राकृतिक आकर्षण के लिए प्रकृति ने नियम बनाए हुए हैं। इस आकर्षण की भित्ति केवल सौन्दर्य अथवा कामाग्नि पर नहीं है। एक व्यक्ति एक स्त्री को चाहता है, उससे प्रेम करता है, उसे देखने के लिए आतुर रहता है। दस दूसरे व्यक्ति हैं, जो उस स्त्री की ओर आँख उठा कर देखना भी पसन्द न करेंगे। वास्तव में बात यह है कि प्रत्येक पुरुष सौ प्रतिशत पुरुष नहीं है। न प्रत्येक स्त्री सौ प्रतिशत स्त्री है। प्रत्येक स्त्री या पुरुष एक स्त्री और एक पुरुष के संयोग से बनते हैं और प्रत्येक में दोनों के ही संस्कार मौजूद रहते हैं। एक पुरुष में सब लक्षण पुरुषत्व के हैं, परन्तु उसके अन्दर कुछ गुण उसकी माता के भी हैं। किन्हीं पुरुषों में ये गुण कम मात्रा में होते हैं, किन्हीं में बड़ी मात्रा में। इसी प्रकार प्रत्येक स्त्री में पुरुष और स्त्री दोनों के ही लक्षण पाए जाते हैं, कम या अधिक। जो पुरुष स्त्री-टाइप के होते हैं, वे पुरुष-टाइप की स्त्रियों को आकर्षित करते हैं; जो पुरुष-टाइप की स्त्रियाँ होती हैं, वे स्त्री-टाइप के पुरुषों को अपनी ओर खींचती हैं।

काम-विज्ञान के एक अन्यतम विद्वान डॉक्टर माग्नुस हिर्शफ़ैल्ड इन्हीं बातों को ध्यान में रख कर लिखते हैं—"यदि हम आज से लेकर इतिहास के प्रारम्भ के समय तक का अध्ययन करें, तो हमें पता चलेगा कि प्रत्येक समय के मानव-समाज में कामेन्द्रिय का एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है। उसके अस्तित्व और महत्ता से इनकार करने का अर्थ है, स्वयं जीवन के अस्तित्व और महत्ता को स्वीकार न करना। सभ्यता हमें नैतिक नियम बनाने और मानने की आवश्यकता बताती है। परन्तु उनका आधार इधर-उधर की अस्थायी घटनाओं पर न होना चाहिए। न उन्हें प्रकृति के नियमों से ऊपर स्थान ही देना चाहिए। जो नैतिक नियम प्रकृति के नियमों के विरोधी हैं, वे मूल में ही भ्रामक और ग़लत हैं। उनका सच्चा आधार होना चाहिए विज्ञान। नहीं तो आधुनिक समाज के आवश्यक प्रश्न—जैसे विवाह, तलाक़, सन्तानोत्पत्ति, योनि-सम्बन्ध, विशेषकर अविवाहित व्यक्तियों में, सन्तति-निग्रह, वेश्यावृत्ति आदि—

हल न हो सकेंगे। भूत को वर्तमान के सामने रखना और उन दोनों का मुक़ाबला करना ठीक नहीं है।"

इन सब बातों से यह सिद्ध होता है कि कामेन्द्रिय हमारे लिए एक आवश्यक तथा कठिन समस्या है और इसीलिए इसके भेदों का सभी को ज्ञान होना आवश्यक है। शास्त्रों के अनुसार किसी स्त्री की ओर देखना, दो भिन्न लिङ्गीय व्यक्तियों का आपस में हँस कर बातें करना आदि व्यभिचार है, पाप है। परन्तु विज्ञान हमें सिखाता है कि यह प्राकृतिक है। हाँ, इस बात की शिक्षा की आवश्यकता है कि प्रकृति की दी हुई इन भावनाओं पर किस प्रकार नियन्त्रण किया जाय, ताकि समाज के सङ्गठन में उसके सुचारु रूप से चलने में कोई बाधा न पड़े।

आजकल के वैज्ञानिक इस बात पर विचार कर रहे हैं कि बाल्यकाल में बच्चों को गुप्तेन्द्रिय-ज्ञान कराया जाना चाहिए या नहीं। परन्तु यह सभी का मत है कि किशोरावस्था के बाद तो इस प्रकार की शिक्षा प्रत्येक युवक तथा युवती को मिलनी चाहिए। एक अङ्गरेज़ महिला, श्रीमती फ्रान्सेस आल्डर्स्टन ने इस विषय पर लिखा है—"अन्य समस्याओं के साथ किशोरावस्था में प्रत्येक युवक के सामने कामेन्द्रिय-समस्या भी आती है। मैं समझती हूँ कि ऐसे समय पर हमें उनसे इस विषय पर खुल कर वार्तालाप करना चाहिए।"

इस प्रकार की शिक्षा प्राप्त न करने के कारण युवकों और युवतियों को अनेक प्रकार की बुरी आदतें पड़ जाती हैं, अनेक प्रकार की हानियाँ होती हैं, अनेक व्यक्तियों का गार्हस्थ्य जीवन ही चौपट हो जाता है। मेरे पास अनेक पत्र ऐसे आए हैं, जिनमें नवयुवकों ने अपनी दुःख-कहानियाँ बड़े करुण शब्दों में लिखी हैं। उनमें से एक पत्र की कुछ बातें यहाँ लिखी जाती हैं :—

"××× मेरी आयु १९ वर्ष की है। मेरा विवाह एक अच्छे कुल की लड़की के साथ हुआ है। परन्तु मैं अब उसके अयोग्य हूँ। कुछ दुष्टों ने मुझे यह शिक्षा दी कि हस्त-मैथुन से दिमाग़ की शक्ति बढ़ती है। मैं इस दुष्ट क्रिया का शिकार हो गया। उसके फल-स्वरूप अब मेरी मानवोचित शक्तियाँ नष्टप्राय हो गई हैं। मुझे अपने लिए तो कुछ चिन्ता नहीं होती, परन्तु अपनी स्त्री की ओर देख कर मैं सदा चिन्ताकुल रहता हूँ। उसकी आयु अभी केवल १४ वर्ष की है। वह सधवा होकर भी वैधव्य-यन्त्रणा भोग रही है। परन्तु इस प्रकार वह कब तक चलती रहेगी? मेरी इच्छा है कि उसका विवाह किसी दूसरे युवक के साथ हो जाय। यद्यपि इससे मेरा हृदय भग्न हो जायगा। साथ ही इसके लिए मुझे घर वालों और स्वयं मेरी स्त्री के विरोध का भी डर है।

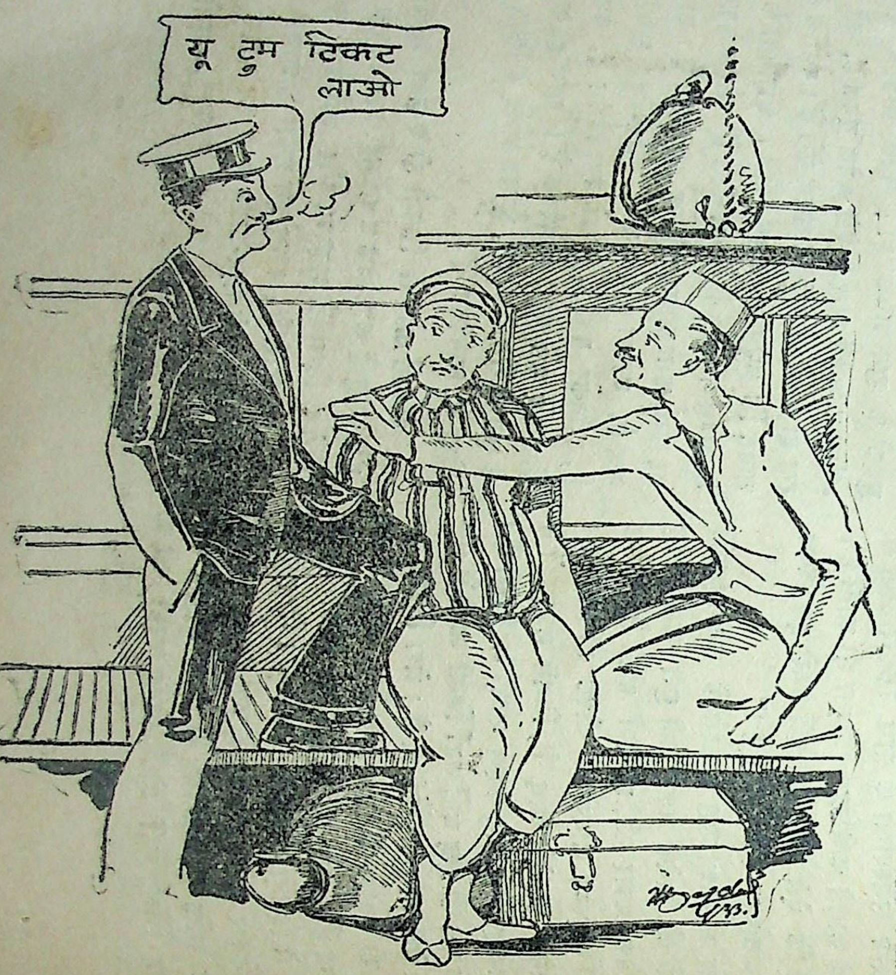
"मैंने कई युवकों को ऐसी दशा में आत्मघात करते हुए देखा है। परन्तु मैं इसे कायरता समझता हूँ। मैं नहीं जानता कि कोई उपाय मेरे लिए संसार में है भी या नहीं। कोई ऐसा भी नहीं है, जिससे इस विषय में सलाह भी माँग सकूँ। घर वालों से तो इस विषय में वार्तालाप हो ही नहीं सकता। जो मित्र अथवा हमउम्र हैं, वे सब हँसी उड़ाएँगे या फिर कोई नाशकारी सलाह दे देंगे। इसलिए मैं नहीं समझता कि क्या करूँ। नित्य-प्रति मेरा शरीर चिन्ता से घुल रहा है।×××"

इस पत्र से मालूम होता है कि युवकों को काम-विज्ञान की शिक्षा की कितनी आवश्यकता है। अच्छा हो, यदि इस आवश्यकता की पूर्ति उनके द्वारा हो, जो युवकों के शुभचिन्तक हों; न कि बाज़ारू गुण्डों या शरीफ़ बदमाशों द्वारा। ऐसे अनेक युवक हैं, जो अकारण ही अपने को नपुंसक समझ लेते हैं। क्योंकि वे नहीं जानते कि नपुंसकता है क्या चीज़। अज्ञानता के कारण वे सम्भोग ग़लत विधि से करते हैं और असफल होने पर कभी-कभी आत्महत्या तक कर डालते हैं। कामेन्द्रिय क्या है, उसका कार्य क्या है, स्वास्थ्यकर सम्भोग क्या है, हानिकर क्या है, उसके क्या नियम हैं, क्या विधि हैं, आदि बातें बहुत आवश्यक हैं। साथ ही कामेन्द्रिय के छूत के रोग—उपदंश, सूज़ाक आदि के विषय में ज्ञान होना भी आवश्यक है।

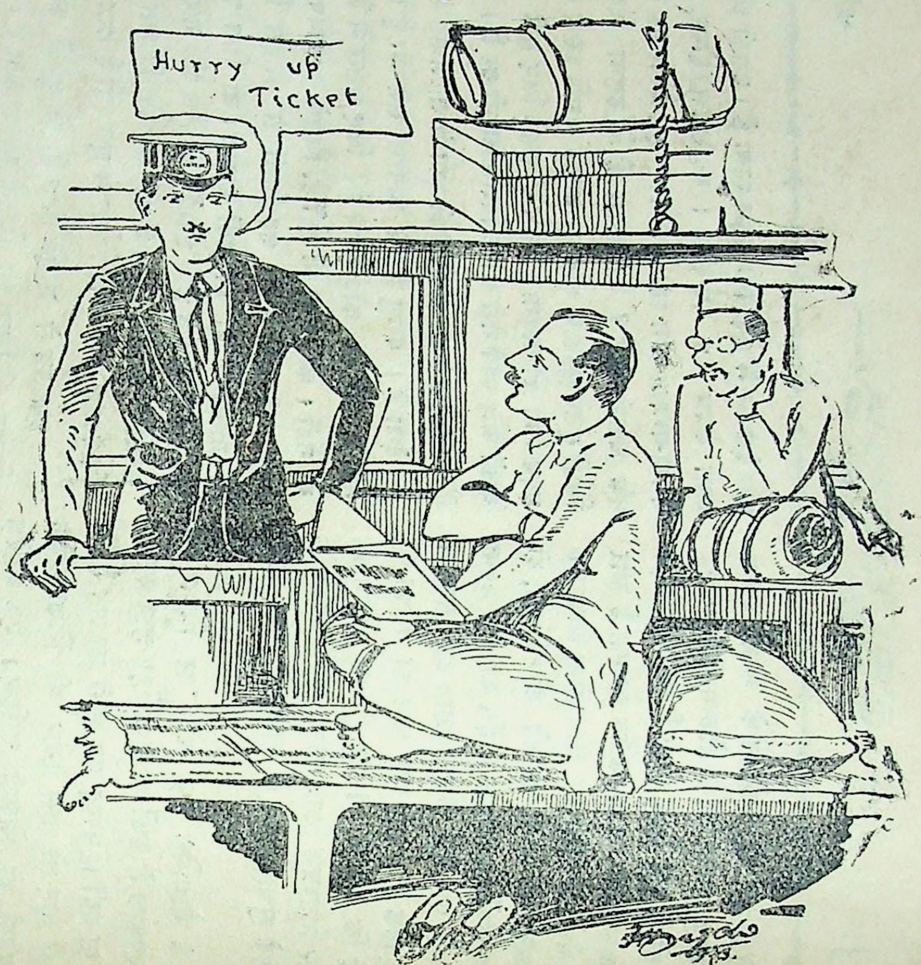
ये बातें ऊपर से कितनी ही अश्लील मालूम पड़ती हों, परन्तु हैं आवश्यक तथा महत्वपूर्ण। इनके ज्ञान का विरोध दिखावटी महात्मा और धर्म तथा सदाचार के ठीकेदार करते हैं; परन्तु इस प्रकार के ज्ञान से ही हमारे समाज का कामेन्द्रिय-जीवन सुधर कर आदर्श बनेगा।

—धनीराम प्रेम

रेलवे-शिष्टाचार



तीसरा दर्जा—टिकिट कलेक्टर (ज़रा खड़ा होने का तरीक़ा तो देखिए)—ओ यू, टिकिट लाओ !



ड्योढ़ा दर्जा—टिकिट कलेक्टर (यहाँ पैर बेञ्च से नीचे ही है)—जल्दी टिकिट दिखाइए !

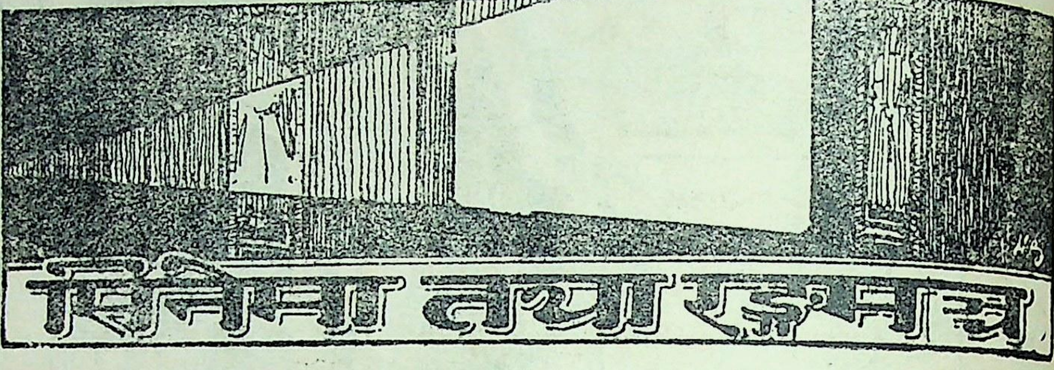
रेलवे-शिष्टाचार



दूसरा दर्जा—टिकिट कलेक्टर (ज़रा झुक कर बहुत नम्रता के साथ)—कृपया टिकिट !



पहला दर्जा—टिकिट कलेक्टर (अहा ! यहाँ तो सारी अकड़ हवा हो गई है)—हुज़ूर, टिकिट !



सिंहावलोकन

['चाँद' के प्रतिनिधि द्वारा]

भारतवर्ष में सवाक चित्रपट मार्च १९३३ में दो वर्ष की आयु को प्राप्त हुए हैं। मार्च १९३१ में सबसे पहला सवाक चित्रपट बम्बई की इम्पीरियल फ़िल्म कम्पनी ने 'आलमआरा' नाम से बनाया था। उसके कुछ दिनों बाद ही कलकत्ते के मदन थिएटर्स लिमिटेड ने 'शीरीं फ़रहाद' नामक चित्रपट तैयार किया। सन् १९३२ तक समालोचकों, दर्शकों तथा फ़िल्मों में काम करने वालों में यही वादविवाद चलता रहा कि सवाक चित्रपट स्थिर रह सकेंगे या नहीं। सन् १९३३ में दो वर्ष के बाद हम सवाक चित्रपटों के भूत, वर्तमान और भविष्य पर गम्भीरतापूर्वक विचार कर सकते हैं और उनके विषय में कुछ निश्चित सम्मति बना सकते हैं। भविष्य के विषय में हम किसी आगामी अङ्क में विस्तारपूर्वक विचार करेंगे। यहाँ हमें सवाक चित्रपटों की दो वर्ष की प्रगति पर ही संक्षेप में कुछ लिखना है।

बम्बई वास्तव में इस प्रकार के फ़िल्म बनाने में उसी प्रकार अगुआ है, जिस प्रकार वह बेबोलते दिनों में था। वहाँ इस समय छः-सात कम्पनियाँ बोलते फ़िल्म बना रही हैं। इम्पीरियल फ़िल्म कम्पनी ने 'आलमआरा' के बाद 'दौलत का नशा' बनाया था, जो काफ़ी प्रसिद्ध हुआ था। उसके बाद 'नूरानी मोती', 'नेक अबला', 'नूरजहाँ', 'भारती माता' 'सती मदालसा' आदि कई फ़िल्म उसने बनाए हैं। परन्तु किसी को इतनी सफलता नहीं मिली, जितनी उसके हाल ही में बनाए गए फ़िल्म 'माधुरी' को। इसमें मिस सुलोचना ने पहले-पहल अपनी मधुर वाणी सिनेमा के प्रेमियों को सुनाई थी। इसका डायरेक्शन श्री० चौधरी ने किया था, जो अच्छे डाइरेक्टरों में से एक हैं। इन बातों के अतिरिक्त इसका कथानक भी अच्छा था। इम्पीरियल में मिस सुलोचना आजकल 'डाकू की लड़की' तथा 'सौभाग्य-सुन्दरी' में काम कर रही हैं।

रणजीत फ़िल्म कम्पनी को मिस गौहर के 'देवी देवयानी', 'राधारानी', 'सती सावित्री' आदि फ़िल्मों से अच्छी ख्याति मिली है। हाल ही में आपका 'विश्व-मोहिनी' फ़िल्म दिखाया जा चुका है। अब आप 'मिस १९३३' को तैयार कर रही हैं। रणजीत ने कॉमिक फ़िल्म निकालने में अगुआ का काम किया है और अब तक चार कॉमिक फ़िल्म बनाए हैं। मिस माधुरी का पहला बोलता फ़िल्म 'परदेशी प्रीतम' तैयार हो चुका है।

सागर ने पौराणिक चित्रपट बनाने की ओर अधिक ध्यान दिया है। 'मीराबाई', 'वीर अभिमन्यु', 'सुभद्रा-हरण', 'सुरेखा-हरण' आदि के बाद अभी उसका 'महाभारत' फ़िल्म तैयार हुआ है। 'बुलबुले बग़दाद', 'ज़रीना' आदि अपौराणिक चित्रपट भी उसने बनाए हैं। अब उसका ध्यान भी कॉमिक चित्रपटों की ओर गया है।

कृष्णा और भारत मूवीटोन एक ही कम्पनी के दो रूप हैं। 'हरिश्चन्द्र', 'ख़ुदादोस्त', 'नवचेतन', 'रौशन-आरा', 'कृष्णावतार' आदि कई फ़िल्म उन्होंने बनाए हैं। अब 'लङ्का-दहन' तथा 'हातिमताई' पर जुटे हुए हैं।

शारदा कम्पनी ने 'शशि पुन्हों' और 'रासविलास' दो फ़िल्म बनाए थे, परन्तु रिकॉर्डिङ्ग निकृष्ट होने के कारण वे असफल हुए। मेहता-लुहार के साथ मिल कर अब ये 'श्रीशारदा' का नाम धारण कर चुके हैं और इनका पहला फ़िल्म 'विक्रम-चरित्र' आजकल बम्बई में दिखाया जा रहा है।

सरोज कम्पनी ने 'शकुन्तला', 'गुलबकावली', 'ईद का चाँद', 'राजा भर्तृहरी' फ़िल्म बनाए हैं। अब 'रूप-बसन्त' की तैयारियाँ हो रही हैं।

श्री० मजूमदार ने एक नई कम्पनी 'प्रतिमा फ़ोटो-टोन' की स्थापना की है और उधर श्री० भावनानी ने भी परेल में अपनी एक कम्पनी खोली है, जिसका स्टुडियो तैयार हो चुका है। जयन्त पिक्चर्स वाले भी 'ज़हरे इश्क़' नामक फ़िल्म बनाने की तैयारी में हैं।

कलकत्ते में पहले मदन थिएटर्स की ओर दृष्टि जाती है। अब तक यह कम्पनी लगभग दो दर्जन फ़िल्म बना चुकी है। इनमें से ८ बङ्गाली में हैं। हिन्दी-उर्दू फ़िल्मों में 'भक्त प्रह्लाद', 'शीरीं फ़रहाद', 'लैला-मजनूँ', 'हरिश्चन्द्र', 'बिल्वमङ्गल', 'पति-भक्ति', आदि उल्लेखनीय हैं।

मदन के बाद न्यू थिएटर्स लिमिटेड का नम्बर आता है। अब तक इसके लगभग १० फ़िल्म बन चुके हैं। इनमें से कुछ बङ्गाली में और कुछ हिन्दी में हैं। पिछलों में 'मुहब्बत के आँसू', 'ज़िन्दा लाश', 'सुबह का सितारा' और 'पूरणभगत' हैं।

इनके अतिरिक्त कलकत्ता में दो नई कम्पनियों का जन्म हुआ है। पहली राधा फ़िल्म कम्पनी है, जो पहले भग्नावस्था में थी। अब यह श्री० प्रफुल्ल घोष के डाइ-रेक्शन में 'हातिमताई' बना रही है। दूसरी कम्पनी है 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी', जिसने 'एक दिन की बाद-शाहत' तैयार कर ली है और 'औरत का प्यार' आदि कई अन्य फ़िल्मों की तैयारी में है।

महाराष्ट्र में कलापूर्ण तथा विशुद्ध सङ्गीतपूर्ण फ़िल्म बनाने वाली तीन कम्पनियाँ हैं। कोल्हापुर की 'प्रभात' तथा 'छत्रपति' और पूना की 'सरस्वती'। प्रभात का नाम तो सारे भारतवर्ष में प्रसिद्ध है। उन्होंने 'अयोध्या का राजा', 'जलती निशानी' तथा माया-मच्छीन्द्र' जनता को अब तक दिए हैं। अब वे 'सिंहगढ़' बना रहे हैं। सरस्वती के 'श्याम-सुन्दर' ने तो बम्बई में २५ सप्ताह चल कर अपना नाम अमर कर लिया है। अब उनका दूसरा फ़िल्म 'राजकुमार ठकसेन' भी तैयार हो गया है।

अन्य प्रान्तों में कुछ अधिक कार्य नहीं हुआ। पञ्जाब की प्ले आर्ट फ़ोटोटोन ने 'हीररॉंझा' तथा 'राजा गोपी-चन्द' बनाए थे। तब से कार्य बन्द है। इस प्रकार विचार करने पर पता लगता है कि भारतीय कम्पनियों ने इस क्षेत्र में काफ़ी उन्नति की है। आगे चल कर और भी आशा है। दोष अनेक हैं और उनके विषय में पहले काफ़ी लिखा जा चुका है। इन दोषों के सुधारने की ओर ध्यान भी दिया जा रहा है। इतना अवश्य है है कि भारतीय बोलते फ़िल्मों के कारण विदेशी फ़िल्मों के प्रचार में कमी हुई है, जैसा नीचे के अङ्कों से विदित होगा।

नवीन खोज

रूस जिस प्रकार कला और विज्ञान के क्षेत्र में उन्नति कर रहा है, वह आश्चर्यजनक है। वहाँ पर बे-बोलते फ़िल्मों के बनाने में बड़ी उन्नति हुई है। अब समाचार आया है कि वहाँ के दो वैज्ञानिकों ने बिना किसी एक्टर के बोले हुए ही सवाक चित्रपट बनाने का प्रयास किया है और उसमें बहुत-कुछ सफलता प्राप्त की है। पाठकों को यह मालूम होगा कि शब्द का चित्र फ़िल्म पर कैसा दिखाई देता है। उसकी काली और बिना रङ्ग की लाइनें फ़िल्म पर खिंची हुई दिखाई देती हैं। आवरामोव तथा शोलपो नाम के दो रूसी वैज्ञानिकों ने इससे यह निष्कर्ष निकाला कि यदि इसी प्रकार की लाइनें एक काग़ज़ पर खींची जायँ और उनका फ़िल्म लिया जाय, तो उससे भी वार्तालाप तथा सङ्गीत की ध्वनि निकलनी चाहिए। उन्होंने यही सब किया और कुछ सफलता भी प्राप्त की। आन्द्रीवेस्की नाम के एक वैज्ञानिक ने उसी पद्धति के अनुसार एक कार्टून चित्रपट को सवाक तथा ससङ्गीत बनाया है। देखें आगे इसे कितनी सफलता मिलती है।

कुछ जानने योग्य बातें

भारत और बर्मा की फ़िल्म कम्पनियाँ ... ४५
" " के फ़िल्मों के एजेण्ट ... ८४
" " के सिनेमा ६०६
" " बोलते सिनेमा ... १५५
" " बेबोलते " ... ४५१

कम्पनियों में और सिनेमाओं में लगाया गया मूलधन २½ करोड़। सिनेमा-व्यवसाय में लगे हुए व्यक्ति लगभग १३,००० । कच्चा फ़िल्म, जो विदेश से आता है, उस पर कर—

सन् १९१४ में ... ... ५ प्रतिशत
१९१६ में ... ... ७½ "
१९२१ में ... ... ११ "
१९२२ में ... ... १५ "
१९३१ में ... ... २० "

अब यह कर ब्रिटिश फ़िल्म के लिए १५ प्रतिशत तथा अन्य देशों से आने वाले फ़िल्म पर २५ प्रतिशत है। इसका विरोध भारत में बड़े ज़ोरों से हो रहा है, क्योंकि इससे सिनेमा-व्यवसाय को काफ़ी धक्का पहुँचने की सम्भावना है। विदेशों के फ़िल्म भारत में प्रतिवर्ष कितने फ़ीट आते हैं :—

सन् १९२७ ... ... ७५,७५,०८७ फ़ीट
१९२८ ... ... १,०३,०२,४३२ "
१९२९ ... ... १,०७,३७,९७४ "
१९३० ... ... १,१४,९१,६८६ "
१९३१ ... ... ८२,५७,२८८ "

संसार के सिनेमा :—

	बोलते	बेबोलते	जोड़
यूरोप	११,२१७	१८,०९९	२९,३१६
अमेरिका (स्टेट्स)	१३,५००	६,५००	२०,०००
साउथ अमेरिका	१,३७९	४,०५६	५,४३५
सुदूरपूर्व	१,५२९	३,३९६	४,९२५
केनेडा	७०५	३९५	१,१००
अफ़्रीका	२७१	४१९	६९०
निकट पूर्व	१६	६९	८५
भारत	१५५	४५१	६०६
	२८,७७२	३३,३८५	६२,१५७

कच्चे फ़िल्म पर कर

जैसा ऊपर के अङ्कों में दिखाया गया है, भारत में आने वाले कच्चे फ़िल्म पर बढ़ाए गए कर के विषय में बम्बई की 'मोशन पिक्चर सोसाइटी' की ओर से एक डेपूटेशन दिल्ली गया था और व्यापार-सचिव से मिला था। बड़ी धारा-सभा के सभासदों से मिल कर भी उन्होंने इस विषय में कुछ आन्दोलन किया था। कुछ दिन हुए धारा-सभा की बैठक में एक सदस्य ने कर कम करने का प्रस्ताव पेश किया था। सरकार की ओर से कहा गया कि वे स्वयं इस विषय पर सहानुभूतिपूर्ण विचार कर रहे हैं। इसके बाद वह प्रस्ताव प्रस्तावक महाशय ने वापस ले लिया। देखें, सरकार इस विषय में क्या करती है।

'मूविङ्ग पिक्चर मन्थली' का विशेषाङ्क

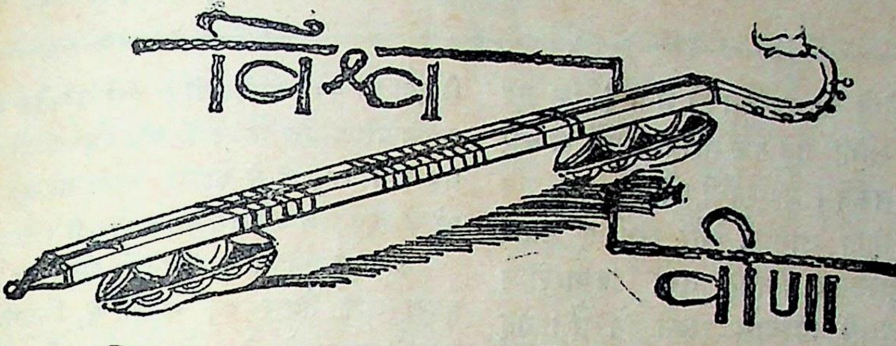
भारत में अङ्गरेज़ी भाषा में सिनेमा-विषयक कई पत्र अब प्रकाशित होने लगे हैं। बम्बई का 'मूविङ्ग पिक्चर मन्थली' भी कई वर्ष से सिनेमा-प्रेमियों की सेवा कर रहा है। हाल ही में इसका वार्षिक विशेषाङ्क प्रकाशित हुआ है। मुख-पृष्ठ का दिखाव इतना सुन्दर है कि वह विदेशी पत्रों का सा मालूम होता है। सुलोचना, गौहर तथा माधुरी के तिरङ्गे चित्र तथा अन्य प्रसिद्ध अभिनेताओं, अभिनेत्रियों, डाइरेक्टरों आदि के आर्ट पेपर पर छपे हुए अनेक चित्र हैं। 'मिकी माउस', 'अफ़्रा फ़िल्म कैसे बनाया जाता है', श्री० टम्बे का 'सवाक चित्रपट तथा सङ्गीत', 'भारतीय फ़िल्मों की कथाएँ' आदि कई मनोरञ्जक तथा ज्ञानवर्द्धक लेखों का इसमें संग्रह किया गया है। हम इसके सम्पादक श्री० आर० के० रेले, बी० ए०, एल्-एल्० बी० को इस सर्वाङ्ग-सुन्दर विशेषाङ्क के लिए बधाई देते हैं। इसका मूल्य १) है और मौज-मजा प्रेस, गिरगाँव, बम्बई से मिल सकता है।



नन्दी-पूजन

[श्रीमान् राजा श्रीराम साहब,
मौरावाँ (उन्नाव) की कृपा से प्राप्त]

[दि फ़ाइन आर्ट प्रिन्टिङ्ग कॉटेज,
इलाहाबाद]



स्त्रियाँ मताधिकार का दावा क्यों करती हैं ?

भारतीय स्त्रियों का राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश करना देश तथा समाज के लिए लाभजनक है अथवा हानिकर—इस प्रश्न पर प्रायः विभिन्न प्रकार की सम्मतियाँ सुनने में आती हैं। हमारे देश में ऐसे उच्च शिक्षा प्राप्त लोगों की भी कमी नहीं है, जो यूरोपियन साहित्य का अध्ययन कर लेने पर भी स्त्रियों को राजनीतिक अधिकार दिए जाने का विरोध करते हैं। ऐसे विचारों के व्यक्तियों के अवलोकनार्थ हम 'स्त्री-धर्म' (मार्च १९३३) में प्रकाशित एक सम्पादकीय टिप्पणी का कुछ अंश नीचे देते हैं :—

पुरुष, स्त्रियाँ तथा बच्चे—इन तीनों से मिल कर ही एक राष्ट्र बनता है, और एक लिङ्ग (Sex) के व्यक्तियों के लिए यह सम्भव नहीं है कि वे दूसरे लिङ्ग वालों के लिए सन्तोषजनक नियम रच सकें। उदाहरणार्थ एक गृहस्थी में पिता-माता और बच्चों का समावेश होता है। अगर इस गृहस्थी का समस्त भार—जैसे धनोपार्जन करना, भोजन बनाना, घर को स्वच्छ रखना, बीमार की सुश्रूषा, बच्चों को शिक्षा देना आदि, पिता और माता में से किसी एक पर ही डाल दिया जाय, तो इसका फल असन्तोषजनक ही होगा। इस प्रकार के लाखों परिवारों के समूह का नाम ही राष्ट्र है, जिसमें लाखों पिता, लाखों माता और लाखों बच्चे होते हैं। जिस प्रकार एक छोटी गृहस्थी के कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए माता-पिता के सहयोग की आवश्यकता है, उसी प्रकार राष्ट्र-रूपी बड़ी गृहस्थी की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी यह आवश्यक है कि उसके माता-पिता सहयोग द्वारा कार्य करें।

× × ×

इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि भारतवर्ष में स्त्रियों का मुख्य कार्यक्षेत्र गृहस्थी ही है। पर व्यवस्थापिका परिषदों में जिन विषयों पर विचार किया जाता है, क्या उनका प्रभाव गृहस्थी पर कुछ कम पड़ता है ? तनिक यह सोचने का कष्ट उठाइए कि व्यवस्थापिका परिषदों में किन विषयों पर वाद-विवाद किया जाता है। बच्चों की शिक्षा—इसका सम्बन्ध स्त्रियों से है; शिशु और प्रसूता की परिचर्या—यह विषय केवल स्त्री-सम्बन्धी है; सफ़ाई—इसका प्रभाव गृहस्थी पर ही पड़ता है; आर्थिक समस्याएँ—स्त्रियाँ सब प्रकार के व्यवसायों तथा कारख़ानों में मज़दूरी करती हैं; बजट—स्त्रियाँ टैक्स अदा करती हैं; युद्ध—स्त्रियाँ ही अपनी सन्तान को युद्ध-क्षेत्र में भेजती हैं और साथ ही उनको युद्ध सम्बन्धी अन्य कार्य भी करना पड़ता है, जिसका अनुभव गत यूरोपीय महायुद्ध के समय भली-भाँति हो चुका है। यही बात अन्य विषयों के लिए भी कही जा सकती है। ऐसी दशा में स्त्रियों को राजनीति से पृथक् रखने तथा यह कह देने से कि 'इन बातों से स्त्रियों का कोई सम्बन्ध नहीं' काम नहीं चल सकता। कौन्सिलों में ऐसा एक भी क़ानून पास नहीं होता, जिसका प्रभाव केवल एक ही लिङ्ग के व्यक्तियों पर पड़ता हो। इसलिए पुरुष और स्त्रियों को सब लोगों के कल्याणार्थ सम्मिलित होकर ही कार्य करना चाहिए।

मैशीन का आतङ्क

वर्तमान समय में संसार में जो भयङ्कर बेकारी फैली हुई है, उसका एक कारण मैशीनों की उन्नति होना भी है, और इसलिए

कितने ही लोगों का यह मत हो गया है कि जब तक मैशीनें रहेंगी, तब तक ग़रीब लोगों के कष्ट दूर नहीं हो सकते। म० गाँधी को भी इसी मत का समर्थक माना जाता है और इसलिए हमारे देश के बहुसंख्यक विद्वान तथा विचारशील व्यक्ति भी इसमें विश्वास रखने लगे हैं। यह समस्या यूरोपियन विद्वानों के सम्मुख भी उपस्थित है और उन्होंने इस सम्बन्ध में काफ़ी जाँच-पड़ताल की है। इसी प्रकार के एक विद्वान मि० रॉक थाम्पसन के विचारों का सारांश, जो लन्दन के 'आनसर्स' नामक पत्र में प्रकाशित हुआ है, हम नीचे देते हैं :—

इसमें सन्देह नहीं कि आजकल संसार के प्रत्येक देश में वैज्ञानिकगण मैशीनों को ऐसा सर्वाङ्गपूर्ण बनाने की चेष्टा कर रहे हैं, जिससे वे केवल एक 'लीवर' अथवा बिजली के बटन के दबा देने से ही इतना काम कर सकें, जिसके लिए कुछ वर्ष पूर्व कितने ही कर्मचारियों की आवश्यकता पड़ती थी। मैशीन की इस द्रुतगति के कारण संसार के प्रत्येक भाग में लाखों मज़दूर बेकार होते जाते हैं।

उदाहरणार्थ आज हम सात मनुष्यों द्वारा लोहे की इतनी चद्दरें तैयार कर सकते हैं, जिनके लिए कुछ वर्ष पहले सत्तर मनुष्यों की आवश्यकता होती थी। लङ्काशायर के व्यवसाइयों का कहना है कि यदि उनका व्यापार पूर्ववत् चलने लग जाय तब भी मैशीनों की क्षमता बढ़ जाने के कारण ५ लाख ७० हज़ार मज़दूरों में से ८० हज़ार अवश्य ही बेकार रहेंगे।

आप जिस क्षेत्र में दृष्टि डालिए, यही दृश्य दिखलाई पड़ेगा। 'टॉकी' का आविष्कार होने से सिनेमाओं में काम करने वाले, हज़ारों बजाने वाले बेकार हो गए हैं। बैङ्कों में हिसाब-किताब के लिए ऐसी आश्चर्यजनक मैशीनें लगाई गई हैं, जिनके काम को देख कर भ्रम होता है कि शायद उनमें सोच सकने की शक्ति है। जिस काम को पहले दर्जनों मुनीम और क्लर्क करते थे उसे यह सहज में कर डालती हैं।

हाल में इङ्गलैण्ड के एक किसान ने अपने आलुओं के खेत को कीड़ा लगने से बचाने के लिए हवाई जहाज़ से दवा की वर्षा कराई थी। इस तरकीब से ४० एकड़ ज़मीन पर पचीस मिनट में दवा छिड़क दी गई। अगर यह काम मनुष्यों से कराया जाता तो छः मनुष्यों को पूरे दो दिन तक परिश्रम करना पड़ता।

शीशी बनाने के कारख़ाने में आजकल एक आदमी इतना माल तैयार कर सकता है, जितना पहले ५४ आदमी कर सकते थे। सिगरेट बनाने की नई मैशीन से एक आदमी सौ व्यक्तियों का काम करने लगा है। दो मनुष्य बिजली के 'मैग्नेट' द्वारा इतना कच्चा लोहा गाड़ी से उतार सकते हैं, जिसके लिए पहले १२८ व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ती थी। बिजली की दूध दुहने की मैशीन से एक व्यक्ति एक साथ छः गायों को दुह सकता है। अमेरिका में एक मज़दूर मैशीनों की सहायता से ३०० एकड़ खेत की रखवाली कर सकता है, जब कि पहले वह केवल १२ एकड़ की रखवाली कर सकता था।

सुधार का मार्ग

पर इस परिस्थिति के सुधार का उपाय क्या यह है कि इन सब मैशीनों का नाश कर दिया जाय? मेरी समझ में वे लोग नासमझ हैं जो ऐसा विचार करते हैं और वैज्ञानिकों तथा आविष्कारकों को कोसते हैं। वैज्ञानिकों का उद्देश्य तो यही है कि जो काम मनुष्यों को गन्दे जान पड़ते हैं तथा जिनमें अतिरिक्त परिश्रम करना पड़ता है वे मैशीनों से कर लिए जायँ। उनका उद्देश्य मनुष्य-जीवन को सुगम तथा सुखप्रद बनाना तथा सब लोगों को अवकाश प्राप्त कराना है। हम उनकी इस योग्यता द्वारा सुख प्राप्त करने के बजाय दुःख उठाते हैं तो यह हमारी मूर्खता है। अगर हम इच्छा करें तो मैशीनों की सहायता से प्रत्येक व्यक्ति के काम करने के समय को घटा सकते हैं और उसे सब प्रकार के सुख के साधन दे सकते हैं।

❀ ❀ ❀

अत्याचार का परिणाम

श्री० जदुनाथ सरकार ने अपने 'मुग़ल साम्राज्य का नाश' नामक ग्रन्थ के पहले भाग में ईरान के बादशाह नादिरशाह की कार्रवाइयों का, जो उसने देहली को विजय करते

के बाद की, वर्णन करते हुए लिखा है कि नादिरशाह के ये कार्य न्याय और अनुकम्पा-रहित विशुद्ध पाशविक बल के निदर्शक थे। इस लेख का सारांश, जो 'मॉडर्न रिव्यू' (जनवरी १९३३) में प्रकाशित हुआ है, नीचे दिया जाता है :—

देहली को फ़तह करने के बाद नादिरशाह ने आक्रमणों के सिलसिले को बराबर जारी रक्खा, जिसके फलस्वरूप पश्चिमी और मध्य एशिया के समस्त देश हिल गए। इनका एक फल यह भी हुआ कि नादिरशाह का बड़ी शीघ्रता से अधःपतन होने लगा। वह एक भीषण अत्याचारी बन गया और निरर्थक रक्तपात तथा निर्दयता में ही प्रसन्नता अनुभव करने लगा। वह प्रायः क्रुद्ध रहता था और इस आवेश में मनमाना अत्याचार करता था। उसका स्वभाव बड़ा शङ्काशील भी हो गया था। उसके हृदय में किसी गम्भीर चिन्ता ने घर कर लिया था और अपनी प्रजा तथा सरदारों पर से उसका विश्वास उठ गया था। इसलिए इनके प्रति भी उसका व्यवहार कठोरतापूर्ण होता था। दाग़िस्तान के आक्रमण (सन् १७४२ से १७४४) में असफल होने के कारण उसकी अजेयता का विश्वास भी नष्ट हो गया। इसके फलस्वरूप उसके साम्राज्य के विभिन्न भागों में बलवे होने लगे और प्रत्येक स्थान में विद्रोहियों ने स्थानीय राजगद्दी के नए-नए दावेदार खड़े करके नादिर के पक्षपाती अधिकारियों को मार डाला।

निरन्तर युद्धों के कारण नादिरशाह का ख़ज़ाना ख़ाली हो गया था, इसलिए धन बटोरने के लिए वह अत्यन्त निर्दयतापूर्ण उपायों से काम लेने लगा। उसके कर वसूल करने वाले कर्मचारियों में से कितने ही बड़ी यन्त्रणाएँ देकर मार डाले गए, क्योंकि वे अधिक रुपया वसूल न कर सके। जिन प्रजाजनों के पास कुछ सम्पत्ति थी, उनको सदा प्राणों का भय बना रहने लगा। स्वयं उसके निजी मन्त्री ने एक स्थान में लिखा है कि "विद्रोहों से उसका क्रोधीपन और भी बढ़ गया था और वह बिलकुल वहशियों की तरह काम करने लगा था।" ज़रा से सन्देह पर लोगों को मार डाला जाता था, अङ्ग-भङ्ग करा दिया जाता था या आँखें निकलवा ली जाती थीं। इस्फ़हान के बाहर मैदान में उसने कितने ही हिन्दुओं, मुसलमानों और आर्मीनियनों को जीता जलवा दिया था। जनवरी सन् १७४७ में जब वह अपनी राजधानी से ख़ुरासान की तरफ़ रवाना हुआ तो जितने प्रदेशों में होकर वह गुज़रा, वहाँ के रईसों और साधारण नागरिकों को मार कर उनके सरों के बुर्ज बना दिए गए। प्रत्येक विद्रोह घोर निर्दयतापूर्वक दबाया जाता था, पर उसी समय किसी अन्य प्रान्त में नवीन विद्रोह उठ खड़ा होता था। जैसा कि एक इतिहासकार ने लिखा है—"नादिरशाह के शासन के अन्तिम वर्षों में उसकी प्रजा को जैसी विपत्तियाँ झेलनी पड़ीं, उनका वर्णन किया जा सकना असम्भव है।"

ईरान की जनता में सबसे अधिक प्रभावशाली क़िज़िलबाश लोग थे। अब नादिरशाह ने उज़बक और अफ़ग़ानी सरदारों की सहायता से, जो इस समय क़िज़िलबाशों के स्थान में बादशाह के प्रियपात्र बने हुए थे, इस जाति के समस्त प्रसिद्ध और प्रभावशाली व्यक्तियों को मारने की मन्त्रणा की। पर इस षड्यन्त्र का रहस्य किसी तरह समय से पहले ही प्रकट हो गया।

क़िज़िलबाश सरदारों ने महल के रक्षकों के अफ़सर तथा मुहम्मदख़ाँ कोचर की अध्यक्षता में तुरन्त इस अभिसन्धि के प्रतिकार की चेष्टा की। उनके क़त्ल के लिए जो दिन नियत किया गया था, उससे पहली रात को उनमें से सत्तर व्यक्तियों का एक दल नादिरशाह के ख़ेमे की तरफ़ रवाना हुआ। पर उस अत्याचारी बादशाह के आतङ्क से ५७ षड्यन्त्रकारियों ने रास्ते में ही हिम्मत हार दी और वे आगे क़दम न रख सके। केवल १३ व्यक्ति नादिर के ख़ेमे में घुसे और उसे क़त्ल कर दिया।

विनोद-वाटिका

मगदूम लाला की तीर्थयात्रा

[मुन्शी कन्हैयालाल, एम० ए०, एल-एल० बी०]

"मगदूम भाई !" गम्भीर भाव से लल्लामल ने कहा—"तुम्हें तीर्थयात्रा करनी चाहिए। कुछ परलोक की भी सुधि है या शराब-कबाब में ही सारी ज़िन्दगी स्वाहा कर डालोगे ?"

"जी तो मेरा भी चाहता है, तीर्थयात्रा करने को, मगर × × ×"—मगदूम लाला ने अपना हुक़्क़ा गुड़गुड़ाते हुए कहा।

"मगर कह कर रुक क्यों गए? कुछ आगे भी कहो।"—लल्लामल ने मगदूम को उकसाते हुए कहा।

"हाँ, यही तो मैं भी सोच रहा हूँ।"—मुँह के धुएँ को आकाश में छितरा कर मगदूम लाला बोले।

"क्या सोच रहे हो ?"

"यही कि मगर के बाद भी कुछ कहना चाहिए।"

लल्लामल हँस पड़े और बोले—कभी काशी गए हो ?

"नहीं।"

"मथुरा ?"

"नहीं।"

"अयोध्या ?"

"ना !"

"गया ?"

"गया तुम जाओ। मुझे क्या किसी का श्राद्ध करना है जो गया जाऊँ ?"—मगदूम लाला ने ज़रा बिगड़ कर कहा।

"अच्छा भई, नाराज़ न हो,"—लल्लामल ने उनके भड़के हुए क्रोध को शान्त करने की इच्छा से पूछा—"अच्छा, कहीं भी गए हो ?"

"हाँ !"—मगदूम लाला ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया और मनोयोगपूर्वक हुक़्क़े पर लम्बे कश लगाने लगे।

"कहाँ गए हो ?"—लल्लामल ने फिर छेड़ा।

"बस, कलकत्ता गया हूँ।"—मगदूम ने फ़ौरन् उत्तर दिया और फिर हुक़्क़ा गुड़गुड़ाने लगे।

"यह तो मैं भी जानता हूँ और देख भी रहा हूँ कि तुम कलकत्ता में मेरी कोठरी के अन्दर बैठे तम्बाकू का श्राद्ध कर रहे हो। भला, और भी कहीं गए हो ?"—लल्लामल ने पूछा।

यद्यपि मगदूम लाला को लल्लामल का यह 'तम्बाकू का श्राद्ध' वाला श्लेष कुछ खटका, परन्तु चूँकि कलकत्ते के विख्यात स्थान फ़ौजदारी बालाख़ाने की तम्बाकू चिलम में भरी गई थी और ख़ूब सुलगी हुई थी, इसलिए मगदूम लाला ने अपनी भड़की हुई क्रोधाग्नि को बलपूर्वक दबा कर कहा—"और कहीं नहीं गया हूँ।"

"कहीं नहीं ?"—लल्लामल ने मानों मगदूम लाला की अवस्था पर तरस खाकर कहा—"और सारी ज़िन्दगी यों ही बिता डाली ? नरक में पड़ोगे लाला !"

तम्बाकू के लोभ में मगदूम लाला ख़ून के घूँट पी रहे थे, अन्यथा इस अपमान का वे अवश्य ही बदला लेते। उन्होंने आँखों को मानों पलकों के कठघरे से बाहर निकाल कर एक बार लल्लामल को देखा और पुनः मनोयोगपूर्वक हुक़्क़े से खींच-खींच कर धूम-राशि उगलने लगे, मानों दिल का ग़ुब्बार निकाल रहे हों।

लल्लामल ताड़ गए कि लाला का अधिकांश जामे के बाहर है—पैमाना भर रहा है, छलकने की देर है।

ख़ैर, इतने में लल्लामल की चरस की चिलम तैयार हो गई। उन्होंने साफ़ी लगा कर दो-तीन कश लगाया और फिर चिलम को मगदूम लाला की ओर

बढ़ा कर बोले—लो लाला, अपना भचभचा छोड़ कर ज़रा शङ्कर की बूटी का तो मज़ा लो।

आख़िर बेचारे मगदूम लाला कहाँ तक बर्दाश्त करते? लल्लामल ने उनके हुक़्क़े को 'भचभचा' कह दिया था, इसलिए लाला ने भी बिगड़ कर कहा—मैं केवल देवी का प्रसाद लेता हूँ और दूसरे नशों पर लानत भेजता हूँ।

"लानत तुम्हारे मुँह पर।"—लल्लामल ने अपनी लाल-लाल आँखें निकाल कर कहा—"शरम तो आती नहीं कि कलकत्ता छोड़ कर कहीं की यात्रा भी नहीं की और भगवान शङ्कर की बूटी पर लानत भेज रहे हो।"

चरस से मगदूम लाला को चाहे जितनी भी घृणा हो, परन्तु भगवान शङ्कर का अपमान करना उन्हें कदापि अभीष्ट न था। उन्होंने शान्त भाव से कहा—तुमसे कहा किसने कि चरस भगवान शङ्कर की बूटी है। हाँ, गाँजा और भाँग अलबत्ता शङ्कर की बूटियाँ हैं। मगर यह कान की खोंट-सी गन्दी चरस × × ×!

"बस, ज़बान सँभालो लाला, नहीं तो बस हाँ! तुम्हें इतना भी नहीं मालूम कि गाँजे के पौधों पर जो गोंद जम जाती है, उसीको चरस कहते हैं?"

"सच?"

"और नहीं क्या?"

लल्लामल को बाज़ार जाना था। इसलिए उन्होंने इस प्रसङ्ग को यहीं समाप्त किया और कपड़े पहन कर बाहर निकल गए।

२

"अरे अई लल्लामल!"—मगदूम लाला ने हाँफते-हाँफते कहा—"सुनते हैं, गङ्गासागर का मेला है?"

"हाँ, है तो!"

"यार, अगर रुपए होते तो मैं भी नहा आता।"—मगदूम लाला ने बड़ी नम्रता से कहा।

"गङ्गासागर नहाने जाओगे?"

"हाँ यार, इच्छा तो हो रही है। मगर × × ×!"

"मगर क्या?"

"कह तो दिया एक बार!"

"क्या कह दिया?"

"यही कि अगर × × ×!"

"हत्तेरे अगर-मगर की! साफ़-साफ़ कुछ क्यों नहीं कहते।"

मगदूम लाला ने ज़रा ज़ोर से कहा—साफ़ और मैला क्या? बात क्या कोई धोती है या लँगोट है कि उसे साबुन से साफ़ करके कहूँ। जिसे अक़्ल होती है, उसके लिए इशारा ही काफ़ी होता है। इसी से तो कहा है—अक़्लमन्दाँ रॉ इशारा काफ़ी अस्त!

"सुनो लाला, अपनी 'काफ़ी' और 'फ़ाफी' को तो अपने पास रहने दो और साफ़ बताओ, क्या गङ्गासागर जाना चाहते हो? रुपए चाहिए?"

"हाँ, चाहिए तो, मगर आएँगे कहाँ से?"

"तुम्हारे पास कितने हैं?"

"कुल तीन!"

"और अगर अपना हुक़्क़ा बेच दो तो?"

"हुक़्क़ा क्यों बेच दूँ?"—लाला ज़रा बिगड़ गए।

"ख़ैर, मेरे पास बन्धक रख दो।"

"लेकिन रहेगा वह मेरे ही क़ब्ज़े में।"

लल्लामल हँस पड़े। ख़ैर, मगदूम लाला का हुक़्क़ा बन्धक रख कर उन्होंने उन्हें सात रुपए दिए। तीन लाला के पास मौजूद थे। गङ्गासागर की तैयारी आरम्भ हो गई। लाला ने हुक़्क़ा, चिलम, ठिकिया, तम्बाकू, शराब की दो ख़ाली बोतलें, बीड़ी-दियासलाई, लोटा और धोती आदि सब सामान ठीक कर लिया।

लल्लामल ने पूछा—ये ख़ाली बोतलें क्यों बाँध रहे हो?

"उधर से गङ्गासागर का जल लेता आऊँगा।"

"क्यों? क्या आकर देवी जी पर चढ़ाओगे?"

"देवी पर जल नहीं चढ़ा करता।"

"तो आख़िर गङ्गासागर का जल होगा क्या?"

मगदूम लाला ने ज़रा सोच कर जवाब दिया—तुम अपने शङ्कर जी पर चढ़ा देना।

यह सुनते ही लल्लामल बिगड़ गए और बोले—शराब की बोतल का जल भगवान शङ्कर पर चढ़ेगा, बेवक़ूफ़ कहीं के। बस, लाओ मेरे सात रुपए। मैं नहीं देता।

"तो रुपए क्या तुमने मुफ़्त में दे दिए हैं?"

"और नहीं, क्या तुमसे क़र्ज़ लिया था।"

"क़र्ज़ लेने की बात कौन कहता है?"

"तो?"

"तुमने मेरा हुक़्क़ा बन्धक में रक्खा है?

"अच्छा, तो हुक़्क़ा ही दे दो !"

"वाह, वह तो मेरे क़ब्ज़े में रहेगा।"

ख़ैर, बड़ी झाँव-झाँव के बाद मगदूम लाला ने अपनी बात वापस ली और मान लिया कि शराब की बोतलों में लाया हुआ जल शङ्कर जी पर नहीं चढ़ सकता। परन्तु साथ ही उन्हाने यह भी लल्लामल को बता दिया कि शराब देवी का प्रसाद है। वह कोई ख़राब वस्तु नहीं है।

३

स्टीम नेवीगेशन कम्पनी का 'करलू' जहाज़ सवेरे सात बजे खुलने वाला था। मगदूम लाला हमेशा आठ बजे सोकर उठा करते थे। इसलिए बेचारे रात भर सोए नहीं और दो बजे रात को ही लल्लामल को जगाया और उन्हें साथ लेकर कलकत्ते के कोयलाघाट पर पहुँचे। लल्लामल ने यात्रा सम्बन्धी ज़रूरी बातें उन्हें पहले से ही बता दी थीं। जैसे समुद्र में चक्कर आवे तो पानी की तरफ़ न देखना, चढ़ने-उतरने के समय जल्दी न करना, खाने-पीने में इहतियात रखना इत्यादि-इत्यादि। परन्तु घाट पर पहुँचते ही लाला जी सारी बातें भूल गए। इसलिए उन्होंने फिर लल्लामल से आवश्यक उपदेश ग्रहण किया और अब की एक काग़ज़ के पुर्ज़े पर पेन्सिल से उन्हें नोट भी कर लिया।

टिकट-घर साढ़े चार बजे ही खुल गया था। लल्लामल के एक साथी ने टिकिट ला दिया। यात्रियों की भीड़ का कहीं ठिकाना न था। लोग एक पर एक ढहे जा रहे थे। जहाज़ पर पहुँचते-पहुँचते लल्लामल और उनके दो साथी, जो मगदूम लाला को जहाज़ पर बैठाने आए थे, भीड़ में इधर-उधर हो गए। बेचारे मगदूम लाला ने उन्हें ढूँढ़ने की चेष्टा की, परन्तु बेफ़ायदा; गला फाड़-फाड़ कर पुकारा, मगर नक़्क़ारख़ाने में तूती की आवाज़ सुनता कौन है? कुछ समझ में न आया कि क्या करें? इतने में ख़याल आया कि भीड़ के समय क्या करना चाहिए, इस सम्बन्ध में पुर्ज़े में कोई उपाय अवश्य होगा। पुर्ज़ा पोटली में बँधा था। इसलिए पोटली खोल कर उसे निकाल कर एक बार पढ़ लेने की इच्छा से लाला वहीं बैठ गए और यात्रियों की भीड़ उनके ऊपर से चलने लगी। बेचारे बेहोश हो गए!

होश आने पर उन्होंने देखा कि एक साफ़-सुथरे कमरे में गद्देदार पलङ्ग पर पड़े हैं। सिरहाने की ओर एक छोटे से टेबिल पर दो शीशियाँ, एक काँच का गिलास और एक सुराही रक्खी है। थोड़ी देर के बाद ही उन्हें याद आ गया कि जहाज़ पर चढ़ कर गङ्गासागर जा रहे हैं। लल्लामल की ज़बानी उन्होंने सुन रक्खा था कि जहाज़ में बड़े आदमियों के लिए 'केबिन' हुआ करते हैं। उन्होंने सोचा, शायद लल्लामल ने उनके लिए भी केबिन ही 'रिज़र्व' करा दिया होगा। बेचारे ख़ूब ख़ुश हुए और सोचने लगे कि लल्लामल के लिए गङ्गासागर से कोई अच्छी चीज़ लावेंगे। इतने में कुछ भूख सी मालूम हुई। पोटली में चबेना, मठरी और दालमोट रक्खा था। हुक़्क़ा-चिलम भी उसी में था। लाला उठ बैठे। मगर न मालूम क्यों दिमाग़ में एक चक्कर सा आ गया और फिर लेट गए। थोड़ी देर बाद तबीयत सँभली तो फिर उठे और कमरे का दरवाज़ा खोल कर बरामदे में आए। सड़क पर नज़र पड़ी। गाड़ी, मोटर, ट्राम और इधर से उधर जाते-आते आदमियों की भीड़। कुछ बङ्गाली एक मुर्दे को लिए चिल्लाते जा रहे थे—"बोलो हरी! हरी बोल!" लाला सोचने लगे, यह तो अजीब जहाज़ है। उन्होंने इधर-उधर नज़र दौड़ाया। कम्बख़्त समुद्र किधर गया! पानी तो कहीं दिखाई ही नहीं देता। तो आख़िर यह जहाज़ चलता कैसे है? शायद अगले स्टेशन पर ठहर गया है।

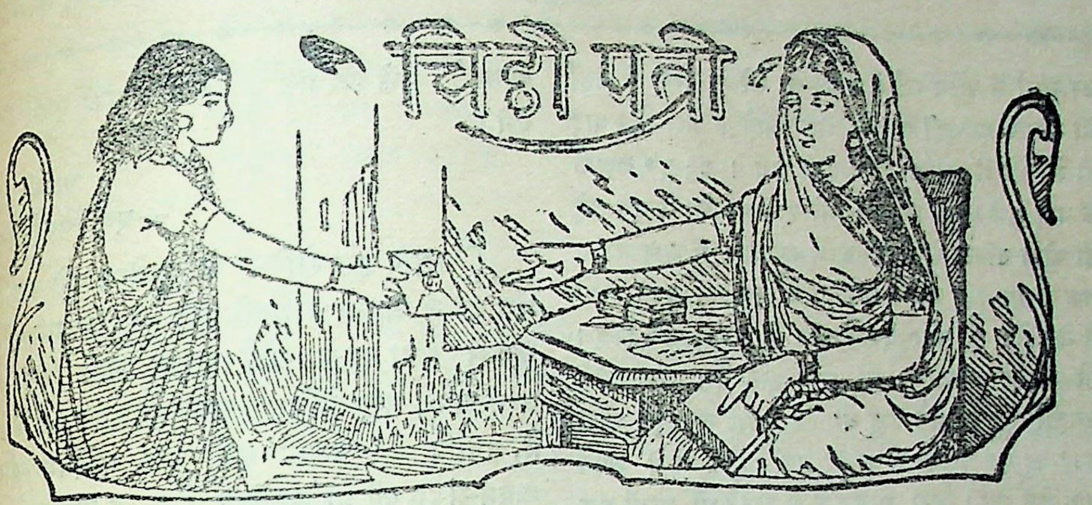
इतने में एक सुफ़ेद कपड़े वाली गोरी स्त्री ने लाला के पास आकर कहा—वेल, टुम उठा काहे को?

लाला ने उसे आपाद-मस्तक देख कर पूछा—यह कौन स्टेशन है? क्या गङ्गासागर का स्टेशन यही है?

नर्स ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया—नो माई ब्वाय, यह गङ्गासागर का स्टेशन नहीं, हॉसपिटल है!

"क्या कहा, अस्पताल है?"

"हाँ, यह अस्पटाल है। टुम अबी उठो नहीं, टुमारा सरीर बहुट कमजोर है। जहाज में टुमको बहुट चोट लगा है। अबी उठने से टुम जलडी नहीं अच्छा होगा।"



महिला-कवि-सम्मेलन

महिला-कवि-सम्मेलन की स्वागताध्यक्षा श्रीमती महादेवी वर्मा ने निम्नलिखित सूचना हमारे पास प्रकाशनार्थ भेजी है :—

प्रयाग-महिला-विद्यापीठ की महिला-साहित्य-सभा के निश्चय के अनुसार भारतवर्ष की समस्त हिन्दी-कवियों का वृहद् महिला-कवि-सम्मेलन १५ अप्रैल, १९३३ को प्रयाग में महिला-विद्यापीठ-हाल में होना निश्चय हुआ है। सम्मेलन की सभानेत्री का आसन हिन्दी की सुप्रसिद्ध क व श्रीमती सुभद्राकुमारी जी चौहान ग्रहण करेंगी।

१—विषय

१—रजनी, २—विश्ववैचित्र्य, ३—झाँसी की रानी, ४—अछूत, ५—आँसू।

२—समस्या-पूर्ति

१—अबला न जानो हमें हम सबलाएँ हैं। २—करती रहैं। ३—कहावेंगी। ४—मोतियों का मेरा वह हार। ५—इस ओर।

३—स्वतन्त्र रचनाएं

स्वागतकारिणी समिति ने यह निश्चय किया है कि जो कविताएँ सम्मेलन में पढ़ी जावेंगी या पढ़ने के लिए प्राप्त होंगी, उन कविताओं का एक संग्रह प्रकाशित किया जायगा, जिसमें प्रत्येक कवि का परिचय दिया जायगा, और यथासम्भव उनका चित्र भी देने का प्रयत्न किया जायगा। कवियों (स्त्री) को चाहिए कि यथासम्भव शीघ्र अपनी जीवनी, फ़ोटो, समस्या-पूर्ति, निश्चित विषयों पर कविता और अपनी किन्हीं पाँच अन्य कविताओं को, जिनको वे अपनी सबसे उत्तम रचना समझती हों, भेज दें। यदि वे किसी कारण-वश न आ सकें तो भी इनको भेज दें।

स्वागत-समिति ने बाहर से आने वाली स्त्रियों के ठहरने का प्रबन्ध किया है, किन्तु आने के ३ दिन पहिले सूचना दे दीजिएगा।

महिला-कवि-सम्मेलन, प्रयाग-महिला-विद्यापीठ प्रयाग।	विनीत महादेवी वर्मा स्वागताध्यक्षा रामेश्वरी देवी गोयल मन्त्राणी

[वास्तव में प्रयाग-महिला-विद्यापीठ के सञ्चालकों ने एक अभिनव आयोजन किया है। हमें आशा है कि उनका यह आयोजन अवश्य ही सफल होगा और कवि तथा अन्य साहित्यानुरागिनी बहिनें स्वयं पधार कर तथा अपनी रचनाएँ भेज कर इस सम्मेलन को सफल बनाने की चेष्टा करेंगी।

—सम्पादक 'चाँद']

❀ ❀ ❀

एक पतिव्रता की आकांक्षा

एक देवी ने लिखा है :—

माननीय सम्पादक जी,

सादर प्रणाम। विवाह के बाद विमाता के अकथ अत्याचारों से छुटकारा पाकर जब मैं अपनी ससुराल में आई, तो मुझे मालूम हुआ कि मैं नरक से निकल

कर स्वर्ग में पहुँच गई हूँ। परन्तु मेरे दुर्भाग्य ने यहाँ भी मेरा पीछा नहीं छोड़ा। यहाँ आने के बीस दिन बाद ही मेरे पेट में असह्य पीड़ा होने लगी। ३६-३७ लङ्घनों के बाद मुझे पथ्य मिला। मेरे पूज्य पतिदेव ने एक बड़े ही योग्य डॉक्टर से मेरा इलाज कराया। मैं आठ महीने तक बीमार पड़ी रही। पतिदेव ने दिन-रात अपने हाथों से मेरी सेवा की और दवा-इलाज में ५००) ख़र्च किए। मेरे पतिदेव अध्यापक का कार्य करते हैं। अभी मेरी कमज़ोरी दूर न होने पाई थी कि उनका तबादला कोटा राज्य की एक पाठशाला पर हो गया। मुझे भी वे अपने साथ लेते गए। जिस मकान में मैं रहती थी, उसमें एक दिन अचानक प्रेत-दर्शन हुआ। पतिदेव पाठशाला गए हुए थे और मैं ऊपर अटारी में रोटी पका रही थी। प्रेतात्मा को देख कर मैं डर से सीढ़ियों की ओर दौड़ी और पैर फिसल जाने के कारण नीचे गिर कर बेहोश हो गई। मकान में कोई दूसरा आदमी न था। सात घण्टे बाद जब मुझे होश हुआ तो देखा कि पतिदेव आँखों में आँसू भरे घावों पर दवा लगा रहे हैं।

६ महीने तक दवा-इलाज होता रहा, परन्तु कोई फल नहीं हुआ। बल्कि जहाँ-जहाँ चोट लगी थी, वहाँ फोड़े हो गए। पतिदेव ने कई जगह इलाज कराया। अन्त में पैरों में ग्यारह नासूर हो गए। बरसों तक दवा-इलाज हुआ। पतिदेव के १,२००) ख़र्च हो गए, पर फल कुछ नहीं हुआ।

इस तरह आज पाँच वर्षों से मैं खाट पर पड़ी हूँ। मेरे अद्भुत आत्म-संयमी पति उसी तत्परता से मेरी सेवा और दवा-इलाज करते जाते हैं। उनकी हालत देख कर मेरा कलेजा फटा जाता है। मैं ऐसी अभागिनी हूँ कि एक दिन भी उनकी सेवा नहीं कर सकी और उलटे वही मेरी सेवा कर रहे हैं। पतिदेव के हितैषी और कुटुम्बी उन्हें दूसरा ब्याह कर लेने को कहते हैं। मेरी भी यही इच्छा है कि वे पुनर्विवाह करके सुखी होवें, परन्तु किसी तरह राज़ी नहीं होते। मेरा मरना अनिवार्य है। अतः मैं यही चाहती हूँ कि वे दूसरी शादी करके मुझे अनुगृहीत करें। मुझे दुःख है कि उनकी सेवाओं से उऋण न हो सकी। मैं चाहती हूँ कि आप 'चाँद' द्वारा मेरे पतिदेव को इस सम्बन्ध में उचित सम्मति दें। 'चाँद' उनकी पाठशाला के पुस्तकालय में आता है। मुझे विश्वास है कि वे आपकी सलाह मान लेंगे।

आपकी,
—एक चिररोगिनी

[यद्यपि इस रोगिनी के सुयोग्य पति अध्यापक जी ने अपनी रोगिनी पत्नी की तन-मन और धन से सेवा करके कोई कमाल नहीं किया है, वरन् अपने मनुष्योचित कर्त्तव्य का ही पालन किया है, तथापि हम उनकी सहिष्णुता, पत्निप्रेम और आत्म-संयम की प्रशंसा किए बिना रह नहीं सकते। क्योंकि दुर्भाग्यवश हिन्दू-समाज में ऐसे कर्तव्यशील पतियों का नितान्त अभाव है। यहाँ तो स्त्रियाँ पैर की जूतियाँ समझी जाती हैं। अब रह गया, अध्यापक जी के पुनर्विवाह का प्रश्न। हमारी समझ में इसके लिए उन पर किसी प्रकार का दबाव नहीं डालना चाहिए और इस सम्बन्ध में अपना कर्तव्य निर्धारित करने के लिए उन्हें सम्पूर्ण स्वतन्त्र छोड़ देना चाहिए। रोगिनी बहिन को भी हमारी सलाह है कि वह इसके लिए अपने पतिदेव से अनुरोध न करें। वे स्वयं विवेचना करके जैसा उचित समझेंगे करेंगे।

—स० 'चाँद']

❀ ❀ ❀

एक विवाहाकांक्षी युवक

प्रिय सम्पादक जी,

मैं अमृतसर (पञ्जाब) का रहने वाला खत्री-राजपूत हूँ। मेरी उम्र ३१ साल की है। मैंने इङ्गलैण्ड में इञ्जिनियरी की शिक्षा प्राप्त की है और भारत के एक विख्यात 'पेपर-मिल' में ७००) मासिक वेतन पर नौकर हूँ।

आज से दस वर्ष पूर्व मेरी शादी हुई थी और चार बच्चे भी हुए। परन्तु पारस्परिक मतभेद के कारण स्त्री अब अलग रहती है और भरण-पोषण के लिए नियमित ख़र्च पाती है।

अब मैं किसी ऐसी सुन्दरी विधवा से पुनर्विवाह करना चाहता हूँ, जोकि पढ़ी-लिखी, गृह-कार्य में चतुर

और पवित्र आचरण वाली हो। जाति-पाँति के बन्धनों पर मेरा विश्वास नहीं है। क्या मैं आशा करूँ कि 'चाँद' के कोई समाज-सुधारक पाठक इस सम्बन्ध में मेरी सहायता करेंगे।

आपका,

× × ×

[उपर्युक्त सज्जन के सम्बन्ध में अगर कोई सज्जन कुछ जानना चाहें या उनकी इस सम्बन्ध में कोई सहायता करना चाहें, तो हमें लिख सकते हैं।

—सम्पादक 'चाँद']

❀ ❀ ❀

अनमेल विवाह का दुष्परिणाम

गोरखपुर ज़िले से एक बालिका ने लिखा है :—

मान्यवर सम्पादक जी,

एक भाई ने मुझे बताया है कि आप अपने 'चाँद' पत्र द्वारा दुःखिनी बहिनों को उनके दुःखों से बचने का उपाय बताया करते हैं। मैं भी इसी आशा से यह पत्र आपकी सेवा में भेजवा रही हूँ। मैं एक अहीर-कुल की लड़की हूँ। पढ़ना-लिखना नहीं जानती। उसी भाई से यह पत्र लिखवा रही हूँ। मेरी उम्र १६ साल की है। मैं जब आठ वर्ष की थी तभी मेरी शादी एक पाँच वर्ष के बालक के साथ कर दी गई थी। परन्तु उसके बाद से मुझे ससुराल जाने का सौभाग्य नहीं हुआ। मेरे पतिदेव या मेरी ससुराल वाले भी मुझे नहीं बुलाते हैं। घरवाले भी इसकी कोई चरचा नहीं करते। मैं स्वयं लाज के मारे किसी से कुछ नहीं कह सकती। परन्तु मेरी समझ में नहीं आता कि मेरी ज़िन्दगी कैसे व्यतीत होगी। बड़ी कृपा हो, यदि मुझे आप कोई उपाय बतावें।

आपकी

× × ×

[इस तरह के बेजोड़ सम्बन्धों की हमारे देश में कोई कमी नहीं है। अभागा हिन्दू-समाज तो किसी प्रकार कन्याओं को विवाहिता कर देना भर जानता है। उसे इस बात की कोई चिन्ता नहीं कि जिसे वह कन्या सौंपता है, वह योग्य है या अयोग्य, लड़का है या बूढ़ा, रोगी है या कोढ़ी। फलतः ऐसे बेजोड़ सम्बन्धों का जो घृणित परिणाम होता है, वह भी किसी से छिपा नहीं है। ऐसे बेजोड़ विवाहों के फल-स्वरूप कितनी ही लड़कियाँ अपनी कुल-मर्यादा को तिलाञ्जलि देकर विपथगामिनी हो जाती हैं अथवा गुण्डे-बदमाशों के चङ्गुल में फँस कर अपना लोक और परलोक बिगाड़ बैठती हैं। परन्तु इतने पर भी अभागे हिन्दू-समाज की आँखें नहीं खुलतीं। अस्तु, जिस भाई ने इस बालिका की मनोऽव्यथा को हमारे पास तक पहुँचाया है, उन्हें चाहिए कि बालिका के अभिभावकों को समझा-बुझा कर किसी सुपात्र के साथ उसका पुनर्विवाह करा दें।

—स० 'चाँद']

❀ ❀ ❀

एक सराहनीय उद्योग

एक उदार-हृदय सज्जन लिखते हैं :—

सम्पादक जी,

सादर नमस्ते! कान्यकुब्ज ब्राह्मण-समाज में, दहेज़-प्रथा के कारण धनहीन भाइयों को अपनी कन्याओं का विवाह करने में बहुत कष्ट होता है। बल्कि बहुत सी कन्याएँ तो अपने अभिभावकों की धनहीनता के कारण आजन्म अविवाहिता ही रह जाती हैं। इस गन्दी प्रथा को समूल नष्ट कर डालने की इच्छा से कान्यकुब्ज ब्राह्मण जाति के कुछ उत्साही नवयुवकों ने प्रतिज्ञा की है कि वे अपना विवाह किसी धनहीन की कन्या से बिना तिलक-दहेज़ लिए ही करेंगे! और अन्य युवकों को भी इसके लिए उत्साहित करेंगे। अतः जो कान्यकुब्ज ब्राह्मण भाई धनहीनता के कारण अपनी कन्याओं का विवाह न कर सकते हों, वे पत्र द्वारा मुझे सूचना देवें। मैं यथासाध्य उनकी सहायता करूँगा।

आपका,

छेदालाल शुक्ल,

C/o दी एडवर्ड मिल्स कम्पनी लि०

ब्यावर (राजपूताना)

[हम श्री० छेदालाल जी शुक्ल और उनके साथी कान्यकुब्ज ब्राह्मण युवकों को अन्तःकरण से धन्यवाद प्रदान करते हैं। वास्तव में उनका

प्रयत्न सराहनीय है। साथ ही समस्त कान्यकुब्ज ब्राह्मण युवकों से हमारा निवेदन है कि वे अपने उपर्युक्त सजातीय युवकों का अनुकरण करें और उन्हीं की तरह प्रतिज्ञा कर लें कि अपने विवाह में तिलक-दहेज़ के नाम पर एक पैसा भी न लेंगे और जैसा कि कुछ बिहारी नवयुवकों ने किया है, प्रतिज्ञा कर लें कि किसी ऐसे विवाह में सम्मिलित न होंगे, जहाँ लेन-देन होगा। हमें यह कहने में ज़रा भी सङ्कोच नहीं होता कि इन पुरानी रूढ़ियों के पोषक हमारे कमज़ोर दिल वाले नवयुवक ही हैं। वे यदि मनुष्योचित सत्साहस से काम लें तो ऐसे दक़ियानूसी रिवाजों को एक ही दिन में दूर कर सकते हैं। अगर श्री० छेदालाल जी शुक्ल की नवयुवक मण्डली अपने समाज के कम से कम एक सौ नवयुवकों को भी अपने मत का अनुगामी बना सके, तो हमारा विश्वास है कि कान्यकुब्ज ब्राह्मण-समाज से यह प्रथा सदा के लिए दूर हो जाएगी।

—स० 'चाँद']

❀ ❀ ❀

रईस के लाड़ले

एक बिहारी बहिन ने लिखा है :—

श्रीमान सम्पादक जी,

मैं विवाहिता हूँ। मेरी उम्र १५-१६ साल की और मेरे पतिदेव की २०-२१ साल की है। मैं अपर प्राइमरी पास हूँ और वे मिडिल पास हैं। ईश्वर की कृपा से खाने-पहनने की कोई कमी नहीं है। परन्तु इतने पर भी मैं दुःखिनी हूँ। क्योंकि पतिदेव कोई काम-धन्धा नहीं देखते। बस, दो-चार लड़कों को लेकर दिन-रात खेल-तमाशा और थियेटर-सिनेमा देखा करते हैं। लौंडे के नाच के तो इतने प्रेमी हैं कि रात-रात भर बैठे यह नाच देखा करते हैं। इनकी एक साइकिल की दूकान है। उसके मैनेजर को धमका कर उससे दस-बीस रुपए ले लेते हैं और खेल-तमाशे में ख़र्च कर देते हैं। इनके माता-पिता यह हाल देखते हैं, पर बोलते नहीं, कि कहीं रूठ कर चले न जाएँ। मेरी ओर तो फूटी आँख भी नहीं देखते। अगर कभी मेरे कमरे में आ जाते हैं और मैं कुछ कहना चाहती हूँ, तो झट बाहर निकल जाते हैं। शराब और मांस तो नहीं व्यवहार करते, परन्तु बीड़ी दो-चार बण्डल रोज़ फूँक देते हैं। मेरे बहुत ख़ुशामद करने पर तो 'चाँद' के ग्राहक बने, पर जब साल पूरा हुआ और वी० पी० आई तो उसे लौटाने लगे। अन्त में मैंने सास जी से रुपए लेकर वी० पी० छुड़वाई। पढ़ने-लिखने से तो ये कोसों दूर रहते हैं। इनकी यह आवारगी देख कर मैं मन ही मन कुढ़ा करती हूँ। कुछ समझ में नहीं आता कि इनके साथ ज़िन्दगी कैसे कटेगी। अभी तो सास-ससुर हैं। परन्तु जब ये न रहेंगे तब क्या होगा। आप मेरे पिता-तुल्य हैं। कृपा करके कोई उपाय बताइए कि इनका सुधार हो। आप मुझे ज़रूर कोई अच्छी सलाह दीजिए।

आपकी,

—एक दुखिनी बालिका

[इसमें लड़के का उतना दोष नहीं, जितना कि उसके अपरिणामदर्शी अभिभावकों का है। क्योंकि ये लोग थोथे वात्सल्य और लाड़-प्यार के फेर में पड़ कर स्वयं ही अपने बच्चों का अनिष्ट कर डालते हैं। हमारी राय है कि यह बालिका अपने सास-ससुर का ध्यान इधर आकर्षित करे और वे लोग अपने नालायक़ लड़के के हाथ में रुपया-पैसा न पड़ने दें। साथ ही उसके साथ किसी ऐसे नवयुवक को लगा दें, जो धीरे-धीरे उसकी रुचि को बदलने की चेष्टा करे। बालिका को भी चाहिए कि अपने अटूट प्रेम द्वारा अपने पति को वश में करने की चेष्टा करे। गत मार्च के 'चाँद' में 'हठीली दुलहिन' नाम की एक कहानी छपी है। यह बालिका उसे पढ़ कर उससे शिक्षा ग्रहण कर सकती है।

—स० 'चाँद']

❀ ❀ ❀

मुँहासे की दवा

'चाँद' के गताङ्क में श्री० कृष्णादेवी नाम की एक बहिन ने मुँहासे की आज़मूदा दवा पूछी है। इस सम्बन्ध में उपर्युक्त श्री० बी० एल० काश्यप तथा अन्यान्य कई सज्जनों और देवियों ने कई नुसख़े हमारे पास लिख भेजे हैं, जिनमें से कुछ नीचे दिए जाते हैं—

१—रोज़ाना सवेरे उठ कर सबसे पहले किसी भी तरकीब से २-३ छींकें ले लिया करें, जिससे नाक से कुछ मवाद रोज़ाना निकल जाया करे, इस तरह १५-२० दिन के बाद आगे को मुँहासे निकलना बन्द हो जायँगे। अगर किसी तरह छींकें न आवें, तो काग़ज़ की बत्ती बना कर ही काम निकाल लें। अब रहा उन मुँहासों का इलाज, जोकि निकल रहे हैं या अधनिकले हैं। उन पर रात को सोते समय सीसा धातु को किसी पत्थर पर घिस कर गाढ़ा-गाढ़ा लगा दें। सवेरे धोकर तथा तौलिया से अच्छी तरह पोंछ कर चमेली का तैल ४-६ बूँद मल दें। अगर सवेरे सादा पानी के बदले किसी अच्छे साबुन से मुँह धोकर कड़ी तौलिया से अच्छी तरह सख़्ती से पोंछ कर तेल लगा दें तो और भी अच्छा।

—डॉक्टर बी० एल० काश्यप

२—मसूर की दाल गाय के दूध में पीस कर उबटन की तरह प्रतिदिन दो-तीन बार लगाने से मुँहासे दूर हो जाते हैं और चेहरे का लावण्य बढ़ता है।

३—चकोतरा नींबू का रस १ छटाँक एक प्याली में रख कर उसमें एक आने भर भुने हुए सुहागे का चूर्ण और थोड़ी सी दानेदार चीनी मिला कर एक शीशी में तीन-चार दिन रख दें। फिर उसे दिन में ३-४ बार लगावें।

—भैरवनाथ अग्रवाल 'आनन्द'

४—लौंग ८ अदद, इन्द्रजौ ६ माशे और आमा-हल्दी १ तोला। तीनों चीज़ों को आक (मदार) के दूध में पीस कर एक बड़ी गोली बना कर रख दें और रात को पानी में घिस कर मुँहासों पर लगा दें। फिर सवेरे ठण्डे पानी से मुँह धोकर साबुन से धो डालें।

—श्रीधर दर

(५) जवासे की पत्तियों को लोहे के खरल में कूट-कर कपड़-छान कर लेना चाहिए। इस सफ़ूफ़ में थोड़ा-थोड़ा ग्लेसरीन (Glycerine) मिला कर खरल में ख़ूब घोंट कर मरहम की शकल का बना लेना चाहिए और एक साथ डिब्बी में रख लेना चाहिए। रात को सोते वक़्त मुहासों पर ख़ूब रगड़ देना चाहिए। सुबह को गरम पानी, बेसन या आँवलों से मुँह धोना चाहिए। किसी क़िस्म के भी साबुन से मुँह धोना मुहासों को और निकालता है और सख़्त मुज़िर है।

(६) दिन में लगाने के लिए धुली हुई तिल्ली के तेल में इन पत्तियों को ख़ूब उबाल कर और छान कर रख लेना चाहिए। सुबह को मुँह धोने और दोपहर को स्नान के बाद इसे लगाते रहना चाहिए।

(७) पाव भर जवासा की पत्ती और ढाई बोतल पानी, एक एलूमीनियम की पतीली में धीरे-धीरे आग पर ख़ूब उबाला जाय, पानी जब आधे बोतल के क़रीब जल जाय तो उतार कर ठण्डा करके बोतलों में भर लिया जाय। इस पानी से दिन-रात में कई मरतबा मुँह धोया जाय।

—डॉक्टर जैजैराम गुप्ता

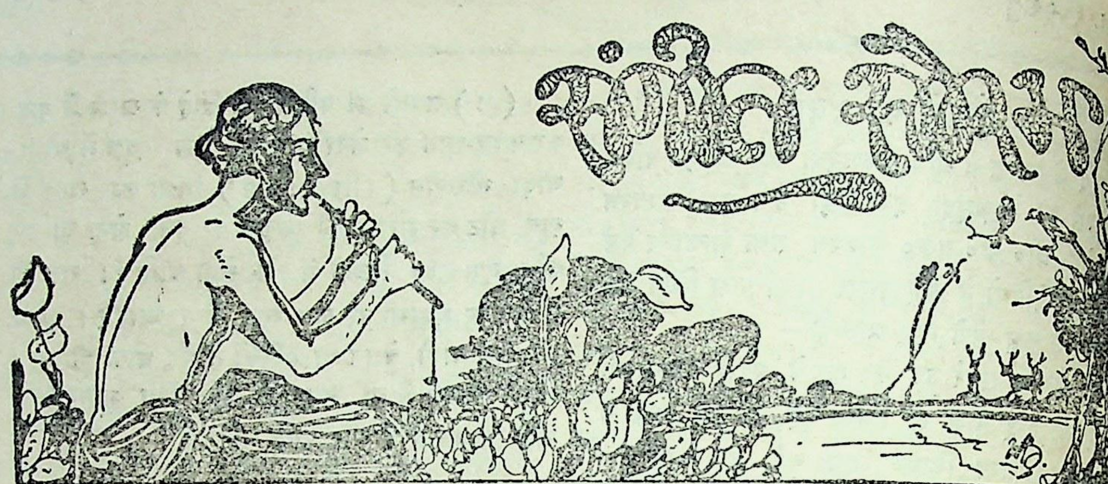
❀ ❀ ❀

औरत के चेहरे पर बाल

महाशय जी, नमस्ते!

आपके 'चाँद' में अक्सर अच्छे-अच्छे हकीमों और लायक़ भाई-बहिनों के नुसख़े वग़ैरा निकलते हैं। क्या कोई कृपालु भाई-बहिन ऐसा कोई इलाज बता सकते हैं कि यदि किसी औरत के चेहरे या ठोढ़ी पर बाल हो गए हों तो उनको हमेशा के वास्ते हटाने का क्या इलाज है। वह बाल हट जावे और फिर न आवे। जिस भाई-बहिन को बताना हो, 'चाँद' में ही दे देवें, इससे और भी लोगों का भला होगा।

—लीलावती



[स्वरकार—प्रोफ़ेसर नीलू बाबू]

खम्माच—तीन ताल

[शब्दकार—प्रोफ़ेसर नीलू बाबू]

स्थायी—हरी बिना और न पीर हरैया ।
पीर हरैया, धीर धरैया ॥

अन्तरा—जो करमन लिख दीन्ह विधाता,
ताहु सों एक तिल घटे न बढ़ैया ।

स्थायी

०				१				×				३			
								°		क					
स	स	ग	ग	म	—	प	ध	सं	—	नि	ध	प	म	ग	—
ह	री	बि	ना	औ	—	र	न	पी	—	र	ह	र	ऐ	या	—
				°				°		क					
नि	—	नि	नि	सं	—	प	ध	सं	—	नि	ध	प	म	ग	—
पी	—	र	ह	रै	—	या	आ	धो	—	र	ध	र	ऐ	या	—

अन्तरा

				क											
म	—	ध	ध	नि	ध	प	ध	नि	—	नि	सं	ध	नि	सं	—
जो	—	क	र	म	न	लि	ख	दी	—	न	वि	धा	आ	ता	—
				°	°			°	°	क					
नि	—	नि	नि	सं	सं	प	ध	सं	सं	नि	ध	प	म	ग	—
ता	—	हु	सों	ए	क	ति	ल	घ	टे	न	ब	ढ़	ऐ	या	—



विजय-विकास अर्थात् श्रीमद्भगवद्गीता भाष्य—लेखक, शरणभिक्षु ओङ्कारसिंह, बी० ए०, और आपने ही इसे ओङ्कार उपासना प्रचार कार्यालय, सुजानपुर, पो० राया, जिला मथुरा से प्रकाशित भी किया है। आकार डिमाई आठ पेजी, सजिल्द, दाम ३)

इसमें भूमिका है, निवेदन है, समर्पण है और श्रीमद्भगवद्गीता की महिमा और उसके प्रत्येक अध्याय की विस्तृत आलोचना है। इसके सिवा इसमें भाष्यकार बी० ए० महोदय की स्वरचित हिन्दी कविता भी प्रत्येक अध्याय के अन्त में है। हमारी समझ में यह परिश्रम आपने पाठकों को गीता का ज्ञान जल्दी से जल्दी करा देने के लिए ही किया है और इससे पुस्तक की कलेवर-वृद्धि में भी ख़ासी मदद मिली है। परन्तु कविता और पिङ्गल आदि को तो आपने उलटे छुरे से मूड़ डाला है।

सरस साहित्य— संग्रहकर्ता, श्री० गुरांदित्ता खन्ना; प्रकाशक, साहित्य-भवन, घण्टाघर, अमृतसर, पृष्ठ-संख्या २८६, मूल्य १)

यह सूर, तुलसी, कबीर, मीरा, गुरु नानक और गुरु गोविन्द आदि भक्त कवियों के चुने हुए भजनों का संग्रह है। भक्त-जनों के बड़े काम की चीज़ है।

स्वास्थ्य और रोग—लेखक, श्री० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी० एस-सी०, एम० बी० बी० एस०, डी० टी० एम०; सिविल सर्जन इत्यादि-इत्यादि! आपने ही इसे प्रकाशित भी किया है! पृष्ठ-संख्या प्रायः ९००, चित्र-संख्या ४०७, छपाई काग़ज़ और जिल्द उच्च कोटि की। मिलने का पता—इलाहाबाद लॉ-जर्नल प्रेस, प्रयाग। मूल्य ७)

इधर हिन्दी में स्वास्थ्य-विषयक बहुत सी छोटी-बड़ी पुस्तकें निकली हैं और उनमें कई अधिकारियों द्वारा लिखी गई हैं; विद्वानों ने उनकी तारीफ़ें भी की हैं। परन्तु प्रस्तुत पुस्तक अपने ढङ्ग की निराली है। इसके विद्वान लेखक ने बड़ी खोज और बड़े परिश्रम से यह पुस्तक तैयार की है। इसमें निहायत सीधी-सादी भाषा में, उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त करने की विधियाँ और नाना प्रकार के भीषण रोगों से बचने के सरल उपाय बताए गए हैं। विषय को सुगमतापूर्वक समझने के लिए स्थान-स्थान पर चित्र भी दिए गए हैं। समस्त पुस्तक २८ बड़े अध्यायों में विभक्त है और प्रत्येक अध्याय में शरीर, जीवन, स्वास्थ्य, रोग और आरोग्यता सम्बन्धी अगणित विषयों पर विशद प्रकाश डाला गया है। इस पुस्तक के पढ़ने से केवल स्वास्थ्य और रोग सम्बन्धी ज्ञान ही नहीं, वरन् शरीरतत्त्व सम्बन्धी ज्ञान की भी प्राप्ति हो सकती है। भाषा इतनी सरल है कि हिन्दी का साधारण ज्ञान रखने वाला पाठक भी इस पुस्तक से लाभ उठा सकता है। लेखक महोदय का परिश्रम, सुन्दर और मज़बूत जिल्द तथा चित्रों के बाहुल्य को देखते हुए ७) दाम भी अधिक नहीं हैं। ऐसी सुन्दर पुस्तक को समालोचनार्थ भेजने के लिए हम इलाहाबाद लॉ-जर्नल प्रेस के अधिकारियों के कृतज्ञ हैं।

'विशाल भारत' (कहानी-अङ्क)—सम्पादक श्री० बनारसीदास जी चतुर्वेदी, वार्षिक मूल्य ६), इस अङ्क का मूल्य १।) पता—विशाल भारत कार्यालय, १२०।२, अपर सरकूलर रोड, कलकत्ता।

'विशाल भारत' हिन्दी का एक उच्च कोटि का मासिक पत्र है। यह अपने ऊँचे पैमाने और गम्भीर

लेखों के लिए काफ़ी सुख्याति प्राप्त कर चुका है। इसमें उच्चकोटि के देशी तथा विदेशी लेखकों के लेख छपा करते हैं। 'विशाल भारत' का यह कहानी-अङ्क भी उसके उपयुक्त ही हुआ है। इसमें हिन्दी के प्रायः सभी विख्यात कहानी-लेखकों की कहानियों के अलावा अङ्गरेज़ी, फ्रेञ्च, बँगला, मराठी और उर्दू आदि कई भाषाओं के अच्छे कहानी लेखकों की भी चुनी हुई कहानियाँ संग्रहीत हैं। इस दृष्टि में 'विशाल भारत' का यह अङ्क अच्छी कहानियों का एक सुन्दर संग्रह है। अच्छा होता, अगर इस अङ्क में 'कहानी-कला', कहानी कैसे लिखी जाए, कहानियों का इतिहास और हिन्दी कहानियों के सम्बन्ध में एक आलोचनात्मक लेख भी होता। जो हो, प्रस्तुत अङ्क सुन्दर और संग्रह करने योग्य है। इस अङ्क में कई तिरङ्गे और एकरङ्गे चित्र भी हैं।

'जागरण' (होलिकाङ्क)—सम्पादक श्री० प्रेमचन्द जी, वार्षिक मूल्य ३॥) पता, जागरण कार्यालय, सरस्वती प्रेस, काशी।

'जागरण' का होलिकाङ्क देख कर हमें अतीव प्रसन्नता हुई। सचमुच बड़ा ही सुन्दर निकला है। कई लेख विशुद्ध हास्यरस-पूर्ण और सुन्दर हुए हैं। व्यंग्य चित्र भी अच्छे रहे।

'आर्यमित्र' (होलिकाङ्क)—सम्पादक पं० हरिशङ्कर जी शर्मा, वार्षिक मूल्य ३॥) पता—आर्यमित्र कार्यालय, आगरा।

प्रति वर्ष की तरह 'आर्यमित्र' का इस वर्ष का होलिकाङ्क भी अच्छा निकला है। बल्कि रङ्ग-रूप, आकार-प्रकार आदि में विशेष और समयोपयोगी परिवर्तन हो जाने के कारण इस साल के 'आर्यमित्र' के होलिकाङ्क में कुछ निराला ही मज़ा रहा। हमें अपने सहयोगी का नवीन रूप देख कर बड़ी प्रसन्नता हुई।

माधुरी—सम्पादक, श्री० मातादीन शुक्ल, वार्षिक मू० ६॥) एक प्रति का मू० ॥=) पता—नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ।

फाल्गुन, तुलसी सम्वत् ३०९ की 'माधुरी' हमारे पास 'सम्मति के लिए' आई है। इसमें 'चाँद' के आकार के २७२ पृष्ठ हैं। काग़ज़ और छपाई साफ़ है। आवरण-पृष्ठ पर 'माधुरी' के नाम के उपयुक्त हकीम जी का एक सुन्दर बहुरङ्गा चित्र है। अन्दर भी कई रङ्गीन और एकरङ्गे चित्र हैं। लेखों और कविताओं का चुनाव बहुत ही सुन्दर हुआ है। हिन्दी के कई विख्यात लेखकों के लेख हैं। सम्पादकीय टिप्पणियाँ भी यथेष्ट और सामयिक विषयों पर लिखी गई हैं। हास्य के नाम पर जो कई पन्ने व्यर्थ काले कर दिए गए हैं, वे अगर निकाल दिए जाएँ तो 'माधुरी' का यह अङ्क निःसङ्कोच सर्वाङ्ग सुन्दर निकला है।

वसुधा— सम्पादक श्री० वंशीलाल। वार्षिक मूल्य ५) 'चाँद' के आकार के ३८४ पृष्ठ, पता—वसुधा कार्यालय, जम्मू (काश्मीर)

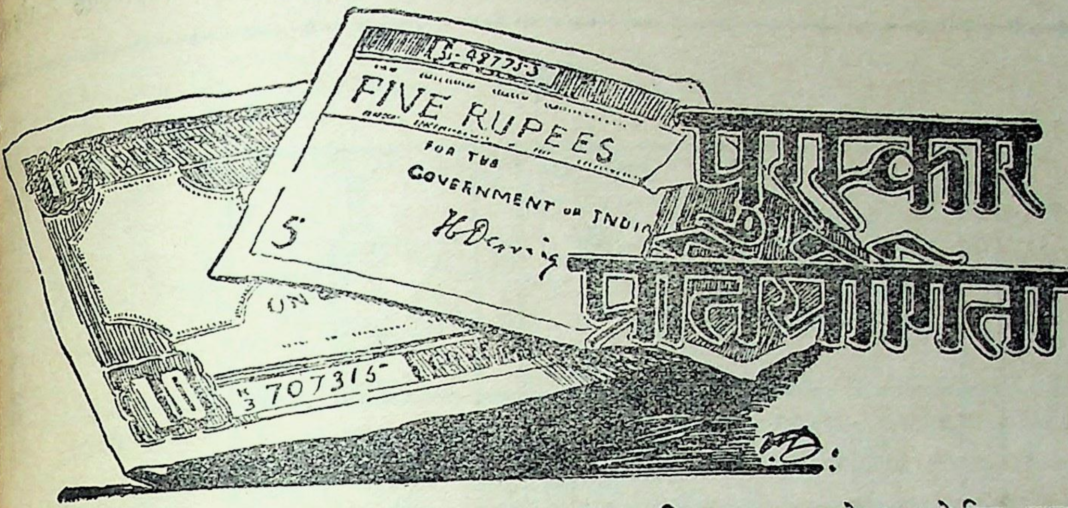
यह नई मासिक पत्रिका अभी हाल से ही निकलने लगी है। अब तक इसकी चार संख्याएँ निकली हैं। सभी संख्याएँ सचित्र हैं। हिन्दी के अन्यान्य मासिकों की तरह 'वसुधा' भी सर्व-विषय-विभूषिता है। सम्पादन, छपाई और सफ़ाई आदि सभी दृष्टियों से 'वसुधा' होनहार प्रतीत होती है।

वैदिक विज्ञान—अवैतनिक सम्पादक श्री० प्रो० विश्वनाथ जी विद्यालङ्कार, वार्षिक मूल्य ३) प्रति अङ्क ।=)। पता—आर्य-साहित्य-मण्डल लि०, अजमेर।

यह वैदिक विज्ञान (मासिक पत्र) उपर्युक्त आर्य-साहित्य-मण्डल का मुख पत्र है। यह "वेद और उस पर आश्रित आर्ष ग्रन्थों के तत्त्वों पर गम्भीर अनुसन्धान, खोज, आलोचन, प्रत्यालोचन, तथा विशुद्ध वैदिक आर्य सिद्धान्तों और आर्ष वैदिक सभ्यता का प्रकाशक, रक्षक और प्रचारक" है। यह 'चाँद' के आकार के २८२ पृष्ठों पर छपा करता है। इसमें छपे लेख इसके उद्देश्य के अनुरूप होते हैं। अब तक इसकी ६ संख्याएँ निकली हैं।

अमृत—मुख्य सम्पादक प्रो० गङ्गासिंह और सम्पादक श्री० भजनसिंह ज्ञानी, पृष्ठ-संख्या ८०, वार्षिक मूल्य ३॥) पता—हिन्दी अमृत ऑफ़िस, जण्डियाला रोड, तरनतारन, पञ्जाब।

यह गुरु नानक के मतावलम्बियों का एकमात्र धार्मिक तथा आत्मिक मासिक पत्र अभी हाल ही से निकलने लगा है। इसका उद्देश्य गुरु नानक देव की वाणी का प्रचार है। इसमें इसी विषय के लेखादि छपते हैं। इसकी भाषा और छपाई आदि अच्छी है।



इस मास की पहेली

नियम

१—इस पहेली का उत्तर 'चाँद' के सभी पाठक भेज सकते हैं। जो ग्राहक हैं, उन्हें प्रत्येक उत्तर के साथ ।) का टिकट भेजना आवश्यक है और जो ग्राहक नहीं हैं उन्हें ॥) का टिकट भेजना चाहिए! पाठकों को एक से अधिक उत्तर भेजने का भी अधिकार है।

२—नीचे छपी हुई पहेली में छः ख़ाने हैं। प्रत्येक ख़ाने में दो चित्र हैं। इन दोनों चित्रों के नाम को मिला कर एक शब्द बनता है। यदि चित्र के आगे या पीछे कुछ अक्षर लिखे हुए हैं, तो वे अक्षर चित्र के नाम में जोड़ देने चाहिए। यदि आगे या पीछे कोई अक्षर कटा हुआ है, तो वह चित्र के नाम में से निकाल देने चाहिए। उदाहरण के लिए; दूसरे ख़ाने में शराब की बोतल का चिन्ह है और उसके आगे लिखा है 'न'; इसलिए चित्र के नाम 'मद' में 'न' जोड़ कर 'मदन' हुआ। दूसरा चित्र बकरी का है, जो तलवार से काटी जा रही है। चित्र का नाम हुआ 'हनन'। इसके आगे 'मो' जोड़ कर और पीछे से 'न' निकाल कर 'मोहन' बना। दोनों को जोड़ कर 'मदनमोहन' हो गया।

३—उत्तर साफ़ हों, कटे-छटे न हों। पत्र-व्यवहार नियम के विरुद्ध होगा।

४—उत्तर ता० १५ मई तक आ जाने चाहिए।

पता—प्रतियोगिता-विभाग,
चाँद प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद

५—जिसका उत्तर हमारे उत्तर से मिल जायगा, उसे नक़द २५) का पुरस्कार मिलेगा। कई उत्तर ठीक होने पर पुरस्कार बराबर-बराबर बाँट दिया जायगा। यदि किसी का उत्तर बिलकुल ठीक न होगा, तो सब से कम अशुद्धियों वाले उत्तरदाता को पुरस्कार मिलेगा।

६—चाँद प्रेस के कर्मचारियों को इसमें सम्मिलित होने का अधिकार नहीं है।

कूपन

१		२	मदनमोहन
३		४	
५		६	

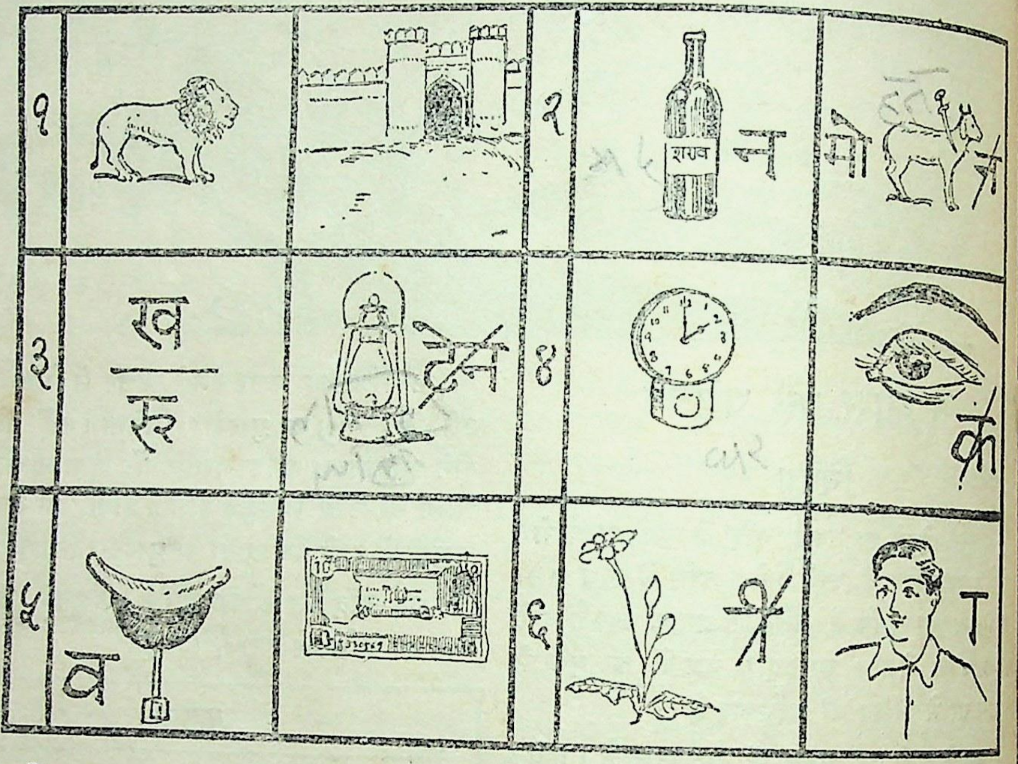
ग्राहक-नं० ————————

नाम ————————

पता ————————

मैंने 'चाँद' की प्रतियोगिता के नियम पढ़ लिए हैं। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं उनका पालन करूँगा और सम्पादक के निर्णय को स्वीकार करूँगा, तथा इस विषय में कोई पत्र-व्यवहार न करूँगा। (जो इस प्रकार की प्रतिज्ञा न करना चाहें, वे कृपया उत्तर न भेजें।)

पहेली



गत दिसम्बर सन् १९३२ की पहेली का ठीक उत्तर :—

❀	❀		स	रि	ता			म	धु	र
❀		स	म			का	म	ना		
❀		ड़		प्र	थ	म			तै	ल
	स	क	ल			दे	व	र		त
क	र			प्र	भा	व		ज	ब	र
	स्व	रा	ज्य				प	नी	र	
अ	तो	त		प	त	न			सा	ल
म		को	य	ल			प्र	भा	त	
र	न			ट	स	र		र		आ
		का	र	न			रा	त		र
य	मु	ना			वा	रि	ज		स्त	म्भ

प्रतियोगिता-फल

हमारे सुरक्षित उत्तर से मिलता हुआ एक भी उत्तर हमें नहीं मिला। पाँच सज्जनों के उत्तरों में तीन २ अशुद्धियाँ थीं। परन्तु तीन से कम अशुद्धियाँ किसी के उत्तर में नहीं थीं, इसलिए पुरस्कार उन्हीं में बाँट दिया जायगा। उनके नाम तथा पते ये हैं :—

१—कुमारी ईश्वरदेवी गुप्ता (नं० १७५६७) C/o श्री० राजकृष्णा, एम० ए०, लॉरेन्स रोड, अमृतसर (पञ्जाब)

२—पं० काशीरामसिंह (नं० २९८५७) छोटापारा, रायपुर (सी० पी०)

३—श्री० रामदेवसिंह (नं० ३१६४९) C/o अधाराम कण्ट्राक्टर, डिगबाई (आसाम)

४—पं० धर्मदत्त विद्यार्थी, उपदेशक विद्यालय, गुरुदत्त-भवन, लाहौर (पञ्जाब) (ग्राहक नहीं)

५—श्रीमती सुवीरादेवी (नं, २८३१) C/o आर० एस० लाला बनवारीलाल जी, ५६, सी० के० आश्रम, मॉडल, टाउन लाहौर।

नोट :—तालिका में 1 Across की जगह भूल से ख़ाली न थी, वरन् जान-बूझ कर वैसा किया गया था।

श्रीजगद्गुरु का फ़तवा

[हिज़ होलीनेस श्री० वृकोदरानन्द जी विरूपाक्ष]

करम प्रधान विश्व करि राखा,
जो जस करई सो तस फल चाखा !

यद्यपि बाबा तुलसीदास की यह उक्ति बावन तोले पाव रत्ती ठीक है, परन्तु वर्णाश्रमियों के डेपुटेशन ने जब यही बात महालाट की सेवा में निवेदन की तो अख़बार वाले उनकी दिल्लगी उड़ाने लगे और बाज़-बाज़ ने तो उन्हें बेवक़ूफ़ तक कह डाला ! शिव ! शिव !!

❀

कुछ लोगों ने पूर्वजन्म में पाप किया था, इसलिए अल्लाह मियाँ ने इस जन्म में उन्हें अछूत बना कर वर्णाश्रमियों की लीद उठाने का काम सौंप दिया और पदवी दी 'हलालख़ोर' की । बरअक्स इसके जिनकी पुण्य की पोटली भारी थी, उन्हें वर्णाश्रमी बना कर हराम में हलुआ-पूरी चाबने की व्यवस्था कर दी । अब यह विचार करना आपका काम है कि 'हलालख़ोर' अच्छे हैं या 'हरामख़ोर !'

❀

हाँ, तो अछूत अपने पूर्व जन्मकृत कर्मों के फल भोग रहे हैं । लेहाज़ा अछूतपन के विरुद्ध क़ानून बनाना मानों विधाता की विधि-व्यवस्था में दस्तन्दाज़ी करना है । ऐसी दशा में अगर कहीं क़ानून पास हो गया और विधाता का अस्पृश्यता सम्बन्धी क़ानून टूटा तो वे ऐसे ऑर्डिनेन्स पास करेंगे कि महालाट साहब को भी पनाह माँगते फिरना पड़ेगा ।

❀

अस्पृश्यता गई तो ऊँच-नीच जातियों वाली वर्ण-व्यवस्था क्या कोंपर चाट कर जिएगी ? फिर तो ब्राह्मण विधाता के मुँह में, क्षत्रिय बाहुओं में, वैश्य जङ्घों में और शूद्र पैरों में समा जायँगे । बुढ़ौती के शरीर में जब वह करोड़ों की संख्या वाला जन-समूह घुसने लगेगा, तो बेचारे विधाता बाबा अफर कर मर जायँगे ; बड़ी विषम समस्या उपस्थित होगी ।

❀

ख़ैर, भगवान भला करें, सुहरवर्दी साहब का । क्योंकि अबकी आपने फिर कृपा करके कुछ दिनों के लिए सनातनधर्म की जान बचा दी । अर्थात् जिस समय असेम्बली में श्रीरङ्गऐयर अपना अस्पृश्यता सम्बन्धी बिल पेश करने वाले थे, उस समय सुहरवर्दी साहब ने एक शैतान की आँत सी लम्बी स्पीच देकर सारे समय का श्राद्ध कर दिया ! सनातन-धर्म की रक्षा के लिए मानों भगवती शारदा स्वयं आपकी जिह्वा पर चढ़ बैठी थीं ।

❀

चलो, अच्छा हुआ । एसेम्बली के आगामी अधि-वेशन तक के लिए बिल वितरण का प्रस्ताव स्थगित रह गया । अपनी प्रार्थना से पत्थर की मूर्तियों को भी पिघला कर 'वरं ब्रूहि वरं ब्रूहि' कहवा लेने वाले वर्णा-श्रमियों ने महालाट को तो पहले से ही प्रसन्न कर लिया है । बस, 'अब बात रही थोड़ी, ज़ीन लगाम घोड़ी !' काशी के महामहोपाध्यायों को चाहिए कि एक दिन शुभ मुहूर्त में कहीं एकत्र होकर गाली सहस्रनाम का पाठ आरम्भ कर दें और एक बार ज़ोर से सनातनधर्म की जय बोल दें । बस, बेड़ा पार !

❀

हमें यह जान कर प्रसन्नता हुई कि सुप्रसिद्ध 'प्रति-वादि भयङ्कर' मठ के महामहन्त श्री० अनन्ताचार्य जी के सभापतित्व में सनातनी पण्डितों ने यह सदनुष्ठान कर भी डाला है । अब आवश्यकता इस बात की है कि सनातनी विद्वानों की एक कमिटी बना दी जाए और उसे बता दिया जाए कि वह भठियारख़ानों का दौरा करके उपर्युक्त सहस्रनाम के लिए उपयुक्त शब्दों का संग्रह कर डाले, ताकि आवश्यकता पड़ने पर फ़र्र-फ़र्र पारायण करने में कोई दिक़्क़त न होने पाए ।

❀

कुछ भी हो, दिल्ली की सनातनी सभा के बाद से अब लोगों को 'प्रतिवादि भयङ्कर' शब्द का अर्थ समझने

में कोई दिक़्क़त न पड़ेगी। क्योंकि प्रभुवर श्रीअनन्ताचार्य महोदय के चेलों ने सिद्ध कर दिया है कि अपने प्रतिवादी या विपक्षी को अनर्गल गालियाँ देना और कुकरौंछी के काटे हुए जन्तु-विशेष की तरह लाठियाँ लेकर इधर-उधर दौड़ना ही 'प्रतिवादि भयङ्करता' के प्रधान लक्षण हैं।

❀

युक्ति, तर्क, वाद, प्रतिवाद और शास्त्रार्थ द्वारा सत्यान्वेषण करना पण्डितों का काम हो सकता है, प्रतिवादि भयङ्करों को इन बातों से कोई मतलब नहीं। अल्लाह के फ़ज़्ल से उनकी भयङ्करता बनी रहे—नख-रद सुतीक्ष्ण हों, फिर धर्म क्या, वह चाहें तो धर्म के मरे बाप की भी रक्षा कर डालें। भला, किसको पड़ी है जो इनके सामने अपना मुँह नुचवाने जाएगा?

❀

परन्तु सुनते हैं, महामना मालवीय जी की त्रिवेणी-तट वाली सनातनी-सभा के महामन्त्री जी ने वर्णाश्रम-सभा को चैलेञ्ज दिया है कि आओ शास्त्रार्थ करें कि हरिजनों को मन्दिर आदि सार्वजनिक स्थानों में जाने का अधिकार है या नहीं? प्रतिवादि-भयङ्करी दल ने यह चैलेञ्ज स्वीकार तो कर ही लिया होगा। फलतः 'तबेले में लतिहाउज' का नज़ारा शीघ्र ही दिखाई देगा, आमीन! आमीन!!

❀

परन्तु सनातनी सभा के मन्त्री जी से हमारा निवेदन है कि भई, प्रतिवादि-भयङ्करों के सामने ज़रा सावधानी से जाना। पुराने ज़माने का बख़्तर या कवच तो आजकल कहाँ नसीब होगा, इसलिए कम से कम कोई मोटा कम्बल अवश्य ओढ़ लेना। क्योंकि उससे पैने नखों से शरीर की बहुत कुछ रक्षा हो सकेगी। अन्यथा आप जानें और आपका काम जाने।

❀

'रङ्गऐयर-बिल' के आफ़ते नागहानी से दादा सनातन-धर्म की—अन्ततः कुछ दिनों के लिए ही सही—रक्षा करके श्री० सुहरवर्दी तथा अन्य वक्ताओं ने अचार के मटके सी चिकनी वर्णाश्रमी तोंदों का बड़ा ही उपकार किया है। इसलिए वर्णाश्रम-स्वराज्य-सङ्घ वालों को चाहिए कि इन्हें 'सनातनधर्म-रक्षक' या 'धर्मधीर महावीर' की पदवी से विभूषित कर दें। अन्यथा अकृतज्ञता की कालिमा मनों गोबर-पानी ख़र्च करने पर भी दूर न होगी।

❀

मुर्दे को, उसके स्थान विशेष के फ़ालतू बालों को नोच कर, हल्का कर लेने वाले इतिहास-प्रसिद्ध बुद्धिमानों की कहानी तो आपने सुनी होगी। माशा अल्लाह, 'रङ्गऐयर-बिल' में बाधा डाल कर एसेम्बली के धर्मवीरों ने यह प्रमाणित कर दिया है कि अभी उन बुद्धि-विशारदों का विमल वंश डूबा नहीं है—उनके नामलेवा अभी मौजूद हैं।

❀

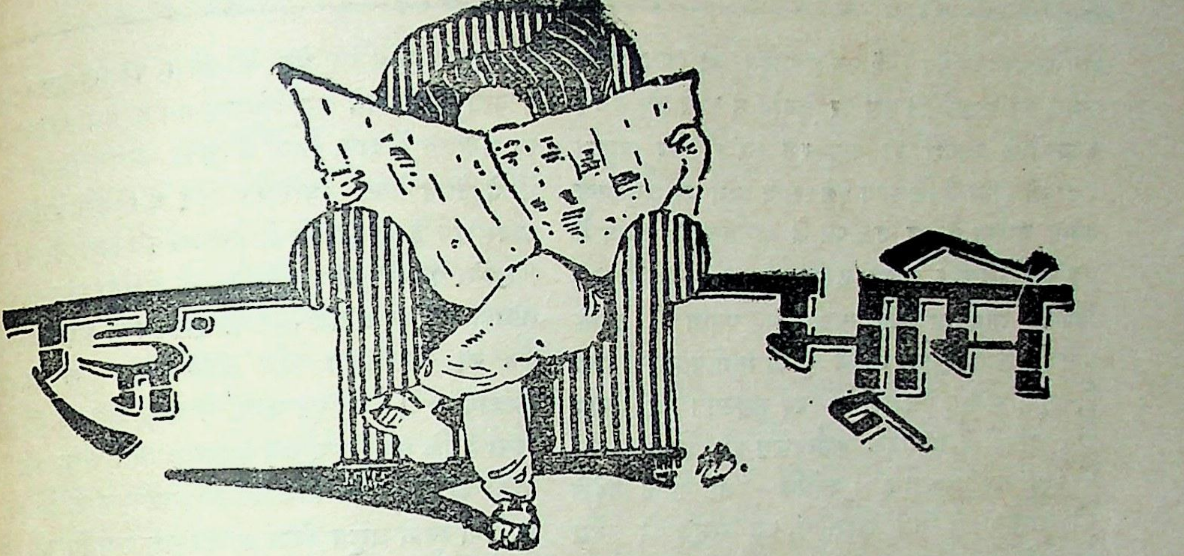
इस घटना से यह साबित हो गया है कि यह बिल यजमान-प्रदत्त मालपूए से पली तोंदों के लिए ही नहीं, वरन् भारतीय राष्ट्रीयता की सौत के पुत्रों के लिए भी ख़तरनाक है। इसीलिए वे भी येन-केन-प्रकारेण थोड़ा सा अड़ङ्गा डाल देते हैं। इससे और कुछ न सही, दिल का थोड़ा सा बुग़्ज़ ही निकल जाता है और लोगों को उनकी वंश-मर्यादा का थोड़ा सा परिचय प्राप्त हो जाता है। इसे क्या आप कोई कम लाभ की बात समझते हैं?

❀

बात यह है कि ये परम कुलीन सज्जन भारत के परम बन्धु हैं। इनका खाना, पीना, जीना—यहाँ तक कि लेक्चर देना तक केवल भारत की भलाई के लिए ही होता है। इनकी राय है कि श्री० रङ्गऐयर का बिल अगर पास हो जाएगा तो भारत में अशान्ति का भीषण दावानल धधक उठेगा। उसकी गरमी से सारी मोटी तोंदें पिघल कर पानी हो जाएँगी और सखी नौकरशाही को अपना लहगा उठा कर मूँड़ पर रख लेना पड़ेगा।

❀

अस्पृश्यता अगर किसी प्रकार दूर हो गई तो इस अगणित उपजातियों वाली हिन्दू-जाति में नवजीवन का सञ्चार होगा, भावगत और प्राणगत परस्पर विच्छिन्न योग संयोग के रूप में परिणत हो जाएगा। उस समय अपना उल्लू सीधा करने की तमाम आशाएँ मर मिटेंगी। इसीसे ये बेचारे ताबमक़दूर इस चेष्टा में हैं कि यह अस्पृश्यता—यह भेदभाव बना रहे! परन्तु बेचारों के इस साधु-उद्देश्य की कोई दाद देने वाला नहीं।



[सम्पादकीय]

हिन्दी-सम्पादक-सम्मेलन

इन्दौर के हिन्दी-सम्पादक-सम्मेलन के अध्यक्ष की हैसियत से प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति ने जो भाषण दिया है, वह सभी हिन्दी-पत्रकारों के मनन करने योग्य है। यद्यपि विदेशों में पत्र-सम्पादन का पेशा बहुत उच्च तथा प्रतिष्ठित माना जाता है तथा उसमें आमदनी भी ख़ासी होती है, पर भारतवर्ष में और विशेषतया हिन्दी में सर्वथा इसके विपरीत अवस्था देखने में आती है। जहाँ अन्य देशों में इस कार्य के लिए पूर्ण विद्वान बहुदर्शी तथा प्रभावशाली व्यक्तियों को ढूँढ़ कर नियुक्त किया जाता है, वहाँ हमारे देश में कोई भी स्कूल या कॉलेज से तुरन्त का निकला २०-२२ साल का युवक सम्पादक की कुर्सी पर जा बैठता है और राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक आदि सभी समस्याओं पर सम्मति देने का अपने को अधिकारी समझ लेता है। यहाँ पत्र-सम्पादकों की आमदनी भी इतनी कम है कि विद्वान तथा बहुज्ञ व्यक्ति कदाचित् ही उस तरफ़ निगाह उठाते हैं और प्रायः साधारण योग्यता के लोगों से ही काम चलाना पड़ता है। एक और दोष, जो हमारे यहाँ के पत्रकारों में घुसता जाता है, वह स्वार्थ-साधन के लिए समाचार-पत्रों का उपयोग करना है। ऐसे लोगों की आलोचना करते हुए सम्पादक-सम्मेलन के अध्यक्ष ने सत्य ही कहा है कि:—

"पश्चिम में और भारत में भी पत्रों का एक सम्प्रदाय है, जिसका नाम 'गठकतरा सम्प्रदाय' रक्खा जाय तो अनुचित न होगा। उस सम्प्रदाय के लोग रुपए के लोभ से अनुचित लेखों को प्रकाशित करते और उचित विषयों को प्रकाशित होने से रोकते हैं। वह हर एक समाचार का दाम चाहते हैं। वह किसी राजा या धनी को इसलिए कोसते हैं कि पैसे मिलें—वह किसी धनी आदमी के विरुद्ध इसलिए नहीं लिखते कि उनके मुँह में मीठा डाला जा चुका है। ऐसा करने वाले सम्पादक सम्पादक नहीं, गठकतरे हैं।"

वास्तव में समाचार-पत्रों का उद्देश्य लोकहित और लोक-सेवा ही है। वे जनमत को सुमार्ग पर चलाने वाले हैं। यदि वे ही स्वार्थ के वशीभूत होकर अन्याय का समर्थन करने लगें तथा असत्य को सत्य सिद्ध करने की चेष्टा करें, तो सर्वसाधारण को भ्रम में पतित होने से किस प्रकार बचाया जा सकता है। यह सच है कि अब समाचार-पत्रों का कार्य भी एक व्यापार बन गया है तथा उसके लिए काफ़ी पूँजी की आवश्यकता होती है, तो भी यह स्वीकार नहीं किया जा सकता कि पत्र की आमदनी बढ़ाने अथवा रुपया कमाने के लिए सत्य और असत्य तथा न्याय और अन्याय के अन्तर पर परदा डाल दिया जाय। इसलिए पत्रकारों से अध्यक्ष की यह अपील सर्वथा युक्तियुक्त है कि उनको—"बड़ी सावधानीपूर्वक अपनी आत्मा की

रक्षा करनी चाहिए। वे पत्र-सम्पादन को आजीविका समझ कर सच्चाई को उस पर क़ुर्बान न करते हुए सच्चे ब्राह्मणों के आदर्श का अनुकरण करें।" पर बहुधा ऐसा भी होता है कि सम्पादक सत्य मार्ग का अनुकरण करना चाहता है, पर उसे पत्र के मालिक के दबाव में पड़ कर, जिसका उद्देश्य रुपया कमाना होता है, उसे विपरीत मार्ग का अवलम्बन करना पड़ता है। इसके प्रतिकार के लिए इस भाषण में जो मार्ग बतलाया गया है, वह है समस्त पत्रकारों का दृढ़ सङ्गठन। इस उपाय द्वारा सत्य-प्रेमी सम्पादक कर्तव्यभ्रष्ट हुए बिना आत्मा की रक्षा कर सकता है। क्योंकि—"जो शक्ति अकेले को आसानी से गिरा सकती है, वह समूह को प्रयत्न करके भी नहीं गिरा सकती।" इसके सिवा इस पेशे की उन्नति के लिए अध्यक्ष ने एक प्रस्ताव और किया है और वह है सम्पादन-कला के एक विद्यालय की स्थापना। ऐसे विद्यालय द्वारा सम्पादन-क्षेत्र में प्रवेश करने वाले व्यक्ति पहले से इस विषय का कुछ अभ्यास कर लेंगे तथा उनको इसके नियमों का भी ज्ञान हो जायगा। ऐसे लोग कम से कम उन भद्दी भूलों से बच जायँगे, जिन्हें आजकल के बहुत से सर्वथा अनुभवहीन सम्पादक बनने वाले कर डालते हैं। सम्मेलन ने और भी कई उपयोगी प्रस्ताव पास किए हैं, जिनमें से एक हिन्दी न्यूज़ एजेन्सी की स्थापना तथा दूसरा समाचार-पत्र डायरेक्टरी का निर्माण है। यदि सम्मेलन इन कार्यों को पूरा कर सकने और हिन्दी-सम्पादकों के सङ्गठन को सुदृढ़ नींव पर स्थापित करने में सफल हुआ, तो उसके इन्दौरी संयोजक अवश्य ही हिन्दी-संसार के सदैव के लिए कृतज्ञता-भाजन रहेंगे।

अछूत और सनातनी

महात्मा गाँधी का उठाया अछूतोद्धार आन्दोलन जैसे-जैसे ज़ोर पकड़ता जाता है और उसके प्रति जनता की सहानुभूति बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे ही उन लोगों की, जो जनता की अन्धश्रद्धा से लाभ उठा कर अपना पेट भरते हैं, घबराहट बढ़ती जाती है। आरम्भ में गाँधी जी को गालियाँ देकर तथा कॉङ्ग्रेस पर स्वार्थपरता का इलज़ाम लगा कर उन्होंने इस आन्दोलन को बदनाम करने की चेष्टा की थी। पर जब इससे काम न चला तो उन्होंने अछूत-आन्दोलन के प्रधान सञ्चालकों पर अदालत में दावा किया है तथा वायसरॉय की सेवा में डेपुटेशन लेकर उपस्थित हुए हैं। इस डेपुटेशन ने वायसरॉय के सम्मुख जो मेमोरेण्डम पेश किया है, वह इन 'कट्टर सनातनी' कहलाने वालों की मूर्खता ही नहीं, वरन् नीचता का भी द्योतक है। मेमोरेण्डम में अछूत-आन्दोलन को सोशलिज़्म और बोलशेविज़्म के समतुल्य बतलाया गया है। इन लोगों ने इस बात पर भी ज़ोर दिया है कि यह आन्दोलन महात्मा गाँधी तथा कॉङ्ग्रेस वालों की एक राजनीतिक चाल है, ताकि भावी कौन्सिलों के निर्वाचन में अछूत वोटर इनका पक्ष समर्थन करें। इस निर्लज्जतापूर्ण असत्य भाषण का यही आशय हो सकता है कि अछूत-आन्दोलन के प्रति सरकार के हृदय में विद्वेष का भाव उत्पन्न हो जाय और वह इस आन्दोलन की सफलता के न्यायोचित मार्ग में अपने विशेष अधिकार द्वारा बाधा डाले। मेमोरेण्डम में धर्म के एक गूढ़ रहस्य का भी उद्घाटन किया गया है। उसमें बतलाया गया है कि अछूत लोग अपने पूर्व जन्म के सञ्चित पाप-कर्मों के फल से ऐसी नीच सेवा करने वाली जातियों में जन्म लेते हैं। इसलिए कोई बाहरी शक्ति अथवा क़ानून बनाने वाली व्यवस्थापक सभा उनका उद्धार नहीं कर सकती। हम नहीं जानते कि वायसरॉय और उनके पार्श्ववर्ती लोग इस शास्त्रीय दलील को सुन कर मुस्कराए होंगे या नहीं, पर हम इन कट्टरपन्थियों से यह पूछना चाहते हैं कि जब वे 'कर्म-सिद्धान्त' पर ऐसा अटल विश्वास रखते हैं तो वे स्वयं इस आन्दोलन का विरोध करने के लिए अदालतों और वायसरॉय की शरण में क्यों दौड़ते फिरते हैं? अगर अछूतों के 'कर्म' में ऐसी दुर्दशा और पतित अवस्था में रहना ही लिखा होगा तो आन्दोलन होने और क़ानून बन जाने पर भी वे जैसे के तैसे ही बने रहेंगे। सच तो यह है कि ये धर्म और कर्म की दलीलें ढकोसला हैं और वास्तविक कारण पेट पर आघात होने का भय है। क्योंकि यह स्पष्ट है कि अगर यह धर्म-कर्म तथा जातपाँत का 'तिलस्म' टूट गया, तो मख़मली गद्दी पर बैठ कर पैर पुजाने वाले महन्तों और आचार्यों आदि को कोई कौड़ी का तीन भी न पूछेगा।

भारत में मज़दूर-पार्टी

भारत के भावी शासन-विधान का चाहे और कुछ फल न निकले पर उससे इतना अवश्य होगा कि कितने ही ऐसे लोगों को देश के राजनीतिक जीवन में भाग लेने का अवसर मिल जायगा, जो अब तक उससे यत्नपूर्वक पृथक् रक्खे गए थे। ऐसे लोगों में सर्व-प्रथम स्थान स्त्रियों और मज़दूरों का समझना चाहिए। यद्यपि वर्तमान कौन्सिलों में भी मज़दूरों के दो-एक प्रतिनिधियों को स्थान दिया गया है, पर वे सरकार द्वारा मनोनीत होते हैं और उनको इतनी शक्ति प्राप्त नहीं होती कि सरकार की शासन-नीति पर किसी तरह का प्रभाव डाल सकें। वे केवल मज़दूरों की शिकायतों को प्रार्थना के रूप में सरकारी अधिकारियों तथा कौन्सिलों के सदस्यों के सम्मुख पेश कर सकते हैं, जो अपनी इच्छानुसार उनको स्वीकृत अथवा अस्वीकृत करते हैं। पर नवीन शासन-विधान के अनुसार जब बहुसंख्यक मज़दूरों को भी 'वोट' देने का अधिकार प्राप्त हो जायगा तब अवस्था ऐसी न रहेगी। उस समय कौन्सिलों में उनके चुने प्रतिनिधियों का एक दल रहेगा जो उनके अधिकारों के लिए उसी प्रकार लड़ेगा, जिस प्रकार अन्य राजनीतिक दलों के प्रतिनिधि लड़ते हैं। धीरे-धीरे ऐसा समय भी आ सकता है जब कि शासन की बागडोर मज़दूर प्रतिनिधियों के ही हाथ में आ जाय और श्रम-जीवियों के हितों को सर्व प्रथम स्थान प्रदान किया जाय। यह कोई असम्भव कल्पना नहीं है और इस विषय में स्वयं इङ्गलैण्ड का उदाहरण हमारे सामने है। आज से २५ वर्ष पहले जहाँ एक मात्र मि० केयर हार्डी पार्लामेण्ट में मज़दूरों के प्रतिनिधि थे। आज उस दल के सदस्यों की संख्या दो सौ तक जा पहुँची है और एक मज़दूर प्रतिनिधि को ही मन्त्रि-मण्डल का प्रधान बनाया गया है। इस दृष्टि से भारत में मज़दूर-पार्टी की स्थापना अवश्य ही मङ्गलजनक समझी जायगी। हर्ष का विषय है कि इस कार्य का श्रीगणेश मद्रास प्रान्त से हो गया है। वहाँ के एक भूतपूर्व चीफ़ मिनिस्टर तथा अन्य सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञों की अध्यक्षता में मज़दूर-पार्टी की स्थापना कर दी गई है। आशा है, अन्य प्रान्त भी मद्रास का अनुकरण करने में पीछे न रहेंगे और शीघ्र ही वह दिन आएगा जब कि यहाँ की सुसङ्गठित मज़दूर-पार्टी राजनीतिक क्षेत्र में एक महत्व-पूर्ण स्थान ग्रहण करेगी।

❀ ❀ ❀

सच्ची शिक्षा का अभाव

भारतवर्ष के शिक्षा-विशारदों में प्रायः इस प्रश्न पर मतभेद रहा करता है कि भारतवर्ष के विश्वविद्यालयों से परीक्षोत्तीर्ण होने वाले छात्रों की संख्या आवश्यकता से अधिक है या नहीं। जो लोग इस प्रश्न पर देश के शिक्षितों में फैली हुई बेकारी की दृष्टि से विचार करते हैं, वे वर्तमान अवस्था में विश्व-विद्यालयों द्वारा प्रतिवर्ष हज़ारों ग्रेजुएट तैयार करने के विरोधी हैं। पर जो भारतवर्ष में फैली अशिक्षा की दृष्टि से विचार करते हैं और यहाँ की अवस्था की तुलना अन्य देशों से करते हैं, उनका मत है कि यहाँ के ३० करोड़ अधिवासियों की दृष्टि से इस देश में स्थापित १८ विश्वविद्यालयों तथा उनमें उत्तीर्ण होने वाले ग्रेजुएटों की संख्या नगण्य है और उसकी जितनी ही वृद्धि हो उतना ही कल्याणप्रद है। इस सम्बन्ध में वे इङ्गलैण्ड का उदाहरण देते हैं, जहाँ ४॥ करोड़ जन-संख्या के लिए १७ विश्वविद्यालय मौजूद हैं। यही दशा फ्रान्स जर्मनी, अमेरिका आदि की है। इस दृष्टि से विचार करने पर भारतवर्ष शिक्षा में अत्यन्त पिछड़ा जान पड़ता है और यही प्रतीत होता है कि यदि भारतवर्ष इन उन्नत देशों के समकक्ष होना चाहता है तो उसे अवश्य ही शिक्षा के क्षेत्र में विशेष रूप से अग्रसर होना चाहिए। इन दोनों पक्षों की बहस को सुन कर प्रत्येक देश-हितैषी के चित्त में यह संशय उत्पन्न हो जायगा कि वास्तव में कल्याणजनक मार्ग कौन सा है। इसे तो कोई समझदार व्यक्ति अस्वीकार नहीं कर सकता कि भारतवर्ष में शिक्षा का बहुत अभाव है और उसके अनेक कष्टों तथा त्रुटियों का मूल कारण अशिक्षा ही है। पर साथ में यह भी कहना आवश्यक जान पड़ता है कि भारतवर्ष में आज-कल जैसी शिक्षा दी जा रही है, वह अत्यन्त त्रुटिपूर्ण है और उसके प्राप्त करने में जितना अधिक समय तथा धन

व्यय किया जाता है तथा जितना परिश्रम करना पड़ता है, उसे देखते हुए उससे लाभ बहुत कम होता है। वर्तमान समय में विश्वविद्यालयों में से निकलने वाले ग्रेजुएटों में से अधिकांश पुस्तक-कीट ही होते हैं, व्यवहारिक ज्ञान उनमें बहुत कम देखा जाता है। ऐसे व्यक्ति जब संसार में प्रवेश करते हैं तो वे देश और समाज का उपकार तो क्या अपना जीवन-निर्वाह भी भली-भाँति नहीं कर सकते। इसलिए हमारी सम्मति में विश्वविद्यालयों तथा ग्रेजुएटों की संख्या का विरोध करने के बजाय शिक्षा-प्रणाली का विरोध करना समुचित जान पड़ता है। क्योंकि यदि ये विश्वविद्यालय अपने विद्यार्थियों को इस प्रकार की शिक्षा प्रदान करें, जिससे उनमें जीवन-संग्राम में सफलता प्राप्त कर सकने की यथोचित योग्यता उत्पन्न हो तो कोई ऐसी शिक्षा का विरोध नहीं करेगा। ऐसे नवयुवक देश पर भार-स्वरूप होने के बजाय उसे उन्नति के मार्ग में अग्रसर करने वाले सिद्ध होंगे और उनकी शिक्षा अपने ही लिए नहीं वरन् अपने कम योग्यता रखने वाले भाइयों के लिए भी हितकर होगी।

❀ ❀ ❀

भारत में चाय का व्यवसाय

भारतवर्ष के निर्यात-व्यवसाय में चाय एक प्रधान वस्तु है। सन् १९३०-३१ में ३५ करोड़ ७० लाख पौण्ड चाय विदेशों को भेजी गई थी, जिसका मूल्य कम से कम १५-१६ करोड़ रुपए से कम न होगा। इस व्यवसाय से कई लाख मज़दूरों को रोटी भी मिलती है। इस कारबार में लाभ काफ़ी है। शेयर-होल्डरों को २० सैकड़े से लेकर २०० सैकड़े तक का मुनाफ़ा मिल जाता है। एक चाय-बागान में, जिसे सन् १९२१ में २५,००० रुपए की पूँजी से जारी किया गया था, दस वर्ष के भीतर २ लाख ७१ हज़ार मुनाफ़ा मिला और सम्पत्ति का परिमाण २५ हज़ार से ३ लाख तक जा पहुँचा। चाय का प्रचार भी इन दिनों बढ़ता जाता है। सन् १९२१ में जहाँ इस देश में ३ करोड़ १० लाख पौण्ड चाय ख़र्च हुई थी, सन् १९३२ में उसका परिमाण दुगने से अधिक अर्थात् ६ करोड़ ५० लाख पौण्ड हो गया। इस प्रकार इस व्यवसाय के सब तरह से लाभजनक होते हुए भी, खेद है कि हमारे देश-भाइयों ने इस तरफ़ बहुत कम ध्यान दिया है और इस पर प्रायः यूरोपियनों का ही एकाधिकार है। इस देश के ४,७४२ चाय-बागानों में से केवल ५२१ भारतीयों के अधिकार में हैं और ३१ करोड़ १० लाख पौण्ड चाय में से केवल ५ करोड़ ५० लाख पौण्ड चाय इन बगीचों में उत्पन्न होती है। चाय के व्यवसाय का सञ्चालन करने वाली जो तीन संस्थाएँ—इण्डियन टी एसोसिएशन, कलकत्ता टी ब्रोकर्स एसोसिएशन और इण्डियन टी सेस कमिटी—इस देश में हैं उन पर भी यूरोपियनों का ही प्रभुत्व है। भारतीय चाय उत्पन्न करने वालों को इन्हीं संस्थाओं की कृपा पर आधार रखना पड़ता है और उन्हीं के द्वारा तमाम माल बेचना पड़ता है। यह अवस्था सन्तोषजनक नहीं कही जा सकती। इसका अर्थ यह है कि इस व्यवसाय से भारत को प्रतिवर्ष जो कुछ करोड़ रुपए का लाभ होता जान पड़ता है, वह वास्तव में विदेशियों की जेब में जाता है और एक प्रकार जहाँ का तहाँ पहुँच जाता है। हमारे देश के उद्योगी तथा व्यवसाय-कुशल व्यक्तियों को इस तरफ़ ध्यान देना चाहिए।

❀ ❀ ❀

पुरुलिया का कुष्ठाश्रम

भारत में ईसाई-धर्म का प्रचार-कार्य करने वाले मिशनरियों ने यद्यपि स्कूल, कॉलेज, अस्पताल आदि की स्थापना करके कितने ही लोकोपकारी कार्यों की जड़ जमाई है, पर उनके द्वारा स्थापित कुष्ठाश्रमों से उनके आदर्श मानव-प्रेम तथा सहृदयता का जितना अधिक परिचय मिलता है उतना और किसी कार्य से नहीं मिल सकता। इन कुष्ठाश्रमों में सुशिक्षित यूरोपियन पुरुष और महिलाएँ ऐसे मैले-कुचैले तथा असाध्य कोढ़ियों की अपने हाथों से सेवा-शुश्रूषा करती हैं, जिनको उनके सम्बन्धी भी त्याग देते हैं और विवाहित पत्नी भी जिनका स्पर्श करने में सङ्कोच करती है। ये यूरोपियन महिलाएँ जिनको 'सिस्टर्स' कहते हैं, अपने

हाथों से इन कोढ़ियों के बहते हुए घावों को धोती-पोंछती हैं, उनकी मरहम-पट्टी करतीं, उनको नहलाती-धुलातीं तथा उनको किसी प्रकार का कष्ट न हो, इसकी चेष्टा करती हैं। यद्यपि कुछ लोग इस सम्बन्ध में यह एतराज़ करते हैं कि इन ईसाई कार्यकर्ताओं का उद्देश्य इन रोगियों को अपने धर्म में दीक्षित करना होता है, पर जिन लोगों को हमने सड़क पर डाल दिया है और जिनकी परछाईं पड़ना भी हम बुरा समझते हैं, यदि ईसाई मिशनरी उनको लेकर गले से लगाते हैं और घृणा करने के बजाय उनकी सेवा-शुश्रूषा करते हैं, तो ऐसे लोगों का झुकाव उस धर्म की तरफ़ हो जाना स्वाभाविक ही है और इसके लिए हम किसी पर दोषारोपण नहीं कर सकते। वरन् ये मिशनरी ऐसे भयङ्कर रोग में ग्रस्त व्यक्तियों को, जिनका प्रबन्ध हम नहीं कर सकते, अपने प्रबन्ध में लेकर सर्वसाधारण की इस छुतैल बीमारी के प्रकोप से रक्षा करते हैं, इसके लिए वे हमारे धन्यवाद के पात्र ही माने जायँगे। इस प्रकार के एक कुष्ठाश्रम का, जो बिहार प्रान्त के पुरलिया नगर में है, वर्णन 'विशाल-भारत' के सम्पादक श्री० बनारसीदास चतुर्वेदी ने हमारे पास भेजा है। उससे विदित होता है कि उस आश्रम में ७५८ कोढ़ी हैं। इस आश्रम के प्रबन्धकर्ता मि० ए० डोनल्ड मिलर हैं, जिन्होंने सांसारिक वैभव को लात मार कर अपना जीवन इन भाग्यहीन प्राणियों की सेवा में अर्पित कर दिया है। आश्रम में इस बात का बड़ा पक्का प्रबन्ध किया गया है कि कोढ़ियों के बच्चे उनसे सर्वथा अलग रक्खे जायँ, ताकि उन पर इस छुतैल बीमारी का प्रभाव न पड़े। यहाँ पर बच्चों को पढ़ना और दस्तकारी सिखलाई जाती है। लड़कियाँ कपड़ा बुनना तथा गृह-कार्य सीखती हैं। कितने ही कोढ़ी खेती का काम भी करने लग गए हैं। आश्रम के सञ्चालकों का इस बात पर सदा ध्यान रहता है कि आश्रम के निवासी अपने को भिखारी न समझें और उनके हृदय में स्वाभिमान का भाव जाग्रत हो। इसलिए वे प्रत्येक आश्रमवासी को प्रति सप्ताह कुछ चावल तथा कुछ आने पैसे दे देते हैं, जिसे वे स्वतन्त्रतापूर्वक ख़र्च कर सकते हैं। इन पैसों में से वे लोग कुछ बचा भी लेते हैं और उसे दूसरे लोगों के सहायतार्थ व्यय करते हैं। यहाँ पर कुष्ठ रोग का इलाज करने का जो अस्पताल है, उसमें प्रति वर्ष हज़ारों रोगियों को दवा का इञ्जेक्शन दिया जाता है। सन् १९३१ में ऐसे प्रायः तीस हज़ार इञ्जेक्शन देने पड़े थे। यद्यपि इस संस्था का काम बहुत विस्तृत अवस्था में है, पर उसके कार्यकर्ता नामवरी और विज्ञापन-बाज़ी से दूर रह कर ऐसा चुपचाप काम करते हैं कि बाहरी दुनिया को इसका नाम भी अच्छी तरह विदित नहीं। इसका समस्त व्यय प्रायः विदेशों से प्राप्त धन से चलता है, और सरकार से भी कुछ सहायता मिलती है। पर भारतीयों से नाम मात्र को थोड़ा सा दान प्राप्त होता है। यदि इस संस्था को कुछ अधिक आर्थिक सहायता मिले तो उसका कार्य-क्षेत्र और भी व्यापक हो सकता है और जिन अनेक कोढ़ियों को आज आश्रम से लौटा देना पड़ता है, उन्हें भी वहाँ स्थान मिल जाय। पर खेद का विषय है कि हमारे देश-भाई अन्य अनेक सद्गुणों के साथ दान देने के लिए सुपात्र और कुपात्र के अन्तर को भी भूल गए हैं। वे दूध-मलाई खाकर दुराचार की वृद्धि करने वाले साधुओं तथा निरर्थक मन्दिरों के लिए करोड़ों रुपए ख़र्च कर डालते हैं, पर जो लोग टुकड़े-टुकड़े को तरसते हैं उन्हें प्रायः दुत्कार देते हैं। हम इस सम्बन्ध में श्री० बनारसीदास जी के इस कथन से सर्वथा सहमत हैं कि "यदि भारत में कोई संस्था दान की पात्र है तो निस्सन्देह यह आश्रम है। बाँधने के लिए पट्टी (Bandage), पहिनने के लिए कपड़े, पढ़ने के लिए सात्विक साहित्य, खाने के लिए अन्न, दवा के लिए पैसा, जो कुछ भी सहायता इस आश्रम की, जिससे बन सके, अवश्य करनी चाहिए।"*

❀ ❀ ❀

द्विवेदी-मेला

हर्ष का विषय है कि आधुनिक हिन्दी-साहित्य के आचार्य पण्डित महावीरप्रसाद जी द्विवेदी के सम्मानार्थ जिस द्विवेदी-मेले की योजना प्रयाग के कुछ उत्साही सज्जनों ने की थी, उसका मई के आरम्भ में

* सहायता भेजने का पता :—A. D. Miller, Purulia, Bihar.

होना निश्चित हो गया है और नियमित रूप से तैयारी की जाने लगी है। मेले में साहित्य-चर्चा के अलावा कवि-सम्मेलन, वाद-विवाद तथा देशी खेलों का भी आयोजन किया गया है। एक पूजनीय तथा वयोवृद्ध साहित्य-सेवी की कृतियों का, जिसने अपना समस्त जीवन मातृ-भाषा की उन्नति के लिए अर्पण कर दिया है, इस प्रकार समादर करना उचित ही है, बशर्ते आगे चल कर लोग इसे भी 'परम्परा की प्रथा' का रूप न दे दें। दरअसल इस प्रकार की सम्वर्द्धना उसी दशा में शोभा देती है, जब उसकी प्रेरणा हमारे हृदय में स्वयमेव उत्पन्न हो। किसी की नक़ल करके या किसी के अनुरोध करने से इस प्रकार के जो समारोह किए जाते हैं उनकी विशेषता नष्ट हो जाती है। हम आशा करते हैं कि आचार्य द्विवेदी जी के सम्मानार्थ किया जाने वाला यह उत्सव सब प्रकार की कृत्रिमता से रहित, उन्हीं के स्वरूप तथा महत्व के अनुकूल, गम्भीरतापूर्वक सम्पन्न किया जायगा। जो सज्जन इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए परिश्रम कर रहे हैं, वे समस्त हिन्दी-प्रेमियों के प्रशंसा-भाजन हैं।

❀ ❀ ❀

स्वदेशी मिल वालों को चेतावनी

जापान से आने वाले माल ने इस देश के स्वदेशी वस्त्र-व्यवसाय को कैसी सङ्कटपूर्ण अवस्था में डाल दिया है, इसका पता इससे लग सकता है कि ऐसे देश-व्यापी स्वदेशी आन्दोलन तथा जापानी कपड़े पर ५० सैकड़ा की चुङ्गी होने पर भी इस देश की सूत कातने तथा कपड़ा बुनने वाली मैशीनों का पाँचवाँ भाग बन्द पड़ा है। बम्बई के कई दर्जन कारख़ानों में ताला पड़ चुका है और लाखों मज़दूर बेकार घूम रहे हैं। जब इसी समय ऐसी अवस्था है तो स्वदेशी आन्दोलन के शिथिल हो जाने या चुङ्गी के कम हो जाने पर कैसी अवस्था होगी, उसकी कल्पना सहज ही में की जा सकती है। यदि देशी मिलों के मालिक समझते हों कि जनता तथा सरकार इसी प्रकार सदैव उनका समर्थन तथा सहायता करती रहेगी तो यह उनकी बड़ी भूल है। एसेम्बली के वर्तमान अधिवेशन में ही आगे के कुछ महीनों के लिए जापानी माल पर चुङ्गी को क़ायम रखने का प्रस्ताव बड़ी मुश्किल से पास हो सका है। वहाँ उपस्थित सदस्यों ने स्पष्ट कहा कि वे इस प्रकार ग़रीब लोगों की हानि करके मिल वालों के फ़ायदे का समर्थन अधिक समय तक नहीं कर सकते। इसलिए मिल वालों का कर्तव्य है कि वे अभी से सावधान होकर अपने व्यवसाय के प्रबन्ध में ऐसा सुधार करें, जिससे उनका ख़र्च कम हो और वे लोगों के हाथ सस्ते दर में माल बेच सकें। पर इसका यह अर्थ नहीं है कि वे ग़रीब मज़दूरों का पेट काटें। क्योंकि अगर उनके मज़दूर उनसे सन्तुष्ट न रहेंगे तो कारबार की उन्नति हो ही नहीं सकती। इसका उपाय केवल वर्तमान समय की अपेक्षा अधिक उत्तम सङ्गठन तथा अनावश्यक मैनेजिंग एजेण्ट, दलाल, आढ़तिए आदि को कम करना है।

❀ ❀ ❀

स्वदेशी फ़िल्म की सफलता

हाल में कलकत्ते के 'न्यू थियेटर्स लिमिटेड' की जिस 'पूरन भक्त' फ़िल्म का प्रदर्शन प्रयाग के 'चित्रा' सिनेमा-भवन में किया गया था, वह अभिनय तथा गाने की दृष्टि से अद्वितीय सिद्ध हुआ है। इलाहाबाद जैसे शहर में उसका लगातार कितने ही दिनों तक चलते रहना और दर्शकों का स्थानाभाव से लौट जाना बतलाता है कि साधारण जनता ने उसे बहुत पसन्द किया है। 'पूरन भक्त' की कहानी वैसे भी बहुत लोकप्रिय है और इस सुन्दर फ़िल्म के रूप में उसका आकर्षण कई गुना अधिक बढ़ गया है।

चाँद

सचित्र सामाजिक मासिक पत्रिका

वर्ष ११, खण्ड १

नवम्बर, सन् १९३२ से अप्रैल, सन् १९३३ ई० तक

सम्पादक—

मुन्शी नवजादिकलाल जी श्रीवास्तव

प्रकाशक :—

चाँद प्रेस, लिमिटेड

चन्द्रलोक—इलाहाबाद

[छःमाही चन्दा ३।।)

वार्षिक चन्दा ६।।)]

Printed and Published for and on behalf of

THE CHAND PRESS, LIMITED

BY

MUNSHI NAUJADIK LAL SRIVASTAVA, (Editor),

AT

THE FINE ART PRINTING COTTAGE

28, Edmonstone Road—Chandralok

Allahabad

विषय-सूची

१—गद्य

रङ्ग-भूमि

(सम्पादकीय)

विविध-विषय

सम्पादकीय विचार

❀ ❀ ❀

२—पद्य

चित्र-सूची

तिरङ्गे

आर्ट पेपर पर रङ्गीन

सादे

Printed and Published for and on behalf of The Chand Press, Limited, by Munshi Naujadik Lal Sriv[...] at The Fine Art Printing Cottage, 28, Edmonstone Road, Chandralok—Allahabad

मई, १६३३

[वर्ष ११, खण्ड २
सं० १, पू० सं० १२७]



वार्षिक चन्दा ६॥)
छः माही चन्दा ३॥)

सम्पादक :—
मुन्शी नवजादिकलाल श्रीवास्तव

विदेश का चन्दा ८॥)
इस अङ्क का मूल्य ॥=)



अन्तिम अवलम्ब

फ़ाइन आर्ट प्रिंटिङ्ग कॉटेज, इलाहाबाद

चित्रकार, श्री० एच० बागची इलाहाबाद



आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रेम हमारी प्रणाली है, जब तक इस पावन अनुष्ठान में हम अविचल हैं, तब तक हमें इसका भय नहीं, कि हमारे विरोधियों की संख्या और शक्ति कितनी है।

वर्ष ११, खण्ड २

मई, १९३३

संख्या १, पूर्ण संख्या १२७

दुखता दिल

[महाकवि पण्डित अयोध्यासिंह जी उपाध्याय 'हरिऔध']

क्यों नहीं बता दो प्यारे,
सुख की घड़ियाँ आती हैं।
क्यों तुम्हें तरसती आँखें
अब देख नहीं पाती हैं!

हो गए महीने कितने,
पर मेरी याद न आई।
क्यों पिघला नहीं कलेजा,
क्यों आँख नहीं भर आई!

मैं समझ नहीं सकती हूँ,
क्यों गया मुझे कलपाया!
जो नरम मोम जैसा था,
वह पत्थर क्यों बन पाया!

दिल उन्हें देख छिपता है,
है उनकी लगन न जाती।
मैं जिन फूलों को देखे,
थी फूली नहीं समाती।

बावली बनाना था ही,
तो क्यों हँस-हँस कर बोले।
सब दिन जो फूला रहता,
उस दिल में पड़े फफोले!

जब मुझे याद आती हैं,
वे प्यार-भरी सब बातें।
तब बीत नहीं दिन पाता,
काटे खाती हैं रातें!!

मैं भूल गई हूँ कैसे,
यह मुझे बता दो प्यारे!
बस गए आँख में किसकी
मेरी आँखों के तारे?

मैं पड़ी अँधेरे में हूँ,
है भरा रगों में दुखड़ा।
आकर मुझको दिखला दो
वह खिले चाँद-सा मुखड़ा।



अन्तिम अवलम्ब

फ़ाइन आर्ट प्रिंटिङ्ग कॉटेज, इलाहाबाद

चित्रकार, श्री० एच० बागची, इलाहाबाद



आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रेम हमारी प्रणाली है, जब तक इस पावन अनुष्ठान में हम अविचल हैं, तब तक हमें इसका भय नहीं, कि हमारे विरोधियों की संख्या और शक्ति कितनी है।

वर्ष ११, खण्ड २ | **मई, १९३३** | संख्या १, पू०सं० १२७

दुखता दिल

[महाकवि पण्डित अयोध्यासिंह जी उपाध्याय 'हरिऔध']

क्यों नहीं बता दो प्यारे,
सुख की घड़ियाँ आती हैं।
क्यों तुम्हें तरसती आँखें
अब देख नहीं पाती हैं!

हो गए महीने कितने,
पर मेरी याद न आई।
क्यों पिघला नहीं कलेजा,
क्यों आँख नहीं भर पाई!

मैं समझ नहीं सकती हूँ,
क्यों गया मुझे कलपाया!
जो नरम मोम जैसा था,
वह पत्थर क्यों बन पाया!

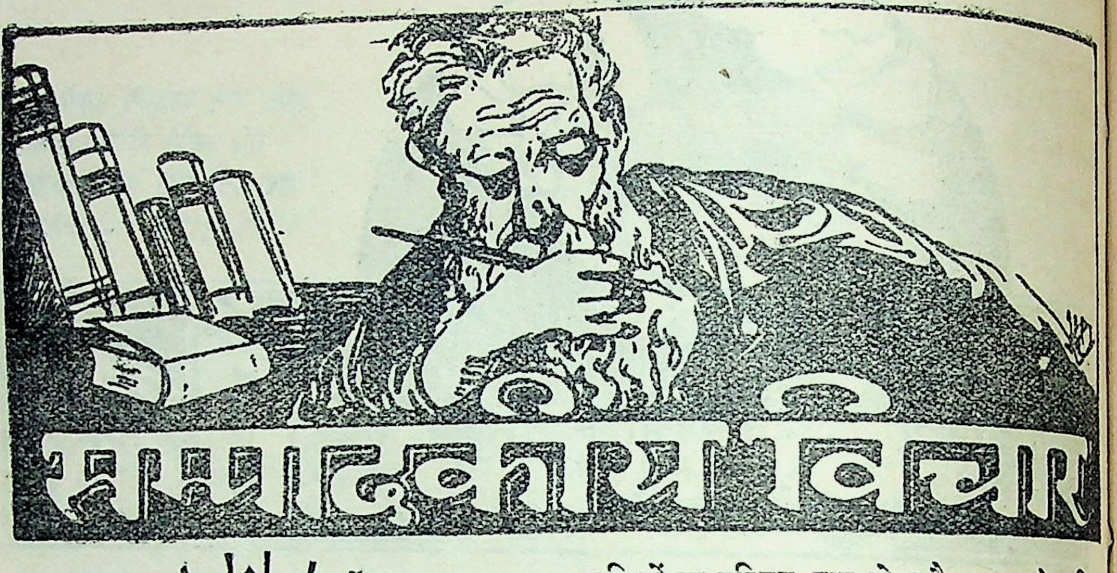
दिल उन्हें देख छिपता है,
है उनकी फबन न भाती।
मैं जिन फूलों को देखे,
थी फूली नहीं समाती।

बावली बनाना था ही,
तो क्यों हँस-हँस कर बोले।
सब दिन जो फूला रहता,
उस दिल में पड़े फफोले!

जब मुझे याद आती हैं,
वे प्यार-भरी सब बातें।
तब बीत नहीं दिन पाता,
काटे खाती हैं रातें!!

मैं भूल गई हूँ कैसे,
यह मुझे बता दो प्यारे!
बस गए आँख में किसकी
मेरी आँखों के तारे?

मैं पड़ी अँधेरे में हूँ,
है भरा रगों में दुखड़ा।
आकर मुझको दिखला दो
वह खिले चाँद-सा मुखड़ा।



चाँद

मई, १९३३

हमारी शिक्षा-प्रणाली

मानवीय शक्तियों को विद्याभ्यास द्वारा विकसित और नियन्त्रित करने का नाम ही शिक्षा है। यह शिक्षा चाहे नेत्रों और हाथों के उपयोग से सम्बन्ध रखने वाली हो और चाहे बुद्धि और कल्पना से; चाहे वह विज्ञान और कला के रूप में हो और चाहे साहित्य और इतिहास के। अगर उसकी सहायता से हम अपनी शक्तियों की वृद्धि तथा उन्नति कर सकते हैं और व्यवहारिक कार्यों के लिए उनका प्रयोग कर सकते हैं, तो उसे सच्ची शिक्षा के नाम से पुकारा जा सकता है। ऐसी शिक्षा ही मनुष्य को मनुष्य कहलाने योग्य बनाती है। उसी से मनुष्य को विश्व की वास्तविकता का ज्ञान होता है, प्रकृति की शक्तियों का परिचय प्राप्त होता है, समाज के अस्तित्व के नियमों का पता चलता है और उन मानसिक तथा अध्यात्मिक तत्वों का ज्ञान होता है, जिनके बिना संसार में मनुष्य-जीवन सार्थक नहीं समझा जा सकता। शिक्षा द्वारा हमारी बौद्धिक शक्तियों का विकास होने तथा व्यक्तिगत स्वभाव को नियन्त्रण में रखने से ही हम किसी पेशे या व्यवसाय में सफलता प्राप्त कर सकते हैं, जो प्रत्येक मनुष्य के जीवन-निर्वाह के लिए अनिवार्य है। उचित शिक्षा से ही हमको अपने प्रति, अपने परिवार वालों के प्रति तथा अपने देशवासियों के प्रति अपने कर्तव्य का बोध होता है तथा उसका पालन कर सकने की शक्ति प्राप्त होती है।

वर्तमान शिक्षा-प्रणाली का उद्देश्य

इस सिद्धान्त को दृष्टिगोचर रख कर जब हम भारत में प्रचलित शिक्षा-प्रणाली की विवेचना करते हैं, तो उसमें गुणों और विशेषताओं की अपेक्षा त्रुटियों की मात्रा ही अधिक दिखलाई देती है। अन्य स्वावलम्बी राष्ट्रों में शिक्षा-प्रणाली का निर्णय करने और समयानुसार उसमें परिवर्तन तथा सुधार करते रहने के लिए देश के सर्वश्रेष्ठ मस्तिष्क संलग्न रहते हैं, परन्तु हमारे यहाँ शिक्षा-प्रणाली का उद्देश्य केवल नौकरी प्राप्त कर सकना अथवा अपने व्यवसाय के चलाने लायक थोड़ी सी लिखा-पढ़ी और हिसाब-किताब कर सकना समझा जाता है। राष्ट्र-निर्माण, जोकि शिक्षा का सर्व-प्रधान उद्देश्य होना चाहिए, उसका तो यहाँ के शिक्षा-

विभाग को कदाचित् ही ध्यान आता हो। वह केवल कुछ नियत पुस्तकें बालकों को रटा कर तथा परीक्षा लेकर उनको डिग्री दे देता है और इसीमें अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेता है। डिग्री पाने के पश्चात् वे बालक या युवक जीवन-क्षेत्र में कुछ करके दिखा सकेंगे या नहीं, अपने देश और समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व का पालन कर सकेंगे या नहीं, अथवा केवल अपना पेट भी भर सकेंगे या नहीं, इसकी उसको कुछ भी चिन्ता नहीं होती। वह इस बात पर कुछ भी ध्यान नहीं देता कि ये बालक ही राष्ट्र की सब से बड़ी सम्पत्ति हैं और इन्हीं पर उसका उत्थान और पतन निर्भर है। इसकी आशा भी किस प्रकार की जा सकती है, जब इस शिक्षा-प्रणाली का जन्म ऐसे व्यक्तियों के हाथों से हुआ है, जिनका उद्देश्य ही सरकारी ऑफ़िसों के लिए क्लर्क तैयार करना, शिक्षित लोगों को यूरोपियन रहन-सहन का चस्का लगा कर विलायती माल की खपत बढ़ाना, और साथ ही मौक़ा लगे तो उनको अपने धर्म में दीक्षित कर लेना था। इसकी पुष्टि के लिए इस शिक्षा-प्रणाली के आदि प्रचारक लॉर्ड विलियम बैण्टिङ्क के सम्बन्ध में एक अङ्गरेज़-लेखक की निम्नलिखित सम्मति पर्याप्त है :—

"अङ्गरेज़ी भाषा के समर्थकों की दलीलों से बैण्टिङ्क को यह अनुभव हुआ कि अङ्गरेज़ी द्वारा शिक्षा प्रदान करने से एक बड़ी समस्या हल हो जायगी, जो कि उस समय उसके सामने मौजूद थी। यह समस्या थी, कम्पनी के कार्य के लिए योग्य और विश्वासपात्र देशी कर्मचारियों का मिल सकना। × × × इसके सिवाय आर्थिक दृष्टि से भी, जो बैण्टिङ्क में प्रचुर परिमाण में पाई जाती थी, यह प्रस्ताव लाभदायक था। इस देश में अङ्गरेज़ी शिक्षा का प्रचार होने से यहाँ के निवासियों का व्यापारिक सम्बन्ध यूरोपियन देशों से बढ़ना सुनिश्चित था, जिससे कम्पनी की आय बढ़ने की पूरी आशा थी।"*

धर्म सम्बन्धी उद्देश्य के सम्बन्ध में भारतीय शिक्षा-प्रणाली के सुप्रसिद्ध जनक मैकॉले का निम्न-लिखित उद्गार ध्यान देने योग्य है :—

"कोई भी हिन्दू, जिसने अङ्गरेज़ी शिक्षा प्राप्त कर ली है, अपने धार्मिक अनुराग को कदापि अक्षुण्ण नहीं रख सकता × × × मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि यदि हमारी शिक्षा-प्रणाली की योजना पर अमल किया जाय, तो तीस वर्ष के भीतर बङ्गाल की उच्च जातियों में एक भी मूर्तिपूजक नहीं बचेगा।"

जिस शिक्षा-प्रणाली की नींव इस प्रकार के विचारों से डाली गई हो, उससे यह आशा करना व्यर्थ है कि वह ऐसे नागरिक उत्पन्न करेगी, जो संसार में कुछ महत्वपूर्ण कार्य करके अपना और अपने देश का गौरव बढ़ाएँगे। यह सच है कि बैण्टिङ्क और मैकॉले के ज़माने से अब तक अनेक परिवर्तन हो चुके हैं और भारतीय शिक्षालयों की अवस्था में भी बहुत-कुछ उन्नति हुई है, पर हमें खेदपूर्वक कहना पड़ता है कि शिक्षा-प्रणाली के मूल उद्देश्य में बहुत कम अन्तर पड़ा है और वह अब भी अधिकांश में छोटे या बड़े नौकर तैयार करने की मैशीन ही बनी हुई है। इसके विरुद्ध यह दलील देना व्यर्थ है कि इन्हीं शिक्षालयों से तिलक, गाँधी, रवीन्द्रनाथ, जगदीशचन्द्र बोस जैसे जगतप्रसिद्ध व्यक्ति उत्पन्न हुए हैं। भारतीय यूनिवर्सिटियों तथा कॉलेजों से अब तक लाखों ग्रेजुएट और अण्डर-ग्रेजुएट निकले हैं, यदि उनमें से दस-बीस उन्नति के शिखर पर जा पहुँचे, तो इसका श्रेय इस शिक्षा-प्रणाली के बजाय उनकी प्रकृतिदत्त प्रतिभा को ही मिलेगा।

भारतीयता का अभाव

इस देश में प्रचलित शिक्षा-प्रणाली में सबसे बड़ा अभाव भारतीयता का है। उसमें इस देश के निवासियों के जातिगत आदर्शों और आकांक्षाओं का बहुत ही कम चिह्न मिलता है। भारतीय यूनीवर्सिटियाँ यहाँ के युवकों को शेक्सपियर, मिल्टन, बायरन आदि के ग्रन्थों का तो ज्ञान करा देती हैं, पर बाल्मीकि, कालिदास और भवभूति ने जिस अमूल्य साहित्य का निर्माण किया है, उसका कुछ भी परिचय नहीं कराया जाता। रोम और ग्रीस के पुराने इतिहास विद्यार्थियों के मस्तिष्क में ठूँसे जाते हैं, पर महाभारत का अध्ययन करने का मौक़ा उनको कभी नहीं मिलता। वे लोग अपने पूर्वजों के बारे में कुछ नहीं जान पाते, और यदि कुछ जानते भी

* "The Education of India" by Arthur Mayhew, C. I. E. Late Director of Public Instruction, Central Provinces (page 18).

हैं तो यही कि वे अर्द्ध-सभ्य, अशिक्षित और कुसंस्काराछन्न थे। इस प्रकार अपने भूतकालीन इतिहास से अनभिज्ञ रहने तथा अपने को एक पिछड़ी हुई जाति का वंशज समझने से उनमें स्वाभिमान का भाव प्रायः उत्पन्न ही नहीं हो पाता और वे अपनी वर्तमान दुर्दशा को स्वाभाविक समझने लगते हैं। भारतीय नवयुवकों के लिए वास्तव में किस प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता है, जिससे वे सच्चे अर्थ में भारतीय नागरिक बन सकें, इसकी विवेचना करते हुए आधुनिक भारतीय ऋषि श्री० टी० एल० वस्वानी लिखते हैं :—

"भारत के लिए जो कोई भी शिक्षा-प्रणाली रची जाय, उसमें भारत को सर्व-प्रधान स्थान मिलना अत्यावश्यक है। मेरी सम्मति में शिक्षा का प्रधान उद्देश्य मनुष्य में कर्तव्यशीलता की उत्पत्ति और आत्म-विकास ही है। इसलिए हमारे भूतकालीन राष्ट्रीय महत्व तथा हमारे इतिहास की उपेक्षा करना किसी दशा में स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए। शिक्षकों और विद्यार्थियों को इस बात का ज्ञान अवश्य ही होना चाहिए कि संसार के ज्ञान-भण्डार में हमारे पूर्वजों का कितना भाग है। भारतीय इतिहास तथा भारतीय आदर्शों की अवश्य ही ऐसे सम्मानोत्पादक ढङ्ग से शिक्षा दी जानी चाहिए, जिससे विद्यार्थियों को अपनी सच्ची अवस्था का ज्ञान हो तथा उनके हृदयों में देशभक्ति का सञ्चार हो। अभी तक स्कूल और कॉलेजों में भारतीयों की प्राचीन आकांक्षाओं तथा आदर्शों का आशय सर्वथा विपरीत समझाया गया है। उदाहरणार्थ भारतीय विद्यार्थियों को पढ़ाई जाने वाली एक पुस्तक में लिखा है :—'ब्राह्मण केवल अपने लिए जीवित रहते हैं। दया और अनुकम्पा के भाव, जहाँ तक उनका सम्बन्ध दूसरों से होता है, उनको छू भी नहीं जाते। वह एक कष्ट-पीड़ित व्यक्ति को सड़क पर या अपने मकान के दरवाज़े पर ही तड़पता देखा करेगा, पर यदि वह किसी अन्य जाति का होगा तो उसकी सहायता को कभी हाथ न बढ़ाएगा, न उसे एक बूँद पानी देगा।' इस प्रकार वास्तविकता को तोड़-मरोड़ कर लिखे गए इतिहास के पढ़ने से हमारे विद्यार्थियों के हृदय में अपने देश के प्रति क्या आदर उत्पन्न हो सकता है और बड़े होकर वे इससे अपने जीवन की क्या उन्नति कर सकते हैं? ××× कितने ही अङ्गरेज़ अधिकारियों ने स्वीकार किया है कि अङ्गरेज़ी शिक्षा केवल इहलौकिक है और उसका प्रभाव भारतवर्ष के लिए नाशकारी है। शिक्षा-विभाग में काम करने वाले भारतीय भी इस देश के इतिहास की खेदजनक उपेक्षा करते हैं। कितने ही लोग प्रायः यह कहते हुए सुने गए हैं कि 'प्राचीन भारत का कोई इतिहास ही नहीं है!' हमारी जातीयता के विकास का ज्ञान हो सके, इस दृष्टि से इतिहास का अध्ययन नहीं किया जाता। ऐसे कितने भारतीय विद्यार्थी हैं, जिन्होंने जनक, राम और अशोक की जीवनियों का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया हो? हमारे स्कूलों और कॉलेजों में हमारे राष्ट्रीय नायकों के चरित्र पढ़ाए ही नहीं जाते। परन्तु आवश्यकता है कि इस देश के बालकों को ऐसी पुस्तकें पढ़ाई जायँ, जिनमें आधुनिक भारत के प्रसिद्ध देशभक्त पुरुषों के चरित्र कहानियों के रूप में दिए गए हों। केवल इसी विधि से विद्यार्थियों के हृदय में भारतीय आदर्शों के अनुकूल भावना जाग्रत हो सकती है और ऐसे चरित्र का विकास हो सकता है, जिसमें आदर्शवाद पर्याप्त मात्रा में पाया जाय। इसी उपाय से विद्यार्थियों को शिक्षा देने से उनमें भारतीयपन की भावना का जन्म हो सकता है, विशुद्ध देशभक्ति उत्पन्न हो सकती है और वे भारत की उपासना करना सीख सकते हैं।"

परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि हम अपनी शिक्षा-प्रणाली को सङ्कीर्ण बना दें। ऐसी राष्ट्रीयता, जो किसी जाति को संसार के अन्य भागों से पृथक् कर देती है, स्वयम् अपने ही लिए घातक है। उदाहरणार्थ भारत में इस समय जिस स्वाधीनता के भाव ने जन्म लिया है, उसका मुख्य आधार पश्चिमी शिक्षा ही है। यदि हम प्राचीनता के नाम पर पश्चिमी शिक्षा के इस सद्गुण से लाभ न उठाएँ तो हम दास-वृत्ति वाले ही बने रहेंगे और हमारा विकास बहुत-कुछ रुक जायगा। वास्तव में ज्ञान और विज्ञान किसी एक देश की नहीं, वरन् अन्तर्राष्ट्रीय सम्पत्ति हैं। प्राचीन भारत के निवासी किसी अन्य देश वालों से किसी नवीन विद्या और कला के सीखने में सङ्कोच नहीं करते थे। हमारे प्राचीन साहित्य से पता चलता है कि उन लोगों ने कितनी ही कलाएँ 'यवनों' से सीखी थीं। वास्तव में उन्नति का मूलमन्त्र यही है कि

अपनी राष्ट्रीयता की रक्षा करते हुए जो सद्गुण जहाँ मिले ग्रहण कर लिया जाय और उसे अपनी सभ्यता के अनुरूप साँचे में ढाल लिया जाय। वर्तमान समय में यूरोप के विज्ञान, शिल्पकला तथा राजनीति आदि से हम बहुत-कुछ लाभ उठा सकते हैं और उनकी सहायता से अपनी त्रुटियों को दूर कर सकते हैं, इसी प्रकार वहाँ की शिक्षा-संस्थाओं के सङ्गठन से भी हम कितनी उपयोगी बातें ग्रहण कर सकते हैं।

व्यवहारिक शिक्षा का अभाव

हमारी शिक्षा-प्रणाली में दूसरी बड़ी कमी व्यवहारिकता का अभाव है। हमारे स्कूलों और कॉलेजों में जो कुछ पढ़ाया जाता है, उसमें से बहुत थोड़ा अंश ऐसा होता है, जो सांसारिक जीवन में प्रवेश करने के बाद भी काम में आता है। अन्यथा अधिकांश बातें ऐसी ही होती हैं, जिन्हें विद्यार्थी परीक्षा-भवन तक ही याद रखते हैं और ज्योंही उनको डिग्री प्राप्त हो जाती है, तमाम रटी हुई बातें दिमाग़ से उड़ जाती हैं। अगर हमारी शिक्षा में कुछ तथ्य होता, तो वह अवश्य ही आजन्म हमारा साथ देती।

उदाहरणार्थ इस समय हमारे देश को जिस बात की सबसे अधिक आवश्यकता है, वह व्यवसाय की उन्नति है। बिना उद्योग-धन्धों की वृद्धि हुए हमारे देश की आर्थिक अवस्था नहीं सुधर सकती और आर्थिक अवस्था का सुधार हुए बिना उन्नति की कल्पना करना निरर्थक है। इस देश में जो लोग कल-कारख़ानों में काम करके जीविकोपार्जन करते हैं, उनकी संख्या केवल १७-१८ लाख होगी। ३५ करोड़ की आबादी के देश में यह संख्या कितनी कम है, इसकी कल्पना वे लोग सहज में कर सकते हैं, जिनको संसार के व्यवसायिक देशों का कुछ हाल मालूम है। इस देश के विद्यालयों में इस विषय की जो शिक्षा दी जाती है, वह बहुत अल्प और असन्तोषजनक है। अगर यूनीवर्सिटियाँ साहित्य और क़ानून की शिक्षा में जो समय और धन ख़र्च करती हैं, उसका एक अंश यन्त्र-कला, विद्युत, खान, धातु-विद्या तथा रसायन-शास्त्र की व्यवहारिक शिक्षा देने में ख़र्च करें, तो इस देश में कुछ ही समय में अनेक नवीन कारबारों की सृष्टि हो सकती है और जो लोग इस तरह के कारख़ाने खोलना चाहते हैं, उनको बहुत बड़ी रक़म ख़र्च करके विदेशों से विशेषज्ञ बुलाने के बजाय इसी देश में साधारण वेतन पर योग्य कर्मचारी मिल सकते हैं।

इसी प्रकार जिस खेती पर इस देश का मुख्य आधार है, उसकी दशा अत्यन्त शोचनीय हो रही है। यहाँ के किसान अपनी फ़सल के लिए केवल वर्षा पर आधार रखते हैं और इसलिए उनको साल में छः महीने निकम्मा रहना पड़ता है। अगर यहाँ के नवयुवकों को कृषि-सम्बन्धी रसायन-शास्त्र की शिक्षा दी जाय तथा मैशीनों और खाद का उचित रूप से उपयोग करना सिखलाया जाय, तो इस व्यवसाय की दशा में बहुत सुधार हो सकता है। इसके लिए सिंचाई की कला की शिक्षा का प्रबन्ध करना भी आवश्यकीय है।

नियन्त्रण

शिक्षा प्राप्त करने का एक बड़ा उद्देश्य अपने भीतर नियन्त्रण अथवा आज्ञा-पालन का भाव उत्पन्न करना है। जो जातियाँ इस समय उन्नति के शिखर पर पहुँची हुई हैं, उन सब में प्रायः यह गुण पाया जाता है। इङ्गलैण्ड, जर्मनी, जापान आदि किसी देश के युवकों को देखिए, आज्ञापालन का भाव उनमें अवश्य पाया जायगा। इङ्गलैण्ड ने जिस गुण की बदौलत अपना साम्राज्य संसार के कोने-कोने में फैला दिया है और अपने से कहीं अधिक विशाल देशों का स्वामी बना बैठा है, उसका प्रधान कारण वहाँ के निवासियों में इस भाव की प्रबलता ही है। यदि हम वास्तव में स्वभाग्य-निर्णय के अभिलाषी हैं और दूसरों की मातहती में रहने के बजाय अपने घर का स्वामी स्वयम् बनना चाहते हैं, तो हमको अङ्गरेज़ों से यह गुण अवश्य ग्रहण करना चाहिए। इस गुण के अभाव के कारण ही प्राचीन काल में हम अपने ऊपर आक्रमण करने वालों का प्रायः सफलतापूर्वक मुक़ाबला न कर सके थे। क्योंकि जिन लोगों में आज्ञापालन का अभाव है, उनमें सङ्गठन-शक्ति, एकता, उद्देश्य की एकाग्र साधना आदि गुण भी उत्पन्न नहीं हो सकते और इनके बिना विजय कैसे सम्भव हो सकती है? आज्ञापालन के भावयुक्त एक छोटा सा दल मनमाने ढङ्ग से कार्य करने वाले तथा असङ्गठित लोगों के एक बहुत

बड़े समूह के सहज में छक्के छुड़ा सकता है। कॉङ्ग्रेस के जनक समझे जाने वाले तथा भारतवासियों के सच्चे हितैषी मि० ह्यूम प्रायः यहाँ के राजनीतिक कार्यकर्ताओं की शिकायत करते हुए कहा करते थे कि "जिनको मैंने फ़ौलादी ज़ञ्जीर समझा था, वे सड़ी-गली रस्सियाँ निकले।" इस सम्बन्ध में देश के एक विद्वान् सम्पादक की निम्न-लिखित सम्मति सब श्रेणियों के व्यक्तियों और विशेषकर नवयुवकों को स्मरण रखने योग्य है :—

"इसमें सन्देह नहीं कि पिछले दिनों में हमारे देश ने शिक्षा और आन्दोलन के सम्बन्ध में बहुत-कुछ उन्नति की है, पर यदि हमारे भीतर आज्ञापालन का भाव न होगा और हम किसी योग्य नेता की अध्यक्षता में नियन्त्रित ढङ्ग से कार्य करना न सीखेंगे, तो हमारी अब तक की चेष्टा का कुछ भी फल न मिल सकेगा। श्री० रानाडे अपने देशवासियों से प्रायः कहा करते थे, और उनका कहना निरर्थक न था, कि अङ्गरेज़ इस देश में शासक और शिक्षक दोनों की हैसियत रखते हैं। अपनी त्रुटियों का ज्ञान होना; आत्म-शिक्षा तथा दूसरों से ज्ञान प्राप्त करने की आवश्यकता अनुभव करना, अपने नेता की आज्ञा मानना तथा उसमें भक्ति रखना; उचित निर्णय तथा अपने विवेक के अन्तर को समझना। जिससे अपने से अधिक अनुभवी लोगों के विचारों के प्रति 'आत्मा की पुकार' के नाम पर अवहेलना का भाव प्रदर्शित न किया जाय; अपने प्राचीन विनय तथा सम्मान के भाव की रक्षा करते हुए अपने कर्तव्य पर दृढ़ रहना—ये सब गुण मेरी सम्मति में आज्ञा-पालन से सम्बन्ध रखते हैं। इसी महान गुण को हमें परिश्रम-पूर्वक अपने राष्ट्र में उत्पन्न करना है; क्योंकि इसी के द्वारा देश-भक्त पुरुषों और महिलाओं का मातृभूमि के लिए किया गया अकथनीय बलिदान सार्थक हो सकेगा।"

देशभक्ति

वर्तमान समय में सभी स्वाधीन देशों की शिक्षा-प्रणाली में सबसे अधिक ध्यान जिस विषय पर दिया जा रहा है, वह बालकों के हृदयों में देशभक्ति का बीज बो देना है। इसी उद्देश्य को पूरा करने के लिए अधिकांश देश शिक्षा-कार्य को जहाँ तक सम्भव होता है, सरकारी अधिकार में रखने की चेष्टा करते हैं और बालकों को आरम्भ ही से बतलाया जाता है कि अपनी मातृभूमि के प्रति उनका क्या कर्तव्य है। ये बालक जब बड़े होते हैं तो उनको इस बात का सदैव ध्यान रहता है कि वे स्वयम् अथवा अन्य कोई व्यक्ति ऐसा काम न करे जिससे उनकी मातृभूमि का अपमान हो अथवा उसकी उन्नति में बाधा पड़े। वे सदैव अपने देश की स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण रखना तथा अपने देश-भाइयों के कल्याण की चेष्टा करना अपना कर्तव्य समझते हैं। जब संसार के स्वाधीन तथा सम्पन्न देश अपने बालकों को देशभक्ति की शिक्षा देना इतना आवश्यक समझते हैं, तो भारत जैसे परावलम्बी तथा अवनति के गढ़े में गिरे देश में इस पर जितना अधिक बल दिया जाय कम है। पर खेद है कि हमारे यहाँ के अधिकांश शिक्षक इस शब्द से भूत की तरह भागते हैं और बालकों के सामने कभी इसको उच्चारण भी नहीं करते। इतना ही नहीं, वरन् यदि संयोगवश किसी बालक में स्वभावतः इसका चिन्ह दिखलाई पड़ता है, तो उसे बलपूर्वक दबाने की चेष्टा की जाती है अथवा उसे अन्य बालकों से इस प्रकार अलग कर दिया जाता है, जिस प्रकार छूत के रोग वाले रोगी को सबसे पृथक् रक्खा जाता है। हमारा आशय यह नहीं है कि बालक अपनी पढ़ाई छोड़ कर राजनीतिक आन्दोलन में भाग लेने लगें अथवा वे उपद्रवकारियों के साथी बन जायँ, पर देशभक्ति का जो आदर्श मनुष्य के हृदय में श्रेष्ठ भावनाएँ उत्पन्न करता है तथा अपने भाइयों के कल्याण लिए अधिक से अधिक स्वार्थ-त्याग करने की शिक्षा देता है, उससे राष्ट्र के बालकों को वञ्चित रखना अवश्य ही अभाग्य का विषय है। ऐसे देशभक्ति के भाव से शून्य बालक जब बड़े होंगे, तो उनसे सिवा अपने स्वार्थ-साधन के किसी परोकार के कार्य की क्या आशा की जा सकती है?

चरित्र

अधिकांश सांसारिक व्यक्ति किसी देश या समाज के बड़प्पन की जाँच उसकी सम्पत्ति तथा वैभव से करते हैं, पर यह बड़ी भूल है। प्रत्येक जाति की सब से बड़ी सम्पत्ति उसके युवक-युवतियों का चरित्र-बल ही है। केवल ज्ञान प्राप्त कर लेने से ही किसी जाति की शक्ति नहीं बढ़ सकती। इसके लिए ऐसी शिक्षा की आवश्यकता

है, जो हमको वास्तव में मनुष्य बनावे। शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य छात्रवृत्ति प्राप्त करना अथवा बड़ी नौकरी पा लेना नहीं है, वरन् अपना चरित्र-निर्माण करना ही है। इस दृष्टि से हमारे यहाँ के विद्यार्थियों की अवस्था सन्तोषजनक नहीं समझी जा सकती। स्कूलों में पढ़ने वाले बालकों के चरित्र-निर्माण के लिए शिक्षा-विभाग के अधिकारियों ने कोई प्रभावशाली योजना नहीं बनाई है और कुछ व्यक्तिगत रूप से चेष्टा करने वाले शिक्षकों को छोड़ कर कहीं इस सम्बन्ध में चेष्टा नहीं की जाती। इतना ही नहीं, अनेक शिक्षक स्वयम् बालकों के चरित्र को पतित करने वाले होते हैं। वे उनको साहसी तथा पुरुषार्थी बनाने के बजाय कायर तथा दब्बू बनाते हैं और उनके सामने ऐसा आदर्श उपस्थित करते हैं, जिससे उनमें अनेक प्रकार के दुर्गुण उत्पन्न हो जाते हैं।

सुधार का मार्ग

इस देश की शिक्षा-प्रणाली का सुधार करने के लिए इस क्षेत्र में काम करने वाले व्यक्तियों को—चाहे वे सरकारी हों अथवा ग़ैर-सरकारी—दो बातों पर ध्यान देना आवश्यक है। एक तरफ़ जहाँ उनको अधिक परिमाण में शिक्षा फैलाने की आवश्यकता है, दूसरी तरफ़ यह भी ज़रूरी है कि वह शिक्षा वास्तव में फलदायिनी तथा भारतीय नागरिकों के चरित्र को उन्नत बनाने वाली हो। जैसा कि तमाम पढ़े-लिखे लोगों को विदित है ब्रिटिश भारत के निवासियों में से केवल ७॥ प्रति सैकड़ा किसी एक भाषा को साधारणतया पढ़-लिख सकने की योग्यता रखते हैं। इस दशा का मुक़ाबला जब अन्य देशों से किया जाता है तो ज़मीन-आसमान का अन्तर दिखलाई पड़ता है। इस देश की ३५ करोड़ की आबादी में से जहाँ एक लाख युवकों को विश्वविद्यालयों में शिक्षा दी जाती है, वहाँ पाँच-छः करोड़ की आबादी वाले जापान में ५२ हज़ार विद्यार्थी विश्वविद्यालय की शिक्षा प्राप्त करते हैं। यही दशा अमेरिका और इङ्गलैण्ड आदि की है। अमेरिका के विश्वविद्यालयों में तो विद्यार्थियों की संख्या ९ लाख से ऊपर है। इस दशा को देखते हुए यदि हम अपने देश को संसार के उन्नत राष्ट्रों के मुक़ाबले में बैठाने की अभिलाषा रखते हैं तो हमारा कर्त्तव्य है कि यहाँ की शिक्षा की गति को जहाँ तक बन सके तीव्र कर और स्कूलों की संख्या को कम से कम तिगुनी-चौगुनी कर दें। पर इस वृद्धि के साथ ही शिक्षा-प्रणाली का संशोधन करने तथा उसे सब प्रकार से श्रेष्ठ बनाने की बात भी याद रखनी आवश्यक है। क्योंकि केवल अक्षर-ज्ञान प्राप्त कर लेने से अथवा हिसाब-किताब सीख लेने से किसी व्यक्ति अथवा जाति की सच्ची उन्नति नहीं हो सकती। इसके लिए उन सब सद्गुणों को उत्पन्न करना आवश्यक है, जो मनुष्य को वास्तव में देश तथा समाज के लिए उपयोगी बनाते हैं।

卐 卐 卐

रूपराशि

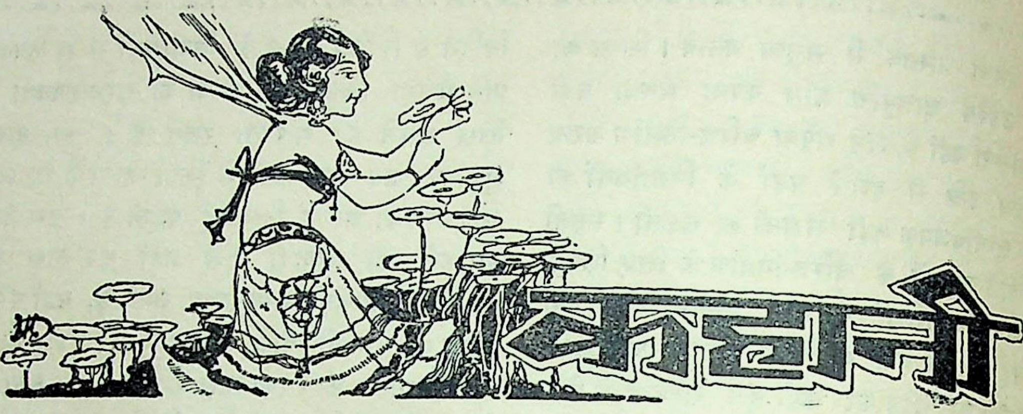
[श्री० रामकुमार वर्मा]

नव वसन्त का पुलकित मन।

कितने फूलों के भवनों में,
हँसता है ले नवजीवन।
प्रिये! शब्द प्रत्येक तुम्हारा,
है सुरभित सस्मित उपवन।

उसमें सुरभित साँस सभी......
(उफ़, कैसा है मतवालापन)।
यह उर बाल-विहँग है कैसे,
करे कलित कलरव कूजन?

केवल एक सुमन-यौवन,
रहने दो उसका कुसुमित धन!!



देवता

[डॉक्टर धनीराम प्रेम]

कला ने जब से होश सँभाला था, तभी से उसके कानों में इन शब्दों की झनकार सुनाई दी थी कि 'पति देवता है।' उसकी बहिनों के विवाह हुए थे, तब उसकी माता ने उन्हें यही पाठ पढ़ाया था। उसकी सहेलियाँ जब ससुराल के लिए विदा हो रही थीं, तब भी उसने इन्हीं पवित्र वाक्यों को सुना था। वह समझने लगी थी कि 'पति देवता है।' यह एक महामन्त्र था और विवाह के सूत्र में बँधने वाली प्रत्येक बालिका के लिए उस मन्त्र की दीक्षा लेना और जीवन-पर्यन्त उसे जपते रहने की आवश्यकता थी। इस प्रकार के वातावरण में पलने वाली अन्य बालिकाएँ इस मन्त्र को सुनती थीं और फिर भूल जाती थीं। कुछ उसे सुन कर उस पर हँस देती थीं। इसलिए नहीं कि उनके मन में उपेक्षा या घृणा के भाव उत्पन्न हो जाते थे, बल्कि इसलिए कि वे उस मन्त्र को एक रूढ़ि समझती थीं; एक लकीर, जिसको पीटना वे प्रत्येक स्त्री के जीवन का कर्तव्य समझती थीं, कुछ के लिए इस मन्त्र का समझना कठिन था, उसी प्रकार जिस प्रकार एक अबोध ब्राह्मण के लिए गीता के श्लोक। परन्तु न समझने पर भी वह ब्राह्मण नित्य उनका जाप करता है, केवल इसीलिए कि उसे वह आवश्यक समझता है, इस लोक के लिए तथा परलोक के लिए। उसी प्रकार वे बालिकाएँ भी बिना समझे अपने मूलमन्त्र का जाप करती थीं, केवल इसी-लिए कि ऐसा करना इहलोक तथा परलोक के लिए आवश्यक बताया जाता था।

परन्तु कला इन बालिकाओं से कुछ भिन्न थी। वह इस प्रकार के प्रश्नों पर कुछ विचार किया करती थी। उसने देवताओं के विषय में सुना था। वह जानती थी कि हिन्दुओं के तैंतीस कोटि देवता हैं, यद्यपि उसने नाम कुछ का ही सुना था। जिनके नाम उसने सुने थे, उनके विषय में कुछ और भी उसने सुना था। उसने अपनी बहिनों और कई सहेलियों के पतियों को भी देखा था। उसने कई बार इस प्रश्न पर विचार किया था कि इन पतियों और देवताओं में क्या समानता है। देवता लोग यश और कीर्ति का कोई काम कर चुके थे, परन्तु इन पतियों में से बहुत कम ऐसे हैं, जिन्होंने एक भी यश का काम किया हो। देवताओं की पूजा सभी करते थे, परन्तु पतियों की सेवा करना केवल उसकी स्त्री का ही कर्तव्य बताया जाता है। क्या विवाह करने से ही प्रत्येक पुरुष को स्त्री का देवता होने का अधिकार मिल जाता है? फिर स्त्री को विवाह होने के बाद पुरुष की देवी होने का अधिकार क्यों नहीं मिलता? देवताओं की स्त्रियाँ तो देवियाँ मानी जाती हैं, परन्तु इन नर-देवों की स्त्रियों को उस पद से क्यों वञ्चित रक्खा गया है? यह कुछ समझ में नहीं आता। क्या केवल लिङ्ग-भेद ही इन

सबका कारण है ? क्या पुरुष ही यह पद पाने का अधिकारी है, स्त्री नहीं ?

नित्य इसी प्रकार के विचार कला के मन में आते, वह उन पर विचार करती, परन्तु उसे इन बातों के सन्तोषजनक उत्तर न मिलते। एक दिन उसने अपनी माता से इस विषय पर वार्तालाप करने का साहस किया।

"माँ !"—उसने सिटपिटाते हुए कहा।

माँ ने उसकी ओर देखा। उसकी आँखें कला से पूछ रही थीं कि उसे क्या पूछना था।

"पति देवता होता है न ?"

"हाँ !"

"सबका पति ?"

"सबका !"

"चाहे वह कैसा ही हो ?"

"चाहे वह कैसा ही हो। जिसके साथ सात भाँवर पड़ गईं, वह कैसा भी हो, स्त्री का वह सदा देवता है।"

"स्त्री उसकी देवी नहीं ?"

"भला यह कैसे हो सकता है ? स्त्री तो अपने पति के चरणों की दासी होती है।"

"पति का इतना ऊँचा दर्जा और स्त्री का इतना नीचा ?"

"यह धर्मशास्त्र की आज्ञा है !"

"क्या यह बदल नहीं सकती ?"

"कैसी बातें करती है ? धर्म-कर्म की बातें भी बदला करती हैं ? जो बदल जाय वह धर्म कैसा ? जो पुरखा-पुश्त से चली आई है, उस मर्यादा का तो सदा पालन करना ही पड़ेगा। ख़बरदार, जो फिर ऐसी बातें ज़बान पर लाई। जो शास्त्रों के विरुद्ध बातें करते हैं, उन्हें नरक में भी स्थान नहीं मिलता !"

कला चुप हो गई। 'पति देवता है,' यह धर्मशास्त्र की आज्ञा है। धर्मशास्त्र की बात अमिट है। उसे कोई बदल नहीं सकता। उसने फिर कभी इस प्रकार की जिज्ञासा नहीं की। वह समझ गई कि इस प्रचलित प्रथा का उसे पालन करना ही पड़ेगा।

२

कला के विवाह का दिन आया। उसके लिए जिस देवता की सृष्टि की जा रही थी, उसका उसे कुछ भी पता न था। जिन देवताओं की लोग पूजा करते हैं, उनके विषय में थोड़ा-बहुत पहले से ही अवश्य जानते हैं। कोई अपने देवता के किसी गुण पर रीझ कर उसकी पूजा करता है, कोई उसके द्वारा होने वाले उपकार की आशा से उसका भक्त बनता है। परन्तु कला को न तो अपने देवता के किसी गुण का पता था और न वह यही जानती थी कि उस देवता के द्वारा उसका क्या उपकार हो सकेगा। उसकी माता उसके हृदय में एक अनजाने और अनदेखे देवता के प्रति अन्धविश्वास और अन्ध-श्रद्धा का भाव भर रही थी। वह उसे उसी मूलमन्त्र का जाप बता रही थी, जिसका उपदेश प्रत्येक नव-विवाहिता युवती को दिया जाता था। कला के कानों में वही शब्द गूँजने लगे—'पति देवता है, पति देवता है।' वह जिस समय अपने सगे-सम्बन्धियों से विदा होकर अपने देवता के साथ जा रही थी, उस समय उसकी माता ने उसके कानों में फिर वही मूलमन्त्र फूँका—

"पति देवता है, बेटी ! इस बात को सदा याद रखना।"

"चाहे वह कैसा ही हो ?"

"कैसा ही हो !"

"चाहे वह दुराचारी हो, पर-स्त्री-गामी हो, शराबी हो ?"

"देवता के दोष देखने का भक्त को अधिकार नहीं !"

"उसकी पूजा करना ही उसका धर्म है ?"

"हाँ ! वह सब कुछ देती है, पर किसी चीज़ की प्राप्ति की प्रत्याशा नहीं कर सकती। उसके पास जो कुछ है, देवता की पूजा के लिए है !"

"देवता को पूजा की जो सामग्री चाहिए, वही चढ़ाना उसका धर्म है ?"

"वही !"

स्त्री के रूप में उसका क्या धर्म है, इसकी शिक्षा उसे मिल गई। उसने वह गाँठ बाँधी। कुछ कहने-सुनने का कुछ तर्क करने का उसे अधिकार ही नहीं। वहाँ अन्ध-श्रद्धा से ही काम चलेगा। जिस जीवन को वह अपनाने जा रही थी, वहाँ तर्क और अविश्वास का काम नहीं। उनसे तो उस जीवन के ही नष्ट होने का डर था। उसका कर्तव्य माता के बताए हुए मार्ग पर आँखें बन्द करके चलना था। अपना सर्वस्व, अपना शरीर, अपनी

आत्मा और यदि इनसे परे भी कुछ हो तो वह भी, देवता की इच्छानुसार चुपचाप उसके ऊपर चढ़ा देना ही उसका धर्म था। उसने उस कर्तव्य को पूरा करने की, उस धर्म का पालन करने की प्रतिज्ञा कर ली।

३

कला ससुराल पहुँची। उसका पति अधेड़ आयु का था, धनिक था। ऐसे विवाहों में अधेड़ आयु और धन, इन दोनों का गहरा सम्बन्ध होता है और आयु जितनी ही बढ़ती जाती है, विवाह के लिए उतना ही अधिक धन होना आवश्यक हो जाता है। लड़की के पिता जब वर के घर में धन का ढेर देखते हैं, तो वे वर की आयु का हिसाब भूल जाते हैं। साठ वर्ष की आयु फिर उनकी समझ में ४० की ही रह जाती है। लड़की का विवाह वास्तव में मनुष्य से नहीं, धन से होता है। इसी प्रकार का विवाह कला का था। उसके पति की आयु इतनी नहीं थी कि वह वृद्ध कहा जा सके, परन्तु कला के पिता ने उसके रुपए के लिए ही कला का विवाह उसके साथ किया था।

यह सब कुछ होते हुए भी कला अपनी माता के मन्त्र के अनुसार अपना जीवन बिताना चाहती थी। वह पति को वास्तव में देवता समझना चाहती थी और उसकी पूजा करना चाहती थी। पहले दो दिनों में ही उसे अपने पति के विषय में बहुत-कुछ विदित हो गया था। वह देवता हो सकता था, क्योंकि देवता कोई भी हो सकता है। परन्तु वह एक आदर्श पति नहीं हो सकता था। एक नवविवाहिता पत्नी अपने पति में जिन आदर्शों की, जिन भावों की कल्पना करती है, उनमें से एक भी कला को अपने पति में नहीं दिखाई देता था। जिन गुणों पर रीझ कर स्त्री स्वयं ही, स्वेच्छा से पति को देवता समझ कर उसकी पूजा करने लगती है, उसके लिए जीवन स्वाहा करने को तैयार होती है, उन्हीं गुणों को कला भी अपने पति में देखना चाहती थी। यह उसके लिए स्वाभाविक था। परन्तु वे गुण उसके पति में नहीं थे। फिर भी कला ने उसकी पूजा करके उसे प्रसन्न रखने का सङ्कल्प किया। उसके देवता में और मन्दिर के देवता में विशेष अन्तर नहीं था। यह देवता चलता-फिरता था, वह देवता पत्थर का था, अचल था। उस देवता की पूजा लोग श्रद्धा के कारण करते थे, इस देवता की पूजा श्रद्धा न होने पर भी केवल रूढ़ि के कारण करनी पड़ती थी।

विवाह करके ससुराल आए हुए कला को कई दिन हो गए थे। अभी तक उसे अपने पति से स्नेह की एक दृष्टि भी नहीं मिली थी, प्रेम का एक शब्द भी सुनाई नहीं पड़ा था। उस दिन सन्ध्या को उसने स्वादिष्ट भोजन बनाया—वह भोजन प्रेम से बनाया गया था और सावधानी से भी। भोजन समाप्त करके कला पति की प्रतीक्षा कर रही थी। समय व्यतीत होने लगा, परन्तु पतिदेवता न आए। वह पहला दिन था, जब उन्हें आने में इतनी देर हुई। इधर-उधर का सोच-विचार करती हुई कला भोजन के पास ही चौके में बैठी रही। आठ बजे, नौ बजे, दस बजे। वह उसी प्रकार बैठी रही। आख़िर अब तक न आने का कारण क्या हो सकता है? कभी वह व्याकुल होती, कभी सन्देह उत्पन्न होता, कभी स्वयं ही समाधान हो जाता। ग्यारह बजे और द्वार पर शब्द हुआ। उसने दौड़ कर द्वार खोला।

जो कुछ उसने देखा, उससे वह किंकर्तव्य-विमूढ़ सी रह गई। उसे अपने पति को, अपने देवता को इस दशा में देखने की आशा नहीं थी। वह लड़खड़ा कर गिरता-पड़ता चल रहा था। आँखें जलते हुए अङ्गार की तरह लाल हो रही थीं। जो कुछ कहना चाहता था, वह स्पष्ट नहीं कह सकता था। उसे अपना और पराया होश नहीं था। वह ख़ूब पीकर आया था।

कला के होश उड़ गए। द्वार बन्द करके बड़ी कठिनता से वह उसे भीतर लाई। पलङ्ग पड़ा था, उस पर उसे बैठा दिया और ठण्डा पानी मुँह पर डाल कर पङ्खा झलने लगी। वह झल्ला उठा।

"कुछ मत करो, यहाँ से चली जाओ!"—वह चिल्ला कर कर्कश स्वर में बोला।

"आपका जी अच्छा है?"—कला ने पूछा।

"तुमसे कह दिया, तुम मुझे यहीं छोड़ दो!"

"आपका जी ठीक हो जाय, तब चली जाऊँगी!"

"मैं जी ठीक होना नहीं चाहता। मैं सो जाऊँगा!"

"बिस्तर बिछा दूँ?"

"नहीं!"

"तो कुछ खाकर सोइए। खाना बना हुआ रक्खा है।"

"खाने को चूल्हे में डाल दो और ऊपर से तुम गिर पड़ो!"

कह कर देवता ने पलङ्ग पर लम्बी तानी। कला ने भी भोजन न किया। बहुत देर तक वह आँसू बहाती हुई इस घटना पर विचार करती रही। यही वह व्यक्ति है, जिसे वह देवता समझने का उद्योग कर रही है। उसे अपने देवता से और अपने से घृणा होने लगी। परन्तु फिर उसे याद आया—"देवता के दोष देखने का भक्त को अधिकार नहीं।" उसने अपनी विवशता पर एक दीर्घ निश्वास ली और एक ओर पड़ रही।

४

प्रातःकाल हुआ। देवता का ख़ुमार उतर चुका था। कला ने नाश्ता तैयार किया और देवता के सामने रख दिया। कुछ देर तक दोनों चुप रहे। फिर कला ने साहस बटोर कर रात्रि का विषय छेड़ा।

"मुझे पता नहीं था कि आप शराब पीते हैं!"—वह बोली।

"नहीं था? लेकिन अब तो पता लग गया!"

"हाँ! परन्तु × × ×"

"बोलो, परन्तु क्या?"

"परन्तु यह ठीक नहीं। आप इसे पीना छोड़ दीजिए!"

"छोड़ दूँ? क्यों?"

"क्योंकि यह व्यसन अच्छा नहीं। जब तक मैं नहीं आई थी, तब तक आप चाहे जो कुछ करते थे, परन्तु अब × × ×।"

"अब कुछ अन्तर हो गया?"

"क्यों नहीं? आपके जीवन के साथ अब मेरा जीवन भी तो बँध गया है।"

"तुम्हारा जीवन बँध गया है, परन्तु घर के भीतर के लिए ही; घर के बाहर के लिए नहीं। घर के बाहर मैं सब कुछ हूँ। जो चाहूँगा, सो करूँगा। तुम्हारे साथ मैंने विवाह इसलिए नहीं किया कि मैं अपने कामों में तुमसे सलाह लूँ। केवल इसलिए किया है कि तुम घर की रखवाली करो, उसे सँभालो। तुम जो कुछ चाहती हो वह घर में है। जो चाहो, खाओ; जो चाहो, पियो; जो चाहो, पहनो। परन्तु घर के भीतर ही। बाहर की चिन्ता छोड़ दो, मेरी चिन्ता छोड़ दो! अगर तुम्हें मेरी कोई बात अच्छी नहीं लगती, तो आँखें बन्द कर लो, परन्तु कुछ कहो मत!"

"कहूँ नहीं? सब कुछ देख कर भी अन्धी बनी रहूँ? आख़िर हूँ तो मैं आपकी पत्नी!"

"तुम पत्नी हो, ठीक है। परन्तु मालूम है, मैं कौन हूँ?"

"पति!"

"पति कौन होता है?"

"देवता!"

"देवता से भी बढ़ कर भगवान। जानती हो देवता का क्या अधिकार है?"

"पूजा!"

"बस यही तुम्हारा कर्त्तव्य है! पूजा करो, बिना कुछ कहे, बिना कुछ पूछे, बिना कुछ सोचे!"

कला चुप हो गई! वह करती भी क्या! जिस मूलमन्त्र की उसे शिक्षा मिली थी, यह उसी की पुनरावृत्ति थी।

५

बात बढ़ती हो गई। कला के पिता ने जिस धन के लिए कला को उसके देवता को सौंपा था, वह धन भी न रहा, और अपने सारे जीवन को जिस देवता के लिए कला ने मन्दिर बना डाला था, वह भी ख़ाली हो गया। कला का देवता किसी दूसरी की पूजा अधिक पसन्द करता था। वह वहीं जाकर विराजमान हो गया। मानों कला उसकी कोई है ही नहीं। उसे कला की पूजा पसन्द न थी। परन्तु वह कला को दर्शन तो दे देता। कला को उसके लिए भी भटकना पड़ता था। उसका पति, उसका देवता! उसके लिए उसे सब कुछ करने का आदेश दिया गया था। उसी की पूजा, उसी की सेवा करना उसका धर्म था। वह धर्म अमिट था, अखण्ड था, अपरिवर्तनीय था। कला उस धर्म से बद्ध थी, इसीलिए उस देवता से भी बद्ध थी, जो राक्षसी कृत्य कर रहा था; जिसे किसी मन्दिर में तो क्या, मन्दिर की किसी नाली में भी स्थान पाने का अधिकार न था।

एक दिन उसे देवता के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उस दिन कला ने उसके सामने अपना हृदय खोल कर धर दिया।

"मैंने कौन सा अपराध किया है, जो आप मुझे इस प्रकार त्याग रहे हैं? क्या मैंने देवता समझ कर सच्चे हृदय से, लगन से, विशुद्ध सङ्कल्प से आपकी पूजा नहीं की?"—उसने पूछा।

"की है, परन्तु!"

"परन्तु?"

"मेरा हृदय उस पूजा से सन्तुष्ट नहीं होता।"

"मेरी पूजा से सन्तुष्ट नहीं होता? एक कुलीन ललना, अपनी धर्मपत्नी की सच्ची पूजा से आपको सन्तोष नहीं होता?"—देवता ने कुछ उत्तर न दिया।

"और उस वाराङ्गना की पूजा से सन्तोष होता है, आनन्द का आभास होता है?"—उसने फिर पूछा।

"यह हृदय का सौदा है कला!"

"उस वाराङ्गना की पूजा में क्या विशेषता है?"

"हृदय को अपनी ओर आकर्षित करने की विशेषता है!"

"वह शायद इसलिए कि वह एक कुल-ललना नहीं है। क्योंकि वह एक ही वस्तु—रूप, यौवन, सतीत्व—सौदा की भाँति सबको बेचने को तैयार हो जाती है!"

"पूजा भी एक सौदा है। पूजा के लिए भी देवता को इच्छित पदार्थों की आवश्यकता है! जहाँ उसे वे मिलते हैं, वहीं की पूजा वह स्वीकार करता है!"

"पूजा भी एक सौदा है!" देवता के चले जाने पर कला इसी वाक्य पर विचार करती रही! सच्चे हृदय से की हुई पूजा का कोई मूल्य नहीं। पूजा के भाव का आदर नहीं। दिखावटी चढ़ावे के पदार्थ ही सबको पसन्द हैं।

"अच्छा, देवता! तो मैं भी तुम्हारी पूजा के लिए उन्हीं पदार्थों को जुटाऊँगी, जिन्हें तुम पसन्द करते हो! धर्म की लकीर पीटूँगी। शास्त्रों की आज्ञा मानूँगी। अन्त तक देवता को प्रसन्न करने का प्रयत्न करूँगी। धर्म! देवता! पूजा! सौदा!"

वह चिल्ला-चिल्ला कर यह कहने लगी। उस समय उसके मुख पर हँसी थी और नेत्रों में आँसू।

६

जब तक देवता में वरदान देने की शक्ति रही, तब तक पुजारी ने मन से, तन से पूजा की। परन्तु जब धन-रूपी वरदान देने की शक्ति का नाश हो गया, तो वाराङ्गना ने देवता को मन्दिर से बाहर निकाल कर फेंक दिया।

घूमते-घूमते देवता ने दूसरे मन्दिर का द्वार खटखटाया। द्वार खुला। नीचा सिर किए देवता कुर्सी पर बैठ गया।

"शराब!"—एक छोटी सी प्याली सामने सरका कर युवती बोली।

देवता की निद्रा भङ्ग हुई। उसने आँखें ऊपर उठा कर देखा! यह क्या? उसने आँखें मल कर फिर उधर देखा!

"कला!"—वह चिल्ला उठा!

"हाँ, मैं कला हूँ, देवता! नई पुजारिन के रूप में!"

"यह मैं क्या देख रहा हूँ?"

"क्या यह रूप पसन्द नहीं है? तुम्हीं ने तो कहा था कि तुम्हें इस प्रकार की पूजा पसन्द है!"

"ओह भगवान! तुम यहाँ × × × एक × × ×"

"× × × वेश्या!"

"नहीं, कला, यह न कहो! तुम मेरी स्त्री हो! मेरी स्त्री एक वेश्या!"

"क्या बिगड़ गया! जो अन्य वेश्याएँ हैं, वे भी तो किसी की स्त्रियाँ रही होंगी। तुम्हें तो पूजा का रूप चाहिए न! तुम रूप, वासना, कुलटापन, दिखावटी हाव-भाव के भूखे थे। वह तुम्हें अब मिल रहे हैं। अब तक अन्य वाराङ्गना उन्हें दे रही थी, अब तुम्हारी स्त्री दे रही है।"

वह पास आ गई। देवता दोनों हाथों से सिर पकड़ कर सोचने लगा।

"सोच क्या रहे हो? शराब पियो! मैं तो बहुत दिनों से इस दिन की प्रतीक्षा कर रही थी। घर में मेरी पूजा पसन्द न थी। लो, यहाँ इसे अपनाओ!"

"चुप रहो, कला! ओह, मैंने यह क्या कर दिया! मैं नहीं समझता था कि मेरा पाप इस प्रकार वृद्धि पाएगा। मैं नहीं जानता था कि मैं स्वयं ही अपनी स्त्री को वेश्या बना दूँगा। मैं यह कैसा अनर्थ कर बैठा!"

"अनर्थ कैसा? यह तो धर्मशास्त्र की आज्ञा है। प्राचीन प्रथा है। पति देवता होता है, स्त्री दासी। वह स्त्री का चाहे जो कुछ कर सकता है। स्त्री को तो पति को प्रसन्न रखने की सदा चेष्टा करनी चाहिए, चाहे उसे कुछ भी करना पड़े।"

"इसमें तुम विश्वास करती हो?"

"क्यों नहीं? मुझे जन्म से यही सिखाया गया है।"

"अब भी विश्वास करती हो?"

"हाँ?"

"सच कहती हो?"

"देवता के सामने झूठ नहीं बोलूँगी।"

"अब भी मुझे देवता समझती हो?"

"हाँ!"

"मेरे लिए जो चाहूँ कर सकोगी?"

"हाँ!"

"चाहे वह कैसा ही कठिन कार्य हो?"

"जो कुछ कर चुकी हूँ, इससे कठिन और क्या हो सकेगा?"

"मृत्यु?"

"नहीं!"

"तो मेरे साथ, मेरे लिए प्रसन्नता से मर सकोगी?"

"अवश्य!"

"शराब के दो प्याले भरो!"

कला ने प्याले भरे। पति ने एक पुड़िया दोनों में डाल दी।

"उठाओ इसे।"

दोनों ने प्याले उठा कर होठों से लगाए।

"साथ-साथ नरक को!"—पति बोला।

"देवता के साथ कहीं भी।"

"जो कुछ इस जन्म में और इस समाज में न कर सके, वह अगले जन्म में और किसी अन्य समाज में करेंगे!"

दोनों ने प्याले खनकाए। दोनों ने एक-दूसरे का हाथ कस कर पकड़ लिया। दोनों ने एक-दूसरे की ओर हँसते हुए देख कर विष के प्याले गले से नीचे उतार दिए।

विस्मरण

[श्रीयुत 'निर्मल']

भूलि गई सखि! पिय की डगरिया,
ढूँढ़त-ढूँढ़त हार गई थकि, ना जान वह कौन नगरिया।
जग जञ्जाल विपति की मारी,
अन्त मिलन की है तैयारी;
सँकरी गलिन गड़त पग कँकरी, सूझत मोहिं न कतहुँ कगरिया।
ऊपर चाँद उदय भए तारे,
अन्तर में वह ज्योति कहाँ रे;
अटपट चाल न सँभरत नेकहुँ, सजनी! छलकति सुरति-गगरिया।

द्वितीय चैम्बर

[श्री० प्रभुदयाल जी मेहरोत्रा, एम० ए०]

आजकल शासन-विधान विज्ञान में अन्य कोई प्रश्न इतना जटिल एवम् विवाद-ग्रस्त नहीं, जितना कि द्वितीय चैम्बर का प्रश्न है। राजनीति के विद्वानों में इस प्रश्न पर तीव्र मत-भेद है। एक ओर तो लोगों का कहना है कि देश को भावी विपत्ति से बचाने के लिए द्वितीय चैम्बर ही एकमात्र उपाय है, दूसरी ओर राजनीति-विशारदों की धारणा है कि यह एक व्यर्थ का आडम्बर है। आजकल भारतवर्ष में भी इस प्रश्न पर विवाद चल रहा है और ऐसा मालूम होता है कि भावी शासन-विधान में यहाँ भी द्वितीय चैम्बर की स्थापना होगी। अतएव इस विषय पर किञ्चित् प्रकाश डालना अनुपयुक्त और असामयिक न होगा।

आज से कुछ दिन पूर्व इङ्गलैण्ड में भी वहाँ की द्वितीय चैम्बर अर्थात् 'हाउस ऑफ़ लार्डस्' को लेकर ख़ूब चख़चख़ मच चुकी है। सन् १९१७ में तो इस विवाद ने इतना उग्र रूप धारण कर लिया था कि तत्कालीन प्रधान मन्त्री ने द्वितीय चैम्बर को सुधारने के प्रश्न पर विचार करने के लिए एक समिति नियुक्त की थी। इस समिति में पार्लामेण्ट की दोनों सभाओं (हाउस ऑफ़ लार्डस् और हाउस ऑफ़ कॉमन्स) के विभिन्न दलों के तीस प्रतिनिधि थे। वाई काउण्ट ब्राइस इसके सभापति थे, जिनके नाम पर इसको 'ब्राइस कॉन्फ्रेन्स' कहते हैं। ख़ूब विचार करने के पश्चात् उपर्युक्त कॉन्फ्रेन्स ने द्वितीय चैम्बर का निम्न-लिखित कार्य-क्षेत्र निर्धारित किया :—

(१) प्रथम चैम्बर द्वारा पास किए हुए बिलों को तर्क की कसौटी पर कसना और उन पर पुनर्विचार करना।

(२) विवाद-रहित बिलों को प्रस्ताव का रूप प्रदान करना।

(३) किसी बिल के स्वीकृत होने में इतनी देर लगा देना कि उस पर जनता अच्छी तरह विचार कर सके।

(४) वैदेशिक नीति आदि महत्त्वपूर्ण तथा अत्यावश्यक प्रश्नों पर स्वतन्त्रतापूर्वक विचार करना—विशेषतः ऐसे अवसरों पर, जबकि प्रथम चैम्बर के पास समय का अभाव हो।

इन अधिकारों के कारण द्वितीय चैम्बर की शक्ति और भी बढ़ गई। पहले प्रथम चैम्बर के बिलों पर वादविवाद करने की स्वतन्त्रता पर अनेक प्रतिबन्ध लगे थे, परन्तु अब नवीन अधिकार के अनुसार वह प्रतिबन्ध उठ गया। द्वितीय चैम्बर को दूसरा अधिकार इसलिए दिया गया कि प्रथम चैम्बर के समय की बचत हो। क्योंकि द्वितीय चैम्बर जब ऐसे बिलों पर ख़ूब विचार कर लेती है, तब उस पर पुनर्विचार करने में प्रथम चैम्बर को अपना अधिक समय नहीं व्यय करना पड़ता। तीसरा अधिकार उसे इसलिए दिया गया कि ऐसे बिल, जिन पर जनता में तीव्र मतभेद हो, जिसका सम्बन्ध किसी विधान या किसी गूढ़ क़ानूनी सिद्धान्त से हो, उसके निर्णय में जान-बूझ कर इतनी देर लगा देना, ताकि जनता को उस पर अच्छी तरह विचार कर लेने का अवसर प्राप्त हो जाय। यह तीसरा अधिकार बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। अस्तु—

किसी देश के शासन-विधान में द्वितीय चैम्बर की योजना एक अत्यन्त भद्दी एवम् गोरखधन्धा सी है। क्योंकि शासन-विधान का सरल तथा आडम्बरहीन होना ही उसका विशेष गुण है। द्वितीय चैम्बर जैसी ख़र्चीली संस्था का समर्थन केवल देश को ख़तरों से बचाने के नाम पर हो सकता है। इसके समर्थकों का कहना है

कि निर्वाचन के समय तो प्रथम चैम्बर पर जनता का पूर्ण अधिकार रहता है। परन्तु उसके बाद ही यह अधिकार कम हो जाता है और ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है, त्यों-त्यों वह क्षीण होता जाता है ; यहाँ तक कि अन्त में जनता का कोई अधिकार ही नहीं रह जाता। प्रथम चैम्बर मनमानी कार्रवाई कर सकती है और उसे रोकने के लिए द्वितीय चैम्बर की आवश्यकता पड़ती है। परन्तु ये लोग यह बात भूल जाते हैं कि भावी निर्वाचन का ध्यान ही प्रथम चैम्बर के होश-हवास ठिकाने रखने के लिए पर्याप्त है। आज से प्रायः पचास वर्ष पूर्व वाल्टर बेगहार नाम के एक विद्वान ने लिखा था कि भविष्य में निर्वाचन का भय ही 'हाउस ऑफ़ कॉमन्स' को रास्ते पर रखने के लिए यथेष्ट है।

अनुभवी राजनीतिज्ञों का कहना है कि जनता अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों के कार्यों को अब अधिक ध्यान से देखती है और इसके लिए उत्सुक रहती है कि वे लोग कोई अनुचित काम न करने पावें। जनता के पास अपना मत प्रगट करने के साधन भी पहिले की अपेक्षा अब बहुत अधिक हो गए हैं। साथ ही अपने मतानुसार अपने प्रतिनिधियों को चलाने के साधनों की भी अब उनके पास कमी नहीं है। फलतः किसी भी प्रथम चैम्बर का यह साहस नहीं हो सकता कि वह जनता की इच्छाओं तथा भावनाओं को पददलित कर दे।

ऐसी दशा में जनता की इच्छा के विरुद्ध प्रथम चैम्बर के चलने के प्रयत्न पर द्वितीय चैम्बर का अस्तित्व निर्धारित करना तथा उसकी उपयोगिता प्रमाणित करना अत्यन्त निस्सार दलील है। ख़र्च का इतना बोझ उठाने के लिए यह कल्पित भय पर्याप्त नहीं है।

एक बात और भी है। गवर्नमेण्ट के आवश्यकीय तथा महत्त्वपूर्ण निर्णय धारा-सभाओं द्वारा न होकर शासकों द्वारा होते हैं। इसलिए जनता को धारा-सभाओं के निर्णयों से नहीं, बल्कि शासकों की स्वेच्छाचारिता से बचाने की आवश्यकता है। परन्तु कितने द्वितीय चैम्बर ऐसे हैं, जो शासकों पर अपना अधिकार रखते हैं?

यदि हम ब्रिटिश साम्राज्य के कुछ द्वितीय चैम्बरों के इतिहास का विवेचन करें, तो उनकी निस्सारता और भी स्पष्ट हो जाती है। कनाडा की द्वितीय चैम्बर पचास वर्ष की पुरानी संस्था है। इसके पचास वर्षों के इतिहास में, सदस्यों के निजी बिलों में समय-समय पर इसने अनेक संशोधन किए हैं। अनेक अवसरों पर ऐसे बिलों को इसने रद्द भी किए हैं। साथ ही समय-समय पर सरकारी बिलों को भी अस्वीकृत किया है और दलबन्दी के अवसरों पर तो यह एक मुर्दा संस्था ही प्रमाणित हुई है। सन् १८७८ से लेकर १८९६ तक तथा १९०० से लेकर १९१२ तक किसी विषय पर इसने चूँ तक नहीं किया। इसका प्रधान कारण यह था कि प्रथम अवसर पर वहाँ सर जान मेकडॉनल्ड आदि का बोल-बाला था और दूसरे मौक़े पर सर विलफ़्रिड लारियर की पार्टी ही सब कुछ थी। इन दोनों की पार्टियों का इतना दबदबा था कि उनके सामने द्वितीय चैम्बर को सदा सर झुका देना पड़ता था। दोनों अवसरों पर प्रधान-मन्त्री द्वारा नियुक्त किए हुए सदस्यों की प्रधानता थी। फलतः यद्यपि कनाडा की द्वितीय चैम्बर के अधिकार बहुत हैं, पर वे सब केवल नाम-मात्र के लिए हैं और वास्तव में कनाडा का शासन एक चैम्बर द्वारा ही होता है। हाँ, नए शासन के प्रारम्भ में कुछ काल तक द्वितीय चैम्बर अवश्य अपने जीवन का परिचय देती हैं, क्योंकि उस समय विरोधी दल की उसमें अधिकता रहती है। परन्तु फिर शीघ्र ही सारा विरोध ठण्डा पड़ जाता है।

ऑस्ट्रेलिया के द्वितीय चैम्बर में भी दलबन्दी का उतना ही बोलबाला रहता है, जितना कि कनाडा के द्वितीय चैम्बर में। ऑस्ट्रेलिया के द्वितीय चैम्बर का कुछ विशेष कार्य-क्षेत्र निर्धारित किया गया था। पर अपने इस उद्देश्य में सफलता प्राप्त करने में वह पूर्णतया असमर्थ रही है। यही नहीं, अपने अन्य आम कार्यों में भी उसने कुछ भी सफलता प्राप्त नहीं की। ऑस्ट्रेलिया कॉमनवेल्थ के इतिहास में पन्द्रह बार 'रेफ़रेण्डम' का प्रयोग किया गया है। यानी पन्द्रह बार विशेष प्रश्नों पर जनता की राय ली गई है। तेरह बार विधानों के संशोधनों पर तथा दो बार गत महायुद्ध के समय अनिवार्य सैनिक शिक्षा पर। इनमें से दो प्रस्तावों का तो जनता ने समर्थन किया था और अन्य तेरह का विरोध। किसी भी अवसर पर जनता दलबन्दी से प्रभावित नहीं हुई और प्रत्येक दल के अनुचित प्रस्तावों को उसने समय-समय पर ठुकरा दिया। इससे यह स्पष्ट है कि महत्त्वपूर्ण

प्रश्नों को हल करने के लिए द्वितीय चैम्बर की कोई आवश्यकता ही नहीं है, क्योंकि यह काम जनता स्वयं बड़ी ख़ूबी से कर लेती है।

न्यूज़ीलैण्ड के अनुभव से पता लगता है कि द्वितीय चैम्बर के सदस्यों को आजीवन के लिए नामज़द करने की अपेक्षा यह कहीं अच्छा है कि वे कुछ वर्षों के लिए ही नामज़द किए जावें। परन्तु इससे भी बुराइयों से छुट्टी नहीं मिलती और दोनों का परिणाम बहुत-कुछ मिलता-जुलता होता है। क्योंकि जब एक मन्त्रि-मण्डल अधिक काल तक शासनारूढ़ रहता है, तब कुछ विशेष काल के लिए नामज़द किए हुए सदस्य आजीवन के लिए नामज़द किए हुए सदस्यों की अपेक्षा मन्त्रि-मण्डल का मुँह अधिक ताका करते हैं। कारण यह होता है कि पुनः नामज़द होने के लिए उन्हें मन्त्रि-मण्डल की कृपा पर ही निर्भर रहना पड़ता है। फलतः जब एक मन्त्रि-मण्डल पदच्युत होता है, तो वह एक ऐसा द्वितीय चैम्बर छोड़ जाता है, जिसमें उसकी पार्टी के लोगों तथा पेन्शनरों की अधिकता रहती है।

उपर्युक्त तीनों उपनिवेशों के द्वितीय चैम्बरों के इतिहास से पता चलता है कि इनमें से कोई भी अपने उद्देश्य में सफल नहीं हुआ है। इस असफलता का कारण भी स्पष्ट है। यदि एक द्वितीय चैम्बर दलबन्दी के दलदल में फँस जाता है, तो वह विरोधी दल के कार्यों में अत्यन्त अधिक बाधा पहुँचाता है और जब उसी की पार्टी शासनारूढ़ होती है, तब वह एकदम चुप्पी साध लेता है; यहाँ तक कि उसके अस्तित्व का पता ही नहीं चलता। प्रथम चैम्बर को जनता की इच्छा के अनुकूल चलने के लिए द्वितीय चैम्बर एक अपर्याप्त साधन है। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए राजनीति-विज्ञान ने हमें और साधन बता दिए हैं। प्रथम चैम्बर जनता के मत की अवहेलना न करने पावे, इसका सब से सरल उपाय यह है कि उसकी अवधि कम कर दी जावे।

द्वितीय चैम्बर के दो प्रधान कार्य हैं—(१) क़ानूनों पर पुनः विचार करना और (२) अल्पमत के अधिकारों की रक्षा करना। इसके लिए दो बातें आवश्यकीय हैं। प्रथम, जिस बिल पर विचार हो रहा हो, उसके सिद्धान्त के अन्य अनुकूल प्रस्तावों पर विचार करने के लिए प्रथम चैम्बर को बाध्य करना और द्वितीय, चैम्बर को यह अधिकार न हो कि वह किसी बिल को या उसकी नीति को रद्द कर दे। दक्षिण अफ़्रीका तथा नार्वे के द्वितीय चैम्बरों में उपर्युक्त गुण पाए जाते हैं। अतः इन चैम्बरों का विधान अच्छी तरह समझ लेना चाहिए।

दक्षिण अफ़्रीका की सिनेट में चालीस सदस्य होते हैं, यानी प्रथम चैम्बर के तिहाई। इनमें से कुछ सदस्य नामज़द किए जाते हैं और कुछ चुने जाते हैं। सपरिषद् गवर्नर-जनरल आठ सदस्यों को नामज़द करते हैं। इनमें से चार ऐसे होते हैं, जिन्हें दक्षिण अफ़्रीका में रहने वाली काली जातियों की इच्छाओं एवम् भावनाओं का विशेष ज्ञान होता है। प्रत्येक प्रान्त के आठ सदस्य सिनेट में होते हैं। पहले इन सदस्यों को प्रान्तीय पार्लामेण्टें चुनती थीं। पर अब प्रान्तीय कौन्सिल के सदस्य तथा प्रान्त द्वारा चुने हुए एसेम्बली के सदस्य मिल कर इन सदस्यों को चुनते हैं। फलतः सिनेट में निम्नलिखित तीन सिद्धान्तों का समावेश हो जाता है:—

(१) नामज़दगी, (२) स्थानीय संस्थाओं द्वारा निर्वाचन और (३) पार्लामेण्ट के सदस्यों द्वारा निर्वाचन।

यदि सिनेट एसेम्बली के किसी बिल को रद्द कर दे या उसमें संशोधन करे और एसेम्बली सिनेट से सहमत न हो, तो बिल दूसरे अधिवेशन के लिए स्थगित हो जाता है। यदि दूसरे अधिवेशन में भी एसेम्बली उसे पुनः पास कर दे और सिनेट भी उसे पुनः स्वीकार न करे, तो दोनों सभाओं का एक संयुक्त अधिवेशन होता है। परन्तु एसेम्बली के सदस्यों की संख्या सिनेट के सदस्यों की संख्या से तिगुनी अधिक होने के कारण इस संयुक्त अधिवेशन में एसेम्बली की ही विजय होती है।

अन्य द्वितीय चैम्बरों को प्रथम चैम्बरों द्वारा पास किए हुए बिलों के सिद्धान्तों का विरोध करना और आवश्यकता पड़ने पर उन्हें रद्द करने का अधिकार प्राप्त है। परन्तु दक्षिण अफ़्रीका की सिनेट को यह अधिकार प्राप्त नहीं है। वह बिलों को कुछ समय के लिए रोक कर प्रथम चैम्बर को अपनी बात सुनने के लिए बाध्य कर सकती है। परन्तु यदि एसेम्बली अपनी बात पर अड़ी रहे, तो सिनेट को चुप हो जाना पड़ता है। लॉर्ड डे विलियर्स के शब्दों में वहाँ की सिनेट केवल एक समालोचना करने वाली संस्था है।

इङ्गलैण्ड की ब्राइस कॉन्फ्रेन्स का अनुकरण करके सन् १९२० में अफ्रीका के तत्कालीन प्रधान मन्त्री ने भी अपने यहाँ के सिनेट के सम्बन्ध में कुछ सुधार करने के प्रश्न पर विचार करने के लिए पार्लामेण्ट की दोनों सभाओं की सभी पार्टियों की एक सभा बुलाई थी। जिसे 'स्पीकर्स कॉन्फ्रेन्स' कहते हैं। सिनेट को सुधारने के लिए इस कॉन्फ्रेन्स ने भी कई प्रस्ताव उपस्थित किए थे।

नार्वे के द्वितीय चैम्बर का विशेष महत्व है। क्योंकि इसके सिद्धान्तों को अब सब लोग मानने लगे हैं। ब्राइस कॉन्फ्रेन्स ने भी उन्हीं सिद्धान्तों को मान कर अपनी सुधार-योजना तैयार की थी। नार्वे में पार्लामेण्ट के सदस्य ही द्वितीय चैम्बर को चुनते हैं। जब नवीन पार्लामेण्ट का चुनाव हो चुकता है, तो वह अपने में से चौथाई सदस्यों को द्वितीय चैम्बर के लिए निर्वाचित करती है। इन्हीं सदस्यों को लेकर द्वितीय चैम्बर बनता है और अन्य तीन-चौथाई सदस्यों की सभा प्रथम चैम्बर होती है। प्रत्येक चैम्बर अपने लिए सभापति तथा उप-सभापति स्वयं चुनती है। परन्तु यहाँ द्वितीय चैम्बर के अधिकार बहुत ही परिमित हैं। जो बिल इसके सामने विचारार्थ आते हैं, उनके प्रति भी इसके अधिकार बहुत कम हैं। वह किसी भी क़ानून को बनाने में अगुआ नहीं बन सकता। तमाम बिलों का श्रीगणेश प्रथम चैम्बर में ही होता है। वहाँ से पास होने के पश्चात् वे द्वितीय चैम्बर के सामने आते हैं। यदि द्वितीय चैम्बर उन्हें स्वीकार कर लेता है, तो कोई बात नहीं, अन्यथा वह बिल पुनः प्रथम चैम्बर के सामने आता है। यदि प्रथम चैम्बर अपनी बात पर अड़ा रहता है और द्वितीय चैम्बर के संशोधन आदि को स्वीकार नहीं करता, तो बिल एक बार फिर द्वितीय चैम्बर के सामने जाता है और द्वितीय चैम्बर के लिए यह अन्तिम अवसर होता है। साधारणतया ऐसे अवसरों पर द्वितीय चैम्बर को झुक जाना पड़ता है। परन्तु यदि वह न झुके और बिल को रद्द करने या संशोधित करने पर तुला रहे, तो दोनों चैम्बरों की एक संयुक्त सभा उस बिल पर विचार करती है। इस संयुक्त सभा में बिल पर वादाविवाद न होकर केवल 'वोट' लिए जाते हैं और दो-तिहाई बहुमत से बिल पास हो सकता है। फलतः प्रथम चैम्बर के सदस्यों की संख्या तिगुनी होने के कारण उसे बड़ी आसानी से सफलता मिल जाती है। नार्वे के विधान से दो बातें स्पष्ट हैं। प्रथम यह कि दोनों चैम्बरों के पारस्परिक मतभेद शीघ्र ही तय हो जाते हैं और द्वितीय यह कि राजनीतिक सिद्धान्तों पर वहाँ मतभेद होते ही नहीं। शक्तिशाली पार्टी का दोनों चैम्बरों में बहुमत रहता है। नार्वे की द्वितीय चैम्बर को कुछ अदालती अधिकार भी प्राप्त हैं। क्योंकि वह इसके तथा हाईकोर्ट के संयोग से उच्चतम अदालत बनती है, जो 'कौन्सिल ऑफ़ स्टेट', हाईकोर्ट या दोनों चैम्बरों के सदस्यों के विरुद्ध प्रथम चैम्बर द्वारा लगाए हुए अभियोगों को सुनती है। विधान के प्रारम्भ-काल से लेकर सन् १८४५ तक ऐसे ६ अभियोग हुए थे। सन् १८८३ में तमाम मन्त्रियों पर, जिनकी संख्या ग्यारह होती है, राजा को पार्लामेण्ट के प्रस्ताव न मानने की सलाह देने का अभियोग लगाया था।

नार्वे के विधान में द्वितीय चैम्बर को स्थान तो अवश्य प्राप्त है, परन्तु उसके अधिकार इतने परिमित हैं कि उसके स्वतन्त्र अस्तित्व का सारा महत्व ही नष्ट हो जाता है। नार्वे के राजनीति-विशारदों का कहना है कि वास्तव में यहाँ एक ही चैम्बर है और दूसरा चैम्बर प्रथम चैम्बर की छाया मात्र है। पार्लामेण्ट जब जनता से चुनी जाती है, तब एक ही चैम्बर के रूप में रहती है। वही पार्लामेण्ट आगे चल कर स्वयम् अपने को दो चैम्बरों में विभाजित कर लेती है। फलतः जनता के सम्मुख दूसरी चैम्बर का कोई मूल्य नहीं है और उन्हें इसका गर्व भी है।

स्थान की कमी के कारण हम अन्य द्वितीय चैम्बरों का यहाँ ज़िक्र नहीं कर सकते। यदि किसी देश के लिए किसी कारणवश द्वितीय चैम्बर का होना अनिवार्य हो और उसके कन्धे पर यह बोझ रक्खा ही जाए, तो इसका निर्माण करते समय कुछ बातों का ध्यान अवश्य रखना चाहिए। द्वितीय चैम्बर का सङ्गठन अत्यन्त सरल तथा सादा होना चाहिए। चूँकि शासन-नीति (Executive policy) में इसका कोई हाथ नहीं रहता; इसको विधान में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं हो सकता, इसलिए इसमें आडम्बर न होना

चाहिए। इसका सङ्गठन दो ढङ्ग से हो सकता है—(१) नामज़दगी से या (२) चुनाव से। लोकतन्त्रीय देशों में नामज़दगी प्रधान-मन्त्री के हाथ में रहती है और प्रत्येक प्रधान-मन्त्री अपनी ही पार्टी के लोगों को नामज़द करता है, जिसके परिणाम-स्वरूप द्वितीय चैम्बर में दलबन्दी का बाज़ार गर्म रहता है और यह लोकतन्त्र शासन के उद्देश्य के सर्वथा विपरीत होता है।

चुनाव दो प्रकार से हो सकते हैं। सीधे साधारण जनता द्वारा या स्थानीय धारा-सभाओं द्वारा। द्वितीय चैम्बर के लिए सीधे साधारण जनता द्वारा चुनाव होने से देश के कन्धे पर भारी ख़र्च लद जाता है। स्थानीय धारा-सभाओं द्वारा चुनाव होने से स्थानीय राजनीति में अस्वाभाविक प्रश्न पैदा हो जाते हैं और उदार पार्टियों का प्रतिनिधित्व उनकी शक्ति के अनुसार नहीं हो पाता। जब द्वितीय चैम्बर का निर्वाचन नियमित रूप से होता है, तो वह जनता की प्रतिनिधि बनने का दावा करने लगती है और इससे उत्साहित होकर प्रथम चैम्बर से लोहा लेने का इरादा करने लगती है। इसका परिणाम देश के लिए हानिकर हो सकता है।

इन सब झगड़ों से बचने के लिए तथा साथ ही साथ एक ऐसी द्वितीय चैम्बर बनाने के लिए, जो प्रतिनिधि सभा होती हुई भी प्रथम चैम्बर से लड़ने को तत्पर न हो, केवल एक ही उपाय है और वह उपाय यह है कि प्रथम चैम्बर स्वयं द्वितीय चैम्बर के सदस्यों को चुने। 'ब्राइस कॉन्फ़्रेन्स' ने भी यह सिफ़ारिश की थी कि हाउस ऑफ़ लॉर्डस् के तीन-चौथाई सदस्य हाउस ऑफ़ कॉमन्स द्वारा चुने जावें। आवश्यकता पड़ने पर तथा विशेष अनुभवी लोगों को चुनने के लिए प्रथम चैम्बर अपने बाहर से भी प्रतिनिधि चुन सकती है। यह सच है कि द्वितीय चैम्बर का चुनाव दलबन्दी पर होगा। जिस पार्टी का प्रथम चैम्बर में बहुमत होगा, वह अपनी पार्टी के सदस्यों को द्वितीय चैम्बर के लिए चुन लेगी। जिस पार्टी की प्रथम चैम्बर में जितनी ताक़त होगी, उसके उतने ही सदस्य चुने जायँगे। पर हम दिखा चुके हैं कि दलबन्दी तो प्रत्येक द्वितीय चैम्बर में रहती है। द्वितीय चैम्बर के इस प्रकार चुने जाने पर उसको प्रथम चैम्बर द्वारा बनाए हुए क़ानून का विरोध करने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

फलतः द्वितीय चैम्बर को यह अधिकार न होना चाहिए कि वह प्रथम चैम्बर को कोई क़ानून बनाने से रोक दे। उसका काम है, केवल सलाह देना और क़ानून बनने में इतनी देरी कर देना कि प्रथम चैम्बर को उसकी सलाह पर विचार करने के लिए बाध्य होना पड़े और जनता अपनी राय दे सके।

विनय

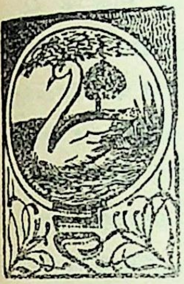
[श्री० राजनाथ पाण्डेय]

हैं दाने-दाने के लाले,
कोने घर के सब सूने हैं।
ये बच्चे सब भोले-भाले,
कृशता के कुशल नमूने हैं।
इन कण्ठों से सूखी साँसें—
छन भर नम होकर आने दो!
माता का मीठा दूध हमें,
हे ईश! ज़रा बन जाने दो।

फुलवारी सारी सूखी हैं,
वे रङ्ग-बिरङ्गे फूल नहीं।
फूलों की प्यारी, प्रानभरी वह—
वायु इन्हें मिलती न कहीं।
बेला जूही चम्पा बन कर—
हे ईश! हमें उग आने दो,
खुल खेलें खिल कर ये अलियाँ,
ऐसी कलियाँ बन जाने दो।

श्रीकुमार जी और उनकी "रूप-राशि"

[श्री० बलभद्रप्रसाद गुप्त, 'रसिक', विशारद]



मारी हिन्दी-कविता इस समय उन्नति के पथ पर है, उसमें छायावाद की जो विशिष्ट धारा प्रवाहित हो गई है, उससे उसकी उन्नति में अधिक गतिशीलता आ गई है। यद्यपि अभी हिन्दी के पुराने प्रेमी छायावाद को सहानुभूति की दृष्टि से नहीं देखते, तथापि उसके परिमार्जन में जो परिश्रम हो रहा है, वह उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखा जा सकता। इस छायावाद की सीढ़ी पर चढ़ कर बहुत से कविता-प्रेमी कवि कहलाने की लालसा में कविता के चाँद को छूना चाहते हैं, पर समय शीघ्र ही बतला देगा कि चाँद बहुत ऊपर है और वे बहुत नीचे हैं। उनकी लेखनी से कविता की स्याही नहीं उतर सकती। उनके कण्ठघोष में कविता का तार नहीं हिल सकता।

छायावाद की वास्तविक स्थिति में अनन्त आत्मा के सम्मिलन की आकांक्षा ज्वार की लहर के समान वेगवती रहती है। उसमें भावना की धारा इतनी तीव्र रहती है कि वह असीम उदधि में ही जाकर विश्राम ले सकती है, किसी अन्य स्थल में नहीं। आत्मा के उन्माद में परमात्मा के रूप की छाया रहती है, संसार की वस्तुओं में अनन्त आत्मा का चित्र रहता है। आत्मा अपने प्रेम की अमूल्य निधि लिए हुए परमात्मा में अपना विस्तार कर लेती है—यही तो छायावाद का रहस्य है। जरसन (Jerson) ने इसी विचार के वशीभूत होकर अपने रहस्यवाद की मीमांसा की थी। कभी-कभी आत्मा परमात्मा का रूप देखने के योग्य तो बन जाती है, पर उसे पहचानने में असमर्थ हो जाती है। उसे इस बात का ज्ञान अवश्य हो जाता है कि उसके सामने किसी अलौकिक वस्तु की सृष्टि हो गई है।

इसी को पन्त जी ने एक बार इस प्रकार कहा था—

सघन मेघों का भीमाकाश,
गरजता है जब तमसाकार।
दीर्घ भरता समीर निःश्वास,
प्रखर झरती जब पावस-धार।
न जाने तपक तड़ित में कौन,
मुझे इङ्गित करता तब मौन।
(मौन-निमन्त्रण)

हिन्दी-साहित्य में छायावाद की अभिव्यक्ति करने वालों में पन्त, प्रसाद और निराला का ही नाम लिया जाता है। ज्ञात होता है कि हिन्दी के आलोचक इनके अतिरिक्त और किसी में छायावाद की छाया नहीं पाते। इधर हिन्दी-कवियों में छायावाद लिखने में तीन वर्मा कवियों को बहुत अधिक सफलता मिली है। उनके नाम हैं, श्री० रामकुमार वर्मा, श्रीमती महादेवी वर्मा और श्री० भगवतीचरण वर्मा। यह वर्मात्रयी हिन्दी में अपना स्थान बना चुकी है, इसमें कोई सन्देह नहीं। इस अवसर पर श्री० रामकुमार वर्मा की कविता की आलोचना अभीष्ट है।

लाहौर के डी० ए० वी० कॉलेज के हिन्दी-प्रोफ़ेसर श्री० सूर्यकान्त शास्त्री, एम० ए०, एम० ओ० एल०, व्याकरणतीर्थ ने हिन्दी-साहित्य का एक विवेचनात्मक इतिहास लिखा है। उसमें वर्तमान छायावादी कवियों पर आलोचना करते हुए उन्होंने सात पृष्ठों में श्री० रामकुमार वर्मा की कविता की आलोचना बड़ी मनोरञ्जक एवं मार्मिक रूप से की है। उस स्थल पर उन्होंने कुमार

जी के 'अभिशाप' की आलोचना करते हुए लिखा है कि :—

"छायावादी कवियों में रामकुमार का स्थान आदर के योग्य है। आपका आत्मिक रुदन उत्तान होता है और श्रोता को अदृश्य की अन्तस्तली में गन्धक के धूम्र-मण्डल की नाईं ऐंठने वाले लोकोत्तर विषाद का आभास दिखाने वाला होता है।" अभिशाप का परिचय कराते हुए आप लिखते हैं :—

हाय, सिसकती सी वर्षा में
यह गूँथा है हार।
समता करने को बरसातीं
हैं आँखें जलधार॥
आँखों में जल है, ऊपर से—
भी है जल का स्राव।
हिम से शीतल बन कर गिरते
मन के भारी भाव॥
छल-छल कर जल गिरता पर—
मन जल-जल कर है धूल।
उस पर हँसते हैं नभ के
मिटते से दो दस फूल॥

करुण-क्रन्दन पर मिटते हुए क्षणभङ्गुर खपुष्पों का हँसना कैसा अखरता है? कुमार की कविता विषाद के कङ्काल को स्मृति की मरुस्थली में नङ्गा नचा देती है। वह हृदय के टूटे तारों को खींचने में अत्यन्त पटु है। कुमार विषण्णात्माओं के सन्तप्त निश्वासों को कविता की कोथली में बन्द करके नैराश्य-रञ्जित स्तब्धता के उत्तुङ्ग शिखर पर चढ़ जाता है और वहाँ छायात्मा बन कर उद्‌गाद शोक के क्लज्रूप गैस को विरही तथा विरहिणियों के नासापुटों में छोड़ देता है। इस गैस में छटपटाते हुए कुमार के विरही जन रो-रोकर अपने प्रेमियों से इस प्रकार की भिक्षा माँगते हैं :—

"बिखरी कलियों से कर लूँगी मैं अपना शृङ्गार।
× × ×"

वास्तव में अभिशाप कुमार जी की करुण भावनाओं की विभूति है। उसमें करुणा अनेक रूप से आकर अपनी वेदना हम लोगों की दृष्टि के सामने बिखेर जाती है। हम एक क्षण के लिए भूल जाते हैं कि संसार में कोई सुख भी है। चारों ओर अन्धकार और चारों ओर नैराश्य—यही अभिशाप का आवेश है। पर 'रूप-राशि' में कुमार की कविता आशा, सौन्दर्य और सङ्गीत का सन्देश लिए है, उसमें चारों ओर शान्ति और सुख का ही वातावरण है। भावना उत्साह के हिंडोले में झूल रही है और चारों ओर बसन्त बिखरा हुआ है। इस रूप-राशि की एक कहानी है।

एक बार कुमार जी के घर पर पन्त जी बैठे हुए चाय पी रहे थे। कविता ही विषय था। दोनों ओर से कविता के फुहारे छूट रहे थे तथा उन पर आलोचनाएं हो रही थीं। कुमार जी ने कहा—हिन्दी का क्षेत्र बड़ा करुणापूर्ण हो रहा है। उसमें आह और उच्छ्वास के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। और 'उच्छ्वास' तो तुम्हारे ही मुख से निकला है। अच्छा हो, हम लोग प्रसन्नता और आशा के गीत लिखें, वैसे ही जैसे अङ्गरेज़ी में Lynics (गीत-काव्य) हैं। सुमित्रानन्दन जी ने इस बात का समर्थन किया और उसी समय से दोनों ने अब तक इसी प्रकार की अधिकतर कविताएँ लिखी हैं। पन्त जी के इस प्रकार के कुछ गीत 'गुञ्जन' में सङ्कलित हैं और कुमार जी के 'रूप-राशि' में।

रूप-राशि में आत्मा का मायाहीन स्पष्ट रूप दिखलाई पड़ता है, जिसमें न वासना है और न कलुष। आत्मा की एक अनन्त सत्ता, जिसमें आनन्द के अतिरिक्त कुछ नहीं है, उसीमें सुख है और उसी में विलास। जिसमें जीवन की परिधि इतनी विशाल है, जो दृगपथ में नहीं समा सकती, उसमें सदैव वसन्त अपना जीवन व्यतीत करता है :—

नव वसन्त का पुलकित मन।
कितने फूलों के भवनों में
हँसता है ले नवजीवन॥

सांख्य शास्त्र के अनुसार परमात्मा और प्रकृति इन्हीं दोनों का स्वतन्त्र अस्तित्व है और उन दोनों के संयोग से ही सत-रज-तममय जगत की उत्पत्ति होती है। परमात्मा और प्रकृति दोनों एक-दूसरे से मिलने के लिए उत्सुक हैं। और उन्हीं के मिलन में सारा विश्व सन्निहित है। श्रीकुमार जी का 'मैं' यही परमात्मा है

और उनकी प्रेयसी यही प्रकृति है। संसार के प्रेमी और प्रेयसी में ईश्वर और प्रकृति के अस्तित्व का चित्रण वास्तव में कितना मनोहर एवं रहस्यमय है!

मैं तुमसे मिल सकूँ यथा,
उर से सुकुमार दुकूल।
समय-लता में खिले—
मिलन के दिन का उत्सुक फूल॥
मेरे बाहु-पाश से वेष्ठित,
हो यह मृदुल शरीर।
चारों ओर स्वर्ग के होगा,
पृथ्वी का प्राचीर?

नभ के उर में विमल नीलिमा शयित हुई सुकुमार।
उसी भाँति तुमसे निर्मित हो, मेरा उर-विस्तार॥

मैं तुमसे उसी भाँति मिल जाऊँ, जिस प्रकार वक्ष से सुन्दर वस्त्र। समय रूपी लता में मिलन का दिन रूपी उत्सुक फूल विकसित हो। आह! वह कौन सी मङ्गल-बेला होगी, जिसमें अनन्त पुरुष का मिलाप प्रकृति से होगा—जिसमें उत्सुकता की मधुर व्यञ्जना होगी। वास्तव में वह दिन विश्व के निर्माण का होगा। उस समय क्या होगा—केवल धूम्राकाश और उसमें नीलिमा। एक पल में शायद यही शून्याकाश पुरुष-रूप से नीलिमा की प्रकृति को धारण कर तेज, वायु, जल और पृथ्वी में परिवर्तित हो जड़ जगत की रचना कर दे। यह है विकास का मूल। यह है सृष्टि की रचना और उसका आदिकरण।

इस विकासवाद में उन्नति के चिह्न ही दृष्टिगोचर होते हैं—चारों ओर विकास। विकास में एक प्रकार की चेतना, जिसमें हर्ष और आशा की विराट् शक्तियाँ आन्दोलित हो रही हैं। उसी हर्ष के प्रवाह में संसार में किस रहस्य का अभिनय हो रहा है—यह निम्न पंक्तियों में देखिए:—

फूलों में किसकी मुसकान।
बिखर गई है, कलिकाओं में
भरने को आनन्द महान॥
कौन गा रहा है कोकिल के
कण्ठों से मधुमय कल गान।
कौन भ्रमर बन कर करता है
कलियों से नूतन पहिचान॥
मेरे भावों के प्रसून भी
पहिने रङ्गों का परिधान।
मेरे जीवन से व्यञ्जित हो
फूलों की विकसित मुस्कान॥

प्रकृति के प्रत्येक अङ्ग में विकास का रहस्य है। एक उत्पत्ति की शक्ति है, जो प्रत्येक स्थल में, प्रत्येक वस्तु में अनेक रूप धारण कर कौतुक कर रही है। आशा और उत्साह का अनन्त विस्तार है, जो नवजात जगत के रोम-रोम में व्याप्त है। इस विकासवाद की पूर्णता पर कवि का पुरुष अपनी प्रेयसी से सन्तोष और शान्ति की साँस लेकर कहता है:—

मैं तुमसे मिल गया प्रिये! यह है यात्रा का अन्त।
इसी मिलन का गीत कोकिले! गा जीवन पर्यन्त॥
सुमन मधुप को बुला-बुला कर देंगे यह सम्वाद।
कलियाँ कल जागेंगी लेकर इसी मिलन की याद॥
प्राची के बिखरे सब बादल बदल-बदल कर रूप।
किरण साँस में बतला देंगे मेरा मिलन अनूप॥

उस मिलन के उल्लास में प्रत्येक वस्तु नृत्य करेगी और चारों ओर इसी मिलन का रहस्य प्रस्फुटित होगा। अनन्त जीवन की यात्रा इसी मिलन में आकर समाप्त हो जाती है। प्रसूनों के सौरभ में इसी मिलन का आकर्षण होगा। कोकिल के कण्ठ से यही मिलन का गीत आलापित होगा, कलियों के विकास में इसी मिलन की मधुमयी स्मृति होगी। पूर्व के बादलों से जो किरणों की साँसें निकलेंगी, वे भी संसार के कोने-कोने में इसी मिलन का सन्देश वहन करेंगी। सांसारिक पदार्थों के द्वारा अलौकिक मिलन की भावना कितने तीव्र वेग से व्यञ्जित की गई है! यह सराहनीय है। प्रत्यक्ष वस्तुओं और अप्रत्यक्ष सत्ता को घोषित करने का ढङ्ग कितना मनोरम एवं भावपूर्ण है?

कुमार जी की कविता में सम्मिलन की आकांक्षा महाकवि सूर की गोपियों की मिलन-आकांक्षा के समान ही बहुवेशधारिणी है। जिस प्रकार गोपियाँ ऊधव से बार-बार अनेकों प्रकार से श्रीकृष्ण से मिलने की आकांक्षा प्रगट करती हैं, उसी प्रकार कुमार जी की कविता में

जीवन की पूर्णता (जो मिलन से उद्भूत है) बार-बार हमारे हृदयाकाश में विद्युत की भाँति आकर प्रकाश की एक स्वर्ण-रेखा सी खींच देती है।

हम तो नन्द घोष की वासी।
नाम गोपाल जाति कुल गोपहि गोप गोपाल उपासी॥
(सूर)

अथवा

जीवन मुँहचाही को नीको।
दरस-परस दिन-रात करत हैं कान्ह पियारे पी को॥
(सूर)

दूसरी ओर से कुमार जी के श्रीकृष्ण (पुरुष) गोपियों (प्रकृति) से कहते हैं :—

हटा दो घूँघट-पट इस बार।
नेत्र में जग जागृति की ज्योति
और रवि के जीवन का वास।
हृदय से शशि का शीतल हास
उसी का कण-कण में अधिवास॥
अँधेरा है यह दृग-संसार।
हटा दो घूँघट-पट इस बार॥

× × ×

घूँघट-पट (शून्य आकाश की परिस्थितियाँ) हटने पर नेत्र पहले मिलेंगे, फिर हृदय—जिस नेत्र में जागृति की ज्योति-युक्त रवि है और जिस हृदय में शीतल हास से संयुक्त शशि है। यह तो स्पष्ट ही है कि रवि ईश्वर का नेत्र और चन्द्र हृदय कहा गया है।

चन्द्रमा मनसो जातः चक्षोः सूर्यो अजायत।
(पुरुष सूक्त)

इसी धारणा के आधार पर यह संसार, जोकि अन्धकार के शून्य से उत्पन्न होगा—आलोकित हो जायगा। घूँघट हटाने पर प्रकृति पुरुष का विराट रूप नेत्र और हृदय के प्रकाश में देखेगी एवं अलौकिक प्रेम में इसी नेत्र और हृदय की अनुभूति होगी।

जगत की सृष्टि हो जाने पर पुरुष और प्रकृति का वास्तव में कोई विभिन्न व्यक्तित्व नहीं रह जाता। वे दोनों एक रूप में अपना अस्तित्व रखते हैं, जगत के निर्माण पर प्रकाश डालते हुए पुरुष और प्रकृति की एक-रूपता का मनोहर चित्रण इन पंक्तियों में देखिए :—

शान्त है नीरव है यह रात।
सुकुमारी! चुप, पवन न पावे प्रतिध्वनि का आघात॥
श्वास-तार पर भूल रहा है
सुप्त शयित संसार।
तारे हावों ही में इङ्गित
करते कम्पित प्यार॥
क्यों चिन्तित हो जग दृग पर है,
मधुर नींद का भार।
मैं हूँ, तुम हो, जाग रहे हैं—
दो विस्तृत संसार॥
अपनी वाणी पर रख लो,
मेरे उर का सम्वाद।
आओ, सो जाओ, भूलो,
इस जाग्रतपन की याद॥

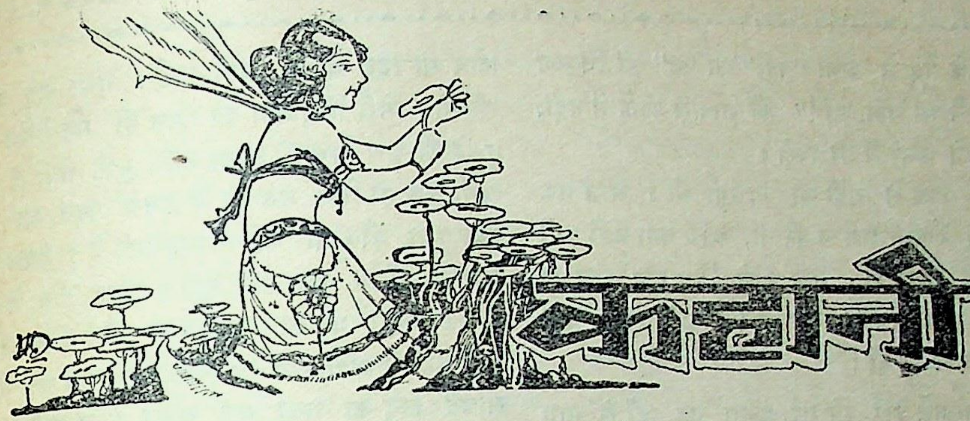
इस प्रकार हम देखते हैं कि श्री० रामकुमार की कविता का अस्तित्व रहस्यवाद के विस्तृत क्षेत्र में ही है। उसमें अलौकिक मिलन की विशाल शक्ति सन्निहित है। इस रहस्यवाद के उद्घाटन में कवि की लेखिनी बहुत सफल हुई है। यदि कुमार जी इन रूप-राशि शीर्षक छोटे-छोटे रत्नों को एकत्रित कर सामूहिक रूप से हिन्दी-संसार को भेंट कर, तो हमारी हिन्दी के कविता-कोष में रहस्यवाद का एक मनोहर मन्जूषा और भी हो जायगा।

"मैं नरक में भी उत्तम पुस्तकों का स्वागत करूँगा, क्योंकि इनमें वह शक्ति है कि जहाँ ये होंगी, वहाँ आप ही स्वर्ग बन जायगा।"

—लोकमान्य तिलक

"यदि तुम्हें अपने कमरे सजाने हों, तो अलमारियों में अच्छी-अच्छी पुस्तकें सजाओ, तुम्हारे कमरों की शोभा दूनी हो जायगी।"

—एक अध्ययनशील



समाज की चिता

[श्री० सोमदेव जी, बी० ए०]



"पानी!" कराहती हुई बुढ़िया के मुँह से क्षीण आवाज़ निकली।

"अब कैसा जी है, माँ जी?"—पानी देते हुए इन्दु ने पूछा।

"कौन, इन्दु? क्या समय है बेटी?"—एक घूँट पानी पीकर फिर उसी धीमी आवाज़ में बुढ़िया ने पूछा।

"सन्ध्या होने को आई है। अब कुछ आराम है अम्माँ?"

"हाँ, अब अच्छी हूँ। तो सारा दिन योंही बेसुध पड़ी रही? ओह बेटी! मैं मर क्यों नहीं जाती? इतना बूढ़ा शरीर हो गया, अब भला किस काम आएगा; भगवान इसे उठा क्यों नहीं लेते?" ठण्डी साँस लेकर बुढ़िया ने 'हे भगवान' कहा।

"क्यों ऐसी बात कहती हो माँ जी, दो-एक दिन में भली-चङ्गी हो जाओगी। बड़े-बूढ़ों के प्रताप से ही तो संसार चलता है, भला ऐसी बात मुँह से निकालनी चाहिए?"

"बेटी, अब जी के क्या लेना है। तुमको भी देखो, कितना कष्ट देती हूँ। मेरे लिए सारा दिन तुम्हें भूखी-प्यासी बैठी रहना पड़ा।"

"नहीं माँ जी, मेरी चिन्ता मत करो; मैं सुबह ही कुछ खा-पीकर आई थी।"—रुकते हुए इन्दु ने कहा।

"नहीं बेटी, नहीं। तू तो भाइयों को खिला कर खाया करती है। मेरी बीमारी की ख़बर सुन कर दौड़ी आई थी। भला उस समय तूने खाया क्या होगा? जा, चौके में जाकर कुछ खा ले। आह! मैं व्यर्थ कष्ट ही कष्ट देने के लिए बैठी हूँ। कैसी भोली-भाली लड़की है, नहीं-नहीं, साक्षात् लक्ष्मीदेवी है। पता नहीं, मेरे मन की साध मन में ही रहेगी। मेरे हरि की और तुम्हारी जोड़ी कैसी मिलती, परन्तु क्या करूँ, जात-बिरादरी भी तो नहीं मिलती। नहीं तो ऐसी लक्ष्मी को पाकर मेरी आँखें तृप्त हो जातीं—जन्म सफल हो जाता। हरि भी नहीं सुनता, कहता है अभी ब्याह ही न करूँगा। तुम्हारे भाई भी निकम्मे हैं, कहीं तुम्हारे लिए बातचीत हुई कि नहीं?"

इन्दु का मुँह लाल गुलाब की तरह लाल हो गया। हरिण सी बड़ी-बड़ी आँखों को नीचे करके वह सकुचा सी गई, और दूसरी ओर को मुँह फेर लिया।

"बेटी, इसमें शर्माने की कौन सी बात है? मेरे बस में होता, तो कभी की तुम्हें ब्याह देती। अच्छा देखो, हरि से कहूँगी। कहीं अपने साथी-सङ्गी को देखे-भाले।"

"लो माँ, तुम ऐसी बातें करोगी तो मैं जाती हूँ।" कह कर सिर नीचा किए इन्दु उठ चली।

"बेटी! कुछ खा-पीकर जाना, नहीं तुम्हें मेरे सिर की सौगन्ध!" अनुरोध करते हुए बुढ़िया ने फिर पूछा—"क्या अभी तक हरि नहीं आया?"

इन्दु के मुँह से अभी "नहीं" का "न" ही निकला था कि "मैं आ गया, माँ!" की आवाज़ कानों में पड़ी, और हरि ने कमरे में पैर रक्खे।

इन्दु लज्जा से गड़ी सी जा रही थी। आज तक उसने हरि से कभी शर्म न की थी, आज पता नहीं क्यों सिमटी सी जाती थी; सिर नीचे किए एक ओर को हट गई। उसे भय हो रहा था कि कहीं उनकी बातें हरि ने सुन न ली हों।

माँ आवाज़ें देती रह गई, परन्तु वह वहाँ से भाग खड़ी हुई। हरि ने पीछे की ओर देखा और मुस्करा दिया। सीढ़ियाँ उतरती हुई इन्दु ने भी ठीक उसी समय पीछे मुड़ कर देखा। दोनों की आँखें क्षण भर के लिए मिलीं। आँखों की मूक भाषा ने शब्दों की अपेक्षा ज़्यादा मादकता, मधुरता और तीव्रता से दोनों की हृद्‌तन्त्रियों को छेड़ दिया; दोनों की हृद्‌तन्त्री के तार एक विचित्र बिजली के छू जाने से कम्पित हो उठे। दोनों के मुँह पर सारे शरीर का ख़ून दौड़ आया। इन्दु सीढ़ियों से गिरती-गिरती बची, हरि मुड़ता हुआ दीवार से ठोकर खाता-खाता बचा।

२

"मुझे इससे पहले जाना चाहिए था।"—फिर कुछ सोच कर—"क्या वे मेरे हृदय की व्यथा को नहीं जानते?" झुँझलाते हुए इन्दु ने मन ही मन कहा। फिर वह धीरे-धीरे उठी और हरिनाथ के घर की ओर चली। दोनों घरों की दीवारें एक-दूसरे के साथ ही सटी हुई थीं। पहले वह दरवाज़े पर रुकी, फिर कुछ सोच कर धीरे-धीरे दबे पाँव सीढ़ियाँ चढ़ना शुरू किया। एक पैर आगे बढ़ाती और कभी चौकन्नी सी होकर ठिठक जाती और कभी साँस बन्द करके वैसे ही खड़ी हो जाती थी। दो-एक बार पीछे मुड़ने के लिए भी पैर हटाए; फिर दृढ़ता से, परन्तु कान खड़े किए हुए इधर-उधर चञ्चल नेत्रों से देखती हुई ऊपर कमरे के बाहर जाकर ठिठक कर खड़ी हो गई। हरिनाथ कुर्सी पर बैठा कुछ लिख रहा था। दरवाज़े की ओर उसका ध्यान न था। इन्दु कुछ देर हतबुद्धि सी चोरों की तरह दहलीज़ पर खड़ी रही। उसके पाँव काँपने लगे, छाती ज़ोर-ज़ोर से धक्-धक् करने लगी। उसे रह-रह कर अपने ऊपर क्रोध आ रहा था कि क्यों आई। भला बाबू जी क्या सोचेंगे। मेरी निर्लज्जता पर मन ही मन हँसेंगे। फिर दूसरे ही क्षण विचार आता नहीं, मुझे क्या हो गया। अभी कुछ ही दिन तक तो मैं उनसे पढ़ती थी। आज क्या हुआ, कौन सी नई घटना घटी है? केवल, केवल यही कि माँ जी अब नहीं रहीं? आह, अब ये अकेले ही रह गए! घर का काम-काज कौन करता होगा! रोटी कहाँ से खाते होंगे?× × × यही सब कुछ सोचते-सोचते इन्दु का गला भर आया। न मालूम किस छिपी हुई अग्नि की तरह दबी हुई स्मृति में, उसके हृदय से उठी हुई एक हिचकी मुँह के द्वारा बाहर निकल पड़ी—साथ ही दो गरम-गरम आँसू भी गालों पर ढुलक पड़े। इन्दु अपनी आवाज़ से स्वयं ही सिहर उठी और अपराधी की तरह भागने का प्रयत्न करने लगी। परन्तु हाथ, पाँव, टाँगें—उसका सारा शरीर ही मानों जकड़ा जाकर निशक्त हो चुका था। उसे अपने ऊपर इतना क्रोध आ रहा था कि शक्ति होती तो वहीं धरती में समा जाती।

इतने में ही उसके कानों में "कौन?...इन्दु?" शब्द पड़े। "अरे! तुम कितनी देर से यहाँ खड़ी हो! एँ? रो क्यों रही हो? आओ, इधर आओ बैठो।" कहते हुए हरिनाथ ने अपने हाथ से क़लम रख दी और उठ खड़ा हुआ।

कुछ देर तो इन्दु वहीं मूर्तिवत् खड़ी रही, फिर साहस करके आगे बढ़ी और एक ओर फ़र्श पर सकुच-सिमट कर बैठ गई।

"कितनी देर से यहाँ खड़ी थीं?"

"अभी तो आई थी।"—सिर नीचा किए इन्दु ने धीरे से उत्तर दिया।

"तो इतने दिन कहाँ रहीं, बहुत दिन बाद आई और इतनी कमज़ोर सी क्यों हो रही हो? माता जी को गुज़रे तो कई दिन हो गए; परन्तु तुम्हारी उस दिन के बाद सूरत ही नहीं देखी। क्या काम-धन्धा बहुत रहा? तुम्हें तो बहुत दुःख हुआ होगा?" इस तरह हरिनाथ ने चुप होते-होते कई प्रश्न पूछ डाले।

"हाँ।" कहते-कहते इन्दु ने अपना मुँह फिर आँचल से ढँक लिया। आँसुओं के अतिरिक्त उसके पास कौन से शब्द थे, जिनसे वह अपने हृदय की

व्यथा को व्यक्त कर सकती ? इन्हीं आँसुओं में किस श्रद्धा, किस भक्ति, किस प्रेम और किन आकांक्षाओं का समावेश था, उसे न तो मानवी शब्द और न कोई सांसारिक शक्ति दरशा सकती है। एक दुःखी हृदय से निकले हुए आँसू किस प्रकार अज्ञात, परन्तु दृढ़ रूप से किसी दूसरे व्यक्ति के अन्तस्तल का चुम्बन करके कैसा स्नेह और कैसी मादकता भर देते हैं, इसकी व्याख्या प्रेमी का करुण और आर्द्र हृदय ही कर सकता है; विज्ञान और फ़िलॉसफ़ी इसके "क्यों ?" और "कैसे ?" का उत्तर लाख सिर पटकने पर भी नहीं पा सकते।

"मत रोओ इन्दु ! मत रोओ ! मैं जानता हूँ, माता जी के जाने का तुम्हें कितना दुःख है। वे तुम्हें कितना प्यार करती थीं, तुमने भी रातों जाग कर उनकी सेवा की थी। मैं आजीवन तुम्हारा आभारी रहूँगा। मुझे मालूम है कि जब वे मरीं तो तुम कितना बिलख-बिलख कर रोई। दो-तीन दिन तक कुछ भी नहीं खाया। परन्तु अब क्या हो सकता है? जो होना था वह हुआ × × ×।" हरिनाथ का गला भी यह कहते-कहते भर आया।

दोनों कई क्षण चुप रहे। इन्दु के हृदय से एक भारी बोझ तो हलका हो चुका था, परन्तु अब विचारों का एक तूफ़ान हृदय में उठ रहा था। कई तरह के विचार हृदय-सागर से उठ-उठ कर जिह्वा से आगे बढ़ने का साहस न करते थे—उसी तरह, जिस तरह सागर की तुमुल तरङ्गें प्रबल होती हुई भी किनारों से टकरा-टकरा कर, निष्फल-प्रयत्न वापस तो चली आती हैं, परन्तु उनकी शक्ति, उनका बल क्षीण होने की अपेक्षा और भी प्रबल, चञ्चल तथा उच्छृङ्खल हो जाता है। इन्दु के मुँह पर भी कई तरह के शब्द आए, परन्तु आ-आकर रुक गए। अन्त में सारे शरीर की शक्ति इकट्ठी करके उसने पूछा :—

"रोटी कहाँ से खाते हैं ?" निस्तब्धता को चीरते हुए ये शब्द कमरे में गूँज गए। स्वयं इन्दु को ये शब्द ऐसे लगे, मानों किसी विचारालय में खड़ी वह किसी घोर अपराध को स्वीकार कर रही हो। द्वन्द्व युद्ध मचने पर इस छोटे से हृदय ने मानों एक महान् आन्दोलन को, एक हृदयाग्नि को, छिपाने में अपने आपको असमर्थ समझ कर साफ़ प्रदर्शित कर दिया हो। परन्तु पल भर में ही हरिनाथ ने धीमे स्वर में कहा—"बाज़ार से। कभी खाता और कभी नहीं भी खाता हूँ।" यह उत्तर क्या था, एक सितार की एक ही तार से उठी हुई दूसरी ध्वनि थी, एक स्पन्दन था, दूसरा उसके प्रत्युत्तर में प्रकम्पन था; एक ही सागर में एक ही जीवित-शक्ति से प्रेरित दो तरङ्गें थीं, जोकि एक दूसरे में लीन हो गई थीं; विस्तृत वायु-मण्डल में हवा के दो झोंके थे, जो दो भिन्न-भिन्न दिशाओं से आकर आलिङ्गन हो गए थे, दो दिशाओं से आती हुई दो किरणें थीं, जोकि एक दर्पण में आकर एक ही स्थान पर केन्द्रीभूत हो गई थीं।

उत्तर देकर हरिनाथ ने आँखें ऊँची कीं, साथ ही सहसा उसके मुँह से एक दीर्घ उच्छ्वास सा निकल गया। निर्निमेष भाव से वह इन्दु के सुन्दर, गोरे मुँह की ओर ताकने लगा। इन्दु की आँखें नीची थीं, फिर भी उसे ऐसा मालूम दिया कि एक तीक्ष्ण सी वस्तु उसके हृदय में घुसी जा रही है। हृदय उसका चञ्चल हो उठा, इस चुप्पी से वह घबरा उठी। सन्ध्या का मन्द-मन्द प्रकाश कमरे के अन्दर आ रहा था। अचानक ही शान्त वायु उद्विग्न हो उठी। खिड़की से पुष्प-पराग-पूरित एक हवा का झोंका आया, जिसने सारे कमरे में एक मादकता सी भर दी। इन्दु की साड़ी का पल्ला सिर से कुछ खिसक गया। बाग़ में एक कोयल बोली और उड़ गई। क्षण भर में किसी का मधुर सङ्गीत कानों में पड़ा और लीन हो गया।

सहसा इन्दु ने घबराई हुई आवाज़ में कहा—"मैं जाती हूँ।" भला कहाँ ? स्वयं अपने शब्दों की असत्यता का अनुभव क्षण भर में ही उसे हो आया। उसका हृदय उछल रहा था, शरीर निश्चेष्ट सा मालूम दे रहा था। किसी स्वर्गीय सुख का अनुभव उसे इन्हीं कुछ ही मिनिटों में हुआ था, जिसमें वह विस्मृत हो चुकी थी। 'मैं जाती हूँ', ये शब्द किसी और के मुख से, जो दूर, अति दूर, किसी की प्रतीक्षा में बैठ-बैठ कर ऊब गया हो उसके मुँह से निकलते मालूम दिए। इसके साथ ही इन्दु ने अपनी आँखें ऊँची कीं। पल भर में दोनों की आँखों की ज्योति ने दो विक्षिप्त हृदयों में छिपी हुई वेदनाओं और व्यथाओं का स्थान पा लिया। हरिनाथ ने हाथ आगे बढ़ाते हुए, कुछ भर्राई सी आवाज़ में कहा—

"इन्दु, ठहरो !" और यह कहते हुए इन्दु के हाथों को पकड़ लिया। इससे पहले भी कई बार हरिनाथ ने इन्दु का हाथ पकड़ कर उसे लिखना सिखलाया था, परन्तु आज न मालूम क्यों, छूते ही उसकी रग-रग में गर्म रक्त का प्रवाह बह चला। उसे सारे शरीर में एक बिजली सी चलती मालूम दी। इन्दु ने भी अपना हाथ खींचा नहीं, उसके साँस की आवाज़ कुछ तेज़ हो चली थी।

"इन्दु, एक बात पूछूँ ?" उसी प्रकम्पित आवाज़ में हरिनाथ ने पूछा। फिर थोड़ी देर बाद रुक कर कहा—"आज न जाने दूँ तो ?" यह कह कर मुस्करा दिया।

इन्दु ने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह अपने आवेग को शान्त करने के लिए आँसू बहाने लगी। उसी तरह, जिस तरह निस्सीम आकाश में घनघोर घटाएँ, कितने नगर, कितने जङ्गल और कितने क्षेत्र पार करती हुई चली जाती हैं। लोग कहते हैं, बादल सूखे हैं, परन्तु उनसे जाकर कोई पूछे कि उनमें कितनी ज्वाला, कितनी बिजली भरी पड़ी है ? वे सब किधर स्वच्छन्द और उच्छृङ्खल भाव से चले जाते हैं ? वे ढूँढ़ते हैं, आस-पास कहीं एक गगनचुम्बी श्वेत पर्वत-शिला को, एक चञ्चल हिरनी के बच्चे की तरह, जब वह अपना माँ से बिछुड़ कर अत्यन्त दुःख, परन्तु तेज़ी से उसे ढूँढ़ता फिरता हो, और दूर से ही उसे देख कर उछलता-कूदता उसके स्तनों में जाकर अपना मुँह दे देता है। ये बादल भी ठीक इसी तरह अपने प्रियतम की फैली हुई विस्तृत भुजाओं में बाँहें खोल कर भागते हैं और टकराते ही बरस पड़ते हैं। इन्हीं के प्रवाह की तरह इन्दु का अश्रु-प्रवाह भी बह निकला था।

"मेरी इन्दु, प्यारी इन्दु !"—कहते हुए हरिनाथ ने उसे खींच कर हृदय से लगा लिया।

३

"आज इतनी देर लगा कर क्यों आए ?" कहते हुए इन्दु ने एक हाथ साइकिल के हेण्डिल पर और दूसरा हरिनाथ के कन्धे पर रख दिया और करुण दृष्टि से उसकी ओर देखने लगी। उसकी आँखें मौन थीं, उसी तरह, जिस तरह एक विस्तृत सागर का वक्षस्थल ऊपर से शान्त दिखाई देता है, परन्तु जिसके गर्भ में असंख्य जीव-जन्तु तथा अति अतीत काल से संग्रहीत प्राणयुक्त तथा निष्प्राण विभूतियाँ निहित होती हैं, जिन्हें केवल जान-जोखों पर खेलने वाला, डुबकी लगा कर उन्हें प्राप्त करने वाला, अथवा उसी कठिन व्यवसाय में अपनी जीवन आहुति दे देने वाला, उन्हीं असंख्यों में से स्वयं भी एक बनने वाला पा सकता है। आज इन्दु का हृदय कितना आन्दोलित हुआ था। कितनी बार उचक-उचक कर उसने खिड़की की राह बड़ी प्रतीक्षा से देखी थी, और हरिनाथ को न आता देख कर कितने मनसूबे बाँध रही थी, "आज न बोलूँगी, ज़रूर लड़ूँगी। फिर वे मुझे मनाएँगे, और फिर × × × फिर हँस दूँगी।"

वर्ष भर के वैवाहिक जीवन ने इन्दु के प्रेम को घटाने के बजाय और भी प्रगाढ़ कर दिया था। पहले तो वह हरिनाथ की नज़रों में एक कोमल कली ही सी थी, जिसके मुरझा जाने के भय से हरिनाथ को सदा माली की तरह सतर्क रहना पड़ता था, परन्तु समय ने और समाज के अत्याचारों ने इसे हरि की एकदम सङ्गिनी और सहायिका बना डाला था। समाज को ठुकरा कर, उसके बन्धनों को अप्राकृतिक और अत्याचार-युक्त मान कर उसने अपनी इच्छानुसार बिरादरी के बाहर विवाह कर लिया था। इन्दु का उसके भाइयों ने, हरिनाथ का उसके सारे सम्बन्धियों ने और दोनों का समाज ने बहिष्कार कर दिया था। पहले तो ये बहुत चिन्तित रहने लगे थे, परन्तु चूँकि हरिनाथ को किसी और के रुपए-पैसे की ओर ताकने की आवश्यकता न थी, इसलिए उसने किसी की भी परवाह करनी छोड़ दी थी। दोनों का एक वर्ष कितनी मदभरी रात्रियों और प्रेम-भरी कहानियों में किस प्रकार व्यतीत हो गया था, उन्हें कुछ भी पता न था। केवल आज इन्दु के हृदय ने हरिनाथ के उतरे हुए मुँह को देख कर इस बात का आभास पाया; उसकी आत्मा एक आने वाले सङ्कट की आशङ्का से सिहर उठी।

"आज इतनी देर लगा कर क्यों आए ?" का उत्तर हरिनाथ "कुछ नहीं, योंही" में न दे सका। कुछ मुस्कराने का प्रयत्न किया, परन्तु आज हँसी हरिनाथ से उतनी ही दूर थी, जितनी कि अर्द्ध-रात्रि के निविड़ अन्धकार में पूर्वोदित सूर्य का सुखमय सन्देश लाने वाली

ऊषा-काल की लालिमा। इन्दु का हृदय बैठ गया ; पल भर में नशा उतरे हुए शराबी का सा उसका मुँह हो गया। हरिनाथ ने रुकते-रुकते कहा—

"इन्दु, मेरी नौकरी छूट गई ?" इन्दु पर एक घोर वज्राघात सा हुआ। कुछ देर के लिए वह वहीं की वहीं खड़ी रह गई। कुछ ठहर कर उसने पूछा—"क्यों ?"

शुष्क सी हँसी हँसते हुए हरिनाथ ने कहा—कोई नई बात नहीं है इन्दु ! बहुत दिनों से मैं ऐसा सुन रहा था, परन्तु तुम्हें दुःख न हो, इस कारण बतला न रहा था। जिन्होंने हमें बिरादरी से निकाला, उन्हीं धर्म के पुजारियों ने साहब के पास जाकर मेरी शिकायतें कीं, कि इसे निकाल दो, यह बदमाश है, चोर है। परन्तु साहब मेरे काम से खुश था, इसलिए उसने कुछ ख़याल नहीं किया। परन्तु कुछ दिन हुए एक उन लोगों ने पार्टी पर बुला कर खूब नाच-रङ्ग किया। किसी का विवाह था, रण्डियाँ भी बुलाईं ; उसी में साहब को खूब पिला कर उससे कहलवा लिया, और आज मुझे छुट्टी मिल गई। मैं यह सुन कर साहब के पास गया। वह बोला—

"हम क्या कर, तुम्हारा लोग ही तुम्हारा दुश्मन है, हम कुछ नहीं कर सकता।"

"ख़ैर, कोई चिन्ता नहीं, ईश्वर सबका सहायक है।"—धैर्य बँधाते हुए इन्दु ने कहा।

परन्तु जीविका के लिए कुछ तो करना ही होगा। नौकरियों का तो आजकल बुरा हाल है।

"कुछ गहने ले जाकर बेच दो, कोई रोज़गार करो, ये किस दिन के लिए रक्खे हैं ?"

हरिनाथ की आँखों में आँसू आ गए। कुछ दिन योंही बीते। बहुतेरा नौकरी तलाश की, न मिलनी थी, न मिली। आख़िर कुछ गहने बेचे, दाम आधे मिले। दूकान किराए पर ली, किराया दुगुना देना पड़ा। परन्तु कहाँ की बिक्री कैसा काम ? आज तक हरिनाथ के सिर यह आफ़त न पड़ी थी, मोल-तोल बेचारा क्या जाने। फिर यहाँ भी धर्म के ठेकेदारों ने पीछा न छोड़ा, दूकान न चल सकी। हरिनाथ चिन्ता में व्यस्त रहने लगा, दिन-दिन शरीर क्षीण होने लगा।

एक दिन हरिनाथ दूकान से लड़खड़ाता हुआ आया और चारपाई पर गिर पड़ा। इन्दु ने माथे पर हाथ रक्खा। माथा गरम तवे की तरह तप रहा था; नाड़ी तेज़ हो रही थी; मुख पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। जिस इन्दु ने घर से बाहर कभी पैर भी न रक्खे थे, आज उस पर डॉक्टर से दवाइयाँ लाने का बोझ पड़ा। अकेले, सड़क पर चलते हुए उसे लज्जा और अज्ञात सा भय महसूस होता था। परन्तु फिर शीघ्र ही पति की दारुण अवस्था का ध्यान करके सेवा में लग गई। डॉक्टर को बुला लाई। न दिन को चैन, न रात को आँखों में नींद। दिन-रात चारपाई के सिरहाने बैठी चुपचाप आँसू बहाया करती। हरिनाथ महीनों तक बीमार रहा। धीरे-धीरे घर के सब कपड़े-लत्ते और अलङ्कार, आभूषण इत्यादि बिक गए, और कुछ गिरवी पड़ गए। हरिनाथ का शरीर हाड़-पिञ्जर के अतिरिक्त और कुछ न रह गया था, मोटी-मोटी आँखें अन्दर धँस गई थीं—मुँह पर झुर्रियाँ पड़ गईं। जिस व्यथा का इलाज कुछ और था, जो व्यथा मानसिक थी, भला दवाइयाँ कहाँ तक उसे आराम कर पातीं ?

एक दिन डॉक्टर ने नाड़ी देख कर नुस्ख़ा देते हुए कहा—"आज का दिन ख़तरे का अन्तिम दिन है। यदि आज आराम से गुज़र गया, तो फिर कोई भय नहीं। इन्दु ने नुस्ख़ा ले लिया और बाज़ार से दवा लाने को तैयार हुई, परन्तु पास में एक फूटी कौड़ी भी नहीं। माथा पकड़ कर वहीं बैठ गई। उसकी ख़ाली-ख़ाली आँखें हाथ में पकड़े हुए नुस्ख़े को इस तरह निर्निमेष भाव से देख रही थीं, मानों दिन भर का भटका हुआ थका-माँदा मृग-छौना, सन्ध्या समय अपने सामने एक विस्तृत—निस्सीम मरुभूमि को देख रहा हो। रोने को अब आँसू भी तो नहीं बचे थे। वह कुछ क्षण इसी तरह बैठी रही, फिर उठ कर साहूकार की दूकान की ओर चली—एक अन्तिम आशा, एक अन्तिम भेंट, प्रेम के यज्ञ में आहुति देने के लिए। सम्भव है इसी से 'उनके' प्राण बच जायँ, मकान तो फिर भी बन सकता है !

उस साहूकार से वह पहले भी कुछ रुपए उधार ले चुकी थी। आज फिर इन्दु को देख कर ऊपरी सहानुभूति दिखला कर उसने कहा—बेटी, रुपया जितना चाहे तुम ले जा सकती हो, परन्तु जानती हो, आजकल कितनी रुपए की तङ्गी रहती है।

"मैं आपकी बेटी हूँ, आज ज़रूर सहायता कीजिए।" ऐसी दर्द-भरी आवाज़ में इन्दु ने ये शब्द कहे कि अगर

कोई मनुष्य होता तो उसका हृदय पानी-पानी हो गया होता। परन्तु इस बात में तो सन्देह है कि मनुष्यता और पैसा—ये बातें कभी साथ-साथ चल सकती हैं।

"इस बार बेटी, मैं तुम्हें रुपया तब दे सकता हूँ, यदि ५) सैकड़ा सूद दो। तुम मेरी बेटी की तरह ही हो, और कोई होता तो शायद इन्कार कर देता। तुम्हारी अवस्था देख कर मुझे दया आ रही है।"

इन्दु धीरे से बोली—जैसी आपकी इच्छा।

एक सौ रुपए लेकर, कुछ से दवा-दारू और कुछ से दूसरा आवश्यक सामान ख़रीद कर इन्दु घर पहुँची। हरिनाथ एकदम बेसुध सा पड़ा था; साँस धीरे-धीरे चल रही थी; होंठ कुछ-कुछ हिल रहे थे।

"डॉक्टर ने कहा था, आज अन्तिम दिन है, बीमारी का ही तो, और कुछ नहीं, कुछ नहीं।" मन ही मन सोच कर इन्दु झुँझला उठी। आज कितने दिन हो चुके थे, उसे भरपेट भोजन खाए हुए। आह! वह कैसे खा सकती थी, जब कि उसके हृदय की आत्मा सामने चारपाई पर पड़ी महीनों से तड़प रही थी। रात भर आराम से न सोई थी। उफ़! कैसे सो सकती थी वह? जब कि उसका जीवन, सामने पड़े हुए शरीर की व्यथा के साथ व्यथित हो उठता था, प्रत्येक प्रकम्पन के साथ सिहर उठता था। आज अन्तिम दिन था! आज उसने तै कर रक्खा था, "न क्षण भर चारपाई के सिरहाने से हिलूँगी, और न आँख तक झपकने दूँगी।" पास एक पानी का कटोरा भर कर रख लिया था। जब कभी लुप्तप्राय चेतना आँखों द्वारा निद्रा में निमग्न होने की इच्छा करती, वह छींटे दे-देकर जगी रहती।

४

परन्तु एक बार उसने हाथ कटोरे की ओर आगे को बढ़ाया। प्रायः आधी रात हो चुकी थी, उसे मालूम हुआ किसी ने उसका हाथ पकड़ लिया है। फिर वह देखती है कि वह लिखने का प्रयत्न कर रही है। एक दूसरा, वैसा ही अबोध, कोमल, गोरा चिट्टा हाथ उसके हाथ पर रक्खा हुआ उसे क़लम से लिखवाने का प्रयत्न कर रहा है। और वह सिर कॉपी के पास ले जाकर, मुस्कराती हुई कनखियों से कभी-कभी ऊपर भी देख लेती है और जान-बूझ कर टेढ़ा-मेढ़ा लिखती है; ताकि दूसरा हाथ उसके हाथ के साथ देर तक लगा रहे—दबा रहे। वह हाथ हरि का—बाबू जी का—है। फिर लिखने में निष्फल-प्रयत्न समझ कर वे इससे क्रुद्ध हो जाते हैं। कुछ ही देर बाद वह ठीक लिखना शुरू कर देती है। थोड़ी देर बाद वह देखती है, वह बड़ी हो गई है, सीढ़ियों से नीचे उतर रही है, हरिनाथ और उसकी आँखें चार हुईं। फिर देखती है कि बाबू जी उसे पकड़ कर कह रहे हैं—"आज न जाने दूँ तो?" ××× इसी प्रकार थोड़े से समय में ही बाल्यावस्था की, फिर विरह की, प्रेम की और सुख की सारी स्मृतियाँ सिनेमा-चित्रों की तरह सामने से फिर गईं। प्रसन्नता के समय गद्गद हो जाती, उद्वेग के समय उसके होंठ हिलने लगते, आँखों में आँसू आ जाते, और प्रेम के समय विह्वल होकर अङ्ग-अङ्ग में कँपकँपी सी हो आती। वह समय भी सामने आया, जब बड़े उद्वेग, बड़े उत्साह बड़ी पीड़ा और करुणा से सारा दिन प्रतीक्षा करने के बाद, आँखों में मादकता भरे हुए उसने पूछा था—"आज इतनी देर क्यों लगा कर आए?" एक-एक करके सुख की स्मृतियाँ, स्वर्गीय आनन्द के वे थोड़े से दिन—वर्ष भर के—आँख झपकने के साथ-साथ ही सामने से गुज़र गए।

थोड़ी देर बाद उसने देखा, उसके पतिदेव और वह दोनों आकाश में उड़ते-उड़ते सहसा नीचे गिर पड़े। पता नहीं किस प्रबल शक्ति के हाथों वे नीचे घसीट लिए गए, जिसके स्पर्श ने दोनों को सैकड़ों बिच्छुओं की तरह डस लिया। इन्दु के पतिदेव तो गिरते ही बेहोश हो गए, यह उनके सिरहाने बैठी आँसू बहा रही है। क्षण भर में ही वर्षों का बना-बनाया सुख-स्वप्न बालू पर बने प्रासाद की तरह एक ही धक्के से भहरा कर गिरा और भग्न हो गया। वह फिर देखती है कि उसके पतिदेव के होंठ कुछ हिले। वह कुछ आगे को झुकी। यद्यपि शरीर बिलकुल निष्प्राण सा पड़ा है, फिर भी होंठ हिले; साथ ही एक हाथ भी उठा और इन्दु की गर्दन में पड़ कर अपने होंठों के पास इसके कानों को ले गया। इन्दु को साँस कुछ देर के लिए रुकता मालूम दिया। कानों में एक बड़ी हल्की, थिरकती हुई सी आवाज़ आई, मानों कहीं दूर—अति दूर सुनसान जङ्गल के पास किसी भयानक सी पहाड़ी गुफा से होकर आ रही हो। आवाज़ कह रही थी:—

"इन्दु ! प्यारी इन्दु ! दुःखी मत होना, मैं चला ! कभी-कभी मुझे स्मरण कर लेना । अपने बच्चे का ख़याल रखना । परन्तु देखना, देखना ! इसे समाज के सुपुर्द मत करना । समाज एक क्रूर, निर्दयी, अत्याचारी और भयानक हिंसक पशु है, जिसमें निर्बलों, असहायों, अबलाओं, सत्यवक्ताओं, सीधे-साधे, भोले-भाले और और विशाल हृदय व्यक्तियों की हत्या और ध्वंस होता है। इसके साथ वे ही—केवल वे ही रह सकते हैं, जो इसी की तरह, पशु, दम्भी, प्रपञ्ची और चोर-डाकू हों। न्याय के पर्दे में यह अन्याय, रक्षा के पर्दे में लूट, पुण्य के पर्दे में पाप और मनुष्यता के पर्दे में अमानुषता करता है । चली जाना, दूर-दूर, अति दूर—एक जङ्गल में—जहाँ कहीं भी आस-पास किसी मनुष्य-रूप में हिंसक पशु का मुँह भी न दीख सके। लो, अब बिदा दो, मैं चला, चला !" इतना कहते-कहते स्वर बन्द हो गया । इन्दु ने देखा, एक विशालकाय, बड़ा भारी और मोटा सा व्यक्ति, जिसके सिर में बालों की लटों की जगह रुपए-पैसे टँगे हैं, मुँह से भयानक दुर्गन्ध आ रही है, हाथों से रक्त टपक रहा है, एक लम्बे से कोट की एक जेब में 'धर्म' दूसरी में 'न्याय' की दो पुस्तकें पड़ी हैं, उसके पति की टाँगों को घसीट कर ले चला है। इन्दु यह देख कर ज़ोर से हरिनाथ की छाती से लिपट जाती है, और मुँह से एक भयानक चीख़ निकल जाती है । चीख़ की आवाज़ के साथ ही इन्दु की आँख खुल गई ।

चारों ओर घोर अँधेरा था । दरवाज़ा में से आती हुई हवा फुङ्कारते हुए साँपों की तरह, सायँ-सायँ कर रही थी। मकान की मुँडेर पर एक उल्लू बड़े ज़ोर से चीख़ उठा और उड़ गया । इन्दु की छाती दहल गई । सारा शरीर पसीना-पसीना हो रहा था । उसने सोचने का प्रयत्न किया, सारे शरीर में ज़ोरों का दर्द उठ रहा था । फिर भी धीरे-धीरे सब स्मृतियाँ ताज़ी हो गईं और वह घबरा कर उठ खड़ी हुई । ताक में रक्खा हुआ दीपक हवा के झोंके से बुझ गया था । वही क्यों ? एक जीवन-रूपी दीपक भी अपना अन्तिम श्वास छोड़ कर बुझ चुका था, और अब शरीर से बदल कर शव के अतिरिक्त और कुछ न रह गया था । टटोल-टटोल कर इन्दु ने दीपक जलाया और चारपाई की ओर ले गई । मुँह पर प्रकाश पड़ते ही उसके मुँह से "हा प्रियतम !" दो शब्द निकले । साथ ही हाथ का दीपक गिर कर चूर-चूर हो गया । इन्दु ने अपना माथा ज़मीन पर पटक दिया ।

५

सवेरा हुआ; श्मशान में धू-धू करती हुई चिता के प्रकाश की तरह । सूर्य अपनी असंख्य ज्वालामयी किरणों को जलती हुई चिता की लटों की तरह चारों दिशाओं में फैलाता हुआ निकला । पूर्व की ओर से आता हुआ हवा का एक झोंका पश्चिम को निकल गया, मानों डरा हुआ ख़रगोश जान बचाने के लिए सरपट जङ्गल की ओर भागा जा रहा हो । कुछ क्षण के लिए कलरव के लिए निकले हुए पक्षियों ने अपना प्रभात-सङ्गीत बन्द कर दिया ; पक्षियों के बच्चे मार खाए बालकों की तरह घोंसलों में मुँह छिपा कर कोनों में दुबक गए । बाग़ में विकसित होते हुए एक फूल की कोमल पत्तियाँ झड़-झड़ कर गिर पड़ीं, छिने हुए यौवन, निष्प्राण शव की तरह अब केवल एक रुण्ड-मुण्ड डण्डी ही डाली से लटकती रह गई थी ।

उसी समय एक अर्थी को कुछ लोग श्मशान-भूमि की ओर उठाए ले जा रहे थे, जो पहरावे से सेवा-समिति के मालूम दे रहे थे । पीछे-पीछे एक स्त्री, जिसका माथा फटा हुआ था, बाल खोले, वस्त्र अस्त-व्यस्त हो रहे थे, करुण क्रन्दन करती हुई चली आ रही थी—नहीं, किसी अदृश्य शक्ति द्वारा खिंची चली आती थी । शरीर, पाँव सब शक्तिहीन होने पर लड़खड़ा रहे थे । स्थान-स्थान पर ठोकर खाकर गिरती और फिर सँभल कर उठ खड़ी होती थी । फिर शव की ओर बाँहें फैला कर कुछ पकड़ने का प्रयत्न करती हुई भाग खड़ी होती थी ।

जब शव चिता पर रक्खा गया, वह ज़ोर से उसकी छाती के साथ चिमट गई । "न जाने दूँगी, न जाने दूँगी । मत कोई मेरे पास आना, नहीं तो मार दूँगी ।" आहत सर्पिणी की तरह उसने आँख दिखला कर कहा । क्षण भर के लिए तो लोग ठिठक गए—परन्तु शीघ्र ही उसे दो-तीन आदमियों ने पकड़ कर परे कर दिया, और चिता को आग दे दी । स्त्री ने चिता में कूदने का कई बार प्रयत्न किया, परन्तु लोगों ने पकड़ कर उसे अलग कर दिया ।

चिता से लपटें उठीं—नहीं, मानों एक नवयौवना के भस्म होते हुए सुहाग से। एक विधवा के—समाज द्वारा ध्वंस किए गए सुख-स्वप्न से—हृदय-रूपी दावानल से ऐसी लपटें उठीं, जिन्होंने देखते-देखते एक शव को भस्मीभूत नहीं किया—नहीं-नहीं, समाज के यौवन को, समाज के निर्द्वन्द्व प्रेम को, हिंसक समाज में जो कुछ थोड़ी सी सुन्दरता, सहृदयता और बचा-खुचा सत्य रह गया था, उसको भी आज एक मृत शरीर में मूर्ति का रूप देकर स्वाहा कर दिया !

सन्ध्या हुई, इन्दु श्मशान से उठी और भागी, इतने ज़ोर से भागी कि पीछे मुड़ कर भी न देखा। मानों किसी अबोध बकरी के बच्चे के पीछे भूखे भेड़िए लगे हों। प्रत्येक आवाज़ के साथ उसकी टाँगें और भी तेज़ हो जातीं। प्रत्येक आहट से वह अपने कपड़े समेट लेती। मानों शिकारियों ने उसे पकड़ने को जाल बिछा रक्खे हों, अथवा आसपास की वस्तुएँ इतनी घृणास्पद, इतनी अस्पृश्य हों कि उन्हें छूकर वह पतित हो जायगी। उसका दम घुटा जा रहा था। हवा में एक घोर विष भरा हुआ मालूम दिया। वह परे—इस मनुष्य-जाति से, इसके सारे रक्त से सने स्मारकों से परे—एक जङ्गल की ओर भागी चली जा रही थी, जहाँ जङ्गली पशु-पक्षी भले ही उसे खा जायँ; परन्तु किसी नर-राक्षस के दूषित हाथ, उसके शरीर को न छू सकें। आख़िर न मालूम कब और कहाँ वह निस्तेज और निःशक्त होकर गिर पड़ी।

× × ×

दूसरे दिन लोगों ने देखा, श्मशान की पिछली ओर जङ्गल में कुछ ही दूर एक स्त्री लहू से लथपथ बुरी हालत में पड़ी है। उसकी नङ्गी छाती से चिमटा हुआ एक नव-जात शिशु दूध पीने का प्रयत्न कर रहा है। परन्तु वह कुछ भी न मिलने पर अपनी क्षीण सी आवाज़ में रो-रोकर मर रहा है।

"यह तो मरी पड़ी है!"—एक आदमी कह रहा था।

"अरे! यह तो कल वाली औरत ही मालूम देती है।"—दूसरे ने चौंक कर कहा।

हाँ-हाँ, यह कल वाली औरत—इन्दु—ही थी, जिसने माँ-बाप के लाड़-प्यार में अपना बाल्यकाल और पति के प्रेम में अपने यौवन का प्रारम्भ काटा था और आज उसकी यह अवस्था थी!

उन व्यक्तियों ने बालक को इन्दु की छाती से हटाना चाहा। उसकी पीठ पर इन्दु का निःशक्त हाथ लिपटा हुआ था। बालक को उठाते ही उसे एक हिचकी आई और साथ ही उसके प्राण भी निकल गए!

ले समाज, ले, तीन प्राणियों के जीवन को लेकर—नहीं, नहीं, इसी तरह शतशः के जीवनों को लेकर—उनके शवों की, उनकी चिन्ताओं की होली जला! और समझ, समझ मनुष्य-जीवन के मूल्य से, उसके प्रेम से अपने पैसे को, अपने धन को, अपनी बिरादरी को बड़ा! ओह! जिस दिन तेरे सिर पर मृत्यु का ताण्डव-नृत्य होगा, उसी दिन—ठीक उसी दिन—स्वर्ग से देवता फूल बरसाएँगे।

बीसवीं सदी का बसन्त !

[श्री० रसिकेन्द्र]

प्रकृति का पीत-पट देखें, दरकार क्या है ? लोगों के बदन में ही ज़रदी सवार है !
बौरे हैं न आम, आम-ख़ास हो रहे हैं बौरे, धाम-धाम मच रही धर्म की धमार है।
मधुप कहाँ हैं ? गाँव-गाँव गुबरीले बढ़े, पिकों का अभाव, 'काँव-काँव' की पुकार है,
आपस की रार से रहा न सार प्यार में है, बीसवीं सदी में क्या, बसन्त की बहार है !!

मनुष्य का आविर्भाव

[श्री० सत्यभक्त]

यदि आप हमारे देश के किसी व्यक्ति से—चाहे वह पण्डित हो या मूर्ख बालक हो या वृद्ध—यह प्रश्न करें कि मनुष्य की उत्पत्ति कहाँ से हुई तो वह तुरन्त उत्तर देगा कि मनुष्य को भगवान ने बनाया है। साधारण बुद्धि के लोग तो यहाँ तक विश्वास करते हैं कि जिस प्रकार कुम्हार मिट्टी की मूर्ति बनाता है, उसी प्रकार ब्रह्मा जी मनुष्यों को गढ़ते हैं। यदि कोई बालक जन्म लेते समय विकृत-अङ्ग हो या उसके साधारण लोगों की अपेक्षा अँगुलियाँ, हाथ, पैर या कोई अन्य अङ्ग अधिक हो, तो लोग कहते हैं कि ब्रह्मा जी उसे बनाते समय भूल कर गए हैं। ऐसे लोग समझते हैं कि सृष्टि के आदि में भगवान ने मनुष्य की इसी रूप में रचना की, जिसमें आज हम उसे देख रहे हैं। ऐसे लोगों से यदि यह कहा जाय कि मनुष्य की रचना अपने आप हुई है और सृष्टि के आदि से अनेक परिवर्तनों में होकर वह वर्तमान अवस्था तक पहुँचा है तो वे कदापि उस पर विश्वास न करेंगे। पर बात दरअसल ऐसी ही है और इसका समर्थन विज्ञान द्वारा ही नहीं, वरन् सभ्य और असभ्य जातियों में प्रचलित कितनी ही दन्त कथाओं द्वारा भी होता है।

चार युग

भूतत्ववेत्ताओं के मतानुसार पृथ्वी का अब तक का इतिहास चार भागों में विभक्त है, जिनमें से प्रत्येक की उद्भिज और प्राणिज-रचना एक दूसरे से भिन्न प्रकार की थी। पहले भाग में समस्त पृथ्वीतल हरियाली से ढका हुआ था और पेड़ों के नीचे छिपकली के बच्चों के से छोटे-छोटे जन्तु रेंगते फिरते थे। इस काल में समुद्र में भी तरह-तरह के केकड़े और मछलियाँ पाई जाती थीं, जिनका अब नाम-निशान भी नहीं है। दूसरे युग में जल और थल में छिपकली की आकृति के वृहदाकार तथा भीषण जन्तु पाए जाते थे। इस युग के अन्तिम भाग में तथा तीसरे युग के आरम्भ में सर्पों की जाति के जन्तु भी बहुत अधिक पाए जाते थे और उनका आकार इतना अधिक बड़ा था कि आजकल उस पर विश्वास भी नहीं होता। इन सर्पों में से कुछ जल में तैरने वाले थे, कुछ ज़मीन पर चलने वाले थे, कुछ हवा में उड़ने वाले थे। तीसरे युग में जिराफ़, हाथी, बन्दर आदि अनेक पशुओं का आविर्भाव हुआ। इसके पश्चात् चौथा युग आरम्भ हुआ, जो अब तक चला जाता है। इस युग से पहले के समस्त प्राणी और वृक्षादि ऐसे थे जो यदि आज हमें दृष्टिगोचर हों तो हम पहिचान भी नहीं सकें कि वे किस लोक से यहाँ आए हैं। इतना ही नहीं, उस काल की प्राकृतिक अवस्था तथा पृथ्वीतल की आकृति भी इस समय से सर्वथा भिन्न प्रकार की थी।

हिम-युग के मनुष्य

पर तो भी तीसरे काल में मनुष्य का अस्तित्व था, यह बात अब प्रमाणित हो चुकी है। इसका पता प्राचीन काल के लेखों से नहीं, वरन् उन पत्थर के हथियारों और मनुष्य तथा अन्य प्राणियों की हड्डियों से लगा है, जिनको वैज्ञानिकों ने खोज करके प्राप्त किया है। ये चिन्ह उस युग के हैं, जब यूरोप और पृथ्वी के अन्य कितने ही भाग हिम से आच्छादित थे और बर्फ़िस्तान के आसपास के जङ्गलों में मैमथ नाम के जन्तुओं के दल घूमते रहते थे। ये मैमथ हाथी की आकृति के अत्यन्त विशालकाय तथा बहुत लम्बे बालों से ढके होते थे, जो कठोर शीत से उनकी रक्षा करते थे। कुछ वर्ष हुए वैज्ञानिकों ने पहाड़ों की उन

गुफाओं से, जहाँ बर्फ़ की नदियाँ बहती थीं, पत्थर के वे हथियार प्राप्त किए हैं, जिनसे उस काल के मनुष्य इस भीषण जन्तु का शिकार करके अपनी जीवन-रक्षा करते थे। फ़्रान्स की ऐसी गुफाओं में दीवालों पर मैमथ के रङ्गीन चित्र बने हुए हैं, जिन्हें उस युग के मनुष्यों ने खींचा था। उन्हीं गुफाओं में मनुष्यों की खोपड़ियाँ तथा अन्य हड्डियाँ भी प्राप्त हुई हैं। इस प्रकार बिना किसी प्रकार के लिखित प्रमाण के हमको उस हिम-युग के मनुष्यों का बहुत-कुछ परिचय प्राप्त हो जाता है। कुछ चिन्ह ऐसे भी मिले हैं, जिनसे विदित होता है कि इस हिम-युग से पूर्व जब कि यूरोप, अफ़्रीका के समान उष्ण और ज़िराफ़ तथा बन्दरों से परिपूर्ण था, तब भी वहाँ मनुष्य का अस्तित्व था। इन तमाम चिन्हों तथा पत्थर के हथियारों से वैज्ञानिकों ने निर्णय किया है कि मनुष्य का आविर्भाव सम्भवतः तीसरे युग के मध्य काल में, अब से क़रीब दस लाख वर्ष पूर्व, हुआ था। इस सम्बन्ध में यह आपत्ति की जा सकती है कि इस बात का क्या प्रमाण है कि उसके पूर्व मनुष्य का अस्तित्व न था। इसके उत्तर में वैज्ञानिक दो बातें बतलाते हैं। एक यह कि इस युग से पूर्व का कोई पत्थर का हथियार आज तक उनको प्राप्त नहीं हुआ है और दूसरी बात यह कि वे जैसे-जैसे प्राचीन काल की तरफ़ लौटते हैं, पत्थर के हथियारों की बनावट अधिकाधिक भद्दी होती जाती है। ऐसी अवस्था में यह कल्पना करना कि जिस समय मनुष्य को पत्थर का भोंडे से भोंडा हथियार भी बनाना नहीं आता था उस समय भी उसका अस्तित्व था, युक्तियुक्त नहीं जान पड़ता। यदि उस समय में मनुष्य का अस्तित्व होगा भी, तो उसकी आकृति तथा शरीर की बनावट इस समय के मनुष्यों से इतनी अधिक भिन्न और विचित्र प्रकार की होगी कि आज उसकी हड्डियों को मनुष्य की हड्डी समझ सकना भी कठिन है। क्योंकि हिम-युग और उससे कुछ पूर्व के मनुष्यों की जो हड्डियाँ और खोपड़ियाँ मिली हैं, उनमें भी मनुष्य की वर्तमान हड्डियों से बहुत अन्तर है। विशेषकर उनकी खोपड़ी इतनी चिपटी है जितनी कि आजकल किसी घोर जङ्गली जाति के मनुष्य की भी देखने में नहीं आती।

पर वैज्ञानिकगण यह भी नहीं कह सकते कि मनुष्य तृतीय-युग के मध्य भाग में अपने आप उत्पन्न हो गया। इस प्रकार की कल्पना वैज्ञानिक नियमों के सर्वथा विपरीत है और उनके अनुसार कोई चीज़ अपने आप या अकारण उत्पन्न नहीं होती। इसलिए उन्होंने पृथ्वी के विभिन्न स्तरों में पाए जाने वाले प्राणी-जगत् के अन्य चिन्हों से इस बात का अनुमान लगाने की चेष्टा की है कि इस अवस्था के पूर्व मनुष्य किस स्वरूप में छिपा हुआ था। इसके लिए उन्होंने अनेक ऐसे प्राणियों की हड्डियों और शारीरिक बनावट की जाँच की है, जो प्राचीनकाल में पृथ्वीतल पर पाए जाते थे, पर अब जिनमें से अधिकांश का नाश हो गया है। इस मार्ग को ग्रहण करके विचार-क्षेत्र में आगे बढ़ने से उन्होंने अनेक आश्चर्यजनक बातों का पता लगाया है।

वानर-मनुष्य

जावा का टापू, जो एशिया महाद्वीप के दक्षिणी भाग में है, ज्वालामुखी पहाड़ों के उपद्रव के लिए प्रसिद्ध है। जिस समय पृथ्वी तृतीय युग में थी, अर्थात् अब से पन्द्रह-बीस लाख या इससे भी अधिक वर्ष पूर्व, वहाँ एक ज्वालामुखी पर्वत भड़का, जिसने भू-भाग के एक अंश को राख के ढेर में उसी प्रकार दबा दिया, जिस प्रकार ऐतिहासिक काल में वेसूवियस पहाड़ के भड़कने से पोम्पियाई का नगर भूमस्थ हो गया था। राख से दबने वाले भाग में कितने ही प्राणी भी निवास करते थे, जो सब इस घटना के कारण मर गए और वहीं पर उनकी क़ब्रें बन गईं। कुछ काल पश्चात् इन प्राणियों की हड्डियाँ पानी के बहाव द्वारा एक नदी के गर्भ में जा पहुँचीं, जिसका नाम बैङ्गेवैन है। सन् १८९१ में यूजेन डुबोइस नाम का एक हॉलैण्ड निवासी डॉक्टर इस नदी के किनारे खुदाई करा रहा था, जब कि उसे इन हड्डियों का एक ढेर प्राप्त हुआ। इनमें से अधिकांश हड्डियाँ तृतीय युग के हाथी, गेंडा आदि जैसे विशालकाय पशुओं की थीं, जो आजकल जावा में नहीं पाए जाते। इन हड्डियों में ही डुबोइस को एक विशेष प्रकार के प्राणी की जाँघ की हड्डी, खोपड़ी का ऊपरी भाग और दो दाँत प्राप्त हुए। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि यह प्राणी उस प्राचीन युग में उन पशुओं के साथ जङ्गल में रहता था।

इन हड्डियों का निरीक्षण करने से विदित हुआ कि यह प्राणी मनुष्य से बहुत-कुछ मिलता हुआ था और प्रायः मनुष्य के बराबर ही ऊँचा था। उसकी जाँघ की हड्डी की बनावट से प्रकट होता है कि उसे खड़े होकर चलने की आदत थी। इस प्राणी के पैर मनुष्य से इतने मिलते-जुलते थे कि बड़े-बड़े शरीर-शास्त्रियों ने इस हड्डी को देख कर उसे निस्सङ्कोच मनुष्य की हड्डी बतलाया। पर जब उन्होंने खोपड़ी की हड्डी को देखा तो बड़े चकराए। क्योंकि यह खोपड़ी इतनी चिपटी थी कि उसमें मस्तक के सामने वाले भाग का पता ही न था और आँखों के ऊपर दो कूबड़ से निकले थे। यद्यपि हिम-युग के मनुष्यों की खोपड़ियाँ भी बहुत चिपटी होती थीं और उनमें आँखों के ऊपर ऐसे ही कूबड़ निकले थे, पर जावा में पाई जाने वाली खोपड़ी में इतना अधिक अन्तर था कि उसे मनुष्य के बजाय बन्दर की खोपड़ी कहना अधिक उपयुक्त जान पड़ता था। इतना ही नहीं, एशिया के दक्षिणी भाग में पाए जाने वाले एक विशेष प्रकार के बन्दर की खोपड़ी से, जिसको 'गिबन' कहते हैं, वह अनेकांश में मिलती-जुलती थी। यद्यपि आजकल गिबन का जो आकार देखने में आता है उससे इस प्राणी की हड्डियाँ बहुत बड़ी थीं, पर उन दोनों में इतना सादृश्य था कि कितने ही विद्वानों ने यह निर्णय किया कि ये हड्डियाँ एक ऐसी जाति के गिबन की हैं जिसका इस समय लोप हो गया है और जिसकी ऊँचाई आदमी के बराबर थी।

पर इस मत को सब लोगों ने स्वीकार नहीं किया। उन्होंने एक विशेष पदार्थ भर कर खोपड़ी की गहराई को नापा और निश्चय किया कि उसमें मस्तिष्क का स्थान वर्तमान काल के घोर जङ्गली लोगों की अपेक्षा आधा और गोरिल्ला बन्दर की अपेक्षा दुगना है। इससे सिद्ध हुआ कि उस प्राणी का मस्तिष्क गिबन की अपेक्षा कहीं अधिक उन्नत था। यद्यपि वर्तमान काल के मनुष्य तथा हिम-युग के मनुष्य की अपेक्षा वह बहुत नीची श्रेणी का था। इसलिए उनके सामने यह समस्या उपस्थित हुई कि इस प्राणी को किस श्रेणी में रक्खा जाय? इस विषय में वैज्ञानिकों में बहुत कुछ मतभेद हुआ। कुछ ने कहा 'गिबन से बहुत कुछ मिलता-जुलता मनुष्य' और कुछ ने 'मनुष्य से बहुत कुछ मिलता-जुलता गिबन' कहा। उसके आविष्कारक डुबाइस ने इन दोनों मतों के बीच के मार्ग को ग्रहण करके इस प्राणी का नाम बानर-मनुष्य (Ape-man) रख दिया।

वैज्ञानिकों का यह मतभेद एक महत्वपूर्ण तथ्य को प्रकट करता है। इससे विदित होता है कि तीसरे युग में इस पृथ्वीतल पर ऐसे प्राणी पाए जाते थे, जो गिबन तथा मनुष्य के बीच की स्थिति में थे। उनकी खोपड़ी हिम-युग के मनुष्यों से उसी तरह भिन्न प्रकार की थी जिस प्रकार आजकल के मनुष्यों की हिम-युग वालों से भिन्न प्रकार की है। इस प्रकार वर्तमान मनुष्यों से उनमें इतना अधिक अन्तर था कि उनको मनुष्य कह सकना कठिन है। यदि उनको किसी नाम से पुकारा जा सकता है तो वे बन्दर के नाम के ही योग्य हैं। इतना जान लेने के बाद यदि कोई यह प्रश्न करे कि तीसरे युग के मध्य में मनुष्य का आविर्भाव कहाँ से हुआ तो उसे यही उत्तर दिया जायगा कि उस समय के पूर्व मनुष्य की स्थिति बन्दर के रूप में थी और उसी का विकास होकर वर्तमान मनुष्य का आविर्भाव हुआ।

बन-मानुस

यह बतला देना आवश्यक है कि यहाँ पर 'बन्दर' शब्द उन साधारण बन्दर और लङ्गूरों के लिए प्रयोग नहीं किया गया है, जिनको हम शहरों में और पेड़ों पर उछलते देखते हैं, वरन् हमारा आशय बन्दरों की एक विशेष जाति गिबन से है। जीव-विज्ञान के ज्ञाता बहुत समय पूर्व मनुष्याकृति बन्दरों की जाति को साधारण बन्दरों से पृथक् मान चुके हैं। इस शब्द से प्रकट होता है कि ये बन्दर अन्य जन्तुओं की अपेक्षा मनुष्य से अधिक मिलते-जुलते हैं। इन बन्दरों की चार जातियाँ आजकल पृथ्वी पर पाई जाती हैं। इनमें से दो गोरिल्ला और शिम्पैञ्जी अफ्रीका में रहती हैं और दो, ओरङ्ग-उटाङ्ग तथा गिबन एशिया में। इन चारों तरह के बन्दरों की बाहरी आकृति भी मनुष्य से मिलती हुई है। ये प्रायः दोनों पैरों पर खड़े होकर चलते हैं और इनके पूँछें नहीं होतीं। साधारण लोग इनको बन-मानुस के नाम से पुकारते हैं। यदि इन चारों तरह के बन्दरों की ठटरियों को मनुष्य की ठटरी से मिला कर देखा जाय तो और भी आश्चर्यजनक समानता दृष्टिगोचर होती है। इन पाँचों प्रकार की ठटरियों में एक ही प्रकार की दो

सौ हड्डियाँ पाई जाती हैं। एक ही प्रकार की ३०० माँस-पेशियाँ विभिन्न हड्डियों का सञ्चालन करती हैं। इन सबकी खाल रोओं से ढकी रहती है और इनके बच्चों का पोषण दुग्ध-ग्रन्थि (Mammary gland) से होता है। इन सबका हृदय चार भागों में विभक्त होता है और वही समस्त देह में रक्त-सञ्चालन का कार्य करता है। इन सबके जबड़ों में एक सी बनावट के बत्तीस दाँत होते हैं और जनन-क्रिया के अङ्ग बिलकुल मिलते-जुलते हैं। मस्तिष्क की रचना करने वाले परमाणु भी इनमें एक से होते हैं। इन्हीं सब लक्षणों को देख कर सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक हक्सले ने लिखा है :— "हम मनुष्य तथा इन चारों तरह के बन्दरों के किसी भी अङ्ग पर दृष्टि क्यों न डालें, उनमें बहुत कुछ समानता जान पड़ती है, जब कि साधारण बन्दरों से इनके अङ्गों में बहुत अन्तर पाया जाता है।" यह सच है कि इन बन्दरों और हमारे कितने ही अङ्गों की लम्बाई और आकार में अन्तर पाया जाता है, पर वह विभिन्न परिस्थितियों में रहने से उत्पन्न हुआ है। ऐसा अन्तर स्वयम् मनुष्यों में भी पाया जाता है। किसी के हाथ बहुत लम्बे होते हैं और किसी के बहुत छोटे; किसी का मस्तक ऊँचा होता है किसी का नीचा; किसी के बाल मोटे होते हैं किसी के पतले, आदि-आदि।

रक्त की एकता

शरीर-शास्त्र-वेत्ताओं ने मनुष्य तथा बन्दर की एकता का जो प्रमाण दिया है उससे भी अधिक दृढ़ तथा अकाट्य प्रमाण कुछ डॉक्टरों ने खोज निकाला है। उससे विदित होता है कि मनुष्य का रक्त अन्य किसी भी प्राणी की अपेक्षा इन बन्दरों से बहुत अधिक मिलता है। यदि आप रक्त की एक बूँद को किसी अच्छे खुर्दबीन द्वारा देखें तो मालूम होगा कि वह एक तरल पदार्थ (Serum) तथा छोटे-छोटे कणों (Corpuscles) से मिल कर बना है। प्रत्येक प्राणी के रक्त के कण एक दूसरे से भिन्न आकृति के होते हैं। किसी के लम्बे होते हैं, किसी के गोल होते हैं, किसी के बड़े होते हैं, किसी के छोटे होते हैं। सारांश यह कि ये रक्त-कण मछली, पक्षी और दूध पिलाने वाले जानवरों में पृथक्-पृथक् आकृति के होते हैं।

इस भेद का महत्त्व उस समय ज्ञात होता है जब हम किसी एक जाति के प्राणी के शरीर में दूसरी जाति के प्राणी का रक्त पिचकारी द्वारा पहुँचा दें। अगर उन दोनों प्राणियों में किसी प्रकार का सम्बन्ध होगा तो वह रक्त, रक्त में मिल जायगा और उसका कोई कुफल न होगा। उदाहरणार्थ कुत्ता और भेड़िया दो अलग-अलग प्राणी हैं, पर उनका वंश एक ही है। इसलिए यदि कुत्ते के शरीर में भेड़िए का अथवा भेड़िए के शरीर में कुत्ते का थोड़ा सा रक्त इन्जेक्शन द्वारा पहुँचा दिया जाय तो उनको उससे कुछ भी कष्ट नहीं होगा। यही दशा घोड़े और गधे की है। पर यदि एक वंश के प्राणी का रक्त दूसरे वंश के प्राणी के शरीर में डाल दिया जाय तो उसका प्रभाव घातक सिद्ध होता है। वह उसके लिए विष का काम करता है और वह कुछ ही देर में तड़फड़ा कर प्राण छोड़ देता है। इङ्गलैण्ड के नटैल नामक डॉक्टर ने ९०० प्रकार के प्राणियों के रक्त को लेकर इस प्रकार के १६ हज़ार परीक्षण किए और उससे अन्त में यह भली-भाँति सिद्ध हो गया कि मनुष्य का रक्त जबकि अन्य सब प्राणियों तथा साधारण बन्दरों को मार डालता है, उपर्युक्त चारों प्रकार के मनुष्याकृति बन्दरों पर उसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। इसका अर्थ यह हुआ कि इन बन्दरों तथा मनुष्य के रक्त में पूर्ण एकता है और इसलिए वे सहज ही एक-दूसरे से मिल जाते हैं। यही बात बन्दरों की 'ग्लैण्डस' (Glands) के विषय में कही जा सकती है। आजकल बूढ़ों को जवान बनाने के लिए प्रायः डॉक्टर लोग बन्दर के शरीर से 'ग्लैण्डस' निकाल कर मनुष्य के शरीर में लगा देते हैं, पर उसका कुछ भी कुप्रभाव नहीं पड़ता। इस प्रकार वैज्ञानिकों ने रसायन-शास्त्र की सहायता से जीवित शरीरों की एकता सिद्ध करके एक ऐसी दुरूह समस्या को हल कर दिया जिसके लिए अब तक वे जङ्गलों और पहाड़ों की ख़ाक छानते फिरते थे और फिर भी मतभेद का अन्त नहीं हो पाता था।

इस खोज से हम अपने विचार-क्षेत्र में एक क़दम और आगे बढ़ते हैं। इससे यह सम्भावना सत्य प्रतीत होने लगती है कि किसी युग में मनुष्य ऐसे प्राणी के रूप में छुपा हुआ था जो इन मनुष्याकृति बन्दरों से मिलता हुआ था। कुछ लोग शायद ऐसी भी कल्पना करेंगे कि कहीं ये मनुष्याकृति बन्दर ही तो मनुष्य के पूर्वज नहीं हैं? उन लोगों की यह कल्पना हबशियों की

इस धारणा के सदृश है कि ये बन्दर वास्तव में मनुष्य ही हैं, पर वे बड़े आलसी हैं और इसलिए बन्दर बनने का बहाना करते हैं जिससे उनको काम न करना पड़े। यद्यपि यह धारणा हास्यजनक है पर उससे इतना अनुमान किया जा सकता है कि ये बन्दर मनुष्य के पूर्वजों के ही वंशज हैं, पर परिस्थितिवश उनके विकास में बाधा पड़ गई है और वे अभी तक बन-मानुस ही बने हुए हैं।

कुछ लोग इस सम्बन्ध में प्रश्न करेंगे कि यह कैसे सम्भव है कि हमारे कुछ कुरूप बन्दराकृति पूर्वज अभी उसी निम्न परिस्थिति में पड़े हैं जब कि मनुष्य बहुत समय पहले वर्तमान उन्नत अवस्था को प्राप्त हो चुका है? पर यह प्रश्न विशेष महत्व नहीं रखता; क्योंकि इस प्रकार की घटना हम स्वयम् मनुष्य-समाज में देख रहे हैं। क्या कारण है कि जब संसार के अधिकांश देशों के मनुष्य सभ्यता के अनगिनती सुखों का उपभोग कर रहे हैं, ऑस्ट्रेलिया के जङ्गली निवासी पशुओं की तरह झाड़ियों में रहते हैं और हिम-युग के मनुष्यों की भाँति पत्थर और लकड़ी के हथियारों का उपयोग करते हैं? दूर जाने की क्या आवश्यकता है, स्वयम् हमारे देश में जब कि बम्बई, कलकत्ता के निवासी मोटरों और हवाई जहाज़ों में बैठ कर सैर करते हैं तथा दस खण्ड के मकानों में रहते हैं, उनसे सौ दो सौ मील की दूरी पर ही भील और सन्थाल जैसे लोग पाए जाते हैं, जिनको मोटा कपड़ा बनाना भी नहीं आता और जो आधुनिक सभ्यता से किसी तरह का सम्बन्ध न रख कर प्रायः पशुओं की सी अवस्था में पड़े हुए हैं।

गिबन की विशेषताएँ

जब हम चारों प्रकार के बन-मानुसों पर दृष्टि डालते हैं तो उनमें बहुत भिन्नता देखने में आती है। तब क्या वे विभिन्न युगों के प्राचीन मनुष्यों के नमूने हैं? यह बात ठीक नहीं जान पड़ती। उनको एक को दूसरे का उत्तराधिकारी सिद्ध करने की जितनी चेष्टा की गई है वह असफल हुई है। यह सच है कि उनमें से प्रत्येक कुछ ऐसी विशेषताएँ रखता है जो मनुष्य से मिलती हैं, पर उनमें पारस्परिक सादृश्य अधिक नहीं है। जैसा कि हम जावा में पाई जाने वाली हड्डियों की चर्चा करते समय बतला चुके हैं, गिबन नाम का बन्दर मनुष्य से अधिक सादृश्य रखता है। तब क्या गिबन ही मनुष्य का पूर्वज है और ओरङ्ग-उटाङ्ग, शिम्पञ्जी तथा गोरिल्ला अविकसित जातियों के नमूने हैं? यह तो मानना ही पड़ेगा कि गिबन बड़ा विलक्षण तथा समझदार प्राणी है और मनुष्य के पूर्वज से उसका सम्बन्ध अन्य बन्दरों की अपेक्षा कहीं अधिक है। वह गोरिल्ला की तरह ख़ूँख़ार नहीं होता वरन् बहुत नम्र स्वभाव का तथा प्रेमी होता है। वह ताल-सुर के साथ गा सकता है, जो एक पशु के लिए अत्यन्त आश्चर्यजनक विषय है। यदि गिबन कभी पेड़ से उतरता है, जो उसे बहुत कम पसन्द है, तो वह दोनों पैरों पर खड़ा होकर और दोनों हाथों को फैला कर अथवा उनको सर के ऊपर रख कर चलता है। गिबन के यह हाथ बड़े रहस्यपूर्ण हैं। उसके धड़ तथा पैरों के साथ तुलना करने से यह बहुत लम्बे जान पड़ते हैं। हाथों के सम्बन्ध में मनुष्य के साथ उसकी कुछ भी तुलना नहीं की जा सकती। किसी अन्य दूध पिलाने वाले पशु के इतने लम्बे हाथ नहीं होते। पर जब हम यह जान लेते हैं कि वह हमेशा पेड़ों पर ही रहता है और पेड़ों पर चढ़ने की कला में अद्वितीय है तो हमको इन हाथों की उपयोगिता विदित हो जाती है और उनके विकास के कारण का भी पता लग जाता है। इस दशा में स्वभावतः हमारे मन में प्रश्न उठता है कि क्या मनुष्य के पूर्वज के भी ऐसे ही मकड़ी के से लम्बे हाथ थे। यद्यपि शेष तीन प्रकार के बन-मानुसों के भी काफ़ी लम्बे हाथ होते हैं, पर तो भी उनमें और गिबन के हाथों में बहुत अन्तर है।

ऐसी दशा में हम इसी निर्णय पर पहुँचते हैं कि सम्भवतः ये बन-मानुस मनुष्य के पूर्वज से सम्बन्धित हैं पर ये उससे पूर्णतया मिलते हुए नहीं हैं। इनमें से प्रत्येक का अपनी परिस्थिति के अनुसार विकास हुआ है जब कि मनुष्य अपनी विशेष परिस्थिति द्वारा वर्तमान अवस्था तक पहुँच गया है। यद्यपि उनमें अपने पूर्वज की अपेक्षा अधिक परिवर्तन नहीं हुआ है तो भी प्राकृतिक आवश्यकताओं ने उनमें कुछ पृथक्-पृथक् विशेषताएँ उत्पन्न कर दी हैं।

गर्भस्थ शिशु-विज्ञान की साक्षी

अब हम मनुष्य और बन्दरों की एकता का एक और प्रमाण देते हैं जिसका पता गर्भस्थ शिशु-विज्ञान के ज्ञाताओं ने लगाया है। जीवित प्राणियों में एक

अद्भुत नियम यह पाया जाता है कि उनके गर्भस्थ शिशु अपने पूर्वजों के स्वरूप से बहुत अंशों में मिलते हैं। उदाहरणार्थ एक मेंडक जब तक वह छोटा रहता है मछली से बहुत कुछ मिलता है और उसी की तरह गलफड़ों से साँस लेता है। अन्य कितने ही प्राणियों के बच्चे अण्डे के भीतर या गर्भ में ऐसे रूप में होते हैं जो अनेकांश में उनके अति प्राचीन पूर्वजों से समानता रखता है।

उपर्युक्त कथन की सत्यता का एक साधारण प्रमाण यह है कि गोरिल्ला, शिम्पेन्जी और ओरङ्ग-उटाङ्ग जब तक कम उम्र के रहते हैं तब तक वे मनुष्य के साथ बहुत कुछ सादृश्य रखते हैं। गोरिल्ला, जोकि बड़ी उम्र में अत्यन्त ख़ूँख़ार और क्रोधी हो जाता है, बचपन में मनुष्य से इतना अधिक मिलता हुआ होता है कि एक साधारण आदमी भी, जिसे वैज्ञानिक सिद्धान्तों का कुछ भी ज्ञान नहीं है, उसे देख कर आश्चर्य करने लगेगा। प्राणी-परम्परा के सिद्धान्तानुसार इसका यह अर्थ होता है कि, ये बन-मानुस किसी ऐसे पूर्वज के वंश में से हैं जो उनकी अपेक्षा मनुष्य से अधिक मिलता-जुलता था। इस विषय की प्रत्यक्ष जाँच एमिल सेलेनका नामक वैज्ञानिक ने जावा टापू में जाकर तथा गिबन के कितने ही गर्भस्थ शिशु एकत्रित करके की थी। उससे पता लगाया कि गिबन के बच्चे की ओझरी ठीक उसी प्रकार की होती है जैसी की मनुष्य की। साथ ही गिबन के गर्भस्थ शिशु की आकृति प्रायः मनुष्य के गर्भस्थ शिशु की तरह ही दिखलाई देती है। उस अवस्था में उसके हाथों की लम्बाई साधारण होती है और जन्म लेने के बाद धीरे-धीरे ही वे अस्वाभाविक रूप से बढ़ते हैं। यदि प्राणी-परम्परा विज्ञान का नियम ठीक है तो इस प्रमाण के आधार पर हम कह सकते हैं कि गिबन के पूर्वज के हाथ वर्तमान गिबन की तरह लम्बे न थे और इसलिए वह मनुष्य से बहुत-कुछ मिलता हुआ जान पड़ता होगा।

इस प्रकार अनेक प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि किसी ज़माने में पृथ्वीतल पर कोई ऐसा स्तनधारी प्राणी (Mammal) रहता था, जिसमें केवल मनुष्य का ही नहीं वरन् वर्तमान समय में पाए जाने वाले चारों प्रकार के बन-मानुसों का बीज मौजूद था। उसी से इन सबका इस प्रकार विकास हुआ, जिस प्रकार एक ही पिता के कई पुत्र एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न होते हैं।

अगर हम इस प्राणी को, इस कारण से कि इससे वर्तमान मनुष्यों की उत्पत्ति हुई है, 'मनुष्य' कहें तो हमको यह भी कहना पड़ेगा कि वर्तमान मनुष्याकृति बन्दर मनुष्य के वंशज हैं। यह कथन उन विज्ञान-विहीन लोगों के कथन से, जो वर्तमान बन-मानुसों को मनुष्य का पूर्वज बतलाते हैं, कहीं अधिक सार्थक होगा।

मनुष्य की पूँछ

जब हम आगे बढ़ते हैं तो हमारे सामने फिर यह समस्या उपस्थित होती है कि इस प्राणी की, जिसका नाम बानर-मनुष्य (Ape-man) रक्खा गया है, उत्पत्ति कहाँ से हुई? इस प्रश्न पर विचार करने से वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि चारों प्रकार के बन-मानुसों के शारीरिक सङ्गठन के पश्चात् साधारण बन्दरों के शारीरिक सङ्गठन का नम्बर है। ये साधारण बन्दर तीन प्रकार के होते हैं। एक एशिया और अफ्रीका में रहने वाले लम्बी पूँछ के लङ्गूर, दूसरा अमेरिका में पाया जाने वाला 'कैपूचिन' नाम का बन्दर और तीसरा अमेरिका में ही पाया जाने वाला 'मार्मोसेट' नाम का बन्दर जिसके नाख़ूनों के बजाय पञ्जे होते हैं और जो गिलहरी से अधिक मिलता-जुलता है। यद्यपि ये तीनों तरह के बन्दर मनुष्य के पूर्वजों की श्रेणी में नहीं माने जा सकते, पर उनकी शारीरिक रचना का विश्लेषण करने से इतना अनुमान अवश्य होता है कि बानर-मनुष्य का पूर्वज उनसे सादृश्य रखने वाला ही होगा।

आरम्भ में जिन वैज्ञानिकों ने गिबन की परीक्षा की थी उन्होंने बतलाया था कि उसमें जहाँ अनेक बातें मनुष्य तथा अन्य मनुष्याकृति बन्दरों से मिलती हैं, वहाँ कुछ बातें ऐसी भी हैं जो सर्वथा साधारण श्रेणी के बन्दर तथा लङ्गूरों में पाई जाती हैं। इसमें सन्देह नहीं कि गिबन ने ये विशेषताएँ बानर-मनुष्य से पाई हैं और बानर-मनुष्य ने अपने किसी और प्राचीन पूर्वज से, जो साधारण बन्दरों की तरह होगा, प्राप्त की होंगी। इस बात का प्रमाण कि मनुष्य की पूर्वज-श्रेणी में कोई प्राणी ऐसा था जिसके लम्बी पूँछ होगी, मनुष्य के गर्भस्थ शिशु को देखने से अब भी मिल सकता है। उस अवस्था में बालक के स्पष्ट रूप में बाहर निकली हुई पूँछ रहती है और कुछ लोगों के तो जन्म लेने के बाद बड़े होने पर भी यह पूँछ ज्यों की त्यों बनी रहती है।

यद्यपि लोग इस बात पर विश्वास नहीं करते पर ऐसे अपवाद-स्वरूप पूँछ वाले आदमी अब भी कभी-कभी देखने में आते हैं। इसलिए इस बात से इनकार करने का कोई कारण नहीं है कि मनुष्य के किसी पूर्वज के आजकल के बन्दरों की तरह लम्बी पूँछ थी। पृथ्वी के स्तरों की परीक्षा करने से पता चलता है कि ऐसे पूँछ वाले बन्दर तृतीय युग के मध्य में पाए जाते थे। इनमें से एक जाति का बन्दर जिसकी पूँछ बहुत लम्बी होती थी ग्रीस में रहता था। इसका नाम मैसोपिथेसस था और इसकी बहुत सी हड्डियाँ ग्रीस में मिली हैं। इस बन्दर की नाक तथा आँखों का स्थान मनुष्य से, वर्तमान बन्दरों की अपेक्षा, बहुत अधिक मिलता था। इससे तथा बन्दरों में पाए जाने वाले अन्य मनुष्य से मिलते हुए चिन्हों से विदित होता है कि जिस प्राणी की खोज हम कर रहे हैं उसका वंश दो शाखाओं में विभाजित हुआ था, जिनमें से एक शाखा साधारण बन्दरों की तथा दूसरी बानर-मनुष्य (Ape-man) की थी। यह प्राणी अवश्य ही बानर-मनुष्य से बहुत अधिक पुराना होगा और उसकी स्थिति तृतीय युग के आरम्भ में, जिसे कम से कम तीस लाख वर्ष व्यतीत हो चुके हैं, रही होगी।

मनुष्य के तीस रूप

इस तरह जैसे-जैसे हम पीछे की तरफ़ लौटते जाते हैं, मनुष्य को हम विभिन्न प्राणियों के रूप में अन्तर्हित पाते हैं। कहीं वह गिलहरी के रूप में, कहीं छिपकली के रूप में, कहीं मछली के रूप में और कहीं कीड़े-मकोड़े के रूप में हमको दिखलाई देता है। अन्त में हम ऐसे युग में, जिसे कई करोड़ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं, जा पहुँचते हैं जहाँ उसका अस्तित्व जीवित कणों के रूप में रह जाता है। सब मिला कर प्रायः तीस रूपों में होकर वह वर्तमान अवस्था तक पहुँचा है। इन तमाम परिवर्तनों की अवस्था में उसके शारीरिक अवयवों तथा अस्थि-पञ्जर की वृद्धि थोड़ा-थोड़ा करके किस प्रकार हुई है, यह बड़ी लम्बी कथा है और इसके सम्बन्ध में एक नहीं हज़ारों सचित्र ग्रन्थ संसार की समस्त उन्नत भाषाओं में लिखे जा चुके हैं। उन सब का सारांश यही है कि यह पृथ्वी जैसे-जैसे पुरानी और प्राणियों के जीवन-निर्वाह के योग्य होती गई है वैसे-वैसे ही पुराने प्राणियों का विकास होकर नई तरह के प्राणी उत्पन्न होते गए हैं। इस परिवर्तन का मुख्य आधार जल-वायु तथा भोजन की व्यवस्था पर रहा है। आत्म-रक्षा की नैसर्गिक भावना ने भी परिवर्तन में बहुत-कुछ सहायता पहुँचाई है। जो प्राणी कमज़ोर अथवा आत्म-रक्षा में असमर्थ थे उन्हें बलवान और चालाक प्राणियों ने खा डाला और उन्हीं के वंश का अधिकाधिक विकास होता गया।

विकास-सिद्धान्त के विरोधी

हम यह भली भाँति समझते हैं कि साधारण लोगों के लिए प्राणियों का यह शारीरिक तथा मानसिक रूपान्तर अत्यन्त दुर्बोध प्रतीत होता है और इसलिए वे इसे सर्वथा असम्भव समझते हैं। इसके दूसरे विरोधी धर्म के नाम पर पेट भरने वाले लोग हैं जो ऐसे ज्ञान का जनता में प्रचार होना अपनी मृत्यु समझते हैं। क्योंकि इससे विभिन्न धर्मों के 'ईश्वरीय ग्रन्थों' जैसे वेद, पुराण, बाइबिल, क़ुरान आदि में लिखे सृष्टि के इतिहास तथा सृष्टिकर्ता ईश्वर का खण्डन होता है और ऐसी अवस्था में लोगों के इस गोरखधन्धे में फँसे रहने की सम्भावना कम हो जाती है। हमारे देश में तो अभी इन सिद्धान्तों का सार्वजनिक रूप में प्रचार ही नहीं हुआ है, न यहाँ अभी इतनी शिक्षा ही फैली है कि साधारण जनता इस गहन विषय को समझ सके। पर यूरोप और अमेरिका में इसका पादरी तथा धर्माचार्यों ने इतना विरोध किया, जिसका वर्णन किया जा सकना असम्भव है। उन्होंने झूठे तर्क करके लोगों को भ्रम में डालने की ही चेष्टा नहीं की वरन् इसकी शिक्षा तथा प्रचार को क़ानून द्वारा रुकवाया और सम्भवतः अमेरिका में इसका प्रचार अभी तक ग़ैरक़ानूनी माना जाता है। पर जब इससे काम न चला तो उनमें से अधिकांश लोगों ने इसके मूल-सिद्धान्तों को स्वीकार कर लिया, पर साथ ही उनमें यह जोड़ देने की चेष्टा की कि वर्तमान रूप में पहुँचने पर मनुष्य में आत्मा का प्रवेश ईश्वर द्वारा ही हुआ। इस प्रकार जिस कार्य को वे विरोध तथा बलपूर्वक नहीं कर सके उसे युक्ति द्वारा करना चाहते हैं।

विकास के वर्तमान उदाहरण

वास्तव में यह बड़े आश्चर्य का विषय है कि हम लोग ईश्वर या किसी अन्य दैवी शक्ति द्वारा एक ही

दिन में मनुष्यों तथा मानवीय सभ्यता का उत्पन्न हो जाना और उन मनुष्यों में से कुछ का धोती तथा बगल-बन्दी पहिन कर संस्कृत बोलने लगना तथा कुछ का कोट-पतलून पहिन कर अङ्गरेज़ी बोलना, जैसी कल्पनाओं को तो, जिनका एक भी प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिला है, बुद्धिगम्य मान लेते हैं, पर विकास का नियम जिसका प्रमाण संसार तथा मानवीय सभ्यता के प्रत्येक क्षेत्र में पग-पग पर मिलता है, हमारी समझ में नहीं आता। पुराने ज़माने की बात छोड़ दीजिए अब भी विकास-सिद्धान्त के अनुसार मनुष्यों तथा अन्य कितने ही प्राणियों में परिवर्तन होता रहता है, पर उसकी गति इतनी धीमी है कि साधारण लोग अपने जीवन-काल में, जो कुछ अपवादों को छोड़ कर प्रायः अधिक से अधिक सौ वर्ष का होता है, उसका अनुभव नहीं कर सकते। पर यदि हम किसी प्राणी के लिए कृत्रिम रूप से सर्वथा भिन्न जल-वायु में रक्खें तो हम थोड़े ही समय में विकास का परिणाम देख सकते हैं। पिछले कुछ ही वर्षों में कुत्तों, कबूतरों और खरगोशों आदि की जितनी विचित्र जातियाँ लोगों ने उनके खान-पान तथा रहन-सहन में परिवर्तन करके उत्पन्न कर ली हैं वह आश्चर्यजनक है। आजकल शेर के बराबर बड़े तथा बहादुर कुत्तों से लेकर इतने छोटे कुत्ते तक देखने में आते हैं जिनको लोग सहज ही जेब में रख ले सकते हैं। इसी प्रकार ऐसी-ऐसी विचित्र सूरत के कबूतर पैदा किए गए हैं जो साधारण कबूतरों से बिल्कुल नहीं मिलते। खरगोश भी आज-कल हरे, पीले, नीले आदि बीसियों रङ्ग के मिलते हैं जिनका पहले पता भी न था। इन तमाम नई नस्लों को ईश्वर ने नहीं वरन् मनुष्य ने स्वयं उत्पन्न किया है। जापान वाले मुर्ग़ों की पूँछ को आठ-दस हाथ तक लम्बी बना लेते हैं। वहाँ के निवासी आम और इमली के समान विशाल वृक्षों को छोटा करके केवल फ़ीट दो फ़ीट का बना देते हैं और उनमें हज़ारों पत्ते तथा फल बराबर लगते रहते हैं। अमेरिका के कृषि-विज्ञान-विशारदों ने अनेक प्रकार के नवीन फल और फूलों को उत्पन्न किया है। ये सब विकास के छोटे-छोटे नमूने हैं और यदि चेष्टा की जाय तो कुछ ही समय में ऐसे-ऐसे पशु-पक्षी उत्पन्न किए जा सकते हैं जिनको मनुष्य पहिचान भी नहीं सकते न उनका नाम ले सकते हैं। इसी प्रकार यदि पृथ्वी की प्राकृतिक अवस्था में स्वभावतः परिवर्तन होने से समय-समय पर उस पर रहने वाले प्राणियों के स्वरूप तथा स्वभाव में अन्तर होता गया तो इसमें असम्भव क्या है? हम यह मानने को तैयार हैं कि अभी मनुष्य ज्ञान की अन्तिम सीमा तक नहीं पहुँच गया है और सैकड़ों बातें ऐसी हैं, जिनके विषय में उसे भ्रम है अथवा जिनसे वह सर्वथा अनजान है। यह भी सम्भव है कि वैज्ञानिकों ने मनुष्य के जिन-जिन स्वरूपों का निर्णय किया है, उनमें से कुछ स्वरूप छूट गए हों अथवा कुछ ऐसे स्वरूप सम्मिलित हो गए हों जिनसे मनुष्य का कोई सम्बन्ध नहीं है। प्रकृति ने किस नियम के अनुसार अधिक योग्य और उपयुक्त प्राणियों को पृथ्वीतल पर स्थित रहने के लिए चुना, यह प्रश्न भी बड़ा विवादग्रस्त है और इसकी अन्तिम मीमांसा अभी तक नहीं हो पाई है। पर इन तमाम त्रुटियों के होते हुए भी कोई हमको अपने अध्ययन के उन फलों का उपभोग करने से नहीं रोक सकता, जिनकी सत्यता निर्विवाद रूप से सिद्ध हो चुकी है और जिनका प्रत्यक्ष प्रमाण हम प्राप्त कर चुके हैं।

इस प्रकार के सत्य-ज्ञान का विरोध ऐसे ही लोग करते हैं जिनके विवेक पर धार्मिक कट्टरता अथवा अन्धविश्वास का परदा पड़ गया है, अथवा जिन्होंने धर्म और मानवीय आदर्शों को इतना नाज़ुक समझ रक्खा है कि इस प्रकार की खोजों से उनके नष्ट-भ्रष्ट हो जाने की सम्भावना है। सच्ची धार्मिक भावना कुछ और ही वस्तु है और इस प्रकार के मानवीय विकास के इतिहास से वह क्षीण नहीं हो सकती। इस बात के जान लेने से कि लाखों वर्ष पूर्व हमारे पूर्वजों की देह पशुओं के समान बालों से परिपूर्ण चर्म से ढकी थी, हमारे आध्यात्मिक जीवन पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ सकता। इस प्रकार की कितनी भी खोजें क्यों न हों मनुष्य, मनुष्य ही बना रहेगा। इसके विपरीत मनुष्य को इस विषय में अपनी शक्ति पर गर्व करना चाहिए कि उसने लाखों वर्ष के विस्मृत इतिहास को फिर से नवजीवन प्रदान किया।

नैपाल

[श्री० सेठ लक्ष्मणप्रसाद]



रतीय इतिहास के पर्यालोचन से यह स्पष्ट विदित होता है कि इस देश का अतीत जितना उज्ज्वल और गौरवपूर्ण रहा है, उतना शायद ही और किसी देश का रहा हो। एक दिन भारत जगद्-गुरु की महान पदवी से विभूषित था। इसी ने संसार को गणित, वैद्यक, भौगोलिक ज्ञान तथा सभ्यता की शिक्षा दी थी। उन्नति के चरम शिखर पर पहुँची हुई पाश्चात्य जातियाँ जिस समय जङ्गलों में पशुओं की तरह जीवन-यापन कर रही थीं, उस समय भारत के मनीषी भूगोल और खगोल जैसी गहन विद्याओं की पर्यालोचना में निमग्न थे। चीन, जापान, जावा और सुमात्रा को इसी ने पवित्र सार्वभौम धर्म की शिक्षा प्रदान की थी।

इसके बाद समय ने पलटा खाया। महाभारत आदि घराऊ युद्धों के कारण आर्य-राजसत्ता की नींव हिल गई। हज़ारों वर्षों तक विदेशियों के आक्रमण तथा लूट-खसोट का सिलसिला जारी रहा। धनलोलुप आक्रमणकारियों ने इसे लूटा ही नहीं, वरं इसकी सभ्यता को भी नष्ट कर डालने की चेष्टा की। जिन्हें ज्ञान-दान देकर इसने मनुष्य बनाया था, वे ही इसके शत्रु बन गए। धीरे-धीरे सारी प्राचीन गौरव-गरिमा विलुप्त हो गई; एक दिन का जगद्गुरु आज पराधीन, पर-पददलित और संसार का सबसे पिछड़ा हुआ—अनुन्नत देश बन गया। उसकी सभ्यता, उसकी धार्मिकता और उसकी उन्नतिशीलता इतिहास की सामग्री बन गई।

जिस आर्य-राज्यसत्ता के प्रखर प्रताप से आधा भूमण्डल उद्भासित था, उसकी एक झलक मात्र हिमालय की गोद में बच गई है, जिसे हम 'नैपाल' कहते हैं। भारत की इस हीनावस्था में भी अपनी स्वतन्त्रता और प्राचीन आर्य-सभ्यता को किञ्चित बचाए रख कर नैपाल ने बड़ा काम किया है। इसलिए नैपाल हिन्दू-मात्र के गौरव और अभिमान की वस्तु है। इसीलिए इन पंक्तियों द्वारा हमने 'चाँद' के पाठकों से नैपाल का किञ्चित परिचय कराने का विचार किया है।

नाम

नैपाल या नेपाल एक प्राचीन देश है। 'हिन्दी शब्दसागर' से पता चलता है कि स्कन्दपुराण, गरुड़-पुराण, शक्ति-सङ्गम तन्त्र, बृहन्नील तन्त्र, और योगेश्वर तन्त्र आदि ग्रन्थों में इस देश का उल्लेख पाया जाता है। जैन हरिवंश तथा हेमचन्द्र की स्थविरावली में भी इसका वर्णन है। इसके नाम के सम्बन्ध में विद्वानों के कई मत हैं। कुछ सज्जनों के मतानुसार तिब्बत तथा उसके आसपास की अनार्य जातियाँ अपनी भाषा में उस देश को, जहाँ गोरखे रहते हैं, पाल कहती हैं। सिकिम और भूटान वाले नैपाल के पूर्वीय भाग को 'ने' कहते हैं। इन्हीं दोनों शब्दों से 'नेपाल' शब्द बना होगा। कुछ विद्वानों के मतानुसार इसका पुराना नाम 'डेकारी टापू' (Dacarie Tapoo) है। परन्तु अधिकांश का मत यह है कि त्रेता और द्वापर में यहाँ निमूनी (Nymuni) वंश के नरेशों का राज्य था, इसलिए 'नैपाल' शब्द की उत्पत्ति का कारण भी 'निमूनी' शब्द ही है।

भौगोलिक स्थिति

इस देश की भौगोलिक स्थिति के विषय में भूगोल-वेत्ताओं का कथन है कि किसी समय में यहाँ बहुत सी झीलें थीं, जो धीरे-धीरे भर गईं और इस प्रकार नैपाल के प्राचीन और नवीन रूप में बहुत-कुछ अन्तर पड़ गया। यह देश साढ़े सत्ताईस डिगरी उत्तरी अक्षांश के समीप स्थित है। इसके जलवायु के सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि इसकी समता अधिकांश में यूरोप महाद्वीप के दक्षिणी भाग के प्रदेशों के जलवायु से की जा सकती

है। इसका कुछ भाग हिम से आच्छादित रहता है और इसकी घाटियों में बर्फ़ भी गिरती है। चार-पाँच मास पर्यन्त यहाँ के तालाब और झील हिम से आच्छादित रहते हैं। उस समय शुभ्रवसना प्रकृति का सौन्दर्य ऊषा-हास-विलास के साथ एक अनुपम और अलौकिक शोभा की सृष्टि करता है। भूगोलवेत्ताओं की दृष्टि में इसका कारण यह है कि यह देश समुद्र की सतह से चार हज़ार फ़ीट की ऊँचाई पर स्थित है। इस देश के इतने उच्च स्थान पर स्थित होने से यहाँ की हवा अत्यन्त शीतल है। परन्तु नाऊकोटी (Noakote) से खेरू (Kheroo) होकर रूमिक (Rumika) तक विविध प्रकार का वायु-मण्डल है। यहाँ तक कि कहीं-कहीं उष्णता उतनी ही अधिक है, जितनी कि बङ्गाल प्रान्त में है और कहीं-कहीं शीत की उतनी ही अधिकता अनुभव होती है, जितनी कि रूस के साईबेरिया प्रान्त में। इसकी तराई में एक प्रकार का ज्वर होता है, जिसे चिकित्सक लोग 'आउल' (Owl) के नाम से पुकारते हैं। कहीं-कहीं वहाँ के निवासियों को एक और रोग होता है, जिसे भारतवर्ष में घेवा या गलगण्ड कहते हैं। इसे नेपाली भाषा में गानू कहते हैं। यह रोग देव-पाटन और कौरीगौङ्ग में अधिक होता है। ये दोनों स्थान काठमण्डू से कुछ मील की दूरी पर हैं। मँगूल-टाई में भी यह रोग अधिकतर उत्पन्न होता है। इस रोग की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों की यह सम्मति है कि इसके कीटाणु जल के साथ-साथ पेट में चले जाते हैं। परन्तु कुछ विद्वानों का यह भी कथन है कि वहाँ का वायुमण्डल दूषित होने पर यह रोग हो जाता है। इस विषय में मिस्टर कौक्स (Cox) की सम्मति है कि इस रोग की उत्पत्ति का कारण एक विशेष प्रकार की मिट्टी है, जिसका नाम टफ़ (Tuf) है। यह मिट्टी यूरोप के स्वीटज़रलैण्ड में भी अधिकता से प्राप्त होती है। परन्तु नैपाल के अधिकांश स्थल की आबहवा रूखी है। देश का अधिकांश भाग पहाड़ी झरनों, नदियों, पर्वतों और घने बनों से आच्छादित है।

पैदावार

प्राचीन समय में भारतीयों का निश्चित विचार था कि नैपाल में सुवर्ण अधिकता से उत्पन्न होता है। यह विचार यहीं तक सीमित नहीं रहा; बल्कि इस बात से अन्य देश के राजाओं के हृदयों में भी इस देश को हस्त-गत करने का विचार हुआ। फलतः एक के बाद दूसरे राजा ने इस पर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। यहाँ तक कि मुर्शिदाबाद के नवाब क़ासिमअली ख़ाँ ने भी इसी आधार पर नैपाल पर आक्रमण किया था। परन्तु सत्य तो यह है कि नैपाल में सोना इतनी अधि-कता से प्राप्त नहीं होता, जितना कि लोगों ने समझ रक्खा था। हाँ, एक स्थान जो लैस्टी (Lestie) कह-लाता है, यहाँ पर सोना अवश्य प्राप्त होता है। परन्तु यह स्थान आजकल नैपाल राज्य के अन्तर्गत नहीं है। सम्भव है, अन्य स्थानों पर सुवर्ण मिल सके, परन्तु इसका निश्चित ज्ञान किसी को नहीं है। परन्तु, इसमें सन्देह नहीं कि नैपाल में ताँबा और लोहा आदि धातुएँ अधिकता से प्राप्त होती हैं। इनकी खानें कूमबरी घाटी (Koombare Valley) के पास हैं। कुछ काल पूर्व अवध में नैपाल से बहुत ताँबा आता था, जो एक रुपए का आध सेर के भाव से बिकता था। परन्तु विलायती ताँबे के आते ही नैपाली ताँबे का आना बन्द हो गया। क्योंकि विलायती ताँबे का भाव एक रुपए सेर का था।

इन धातुओं के अतिरिक्त नैपाल में चाँदी भी मिलती है और कहीं पर चाँदी के साथ सीसा और गन्धक भी मिलता है। परन्तु इतना होने पर भी नैपाल में सीसा पटने से आता है। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि सीसे को चाँदी से पृथक् करने में या तो व्यय अधिक होता है अथवा कठिनाई होती है या वहाँ वाले सीसे को चाँदी से पृथक् करना जानते ही नहीं।

नैपाल में गन्धक मिलने से यह सिद्ध होता है कि इस देश में अवश्य ही कहीं पर कोई ज्वालामुखी पहाड़ है। किन्तु यह किसी को भी विदित नहीं कि वह किस स्थान पर है। फिर भी विद्वानों का यह अनुमान है कि यह नैपाल के दक्षिणी भाग में है। इसके अतिरिक्त यहाँ पर कई प्रकार के पत्थर भी पाए जाते हैं। उनमें से मारबिल, सिलेट, चूना और लाल-पीले पत्थर ही वर्णन योग्य हैं। गोरखा स्थान के पास एक प्रकार का साफ़ क्रिस्टल (Crystal) पत्थर पाया जाता है, जिसे अच्छी तरह काटा जाय तो हीरे की तरह चमकीला होता है।

नैपाल की मिट्टी ऐसी अच्छी है कि कुछ काल पीछे वह सीमेण्ट के समान कठिन हो जाती है। इसके अतिरिक्त नैपाल में ये वस्तुएँ और उत्पन्न होती हैं—जैसे, अफ़ीम, कस्तूरी, खैर, चिरायता, मजीठ, खाल, लकड़ी, सुरमा, खड़िया, अखरोट, बड़ी पीपल, इलायची, हाथी-दाँत, चँवर और नाना प्रकार की औषधियाँ आदि। ये तमाम वस्तुएँ यहाँ से बाहर भी भेजी जाती हैं। नैपाल में अन्न भी कई प्रकार के होते हैं। उनमें धान का स्थान प्रधान है। यही यहाँ के अधिवासियों की प्रधान खाद्य-सामग्री है। रूई, सूती कपड़ा, खीनखाप, नमक, लाख, पीतल के गहने, शिकार के लिए बन्दूकें और चाय आदि चीज़ें यहाँ बाहर से आती हैं।

यहाँ के निवासी और उनका रहन-सहन

इस देश की जन-संख्या पचास लाख है। यहाँ के निवासी प्रायः हिन्दू हैं। जिनमें ब्राह्मण और राजपूत बहुत हैं। अन्य जातियों में नेवाड़, धनवाड़े, महाजन, भूतिया और बनरस हैं। राजपूत अधिकतर सेनाओं में सैनिक का कार्य करते हैं। ये बड़े सच्चे, सीधे तथा रण-कुशल होते हैं। इन लोगों की नस-नस में वीरता और देश का गौरव भरा हुआ है। ये लोग कपटी नहीं होते। अपना जीवन धार्मिकता से व्यतीत करते हैं। राजपूतों में ही नहीं, किन्तु प्रायः यहाँ के सभी निवासियों के हृदयों में भगवद्भक्ति का प्रवाह निरन्तर बहता रहता है। ये लोग गौ-भक्त भी होते हैं और गायों को पूज्य तथा पवित्र समझते हैं। उन्हें बेचने की प्रथा को तो ये पाप की दृष्टि से देखते हैं। नैपाल की स्थिति से यह स्पष्ट है कि यहाँ प्रायः किसी शत्रु का प्रवेश ही नहीं हुआ। अगर हुआ भी तो वह असफल रहा। इसीलिए एक-मात्र नैपाल ही ऐसा हिन्दू राज्य है, जहाँ किसी भी यवन राजा का राज्य नहीं रहा। इसीलिए नैपालियों की रहन-सहन, वेष-भूषा, रीति-रिवाज और त्यौहार आदि में किसी बाहरी सभ्यता का प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता। यहाँ वेष-भूषा आदि अनेक प्रकार के हैं। जितनी जातियाँ यहाँ हैं, उतने प्रकार के रहन-सहन भी प्रचलित हैं। इन्हीं कारणों से एक जाति का दूसरी जाति से अधिक सम्बन्ध भी नहीं है। वे एक दूसरे के समीप रहती हुई भी दूसरी जाति की उत्पत्ति का कारण नहीं जानती हैं। सम्भव है, इसका कारण इस देश की स्थिति के अनुसार यात्रा की कठिनता हो।

इस देश में हाथियों की बहुतायत होने से सवारी का कार्य इन्हीं से लिया जाता है। नैपाली पुरुष इसीके द्वारा यात्रा आदि करते हैं। सवारी के लिए पालकी का भी व्यवहार होता है और वह बड़े गौरव और महत्व की सवारी समझी जाती है। धनी लोग प्रायः इसी का व्यवहार किया करते हैं।

नैपाल के प्रायः सभी अधिवासी इतने धर्मनिष्ठ और सत्यप्रिय होते हैं कि यदि किसी की कोई वस्तु कहीं पर पड़ी हो, तो कोई भी उसे ग्रहण नहीं करेगा; जो उसका अधिकारी होगा वही लेगा। नैपाली बड़े परिश्रमी होते हैं। आलस्य तो उनके निकट ही नहीं आता। वे भाग्य के भरोसे बैठना पाप समझते हैं। नैपाल कृषि-प्रधान देश है। इसीलिए यहाँ के निवासी प्रायः कृषि-कार्य ही करते हैं और उसी से अपना जीवन निर्वाह करते हैं। कृषि-कार्य अथवा अन्य कार्य जो पुरुष करते हैं, वहाँ की स्त्रियाँ भी उन कार्यों को बड़ी खुशी के साथ करती हैं। परिश्रम करके जीवन व्यतीत करना उनका प्रधान लक्ष्य होता है। नैपाल की स्त्रियाँ भारतवर्ष की स्त्रियों की तरह घरों में बन्द रह कर रोग-ग्रस्ता बनना या उसी में अपना मान समझना उचित नहीं समझतीं। स्त्री और पुरुषों के शारीरिक परिश्रम का प्रभाव उनके शरीर के सौन्दर्य और गठन पर पड़े बिना नहीं रह सकता। यही कारण है कि नैपाल देशवासी स्त्री और पुरुषों के शारीरिक परिश्रम का प्रभाव उनके शारीरिक सौन्दर्य और गठन पर भी पड़ा है। शरीर का वर्ण बहुत कुछ देश की जलवायु पर आश्रित है। यहाँ के निवासियों को इसका भी उचित पुरस्कार मिला है। यहाँ के स्त्री और पुरुष अधिक संख्या में बड़े सुन्दर होते हैं। नैपाल-निवासियों स्त्रियाँ विशेषतया सुन्दरी होती हैं। नैपाल-निवासियों के शरीर-गठन की कुछ विशेष बातें अन्य देश-निवासियों के शरीर-गठन से एक असाधारण भेद पैदा कर देती हैं, जिससे इस देश के निवासी सरलता से दूर से ही पहचाने जाते हैं। उनकी नाक चिपटी और नेत्र छोटे होते हैं। उनकी समता चीनी स्त्रियों से किसी अंश में की जा सकती है, परन्तु मलाया की स्त्रियों से मिलती-जुलती होती हैं।

वस्त्र और गहने

नैपालियों में गोरखा जाति शरीर की सजधज में दूसरी जातियों से श्रेष्ठ है। गर्मियों में ये लोग सादे वा नीले रङ्ग के सूती कपड़े का पाजामा, कुर्ता या कुछ नीचे लटकता हुआ, जामा जो चपकन की भाँति होता है, पहनते हैं। सबकी कमर में कई हाथ लम्बा कपड़े का कमरबन्द रहता है और उसमें कुकड़ी नामक छुरा लटकता रहता है। शीत-काल में भी वह वैसी ही पोशाक पहनते हैं, किन्तु उसके भीतर रूई भरवा लेते हैं। धनी लोग जामे के भीतर बकरे के लोम मढ़वा लेते हैं। शिर की शोभा के लिए टोपी ओढ़ते हैं, जो काले कपड़े की बनी हुई गोल होती है; और भी कई रङ्ग के कपड़े उसमें लगे रहते हैं। अधिक लोग उस प्रकार की पगड़ी ज़री और फ़ीता लगा कर शिर के नाप के अनुसार टोपी की भाँति ओढ़ते हैं। नेवारी लोग गर्मी और जाड़े की अधिकता में मोटे सूती या ऊनी कपड़े का जामा पहनते हैं। इनमें जो लोग व्यापार करने के कारण धनी हो गए हैं और व्यापार आदि के लिए तिब्बत आदि देशों में जाते हैं, वे चूड़ीदार पाजामा और चपकन की तरह लम्बा जामा पहनते और सिर पर ऊनी टोपी ओढ़ते हैं। हरिसिद्धि नामक स्थान में जो नेवारी लोग रहते हैं, वे स्त्रियों के घाघरे के समान वा संन्यासियों के समान घुटनों तक नीचा जामा पहनते हैं।

नैपाल में जितनी जातियाँ हैं, उनका पहनावा भी उतने ही प्रकार का है, जैसा कि ऊपर लिखा गया है। तो भी स्थान-विशेष में कुछ अदल-बदल हो जाता है। समस्त जाति की स्त्रियाँ थोड़ा कपड़ा लेकर सामने की ओर घाघरे के समान चुन कर पहनती हैं। राजघराने की स्त्रियाँ और धनी लोगों की स्त्रियाँ तथा लड़कियाँ घाघरे के समान जिस कपड़े को चुन कर पहनती हैं, उसकी लम्बाई ६० से ८० गज़ तक होती है। ये स्त्रियाँ अपने वंश की मर्यादा के लिए ऐसी पोशाक पहनती हैं और इसी वेश से उनका आदर होता है। सभी स्त्रियाँ जामा और साड़ी पहनती हैं।

नैपाली स्त्रियों को गहनों का बड़ा शौक होता है। वे अपने शरीर की शोभा की वृद्धि के लिए यथाशक्ति अनेक प्रकार के गहने पहनती हैं। धनियों की स्त्रियाँ और कन्याएँ जैसे मणि-मुक्ता जड़े हुए सोने और चाँदी के गहने पहनती हैं, वैसे ही दूसरी पहाड़ी स्त्रियाँ अपने सामर्थ्य के अनुसार गहने पहनती हैं। ये माथे पर जड़ाऊ फूल, गले में सोने और मूँगे की माला, हाथों में अँगूठियाँ, कानों में बालियाँ और कर्णफूल तथा नाक में नथ आदि बहुत से गहने पहनती हैं। असभ्य भोटिए लोग अपनी स्त्रियों के लिए सुलेमानी पत्थर, मूँगा और दूसरे क़ीमती पत्थरों की मालाएँ या भारी हार, चाँदी का कड़ा और बालियाँ आदि अनेक प्रकार के गहने बनवाते हैं।

नैपाली स्त्रियाँ सुगन्धित फूलों को बहुत पसन्द करती हैं। किसी त्योहार के अवसर पर अपने बालों को फूलों से ख़ूब ही सजाती हैं। व्यभिचारिणी स्त्रियाँ भी फूलों से शृङ्गार बनाती हैं।

राजपुरुषों का पहरावा और प्रकार का है। वे शिर पर ज़री और अनेक भाँति के पर तथा मणिमुक्ता जड़ा हुआ ताज, शरीर में घुटनों तक लम्बा जामा और पैरों में पाजामा पहनते हैं। रूमाल और तलवार का व्यवहार सभी करते हैं। राना जङ्गबहादुर के शिर पर जो मुकुट रक्खा जाता था, उसका मूल्य एक लाख पचास हज़ार रुपया था। सैनिक विभाग के अध्यक्ष लोग अङ्गरेज़ी सेनापतियों के समान फ़ौजी पोशाक धारण करते हैं।

खान-पान

नैपाल राज्य में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि वर्ण-विभाग होने पर भी खान-पान के सम्बन्ध में विशेष पृथकता नहीं देखी जाती। यहाँ जो लोग ब्राह्मण नाम से विख्यात हैं, उनका आचार-व्यवहार और खान-पान भारत के समतलवासी ब्राह्मणों के समान है। गोरखा लोग शिकार के बड़े शौक़ीन हैं। अन्य धनी लोग भी शिकार के प्रेमी होते हैं। साधारण धनी लोग यद्यपि माँस आदि खाने और विलास की दूसरी सामग्री भोगने में समर्थ हैं, किन्तु दरिद्र और निम्न श्रेणी के लोग सदा मांस आदि का भोजन नहीं कर सकते। इस कारण शाक-सब्ज़ी से ही अपना पेट भर लेते हैं। विशेषकर चावल और शाक आदि की तरकारी, कच्चा और राँधा हुआ लहसुन, प्याज़ और मूली आदि की तरकारी खाते हैं। नेवारी लोग और दूसरी नीच जातियाँ मदिरा ख़ूब पीती हैं। वे अपनी प्यास बुझाने के लिए चावल अथवा

गेहूँ से एक प्रकार की अधम शराब तैयार करते हैं। वहाँ ऊँची श्रेणी के लोग मदिरा नहीं पीते। अच्छे कुल के लोग मदिरा पीने के कारण जाति से गिर जाते हैं।

विवाह-प्रथा

नैपालियों में एक-एक मनुष्य के कई-कई विवाह होते हैं। विवाह उनके लिए एक प्रकार का शौक़ है। जो धनवान हैं, वह कई स्त्रियाँ रखते हैं। बहुत सी स्त्रियों का होना नैपालियों के लिए सम्मान का चिन्ह है। पूर्वकाल में यहाँ असंख्य पतिव्रता स्त्रियाँ स्वामी के साथ जलती थीं। स्वामी की मृत्यु पर स्त्री का यह अपूर्व आत्म-त्याग नैपालियों के कठोर हृदय में असाधारण धर्म-ज्योति प्रकाशित करता था। नेवार लोग अपनी कन्याओं का बालकपन में ही एक बेल (श्रीफल) के साथ विवाह कर देते हैं। इसके बाद जब कन्या ऋतुमती होती है, तब उसके लिए कोई उपयुक्त वर ढूँढ़ते हैं। भारतीय हिन्दुओं की तरह एक बार विवाह हो जाने पर, पति-पत्नी में से किसी एक की मृत्यु हुए बिना विवाह-विच्छेद वा स्त्री का त्याग नहीं हो सकता। स्त्री का त्याग या स्त्री का किसी दूसरे के घर चली जाना बहुत बुरा और जातीय गौरव को नष्ट करने वाला समझा जाता है।

देव-देवियों की पूजा और उत्सवादि

देवता और ब्राह्मणों में भक्ति होने के कारण नैपाल में देव-देवियों के असंख्य मन्दिर हैं। वहाँ दो हज़ार सात सौ तैंतीस उल्लेख योग्य तीर्थ-स्थान और देवालय हैं और इन सब देव-मन्दिरों में पर्वों पर उत्सव आदि होते हैं। इसके सिवा प्रायः प्रतिदिन ही कोई न कोई उत्सव हुआ करता है। इस प्रकार वर्ष के छः महीने उत्सव और पूजा आदि में कटते हैं। यहाँ के पर्व और उत्सवों का तो अन्त ही नहीं। लेख बढ़ जाने के भय से केवल प्रधान-प्रधान पीठों या देवालयों के पर्व-दिन और उत्सवों के केवल नाम ही दिए जाते हैं:—(१) मत्स्येन्द्रनाथ की यात्रा, (२) नेता देवी की यात्रा, (३) पशुपतिनाथ की यात्रा, (४) वज्र-योगिनी की यात्रा (यह बौद्धों का उत्सव है) (५) सीपी यात्रा, (६) गोधिया मङ्गल, (७) बाँद्रा यात्रा, (८) राखी पूर्णिमा, (९) नाग पञ्चमी, (१०) जन्माष्टमी, (११) गोष्ट या गामी यात्रा, (१२) बाग यात्रा, (१३) इन्द्र-यात्रा, (१४) दशहरा या दुर्गोत्सव, (१५) दीवाली, (१६) किचा पूजा, (१७) भाई पूजा, (१८) बाला चतुर्दशी, (१९) कार्तिकी पूर्णमा, (२०) गणेश चौथ (२१) बसन्तोत्सव, (२२) होली, (२३) माघी पूर्णमा, (२४) रामनवमी, (२५) नारायण पूजा, इत्यादि नैपालियों के प्रधान त्योहार हैं।

दण्ड-विधान

प्राचीन काल में यदि कोई नैपाली कोई गुरुतर अपराध करता था, तो उसका अङ्ग-भङ्ग कर देते थे; यहाँ तक कि प्राण तक ले डालते थे। परन्तु सर जङ्गबहादुर ने विलायत से लौट कर इस प्रकार के अमानुषिक दण्डों को एकदम उठा दिया और यह नियम बनाया कि अगर कोई आदमी राजद्रोह करे, राजकीय कामों में विश्वास-घातकता करे, संग्राम से भाग जाए या शासन-कार्य सम्बन्धी कोई अपराध करे तो उसको आजन्म कारावास या सिर काटने का दण्ड दिया जाय। साथ ही गाय अथवा मनुष्य की हत्या करने पर भी सिर काटने की आज्ञा दी जायगी। यदि कोई गाय का चमड़ा किसी अस्त्र से काटे, तो उसको आजन्म जेल की सज़ा दी जाएगी। जो लोग जाति-भ्रष्ट हो जाते हैं वे उपवासादि प्रायश्चित्त करके या गुरु और पुरोहित को नियत दक्षिणा देकर अपनी जाति में मिल जाते हैं। ब्राह्मण और स्त्री का सिर किसी हालत में भी नहीं काटा जाता।

सेना-विभाग

राज्य-रक्षा और राज्य-शासन के सम्बन्ध में नैपाल राज्य का बहुत रुपया ख़र्च होता है। जिन नियमों के साथ युद्ध-विद्या सिखाई जाती है, वे विशेष ख़र्चीले हैं। वैसे ही तीर, तोप और बन्दूक़ आदि बनाने में भी बहुत सा रुपया ख़र्च किया जाता है। गोरखा-दल ही सैनिक दल की पुष्टि करता है। यहाँ राज्य-कोष से वेतन पाने वाले लगभग सोलह हज़ार सैनिक हैं। यह सेना छब्बीस रेज़ीमेण्टों में बटी हुई है। इसके सिवाय नैपाल राज्य के नियमानुसार और भी बहुत से लोग सेना-विभाग में एक नियत समय तक युद्ध-विद्या सीखते हैं। अर्थात् वहाँ सैनिक-शिक्षा अनिवार्य है। ये लोग गृहस्थी के कामों में लगे रहने पर भी आवश्यकता पड़ने पर सेना में भरती कर लिए जाते हैं। नैपाल में इस नियम के होने से

नैपाल राज्य को सेना संग्रह करने का विशेष सुभीता रहता है। शासकगण इच्छा करते ही एक दिन में प्रायः सत्तर हज़ार शिक्षित सिपाही इकट्ठा कर सकते हैं।

यहाँ के राजपुत्र या राजघराने के लोग प्रतिवर्ष क्रमानुसार उच्च पद प्राप्त करते हैं। किन्तु अन्य बूढ़े कर्मचारियों को प्रायः सेना-विभाग के नीचे ही काम करते देखा जाता है, उनकी उन्नति सहज में ही नहीं होती।

सैनिकों का साधारण पहनावा नीले रङ्ग का सूती जामा और पाजामा है। सामरिक वेष लाल रङ्ग का जामा, बग़ल में लाल डोरा, सिर पर टोपी और अपने दल का चिन्हयुक्त एक चाँदी का तमग़ा रहता है। तोपख़ाने के सिपाहियों की पोशाक नीली होती है। घोड़े आदि के चलाने का स्थान न होने से नैपाल राज्य में घुड़सवार सेना की संख्या बहुत ही कम है। पहाड़ी देश में ये लोग बड़ी चतुरता से युद्ध करते हैं।

वर्तमान मुद्रा

वर्तमान समय में जो मुद्रा नैपाल में चलती हैं और समय-समय पर जो स्वर्ण, चाँदी, ताँबे की मुद्रा चलती थीं, उनके नाम और मूल्य निम्न-लिखित हैं :—

सोने के सिक्के

पहिला सिक्का			दाम
अशर्फ़ी	...	...	२०)
पाटले	...	...	८।=)।
सूका	...	...	४=) ८ पाई
सूकी	...	...	२-) ४ पाई
आना	...	...	१) ८ पाई
दाम	...	...	।) २ पाई

चाँदी का सिक्का

रूपी	।।।) ४ पाई	मोहर	६) ८ पाई
सूका	=) ४ पाई	सूकी	-) ८ पाई
आना	६ पाई	दाम	३ पाई

ताँबे का सिक्का

पैसा	२ पाई	दाम	आधी पाई

इसके सिवाय नैपाल में और भी तीन प्रकार के सिक्के चलते हैं। इस राज्य के पूर्व और उत्तर-पूर्व में एक प्रकार का काला सिक्का चलता है। इसमें लोहा मिला हुआ होने से इसका दाम कम होता है। पहले नैपाल राज्य में जितने चाँदी के सिक्के चलते थे, वे वर्तमान मुद्रा से बड़े थे। इस राज्य के कुछ भाग में अङ्गरेज़ी सिक्का भी चलता है और अङ्गरेज़ी नोट का भी कुछ-कुछ प्रचार होने लगा है।

भाषा

नैपाल में संस्कृत के अतिरिक्त निम्न भाषाएँ प्रचलित हैं :—१—पूर्वटी, २—नैवाड़, ३—धनवार, ४—मुगर, ५—कुरान्टी, ६—हाऊ, ७—लिम्बू, ८—भूटी।

नैवाड़ की भाषा हिन्दी से बहुत मिलती है। पूर्वटी संस्कृत से और कुछ बिहारी भाषा से मिलती है।

नैपाल में एक बहुत बड़ा पुस्तकालय है, जिसमें पन्द्रह हज़ार से अधिक पुस्तकें हैं। जिस प्रकार बनारस भारतवर्ष में विद्या का केन्द्र-स्थान है, उसी प्रकार नैपाल में भटगङ्ग है। यहाँ के ज्योतिषी बड़े निपुण होते हैं और बड़े आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं।

उपसंहार

नैपाल स्वतन्त्र हिन्दू राज्य है। जिस समय भारत की राजनीतिक स्थिति डावाँडोल हो रही थी, विदेशी राजाओं के अनवरत आक्रमणों से यह विशाल देश घबरा उठा था, उस समय नैपाल के शासकों ने बड़ी सावधानी से अपने देश की रक्षा की थी। अपनी वीरता और राजनीति-कुशलता से उन्होंने प्राचीन आर्य-सभ्यता की रक्षा की थी। इसलिए वे हमारे धन्यवाद के पात्र हैं। वास्तव में ऐसे ही अवसर पर शासक की योग्यता और चतुरता का परिचय मिलता है। आपत्तियों के समय नैपाल-शासकों ने जैसी धीरता से काम लिया है, वह भी कम प्रशंसा की बात नहीं है। परन्तु इस समय संसार की गति कुछ और ही है। सारे संसार में नवीन सभ्यता, नवीन संस्कृति और नवीन विज्ञान की तूती बोल रही है। मनुष्य पृथ्वी को छोड़ कर आकाश में विचरण करने लगा है। परन्तु नैपाल अभी तक वहीं है, जहाँ वह सैकड़ों वर्ष पूर्व था। वर्तमान शासकों का कर्तव्य है कि जिस तरह उन्होंने अपनी प्राचीन सभ्यता की रक्षा कर रक्खी है, उसी तरह नवीन सभ्यता के गुणों से भी लाभ उठावें।

वर्तमान मुस्लिम-जगत

[डॉ० मथुरालाल शर्मा, एम० ए०, डी० लिट्०]

(गताङ्क से आगे)

भारत

महासमर की समाप्ति के समय भारत में अपूर्व हिन्दू-मुस्लिम एकता हुई। इसके तीन कारण थे। तुर्की, मिस्र और ईरान आदि के साथ जो अङ्गरेज़ों ने व्यवहार किया, उससे मुसलमानों में उनके प्रति घृणा बढ़ती जाती थी। दूसरे मुसलमान अनुभव करने लगे थे कि जब तक वे अपने देश में स्वतन्त्र न हो जाएँगे, तब तक वे अन्य मुस्लिम देशों की कोई सहायता नहीं कर सकते और न दुनिया के सामने अपना मस्तक ऊँचा कर सकते हैं। तीसरा कारण था महात्मा गाँधी का प्रभाव। सन् १९१९ में जब अङ्गरेज़ तुर्की को मटियामेट करने पर तुले हुए थे तो महात्मा गाँधी ने इस योजना के विरुद्ध मुस्लिम आन्दोलन का नेतृत्व ग्रहण किया। शीया-सुन्नी दोनों मुस्लिम सम्प्रदायों के लोगों के अतिरिक्त हिन्दुओं ने भी इस आन्दोलन में पूरा भाग लिया। इस आन्दोलन में मौलाना मुहम्मदअली महात्मा गाँधी के दाहिने हाथ थे। यह एक उच्च मुस्लिम-वंश में उत्पन्न हुए थे। उनके पितामह ने सन् १८५७ के ग़दर में अङ्गरेज़ों की बड़ी सहायता की थी और सन् १९१० में पञ्जाब का गवनर इनको एक देशी राज्य का दीवान बनाना चाहता था। महासमर के समय इनको नज़रबन्द कर दिया था। उससे छूटने पर ये ख़िलाफ़त आन्दोलन में सम्मिलित हुए और मुसलमान जनता पर इनका अद्भुत प्रभाव पड़ा। ख़िलाफ़त आन्दोलन के साथ ही साथ स्वराज्य आन्दोलन भी चल रहा था, उसमें भी मुहम्मद-अली ने बहुत काम किया। महात्मा गाँधी के साथ सम्पूर्ण भारतवर्ष में इन्होंने भी दौरा किया और ख़िलाफ़त फ़ण्ड तथा तिलक स्वराज्य फ़ण्ड एकत्र करने में परिश्रम किया।

६ अप्रैल सन् १९१९ भारत के इतिहास में अपूर्व दिन था। महात्मा गाँधी और मुहम्मदअली के आदेशानुसार उस दिन सम्पूर्ण भारतवर्ष में हड़ताल मनाई गई और भारत की स्वतन्त्रता-प्राप्ति तथा ख़िलाफ़त के उद्धार के लिए मन्दिर और मस्जिदों में ईश्वर से प्रार्थना की गई। इसके बाद जलियानवाला बाग़ का क़त्लेआम, पञ्जाब का सैनिक शासन, नाक के बल लोगों को चलाना, अनेक मनुष्यों को प्राण-दण्ड और सर्वस्व-हरण आदि अत्याचार हुए। इससे भी शान्ति नहीं हुई। सरकार ने जलियानवाले बाग़ के हत्यारे अफ़सरों को यथोचित दण्ड नहीं दिया और देश में असन्तोष बढ़ता गया। उसी वर्ष अमृतसर में कॉङ्ग्रेस तथा मुस्लिम लीग के अधिवेशन हुए और दोनों में स्वतन्त्रता की माँग और सरकार के कुकृत्यों की घोर निन्दा की गई। १९२० में तुर्की के साथ जो विजेताओं ने दबाव डाल कर सन्धि की थी, वह भारत में प्रकाशित हुई। इससे मुसलमानों का असन्तोष और भी बढ़ा और वे हिन्दुओं की तरफ़ अधिकाधिक आकर्षित होने लगे। १९२० में नागपुर में कॉङ्ग्रेस का महत्त्वपूर्ण अधिवेशन हुआ। अब तक कॉङ्ग्रेस का ध्येय था वैध साधनों द्वारा ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर औपनिवेशिक शासन प्राप्त करना। नागपुर में यह बदल दिया गया। अब ध्येय निश्चित हुआ अहिंसात्मक साधनों द्वारा पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करना। इसका मुसलमानों ने भी पूर्ण अनुमोदन किया। मुहम्मदअली ने इस अधिवेशन में विशेष भाग लिया।

इसके बाद महात्मा गाँधी ने असहयोग आन्दोलन उठाया। मुहम्मदअली ने अपने मुसलमान भाइयों को सरकारी नौकरियाँ छोड़ने का आदेश किया और पुलिस तथा सेना में नौकरी करने वाले मुसलमानों के नाम एक अलग विज्ञप्ति निकाली। इस अपराध में उनको सरकार ने क़ैद कर दिया। १९२१ की अहमदाबाद कॉङ्ग्रेस का अधिवेशन बड़े समारोह के साथ हुआ। मुसलमानों ने पूरा साथ दिया और मौलाना हसरत मोहानी ने प्रस्ताव किया कि जैसे हो वैसे स्वराज्य प्राप्त करना चाहिए। देश में घोर जागृति हुई और सत्याग्रह संग्राम की तैयारी होने लगी। परन्तु दो मास बाद ही गोरखपुर ज़िले के चौरीचौरा गाँव में उत्तेजित जनता ने पुलिस के कुछ सिपाहियों का बध कर डाला, जिसके कारण महात्मा गाँधी ने संग्राम बन्द कर दिया और उसी दिन से असहयोग का एक प्रकार से अन्त हो गया।

असहयोग आन्दोलन के पिछले दिनों में और उसके बन्द हो जाने के बाद कई स्थानों में हिन्दू-मुस्लिम झगड़े हुए। विशेषकर मालावार, सहारनपुर और कोहाट में हिन्दुओं की भारी क्षति हुई। उसके बाद भी यह पारस्परिक विरोध जारी ही रहा, जिसके कारण महात्मा गाँधी ने दिल्ली में २१ दिन का उपवास किया। १९२८ में साइमन कमीशन भारत में आया और उसका विरोध करने के लिए हिन्दू-मुसलमान पुनः एक हो गए। वर्तमान सत्याग्रह संग्राम में अधिकांश मुसलमान सम्मिलित नहीं हैं। परन्तु उनके प्रमुख नेताओं ने कॉङ्ग्रेस का साथ दिया है। आपसी मतभेद कुछ भी हो, परन्तु अब मुसलमान हिन्दुओं के साथ ही हैं। वे भारतवर्ष को अपनी मातृभूमि मानने लगे हैं और इसके उद्धार में अपना उद्धार समझते हैं।

उत्तर अफ़्रीका

महासमर समाप्त होते ही उत्तर अफ़्रीका में भी ज्वाला धधकने लगी। मोरक्को, अलजीयर्स आदि देशों के मुसलमानों में असन्तोष फैल गया। इनमें कमी यह थी कि अभी राष्ट्रीयता का उदय नहीं होने पाया था। स्वतन्त्रता अवश्य चाहते थे, परन्तु उसकी प्राप्ति के पश्चात् क्या होगा, इसका उनको ज्ञान नहीं था। उनका संग्राम यूरोपीय शासकों के अत्याचारों का विरोध मात्र था।

रीफ़-संग्राम

उत्तरी अफ़्रीका में रीफ़ नाम की एक जाति रहती है। ये लोग लड़ने में बड़े निपुण और स्वतन्त्रता के बड़े प्रेमी हैं। परन्तु अल्प-संख्यक और अर्धशिक्षित तथा पिछड़े हुए होने के कारण इनको दक्षिण यूरोप के राष्ट्रों ने दबा रक्खा है। महासमर के समय इनका यूरोप के साथ सम्पर्क बढ़ा और उसका इन पर जो प्रभाव पड़ा, इसका उल्लेख पहिले ही किया जा चुका है। समर-समाप्ति के बाद इनमें स्वतन्त्रता की अभिलाषा दुर्दमनीय हो उठी और उन्होंने आततायियों के विरुद्ध युद्ध आरम्भ कर दिया। अब्दुलकरीम नामक एक योग्य सैनिक तथा राजनीतिज्ञ ने इनका नेतृत्व ग्रहण किया। मुट्ठी भर रीफ़, जिनके पास न विज्ञान-बल था, न धन-बल, लगभग दो वर्षों तक स्पेन और फ़्रान्स की संयुक्त सेना से आश्चर्यजनक वीरता के साथ लड़े। स्पेन और फ़्रान्स ने वायुयान, विषमय गैस, टेङ्क आदि भीषण नर-संहारी शस्त्रास्त्रों का उपयोग किया। उधर रीफ़ लोगों को घायल हो जाने पर मरहम-पट्टी की भी सुविधा नहीं थी। यूरोप के सभ्य राष्ट्र इस हत्याकाण्ड को आनन्द के साथ देखते रहे। स्पेन और फ़्रान्स ने अपना सम्पूर्ण बल रीफ़ों के दमन में लगा दिया। बेचारे मुट्ठी भर रीफ़ कहाँ तक उनका मुक़ाबला करते। अब्दुलकरीम हार गया और अत्यन्त निराशावस्था में उसका देहान्त हुआ। वर्तमान इतिहास में रीफ़-संग्राम अत्यन्त आश्चर्यकारी तथा करुणोत्पादक घटना है।

देखें ये आज़ादी के दीवाने रीफ़ कब तक पददलित रहते हैं।

वर्तमान स्थिति

इस समय सम्पूर्ण मुस्लिम-जगत में नया जीवन और नई स्फूर्ति है। वह भविष्य के लिए नई उमङ्गें, नई योजनाएँ और नवीन भावनाओं से भरा हुआ है। पिछले १०-१२ वर्षों के इतिहास ने सिद्ध कर दिया है कि मुस्लिम-जगत में शक्ति है, पर उसका रूपान्तर हो गया है। इस्लाम के उद्धार की अब लोगों को इतनी चिन्ता नहीं है, जितनी अपने देश के उद्धार की। यह नवीन

नीति उन्होंने यूरोपीय राष्ट्रों से सीखी है। यही वर्तमान संसार का धर्म है और आधुनिक उन्नति का कारण है।

राजनैतिक स्थिति

तुर्की, ईरान और अफ़ग़ानिस्तान पूर्ण स्वतन्त्र हैं। इन तीनों देशों की संसार के महान राष्ट्रों के साथ सन्धियाँ हो चुकी हैं और इनको आदर की दृष्टि से देखा जाता है। यूरोपीय राष्ट्रों के राजदूत इन देशों में रहते हैं और इनके राजदूत उसी हैसियत से उन देशों में रहते हैं। व्यापार आदि के सम्बन्ध में भी इन देशों की यूरोपीय राष्ट्रों के साथ सन्धियाँ हो चुकी हैं। मिश्र और ईराक़ पर अभी इङ्गलैण्ड की संरक्षकता है, पर वहाँ स्वतन्त्रता की अभिलाषा अदम्य हो गई है। मिश्र के साथ सन्धि की बातचीत हो रही है और वहाँ अङ्गरेज़ों का टिकना अब कठिन सा हो चला है। ईराक़ के विषय में तो यह भी सम्भव है कि कभी राष्ट्र-सङ्घ अङ्गरेज़ों की नीति में हस्तक्षेप कर सके और उनको विवश हो जाने की प्रार्थना करे। सीरिया में फ़्रान्स ने ख़ूब दमन किया है, परन्तु वहाँ सामाजिक और राजनैतिक जागृति फिर भी बढ़ती ही जाती है। पलस्तीन, ट्रान्सजारडन और उत्तर अफ़्रीका के ट्यूनिस, ऐलजियर्स आदि देशों का भाग्य अवश्य अन्धकारमय है। पलस्तीन में यहूदी और मुसलमानों के पारस्परिक झगड़ों के कारण परतन्त्रता कब तक बची रहेगी, यह कोई नहीं कह सकता। अङ्गरेज़ लोगों को इस बात की चिन्ता भी नहीं है कि इस समस्या को हल किया जावे। पलस्तीन को स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं होगी, तब तक ट्रान्सजारडन भी परतन्त्र ही रहेगा। उत्तर अफ़्रीका में अभी पर्याप्त शिक्षा और राष्ट्रीयता का प्रचार नहीं होने पाया है; एवं इन तीन-चार छोटे-छोटे मुस्लिम प्रदेशों को छोड़ कर शेष सम्पूर्ण मुस्लिम देशों का भविष्य उज्ज्वल है। परन्तु जब मिस्र और ईराक़ पूर्ण स्वतन्त्र हो जावेंगे और अरब, जो इस समय भी स्वतन्त्र है, उन्नत हो जावेगा, तो यह सम्भव न होगा कि अङ्गरेज़ पलस्तीन को अपने चङ्गुल में दबाए ही रहें। मिस्र से ईराक़ तक जो इस समय अङ्गरेज़ों का आधिपत्य है, उसके हट जाने पर मोरक्को से चीनी तुर्किस्तान तक मुस्लिम-जगत् स्वतन्त्र हो जायगा। इस समय यदि इन मुस्लिम राज्यों का एक सङ्घ बन गया और ग़ैर-मुस्लिम जगत् के साथ उन सबकी एक नीति रही तो संसार की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति पर इसका गहरा प्रभाव पड़ेगा। पर भविष्य की राजनीति में धर्म का स्थान मुख्य नहीं रह सकता। इसलिए सम्पूर्ण मुस्लिम राज्य शायद ही एक सङ्घ बना सकें। आर्थिक और राजनैतिक दृष्टि से यदि ऐसा सङ्घ बना तो वह एशियाई सङ्घ होगा, न कि मुस्लिम-सङ्घ।

तुर्की, ईरान और अफ़ग़ानिस्तान तीनों देश स्वतन्त्र हैं। परन्तु तीनों की शासन-व्यवस्था पृथक्-पृथक् है। तुर्की पूर्ण प्रजातन्त्र है और ईरान तथा अफ़ग़ानिस्तान में नियन्त्रित एक राट् राज्य है। तुर्की की सम्पूर्ण राज्यसत्ता राष्ट्रीय महासभा के हाथ में है। इस महासभा का निर्वाचन तुर्की राज्य की जनता करती है। महासभा एक राष्ट्रपति का निर्वाचन करती है। वर्तमान राष्ट्रपति मुस्तफ़ा कमालपाशा है। राष्ट्रपति महासभा के किसी सभासद को प्रधान मन्त्री नियत करता है और उसके नीचे कार्यकारिणी समिति होती है। हाईकोर्ट बिलकुल स्वतन्त्र है। ख़लीफ़ा और सुलतान का टर्की में अब कोई स्थान नहीं है। १ नवम्बर १९२२ में राष्ट्र-महासभा ने निम्न-लिखित प्रस्ताव पास किया था:—

"तुर्की जनता ने यह निश्चय कर लिया है कि देश का शासन राष्ट्रीय महासभा करे। जनता इसी को अपना सच्चा प्रतिनिधि मानती है और इसके अधिकारों को अविभाज्य, अत्याज्य तथा अटल मानती है। तुर्की अन्य किसी ऐसी शक्ति को स्वीकार नहीं करती, जिसका आधार लोकमत न हो और राष्ट्रीय महासभा के शासन के अतिरिक्त वह अन्य कोई शासन-व्यवस्था को नहीं मानती। इसलिए तुर्की जनता क़ुस्तुन्तुनिया की सरकार को १६ मार्च, १९२० के बाद से सरकार नहीं मानती। ख़िलाफ़त उस्मान के वंश में बनी रहेगी। इस वंश के योग्य और सच्चरित्र आदमी को यह राष्ट्र-सभा ख़लीफ़ा निर्वाचित करेगी।"

उपर्युक्त प्रस्ताव के अनुकूल सुलतान ख़लीफ़ा वालूहीन को सिंहासन से हटा दिया गया और उसके पुत्र अब्दुल मजीद को केवल ख़लीफ़ा बना दिया गया। इस प्रकार महाशक्तिशाली सुलतान का पुत्र केवल एक मुल्ला रह गया। एक सम्राट का पुत्र अपनी इस हीन दशा से कैसे सन्तुष्ट रह सकता था? उसका असन्तोष कई प्रकार

से प्रकट होने लगा और उधर राष्ट्रीय महासभा को उस पर सन्देह होने लगा। परिणाम यह हुआ कि महासभा के प्रस्तावानुकूल ख़लीफ़ा और उसका परिवार ४ मार्च १६२४ को अपना पैत्रिक नगर और राजसी ठाट-बाट छोड़ कर यूरोप में अपने दिन काटने चला गया।

इसलिए तुर्क पूर्ण प्रजातन्त्र राज्य है। वहाँ राजनीति पर धर्म का कोई प्रभाव नहीं है और शासन का उद्देश्य इस्लाम का प्रचार भी नहीं है।

ईरान और अफ़ग़ानिस्तान

ईरान में जनता द्वारा पार्लामेण्ट का निर्वाचन होता है और फिर बादशाह निर्वाचित सभासदों में से एक प्रधान मन्त्री बनाता है, जो अपने सचिव-मण्डल की स्थापना करता है। बादशाह निर्वाचित नहीं होता। ऐसा मालूम होता है कि कुछ अर्से बाद ईरान का शासन-विधान ग्रेटब्रिटेन जैसा हो जायगा। अफ़ग़ानिस्तान में भी शाह अमानुल्ला ने पार्लामेण्ट की स्थापना की थी और प्रधान मन्त्री, कार्यकारिणी समिति आदि की भी व्यवस्था कर दी थी, परन्तु अफ़ग़ानिस्तान ईरान की अपेक्षा अधिक पिछड़ा हुआ है और शासन-कार्य में भाग लेने के लिए लोग उत्सुक नहीं हैं।

अन्य देश

ईराक़ और मिश्र की स्थिति लगभग वही है, जो ईरान की। पर अन्तर यह है कि ईराक़ और मिस्र के बादशाह अङ्गरेज़ों के बनाने से बादशाह बने हैं, इसलिए वे एक प्रकार से उनके हाथ में कठपुतलियों की भाँति नाचते हैं। इसके अलावा सेना, व्यापार, अन्तर्राष्ट्रीय नीति आदि महत्वपूर्ण विभागों पर अङ्गरेज़ों का ही आधिपत्य है। लेकिन लोकमत की प्रबलता को देख कर इन देशों के बादशाह भी अब देश की ओर झुकने लगे हैं और मन्त्रि-मण्डल तो प्रायः देश की ओर ही रहता है। मोरक्को, एलजियर्स और ट्यूनिस की दशा भारत के देशी राष्ट्रों से मिलती-जुलती है। वहाँ के सुलतानों को यूरोपीय राष्ट्रों ने अपने चङ्गुल में फँसा रक्खा है और जनता उनसे दुखी हुई है, पर वहाँ भी लोग चुपचाप नहीं हैं।

पश्चिमी तुर्किस्तान

१६१७ से पूर्व पश्चिमी तुर्किस्तान में कई छोटी-छोटी मुसलमान रियासतें थीं, जो ज़ार के समय में रूसी राज्य के अधीन थीं। जब रूस में राज्यक्रान्ति हुई, तो इन राज्यों को स्वतन्त्र कर दिया गया और कुछ अर्से बाद उनमें प्रजातन्त्र राज्य स्थापित कर दिए गए। इन राज्यों को अपने घरू मामलों में पूर्ण स्वतन्त्रता है, परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय विषयों में ये रूस के अधीन हैं और इनकी शासन-प्रणाली भी रूस की जैसी ही है। इन राज्यों में खीवा और बुख़ारा मुख्य हैं।

सैनिक उन्नति

राष्ट्रीय जागृति और स्वतन्त्रता-प्राप्ति के कारण मुस्लिम देशों में तीव्र वेग से उन्नति हो रही है। जब देश का प्रत्येक व्यक्ति उन्नति के लिए लालायित हो और उसके भाग्य की बागडोर जनता के ही हाथ में हो तो उन्नति क्यों न हो? इस समय तुर्की, ईरान और अफ़ग़ानिस्तान की सेनाएँ यूरोपीय ढङ्ग पर व्यवस्थित हैं और यूरोपीय शस्त्रों से सुसज्जित हैं। इन देशों की सेनाएँ मैशीनगन, टैङ्क, वायुयान, सबसे काम लेती हैं। कमाल-पाशा स्वयं वीर योद्धा और अद्भुत रणपण्डित है। रिज़ाअली पहलवी अपनी सैनिकता के कारण ही देश का उद्धार कर सका था। नादिरशाह पहिले अफ़ग़ान सेना का जनरल था। अमानुल्ला ने अफ़ग़ानिस्तान में सैनिक शिक्षा प्रत्येक अफ़ग़ान के लिए अनिवार्य कर दी थी। तुर्क और ईरानी लोग भी सैनिक बनने में अपना गौरव समझते हैं।

(क्रमशः)

"जेल में मेरी किताबों ने मेरे मित्रों का काम किया, अब मुझे इनसे अलग रहना पसन्द नहीं है।

—एक अनुभवी

"किसी घर में पुस्तकालय बनाना क्या है, मानों उस घर को सजीव कर देना है।"

—सिसरो

कुमारी कमला ओलिव नोबुल ओझा—आप प्रथम भारतीय महिला हैं, जिन्होंने काशी हिन्दू-



विश्वविद्यालय से ललित कला और गृह-विज्ञान में बी० ए० की डिग्री प्राप्त की है।



कुमारी सकीना करामत, बी० ए०, बी० एस्-सी० (अमेरिका)—आप अलीगढ़ के एम० ए० वी० गर्ल्स स्कूल की प्रिन्सिपल हैं और अभी हाल में ही अमेरिका से बी० एस्-सी० की डिग्री प्राप्त करके आई हैं।



श्रीमती सुशीला श्रीवास्तव—आप कानपुर म्युनिसिपल बोर्ड की सदस्या और वीमेन एसोसिएशन कानपुर की सेक्रेटरी हैं। वियना में जो अखिल-विश्व महिला कॉन्फ्रेन्स हुई थी, उसमें आप भारतीय महिला-प्रतिनिधि थीं।



श्रीमती व्रजराजकिशोरी सिंह—आप फ़ैज़ाबाद म्यूनिसिपल बोर्ड की प्रथम महिला सदस्या हैं। स्त्री-शिक्षा और स्त्रियोन्नति सम्बन्धी कार्यों से आपको विशेष प्रेम है।



कुमारी एम० बी० सिंह, बी० ए०, बी० टी०—आप मेरठ डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की सदस्या चुनी गई हैं। आप उक्त बोर्ड की सर्व-प्रथम महिला-सदस्या हैं।

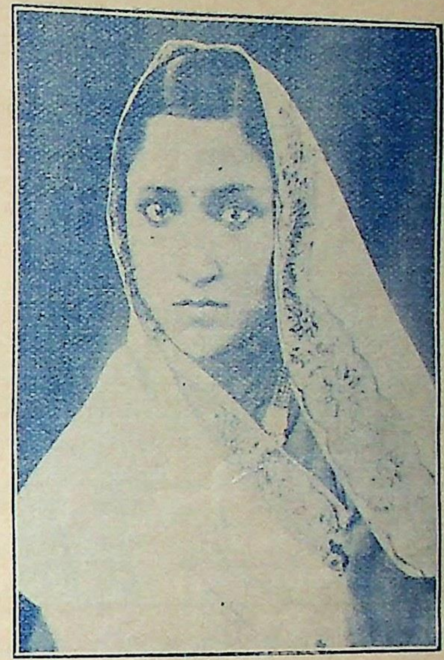


श्रीमती कालिकाप्रसाद भटनागर, बी० ए०—गत दिसम्बर में प्रयाग में जो कायस्थ महिला-सम्मेलन हुआ था, उसकी आप सभानेत्री थीं। इसके सिवा संयुक्त प्रान्तीय वर्नाक्यूलर शिक्षा-विभाग की सदस्या और कानपुर वीमेन एसोसिएशन की प्रधाना हैं।



श्रीमती नागमणि कल्याण सुन्दरम्

विरुधूनगर (मद्रास) में आप ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट नियुक्त हुई हैं।



श्रीमती कमलादेवी, आयुर्वेद-विशारदा

आप अजमेर की रहने वाली हैं और बनारस में होने वाली संयुक्त प्रान्तीय माहेश्वरी कॉन्फ़रेन्स की अध्यक्षा चुनी गई हैं।



श्रीमती लीलावती श्रीनिवास असेरप्पा

आप सीलोन की राजनीतिक महिला-सङ्घ की सभानेत्री हैं।



कुमारी जेरबाई डी० आवासिया

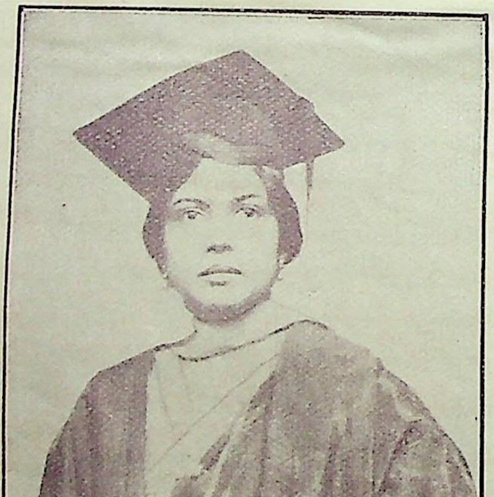
आप बम्बई की प्रेसीडेन्सी अदालत में ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट बनाई गई हैं।



कुमारी बी० शान्ताबाई
जो बेजवाड़ा (आन्ध्र) के आरकिन्सन गर्ल्स स्कूल की छात्री हैं। अङ्गरेज़ी भाषा में सुन्दर भाषण करने के लिए 'आन्ध्र प्रान्तीय एलोक्यूशन कान्टेस्ट' की ओर से, आपको एक पदक प्रदान किया गया है।



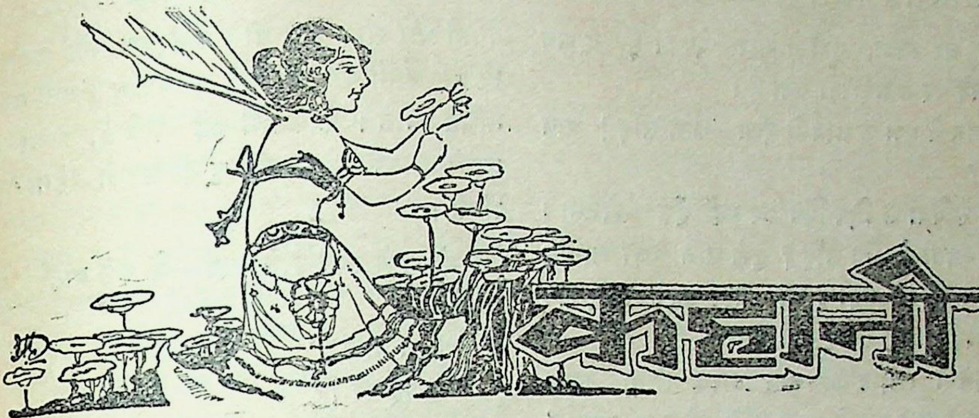
श्रीमती एम० चन्द्रमती
आप राजमुन्द्री के गवर्नमेण्ट आर्ट कॉलेज की छात्री हैं। आपने गान-प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया है।



कुमारी एस० एस० रक्षित, बी० ए०, बी० टी०
जो कि कोकोनदा के पीथापुरम् राजा कॉलेज में अङ्गरेज़ी भाषा की शिक्षयित्री नियुक्त की गई हैं।



कुमारी प्रकाशवती जैन
दिल्ली यूनिवर्सिटी की इण्टर मीडियट परीक्षा में प्रथम स्थान लाभ करने के उपलक्ष में इन्होंने स्वर्ण-पदक तथा सरकारी छात्रवृत्ति प्राप्त की है।



ज्योति

[श्रीयुत प्रेमचन्द]

विधवा हो जाने के बाद बूटी का स्वभाव बहुत कटु हो गया था। जब बहुत जी जलता तो अपने मृत पति को कोसती—आप तो सिधार गए, मेरे लिए यह सारा जञ्जाल छोड़ गए। जब इतनी जल्दी जाना था तो ब्याह न जाने किस लिए किया था। घर में भूनी भाँग नहीं, चले थे ब्याह करने। चाहती तो दूसरी सगाई कर लेती। अहीरों में इसका रिवाज है। देखने-सुनने में भी बुरी न थी। दो-एक आदमी तैयार भी थे। लेकिन बूटी पतिव्रता कहलाने के मोह को न छोड़ सकी। और यह सारा क्रोध उतरता था बड़े लड़के मोहन पर, जो अब १६ साल का था। सोहन अभी छोटा था और मैना लड़की थी। ये दोनों अभी किसी लायक़ न थे। अगर यह तीनों न होते तो बूटी को क्यों इतना कष्ट होता। जिसका थोड़ा सा काम कर देती वही रोटी-कपड़ा दे देता। जब चाहती किसी के सिर बैठ जाती। अब अगर वह कहीं बैठ जाय तो लोग यही कहेंगे कि तीन-तीन लड़कों के होते इसे यह क्या सूझी। मोहन भरसक उसका भार हलका करने की चेष्टा करता। गायों, भैंसों की सानी-पानी, दुहना, मथना यह सब कर लेता। लेकिन बूटी का मुँह सीधा न होता था। वह रोज़ एक न एक खुचड़ निकालती रहती और मोहन ने भी उसकी घुड़कियों की परवाह करना छोड़ दिया था। पति उसके सिर गृहस्थी का यह भार पटक कर क्यों चला गया, उसे यही गिला था। उसने तो बेचारी का सर्वनाश ही कर दिया। न खाने का सुख मिला, न पहनने-ओढ़ने का, न और किसी बात का। इस घर में क्या आई, मानों भट्टी में पड़ गई। उसकी वैधव्य-साधना और अतृप्त भोग-लालसा में सदैव द्वन्द्व सा मचा रहता था और उसकी जलन में उसके हृदय की सारी मृदुता जल कर भस्म हो गई थी। पति के पीछे और कुछ नहीं तो बूटी के पास चार-पाँच सौ के गहने थे। लेकिन एक-एक करके सब उसके हाथ से निकल गए। उसी महल्ले में, उसकी बिरादरी में, कितनी ही औरतें थीं, जो उससे जेठी होने पर भी गहने झमका कर, आँखों में काजल लगा कर, माँग में सेंदुर की मोटी सी रेखा डाल कर मानों उसे जलाया करती थीं। इसलिए जब उनमें से कोई विधवा हो जाती तो बूटी को खुशी होती और यह सारी जलन वह लड़कों पर निकालती, विशेषकर मोहन पर। वह शायद सारे संसार की स्त्रियों को अपने ही रूप में देखना चाहती थी। कुत्सा में उसे विशेष आनन्द मिलता था। उसकी वञ्चित लालसा जल न पाकर ओस चाट लेने ही में सन्तुष्ट होती थी। फिर यह कैसे सम्भव था कि वह मोहन के विषय में कुछ सुने और पेट में डाल ले। ज्योंही मोहन सन्ध्या समय दूध

बेच कर घर आया, बूटी ने कहा—देखती हूँ, तू अब साँड़ बनने पर उतारू हो गया है।

मोहन ने प्रश्न के भाव से देखा—कैसा साँड़! बात क्या है?

"तू रूपिया से छिप-छिप कर नहीं हँसता-बोलता। उस पर कहता है कौन साँड़? तुझे लाज नहीं आती। घर में पैसे-पैसे की तङ्गी है और वहाँ उसके लिए पान लाए जाते हैं, कपड़े रँगाए जाते हैं।"

मोहन ने विद्रोह का भाव धारण किया—अगर उसने मुझसे चार पैसे के पान माँगे तो क्या करता? कहता कि पैसे दे तो लाऊँगा। अपनी धोती रँगाने को दी तो उससे रँगाई माँगता?

"महल्ले में एक तू ही बड़ा धन्नासेठ है। और किसी से उसने क्यों न कहा?"

"यह वह जाने, मैं क्या बताऊँ।"

"तुझे अब छैला बनने की सूझती है! घर में भी कभी एक पैसे के पान लाया?"

"यहाँ पान किसके लिए लाता?"

"क्या तेरे लेखे घर में सब मर गए।"

"मैं न जानता था तुम पान खाना चाहती हो।"

"संसार में एक रुपिया ही पान खाने जोग है?"

"शौक-सिंगार की भी तो उमिर होती है।"

बूटी जल उठी। उसे बुढ़िया कह देना उसकी सारी साधना पर पानी फेर देना था। बुढ़ापे में उन साधनाओं का महत्त्व ही क्या। जिस त्याग-कल्पना के बल पर वह सब स्त्रियों के सामने सिर उठा कर चलती थी, उस पर इतना कठोराघात! इन्हीं लड़कों के पीछे उसने अपनी जवानी धूल में मिला दी! उसके आदमी को मरे आज पाँच साल हुए। तब उसकी चढ़ती जवानी थी। तीन लड़के भगवान ने उसके गले मढ़ दिए, नहीं अभी वह है कै दिन की। चाहती तो आज वह भी ओंठ लाल किए, पाँव में महावर लगाए, अनवट बिछुए पहने मटकती फिरती। यह सब कुछ उसने इन लड़कों के कारन त्याग दिया और आज मोहन उसे बुढ़िया कहता है! रुपिया उसके सामने खड़ी कर दी जाय तो चूहिया सी लगे। फिर भी वह जवान है, और बूटी बुढ़िया है!

बोली—हाँ और क्या। मेरे लिए तो अब फटे-चीथड़े पहनने के दिन हैं। जब तेरा बाप मरा तो मैं रुपिया से दो ही चार साल बड़ी थी। उस वक्त कोई घर कर लेती तो तुम लोगों का कहीं पता न लगता। गली-गली भीख माँगते फिरते। लेकिन मैं कहे देती हूँ, अगर तू फिर उससे बोला तो या तो तू ही घर में रहेगा या मैं ही रहूँगी।

मोहन ने डरते-डरते कहा—मैं उसे बात दे चुका हूँ अम्माँ?

"कैसी बात?"

"सगाई की।"

"अगर रुपिया मेरे घर में आई तो झाड़ू मार कर निकाल दूँगी। यह सब उसकी माँ की माया है। वही कुटनी मेरे लड़के को मुझसे छीने लेती है। राँड से इतना भी नहीं देखा जाता। चाहती है कि उसे सौत बना कर मेरी छाती पर बैठा दे।"

मोहन ने व्यथित कण्ठ से कहा—अम्माँ, ईश्वर के लिए चुप रहो। क्यों अपना पानी आप खो रही हो। मैंने तो समझा था, चार दिन में मैना अपने घर चली जायगी, तुम अकेली पड़ जावगी। इसीलिए उसे लाने की बात सोच रहा था। अगर तुम्हें बुरा लगता है तो जाने दो।

"तू आज से यहीं आँगन में सोया कर।"

"और गाएँ-भैंसे बाहर पड़ी रहेंगी?"

"पड़ी रहने दे। कोई डाका नहीं पड़ा जाता।"

"मुझ पर तुझे इतना सन्देह है?"

"हाँ।"

"तो मैं यहाँ न सोऊँगा।"

"तो निकल जा मेरे घर से।"

"हाँ, तेरी यही इच्छा है तो निकल जाऊँगा।"

मैना ने भोजन पकाया। मोहन ने कहा मुझे भूख नहीं है! बूटी उसे मनाने न आई। मोहन का युवक-हृदय माता के इस कठोर शासन को किसी तरह स्वीकार नहीं कर सकता। उसका घर है, ले ले। अपने लिए वह कोई दूसरा ठिकाना ढूँढ़ निकालेगा। रुपिया ने उसके रूखे जीवन में एक स्निग्धता भर दी थी। जब वह एक अव्यक्त कामना से चञ्चल हो रहा था, जीवन कुछ सूना-सूना लगता था, रुपिया ने नवबसन्त की भाँति आकर उसे पल्लवित कर दिया। मोहन को जीवन में एक मीठा

स्वाद मिलने लगा। कोई काम करता होता, पर ध्यान रुपिया की ओर लगा रहता। उसे क्या दे दे कि वह प्रसन्न हो जाय! अब वह कौन मुँह लेकर उसके पास जाय? क्या उससे कहे कि अम्माँ ने मुझे तुमसे मिलने को मना किया है? अभी कल ही तो बरगद के नीचे दोनों में कैसी-कैसी बातें हुई थीं। मोहन ने कहा था, रूपा तुम इतनी सुन्दर हो, तुम्हारे सौ गाहक निकल आएँगे। मेरे घर में तुम्हारे लिए क्या रक्खा है। इस पर रुपिया ने जो जवाब दिया था वह तो सङ्गीत की तरह अब भी उसके प्राणों में बसा हुआ था—मैं तो तुमको चाहती हूँ मोहन, अकेले तुमको। परगने के चौधरी हो जाव तब भी मोहन हो, मजूरी करने लगो तब भी मोहन हो। उसी रुपिया से आज वह जाकर कहे—मुझे अब तुमसे कोई सरोकार नहीं है!

नहीं, यह नहीं हो सकता। उसे घर की परवाह नहीं है। वह रुपिया के साथ माँ से अलग रहेगा। इस जगह न सही, किसी दूसरे महल्ले में सही। इस वक्त भी रुपिया उसकी राह देख रही होगी। कैसे अच्छे बीड़े लगाती है। कहीं अम्माँ सुन पावें कि यह रात को रुपिया के द्वार पर गया था तो परान ही दे दें। दे दें परान! अपने भाग तो नहीं बखानतीं कि ऐसी देवी बहू मिली जाती है। न जाने क्यों रुपिया से इतना चिढ़ती हैं। वह ज़रा पान खा लेती है, साड़ी भी रँग कर पहनती है। बस यही तो।

चूड़ियों की झङ्कार सुनाई दी। रुपिया आ रही है! हाँ वही है।

रुपिया उसके सिरहाने आकर बोली—सो गए क्या मोहन? घड़ी भर से तुम्हारी राह देख रही हूँ। आए क्यों नहीं?

मोहन नींद का मक्कर किए पड़ा रहा।

रुपिया ने उसका सिर हिला कर फिर कहा—क्या सो गए मोहन?

उन कोमल उँगलियों के स्पर्श में क्या सिद्धि थी, कौन जाने। मोहन की सारी आत्मा उन्मत्त हो उठी। उसके प्राण मानों बाहर निकल कर रुपिया के चरणों में समर्पित हो जाने के लिए उछल पड़े। देवी वरदान लिए सामने खड़ी है। सारा विश्व जैसे नाच रहा है। उसे मालूम हुआ, जैसे उसका शरीर लुप्त हो गया है, केवल वह एक मधुर स्वर की भाँति विश्व की गोद से चिमटा हुआ उसके साथ नृत्य कर रहा है।

रुपिया ने फिर कहा—अभी से सो गए क्या जी?

मोहन बोला—हाँ, ज़रा नींद आ गई थी रूपा। तुम इस वक्त क्या करने आईं। कहीं अम्माँ देख लें तो मुझे मार ही डालें।

"तुम आज आए क्यों नहीं?"

"आज अम्माँ से लड़ाई हो गई।"

"क्या कहती थीं?"

"कहती थीं, रुपिया से बोलेगा तो मैं परान दे दूँगी।"

"तुमने पूछा नहीं, रुपिया से क्यों चिढ़ती हो?"

"अब उनकी बात क्या कहूँ रूपा। वह किसी का खाना-पहनना नहीं देख सकतीं। अब मुझे तुमसे दूर रहना पड़ेगा।"

"मेरा जी तो न मानेगा।"

"ऐसी बातें करोगी तो मैं तुम्हें लेकर भाग जाऊँगा।"

"तुम मेरे पास एक बार रोज़ आ जाया करो। बस! और मैं कुछ नहीं चाहती।"

"और अम्माँ जो बिगड़ेंगी।"

"तो मैं समझ गई। तुम मुझे प्यार नहीं करते।"

"मेरा बस होता तो तुमको अपने परान में रख लेता।"

इसी समय घर के केवाड़ खटके। रुपिया भाग गई।

२

मोहन दूसरे दिन सोकर उठा तो उसके हृदय में आनन्द का सागर सा भरा हुआ था। वह सोहन को बराबर डाँटता रहता था। सोहन आलसी था। घर के काम-धन्धे में जी न लगाता था। आज भी वह आँगन में बैठा अपनी धोती में साबुन लगा रहा था। मोहन को देखते ही वह साबुन छिपा कर भाग जाने का अवसर खोजने लगा।

मोहन ने मुस्करा कर कहा—क्या धोती बहुत मैली हो गई है सोहन? धोबी को क्यों नहीं देते?

सोहन को इन शब्दों में स्नेह की गन्ध आई।

"धोबिन पैसे माँगती है।"

"तो पैसे अम्माँ से क्यों नहीं माँग लेते?"

"अम्माँ कौन पैसे दिए देती है ।"

"तो मुझसे ले लो !"

यह कह कर उसने एक इकन्नी उसकी ओर फेंक दी। सोहन प्रसन्न हो गया। भाई और माता दोनों ही उसे धिक्कारते रहते थे। बहुत दिनों के बाद आज उसे स्नेह की मधुरता का स्वाद मिला। इकन्नी उठा ली और धोती को वहीं छोड़ कर गाय को खोल कर ले चला।

मोहन ने कहा—तुम रहने दो, मैं इसे लिए जाता हूँ।

सोहन ने पगहिया भाई को देकर फिर पूछा—तुम्हारे लिए चिलम रख लाऊँ ?

जीवन में आज पहली बार सोहन ने भाई के प्रति ऐसा सद्भाव प्रकट किया था। इसमें क्या रहस्य है, यह मोहन की समझ में न आया। बोला—आग हो तो रख लाओ।

मैना सिर के बाल खोले आँगन में बैठी घिरौंदा बना रही थी। मोहन को देखते ही उसने घिरौंदा बिगाड़ दिया और अञ्चल से बाल छिपा कर रसोईं घर में बरतन उठाने चली।

मोहन ने पूछा—क्या खेल रही थी मैना ?

मैना डरी हुई बोली—कुछ तो नहीं।

"तू तो बहुत अच्छे घिरौंदे बनाती है। ज़रा बना, देखूँ।"

मैना का रुआसा चेहरा खिल उठा। प्रेम के एक शब्द में कितना जादू है। मुँह से निकलते ही जैसे सुगन्ध फैल गया। जिसने सुना उसका हृदय खिल उठा। जहाँ भय था, वहाँ विश्वास चमक उठा। जहाँ कटुता थी, वहाँ अपनापा छलक पड़ा। चारों ओर चेतनता दौड़ गई। कहीं आलस्य नहीं, कहीं खिन्नता नहीं। मोहन का हृदय आज प्रेम से भरा हुआ था। इसमें से सुगन्ध का विकर्षण हो रहा था।

मैना घिरौंदा बनाने बैठ गई।

मोहन ने उसके उलझे हुए बालों को सुलझाते हुए कहा—तेरी गुड़िया का ब्याह कब होगा मैना, नेवता दे, कुछ मिठाई खाने को मिले।

मैना का मन आकाश में उड़ने लगा। अब भैया पानी माँगें तो वह लोटे को राख से ख़ूब चमाचम करके पानी ले जायगी।

"अम्माँ पैसे नहीं देती। गुड्डा तो ठीक हो गया है। टीका कैसे भेजूँ।"

"कितने पैसे लेगी ?"

"एक पैसे के बतासे लूँगी और एक पैसे का रङ्ग। जोड़े तो रङ्गे जायँगे कि नहीं।"

"तो दो पैसे में तेरा काम चल जायगा।"

"हाँ, दो पैसे दे दो भैया, तो मेरी गुड़िया का ब्याह धूमधाम से हो जाय।"

मोहन ने दो पैसे हाथ में लेकर मैना को दिखाए। मैना लपकी, मोहन ने हाथ ऊपर उठाया, मैना ने हाथ पकड़ कर नीचे खींचना शुरू किया। मोहन ने उसे गोद में उठा लिया। मैना ने पैसे ले लिए और नीचे उतर कर नाचने लगी। फिर अपनी सहेलियों को विवाह का नेवता देने के लिए भागी।

उसी वक्त बूटी गोबर का झौवा लिए आ पहुँची। मोहन को खड़े देख कर कठोर स्वर में बोली—अभी तक मटरगस ही हो रही है। भैंस कब दुही जायगी ?

आज बूटी को मोहन ने विद्रोह भरा जवाब न दिया। जैसे उसके मन में माधुर्य का कोई सोता सा खुल गया हो। माता को गोबर का बोझ लिए देख कर उसने झौवा उसके सिर से उतार लिया।

बूटी ने कहा—रहने दे, रहने दे, जाकर भैंस दूह, मैं तो गोबर लिए जाती हूँ।

"तुम इतना भारी बोझ क्यों उठा लेती हो। मुझे क्यों नहीं बुला लेतीं ?"

माता का हृदय वात्सल्य से गदगद हो उठा।

"तू जा अपना काम देख। मेरे पीछे क्यों पड़ता है।"

"गोबर निकालने का काम मेरा है।"

"और दूध कौन दुहेगा ?"

"वह भी मैं करूँगा।"

"तू इतना बड़ा जोधा है कि सारे काम कर लेगा !"

"जितना कहता हूँ उतना कर लूँगा।"

"तो मैं क्या करूँगी ?"

"तुम लड़कों से काम लो, जो तुम्हारा धर्म है।"

"मेरी सुनता है कोई।"

३

आज मोहन बाज़ार से दूध पहुँचा कर लौटा तो पान, कत्था, सुपारी, एक छोटा-सा पानदान और थोड़ी

सी मिठाई लाया। बूटी बिगड़ कर बोली—आज पैसे कहीं फालतू मिल गए थे क्या? इस तरह पैसे उड़ावेगा तो कै दिन निबाह होगा।

"मैंने तो एक पैसा भी नहीं उड़ाया अम्माँ। मैं समझता था तुम पान खाती ही नहीं।"

"तो अब मैं पान खाऊँगी।"

"हाँ और क्या। जिसके दो-दो जवान बेटे हों, क्या वह इतना शौक़ भी न करे।"

बूटी के सूखे कठोर हृदय में कहीं से कुछ हरियाली निकल आई, एक नन्हीं-सी कोपल थी, लेकिन उसके अन्दर कितना जीवन, कितना रस था। उसने मैना और सोहन को एक-एक मिठाई दे दी और एक मोहन को देने लगी।

"मिठाई तो लड़कों के लिए लाया था अम्माँ।"

"और तू तो बूढ़ा हो गया, क्यों?"

"इन लड़कों के सामने तो बूढ़ा ही हूँ।"

"लेकिन मेरे सामने तो लड़का ही है।"

मोहन ने मिठाई ले ली। मैना ने मिठाई पाते ही गप से मुँह में डाल ली थी। वह केवल मिठास का स्वाद जीभ पर छोड़ कर कब की गायब हो चुकी थी। मोहन की मिठाई को ललचाई आँखों से देखने लगी। मोहन ने आधा लड्डू तोड़ कर मैना को दे दिया। एक मिठाई दोने में और बची थी। बूटी ने उसे मोहन की तरफ़ बढ़ा कर कहा—लाया भी तो इतनी-सी मिठाई। यह ले ले।

मोहन ने आधी मिठाई मुँह में डाल कर कहा—यह तुम्हारा हिस्सा है अम्माँ।

"तुम्हें खाते देख कर मुझे जो आनन्द मिलता है, उसमें मिठास से ज़्यादा स्वाद है।"

उसने आधी मिठाई सोहन को और आधी मोहन को दे दी। फिर पानदान खोल कर देखने लगी। आज जीवन में पहली बार उसे यह सौभाग्य प्राप्त हुआ। धन्य भाग कि पति के राज में जिस विभूति के लिए तरसती रही, वह लड़के के राज में मिली। पानदान में कई कुल्हिया हैं। और देखो, दो छोटी-छोटी चिमचियाँ भी हैं, ऊपर कड़ा लगा हुआ है, जहाँ चाहो लटका कर ले जाव। ऊपर की तश्तरी में पान रक्खे जायँगे। ज्योंही मोहन बाहर चला गया, उसने पानदान को माँज-धोकर उसमें चूना, कत्था भरा, सुपारी काटी, पान को भिगो कर तश्तरी में रक्खा। तब एक बीड़ा लगा कर खाया। उस बीड़े के रस ने जैसे उसके वैधव्य की कटुता को आर्द्र कर दिया। मन की प्रसन्नता व्यवहार में उदारता बन जाती है। अब वह घर में नहीं बैठ सकती। उसका मन इतना गहरा नहीं है कि इतनी बड़ी विभूति उसमें जाकर गुम हो जाय। एक पुराना आईना पड़ा हुआ था। उसने उसमें अपना मुँह देखा। ओठों पर लाली तो नहीं है। मुँह लाल करने के लिए उसने थोड़े ही पान खाया है।

धनिया से आकर कहा—काकी, तनक रस्सी दे दो, मेरी रस्सी टूट गई है?

कल बूटी ने साफ़ कह दिया होता, मेरी रस्सी गाँव भर के लिए नहीं है। रस्सी टूट गई है तो बनवा लो। आज उसने धनिया को रस्सी निकाल कर प्रसन्न मुख से दे दी और सद्भाव से पूछा—लड़के के दस्त बन्द हुए कि नहीं धनिया?

धनिया ने उदास मन से कहा—नहीं काकी, आज तो दिन भर दस्त आए। जाने दाँत आ रहे हैं।

"पानी भर ले तो चल ज़रा देखूँ, दाँत ही है कि और कुछ फसाद है। किसी की नजर-वजर तो नहीं लगी।"

"अब क्या जाने काकी, कौन जाने किसी की आँख फूटी हो।"

"चोंचाल लड़कों को नजर का बड़ा डर रहता है।"

"जिसने चुमकार कर बुलाया, झट उसकी गोद में चला जाता है। ऐसा हँसता है कि तुमसे क्या कहूँ।"

"कभी-कभी माँ की नजर भी लग जाया करती है।"

"ऐ नौज काकी, भला कोई अपने लड़के को नजर लगाएगा।"

"यही तो तू समझती नहीं। नजर आप ही आप लग जाती है।"

धनिया पानी लेकर आई तो बूटी उसके साथ बच्चे को देखने चली।

"तू अकेली है। आजकल घर के काम-धन्धे में बड़ा अण्डस होता होगा।"

"नहीं अम्माँ, रुपिया आ जाती है, घर का कुछ काम कर देती है, नहीं अकेले तो मेरी मरन हो जाती।" बूटी को आश्चर्य हुआ। रुपिया को उसने केवल तितली समझ रक्खा था।

"रुपिया!"

"हाँ काकी, बेचारी बड़ी सीधी है। झाड़ू लगा देती है, चौका-बरतन कर देती है, लड़के को सँभालती है। गाढ़े समय कौन किसी की बात पूछता है काकी।"

"उसे तो अपने मिस्सी-काजल से छुट्टी न मिलती होगी।"

"यह तो अपनी-अपनी रुचि है काकी। मुझे तो इस मिस्सी-काजल वाली ने जितना सहारा दिया, उतना किसी भक्तिन ने न दिया। बेचारी रात भर जागती रही। मैंने कुछ दे तो नहीं दिया। हाँ, जब तक जिऊँगी उसका जस गाऊँगी।"

"तू उसके गुन अभी नहीं जानती धनिया। पान के लिए पैसे कहाँ से आते हैं? किनारदार साड़ियाँ कहाँ से आती हैं?"

"मैं इन बातों में नहीं पड़ती काकी। फिर शौक-सिंगार करने को किसका जी नहीं चाहता। खाने-पहनने की यही तो उमिर है।"

धनिया का घर आ गया। आँगन में रुपिया बच्चे को गोद में लिए थपक रही थी। बच्चा सो गया था।

धनिया ने बच्चे को खटोले पर सुला दिया। बूटी ने बच्चे के सिर पर हाथ रक्खा, पेट में धीरे-धीरे उँगली गड़ा कर देखा। नाभी पर हींग का लेप करने को कहा। रुपिया बेनिया लाकर उसे झलने लगी।

बूटी ने कहा—ला बेनिया मुझे दे दे।

"मैं डुला दूँगी तो क्या छोटी हो जाऊँगी।"

"तू दिन भर यहाँ काम-धन्धा करती रही है। थक गई होगी।"

"तुम इतनी भलीमानस हो, और यहाँ लोग कहते थे वह बिना गाली के बात नहीं करती। मारे डर के तुम्हारे पास न आई।"

बूटी मुस्कराई।

"लोग झूठ तो नहीं कहते।"

"मैं आँखों की देखी मानूँ कि कानों की सुनी?"

आज भी रुपिया आँखों में काजल लगाए, पान खाए, रङ्गीन साड़ी पहने हुए थी। किन्तु आज बूटी को मालूम हुआ, इस फूल में केवल रङ्ग नहीं है, सुगन्ध भी है। उसके मन में रुपिया से जो घृणा हो गई थी, वह किसी दैवी मन्त्र से धुल सी गई। कितनी सुशील लड़की है, कितनी लजाधुर। बोली कितनी मीठी है। आजकल की लड़कियाँ अपने बच्चों की तो परवाह नहीं करतीं, दूसरों के लिए कौन मरता है। सारी रात धनिया के लड़के को लिए जागती रही! मोहन ने कल की बातें इससे कह तो दी ही होंगी। दूसरी लड़की होती तो मेरी ओर से मुँह फेर लेती, मुझे जलाती, मुझसे ऐंठती। इसे तो जैसे कुछ मालूम ही नहीं। हो सकता है कि मोहन ने इससे कुछ कहा ही न हो। हाँ, यही बात है।

आज रुपिया बूटी को बड़ी सुन्दर लगी। ठीक तो है, अभी शौक-सिंगार न करेगी तो कब करेगी। शौक-सिंगार इसलिए बुरा लगता है कि ऐसे आदमी अपने भोग-विलास में मस्त रहते हैं। किसी के घर में आग लग जाय, उनसे मतलब नहीं। उनका काम तो खाली दूसरों को रिझाना है। जैसे अपने रूप की दूकान सजाए, राह-चलतों को बुलाते हों कि ज़रा इस दूकान की सैर भी करते जाइए। ऐसे उपकारी प्राणियों का सिंगार बुरा नहीं लगता। नहीं, बल्कि और अच्छा लगता है। इससे मालूम होता है कि इसका रूप जितना सुन्दर है उतना ही मन भी सुन्दर है। फिर कौन नहीं चाहता कि लोग उसके रूप का बखान करें। किसे दूसरों की आँखों में खुब जाने की लालसा नहीं होती। बूटी का यौवन कब का बिदा हो चुका। फिर भी यह लालसा उसे बनी हुई है। कोई उसे रस-भरी आँखों से देख लेता है तो उसका मन कितना प्रसन्न हो जाता है। ज़मीन पर पाँव नहीं पड़ते। फिर रूपा तो अभी जवान है।

उस दिन से रूपा प्रायः दो-एक बार नित्य बूटी के घर आती। बूटी ने मोहन से आग्रह करके उसके लिए एक अच्छी सी साड़ी मँगवा दी? अगर रूपा कभी बिना काजल लगाए या बेरँगी साड़ी पहने आ जाती तो बूटी कहती—बहू-बेटियों को यह जोगिया भेस अच्छा नहीं लगता। यह भेस तो हम जैसी बूढ़ियों के लिए है।

रूपा ने एक दिन कहा—तुम बूढ़ी काहे से हो गईं अम्माँ! लोगों को इशारा मिल जाय तो भौंरों की तरह तुम्हारे ऊपर मँडराने लगें। मेरे दादा तो तुम्हारे द्वार पर धरना देने लगें।

बूटी ने मीठे तिरस्कार से कहा—चल, मैं तेरी माँ की सौत बन कर जाऊँगी?

"अम्माँ तो बूढ़ी हो गईं?"

"तो क्या तेरे दादा अभी जवान बैठे हैं?"

"हाँ ऐया, बड़ी अच्छी मिट्टी है उनकी।"

बूटी ने उसकी ओर रसभरी आँखों से देख कर पूछा—अच्छा बता, मोहन से तेरा ब्याह कर दूँ?

रूपा लजा गई। मुख पर गुलाब की छाया दौड़ गई?

आज मोहन दूध बेच कर लौटा, तो बूटी ने कहा—कुछ रुपए-पैसे जुटा, मैं रूपा से तेरी बातचीत कर रही हूँ।

卐 卐 卐

प्रेम की रीति

[श्रीमती सुन्दरकुमारी]

फूलों को हम बेध-बेध कर,
अपना हार बनाते हैं।
पहिन शहीदों की मालाएँ,
हम सगर्व मुसकाते हैं॥

❀

दीपक ने कर प्यार शलभ का,
अङ्ग-अङ्ग झुलसा डाला।
हमने आँखों के प्यारे सुरमे,
ही को पिसवा डाला॥

❀

मोती को सीपी की गोदी,
से छीना छिदवाया।
अपना प्यार स्वर्ण को हमने,
तपा-तपा दिखलाया॥

❀

हँसते कमल प्रेम उनका जब,
भ्रमरों को भटकाता है।
हाय! जिसे जो जितना प्रिय,
उतना ही उसे सताता है॥

❀

कठिन कृपाण धार है यह,
या देव! प्रेम मतवाला है?
तेरा आशीर्वाद, श्राप, अमृत,
है या विष-प्याला है?

❀

घायल हृदय, भरी आँखें,
क्या यही प्रेम की रीति?
इसी राह में तुम रहते, क्या
प्रभु है यह ही प्रीति?

जर्मनी का पुनर्संघटन और विश्व-शान्ति

[श्री० रामकिशोर मालवीय]

मनुष्य की मनस्थिति परिवर्तनशील है। उसकी विचार-धारा में, उसके दृष्टिकोण में सदा परिवर्तन हुआ करता है और यह परिवर्तन विकास अथवा विनाश के अनुसार होता रहता है। जो विचार एक समय में कल्पवृक्ष समझा जाता है, कालान्तर में वही विष-वृक्ष सिद्ध कर दिया जाता है और मनुष्य उसका अविलम्ब त्याग कर देता है। यह स्थिति जिस प्रकार व्यक्तियों पर घटित होती है, ठीक उसी प्रकार राष्ट्रों पर भी होती है। जो व्यक्ति अथवा राष्ट्र जितना अधिक उन्नत होता है, वह उतना ही अधिक परिवर्तनप्रिय भी होता है और इस सत्य का प्रमाण हमें यूरोपीय देशों के इतिहास में प्रचुर मात्रा में मिलता है। पिछली अनेक शताब्दियों में यूरोप ने जिस प्रकार उन्नति की है, उसी प्रकार उसके सिद्धान्तों में भी परिवर्तन होते रहे हैं। उसके जिस राष्ट्र ने जितनी अधिक उन्नति की है, उतनी ही शीघ्रता के साथ उसके दृष्टिकोणों में परिवर्तन भी हुए हैं और इसीलिए उनमें परस्पर सङ्घर्ष भी होता आया है। सदा एक राष्ट्र ने दूसरे पर अपना सैद्धान्तिक और राजनीतिक प्रभुत्व लादने का प्रयत्न किया है और इसी प्रयत्न की पूर्ति में उनमें भयङ्कर युद्ध होते रहे हैं। यूरोप ही नहीं, शक्ति-मद से मत्त होकर यूरोपीय राष्ट्रों ने संसार के अन्य देशों की ओर भी अपना हाथ बढ़ाया और इसका फल यह हुआ कि वे यूरोप ही नहीं, वरन् समस्त संसार की शान्ति के बाधक रहे। एक युग आता है, जब कि राजतन्त्र के विरुद्ध युद्ध घोषित किया जाता है, बादशाह ही नहीं, समस्त राज-वंश तलवार के घाट उतारे जाते हैं, उनके राजमहल धराशायी किए जाते हैं और राजतन्त्र के स्थान पर प्रजातन्त्र शासन की स्थापना होती है; लोगों की मति-गति फिर बदलती है, प्रजातन्त्र शासन में भी सत्ता प्रायः पूँजीवादियों के हाथों में चली जाती है, इसके विरुद्ध भी अस्त्र ग्रहण किए जाते हैं और श्रमजीवी शासन स्थापित होता है। परन्तु इतिहास फिर दुहराता है, समय पलटा खाता है, परमार्थ पर स्वार्थ की विजय होती है, स्वराष्ट्र-हित-साधन का ज़माना आता है और प्रजातन्त्र के स्थान पर एकतन्त्र (डिक्टेटरी) शासन स्थापित होता है। इस रङ्गमञ्च पर जर्मनी ने सदा प्रमुख अभिनय अभिनीत किया है और इस समय भी वह एक नूतन दृश्य लेकर स्टेज पर आया है। इस बार वह किस आन-बान के साथ रङ्गमञ्च पर आया है और उसके इस अभिनय का यूरोप ही नहीं, समस्त संसार पर क्या प्रभाव पड़ेगा, इसी का विवेचन इस लेख में किया जायगा।

जर्मनों का आदर्श राष्ट्र-प्रेम

जर्मनी यूरोप में सदा से महाशक्तिशाली देश ही नहीं, अन्य देशों के लिए आतङ्क-स्वरूप रहा है। यों तो ग्रेटब्रिटेन, फ्रान्स और रोम के रूप में इटली आदि की भी गणना बड़ी शक्तियों में रही है, किन्तु जर्मनों में साम्राज्य-विस्तार-लिप्सा हमेशा से अधिक रही और इससे भी ऊपर जीवन-क्षेत्र में जितना अधिक ऊँचा स्थान राष्ट्रीयता और वैयक्तिक स्वार्थ की अपेक्षा राष्ट्रीय हित को जर्मन लोगों ने दिया है, उतना दूसरे राष्ट्रों ने नहीं दिया है। यद्यपि आए-दिन इटैलियनों, फ्रान्सीसियों और अङ्गरेज़ों में भी राष्ट्रीयता के भाव अधिक जागृत हो उठे हैं, किन्तु वर्तमान समय में जितना राष्ट्र-प्रेम जर्मनी वालों में है, जितना वैयक्तिक स्वार्थों को अपनी मातृभूमि के लिए बलिदान करने का माद्दा उनमें है, उतना अन्य राष्ट्रों में

नहीं है। यही कारण है कि जर्मनी से अन्य राष्ट्र सदा भयभीत और चौकन्ने रहते हैं। जर्मनों का यह स्वभाव है कि पूर्ण शक्तिशाली होने पर वे शान्त नहीं रह सकते। शक्ति प्राप्त कर लेने पर वे मदान्ध हो जाते हैं। यूरोपीय महाभारत के पहिले जर्मनी का शक्ति-मद छलका पड़ता था और उसका प्रतिफल यूरोपीय महाभारत हुआ। महायुद्ध होने के पहिले जर्मनी की सैनिक शक्ति जिस प्रकार सुदृढ़ थी, वैसी ही इस समय हो गई है। जिस प्रकार उस समय यूरोप के अन्य देश जर्मनी से भयभीत रहते थे और उसका पड़ोसी फ़्रान्स उससे काँपा करता था, उसी तरह इस समय भी उसे शक्तिशाली होते देख अन्य देश और विशेषतः फ़्रान्स खलबला उठा है। यद्यपि इस बार फ़्रान्स ने भी अपना सैनिक सङ्गठन सुदृढ़ कर लिया है और जर्मनी से उसकी सैनिक शक्ति कहीं बढ़ी-चढ़ी है, किन्तु दूध का जला हुआ मट्ठे को भी फूँक कर पीता है, फ़्रान्स जर्मनों की वीरता से, उनके राष्ट्र-प्रेम से भलीभाँति अवगत है, यही नहीं उससे वह सबक़ सीख चुका है। इसलिए वह जर्मनी से अत्यधिक सतर्क है और उसका शक्तिशाली होना अपने लिए वह ज़हर समझता है। बात भी ठीक है, जितनी दुश्मनी फ़्रान्स और जर्मनी में है, उतनी मित्र-राष्ट्रों में किसी दूसरे से नहीं है। अवसर पाकर ये दोनों राष्ट्र एक-दूसरे को पूर्ण पददलित करने से नहीं चूकते। गत महाभारत के बाद फ़्रान्स जर्मनी को जितना अधिक सन्धि में जकड़वा सका था, उतना उसने जकड़वाया था। अपने भरसक उसने ऐसा कर दिया था कि जर्मनी दशाब्दियों तक सर न उठा सके। इटली, पोलैण्ड आदि दूसरे देशों ने भी महायुद्ध से शिक्षा ग्रहण की और अपनी-अपनी सैनिक शक्ति ख़ूब बढ़ाई। यद्यपि महायुद्ध के बाद वार्सेलीज़ की सन्धि में सब देशों के लिए सैनिक शक्ति की एक सीमा निश्चित कर दी गई थी, किन्तु सैनिक सुदृढ़ता का सबक़ सब लोग महायुद्ध से सीख चुके थे, इसलिए चुपके-चुपके सभी राष्ट्रों ने अपनी सेनाएँ बढ़ाईं। यह बात सन्धि की शर्तों के विरुद्ध थी। जर्मनी ने चीत्कार मचाई और संसार का ध्यान इस बात की ओर आकृष्ट किया कि सन्धि की शर्तें तोड़ी जा रही हैं, हमारी सेना तो घटा दी गई, किन्तु अन्य राष्ट्र अपनी फ़ौजी ताक़त बढ़ा रहे हैं। जर्मनी न्याय-पथ पर था, अतः संसार की सहानुभूति उसके साथ हुई। जर्मनी के लिए विष से अमृत उत्पन्न हुआ और उसे अपनी सैनिक शक्ति-वृद्धि का बहाना मिल गया। उसने इस अवसर से पूर्ण लाभ उठाया और बड़ी तेज़ी के साथ अपना पुनर्सङ्गठन आरम्भ किया। सबसे अधिक ध्यान उसने अपनी सैनिक शक्ति बढ़ाने की ओर दिया और इसमें अपनी सारी ताक़त लगा दी। एक ओर जर्मनी दूसरे देशों के फ़ौजी क़ूवत बढ़ाने के ख़िलाफ़ शोर मचाता जाता था और दूसरी ओर अपनी ताक़त ज़ोरों के साथ बढ़ाता जा रहा था। जर्मनी में सेनावाद और सैनिक शक्ति बढ़ाने की भावना का जन्म भीतर ही भीतर महाभारत की सन्धि के बाद ही हो गया था। मित्र-राष्ट्रों द्वारा निर्धारित सन्धि की शर्तें जर्मनी के लिए इतनी अपमानजनक और उसे लुञ्ज-पुञ्ज बनाने वाली थीं और जर्मनी ने इस बेकसी के साथ उन्हें स्वीकार किया था कि उसे देख कर संसार के राजनीतिज्ञों ने उसी समय यह भविष्यवाणी कर दी थी कि जर्मनी कुचले हुए सर्प की भाँति अवश्य बदला लेगा और दूसरे महाभारत का बीजारोपण इसी समय से हो गया है। सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर होने के बाद ही जर्मनों में बदले का भाव जाग्रत हो उठा।

नाज़ी-दल का जन्म और विकास

सन् १९१९ में वहाँ 'नाज़ी' नामक एक ऐसे दल की स्थापना हुई, जिसने जर्मनी को पुनर्सङ्गठित करने और उसे पूर्व स्थिति में ला देने का बीड़ा उठाया। महायुद्ध समाप्त होने और सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर होने के बाद जर्मनों की आन्तरिक दशा अत्यन्त हीन और भयावह हो गई थी। कैसर का पतन और प्रजातन्त्र शासन की स्थापना होने के बाद गृह-युद्ध आरम्भ हो गया था। जनता का बहुत बड़ा समुदाय सन्धि की शर्तों को स्वीकार करने और हरजाने की रक़म देने के विरुद्ध था। इसी समय नाज़ी-दल का जन्म हुआ। इस दल ने देश को विदेशी प्रभुत्व से मुक्त करने का उद्देश्य देशवासियों के सामने रक्खा। जर्मनी के वर्तमान प्रधान मन्त्री ही नहीं, डिक्टेटर एडोल्फ़ हिटलर ने ही इस दल को स्थापित किया था और वही दल के नेता हुए। हिटलर ने नाज़ी-दल का ऐसा आदर्श बनाया

८

और देश को फिर पूर्व-स्थिति में लाने का ऐसा कार्यक्रम देश के सामने रक्खा कि समस्त देशवासियों की सहानुभूति इसी दल की ओर हो गई। जर्मनी में प्रजातन्त्र के उदार सिद्धान्तों के मुक़ाबले में भी नाज़ी-दल कैसे सर्वप्रिय हो गया, इसके अनेक कारण हैं। प्रथम और सबसे ज़बरदस्त कारण यह है कि हिटलर सदृश दल के नेता थे। हिटलर महान देशभक्त, देश के लिए सर्वस्व-त्यागी, अत्यन्त प्रभावशाली वक्ता, कर्मवीर और पराक्रमी योद्धा है। माता-पिता-रहित, एक अनाथ बालक का जीवन व्यतीत कर, हिटलर ने अपने अध्यवसाय और परिश्रम से जो उन्नति की है, वह बिरलों को ही नसीब होती है। ख्याति से दूर रह कर शान्त रूप में हिटलर ऐसा कार्य करने वाला है कि पाँच-सात वर्ष पहिले इसका किसी को नाम तक नहीं ज्ञात था, किन्तु इस समय हिटलर का आतङ्क केवल जर्मनी ही पर नहीं, समस्त संसार पर छा गया है और यूरोप की बड़ी-बड़ी शक्तियाँ इससे भयभीत रहने लगी हैं। संक्षेप में हिटलर 'जर्मनी का मुसोलिनी' हो गया है और हिटलर को संसार एक बड़ी भारी आफ़त के रूप में देख रहा है। अतः ऐसे व्यक्ति को नेता पाकर नाज़ी-दल का इतना शीघ्र शक्तिमान न होना ही आश्चर्य की बात होती। दूसरा कारण नाज़ी-दल के शक्तिशाली होने का उसके आकर्षक सिद्धान्त और कार्यक्रम हैं। सन्धि की शर्तों को अत्यन्त अपमानजनक और मित्र-राष्ट्रों को हरजाना देना अन्यायपूर्ण तथा अनुचित घोषित करने का सर्वप्रथम साहस नाज़ी-दल ने किया था। देश की सरकार यद्यपि प्रजातन्त्रात्मक थी और उन दिनों प्रजातन्त्र में ही समस्त संसार के लिए आकर्षण था, किन्तु जनता सन्धि की शर्तों से इतना त्रस्त थी, आर्थिक शोषण के कारण वह ऐसी मृतप्राय हो रही थी कि प्रजातन्त्र सरकार के विरुद्ध वह केवल इसलिए थी कि सरकार हरजाने की रक़म क्यों अदा कर रही है। और चूँकि नाज़ी-दल हरजाने की रक़म देने का खुल्लमखुल्ला विरोध करता था, देशवासियों में सेनावाद का प्रचार करता था और देश की समस्त शक्ति देश को पुनर्संङ्गठित करने में ही लगा देने की आवाज़ बुलन्द कर रहा था, इसलिए प्रजातन्त्र दल की अपेक्षा भी जनता ने नाज़ी-दल को ही अपनाया। जनता के सभी फ़िरक़ों ने नाज़ी-दल के उद्देश्यों और कार्यक्रम में अपनी मुक्ति का मार्ग पाया, ग़रीब और अमीर श्रेणी के सभी लोगों ने उसे सहायता तथा सहयोग प्रदान किया। युवक-समुदाय तो नाज़ी-दल और हिटलर का भक्त है अथवा यों कहना चाहिए कि युवा जर्मनी ही नाज़ी-दल है। युवक समुदाय नाज़ी-दल का पूजक इसलिए है कि इसके सिद्धान्त राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत हैं। नाज़ी-दल फ़्रान्सीसियों और पोलैण्ड वालों के विरुद्ध है और इस बात में युवा जर्मनी के सिद्धान्त नाज़ियों से मिलते हैं। किसान नाज़ी-दल को इसलिए पसन्द करते हैं और उसमें सम्मिलित हैं, कि नाज़ी-दल पूँजीपति यहूदियों के विरुद्ध है और उनको मिटा देना चाहता है। पूँजीपतियों के नाश का अर्थ होगा निर्धन किसानों की मुक्ति, क्योंकि किसान पूँजीपतियों के क़र्ज़दार हैं, उनकी जायदादें महाजनों के पास रेहन हैं, अतः पूँजीपतियों के नष्ट हो जाने से किसानों के गले पूँजीपतियों के हाथों से छूट जायँगे। अनुदार और व्यापारी दल के लोग नाज़ियों से इसलिए सहयोग करते हैं कि वे साम्यवादियों और उस समय की साम्यवादी सरकार के विरोधी थे और नाज़ी-दल भी साम्यवादियों का सैद्धान्तिक रूप से विरोधी था। इन कारणों से नाज़ी-दल का प्रभाव समस्त देशवासियों पर अधिकाधिक बढ़ता गया।

नाज़ियों और साम्यवादियों में अन्तर क्या है?

जर्मनी में नाज़ी और साम्यवादी, दो सर्व-प्रधान दल हैं और ये दोनों एक-दूसरे के घोर शत्रु हैं। महायुद्ध की समाप्ति और क़ैसर के पतन के बाद जर्मनी में साम्यवादी दल का ही प्राधान्य था और शासन-सूत्र भी इसी दल के हाथों में था। परन्तु उसके दो-तीन वर्ष बाद ही जर्मनी में नाज़ी-दल का जन्म हुआ और थोड़े ही दिनों में वह साम्यवादी दल से अधिक लोकप्रिय हो गया। 'साम्यवाद' शब्द में ग़रीबों के लिए बड़ा आकर्षण है और ग़रीब लोग अपने अधिकार साम्यवादियों के हाथों में पूर्णरूपेण सुरक्षित समझते हैं, ऐसी दशा में निस्सन्देह यह आश्चर्य की बात है कि जर्मन प्रजा ने साम्यवादियों को क्यों ठुकरा दिया और देश का समस्त अधिकार नाज़ी-दल के हाथों में क्यों सौंप दिया। यद्यपि नाज़ी-दल

और साम्यवादी दल के सिद्धान्तों में बहुत सामञ्जस्य है। दोनों के प्रायः सभी सिद्धान्त मिलते हैं। नाज़ी-दल महायुद्ध के बाद मित्र-राष्ट्रों से की गई वार्सेलीज़ सन्धि को देश के लिए घातक समझता है, उसी प्रकार साम्यवादी दल भी समझता है। नाज़ी-दल जिस तरह क्षति-पूर्ति की रक़म अदा करने का विरोधी है, उसी प्रकार साम्यवादी दल भी उसका विरोधी है। नाज़ी-दल ग़रीबों और श्रमजीवियों का हितैषी और पक्षपाती है, उसी के सदृश साम्यवादी दल भी है। परन्तु एक अन्तर है और वह इतना ज़बरदस्त अन्तर है कि उसी के कारण साम्यवादी दल ठुकरा दिया गया और नाज़ी-दल की पूजा की गई। वह अन्तर यह है कि साम्यवादी दल अन्तर्राष्ट्रीय संस्था है। उसका आदर्श और सिद्धान्त सभी देश के लिए एक है, वह सार्वभौमिक हित की दृष्टि से प्रश्नों के पहलुओं देखता है, किन्तु नाज़ी-दल एक-देशीय संस्था है, वह केवल अपने ही देश के हित की दृष्टि से प्रश्नों को लेता है और उसका प्रत्येक कार्य एकमात्र देश-हित की दृष्टि से होता है। साम्यवादी सरकार को क्षति-पूर्ति की समस्या के सम्बन्ध में मित्र-राष्ट्रों से सहयोग भी करना पड़ा। इन्हीं कारणों से साम्यवादी दल पर से जनता का विश्वास उठ गया और उसने शासन की बागडोर नाज़ी-दल के हाथों में दे दी। जर्मन पार्लामेण्ट (जिसे रीशटाग कहते हैं) के गत मार्च मास के नए चुनाव में नाज़ी-दल की ज़बरदस्त प्रधानता रही और अधिकांश संख्या में चुने जाने के कारण शासन-कार्य नाज़ियों के हाथों में ही सौंपा गया और नाज़ी-दल के संस्थापक तथा उसके नेता हिटलर प्रधान मन्त्री बनाए गए। प्रधान मन्त्री और चान्सलर ही नहीं, हिटलर को डिक्टेटरी का अधिकार मिल गया। अब ४ वर्षों तक रीशटाग का चुनाव नहीं होगा और हिटलर की सरकार एकतन्त्र रूप से देश का शासन करेगी।

सैनिक और आर्थिक सङ्गठन

हिटलर अब शासनारूढ़ हो गए हैं और अब तो देश को पुनर्सङ्गठित करने के लिए वह जो चाहेंगे, करेंगे। उनका ध्यान अधिकतर आर्थिक और सैनिक सङ्गठन करने का है। सैनिक सङ्गठन तो वह पिछले कई वर्षों से, जबकि शासन में उनका कोई हाथ नहीं था, कर रहे हैं। उन्होंने व्यक्तिगत रूप से और सरकार पर भी दबाव डलवा कर उसके द्वारा देश में सैनिकवाद को पुनर्जाग्रत किया। यह इन्हीं का प्रताप है कि जर्मनी में इस समय प्रायः उतनी ही सेना है, जितनी महायुद्ध आरम्भ होने के पहिले अथवा सन् १९१३ में थी। सेना यद्यपि उतनी ही है, किन्तु ख़र्च उस पर उस समय की अपेक्षा अधिक किया जाता है। इस समय एक तो शाही सेना है और उसके अतिरिक्त नाज़ी-दल की सेना अलग है। नाज़ी युवकों की एक सुरक्षित सेना है। इन सैनिकों की शिक्षा के लिए अनेक कॉलेज हैं और उन्हें बाक़ायदा शिक्षा दी जाती है। इस सेना का नाम हिटलर ने 'स्टेहेलहेम' रक्खा है। इसकी कैम्पिङ्ग प्रति वर्ष विभिन्न नगरों में हुआ करती है। नए-नए शस्त्रास्त्र तैयार किए गए हैं और पुराने हथियार अलग सुरक्षित रूप से रक्खे हैं। शाही सेना की भी वृद्धि की गई है। सन् १९१३ में शाही सेना ८ लाख सैनिकों की थी, ४,००० मैशीनगनें थीं, ६७ मिलियन मार्क (जर्मन सिक्का) उन पर ख़र्च होता था, किन्तु सन् १९३० में शाही सेना में १ लाख युवक सैनिक और २,३३६ मैशीनगनें थीं; किन्तु इन पर ख़र्च ७८'९ मिलियन मार्क (अर्थात् १९१३ की अपेक्षा अधिक) ख़र्च किया गया। युवकों की सैनिक उन्नति में व्यायाम के नाम पर बहुत अधिक सम्पत्ति व्यय की गई। बजट की रक़मों को देखने से ज्ञात होता है कि सबसे अधिक ख़र्च फ़ौजी तैयारी में किया गया है। इस समय जर्मनी में १७ वर्ष से लेकर ४५ वर्ष तक के युवकों की संख्या १,२०,००,००० है जिनमें प्रायः ४५,००,००० पुरुष फ़ौजी शिक्षा से पूर्ण हैं। इसी प्रकार ३२ वर्ष की अवस्था के अन्दर के पुरुष १० लाख, ३३ से ३८ वर्ष की अवस्था के १७ लाख और ३८ से ४५ वर्ष की अवस्था के १८ लाख पुरुष शिक्षित हैं। सरकारी सेना के अतिरिक्त अन्य संस्थाओं द्वारा विभिन्न नाम से सेनाएँ तैयार की गई हैं। इस समय ६ लाख युवक रिज़र्व फ़ोर्स में हैं और इनके साथ ही ३२ साल से नीचे के युवकों की १० लाख की सेना तैयार है। इन सेनाओं के लिए बैरकें तैयार हैं। जिनमें उतनी ही सेना रह सकती है, जितनी सन् १९१४ में अर्थात् महायुद्ध होने के पहले के दिनों रहती थी।

यह तो हुआ सैनिक सङ्गठन, जो कि हो चुका है और भविष्य में जो होगा उसकी बात ही अलग है। इतने सैनिक सङ्गठन के बाद अब हिटलर ने आर्थिक सङ्गठन का कार्यक्रम सामने रक्खा है। आर्थिक सङ्गठन में उनकी स्कीम यह है कि देश के व्यवसाय और बैंकों पर सरकारी अधिकार रहे और वैयक्तिक संस्थाएँ सरकार के क़ब्ज़े में कर ली जायँ। जर्मनी खाद्य-पदार्थों तथा अन्य आवश्यकता की वस्तुओं में दूसरे देशों का मुहताज न रहे, इस उद्देश्य से देश की आन्तरिक उपज को बढ़ाने और उसकी खपत करने की शक्ति उत्पन्न करने का प्रयत्न होगा। देश की आयात और निर्यात दोनों आर्थिक दशा न सुधरने तक के लिए बन्द कर दी जायँगी और इस प्रकार देश का रुपया देश में ही रखने का प्रयत्न किया जायगा। देश की बेकारी को दूर करने के साथ ही अन्न की उपज को बढ़ाने के लिए कृषि का विस्तार किया जायगा। २ करोड़ एकड़ भूमि को सींच कर खेती कराई जायगी और इस का में राज्यकोष से १ अरब ५० करोड़ डोल ख़र्च किए जायगे। इस सब उपज का प्रबन्ध सरकार की ओर से किया जायगा। किसानों की उदर-पूर्ति के लिए प्रत्येक किसान को आधी एकड़ भू म बिना क़ मत और बिना शुल्क के दी जायगी। उसी के द्वारा वह अपने कुटुम्ब के भोजन के लिए नाज उत्पन्न करेगा। इस कार्यक्रम के अनुसार ४ लाख एकड़ भूमि प्रति वर्ष के हिसाब से जोती जायगी और प्रत्येक वर्ष १० लाख मनुष्यों की रोटी और धन्धे का प्रश्न हल किया जायगा। खानें, कोयला, धातु आदि की उपज के लिए रुपए लोगों को दिए जायँगे, किन्तु शर्त यह होगी कि ये उपज लागत मात्र में बेचनी होंगी, जिससे कि इस व्यवसाय को करने वाले मुनाफ़ा कम लें और अधिक श्रमजीवियों को काम दे सकें।

जर्मनी पर विदेशों का क़र्ज़ भी बहुत है। पिछली सरकारों ने २२ अरब मार्क क़र्ज़ ले रक्खे हैं, जिसका केवल ब्याज प्रति वर्ष ६ अरब ६० करोड़ मार्क देना पड़ता है। अतः यह क़र्ज़ लम्बी मीयादों में बदल दिए जायँगे और उनका ब्याज भी कम कर दिया जायगा। ब्याज उतना ही दिया जायगा, जितना उन देशों में वर्तमान समय में अन्य लोगों को दिया जाता है। विदेशी व्यवसाय और बैङ्क, जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है, सरकार के अधिकार में कर लिए जायँगे और जो व्यक्ति इस नियम का उल्लङ्घन कर चोरी से व्यक्तिगत रूप से व्यवसाय करेगा, उसे फाँसी की सज़ा दी जायगी।

इस प्रकार जर्मनी पुनर्सङ्गठन के मार्ग पर बहुत कुछ आगे बढ़ गया है और जो रास्ता बाक़ी है, उसे हिटलर सदृश नेता के नेतृत्व में तय कर लेना उसके लिए कठिन नहीं है। हिटलर को ४ वर्ष के लिए शासन का अधिकार दे दिया गया है। इस अवधि में वह जर्मनी को पूर्ण शक्तिशाली बनाने के लिए एकतन्त्र रूप से शासन करेंगे। उनका दावा है कि इन चार वर्षों के अन्दर वह जर्मनी को वह समस्त शक्ति प्राप्त करा देंगे, जो उसने महायुद्ध के बाद पिछले चौदह वर्षों में खो दी है। हिटलर सदृश देशभक्त, राजनीतिज्ञ, कर्मण्य और सुदक्ष शासक अपनी प्रतिज्ञा की पूर्ति कर जर्मनी को पहिले की अपेक्षा भी महाशक्तिशाली बना लेगा, इसमें सन्देह ही क्या है और इसी बात का विश्वास कर जर्मन जनता ने हिटलर को डिक्टेटरी प्रदान की है। मुसोलिनी के इटली ने थोड़े ही समय में जो कुछ कर दिखाया है, उसे देखते हुए हिटलर का जर्मनी क्या कर लेगा, इसका अनुमान सहज ही किया जा सकता है। पुनर्सङ्गठित और नूतन शक्ति-प्राप्त जर्मनी किस रूप में संसार के समक्ष आएगा और विश्व-शान्ति पर उसका क्या प्रभाव पड़ेगा, इसे समझने के लिए बृहस्पति की बुद्धि की आवश्यकता नहीं है। शक्ति-सम्पन्न जर्मन क्या कर सकते हैं और सैनिक सङ्गठन का क्या महत्व है, इसका सबक़ संसार के अन्य राष्ट्रों को गत यूरोपीय महाभारत में मिल गया था। उसी समय से यूरोप के छोटे-बड़े सभी देशों ने अपना सैनिक बल बढ़ाना आरम्भ कर दिया था। फ़्रान्स, इटली, पोलैण्ड, इङ्गलैण्ड, रूस, अमेरिका, जापान आदि सभी प्रथम श्रेणी के राष्ट्रों ने गत पन्द्रह वर्षों के अन्दर अपना-अपना सैन्य-बल ख़ूब बढ़ाया। इन राष्ट्रों की यह शक्ति-पूजा देख कर लोग भयभीत हो गए। भय यह सताने लगा कि यह तो दूसरे महाभारत की तैयारी है और इस बार का महाभारत अतीव भयङ्कर होगा। निश्शस्त्रीकरण और विश्व-शान्ति की आवाज़ बुलन्द की गई और उपर्युक्त राष्ट्र भी इस प्रयत्न में सम्मिलित हुए। संसार के बड़े-बड़े राष्ट्रों की कई कॉन्फ़्रेन्स इस सम्बन्ध में हुईं, किन्तु सब प्रयत्न

निरर्थक हुए। कहने को यह प्रयत्न अब भी हो रहा है। इटली के उद्धारक और सर्वस्व सिगनर मुसोलिनी ने विश्व-शान्ति की एक नई स्कीम तैयार की है। इस स्कीम में मुसोलिनी ने एक बात यह भी रक्खी है कि विश्व-शान्ति के प्रबल बाधक जर्मनी को सन्तुष्ट करने के लिए यूरोपीय महाभारत के बाद की गई वार्सेलीज़ की सन्धि का फिर से संशोधन किया जाय। निस्सन्देह संसार की अशान्ति की जड़ वार्सेलीज़ की सन्धि की शर्तें हैं और यदि उनमें संशोधन कर जर्मनी को सन्तुष्ट कर दिया जाय, तो यूरोप में शान्ति स्थापित हो सकती है और यूरोप की शान्ति का अर्थ है समस्त संसार की शान्ति। परन्तु फ़्रान्स मुसोलिनी के इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करता और वह नहीं चाहता कि जर्मनी फिर शक्तिशाली हो जाय। यद्यपि इङ्गलैण्ड, जर्मनी, इटली आदि इस प्रस्ताव के पक्ष में हैं और फ़्रान्स ने भी इसे निश्चित रूप से अस्वीकार नहीं कर दिया है, किन्तु फ़्रान्स का उसके पक्ष में होना अत्यन्त कठिन है और ऐसी दशा में विश्व-शान्ति का यह प्रयत्न भी सफल होता नहीं दिखाई देता।

परन्तु इस समय संसार का हित और कल्याण इसी बात की अपेक्षा करता है कि शक्तिशाली राष्ट्र युद्ध की प्रवृत्ति त्याग दें और सब की सैनिक शक्तियाँ घटा दी जायँ। यदि यह नहीं हुआ, तो इस बार का महाभारत अत्यन्त भीषण होगा। गत वर्षों में ऐसे-ऐसे भयङ्कर शस्त्रास्त्र तैयार किए गए हैं और ऐसी-ऐसी ज़हरीली गैसें तैयार हुई हैं कि मिनटों में बड़े-बड़े नगर के नगर धूल में मिलाए जा सकते हैं। इस मर्तबा युद्ध से बचे रहने का पूर्ण प्रयत्न करने वाले देश भी नर-संहार से नहीं बच सकेंगे। परन्तु युद्ध का न छिड़ना तभी सम्भव है, जब युद्ध के विस्फोटक फ़्रान्स और जर्मनी उसके लिए प्रयत्नशील हों। मगर वाक़या यह है कि ये दोनों परस्पर घोर शत्रु राष्ट्र-युद्ध की तैयारी में संलग्न हैं। जर्मनी की तैयारी देख कर तो मस्तिष्क घूम जाता है। वहाँ सर्व-साधारण में युद्ध और वार्सेलीज़ की सन्धि द्वारा जर्मनी पर फ़्रान्स के अत्याचारों के विरुद्ध भावनाएँ भरने के लिए नाना प्रकार के प्रयत्न हो रहे हैं। फ़्रान्स पर जर्मनी के प्राचीन विजय के चित्र सिनेमा द्वारा जनता को दिखलाए जाते हैं, ब्राडकास्टिङ्ग द्वारा युद्ध और राष्ट्र की रक्षा के लिए जनता में भाषण किए जाते हैं, जिन्हें देख कर और सुन कर जनता जोश खाती है और सेना में वह अधिकाधिक संख्या में भरती होती है। समाचार-पत्रों में लेखों द्वारा जनता को युद्ध के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। इन प्रचारों का पूरा प्रभाव पड़ रहा है। इस सबका अर्थ यह है कि हिटलर के प्रयत्नों से जर्मनी सङ्गठित होने पर सबसे पहिले फ़्रान्स द्वारा अधिकृत अपने प्रदेशों को लौटाने के लिए उठ खड़ा होगा और दूसरे शब्दों में इसका अ ॑ है संसार-व्यापी महासंग्राम का आरम्भ। अतः जर्मनी का पुनर्सङ्गठन विश्व-शान्ति के लिए महान ख़तरा है और यदि जर्मनी के साथ न्याय न किया गया, तो इसका प्रतिफल केवल यूरोप को ही नहीं, वरन् समस्त संसार को भुगतना पड़ेगा।

बाग़

[श्री० मदनमोहन मिहिर]

कुसुमित कहीं कुसुम कल कोमल,
सघन कहीं काँटों के झाड़।
कहीं हरे तरु लदे फलों से,
खड़े कहीं सूखे झङ्खाड़॥

शीतल सुरभित कभी समीरण,
और कभी हा कठिन तुषार।
माली! तेरे सुघड़ बाग़ में,
कभी बसन्त कभी पतझाड़॥

सन्तति-निग्रह

[डॉक्टर धनीराम प्रेम]

कई वर्षों से सारे संसार में सन्तति-निग्रह (Birth Control) का आन्दोलन ज़ोर-शोर से चल रहा है। धीरे-धीरे अधिकाधिक व्यक्ति इसकी उपयोगिता में विश्वास करने लगे हैं। कई वर्ष पूर्व मेरे अनेक मित्र, जिनके विवाह कुछ समय पूर्व ही हुए थे, इस विचार की खिल्ली उड़ाया करते थे। आज जीवन को वे उतना सरल नहीं समझते। आज वे कई बच्चों के बाप हैं और समझते हैं कि इतनी बड़ी गृहस्थी का भार क्या होता है। इसीलिए आज वे मुझसे सन्तति-निग्रह के साधनों के विषय में लिखा-पढ़ी करते हैं। यही दशा अन्य अनेक नवयुवकों तथा अधेड़ सज्जनों की है।

विदेशों में तो इसका प्रचार दिन पर दिन बढ़ रहा है। कुछ वर्ष पूर्व इस विषय को अधार्मिक बता कर इसका प्रयोग अपराध माना जाता था। इसके प्रचारकों तथा लेखकों के ऊपर मुक़दमे चलते थे। परन्तु अब वायु का प्रवाह बदला है। लगभग दो वर्ष पूर्व इङ्गलैण्ड में पादरियों का एक सम्मेलन हुआ था, जिसमें इस विषय की भी चर्चा हुई थी। पादरी डीन इङ्ग जैसे क्रान्तिकारी धर्म-प्रचारक के भाषणों के उपरान्त इस सम्मेलन ने कुछ अवसरों पर सन्तति-निग्रह के उपायों को काम में लाने की अनुमति दे दी थी। इङ्गलैण्ड की सरकार ने भी उसी वर्ष प्रत्येक 'काउण्टी' के हेल्थ-ऑफ़ीसर को सन्तति-निग्रह की क्लिनिक (Clinics) खोलने की प्रेरणा की थी।

इङ्गलैण्ड में सबसे पहले इस कार्य को हाथ में लेने का श्रेय श्रीमती डॉ० मारी स्टोप्स तथा उनके पति को है। प्रारम्भ में डॉ० स्टोप्स के विचारों का बड़ा विरोध हुआ। चिकित्सा-शास्त्र के डॉक्टर, पादरी तथा सरकार सभी उनके विरुद्ध थे। उन पर कई मुक़दमे भी चलाए गए। परन्तु वे अपने विचारों और कार्य में दृढ़ रहीं और लन्दन में दो वर्ष पूर्व जब मैंने एक सभा में उनका भाषण सुना तो मुझे यह जान कर आश्चर्य हुआ कि उस सभा के सभापति थे लन्दन के एक सुप्रसिद्ध चिकित्सक और उसमें भाग लेने के लिए अनेक सम्भ्रान्त स्त्री-पुरुष आए हुए थे।

डॉ० मारी स्टोप्स ने लन्दन में एक बड़ी क्लिनिक की स्थापना की है, जहाँ स्त्रियों को निःशुल्क इस विषय की शिक्षा दी जाती है। इसके अतिरिक्त क्लिनिक की ओर से प्रचारक बाहर के भागों में भी जा-जाकर जनता को सहायता देते हैं। इस क्लिनिक की ओर से मार्च १९३० तक लगभग १०,००० स्त्रियों को शिक्षा-सहायता दी गई थी। केन्द्रस्थ क्लिनिक का कार्य मैंने स्वयं जाकर भली-भाँति देखा था और वहाँ की कार्य-प्रणाली वास्तव में अनुकरणीय थी। यह ध्यान देने योग्य बात है कि इन दस सहस्र स्त्रियों में से पाँच केवल ऐसी थीं, जिनका विवाह नहीं हुआ था और जो गर्भ धारण कर चुकी थीं। दस सहस्र में यह संख्या नगण्य है। दूसरी ध्यान देने योग्य बात यह है कि इनमें से अधिक संख्या उनकी थी, जो क्लिनिक में आने के पूर्व दो या तीन बालकों की माताएँ थीं। इस क्रियात्मक प्रणाली ने अनेक प्रसिद्ध व्यक्तियों को इसका हामी बना दिया है। इस सम्बन्ध में डॉ० स्टोप्स ने एक बड़ी मनोरञ्जक घटना का वर्णन किया है। सन् १९२१ में सन्त मेरी अस्पताल की प्रोफ़ेसर मैकिलरॉय ने एक भाषण दिया था, जिसमें उन्होंने सन्तति-निग्रह के साधनों की और विशेषकर 'रबर-कैप' की बड़ी निन्दा की। इस निन्दा से प्रभावित होकर वहाँ आए हुए एक पादरी महोदय ने एक पुस्तक लिख डाली, जिसमें डॉ० स्टोप्स की ख़ूब ख़बर

की। डॉ० स्टोप्स ने इस पर मानहानि का मुक़दमा चलाया, जिसमें फिर प्रोफ़ेसर मैकिलरॉय ने अपनी सम्मति बताई।

कुछ दिनों बाद डॉ० स्टोप्स ने सुना कि प्रोफ़ेसर मैकिलरॉय सन्तति-निग्रह की हामी होकर 'रबर कैप' का प्रयोग स्त्रियों को बताती थीं। डॉ० स्टोप्स ने विश्वास करने के लिए, एक निर्धन स्त्री का वेश धारण किया और सन्त मेरी अस्पताल पहुँच गईं। कुछ देर बाद हँसती हुई वे बाहर आईं, क्योंकि प्रोफ़ेसर मैकिलरॉय ने उन्हें स्वयं 'रबर कैप' पहनाया था। इससे विदित होता है कि सन्तति-निग्रह के सिद्धान्त का विरोध किस प्रकार घट रहा है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारतवर्ष जैसे देश के लिए इसकी परम आवश्यकता है। सन्तान का होना बुरा नहीं, परन्तु एक तो सन्तान स्वस्थ तथा राष्ट्र के लिए उपयोगी होनी चाहिए और दूसरे उसके द्वारा माता-पिता के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए। अधिक सन्तान पैदा करने से ये दोनों बुराइयाँ पैदा होती हैं। जितनी ही अधिक सन्तान होंगी, उतनी ही कमज़ोर और रोगी होंगी और उतनी ही कम चिन्ता, देख-भाल और शिक्षा का प्रबन्ध माता-पिता उनके लिए कर सकेंगे। हम सब जानते हैं कि भारत-वासियों की औसत आय प्रतिमास बहुत कम है। जिनकी आय १००) मासिक है, उनके लिए भी दो-तीन बालकों की शिक्षा-दीक्षा तथा लालन-पालन का भार सँभालना असम्भव हो जाता है। सम्मिलित कुटुम्ब की प्रथा तथा अन्य सामाजिक कुरीतियाँ जीवन को और भी कठिन बना देती हैं।

इसके अतिरिक्त हमें माता का भी विचार करना है। जिस प्रकार के कुटुम्बों का ऊपर वर्णन किया गया है, उनमें माता को यथेष्ट पौष्टिक भोजन आदि का मिलना कठिन होता है, फिर निर्धन किसान और मज़दूरों के घरों का तो कहना ही क्या? बार-बार सन्तान उत्पन्न करने से वे नितान्त शिथिल और जीवन-रहित हो जाती हैं। अपने पति की इच्छा पूरी करते हुए बार-बार गर्भ धारण करना मृत्यु का आवाहन करना है। पति की आज्ञा का पालन न करना भी सम्भव नहीं। ऐसी स्त्रियाँ स्वयं तो मृत्यु का शिकार होती ही हैं, साथ ही ऐसे बालकों को जन्म देती हैं, जो शीघ्र ही काल के गाल में चले जाते हैं। इसी कारण शिशुओं की मृत्यु-संख्या इतनी बढ़ी हुई है। बम्बई में यह संख्या २८९ प्रति-सहस्र, कलकत्ता में २०६, कानपुर में ४६१ और पूना में ८२७ है। सम्पूर्ण भारत का औसत १९० प्रति सहस्र होता है। इन सब बातों को रोकने का उपाय सन्तति-निग्रह ही है। इसी के द्वारा ग़रीब देश अपनी बढ़ती हुई जन-संख्या को कम कर सकते हैं और अपने बालकों को स्वस्थ, सुन्दर तथा सुशिक्षित बना सकते हैं। ये केवल कोरी बातें नहीं हैं। जिन देशों में इसका प्रचार है, वहाँ के अङ्कों से इस बात का प्रमाण मिलता है। हॉलैण्ड में सन्तति-निग्रह संस्थाओं का जन्म १८८५ में हुआ था। १९०१ में मृत्यु-संख्या १७ थी, सन् १९११ में यह संख्या १३·५० रह गई।

सन्तति-निग्रह की आवश्यकता दो अन्य अवस्थाओं में भी होती है। जो माता यक्ष्मा, हृद्रोग आदि रोगों से पीड़ित हैं, उनके जीवन सन्तानोत्पत्ति से सदा ख़तरे में रहते हैं। जो व्यक्ति मानसिक रोगों से पीड़ित हैं, उन्हें सन्तान कभी भी उत्पन्न न करनी चाहिए, क्योंकि उनकी सन्तान को भी वही रोग लगेगा और इस प्रकार वे राष्ट्र के ऊपर एक और भार बढ़ाएँगे। इस प्रकार के व्यक्तियों को सन्तानोत्पत्ति से सदा बचाना चाहिए।

सन्तति-निग्रह के सिद्धान्तों का विरोध लगभग सभी देशों में अब भी किया जाता है। फ्रान्स, इटली तथा अमेरिका के कुछ राज्यों में अब भी सन्तति-निग्रह के सिद्धान्तों का प्रचार करना तथा उसके साधनों का क्रय-विक्रय क़ानूनन् नाजायज़ है।

सन्तति-निग्रह के विरोधी सबसे पहले धर्म की दुहाई देते हैं। वे इसे अस्वाभाविक तथा अधार्मिक कहते हैं। भारतवर्ष में तो लोग कह देते हैं कि 'जितनी सन्तान भाग्य में लिखी है, उतनी ही होगी, चाहे कितना ही प्रयत्न उसे रोकने का करें।' विदेशों में रोमन कैथलिक धर्म के अनुयायी अधिकांश में इसके विरोधी हैं। बात यह है कि इस प्रकार के व्यक्ति कभी भी किसी सुधार के पक्षपाती नहीं होते। प्रारम्भ में वे प्रत्येक नई बात को अस्वाभाविक तथा अधार्मिक कह कर उसका विरोध करते हैं।

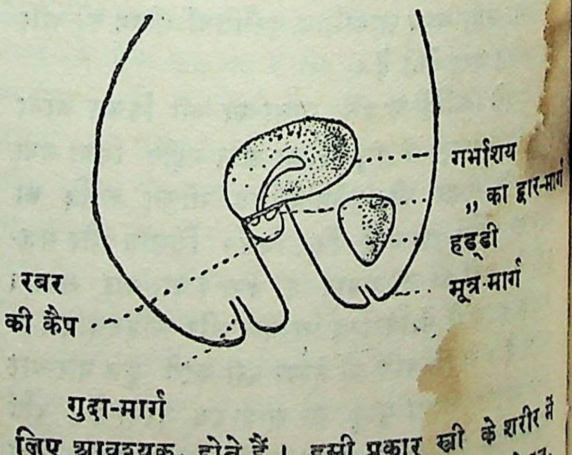
दूसरी आपत्ति यह है कि इस प्रकार उस देश की जन-संख्या घटेगी, जहाँ इसका प्रचार है, और अन्य देश उस पर आक्रमण करके पराजित कर देंगे। ख़ासकर यूरोप और अमेरिका में इस बात का डर दिखाया जाता है। विरोधी जन वहाँ कहते हैं—'सन्तति-निग्रह का प्रचार कालों और ग़ैर-ईसाई मत वालों में बहुत कम है, इसलिए उनकी संख्या बढ़ेगी। गोरे ईसाई इसके प्रचार के कारण संख्या में कम हो जायँगे और इस प्रकार एक दिन उन्हें काले ग़ैर-ईसाइयों की दासता स्वीकार करनी पड़ेगी।' पाठक समझ सकते हैं कि ये दलीलें कितनी निस्सार और थोथी हैं।

एक वास्तविक और आवश्यक आपत्ति यह है कि यदि अप्राकृतिक उपायों का प्रचार हो जायगा, तो संसार में अवैध विषय-भोग का बाज़ार गर्म हो जायगा। इसमें कोई सन्देह नहीं। कुछ व्यक्ति इस प्रकार का कृत्य करने से इसलिए डरते हैं कि उनके पाप का प्रत्यक्ष फल समाज के सामने आ जायगा। जब उन्हें यह शङ्का न रहेगी, तो इन साधनों द्वारा वे पाप-कर्म करने के लिए अधिक आकर्षित होंगे। यह ठीक होते हुए भी, दो बातें हमें न भूल जाना चाहिए। एक तो यह है कि बिना इन साधनों के प्रचार के भी संसार में काफ़ी व्यभिचार होता है। उसके फल को अन्य साधनों द्वारा नष्ट करने का प्रयत्न किया जाता है। भ्रूण-हत्या इस प्रकार के साधनों में अधिक भयङ्कर है, परन्तु उसका बाज़ार चारों ओर गर्म है। ऐसी दशा में यह सम्भव नहीं कि इस प्रकार के कर्मों में एक साथ बाढ़ आ जाय। यदि कुछ वृद्धि होगी भी तो वह इतनी हानिकर न होगी, जितना सन्तति-निग्रह की प्रथा का अभाव है। उसके द्वारा हमें जो लाभ होंगे, उनके सामने वह हानि कुछ भी न होगी। प्रत्येक सिद्धान्त के मानने से हानि और लाभ दोनों की सम्भावना होती है। हमें उसी सिद्धान्त को अपनाना चाहिए, जिससे लाभ अधिक हो और हानि कम।

सन्तति-निग्रह के साधन अनेक हैं। उनमें से सर्व-श्रेष्ठ और आदर्श है 'इन्द्रिय-निग्रह।' जो स्त्री-पुरुष इस अमोघ अस्त्र का प्रयोग सरलता से कर सकते हैं, उनके लिए कोई कठिनता नहीं। परन्तु आदर्श, आख़िर एक आदर्श ही है और उसका पालन करना सबके लिए सम्भव नहीं है। जो इस आदर्श को निभा सकते हैं, उनके लिए तो वास्तव में सन्तति-निग्रह का प्रश्न कुछ भी अर्थ नहीं रखता, क्योंकि वे कभी अधिक सन्तान उत्पन्न करेंगे ही नहीं।

इसकी आवश्यकता तो उन्हीं के लिए है, जो ऐसा नहीं कर सकते। और ऐसे व्यक्तियों की संख्या काफ़ी बड़ी है। जो यह कहते हैं कि ब्रह्मचर्य और इन्द्रिय-दमन प्रत्येक के लिए सम्भव है, वे शायद जन-समाज के मनो-विज्ञान को नहीं समझते, या उनमें सम्भव से अधिक विश्वास करते हैं। इस बात के सत्य का एक साधारण प्रमाण यह है। आजकल अनेक व्यक्ति ऐसे हैं, जो अधिक सन्तान उत्पन्न नहीं करना चाहते, साथ ही वे कृत्रिम उपायों के विरोधी हैं। वे इन्द्रिय-दमन के सिद्धान्त का अनुसरण कर सकते हैं, परन्तु सभी सन्तान उत्पन्न करते जा रहे हैं। इन बातों का कहना बहुत सरल है, करना कठिन है। मनुष्य-स्वभाव को परिवर्तित किया जा सकता है; परन्तु उसको निर्मूल नहीं किया जा सकता। ऐसे व्यक्तियों को अपना अर्थ पूरा करने के लिए कृत्रिम उपायों की सहायता लेनी पड़ती है। कुछ आवश्यक कृत्रिम उपायों का यहाँ वर्णन किया जाता है। परन्तु इसके पूर्व दो शब्द सम्भोग तथा उसके फल के विषय में कह देना उचित होगा।

पुरुष का वीर्य अण्डकोषों में स्थित दो गाँठों (Testicles) में बनता है। वहाँ से वह वीर्य-नलिका द्वारा मूत्रेन्द्रिय में होता हुआ बाहर निकल आता है। उसमें लाखों छोटे-छोटे वीर्य-कीटाणु (Spermatozoa) होते हैं। ये कीटाणु पुरुष के वीर्य में सन्तानोत्पत्ति के



लिए आवश्यक होते हैं। इसी प्रकार स्त्री के शरीर में दो रजपिण्ड होते हैं। इन रजपिण्डों में स्त्री के रज-



सद्यःस्नाता

फ़ाइन आर्ट प्रिंटिङ्ग कॉटेज,
इलाहाबाद

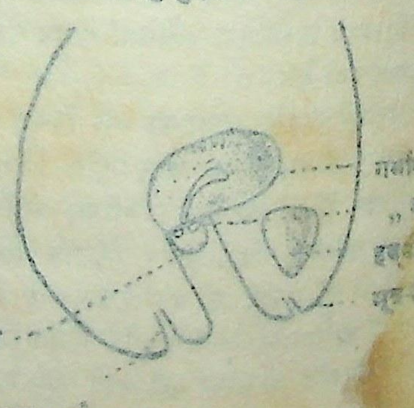
दूसरी आपत्ति यह है कि इस प्रकार उस देश की जन-संख्या घटेगी, जहाँ इसका प्रचार है, और अन्य देश उस पर आक्रमण करके पराजित कर देंगे। ख़ासकर यूरोप और अमेरिका में इस बात का डर दिखाया जाता है। विरोधी जन वहाँ कहते हैं—'सन्तति-निग्रह का प्रचार कालों और ग़ैर-ईसाई मत वालों में बहुत कम है, इसलिए उनकी संख्या बढ़ेगी। गोरे ईसाई इसके प्रचार के कारण संख्या में कम हो जायँगे और इस प्रकार एक दिन उन्हें काले ग़ैर-ईसाइयों की दासता स्वीकार करनी पड़ेगी।' पाठक समझ सकते हैं कि ये दलीलें कितनी निस्सार और थोथी हैं।

एक वास्तविक और [illegible] आपत्ति यह है कि यदि अप्राकृतिक उपायों का प्रचार हो जायगा, तो संसार में अवैध [illegible] का [illegible]। इसमें कोई सन्देह नहीं। [illegible] रहेगी, [illegible] अधिक [illegible] हमें न [illegible] इन साधनों के [illegible] होता है। [illegible] का प्रयत्न किया [illegible] [illegible]

सन्तति-निग्रह के [illegible] श्रेष्ठ और आदर्श है 'इन्द्रिय-निग्रह'। [illegible] अमोघ अस्त्र का प्रयोग सफलता से कर सकते हैं, उनके लिए कोई कठिनता नहीं। परन्तु आदर्श, आख़िर एक आदर्श ही है और उसका पालन करना सबके लिए सम्भव नहीं है। जो इस आदर्श को निभा सकते हैं, उनके लिए तो वास्तव में सन्तति-निग्रह का प्रश्न कुछ भी अर्थ नहीं रखता, क्योंकि वे कभी अधिक सन्तान उत्पन्न करेंगे ही नहीं।

इसकी आवश्यकता तो उन्हीं के लिए है, जो ऐसा नहीं कर सकते। और ऐसे व्यक्तियों की संख्या काफ़ी बड़ी है। जो यह कहते हैं कि ब्रह्मचर्य और इन्द्रिय-दमन प्रत्येक के लिए सम्भव है, वे शायद जन-समाज के मनो-विज्ञान को नहीं समझते, या उनमें सम्भव से अधिक विश्वास करते हैं। इस बात के सत्य का एक साधारण प्रमाण यह है। आजकल अनेक व्यक्ति ऐसे हैं, जो अधिक सन्तान उत्पन्न नहीं करना चाहते, साथ ही वे कृत्रिम उपायों के विरोधी हैं। वे इन्द्रिय-दमन के सिद्धान्त का अनुसरण कर सकते हैं, परन्तु सभी सन्तान उत्पन्न करते जा रहे हैं। इन बातों का कहना बहुत सरल है, [illegible] कठिन है। मनुष्य-स्वभाव को परिवर्तित किया जा सकता है; परन्तु उसको निर्मूल नहीं किया जा सकता। ऐसे व्यक्तियों को अपना अर्थ पूरा करने के लिए कृत्रिम उपायों की सहायता लेनी पड़ती है। कुछ आवश्यक कृत्रिम उपायों का यहाँ वर्णन किया जाता है। परन्तु इसके पूर्व दो शब्द सम्भोग तथा उसके फल के विषय में कह देना उचित होगा।

पुरुष का वीर्य अण्डकोषों में स्थित दो [illegible] (Testicles) में बनता है; वहाँ से वह वीर्य-[illegible] द्वारा मूत्रेन्द्रिय में होता हुआ बाहर निकल [illegible] उसमें लाखों छोटे-छोटे वीर्य-कीटाणु (Sperma[illegible]) होते हैं। ये कीटाणु पुरुष के वीर्य में सन्तानो[illegible]



लिए आवश्यक होते हैं। इसी प्रकार स्त्री के [illegible] भी रजबिन्दु होते हैं। इन रजबिन्दुओं में [illegible]



सद्यःस्नाता

पण्डित निरञ्जनलाल जी भार्गव
के सौजन्य से प्राप्त

फ़ाइन आर्ट प्रिंटिङ्ग कॉटेज,
इलाहाबाद

कीटाणुओं का जन्म होता है। स्त्री की गुप्तेन्द्रिय का कुछ ज्ञान साथ के चित्र से हो जायगा। बाहर गुह्य-मार्ग के आगे स्त्री की बाह्य इन्द्रिय होती है। इसमें दो मार्ग होते हैं। ऊपर का मूत्र-मार्ग कहलाता है और नीचे का योनि मार्ग (Vagina)। योनि मार्ग के भीतर गर्भाशय है, जिसका द्वार योनि मार्ग में खुलता है। गर्भाशय के ऊपरी भाग में से दो नलियाँ निकलती हैं। उन्हें रज-नलियाँ (Fallopian Tubes) कहते हैं। जिस समय स्त्री-पुरुष का संयोग होता है, उस समय स्त्री के योनि मार्ग में पुरुष का वीर्य स्खलित होता है। वीर्य के कीटाणु गर्भाशय के द्वार मार्ग में होकर गर्भाशय में पहुँचते हैं। वहाँ से वे रज-नलिका में पहुँचते हैं। वहाँ रज-कीटाणु पहले से ही विद्यमान होते हैं। दोनों के सम्मेलन का फल गर्भस्थिति होती है। इसे रोकने के लिए जो उपाय भी काम में लाया जाय, उसमें यह शक्ति हो कि वीर्य-कीटाणु गर्भाशय के भीतर न पहुँच सकें। यह तभी हो सकता है जब या तो कीटाणुओं को नष्ट कर दिया जाय, या उन्हें किसी प्रकार गर्भाशय में न जाने दिया जाय।

खाने की औषधियाँ

आयुर्वेद-शास्त्र के कई ग्रन्थों में लिखा है कि अमुक औषधि खा लेने पर गर्भ नहीं रह सकता। आजकल समाचार-पत्रों में भी अनेक विज्ञापन इसी प्रकार की औषधियों के विषय में छपते हैं। मैं पाठकों के सामने यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि कोई भी ऐसी औषधि नहीं है, जिसके खाने से स्त्रियों को गर्भ-धारण से मुक्ति मिल सके। अनेक इस प्रकार की औषधियों की वैज्ञानिक रीति से खोज हो चुकी है और वे औषधियाँ निष्फल सिद्ध हो चुकी हैं। पाठकों को आजकल के विज्ञापनों पर विश्वास नहीं करना चाहिए, क्योंकि वे सब ठगी के जाल हैं। उनमें कोई भी तत्व नहीं।

श्वास आदि की क्रियाएँ

कुछ पुस्तकों में बतलाया गया है कि अमुक समय अथवा अवस्था में सहवास करने से गर्भ नहीं रह सकता अथवा यदि अमुक नासिका-द्वार से श्वास लिया जाय तो इससे मुक्ति मिलती है। परन्तु ये सब कपोल-कल्पित कथाएँ हैं। इनमें कोई सार नहीं। कुछ स्त्रियों का यह विश्वास होता है कि जब तक बच्चा दूध पीता रहता है अथवा प्रसव के बाद जब तक मासिकधर्म बन्द रहता है, तब तक सहवास किसी भी डर के बिना किया जा सकता है। यह उनकी भूल है। बच्चे को दूध पिलाने से इस पर थोड़ा प्रभाव पड़ता है, अधिक नहीं। ऐसी सैकड़ों स्त्रियाँ हैं, जो पहले बालक के तीन-चार मास का होते ही गर्भवती हो जाती हैं।

मासिकधर्म और गर्भ-धारण के सम्बन्ध के विषय में भी बड़ी भ्रान्ति फैली हुई है। यह ठीक है कि मासिकधर्म होने के कुछ दिनों बाद तक गर्भ-धारण की आशङ्का अधिक रहती है और फिर कम होती जाती है। यह सब कुछ होने पर भी यह याद रखना अच्छा है कि किसी समय भी सहवास करने से गर्भाधान हो सकता है। वीर्य-कीटाणु कई दिनों तक जीवित रह सकते हैं।

फ़्रेञ्च लेटर या लेदर

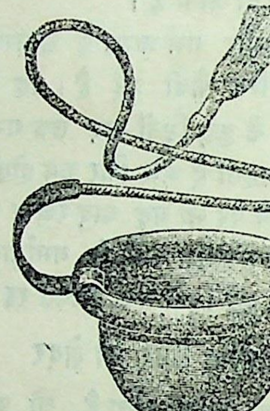
यह रबर का खोल होता है, जो पुरुषेन्द्रिय पर चढ़ाया जाता है। सहवास के समय वीर्य इसी में स्खलित होता है और इस प्रकार कीटाणु स्त्री के गर्भाशय में नहीं जा पाते। यह उपाय है अच्छा, परन्तु इसमें कई आपत्तियाँ हैं। एक तो यह कि कभी-कभी सहवास के समय यह फट जाता है और वीर्य स्त्री के योनिमार्ग में पहुँच जाता है। यदि एक बार भी ऐसा हो जाय, तो गर्भ रह जाने की आशङ्का रहती है। दूसरी आपत्ति यह है कि इसके प्रयोग से सहवास का सच्चा सुख नहीं प्राप्त होता और इस प्रकार स्त्री-पुरुष के ज्ञान-तन्तुओं को हानि पहुँचती है। तीसरी आपत्ति यह है कि वीर्य के जो पौष्टिक पदार्थ साधारणतया स्त्री के रक्त में मिल कर उसे लाभ पहुँचाते हैं, वे सब इसके कारण व्यर्थ हो जाते हैं। परन्तु नवविवाहिताओं के लिए यही उत्तम साधन है।

रबर-कैप या पैसरी (Check Pessary or Occlusive Cap)

यह उपाय सबसे अच्छा है। इसके द्वारा गर्भाशय के द्वार पर परदा डाल दिया जाता है, जिससे वीर्य-कीटाणु भीतर प्रवेश नहीं कर पाते। सम्भोग के सुख में इस प्रकार बाधा नहीं पड़ती और वीर्य भी व्यर्थ ही नहीं जाता। इसका प्रयोग हमारे देश में अधिक नहीं किया जाता। उसका पहला कारण तो यह है कि स्त्री

की गुप्तेन्द्रियों का ज्ञान बहुत कम व्यक्तियों को है। दूसरा कारण यह है कि बहुतेरी स्त्रियाँ कैप का व्यवहार करने से इनकार कर देती हैं।

यह कैप कई पदार्थों की बनाई जाती है, जैसे धातुएँ, सैल्यूलॉइड तथा रबर। रबर की कैप का



रबर-कैप

ही प्रयोग अधिक किया जाता है। इसका किनारा कई प्रकार का होता है। किसी में स्प्रिङ्ग लगी रहती है, किसी में हवा भरी रहती है, कोई ठोस होता है। ठोस किनारे वाली कैप अच्छी होती है। इसके तीन नम्बर होते हैं—नम्बर १—छोटे क़द की स्त्रियों के लिए, तथा उनके लिए, जो माता नहीं हैं। नम्बर २—साधारण स्त्रियों के लिए। नम्बर ३—उन स्त्रियों के लिए, जिनका क़द बहुत बड़ा है अथवा जो कई बालकों को जन्म दे चुकी हैं। एक कैप छः महीने से दो वर्ष तक काम दे सकती है। इङ्गलैण्ड की बनी हुई रेशियल, प्रोरेस आदि कैप अच्छी होती हैं; इनका मूल्य २) और ३) के बीच में होता है। जर्मनी की बनी हुई कैप भी अच्छी होती हैं और सस्ती भी होती हैं। 'मीरा' नामक कैप ठाकोर कम्पनी, चर्चगेट, बम्बई से १) और १।) में मिल सकती है।

कैप को स्त्रियाँ स्वयं ही चढ़ा सकती हैं। पहली बार लेडी डॉक्टर से परीक्षा कराके चढ़ाने का तरीक़ा मालूम कर लेना अच्छा है। निम्न-लिखित बातें इस सम्बन्ध में उपयोगी सिद्ध होंगी :—

१—कैप का नम्बर ठीक होना चाहिए। जो पहले नम्बर १ का प्रयोग करती रही हैं, उन्हें बालक उत्पन्न होने के बाद नम्बर २ का प्रयोग करना चाहिए।

२—मासिकधर्म के समय तथा प्रदर आदि रोगों में इस कैप का प्रयोग वर्जित है।

३—प्रयोग से पहले कैप को साबुन के पानी में डुबाएँ। स्त्री या तो लेट कर अपनी टाँगों को ऊपर खींच या तलवों के बल बैठ जाय। कैप के किनारों को उँगलियों से पकड़ कर भीतर ले जाय और गर्भाशय के मुख पर चढ़ा ले। कैप वहाँ पहुँच कर आप ही आप फ़िट हो जाती है।

४—किनारे पर एक रेशम का फ़ीता बँधा रहता है। यह उतारते समय खींचने के लिए है। परन्तु इसकी अधिक आवश्यकता नहीं पड़ती और इसको निकाल डालना ही अच्छा है।

५—कैप सहवास के बाद कम से कम १६ घण्टे अन्दर ज़रूर रहे। अधिक से अधिक कुल ४८ घण्टे कैप अन्दर रखनी चाहिए। इसके बाद अवश्य ही निकाल लेनी चाहिए। कैप के अन्दर रखने से किसी बात का कष्ट नहीं होता, इससे उसके अन्दर छोड़ रखने की अधिक सम्भावना रहती है।

६—निकालते समय उसी प्रकार बैठ कर उँगलियों से उसे बाहर निकालना चाहिए और फिर गर्म पानी और साबुन से धोना चाहिए। उसके बाद उसे बोरिक या कारबोलिक लोशन में रखना अच्छा है। यदि शीघ्र आवश्यकता हो तो सुखा कर रखना अधिक लाभप्रद है। यदि उसमें छेद हो जाय या कहीं दरारें पड़ जायँ तो दूसरी कैप मँगाना ही श्रेयस्कर होगा।

७—जिन्हें सन्देह हो कि कैप ठीक नहीं चढ़ती, वे उस पर चढ़ाने से पहले क्विनीन, चिनोसोल आदि का मरहम लगा सकते हैं, परन्तु इस प्रकार व्यय अधिक बढ़ जाता है। निकालते समय डूश (Douche) लेना अर्थात् योनि-मार्ग को पानी से धो डालना भी अच्छा है।

जिन्हें गर्भाशय के रोग के कारण लेडी डॉक्टर कैप का प्रयोग करना असम्भव बताती हैं, वे दूसरी प्रकार की कैप का प्रयोग कर सकती हैं। इसे 'डच पैसरी' (Dutch Pessary) कहते हैं। यह पैसरी गर्भाशय

के मुख पर नहीं चढ़ाई जाती। यह योनि-मार्ग के उस भाग को बन्द कर देती है, जो गर्भाशय के मुख के पास होता है। इसमें कई दोष हैं, इसीसे प्रत्येक के लिए इसका प्रयोग ठीक नहीं।

कपड़े की डाट (Plug)

जो स्त्रियाँ निर्धन हैं या कैप का प्रयोग करना नहीं जानतीं, उनके लिए एक बहुत ही सरल उपाय है, यद्यपि वह ख़तरे से ख़ाली नहीं है। एक स्वच्छ कपड़े का टुकड़ा लेकर गर्म पानी में भिगोना चाहिए। फिर उस पर औलिव ऑयल, आधा सिरका और आधा पानी मिला कर, अथवा फिटकरी का पानी डालना चाहिए। उस कपड़े को योनि-मार्ग में डाट की तरह लगा देना चाहिए। कपड़ा इतना अधिक न हो कि सारा मार्ग ही उससे भर जाय। रबर आदि के स्पञ्ज भी यही काम देते हैं।

योनि-मार्ग में रखने की औषधियाँ

यह कहा जा चुका है कि यदि किसी प्रकार वीर्य के कीटाणु योनि-मार्ग में पहुँचते ही नष्ट कर दिए जायँ, तो गर्भ का भय नहीं रहता। इसके लिए कई प्रकार की औषधियों (Suppositories, jellies and pills) का आविष्कार हुआ है, जो कीटाणुओं को नष्ट करती हैं। इनमें से लैक्टिक एसिड जैली, प्रोसेल्डीस बर्थ-कन्ट्रोल टेबलेट्स, क्विनीन या चिनोसोल सपोज़िटरी, कोन्ट्रासेप्टे-लीन, पेटेन्टेक्स, स्पेटोनेक्स, आदि के नाम प्रमुख हैं। नवविवाहिताओं को इनका प्रयोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि इससे कष्ट अधिक होता है।

ऑपरेशन (Sterilisation)

सबसे अधिक विश्वसनीय उपाय ऑपरेशन है, परन्तु यह उन्हीं के लिए योग्य है, जिन्हें जीवन भर सन्तान उत्पन्न करने की अभिलाषा नहीं है। जो कुछ समय के लिए ही सन्तानोत्पत्ति रोकना चाहते हैं, उनके काम का यह उपाय नहीं। यह ऑपरेशन डॉक्टरों की सलाह से ही हो सकता है। सबसे अच्छी विधि वह है, जिसमें दोनों ओर की रज-नलियाँ काट कर बन्द कर दी जाती हैं। इस प्रकार रजपिण्ड रज को बनाते हैं, परन्तु नलियाँ न होने के कारण रज-कीटाणु गर्भाशय में आए हुए वीर्य-कीटाणुओं से नहीं मिल सकते।

संक्षेप में यह सन्तति-निग्रह का विषय है। समाज और राष्ट्र का कल्याण चाहने वालों को अवश्य इसे अपनाना चाहिए!

अश्रु-विन्दु

[एक व्यथिता]

मोती से अनमोल !
प्रेम पूर्ण अति पुलकित तन से,
मञ्जुल अमित मोदमय मन से,
निर्मल नवल नलिन नयनन से,
निकल-निकल ये अश्रुबुन्द !
इतिहास हृदय का देते खोल !!

पीकर पूर्ण प्रेम-पय-प्याला,
विधुर-वियोग बिलखती बाला,
निज जीवन-निधि से चुन-चुन कर,
स्नेह-सूत्र में तुझे पिरो कर,
प्रियतम हित रखती है माला !
एक प्रियतमा का जीवन ही जाने तेरा मोल !!
मोती से अनमोल !!

कहानी-कला

[श्री० रामनारायण 'यादवेन्दु', बी० ए०]

दृश्य-प्रयोग

"....The function of the setting is to furnish in the best possible way for any given story, the conditions of time, place and characters which shall make that story possible and actual."

—E. M. ALBRIGHT.

उपर्युक्त कथन द्वारा कहानी में दृश्य की उपयोगिता पर प्रकाश डाला गया है। दृश्य के प्रयोग का उद्देश्य यही है कि उसके द्वारा पाठक के हृदय पर समय, स्थान और पात्रों का स्पष्ट चित्र अङ्कित हो जाय, जिससे वे पाठक को इसी जगत् के मालूम पड़ें; अलौकिक नहीं। परन्तु दृश्य का अत्यधिक प्रयोग वातावरण के प्रभाव को उत्पन्न करता है। ऐसे ही दृश्यों से कहानी में लोकोत्तर आनन्द की सृष्टि होती है।

दृश्य का प्रयोग कथानक रचना में भी किया जाता है। क्योंकि उसके द्वारा कथानक की गति में परिवर्तन करने में सहायता मिलती है। इसके साथ ही साथ चरित्र-विकास में भी सहायता मिलती है। कभी-कभी दृश्य का प्रयोग कहानी के प्रधान-भाव के साथ उसका विरोध या सामञ्जस्य दर्शाने के लिए भी होता है। यहाँ यह उल्लेख कर देना असङ्गत न होगा कि कहानी अपनी अनूठी स्थिति के मनोरम चित्र द्वारा हमारे हृदय पर अपना प्रभाव डालती है।

वस्तुतः प्राकृतिक दृश्य इस मनोरम चित्र के लिए एक प्रकार से रङ्गस्थली का काम देता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कहानी में दृश्य का प्रयोग अनेक रूप में किया जाता है। कहानी को रूप-सौष्ठव, सौन्दर्य, सजीवता, वास्तविकता, उद्देश्य और गम्भीरता प्रदान करने में दृश्य का कार्य बड़ा उपयोगी है। चाहे दृश्य पाठक को उन घटनाओं का निदर्शन करावे, जिसके द्वारा कथानक का विकास सम्भव हो सके, चाहे वह पाठक को इस दृश्यमान् जगत् और इस युग से भिन्न किसी अलौकिक युग या जगत् में ले जावे, चाहे वह उसे अलौकिक जीवन का दृश्य दिखला कर अनिर्वचनीय आनन्द की सृष्टि कर दे, चाहे वह कहानी में, सुकुमार, कोमल और सौम्य सौन्दर्य की रचना करे, चाहे वह कहानी के 'भाव' की ओर निर्देश करे या किसी दशा की अभिव्यक्ति करे और चाहे वह पात्रों को यथार्थ वातावरण में रख कर उन्हें मानवता प्रदान करे; परन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि दृश्य वही सफल कहला सकेगा, जिसके आधार में कहानी का कोई विशेष 'भाव' या 'उद्देश्य' काम कर रहा हो।

हिन्दी-कहानी-साहित्य में दृश्य का प्रयोग बहुत ही न्यून है। कहानी-लेखकों की यह उदासीनता श्रेयस्कर नहीं है। हमने कतिपय कहानियों में दृश्य का प्रयोग बड़े उत्कृष्ट रूप में देखा है। श्रीयुत जयशङ्कर 'प्रसाद' की कहानियों में दृश्य का प्रयोग अतीव मनोहारी है। 'सिंहगढ़ आया, पर सिंह गया!' 'स्वर्ग के खण्डहर में,' 'बिसाती,' 'जय या पराजय,' 'परदेशी,' 'कानों में कङ्गना,' 'जूठा आम' और 'कल्पना' में दृश्य की नयनाभिराम प्रदर्शनी दर्शनीय है। अब हम संक्षेप में यह निर्देश कर देना चाहते हैं कि कहाँ किस उद्देश्य से दृश्य का प्रयोग किया जाता है।

१—'सिंहगढ़ आया, पर सिंह गया!' कहानी में दृश्य का प्रयोग पात्र प्रस्तुत करने की दृष्टि से किया गया है। यथा :—

"रात बहुत अँधेरी थी। रास्ता पहाड़ी और ऊबड़-खाबड़ था। आकाश पर बदली छाई हुई थी, और अभी कुछ देर पूर्व ज़ोर की वर्षा हो चुकी थी। जब ज़ोर की हवा से वृक्ष और बड़ी-बड़ी घास सायँ-सायँ करती थी, तब जङ्गल का सन्नाटा और भी भयानक मालूम होता था।

उस समय उस जङ्गल में दो घुड़सवार बढ़े चले जा रहे थे। दोनों के घोड़े ख़ूब मज़बूत थे, पर वे पसीने से लतपत थे। घोड़े पग-पग पर ठोकरें खाते थे। पर उन्हें ऐसे बीहड़ रास्तों में, ऐसे सङ्कट के समय, अपने स्वामी को ले जाने का अभ्यास था। सवार भी असाधारण धैर्यवान् और वीर पुरुष थे। वे चुपचाप चल रहे थे। घोड़े की टापें और उनकी प्रगति से कमर में लटकती हुई उनकी तलवारों और बरछों की खरखराहट उस सन्नाटे के आलम में एक भयपूर्ण रव उत्पन्न करती थी।"

—चतुरसेन शास्त्री

२—'स्वर्ग के खण्डहर में' कहानी में स्वर्ग का ऐसा भव्य वर्णन किया गया है कि पाठक का हृदय बरबस उसकी अनुभूति के लिए लालायित होने लगता है। इस कहानी में दृश्य के प्रयोग का उद्देश्य है, इस दृश्यमान् जगत और युग से भिन्न अलौकिक जगत एवं युग के दर्शन कराना। इसी के साथ ही साथ दृश्य और कहानी के विषय में सामञ्जस्य का बड़ा सुन्दर निर्वाह किया गया है।

"वन्य कुसुमों की झालरें सुख-शीतल पवन से विकम्पित होकर चारों ओर झूम रही थीं। लता-वितानों से ढकी हुई प्राकृतिक गुफाएँ शिल्प-रचनापूर्ण सुन्दर प्रकोष्ठ बनातीं, जिनमें पागल कर देने वाली सुगन्ध की लहरें नृत्य करती थीं। स्थान-स्थान पर कुञ्जों और पुष्पशय्याओं का समारोह, छोटे-छोटे विश्राम-गृह, पानपात्रों में सुगन्धित मदिरा, भाँति-भाँति के सुस्वादु फल-फूल वाले वृक्षों के झुरमुट, दूध और मधु की नहरों के किनारे, गुलाबी बादलों का क्षत्रिक विश्राम। चाँदनी का निभृत रङ्गमञ्च, पुलकित वृक्ष, फूलों पर मधु-मक्खियों की भन्नाहट, रह-रह कर पक्षियों के हृदय में चुभने वाली तानें। मणि-दीपों पर लटकती हुई मुकुलित मालाएँ। उस पर सौन्दर्य के छटे हुए जोड़े। रूपवान् बालक और बालिकाओं का हृदयहारी हास-विलास! सङ्गीत की अबाध-गति में छोटी-छोटी नावों पर उनका जल विलास! किसकी आँखें यह सब देख कर भी नशे में न हो जाएँगी, हृदय पागल, इन्द्रियाँ विकल न हो रहेंगी? यही तो स्वर्ग है!"

—जयशङ्कर 'प्रसाद'

३—'जय या पराजय' कहानी में दृश्य का प्रयोग सौन्दर्य की सृष्टि करने के उद्देश्य से किया गया है। श्रीनगर का दृश्य तो प्रकृति की नाट्यशाला है!

"सौन्दर्यमयी श्रीनगर नगरी अमरावती के समान विभव से चमक रही थी! नगर की विशाल अट्टालिकाएँ लाल, पीले और सुनहरे काम से सजाई गई थीं। नदी के दोनों तट बिजली की छटा से जगमगा रहे थे! बड़ा लुभावना दृश्य था! झेलम के दोनों किनारों पर बजड़ों की क़तारें लग रही थीं। सुन्दर काश्मीरी लोगों के ठठ लग रहे थे! चुलबुल हसीन काश्मीरनें अपने-अपने राजकुमार जैसे बालकों की उँगली पकड़े चकित हरिणी-सी खड़ी थीं।

बड़ा नयनाभिराम दृश्य था! हिमांशु अपनी शीतल ज्योत्स्ना द्वारा दृश्य की मनोहरता को शतशः द्विगुण कर रहा था! उतावली लहरें चन्द्र-चुम्बन के लिए मतवाली हो, आकाश को छूने का मन्सूबा बाँध रही थीं। अगणित तारे सुविशाल नील वितान में छिटके हुए जवाहरों की तरह दमक रहे थे—दर्शक का मन मोह जाता था।"

—शिवनारायण टण्डन

यथार्थवाद

"एक विशेष श्रेणी के साहित्य-सेवी ऐसे भी हैं, जो लोक-कल्याण या रचना-कला की दृष्टि से जो बात जैसी है उसका वैसा ही चित्र खींचना आवश्यक समझते हैं। इसे वे प्रकृतिवाद (Realism) के नाम से पुकारते हैं। अपनी शैली के कलापूर्ण होने के प्रमाण में वे पाश्चात्य देशों के धुरन्धर साहित्यिकों के नाम पेश करते हैं। फ़्रान्सीसी कहानी-लेखक मोपाँसा का नाम इस सम्बन्ध में बहुत लिया जाता है। इस सम्बन्ध में मेरा निवेदन है कि प्रकृतिवाद के सम्बन्ध में कुछ भ्रमात्मक धारणाएँ प्रचलित हो गई हैं। फ़्रान्स के प्रसिद्ध साहित्य-सेवी अनातोले भी प्रकृतिवादी थे। उनका यही कथन था कि किसी घटना का तद्वत् चित्र खींचने के लिए या किसी मनोभाव को तद्वत् प्रदर्शित करने के लिए नेत्र और हृदय खोल कर उस प्रकार की घटनाओं या भावों में या उसके अत्यन्त निकट होकर, निकलने की आवश्यकता होती है। बहुधा होता यह है कि लेखक के

मस्तिष्क में जो कलुषित भाव ऊपर ही रक्खे होते हैं, प्रकृतिवाद की आड़ में उन्हीं का अपनी कृति में प्रदर्शन कर दिया करते हैं।"*

—स्वर्गीय गणेशशङ्कर विद्यार्थी

उपर्युक्त कथन अक्षरशः सत्य है। हमारे इस प्रकरण का उद्देश्य इसकी पुष्टि करना है। अतः हम यथार्थवाद पर विशद् रूप से प्रकाश डालेंगे।

यथार्थवाद में जो तथ्य है, उसका स्वीकार तथा जो निस्सार है उसका त्याग साहित्य के लिए उपादेय है। विद्यार्थी जी यथार्थवाद के विरोधी नहीं हैं; परन्तु यथार्थवाद के नाम पर जिन 'कलुषित भावों' की अभिव्यक्ति की जाती है, वह त्याज्य है।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तर भाग में गोतिए (Theoptule Gautier) ने फ्रेञ्च साहित्य में एक युगान्तरकारी सिद्धान्त प्रतिष्ठित किया। यद्यपि वह अपने को रोमाण्टिक कहता था, तो भी उसमें रियलिज़्म की प्रवृत्ति या निरपेक्ष अनुकरण की प्रवृत्ति प्रबल थी। इसी कारण गोतिए को ही यथार्थवाद (Realism) का जन्मदाता माना जाता है। उसने दो बातों पर विशेष ध्यान दिया था; रचना का रूप और उसका विषय मनोहर हो तथा रचना में पूर्ण सङ्गीत रहे। उपन्यास के पात्र सोलहो आने सत्य जीव हों, जिन्हें रात-दिन हम देखते हों। इस दृष्टि से उपन्यास-लेखक के विचार, उसके तथा बहुधा उसकी मौज का संग्रह नहीं, किन्तु आत्मा का दर्पण और प्रकृत जीवन का चित्र होगा। परन्तु यथार्थवाद को पूर्ण विकसित करने में गोंकूर-बन्धु, एमिलज़ोला और आल्फ़ौंज़ दोदे ने विशेष योग दिया। गोंकूर-बन्धु उपन्यास में संसार का यथार्थ चित्र खींचना चाहते थे। अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'Germinic Lacerteux' में इन्होंने अपना यथार्थवाद सम्बन्धी मन्तव्य इस प्रकार व्यक्त किया है:—

"जनता झूठे उपन्यास चाहती है, किन्तु यह उपन्यास सच्चा है। जनता ऐसी पुस्तकें पसन्द करती है, जो ऐसा आभास देती हैं कि वे कहीं बाहर से इस संसार में फेंकी गई हैं। प्रस्तुत पुस्तक संसार में उत्पन्न हुई है। वह यह आशा नहीं करती कि उसके सामने छिन्न-विच्छिन्न चित्र रक्खे जायँ। यह गवेषणा प्रेम के चीड़-फाड़ का दृश्य है।"

इस प्रकार गोंकूर-बन्धुओं ने प्रमाणित किया कि 'उपन्यास जीवन का चित्र नहीं, स्वयं जीवन है।' यथार्थ अनुकरण की प्रवृत्ति यहाँ तक बढ़ी कि गोंकूर-बन्धुओं ने अशिष्ट और गँवार लोगों को, अपने उपन्यासों में, पात्रों का स्थान देने का प्रयास किया। यथार्थवाद का विकास यहीं नहीं रुक गया, आगे चल कर ऐमिल ज़ोला ने प्रकृतिवाद (Naturalism) को जन्म देकर यथार्थवाद को चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिया। आजकल जिस प्रकार जर्मनी में नङ्गा-पन्थ (Nude Sect) प्रकृति के अनुकरण में जीवन की सार्थकता समझ रहा है, उसी प्रकार साहित्य में प्रकृतिवादी घृणित, नीच, अपवित्र, अश्लील के चित्रण में कला की सार्थकता समझ रहे हैं। प्रकृतिवादी ज़ोला (Emeil Zola), जिसने प्रकृतिवाद को जन्म दिया था, की साहित्यिक रचनाओं का फ्रान्स में घोर प्रतिवाद किया गया—निन्दा की गई।

'जब सन् १८६८ ई० में ज़ोला ने 'टेरैज़ राक्याँ' नामक उपन्यास प्रकाशित किया, तो इसकी बड़ी निन्दा हुई। इसकी गणना गन्दे, सड़े साहित्य में की गई।'*

विज्ञ पाठक इससे अनुमान कर सकते हैं कि यथार्थवाद और प्रकृतिवाद की अपनी जन्मभूमि में कितनी दुर्दशा हुई—कैसा बहिष्कार हुआ। परन्तु बड़ा खेद और आश्चर्य है कि हिन्दी-साहित्य में इन तिरस्कृत 'वादों' का स्वागत किया जाता है! इसे भाग्य का फेर कहें या लेखकों की रुचि का पतन! एक स्थान पर ज़ोला ने प्रकृतिवाद की पाशविक प्रवृत्ति को स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है।

ज़ोला लिखता है—"मुझे केवल एक इच्छा थी, यदि एक मनुष्य स्वस्थ और हट्टा-कट्टा है और एक स्त्री अतृप्त-काम है, तो उनमें पशुत्व ढूँढ़ना, बस उनमें केवल पशुत्व ढूँढ़ना ही मेरा काम था।"

---

* स्वर्गीय विद्यार्थी जी के गोरखपुर के अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर सभापति पद से दिए भाषण से।

* डॉक्टर हेमचन्द्र जी जोशी, डी० लिट्० लिखित 'फ्रेञ्च साहित्य के गत सौ साल' लेख देखिए।

क्या इससे बढ़ कर जघन्य रुचि की कल्पना कभी मानव-मस्तिष्क में उत्पन्न हुई है! यह नैतिक पतन, नहीं-नहीं, मानवता के पतन की चरम सीमा है।

अब हम संक्षेप में, फ़्रान्स के ख्यातनामा कलाविद् मोपाँसा (Guy de Maupassant) की कला के विषय में विचार करना चाहते हैं। क्योंकि कुछ हिन्दी कहानी-लेखक उसे अपना आचार्य मानते हैं। हमारे उदीयमान कहानीकार अपने दोषों को स्वीकार करने के स्थान में उन्हें मोपाँसा के नाम पर 'कला' नाम से प्रसिद्ध करते हैं। यह मानसिक-दासत्व के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। मोपाँसा अन्य लेखकों के समान प्रकृतिवादी था। उसने अपनी पुस्तक 'Pierre and Jean' में कला के सम्बन्ध में अपने निजी विचार निम्न-प्रकार व्यक्त किए हैं :—

"पाठक कई तरह के हैं, और उनकी माँगें भी नाना प्रकार की हैं। किन्तु थोड़े से पाठक ऐसे हैं, जो कला-विधाता लेखक से कहते हैं—मुझे कोई सुन्दर चीज़ बना कर दो, उसका रूप तुम अपनी रुचि तथा स्वभाव के अनुसार गढ़ो। कला-निर्माता वह सुन्दर प्रतिमा गढ़ने की ओर चेष्टा करता है, कभी सफल होता है, कभी असफल। उस साहित्यिक मार्ग के बाद, जिसने हमें विकृत, अलौकिक, काव्यमय, करुणापूर्ण, मनोहर, अत्यन्त सुन्दर स्वरूप देने की चेष्टा की है, अब नया मार्ग निकला है, जिसे प्रकृतिवाद या यथार्थवाद कहा जाता है। इसका दावा है कि यह हमें सत्य के दर्शन कराता है। यह सत्य है, विशुद्ध सत्य ; सम्पूर्ण सत्य।"

मोपाँसा के कथनानुसार कलाविद आत्मानुभूति की स्वतन्त्र अभिव्यक्ति नहीं करता। उसकी कला पाठक-वृन्द के स्वभाव एवं रुचि पर अवलम्बित रहती है। इस प्रकार कलाकार पाठक-वृन्द को नवीन सन्देश प्रदान करने के स्थान में उनकी रुचि के अनुकूल साहित्य की सृष्टि करता है। कलाकार एक प्रकार से, पाठक-वृन्द की प्रवृत्तियों का प्रकाशक ही हुआ। परन्तु मोपाँसा का यह मन्तव्य सर्वथा सत्य नहीं है। संसार में जितने विश्व-विख्यात-साहित्यिक लेखक हुए हैं, उन्होंने लोकमत की अभिरुचि के परिष्कार के लिए, उसकी भावना के परिष्कार के लिए, साहित्य की रचना की है। फ़्रान्स के आधुनिक सर्वश्रेष्ठ कलाकार रोम्याँ रोलाँ (Roman Rolland) से फ़्रेञ्च इतने चिढ़े हुए हैं कि वे उनकी रचनाओं का यथेष्ट सम्मान भी नहीं करते। रोम्याँ रोलाँ फ़्रेञ्च लोगों के इस दुर्व्यवहार तथा हृदय-हीनता से तङ्ग आकर जिनेवा में निवास-स्थान बना कर रहने लगे हैं!! फ़्रेञ्च लोगों के इस अद्भुत अमर्ष का कारण यही बतलाया जाता है कि रोम्याँ रोलाँ फ़्रेञ्च साहित्य कला और रुचि का शत्रु है। रोम्याँ रोलाँ, वास्तव में, फ़्रेञ्च साहित्य का शिरोमणि कलाविद् है।

यह उन ज्वलन्त उदाहरणों में से एक जीता-जागता उदाहरण है, जो मोपाँसा के उपर्युक्त मन्तव्य की सारहीनता सिद्ध करने के लिए दिए जा सकते हैं। सत्य तो यह है कि मोपाँसा का जन्म एक ऐसे देश में हुआ है, जहाँ की भूमि विलासिता, लम्पटता, व्यभिचार इत्यादि के लिए अत्यन्त उर्वरा है। ऐसी स्थिति में उसे 'प्रकृतिवाद' की स्वच्छन्द क्रीड़ा करने का अवसर हाथ लगा; ऐसे पाठक भी मिल गए, जिन्होंने उसकी 'कृतियों' में सर्वश्रेष्ठ कला का रूप देखा।

मोपाँसा ने जिस 'वाद' का समर्थन अपनी रचनाओं द्वारा किया है, वह 'यथार्थवाद' नहीं है और हम तो उसे 'प्रकृतिवाद' भी कहना उचित नहीं समझते। मोपाँसा के 'वाद' के लिए कोई अच्छा भाव-व्यञ्जक शब्द न मिलने के कारण हम उसे साहित्यिक वाममार्गवाद ही कहेंगे। मोपाँसा की 'मानव हृदय की कहानियों' नामक हिन्दी पुस्तक में फ़्रेञ्च के 'तिरिया चरित' का बड़ा नग्न वर्णन है। पेरिस के दूषित वातावरण का, यूरोप की विलासप्रियता का, वहाँ की व्यभिचारिणी और पतिता कामिनियों का बड़ी मोहक भाषा में चित्र खींचा गया है। एक स्थान पर मोपाँसा नारी-प्रेम के सम्बन्ध में कहता है :—

"स्त्री का प्रेम तो विषय-वासना से भरा होता है, उसमें ईर्ष्या, सन्देह और बेचैनी के सिवा और कुछ नहीं होता।"

वह एक स्त्री से कहलाता है :—

"मेरा तो यह विश्वास है कि वास्तविक प्रेम से मन चञ्चल हो जाता है, ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय दोनों ही शिथिल पड़ जाती हैं। मस्तिष्क में घबराहट हो जाती है। वह केवल भयङ्कर कठोर ही नहीं, प्रत्यक्ष

दूषित, एवं दूषित भी है। वह तो एक प्रकार का राज-द्रोह है। मेरा अभिप्राय यह है कि प्रेम-पथाभिगामी होने पर न्याय-विरुद्ध आचरण करने पड़ते हैं, मातृ-स्नेह टूट जाता है, धार्मिक बन्धन एवं नियम तक भङ्ग हो जाते हैं। शान्तिप्रद, धार्मिक, भयहीन तथा सुगम प्रेम को कौन प्रेम कह सकता है?"

मोपाँसा-मत का यह निष्कर्ष है!

हमने 'यथार्थवाद' और 'प्रकृतिवाद' पर विशद् रूप से विचार किया है; विशेषतः मोपाँसा की 'कला' पर प्रकाश डाला है। क्योंकि इन 'वादों' की उत्पत्ति फ्रान्स में हुई है। अतः प्रसङ्ग रूप से फ्रेञ्च साहित्यिकों की कला के विषय में विवेचन किया गया है।

हम यह स्पष्ट रूप से कह देना चाहते हैं कि हम मोपाँसा के 'वाममार्गवाद' के विरोधी हैं। मोपाँसा का 'प्रकृतिवाद' सच्चा प्रकृतिवाद नहीं है। उसके प्रकृतिवाद में संयम, मर्यादा, सदाचार और शील-सौन्दर्य के लिए स्थान नहीं है। उसमें केवल पाशविक वृत्तियों की सन्तुष्टि के साधन हैं—व्यभिचार, दुराचार और विला-सिता। क्या प्रकृति हमें व्यभिचार, दुराचार और विला-सिता की शिक्षा देती है? हिन्दी के उदीयमान् कहानी-लेखक, जो मोपाँसा के अनुयायी हैं, भी 'दिल्ली का दलाल', 'चाकलेट' तथा 'दिल्ली का व्यभिचार' जैसी अश्लील पुस्तकों द्वारा हिन्दी-साहित्य और आर्य-संस्कृति को कलङ्क लगा रहे हैं। ऐसी कहानियाँ भी लिखी जाने लगी हैं, जिनमें पशुता का नग्न नृत्य दिखलाया जाता है। श्री० ऋषभचरण जैन ने 'नरक के द्वार पर' एक कहानी लिखी है। इस कहानी में आदि से अन्त तक केवल यही प्रदर्शित किया गया है कि दो युवक, जो रिश्ते में साले-बहनोई हैं, अपनी स्त्रियों के मैके चले जाने पर, किस प्रकार अपनी काम-वासना की तृप्ति के लिए साधन जुटाते हैं—वेश्यागमन का आश्रय लेते हैं! इस कहानी में जिन मनोविकारों का चित्रण किया गया है, वह जे० रस्किन के निम्न शब्दों को पुष्ट करता है:—

"It is an expression of delight in the prolonged contemplation of a vile thing, and delight in that is an 'unmannered,' or 'immoral' quality. It is a 'bad taste' in the — profoundest sense — it is a taste of the devils.

—*The Crown of Wila Olive.*

श्री० ऋषभचरण जैन अपने एक पात्र से कहलाते हैं:—

"लोग कहते हैं, असली प्रेम शादी के कुछ दिन बाद तक रहता है। मैं इसके विरुद्ध हूँ। इन दिनों में जो खिंचाव होता है, उसमें कितनी पाशविकता होती है, और कितनी मनुष्यता, इस पर कोई विचार करे, तो ज़रूर मेरा हम-ख़्याल हो जाय। मेरी बात है तो भद्दी, परन्तु सच है, इससे कहनी पड़ी। हाँ, तो मुझे जो यह जुदाई इतनी अधिक महसूस होती है, इसमें सब कारस्तानी पाशविकता की थी।"

× × ×

'लत बुरी है, मगर यह (वेश्यागमन) तो लत नहीं, मनबहलाव है।'

लेखक महोदय को इस 'पाशविकता' की अभिव्य-ञ्जना के लिए न जाने कितनी बार, न जाने कितनी वेश्याओं के पास उनके निरीक्षण के लिए जाना पड़ा होगा। लेखक ने इन वेश्याओं के कलुषित जीवन के अध्ययन में जो सुखानुभव किया है, उसी की अभिव्य-ञ्जना 'नरक के द्वार में' कर दी है! जब लेखक यह स्वीकार करते हैं कि बात 'भद्दी' है, फिर चाहे सत्य ही क्यों न हो, तो फिर 'भद्दी' बात क्यों सुनाई जाय? कला में केवल असुन्दर सत्य ही का समावेश नहीं होता, उसमें सत्य और सुन्दर का सामञ्जस्य होना अभि-प्रेत है।

यह हृदयङ्गम कर लेना चाहिए कि केवल सत्य की अभिव्यक्ति करना कला का उद्देश्य नहीं है; जब तक सत्य सुन्दर न हो, तब तक वह मानव-हृदय को स्पर्श नहीं कर सकता। जब तक सत्य आनन्दमय न हो तब तक वह मानव को अनिर्वचनीय आनन्द प्रदान नहीं कर सकता। ऐसे अनेक 'सत्य' हैं, जिन्हें हम और आप अनुभव करते हैं; परन्तु वे असुन्दर और अशिव होने के कारण अभिव्यक्त करने योग्य नहीं हैं। 'कला का प्रधान गुण सुन्दर और सत्य है।' जो असुन्दर और असत्य में डूबा हुआ हो, वह अपनी कला में गुण कहाँ से पैदा करेगा? जो मन में है, वही क़लम

से निकलेगा।' * हम यथार्थवाद (Realism) के विरोधी नहीं हैं ; हमारा 'यथार्थवाद' से क्या तात्पर्य है, यह हम बतला देना चाहते हैं।

कहानी में मानव-जीवन की व्याख्या होनी चाहिए। इससे हम सहमत हैं ; परन्तु व्याख्या कैसी हो, यह विचारणीय है। मानव-जीवन में प्रकाश है और अन्धकार भी है ; उसका चाँद सा धवल शुक्लपक्ष है, तो रजनीवत् कृष्ण-पक्ष भी है। एक ओर उत्थान, विकास और उत्कर्ष है ; दूसरी ओर पतन, दुराचार एवं पाप। इसलिए व्याख्या में एक चित्र की दोनों आकृतियों, शुक्ल और कृष्ण का सन्निवेश आवश्यक है। हम चाहते हैं कि मनुष्य के पतन का चित्र खींचा जाय ; मनोविकारों का यथार्थ चित्रण किया जाय। परन्तु वे मनोविकार और मनोभाव मनुष्य के हों, पशु के नहीं। जब लेखक मानव के मनोभावों का चित्रण करता है, तो उसमें यथार्थवाद के दर्शन सम्भव हैं ; परन्तु ज्योंही वह पाशविकता का चित्र खींचना शुरू कर देता है, वह यथार्थवाद की सीमा को लाँघ कर 'वाममार्गवादी' बन जाता है। प्रयाग के 'भारतेन्दु' मासिक पत्र में श्री० ज्योतिप्रसाद जी मिश्र 'निर्मल' ने अपनी एक सम्पादकीय टिप्पणी में, यथार्थवाद के सम्बन्ध में जो विचार प्रगट किए थे, वे अत्यन्त उत्कृष्ट और सारगर्भित हैं। उन्हें हम यहाँ उद्धृत करते हैं :—

"×××जीवन के पतन का चित्रण करो, समाज की नारकीय अवस्था का चित्र खींचो; पर उस समाज की नारकीय अवस्था का, जो मनुष्यों का हो। जहाँ मनुष्य पशु सा हो जाय, जहाँ वह समाज की मर्यादा और प्रकृति के नियमों को ताक में रख दे, वहाँ, उस अवस्था में वह मनुष्य नहीं, पशु ही है। और पशुता का चित्रण न तो मानव-जीवन के सङ्घर्षों की व्याख्या है और न यथार्थवाद का उद्देश्य। उसकी ओर अग्रसर होना मनुष्यत्व का विकाश करना नहीं, उसका ह्रास करना है।"

* दिल्ली प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति 'उपन्यास-सम्राट' श्री० प्रेमचन्द जी का अभिभाषण।

हिन्दी के उत्कृष्ट कलाकार श्री० प्रेमचन्द जी और श्री० सुदर्शन जी ने अपनी कहानियों में मानव-चरित्र की दुर्बलता का चित्र खींचा है; मानव-जीवन के पतन का चित्र अङ्कित किया है तथा मनोविकारों का चित्रण किया है; किन्तु कहीं भी 'पशुता' की गन्ध नहीं आने पाई। क्योंकि इन्होंने यथार्थवाद का चित्रण किया है। यदि वे भी श्री० ऋषभचरण जैन और श्री० बेचन पाण्डेय 'उग्र' के समान 'पाशविकता' का चित्रण करते तो वह यथार्थवाद की सीमा का अतिक्रमण होता ! कहानी-लेखकों को चाहिए कि वे कहानी लिखते समय आर्य-संस्कृति और आदर्शों का अवश्य ध्यान रक्खें। यथार्थवाद का प्रयोग सौम्यता, शिष्टता, संयम और मर्यादा के साथ किया जाय।

उदीयमान कहानी-लेखक पं० विनोदशङ्कर व्यास की अनुमति में पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था' कहानी हिन्दी में सर्वप्रथम यथार्थवादी कहानी है। इसमें कहानी के सब अङ्ग वर्तमान हैं। व्यास जी ने यथार्थवाद और आदर्शवाद के सामञ्जस्य के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किए हैं; वे मनन योग्य ही नहीं, अनुकरणीय हैं ! आप लिखते हैं :—

"श्रीयुत हडसन का कहना है कि कला की दृष्टि से आदर्श सिद्धान्तों को लेकर हम प्रकृतिवाद (Realism) का निर्वाह कर सकते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि उपन्यास और कहानी में उपदेश की प्रथा अस्वाभाविक प्रतीत होती है, किन्तु यह मानना पड़ेगा कि संसार के प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक अधिकतर आदर्शवादी थे।" *

सारांश यह है कि कहानियों में यथार्थवाद का निर्वाह किया जाय, परन्तु केवल सत्य का चित्रण ही वाञ्छनीय नहीं हो। सत्य, शिव और सुन्दर इन तीनों का सामञ्जस्य ही चित्रण को हृदयस्पर्शी और मानवोचित बना सकता है।

* पं० विनोदशङ्कर व्यास द्वारा संग्रहीत 'मधुकरी' कहानी-संग्रह, पृ० २४।

दीप-शिखा*

[श्री० प्रमोद]

प्रथम दर्शन

मेरे मन-मानस की मरालिनी,

यह पत्र लिख कर तुम्हारे हृदय को तनिक भी चोट पहुँचाना नहीं चाहता। तुम्हें शायद मेरे पत्रों की ज़रूरत नहीं है। इसीलिए तुम्हें कुछ भी लिखने में बहुत सङ्कोच होता है। यह पत्र भेज तो तुम्हारे पास रहा हूँ, परन्तु न जाने क्यों, तुम्हारे पास भेजने के उद्देश्य से यह लिख नहीं रहा हूँ। यह बात सुन कर तुम भी कहोगी, क्या ख़ूब ? मेरी इस मनोवृत्ति पर शायद तुम हँस भी पड़ोगी। परन्तु सचमुच बात ऐसी ही है। यह पत्र लिखने का मेरा केवल एक उद्देश्य है। वह बहुत स्पष्ट है। "स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा !" मुझे इस प्रकार, अपने निजी पत्र द्वारा, अपने एक उस साथी के सामने अपना हृदय खोल कर रख देने में स्वर्गीय आनन्द मिलता है, जिसने कभी स्वप्न में, नहीं-नहीं, प्रत्यक्ष मुझे सम्बोधित करते हुए कहा था—"आज मुझे जीवन की लम्बी यात्रा पार करने के लिए एक सच्चा साथी मिल गया !"

गोस्वामी तुलसीदास की ऊँची और भावपूर्ण उक्ति उद्धृत करने पर, तुम हँस कर कहोगी कि बेचारे कवि को मैंने दुनिया के किस गँदले दलदल में लाकर पटक दिया। परन्तु बात ऐसी नहीं है। यह पत्र सचमुच मैं अपने सुख के लिए ही लिख रहा हूँ। इसीलिए यह पत्र लिखने में केवल मेरा स्वार्थ है, और किसी भावना की गन्ध तक नहीं है। मैं तो पल्ले सिरे का स्वार्थी हूँ। तुलसीदास को रघुनाथ-गाथा गान करने में आनन्द आया और वे उसमें रम गए। तल्लीन होगए। आज मुझ ऐसे सांसारिक आदमी को एक ऐसे व्यक्ति के सामने, जो मुझे साथी के नाम से पुकार चुका है, अपना हृदय खोल कर रख देने में जो सुख है, वह सचमुच स्वर्ग से भी बढ़ कर है। कहाँ अध्यात्म-ज्ञान की दिव्य आभा से प्रदीप्त तुलसी, और कहाँ संसार के पाप-पङ्क में सना हुआ अल्प बुद्धि-वाला मैं ! दोनों की कहीं तुलना हो सकती है ?

हाँ, तो उस दिन मैंने अपने एक साथी के सामने तुम्हें अपनी जीवन-सङ्गिनी कह कर पुकारा ही नहीं, बल्कि हृदय से स्वीकार कर लिया। कब ? जब तुम्हारे नेत्रों की मौन स्वीकृति मुझे मिल चुकी थी, और उस समय, जबकि तुमने स्पष्ट शब्दों में बड़े प्यार से, केवल आत्म-समर्पण के भाव से प्रेरित होकर, मुझे 'साथी' के नाम से पुकारा था।

इस घटना के बाद, हम दोनों ही एक दूसरे को पाने के आनन्द में विभोर हो उठे। लोक-लाज की मर्यादा का बाँध टूट गया। हमारे हृदय एक दूसरे से मिल गए, मानों बहुत समय के बिछुड़े हुए दो प्राणी अचानक कहीं मिल गए हों। मैं तो प्रतिक्षण हर्षातिरेक में इतना विह्वल रहने लगा, मानों अतीत काल की खोई हुई मेरी निधि मुझे मिल गई। एक क्षण के लिए भी अलग होने पर, मेरे प्राण निकलने लगते थे। हृदय की सरिता का बाँध टूट जाता था। एक-एक क्षण में आँसू छलछला उठते थे। अविरल गति से आँखों का झरना झरने लगता था। सचमुच मेरी यही दशा थी। तुमने मेरी यह दशा अपनी आँखों से देखी है। कभी-कभी अपने कोमल कञ्ज-करों से, अपने अञ्चल से, तुमने स्वयं मेरे आँसू पोंछ कर, मेरी आँखों के झरने की अविरल धारा रोकने की चेष्टा भी की थी। इसमें तुम्हें सफलता मिलती थी या नहीं, सो तो तुम्हीं जानती हो।

जीवन के वे सुनहले क्षण, जिनमें मैं विह्वलता के अनिर्वचनीय आनन्द में प्रतिक्षण सराबोर रहता था, एक अभिनव छाया-चित्र की तरह आँखों से सदा के लिए ओझल हो गए और हृदय-पट पर एक ऐसी अनूठी स्मृति अङ्कित कर गए, जिसकी धुँधली प्रकाश-रेखा के

---

* लेखक की 'दीप-शिखा' नाम की पुस्तक का प्रथम अध्याय।

सहारे मेरे जीवन में एक अद्भुत चमक पैदा हो गई है। मेरा विश्वास है कि यह चमक जीवन के अन्तिम क्षण तक मेरा साथ देगी। यह उस बिजली की चमक है, जो तुम्हारी जादू-भरी चितवन ने अनायास ही मुझे दे डाली। कुछ ऐसा मालूम पड़ता है कि तुम्हारी ही ऐसी किसी मृग-नयनी के नेत्रों की चोट से पीड़ित होकर, कवि-शिरोमणि रहीम की रसभरी लेखनी से अनुपम उद्गारों के रूप में यह मधुर ध्वनि निकल उठी होगी—

अमी हलाहल मद भरे स्वेत स्याम रतनार,
जियत मरत झुकि-झुकि परत जेहिं चितवत एक बार।

अपने अब तक के जीवन में, पहली बार, मुझे एक मृगनयनी के नयनों की अद्भुत आकर्षण-शक्ति का पता चला। एक बार, हाँ, केवल एक बार नज़र भर कर देखते ही, शरीर के रोम-रोम में बिजली दौड़ गई। थोड़ी देर के लिए सारी सुध-बुध भूल गया। ऐसा मालूम होने लगा कि पैरों-तले से ज़मीन निकली जा रही है। तुरन्त ही मैंने अपने आपको सँभालने का भरसक प्रयत्न किया। यदि मैं उस क्षण अपने आपको सँभालने का प्रयत्न न करता, तो जानती हो मेरी क्या दशा होती? उस विशालकाय वृक्ष के समान, बेसुध होकर धड़ाम से धरती पर गिर पड़ता, जिसकी जड़ें कट जाती हैं। आख़िर यह सब क्यों हुआ? यह एक प्रश्न है, जो आज भी आँखों के सामने है। परन्तु इसका उत्तर देना मेरी समझ के परे की बात है। दिल और दिमाग़ दोनों ही, इस प्रश्न का यथोचित उत्तर दे सकने में असमर्थ हैं। इस प्रश्न का वास्तविक उत्तर, तो कोई ऐसा विद्वान ही दे सकता है, जिसने मनोविज्ञान का ख़ूब गहरा अध्ययन किया हो। मेरे लिए तो सचमुच यह एक ऐसी जटिलतम पहेली है, जो जीवन के अन्तिम क्षण तक सुलझ न सकेगी।

अगर मुझे पहले से यह पता होता कि तुम्हारी आँखों में वह ग़ज़ब का जादू है, जिसके मारे मेरी काया ही पलट जायगी, और जिसके प्रसाद से जीवन में प्रति क्षण की बेक़रारी पैदा हो जायगी, तो आज क़सम खाकर कहता हूँ कि मैं हर्गिज़ तुम्हारी आँखों की ओर न देखता! ओफ़! उस चितवन में ग़ज़ब का आकर्षण था! ऐसा जादू, जिसने मेरे ऐसे दृढ़ विचार वाले युवक को पागल बना दिया! इसीलिए स्त्रियों के नेत्रों की करामात दिखाते हुए महाराज भर्तृहरि को कहना पड़ा है—

तावदेव कृतिनामपि स्फुरत्येष निर्मल विवेक दीपकः।
यावदेव न कुरङ्गचक्षुषां ताड्यते चटुल लोचनाञ्चलैः॥

अर्थात्—विवेकशील आदमियों के भी निर्मल विवेक का दीपक तभी तक प्रकाशित रहता है, जब तक मृगनयनी स्त्रियों के चञ्चल लोचन-रूपी अञ्चल से वह बुझा नहीं दिया जाता।

महाराज भर्तृहरि की इस उक्ति का, सचमुच मैंने अपने जीवन में, पहली बार उसी क्षण अनुभव किया, जिस क्षण मैंने नज़र भर कर तुम्हारी आँखों की ओर देख लिया। तुम सच बता दो कि तुम्हारी आँखों में यह जादू, यह ग़ज़ब की मोहक मदिरा कहाँ से आ गई, जिसने मेरे ऐसे स्वस्थ युवक को मतवाला बना दिया; उस रोग का रोगी बना दिया, जिसका कोई इलाज नहीं हो सकता। आज तुम्हारी आँखों की चर्चा करते समय, तुम्हारी भोली-भाली शान्त मूर्ति एक क्षण के लिए भी आँखों से ओझल नहीं हो रही है। इस स्मृति में कितना मिठास है, यह कहने की नहीं, किन्तु अनुभव करने की चीज़ है। इस वक़्त तो उर्दू के प्रसिद्ध कवि 'जिगर' के शब्दों में केवल इतना ही कहा जा सकता है:—

कुछ खटकता तो है पहलू में मेरे रह रह कर,
अब ख़ुदा जाने तेरी याद है या दिल मेरा।

जिस दिन मैंने तुम्हें देखा, उसी दिन बड़े प्यार से अपने हृदय से लगा लिया और स्पष्ट रूप से, तुमसे ख़ूब खुल कर कह दिया कि मैं तुम्हें प्यार करता हूँ। मैंने अपने मन का यह भाव, तुरन्त ही, एकान्त में जाकर, अपने सबसे निकट के ऐसे साथी के सामने, जो संसार में मेरे जीवन-मरण का साथी है, प्रकट कर दिया। क्यों? इसलिए कि उन लोगों के सामने, जिन्हें मैं अपना समझता हूँ, अपनी कोई भी बात छिपाना नहीं जानता। अपने जीवन में मैंने कभी ऐसा नहीं किया। मेरा साथी मूर्ख नहीं, किन्तु अल्हड़ बहुत है। उसे अभी दुनिया का व्यावहारिक ज्ञान नहीं है। मेरी बात सुन कर बड़ी सरलता के साथ उसने मेरे इस विचित्र विचार पर अपनी अनुमति की मुहर लगा दी। इसलिए कि इस

विचार का नियन्त्रण करने पर मुझे बेहद तकलीफ़ होगी। ओह! मेरे साथी का यह कितना भोलापन था, इसकी याद आते ही आज कलेजा काँप उठता है! यदि उस क्षण सचमुच मेरे जीवन-सङ्गी ने मुझे इस कूचे में क़दम रखने से रोका होता, तो आज मैं कहाँ क्या करता होता, इसे अब क्या बताऊँ?

मेरी बातें सुन कर तुमने ऊपरी मन से मुझे और मेरे साथी को बहुत सावधान किया। दो-तीन बार तुमने हमें बुरी तरह से फटकारा भी! तुम्हारी उस फटकार में भी ग़ज़ब का मिठास था। तुम्हारे उस वेष में ऐसा मालूम पड़ा, मानों तुम्हारे रूप में, साक्षात् वीणावादिनी देवी सरस्वती ने भूतल पर अवतरित होकर हमें सांसारिक मोह-रूपी अज्ञानान्धकार से उबारने और अखण्ड ज्ञान के रूप में कर्तव्य-शास्त्र का पाठ पढ़ाने ही के लिए हमारे घर पधारने का कष्ट किया है। तुम्हारी बातें हमें बहुत स्पष्ट और भली मालूम पड़ीं। परन्तु इतना सावधान करने पर भी न जानें क्यों मेरा हृदय अधिकाधिक तुम्हारी ओर इस प्रकार खिंचता गया, जैसे चुम्बक की आकर्षण-शक्ति से लोहा खिंच आता है। हमारे मन में यह शङ्का ज़रूर थी कि जब तुम स्वयं मुझसे प्रेम नहीं करतीं, तब मुझे बार-बार नङ्गे रूप में अपना प्रेम प्रदर्शित करने का अवसर ही क्यों देती हो? और यदि मुझे बार-बार प्रेम-सम्बन्धी बातें कहने, और अपना हार्दिक विचार प्रकट करने का अवसर देती हो, तो इसका स्पष्ट अर्थ यही है कि तुम भी स्वयं मुझे प्यार करती हो, और मुझे छोड़ कर तुम स्वयं भी एक क्षण को अलग होना नहीं चाहतीं। मुझसे मिलने के कुछ महीने बाद ही तुमने यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि जिस क्षण तुमने मुझे पहले-पहल देखा, उसी क्षण से तुम्हारा हृदय भी मेरी ओर आकर्षित हो गया। इस दशा में मुझे आज यह कहने का पूरा हक़ है कि तुमने महीनों तक मुझे जो चेतावनी दी और सावधान किया तथा जिस प्रकार अपनी स्त्रियोचित हठ से ख़ूब जी भर कर परेशान किया, वे सब तुम्हारी ऊपरी बातें थीं, अथवा हमें परीक्षा की कसौटी पर कसने के लिए, अख़्तियार किए गए ढङ्ग थे। आगे चल कर तुम मुझे देखने के लिए स्वयं इतनी व्याकुल रहती थीं कि सैकड़ों मील दूर से अपना सारा काम चौपट कर मेरे पास आकर रहने लगी थीं। आने से पहले अपने एक पत्र में तुमने बड़े करुणापूर्ण शब्दों में मुझे लिखा था:—

"अरे भाई, यदि किसी के आशापूर्ण पत्र ही से किसी दुःखी हृदय को सान्त्वना मिलती हो, तो उसे कभी-कभी पत्र तो भेज दिया करें?"

तुम्हारी इन पंक्तियों से मेरे हृदय पर उस क्षण कैसी बीती, यह आज कह सकने में बिल्कुल असमर्थ हूँ। आज तो केवल अपने कलेजे को थाम कर यही कहने का साहस कर सकता हूँ कि तुम्हारे उस पत्र से मेरे मन में न जाने कितने पुराने संस्कार जाग उठे, और मेरे दुखी दिल में एक ऐसा दर्द पैदा हो गया, जो एक क्षण को भी भुलाया नहीं भूलता। पत्र से तुम्हारी स्मृति हरी हो उठी और तुम्हारी मञ्जुल मूर्ति आँखों के सामने आकर अपने स्वाभाविक रूप में थिरक-थिरक कर, नाचने लगी। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के शब्दों में सचमुच मेरी यह दशा हो गई:—

पहिले ही जाय मिले गुन में श्रवन फेर,
रूप-सुधा मधि कीनों नैनहू पयान है।
हँसनि, नटनि, चितवनि, मुसुकानि,
सुघराई रसिकाई मिली मति पयपान है।
मोहि-मोहि मोहनमयी री मन मेरो भयो,
'हरीचन्द' भेद ना परत कछु जान है।
कान्ह भए प्रानमय कि प्रान भए कान्हमय,
हिय में न जानि परै कान्ह है कि प्रान है॥

पता नहीं, तुमने अपने जीवन में यह दशा कभी अनुभव की है या नहीं? यहाँ तो बहुधा यही हाल रहता है। दो-चार बार, ऐसे समय, जबकि तुम्हारी मधुर स्मृति का दर्द मेरे कलेजे में टीस मार रहा था, अचानक तुम मेरी आँखों के सामने आकर खड़ी हो गई हो, उस समय, जब कि पहले से तुम्हारे आने की कोई सम्भावना नहीं थी। इसका हृदय पर सचमुच बड़ा विचित्र सा प्रभाव पड़ा है। ज़रा सा कहीं खटका हो, तो यही मालूम पड़ता है कि तुम्हारे पैरों की आहट है! द्वार पर कोई गाड़ी आकर खड़ी हो, तो यही मालूम पड़ता है कि तुम आगई। सोते-जागते, उठते-बैठते मुँह से निरन्तर निकलता है:—

"अँखियाँ हरि दरसन की प्यासीं,
देख्यौ चाहत कमल-नैन को निसि-दिन रहत उसासी।"

आख़िर इस पागलपन की भी कोई हद है? ग़ालिब के शब्दों में कहें तो कहना पड़ता है :—

मुहब्बत में नहीं है फ़र्क़ जीने और मरने में,
उसीको देख कर जीते हैं जिस काफ़िर पै दम निकले!

तुम्हारे प्रथम दर्शन के बाद के चार-पाँच महीने कितनी बेक़रारी में कटे, इसे तुम स्वयं जानती हो। एक दिन शाम को, तुम्हारी याद में, मैं अपने पलँग पर पड़ा हुआ मछली की तरह तड़प रहा था। दम निकल रहा था। गला सूख रहा था। अपने साथी से पानी माँगा। रह-रह कर, घूँट-घूँट करके थोड़ी देर तक पानी गले से नीचे उतारा और एक ठण्डी आह के साथ गिलास रख दिया। उस वक्त मेरे साथी का चेहरा बहुत उदास था। उसकी आँखों में आँसू भरे हुए थे। रुँधे हुए कण्ठ से उसने कहा :—

"मुझे ऐसा मालूम पड़ता है कि इस स्त्री ने तुम्हारे ऊपर कुछ जादू कर दिया!" इतना कह कर उसकी आँखों से टप-टप आँसू गिरने लगे। मैंने उठ कर अपने रूमाल से उसके आँसू पोंछे और बहुत समझा कर सान्त्वना दी कि नहीं, बात ऐसी नहीं है, थोड़े ही दिन में मेरी हालत ठीक हो जायगी, कोई विशेष चिन्ता की बात नहीं है। मेरे साथी को पक्का विश्वास था कि तुम पर प्रेमासक्त होने के कारण ही मेरे प्राणों पर आ बनी है! इसी कारण उस भारी सङ्कट से मेरे प्राण बचाने के लिए उसने तुम्हारी बड़ी अनुनय-विनय की और तुम्हारे पैरों पर सर रख कर, तुमसे यहाँ तक कहा कि "किसी तरह इनके प्राण बचा लो, मैं आजीवन तुम्हारा सेवक बन कर रहूँगा!"

इस घटना से क्या अब भी तुम्हें इस बात में सन्देह है कि तुमने, अथवा तुम्हारी आँखों ने, मिलते ही मेरे ऊपर ग़ज़ब का वार किया; ऐसे मोहन-मन्त्र का प्रयोग किया, जिसके मारे मुझे लेने के देने पड़ गए। कितनी रातें मैंने तुम्हारी गोद में सिर रख कर सिसकते हुए काटी हैं, और कितनी रातें तुम्हारे वियोग में तारे गिनते हुए काटी हैं, इसका कोई हिसाब भी लगाया जा सकता है? कितने दिन और महीने तुम्हारे प्रथम-दर्शन के 'सुन्दर-काण्ड' में आए और चले गए, इसका भी तुम्हें कुछ पता है? इस समय रामचरित-मानस की यह चौपाई रह-रह कर याद आ रही है :—

मिलत एक दारुण दुख देहीं।
बिछुरत एक प्राण हरि लेहीं॥

तुम अपने आपको सत्य और स्वतन्त्रता की पक्ष-पातिनी बतलाती हो। इसी से, हाँ, केवल इसी कारण तुमसे मैं कहता हूँ कि हृदय पर हाथ रख कर सच बता दो कि क्या तुम्हारे अन्दर उक्त चौपाई में कही गई दोनों ही बातें मौजूद नहीं हैं?

मिलते समय, प्रथम दर्शन में तुम्हारी मद-भरी आँखों ने जो ग़ज़ब ढाया, उससे मेरे प्राणों पर नौबत आ गई। और अब, तुम्हारे वियोग में, उन प्राणों का हाल क्या है, वे कितनी जल्दी और कैसी द्रुत गति से इस मिट्टी के कटघरे को छोड़ कर आज़ाद हो जाना चाहते हैं, यह बताने में बेचारी लेखनी बिलकुल असमर्थ है। यदि तुम्हारे अन्दर ईश्वर ने सचमुच वह दर्द-भरा दिल दिया है, जो एक व्यथित हृदय की, दर्द-भरे दिल की कसक को अनुभव कर सके, तो तुम बहुत दूर रह कर भी, उस पीड़ा को अनुभव कर सकती हो, जिसमें यह कह कर प्राण निकलना ही चाहते हैं :—

दो ही हिचकी में हुआ बीमारे ग़म का ख़ात्मा,
एक हिचकी मौत की थी एक तुम्हारी याद की।

यदि तुम्हारे अन्दर अब वह हृदय ही नहीं है, जो पहले था, तो मुझे सचमुच तुमसे कोई शिकायत नहीं है, इसलिए कि तुम तो अपने आपको किसी भी तरह के सांसारिक बन्धनों से 'आज़ाद' कर ही चुकी हो। और मैं? मैं क्या कहूँ? कविवर 'दर्द' के शब्दों में इतना ही कह सकता हूँ :—

किसी से क्या बयाँ कीजे बस अपने हाल अबतर का,
दिल उसके हाथ दे बैठे जिसे जाना न पहचाना।

और महाकवि अकबर के शब्दों में यह भी कहने के लिए विवश हूँ :—

मुसीबत ऐन राहत है अगर हो आशिक़े सादिक़।।
कोई परवाने से पूछे कि जलने में मज़ा क्या है॥

बस, केवल इतना कह कर ही आज तुम्हारे प्रथम दर्शन की अद्भुत चर्चा समाप्त करता हूँ। अभी आगे

बहुत-कुछ कहना है। समय-समय पर मन में निरन्तर उठते रहने वाले उद्गारों के रूप में सचमुच बहुत कुछ कहना है। बिना कहे रहा नहीं जायगा। तुमने तो पत्र न लिखने की क़सम ही खा ली है। यह भी अच्छा हुआ। तुम इस बला से आसानी से इतनी जल्दी छुट-कारा पा गईं! अब तुम्हारी बला ले, कोई मरे, चाहे जिये! भगवान तुम्हारा भला करें। कभी तुम्हें बीती हुई बातों की याद भी न आवे। कभी तुम्हें स्वप्न में भी हमारे ऐसे फक्कड़ आदमी का ख़याल न हो, जिसे तुम्हारी ऐसी मङ्गलमयी मनोहारिणी महिला ने कभी अपने जीवन का साथी बनाया था और जिसे, तुमने उस समय 'प्राणेश्वर' के नाम से पुकारा था, जो प्रकृति-नटी के रङ्ग-मञ्च पर, प्रकृति और पुरुष की अनुपम मानव-लीला का सबसे उत्कृष्ट और सचमुच जीवन का वह मधुर, स्वर्गीय और नैसर्गिक समय होता है, जिस पर समस्त सृष्टि के क्रम-विकास की समस्या निर्भर है!

मैं सचमुच फक्कड़ हूँ, परन्तु कोरा 'फक्कड़' ही नहीं हूँ। मेरे सामने उत्कृष्ट प्रेम और अनुपम बलिदान का वह सुनहला और जीता-जागता आदर्श है, जिस पर मेरे और तुम्हारे ही नहीं, किन्तु कोटि-कोटि मानव-तनधारियों के शत-शत जीवन निछावर किए जा सकते हैं। समय आवेगा, जब तुम स्वयं देख लोगी कि वह फक्कड़, तुम्हारा वही भुलाया हुआ साथी, जिसे तुम अपनी अधिकार-लिप्सा और मानव-जीवन का सर्वनाश करने वाली स्वच्छन्दता की सनक में, अपनी व्यर्थ सी तुच्छ सांसारिक इच्छाओं को पूरा करने में बिलकुल निकम्मा और असमर्थ समझती थीं, अपने पुनीत, उज्ज्वल और उच्चतम आदर्श की दीप-शिखा पर पतङ्ग की भाँति बलि चढ़ गया!

तुम्हारा वही

—प्रमोद

परिवर्तन

[श्री० सीताराम 'प्रभास']

यौवन का वह प्रथमोन्माद!
समझा उसको सत्य-नित्य है, पर वह तो था निरा प्रमाद।

अञ्चल से ढँक कर मतवाली,
छलकाती मदिरा की प्याली,
प्राची में उतरी थी लाली;
अपर-लोक का नव सम्बाद।
यौवन का वह प्रथमोन्माद!

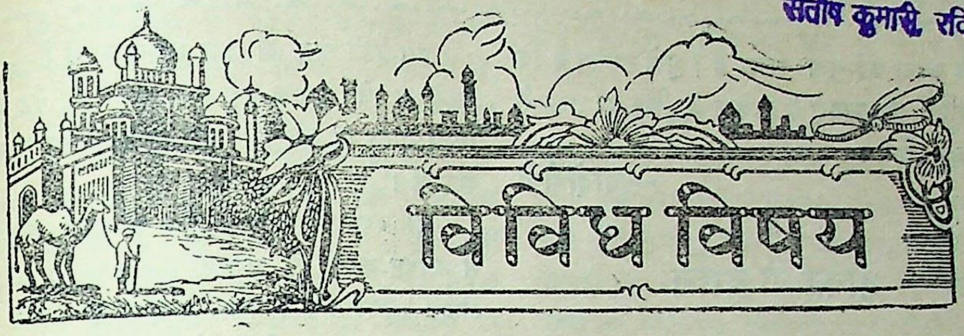
❀

मधु-अधरों का मधु-सञ्चालन,
कण-कण में छवि का आकर्षण,
स्वर्ण-स्वप्न के सुखमय दर्शन;
कहीं नहीं था विरस विषाद।
यौवन का वह प्रथमोन्माद!

मुझसे रति-शृङ्गार हुआ था,
जग में तब अभिसार हुआ था,
सुख-सौरभ-सञ्चार हुआ था;
कौन कराता 'तब' की याद?
यौवन का वह प्रथमोन्माद!

❀

व्रज-कुञ्जों में कूक रही थी—
कोकिल, रस की धार बही थी,
वैभव का भण्डार मही थी;
आया पतझड़ इसके बाद।
यौवन का वह प्रथमोन्माद!



समाज में स्त्रियों का स्थान

वर्तमान काल जागृति का है। जहाँ समाज में हर प्रकार से जागृति पैदा हो रही है, वहाँ स्त्री-समाज में भी जागृति का पैदा होना अनिवार्य है। इसी से आजकल भारत का महिला-समाज भी एक प्रकार से अपनी निद्रा से जाग रहा है। अब प्रायः स्त्रियों को हर प्रकार से समाज में उच्च दृष्टि से देखा जा रहा है; किन्तु फिर भी बहुत से पुराने विचारों के व्यक्ति स्त्रियों की जागृति को नहीं देख सकते। आवश्यकता अब इस बात की है कि जब तक स्त्री-समाज पुरुषों की तरह समानाधिकार प्राप्त नहीं कर सकता, तब तक समाज का उत्थान असम्भव है। पुरुष और स्त्री का स्थान समाज में उन गाड़ी के घोड़ों की तरह है जो साथ-साथ चलते हैं। यदि उनमें से एक आगे और दूसरा पीछे हो जाय तो गाड़ी की गति रुक जाती है, इसी प्रकार समाज में भी केवल पुरुषों के ही उन्नति करने अथवा स्त्रियों के ही उन्नति करने से काम नहीं बनता। समाज तभी अग्रसर होता है, जब समाज के दोनों अङ्ग साथ-साथ तरक़्क़ी करें।

समाज में स्त्रियों को सदा बराबरी का दर्जा मिलना चाहिए। प्राचीन काल में भी, जब कि भारत सभ्यता के सर्वोच्च शिखर पर था, स्त्रियों को पुरुषों ही की तरह समानाधिकार थे। स्त्रियाँ पुरुषों ही की तरह पढ़ी-लिखी और विदुषी हुआ करती थीं। अब भी बहुत सी लड़कियाँ, जिनको उचित रूप से शिक्षा दी जाती है, लड़कों की अपेक्षा पढ़ने-लिखने में अधिक योग्य निकलती हैं।

बहुत से लोगों का यह कहना है कि यदि स्त्रियाँ पढ़-लिख कर अधिक योग्य बन जावेंगी, तो गृहस्थ-जीवन अधिक सुखमय नहीं बना सकेंगी। उनका यह आक्षेप सर्वथा निर्मूल है। स्त्रियाँ जितना पढ़ेंगी, उतना ही अधिक गृहस्थ-जीवन सुखमय बनेगा और वे उन्नति भी कर सकेंगी।

दूसरा विचारणीय प्रश्न देश की नवयुवतियों के सामने यह है कि वे शीघ्र विवाह करें अथवा नहीं। आजकल देश के सामने आर्थिक प्रश्न बड़ा ही भीषण है। अभाग्यवश, हमारे देश में, विवाह गृहस्थ-जीवन को सुखमय बनाने के लिए नहीं, बल्कि उसे समाज का एक बोझ समझ कर किया जाता है। चाहे भोजन और वस्त्र को भी पैसा न हो, परन्तु फिर भी माँ-बाप बालक-बालिकाओं का विवाह कर देते हैं, चाहे विवाह के लिए क़र्ज़ ही क्यों न लेना पड़े। मेरी समझ में ऐसे विवाहों से समाज सुखमय न बन कर दुखमय ही बनता है। ख़ास कर लड़कियों को, लड़कों को भी, विवाह के समय यह देख लेना चाहिए कि क्या उनका विवाह होने पर वे गृहस्थी के बोझ को सँभालने के योग्य हैं, अथवा नहीं। यदि वे गृहस्थी का व्यय-भार सहन करने को तय्यार नहीं हैं, यदि उनके पास पुष्कल धन नहीं है, तो उन्हें विवाह-बन्धन नहीं जोड़ना चाहिए।

प्रतिदिन हम देखती हैं कि बालक-बालिकाओं का बहुत कम उम्र में पाणिग्रहण कर दिया जाता है, परन्तु होश सँभालने पर वे अपने को गृहस्थी का बोझ सँभालने पर अयोग्य पाते हैं। सन्तान के पैदा होने पर भी वे उसकी शिक्षा आदि का प्रबन्ध नहीं कर सकते। इसलिए नवयुवतियों को चाहिए कि वे तब तक शादी न करें, जब तक कि अपने को स्वयं इस योग्य न समझ लें कि वे गृहस्थी को सँभाल सकेंगी। विवाह-बन्धन में फँस कर दुखमय जीवन बिताने से आजन्म अविवाहित रह कर देश-सेवा करना तथा समाज

का हित करना कई गुना अच्छा है ? मुझे उम्मीद है कि मेरी बहिनें स्त्री-समाज के उत्थान के लिए हर तरह से प्रयत्नशील बनेंगी।

—चन्दोबीबी

टीका से हानि

'चाँद' के किसी गत अङ्क में श्रीयुत चन्द्रशेखर जी शर्मा का "टीका की भीषण हानियों का भ्रम-निवारण" शीर्षक लेख पढ़ कर आश्चर्य हुआ। आपने अपने लेख के प्रारम्भ ही में महाशय कृष्णगोपाल दत्त के जनवरी सन् १९३० के "टीका से भीषण हानियाँ" शीर्षक लेख को निराधार और निर्मूल बताने की चेष्टा की है। उदाहरण में आप लिखते हैं कि "श्रीकृष्णदत्त जी शायद लिम्फ़ (Lymph) और पस (Puss) को एक ही पदार्थ समझते हैं।" हम शर्मा जी से निवेदन करते हैं कि यदि वे एक पदार्थ नहीं हैं तो सजातीय अवश्य हैं। गाय अथवा बछड़े के स्तनों पर सुई द्वारा घातक क्रिया करने के बाद जो पदार्थ निकलता है, आप उसको "लिम्फ़" शब्द के नाम से सम्बोधित करते हैं और कृष्णदत्त जी ने शायद उसको "पस" शब्द के नाम से सम्बोधित किया है। परन्तु मात्र शब्द-भेद से पदार्थ की वास्तविकता में कोई अन्तर नहीं पड़ता। लिम्फ़ एक पारिभाषिक शब्द है, जिसका अर्थ शर्मा जी ने "एक प्रकार का निर्मल जल जैसा पदार्थ" किया है।

सम्भवतः आप उसको गङ्गोत्तरी के गङ्गाजल से भी अधिक निर्मल और पवित्र मानते हों, परन्तु वस्तुतः वह होता महान घृणित पदार्थ है और उसके लिए हमारी दृष्टि में तो "चेप" अथवा "पीप" शब्द ही अधिक उपयुक्त जान पड़ते हैं। आगे चल कर शर्मा जी लिखते हैं कि— "एक बालक की बाँह पर लगाए हुए टीके के घाव से लिम्फ़ लेकर दूसरे बालक को टीका लगाने की सम्भवतः सदोष प्रणाली का प्रचार था, तब भी एक बालक का पीप नहीं, बल्कि लिम्फ़ दूसरे में प्रविष्ट किया जाता था।" इत्यादि।

शर्मा जी को कदाचित् लिम्फ़ की निर्मलता और पवित्रता पर अधिक विश्वास है, इसीसे आपने यहाँ पर दूसरी बार फिर उसका उपयोग किया है।

हम इसी बात को इस प्रकार कहते हैं—"गाय या बछड़े का चेप घातक सुई द्वारा बच्चे की देह में प्रविष्ट किया जाता था और फिर उस बच्चे का चेप दूसरे को।" इत्यादि।

एक बच्चे के हाथ के चेप को दूसरे बच्चे के हाथ में प्रविष्ट करने की प्रणाली (Arm to Arm Method) स्वयं टीके के प्रचारकों द्वारा ही सदोष सिद्ध हो चुकी है, परन्तु उसको शर्मा जी अभी तक "सम्भवतः सदोष प्रणाली" कहते हैं। शायद उनको अभी उसके सदोष होने में सन्देह है।

शर्मा जी वैज्ञानिक रीति से तैयार किए हुए लिम्फ़ को ('Glycerinated Calf Lymph') शायद स्वर्ग से उतरा हुआ आशीर्वाद-रूप मानते हैं, इसी से लिखते हैं कि "पुरानी रीति का भय दिखा कर लोगों को टीके से वञ्चित रखना महान अनर्थकारी है।" शर्मा जी को विदित हो कि टीका लगाने की पुरानी रीति मात्र ही अनर्थकारी नहीं है, किन्तु स्वयं टीका भी अनर्थकारी है, और केवल अनर्थकारी ही नहीं, बल्कि बहुत-सी दशाओं में प्राणघातक भी सिद्ध हो चुका है। शर्मा जी ने आगे चल कर टीका की उपयोगिता को प्रमाणित करने के लिए चेचक से होने वाली मृत्यु-संख्या के कुछ आँकड़े दिए हैं। उनमें आपने मद्रास के बारे में लिखा है कि "सन् १८८४ में टीका लगाए जाने से पूर्व के दस वर्ष (१८७५-१८८४) तक चेचक से वार्षिक मृत्यु-संख्या ४२ प्रति एक लाख आबादी में थी, जो १८८५-१८९४ में घट कर केवल ६ प्रति लाख रह गई।" हम शर्मा जी से नम्रतापूर्वक पूछने की धृष्टता करते हैं कि जब उपर्युक्त दस वर्षों में चेचक की मृत्यु-संख्या टीका लगाने से ३६ प्रति लाख घट गई, तब सन् १८९५ से १९३१ तक के ३६ वर्षों के बाद अब मद्रास प्रान्त में चेचक से अवश्य एक भी मृत्यु न होती होगी! आगे आप लिखते हैं कि "यह जान कर आश्चर्य होगा कि जर्मनी में दुबारा टीका लगाने से चेचक का निकलना प्रायः बन्द हो गया है।" टीके के प्रचारकों द्वारा फैलाई हुई इस कल्पित बात को पढ़ कर हमें भी आश्चर्य होता है। परन्तु जर्मनी सम्बन्धी बात कल्पित है और इसके लिए हमारे पास प्रमाण है। आगे चल कर आप लिखते हैं कि "टीके के प्रचार से पूर्व एक बड़ी संख्या छोटे बच्चों की देवीमाता

की भेंट हो जाया करती थी, रहे-सहे जन्म भर के लिए अन्धे और कुरूप हो जाते थे।" धन्यवाद है शर्मा जी को, इस उच्च कल्पना के लिए; शायद चेचक के टीके से पूर्व संसार अन्धे और कुरूपों का भण्डार ही रहा होगा।

आगे चल कर शर्मा जी ने अपने लेख में डॉक्टर जेनर की प्रशंसा के पुल बाँध दिए हैं। परन्तु हम डॉक्टर जेनर की कीर्ति से भली प्रकार परिचित हैं। वे किस भाँति डॉक्टर बने, इङ्गलैण्ड की माताओं पर उन्होंने किस प्रकार अपना प्रभाव जमाया, इत्यादि विषयों को एक बार शर्मा जी जान लें तो अच्छा है। आज तक किसी भी देश में दो-दो, तीन-तीन बार टीका लगाने पर भी चेचक का निकलना निर्मूल नहीं हुआ है। वरन् इससे और अनेक प्रकार के रोगों का उद्भव हुआ है। अमुक व्यक्ति को चेचक निकलेगी या नहीं, इसका कोई निश्चय नहीं है। टीका लगाने पर भी निकलेगी कि नहीं, इसका भी कोई निश्चय नहीं है। आप कहेंगे कि टीका लगाने पर चेचक कम निकलती है। परन्तु प्रथम तो इस बात का कोई प्रमाण नहीं है। द्वितीय टीका लगाने पर भी कभी-कभी इतनी अधिक चेचक निकलती है कि कोई-कोई अन्धा भी हो जाता है। जब तक मनुष्य क़ुदरत की तरफ़ पीछे नहीं हटेंगे, तब तक चेचक का निकलना भी चालू रहेगा।

आज यूरोप और अमेरिका के नगरों में से टीका लगाने की आवश्यक योजना को हटाया जा रहा है। शिकागो इसका प्रमाण है, और स्वयं इङ्गलैण्ड में भी मनुष्य टीका से मुक्त कर दिए जाते हैं। परन्तु भारत जैसे पराधीन देश में जो न हो वह थोड़ा है। यथा-सम्भव इस देश में जब टीका का क़ानून बना था, उस समय देश के प्रतिनिधि कौन्सिलों में नहीं जाते थे। आज इस क़ानून के संशोधन की परमावश्यकता है और निकट भविष्य में कम से कम आवश्यक स्थान पर ऐच्छिक तो अवश्य ही हो जाना चाहिए। इसके लिए हम कौन्सिल के सदस्यों तथा उम्मेदवारों का ध्यान इस ओर आकर्षित करते हैं। वैज्ञानिक अनुभवों के नाम पर आज तक मनुष्य जाति के होनहार और निर्दोष बालकों पर जो घातकी क्रिया की जा रही है उसका कौन उत्तर-दायी है? बालकों के ईश्वर-प्रदत्त शुद्ध रुधिर में विष का बीज आरोपित किया जा रहा है। यहीं तक नहीं, इस लिम्फ़ की उत्पत्ति भी अति घृणित और क्रूरता-पूर्ण है।

गाय वा बछड़े को मेज़ पर डाल कर उसके आगे और पीछे के पाँवों को खूँटों से जकड़ कर बाँधना तथा उनके स्तन भाग को सुई से गोदना कितनी हृदय-विदारक और घातकी क्रिया है। एक सहृदय व्यक्ति ही इसकी कल्पना कर सकता है। इस लिम्फ़ की बनावट इसी प्रकार की क्रूरतापूर्ण क्रियाओं द्वारा होती है, जिसको शर्मा जी ने निर्मल जल जैसा पवित्र पदार्थ कहा है।

टीके के क़ानून द्वारा हिन्दू-धर्म पर भी आघात हो रहा है। जिस गाय को हिन्दू जाति माता कह कर पूजती है, उसी के शरीर से घातकी क्रियाओं द्वारा लिम्फ़ और वह लिम्फ़, जिसकी उपयोगिता भी अभी सिद्ध नहीं हो सकी है, हिन्दू बच्चों के पवित्र रुधिर में प्रविष्ट किया जाता है, और विज्ञान के नाम पर ईश्वर और क़ुदरत के कामों में हस्तक्षेप किया जाता है। हमारी दृष्टि में तो इसे वैज्ञानिक बेहूदापन ही कहा जाना चाहिए।

आज तक टीका की उपयोगिता सिद्ध नहीं हो सकी है। इस सम्बन्ध में अङ्गरेज़ी में प्रचुर साहित्य हैं, शर्मा जी से निवेदन है, एक बार उन्हें मँगा कर पढ़ें।

—डॉक्टर विश्वनाथ त्रिवेदी, वैद्यरत्न

❀ ❀ ❀

राम-कलेवा

यद्यपि 'सूर सूर्य तुलसी शशी' वाली इस पुरानी उक्ति को हममें से अनेक बार-बार दुहराते हैं, तथापि तुलसी ने जो मानस-सुरसरि की धवल धारा बहा कर मृतवत् हिन्दू जाति में प्राण-सञ्चार किया है, वह सूर के 'सूरसागर' ने नहीं किया है। 'सूरसागर' काव्य-क्षेत्र में अपनी अगाधता और विशदता के लिए विख्यात है, पर उपयोगिता-क्षेत्र में जो काम गोस्वामी तुलसीदास के मानस ने किया है, वह 'सूरसागर' ने कदापि नहीं किया। आज विद्वज्जन 'सूरसागर' में ग़ोते लगा कर काव्य-रस का अनुपम स्वाद पा धन्य-धन्य हो जाते हैं; पर चरित्र को टकसाली बना कर अमरत्व लाभ

कराने वाला 'मानस' ही है। तुलसी ने भगवान श्रीरामचन्द्र जी का आदर्श चरित्र चित्रण कर आज से तीन सौ बरस पहले ही शिक्षा का प्रचार किया है। एक श्रीराम ही में प्रजा-पालन, भ्रातृ-प्रेम, पितृभक्ति, दाम्पत्य प्रेम और उच्च त्याग आदि एक से एक उत्कृष्ट गुणों का समावेश कर, तुलसी ने उन्हें सदा के लिए हिन्दू जाति का आराध्यदेव बना कर उनका अमर नाम हिन्दू-हृदयों पर अङ्कित कर दिया है। रामायण के प्रत्येक पात्र-चरित्र से हमें जो शिक्षा मिलती है, उससे हमारा विशेष कल्याण हो सकता है। कितनों ने रामायण और राम का आदर्श सामने रख कर अपने जीवन को धन्य बना डाला है। आज मानस की 'ढोल गँवार शूद्र पशु नारी' आदि उक्तियों को लेकर काफ़ी टीका-टिप्पणी हो रही है। कुछ दिन हुए 'माधुरी' में श्री० गोपाल दामोदर तामस्कर जी का 'रामायण में ईश्वर-चरित्र और मानव-चरित्र का असम्बद्ध सम्मिश्रण' शीर्षक एक विचारपूर्ण लेख प्रकाशित हुआ है, जो अभिनन्दनीय है।

'गङ्गा' और 'चाँद' की किसी पिछली संख्याओं में श्री० रजनीकान्त शास्त्री महोदय ने सूर्य्य-वंश और निमि-वंश की वंश-तालिका देकर श्रीराम और सीता का असमकालीन होना सिद्ध करने का एक असफल प्रयास भी कर डाला है। ऐसे ही और भी कितने विद्वान रामायण और रामचरित-मानस के सम्बन्ध में अपने विचार प्रगट करके इसकी महत्ता की छाप जन-साधारण के हृदयों पर लगाया करते हैं और अब तो ऐसे विद्वानों की भी कमी नहीं, जो मानस को सर्वश्रेष्ठ काव्य-ग्रन्थ और गोस्वामी तुलसीदास जी को एशिया का सर्वश्रेष्ठ कवि मानते हैं। अस्तु—

परन्तु मेरा विषय इन लोगों से भिन्न है। यद्यपि मूल रामचरित-मानस से मेरे शीर्षक का कोई सम्बन्ध नहीं है, तथापि क्षेपक वाली सभी रामायण की प्रतियों में 'राम कलेवा' नाम का एक अध्याय पाया जाता है। इस राम कलेवा में कैसी भद्दी-भद्दी बातें कही गई हैं, उन्हें पढ़ कर ही हमें इस विषय पर कुछ लिखने की आवश्यकता प्रतीत हुई है। आजकल हिन्दुओं में भावुकता और रूढ़ि-पालकता के सिवा और कुछ नहीं रह गया है। जो बातें, चाहे वे अच्छी हों या बुरी, बिना विचारे लोग मानते आए हैं, उसी को धार्मिकता का जामा पहना दिया गया है और उसके विरुद्ध ज़बान हिलाना तक एक अक्षम्य अपराध माना जाता है। फलतः असम्भव नहीं कि मेरे लेख को पढ़ कर कुछ रामायण-भक्त मुझ पर नास्तिक होने का इलज़ाम लगावें। परन्तु मेरा विश्वास है कि विचारशील सज्जन मेरी बातों पर ध्यान देंगे और मुझे क्षमा करेंगे। मैं रामचन्द्र और रामायण का वैसा ही भक्त हूँ, जैसा कि एक हिन्दू हो सकता है। परन्तु मैं सत्य पर धूल डालना नहीं चाहता। रामायण करोड़ों हिन्दुओं का जीवन-सर्वस्व है। हिन्दू रात-दिन उसका पाठ किया करते हैं। हमारे बच्चे भी बड़े चाव से रामायण पढ़ते और उसकी कथा सुनते तथा उसी से अपना भविष्य बनाते हैं। यह निर्विवाद सिद्ध है कि बच्चों के कोमल हृदयों पर बचपन में जो अच्छे या बुरे संस्कार पड़ जाते हैं, वे आमरण उनका साथ देते हैं। रामायण एक ऐसी चीज़ है, जिसके द्वारा हिन्दू अपने बच्चों का चरित्र निर्माण कर सकते हैं। बच्चों के उपकार के नाम पर और सदाचार की रक्षा के लिए, ऐसे पुण्य ग्रन्थ से वाहियात बातें हमें निकाल डालनी चाहिए, जिससे हमारा और हमारे मासूम बच्चों का भविष्य उज्ज्वल बन सके।

अब मैं 'राम कलेवा' के उन स्थलों को यहाँ रखता हूँ, जिनसे मेरा मतभेद है और प्रत्येक सुधार-प्रेमी भाई से मैं आशा रखता हूँ कि वे हमारी बातों पर गम्भीरता-पूर्वक विचार कर अपने मतामत अन्यान्य पत्रों में प्रकाशित करावेंगे। देखिए, भगवान श्रीरामचन्द्र कलेऊ कर अपने भाइयों के साथ—

राज-ऐन सब चैन युत, राजैं राजकुमार।
जिनको हास विलास लखि, लाजैं लाखन मार॥

उस समय लक्ष्मीनिधि की पत्नी सिद्धि श्रीरामचन्द्र आदि की सरहज आती हैं, और कहती हैं :—

ये चित चोर किशोर भूप के बड़े चोर तुम प्यारे।
सुरति हमारि भुलाय साँवरे सासु समीप सिधारे॥

पाठक विचार करें, यहाँ शिष्टाचार की सीमा का उल्लङ्घन किया गया है या नहीं। कितना भद्दा उपालम्भ है? एक राजघराने की युवराज्ञी को क्या साधारण शिष्टाचार का भी ज्ञान नहीं है। 'सासु समीप सिधारे'

तो कौन सा बड़ा भारी अपराध कर डाला ? ख़ैर, आगे चलिए—

हम आए तुम महलन भीतर तुमहिं न परयो जनाई।
भलो सदन है तुम्हरो प्यारी जहँ सब जाहिं समाई॥

माशा अल्लाह ! श्रीरामचन्द्र जी 'घर' शब्द का क्या अर्थ करते हैं ! आख़िर मर्यादा पुरुषोत्तम ठहरे, फिर मज़ाक़ में कैसे पीछे रह जाते ?

ख़ैर, इस पर सिद्धि जो उत्तर देती है, उसमें तो और भी कमाल कर डाला। वे स्वयं ही अपराधिनी नहीं बनीं, वरन् अपने ननदोई मर्यादा पुरुषोत्तम को भी मुलज़िम बना डाला। सुनिए—

सुनत राम के बचन लाड़िली बोली मृदु मुसकाई।
तुमरे घर की रीति लालजू यहाँ न चली चलाई॥

देखा आपने ! किस प्रकार वादी-प्रतिवादी दोनों प्रतिवादी के मुख से दोषी क़रार पा जाते हैं। ध्यान दीजिए, 'मृदु मुसकाई' 'तुमरे घर की रीति' से कौन सा गूढ़ भाव व्यक्त होता है ? इतना कह देने पर ननदोई और सरहज दोनों को शिष्टाचार का ख़याल हो आता है और वे दूसरे घर में चले जाते हैं।

सासु सुनैना के समीप महँ देत जवाब बनै ना।
पाणि पकर रघुनन्दन जी को गई लिवाय निज ऐना॥

वहाँ तो सासु के समीप अश्लीलता ढक दी गई। यहाँ कवि जी ने फ़ौरन इसकी रिपोर्ट आम जनता में कर दी। अच्छा आगे बढ़िए। सिद्धि चारो भाइयों को अपने महल में ले जाती है और आदर-सत्कार करती है। गाली दिलवाती है। फिर अन्तर्जातीय विवाह पर फब्तियाँ कसी जाती हैं। रामचन्द्र आदि की माताओं का खीर खाकर बेटा पैदा करने पर आश्चर्य प्रकट किया जाता है। यहाँ तक तो किसी तरह कुशल है। आगे ग़ज़ब देखिए। लखमीनिधि की साली, सिद्धि की छोटी बहिन चन्द्रकला, जो अब तक कुवारी है, लाल जी से कहती है—

लरकाई ते गयो लाल जी तुम तपसिन सँग माहीं।
ये छल छन्द फन्द कहँ पाए सत्य कहो हम पाहीं॥
की मुनि-नारिन के सङ्ग सीखे की निज भगिनी पासै।
मीठो सीठो स्वाद लाल जी बिन चाखे नहिं भासै॥

तारीफ़ तो यह है कि श्रीमती जी भी कुँवारी ही थीं। ख़ैर, भरत जी ने उनका भी शिकार कर डाला। सुनिए—

बोले भरत भली कह सजनी तुमहु तो अबै कुमारी।
वर्णहु पुरुष सङ्ग की बातें सो कहँ सीखेहु प्यारी॥

यह भरत जी महाराज का चित्र है, जिसे राम-कलेवाकार ने चित्रित किया है और रामचरित-मानस का एक अंश बना डाला गया है। आगे भरत जी फ़रमाते हैं—

रहे मुनिन सँग ज्ञान सिखन को सो सब सुने सुनाए।
कामिनि कामकला अब सीखन हम तुमरे ढिग आए॥

मुनि-पत्नियों की छीछालेदर तो ऊपर हो चुकी। भरत जी उसको भुला कर नई चटसार में नए गुरु जी से नई शिक्षा कामकला सीखने की याचना करते हैं। इस पर भी सिद्धि उन्हें कैसा भोला-भाला समझती है—

सिद्धि कह्यो तब सुनहु भरत जी ऐसे तुम न बखानो।
तुमरी तो गिनती साधुन महँ लोक बात का जानो॥

अब भरत जी का भोलापन भी देखिए, कैसी साधुता दिखलाते हैं—

भरत कह्यो तुम साँची कहत हो हम साधू परकाजी।
ऐसी सेवा करो कामिनी जामें हों हम राजी॥
आए ऐन अपूरब योगी अस निज मन गुन लीजै।
अधर सुधारस को दै भोजन अतिथै पूजन कीजै॥

वाह रे निराले अतिथि ! क्या कहना ? अधर-सुधारस के फलाहार की याचना ! पूरे 'दिल्ली के दलाल' निकले। योगी की याचना सुन कर आइए, हम अब आपको श्रीराम की कायरता दिखलाते हैं।

एक सखी कहै सुनहु सबै मिलि इनकी एक बड़ाई।
ऋषिमख राखन गए कुँवर ये तहँ हम अस सुधि पाई॥
इनको सुन्दर देख कामवश तिया ताड़का आई।
सो करतूति न भई लाल सों मारेहु तेहि खिसियाई॥

'सो करतूति' और 'कामवश' पर ज़रा ध्यान दीजिए। जब राम, लछमण कायर ही ठहरे, तो रण में कैसे डटते। वे दुम दबा कर भागे। अब वीर-पुङ्गव शत्रुहन जी सामने आते हैं।

बोले रिपुहन सुनहु भामिनी नाहक दोष न दीजै।
जो करतूति बनी नहीं उनते सो हमसे भरि लीजै॥
बिन जाने करतूति सबन को तुम्हरे घर भो ब्याहू।
सोऊ पछिताव न रहै पियारी अब करि लेहु समाहू॥
जाके हित तुम रोष बढ़ावहु सो मति करहु उपाई।
वैसिन सेवा में तुम्हरे हम हाज़िर चारिहु भाई॥

अब शत्रुहन जी की 'कला' पर एक रमणी आश्चर्य करती है। कहती है—

सुनि बानी रिपुदमनलाल की बोली कोउ सुकुमारी।
कहँ पाई ऐती चतुराई कहिए लाल बिचारी॥
की कहुँ मिली नारि गुण-आगर की गणिकन सँग कीनो।
तीनों भाइन ते तुमरे महँ लखियतु चिन्ह नवीनो॥

अब पुनः शत्रुहन जी का उत्तर सुनिए। देखिए प्रश्न-कर्त्री को कैसी साध्वी क़रार देते हैं।

रिपुहन कह भल कह्यो भामिनी भेदिया भेदहि जानै।
गणिका नारिन हूँ ते सौगुण तुम्हैं अधिक हम मानैं॥

लाहौल विलाक़ूवत ! बिचारी ने बड़ी मुँह की खाई। उन्हें क्या ख़याल था कि वे गणिका से भी गई बीती हैं ? फिर रिपुदमन जी की लार टपकने लगी—

हमरो तुमरो चिन्ह लाड़िली एकै भाँति लखाई।
ताते सखी हमारी तुम्हारी चाहिय अवशि सगाई॥

अब रिपुसूदन जी पीछे रह गए। सिद्धि जी की नई सूझ देखिए—

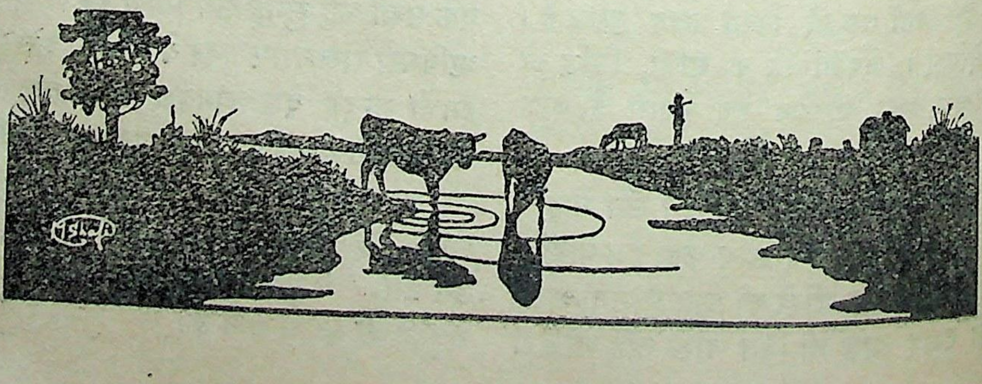
सुनि नव उक्ति युक्ति की बातें बोली सिद्धि कुमारी।
सुनिए रसिक राय रघुनन्दन आनन्दकन्द बिहारी॥
अति अभिराम कामहू मोहत मूरति देखि तुम्हारी।
कैसे बची होयँगी तुमसे अवधपुरी की नारी॥

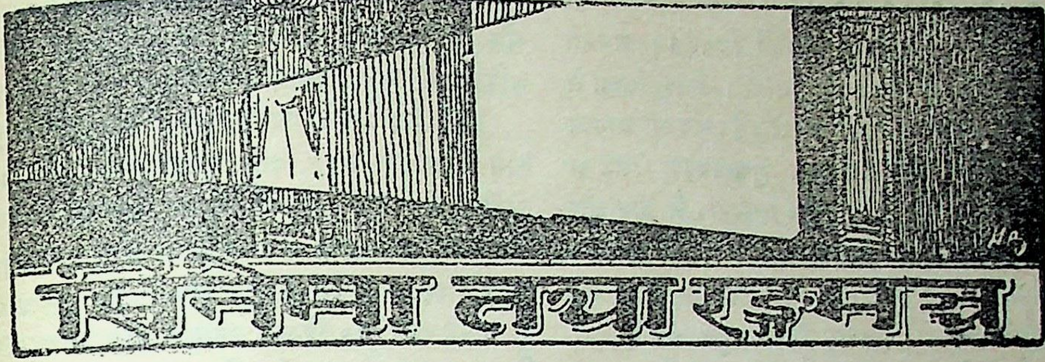
कहिए, कैसी ओछी मनोवृत्ति है !

लेख बढ़ रहा है। मैंने जो कुछ लिखा है, सद्भावना से ही प्रेरित होकर लिखा है। पाठक स्वयं 'राम कलेवा' पढ़ कर विचार करें। क्या यह वर्तमान निकृष्ट समाज के गन्दे चित्र नहीं हैं ? हम यह नहीं मानते कि ऐसी-ऐसी वाहियात बातें श्रीराम जी के नेतृत्व में हुई होंगी और उस समय, जब कि 'मातृवत् परदारेषु' की क़द्र करना लोग अपना परम कर्त्तव्य समझते थे। आजकल जैसे छैल-चिकनिया उस ज़माने के लोग नहीं थे। और फिर श्रीराम और विदेह के यहाँ ! कैसी अनोखी बात है !!

कलाकार जब कोई चित्र तैयार करता है, तो देश, काल, पात्र का विचार कर। इतिहास-ज्ञान-शून्य कवि ने ऐसा चित्र खींच कर बड़ी भद्दी मनोवृत्ति का परिचय दिया है। 'राम कलेवा' में जो कुछ कहा गया है, वह अनहोनी बात नहीं है। आज तो इससे भी बढ़-बढ़ कर सत्यानाशी बातें होती हैं। 'राम कलेवा' जिस समय के वर्णन में कहा गया है, उस समय ऐसी बातें नहीं होती होंगी, ऐसा हमारा ख़याल है। यदि थोड़ी देर के लिए मान भी लिया जाय, तो भी रामायण जैसी पवित्र पुस्तक में ऐसी अश्लील बात नहीं रहनी चाहिए। रामायण, महाभारतादि में जो कुछ लिखा रहता है, लोग उसे 'बाबा वाक्यं प्रमाणम्' मान लेते हैं। क्या सुरुचि के विचार से यह नहीं हो सकता कि धार्मिक कहलाने वाली ऐसी-ऐसी पुस्तकों से ऐसे-ऐसे भद्दे अवतरण नष्ट कर डाले जायँ ? 'राम कलेवा' के अन्त में कुछ आध्यात्मिक बातें कह कर 'इति' कर दिया गया है, फिर भी उपर्युक्त बातें उपेक्षणीय नहीं हैं। विदग्ध साहित्यिक विचार करें।

—मैथिलीशरण 'नेहनिधि'





नवीनचन्द्र

['चाँद' के प्रतिनिधि द्वारा]

भारतीय सिनेमा-संसार में ख्याति पाने वाले अभिनेताओं की संख्या उतनी नहीं है, जितनी अभिनेत्रियों की है। इसके कई कारण हो सकते हैं। परन्तु उनमें से एक यह भी है कि वास्तव में भारतीय सिनेमा-जगत् में अच्छे अभिनेताओं की कमी है। प्रथम श्रेणी के अभिनेता उँगलियों पर गिने जा सकते हैं। नवीनचन्द्र उन्हीं में से एक हैं।

नवीनचन्द्र का नाम 'मारामारी' के फ़िल्मों के कारण अधिक हुआ है। इसी प्रकार के फ़िल्मों के कारण कई अन्य अभिनेताओं ने भी ख्याति पाई है। उनमें से विट्ठल का नाम उल्लेखनीय है। परन्तु नवीनचन्द्र और उनकी श्रेणी के अन्य अभिनेताओं में अन्तर है। वह यह कि जहाँ अन्य अभिनेता कैमरा की सहायता से साहस के काम (Stunts) करते हुए दिखाए जाते हैं, वहाँ नवीनचन्द्र वास्तव में उन सब कामों को करते हैं।

उस दिन जब मैं उनसे मिला तो मैंने उनसे 'चाँद' के लिए उनके जीवन की कुछ बातें देने की प्रार्थना की। आपने हँस कर टालना चाहा। कहा—क्या कीजिएगा? लोग जिस रूप में मुझे फ़िल्मों में देखते हैं, वही उनके लिए काफ़ी है।

"क्षमा कीजिए। आप फ़िल्मों में तो बहुरुपिया हैं। लोग उस बहुरुपियापन के परदे को फाड़ कर आपके असली स्वरूप को देखना चाहते हैं!"—मैं बोला।

और आपने फिर हँसते हुए अपने जीवन का वृत्तान्त सुनाना प्रारम्भ कर दिया।

आपका वास्तविक नाम श्री० नरहरि जोशी है। 'नवीनचन्द्र' नाम आपने फ़िल्मों के लिए रख लिया है। परन्तु अब आप इसी नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं। आपका जन्म १९०८ ईस्वी में चुरोंडा नामक ग्राम में हुआ था, जो बड़ौदा के पास है! आपके पिता के पास काफ़ी सम्पत्ति थी। परन्तु व्यापार में वह सब कुछ खो बैठे। फल यह हुआ कि नवीनचन्द्र को अपना विद्यार्थी-जीवन कष्टों और आपत्तियों के बीच में व्यतीत करना पड़ा। आप पढ़ाई के साथ एक प्रेस में प्रूफ़ देखने आदि का काम भी करते थे। और इस प्रकार विद्यार्थी-जीवन का व्यय स्वयं ही चलाते थे। इस प्रकार आपको कष्टों का सामना तो करना पड़ा, परन्तु उनसे स्वावलम्बन की शिक्षा मिली, जिसे नवीनचन्द्र आज भी अपने विद्यार्थी-जीवन का सबसे मधुर फल समझते हैं।

जिस समय नवीनचन्द्र स्कूल में थे, उस समय आपका शरीर बहुत कमज़ोर था। आपके पतले-दुबले शरीर को देख कर आपके साथी आपको 'छोकरी' कह कर मज़ाक़ उड़ाया करते थे। इससे ऊब कर आपने हृष्ट-पुष्ट बनने का निश्चय किया और व्यायाम प्रारम्भ कर दिया। कुछ दिनों में ही आपका शरीर स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट हो गया। इस उत्तम स्वास्थ्य का ही परिणाम है कि आप फ़िल्मों में कठिन से कठिन और भयावह

से भयावह कार्य करने से भी नहीं हिचकते। अब भी आप व्यायाम के उतने ही प्रेमी हैं। नित्य नियम से आप ८-१० मील का भ्रमण कर लेते हैं। अब भी आपका सुडौल शरीर और कान्तिमय मुख-मण्डल देखते ही बनता है। आपका विचार बी० एस-सी० में जीव और रसायन विज्ञान का अध्ययन करके अमेरिका स्वास्थ्य, व्यायाम आदि की शिक्षा के लिए जाने का था। इसके अतिरिक्त आपको ज्ञानयोग से भी बहुत प्रेम है। कई संन्यासियों से आपने इसकी शिक्षा प्राप्त की है।

फ़िल्मों में काम करने का आपका लेश मात्र भी विचार नहीं था, न आपको इस ओर अधिक दिलचस्पी ही थी। फ़िल्मों में आपका आगमन अचानक ही हो गया। एक बार छुट्टियों में आप घर जा रहे थे। मार्ग में आपने डाईरेक्टर मजूमदार और श्री० याज्ञिक का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। उन्हें आपका शरीर, स्वास्थ्य आदि देख कर यह इच्छा हुई कि आप उनके एक फ़िल्म 'पावागढ़ का पतन' में काम करें। इस विचार से कि इस प्रकार छुट्टियों में कुछ रुपए कमा लेने से आप आगामी वर्ष का कुछ काम चला सकेंगे, आपने उनकी बात स्वीकार कर ली। और इस प्रकार सन् १९२८ में आप एकाएक फ़िल्म-जगत् में आए।

'पावागढ़ का पतन' की सफलता से श्री० याज्ञिक का ध्यान आपकी ओर विशेष रूप से गया। परन्तु कॉलेज खुलने पर आप फिर पढ़ने चले गए। दूसरे वर्ष की छुट्टियों में फिर आपके सामने वही प्रस्ताव आया। इस बार अधिक अर्थ-प्राप्ति की आशा थी। अतः आपने वह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। इस बार आपने 'यङ्ग इण्डिया' नामक फ़िल्म बनाया। यह फ़िल्म आपकी छुट्टियों में पूरा न हो सका। इतने में ही श्री० याज्ञिक ने आपसे स्थायी रूप से कम्पनी में काम करने की प्रार्थना की। इस प्रस्ताव को स्वीकार करने से आपको पढ़ना छोड़ना पड़ेगा, यह स्पष्ट था। आपने बहुत सोच-विचार के बाद पढ़ना छोड़ दिया और स्थायी रूप से फ़िल्मों में काम करने लगे। इस प्रकार सिनेमा ने अनायास ही एक कलाकार को प्राप्त कर लिया। उस समय फ़िल्मों में जिस प्रकार काम किया जाता था, वह आपको पसन्द न था। परन्तु आपको यह आशा थी कि आप कुछ सुधार कर सकेंगे। आपको केवल 'मारामारी' और लड़ाई आदि ही पसन्द नहीं है। आप भावपूर्ण अभिनय को अधिक पसन्द करते हैं।

इसके बाद आपने शारदा कम्पनी के दो फ़िल्मों में काम किया। उसके बाद सुरेश कम्पनी की तीन तस्वीरों में। इसी कम्पनी से आपने 'मारामारी' के फ़िल्मों में काम करना प्रारम्भ किया और उसे मेहता-लुहार प्रोडक्शन कम्पनी ने ख़ूब बढ़ा दिया। इस कम्पनी ने आपके साथ १० फ़िल्म बनाए। अब आप रॉयल फ़िल्म कम्पनी की सम्पत्ति हैं। आप इस कम्पनी के लिए 'चलता-पुर्ज़ा' और 'बदमाश का बेटा' ये दो 'चुप-चित्र' बना चुके हैं। तीसरा 'गुनहगार' शीघ्र ही तैयार होने वाला है। इसके बाद आपका एक बोलता फ़िल्म बनाया जायगा।

आप अभिनय ही करते हों, यही बात नहीं। आप कहानी भी लिखते हैं और फ़िल्म को डाइरेक्ट करने में भी सहायता देते हैं। 'बदमाश का बेटा' के लिए सीन-रियाँ आपने ही लिखी थीं और उसके अङ्गरेज़ी के टाइ-टिल आपकी लेखन-शैली के द्योतक हैं।

आपके बोलते फ़िल्मों के विषय में बड़े सुन्दर विचार हैं। इस विषय पर प्रश्न का उत्तर देते हुए आपने कहा—मैं समझता हूँ कि बोलते फ़िल्म सिनेमा के प्रेमियों के लिए अधिक मनोरञ्जक हो सकेंगे, क्योंकि शब्द का समावेश फ़िल्मों में अधिक स्वाभाविकता पैदा कर देता है। परन्तु जिस प्रकार आजकल फ़िल्म बनाए जाते हैं, उनसे मैं सहमत नहीं हूँ। आजकल के फ़िल्मों में अस्वाभाविकता तो कूट-कूट कर भरी है। जब चाहे, और जहाँ चाहे, गाने रखने की प्रणाली को भी मैं पसन्द नहीं करता।

आशा है कि आपके बोलते फ़िल्मों में इन बातों का ध्यान रक्खा जावेगा।

आपका फ़िल्मों के बाहर का जीवन अनुकरणीय है। सादगी आपका भूषण है। बनावट, अभिमान और आत्म-प्रशंसा आपको छू नहीं गई। मिलनसार ऐसे हैं कि एक बार मिलने से ही सबके मित्र बन जाते हैं। आपका विवाह हो चुका है। आपकी माता जीवित हैं। फ़िल्म-अभिनेताओं में लोग जिन दुर्गुणों की आशङ्का करते हैं, उनमें से एक भी आप में नहीं पाया जाता। अपने स्वास्थ्य का आप बहुत ध्यान रखते हैं, क्योंकि

आप जिस प्रकार का काम फ़िल्मों में करते हैं, उसके लिए यह परमावश्यक है। इसके लिए आप सब काम समय पर करने के पक्षपाती हैं।

आपको एक शिकायत है। वह यह कि अभी तक आपको कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिला, जो १००) देकर १५०) का काम आपसे ले। आप समझते हैं कि आपकी शक्ति, बल, बुद्धि और कला का पूर्णतया प्रयोग नहीं किया जा रहा है। उनमें से तीन चौथाई बिना प्रयोग के नष्ट हो रहे हैं। इससे पता लगता है कि आप किस प्रकार और कितना काम जनता को दिखाना चाहते हैं।

मुझे सबसे बड़ी प्रसन्नता यह जान कर हुई कि आप अपने विद्यार्थी-जीवन की कठिनताओं को भूले नहीं हैं। इसीलिए आप ५-६ विद्यार्थियों की सहायता कर रहे हैं। आपका घर कभी-कभी तो विद्यार्थियों का आश्रम बन जाता है। इसी से नवीनचन्द्र के हृदय की महानता और विशालता प्रगट होती है।

आशा है कि नवीनचन्द्र आगामी वर्षों में फ़िल्म-जगत् की जनता की और भी सेवा कर सकेंगे और उनके आदर्श को लेकर अन्य शिक्षित नवयुवक भी फ़िल्मों में काम करके इस व्यवसाय का नाम ऊँचा करेंगे।

२—'मेक-अप' (सचित्र)

'मेक-अप' उस कला का नाम है, जिसके द्वारा मनुष्य फ़िल्म में भाँति-भाँति के असम्भव स्वरूप दिखा सकता है। साधारणतया सभी फ़िल्म-अभिनेताओं और अभिनेत्रियों को कैमरा के सामने आने से पहले 'मेक-अप' करना पड़ता है। परन्तु वह मेक-अप साधारण ही होता है। वह केवल फ़ोटोग्राफ़ी की दृष्टि से किया जाता है। उसके द्वारा मुख के अनेक प्रकार के दोष छिपाए जाते हैं। जैसे काला मुख गोरा दिखाई देता है, मुख पर के दाग़, चेचक के गड्ढे, मस्से, तिल आदि सब ढँक जाते हैं। परन्तु जिस 'मेक-अप' का ऊपर की दो पंक्तियों में वर्णन किया गया है, वह मेक-अप इससे भिन्न है। उस मेक-अप के द्वारा एक सुन्दर व्यक्ति कुबड़ा, काना, लँगड़ा दिखाया जा सकता है। आँखें गड्ढे में धँसी हुई दिखाई जा सकती हैं। गाल पिचके हुए दिखाए जा सकते हैं। दाँतों को चाहे जैसा विकृत रूप दिया जा सकता है। नाक को जिस प्रकार चाहे तोड़ा-मरोड़ा जा सकता है। इसके द्वारा एक फ़रिश्ता राक्षस दिखाई दे सकता है। पाठकों की जानकारी के लिए अन्यत्र एक चित्र दिया गया है। यह चित्र 'डा० जीकिल एण्ड मि० हाइड' नामक प्रसिद्ध फ़िल्म से लिया गया है और इन दोनों का काम एक ही अभिनेता, मि० फ्रेडरिक मार्च, ने किया है। चित्र देखने पर पाठक यह कभी विश्वास नहीं कर सकते कि इसमें दोनों आकृतियाँ एक ही व्यक्ति की हैं। परन्तु मेक-अप ने यह सम्भव कर दिया है।

'डॉ० जीकिल एण्ड मि० हाइड' में डॉ० जीकिल एक ऐसी औषधि का आविष्कार करना चाहते हैं, जिससे मनुष्य की भली और बुरी दो प्रकृतियाँ अलग की जा सकें और बुरी का नाश करके केवल भली को ही संसार में जीवित रक्खा जा सके। उन्हें अपने आविष्कार में सफलता मिलती है। पहला प्रयोग वह स्वयं अपने ऊपर करना चाहते हैं। इसलिए वह उस औषधि का पान कर लेते हैं। उस औषधि के पीते ही उनकी बुरी प्रकृति ज़ोर मारती है और धीरे-धीरे उनकी सुन्दर आकृति बदल कर राक्षस की सी आकृति हो जाती है। उसका नाम वह मि० हाइड रखते हैं। एक आकृति से दूसरी आकृति में परिवर्तन फ़िल्म में बड़े कमाल से दिखाया गया है। इसके लिए मेकअप और फ़ोटोग्राफ़ी की विधि के अनेक प्रयोग करने पड़े थे और उनके लिए बहुत सा कच्चा फ़िल्म व्यय करना पड़ा था।*

'मेकअप' करने में सबसे अधिक कुशल था स्वर्गीय लॉनचेनी। वह 'मेकअप का राजा' कहलाता था। वास्तव में उसकी मेकअप की प्रणाली विचित्र थी। 'नौत्रदाम का कुबड़ा', 'ओपेरा का भूत', 'अपवित्र तीन' आदि फ़िल्मों में उसने मेकअप के कारण कमाल कर दिखाया था। 'नौत्रदाम का कुबड़ा' में उसने कुबड़े का मेकअप इतनी स्वाभाविक रीति से किया था कि कोई रत्ती भर भी यह सन्देह नहीं कर सकता था कि यह मेकअप है।

भयानक मेकअप करने में अमेरिका का प्रसिद्ध अभिनेता बोरिस कारलोफ़ भी सिद्धहस्त है। वह कई

* फ्रेडरिक मार्च का 'डॉक्टर जीकिल और मिस्टर हाइड' के रूप में परिवर्तित चित्र इस महीने की चित्रावली में अन्यत्र देखिए।

फ़िल्मों में भयानक पार्ट ले चुका है और सबको बड़ी ख़ूबी के साथ निभाया है। यूनीवर्सल फ़िल्म कम्पनी के सुप्रसिद्ध फ़िल्म 'फ्रेंक्नैन्स्टाइन' में एक वैज्ञानिक ने एक मुर्दे को जीवित कर दिया है। कारलोफ़ ने ही वह काम किया है। जिस समय वह मुर्दे के रूप में मेज़ पर पड़ा है, उस समय कोई यह नहीं कह सकता कि वह मुर्दा नहीं है। उसके बाद जब वह जीवित होता है, मैशीन की भाँति चलता है, कृत्रिम मनुष्य की भाँति देखता है और शब्द करता है। उस समय कारलोफ़ की कला का आभास होता है।

"मेकअप" की कला फ़िल्मों के लिए अत्यन्त आवश्यक और लाभदायक है। उसके द्वारा दर्शकों पर मन-चाहे जैसा जादू किया जा सकता है। भारतीय फ़िल्मों में अभी इस ओर अधिक ध्यान नहीं दिया गया। श्री० एज़रा मीर ने अपने फ़िल्म 'ज़रीना' में 'नौत्रदाम के कुबड़े' की नक़ल करके एक कुबड़ा बनाया था, परन्तु उसमें अधिक सफलता नहीं मिली थी। शायद आगे चल कर भारत में भी लॉनचेनी, बोरिस कारलोफ़, फ़्रेडरिक मार्च जैसे 'मेकअप के राजा' पैदा हो जायँ।

३—'पूरन भगत'

अभी तक प्रभात कम्पनी, कोल्हापुर को सर्वोत्तम कलापूर्ण फ़िल्म बनाने का श्रेय प्राप्त था। परन्तु अब 'न्यू थिएटर्स लिमिटेड' कलकत्ता के हिन्दी फ़िल्म 'पूरन भगत' ने प्रभात के फ़िल्मों से बाज़ी मार ली है।

अब तक न्यू थिएटर्स ने प्रथम श्रेणी के कुछ बँगला के फ़िल्म ही बनाए थे। उसके हिन्दी और उर्दू के फ़िल्मों को अच्छी सफलता प्राप्त नहीं हुई थी। इस फ़िल्म में उसने सारी कमी पूरी कर दी है।

'पूरन भगत' में 'माया-मच्छीन्द्र' (प्रभात) के ही कथानक के कुछ भाग हैं और उसी प्रकार के भव्य दृश्य दिखाए गए हैं। परन्तु वे सभी 'माया मच्छीन्द्र' से बढ़ कर हैं। 'पूरन भगत' का कथानक अधिक ज़ोरदार है, सम्बाद अधिक मनोहर है तथा दृश्यावली और फ़ोटोग्राफ़ी बहुत सफल रही है। अभिनय भी आशा से अधिक अच्छा है। उसी प्रकार सङ्गीत भी है। बङ्गाल के सुप्रसिद्ध सूरदास गवैए कृष्णचन्द्र के गाने बहुत ही मनोहर हैं। हिन्दी साधारण बोलचाल की हिन्दी से अधिक कठिन है, शायद इसीलिए कहीं-कहीं उच्चारण बहुत अशुद्ध प्रतीत होते हैं। इस कमी को छोड़ फ़िल्म वास्तव में भारतीय सिनेमा-जगत में आदर्श है और इसके लिए हम कम्पनी को बधाई देते हैं।

卐 卐 卐

साध

[श्री० श्रीमद्भागवतप्रसाद वर्मा; स० सम्पादक "गङ्गा"]

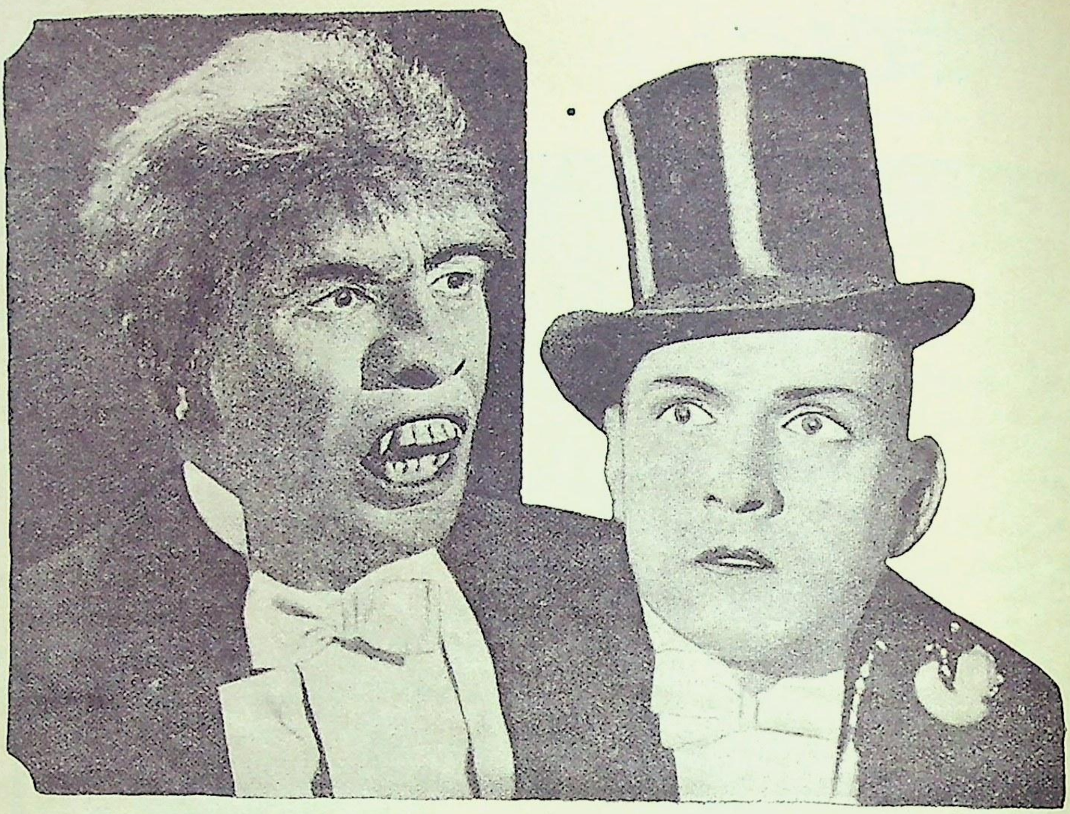
अभागे जीवन की वह साध,
साध—जिसमें भूला अभिमान !
मान जिसकी गोदी में बैठ—
प्रणय बन जाता है छविमान !!

पङ्गु बन कर वह छोटी साध,
निराशा का करती आह्वान !
स्मृति की छाया में वह मौन,
जुगाती अन्तर्व्यथा महान् !!

व्यथा, जिसमें उलझा था मोह,
मोह, जिसमें खोया था ज्ञान !
ज्ञान में डूब आज वह साध,
भस्म में ढूँढ़ रही निर्वाण !!



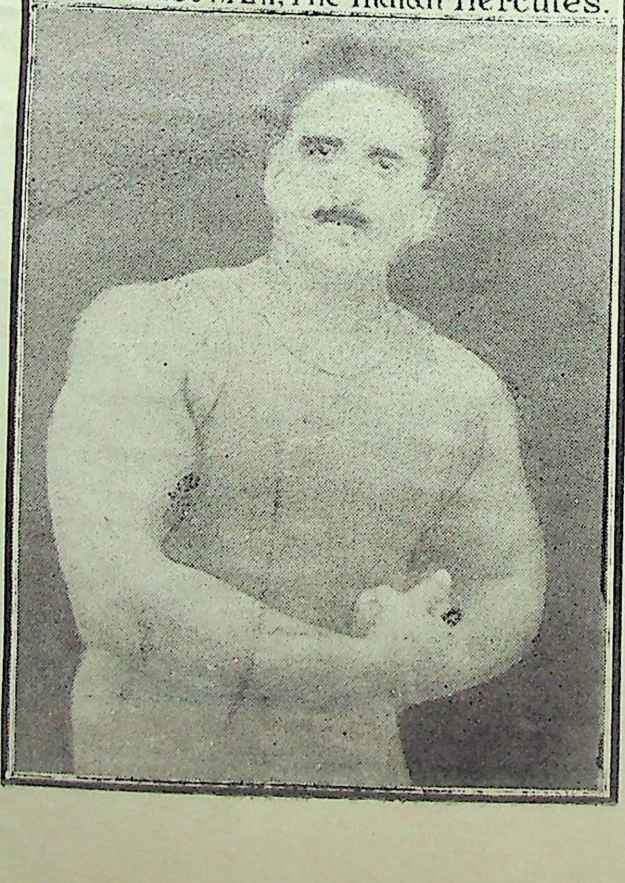
जर्मनी की ऊफ़ा फ़िल्म कम्पनी की एक प्रसिद्ध स्टार—मिस दिता पार्लो।



अमेरिका के विख्यात अभिनेता मि० फ्रेडरिक मार्क डॉ० जीकूली और मि० हाईड के रूप में।
(पूर्ण विवरण 'सिनेमा और रङ्ग-मञ्च' में पढ़िए।)

प्रोफ़ेसर भोजवानी

आप सिन्ध प्रान्त के विख्यात पहलवान हैं और 'इण्डियन हरक्यूलस' कहे जाते हैं।



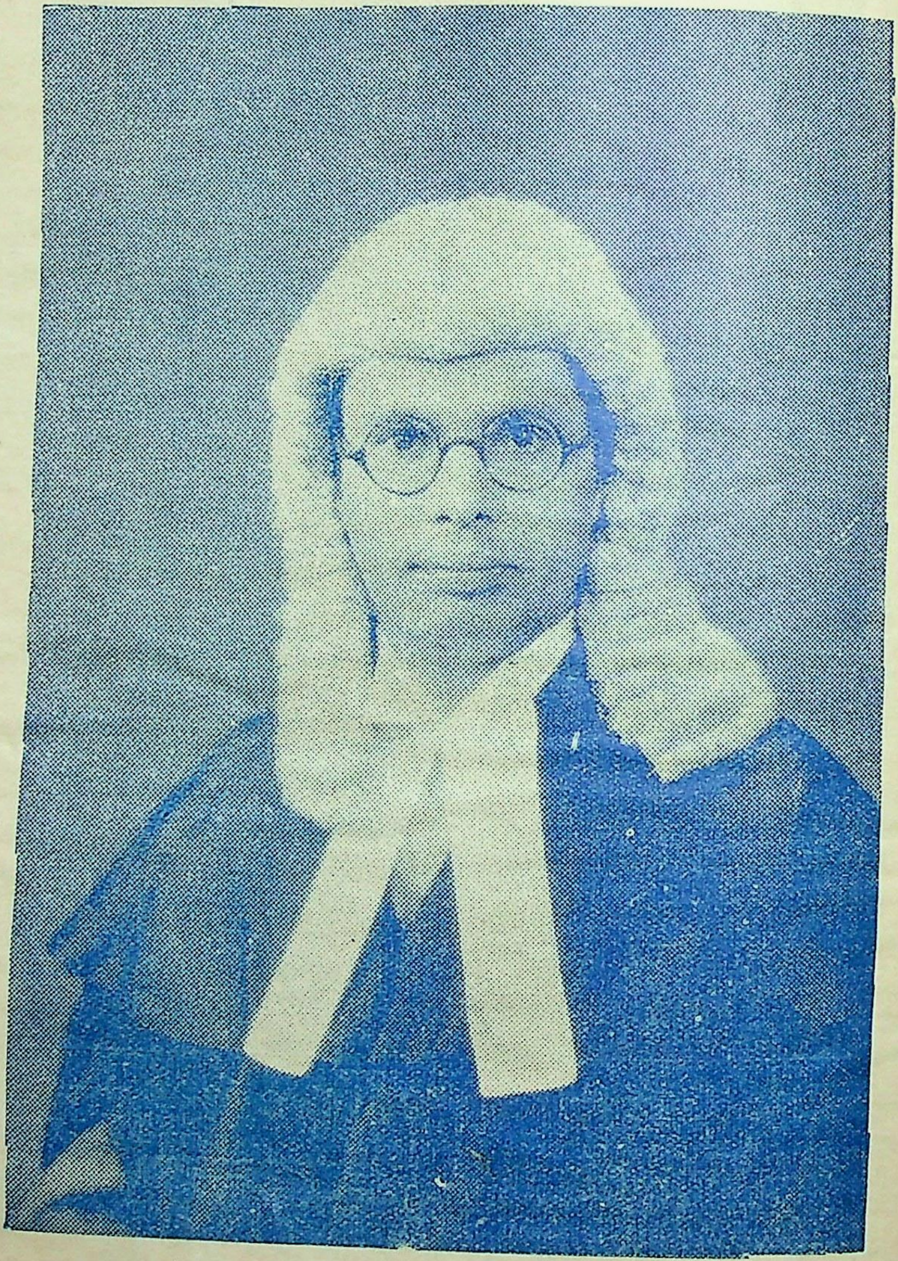
Prof. BHOJWANI, The Indian Hercules.

शारीरिक बल-प्रदर्शन करने में आपने यूरोप आदि देशों में काफ़ी सुख्याति प्राप्त की है।

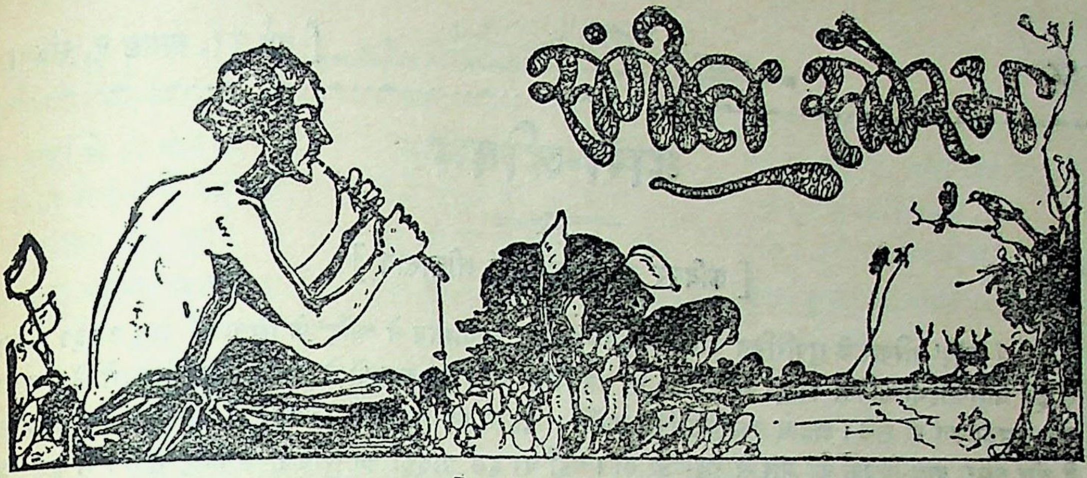


स्वर्गवासिनी सरस्वती देवी

आप पण्डित बलदेवप्रसाद शर्मा, सुपरवाइज़र पोस्ट ऑफ़िस, इटावा की सुपुत्री थीं। आपको धर्म, सङ्गीत और पठन-पाठन से बड़ा प्रेम था। लोकमान्य के गीता-रहस्य और कर्मयोग शास्त्र का नियमित रूप से पाठ किया करती थीं। इनका जन्म सम्बत् १९६७ में और देहान्त सम्बत् १९८९ में हो गया। इनके दुखी पिता ने इनकी स्मृति में इनके भजनों का एक संग्रह छपवाया है।



मि० आर० के० षणमुखम् चेट्टी—जो अभी हाल में ही लेजिस्लेटिव एसेम्बली के प्रेज़ीडेण्ट निर्वाचित हुए हैं।



[शब्दकार—अज्ञात]

राग भैरवी—तीन ताल

[स्वरकार—श्रीयुत नीलू बाबू]

स्थायी—प्रात समय रघुबीर जगावें ; कौशिल्या महतारी।
उठो लाल जी भोर भए हैं ; सुर-नर-मुनि हितकारी॥

अन्तरा—ब्रह्मादिक नारद सनकादिक ; वशिष्ट ऋषि चारी।
वाणी वेद विमल यश गावत ; रघुकुल यश विसतारी॥

स्थायी

०				१				×				३			
स	—	ध	ध	प	—	ग	म	प	नि	ध	प	म	ग	रे	स
प्रा	—	त	स	म	य	र	घु	बी	ई	र	ज	गा	आ	वे	ए
स	म	ग	म	रे	ग	रे	स	नि̥	स	ग	रे	स	—	—	—
कौ	औ	शि	इ	ल्या	आ	म	ह	ता	आ	आ	आ	री	—	—	—
सं	सं	—	सं	—	सं	रें	सं	नि	सं	नि	नि	ध	—	प	—
उ	ठो	—	ला	—	ल	जी	ई	भो	ओ	र	भ	यो	—	है	—
म	प	ग	म	प	नि	ध	प	ग	म	रे	—	स	—	—	—
सु	र	न	र	मु	नि	हि	त	का	आ	आ	—	री	—	—	—

अन्तरा

म	—	ग	—	ध	ध	ध	—	नि	ध	सं	सं	सं	—	सं	सं
ब्र	—	ह्मा	—	दि	क	ना	—	र	द	स	न	का	—	दि	क
रें	रें	—	रें	सं	नि	ध	रें	सं	रें	नि	सं	नि	ध	प	—
व	शि	—	ष्ट	ऋ	षि	चा	आ	री	ई	ई	ई	ई	ई	ई	—
सं	—	सं	—	सं	—	रें	सं	नि	सं	नि	नि	ध	—	प	प
वा	—	णी	—	वे	—	द	वि	म	ल	य	श	गा	—	व	त
म	प	ग	म	प	नि	ध	प	ग	म	रे	—	स	—	—	—
र	घु	कु	ल	य	श	वि	स	ता	आ	आ	—	री	—	—	—

नोट—रे ग ध नि कोमल।

नारी-जीवन

[कविवर आनन्दिप्रसाद श्रीवास्तव]

['चाँद' परिवार के सुपरिचित कविवर आनन्दिप्रसाद श्रीवास्तव ने 'चाँद' के सितम्बर सन् १९३१ के अङ्क में इस धारावाहिनी कविता का ३१ वाँ एवं ३२ वाँ पत्र लिखा था। कई कारणों से इस कविता के आगे के पत्र अब तक न प्रकाशित हो सके। अब वे प्रकाशित किए जाएँगे। पहला पत्र वृद्ध-पत्नी की ओर से बाल-विधवा को होता है और दूसरा बाल-विधवा की ओर से वृद्ध-पत्नी को। यहाँ पर हम पाठकों की सुविधा के लिए संक्षेप में वृद्ध-पत्नी का किञ्चित पूर्व वृत्तान्त दिए देते हैं। बाल-विधवा का पूर्व वृत्तान्त भी पत्र नं० ३४ के पहले दे दिया गया है।

वृद्ध-पत्नी का पूर्व वृत्तान्त

एक तरुणी का दहेज़ प्रथा के कारण एक वृद्ध से विवाह कर दिया गया। उसने प्रथम मिलन के समय में ही अपने को वृद्ध-संसर्ग से बचा कर पवित्र ही रखने की बात निश्चित की। पहले दिन अस्वस्थता का बहाना करके उसने उसे टाल दिया। दूसरे दिन स्पष्ट कह दिया कि हमारा तुम्हारा मिलन असम्भव है। वृद्ध ने घर में वेश्याओं का नाच कराना और उनके द्वारा तरुणी का मन डिगवाना चाहा। परन्तु असफल रहा। उसने एक भयङ्कर मनुष्य की सहायता लेनी चाही। परन्तु तरुणी ने एक दासी द्वारा छुरी प्राप्त कर ली थी और उसी से उसे ज़ख़्मी किया। इसके पश्चात् वृद्ध ने एक मनुष्य के साथ अपराध लगा कर तरुणी को घर से निकाल बाहर किया। वहाँ से निकलने के बाद तरुणी ने एक सुन्दर युवक का आश्रय पाया, पर उसकी भी तरुणी पर कुदृष्टि हुई।

—स० 'चाँद']

पत्र-संख्या ३३

[पत्र वृद्ध-पत्नी की ओर से बाल-विधवा को]

बहिन,

तुम्हारा पत्र प्राप्त कर
हाल तुम्हारा ज्ञात हुआ;
समझ परिस्थिति जिसमें तुम थीं
मन पर कुछ आघात हुआ।

लिए जा रही थीं उसको तुम,
वन लेने को उसके प्राण,
कोमल मन को भी है लेना
पड़ता कठोरता में त्राण।

वह ललना का काम नहीं था,
पर था वह ललना का काम,
यह संसार जटिल, है कण्टक—
कुञ्ज, समझ पड़ता आराम।

❀

अनुचित उचित विचार कठिन है,
कठिन परिस्थिति की पहिचान,
क्या करना किस समय चाहिए,
इसका बड़ा कठिन है ज्ञान।

बहिन, तुम्हारी शङ्काएँ हैं
व्यर्थ, जहाँ सम-बल होता,
वहाँ न होता युद्ध, वहाँ पर
नहीं छद्म या छल होता।

❀

जो होते हैं युद्ध सभी हैं
छिपे असम-बल के कारण,
अथवा उनका मूल भ्रान्ति है
जो होती छल के कारण,

जिसमें सम-बल होने पर भी
समझ असम बल पड़ता है,
अन्य पक्ष को अबल समझना
कुछ राष्ट्रों की जड़ता है।

यह है उचित कि सम-बल वाले
एक दूसरे को निस्सार
करना सदा चाहते लखता
यही आ रहा है संसार।

पर राष्ट्रों के ही बारे में
सच हो सकती है यह बात,
वही चाहते एक दूसरे
के ऊपर करना आघात।

❀

दिखलाने को धारण करते
हैं वे सतत प्रेम का भाव,
पर भीतर तो शत्रु-भाव ही
उन पर रखता अधिक प्रभाव।

❀

पर नर-जन के, नारी जन के
राष्ट्र पृथक जब होवेंगे,
शत्रु न होंगे आपस में वे,
मित्र युगल तब होवेंगे।

❀

उन राष्ट्रों की इन राष्ट्रों से
तुलना करना उचित नहीं।
सभी परिस्थितियों में रहता
स्वार्थ-भाव क्या बना कहीं ?

❀

मनुज राष्ट्र में, स्त्री-सुराष्ट्र में
कुछ स्वाभाविक आकर्षण,
होगा भला नहीं क्या ? खिंचते
वे न रहेंगे क्या क्षण-क्षण ?

❀

इसीलिए उनमें होगा क्यों
युद्ध, तुम्हें शङ्का ऐसी,
करनी नहीं चाहिए, सोचो
देखो यह शङ्का कैसी ?

❀

बहुत हुआ अब तुम्हें सुनाऊँ
अपना कुछ आगे का हाल,
मैंने हाथ हटाया उसका,
कहा—"तुम्हारी कैसी चाल ?

❀

तुम तो मुझे बहिन ही कह कर,
अभयदान दे घर लाए,
इस प्रकार व्यवहार आज फिर
करने क्योंकर हो आए।

❀

भय्या, क्या यह भाव तुम्हारा,
नहीं पापमय भाव नितान्त,
सुन कर मेरी बात, हटा कर
हाथ हुआ वह थोड़ा शान्त,

❀

बोला फिर उद्भ्रान्त सदृश वह
पुनः पकड़ कर मेरा हाथ —
"तुममें क्या कुछ दया नहीं है,
कुछ न कर सका इतना साथ।"

❀

मैंने कहा कि—"भाई, मैं हूँ
तुमसे उपकृत हुई विशेष।
इसीलिए मैं रोक रही हूँ
मन में जो आता है त्वेष।

❀

तुम सज्जन हो, दयावान हो,
शुद्ध हृदय थे, पर इस काल,
क्या करने हो चले, करो मत
कलुषित अपना हृदय विशाल।"

❀

बाल-विधवा का पूर्व वृत्तान्त

[एक बालिका जब छोटी थी तभी विधवा हुई। थोड़े दिन में वह अपने पितृ-गृह को भार-स्वरूप प्रतीत हुई। वह अपने ससुराल भेज दी गई। वहाँ उस पर अत्याचार होने लगे। वह उग्र प्रकृति के कारण प्रत्युत्तर देती थी। एक दिन उसने अपने किसी ननद की भद्दी चाल देख कर उसे समझाया। इस पर उसके विरुद्ध षड्यन्त्र रचा गया और नौकर के साथ अपराध लगा कर वह घर से निकाल बाहर की गई। वह एक मुसलमान फ़क़ीर के जाल में फँसी। पर उसी की छुरी से उसे मार कर निकल भागी। क्योंकि वह उसको अबला समझ कर उससे असावधान था। वहाँ से निकल कर वह एक सज्जन के द्वारा एक विधवा-आश्रम में रख दी गई। वहाँ के अधिपति की उस पर कुदृष्टि हुई। उसने उनसे समय और एक नौकर माँग लिया। अन्त में उसी नौकर को प्रलोभन देकर उसकी सहायता से वह निकल भागी। वह उस नौकर के साथ एक नगर में रेल पर से उतरी। वहाँ स्नान करके और भोजन लेकर वे लोग एक निकटस्थ वन में जा रहे हैं।

—स० 'चाँद']

पत्र-संख्या ३४

[पत्र बाल-विधवा की ओर से वृद्ध-पत्नी को]

बहिन,
तुम्हारा पत्र प्राप्त कर
उसे समझ कर है सन्तोष,
इस प्रकार के दो राष्ट्रों में
होगा नहीं बैर का दोष !

चाहेंगे वे कभी न करना
एक दूसरे को निस्सार ।
वरन सहायक बन जावेंगे
आपस में करके सुविचार ॥

नहीं कर सकेंगे वे दोनों
एक दूसरे का अपमान ।
दोनों को ही हो जावेगा
दोनों के हित का शुभ ध्यान ॥

❀

यदि होगी तो स्पर्धा होगी
उनमें सहित सुकोमल भाव ।
होगा अभिनन्दन आपस में
एक दूसरे पर सुप्रभाव ॥

भूल गई थी बात परस्पर
आकर्षण की, मैं थी भ्रान्त ।
बहिन, समझ में अब आया है
उनके सम बल का सिद्धान्त ॥

❀

बहिन, तुम्हारी तर्क-प्रणाली
परम गहन है—अति सुन्दर ।
परम चकित मैं रह जाती हूँ
देख तुम्हारी बुद्धि प्रखर ॥

यह लिखना, सम्बन्ध परस्पर
उनमें तब कैसा होगा ?
चित्रित करना नर-नारी का
जीवन तब जैसा होगा ?

बहिन, सुनाती हूँ तुमको फिर
मैं अपना आगे का हाल ।
सुस्ताने के बाद चले हम
फिर आगे, धीमी थी चाल ॥

❀

मुझे छेड़ता जाता था वह,
पर मैं जाती थी चुपचाप ।
जब गम्भीर मनुज होता है
नहीं बोलता अपने आप ॥

जब हम पहुँच गए वन में
तब सोचा मैंने यह मन में ।
उचित न बाधा पहुँचाना है
इसके अन्तिम भोजन में ॥

❀

उसने कहा—"साथ ही खाएँ ।"
मैंने कहा—"अलग खाएँ "
वह बोला—"जैसी इच्छा हो,
आओ यहीं बैठ जाएँ ।"

अलग-अलग बैठे हम दोनों,
भोजन किया, हुए सन्तुष्ट ।
तब तो लगा छेड़ने मुझको
आकर बहुत पास वह दुष्ट !

मैंने उसको समझाया यों—
"सेवक हो तुम दूर रहो,
इस प्रकार की बातें मुझसे
इसके आगे तुम न कहो ।

❀

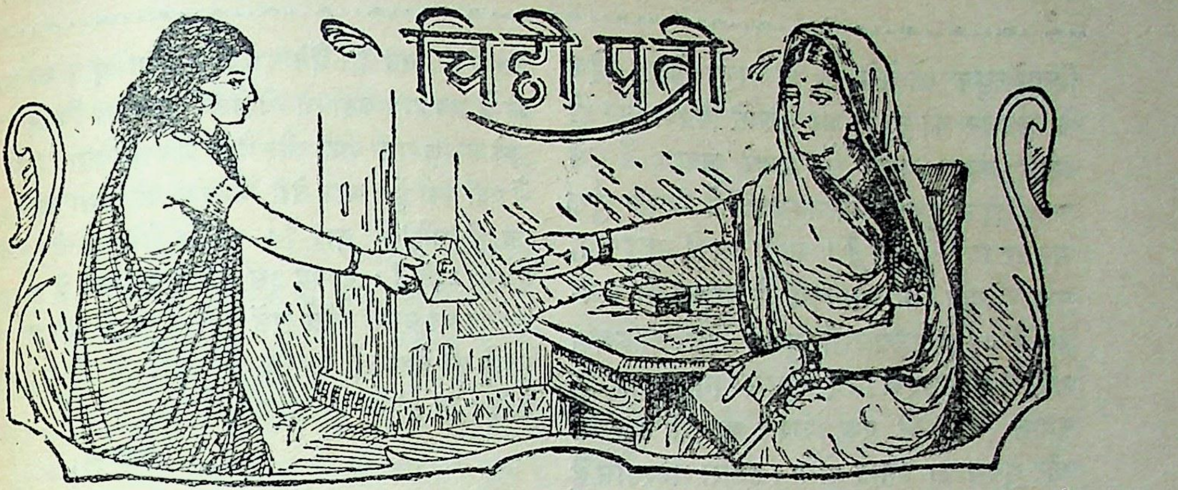
क्रोध आगया उसको, उसने
पकड़ा मेरा बायाँ हाथ ।
और गिराना मुझे चाहता
था तुरन्त धक्के के साथ ॥

मुक्त हाथ से लेकर छुरिका
मैंने उस पर किया प्रहार ।
इसके लिए न वह प्रस्तुत था
अति थी तीक्ष्ण छुरी की धार !!

❀

शीघ्र भूमि पर गिरा दुष्ट,
मैं चढ़ बैठी उसके ऊपर ।
उसके व्रण से अब बहती थी
भयङ्कर रक्तधार भू पर ॥

उस पर किया प्रहार पुनः,
यों कर डाला उसका संहार ।
दुर्गा थी प्रत्यक्ष उस समय
मैं, वह था भीषण व्यापार ॥



एक सत्साहसी सुपात्र की आवश्यकता

बिहार प्रान्त के एक प्रसिद्ध स्थान से एक शिक्षिता बहिन ने लिखा है :—

प्रिय सम्पादक जी,

सादर नमस्ते ! गत ११ मार्च सन् १९३३ को मेरे परिवार में एक भयङ्कर दुर्घटना हो गई। मेरा निवास-स्थान एक छोटे से गाँव में है। उस दिन इस गाँव से पन्द्रह कोस पर एक बारात गई थी और गाँव भर के प्रायः सभी पुरुष बारात में चले गए थे। मेरे घर के मालिक भी बारात में चले गए थे। घर में एक वृद्ध नौकर था, वह भी रात को ही लकड़ी लाने के लिए बैलगाड़ी लेकर जङ्गल की ओर चला गया। घर में सिर्फ़ ८०-९० वर्ष के एक वृद्ध, एक ५५ वर्ष की वृद्धा और एक सोलह वर्ष की अविवाहिता लड़की रह गई थी। रात के प्रायः १ बजे लड़की ××× के लिए बाहर निकली। उधर पड़ोस के ही चार बदमाश, जिनमें एक मुसलमान और तीन हिन्दू थे, शायद पहले से ही छिपे थे। बस, लड़की के घर से निकलते ही उन्होंने उसे पकड़ लिया और उसका मुँह बन्द कर दिया। इसके साथ ही वह बेहोश भी कर दी गई। गुण्डे लड़की को उठा कर गाँव से कोस भर की दूरी पर एक मैदान में ले गए। वहाँ गाड़ी तैयार थी। उस पर बिठा कर उसे और भी दूर ले गए। जब लड़की होश में आई तो बदमाशों ने उसे जान का तथा बिरादरी और बदनामी का डर दिखा कर छिपा रक्खा।

इधर घटना के थोड़ी देर बाद ही लड़की की वृद्ध माँ को कुछ आदमियों के पैरों की आहट सुनाई दी और कुछ सन्देह भी हुआ। वह तुरन्त बाहर निकली और शोर मचाया। गाँव के कुछ लोगों ने बदमाशों का पीछा भी किया, परन्तु बदमाश लड़की को लेकर निकल गए।

अन्त में पुलिस को ख़बर दी गई। अपराधी पकड़े गए और अदालत से उन्हें दण्ड भी मिला। परन्तु दण्ड जैसा मिलना चाहिए, वैसा न मिला। क्योंकि आज-कल न्याय पाने के लिए भी रुपए की ही ज़रूरत होती है। रुपए के बल से गुरुतर अपराध भी हलका हो जाता है। अस्तु—

महाशय जी, इसी लाञ्छिता लड़की के पाणिग्रहण के लिए एक सत्साहसी, सहृदय, सुधार-प्रेमी, स्वस्थ और शिक्षित नवयुवक की आवश्यकता है। लड़का किसी भी जाति का, परन्तु वैदिक धर्म का अनुयायी हो। अगर बिहार प्रान्त का कोई नवयुवक इसके लिए अग्रसर हो तो अति उत्तम।

लड़की १६ वर्ष की है। शरीर का रङ्ग पक्का और गठन सुन्दर है। स्वास्थ्य भी अच्छा है। वास्तविक सुन्दरी है। कुछ पढ़ना-लिखना भी जानती है। बुद्धिमती और सांसारिक कार्यों में अति निपुण है। लड़की के तीन शिक्षित सहोदर उपयुक्त पदों पर नियुक्त हैं। पिता-माता के अलावा दादा-दादी भी जीवित हैं।

आपकी,

×××

[हमारे पास ऐसे कितने ही सुधार-प्रेमी नवयुवकों के पत्र आते हैं, जो जाति-पाँति का बन्धन तोड़ कर किसी सुशीला कुमारी या विधवा का पाणिग्रहण करना चाहते हैं। कई विधवा-

विवाहेच्छुक तो ऐसे हैं, जो प्रचुर तिलक-दहेज के प्रलोभन को ठुकरा कर किसी विधवा का ही उद्धार करना चाहते हैं। हमारे ख़याल में ऐसे उदार हृदय, सुधार-प्रेमी नवयुवकों के लिए उपर्युक्त अवसर स्वर्ण-सुयोग है। यही उनकी सहृदयता, सुधार-प्रियता और सत्साहस की परीक्षा का अवसर है। जो सत्साहसी युवक इस लाञ्छिता बालिका के उद्धार के लिए अग्रसर होगा, वह हिन्दू-समाज के सामने एक उज्ज्वल आदर्श रक्खेगा और सुयश का भागी होगा। हमारा विश्वास है कि बिहार के शिक्षित युवक समाज-सुधार के काम में किसी से पीछे नहीं हैं। बिहारियों ने परदे की दक़ियानूसी प्रथा को एक ही दिन में ठुकरा दिया, तिलक-दहेज की प्रथा के विरुद्ध भी उन्होंने जहाद खड़ा कर दिया है और अन्य प्रकार के सामयिक सुधारों के लिए भी कार्य कर रहे हैं। इसलिए हमें आशा है कि अवश्य ही कोई बिहारी युवक इस पुण्य कार्य के लिए अग्रसर होगा।

इस सम्बन्ध में अन्य आवश्यक बातों की जानकारी प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले सज्जन उत्तर के लिए डाक-टिकट भेज कर हमसे पत्र-व्यवहार कर सकते हैं। —स० 'चाँद']

❀ ❀ ❀

सङ्कोच या मूर्खता

राजपूताने से एक बहिन लिखती हैं :—

पूज्यवर,

मैं एक उच्च गौड़ ब्राह्मण कुल की स्त्री हूँ। मेरी उम्र इस समय २२ साल की है। मेरा विवाह हुए दस साल हो गए हैं। पिता जी देशी राज्य के एक ऊँचे अफ़सर हैं। ससुर जी भी सरकारी नौकर हैं। पतिदेव पढ़ते हैं। परन्तु गत दस वर्षों में वे एक दिन भी मुझसे नहीं बोले। एक दिन संयोगवश एकान्त में उनसे भेंट होगई और मालूम हुआ कि उनके मुझसे न बोलने का कारण एक बीमारी है—कमज़ोरी, जो आजकल बहुत से नवयुवकों को हो जाती है। मेरे पतिदेव लज्जावश इस बीमारी का हाल किसी से नहीं कहते और न कोई दवा-इलाज ही करते हैं। मैंने एक दिन लज्जा छोड़ कर सास जी से सब हाल कहा तो वे उलटे मुझ पर बिगड़ उठीं, मुझे नाहक़ मारा-पीटा और नैहर भेजवा दिया। तब से मैं यहीं पड़ी हूँ। आप मेरी बेशरमी को क्षमा करके इस पत्र को 'चाँद' में छाप दें। क्योंकि मेरे पतिदेव 'चाँद' बराबर पढ़ते हैं। शायद इस पत्र के सम्बन्ध में आपकी राय पढ़ कर उनकी आँखें खुलें और वे अपने रोग की दवा कराने की चेष्टा करें, अन्यथा मेरे भाग्य में जो कुछ बदा है, वह तो भोगना ही पड़ेगा।

आपकी,

एक अभागिनी

[हमें ऐसे युवकों की निर्बुद्धिता पर तरस आता है, जो अपनी मूर्खता के कारण ऐसे रोगों के शिकार बन जाते हैं और फिर लज्जावश उसे छिपाने की चेष्टा करते हैं! कुछ समझ में नहीं आता कि इन अक़्ल के दुश्मनों को क्या कहा जाए। अस्तु, उपर्युक्त पत्र की प्रेषिका के लायक़ पति महोदय से हमारी विनीत प्रार्थना है कि वे थोड़ी देर के लिए अपनी लज्जा छोड़ें और अपने गुरुजनों से अपनी बीमारी का सब हाल कह कर उसका इलाज करावें। लज्जा के फेर में पड़ कर अपनी पत्नी की ज़िन्दगी बरबाद कर डालना कोई बुद्धिमानी नहीं है। साथ ही इस बहिन को भी हमारी सलाह है कि वे इस बात को अपने माता-पिता के कानों तक पहुँचा दें। ऐसे मामले में लज्जा नितान्त मूर्खता है। इस लज्जा और सङ्कोच का परिणाम आगे चलकर बड़ा ही भीषण होगा, इसलिए अभी से सावधान हो जाना उचित है। —स० 'चाँद']

❀ ❀ ❀

लाइलाज मर्ज़

एक बिहारी सज्जन लिखते हैं :—

सम्पादक जी, सादर नमस्ते!

आप तो सदा स्त्रियों के पक्ष में रहते हैं, फिर भी मैं अपनी कहानी आपको सुनाना ही वाजिब समझता हूँ।

मैं धनी नहीं हूँ, पर आनन्द से रोटी-दाल चलती है; असाधारण विद्वान नहीं हूँ, पर पढ़ा-लिखा अवश्य हूँ; पहलवान नहीं हूँ, पर साधारण लोगों से अधिक स्वस्थ हूँ। अवस्था ३२ साल की है।

मेरी पत्नी, सुना था, किसी ज़माने में रामायण इत्यादि पढ़ लेती थीं, पर अब तो धोबी का हिसाब भी मुझे ही रखना पड़ता है। गृहस्थी के ख़र्च का हिसाब ज़बानी होता है, जिसमें मुझे भय नहीं, विश्वास है कि नौकर उन्हें ठगते हैं। स्वास्थ्य की हालत यह है कि ५ वर्ष में मैं प्रायः एक हज़ार रुपए व्यय कर चुका। डॉक्टर की निगाह में जो अपथ्य है, उन्हें वही पसन्द आता है। इसलिए रोग छाया की तरह पीछे लगा रहता है। आज खाँसी तो कल बुख़ार। आप कहेंगे, पढ़ाते क्यों नहीं? बात भी ठीक है। पर दुःख है कि आपकी रुचि पढ़ने की तरफ़ बिलकुल नहीं है। विचित्र स्वभाव है। पुस्तकों में दो-चार रुपए ख़र्च भी किया, पर अब वह आलमारी के कोने आबाद कर रही हैं। कुछ नहीं तो रोग का बहाना ही ज़बरदस्त है—उसमें भी सर-दर्द और पेट-दर्द, जिसका थर्मामीटर क्या, डॉक्टर का चचा भी पता नहीं लगा सकता। कुर्ते में बटन टाँकने के लिए भी मुझे स्वावलम्बन ही से काम लेना पड़ता है। सीने की मैशीन एक टेबुल पर पड़ी ख़र्राटे ले रही है।

कहने का सारांश यह कि यदि मैं समझाता हूँ कि पढ़ो-लिखो तो जवाब यह मिलता है कि "तबीयत ठीक नहीं रहती, क्या करूँ?" यह कहिए कि स्वास्थ्य ठीक रखने के लिए उचित भोजन और उचित व्यायाम करो तो अपने भाग्य को कोसती हैं कि "मेरा पेट भर अन्न भी खाना किसी से नहीं देखा जाता।" (मैं भूल ही गया था, आप मांसाहारी हैं और मैं शाकाहारी)। सीने-पिरोने को कहो तो कहेंगी कि "जो सीना-पिरोना नहीं जानती क्या उसका संसार नहीं चलता?" समझाया कि "युग उन्नति का है, सब उन्नति कर रहे हैं।" तो आप साक्षात् सन्तोष की मूर्ति बन कर कहती हैं—"अब मेरी आधी उमर (२५ वर्ष) बीती, दो बच्चे हुए, यही बहुत है।"

सब रोगों का कारण यह है कि उनका बचपन बड़े लाड़-प्यार से बीता है, दो भाई-बहिन थे और पिता अच्छी नौकरी करते थे। पर "सब दिन नाहिं बराबर जात।" पिता की मृत्यु के बाद लाड़ले पुत्र अलग दुःख पा रहे हैं और लाड़ली पुत्री अलग दुःख दे रही हैं।

मैं जानता हूँ, रोग असाध्य है। जिसकी नस-नस में विलासिता, आलस्य और जिह्वालोलुपता भरी है, वह आज किसी के समझाने-बुझाने से थोड़े ही छूट सकती है? पर पाठको, ज़रा होश सँभाल कर दूल्हा बनना। "अमुक डिप्टी कलक्टर मेरे ससुर हैं," यह डींग भले ही मित्रमण्डली में आपका सिर ऊँचा कर दे, पर जिसके साथ जीना-मरना है, उसके स्वभाव का भी ज़रा ख़्याल रखना चाहिए।

भवदीय,

×××

[हम इन सज्जन के प्रति अपनी आन्तरिक समवेदना प्रगट करते हैं और उन्हें विश्वास दिलाते हैं कि 'चाँद' स्त्रियों का अन्ध पक्षपाती नहीं, बल्कि न्याय और औचित्य का ही पक्षपाती है। वह स्त्रियों को चुस्त-दुरुस्त, फ़ुर्तीली, गृहकार्य-कुशला और पतियों की सच्ची सहयोगिनी के रूप में देखना चाहता है, ऐसी पलङ्ग का भारस्वरूपा देवियों को तो वह दूर से ही नमस्कार करता है। आलस्य और विलासिता चाहे स्त्री में हो या पुरुष में, बुरी है; जीवन को नष्ट कर देने वाली है। इसलिए इस सज्जन की पूर्व-प्रशंसिता श्रीमती जी से हमारा निवेदन है कि उनसे और कुछ न हो सके तो स्वास्थ्य-रक्षा के ख़याल से प्रतिदिन सुबह-शाम खुली हवा में थोड़ा सा टहल लिया करें और चौबीस घण्टों में केवल एक ही घण्टा कुछ पढ़ लिया करें। क्योंकि यह आलस्य और विलासिता की आदत उनके ही लिए नहीं, वरन् उनके बच्चों के लिए भी बुरी है। उन्हें जानना चाहिए कि बच्चों पर माता की भली-बुरी आदतों का बड़ा प्रभाव पड़ता है। क्या हम आशा करें कि वे अपने बच्चों की भलाई के लिए अपने आलस्य और विलासिता को छोड़ने की चेष्टा करेंगी?

—स० 'चाँद']

विषम धर्म-सङ्कट

एक सज्जन ने लिखा है :—

मान्यवर सम्पादक जी, सादर प्रणाम !

मैं आपका 'चाँद' सदा आदर और प्रेम के साथ पढ़ा करता हूँ। मैं यह भी जानता हूँ कि समाज-सेवा आपके जीवन का लक्ष्य है। उसी नाते मैं आपकी शरण में आया हूँ। मैं अभाग्यवश बी० ए० पास तो कर चुका हूँ, पर जीवन का लक्ष्य अभी तक निश्चित नहीं कर सका हूँ। कृपा कर मेरी करुण-कहानी आद्योपान्त पढ़ जाएँ और उचित सम्मति देकर मेरे दिल को तसल्ली देने की कृपा करें।

अब तक मैंने विवाह नहीं किया है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि लड़की मुझसे अधिक नहीं तो कम से कम मेरे समान ही सुन्दर ज़रूर हो। धनवान घर की हो वा न हो, पर मिडिल तक पढ़ी हुई ज़रूर हो और स्वभाव शान्त तथा सरल हो। ये तीन आकांक्षाएँ मेरे मन में बसी हुई हैं और शायद ये अनुचित नहीं हैं। मैं इसी फ़िक्र में था कि संयोगवश मुझे एक ग़रीब घर की देहाती लड़की मिली। उसमें यथेष्ट सौन्दर्य, जैसा मैं चाहता था, वह तो नहीं है, परन्तु ख़राब भी नहीं है। पढ़ी-लिखी नहीं है, परन्तु ग़रीब घर की होने के कारण सुशीला मालूम पड़ती है। मेरी योग्यता देख कर उसके अभिभावकों ने उस लड़की को दिखा दिया। देखने में अच्छी मालूम पड़ी और ऐसा विचार करके कि उसे पढ़ा-लिखा लूँगा, मैंने शादी करने का वचन दे दिया।

परन्तु अब एक और लड़की का पैग़ाम आया है। वह लड़की मेरे मन मुताबिक़ है। पहली से अधिक सुन्दरी है। मिडिल तक की योग्यता भी रखती है और स्वभाव भी अच्छा है। अब यह मेरी इच्छा पर निर्भर है कि मैं पहली से शादी करूँ वा दूसरी से। मैं पहली के लिए ज़बान दे चुका हूँ और वह लड़की मुझसे शादी होने की आशा से पढ़-लिख भी रही है। परन्तु अभी वह कमसिन है, तेरह-चौदह वर्ष की उमर है। दूसरी लड़की सत्रह-अठारह की है। इसके माता-पिता भी शादी के लिए बहुत व्यग्र हैं और सब तरह से मेरे मनोनुकूल होने के कारण मन गवाही देता है कि इसीसे शादी करता तो अच्छा था। परन्तु जब मैं अपने वचन का ख़याल करता हूँ, तो विचार उत्पन्न होता है कि ज़बान देकर पूरा न करना विश्वासघात करना होगा। इसी धर्मसङ्कट में मेरी दशा साँप-छछून्दर की सी हो रही है। अब आप जिसमें मेरी भलाई देखें, एक बात निश्चित करके अपने 'चाँद' में छापने की कृपा करें।

आपका,

एक सङ्कटापन्न

[तेरह-चौदह वर्ष की बालिका के साथ विवाह करने की सलाह देना बाल-विवाह का समर्थन करना है, जो हमारे उसूल के ख़िलाफ़ है। बालविवाह का काफ़ी विरोध हो चुका है और उसकी बुराइयाँ भी लोगों से छिपी नहीं हैं, इसलिए उसके विषय में अधिक कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं। ऐसी एक बालिका से विवाह करने का वचन देकर उपर्युक्त युवक ने मूर्खता की है। इस मूर्खता का उसे प्रायश्चित्त करना होगा। इसलिए वह युवक या तो तीन-चार वर्ष तक प्रतीक्षा करे; उस लड़की को सत्रह-अट्ठारह साल की हो जाने दे और तब उसकी अनुमति लेकर उसका पाणिग्रहण करे। अथवा दूसरी लड़की से, जो सत्रह-अठारह साल की है, विवाह कर ले और इस तेरह-चौदह साल वाली बालिका को अपनी बहिन समझ कर यह प्रतिज्ञा करे कि उसके पढ़ने-लिखने में तन-मन और धन से सहायता प्रदान करेगा और जब वह विवाह योग्य हो जायगी तो किसी उपयुक्त पात्र से उसका विवाह करा देगा। हमारी समझ में यह समस्या इन्हीं दो तरीक़ों से सुलझ सकती है।

—स० 'चाँद']

❀ ❀ ❀

एक समस्या

श्रीयुत सम्पादक जी,

मेरे एक मित्र, जोकि आदि गौड़ ब्राह्मण हैं, एम० ए० में पढ़ रहे हैं। दो वर्ष पूर्व उनका प्रेम एक परिचित कुल की सनाढ्य ब्राह्मण लड़की से हो गया था। लड़की के अभिभावक भी इन्हीं के साथ उसका सम्बन्ध करना

चाहते हैं ; किन्तु मेरे मित्र के अभिभावक इस सम्बन्ध के असामान्य गोत्र का होने से इसके लिए सहमत नहीं हैं। मेरे मित्र का निश्चय है कि वे ऐसा ही उपयुक्त सम्बन्ध करेंगे, क्योंकि उनकी बालकपन से ही यह इच्छा रही है कि वे विवाह सम्बन्ध में गोत्रों की ऐसी सङ्कीर्णता तथा दहेज़ प्रथा को तोड़ें। यों तो कई स्थानों में सनाढ्य और गौड़ों में सम्बन्ध होता भी है। उधर लड़की के अभिभावकों की भी ऐसी सम्पन्न दशा नहीं है कि वे हज़ारों रुपया देकर लड़की का सम्बन्ध कर सकें। ऐसी दशा में, जब कि मेरे मित्र अपनी पढ़ाई के व्यय के लिए अपने अभिभावकों पर निर्भर हैं तथा विवाह सम्बन्ध भी उसीसे करना चाहते हैं, उनको क्या करना उचित है ? क्या वे इस कार्य को अपने अभिभावकों की इच्छा के विरुद्ध भी कर सकते हैं ?

—'चाँद' का एक ग्राहक

[निश्चय कर सकते हैं। इस तरह की प्राचीन दक़ियानूसी प्रथाओं को तोड़ना प्रत्येक विचारशील युवक का परम कर्त्तव्य है। इसके लिए उन्हें अगर कुछ क्षति भी उठानी पड़े तो परवा नहीं। हम तो बार-बार कह चुके हैं कि हमारे समाज में तिलक-दहेज, गोत्र-विचार और बाल-विवाह आदि जो कुरीतियाँ प्रचलित हैं, उनके प्रश्रयदाता ये ही कमज़ोर दिल वाले युवक हैं। वे अपने कॉलेजों के 'डिबेटिङ्ग' क्लबों में तो सामाजिक कुप्रथाओं के विरुद्ध लम्बी-लम्बी स्पीचें झाड़ा करते हैं और ऐन मौक़े पर उनकी मातृ-पितृ-भक्ति चर्रा उठती है और वे अभिभावकों की नाराज़गी की दुहाई देकर उन्हीं कुप्रथाओं के आगे सर झुका देते हैं ! हमने बहुत से एम० ए० पास दुल्हों को विवाह के समय घुटनों के नीचे तक लम्बा-जामा, पैरों में चाँदी के कड़े पहने तथा आँखों में काजल लगाकर पूर्ण पँवरिया बने देखा है। यही नहीं, बाज़-बाज़ तो विवाह के समय दहेज़ लेने के लिए पूरे 'महापात्र' बन जाते हैं। खीर खाने के समय पूरी रक़म ऐंठे बिना कौर ही नहीं उठाते। अस्तु। एक एम० ए० के विद्यार्थी के लिए यह आवश्यक नहीं कि पढ़ाई का ख़र्च बन्द हो जाने के भय से अपने अभिभावक के अनुचित हठ के सामने सिर झुकावे। वह तो स्वावलम्बी बन कर बड़ी आसानी से अपनी शिक्षा समाप्त कर सकता है। इसलिए उपर्युक्त पत्र के लेखक महाशय अपने मित्र को साहसी और स्वावलम्बी बनने की सलाह दें।

—स० 'चाँद']

❀ ❀ ❀

पति की निष्ठुरता

श्रीमान् सम्पादक जी, सादर प्रणाम !

आगे निवेदन यह है कि आपके 'चाँद' में चिट्ठी-पत्री पढ़ कर मैं भी सलाह की आशा से आपकी सेवा में यह पत्र भेज रही हूँ, और मुझे पूर्ण आशा है कि आप मुझ अबला को 'चाँद' द्वारा कोई ऐसा उपाय बतलाने की कृपा करेंगे जो मेरे हृदय को शान्ति पहुँचाए। मेरी भी वही हालत है, जो गत फ़रवरी के 'चाँद' में छपी विद्यार्थी की पत्नी की है। सब यत्न करके हार गई, परन्तु सफल नहीं हुई। आठ साल शादी को हो गए और एक बच्चा भी है। परन्तु इतने सालों में भी मैं अपने पति को नहीं पहचान सकी। प्रेम तो मानों वे जानते ही नहीं और मुझे उनसे इतना प्रेम हो गया है कि मैं उनसे एक मिनिट भी अलग रहना पसन्द नहीं करती। घर की सासों के झगड़े तो आप जानते ही हैं कि हिन्दू घराने की बहुएँ किस तरह दब कर रहती हैं। मेरी तन्दुरुस्ती बिलकुल ख़राब हो गई है। यही चिन्ता रहती है कि इतनी लम्बी ज़िन्दगी कैसे कटेगी ! पति की तरफ़ से तो मैं निराश हो चुकी। क्योंकि मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि वे मेरा कभी ख़याल न करेंगे। मेरी बड़ी इच्छा है कि मैं अपनी ग़रीब बहिनों की सेवा करूँ, परन्तु कोई भी मेरा सहायक नहीं। दूसरे, ससुराल रूपी क़ैदख़ाने में पड़ी सड़ रही हूँ। सम्पादक जी, मुझे रईसों से नफ़रत हो गई है। क्योंकि मैं अमीर घराने की होने पर भी सुखी नहीं हूँ। कृपा करके आप 'चाँद' द्वारा कोई ऐसी युक्ति बतलाइए, जिससे मैं पति-प्रेम पा सकूँ।

दुःखिनी,

—[illegible]न्तिबाला

[अफ़सोस है कि इस बहिन की हम कुछ भी सहायता नहीं कर सके। क्योंकि पति-प्रेम प्राप्त कराने का कोई उपाय हमें नहीं मालूम। और जिस निष्ठुर हृदय में मनुष्यत्व की तरी नहीं होती, वहाँ प्रेम उपजता भी नहीं। इसलिए इस बहिन के लिए इसके सिवा और कोई उपाय ही नहीं है कि प्रेम के प्रतिदान की आशा छोड़ कर अपने पति से प्रेम करती रहें और हिन्दू-समाज की भट्टी में आजन्म जलती रहें। वे अपनी ग़रीब बहिनों की कुछ सेवा करना चाहती हैं, परन्तु यह भी उस समय तक सम्भव नहीं, जब तक कि वे ससुराल के क़ैदख़ाने से निकलने का साहस न करें। फलतः यह समस्या इतनी जटिल है कि इसका कोई समाधान नहीं।

—स० 'चाँद']

❀ ❀ ❀

एक विवेचक विधुर

श्रीमान् सम्पादक जी, नमस्ते !

आप दीन-दुखियों को 'चाँद' द्वारा उचित सलाह देते हैं, इसी आशा से मैं भी अपना दुख आप से प्रगट करता हूँ। आशा है, आप मुझे भी उचित परामर्श देंगे।

मेरी धर्मपत्नी तीन मास हुए मुझे छोड़ स्वर्ग-धाम सिधार गईं, केवल एक पुत्री एक वर्ष की है। पर उसका होना भी नहीं होने के बराबर है, क्योंकि उसकी अवस्था शोचनीय है। मेरे मित्र मुझे दूसरा विवाह करने के लिए बाध्य कर रहे हैं। मैं उच्च कुल का ब्राह्मण हूँ। मेरी अवस्था ४० वर्ष पार कर चुकी है। हमारी जाति में १३ वर्ष से बड़ी लड़की नहीं मिलती है। सो भी गुप्त रूप से उसका मूल्य सैकड़ों रुपए कन्या के पिता को देना पड़ता है। मैं दूसरा विवाह करके एक कन्या की ज़िन्दगी बिगाड़ने को तैयार नहीं हूँ। इसे मैं नीच और निन्दनीय कार्य समझता हूँ। मित्र मुझे कञ्जूस और कृपण आदि की उपमा देते हुए मुझे दूसरा विवाह करने के लिए बार-बार तङ्ग करते हैं। अस्तु, अब आप कृपा करके मुझे उचित सलाह दीजिए, ताकि मैं उस मार्ग का अवलम्बन करूँ।

—आपका एक ग्राहक

[चालीस वर्ष से भी अधिक अवस्था हो जाने पर, जो लोग आपको तेरह वर्ष की लड़की से विवाह करने की सलाह दे रहे हैं, वे आपके मित्र नहीं, महान् शत्रु हैं। ऐसे लोगों के लिए 'मित्र' शब्द का प्रयोग करके आपने उस शब्द का अपमान किया है। आपने अपने पत्र में जो विचार प्रगट किए हैं, वह आपके उपयुक्त हैं। अब कदापि विवाह के चहले में न फँसिए, नहीं तो ज़िन्दगी बरबाद हो जाएगी। अन्तिम समय सुख से मरने का भी अवसर न मिलेगा। तेरह वर्ष की बालिका तो आपको अपना 'बाबा' समझेगी—पति नहीं। आपके समाज में कोई तीस-पैंतीस साल की विधवा मिले तो आप ख़ुशी से उसके साथ पुनर्विवाह कर सकते हैं। अगर आप में साहस हो तो किसी भी जाति की ऐसी विधवा से शादी कर सकते हैं। इसमें कोई पाप नहीं है, वरन् अपने और समाज के हित के लिए ऐसा करना उचित ही है। परन्तु बुढ़ौती में तेरह वर्ष की बालिका के साथ विवाह करना तो घोर अन्याय होगा। इसलिए आप अपने मित्रों से स्पष्ट कह दीजिए कि :—

"अबलौं नसानी अब ना नसैहौं।
राम कृपा भव निसा सिरानी जागे पुनि न डसैहौं॥"

—स० 'चाँद']



आह जो दिल से निकाली जायगी,
क्या समझते हो कि ख़ाली जायगी ?
इस नज़ाकत पर यह शमशीरे[1] जफ़ा,
आपसे क्योंकर सँभाली जायगी ?
ज़िन्दगी की कल है पेचीदा तो ख़ैर,
साँस ले लेकर चला ली जायगी !
—"अकबर" इलाहाबादी

उनका ख़ञ्जर नज़र नहीं आता,
कोई सर पर नज़र नहीं आता !
उनकी सूरत नज़र जब आती है,
दिले मुज़तर[2] नज़र नहीं आता ।
कर गई काम तेग़[3] नाज़ मगर,
ज़ख़्म दिल पर नज़र नहीं आता ।
भीड़ ऐसी है जाँनिसारों[4] की,
वह सितमगर[5] नज़र नहीं आता ।
उसका जलवा है ज़र्रे-ज़र्रे में,
और इस पर नज़र नहीं आता ।
क्या कहूँ अपने दिल की बेताबी,
वह जो दम भर नज़र नहीं आता ।
"नूह" मेरी नज़र में कोई भी,
उनसे बेहतर नज़र नहीं आता ।
—"नूह" नारवी

खुल नहीं सकती गिरह तक़दीर की ।
क्या चले तक़दीर से तदबीर की ।

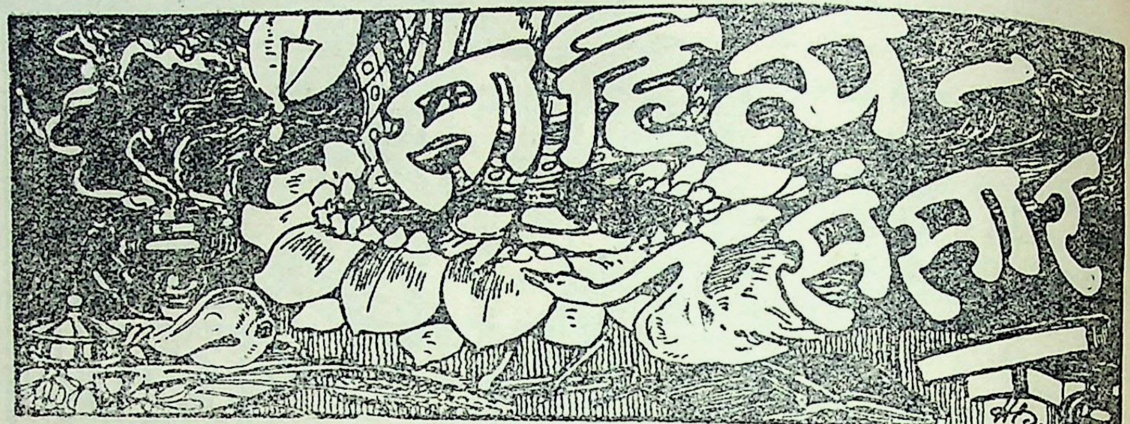
१—तलवार, २—बेक़रार, ३—तलवार, ४—निछावर करने वाले, ५—ज़ालिम ।

आते-आते राह से वह फिर गए,
देखिए तो चाल चर्ख़े[6] पीर की ।
आँखें झपकी जाती हैं बेअख़्तियार,
क्या हवा है दामने शमशीर[7] की ।
—"यास" अज़ीमाबादी

तड़पते हैं हम वह जो तड़पा रहे हैं,
उन्हें क्या, हमें भी मज़े आ रहे हैं ।
जो पूछा कि क्यों दिल में लेते हो चुटकी,
वह बोले तबीयत को बहला रहे हैं ।
मिज़ाज आप क्या पूछते हैं हमारा,
लगाने की दिल की सज़ा पा रहे हैं ।
"कमाल" उनको आया तसल्ली न देना,
मेरे दिल को वह और तड़पा रहे हैं ।
—"कमाल" लखनवी

तुम्हें याद हो या न हो हज़रते दिल,
हमें याद है दिल लगाना किसी का ।
मुहब्बत है, नफ़रत है, आख़िर यह क्या है,
हमें देख कर मुँह बनाना किसी का ।
मिला ख़ूब आराम मिट्टी में मिल कर,
फ़लक[8] बन गया शामियाना किसी का ।
कोई दिल को देखे न तिरछी नज़र से,
ख़ता कर न जाए निशाना किसी का ।
बुरा वक़्त जिस वक़्त आता है "बिस्मिल"
नहीं साथ देता ज़माना किसी का ।
—"बिस्मिल" इलाहाबादी

६—आकाश, ७—तलवार, ८—आकाश ।



अयोध्या का इतिहास—लेखक, साहित्य-रत्न, हिन्दी-सुधाकर, रायबहादुर लाला सीताराम जी, बी० ए०, उपनाम अवधवासी भूप; प्रकाशक, हिन्दुस्तानी एकेडेमी संयुक्त-प्रान्त, प्रयाग। आकार रॉयल १×८, पृष्ठ-संख्या २८८×१०, काग़ज़, छपाई और गेटप सुन्दर, सजिल्द, मूल्य ३)

इस सुन्दर पुस्तक के सङ्कलन-कर्त्ता रायबहादुर लाला सीताराम जी वयोवृद्ध साहित्य-सेवियों में हैं। आपने हिन्दी साहित्य की स्तुत्य सेवा की है। और इस वृद्धावस्था में भी इतिहास जैसे कठिन विषय पर उपर्युक्त बड़ी पोथी लिख डाली है, जिसमें वैदिक काल से लेकर अब तक का अयोध्या नगरी का इतिहास सङ्कलित है। पुस्तक बड़ी खोज और बड़े परिश्रम से लिखी गई है। उपसंहार के अतिरिक्त इसमें सोलह अध्याय हैं, जिनमें अयोध्या के माहात्म्य से लेकर उसके प्राचीन और अर्वाचीन इतिहास का वर्णन है। उपसंहार में भी इसी सम्बन्ध की बहुत सी ज्ञातव्य बातें संगृहीत हैं। इसके सिवा कोशल-राज का मान-चित्र, अयोध्या की परिक्रमा, अयोध्या के प्रमुख स्थानों का चित्र और वर्तमान शाकद्वीपीय राजवंश के कई नरेशों के चित्र दिए गए हैं। भाषा सरल और पराञ्जल है। पुस्तक में प्रूफ़ संशोधन सम्बन्धी कुछ भूलें रह गई हैं, इसलिए अन्त में एक विस्तृत शुद्धि-पत्र भी दे दिया गया है। परन्तु यह हिन्दी के लिए दुःख की बात है कि अभी तक हिन्दी प्रेसों ने प्रूफ़-संशोधन सम्बन्धी दायित्व का भी अच्छी तरह ज्ञान नहीं प्राप्त किया है।

मधुकरी (द्वितीय भाग)—सम्पादक श्री० विनोदशङ्कर व्यास, प्रकाशक, साहित्य-मण्डल, दिल्ली। आकार डबल क्राउन १।१६, पृष्ठ-संख्या ४६६, छपाई और काग़ज़ साफ़, मूल्य ३)

'मधुकरी' के पहले भाग में हिन्दी के सभी कहानी-लेखकों की कहानियाँ न जा सकी थीं, इसलिए व्यास जी ने यह दूसरा भाग संग्रह किया है। इसमें आजकल के कहानी-लेखकों की—जो सरे मैदान हैं—चुनी हुई कहानियाँ संगृहीत हैं। निर्वाचन स्वयं लेखकों ने ही किया है, जिनकी संख्या २३ है। लेखकों ने अपनी वही कहानी इस संग्रह में छापने को दी है, जो उन्हें सबसे अच्छी प्रतीत हुई है। वैसे तो इस संग्रह में आई हुई सभी कहानियाँ अच्छी हैं, परन्तु दो-तीन कहानियाँ तो हमें बहुत ही अच्छी लगीं। अस्तु, व्यास जी ने मधुकरी के रूप में हिन्दी की चुनी हुई कहानियों को एक जगह सन्निवेशित करके बड़ा काम किया है। आपके इस प्रयत्न की जितनी प्रशंसा की जाए, थोड़ी है। कुछ को छोड़ कर बाक़ी कहानी-लेखकों के चित्र भी पुस्तक में हैं। प्रकाशकों ने भी पुस्तक को बढ़िया बनाने का प्रयत्न किया है। सुन्दर जिल्द के ऊपर आडम्बरपूर्ण सचित्र वाह्यावरण लगा हुआ है।

रश्मि—रचयित्री, श्रीमती महादेवी वर्मा, बी० ए०; प्रकाशक, साहित्य-भवन लिमिटेड, प्रयाग। आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या १३६; मूल्य लिखा नहीं।

हिन्दी की नवीन शैली के प्रसिद्ध कवियों में श्री० महादेवी जी का स्थान अन्यतम है। आपकी रचनाओं में मार्मिकता होती है। भाव अन्तस्तल से निकले होते हैं। भाषा मधुर और उपमाएँ अनूठी होती हैं। आपके

गम्भीर भावों को समझने के लिए दिमाग़ पर विशेष ज़ोर देने की आवश्यकता नहीं होती, यह आपकी रचना की विशेषता है। इस संग्रह में आपकी ३५ रचनाएँ संगृहीत हैं। सभी रचनाएँ कवितापूर्ण हैं। उन्हें बार-बार पढ़ने का जी चाहता है। हमें विश्वास है कि इस संग्रह का ख़ूब समादर होगा। पुस्तिका की छपाई और गेटप सुन्दर है।

मकरन्द—लेखक, श्री० आनन्दीप्रसाद जी श्रीवास्तव। प्रकाशक, विश्व ग्रन्थावली कार्यालय, ५०६ दारागञ्ज, प्रयाग। आकार मझोला, पृष्ठ-संख्या १६०, मूल्य १।।)

इस 'मकरन्द' में श्रीवास्तव जी की १४ कहानियाँ संगृहीत हैं और जिस तरह कविता-क्षेत्र में आपका एक स्थान है, उसी तरह 'मकरन्द' पढ़ने से मालूम होता है कि कहानी-क्षेत्र में भी आपका एक स्थान रहेगा। क्योंकि आपने इस क्षेत्र में भी अपनी कृतित्व का ख़ासा परिचय दिया है। इस संग्रह की सभी कहानियाँ हिन्दी की किसी भी अच्छी कहानी से टक्कर ले सकती हैं। मकरन्द की भूमिका "कहानी कैसे लिखनी चाहिए" पुस्तक के प्रणेता मुन्शी कन्हैयालाल जी, एम० ए०, एल्-एल्० बी० ने लिखी है और आपका कथन है कि "श्रीवास्तव जी की ही ऐसी कहानियाँ हैं, जो हमारी पिछड़ी हुई हिन्दी कहानियों को संसार की अन्य नामी कहानियों के मुक़ाबले स्थान दिला सकेंगी।" हम मुन्शी जी की इस उक्ति की तहेदिल से ताईद करते हैं और इस कला में इतनी सफलता प्राप्त कर लेने के लिए श्रीवास्तव जी को बधाई देते हैं। पुस्तक निहायत साफ़-सुथरी छपी है। वाह्यावरण भी 'मकरन्द' नाम का द्योतक है।

प्रेम-पत्र—लेखक, श्री० पद्मकान्त मालवीय; प्रकाशक, भारत पुस्तक भण्डार, प्रयाग। आकार मझोला, पृष्ठ-संख्या ६८, सजिल्द मूल्य १), राज-संस्करण मूल्य १।।)

कविवर पद्मकान्त जी मालवीय के इन पद्यात्मक प्रेम-पत्रों में एक अत्यन्त मर्मवेदनापूर्ण करुण कहानी छिपी है। ये पत्र उन्होंने अपनी स्वर्गवासिनी पत्नी सौ० शारदा मालवीया की पवित्र स्मृति में लिखे हैं। इसलिए इन पत्रों में छिपी हुई व्यथा को तो कोई भुक्तभोगी—वियोग-व्यथित हृदय विधुर ही अच्छा तरह हृदयङ्गम कर सकता है। परन्तु साधारण कवि-हृदय के लिए भी इनमें यथेष्ट सामग्री है। प्रत्येक पत्र की प्रत्येक पंक्ति एक आह—एक वेदना से ओत-प्रोत है। पत्रों की संख्या सात है। अन्त में 'हृदयोद्गार' शीर्षक के नीचे कवि की कतिपय अन्य रचनाएँ भी संगृहीत हैं। पुस्तक के आरम्भ में कवि और उनकी स्वर्गवासिनी पत्नी का चित्र भी है।

प्याला—लेखक और प्रकाशक उपर्युक्त 'प्रेम-पत्र' वाले, आकार तद्वत्, पृष्ठ-संख्या ९८, मूल्य १)

'प्याला' के प्रथम संस्करण की समाप्ति के बाद, अभी हाल में ही उसका यह 'संशोधित और परिवर्द्धित' संस्करण प्रकाशित हुआ है। इस प्याले में कविता की मादकता तो भरी ही है, साथ ही इसकी कविताएँ केदारा, श्याम कल्याण, खम्माच और विहाग आदि राग रागिनियों में लिखी गई हैं। फलतः इनमें कवित्व है और सङ्गीत भी। रचनाएँ नवीन शैली की और भाव-पूर्ण हैं। पुस्तक के प्रारम्भ में रचयिता, उनकी धर्मपत्नी (जिन्हें पुस्तक समर्पित है) और विश्ववरेण्य रवीन्द्रनाथ ठाकुर के चित्र हैं। पुस्तक साफ़ काग़ज़ पर और अच्छी छपी है।

❀

आदर्श ग्रन्थमाला, दारागञ्ज, प्रयाग की कुछ बालोपयोगी पुस्तकें

नीचे लिखी बालोपयोगी पुस्तकें भी उपर्युक्त आदर्श ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित हैं। पुस्तकों की भाषा, रङ्ग-विरङ्गी छपाई और रङ्ग-विरङ्गे आवरण आदि सभी बालोपयोगी, सुन्दर और आकर्षक हैं। बच्चे इन पुस्तकों को पढ़ कर मनोरञ्जन के साथ-साथ यथेष्ट ज्ञानार्जन भी कर सकते हैं। इन बालोपयोगी पुस्तकों के नाम और दाम इस प्रकार हैं :—

सुनहली कहानियाँ—लेखक, श्री० नारायण विद्याधर गोरे, पृष्ठ-संख्या ३१, दाम ।)

मोतियों की माला—ले० श्री० अब्दुल रहमान, पृष्ठ-संख्या ६८, दाम ।=)

जादू का देश—लेखक, श्री० रामचन्द्र द्विवेदी 'प्रदीप', पृष्ठ-संख्या ८४, दाम ॥=)

उपदेश की कहानियाँ—लेखक, श्रीमती ज्योतिर्मयी ठाकुर, पृष्ठ-सं० ६०, दाम ।।=)

सोने का तोता—लेखक, श्री० रामचन्द्र द्विवेदी 'प्रदीप', पृष्ठ-संख्या ५४, दाम ।≡)

भोंपू—ले० श्री० गुर्ती सुब्रह्मण्यम्, विशारद, पृष्ठ-संख्या १००, दाम ।।)

मस्तराम—ले० श्री० ज्योतिर्मयी ठाकुर, पृष्ठ-संख्या ७२, दाम ।–)

सोने का हंस—लेखक श्री० रामचन्द्र द्विवेदी 'प्रदीप', पृष्ठ-संख्या ६६, दाम ।=)

विचित्र देश—ले० श्री० गुर्त्ती सुब्रह्मण्यम् विशारद, पृष्ठ-संख्या ६४, दाम ।≡)

हिंडोला—ले० श्री० रामचन्द्र द्विवेदी 'प्रदीप', पृष्ठ-संख्या ९८, दाम ॥)

परी देश—ले० श्री० रामचन्द्र द्विवेदी, पृष्ठ संख्या ९२, दाम ॥=)

सोने की परी—ले० श्री० व्यथित हृदय, पृष्ठ-संख्या ६५, दाम ।–)

हँसी की कहानियाँ—ले० श्री० ज्योतिर्मयी ठाकुर, पृष्ठ संख्या ९३, दाम ।।)

जानवरों की कहानियाँ—ले० श्री० गणेश पाण्डेय, पृष्ठ-संख्या ७६, दाम ।=)

फुलझड़ी—ले० श्री० ज्योतिर्मयी ठाकुर, पृष्ठ-संख्या ८३, दाम ॥)

हँसी के चुटकुले—ले० श्री० ज्योतिर्मयी ठाकुर, पृष्ठ-संख्या १०२, दाम ।।)

सियार पण्डित—ले० श्री० व्यथित हृदय, पृष्ठ-संख्या ४५, दाम ।)॥

चन्दा मामा—ले० श्री० व्यथित हृदय, पृष्ठ-संख्या ५४, दाम ।=)

तन्दुरुस्त बालक—ले० श्री० ज्योतिर्मयी ठाकुर, पृष्ठ-संख्या ५२, दाम ।–)

यह पुस्तक बालकों को स्वास्थ्य-सम्बन्धी शिक्षा देने के उद्देश्य से लिखी गई है।

गङ्गा-तत्वाङ्क—सम्पादक श्री० राहुल सांकृत्यायन और श्री० रामगोविन्द त्रिवेदी वेदान्तशास्त्री; प्रकाशक, 'गङ्गा'-कार्यालय कृष्णगढ़, सुलतानगञ्ज, भागलपुर; पृष्ठ-संख्या ३३७, मूल्य ३)

'गङ्गा' का यह 'पुरातत्वाङ्क' निस्सन्देह हिन्दी में एक नई चीज़ है। क्योंकि पुरातत्व सम्बन्धी विशेषाङ्क निकलना तो अलग रहा, हिन्दी के मासिकों में इस विषय के लेख भी बहुत कम देखने में आते हैं। ऐसी दशा में 'गङ्गा' के सञ्चालकों ने यह पुरातत्वाङ्क निकाल कर हिन्दी का विशेष उपकार किया है। इस बृहद्विशेषाङ्क में पुरातत्व विषय से दिलचस्पी रखने वाले बड़े-बड़े विद्वानों के ५३ लेख हैं। जिनमें पुरातत्व क्या है? उससे हमारे जातीय इतिहास का क्या सम्बन्ध है? उससे हमारा क्या उपकार हो सकता है? इसके द्वारा हमारे विलुप्तप्राय इतिहास का कितना कुछ उद्धार हो सका है, प्राचीन शिला-लेखों का वर्णन, भारत के विभिन्न खँडहरों का हाल, आदि पुरातत्व सम्बन्धी विविध विषयों पर प्रकाश डाला गया है? इसके सिवा सैकड़ों पुराने खँडहरों, पुरानी लिपियों और मूर्तियों के चित्र भी संग्रह करके इस विशेषाङ्क में दिए गए हैं, इस विशेषांङ्क द्वारा हमारे गौरवपूर्ण प्राचीन इतिहास पर विशेष प्रकाश पड़ता है। यह विशेषाङ्क हिन्दी की एक स्थायी सम्पत्ति है। इसके द्वारा हिन्दी का उपकार और 'गङ्गा' के गौरव की वृद्धि हुई है। अतः इसके सञ्चालक और सम्पादकों को विपुल बधाई है।

रिलीफ़ पञ्चाङ्ग—१९९०। प्रकाशक, मारवाड़ी रिलीफ़ सोसाइटी, ७।१ जगमोहन मल्लिक लेन, कलकत्ता।

इसमें सम्वत् १९९० के पूर्ण पञ्चाङ्ग के सिवा मारवाड़ी रिलीफ़ सोसाइटी द्वारा प्रस्तुत आयुर्वैदिक औषधियों का विज्ञापन तथा अन्य बहुत सी ज्ञातव्य बातें हैं। उक्त सोसाइटी इसे बिना मूल्य वितरण करती है।

पुरस्कार-प्रतियोगिता

क्षमा-प्रार्थना

कई अनिवार्य कारणों से इस बार कोई पहेली नहीं दी जा सकी। प्रतियोगिता-प्रेमी पाठक क्षमा करें। अगली बार अवश्य कोई मनोरञ्जक पहेली दी जावेगी।

गत बार की पहेली का परिणाम

गत अप्रैल मास के 'चाँद' में 'कहावत की खोज' शीर्षक पहेली दी गई थी, जिसका ठीक उत्तर यह है:—

"धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का।"

इस पहेली के कुल ३७८ उत्तर हमारे पास आए हैं, जिनमें से एक उत्तर ग़लत बाक़ी ३७७ ठीक हैं। इसके लिए पुरस्कार की रक़म २५) रक्खी गई थी और नियम में यह लिख दिया गया था कि अगर एक से अधिक सज्जनों के उत्तर ठीक आएँगे तो पुरस्कार की रक़म बराबर भागों में बाँट दी जाएगी। इसलिए उपर्युक्त नियम के अनुसार ये रुपए ३७७ विजेताओं में बाँटे जायँ तो प्रत्येक हिस्सा मनीऑर्डर कमीशन के लिए भी काफ़ी न होगा। इसलिए हमारी राय है कि अगर पुरस्कार-विजेतागण अनुमति प्रदान करें, तो उक्त २५) की 'चाँद' कार्यालय द्वारा प्रकाशित पुस्तकें किसी ऐसे सार्वजनिक पुस्तकालय या वाचनालय को प्रदान कर दी जावें जो सर्वसाधारण के लिए उपयोगी हों। इसलिए हम निम्नलिखित सार्वजनिक संस्थाओं के नाम उपस्थित करते हैं और विजेताओं से प्रार्थना करते हैं कि वे इन संस्थाओं में से जिस किसी को पुस्तकें दिलवाना चाहते हैं, उनके नाम हमारे पास लिख कर भेजने की कृपा करें। जिस संस्था के लिए अधिक से अधिक सम्मतियाँ आएँगी, उसी को भेजने का ख़र्च काट कर पुस्तकें भेज दी जाएँगी और विजेता सज्जनों की जानकारी के लिए इसकी सूचना आगामी मास के 'चाँद' में दे दी जाएगी।

हमारे इस प्रस्ताव के अतिरिक्त यदि पुरस्कार-विजेता इस रक़म के सदुपयोग की कोई और तदबीर बता सकेंगे, तो हमें उसे काम में लाने में कोई आपत्ति न होगी। क्योंकि यह रक़म उन्हीं की है और उन्हीं की इच्छा और अनुमति के अनुसार इसका उपयोग हो सकता है। हम तो अधिक से अधिक सम्मति के अनुसार कार्य करने को बाध्य हैं। संस्थाओं के नाम इस प्रकार हैं:—

१—श्री० महिला सेवा-सदन, महिला विद्यापीठ, क्रास्थवेट रोड, इलाहाबाद।

२—श्री० विद्यार्थी पुस्तकालय श्री रामबाग़, इलाहाबाद।

३—नागरी-प्रचारक पुस्तकालय, तिमरनी।

४—श्री० सरस्वती पुस्तकालय राजनाद गाँव, बी० एन० आर०।

५—श्री० लक्ष्मीविलास पुस्तकालय, गोला गोकर्णनाथ (लखीमपुर-खीरी)

सूचना

कुछ सज्जनों ने दिसम्बर मास की पहेली के निर्णय से असन्तोष प्रकट किया है। उनके पत्रों से यह मालूम होता है कि वे Cross word puzzle का अर्थ नहीं समझते। उन्हें मालूम होना चाहिए कि बिना Alternatives के कोई पहेली नहीं हो सकती। माना कि 'वारिज' और 'जलज' दोनों ठीक बैठते हैं, पर ठीक तो वही माना जायगा जो कि सुरक्षित उत्तर में होगा। यही नहीं, इसकी दो अशुद्धियाँ गिनी जायँगी, क्योंकि हमारे उत्तर से दो अक्षर नहीं मिलते।

व्यक्तिगत रूप से उत्तर नहीं दिया जा सकता था, इसलिए हमने यह नोट 'चाँद' में दिया है। भविष्य के लिए हम यह बतला देना चाहते हैं कि प्रतियोगिता में भाग लेने वाले इस प्रकार के पत्र हमारे पास न भेजा करें। क्योंकि प्रथम तो यह नियम-विरुद्ध है और फिर उत्तरों के देखने में काफ़ी समय दिया जाता है, जिससे किसी ग़लती की सम्भावना नहीं रह जाती है।

—सम्पादक प्रतियोगिता-विभाग

श्रीजगद्गुरु का फ़तवा

[हिज़ होलीनेस श्री० वृकोदरानन्द जी विरूपाक्ष]

भला, यह जान कर किस कमबख़्त की बाछें न खिल जायँगी कि श्रीमान् महाराजा बहादुर ऑफ़ योधपुर मुबलिग़ पचास लाख की लागत का एक नया महल बनवाने वाले हैं। वल्लाह, गृहप्रवेश के अवसर पर भूरि-भोजन की व्यवस्था तो अवश्य होगी। इसलिए योधपुरी भोजन-भट्टों को चाहिए कि भास्कर लवण का सेवन आरम्भ कर दें।

❀

महाराज युधिष्ठिर के सभा-भवन का निर्माता मय-दानव ने 'लङ्कसर ऐण्ड लॉज़' के रूप में लण्डन में जन्म लिया है, इसलिए महाराजा बहादुर का यह नवीन महल उसीके द्वारा निर्मित होगा। आख़िर यूरोप के कमबख़्त सुफ़ेदों को मालूम कैसे होगा कि महाराजा साहब नया महल बनवा रहे हैं।

❀

इस महल में शयनागार, नृत्यागार, थियेटरागार, स्नानागार और मलागार सब कुछ रहेगा। इसमें रहने वाले को खाना से लेकर पाख़ाना तक एक ही स्थान पर मिल जाएगा, न हाथों को हिलाने की आवश्यकता पड़ेगी और न पैरों को जुम्बिश देने की। महल अद्वितीय होगा।

❀

एक उर्दू अख़बार का कथन है कि इस महल के दो हिस्से होंगे—एक मर्दाना और दूसरा ज़नाना, "जो ज़मीन की सतह से १२० फ़ीट की बुलन्दी पर वाक़ः होगा।" तब तो आश्चर्य नहीं कि माउण्ट एवरेस्ट की तरह हवाई जहाज़ों द्वारा इसके इर्द-गिर्द चक्कर लगाने के लिए जर्मनी और इटली से उड़ाकों के अभियान भी आया करें। वाह रे महाराजा, क्या कहना है !

❀

अरे भई, ज़माना बदल रहा है। संसार में नवीनता की तूती बोल रही है। कहीं राजनीतिक सुधार हो रहा है तो कहीं सामाजिक। इसलिए योधपुर के महाराजा बहादुर ने भी कुछ नया काम करके प्रजा की गाढ़ी कमाई को सार्थक करने का विचार किया है। बक़ौल स्वर्गीय बाबू बालमुकुन्द गुप्त—

नया काम कुछ करना साधो, नया काम कुछ करना।
नाक कटाना कान कटाना, औंधे होकर चलना,
साधो, नया काम कुछ करना।

❀

राजपूताने के नरेश पहले जब कोई लड़ाई जीता करते थे, तो उसकी स्मृति में 'विजय-स्तम्भ' बनवाया करते थे। आजकल अङ्गरेज़ी राज्य की कृपा से बाघ और बकरी एक ही घाट पर पानी पीते हैं। राजे महाराजे जय-पराजय के झगड़ों से बरी हैं। इसलिए कोई विलायत से कुत्ते ख़रीद लाता है और कोई मेम ब्याह लाता है। ऐसी दशा में अगर योधपुर-नरेश विलायत से कारीगर बुला कर एक महल बनवा रहे हैं तो 'महाजनो येन गतः स पन्था' का ही अवलम्बन कर रहे हैं। इसीको कहते हैं, पूर्व पुरुषों का पदाङ्कानुसरण।

❀

परन्तु कुछ 'देखि न सकहिं पराइ विभूती' वालों का कहना है कि आर्थिक सङ्कट के दिनों में यह भारी रक़म ईंटा-सुर्ख़ी में न लगकर किसी जन-हितकर कार्य में लगती तो अच्छा था। इसी को कहते हैं—तेली का तेल जले और मशालची की छाती फटे ! इन अक़्ल के दुश्मनों को मालूम ही नहीं कि इससे बढ़कर जन-हितकर कार्य और हो ही नहीं सकता। 'हाथ कङ्गन को आरसी क्या?' प्रमाण लीजिए।

❀

इस महल में लगने वाली रक़म का अधिकांश भाग विलायती कम्पनी और विलायती कारीगरों के पेट में जाएगी, देश की मिट्टी पक कर ईंट के रूप में परिणत

होगी, महाराजा के मर जाने पर सारा महल यहीं पड़ा रहेगा, वे उसका चुटकी भर चूना भी अपने साथ न ले जाएँगे और उसके बाद दूसरे 'जन' उसमें गुलछर्रे उड़ाएँगे। बताइए, इससे बढ़ कर जनहितकर कार्य और क्या हो सकता है ?

❀

वहीं वजह अपने राम की राय है कि महाराजा बहादुर बड़ा ही अच्छा काम कर रहे हैं। 'यस्य कीर्त्ति सजीवति' के अनुसार आप इस महल के कारण मरने पर भी अमर ही रहेंगे। अपने पसीने की कमाई की ऐसी 'पक्की' (ईंट, पत्थर, सीमेण्ट और चूने के रूप में) सार्थकता देख कर प्रजा भी निहाल हो जाएगी और उसकी रक्त-रस-रहित विशुष्क हृत्तन्त्री महाराज की जय-जयकार-ध्वनि से झङ्कृत हो उठेगी।

❀

अल्लाह मियाँ की झोली—अर्थात् यह दुनिया भी अजीब चीज़ है—"कहीं ख़ूब ख़ूबी, कहीं हाय हाय !" इधर योधपुराधीश पचास लाख की लागत की अमर कीर्ति स्थापित कराने जा रहे हैं और उधर हट्टे-कट्टे, शकील नौजवानों के सुप्रसिद्ध क़द्र-दाँ राजर्षि अलवरेन्द्र बहादुर का यह हाल कि :—

सखी भई भगतिनियाँ जपैं माला !

❀

उस दिन जब आप काशी से अखिल भारतवर्षीय 'ज्ञानानन्दी' सनातन-धर्म-सम्मेलन से सनातन-धर्म का उद्धार करके, हाथ में गङ्गा-जल का कमण्डलु, सिर पर खद्दर की पगड़ी और शरीर पर खद्दर की रामनामी ओढ़े—'देह-गेह सब सन तृन तोरे' अलवर के स्टेशन पर उतरे तो बहुतों की आँखों के सामने इतिहास-प्रसिद्ध बी० 'म्याउ' की सूरत नाच गई, जो गले में फूटी मटकी की माला पहने हुए हज्ज से लौटी थीं। भला, दईमारों की इस बेहूदी स्मृति को क्या कहा जाय !

परन्तु अपने राम तो ख़ान्दानी कलाविद ठहरे, इसलिए इन्हें राजर्षि के नवीन वेष में कुछ ख़ामियाँ दीख पड़ीं। बात यह है कि खद्दर की रामनामी और गङ्गा-जली के साथ ही राजर्षि के मस्तक पर नीमूचाणा की यज्ञशाला की विभूति और एक हाथ में वह प्रसिद्ध चित्राधार होना चाहिए, जिसे आपने बहुत दिनों से संग्रह करके रक्खा है। और जिसे हम भारत के सैकड़ों नौजवानों के सौन्दर्य और स्वास्थ्य का समाधि-मन्दिर कह दें तो भी कोई अत्युक्ति न हो। क्योंकि वास्तव में उन अभागों के उस प्रकृति-प्रदत्त ऐश्वर्य (स्वास्थ्य और सौन्दर्य) का—

खोज मिलता है, यहीं तक,
बादअज़ाँ कुछ भी नहीं।

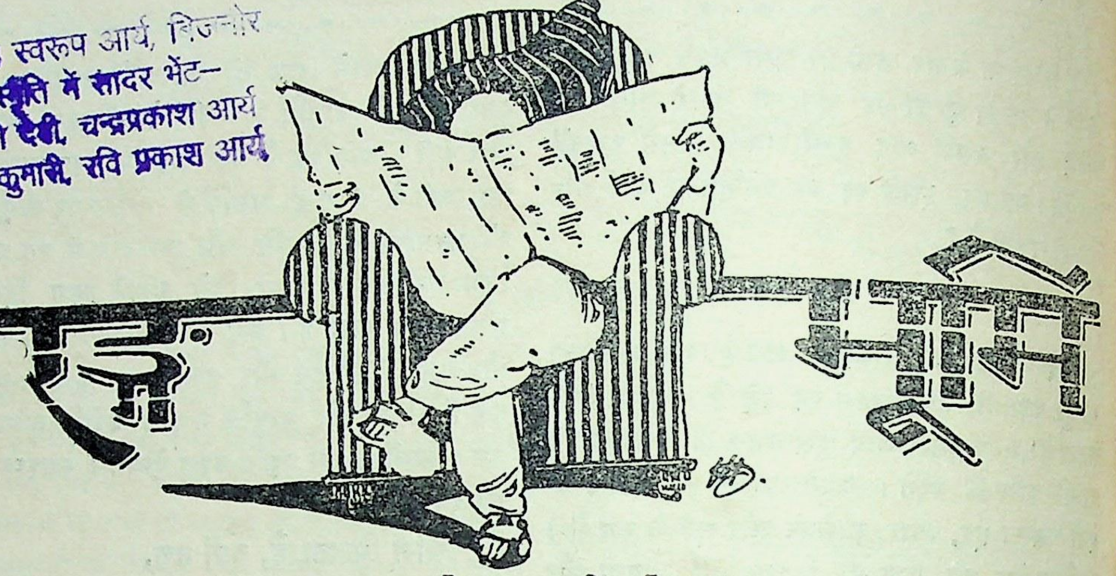
❀

ख़ैर साहब, भक्तों को अलवरेन्द्र जी का यह राजर्षि वेष ख़ूब पसन्द आया। राजर्षि की जय से काशी और अलवर का व्योम-मण्डल गूँज उठा। दादा सनातनधर्म और उनके अभिन्न वर्णाश्रम-धर्म का भविष्य भी उज्ज्वल हो उठा और लहलहा उठी बाबा ज्ञानानन्द की धर्म की खेती, जो अछूतोद्धार आदि आन्दोलनों के ओलों की मार से मूह्यमान हो रही थी। वल्लाह, राजर्षि के इस नए स्वाँग के साथ ही कई काम हो गए।

❀

अब अगर कहीं तक़दीर ने ज़ोर मारा और मेवाती-मसले से खीझी हुई गर्बीली गोरी—अर्थात् श्रीमती सखी नौकरशाही—भी महाराज के राजर्षि-वेष पर रीझ गई और अपने गोरे गुर्गों को अलवर से वापस बुला लिया तो बेहतर—राजर्षि रूप सार्थक, नहीं तो, ख़ुदा न करे, 'माथ हूँ मुँड़ाए ग़रीब गिरि ही नाम रह जायगा।' और अन्त में राजर्षि महोदय को आहे सर्द खींच कर सुमिरनी के मनकों पर अङ्गुलि-सञ्चालन करते-करते यही कह कर सब्र कर लेना पड़ेगा कि :—

ख़ुदा याद आ गया मुझको
बुतों की बेनियाज़ी से !



[सम्पादकीय]

हैदराबाद के हिन्दू

हैदराबाद (दक्षिण) के शासनकर्ता यद्यपि मुसलमान हैं, परन्तु जनसंख्या की दृष्टि से उसे हिन्दू-राज्य ही कहना उचित होगा ; क्योंकि वहाँ के निवासियों में ८६ प्रति शत हिन्दू और शेष में मुसलमान तथा अन्य सम्प्रदायों के लोग हैं। राज्य को जो वार्षिक आय होती है तथा उसके ख़ज़ाने में जो अर्थराशि सञ्चित है, वह प्रायः सभी हिन्दुओं के ही परिश्रम का फल है। परन्तु खेद है कि हिन्दुओं के इस धन का, जो जनता की शिक्षा, सुव्यवस्था तथा कल्याण के लिए राज्य को कर-स्वरूप दिया जाता है, उपयोग उनके लिए न होकर अधिकांश में ऐसे लोगों के लिए होता है जो उसके उपार्जन करने में कुछ भी कष्ट नहीं उठाते। यद्यपि यह एक इतिहास द्वारा सिद्ध बात है कि मुसलमानों में साम्प्रदायिकता का भाव अधिक होता है और वे स्वभावतः ही अपने को श्रेष्ठ तथा दूसरों को हीन मानते हैं, परन्तु इस बीसवीं शताब्दी में इस तरह के विचारों के अनुसार काम करना अनुचित तथा असमयोचित जान पड़ता है। आश्चर्य का विषय है कि हैदराबाद के निज़ाम, जो अपनी राजनीतिज्ञता तथा बुद्धिमत्ता के लिए प्रसिद्ध हैं, इस विषय में भ्रमपूर्ण मार्ग का अवलम्बन कर रहे हैं और कट्टर मुसलमानों की उसी नीति के अनुसार आचरण कर रहे हैं, जो औरङ्गज़ेब जैसे घोर पक्षपाती तथा सङ्कीर्ण-हृदय शासक द्वारा अमल में लाई गई थी। इस अन्यायपूर्ण नीति के फल-स्वरूप हैदराबाद के हिन्दुओं को नाना प्रकार के कष्ट उठाने पड़ रहे हैं और उनका असन्तोष दिन पर दिन बढ़ता जाता है। उनकी शिकायतों की जाँच करने के लिए कुछ समय पूर्व दिल्ली के अखिल-भारतीय रियासती हिन्दू-हितैषी मण्डल ने एक सब-कमिटी नियत की थी, जिसकी रिपोर्ट हाल ही में प्रकाशित हुई है। इस कमिटी ने हैदराबाद के प्रायः एक सौ प्रतिष्ठित हिन्दू नागरिकों की गवाहियाँ लीं तथा कितनी ही सामाजिक, धार्मिक संस्थाओं ने उसे लिखित बयान दिए। अनेक ज़रूरी काग़ज़-पत्र तथा सरकारी रिपोर्टें भी उसने निरीक्षण के लिए एकत्रित कीं। इस तमाम सामग्री के आधार पर कमिटी ने जो रिपोर्ट प्रस्तुत की है, उससे हैदराबाद के हिन्दुओं की असीम दुर्दशा की बात पूर्णतया सिद्ध हो जाती है। रिपोर्ट में ऐसे असंख्य उदाहरण दिए गए हैं जिनसे प्रकट होता है कि हैदराबाद में बहुसंख्यक हिन्दुओं के हित की बुरी तरह हत्या की जाती है और अल्पसंख्यक मुसलमानों को अधिक से अधिक सुभीते तथा विशेष अधिकार प्रदान किए जाते हैं। उदाहरण के लिए सरकारी नौकरियों में मुसलमान और हिन्दुओं की संख्या का अनुपात उनकी जनसंख्या से बिल्कुल उलटा है। अर्थात् ११

प्रति सैकड़ा नौकरियाँ हिन्दुओं को मिली हैं और शेष ८६ प्रति सैकड़ा मुसलमानों को। राज्य के बड़े-बड़े ओहदों पर तो हिन्दू नियुक्त ही नहीं किए जाते। उदाहरणार्थ कहा जा सकता है कि चीफ़ सेक्रेटेरियट में एक भी हिन्दू नहीं है। न्याय-विभाग के सेक्रेटेरियट में नौ कर्मचारी हैं, जो सब मुसलमान हैं। क़ानून-विभाग के सेक्रेटेरियट में चारों पद मुसलमानों को ही दिए गए हैं। युद्ध और धर्म-विभाग के सेक्रेटेरियट की भी यही दशा है। विचार-विभाग में १४ ज़िला जज तथा ७ अतिरिक्त जज हैं, जो सब के सब मुसलमान हैं। छः सरकारी वकील हैं, जिनमें हिन्दू एक भी नहीं। चार सिटी सिविलकोर्ट के जज हैं, जो सब मुसलमान हैं। इन आक्षेपों के प्रतिवाद स्वरूप हैदराबाद के शासकों की तरफ़ से कितनी ही बातें कही जाती हैं, जिनका आशय यह है कि हैदराबाद के हिन्दू प्रतियोगिता की परीक्षाओं में मुसलमानों के मुक़ाबले में सफलता प्राप्त नहीं कर सकते तथा सरकारी नौकरियों की तरफ़ उनका झुकाव ही नहीं है। परन्तु यह तर्क उस समय सर्वथा निस्सार सिद्ध होता है, जब हम देखते हैं कि समस्त भारत में हिन्दू प्रतियोगिता की परीक्षाओं में सबसे अधिक श्रेष्ठ निकलते हैं। फिर सरकारी नौकरी ही नहीं, शिक्षा, साहित्य, धर्म, जिस विषय में देखा जाय, हैदराबाद में मुसलमानों को अपार सुभीते मिले हैं और हिन्दुओं की सर्वथा उपेक्षा की जाती है। इन शिकायतों का पता उस प्रार्थना-पत्र से भलीभाँति चलता है, जो हैदराबाद की हिन्दू प्रजा की तरफ़ से निज़ाम सरकार की कार्यकारिणी कौन्सिल के सभापति की सेवा में पेश किया गया था। उसका केवल एक पैराग्राफ़ हम यहाँ देते हैं :—

"सन् १३४१ फ़सली के बजट पर दृष्टि डालने से प्रतीत होता है कि मुसलमानी समितियों के लिए ५० हज़ार तथा मुसलमानी साहित्य के लिए १७,५०० रु० सुरक्षित रक्खा गया है। मुसलमानी संस्थाओं के लिए वैसे भी प्रतिवर्ष बहुत बड़ी रक़म ख़र्च की जाती है। धार्मिक कार्यों के निमित्त राज्य की तरफ़ से जो सहायता दी जाती है, उसमें से ६५ प्रति सैकड़ा मुसलमानों को मिलती है। विशेष और रियायती अलाउन्स के मद में मुसलमानों को २,६२,८३० और हिन्दुओं को केवल १३,८८४ रु० दिया जाता है। इसी प्रकार विशेष धार्मिक अलाउन्स के मद में मुसलमानों के लिए २,००,६४२ और हिन्दुओं के लिए नाम-मात्र को १३४१) मञ्जूर किया गया है। इसके सिवा गत ५ वर्षों के भीतर रियासत के बाहर की मुसलमानी संस्थाओं को बहुत बड़ी-बड़ी रक़में दी गई हैं, जैसे नज्द के पुनरुद्धार के लिए ६ लाख रुपया, लन्दन की मस्जिद के लिए ५ लाख रु०, मुस्लिम यूनीवर्सिटी, अलीगढ़ के लिए १० लाख रु०, दिल्ली की जामे मिल्लिया के लिए ५० हज़ार रु० और पानीपत के मुस्लिम स्कूल के लिए बीस हज़ार रु० ! इन एकमुश्त दानों के सिवा विभिन्न मुस्लिम-संस्थाओं के लिए और भी ३ लाख रु० प्रति वर्ष व्यय किए जाते हैं। राज्य के भीतर मस्जिदें बनाने, क़ाज़ियों के लड़कों को छात्रवृत्ति देने तथा हाफ़िज़ तैयार करने के लिए भी प्रति वर्ष बहुत सा धन ख़र्च किया जाता है। राज्य की तरफ़ से विशेष मुसलमानी धर्म-प्रचारक नियत किए गए हैं, जो मुसलमान प्रजा को धार्मिक शिक्षा देते हैं। हमारे कथन का आशय यह नहीं है कि हम इन ख़र्चों के प्रति द्वेषभाव रखते हैं। क्योंकि हमारा विश्वास है कि यदि रियासत की जनता का कोई भी अङ्ग उन्नति करेगा तो उससे सभी लोगों का कल्याण होगा। हमारा कथन केवल इतना ही है कि मुसलमानों की तरह राज्य में बसने वाले अन्य सम्प्रदायों के लोगों को भी सुविधाएँ मिलनी चाहिए। इस सम्बन्ध में हम यह बतला देना चाहते हैं कि यदि हिन्दू अपने व्यय से भी अपने किसी देवालय की मरम्मत कराना चाहते हैं, तो इसके लिए बड़ी कठिनाई से अनुमति प्राप्त होती है। यह भेद उस समय अत्यन्त अनुचित जँचता है, जब हम देखते हैं कि सरकार प्रत्येक स्थान में मस्जिदें बनवाने के लिए सदैव सहायता करती रहती है।"

शिक्षा के सम्बन्ध में भी ऐसी ही नीति का अवलम्बन किया जाता है। राज्य की तरफ़ से जितनी प्रायमरी तथा सेकिण्डरी पाठशालाएँ हैं, उनमें केवल उर्दू द्वारा शिक्षा दी जाती है, जो केवल जनता के ६ प्रति सैकड़ा भाग की मातृभाषा है। पर तेलगू, मराठी और कनाड़ी की शिक्षा के लिए, जिनके बोलने वाले उर्दू वालों से कहीं अधिक हैं, कुछ भी प्रबन्ध नहीं किया जाता। हिन्दुओं की तरफ़ से जो निजी पाठशालाएँ खोली जाती हैं, उनको सहायता देने के बजाय उनके

मार्ग में अड़चनें डाली जाती हैं। इन तमाम बातों से इसमें किसी तरह का सन्देह नहीं रह जाता कि हैदराबाद के हिन्दुओं को जितने कष्ट हैं, वे काश्मीर और अलवर के मुसलमानों के कल्पित कष्टों से किसी भी दशा में कम नहीं हैं। परन्तु आश्चर्य है कि उनके लिए न कहीं आन्दोलन होता है, न कोई उनकी सहायता के लिए खड़ा होता है। क्या इससे यही तात्पर्य निकाला जाय कि हिन्दू मुसलमानों की भाँति उद्दण्ड और लड़ाकू होने के बजाय शान्तिप्रिय तथा निरीह हैं और अपनी हित-रक्षा के लिए सङ्गठित होकर काम करना नहीं जानते, इसीलिए उनकी उपेक्षा की जाती है।

❀ ❀ ❀

क़ानून की लीला

भारत में जितने प्रकार के सरकारी क़ानून प्रचलित हैं, उनमें सबसे विचित्र और विस्तृत सम्भवतः दफ़ा १२४-ए ही है, और शायद सबसे अधिक दुरुपयोग भी इसी का किया जाता है। यह दफ़ा ऐसी गोलमोल अर्थयुक्त तथा लचीली है कि सर्वथा निर्दोष तथा आपत्ति-रहित वस्तु भी उसके अनुसार अपराध क़रार दी जा सकती है। इसके द्वारा अब तक न मालूम कितनी ऐतिहासिक तथा साहित्यिक उपयोगी पुस्तकों का संहार हो चुका है। इस सम्बन्ध में हम स्वयम् भुक्तभोगी हैं और भली प्रकार जानते हैं कि किस प्रकार ऐसी रचनाएँ, जिनके सम्बन्ध में हमारे हृदय में किसी भी तरह की शङ्का नहीं होती और न जिनमें किसी तरह का कूट उद्देश्य अथवा दुरभिसन्धि होती है, अकस्मात् इस दफ़ा की कृपा से राजद्रोहपूर्ण बतलाई जाकर ज़ब्त कर दी जाती हैं। श्री० मैथिलीशरण गुप्त रचित 'ईश-प्रार्थना' तथा श्री० रामदास गौड़ लिखित बालपोथियों का ज़ब्त किया जाना इस दफ़ा के दुरुपयोग के ऐसे उदाहरण हैं, जिनको प्रायः सभी हिन्दी पाठक जानते हैं और जिनकी चर्चा एक समय सभी पत्र-पत्रिकाओं में हो चुकी है। अब इसी प्रकार का व्यवहार अजमेर के सस्ता-साहित्य-मण्डल द्वारा प्रकाशित दो पुस्तकों के साथ किया गया है। इनमें से एक का नाम 'सामाजिक कुरीतियाँ' और दूसरी का 'हमारे ज़माने की गुलामी' है। ये दोनों पुस्तकें जगत्प्रसिद्ध लेखक महात्मा टॉलसटॉय की लिखी हैं और बहुत वर्षों से संसार के प्रत्येक देश में छपती आई हैं। सम्भवतः भारत में कोई भी ऐसा सरकारी अथवा ग़ैर-सरकारी बड़ा पुस्तकालय न होगा, जिसमें ये न मिल सकें। यदि स्वयम् वायसरॉय तथा प्रादेशिक गवर्नरों के निजी पुस्तकालयों में भी ये मौजूद हों तो कोई आश्चर्य नहीं। इनका न किसी देश-विशेष से सम्बन्ध है और न इनमें किसी राष्ट्र-विशेष की सरकार या समाज की आलोचना की गई है। इनमें टॉलसटॉय ने मनुष्य-समाज में फैली हुई अनेक बुराइयों का दिग्दर्शन कराया है और समाज-निर्माण के सम्बन्ध में अपने स्वतन्त्र विचार प्रकट किये हैं। इन दोनों पुस्तकों का हिन्दी-अनुवाद कई वर्ष पूर्व सस्ता-साहित्य मण्डल ने प्रकाशित किया था और हाल ही में उनके नवीन संस्करण हुए थे। अब तक इन पुस्तकों की हज़ारों प्रतियाँ बिक चुकी थीं और किसी ने उन पर किसी तरह की आपत्ति नहीं की थी। परन्तु अब अचानक अजमेर मेरवाड़ा की सरकार ने उनको दूषित ठहरा कर ज़ब्त कर लिया है और पुलिस 'मण्डल' के कार्यालय से उनकी कुछ प्रतियाँ उठा ले गई है। हम नहीं समझ सकते कि इतने दिन बाद ये पुस्तकें भारत-सरकार अथवा भारतीय शासन-व्यवस्था के विरुद्ध कैसे हो गईं। सम्भव है, यह कार्य किसी अधिक 'जोशीले' सरकारी कर्मचारी ने अपनी कारगुज़ारी दिखलाने के लिए जल्दी में कर डाला हो और बाद में चारों तरफ़ से लताड़ पड़ने पर सरकार अपनी भूल समझ कर अपने हुक्म को वापस कर ले। परन्तु इस घटना से इतना तो स्पष्ट जान पड़ता है कि सरकार जिन पुस्तकों को ज़ब्त करती है, वे सभी दोषी नहीं होतीं। परन्तु असमर्थता के कारण लेखक और प्रकाशक सरकारी आज्ञा का प्रतिकार नहीं कर सकते और इसलिए शासकों का कृत्य सर्वथा अनुचित होते हुए भी वैध मान लिया जाता है। यह अवस्था साहित्य तथा देश के कल्याण की दृष्टि से अवश्य ही शोचनीय है और इसका प्रतिकार तभी हो सकता है, जब कि या तो क़ानून में ऐसा परिवर्तन किया जाय, जिससे ज़ब्त की जाने वाली पुस्तक के लेखक और प्रकाशक को बिना किसी तवालत या ख़र्च के अपना मामला अदालत के सामने ला सकने की व्यवस्था हो अथवा किसी ऐसी

सार्वजनिक संस्था का सङ्गठन किया जाय, जो इस प्रकार ज़ब्त किए जाने वाले साहित्य पर दृष्टि रक्खे और जहाँ अन्याय हुआ देखे, उस मामले की पैरवी स्वयम् करे।

शान्ति की दुराशा

इधर कुछ दिनों से जर्मनी में जो घटनाएँ हो रही हैं और फ़्रान्स उनके प्रति जिस प्रकार का मनोभाव प्रकट कर रहा है, उससे प्रमाणित होता है कि जो लोग संसार-व्यापी शान्ति का स्वप्न देख रहे हैं अथवा निशस्त्रीकरण के मनसूबे बाँध रहे हैं वे बड़े भ्रम में हैं। जर्मनी के निर्वाचन में हिटलर की सफलता इस बात को सिद्ध करती है कि वहाँ बहुसंख्यक निवासी वर्सेलीज़ की अन्यायपूर्ण सन्धि से अत्यन्त असन्तुष्ट हो उठे हैं और अब उन्होंने परिणाम की चिन्ता त्याग कर अन्य राष्ट्रों के समान अधिकार बलपूर्वक प्राप्त करने का निश्चय कर लिया है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के ज्ञाता एक अङ्गरेज़ ने, जो हाल ही में जर्मनी से लौट कर आया है, 'डेली टेलीग्राफ़' (लन्दन) में लिखा है कि "हिटलर की सरकार निश्चयात्मक रूप से सैनिक ढङ्ग की है और उसके शासनारूढ़ होते ही समस्त जर्मनी में युद्ध की तैयारियाँ होने लगी हैं। वहाँ का वायुयान-विभाग इस विद्या के विशेषज्ञों को, जो गत महायुद्ध के पश्चात् नौकरी से अलग कर दिए गए थे, ढूँढ़-ढूँढ़ कर एकत्रित कर रहा है। इसके साथ ही युद्धोपयोगी वायुयानों को बनाने तथा बड़े परिमाण में ज़हरीली गैस आदि तैयार करने का भी बन्दोबस्त हो गया है। इन तैयारियों का वास्तविक भेद कोई खोल न सके, इसीलिए कम्यूनिस्टों तथा शान्तिवादियों पर अकथनीय अत्याचार किए जा रहे हैं, क्योंकि ये सब युद्ध के विरोधी हैं और हर तरह से ऐसी तैयारी में बाधा डालते हैं।" एक अन्य सम्वाददाता द्वारा भेजे हुए समाचारों से विदित होता है कि अभी जर्मनी में दो नवीन रणपोत तैयार किए गए हैं, जिनके प्रथम बार समुद्र में डाले जाने के उपलक्ष में ऐडमिरल रीडर ने भाषण देते हुए यह अभिलाषा प्रकट की कि "वे जर्मन नौसेना के प्राचीन आदर्श की पूर्ति करेंगे।" यह भी ख़बर आई है कि जर्मनी की नई सरकार ने पुराने नियमों को तोड़ कर वहाँ के विद्यार्थियों के द्वन्द-युद्ध (Duel) को फिर से अनिवार्य क़रार दे दिया है। इस आज्ञा को प्रकाशित करते हुए कहा गया है कि "विद्यार्थियों में लड़ने की भावना को जाग्रत करना सब प्रकार से वाञ्छनीय है; क्योंकि इससे उनका साहस दृढ़ होता है, आत्म-संयम की वृद्धि होती है और इच्छा-शक्ति प्रबल होती है।" इन तमाम बातों से स्पष्ट जान पड़ता है कि फ़्रान्स और इङ्गलैण्ड आदि ने जर्मनी को जिस तरह ज़बर्दस्ती निर्बल और असहाय बनाने की चेष्टा की थी, अब उसकी प्रतिक्रिया हो रही है। जर्मनी की सङ्गठित तथा नियमित सैनिक और शासन-शक्ति को कुचल देने का ही यह परिणाम हुआ है कि आज वहाँ की बागडोर रण-प्रेमी नाज़ी-दल के हाथ में आ गई है, जिसमें प्रायः उद्धत प्रकृति के युवकों की भरमार है। इसका फल जर्मनी तथा अन्य यूरोपीय देशों के लिए कितना भयावह होगा, इसकी अभी कल्पना नहीं की जा सकती। पर तो भी यूरोपियन शक्तियों की आँखें नहीं खुलतीं और वे अपने राष्ट्रीय हित की ही दुहाई दे रही हैं। यद्यपि शान्ति-रक्षा तथा निशस्त्रीकरण के प्रोग्रामों की कमी नहीं है, पर कोई उन पर सच्चे हृदय से अमल करने को तैयार नहीं है। प्रत्येक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को सन्देह की दृष्टि से देख रहा है और सब से पहले अपनी 'रक्षा' की 'गारण्टी' माँगता है। अभी इस विषय की विवेचना करने के लिए इङ्गलैण्ड के प्रधान मन्त्री मि० मैकडॉनल्ड इटली गए थे और वहाँ उन्होंने मुसोलिनी की सम्मति से निशस्त्रीकरण का एक 'पैक्ट' बनाया था, जिसे "सर्वाङ्ग पूर्ण तथा अत्यन्त व्यापक" बतलाया गया। परन्तु फ़्रान्स के पत्र उसे "तेरह महीनों में सत्तावनवाँ प्रोग्राम" कह कर उसकी हँसी उड़ा रहे हैं। फ़्रान्स-सरकार ने भी उसमें ऐसे परिवर्तन किए हैं, जिससे उसकी उपयोगिता नष्ट हो जाने की सम्भावना है। इस पर इटली की सरकार ने कहा है कि यदि उक्त 'पैक्ट' के मूल सिद्धान्तों को तब्दील किया गया तो वह उनके किसी काम का नहीं रहेगा। ये सब शान्ति के लक्षण नहीं हैं, वरन् इनसे तो यही प्रतीत होता है कि यूरोप दिन पर दिन अशान्ति और अव्यवस्था की तरफ़ बढ़ता जा रहा है।

अनुचित प्रतियोगिता का अन्त

जापानी माल ने और विशेषतः जापान से आने वाले कपड़े ने भारतीय वस्त्र-व्यवसाय की अवस्था कैसी सङ्कटापन्न कर दी है, इसकी चर्चा समाचार पत्रों में प्रायः बराबर होती रहती है। इस अनुचित प्रतियोगिता ने आजकल और भी भीषण रूप धारण कर लिया है और उसके परिणाम-स्वरूप इस देश की कपड़े की मिलें धड़ाधड़ बन्द होने लगी हैं। देश का बाज़ार जापानी कपड़े से पटा जा रहा है। जापानी कपड़ा देखने में सुन्दर होने के साथ ही इतना सस्ता होता है कि एक साधारण व्यक्ति को भी आश्चर्य होता है कि आख़िर जापानी मिल वालों का पड़ता किस प्रकार बैठता होगा। परन्तु जो लोग वर्तमान समय की व्यवसाय-जगत में प्रचलित कूटनीति से परिचित हैं, उनको इसमें ज़रा भी आश्चर्य नहीं मालूम होगा। यह सस्तापन जापान के व्यवसाइयों तथा वहाँ की सरकार ने जान-बूझ कर किया है। वे स्वयम् हानि सह कर इसलिए इतने सस्ते भाव में कपड़ा बेच रहे हैं कि इस देश का वस्त्र-व्यवसाय चौपट हो जाय और तब वे मनमाना दाम लेकर अपने घाटे से दुगुनी-चौगुनी रक़म वसूल कर लें। वास्तव में इस प्रकार की प्रतियोगिता इतनी नीच स्वार्थयुक्त है कि कोई भी स्वतन्त्र राष्ट्र उसे एक दिन के लिए भी सहन नहीं कर सकता। परन्तु भारत की शासन-व्यवस्था उत्तरदायित्व-शून्य है, यहाँ ऐसी बातों पर उस समय ध्यान दिया जाता है, जब अवस्था अन्तिम सीमा पर पहुँच जाती है और बहुत कुछ हानि हो चुकती है। यही दशा इस बार भी हुई और जब जापान की प्रतियोगिता न कर सकने के कारण यहाँ की बहुत सी मिलें बन्द हो गईं और उनके मालिक हाय-तोबा मचाने लगे, तब सरकार की निद्रा भङ्ग हुई और उसने एसेम्बली में एक बिल पेश किया, जिसके अनुसार गवर्नर-जनरल को अधिकार दिया गया है कि वे अपनी कार्यकारिणी समिति की सलाह से किसी भी देश के माल पर अतिरिक्त कर लगा सकते हैं, बशर्ते कि उन्हें यह विश्वास हो जाय कि वह देश इस देश में इतने सस्ते दर से माल बेच रहा है कि यहाँ के व्यवसाय की स्थिति ख़तरे में पड़ गई है।

इस क़ानून के अनुसार गवर्नर-जनरल जो आज्ञाएँ निकालेंगे वे सब एसेम्बली के सामने उपस्थित की जायँगी और यदि एसेम्बली उनको अस्वीकार करेगी तो दो महीने बाद वे रद्द हो जायँगी। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि इस समय ऐसी किसी योजना की सख़्त ज़रूरत थी। इसलिए सरकार ने जो क़ानून बनाया है वह ऊपरी दृष्टि से किसी प्रकार भी अनुचित नहीं कहा जा सकता। वैसे तो इस समय भी इस देश में 'टैरिफ़-बोर्ड' क़ायम है, जो भिन्न-भिन्न व्यवसायों की जाँच करके उनके संरक्षण के लिए बाहर से आने वाले माल पर कर लगाने का निश्चय किया करता है। पर उसकी कार्यप्रणाली बड़ी लम्बी है और उसके निर्णय में प्रायः इतना अधिक समय लग जाता है कि जब तक किसी व्यवसाय के सहायतार्थ संरक्षण कर लगाने की नौबत आती है, तब तक वह बहुत-कुछ चौपट हो चुकता है। परन्तु अब इस नए क़ानून द्वारा गवर्नर-जनरल बहुत जल्दी ऐसे प्रश्नों का निर्णय कर सकेंगे और विदेशियों की अनुचित प्रतियोगिता का प्रतिकार यथा-समय किया जा सकेगा। परन्तु यह सब तभी सम्भव होगा, जब सरकार इस देश के व्यवसाय का ही मुख्यतया ध्यान रक्खे। यदि उसने भारतीय व्यवसाय के साथ-साथ इङ्गलैण्ड अथवा ब्रिटिश साम्राज्य के व्यवसाय के हित की रक्षा करना भी अपना कर्तव्य समझा, जैसा कि अब तक प्रायः होता रहा है, तो इस क़ानून का मूल्य बहुत कम रह जायगा। उस समय यहाँ की जनता को केवल स्वदेशी व्यवसाय की उन्नति के लिए ही नहीं, वरन् ऐसे देशों के व्यवसाय के हित के लिए भी स्वार्थ-त्याग करना पड़ेगा, जिनसे उसका कोई उपकार नहीं होता।

❀ ❀ ❀

'पद्म-पराग'

इसे हिन्दी भाषा का दुर्भाग्य ही समझना चाहिए कि जो व्यक्ति इसकी सेवा के लिए अपना जीवन अर्पण कर देते हैं, और अनेक कष्ट तथा हानि सह कर भी इसके भण्डार की पूर्ति करते हैं, उनकी कोई

खोज-ख़बर भी नहीं लेता। देहान्त हो जाने के बाद की तो बात ही क्या, जीवित अवस्था में ही अनेक ख्यात-नामा हिन्दी-लेखकों को वृद्धावस्था अथवा बेकारी के कारण भूखों मरना पड़ा है और अपील की जाने पर भी किसी ने उनकी तरफ़ विशेष रूप से ध्यान नहीं दिया। इसी प्रवृत्ति का फल है कि जिन लेखकों ने आरम्भिक युग में हिन्दी-लेखन-शैली की जड़ जमाई है उनके लेखों का दर्शन भी आज दुष्प्राप्य है। श्री० प्रतापनारायण मिश्र, श्री० प्रेमघन, श्री० बालकृष्ण भट्ट आदि जैसे लेखकों के कुछ इने-गिने लेख ही आज दृष्टिगोचर होते हैं। यदि हिन्दी-पाठकों में कुछ भी कृतज्ञता का भाव होता तो इन लेखकों की लेख-मालाओं के सुन्दर तथा सर्वाङ्ग-पूर्ण संस्करण कभी के निकल गए होते; और उनसे हिन्दी की प्रगति को विशेष सहायता मिली होती। ख़ैर, अब धीरे-धीरे इस अवस्था में कुछ परिवर्तन होने लगा है और लोग मातृ-भाषा के सेवकों का आदर करना सीख रहे हैं। पर अभी भी उनकी कृतियों को सुरक्षित रखने की भावना विशेष रूप से जागृत नहीं हुई है। इसी अनुचित प्रवृत्ति का फल है कि आज हमको हिन्दी भाषा-भाषियों के सामने स्वर्गीय पं० पद्मसिंह शर्मा के लेख-संग्रह के द्वितीय भाग को प्रकाशित कराने में सहायता देने की अपील करनी पड़ रही है। पण्डित जी हिन्दी-भाषा के अद्वितीय विद्वान् तथा निर्भीक समालोचक थे। उन्होंने जो कुछ लिखा है, उससे उनके गम्भीर साहित्य-ज्ञान का भली-भाँति परिचय मिलता है। उनके लेखों के सम्बन्ध में श्री० बनारसीदास चतुर्वेदी ने ठीक ही लिखा है कि "जो लोग स्वर्गीय शर्मा जी को जानते हैं, वे यह कहते हैं कि यदि कोई लेखक अपने व्यक्तित्व की छाप अपने लेखों पर और अपनी लेखन-शैली पर छोड़ने में समर्थ हुआ है, तो वे शर्मा जी ही थे। आज से दस-बीस वर्ष बाद ही नहीं, बल्कि सौ वर्ष बाद भी स्वर्गीय शर्मा जी के लेख अपनी अनुपम लेखन-शैली के कारण पढ़े जायँगे। जिस सहृदयता तथा जिस तल्लीनता के साथ वे लिखते थे और शब्दों पर उनका जो असाधारण अधिकार था, वह सहृदयता तथा तल्लीनता उतनी मात्रा में शायद ही किसी हिन्दी-लेखक में पाई जाती हो।"

वस्तुतः शर्मा जी के लेख हिन्दी साहित्य की अपूर्व सामग्री हैं और हिन्दी-भाषा-भाषियों के लिए यह घोर कलङ्क की बात होगी यदि उनके लेख संगृहीत होकर अर्थाभाव के कारण प्रकाशित न हो सकें और समाचार-पत्रों की फ़ायलों में पड़े-पड़े नष्ट हो जायँ। दर असल ऐसे लेखकों की रचनाएँ ही उनकी सच्ची जीवनियाँ होती हैं। फलतः उनकी रक्षा करना उनको एक प्रकार से अमर कर देना है। ऐसी अवस्था में यदि हिन्दी के प्रेमीगण इस कार्य में थोड़े से रुपए ख़र्च कर दें तो यह उनका दुरुपयोग न समझा जायगा। विशेषकर पं० पद्मसिंह शर्मा जैसे सहृदय साहित्य-सेवक के लिए, जिनका सम्पूर्ण जीवन ही दूसरों को प्रोत्साहन प्रदान करते-करते बीता और जिन्होंने बीसियों नवीन हिन्दी-लेखकों तथा कवियों की सृष्टि की, इतनी सी चेष्टा कर देना, कोई बड़ी बात नहीं है। शर्मा जी के लेखों का एक संग्रह 'पद्म-पराग' (प्रथम भाग) के नाम से छप चुका है। दूसरे भाग का संग्रह उनके पुत्र श्री० रामनाथ शर्मा ने कर डाला है। परन्तु अर्थाभाव के कारण वे उसके प्रकाशन का व्यय-भार नहीं सहन कर सकते। इसलिए पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी ने अपने विख्यात पत्र 'विशाल-भारत' में एक अपील निकाली है और हिन्दी-संसार से प्रार्थना की है कि स्वर्गवासी पं० पद्मसिंह जी शर्मा की इस महान कीर्ति की रक्षा में श्री० रामनाथ जी की यथेष्ट सहायता करें अर्थात् 'पद्म-पराग' के दूसरे भाग के प्रकाशन कार्य में उनकी आर्थिक मदद करें। जो सज्जन इस विषय में कुछ सहायता करना चाहें वे 'पद्म-पराग' के प्रकाशक श्री० रामनाथ शर्मा, नायकनगला, पो० चाँदपुर, ज़िला बिजनौर को लिखें।

महिला कवि-सम्मेलन

इलाहाबाद का महिला कवि-सम्मेलन, जिसका अधिवेशन गत १५ अप्रैल को महिला विद्यापीठ हॉल में हुआ था, निस्सन्देह हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक अभूतपूर्व घटना है और साथ ही वह स्त्रियों की जागृति का एक दृढ़ प्रमाण भी है। इससे प्रकट होता है कि अब भारतीय स्त्रियों को अपने महत्व तथा शक्ति का आभास मिल गया है और वे किसी

क्षेत्र में भी पुरुषों से पीछे या उनसे दबी हुई नहीं रहना चाहतीं। यद्यपि हिन्दी के कविता-कानन में स्त्रियाँ बहुत पहले से ही प्रवेश कर चुकी हैं और आजकल हमको कई लब्ध-प्रतिष्ठ तथा प्रतिभाशालिनी कवियित्रियों की रचनाओं का आस्वादन करने का सौभाग्य प्राप्त है, पर अभी तक वे अस्त-व्यस्त दशा में थीं और उनका कोई ऐसा सङ्गठन न था, जिसके द्वारा उनकी कृतियों का यथोचित प्रचार और आदर हो सकता तथा उनको उन्नति करने के लिए प्रोत्साहन मिलता। यद्यपि उनकी रचनाएँ समय-समय पर सामयिक पत्रों में स्थान पाती रहती थीं, पर इसका आधार सम्पादकों की कृपा पर था और इससे उनको उतना प्रोत्साहन प्राप्त नहीं होता था जितना कि जन-समुदाय के सम्मुख अपनी रचना को मौखिक रूप से उपस्थित करने से मिलता है। यह देखा गया है कि कितनी ही कविताएँ जो पढ़ने में सर्वथा नीरस तथा भाव-शून्य जान पड़ती हैं, वे रचयिता के मुख से ऐसी आकर्षक तथा मधुर प्रतीत होती हैं कि श्रोता उन पर लट्टू हो जाते हैं। हम ऐसे अनेक कवियों को जानते हैं जिनकी कविताएँ आरम्भ में सम्पादकों की रद्दी की टोकरी में फेंकी जाती थीं, पर जब कवि-सम्मेलनों में उन्होंने अपनी धाक जमाई तो पत्रकार भी उनकी रचनाओं को प्रकाशित करने लगे और धीरे-धीरे वे महाकवि बन बैठे। इन तमाम दृष्टियों से महिला कवि-सम्मेलन जैसे किसी आयोजन की अत्यन्त आवश्यकता थी और हमें यह कहते हर्ष होता है कि इस सम्बन्ध में किया गया यह प्रथम प्रयत्न सब प्रकार से सफल हुआ है। सम्मेलन में क़रीब एक हज़ार महिलाओं ने भाग लिया था, जो स्त्रियों की वर्तमान परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए एक आश्चर्यजनक संख्या है। सम्मेलन की स्वागतकारिणी समिति की प्रधाना श्रीमती महादेवी वर्मा, बी० ए० तथा अध्यक्षा श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान के भाषण भी समयोचित तथा मार्के के थे। श्रीमती सुभद्राकुमारी ने एक बात महत्व की यह कही है कि कविता के क्षेत्र पर स्वभावतः पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का अधिकार अधिक है और सम्भवतः आगे चल कर स्त्रियाँ इसे कार्य-रूप में परिणत करके दिखला सकेंगी। उनकी दलील है कि कविता में प्रायः भाव की प्रधानता होती है और भावुकता की मात्रा स्त्रियों में निश्चयात्मक रूप से पुरुषों की अपेक्षा अधिक होती है। इसके प्रमाण-स्वरूप वे कहती हैं :--

"नारी-हृदय की तुलना हम वायु-मापक यन्त्र (बैरोमीटर) से कर सकते हैं, जिससे छोटे से छोटा परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। स्त्री-हृदय की कोमल वृत्तियाँ अत्यधिक सजग और सजीव रहती हैं। उनकी हृदय-वीणा का प्रत्येक तार इतना खिंचा और कसा रहता है कि वह वातावरण के सूक्ष्मातिसूक्ष्म आघात से निनादित हो उठता है। शरीर-विज्ञान और मनोविज्ञान के पण्डितों का कहना है कि स्त्रियों की शरीर-रचना और मन पुरुषों को अपेक्षा कहीं अधिक परिष्कृत है।"

दूसरा लाभ स्त्रियों के कविता-क्षेत्र में प्रवेश करने से यह होगा कि कविता की भाषा में सरलता का समावेश होगा। स्त्रियों के स्वभाव तथा वाणी में स्वाभाविक रूप से विशेष कोमलता पाई जाती है और वे कर्णकटु तथा कठोर शब्दों को प्रायः मधुर और सरल बना लेती हैं। यह माधुर्य कविता के लिए एक आवश्यक वस्तु है और जो कविता इस गुण से शून्य होगी उसका प्रचार साधारण जनता में कभी अधिक न हो सकेगा। स्त्री-स्वभाव की इन दो विशेषताओं के आधार पर श्रीमती चौहान ने स्त्री-कवियों के भविष्य की जो उज्ज्वल रूप-रेखा खींची है उससे हम पूर्णतया सहमत हैं। हमारा विश्वास है कि इलाहाबाद का यह महिला कवि-सम्मेलन एक विराट आन्दोलन अथवा भावी प्रगति की भूमिका-मात्र है और कुछ ही दिनों में ऐसा अवसर आ सकता है जब संख्या और आकर्षण की दृष्टि से महिला कवि-सम्मेलन पुरुषों के कवि-सम्मेलनों से बाज़ी मार ले जायँगे। सम्मेलन ने एक प्रस्ताव द्वारा रानी-महारानियों तथा अन्य सम्पन्न श्रीमतियों से प्रार्थना की है कि वे समय-समय पर ऐसे उत्सवों का आयोजन करती रहें और सुकवियित्रियों को सम्मानित करके उनका उत्साह बढ़ाती रहें। इसमें सन्देह नहीं कि इस दिशा में नियमपूर्वक काम होने से स्त्री-कवियों को बहुत प्रोत्साहन मिलेगा और वे कविता के क्षेत्र में शीघ्रतापूर्वक उन्नति करके उसमें उचित स्थान प्राप्त कर सकेंगी।

जून, १९३३

चाँद

[वर्ष ११, खण्ड २
सं० २, पू० सं० १२८]



सम्पादक :—
मुन्शी नवजादिकलाल श्रीवास्तव

वार्षिक चन्दा ६॥)
छः माही चन्दा ३॥)

विदेश का चन्दा ८॥)
इस अङ्क का मूल्य ॥=)

THE CHAND PRESS LIMITED, CHANDRALOK—ALLAHABAD

शीघ्रता कीजिए !   छप गई !   प्रकाशित हो गई !!

नवीन दाम्पत्य-जीवन में स्त्रियों के अधिकार

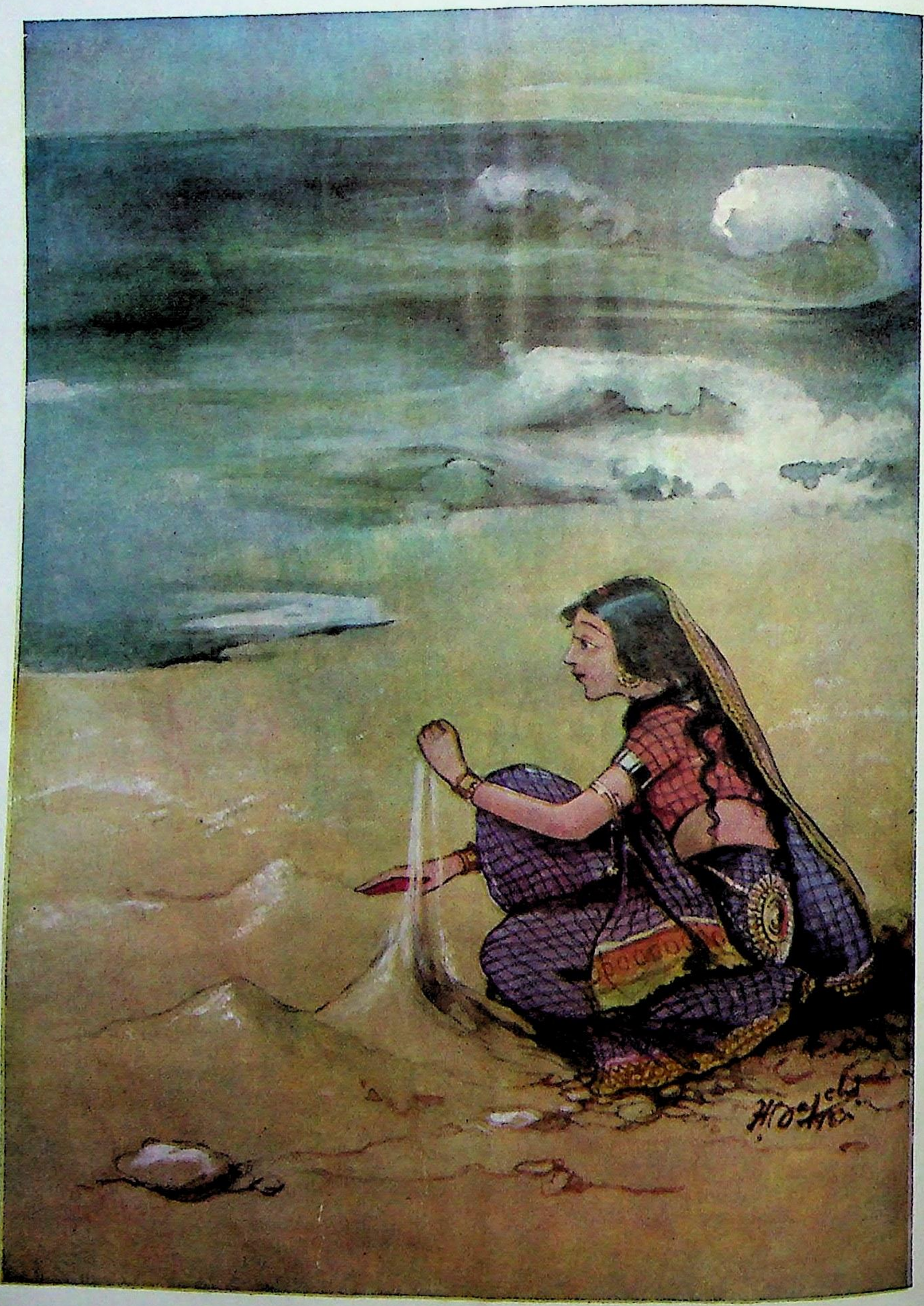
जिस वर्तमान युग ने मानव-जीवन में स्वाधीनता की एक उत्कृट मनोवृत्ति उत्पन्न कर दी है, उसी ने संसार की स्त्रियों को उनकी गुलामी की प्रथा, कायरता, भीरुता और अनुपयोगिता का नाश करके, समाज में आज ऊँचा स्थान प्रदान किया है। नवीन जीवन में आकर संसार के भिन्न-भिन्न देशों की स्त्रियों ने शिक्षा और स्वास्थ्य में, साहस और पुरुषार्थ में जो उन्नति की है, उसके सम्बन्ध में बड़ी योग्यता के साथ, पुस्तक में प्रकाश डाला गया है। जीवन के एक-एक अङ्ग को लेकर, कब, कहाँ और किन देशों में कितना भीषण पतन हो चुका था, इसका वर्णन करने के साथ-साथ बताया गया है कि वहाँ आज स्त्रियों की क्या अवस्था है।

जो स्त्री-स्वाधीनता के प्रेमी हैं, उनको यह पुस्तक अवश्य मँगा कर पढ़ना चाहिए। अपने ढङ्ग की यह अनोखी पुस्तक है। शीघ्रता कीजिए; अन्यथा दूसरे संस्करण की राह देखनी पड़ेगी। पृष्ठ-संख्या लगभग ३००, सजिल्द पुस्तक का मूल्य लागत-मात्र केवल २॥) स्थायी ग्राहकों से १।।।=) मात्र !

चाँद प्रेस लिमिटेड,

इलाहाबाद

विषय-सूची



क्रीड़ारता

क्या क्रीड़ा-मिस बना रही हो सुन्दर सिकता-तार,
या मन ही मन गूँथ रही हो अनुपम स्मृति-हार ?



[illegible] हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रेम हमारी प्रणाली है, जब तक इस [illegible] अनुष्ठान में हम अविचल हैं, तब तक हमें इसका भय नहीं, कि हमारे विरोधियों की संख्या और शक्ति कितनी है।

वर्ष ११, खण्ड १ | **जून, १९३३** | संख्या २, पूर्ण सं० १२८

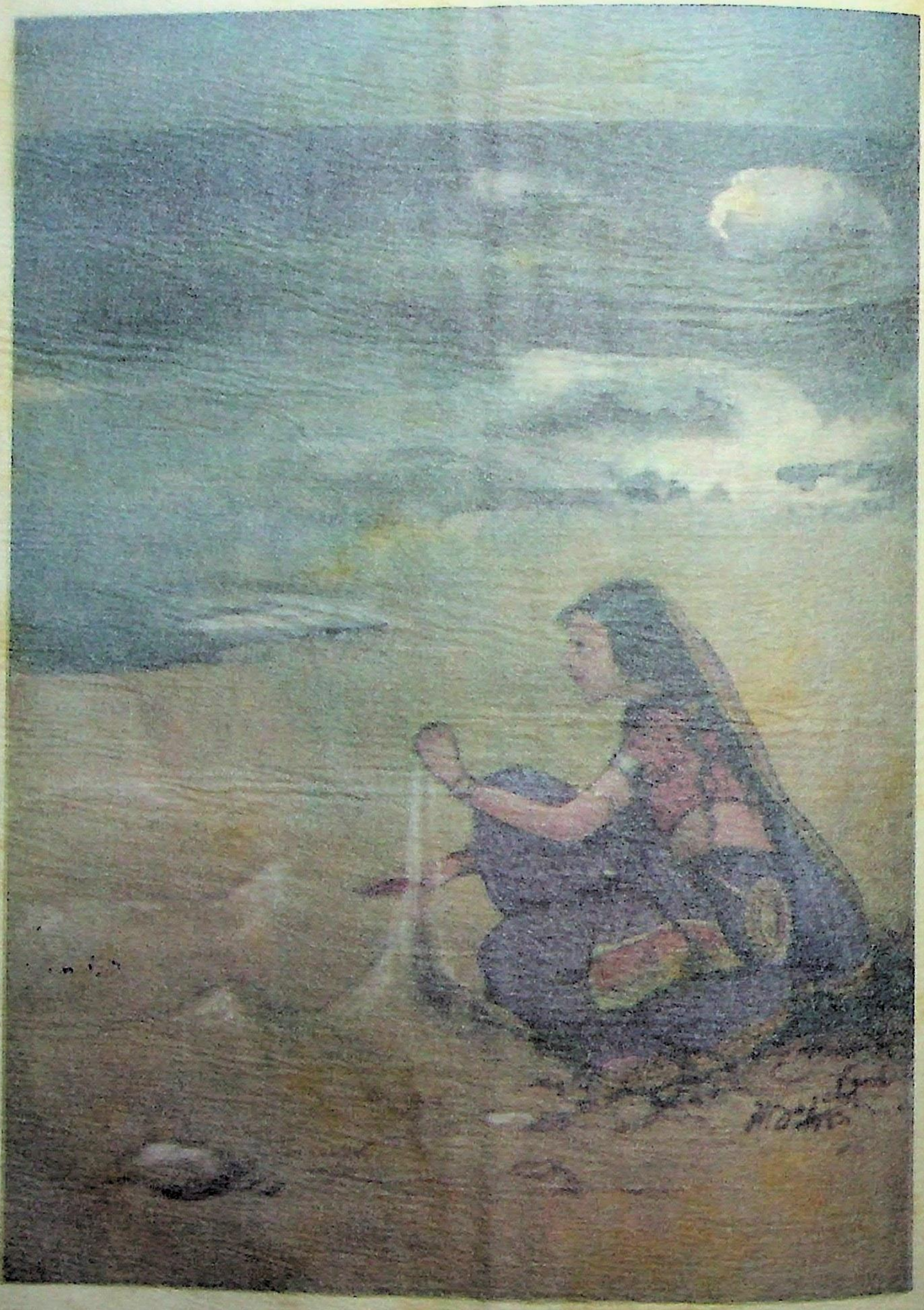
रूपराशि

[प्रोफ़ेसर रामकुमार वर्मा, एम० ए०]

इन्दुज-सी वह ध्वनि कोमल !
मेरे इस [illegible] के जग में खिंची क्षितिज-सी वह प्रति पल ॥

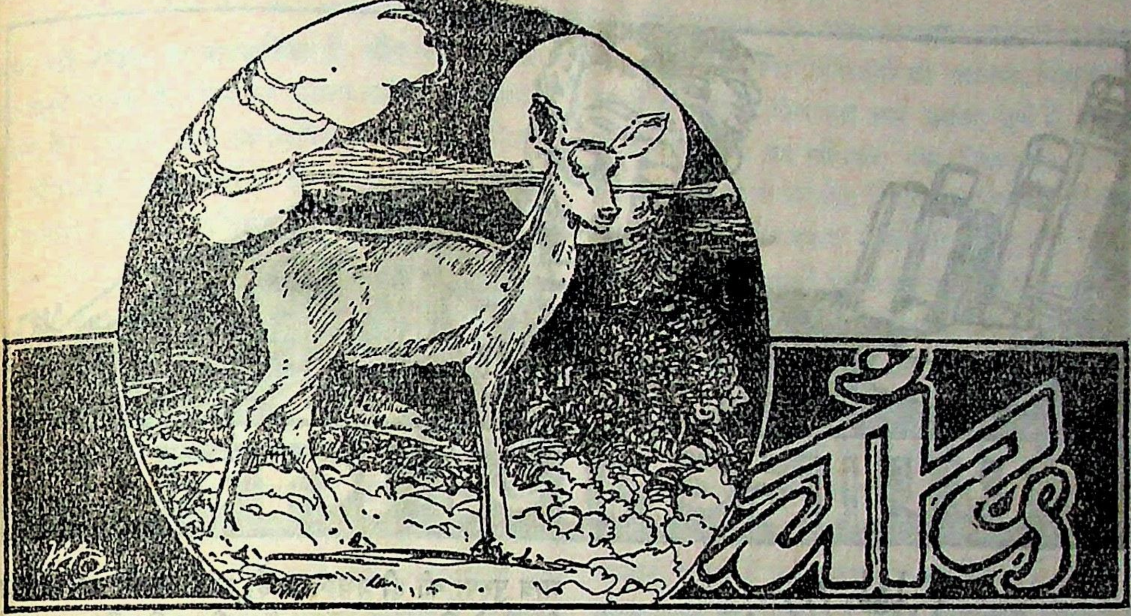
[illegible] विषाद के स्वर में
विहगों का है कण्ठ विकल ।
मेरा क्षितिज न छू पाते हैं
उनके बाल-प्रयास विफल ॥

उनके लघु उर में गूँजेगा
कैसे विस्तृत गगन चपल ?
मेरी ध्वनि से ही प्रभात का
अब होगा अवतार सरल ॥



क्रीड़ारता

क्या क्रीड़ा-मिस बना रही हो सुन्दर सिकता-सार,
या मन ही मन गूँथ रही हो अनुपम स्मृति-हार ?



आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रेम हमारी प्रणाली है, जब तक इस पावन अनुष्ठान में हम अविचल हैं, तब तक हमें इसका भय नहीं, कि हमारे विरोधियों की संख्या और शक्ति कितनी है।

वर्ष ११, खण्ड २ | जून, १९३३ | संख्या २, पूर्ण सं० १२८

रूपराशि

[प्रोफ़ेसर रामकुमार वर्मा, एम० ए०]

इक्षुज-सी वह ध्वनि कोमल।
मेरे इस जाग्रति के जग में खिंची क्षितिज-सी वह प्रति पल॥

करुणायुत निषाद के स्वर में
विहगों का है कण्ठ विकल।
मेरा क्षितिज न छू पाते हैं
उनके बाल-प्रयास विफल॥

उनके लघु उर में गूँजेगा
कैसे विस्तृत गान चपल?
मेरी ध्वनि से ही प्रभात का
अब होगा अवतार सरल॥



चाँद

जून, १९३३

भविष्य की स्त्रियाँ

समाज में स्त्रियों का वास्तव में क्या स्थान होना चाहिए, यह एक ऐसा प्रश्न है जिसकी मीमांसा में इस समय संसार के बड़े-बड़े विचारवान लगे हुए हैं। यद्यपि हमारे देश में अल्प-संख्यक स्त्रियों के परदा त्याग देने तथा राजनीतिक आन्दोलन में आगे बढ़ कर भाग लेने से ही लोगों को आश्चर्य होने लगा है और एक श्रेणी के व्यक्ति इससे भावी सामाजिक तूफ़ान की कल्पना करने लगे हैं, पर संसार के अन्य देशों में, विशेषकर यूरोप और अमेरिका में, ये बातें बहुत ही तुच्छ समझी जाती हैं, और वहाँ इस समय यह प्रश्न उठा हुआ है कि मानव-जीवन के समस्त क्षेत्रों में, जिनमें अभी तक एक-मात्र पुरुषों की ही प्रधानता है, प्रवेश करने का अधिकार स्त्रियों को दिया जाय या नहीं, और यदि दिया जाय तो कितना? क्या यह समाज के लिए कल्याणजनक होगा कि स्त्रियों को शासन-विभाग में उत्तरदायित्वपूर्ण पद दिए जायँ? क्या अमेरिका और फ़्रान्स जैसे प्रजासत्तात्मक राज्यों में स्त्रियों को प्रेसीडेण्ट का पद देने से उनका विशेष रूप से उपकार हो सकता है? व्यापार-व्यवसाय में स्त्रियों का भाग लेना कहाँ तक उचित है? क्या कारख़ानों में स्त्री-मज़दूरों की संख्या का बढ़ना समाज के लिए हितकारी है? क्या स्त्रियों को सेना में दाख़िल करना और फ़ौजी अफ़सरों का पद देना सम्भव है? इस तरह के अनेक प्रश्न आजकल राजनीतिज्ञों तथा समाज-तत्व-विशारदों के दिमाग़ों में चक्कर लगा रहे हैं।

सङ्कीर्ण तथा उन्नति-विरोधी विचारों के लोग, जिनकी समझ में मनुष्य का सबसे बड़ा पुरुषार्थ बाप-दादों की लकीर पीटना ही है और जो भारतवर्ष में ही नहीं, वरन् संसार के सभी देशों में पर्याप्त संख्या में पाए जाते हैं, ऐसे प्रश्नों को सुन कर ही व्याकुल हो उठते हैं। वे ऐसी चर्चा सुन कर कानों में उँगली दे लेते और कहते हैं कि यह सब कलियुग की महिमा है। उनका कथन है कि जिन देशों में स्त्रियों को वोट देने का और शासन-सभा में भाग लेने का अधिकार मिला है, वहाँ का समस्त राजनीतिक वातावरण दूषित हो उठा है। स्त्रियों का एकमात्र तथा उपयुक्त स्थान घर के भीतर ही है, जिसे सुखप्रद बनाना उनका सब से महान कर्तव्य है। इसके सिवा बच्चों का उचित रीति से लालन-पालन

करना भी उन्हीं पर अवलम्बित है और यह एक ऐसा महत्वपूर्ण विषय है, जिस पर समस्त समाज का अस्तित्व निर्भर है। अपने इन स्वाभाविक कर्तव्यों को परित्याग कर जो स्त्रियाँ ऐसे कामों में हाथ डालने की चेष्टा करती हैं, जिनको पुरुष ही अधिक अच्छी तरह कर सकते हैं, वे अपना और समाज का घोर अकल्याण करती हैं।

परन्तु इस तरह की बातें करने वालों में अधिकांश लोग वे ही हैं जो अपने स्वभाव के कारण अथवा स्वार्थ-वश प्राचीन रूढ़ियों को क़ायम रखना ही उचित समझते हैं, अथवा जिनमें इतनी बुद्धि नहीं है कि वे मानवीय सभ्यता के विकास के रहस्य को हृदयङ्गम कर सकें। जो लोग प्राचीन सभ्यता के इतिहास तथा सामाजिक विकास के नियमों से परिचित हैं और जिनका हृदय तथा मस्तिष्क प्रचलित रूढ़ियों के बन्धन से मुक्त है, वे भली-भाँति समझते हैं कि समाज की दशा का सदैव एक-सी रह सकना असम्भव है। एक समय था जब स्त्रियाँ सर्वथा स्वतन्त्र थीं और वे ही घर की स्वामिनियाँ होती थीं। उन्होंने सब प्रकार के घरेलू उद्योग-धन्धों तथा कलाकौशल की सृष्टि की थी। इसके पश्चात् ऐसा समय आया जब पुरुषों ने बलपूर्वक उनको अपने अधीन कर लिया और कितने ही देशों में तो वे पशुओं की तरह ख़रीदी और बेची जाने लगीं। एक व्यक्ति का सौ-सौ और हज़ार-हज़ार स्त्रियाँ रखना भी स्वाभाविक समझा जाने लगा। इसके बाद फिर उनकी दशा में कुछ सुधार होने लगा और उन्होंने पुरुष की सहयोगिनी का पद प्राप्त कर लिया। अब परिवर्तन की लहर फिर ज़ोर पकड़ रही है और स्त्रियाँ पुरुषों की सहयोगिनी अथवा अर्द्धाङ्गिनी ही नहीं, वरन् सब प्रकार से उसके तुल्य अधिकार सम्पन्न होना चाहती हैं। इस मनोभाव के परिणाम-स्वरूप अब पश्चिमी देशों में करोड़ों स्त्रियाँ ऐसी पाई जाती हैं, जो कोई भी स्वतन्त्र कारबार, नौकरी या मज़दूरी करके पुरुषों की अधीनता से पूर्णतया मुक्त रहती हैं। आज-कल उन देशों में स्त्रियाँ कारख़ानों में मैशीनें चलाती हैं; दफ़्तरों में क्लर्क का काम करती हैं; ट्राम और रेल की नौकरियाँ करती हैं; वकील, डॉक्टर, इञ्जिनियर और सम्पादक आदि का पेशा करती हैं; पुलिस और न्याय-विभाग भी स्त्रियों से ख़ाली नहीं है। रूस के समान कुछ देश ऐसे भी हैं, जहाँ वे राज-मन्त्री, राजदूत तथा बड़े-बड़े सरकारी विभागों की अध्यक्षा नियुक्त की जाती हैं। परन्तु जैसा हम ऊपर बतला चुके हैं, स्त्रियों के कार्यक्षेत्र का यह परिवर्तन एक विवादग्रस्त विषय बना हुआ है और जो लोग स्त्रियों के उद्धार के पूर्णतया पक्षपाती हैं उनमें से भी कितने ही ऐसे हैं, जो स्त्रियों के सब बातों में पुरुषों की नक़ल करने को उनके तथा समाज के लिए लाभजनक नहीं समझते। इसी प्रकार कितने ही लोग, जो स्त्रियों के स्वतन्त्र व्यवसाय करने के पक्षपाती हैं, कितने ही पेशों को उनके लिए बुरा समझते हैं। उदाहरण के लिए उनका कहना है कि जिन कामों में लगातार बहुत देर तक खड़े रहने की आवश्यकता होती है, उनको करने से स्त्रियों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है तथा उनकी जननेन्द्रिय की नसों में दोष उत्पन्न हो जाता है। इसी प्रकार इस सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न विचारवान पृथक्-पृथक् मत प्रकट करते रहते हैं। यद्यपि उनकी सम्मतियों में बहुत कुछ अन्तर रहता है और वे स्त्रियों को जो अधिकार दिया जाना पसन्द करते हैं, उसमें बहुत न्यूनाधिकता होती है, तो भी इस सम्बन्ध में प्रायः सभी एक मत हैं कि अब स्त्रियाँ पुरुषों की अधीन बन कर नहीं रह सकतीं। यदि वे स्थायी रूप से विवाहित जीवन व्यतीत करें तो भी उनको किसी अंश में आर्थिक स्वतन्त्रता होना आवश्यक है। इस प्रकार के विचार वालों ने जिस भावी समाज की कल्पना की है और उसमें स्त्रियों की परिस्थिति का जो अनुमान किया है, उसका हम संक्षिप्त रूप में दिग्दर्शन नीचे कराते हैं। हमारा आशय यह नहीं है कि ये बातें अनिवार्य रूप से सभी देशों में होंगी अथवा उन्होंने जिन बातों की कल्पना की है वह सभी पूरी होकर ही रहेंगी। पर इससे उस विचार-धारा का कुछ अनुभव अवश्य होगा जो आजकल संसार की उन्नतशील स्त्रियों तथा उदार समाज-सुधारकों में प्रवाहित हो रही है। यद्यपि अभी तक हमारे यहाँ की अधिकांश देवियाँ सीता और सावित्री को ही अपना आदर्श मान रही हैं और उनमें पतिव्रत तथा पति-सेवा का भाव भी इतनी गहरी जड़ जमाए हुए हैं कि सैकड़ों वर्षों में भी उनके यूरोपियन स्त्रियों की भाँति स्वेच्छाचारिणी होने की सम्भावना नहीं हो सकती, परन्तु इसमें भी सन्देह नहीं कि जैसे-जैसे आधुनिक शिक्षा का उनमें प्रचार होगा वे पश्चिमीय आदर्श

की कुछ बातें ग्रहण करती जायँगी। अब भी अधिकांश अङ्गरेज़ी शिक्षित भारतीय पुरुष वेश-भूषा तथा रहन-सहन में यूरोपियनों का अनुकरण करना पसन्द करते हैं और कितनी ही उच्च शिक्षिता महिलाएँ भी फ़ैशन की दृष्टि से नहीं तो आचार-व्यवहार तथा शिष्टाचार की दृष्टि से पूरी 'मेम' बन गई हैं। वैसे भी संसार के विभिन्न भागों में जैसी शीघ्रता से घनिष्टता बढ़ती जाती है और यातायात तथा विचार-विनिमय के जैसे अद्भुत साधन विज्ञान द्वारा आविष्कृत हो रहे हैं उनको दृष्टिगोचर रखने से इस बात की आशा कदापि नहीं की जा सकती कि संसार-व्यापी स्त्री-स्वातन्त्र्य आन्दोलन का भारतीय महिलाओं पर कुछ भी प्रभाव न पड़ेगा। ऐसी परिस्थिति में हमारे लिए इस भावी परिवर्तन की रूप-रेखा तथा सम्भावनाओं का ज्ञान लेना और समय से पूर्व ही उसकी भली और बुरी बातों से परिचित हो जाना अत्यावश्यक है।

मानवीय कार्य

समाज-तत्व-विशारदों में से अधिकांश का मत है कि भावी समाज में समस्त पुरुष और स्त्रियाँ अपने हाथ से काम करके अपनी जीविका उपार्जन करने वाले होंगे। कुछ लोग ऐसा ख़याल करते हैं कि जब समाज की अधिक उन्नति हो जायगी और विज्ञान की सहायता से संसार में जीवन-निर्वाह के साधनों की प्रचुरता हो जायगी तब स्त्रियों को जीविकोपार्जन करने के लिए कुछ भी काम न करना पड़ेगा। दूसरे कुछ लोगों की यह धारणा है कि भविष्य में स्त्रियाँ प्राचीन काल की भाँति अपनी समस्त शक्ति तथा बुद्धि का उपयोग अपने गृह-सुख तथा बाल-बच्चों की उन्नति के लिए करेंगी। परन्तु ये दोनों मत मानवीय विकास की दृष्टि से ग़लत हैं। क्योंकि ऐसा होने से स्त्रियाँ फिर अन्तःपुर-वासिनी बन जायँगी और अर्थोपार्जन की शक्ति न रखने के कारण फिर से सम्पूर्ण रूप से पुरुषों के अधीन हो जायँगी। क्योंकि यह कल्पना कर सकना कठिन है कि वैज्ञानिक साधनों की कितनी भी उन्नति हो जाने पर तथा समाज में कितनी भी समानता फैल जाने पर कभी भी मनुष्यों को बिना थोड़ा बहुत परिश्रम किए जीवन-निर्वाह की सामग्री प्राप्त हो सकेगी। जब ऐसा न होगा और अर्थोपार्जन के लिए किसी न किसी प्रकार का शारीरिक अथवा मानसिक परिश्रम करना आवश्यक ही बना रहेगा, तो यह समझ सकना कठिन नहीं है कि जो व्यक्ति उस अवस्था में भी, काम न करेंगे वे परोपजीवी (Parasite) होंगे और परोपजीवी आज तक न कभी उन्नति कर सके हैं न सम्मान की दृष्टि से देखे गए हैं। फिर यदि हम दूसरी श्रेणी वालों के मत पर विचार करते हैं, जिनका कहना है कि स्त्रियाँ अपनी शक्ति का उपयोग केवल अपने परिवार के सुख के लिए करेंगी, तो वह भी तर्क-विरुद्ध जान पड़ता है। क्योंकि ऐसी स्थिति वही होगी जो वर्तमान यन्त्र-युग के पूर्व संसार के सभी देशों में पाई जाती थी। इसका अर्थ यह हुआ कि स्त्रियाँ आगे बढ़ने के बजाय पीछे लौट जायँगी। यह बात विकास-सिद्धान्त के विपरीत है कि जब समस्त समाज उन्नति करेगा और वर्तमान यन्त्रों से भी कहीं अधिक आश्चर्यजनक मैशीनों द्वारा दुनिया का कारबार सञ्चालित होगा तब स्त्रियाँ आज से तीन-चार सौ वर्ष पूर्व की दशा में रहना स्वीकार करें। ऐसा होने से सार्वजनिक जीवन से उनका कुछ भी सम्बन्ध न रहेगा और समाज के लिए सामूहिक रूप से वे जो उपयोगी सेवाएँ कर रही हैं, उनका भी अन्त हो जायगा। इसके सिवा भविष्य में वैज्ञानिक साधनों की विशेष रूप से वृद्धि होने से घर में इतना काम भी न रहेगा जिसमें स्त्रियों का सारा समय व्यतीत हो सके और उनको इतना परिश्रम करने का अवसर मिल सके जिससे उनका स्वास्थ्य ठीक बना रहे। पहले ज़माने में स्त्रियाँ भोजन बनाने और घर की सफ़ाई के अलावा आटा पीसती थीं, चर्ख़ा कातती थीं, पानी भर कर लाती थीं, कपड़े सीती थीं। पर आजकल शहरों की स्त्रियों में से शायद ही कोई इन कार्यों को करती होंगी। आजकल आटा छोटे-छोटे स्थानों में भी बिजली या आयल इञ्जिन की चक्की से पीसा जाता है, पानी नल से मिल जाता है, सूत कारख़ानों में कतता है और कपड़े दर्ज़ी की दुकानों में मैशीन से सिए जाते हैं। इसके अलावा यूरोप और अमेरिका के कितने ही स्थानों में तो घर की सफ़ाई और भोजन पकाने आदि का काम भी बिजली की छोटी-छोटी मैशीनों द्वारा होता है। इस प्रकार जहाँ हमारी दादियों और नानियों को

सुबह से आधी रात तक गृह-कार्य में व्यस्त रहना पड़ता था, आजकल के सम्पन्न घरों की स्त्रियाँ अपना समय आलस्यवश पड़े रहने, निरर्थक गप्पाष्टक करने या सार-हीन पुस्तकें पढ़ने में व्यतीत किया करती हैं। बच्चों की शिक्षा का कार्य, जो किसी समय में पढ़ी-लिखी माताओं का एक कर्तव्य माना जाता था, अब क्रमशः बन्द होता जाता है और सर्वत्र ऐसे स्कूलों की स्थापनाएँ हो चुकी हैं, जिनमें पाँच साल की उम्र से ही बच्चों को शिक्षा दी जानी आरम्भ हो जाती है। विदेशों के किण्डर गार्टन स्कूलों में तो दो-तीन वर्ष के बच्चे भी ख़ुशी से चले जाते हैं। इस प्रकार वर्तमान काल में घर के भीतर स्त्रियों का काम दिन पर दिन घटता जाता है और भविष्य में वह और भी कम हो जायगा। इसलिए जिस प्रकार अब इस बात की आशा नहीं की जा सकती कि लोग रेलगाड़ी छोड़ कर बैलगाड़ी द्वारा यात्रा करेंगे; अथवा प्रेस छोड़ कर हाथ से ग्रन्थ लिखने लगेंगे; अथवा बिजली की रोशनी त्याग कर कड़वे तेल का दिया जलाने लगेंगे, उसी प्रकार अब यह भी सम्भव नहीं जान पड़ता कि स्त्रियाँ सार्वजनिक जीवन को परित्याग करके केवल घर के भीतर आबद्ध रहना स्वीकार कर सकेंगी।

इसलिए यह निर्विवाद है कि भविष्य की समस्त स्त्रियाँ भी उसी प्रकार काम करती रहेंगी जिस प्रकार भूत और वर्तमान काल की साधारण श्रेणी की स्त्रियाँ करती आई हैं। अन्तर इतना ही होगा कि उनके कार्य का ढङ्ग वर्तमान समय से भिन्न प्रकार का होगा। और यह बात केवल स्त्रियों ही के लिए नहीं, वरन् पुरुषों के लिए भी लागू होगी। इस समय तक मैशीनों की जितनी उन्नति हो चुकी है उसका उपयोग यदि समस्त जन-समूह के कल्याण की दृष्टि से किया जाय तो प्रत्येक मनुष्य को केवल तीन-चार घण्टे काम करने से जीवन-निर्वाह के लायक़ काफ़ी सामग्री मिल सकती है। इस-लिए भविष्य में, जब यन्त्रों और वैज्ञानिक साधनों के और भी उन्नत होने की सम्भावना की जाती है, प्रत्येक स्त्री-पुरुष को जो काम करना पड़ेगा वह आज-कल की अपेक्षा बहुत हलका, आनन्ददायक, विवेका-नुकूल और समाज के लिए स्वास्थ्य और सुख का दायक होगा। जिस समय समाज में यह सिद्धान्त प्रचलित हो जायगा कि काम करना मनुष्य-मात्र के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण और सम्मानजनक है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का आधार काम पर ही है, उस समय स्त्रियाँ काम करने के अधिकार से वञ्चित रहना अपने लिए प्रशंसा और सौभाग्य का नहीं, वरन् दुर्भाग्य का विषय समझेंगी। उस समय स्त्रियों को स्वभावतः ही ऐसा कोई काम न करना पड़ेगा जिससे उनके स्वास्थ्य को हानि पहुँचे। फिर स्त्रियाँ ही क्यों, प्रत्येक विवेकशील समाज का यह आवश्यक कर्तव्य होना चाहिए कि वह उसमें सम्मिलित प्रत्येक व्यक्ति से उसकी रुचि तथा शक्ति के अनुकूल काम कराए।

गृह-जीवन

इस सम्बन्ध में कितने ही लोग यह भय प्रकट करते हैं कि यदि स्त्रियाँ इस प्रकार स्वतन्त्र रूप से काम करने लगेंगी तो अपने परिवार से उनका सम्बन्ध शिथिल पड़ जायगा और गृह-सुख का नाश हो जायगा। पर उनकी यह धारणा भ्रममात्र है। पति और पत्नी अथवा माता और पुत्र का सच्चा प्रेम ऐसी चीज़ नहीं, जिसे कोई सामाजिक परिवर्तन नष्ट कर सके। यदि लोगों ने स्त्रियों की पराधीनता और मूक पशु के समान आज्ञापालन को ही सुगृहिणी का आदर्श और गृहस्थी का सुख मान रक्खा हो तो दूसरी बात है। अन्यथा जब स्त्रियाँ आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र और अपने जीवन-निर्वाह के लिए सर्वथा समर्थ होते हुए भी किसी व्यक्ति से पति या पुत्र के नाते प्रेम करेंगी तथा उसके लिए अपने हित का बलिदान करने को तैयार होंगी तो वही सच्चे और अकृत्रिम प्रेम की कसौटी होगी। इसके सिवा यह भी आवश्यक नहीं है कि स्वतन्त्र कार्य करने की शक्ति प्राप्त होने पर प्रत्येक स्त्री परिवार से अलग ही रहे अथवा अवश्य ही किसी प्रकार की नौकरी या व्यवसाय करे। हम इस सम्बन्ध में एक भारतीय विद्वान् की सम्मति यहाँ पर देते हैं जिससे इस समस्या का बहुत कुछ ख़ुलासा हो जायगा :—

"यह बात निर्विवाद है कि स्त्रियों को क़ानून द्वारा किसी भी पेशे को करने से रोकना अनुचित है। उनको वे सब सुभीते मिलने चाहिए जिससे वे राष्ट्र के बड़े से बड़े पद तक पहुँच सकें। परन्तु इसके साथ ही स्त्रियों के

लिए यह कभी उचित न समझा जायगा कि वे अपनी संख्या के अनुपातानुसार पुरुषों के समान नौकरियाँ पाने की चेष्टा करें। मैं तो यह भविष्यवाणी कर सकता हूँ कि ऐसी परिस्थिति कभी उपस्थित हो ही नहीं सकती। स्त्रियों को चाहे कैसे भी अधिकार क्यों न मिल जायँ, उनमें से अधिकांश सदैव यह स्वीकार करेंगी कि 'घर' का बनना और बिगड़ना उन्हीं पर आधार रखता है और बिना 'घर' के पुरुष और स्त्रियों के जीवन की कृत-कार्यता असम्भव है। पर जिन स्त्रियों के लिए 'घर' बना सकना या पा सकना कठिन हो, वे अवश्य ही नौकरी या कोई अन्य पेशा करेंगी और प्रत्येक सभ्य जाति का कर्तव्य है कि उनको वे सब सुभीते दिए जायँ जिससे वे ऊँचे से ऊँचे सम्मानयुक्त पदों तक पहुँच सकें। फिर यह भी आवश्यक नहीं है कि सभी विवाहिता और परिवार वाली स्त्रियाँ घर के भीतर ही आबद्ध रहें। उनमें से कितनी ही थोड़े समय के लिए कोई धन्धा करके अपने कुटुम्ब की आमदनी को बढ़ा सकती हैं अथवा समाज-सेवा का कोई कार्य कर सकती हैं। इसके सिवा कुछ स्त्रियाँ ऐसी विशेष प्रतिभा-सम्पन्न भी हो सकती हैं, जो मानवीय सभ्यता की वृद्धि के लिए अपना जीवन उत्सर्ग कर दें और अपने स्वार्थ-त्याग तथा बलिदान के द्वारा राष्ट्रीय नेता का पद ग्रहण कर लें।"

विवाह

पति और पत्नी का पारस्परिक प्रेम तथा सुखी विवाह-सम्बन्ध एक ऐसी बात है, जिस पर व्यक्तियों और समाज का कल्याण अधिकांश में अवलम्बित है। पर इस आकांक्षणीय परिस्थिति का आधार केवल पत्नी की आर्थिक पराधीनता नहीं है, जैसा कि आजकल माना जा रहा है। कोई भी वैवाहिक सम्बन्ध इस कारणवश अधिक उत्तम अथवा सुखप्रद नहीं हो सकता कि पत्नी को अपने भरण-पोषण के लिए पति की आवश्यकता है और पति को घर के सँभालने के लिए पत्नी की। इसके विपरीत ऐसे वैवाहिक सम्बन्ध, जिनमें पति और पत्नी की आमदनी पृथक् होती है और एक को दूसरे की आवश्यकता आर्थिक कारणवश नहीं होती, प्रायः वर्तमान समय में भी अधिक सुखप्रद और उत्तम सिद्ध होते हैं। भविष्य में जब सामाजिक आदर्श के बदल जाने तथा योग्य शिक्षा पाने का पूर्ण सुभीता होने से स्त्रियाँ आर्थिक दृष्टि से भली-भाँति स्वावलम्बी हो जायँगी तो उनके विवाह करने का कोई गूढ़ अथवा स्वार्थयुक्त कारण न होगा। तब वे अपनी पसन्द के पुरुष के साथ केवल निर्दोष शारीरिक तथा मानसिक सम्बन्ध क़ायम करने के उद्देश्य से विवाह करेंगी। भविष्य की किशोरियाँ, जो शारीरिक स्वास्थ्य तथा शिक्षा की दृष्टि से वर्तमान समय की स्त्रियों से कहीं अधिक उन्नत होंगी, अपने आरम्भिक जीवन में उसी प्रकार कोई न कोई रोज़गार-धन्धा अवश्य करेंगी, जिस प्रकार आजकल प्रत्येक युवक स्कूल या कॉलेज की शिक्षा समाप्त करके जीवन-निर्वाह के लिए किसी नौकरी या व्यवसाय में लग जाता है। उनकी आमदनी निश्चित होगी, जीवन-निर्वाह की उनको कुछ भी चिन्ता न होगी और इसलिए उनका जीवन आनन्दयुक्त होगा। वे वास्तविक अर्थों में युवती होंगी, जैसी कि आजकल बहुत कम देखने में आती हैं। क्योंकि आजकल ग़रीब लोगों में कार्य की कठोरता और पौष्टिक खाद्य सामग्री के अभाव से और अमीरों में आलस्ययुक्त जीवन बिताने और हानिकारक भोग-विलास तथा शौक़ीनी में लगे रहने से युवक-युवतियों का स्वास्थ्य प्रायः आदर्श अवस्था को प्राप्त नहीं हो सकता। आजकल की स्त्रियाँ प्रायः किसी न किसी रोग में ग्रसित होती हैं और चाहे बाहर से वे कितना भी बनाव-शृङ्गार क्यों न कर लें, पर उनका फीका रङ्ग, निस्तेज मुख और दबी हुई छाती इस बात की गवाही देते हैं कि वे वास्तव में स्वस्थ नहीं हैं और उनकी शारीरिक सम्पत्ति बहुत ही निकृष्ट श्रेणी की है। भविष्य की शक्तिशालिनी, स्वस्थ, कार्यक्षम और सुशिक्षित कुमारियाँ शारीरिक और मानसिक दृष्टि से पत्नीत्व तथा मातृत्व के लिए जितनी अधिक उपयुक्त होंगी वैसी आजकल सैकड़ों में एक भी नहीं मिल सकती। ये कुमारियाँ जल्दी या देर में अपनी आवश्यकता और परिस्थिति के अनुसार किसी इच्छित पुरुष को पति-रूप में वरण कर लेंगी और आर्थिक कारणों से उनकी इस आकांक्षा में किसी तरह की बाधा नहीं पड़ेगी।

यह जान सकना कि भविष्य में विवाह के विषय क्या होंगे अथवा वह किन विधियों से सम्पन्न किया जायगा, असम्भव है और इसकी विशेष आवश्यकता भी नहीं।

वर्तमान समय में लोगों की प्रवृत्ति यह दिखलाई देती है कि यथासम्भव विवाह के नियमों को सरल बनाया जाय और आडम्बरयुक्त तथा व्ययसाध्य विधियों को त्याग दिया जाय। लक्षणों से जान पड़ता है कि यह प्रवृत्ति भविष्य में निरन्तर ज़ोर पकड़ती जायगी और अन्त में ऐसा समय आएगा, जब विवाह-सम्बन्धी बाह्याडम्बर निरर्थक तथा उपहासास्पद समझ कर पूर्णतया त्याग दिए जायँगे और वर तथा वधू का किसी सार्वजनिक संस्था या न्यायालय के सामने अपनी विवाह करने की इच्छा प्रकट कर देना ही उनका सम्बन्ध स्थापित होने के लिए पर्याप्त समझा जायगा। उस समय यदि विवाह-सम्बन्धी क़ानूनों का अस्तित्व रहेगा, तो उनकी संख्या बहुत घट जायगी और उनका सम्बन्ध पति-पत्नी के पारस्परिक व्यवहार तथा सन्तान के प्रति उनके उत्तरदायित्व से होगा। हमारे इस परिणाम पर पहुँचने का कारण यह है कि क़ानूनों और विवाह की धार्मिक समझी जाने वाली विधियों का विवाह सम्बन्धी सुख तथा उसकी पवित्रता पर बहुत कम प्रभाव पड़ता है। जो व्यक्ति वेद-मन्त्रों द्वारा किसी कुमारी का पाणिग्रहण करता है उससे यह आशा नहीं की जा सकती कि वह अपनी पत्नी के प्रति उस व्यक्ति की अपेक्षा, जिसने केवल काग़ज़ पर छपे एक फ़ार्म पर दस्तख़त करके विवाह किया है, अधिक सच्चा तथा सचरित्र सिद्ध होगा। इसी प्रकार यह भी नहीं कहा जा सकता कि जिस नवदम्पति का विवाह बड़ी धूमधाम और गाजे-बाजे के साथ समस्त रूढ़ियों का पालन करते हुए हुआ है उसका प्रथम मिलन युवक-युवती के उस जोड़े से अधिक आनन्ददायक होगा, जिसने केवल किसी राज्य कर्मचारी के सामने अपने को सम्बन्धित कर लिया है। सच तो यह है कि विवाह की सफलता का आधार उसके बाहरी रूप तथा दिखावट पर नहीं है, वरन् हृदय की शुद्धता और आन्तरिक निष्ठा पर है। विवाह का स्वरूप समय-समय पर बदलता रहा है और बदलता रहेगा, परन्तु पुरुषों और स्त्रियों को एक दूसरे की आवश्यकता सदैव समान रूप से बनी रहेगी और जैसे-जैसे मनुष्य सभ्यता की तरफ़ अग्रसर होगा, उनका सम्बन्ध अधिक आदर्श स्वरूप तथा सुन्दर होता जायगा।

स्त्रियों की विवाह सम्बन्धी स्वतन्त्रता का अर्थ कितने ही लोग यह लगाते हैं कि इससे विवाह-प्रथा सर्वथा नष्ट हो जायगी और पुरुष तथा स्त्रियाँ उसी प्रकार मनमाने ढङ्ग से संयोग करने लगेंगे, जैसा कि पशुओं में अथवा किसी काल में घोर जङ्गली लोगों में हुआ करता था। पर यह उनका भ्रम है अथवा विरोध की भावना से अन्धे होकर वे ऐसा निर्मूल आक्षेप करते हैं। समाज को ऐसी पाशविक अथवा असभ्य अवस्था में पहुँचा देना किसी समाज-तत्व-विशारद का ध्येय नहीं हो सकता और न सभ्यता की उन्नति से ऐसे किसी फल की आशङ्का की जा सकती है। जो लोग वर्तमान विवाह-प्रथा के सुधार के पक्षपाती हैं, उनका आशय इतना ही है कि विवाहाकांक्षी स्त्री-पुरुषों के मार्ग में आजकल जो कृत्रिम और अनावश्यक बाधाएँ पाई जाती हैं वे दूर हो जायँ, वर और कन्या को एक दूसरे के पसन्द करने की अधिक से अधिक स्वतन्त्रता दी जाय, और उनके पारस्परिक सम्बन्ध में बाहरी हस्तक्षेप कम से कम होने लगें। वास्तव में प्रेम सदा से स्वतन्त्र रहा है और आज तक कोई उसका नियन्त्रण नहीं कर सका है। अत्यन्त कठोर राजकीय और सामाजिक नियमों के होते हुए भी पुरुष और स्त्रियाँ उनके विरुद्ध एक दूसरे से प्रेम करते रहे हैं और ऐसे व्यक्ति प्रायः वे ही हुए हैं, जिनको उस युग के समाज ने अत्यन्त महान अथवा आदर्श माना है। यदि बलपूर्वक दो प्रेमियों के शारीरिक मिलन को रोक दिया जाय तो भी हृदय को बाँध कर नहीं रक्खा जा सकता। कोई भी राजकीय क़ानून दो व्यक्तियों के हार्दिक प्रेम को नष्ट नहीं कर सकता। इसलिए यदि भविष्य का समाज वर्तमान समय में प्रचलित ऐसे हानिकारक तथा अस्वाभाविक नियमों को त्याग दे, जिनके कारण दो प्रेमियों को लोक-लाज अथवा समाज और राज्य के भय से कपटाचरण का आश्रय लेना पड़ता है अथवा अन्य गुप्त पाप-कर्मों में फँसना पड़ता है, तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है और न कोई इसकी निन्दा कर सकता है। भावी समाज में सबसे अधिक ध्यान इसी बात पर दिया जायगा, और यही स्वाभाविक जान पड़ता है कि प्रत्येक विवाह-सम्बन्ध दम्पति के सुख तथा कल्याण की वृद्धि करने वाला हो। वर्तमान समय के दूषित तथा विवेक-विरुद्ध

विवाहों के बजाय, जिनके फल-स्वरूप नित्य व्यभिचार की कथाएँ सुनने में आती हैं, वेश्याओं की संख्या बढ़ती जाती है; कुलीन रमणियों का करुण-क्रन्दन हृदय को बेधता है, और अदालतें ख़ून, मार-पीट, बलात्कार, तलाक़ आदि के मुक़दमों से भरी रहती हैं, भावी समाज एक स्त्री और एक पुरुष के विशुद्ध तथा निष्कपट संयोग की चेष्टा करेगा। उस समय लड़के और लड़कियों को आरम्भ में ही विवाह का महत्व समझा दिया जायगा ताकि वे अपने शरीर तथा मन की विशुद्धता की रक्षा करते हुए सन्तानोत्पत्ति के पवित्र कार्य में प्रवृत्त हों। उस समाज में विवाह के मार्ग में केवल एक बाधा रक्खी जायगी और वह यह कि जिन लोगों का चरित्र स्वभावतः पतित है अथवा जिनको कुष्ठ आदि के समान कोई वंशक्रमागत बीमारी है, वे विवाह न करें अथवा कम से कम सन्तान उत्पन्न न करें। यह एक ऐसा सुधार है, जिसकी उपयोगिता वर्तमान समय में अधिकांश विद्वान् स्वीकार कर चुके हैं।

एक प्रश्न यह भी किया जा सकता है कि जो लोग केवल प्रेम की दृष्टि से विवाह करेंगे, यदि कुछ वर्षों बाद उनका मनोभाव बदल जाय तो वे क्या करेंगे? ऐसे वैवाहिक सम्बन्धों के लिए क़ानून की क्या व्यवस्था होगी? इसके उत्तर में हम निस्सङ्कोच कह सकते हैं कि ऐसे दम्पति वही करेंगे, जो ऐसी अवस्था उत्पन्न होने पर आजकल हज़ारों स्त्री-पुरुष करते हैं। वे एक-दूसरे को तलाक़ देकर अथवा उस समय जैसा क़ानून होगा उसके अनुसार पृथक् हो जायँगे। अन्तर केवल इतना ही होगा कि उस समय तलाक़ अत्यन्त सहज तथा शिष्टतापूर्ण बना दिया जायगा और उसके लिए किसी को एक दूसरे को बदनाम करने की अथवा सच्चे-झूठे इलज़ाम लगाने की आवश्यकता न पड़ेगी और न ऐसे मामलों का जान-बूझ कर सर्वत्र प्रचार किया जायगा, जैसा कि आजकल विदेशी समाचार-पत्र प्रति दिन करते रहते हैं। आजकल अधिकांश लोग तलाक़ देने के लिए अदालत के सामने सच्चे कारणों को छुपा कर ऐसे कारण प्रकट किया करते हैं जिससे क़ानूनन् उनका दावा स्वीकार किया जा सके। आक्षेप करने वाले फिर कहेंगे कि यदि तलाक़ को ऐसा सरल बना दिया जायगा कि पति-पत्नी में से किसी एक के कहने से ही वह स्वीकार हो जाय तो लोग आम तौर से तलाक़ देने लगेंगे और विवाह-बन्धन का कोई मूल्य न रहेगा। मनुष्य की असंयत तथा पाप की ओर प्रेरित करने वाली मनोवृत्ति पुरुष और स्त्रियों को जल्दी-जल्दी एक के बाद दूसरा विवाह करने को उकसाएगी और अन्त में ऐसी नौबत आएगी कि यह बतलाना असम्भव होगा कि अमुक स्त्री किसकी पत्नी है, और न बच्चे अपने माता-पिता का पता पा सकेंगे। इस प्रकार का आक्षेप करने वाले निस्सन्देह करुणा के पात्र हैं। क्योंकि वे मनुष्य-स्वभाव से इतने अनजान हैं कि ऐसी निर्मूल कल्पना को भी सच मान लेते हैं। उनको अपने हृदय में विचार करना चाहिए कि क्या सभ्य मनुष्य का यही स्वभाव है कि वह इस प्रकार का पशु तुल्य आचरण जान-बूझ कर करे और इसमें आनन्द समझे। क्या सब लोगों से अथवा बहुसंख्यक लोगों से यह आशा की जा सकती है कि यदि क़ानून वा बन्धन न रहें, तो वे अपने प्रेम-पात्र को निरन्तर बदलते रहेंगे? इस प्रश्न का निर्णय करने के लिए हमको भावी समाज की स्थापना अथवा वर्तमान समय में ही तलाक़ सम्बन्धी क़ानून के बदलने की राह देखने की आवश्यकता नहीं है। प्रत्येक पाठक अवश्य ही कुछ सुखी दम्पतियों से परिचय रखता होगा। उसे किसी ऐसे सुखी दम्पति के पास जाकर पूछना चाहिए कि यदि कल तलाक़ देने का क़ानून बदल कर बिलकुल सहज कर दिया जाय तो क्या वे एक दूसरे से पृथक् होने को तैयार होंगे। जिन व्यक्तियों से ऐसा प्रश्न किया जायगा, चाहे वे किसी जाति या देश के हों, इस पर या तो हँसने लगेंगे या नाराज़ हो जायँगे। पर कुछ भी हो, वे इतना अवश्य प्रकट कर देंगे कि क़ानून में कैसा भी परिवर्तन होने से उसका प्रभाव उनके पारस्परिक सम्बन्ध पर कुछ नहीं पड़ सकता। वे लोग क़ानून से दब कर एक दूसरे के साथ आबद्ध नहीं हैं, वरन् प्रेम, सहयोग और समान भावनाओं के कारण एक दूसरे से संयुक्त हैं। जिन दम्पतियों का हृदय परस्पर भलीभाँति मिल गया है, वे क़ानून का कुछ ख़याल न करके सदैव एक दूसरे के अनुरक्त बने रहेंगे। पर जिनकी जोड़ी अनमेल है, और इस कारण जिनका जीवन दुःखपूर्ण हो रहा है, उनको समाज के तथा स्वयं उनके हित की दृष्टि से पृथक् होने की अनुमति दी जानी अनिवार्य है।

मातृत्व

भावी समाज में बच्चों की क्या व्यवस्था होगी, यह भी एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। जब हम यह मान लेते हैं कि भविष्य की माताएँ जीवन-निर्वाह के लिए प्रायः स्वतन्त्र रूप से कार्य करने वाली होंगी तो हमारे हृदय में स्वयमेव यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि उस अवस्था में वे अपने बच्चों का उचित रीति से पालन-पोषण कैसे कर सकेंगी? विवाह की भाँति इस सम्बन्ध में भी लोगों में बड़े भ्रमपूर्ण विचार फैले हुए हैं। जब यह कहा जाता है कि भविष्य में राज्य या सरकार बच्चों के पालन-पोषण का प्रबन्ध करेगी, तो अनजान लोग कल्पना करते हैं कि उस समय समस्त बच्चों को किसी बड़े राजकीय अनाथालय जैसे स्थान में रक्खा जायगा और सरकारी कर्मचारी गाँव-गाँव में माताओं से बच्चों को ज़बर्दस्ती छीनते फिरेंगे। यह एक सर्वथा उपहासास्पद विचार है, जिसकी कल्पना आज तक किसी समाज-तत्व-विशारद ने नहीं की है और न कोई सभ्य-समाज इस प्रकार माताओं के स्नेहमय हृदय की हत्या करना गवारा कर सकता है। सच तो यह है कि बच्चों की देख-रेख तथा शिक्षा-दीक्षा का बहुत सा भार अब भी सरकारों ने अपने ऊपर ले रक्खा है। जिन सभ्य देशों में अनिवार्य शिक्षा-प्रणाली की प्रथा प्रचलित है, वहाँ प्रत्येक बच्चे को बहुत छोटी उम्र से ही स्कूल भेज दिया जाता है, जहाँ उनको केवल निःशुल्क शिक्षा ही नहीं दी जाती, वरन् कितने ही स्थानों में दूध और जलपान का भी प्रबन्ध किया जाता है। छोटे बच्चों की शिक्षा-सामग्री के लिए भी माँ-बाप को कुछ ख़र्च नहीं करना पड़ता। भावी समाज में इसी कल्याणजनक प्रवृत्ति की और वृद्धि होगी, और इस बात की अधिक से अधिक चेष्टा की जायगी कि भावी पीढ़ी सब तरह से स्वस्थ तथा सद्गुण-सम्पन्न हो। उस समय केवल आरम्भिक शिक्षा ही बच्चों को मुफ़्त नहीं दी जायगी, वरन् ऊँची से ऊँची शिक्षा भी प्रत्येक बालक को बिना किसी प्रकार के व्यय तथा भेदभाव के दी जायगी। उस समय यह भली-भाँति समझ लिया जायगा कि प्रत्येक बालक समाज का एक सदस्य है और उसके बनने-बिगड़ने का फल जितना समाज को सहन करना पड़ेगा, उतना उसके माता-पिता को नहीं। उदाहरणार्थ यदि कोई बालक कुशिक्षावश चोर, डाकू या लम्पट बन जाय तो माता-पिता उसे घर से निकाल दे सकते हैं, पर समाज का पिण्ड उससे नहीं छूट सकता। समाज के किसी न किसी भाग को उसकी दुर्वृत्तियों का शिकार होना ही पड़ेगा अथवा उसे जेल में बन्द करके एक भारी ज़िम्मेदारी तथा व्यय अपने ऊपर लेना पड़ेगा। इसलिए यह बात समाज के लिए ही विशेष रूप से कल्याणजनक है कि वह अपने प्रत्येक सदस्य को आरम्भ ही से ऐसी शिक्षा दे, जिससे वह उसमें किसी प्रकार की अशान्ति अथवा असन्तोष प्रकट करने के बजाय अन्य लोगों के लिए उपयोगी सिद्ध हो।

पर इसका यह अर्थ लगाना ठीक न होगा कि आवश्यक शिक्षा-दीक्षा के लिए बच्चों को उनके माँ-बाप से अलग कर दिया जायगा। यह सच है कि उस समय बच्चों के स्कूल और प्रमोदोद्यान अत्यन्त चित्ताकर्षक तथा सुखप्रद होंगे और बच्चे उनमें रह कर कभी न ऊबेंगे, पर तो भी विशेष परिस्थिति को छोड़ कर प्रत्येक बच्चा अपने घर में माँ-बाप के पास ही रहेगा। वर्तमान समय में मज़दूर-श्रेणी की स्त्रियों को कारख़ानों अथवा अन्य स्थानों में काम करने के लिए अपने बिल्कुल छोटे बच्चों को आठ-आठ, दस-दस घण्टे के लिए घर पर छोड़ देना पड़ता है, जहाँ या तो बड़ी उम्र के बच्चे या पड़ोसी थोड़ी बहुत देर के लिए उनकी देख-भाल कर देते हैं, अन्यथा उनको पड़े-पड़े रोते रहना पड़ता है। अमीरों की स्त्रियाँ अपने आराम या सैर-तमाशे के लिए अपने बच्चों को अशिक्षिता तथा कुसंस्कार पूर्ण दाइयों और नौकरों के भरोसे छोड़ देती हैं, जिनसे वे भली आदतों के बजाय कुछ न कुछ बुरी बातें ही सीखते हैं। पर भावी समाज में माँ की अनुपस्थिति में बच्चों की देख-भाल का भार किसी निकटवर्ती शिशुगृह या बालशाला पर रहेगा, जहाँ पूर्ण सुशिक्षिता, सुहृदया तथा प्रेमशीला निरीक्षिकाएँ उनकी प्रत्येक आवश्यकता की पूर्ति करती रहेंगी। इन स्थानों में बालक ऐसी सफ़ाई तथा स्वास्थ्यप्रद तरीक़े से रक्खे जायँगे जैसा कि घर में किसी तरह सम्भव न होगा। क्योंकि न तो प्रत्येक माता बाक़ायदा सीखी हुई नर्सों अथवा निरीक्षिकाओं के समान बच्चों के सँभालने में कुशल हो सकती है और न प्रत्येक घर में बच्चों के सुख की उतनी सामग्री

एकत्रित की जा सकती है, जितनी कि एक सार्वजनिक शिशुगृह में मिल सकती है।

इसमें सन्देह नहीं कि भावी समाज में मातृत्व का कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा पवित्र माना जायगा। समाज बालक की शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध कर सकता है, पर आरम्भ में उसके पालन-पोषण का कार्य उसकी माता ही करेगी। समाज बच्चे के विकास को निरीक्षण कर सकता है, पर अपनी आयु के प्रथम वर्ष में उसको स्तन का दूध पिला कर पुष्ट बनाने का कार्य माता के सिवा कोई दूसरा भली-भाँति नहीं कर सकता। इसलिए एक विवेकयुक्त समाज में माता को अवश्य वे सब सुविधाएँ दी जायँगी, जिनसे वह बालक को उचित रीति से जन्म दे सके और पालन कर सके। ऐसे समाज में गर्भ-धारण तथा बच्चे के पालन का कार्य किसी अन्य काम से कम महत्वपूर्ण न समझा जायगा। जब कोई स्त्री माता बनने को होगी तो उसका समस्त कार्य-भार हटा दिया जायगा। विशेषकर उसे ऐसा कोई काम तो करने ही न दिया जायगा जिससे गर्भस्थ बालक अथवा जननेन्द्रिय को हानि पहुँच सकने की सम्भावना हो। बच्चे का जन्म होने के बाद से जब तक वह इस योग्य न हो जाय कि अन्य खाद्य पदार्थ द्वारा भी उसका भली प्रकार पालन हो सके, तब तक माता को अन्य ज़िम्मेदारियों से पूर्णतया स्वतन्त्र रक्खा जायगा तथा उसका नियमित वेतन या जीवन-निर्वाह की सामग्री उसे बिना किसी बाधा के पूर्ववत् मिलती रहेगी। वर्तमान समय की भाँति उस दशा में उसे किसी अन्य व्यक्ति के आश्रित न होना पड़ेगा।

इस प्रकार जैसे-जैसे समाज में सभ्यता तथा मनुष्यता की वृद्धि होती जायगी, उसमें स्त्रियों के प्रति आदर का भाव बढ़ता जायगा और उनको नागरिकता के वे सब अधिकार अपने आप मिल जायँगे जो पुरुषों को प्राप्त होंगे। वे पूर्णतया स्वतन्त्र होंगी और उनकी स्वतन्त्रता की रक्षा समाज स्वयं करेगा। इससे वे पत्नीत्व और मातृत्व के श्रेष्ठ कार्य की अब से कहीं अधिक अच्छी तरह पूर्ति कर सकेंगी।

जैसा हम इस लेख के आरम्भ में निवेदन कर चुके हैं, हमने ऊपर जिस भावी समाज की रूप-रेखा अङ्कित की है, वह विदेशी समाज-तत्व-विशारदों की कल्पना-प्रसूत है और उसमें कुछ बातें ऐसी हो सकती हैं, जो हम भारतवासियों को हानिकारक या असम्भव प्रतीत हों। पर यदि हम इसकी भली और बुरी बातों का विश्लेषण करके वर्तमान अवस्था से उसकी तुलना करें तो इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि वह इसकी अपेक्षा कहीं उच्च तथा वाञ्छनीय सिद्ध होगा। यह भी कहा जा सकता है कि समाज का उपरोक्त चित्र केवल काल्पनिक है, वास्तविक जीवन में उसका कार्यरूप में परिणत हो सकना सम्भव नहीं। यदि कुछ देर के लिए हम इस कथन को स्वीकार भी कर लें तो इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि यह एक सुखद कल्पना है।

❀ ❀ ❀

१० वर्ष पूर्व

'चाँद'—जून, १९२३

भारतीय स्त्री-जाति का भविष्य

[श्री० मदनमोहन वर्मा, एम० ए०]

आज हम सबको इस बात पर पूर्णतया विचार करना चाहिए कि स्त्री-जाति का कर्तव्य और आदर्श क्या है! क्योंकि उसी के अनुसार हमको स्त्री-जाति के उत्थान के लिए कार्य करना है। परन्तु किस प्रकार की शिक्षा और स्वतन्त्रता? यह तब निश्चित हो सकता है, जब हमारे चित्त में उनका कर्तव्य निश्चित हो। निस्सन्देह केवल पति को तलाक़ देने की स्वतन्त्रता और अधिकांश बुरा काम करने की योग्यता प्राप्त करने की शिक्षा तो हमें देना ही नहीं है। अपने महत्व का ज्ञान? अपने कर्तव्यों को जानना, घर को देवताओं के रहने योग्य बनाना, देश के मान को रखना और उसके आदर्श की रक्षा करना इत्यादि, इन सब बातों की

हमारी स्त्रियों को शिक्षा चाहिए। इसके लिए उनका सुशिक्षिता होना आवश्यक है।

उपरिलिखित उद्देश्य की पूर्णता के लिए यह तो आवश्यक है ही कि हम लड़कियों की पाठशालाएँ प्रति वर्ष बढ़ाएँ, पर इसके अतिरिक्त यह भी उचित है कि हम अपनी बहिनों की शिक्षा-प्रणाली को आदर्श रूप बनावें। लड़कों की शिक्षा-प्रणाली को झींकने से तो हमें अब तक फ़ुरसत ही नहीं मिली है और "देशी शिक्षा" और "जातीय शिक्षा" की पुकार देश में ख़ूब गूँज रही है, तो फिर स्त्री-शिक्षा हम शुरू से ही क्यों ऐसे मार्ग पर न चलाएँ कि जिसके लिए भविष्य में हाथ न पीटना पड़े। यदि स्त्री और पुरुषों के कर्तव्य एक से नहीं तो इसका क्या कारण है कि स्त्रियों की शिक्षा, पुरुषों की शिक्षा के विलाटिङ्ग पेपर की छाप हो।

एक ऐसे विषय में और विचार करना है। भारत की स्त्रियों का धन्धा क्या रहेगा? आज से दो पुश्त पहले तो यह समझा जाता था कि जैसे पुरुष बाहर का काम करने और रोटी कमाने के लिए हैं, उसी प्रकार स्त्रियाँ घर का प्रबन्ध करने (जिसमें कि साधारणतः वह काम भी, जो आजकल नीच समझा जाता है, चौका-बर्तन करना, आटा पीसना, रोटी पकाना, कपड़ा सीना इत्यादि भी शामिल था) के लिए समझी जाती थीं। आजकल के नए रिवाज के अनुसार यह काम तो नौकर या मैशीन करते हैं, तो भी इनकी जगह पर कोई और काम हमारी स्त्रियों ने ग्रहण नहीं किया है। यह तो अच्छी बात है कि स्त्रियाँ ऐसे तुच्छ कामों में अपना सारा समय नष्ट न करें। किन्तु यह तो और भी बुरा है कि उनके बदले आलस्य ग्रहण करें, जैसा कि आम तौर पर आजकल बड़े घरों में देखा जाता है। आलस्य से स्वास्थ्य ही नहीं, बल्कि आम उन्नति को हानि पहुँचने की सम्भावना है।

यह मसला मेरी समझ में स्त्रियों को वकालत करने की आज्ञा मिल जाने या सरकारी नौकरी में भर्ती किए जाने से हल नहीं हो सकता। और यद्यपि मैं इन बातों से भी ख़ुश हूँ कि स्त्रियों के दर्जे की बराबरी पुरुष मानने तो लगे हैं, तो भी किसी देश के शुभचिन्तक को इन बातों से वास्तविक सन्तोष नहीं हो सकता और न स्त्रियों का इस प्रकार आलसी रहना ही देखा जा सकता है; न यह कि आधे से अधिक गिनती जानने वाली स्त्रियाँ तो घर की चहार-दिवारी में बैठी आनन्द करें और बेचारे पुरुष अपने पसीने से कमा-कमा कर उनका और अपने बच्चों का पेट भर दिया करें।

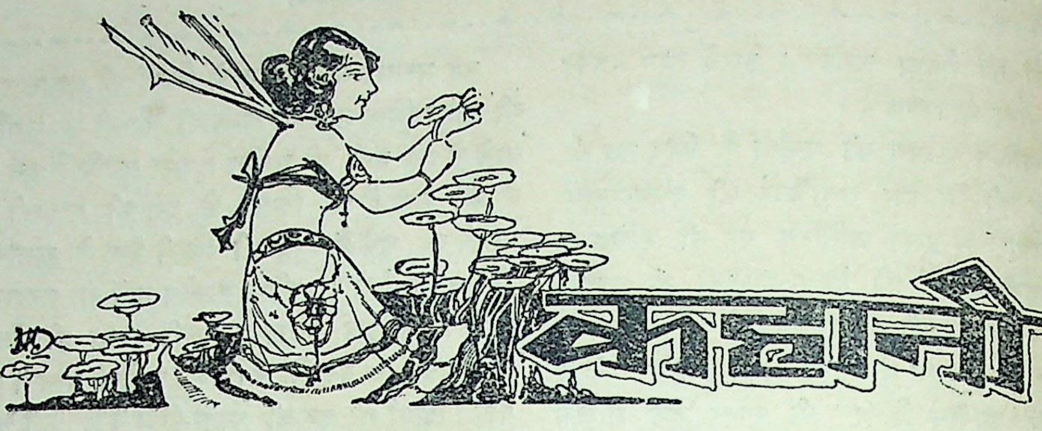
स्त्रियों के उत्थान के लिए जिन बातों की आवश्यकता है उनमें उनका सुशिक्षिता होना, पर्दा तोड़ कर स्वतन्त्र होना, और देश की उन्नति के कार्य, विशेषतः बालकों का पालन करना व शिक्षा-सम्बन्धी कार्य में उनका भाग लेना, रोगियों की सेवा करना, यह सब बातें अति आवश्यक हैं, परन्तु इनके विषय में मुझे इस लेख में कुछ लिखना नहीं है। इस अहम मसले की ओर मैं देश के नेताओं तथा विद्वानों का ध्यान आकर्षित कराना चाहता हूँ कि वे इस पर ध्यानपूर्वक विचार कर, स्त्रियों की भावी शिक्षा की एक स्कीम तैयार कर, उसे जनता के सामने उपस्थित करें। उसके लिए यही उपयुक्त समय है, जब कि देशवासी वर्तमान शिक्षा-पद्धति से बेतरह क्रुद्ध हैं और कन्याओं को वर्तमान शिक्षा से वञ्चित रखना ही श्रेयस्कर समझते हैं।

पाठकों को यह याद रहे कि एक लड़के के बिगड़ने से एक पुरुष ही बिगड़ता है, परन्तु एक लड़की के निकम्मी रहने से एक घर निकम्मा हो जाता है, और एक लड़की के सुशिक्षिता, सभ्य और स्वतन्त्र होने से एक घर, और घरों द्वारा देश, सुशिक्षित, सभ्य और स्वतन्त्र बनता व कहलाता है।

मधुकण

[श्री० सोहनलाल द्विवेदी]

कितनी है दयनीय दशा यह, कितना है विपरीत विचार ?
चाह रहा हूँ मेरे पापों पर तुम मुझे करोगे प्यार !



प्रभाव

[श्री० विश्वम्भरनाथ शर्मा, कौशिक]

"तुम इसे क्या समझते हो—यह बड़ी मालदार है।"

"ऐं! मालदार है? अजी बस रहने भी दो। मालदारी तो इसकी सूरत से ही टपकती है।"

"सूरत पर मत जाओ। किसी की असली हालत का पता उसकी सूरत से नहीं लग सकता।"

प्रातःकाल के नौ बज चुके थे। तरकारी मण्डी के निकट ही एक मन्दिर के चबूतरे पर तीन आदमी बैठे हुए थे। एक अधेड़ आदमी चबूतरे के पास इस प्रकार खड़ा था, मानों रास्ता चलते-चलते उन तीनों का वार्त्तालाप सुनने के लिए ठिठुक गया हो। सामने ही एक बुढ़िया, जिसकी वयस पचास वर्ष के ऊपर होगी, मैले-कुचैले कपड़े पहने धीरे-धीरे जा रही थी। उसके हाथ में कपड़े की एक छोटी पोटली थी। उस बुढ़िया की ओर सङ्केत करके चबूतरे पर बैठे हुए व्यक्तियों में से एक बोला—

"इसके पास कुछ नहीं तो चालीस-पचास हज़ार रुपए नक़द होंगे।"

"तुमने भी उस्ताद गप की नाक काट ली।"—दूसरा व्यक्ति बोला।

"हाँ, तुम्हें तो सब गप ही मालूम पड़ता है।"

"यदि ऐसी बात है तो तुम इसकी गोद क्यों नहीं बैठ जाते।"

"मैं तो तैयार हूँ; परन्तु वह बिठावे तब न? यदि तुम प्रयत्न करके बिठला दो, तो आधा रुपया तुम्हारा रहा।"

इस पर अन्य दोनों ने अट्टहास किया। चबूतरे के नीचे खड़ा हुआ व्यक्ति धीरे-धीरे वहाँ से चला। कुछ दूर निकल जाने पर उसने अपनी चाल तेज़ की और शीघ्र ही बुढ़िया से आगे निकल गया। सहसा वह एक तम्बोली की दूकान पर रुक गया और तम्बोली से यह कह कर "दो पान बनाना" बुढ़िया की ओर ताकने लगा।

जितनी देर में तम्बोली ने पान बनाए उतनी देर में बुढ़िया तम्बोली की दूकान के सामने आ गई। तम्बोली ने बुढ़िया से पूछा—"का हे बुढ़िया दाई, क्या ले आईं?" इतना सुनते ही बुढ़िया खड़ी हो गई और बोली—"यही साग-तरकारी ले आई बेटा। कुँजड़िन राँड से सवेरे हाय-हाय हो गई। चार पैसे सेर के तो दाम लिए और सड़े आलू तोलने लगी। ज़रा आँख चूक जाय तो ये लोग मट्टी दे दें मट्टी—ऐसी खराब जात है। सो वैसी ही बरक़त भी है। भगवान सब देखता है।"

यह कह कर बुढ़िया बड़बड़ाती हुई चल दी। तम्बोली उस व्यक्ति की ओर पान बढ़ा कर बोला—मण्डी भर की सस्ती तरकारी ढूँढ़ कर लाती है। छः पैसे सेर आलू बिक रहा है—यह चार पैसे में लाई है,

अब आप खयाल कीजिए, सड़े न होंगे तो और कैसे होंगे।

वह व्यक्ति पान मुँह में रख कर बोला—और सुनते हैं मालदार है, जितनी गरीब दिखाई पड़ती है, उतनी नहीं है।

तम्बोली बोला—हाँ, सुनते तो ऐसा ही हैं; भगवान जाने कहाँ तक ठीक है। तमाखू लीजिएगा?

उस व्यक्ति ने तम्बोली से तमाखू लेकर मुँह में रक्खी, तत्पश्चात् एक पैसा फेंक कर आगे की ओर पैर बढ़ाया।

बुढ़िया आगे-आगे जा रही थी, उसके पीछे-पीछे वह व्यक्ति चल रहा था। सहसा बुढ़िया सड़क पर से एक गली में मुड़ी। गली के अन्दर चार-पाँच लड़के खेल रहे थे। बुढ़िया को देखते ही एक बोला—"नानी करेला लाई!"

इतना सुनते ही बुढ़िया ने गालियाँ देनी आरम्भ कीं—"तुम्हारे बाप का मूँड़ लाई। लेओ अपनी अम्माँ से पकवा के खा लेना। हरामजादों के मारे राह चलना दूभर है।"

अब सब लड़के चिल्लाने लगे—"नानी एक करेला दिए जाओ।" लड़के करेला माँगते थे और बुढ़िया गालियाँ देती थी, कोसती थी। बुढ़िया की बातें सुन कर छोटे-बड़े सब हँसते थे। अन्त में लोगों ने लड़कों को डाँट-डपट कर चुप किया।

बुढ़िया एक छोटे से मकान के द्वार पर जाकर रुक गई। द्वार पर ताला लटक रहा था। बुढ़िया आँचल में बँधी हुई ताली से ताला खोलने लगी। बग़ल के मकान के द्वार पर एक व्यक्ति बैठा नारियल पी रहा था। वह बोला—"का हे अम्माँ, क्या ले आई?" "आलू लाई, बेटा। और कोई साग आता ही नहीं, न जाने सागों में क्या आग लग गई।"

इतना कह कर बुढ़िया द्वार खोल कर अन्दर गई और भीतर से द्वार बन्द कर लिया। नारियल पीने वाला व्यक्ति बड़बड़ाने लगा—दुनिया भर के तो साग आते हैं, इसे कोई साग ही नहीं मिलता। न जाने ससुरी किसके खातिर जोड़-जोड़ कर धर रही है।

वह व्यक्ति आगे बढ़ कर नारियल पीने वाले व्यक्ति से बोला—क्यों भइया, यहाँ कोई मकान खाली है?

नारियल पीने वाला बोला—यहाँ तो कोई मकान खाली नहीं है।

"क्यों भई, यह बुढ़िया जो इस मकान में गई है, पागल है क्या?"

"नहीं तो! अच्छी-भली है। इस जैसी सयानी तो दूसरी इस मुहल्ले भर में नहीं है।"

"अभी लड़के करेला कह कर इसे चिढ़ा रहे थे और यह बिगड़ रही थी। इससे मैंने समझा कि शायद इसका दिमाग़ कुछ ख़राब है।"

"अजी नहीं, दिमाग-विमाग कुछ ख़राब नहीं है—करेला कहे से चिढ़ती है—बस इतनी बात है। वैसे भली-चङ्गी है।"

इतना सुन कर वह व्यक्ति बुढ़िया के मकान को ध्यानपूर्वक देखता हुआ वहाँ से चल दिया।

२

वृद्धा चमेली इस संसार में अकेली है। जाति की कलवारिन है। इसके दो मकान हैं। एक में तो वह स्वयम् रहती है और दूसरा पचास रुपए मासिक किराए पर उठाया हुआ है—यही उसकी जीविका है। जिस मुहल्ले में वह रहती है, उसके प्रायः सब लोग उसका आदर करते हैं और कोई अम्माँ, कोई चाची, कोई बुआ, इत्यादि नामों से उसे सम्बोधित करते हैं। मुहल्ले के लड़के उसे नानी कहते हैं और 'करेला' कह कर उसे चिढ़ाया करते हैं। मुहल्ले के अधिकांश लोगों का अनुमान है कि चमेली के पास नक़द रुपया भी काफ़ी है।

उपर्युक्त घटना के एक सप्ताह पश्चात् एक व्यक्ति, एक छोटा सा बिस्तरा दाबे चमेली के द्वार पर पहुँचा। यह वही व्यक्ति था, जिसने उस दिन चमेली का पीछा उसके घर तक किया था। देखने से प्रतीत होता था कि यह व्यक्ति कहीं की यात्रा करके आ रहा है; क्योंकि उसका शरीर धूल-धूसरित हो रहा था। द्वार पर पहुँच कर उसने द्वार की कुण्डी खटखटाई। कुछ क्षणों पश्चात् द्वार खुला और चमेली की गम्भीर मूर्ति दिखाई पड़ी। उस व्यक्ति ने चमेली को देखते ही झट उसके चरण छूकर कहा—"मौसी, पाँव लागौं।" चमेली ने विस्मय-पूर्ण नेत्रों से उस व्यक्ति को पहचानने की चेष्टा करते हुए कहा—"खुस रहौ बेटा!" इतना कह कर वह उसे सिर

से पैर तक देखने लगी। वह व्यक्ति बोला—"मुझे पहचाना मौसी ?"

चमेली सिर हिला कर बोली—नहीं बेटा, मैंने तो नहीं पहचाना। अब मुझे सूझ कम पड़ता है।

वह व्यक्ति बोला—हम चन्दनपुर से आए हैं, सरजूप्रसाद के लड़के हैं।

वृद्धा अपनी स्मरण-शक्ति पर ज़ोर देते हुए बोली—सरजूप्रसाद। हाँ, यह नाम तो मुझे अच्छी तरह याद है। सरजूप्रसाद थे तो।

वह व्यक्ति—सरजूप्रसाद वही, जो तुम्हारे घर के पिछवाड़े रहते थे, उनके द्वार पर पीपल का पेड़ था।

वृद्धा नेत्र विस्फारित करके किञ्चित् मुस्कराते हुए बोली—ओहो! अब याद आगया। वह सरजूप्रसाद। उन्हें तो मैं अच्छी तरह जानती हूँ। तुम उन्हीं के लड़के हो?

"हाँ मौसी।"

"अच्छा तो आओ बेटा, भीतर आओ। सरजूप्रसाद तो हमारे पड़ौसी और बड़े हितू थे।"

यह कह कर बुढ़िया भीतर चली। वह व्यक्ति बुढ़िया के पीछे-पीछे चला।

एक दालान पार करके एक कमरे में दोनों पहुँचे। कमरे में एक ओर एक चारपाई पड़ी थी। उसी के सिरहाने एक बड़ा सन्दूक़ रक्खा था—बीच में पक्के फ़र्श पर एक शीतलपाटी बिछी हुई थी। खूँटियों पर कुछ मैले तथा श्वेत कपड़े लटके हुए थे। एक ओर पानी का घड़ा और उसी के पास एक लोटा तथा गिलास रक्खा हुआ था।

वृद्धा शीतलपाटी की ओर सङ्केत करके बोली—बैठो बेटा!

उस व्यक्ति ने बिस्तर एक कोने में डाल दिया और शीतलपाटी पर बैठ कर बड़े ध्यानपूर्वक इधर-उधर देखने लगा। चारपाई के सिरहाने रक्खे हुए सन्दूक़ को उसने बहुत ही ध्यान से देखा।

वृद्धा चमेली भी उसके सामने बैठ गईं। बैठ कर उसने पूछा—सरजूप्रसाद तो अच्छे हैं?

"नहीं, उनका तो पीछा हो गया।"

चमेली मुख पर दुःख का भाव लाकर बोली—अरे! यह कब?

"चार बरस हुए।"

"राम-राम! बड़ा बुरा हुआ! बड़े अच्छे आदमी थे। मुझे तो बहुत ही मानते थे। बेटा, मुझे चन्दनपुर छोड़े एक जमाना हो गया। तुम तो उस समय चार-पाँच बरस के होगे।"

"मुझे इतना तो याद है कि मैंने तुम्हें वहाँ देखा था और कुछ याद नहीं।"

"हाँ, एक बार जब मेरे बाप मरे थे, तब दो दिन के लिए गई थी, तब से फिर नहीं गई। जाकर करती भी क्या, बाप के घर में कोई भी नहीं रहा, यहाँ भी कोई नहीं रहा। सबको खा बैठी। भगवान मुझे न जाने क्यों भूल गए। मैं भी मर जाती तो पाप कटता।"—इतना कहते हुए चमेली ने नेत्रकोण पर आए हुए आँसू की बूँद को धोती के पल्ले से पोंछ लिया।

"भगवान की मरजी है मौसी और क्या कहा जाय! भगवान तुम्हें बनाए रक्खें। तुम्हारे बैठे रहने से हम लोगों को बड़ा सहारा है।"

"हाँ बेटा! जब तक जिन्दगी है, तब तक तो दुख भोगना ही पड़ेगा। तुम्हारी माँ तो अच्छी है?"

"हाँ अच्छी हैं। वह भी तुम्हारी तरह बुढ़ाय गई।"

"हाँ, मेरे साथ की तो है ही और बड़ी नेक है। मेरा उसका बहुत साथ रहा। तुम यहाँ कैसे आए बेटा?"

"क्या बताऊँ मौसी! देहात में तो अब गुजर चलता नहीं। खेती-पाती में तो कुछ तत्व नहीं रहा, वहाँ और कोई जीविका है नहीं। इसलिए यही विचार किया कि सहर में चल कर नौकरी-चाकरी करें। पहले तो आने की हिम्मत नहीं पड़ती थी। यहाँ न किसी से जान न पहचान! पर जब अम्माँ ने बताया कि चमेली मौसी यहाँ हैं, तब आने का साइस हुआ। बड़ी मुश्किल से तो तुम्हारे घर का पता मिला।"

"चलो अच्छे आ गए बेटा! मैं भी अकेली ऊबती थी; पर करती क्या। जब तक कोई अपने भरोसे का आदमी न हो, तब तक घर में रखते भी तो नहीं बनता।"

"हाँ, सो तो है ही। जमाना बड़ा खराब है मौसी। बहुत समझ-बूझ कर किसी पर एतबार करना चाहिए।" यह कहते हुए उस व्यक्ति ने बड़े सन्दूक़ पर दृष्टि डाली।

"ठीक बात है बेटा! और सहर के आदमियों से तो भगवान बचावे!"

"यही डर तो मुझे भी था मौसी। देहात में सुनते थे कि सहर के आदमी बड़े चालाक होते हैं, देहातियों को ठग लेते हैं। इससे और भी आने की हिम्मत नहीं पड़ती थी। पर जब सुना कि तुम यहाँ हो तब ढाढ़स बँधा।"

"चलो आ गए हो तो यहाँ आराम से रहो। भगवान चाहेगा तो कोई न कोई नौकरी मिल ही जायगी। तुम भी कोसिस करना, मैं भी पता लगाऊँगी। हाँ बेटा, तुम्हारा नाम क्या है?"

"मेरा नाम अजुध्याप्रसाद है।"

"बहुत ठीक! भगवान चाहेगा तो नौकरी मिल जायगी। और जो ×××।"—इतना कह कर हठात् चमेली रुक गई। वह कोई बात कहना चाहती थी, परन्तु फिर कुछ ख़याल आने से रुक गई। कुछ क्षणों तक मौन रह कर उसने कहा—"अच्छा तो कपड़े-वपड़े उतार कर हाथ-मुँह धोओ, तब तक मैं खाने को बनाती हूँ।"

३

अयोध्याप्रसाद को चमेली के यहाँ रहते हुए तीन दिन हो गए। अब सवेरे चमेली साग लेने नहीं जाती, उसके बदले अयोध्याप्रसाद जाता है। चमेली अयोध्याप्रसाद से प्रसन्न है; क्योंकि वह चमेली की अपेक्षा साग ख़रीदने में अधिक पटु है, सस्ता भी लाता है और अच्छा भी। चमेली उसे पका कर खिलाती है और दोनों समय रामायण सुनाती है।

एक दिन सवेरे अयोध्याप्रसाद नहीं उठा। चमेली ने उसे उठाना चाहा तो वह काँख कर बोला—आज जी अच्छा नहीं है मौसी।

मौसी ने अयोध्या के शरीर पर हाथ रख कर कहा—बुखार तो नहीं जान पड़ता।

"हाँ बुखार तो नहीं है, पर बदन में दरद है, सिर फटा जा रहा है, आह! आह!"

चमेली ने कहा—अच्छा तो पड़े रहो। आज नहाना नहीं।

चमेली ने नहा-धोकर थोड़ी देर रामायण पाठ किया, तत्पश्चात् बोली—तो मैं जरा मण्डी हो आऊँ।

अयोध्या बोला—काहे को तकलीफ करोगी। अब मेरी तबियत कुछ ठीक हो गई है, मैं चला जाऊँगा।

"नहीं बेटा, तुम अभी थोड़ी देर और पड़े रहो तो जी बिल्कुल अच्छा हो जाएगा। मैं लिए आती हूँ, कौन बहुत दूर है। मैं कई दिन से घर से नहीं निकली, जरा घूम भी आऊँगी।"

"अच्छा तो ले आओ, थोड़ी पालक भी लेती आना।"

"अच्छा लेती आऊगी। तुम उठ कर जरा किवाड़ें बन्द कर लो।"

अयोध्या काँखता हुआ उठा और उसने चमेली के बाहर हो जाने पर किवाड़े बन्द कर लिए। किवाड़े बन्द करते ही उसकी कायापलट हो गई। वह क्षणमात्र में भला-चङ्गा हो गया। वह जल्दी से अपनी चारपाई के पास आया और अपने सिरहाने से उसने एक पुड़िया निकाली। पुड़िया को उसने खोला तो उसमें से मोम का डला निकला। मोम का डला लेकर वह बड़े सन्दूक़ के पास पहुँचा। पहले तो उसने सन्दूक़ में लगे हुए बड़े ताले को ध्यानपूर्वक देखा। इसके पश्चात् मोम को दबा कर टिकिया बनाने लगा। सहसा उसकी दृष्टि सन्दूक़ के कुछ ऊपर बने हुए एक बड़े ताक़ पर गई। उस ताक़ पर रामायण रक्खी हुई थी और उस पर कुछ फूल पड़े हुए थे। अयोध्याप्रसाद रामायण देख कर स्तम्भित सा हो गया। उसकी दृष्टि पुस्तक पर जम गई, मोम को ठीक करती हुई हाथ की उँगलियाँ रुक गईं। कुछ क्षणों तक उसकी यही दशा रही, तत्पश्चात् वह अपने ही आप बोला—"उँह! इन ढकोसलों में क्या धरा है, तुम अपना काम करो जी।" वह पुनः ताले पर झुका और उसने मोम की टिकिया ताले के ताली वाले छिद्र पर चिपका दी। कुछ देर तक वह उसे दबाता रहा, तत्पश्चात् उसने धीरे से टिकिया को ताले से अलग किया और उसे देख कर बोला—"ठीक है।" वह पुनः अपनी चारपाई के पास आया। उसने अपने सिरहाने से एक टीन की डिबिया निकाली। उस डिबिया में मोम की टिकिया को बन्द करके डिबिया अपने सिरहाने बिस्तर के नीचे दबा दी। इसके पश्चात् वह नित्य कर्म से निवृत्त होने चला गया।

जब चमेली लौट कर आई तो अयोध्याप्रसाद का चित्त बहुत-कुछ ठीक हो चुका था। केवल सिर में थोड़ी सी धमक शेष थी। उपर्युक्त घटना के चार दिन पश्चात् एक

दिन सवेरे अयोध्याप्रसाद की तबीयत फिर ख़राब हो गई। वही बदन और सिर में दर्द था। चमेली के पूछने पर उसने कहा—ऐसा देहात में भी बहुधा हो जाया करता था मौसी। न जाने क्या रोग है।

"तो तू इसकी कुछ दवा क्यों नहीं करता ?"

"देहात में धरा ही क्या है। अब आज यहाँ किसी डॉक्टर-वैद्य को नाड़ी दिखाऊँगा।"

"पण्डित लक्ष्मीनारायन हमारे पुराने वैद्य हैं, उनके यहाँ चला जाना, बड़ी जल्दी ठीक कर देंगे। बड़ा जसी (यशी) हाथ है। मेरा नाम ले देना।"

"अच्छा शाम को जाऊँगा। पता बता देना।"

"इसी मुहल्ले के नुक्कड़ पर रहते हैं। अच्छा जरा मैं मण्डी हो आऊँ।"

"क्या कहूँ मौसी, तुम्हें बड़ी तकलीफ होती है।"

"तकलीफ काहे की; चित्त बहल जाता है।"

चमेली के जाते ही अयोध्याप्रसाद ने सिरहाने से डिबिया निकाली। उसे खोल कर उसने उसमें से एक ताली निकाली। ताली नई तथा चमकदार थी। ताली लेकर वह सन्दूक़ के पास पहुँचा। उसकी दृष्टि फिर रामायण पर पड़ी। रामायण को देख कर वह पुनः झिझका। परन्तु शीघ्र ही सँभल कर बड़बड़ाने लगा।

यह रामायण आदमी को बोदा बना देती है। महीने दो महीने सुने तो पूरा गोबर का चोत बन जाय। उसने काँपते हुए हाथों से ताली को ताले के अन्दर डाल कर घुमाया। ताला खुल कर लटक गया। उसका मुख प्रसन्नता से खिल उठा और मुँह से निकला—"अरे!" उसने शीघ्रतापूर्वक कपड़े सन्दूक़ से निकालने आरम्भ किए। कपड़े अच्छे तथा साधारण दोनों प्रकार के थे। कपड़ों के नीचे उसे एक पिटारी मिली। उसका मुख आशा से खिल उठा। पिटारी को खोला तो उसमें पीतल की सुर्मेदानी, कुछ काठ की डिबियाँ और इसी प्रकार की सटर-पटर चीज़ें निकलीं। उसका मुख क्रोध से लाल हो गया। वह बोला—"हरामजादी ने इसे भी ताले में बन्द किया है। राम-राम! मेहनत ही बर्बाद गई। रुपया ससुरी ने न जाने कहाँ रक्खा है। सन्दूक को धोके की टट्टी बना रक्खा है।" उसने जल्दी-जल्दी सब कपड़े सन्दूक़ में भर दिए और फिर ताला लगा दिया। ताली अपने सिरहाने रख कर वह चारपाई पर बैठ गया और सोचने लगा—"रुपए तो इसके पास जरूर हैं, पर न जाने साली ने कहाँ रक्खा है। कहीं गाड़ के रक्खा होगा। बिना महीना दो महीना साथ रहे पता चलना कठिन है। अच्छा!"

इसी समय द्वार कुण्डी खटकी। अयोध्या काँखता हुआ उठा और उसने द्वार खोला। चमेली ने पूछा—कैसा जी है ?

"अब तो ठीक है।"—अयोध्या ने उत्तर दिया।

४

फिर दिन व्यतीत होने लगे। चमेली नित्य अयोध्या को रामायण सुनाती थी। अयोध्या को अपनी इच्छा के विरुद्ध, केवल चमेली को प्रसन्न रखने के लिए, रामायण सुननी पड़ती थी। एक दिन उसने कहा—मौसी, तुम रोज-रोज रामायण पढ़ती हो, तुम्हारा जी नहीं ऊबता। कोई और किताब पढ़ा करो।

चमेली बोली—अरे बेटा, यह किताब थोड़े ही है। यह तो आदमी की मुक्ती का द्वार है। इसके पाठ करने से मुक्ती हो जाती है।

अयोध्या मन ही मन कुढ़ कर चुप हो रहा।

एक दिन अयोध्या बोला—मौसी, नौकरी तो कहीं लगती नहीं। क्या बतावें रुपया पास नहीं है, नहीं तो कोई छोटी-मोटी दूकान कर लेता।

चमेली बोली—लग जायगी, जल्दी क्या है, भगवान् पर भरोसा रक्खो। वही सबकी नैय्या पार लगाते हैं। तुम्हें खाने-पीने की तो कोई तकलीफ है नहीं। कुछ घर भेजना चाहो तो भेज दो। दस-बीस रुपए का सहारा मैं कर सकती हूँ।

अयोध्याप्रसाद चमेली के स्नेहपूर्ण वाक्य से प्रभावित होकर बोला—सो तो मौसी, तुम्हारे चरनों में मुझे कोई तकलीफ नहीं है; पर ऐसे कब तक × × ×

बुढ़िया बात काट कर बोली—जब तक मैं जिन्दा हूँ, तब तक तो फिकर करो न, मैं मर जाऊँ तो देखी जायगी। फिर भी रामचन्द्र जी महाराज सब भली करेंगे। उनका ध्यान रक्खो।

उसी दिन चमेली ने बीस रुपए अयोध्याप्रसाद को दिए और कहा—इन्हें घर भेज दो। अपनी माँ को मेरा राम-राम लिख देना।

अयोध्याप्रसाद को यह पता न चला कि बुढ़िया ने रुपए कब और कहाँ से निकाले। इसी प्रकार दो मास व्यतीत हो गए। एक दिन चमेली किसी के यहाँ जाने कह कर सवेरे गई और शाम को लौटी।

उसी दिन रात को चमेली ने अयोध्याप्रसाद से कहा—बेटा, मेरी इच्छा एक मन्दिर बनवाने की हो रही है। भगवान की मर्ज़ी होगी तो बन ही जायगा।

अयोध्या तुरन्त बोला—रुपया कहाँ से आवेगा मौसी?

"भगवान चाहेंगे तो रुपया भी हो ही जायगा।"

अब अयोध्याप्रसाद को पूर्ण विश्वास हो गया कि इसके पास रुपया अवश्य है। वह बोला—तो रुपया हो तो निकालो, मन्दिर बन जाय! अपनी जिन्दगी में ही बनवा डालो।

"हाँ, बनवाऊँगी। और मैं क्या बनवाऊँगी—रामचन्द्र जी बनवावेंगे। उनकी जब मर्जी होगी तब बन जायगा।"

"तुम्हारी मर्जी होगी तो उनकी मर्जी भी हो जायगी।"

"नहीं बेटा, उनकी मर्जी मुख्य है।"

अयोध्याप्रसाद दाँत पीस कर रह गया।

एक महीना और व्यतीत हुआ।

सहसा एक दिन चमेली को हैज़ा हो गया। अयोध्याप्रसाद ने बहुत दौड़-धूप की, परन्तु कुछ लाभ न हुआ—उसका अन्त समय निकट आ गया।

अयोध्याप्रसाद ने पूछा—मौसी तुम्हारा रुपया कहीं हो तो बता दो, मैं तुम्हारे नाम से मन्दिर बनवा दूँगा।"

बुढ़िया आँखें बन्द किए हुए लगती जिह्वा से बोली—राम × × × राम!

कुछ देर पश्चात् चमेली का देहान्त हो गया।

मुहल्ले वालों को ख़बर हुई। उसी समय मुहल्ले के दो प्रतिष्ठित व्यक्ति आ गए। उन्होंने किसी वकील को बुलवाया। उसने आते ही घर पर अधिकार जमाया। अयोध्याप्रसाद बोला—"चमेली मेरी मौसी थी। मैं जैसा चाहूँगा करूँगा, आप लोग दख़ल मत दीजिए।"

वकील ने हँस कर कहा—चमेली वसीयत कर गई है और हम लोगों को ट्रस्टी बना गई है। तुम्हारा नाम क्या है?

अयोध्या घबराकर बोला—मेरा—मेरा नाम अयोध्या है।

"बाप का नाम?"

"बाप का नाम? बाप का नाम सरजूप्रसाद।"

"चन्दनपुर के रहने वाले हो?"

"हाँ।"

"तो तुम्हारे लिए बीस रुपया महीना और ख़ूराक लिख गई है। वह भी यदि तुम मन्दिर में रहोगे?"

"मन्दिर, कैसा मन्दिर?"

"अब बनेगा, हम लोग बनवावेंगे। मगर पहले तुम्हें यह साबित करना होगा कि तुम सरजूप्रसाद के लड़के और चन्दनपुर के रहने वाले हो।"

अयोध्याप्रसाद का मुख पीला पड़ गया।

वकील ने कुछ आदमियों को अन्त्येष्टि क्रिया का सामान लाने भेजा और कुछ आदमियों से बड़ा सन्दूक़ हटवा कर वह स्थान खुदवाया। एक गज़ खोदने पर एक बड़ा बक्स निकला। इस बक्स को खोला तो वह रुपयों और नोटों से भरा था। अनुमान से चालीस-पचास सहस्र रुपया होगा। अयोध्याप्रसाद का सिर घूम गया। वकील साहब घर के सामान की सूची बनाने लगे। कुछ आदमी अन्त्येष्टि क्रिया के लिए रथी इत्यादि बनाने में लग गए। रथी तैयार हो जाने पर अयोध्या की तलाश हुई। क्रिया करने के लिए वही चुना गया। परन्तु अयोध्या लापता हो गया था।

× × ×

आठ महीने पश्चात् एक नए मन्दिर के द्वार पर, जो चमेलीदेवी का मन्दिर कहलाता था, एक संन्यासी आया। उसने पुजारी से कहा—यदि आप आज्ञा दें तो मैं भी इस मन्दिर के द्वार पर पड़ा रहा करूँ और भगवान का भजन करूँ।

पुजारी ने सहर्ष आज्ञा दे दी। संन्यासी ने मन्दिर के चबूतरे पर आसन जमा दिया। कुछ भोजन मन्दिर से और कुछ पड़ोस के गृहस्थों से मिल जाता था। इस प्रकार संन्यासी चबूतरे पर बैठा रहता और रामायण पढ़ कर लोगों को सुनाया करता था।

यह संन्यासी कौन था? वही हमारा पूर्व-परिचित अयोध्याप्रसाद!

मातृमण्डल

[श्री० रामचरित उपाध्याय]

सुमातृमण्डल कदापि तुमसे,
उऋण न होंगे किसी तरह हम।
कृतज्ञता पर प्रकाश तो भी,
किया करेंगे इसी तरह हम॥

❀

उदर तुम्हारे कलोल कर जो,
गरम तुम्हारा रुधिर न पीते।
क्षुधा-विवश हो तड़प तड़प-कर,
अकाल मरते, कभी न जीते॥

❀

बलिष्ठ हों हम विचार कर यह,
अनिष्ट भोजन किया न तुमने।
निरुज रहें हम इसीलिए क्या—
कटुक दवा को पिया न तुमने?

❀

हमें हृदय से छिपा शिशिर में,
स्वयं तुहिन-दुख सहा न तुमने?
मचल गए तब तनिक न टाला,
कभी हमारा कहा न तमने॥

❀

न यदि जनमते न दूध पीते,
तुरत बुढ़ौती तुम्हें न आती।
न वस्त्र होते मलिन तुम्हारे,
न यदि हृदय से हमें लगातीं॥

❀

निशुम्भ-हन्त्री कभी स्वयं बन,
अधम असुर से हमें बचाया।
कभी जनकजा के रूप धर के,
दनुज-निवह का निधन कराया॥

तुम्हीं हमारी रमा क्षमा हो,
तुम्हीं हमारी हो जन्मदात्री।
तुम्हीं हमारी हो देवियाँ भी,
तुम्हीं हमारी हो गेह-धात्री॥

❀

न भीम ही हम रहे न अर्जुन,
द्रुपदसुता फिर तुम्हें कहें क्यों?
स्वयं निबल हो तुम्हें प्रबल क्यों—
बना सकेंगे, सुखी रहें क्यों?

❀

स्वतन्त्रता थी मिली तुम्हें भी,
रही हमारी स्वतन्त्रता जब।
निशेश पर जब ग्रहण लगा है,
छिटक रहेगी न चाँदनी तब॥

❀

कपूत हम-सा कहीं मही पर,
नहीं हुआ है, न हो सकेगा।
वही नपुंसक, पुरुष नहीं, जो—
कलङ्क माँ का न धो सकेगा॥

❀

हमें गुलामी सुखद हुई है,
न चाहते हम स्वतन्त्र रहना।
जिन्हें ख़ुशामद हुई है पारस,
पुरुष उन्हें तुम कभी न कहना॥

❀

स्व-चूड़ियों को उतार करके,
हमें पिन्हा दो, न हानि होगी।
निलज्ज हैं हम सुमातृमण्डल,
हमें तनिक भी न ग्लानि होगी!!

'चौपदों' का चमत्कार

[श्री० श्रीनाथ पाण्डेय, एम० ए०, रिसर्च-स्कॉलर]

पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय खड़ी बोली के सर्वोत्कृष्ट कवियों में हैं। यों तो काव्य की प्राचीन तथा अर्वाचीन सभी शैलियों और भाषाओं पर आपका पूर्ण अधिकार है, परन्तु आपकी यश-वृद्धि का श्रेय खड़ी बोली ही को प्राप्त है। वर्तमान कवियों में आप ही एक ऐसे कवि हैं, जिन पर दोनों 'स्कूल' वालों की समान श्रद्धा है। 'वादयुक्त' और 'वादमुक्त' दोनों प्रकार की कविता करने में भी आप विशेष कुशल हैं। शीघ्र ही आपका 'रस-कलस' नामक ग्रन्थ निकलने वाला है, जिसमें आपने रीति-काल की पद्माकरी पद्धति का अनुसरण किया है और इस कार्य में भी आप पूर्णतया सफल हुए हैं।

काव्य की प्रचलित भाषाओं में पूर्ण अभिज्ञता रखते हुए भी, प्रारम्भिक काल से ही जन-साधारण की बोलचाल की भाषा से आपका विशेष प्रेम रहा है। आज से ४५-५० वर्ष पूर्व, जब कि हिन्दी-गद्य का कोई निश्चित स्वरूप भी स्थिर नहीं हुआ था, और हिन्दी के लेखक महोदयगण अपनी-अपनी विभिन्न प्रकार की शैली को प्रधानता देने में प्रवृत्त थे, उपाध्याय जी ने भी अपनी शैली को स्थायित्व प्रदान करने के विचार से बोलचाल की भाषा में दो पुस्तकें लिखीं। इन पुस्तकों को लोगों ने बड़े चाव से पढ़ा ; इनके कई संस्करण भी हुए। यद्यपि साहित्य की भाषा की दृष्टि से इन्हें प्रधानता नहीं मिली, परन्तु उपाध्याय जी इससे हताश न हुए। क्योंकि वह समय ही ऐसा था, जब लोग "कल मैं आपसे मिलने के लिए आपके घर पर गया था। घर का दरवाज़ा बन्द था, आपसे भेंट नहीं हुई। लाचार होकर लौट आया" के स्थान पर "आपके समागमार्थ मैं गत दिवस आपके धाम पर पधारा। गृह का कपाट मुद्रित था, आपसे भेंट न हुई। हताश होकर परावर्तित हुआ" लिखना पसन्द करते थे। अस्तु, बोलचाल की भाषा से आपका प्रेम तो बना ही रहा, परन्तु तो भी आपने अपने प्रसिद्ध महाकाव्य 'प्रिय-प्रवास' में संस्कृत वृत्तों का सहारा लिया, जिनमें तत्सम शब्दों की ही प्रधानता रही। घात-प्रतिघात के नियमों के अनुसार आपका यह कार्य स्वाभाविक ही था। अस्तु, 'प्रिय-प्रवास' के प्रकाशित हो जाने पर उसकी एक प्रति समालोचनार्थ आपने डॉ० ग्रियर्सन (Sir George A. Grierson, G. M. K. C. I. E.) के पास भेजी थी। सुप्रसिद्ध हिन्दी-प्रेमी ग्रियर्सन साहब बोलचाल की हिन्दी के बड़े पक्षपाती हैं। उन्होंने प्रिय-प्रवास की प्रशंसा करते हुए लिखा था—"रचना बड़ी ही मधुर और सुन्दर है। परन्तु इसकी भाषा से मुझे सन्तोष नहीं हुआ। मेरे लिए परम सौभाग्य की बात होती, यदि आप बोलचाल की भाषा में किसी महाकाव्य की रचना करते।" डॉक्टर साहब की इन पंक्तियों को पढ़ कर उपाध्याय जी का ध्यान पुनः बोलचाल की भाषा की ओर आकृष्ट हुआ और आपने बोलचाल के मुहावरों को लेकर दो काव्य-ग्रन्थों की रचना की। ये दोनों पुस्तकें अपने ढङ्ग की अनूठी हैं। परन्तु बड़े दुःख की बात है कि इन ग्रन्थरत्नों का अध्ययन इने-गिने लोगों ने ही किया है। अतः अभी तक इनकी जो आलोचनाएँ प्रकाशित हुई हैं, उनमें कुछ तो प्रमादवश और कुछ अज्ञानवश बड़ी ही भ्रमात्मक हैं। यथार्थ में बात यह है कि हिन्दी-साहित्य-समालोचक किसी पुस्तक की उत्तमता की परख अपनी आँखों से न करके बङ्गला तथा अङ्गरेज़ी लेखकों की आँखों से किया करते हैं।

यह स्मरण रखना चाहिए कि कविता का सम्बन्ध प्रधानतः चित्तवृत्तियों और भावों से है। तर्क के कर्कश विचारों या हेतुवाद से उसका कोई सम्बन्ध

नहीं। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि कविता हृदय की वस्तु है, मस्तिष्क की नहीं। हृदय-सम्वादी भावों से ही इसकी अभिव्यक्ति होती है और उसी का जादू सारे शरीर पर अपना असर डालता है। "योऽर्थो हृदय सम्वादी तस्य भावो रसोद्भवः। शरीरं व्याप्यते तेन शुष्क काष्ठमिवाग्नितां।" (नाट्य ७।७) तार्किकों की दाल यहाँ नहीं गलती। तार्किकों के लिए तो नीलकण्ठ की यह उक्ति ही बहुत कुछ युक्तिसङ्गत जान पड़ती है—

अप्यन्तकस्थै रविभावनीयः
सूक्ष्मः प्रकृत्या मृदु सूक्ति जन्मा।
कुतर्क विद्या व्यसनोपजातैः
कोलाहलैर्न ध्वनिरेव वेद्यः॥

—शिवलीलार्णव १।७२

अर्थात्—"सुकुमार सूक्ति से उत्पन्न, स्वभाव से ही सूक्ष्म, पास वालों को भी कुछ न मालूम पड़ने वाली यह ध्वनि—कविता-पद की मीठी तान—कर्कश तर्क-विद्या की झक से की गई बक-बक में नहीं सुनाई देती।" सारांश यह कि कविता हृदय की वस्तु है। भावुक का हृदय जब हृदय-सम्वादी भावों से आप्लावित हो जाता है, तो उसके हृदय में एक विशेष प्रकार की व्यथा उत्पन्न होती है। हृदय की व्यथा दूर करने के लिए वाणी के सिवा दूसरे अवयव समर्थ नहीं। अतः ऐसे अवसरों पर वाणी से जो कुछ प्रसृत होता है, वही कविता है। भावुक को उस समय वाणी के परिधान का बिलकुल ध्यान नहीं रहता। शब्द भावों के प्रवाह के साथ होड़ लगाते हैं; कभी साथ-साथ दौड़ने में समर्थ होते हैं, और कभी पीछे पड़ जाते हैं। यही कारण है कि अध्ययनशील कवियों में दोनों बातों का सुन्दर समन्वय मिलता है; भावों की अभिव्यक्ति में शब्द असमर्थ नहीं दिखलाई पड़ते। परन्तु कुछ कवि ऐसे भी होते हैं, जिनकी रचनाओं में शब्दों की तो प्रचुरता होती है, परन्तु भावों की न्यूनता रहती है। ऐसे कवियों का हृदय भावों से व्यथित नहीं होता, वरन् वे जान-बूझ कर हृदय में व्यथा उत्पन्न करने का प्रयत्न करते हैं, और इस तरह भावों के साथ बलात्कार करते हैं। यही कारण है कि उनके भावों में भद्दापन आ जाता है। वस्तुतः बात यह है कि सच्ची कविता के लिए व्यथित कवि-हृदय चाहिए, यों तो ऊटपटाँग तुकबन्दी भाषा से अभिज्ञ सभी कर सकते हैं। प्राचीन काल में कविता के सम्बन्ध में साम्प्रदायिक मतभेदों के होते हुए भी भाव की सब में प्रधानता थी—चाहे अलङ्कार-सम्प्रदाय हो, चाहे रीति-सम्प्रदाय। चमत्कारवादियों के 'चमत्कार' में भी भाव की ही प्रधानता थी। केवल उक्ति-वैचित्र्य-प्रधान काव्य तो सूक्तिपद का ही अधिकारी था। चमत्कार शब्द ही भाव का बोधक है—हृदय या मन ही चमत्कृत हो सकता है, मस्तिष्क नहीं।

भाषा की बँधी हुई रूढ़ियाँ ही मुहावरा हैं। लाक्षणिक प्रयोगों का बोध भी इन रूढ़ियों द्वारा ही होता है। अतः लक्षण और मुहावरा दोनों सापेक्ष्य हैं—एक के बिना दूसरे का अस्तित्व ही नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि भाषा की बँधी हुई रूढ़ियों में बँध कर कविता करने में कवित्व-शक्ति को व्याघात पहुँचता है। परन्तु यह कहना कि भाषा की बँधी हुई रूढ़ियों में कविता करना असम्भव और अशक्य है, युक्तिसङ्गत नहीं। कुछ बँधे हुए नियमों का पालन तो सभी कवियों को करना ही पड़ता है, चाहे किसी प्रकार की कविता हो। अतः कुछ विद्वान समालोचकों का यह कहना कि उपाध्याय जी की प्रतिभा का इन चौपदों में ह्रास हुआ है और वे कवि-पद से च्युत होकर शब्द-संग्रहकार बन गए हैं, युक्तिसङ्गत एवं समीचीन नहीं है। उपाध्याय जी का उद्देश्य मुहावरों का संग्रह करना नहीं, वरन् मुहावरों में कविता करना है। फिर भी 'प्रिय-प्रवास' के छन्दों की तुलना इन चौपदों से करना अन्याय होगा। यदि एक से हृदय चमत्कृत होता है तो दूसरे से रसमग्न; यदि एक में शब्द-सौष्ठव है तो दूसरे में भाव-सौष्ठव। अपने-अपने ढङ्ग की दोनों उत्कृष्ट रचनाएँ हैं। इसलिए इनके परख की कसौटी भी विभिन्न प्रकार की होनी चाहिए।

हिन्दी-संसार के लिए ये चौपदे बिलकुल नई चीज़ हैं। भाषा की दृष्टि से तो इनका विशेष स्थान है ही, साहित्य में भी इनका विशिष्ट स्थान है। पद्य-साहित्य के एक हज़ार वर्षों के इतिहास में मुहावरों में कविता करने का किसी ने साहस ही नहीं किया। ऐसा साहस वे ही कर सकते हैं, जिनका मुहावरों पर अधिकार है। उपाध्याय जी इस साहस के अधिकारी हैं। आपने अपनी अपूर्व प्रतिभा के प्रसाद से अपने को भाषा की बेड़ियों

में जकड़ कर उसे ही सम्भव कर दिखाया है, जिसे लोग असम्भव समझते थे। नीचे इनके चौपदों के कुछ नमूने दिए जाते हैं। यों तो सभी चौपदे अपने-अपने ढङ्ग के निराले हैं, परन्तु सबकी अपनी-अपनी विभिन्न रुचि है, अतः हमें जो सबसे प्रिय हैं, उन्हीं में से कुछ दिए जाते हैं:—

तैरते हैं उमङ्ग लहरों में।
चाव से लाड़ साथ लड़ लड़के॥
लाभ हैं ले रहे लड़कपन का।
हाथ औ पाँव फेंकते लड़के॥

लड़कों का 'हाथ-पाँव फेंकना' नित्यप्रति की एक साधारण घटना है। छोटे-छोटे सभी बच्चे माँ की गोद में, बिछौने पर या गो-कार्ट (Go-Cart) में हाथ-पाँव फेंकते दिखाई देते हैं। मनोविज्ञान-वेत्ताओं ने इस घटना पर चाहे भले ही विचार किया हो और इसके कारणों का भी उल्लेख किया हो, परन्तु हिन्दी-भाषा के किसी कवि की दृष्टि इस 'तुच्छ घटना' में नहीं रमी। उपाध्याय जी ने इस चौपदे में इसी तुच्छ घटना पर बड़ी ही मार्मिकता और सहृदयता के साथ विचार किया है। लड़के हाथ-पाँव क्यों फेंकते हैं? इसका उत्तर उपाध्याय जी ने चौपदे के ऊपर वाले तीन पदों में दिया है। उत्तर बहुत ही स्वाभाविक, युक्तिसङ्गत एवं मर्मस्पर्शी है। तैरने में ही हाथ-पाँव दोनों फेंकने की आवश्यकता पड़ती है। लड़के हाथ-पाँव दोनों फेंक रहे हैं, अतः ये भी तैर रहे हैं—तैराक हैं। तैराक के लिए किसी नदी या जलाशय की आवश्यकता पड़ती है। बालक उमङ्ग के आप्लावित प्रवाह में तैर रहे हैं—जहाँ हर घड़ी लोल लहरों से सामना है। मनोवेगों का रूप सदा स्थायी नहीं रहता। उद्बोधक की मात्रा के अनुसार ही इनकी मात्रा घटती-बढ़ती रहती है। ऐसी परिस्थिति में लहरों का उठना स्वाभाविक ही है। जल में भी वायु के वेग की तीव्रता के कारण ही लहरें उठती हैं। तरङ्गित जल-प्रवाह में तैराकों को लहरों से सामना करना पड़ता है, जिसे लहरों से लड़ना कहते हैं। लहरों में तैरना बहुत ही कष्टसाध्य है, परन्तु तैराक लोग अपना कौशल दिखलाने के लिए ऐसा करते हैं। उन्हें इसके लिए कोई प्रेरित नहीं करता। लड़के भी 'चाव' से लाड़ की लहरों से लड़ रहे हैं और अपना कौशल माता-पिता को दिखला रहे हैं। चौपदे में लकार और ड़कार का बाहुल्य होते हुए भी प्रवाह है। बल्कि इन लकार और ड़कारों के कारण नाम-सौन्दर्य आ गया है।

दूध छाती में भरा, भर बह चला।
आँख बालक ओर माँ की जब फिरी॥
गङ्गधारा शम्भु के शिर से बही।
दूध की धारा किसी गिरि से गिरी॥

संसार में एक माँ का प्रेम ही निस्स्वार्थ कहा जाता है। माँ के इस प्रेम का वर्णन प्रायः सभी कवियों ने किया है। उपाध्याय जी ने भी प्रेम के उसी रूप को लिया है जिसे औरों ने। परन्तु इनकी उक्ति अछूती और अनूठी है। माँ के स्तनों की उपमा के लिए कवियों ने क्या छोड़ रक्खा है? परन्तु किसी की भी पहुँच 'अमृत-घट' से आगे नहीं। बहुत से ज़बाँदानी का दावा रखने वाले कवि तो 'दूध के दो घड़े' ही से वापस लौट आए हैं। परन्तु उपाध्याय जी अपनी अपूर्व प्रतिभा के प्रसाद से बहुत आगे बढ़ गए हैं। 'गङ्ग-धारा शम्भु के शिर से बही; दूध की धारा किसी गिरि से गिरी' में आपने अपने 'कवि अनूठे कलाम के बल से, हैं बड़ा ही कमाल कर देते। बेधने के लिए कलेजों को, हैं कलेजा निकाल धर देते। हैं निराली निपट अछूती जो, हैं वही सूझ काम में लाते। कम नहीं है कमाल कवियों में, हैं कलेजा निकाल दिखलाते।' इन उक्तियों को सार्थक कर दिखलाया है। 'गिरि' से दूध की धारा बहते किसी ने सुना भी न होगा, परन्तु उपाध्याय जी ने अपनी प्रतिभा के बल से दूध की धारा बहाई है, जो परम स्वाभाविक एवं हृदय-स्पर्शी है। 'शम्भु के शिर की धारा' और 'गिरि के दूध की धारा' में साम्य है। दोनों का प्रवाह दूसरे के हित के लिए है। धारा शब्द ही निस्स्वार्थता का व्यञ्जक है।

भौं सिकोड़ी बके झके, बहके।
बन बिगड़ लड़ पड़े अकड़े॥
लोक के नाथ सामने तेरे।
कान हमने कभी नहीं पकड़े॥

मनुष्य संसार में सब कुछ करता है, परन्तु घट-घट अन्तर्यामी परमात्मा के सामने अपनी भूल नहीं स्वीकार करता। अज्ञानता के कारण वह अपने को परमात्मा से]

भी बड़ा समझता है। 'लोक के नाथ सामने तेरे, कान हमने कभी नहीं पकड़े' में उपाध्याय जी ने जिस भावुकता का परिचय दिया है, वह अन्य कहीं सम्भव नहीं। बहुत से सन्त कवियों ने परमात्मा में पितृत्व और मातृत्व का आरोप करके अपने को बालक के रूप में माना है। परन्तु 'कान हमने कभी नहीं पकड़े' से जिस भाव की व्यञ्जना होती है, वह अछूता है। सहृदयता की यहाँ पराकाष्ठा है। बालक के भूल-चूक करने पर माता-पिता उसे कान पकड़ने के लिए आदेश करते हैं—बालक आज्ञा का पालन करता है—माता-पिता क्षमा कर देते हैं। अदृष्ट रूप से परमात्मा भी हमें हर घड़ी आदेश करता है, परन्तु हम उसकी अवहेलना करते हैं। चौपदे में मुहावरों की भरमार होते हुए भी कवित्व-शक्ति को व्याघात नहीं पहुँचने पाया है। अलङ्कार-विधान की दृष्टि से भी चौपदे सर्वोत्कृष्ट हैं। 'लड़ पड़े अड़े अकड़े' में बड़ी ही सजीवता है। इनकी ध्वनि द्वारा सारी घटना का दृश्य सामने उपस्थित हो जाता है।

हो कहाँ पर झलक नहीं जाते।
पर हमें तो दरस हुआ सपना॥
कब हुआ सामना नहीं, पर हम।
कर सके सामने न मुँह अपना॥

सृष्टि के सारे पदार्थों में हर घड़ी परमात्मा की झलक मिलती रहती है, परन्तु अहं भाव के कारण मनुष्य को उसका आभास नहीं मिलता। जब तक हृदय अन्धकार से भरा है—चित्त पर अज्ञान का आवरण है, तभी तक मनुष्य अपने को सब पदार्थों से अलग समझता है। हृदय का अन्धकार नष्ट होते ही—चित्त का अज्ञानावरण दूर हटते ही, वह अपने को उस अव्यक्त सत्ता का अंश समझने लगता है, जिसका व्यक्त रूप प्रकृति है, जिसकी विभूति चारों ओर फैली हुई है। अपनी व्यक्त-सत्ता को प्रकृति की व्यक्त सत्ता में लय कर देने ही में जीवन की सार्थकता है। परमात्मा का यही आदेश है। जब तक मनुष्य ऐसा करने में समर्थ नहीं होता तब तक परमात्मा की दृष्टि में वह दोषी है। दोषी मालिक के सामने मुँह कैसे कर सकता है? 'कब हुआ सामना नहीं, पर हम; कर सके सामने न मुँह अपना।' जब तक हृदय भेद-भावों से भरा है, तब तक मुँह कलङ्कित है—कलङ्कित मुँह परमात्मा के सामने कैसे करें? 'मुँह सामने न कर सके' व्यथित हृदय की उसास है। 'सामना नहीं हुआ' 'सामने मुँह न कर सके' इन मुहावरों के प्रयोग से भावों में तीव्रता आ गई है। परिधान और भाव दोनों उत्तम हैं।

हों भले, हों सब तरह के सुख हमें।
एक भी साँसत न दुख में पड़ सहें॥
चाह है, लाली बनी मुँह की रहे।
लाल तलवों से लगी आँखें रहें॥

चौपदे का भाव बहुत ही पुराना है। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक प्रायः सभी कवियों ने इस भाव की अभिव्यक्ति अपने-अपने छन्दों में की है; परन्तु मुहावरों के प्रयोग से जो चमत्कार उपाध्याय जी के चौपदे में आ गया है, वह अन्य कहीं देखने को नहीं मिलता। सड़े हुए भाव में ज़िन्दादिली आ गई है। यही तो प्रतिभा है। 'चाह है, लाली बनी मुँह की रहे। लाल तलवों से लगी आँखें रहें।' इन पदों को सुनते ही सुनने वाले के मुँह से अचानक वाह-वाह निकल जाता है। दोनों पदों में बड़ा ही गहरा सम्बन्ध है—एक के बिना दूसरे का अस्तित्व ही नहीं। लाल तलवों से जब तक आँखें लगी रहें, तभी तक मुँह की लाली बनी रह सकती है। इन दोनों मुहावरों के प्रयोग द्वारा उपाध्याय जी ने कमाल कर दिखाया है।

कहाँ तक उदाहरण दिए जायँ। सहृदय कविता-प्रेमी मात्र इस बात को स्वीकार करेंगे कि अपने चौपदों में मुहावरों का प्रयोग करके कवि ने अपने भाषा-सम्बन्धी असाधारण अधिकार की ही अभिव्यक्ति नहीं की है, वरन् कविता में भी एक विचित्र चमत्कार भर दिया है। उपाध्याय जी के चौपदे हिन्दी के अमूल्य रत्न हैं।

समाजगत यूरोपीय राजनीतिक सिद्धान्त

[श्री० शङ्करदयालु श्रीवास्तव्य, एम० ए०]

यूरोप की इतिहास-प्रसिद्ध औद्योगिक क्रान्ति, सब से पहले इङ्गलैण्ड में अट्ठारहवीं शताब्दी के चतुर्थ चरण में, प्रारम्भ हुई थी और उन्नीसवीं शताब्दी के तृतीय चरण के अन्त तक लगभग समस्त महाद्वीप में उसका प्रसार हो चुका था। विविध वैज्ञानिक अनुसन्धानों के सुदृढ़ आधार पर ही उक्त क्रान्ति का विजय-वैभव अवलम्बित था। वाष्प-बल तथा विद्युत्शक्ति के प्रचुर प्रयोग द्वारा दैनिक व्यवहारोपयोगी अनेक प्रकार की वस्तुओं की उत्पादन-गति अत्यधिक बढ़ गई। भिन्न-भिन्न देशों में विविध प्रकार के यन्त्रों का प्रचार बढ़ गया और स्थान-स्थान पर बड़े-बड़े नगरों का प्रादुर्भाव हुआ। ये नगर यान्त्रिक बल पर अवलम्बित औद्योगिक कार्य-कलापों के केन्द्र बन गए और बहुसंख्यक दीन ग्रामीण स्त्री-पुरुष और बालक-बालिकाएँ जीविकोपार्जन के लिए वहाँ आकर बड़े-बड़े कारख़ानों में कार्य करने लगे। कारख़ानों के स्वामी उनके परिश्रम से अतुल लाभ उठाने लगे, किन्तु उन श्रमिकों की अवस्था अत्यन्त शोचनीय हो गई। वे दिन-रात कठिन परिश्रम करते थे, तथापि पारिश्रमिक रूप से जो कुछ वे पाते थे, उससे वे सुखपूर्वक अपना निर्वाह नहीं कर सकते थे। इसके अतिरिक्त उन श्रमिकों के रहने का प्रबन्ध भी सन्तोषजनक न था। दिन भर गैस तथा धुएँ से व्याप्त विषाक्त वायुमण्डल में कठिन परिश्रम करने के उपरान्त जब वे कुछ घण्टे भोजन तथा विश्राम करने के लिए अवकाश पाते थे, तब भी उन्हें स्वच्छ जल-वायु नहीं प्राप्त होता था। उनके रहने के लिए छोटी-छोटी सङ्कीर्ण एवं अन्धकारमय कोठरियाँ बनी रहती थीं। इस प्रकार दिन-रात अस्वास्थ्यकर परिस्थितियों में रहने के कारण उनका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। उनकी चिकित्सा के लिए भी कोई सन्तोषजनक व्यवस्था नहीं होती थी और न उनके बालक-बालिकाओं की शिक्षा के लिए ही कोई सुविधा होती थी। यही नहीं, अनेक विश्वसनीय लेखकों के लेखों से पता चलता है कि दस-दस और ग्यारह-ग्यारह वर्ष के बालकों को भी कारख़ानों में काम करने के लिए रात के ३-४ बजे ही जगा दिया जाता था और उधर रात के ११-१२ बजे तक उनसे काम लिया जाता था। बीच में केवल घण्टे-आध घण्टे के लिए उन्हें अवकाश मिलता था। ४-४ वर्ष के बच्चों से कभी-कभी १२-१२ घण्टे तक काम लिया जाता था। इसी प्रकार स्त्रियों से भी निर्दयतापूर्वक कठिन परिश्रम कराया जाता था और उन पर भाँति-भाँति के अत्याचार होते थे। परन्तु इतना परिश्रम करके भी श्रमिकों को सुख नहीं मिलता था। उन्हें इतना पारिश्रमिक भी नहीं मिलता था कि वे अपने मनोविनोद का कुछ सामान कर सकें अथवा अपनी शारीरिक तथा मानसिक उन्नति के लिए कुछ साधन प्रस्तुत करें।

पूँजीपतियों की इस धन-लोलुपता तथा श्रमिकों की भीषण शोचनीय अवस्था को देख कर लोक-हितैषी व्यक्तियों तथा समाज-सुधारकों का हृदय द्रवित हो उठा। उन्होंने पूँजीपतियों तथा कारख़ानों के मालिकों के विरुद्ध आवाज़ उठाई। श्रमिक-दल की दशा सुधारने के लिए विचारशीलों ने आन्दोलन खड़ा किया और उसका यह परिणाम हुआ कि श्रमिकों की शोचनीय अवस्था का प्रतिकार करने के लिए कई क़ानून बने। किन्तु इससे भी पूँजीपतियों के अत्याचार बन्द नहीं हुए और न श्रमिकों की दशा ही सन्तोषजनक हो सकी। कारख़ानों के मालिकों और मज़दूरों में मनोमालिन्य और असन्तोष बढ़ता गया। पूँजीवाद तथा प्रचलित सामाजिक एवं राजनीतिक प्रणाली के प्रति बहुत से विचारशील लोगों में घृणा तथा विरक्ति के प्रबल भाव जाग्रत हो उठे। इन्हीं में से कतिपय विद्वानों ने ग्रन्थ-रूप में

अपने विचारों को व्यक्त किया और अपने अनुभव तथा कल्पना के द्वारा एक आदर्श समाज का रेखा-चित्र अङ्कित करना प्रारम्भ किया, जिसमें उन्होंने यह दिखाने का प्रयत्न किया कि प्रस्तावित सामाजिक सङ्गठन के अन्तर्गत सब लोग किस प्रकार सुख-शान्ति-पूर्वक रह सकते हैं और वर्तमान विभिन्नता तथा असन्तोष सोन्मूल नष्ट हो सकता है। इङ्गलैण्ड में ओवेन तथा फ्रान्स में चार्ल्स फ़ोरियर और सेन्ट साइमन ने ऐसे ही आदर्श समाजों की कल्पना की है। इन लोगों ने बड़े ओजस्वी शब्दों में युक्तिपूर्वक यह सिद्ध करने की चेष्टा की कि भू-स्वामियों और पूँजीपतियों को इस बात का कोई न्यायानुकूल अधिकार नहीं है कि वे बड़े-बड़े भूखण्डों तथा अतुल धन-सम्पत्तियों पर अपना एकाधिपत्य स्थापित रक्खें और देश-समाज के बहुसंख्यक लोग विवशता-पूर्वक क्षुधा-ज्वाला में जल कर अपना प्राणोत्सर्ग करें। उन्होंने यह आयोजना उपस्थित की कि देश की सम्पूर्ण जन-संख्या को छोटे-छोटे भागों में विभक्त कर दिया जाय और प्रत्येक भाग पारस्परिक सहयोग द्वारा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करे। एक भाग के सब लोग सम्मिलित उद्योग से जीविकोपार्जन सम्बन्धी सब कार्य सम्पादित करें और सब लोग समान रूप से अपनी आवश्यकतानुसार उस अर्जित वृत्ति का उपभोग करें। किञ्चित् आगे चल कर हम देखेंगे कि ऐसे विचारों ही से साम्यवाद आदि सिद्धान्तों का आविर्भाव हुआ। किन्तु सेन्ट साइमन प्रभृत्ति राजनीतिक दार्शनिकों की आदर्श समाज-सम्बन्धी कल्पना कार्यरूप में परिणत न हो सकी। परवर्ती विद्वान विचारकों ने भी प्रचलित सामाजिक सङ्गठन का सर्वनाश कर उसके स्थान पर एक आदर्श नवीन सङ्गठित समाज की स्थापना करने की कल्पना की। उसके साथ-साथ उन्होंने अपने-अपने सुदृढ़ सिद्धान्त भी स्थिर किए और सविस्तर रूप से यह बतलाया कि किन उपायों का अवलम्बन कर, नए समाज की सृष्टि की जा सकती है। इन विद्वानों की विचार-धारा ने यूरोपीय समाज में एक व्यापक क्रान्ति उत्पन्न कर दी। इसी के परिणाम-स्वरूप आज हम देखते हैं कि यूरोपीय समाज के अन्दर कई सङ्गठित दल आविर्भूत हो गए हैं। जिनका उद्देश्य है कि समाज और राज्य-प्रणाली में क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित करें और उस नवीन समाज की सृष्टि करें, जिसके अन्तर्गत समस्त जन-समाज सुख तथा शान्ति-पूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर सके। अब हम संक्षेप में यह बताने की चेष्टा करेंगे कि ये विभिन्न दल कौन-कौन हैं, उनके क्या सिद्धान्त हैं और किस प्रकार वे अपने उद्देश्य को सिद्ध करना चाहते हैं।

कार्ल मार्क्स और उनके सिद्धान्त

साम्यवाद आदि कई सिद्धान्तों के प्रमुख जन्मदाता जर्मनी के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी विद्वान कार्ल मार्क्स हैं, जिनका जन्म १८१८ ई० में राइन प्रान्त के अन्दर हुआ था। १८४२ ई० में वे एक पत्र के सम्पादक हुए और इस प्रकार उन्हें अपना विचार जनता के सन्मुख रखने का अच्छा साधन प्राप्त हो गया। किन्तु अधिकारीवर्ग इनकी निर्भीक आलोचना तथा क्रान्तिकारी विचारों को सहन नहीं कर सका। फलतः मार्क्स तथा उनके पत्र पर अधिकारियों का कोप-पात हुआ और उन्हें पेरिस में आश्रय लेना पड़ा। यहाँ एक अङ्गरेज़ क्रान्तिकारी विद्वान से उनकी घनिष्टता हो गई और उनकी यह अधिक मित्रता जीवन पर्यन्त बनी रही। पेरिस के अधिकारियों ने भी उन्हें निर्वासन का दण्ड दिया। इन्जेल के साथ मार्क्स ब्रूसेल चले गए। पैरिस-स्थित जर्मन कम्यूनिस्ट लीग की ओर से आमन्त्रित किए जाने पर १८४८ ई० में वे फिर पेरिस आए और यहीं इन्जेल के सहयोग से एक मसविदा तैयार कर घोषित किया, जो कि कम्यूनिस्ट मैनीफ़ेस्टो (Communist Manifesto) के नाम से प्रसिद्ध है। फिर क्रमशः पैरिस, बेल्जियम तथा जर्मनी से निर्वासित होकर इङ्गलैण्ड का आश्रय ग्रहण किया और वहीं १८८३ ई० में उनका नश्वर शरीर पञ्चत्व को प्राप्त हुआ।

कार्ल मार्क्स के तीन प्रमुख सिद्धान्त हैं :—

(१) इतिहास की भौतिक व्याख्या, (२) पूँजी का उत्तरोत्तर न्यूनातिन्यून व्यक्तियों में सीमित होते जाना और (३) वर्गीय युद्ध। सबसे पहले मार्क्स ने इस तथ्य का अनुसन्धान किया कि किस प्रकार समाज का सङ्गठन इस रूप में हो गया कि जिसके कारण कुछ इने-गिने व्यक्ति देश का सब धन समेटते जा रहे हैं और बहुसंख्यक लोग धनहीन होते जा रहे हैं। अपने

अनुसन्धान तथा इतिहासानुशीलन से उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि आर्थिक कारणों से ही प्रभावान्वित होकर ऐतिहासिक घटनाएँ अपना रूप ग्रहण करती हैं। औद्योगिक क्रान्ति के प्रभाव से ही सारा समाज दो वर्गों में विभक्त हो गया है। एक ओर पूँजीपति-दल है और दूसरी ओर श्रमिक-वर्ग। संसार के इतिहास में आदि-काल से समाज के अन्तर्गत दो वर्ग होते आए हैं और प्रत्येक युग में हीन वर्ग वालों ने सङ्गठित होकर समाज पर प्रभुत्व रखने वाले उच्च वर्ग के लोगों को पराजित तथा अधिकारच्युत किया है। आधुनिक इतिहास में भी वह समय आ रहा है, जब कि श्रमिक-वर्ग सङ्गठित होकर पूँजी वाले उच्च वर्ग का सर्वनाश करेगा और सब अधिकार उससे छीन लेगा। इसी सिद्धान्त को इतिहास की भौतिक व्याख्या कहते हैं।

उपर्युक्त दूसरा सिद्धान्त है पूँजी के सम्बन्ध में। मार्क्स ने अपने अनुभव एवं अनुमान से यह सिद्धान्त स्थिर किया है कि देश की समस्त पूँजी उत्तरोत्तर अल्पातिअल्प-संख्यक व्यक्तियों के हाथों में एकत्रीभूत होती जायगी और इस प्रकार पूँजीपतियों की संख्या कम होती जायगी और उनके सामूहिक बल का क्रमशः ह्रास होता जायगा। इसके विपरीत पूँजीहीन दीन श्रमिकों का दल प्रबल और सुसङ्गठित होता जायगा। अन्त में एक समय ऐसा आएगा, जब सङ्गठित श्रमिक-वर्ग पूँजीपतियों को पराजित कर सारा अधिकार अपने हाथों में ले लेगा।

तीसरे सिद्धान्त—वर्गीय युद्ध का अभिप्राय यह है कि श्रमिकों को अपने कठिन परिश्रम का उचित पारिश्रमिक नहीं प्राप्त होता। उनके श्रम के द्वारा उत्पन्न सारे लाभ का उपभोग कारख़ानों के मालिक करते हैं। पूँजीपतियों की यह अनधिकार चेष्टा सर्वथा निन्दनीय है। फलतः श्रमिकों को अपना सङ्गठन करना चाहिए। यह सङ्गठन प्रथमतः स्थानीय, अनन्तर राष्ट्रीय और तदनन्तर अन्तर्राष्ट्रीय रूप धारण करेगा। अपने सुव्यवस्थित सङ्गठन द्वारा प्रबल शक्ति प्राप्त कर वे पूँजीपतियों के विरुद्ध क्रान्ति मचाएँगे और उनके हाथ से सब अधिकार छीन लेंगे। उपरोक्त कथन के अनुसार पूँजीपति-वर्ग शनैः-शनैः स्वयं क्षीण होता जायगा और फलतः उन्हें पराजित करने में श्रमिकों को विशेष कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ेगा। यही वर्गीय युद्ध का सिद्धान्त है।

इन सिद्धान्तों ने श्रमिक-वर्ग के ऊपर अपना विशेष प्रभाव डाला और उनके सङ्गठन में पर्याप्त योग प्रदान किया। कार्ल मार्क्स के अनुयायियों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। उनके बताए हुए उपायों का अवलम्बन कर बहुत से लोग एक नवीन समाज की सृष्टि के लिए प्रयत्न करने लगे। कुछ काल के उपरान्त विभिन्न मत के लोगों ने मार्क्स के कथनों और सिद्धान्तों की विभिन्न व्याख्याएँ कीं, फलतः यूरोपीय समाज के अन्तर्गत कई विभिन्न दल उत्पन्न हो गए। किन्तु उन सबका उद्देश्य यही है कि वर्तमान असन्तोषप्रद सामाजिक व्यवस्था में घोर परिवर्तन उपस्थित किए जाएँ अथवा आवश्यकतानुसार इसका ध्वंस कर एक नए समाज की सृष्टि की जाय, जिसके अन्दर सब लोग पारस्परिक सहयोगपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करें और जिसमें आर्थिक असमानता का भीषण रूप न दिखाई पड़े। कुछ लोगों का विश्वास है कि नवीन समाज का विकास क्रम-क्रम से होगा, क्रान्ति करने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु इसके विपरीत कुछ दल ऐसे हैं, जिनका विश्वास है कि सशस्त्र क्रान्ति तथा बल-प्रयोग द्वारा ही प्रचलित शोचनीय अवस्था का अन्त हो सकता है। नए समाज की सृष्टि में यथासम्भव अत्यन्त शीघ्रता करनी चाहिए, नहीं तो श्रमिकों की अवस्था उत्तरोत्तर और भी अधिक भयङ्कर हो जायगी और बहुसंख्यक लोग पूँजीपति-वर्ग के उत्पीड़नों से पीड़ित हो क्षुधा-ज्वाला में भस्मसात् हो जाएँगे।

साम्यवाद (Collectivist or State Socialism)

साम्यवादी एक ऐसे समाज का सङ्गठन करना चाहते हैं, जिसके अन्दर आर्थिक असमानता न रह जाय। देश के आर्थिक उपार्जन पर सारे समाज का सामुदायिक स्वत्व स्थापित हो। साम्यवादी ऐसा सामाजिक सङ्गठन तथा राज्य-व्यवस्था चाहते हैं, जिसमें भूमि, पूँजी एवं उद्योग-धन्धों पर व्यक्तिगत अधिकार न रहे, वरन् राज्य के द्वारा समस्त जनता का उन पर सामूहिक प्रभुत्व स्थापित रहे। रेल-तार, जल, प्रकाश तथा कल-कारख़ानों का प्रबन्ध और नाना प्रकार की वस्तुओं के उत्पादन सम्बन्धी प्रभूत साधन राष्ट्रीय सरकार के हाथ में न्यस्त रहें। इनसे

जो कुछ लाभ हो वह सर्वसाधारण के हित में व्यय किया जाय। इस प्रकार साम्यवादियों की यह धारणा है कि राज्य के कार्य-क्षेत्र को विस्तृत तथा व्यापक बना देने से देश भर में आर्थिक समानता स्थापित हो सकती है और व्यक्तिगत पूँजीवाद-प्रथा का अन्त हो सकता है। किन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि साम्यवादी आधुनिक साम्राज्यवादी राज्य का आश्रय नहीं ग्रहण करना चाहते। वे इस राज्य की बड़ी कड़ी आलोचना करते हैं। मार्क्स का कथन है कि आधुनिक शासन-तन्त्र के अन्तर्गत जो कार्यकारिणी शाखा है, वह धनिकों, पूँजीपतियों तथा भूस्वामियों के अधिकार-संरक्षण का काम करती है और उन्हीं के हितों को दृष्टि में रख कर शासन-प्रबन्ध का सञ्चालन करती है। साम्यवादी ऐसी शासन-प्रणाली को सर्वथा निन्दनीय समझते हैं और उनकी अवहेलना करते हैं। अपने उद्देश्यों की सिद्धि के लिए वे शुद्ध लोकसत्तात्मक राज्य स्थापित करना चाहते हैं। और ऐसे ही सुव्यवस्थित राज्य की ओर निर्देश करके वे यह कहते हैं कि देश के समस्त उद्योग-धन्धों का प्रबन्ध राज्य की ओर से होना चाहिए।

एक स्थान पर साम्यवाद की परिभाषा इस प्रकार की गई है—साम्यवाद वह नीति तथा सिद्धान्त है, जिसका उद्देश्य एक केन्द्रीय लोकसत्तात्मक राज्य के द्वारा देश के प्रचलित आर्थिक वितरण को अधिक सन्तोषप्रद बनाना और साथ ही यथासम्भव धन के उत्पादन में वृद्धि करना है।* धन के और अधिक सुन्दर वितरण करने तथा सर्व-साधारण के सामाजिक जीवन को राज्य के द्वारा सञ्चालित करने के लिए साम्यवादियों ने निम्न-लिखित उपायों के अवलम्बन करने का प्रस्ताव किया है :—(क) उत्पादन के साधनों पर से व्यक्तिगत स्वामित्व की प्रथा लुप्त कर दी जाय और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए देश के अन्दर जितने महत्वपूर्ण उद्योग-धन्धे, नौकरियाँ तथा व्यवसाय हैं, वे जनता के सामुदायिक प्रभुत्व तथा अधिकार में न्यस्त किए जायँ। (ख) सम्पूर्ण समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के ही अभिप्राय से उद्योग-धन्धों का सञ्चालन किया जाय। व्यक्तिगत लाभ के लिए उनका सञ्चालन न किया जाय। किन-किन वस्तुओं का उत्पादन किया जाय और कितने परिमाण में—ये सब बातें भी सामाजिक आवश्यकताओं के अनुसार ही निश्चय की जानी चाहिए। दूसरे देशों में उन्हें बेच कर लाभ पैदा करने की आशा से सामाजिक आवश्यकताओं के अतिरिक्त वस्तुओं का उत्पादन न करना चाहिए। (ग) ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करनी चाहिए जिससे कि श्रमिक लोग सामाजिक सेवा के भावों से प्रेरित होकर धनोत्पादन का कार्य करें, व्यक्तिगत लाभ की आशा से अनुप्राणित होकर कार्य करने का अवसर न प्रदान किया जाय।

ब्रिटिश श्रमिक-दल ने अपनी नीति को कार्यान्वित करने के लिए १९१९ ई० में यह प्रस्ताव किया था कि यह निश्चय करना चाहिए कि एक श्रमिक को न्यूनातिन्यून कितना पारिश्रमिक देना चाहिए, कितने में उसका सुखपूर्वक निर्वाह हो सकेगा। इस निश्चय को देश भर में कार्यान्वित करना चाहिए। प्रत्येक मनुष्य की नैतिक, मानसिक तथा शारीरिक उन्नति के लिए समुचित साधन प्रस्तुत होना चाहिए। इस दृष्टि से प्रत्येक मनुष्य को राज्य की ओर से काम मिलना चाहिए, ताकि वह निर्धारित न्यूनतम पारिश्रमिक पाकर अपनी साधारण आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। साथ ही साथ यह भी निश्चित हुआ कि सप्ताह भर में किसी भी श्रमिक से ४८ घण्टे से अधिक कार्य न लिया जाय। दूसरा प्रस्ताव यह था कि उद्योग-धन्धों पर लोकसत्ता का स्वामित्व स्थापित किया जाय। इस सम्बन्ध में उन्होंने यह भी स्थिर किया कि रेल, खान, नहर तथा बिजली के व्यवसायों का शीघ्र राष्ट्रीयकरण हो जाय। समुचित क्षतिपूर्ति करके ज्वाइण्ट स्टॉक कम्पनी तथा पूँजीवाद का क्रमशः निराकरण किया जाय और जीवन-बीमा कम्पनियों को भी सरकार द्वारा सामुदायिक अधिकार के अन्दर लाया जाय। तीसरा प्रस्ताव यह था कि देश के आर्थिक विभाग में घोर परिवर्तन किया जाय और उत्पादक साधनों के राष्ट्रीयकरण से जो कुछ लाभ हो उसे सर्वसाधारण के हित में लगाया जाय।

व्यक्तिवाद का समर्थन करने वाले लोगों ने साम्यवाद की नीति का घोर विरोध किया है। क्योंकि इसके अन्तर्गत राज्य ही सर्वेसर्वा हो जाता है, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को इसमें कोई स्थान ही नहीं प्राप्त होता।

---

* इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका।

राज्य का कार्य-क्षेत्र इतना विस्तृत तथा व्यापक बना दिया गया है कि वह अनावश्यक रूप से व्यक्तिगत मामलों में भी हस्तक्षेप कर सकता है। इसके उत्तर में साम्यवादियों का कथन है कि हम वैयक्तिक स्वतन्त्रता को किसी प्रकार का आघात नहीं पहुँचाते, वरन् उसके विकास के लिए अनुकूल परिस्थिति उपस्थित करते हैं। हम प्रत्येक व्यक्ति को आर्थिक चिन्ता से सर्वथा मुक्त करते हैं और इस प्रकार उसे शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक उन्नति करने का समुचित अवसर प्रदान करते हैं। सच्ची वैयक्तिक स्वतन्त्रता वही है, जिसके द्वारा मनुष्य अपने मानसिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों का विकास कर सके। वह स्वतन्त्रता किस काम की, जो मनुष्य को आर्थिक चिन्ता के जटिल बन्धन में बाँधे रहती है और उसे अपनी प्रसुप्त शक्तियों को पूर्णतया विकसित करने का सुअवसर नहीं देती। साम्यवादी कहते हैं कि वास्तव में आदर्श वैयक्तिक स्वतन्त्रता साम्यवाद के अन्तर्गत ही प्राप्त हो सकती है।

अराजकवाद (Anarchism)

साधारण लोकमत अराजकवाद का यथार्थ अभिप्राय नहीं समझता। साधारणतः उसका अर्थ सामाजिक उच्छृङ्खलता, मार-काट तथा अनुचित उत्पात का लगाया जाता है। लोग समझते हैं कि जो दूसरों पर बम फेंकता है वही अराजकतावादी है। किन्तु वास्तव में यह धारणा ठीक नहीं। इस तरह का प्रतिकूल अर्थ करना अराजकवाद के साथ घोर अन्याय करना है। प्रसिद्ध अङ्गरेज़ लेखक बर्ट्राण्ड रसेल का कथन है कि यदि बम फेंक कर दूसरों की हत्या करने वाला ही अराजकवादी है, तब तो लगभग सभी देशों की सरकारें भी अराजकवादी हैं, क्योंकि सरकारें भी तो बमों का उपयोग करती हैं और यदि अराजकवादी व्यक्ति एक बम का निर्माण करता है, तो सरकारें लाखों बमों का प्रयोग करती हैं और उनके द्वारा असंख्य निर्दोष स्त्री-पुरुषों का बध कराती हैं।

वास्तव में अराजकवाद का सिद्धान्त बलपूर्वक शासन करने के कार्य को घृणित तथा निन्दनीय समझता है। इस सिद्धान्त के एक प्रसिद्ध प्रवर्त्तक प्राउढन (Proudhon) का कथन है कि एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति पर शासन करना घोर अन्याय है। अराजकवाद सिद्धान्त के मूल प्रवर्त्तक मिशेल बकुनिन था, जिसका जन्म १८१४ ई० में रूस में हुआ था। मार्क्स की भाँति बकुनिन भी कई देश की सरकारों का कोप-भाजन बना और अनेक बार उसे कारागार का कठिन दण्ड भोगना पड़ा। यही नहीं, कई बार उसे प्राण-दण्ड की भी आज्ञा दी गई। किन्तु फिर भाग्यवश वह उससे मुक्त हो जाया करता था। उसके हाथ, पैर और गले में ज़ञ्जीरें भी डाली गई थीं। किन्तु जिन क्रान्तिकारी भावों को कुचलने के लिए ये सब अत्याचार उस पर किए गए थे, वे वैसे के वैसे ही बने रहे। प्रचलित राज्य-प्रणाली के प्रति जो द्वेषाग्नि उसके हृदय में उत्पन्न हुई थी वह अधिकारियों के अत्याचारों से और भी अधिक प्रज्वलित हो उठी।

बकुनिन ने मार्क्स की भाँति अपने सिद्धान्तों को पूर्णरूप से विकसित नहीं किया था और न उनकी विशद व्याख्या ही करने को उसे अवसर मिला था। उसकी मृत्यु (१८७६) के पश्चात् उसके सिद्धान्तों का रेखा-चित्र ही प्राप्त था। इस कमी की पूर्ति क्रोपोटकिन नामक एक दूसरे रूसी विद्वान ने की, जोकि उसका अनुयायी था। बकुनिन मार्क्स का समकालीन था और दोनों एक दूसरे से परिचित थे। बकुनिन मार्क्स के अतुल ज्ञान तथा उसकी विद्वत्ता पर मुग्ध था, किन्तु दोनों के सिद्धान्तों में मतभेद था। फलतः वे एक दूसरे के प्रबल विरोधी थे। अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक सङ्गठन के चौथे (१८६९ ई०) अधिवेशन के अवसर पर जर्मनी तथा इङ्गलैण्ड के प्रतिनिधियों ने मार्क्स का पक्ष ग्रहण किया और फ्रान्स, स्पेन, इटली तथा स्वीटज़रलैण्ड ने बकुनिन के पक्ष का समर्थन किया। मार्क्स नवीन समाज की सृष्टि में भी राज्य-सत्ता की आवश्यकता को स्वीकार करता था; यद्यपि उस राज्य को जैसा ऊपर बतलाया गया है, लोक-सत्ता के आधार पर सुसङ्गठित करना था। किन्तु बकुनिन राज्य-सत्ता का अति प्रबल विरोधी था। वह किसी प्रकार के भी राज्य को समाज में स्थान देने को तैयार नहीं था। यह विरोध इतना अधिक बढ़ा कि १८७२ ई० में हेग में होने वाले अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक सङ्गठन के अधिवेशन में उसे तथा उसके अनुयायियों को मार्क्स ने बाहर निकाल दिया। इस प्रकार बकुनिन ने स्वतन्त्र रूप से अलग होकर अपने सिद्धान्त का प्रवर्त्तन किया।

अराजकवादियों का कथन है कि समाज के अन्तर्गत किसी व्यक्ति के ऊपर किसी प्रकार का बल-प्रयोग न किया जाय। राज्य का आधार ही बल-प्रयोग है। फलतः वे राज्य को अपनी सामाजिक व्यवस्था में बिलकुल स्थान नहीं देते। वे चाहते हैं कि प्रचलित शासन-प्रणाली को सर्वथा नष्ट कर दिया जाय। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वे अपने समाज को अव्यवस्थित रखना चाहते हैं। उनका विश्वास है कि राज्य के बिना भी समाज सुव्यवस्थित रह सकता है। सामाजिक शान्ति-रक्षा के लिए शासन अथवा नियन्त्रण की आवश्यकता नहीं है। किसी व्यक्ति को किसी कार्य के लिए विवश नहीं किया जा सकता। समाज की सुव्यवस्था के लिए वर्तमान ढङ्ग के क़ानूनों की आवश्यकता नहीं है। कोई बहुसंख्यक दल अल्प-संख्यक दल के मत की अवहेलना कर, कोई कार्य सम्पादित नहीं कर सकता। प्रत्येक सामाजिक कार्य सर्व-सम्मति से ही हो सकेगा, मताधिक्य का प्रभुत्व समाज में नहीं स्थापित हो सकता, अराजकवाद के अन्दर सभी व्यक्ति पूर्ण रूप से स्वतन्त्र हैं। उन्हें पुलिस अथवा फ़ौजदारी क़ानूनों की कुछ भी आवश्यकता नहीं है, कारण यह कि ये सब बल-प्रयोग से काम लेते हैं। अराजकवादी के अनुसार वैयक्तिक स्वतन्त्रता ही सर्वश्रेष्ठ वस्तु है, इस पर किसी प्रकार का आघात नहीं पहुँचना चाहिए।

समाज के आर्थिक सङ्गठन के सम्बन्ध में अराजकवादियों का जो सिद्धान्त है, वह साम्यवादियों के सिद्धान्त से अनेक बातों में मिलता-जुलता है। दोनों दलों का इस विषय पर मतैक्य है कि समाज की भीषण आर्थिक असमानता को शीघ्र से शीघ्र लुप्त कर डालना चाहिए। समाज की पूँजी तथा भूमि पर समाज के सब व्यक्तियों का समान अधिकार होना चाहिए। देश के अन्दर विविध वस्तुओं के उत्पादन के जो साधन हैं, उन पर समस्त जनता का सामुदायिक स्वामित्व है—उन पर सब व्यक्तियों का समान अधिकार है। मज़दूरी की प्रणाली अराजकवाद के अन्दर नहीं रहेगी। प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छा से प्रेरित होकर स्वतः कार्य करेगा। पारिश्रमिक अथवा व्यक्तिगत लाभ की लालसा से वह काम नहीं करेगा। काम करने के लिए सबको बाध्य नहीं किया जायगा, अपितु सब अपनी इच्छा के अनुसार न्यूनाधिक कार्य सम्पादन करेंगे। अराजकवादियों का कथन है कि मनुष्य स्वभावतः कार्यशील है; स्वस्थावस्था में वह बेकार नहीं बैठा रह सकता। नवीन समाज के अन्तर्गत सब लोगों की रुचि कार्य करने की ओर स्वतः प्रवृत्त होगी। सामुदायिक उद्योग के परिणाम-स्वरूप समाज के अन्दर जितना धन उत्पादित होगा, वह समाज के सभी लोगों में समान अनुपात से वितरण कर दिया जायगा। इस बात में अराजकवादी साम्यवादियों से कुछ विभिन्न मत रखते हैं। साम्यवादी केवल उन्हीं लोगों को समाज के अर्जित धन में भाग लेने देंगे जो कार्य करने वाले हैं। काम न करने वालों को कुछ नहीं मिलेगा, हाँ सबको काम दिलाना राज्य का कर्तव्य होगा। अराजकवादी काम न करने वाले व्यक्तियों को भी कार्य करने वाले व्यक्तियों की भाँति समाज के सामूहिक धन का उपयोग करने देंगे। साम्यवादी की भाँति अराजकवादी भी इस सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं कि व्यक्तिगत पूँजीवाद अत्याचार की जननी है। किन्तु साम्यवादियों का कथन है कि यदि राज्य ही एकमात्र पूँजीपति बन जायगा तो उस पूँजी से सबको समान रूप से लाभ प्राप्त होगा। समाज की किसी श्रेणी पर पूँजी के द्वारा अत्याचार नहीं होने पावेगा। किन्तु अराजकवादियों को भय है कि यदि समस्त औद्योगिक धन्धों पर राज्य का अधिकार हो जायगा, तो व्यक्तिगत पूँजीपति की भाँति एक बड़े पूँजीपति की अवस्था में स्थित राज्य भी समाज के व्यक्तियों पर तरह-तरह के अत्याचार ढाएगा।

सिन्डिकलिज़्म (Syndicalism)

अराजकवाद की भाँति सिन्डिकलिज़्म का सिद्धान्त भी साम्यवाद की अपेक्षा अधिक उत्तेजक तथा क्रान्तिकारी है। मार्क्स के वर्गीय-युद्ध नामक सिद्धान्त पर यह बहुत अधिक ज़ोर देता है। इस मत का प्रधान केन्द्र फ़्रान्स है। अभी तक फ़्रान्स के बाहर इसका अधिक प्रभाव नहीं पड़ा है। यह मत मार्क्स के आदर्श-समाज तथा उनके बताए हुए साधनों की बड़ी कड़ी आलोचना करता है। सिन्डिकलिज़्म के अनुयायी भी अराजकवादियों की भाँति राज्य के अस्तित्व को मिटा देना चाहते हैं। परन्तु वे साम्यवादियों की उस नीति का घोर

विरोध करते हैं, जिसके आधार पर राज्य की बड़ी व्यवस्थापिका सभा में प्रतिनिधि भेजने के लिए श्रमिक-दल का सङ्गठन किया जाता है। उनका कथन है कि इस उपाय का आश्रय लेकर साम्यवादी श्रमिकों की शोचनीय अवस्था को कदापि दूर नहीं कर सकते। राज्य का सङ्गठन तो पूँजीपतियों की हित-रक्षा के लिए है, फिर उसका आश्रय लेकर पूँजीपतियों का विनाश वे कैसे कर सकते हैं?

सिन्डिकलिज़्म के विकास में एक विलक्षणता यह है कि वह एक प्रचलित सङ्गठन के द्वारा आविर्भूत हुआ है। उस सङ्गठन के द्वारा ही उपयुक्त विचारों तथा सिद्धान्तों का विकास हुआ है। किन्तु साम्यवाद तथा अराजकवाद के सम्बन्ध में यह बात नहीं है। पहले मार्क्स, इञ्जेल, बकुनिन एवं क्रोपोटकिन ने उन सिद्धान्तों को जन्म दिया था और उसके अनन्तर सङ्गठन की सृष्टि हुई। फ़्रान्स में औद्योगिक धन्धों का जो सुव्यवस्थित सङ्गठन है, उसके एक अङ्ग को सिन्डिका कहते हैं। उसी के आधार पर इस सिद्धान्त का नाम सिन्डिकलिज़्म पड़ा है।

सिन्डिकलिज़्म का सिद्धान्त है कि व्यक्तिगत पूँजी चोरी का माल है। पूँजीपतियों को कोई अधिकार नहीं कि देश का समस्त धन अपने पास बटोर कर रक्खें। वे इस प्रणाली को नष्ट करना चाहते हैं और इसके लिए ट्रेड-यूनियन सङ्गठन को एक अच्छा साधन समझते हैं। वास्तव में इस सङ्गठन के ही आधार पर इस मत के अनुयायी अपने नवीन समाज की सृष्टि करना चाहते हैं। महामति प्राउढन के विचारों ने फ़्रान्स की ट्रेड-यूनियन सङ्गठन पर अपना पर्याप्त प्रभाव डाला है। प्राउढन को ही इस मत के सिद्धान्तों का प्रमुख प्रवर्त्तक समझना चाहिए। सिन्डिकलिज़्म का मत है कि आर्थिक तथा राजनीतिक दोनों कार्य-क्षेत्रों में उपार्जनशील व्यक्तियों का ही सामुदायिक अधिकार रहे।

गण-साम्यवाद अथवा गिल्ड सोशेलिज़्म
(Guild-Socialism)

गण साम्यवाद न तो साम्यवादियों की भाँति राज्य के कार्यक्षेत्र को विस्तृत करना चाहता है और न अराजकवादियों अथवा सिन्डिकलिज़्म के अनुयायियों की भाँति उसका विनाश ही चाहता है। दोनों मतवादों में यह एक समझौता कराने का प्रयत्न करता है। गण-साम्यवाद का प्रधान केन्द्र इङ्गलैण्ड में है। साम्यवादी अपने समाज को उपभोक्ता (Consumer) के आधार पर सङ्गठित करना चाहते हैं और सिन्डिकलिज़्म सिद्धान्त के मानने वाले उत्पादक (Producer) थे। अपने समाज-सङ्गठन का आधार बनाना चाहते हैं, किन्तु गण-साम्यवादी उत्पादक और उपभोक्ता दोनों के आधार पर अपने समाज का सङ्गठन करना चाहते हैं। श्रमिक-दल व्यावसायिक संस्थाओं अथवा सङ्घों में सङ्गठित होकर उत्पादन-कार्य को अपने हाथ में लेंगे और उपभोक्ता समुदाय, जिसका प्रतिनिधित्व राज्य वहन करेगा, उत्पादन के साधनों पर अपना अधिकार रक्खेंगे। गण-साम्यवाद के सिद्धान्त बहुत स्पष्ट तथा युक्तिसङ्गत हैं और उसके अनुयायियों की संख्या भी पर्याप्त है। यह सिद्धान्त नरम दल वालों का है, जो किसी प्रकार के घोर आकस्मिक परिवर्तन, क्रान्ति तथा उत्पात को पसन्द नहीं करते।

राज्य के सम्बन्ध में गण-साम्यवादियों का मत है कि हमें उसका अस्तित्व न मिटाना चाहिए। आंशिक रूप से उसकी आवश्यकता रहेगी। किन्तु उसे इतना शक्तिशाली नहीं बनने देना होगा, जितना कि वह आज-कल है। वे राज्य को कोई आदर्श संस्था नहीं समझते। तथापि उपभोक्ता-समुदाय का प्रतिनिधित्व वहन करने के लिए उसकी कुछ आवश्यकता समझते हैं। उनका कथन है कि यदि देश के समस्त औद्योगिक धन्धों पर राज्य का एकछत्र अधिकार स्थापित हो जाएगा, तो लोक-सत्ता का अस्तित्व ही न रह जायगा और सरकार नौकरशाही का रूप धारण कर लेगी। उनके मतानुसार समस्त औद्योगिक धन्धों का एक विशद सामूहिक सङ्गठन होना चाहिए और उसके अन्तर्गत प्रत्येक व्यवसाय भी स्वतन्त्र रूप से अलग-अलग सङ्गठित हो। उद्योग-धन्धों के सम्बन्ध में जितनी बातें होंगी—मज़दूरी, मूल्य निश्चित करना, श्रम-दशा का सुधार करना आदि, वे सब स्वतन्त्र औद्योगिक सङ्गठनों द्वारा निश्चित की जाएँगी। उद्योग-धन्धे सम्बन्धी मामलों में राज्य का हस्तक्षेप नहीं होगा। राष्ट्रीय आय का हिसाब भी उक्त विशद सङ्गठन की ही ओर से रक्खा जाएगा और कुछ

धन राज्य को अपना कर्तव्य पालन के लिए दिया जायगा।

जैसा ऊपर कहा गया है, सिन्डिकलिज़्म के अनुयायी वर्गीय-युद्ध पर ही अधिक ज़ोर देते हैं और मार्क्स के सिद्धान्तों में से उसी को प्रमुख समझते हैं। उनका कथन है कि श्रमिक-वर्ग को अपने सङ्गठन-शक्ति की सहायता से पूँजीवादी सरकार का विनाश करना चाहिए। वे प्रत्यक्ष कार्यवाही अथवा डाइरेक्ट ऐक्शन (Direct action) की नीति व्यवहृत करते हैं। हड़ताल, बहिष्कार आदि से वे पूँजीपतियों की शक्ति को नष्ट करना चाहते हैं। उनका कथन है कि हड़ताल करने से कम से कम श्रमिकों में सङ्गठन होता जायगा। हड़ताल पूरी करनी चाहिए और विशेष कर ऐसे धन्धों में, जिसके बन्द होने से पूँजीपतियों की अधिक हानि हो। इस प्रकार धीरे-धीरे जब श्रमिकों का सङ्गठन सुदृढ़ होता जायगा और पूँजीपतियों की शक्ति उत्तरोत्तर क्षीण होती जायगी तब एक दिन बहुत व्यापक हड़ताल करके वस्तु-उत्पादन के साधनों को छीन लेंगे और पूँजीवाद की शक्ति को पूर्णतया विनष्ट कर देंगे।

इस वर्गीय-युद्ध तथा नवीन समाज की स्थापना के मध्यवर्ती समय में श्रमिक-वर्ग के लोग अपना आधिपत्य स्थापित रक्खेंगे। किन्तु जब नवीन समाज की सृष्टि हो जायगी तो समाज के अन्दर किसी प्रकार का आधिपत्य नहीं रह जायगा। विभिन्न व्यवसायों के आधार पर ही ऐसे समाज का सङ्गठन होगा और प्रत्येक व्यवसाय अलग-अलग सङ्गठित तथा स्वतन्त्र रहेंगे। किन्तु यह स्पष्ट नहीं है कि विभिन्न व्यावसायिक सङ्गठनों के बीच किस प्रकार शान्ति एवं सद्व्यवहार स्थापित होगा। यदि कोई झगड़ा उठा तो कौन उसे शान्त करेगा। हड़ताल और बहिष्कार के अतिरिक्त ये लोग अन्य उपायों का भी आश्रय लेते हैं, जैसे काम बिगाड़ देना, मशीन के पुर्ज़ों को तोड़ डालना, ग्राहकों को उत्पादित वस्तु के विषय में ठीक-ठीक सब अच्छाई बुराई बता देना और इतनी कठोरता के साथ नियमों का पालन करना, जिससे कि कोई काम ही न हो सके। इस नीति को वे सेबोटेज (Sabotage) कहते हैं। ये भी अपने सङ्गठन को अन्तर्राष्ट्रीय रूप देना चाहते हैं और किसी प्रकार की सैनिक-शक्ति की आवश्यकता नहीं समझते। सरकार को ये लोग सङ्गठित अराजकता समझते हैं। इन्होंने यह भी घोषित कर दिया है कि राज्यप्रणाली तथा पूँजीवाद का विनाश करने के लिए सशस्त्र युद्ध तथा क्रान्ति आवश्यक है।

इस प्रकार गण-साम्यवादी समाज के अन्तर्गत एक प्रकार की सङ्घ-व्यवस्था स्थापित करना चाहते हैं। एक ओर तो सारे आर्थिक तथा व्यावसायिक मामलों का सङ्गठन होगा और दूसरी ओर राज्य का राजनीतिक सङ्गठन स्थापित होगा। उच्च शिक्षा, कला-विज्ञान आदि विषयों की उन्नति तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के निरीक्षण का कार्य राज्य द्वारा सम्पादित होगा। राज्य तथा औद्योगिक सङ्घ दोनों का सङ्गठन देश-व्यापी होगा और दोनों एक दूसरे के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं कर सकेंगे। यदि संयोग-वश राज्य तथा औद्योगिक गण-सङ्घ में कोई झगड़ा उत्पन्न हुआ तो उसका निपटारा एक संयुक्त समिति के द्वारा किया जायगा, जिसमें दोनों दलों के प्रतिनिधि सम्मिलित रहेंगे। यह समिति एक स्थायी राष्ट्रीय संस्था होगी। जल तथा स्थल सेना का नियन्त्रण इसी के द्वारा होगा। इसी समिति अथवा दल के हाथ में समाज की चरम शक्ति (Sovereignty) निहित होगी। १९१५ ई० में इङ्गलैण्ड के अन्दर राष्ट्रीय गण-सङ्घ (The National Guild League) स्थापित हो चुका है और गण-साम्यवाद के सिद्धान्तों का प्रचार बढ़ रहा है।

कम्यूनिज़्म (Communism)

यह सिद्धान्त वास्तव में अति प्राचीन है। आज से लगभग २३०० वर्ष पूर्व ग्रीस देश में प्लेटो नामक प्रसिद्ध राजनीतिक दार्शनिक ने इसका प्रचार किया था। स्पार्टा आदि कतिपय प्रदेशों में यह सिद्धान्त अंशतः कार्यरूप में भी परिणत हो गया था। प्लेटो के पश्चात् भी अनेक विद्वानों ने ऐसे ही समाज की सृष्टि करने की कल्पना की। किन्तु वह कल्पना कल्पना के रूप में रही, कभी कार्यान्वित नहीं हो सकी। आधुनिक काल में इस सिद्धान्त ने बहुत अधिक ज़ोर पकड़ा है और इसे पर्याप्त सफलता भी प्राप्त हुई है। रूस का बोल्शेविज़्म इसी का रूपान्तर है। स्थूल रूप से इस व्यापक शब्द के अन्दर साम्यवादादि वे सभी सिद्धान्त परिगणित हो

सकते हैं, जिनका उद्देश्य सामाजिक धन को सामुदायिक अधिकार में रखना है।

इस सिद्धान्त के प्रवर्त्तक भी कार्ल मार्क्स ही थे। १८४७ ई० में इन्जेल्ज के साथ मिल कर मार्क्स ने कम्यूनिस्टिक मैनीफ़ेस्टो नामक जो विज्ञप्ति प्रकाशित की थी, उसी के आधार पर इसने अपना विकास और सङ्गठन किया है। उसके पूर्व साम्यवाद के ढङ्ग का जो प्रचार किया जाता था वह समाज के थोड़े से ही लोगों में सीमित था, उस आन्दोलन ने कोई व्यापक रूप नहीं धारण किया था। जिस समय से उक्त आन्दोलन एक व्यापक तथा सर्व-साधारण श्रमिकों का आन्दोलन (Mass Movement) हो गया, उसी समय से उक्त कम्यूनिज़्म का वास्तविक विकास होना प्रारम्भ हुआ। उक्त मैनीफ़ेस्टो ही इस विकास का प्रथम रूप था। कम्यूनिज़्म को यथार्थ रूप से हृदयङ्गम करने के लिए यह आवश्यक है कि हम उस मैनीफ़ेस्टो के सम्बन्ध में कुछ जानकारी प्राप्त करें। उसका प्रारम्भ इस प्रकार होता है कि समस्त मानव-समाज का इतिहास वर्गीय कलह का इतिहास है। इस वर्गीय युद्ध के फल-स्वरूप या तो समय-समय पर समाज का सम्पूर्ण रूप ही परिवर्तित हो जाता था अथवा उसका एकदम से विनाश ही उपस्थित हो जाता था। आधुनिक काल में उसी प्रकार पूँजीवाद ने भी ऐसी शक्तियों का प्रादुर्भाव कर दिया है, जो उलटे उसी का सत्यानाश करेंगी। दीन-हीन श्रमिक-वर्ग (Proletariate), जो कि पूँजीवाद के ही द्वारा आविर्भूत हुआ है, पूँजीपति-वर्ग का सम्पूर्ण रूप से विनाश करेगा और उसके भग्नावशेष पर एक नवीन समाज की सृष्टि करेगा। पूर्ववर्ती ऐतिहासिक वर्ग-युद्ध का परिणाम यह होता था कि विजय के पश्चात् अल्पसंख्यक लोग ही समाज में फिर शासन करने लगते थे; किन्तु वर्तमान वर्गीय-युद्ध का परिणाम उससे बिल्कुल विभिन्न होगा। श्रमिक-वर्ग अपना सुव्यवस्थित अन्तर्राष्ट्रीय सङ्गठन करके समस्त मानव-समाज को वर्तमान शोचनीय अवस्था से मुक्त करेगा। फलतः श्रमिक-वर्ग का युद्ध सारे मानव-समाज की मुक्ति और रक्षा के लिए हो रहा है। वर्तमान पूँजीवाद वाले समाज का विध्वंस करने के लिए कम्यूनिज़्म के अनुयायी सभी प्रकार के साध्य साधनों का व्यवहार करना चाहते हैं। उनका विश्वास है कि हमें अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सशस्त्र क्रान्ति करनी होगी। मैनीफ़ेस्टो में यह घोषणा की गई है कि इस प्रकार जो क्रान्ति तथा बल-प्रयोग किया जायगा उससे श्रमिक-वर्ग की किञ्चित भी हानि होने की सम्भावना नहीं है। हाँ, उनकी दासत्व-शृङ्खला अवश्य टूट जायगी।

राज्य के विषय में उनका कथन है कि यह पूँजीपति-वर्ग के हितों की रक्षा करता है; उनके सम्बन्ध में सब प्रकार के प्रबन्धों की व्यवस्था करता है। फलतः वे अराजकवादी तथा सिन्डिकलिज़्म के अनुयायी की भाँति अपने नवीन समाज से राज्य का बहिष्कार करना चाहते हैं। युद्ध तथा नवीन समाज की स्थापना के मध्यवर्ती काल में श्रमिक-वर्ग डिक्टेटर का रूप धारण करेगा, किन्तु यह शासन क्षणिक होगा। समाज के अन्तर्गत वर्णभेद अथवा वर्गभेद का विनाश करके श्रमिक-वर्ग अपने वर्ग को भी मिटा देंगे। समाज फिर वर्गों में विभक्त न रहेगा। इसी अवस्था में समाज के सब लोग अपनी स्वतन्त्रता का वास्तविक रूप से उपभोग करेंगे।

कम्यूनिस्ट लोगों का एक विशाल अन्तर्राष्ट्रीय सङ्गठन है और समय-समय पर उसका अधिवेशन भी होता रहता है, जिसमें संसार के लगभग सभी देशों के प्रतिनिधि सम्मिलित होते हैं। १८७१ ई० में इन लोगों ने प्रथम बार पूँजीवाद पर अस्थायी विजय प्राप्त की थी। ६ सप्ताह तक पेरिस में उनका शासन स्थिर रहा था।

बोलशेविज़्म (Bolshevism)

जैसा कि एक स्थल पर ऊपर कहा गया है, बोलशेविज़्म कम्यूनिज़्म का रूपान्तर मात्र है। वास्तव में गत यूरोपीय महायुद्ध के समय से ही आधुनिक कम्यूनिज़्म का श्रीगणेश हुआ है। जिस समय यूरोप में युद्ध प्रारम्भ हुआ, उस समय कम्यूनिज़्म के अनुयायियों में इस विषय पर मतभेद हो गया कि हमें अपने देश की ओर से शत्रुओं से युद्ध करना चाहिए, अथवा पूँजीवाद का विनाश करने के लिए क्रान्ति करनी चाहिए। रूसी सोशल डिमोक्रैटिक दल क्रान्ति के पक्ष में था और उसने क्रान्ति द्वारा रूस में अपना प्रभुत्व भी स्थापित कर लिया। क्रान्ति के पक्ष में उक्त दल का मताधिक्य था, इसी कारण इस प्रणाली को बोलशेविज़्म कहते हैं। बोलशेविकी का अर्थ मताधिक्य है।

रूस में बोल्शेविज़्म कहाँ तक सफल हुआ है, इसका अनुमान हम उसके सङ्गठन तथा उसकी शक्तिशालिता से कर सकते हैं। द्वेष से प्रेरित होकर उसके सम्बन्ध में जो वर्णन पत्रों अथवा ग्रन्थों में प्रकाशित होते हैं, उनसे हम वास्तविकता का अनुमान नहीं कर सकते। जो कुछ भी हो, १९१७ ई० से अब तक रूस में बोल्शेविकों ने ही सब प्रकार की शासन-व्यवस्था का प्रबन्ध किया है और वह देश इतना सुव्यवस्थित है कि शत्रु-राष्ट्रों में इतना साहस नहीं है कि उसको पराजित करने की चेष्टा करें। उन लोगों ने सब प्रकार के व्यवसायों का सङ्गठन किया है, पूँजीवाद का बहुत कुछ अंशों में विनाश किया है और एक प्रकार से रूस में आर्थिक समानता स्थापित हो गई है। लोक-सत्ता के आधार पर कृषकों के छोटे-छोटे दल सङ्गठित हैं।

मार्क्स ने लिखा था कि वर्गीय युद्ध के पश्चात् समाज में वर्ग-भेद का चिह्न न रहेगा। बोल्शेविज़्म के अन्दर भी वही बात सत्य है। बोल्शेविकों का मत है कि काम करने की शर्त सबके लिए रक्खी जाय, जिससे कि उच्च वर्ग के लोग भी काम करने से विमुख न हों।

फ़ैसिज़्म (Fascism)

गत १३-१४ वर्षों से इटली के अन्दर एक विशेष सिद्धान्त का विकास हो रहा है। यह सिद्धान्त उपर्युक्त सब सिद्धान्तों की अपेक्षा विलक्षण है। इसका उद्देश्य साम्यवाद, अराजकवाद आदि सिद्धान्तों की तरह समाज में पूँजीवाद का विनाश कर आर्थिक समानता स्थापित करना नहीं है, अपितु शान्ति और क़ानून की रक्षा के लिए ही इसका जन्म हुआ है। बहुत कुछ अंशों में कम्यूनिज़्म के प्रचार को रोकने के लिए ही इसका आविर्भाव हुआ है। इसका सङ्गठन १९१९ ई० में प्रारम्भ हुआ था। इटली के डिक्टेटर मुसोलिनी ने ही इसका प्रवर्त्तन किया है। १९१० ई० के राष्ट्रीय आन्दोलन तथा सिन्डिकलिज़्म के व्यावसायिक सङ्गठन का बहुत कुछ प्रभाव इस पर पड़ा है। सर्व-प्रथम १९१९ ई० में मुसोलिनी ने मिलन नामक नगर में एक दल स्थापित किया था। इस दल की ओर ऐसे बहुत से लोग आकर्षित हुए, जो कम्यूनिज़्म का विरोध करते थे। इस रूप से राष्ट्रीय भावों से प्रेरित होकर फ़ैसिज़्म का आन्दोलन प्रारम्भ हुआ था। यूरोपीय महायुद्ध के पश्चात् वार्सेल-सन्धि में इटली की माँगों की पूर्ति नहीं हुई थी, अतः इटली के हितों की रक्षा करने का भाव भी इस आन्दोलन के अन्दर था। साम्यवादी तथा कम्यूनिस्ट लोगों के विरुद्ध १९२१-२२ ई० में फ़ैसिस्ट लोगों ने हथियार भी उठाया था। उनकी विजय और वीरता से मुग्ध होकर रोमन कैथोलिक तथा कट्टर उदार दल के लोगों ने भी उसको सहयोग प्रदान किया।

कुछ समय के पश्चात् इस आन्दोलन ने इटली के लोकमत को अपनी ओर आकर्षित कर लिया। श्रमिक-वर्ग, कृषक-दल तथा भूस्वामी-समुदाय भी इसमें सम्मिलित हो गया। इस प्रकार फ़ैसिज़्म इटली भर में व्याप्त हो गया। १९२१ ई० में इस मत के अनुयायियों का रोम-नगर में एक विशाल अधिवेशन हुआ था और एक राजनीतिक दल का सङ्गठन भी किया गया था।

उनका मत है कि राज्य का कार्यक्षेत्र क़ानून बनाना तथा राजनीतिक व्यवस्था स्थापित करना है। उत्पादन की उन्नति के लिए ट्रेड यूनियन को प्रोत्साहित करना चाहिए। राज्य के सम्मान और गौरव में क्षति न पहुँचानी चाहिए। व्यावसायिक हड़ताल नहीं की जा सकती।

समाज में अशान्ति को रोकने के लिए फ़ैसिज़्म ने एक सैनिक सङ्गठन की भी आयोजना की है। इस प्रकार इस विलक्षण सङ्गठन ने राजतन्त्र को सुदृढ़ रूप से संरक्षित कर रक्खा है। इसके अन्दर एक महान परिषद् (Grand council) की स्थापना भी की गई है, जिसमें सरकारी दल के बहुत से पदाधिकारी सम्मिलित हैं। मुसोलिनी ही इटली का सर्वेसर्वा है और वही इस दल का प्रमुख नेता भी है।

इसका सिद्धान्त है कि व्यक्ति के लिए समाज का अस्तित्व नहीं है, बल्कि समाज के लिए ही व्यक्ति का अस्तित्व है। इस तरह व्यक्तिगत स्वतन्त्रता इस समाज के अन्दर नहीं रह जाती। समाज ही न्यायकर्ता है और वही व्यक्तिगत अधिकारों का निरीक्षण करता है।

इस प्रकार आजकल यूरोप में कई प्रकार के सिद्धान्तों का तुमुल द्वन्द्व जारी है।



रूस में बोल्शेविज़्म कहाँ तक सफल हुआ है, इसका अनुमान हम उसके सङ्गठन तथा उसकी शक्तिशालिता से कर सकते हैं। द्वेष से प्रेरित होकर उसके सम्बन्ध में जो वर्णन पत्रों अथवा ग्रन्थों में प्रकाशित होते हैं, उनसे हम वास्तविकता का अनुमान नहीं कर सकते। जो कुछ भी हो, १९१७ ई० से अब तक रूस में बोल्शेविकों ने ही सब प्रकार की शासन-व्यवस्था का प्रबन्ध किया है और वह देश इतना सुव्यवस्थित है कि शत्रु-राष्ट्रों में इतना साहस नहीं है कि उसको पराजित करने की चेष्टा करें। उन लोगों ने सब प्रकार के व्यवसायों का सङ्गठन किया है, पूँजीवाद का बहुत कुछ अंशों में विनाश किया है और एक प्रकार से रूस में आर्थिक समानता स्थापित हो गई है। लोक-सत्ता के आधार पर कृषकों के छोटे-छोटे दल सङ्गठित हैं।

मार्क्स ने लिखा था कि वर्गीय युद्ध के पश्चात् समाज में वर्ग-भेद का चिह्न न रहेगा। बोल्शेविज़्म के अन्दर भी वही बात सत्य है। बोल्शेविकों का मत है कि काम करने की शर्त सबके लिए रक्खी जाय, जिससे कि उच्च वर्ग के लोग भी काम करने से विमुख न हों।

फ़ैसिज़्म (Fascism)

गत १३-१४ वर्षों से इटली के अन्दर एक विशेष सिद्धान्त का विकास हो रहा है। यह सिद्धान्त उपर्युक्त सब सिद्धान्तों की अपेक्षा विलक्षण है। इसका उद्देश्य साम्यवाद, अराजकवाद आदि सिद्धान्तों की तरह समाज में पूँजीवाद का विनाश कर आर्थिक समानता स्थापित करना नहीं है, अपितु शान्ति और क़ानून की रक्षा के लिए ही इसका जन्म हुआ है। बहुत कुछ अंशों में कम्यूनिज़्म के प्रचार को रोकने के लिए ही इसका आविर्भाव हुआ है। इसका सङ्गठन १९१९ ई० में आरम्भ हुआ था। इटली के डिक्टेटर मुसोलिनी ने ही इसका प्रवर्तन किया है। १९१० ई० के राष्ट्रीय आन्दोलन तथा सिन्डिकलिज़्म के व्यावसायिक सङ्गठन का बहुत कुछ प्रभाव इस पर पड़ा है। सर्व-प्रथम १९१९ ई० में मुसोलिनी ने मिलन नामक नगर में एक दल स्थापित किया था। इस दल की ओर ऐसे बहुत से लोग आकर्षित हुए, जो कम्युनिज़्म का विरोध करते थे। इस रूप से राष्ट्रीय भावों से प्रेरित होकर फ़ैसिज़्म का आन्दोलन प्रारम्भ हुआ था। ...पीय महायुद्ध के पश्चात् वार्सेल-सन्धि में ... माँगों की पूर्ति नहीं हुई थी, अतः इटली के ... रक्षा करने का भाव भी इस आन्दोलन के ... साम्यवादी तथा कम्यूनिस्ट लोगों के विरुद्ध ... ई० में फ़ैसिस्ट लोगों ने हथियार भी ... उनकी विजय और वीरता से मुग्ध होकर ... लिक तथा कट्टर उदार दल के लोगों ने ... सहयोग प्रदान किया।

कुछ समय के पश्चात् इस आन्दोलन ने ... लोकमत को अपनी ओर आकर्षित कर लिया। ... वर्ग, कृषक-दल तथा भूस्वामी-समुदाय भी ... लित हो गया। इस प्रकार फ़ैसिज़्म इटली ... हो गया। १९२१ ई० में इस मत के अनु... रोम-नगर में एक विशाल अधिवेशन हुआ ... एक राजनीतिक दल का सङ्गठन भी किया गया।

उनका मत है कि राज्य का कार्यक्षेत्र क़ानून ... तथा राजनीतिक व्यवस्था स्थापित करना है। ... की उन्नति के लिए ट्रेड यूनियन को प्रोत्साहि... चाहिए। राज्य के सम्मान और गौरव में क्षति न ... चाहिए। व्यावसायिक हड़ताल नहीं की जा सकती।

समाज में अशान्ति को रोकने के लिए ... ने एक सैनिक सङ्गठन की भी आयोजना की है। ... प्रकार इस विलक्षण सङ्गठन ने राजतन्त्र को ... संरक्षित कर रक्खा है। इसके अन्दर एक महान ... (Grand council) की स्थापना भी की गई ... जिसमें सरकारी दल के बहुत से पदाधिकारी ... हैं। मुसोलिनी ही इटली का सर्वेसर्वा है और ... दल का प्रमुख नेता भी है।

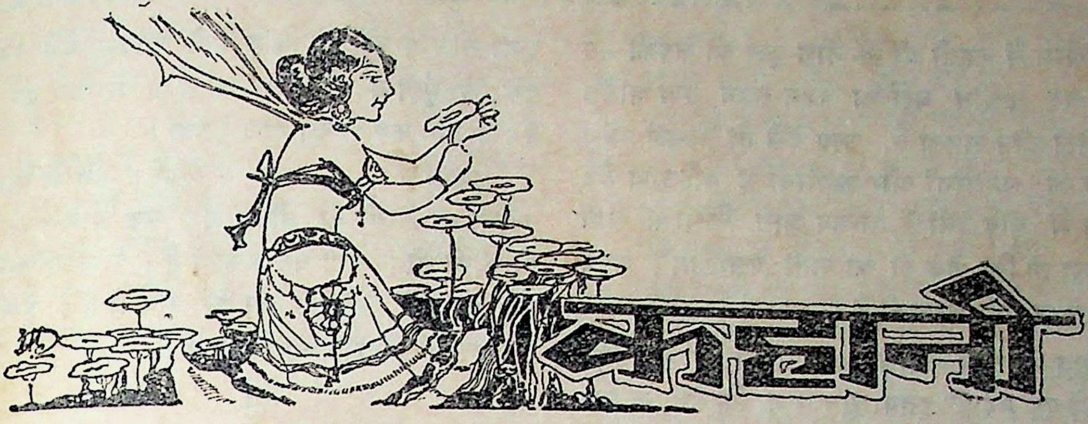
इसका सिद्धान्त है कि व्यक्ति के लिए ... अस्तित्व नहीं है, बल्कि समाज के लिए ही ... अस्तित्व है। इस तरह व्यक्तिगत स्वतन्त्रता ... के अन्दर नहीं रह जाती। समाज ही ... और वही व्यक्तिगत अधिकारों का निरीक्षण ...

इस प्रकार आजकल यूरोप में कई ... सिद्धान्तों का तुमुल द्वन्द्व जारी है।



झरा हुआ फूल !

माली ! सबसे कह देना, सौरभ देने में हूँ असमर्थ ! सब दुर्गुण कहना, पर इतना, भी कह देना दयानिधान !
सबके सम्मुख ... मेरा जीवन बतलाना व्यर्थ !! मेरे ही समान होता है, भारत में विधवा का मान !!



हत्या

[श्रीमती शिवरानी देवी]

पण्डित रुद्रनाथ के घर में किसी देवी का अभिशाप है कि बहुएँ आने के दो-चार साल बाद ही स्वर्ग की राह लेती हैं। ऐसा कोई मर्द नहीं हुआ, जिसकी तीन शादियों से कम हुई हों। रुद्रनाथ के पिता की पाँच शादियाँ हुईं। रुद्रनाथ तीन भाई थे, तीनों ही की तीन-तीन शादियाँ हुईं। रुद्रनाथ के दोनों जवान लड़कों की भी दो-दो शादियाँ हो चुकी हैं। बहुएँ आती हैं, साल-छः महीने में उन्हें भूत लग जाता है, कुछ झाड़-फूँक होती है, फिर मालूम होता है कि बहू का अन्त हो गया। फिर उसके दूसरे ही महीने बेटे की शादी की बातचीत होने लगती है। मुहल्ले के अन्य घरों में भी यही हाल है, इसलिए इसे साधारण व्यवस्था समझना चाहिए। रहीं नीच जातियों की स्त्रियाँ, वे समझती हैं कि बड़े आदमियों के घर की औरतें पूर्व-जन्म के किसी पुण्य-फल से इतनी जल्द दुनिया से विदा हो जाती हैं। बेचारी नीच जाति की औरतों को तो यमराज भी नहीं पूछते। जिनकी यहाँ पूछ है, उन्हीं की वहाँ भी पूछ है।

रुद्रनाथ का बड़ा लड़का चन्द्रनाथ जब पन्द्रहवें साल में था, तो उसका पहला व्याह हुआ। महीने भर यहाँ रह कर बहू विदा हो गई। साल भर के बाद वह फिर आई और मर कर ही गई। छः महीने के अन्दर चन्द्रनाथ का दूसरा व्याह हो गया। लड़की का मैका गङ्गा किनारे था। रोज़ नहाने जाती। जल भी गङ्गा जी से लाती थी। यहाँ बन्द कोठरी में रहना पड़ा, न किसी से भेंट न मुलाक़ात, न कहीं आना न जाना, तो उसे बड़ा बुरा मालूम हुआ। बहू किसी से बोल नहीं सकती। जो कुछ कहना हो अपनी सास से कहे। हँसे-बोले किससे? यही क़ैद दूसरे घरों में भी है। बेचारी किसी से दो बात बोलने के लिए तरसती रहती थी। जब कभी कहारिन या पिसनहारिन को पकड़ पाती तो उसका जी चाहता उससे बातें ही किया करे। उसकी बातें ही न ख़तम होतीं। उधर मैनादेवी का नादिरशाही हुक्म था कि किसी से मत बोलो। यह निषेध उसे पाँव की बेड़ी की तरह कठोर लगता और वह किसी न किसी उपाय से उसे तोड़ने की चेष्टा करती रहती थी।

एक दिन मैना की नज़र पड़ गई। गुलाब गोबर फेंकने वाली चमारिन से हँस-हँस कर इस तरह बातें कर रही थी, मानों जीवन का इससे बड़ा सुख दूसरा नहीं है।

मैनादेवी आग-बबूला हो गईं। आँखें निकाल कर बोलीं—मैंने तुझे समझा दिया कि इन नीच औरतों से बातचीत न किया कर; लेकिन जैसे तुझे कुछ परवाह ही

नहीं। इसीसे मैं कहती थी कि नीच कुल की लड़की मत लाओ, वह कुलीन घरों का रहन-सहन क्या जाने। लेकिन मेरी कौन सुनता है, रुपए देखे तो फिसल पड़े। बहूरानी का चमारिनों और कहारिनों से बहिनापा है। आज तो मैं छोड़ देती हूँ, लेकिन आगे किसी से बातें करते देखा तो फिर मैके ही का पानी पिलाऊँगी। अपने कुल की नाक नहीं कटवानी है।

गुलाब ने तीव्र स्वर में कहा—"तो क्या रात-दिन घर में पड़े-पड़े मरूँ?" इतना सुनना था कि मैना के सिर जैसे भूत सवार हो गया। कुलटा, कुलच्छिनी, बेहया और जो-जो मुँह में आया बकती रही। इतने ही पर सन्तोष न हुआ। पण्डित जी से लगाया और चन्द्रनाथ को ऐसी बुरी तरह डाटा कि बेचारा रोने लगा।

२

रात को चन्द्रनाथ जब घर में सोने गया तो गुलाब से बोला—यह तुम्हारा क्या स्वभाव है जी, कि तुम्हें कितना ही कोई समझावे अपने मन ही की करती हो। यह भी कोई क़ायदा है कि बड़े घर की बहुएँ नीच औरतों से बातचीत करें। मैंने तो तुम्हारी जैसी स्त्री नहीं देखी।

गुलाब भी भरी बैठी थी। बोली—हाँ बात तो ऐसी ही है। औरतें देखे होते तो जानते कि उनसे कैसे व्यवहार करना चाहिए।

"हाँ ठीक है, हम लोगों का तो सिर फिर गया है, जो कुत्तों की तरह भूँका करते हैं। अम्माँ बुड्ढी हो गई हैं, लेकिन उनकी बोली आज तक किसी ने नहीं सुनी। तुम्हारे पीछे मुझे भी बातें सुननी पड़ती हैं।"

"तो आख़िर किससे बोलूँ?"

"किसी से बोलने की ज़रूरत नहीं।"

"और जो मैं कहूँ, तुम भी किसी से न बोलो तब?"

"मुझसे तुम ऐसा नहीं कह सकतीं।"

नीचे से मैनादेवी आकर कोठे के द्वार पर खड़ी हो गईं और बोलीं—इस बेशरम के मुँह क्यों लगता है बेटा। ले जा इसे उस पापी के घर भेज आ, जो इसे मेरे गले मँढ़ गया है। बातों में तो कोई इससे जीत ही नहीं सकता। न जाने इसके माँ-बाप कैसे हैं, जिसके ऐसी लड़की है। तुम्हारे दादा ने आज खाना नहीं खाया। इसी सोच में पड़े रहे कि न जाने आबरू कैसे रहेगी। इस कलमुँही ने सारे घर का नाक में दम कर दिया है। न जाने कब इसका पौरा उठेगा।

गुलाब ने कोई जवाब न दिया। मन में बार-बार ज्वाला सी उठती थी, लेकिन मुँह तक आते-आते पानी हो जाती थी। यहाँ वह अकेली है। ये लोग चाहे उसे मार भी डालें, तो वह क्या कर सकती है। इसीलिए भगवान ने उसका जन्म दिया था।

३

एक दिन गाँव में एक बारात आई। गुलाब का जी न माना, खिड़की पर खड़ी होकर देखने लगी। चन्द्रनाथ के मित्र खिड़की के नीचे ही खड़े थे। संयोग से उनकी निगाह उस पर पड़ गई। दिल में शर्माए तो नहीं, चन्द्रनाथ से बोले—"देखो तुम्हारी श्रीमती जी खिड़की के सामने खड़ी हैं।" चन्द्रनाथ ने आँख ऊपर उठाई तो गुलाब को खड़ी देखा। अब क्या था। इतना भयङ्कर अपराध, कुलीन घर की बहू और खिड़की के सामने खड़ी हो। झल्लाए हुए घर में आए और गुलाब से बोले—"क्यों जी, तुम हमारी नाक कटवा कर ही दम लोगी? अब तुम इतनी बेशर्म हो गईं कि सारे महल्ले के महल्ले से आँखें लड़ाती फिरती हो। ऐसा जी चाहता है कि या तो आप ज़हर खाकर सो रहूँ या तेरा ही गला घोंट दूँ। मैं तो तुझसे हार गया। न तू मरेगी न मेरा गला छूटेगा।"

गुलाब के काटो तो लहू नहीं। उसके पास कोई जवाब न था, कोई सफ़ाई न थी। अपराधी भाव से बोली—अगर मैंने इतना बड़ा अपराध किया है तो मुझी को क्यों न मार डालो।

"तुम जैसी बेहयाओं से मौत भी डरती है।"

सहसा चन्द्रनाथ का छोटा भाई रामनाथ आकर बोला—भैया तुमने आज भाभी की करतूत सुनी! इन्होंने हमारी नाक कटवा ली। आज पण्डित रामशङ्कर ने इन्हें खिड़की पर खड़े देखा। वह सबके सामने कहते थे। मारे शर्म के मेरा सिर नीचा हो गया और क्या कहूँ।

गुलाब के मुँह से निकला—अब तुम्हारी बारी है तो जो सज़ा चाहो तुम भी दे लो। मैं तो घर भर का लात खाने आई ही हूँ।

चन्द्रनाथ ने कहा—सज़ा वह नहीं देगा, मैं दूँगा। जितना ही मैं तरह देता हूँ, उतना ही तू और बढ़ती जाती है।

यह कहने के साथ ही उसने पाँव से जूता निकाला और गुलाब की पीठ पर तड़ातड़ चार-पाँच जूते जमा दिए। बोला—फिर जायगी खिड़की पर! तुझको शर्म नहीं है, हम लोगों को है। मेरे घर में तेरी बेशर्मी नहीं चलने पाएगी। हो गया दिमाग़ ठीक कि और चाहिए!

४

कई महीने बीत गए हैं। गुलाब गर्भवती है। रात-दिन कोठरी में बैठे-बैठे उसे संग्रहणी हो गई है। गुलाब सा मुँह सूख कर पीला हो गया है। खाना अच्छा नहीं लगता, दवा कोई देता नहीं। जब से मार पड़ी थी, किसी ने उसका मुँह नहीं देखा, न वह किसी से बोली। एक ही मार में हमेशा के लिए उसे ठीक कर दिया। दिन भर खाट पर पड़ी रहती। उससे उठा नहीं जाता। लेकिन मैनादेवी इसे भी उसकी बेशर्मी समझती हैं। छोटे-बड़े का लिहाज़ तो इसे है ही नहीं। कोई जाय, कोई आए, बस लम्बी ताने पड़ी रहती है। मानों इसी को तो नोखे का बच्चा होने वाला है। और किसी को तो लड़के हुए ही नहीं।

चन्द्रनाथ ने अब गुलाब से कुछ कहना-सुनना छोड़ दिया है। उसकी ओर से अब वह निराश हो गया है। ऐसी निर्लज्जा को कोई कहाँ तक समझाए। जिसे न मार का डर है, न गाली की लाज। वह जो चाहे वही कर सकती है। मैं अगर हारा तो इसी स्त्री से।

आज गुलाब के पेट में दर्द है। मगर किसी से कुछ कह नहीं सकती। खाट पर पड़ी कराह रही है। कभी उठ बैठती है, कभी लेट जाती है, कभी खड़ी हो जाती है। हर बार आसन बदलने से उसे कुछ विश्राम का अनुभव होता है। लेकिन एक ही सेकेण्ड में फिर वैसे ही पीड़ा होने लगती है। मुँह से बार-बार यही वेदना से भरा हुआ शब्द निकलता है—हाय भगवान, अब नहीं सहा जाता।

घर का कोई आदमी उसके पास नहीं फटकता। केवल महरी उसका तड़पना देख रही है। किन्तु मैना-देवी के भय से उसकी भी कुछ बोलने की हिम्मत नहीं पड़ती। आख़िर जब उससे न रहा गया तो गुलाब के पास जाकर बोली—कैसा जी है बहू जी!

गुलाब ने करुण नेत्रों से उसे देख कर कहा—तुम यहाँ से चली जाओ माता, नहीं अम्माँ जी देख लेंगी तो मेरी भी दुर्गत करेंगी, तुम्हारी भी दुश्मन हो जायँगी।

महरी दयार्द्र होकर बोली—तो अपनी नौकरी ही लेंगी या किसी की जान मारेंगी। अब यह तो नहीं हो सकता कि तुम यों छटपटाती रहो और मैं खड़ी देखा करूँ। हम लोग कहने को नीच जात हैं, लेकिन हमारे यहाँ भी ऐसा नहीं होता कि किसी भले आदमी की लड़की लाकर उसे दर्बे में बन्द कर दें। ऐसा अन्धेर तो मैंने कहीं नहीं देखा। बहू न भई कैदिन भई! बड़े घर की बड़ी-बड़ी बातें होती हैं। यह परदा है कि जान मारना है।

गुलाब ने हाथ जोड़ कर कहा—माता, तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, यहाँ से चली जाओ, नहीं मेरी जान की कुशल नहीं है।

मैना के सतर्क कानों में इन बातों की आहट पड़ गई। दबे पाँव आकर बहू की कोठरी के द्वार पर खड़ी हो गई और कान लगा कर सुनने लगी। आँखों में ख़ून उतर आया। महरी को डाँट कर बोली—अच्छा, बस रहने दे। आई है वहाँ से बहू की सगी बन कर। हम लोग नाई-कहार नहीं हैं कि हमारी बहुएँ गली-गली नाचती फिरें। चली है अपनी बिरादरी का बखान करने। तू क्यों आई यहाँ? तू कौन होती है मेरी बहू से बोलने वाली?

महरी ने देखा कि बहू जी के मालकिन का क्रोध बढ़ रहा है तो चुपके से खिसक गई। मैना गुलाब के सिर हो गई—अब क्या पूछना है! अब तो दुखड़ा रोने को महरी मिल गई।

गुलाब ने आँखों में आँसू भर कर कहा—अम्माँ जी, मैं आपके चरण छूकर कहती हूँ, मैंने महरी से कुछ नहीं कहा। मैं तो उससे बार-बार कहती रही कि यहाँ से चली जा। आप उसको बुला के पूछ लीजिए कि मैंने उससे क्या कहा?

मैना ने उसी क्रोध में जो कुछ मुँह में आया कहा। लेकिन गुलाब को कुछ सुनाई न दिया। उसके पेट में फिर दर्द होने लगा था।

५

बाहर से चन्द्रनाथ आए। मैना ने उसको आड़े हाथों लिया—अब या तो तू ही इस घर में रह या मैं ही रहूँ। तेरी बहू के साथ अब इस घर में मेरा निबाह न होगा। अब महरी को बुला कर उससे दुखड़ा रोया जाता है। हम चमार हैं, डोम हैं, बल्कि उनसे भी गए बीते। बहुओं की जैसी दुर्दशा हमारे घर में होती है वैसी और कहीं नहीं होती। कुछ कहो तो लड़ने को तैयार। इस चाण्डालिन ने पुरखों के मुँह में कालिख लगा दी।

चन्द्रनाथ बोला—तो अपने बाप को क्यों नहीं कोसती कि चमार के घर पटक दिया। अब से भला है, चली जाय किसी कुलीन के घर।

इसी क्रोध में भरा हुआ वह गुलाब की कोठरी के दरवाज़े तक आया तो देखा गुलाब अचेत पड़ी है और शिशु रो रहा है। उल्टे पाँव दौड़ा हुआ माँ के पास आया और माँ से यह हाल कहा।

अब मैना को शायद कुछ खेद हुआ। उसने समझा था, बहू मक्कर किए पड़ी हुई है। दौड़ी हुई ऊपर गई। बच्चे को उठा लिया और चन्द्रनाथ को पुकार कर बोली—जाकर अपने बाप से कह दो, दाई बुलवा लें। भगवान ने उनको पोता दिया है। पण्डित जी दाई को बुलाने के लिए आदमी भेज कर घर में आ बैठे और पत्रा खोल कर देखने लगे, बच्चा कैसे लग्न में पैदा हुआ है।

थोड़ी देर में दाई आ गई और बहू को देख कर मैना से बोली—क्या बहू के पास कोई था नहीं; मुझे और पहले क्यों न बुला लिया। इनके तो दाँत बैठ गए हैं, जी डूब गया है। बच्चे की नाल तो मैं काट दूँगी, लेकिन बहू मेरे मान की नहीं है। किसी मेम डॉक्टर को बुलवाइए। नहीं पीछे मुझे दोष दोगी कि पहले क्यों नहीं बताया।

मैना नाक सिकोड़ कर बोली—मेरे घर कभी न मेम आई है न आवेगी। और बहू को हुआ ही क्या है कि मेम को बुलाऊँ? कोई नई बात थोड़े हुई है!

महल्ले की दो-चार बड़ी-बूढ़ियाँ यह ख़बर सुनते ही आ पहुँची थीं और सौरिगृह के द्वार पर खड़ी थीं। उनकी भी यही सलाह हुई कि मेम-सेम के बुलाने की कोई ज़रूरत नहीं है। सभी के दस-दस, बीस-बीस बच्चे हो चुके थे। लेकिन मेम किसी के घर नहीं आई थी। उस पुरानी प्रथा को आज कैसे तोड़ा जाय।

दाई बोली—भैया, मुझे तो डर लग रहा है। देखते नहीं हो, बहू कैसी हुई जाती है।

मैना ने उसे कड़ी आँखों से देखा। तुम तो दाई, ऐसी घबड़ा रही हो जैसे आज पहली बार जचा-बच्चा देखा हो। कुछ नहीं तो सैकड़ों ही बच्चे जनाए होंगे। मेम किसके घर आती है? हम क्रिस्तान थोड़े ही हैं कि मेम को घर पर बुला लें।

दाई ने देखा कि यहाँ उसकी कोई नहीं सुनता तो बाहर निकल आई और आँगन में आकर पण्डित जी से बोली, जो अभी तक बैठे लगन विचार रहे थे—मालिक! बहू जी बहुत बेहाल हैं, मुझे तो उनका बचना मुश्किल मालूम होता है। नाड़ी का कहीं पता नहीं, आँखें ऊपर को टँग गई हैं। मैंने कहा कि किसी मेम को बुला कर दिखा लो, लेकिन मेरी कोई नहीं सुनता। मैं तुमसे भी जताए देती हूँ। अब मेरा दोष नहीं है।

पण्डित जी बोले—कैसी बातें करती हो दाई! तुम्हें क्या हो गया है। बच्चे के होने में दाई आती है, मेम नहीं आती। न आज तुम नए सिरे से आई हो, न मेरे घर में कोई नोखा बच्चा हुआ है।

दाई ने बहुत समझाया, लेकिन पण्डित जी मेम बुलाने पर किसी तरह राज़ी न हुए। आख़िर उसने कहा—अगर आप बहू को मारने ही पर लगे हैं, तो दूसरी बात है। नहीं, अब उनके बचने की कोई आशा नहीं है। रुपए-पैसे इसी दिन के लिए जोड़े जाते हैं। आप लोग न जाने क्या समझ कर छोड़ते हैं। रुपए आते-जाते रहते हैं, लेकिन आदमी एक बार चला जाता है तो फिर नहीं आता। अब पण्डित जी को भी कुछ शङ्का हुई। मैना को पुकार कर पूछा—अब बहू का जी कैसा है?

मेम के नाम ही से मैना की ईर्ष्या प्रज्वलित हो रही थी। उसके भी तो बच्चे हुए हैं। उसे भी तो इसी तरह पीड़ा हुई, वह भी तो प्रसूत ज्वर में महीनों पड़ी रही, जब उसकी बार मेम न आई तो अब कैसे आ सकती है। गुलाब ऐसी कहाँ की दुलारी है कि उसके लिए मेम आवे। जीना होगा जिएगी, मरना होगा

मरेगी। संसार में औरतों का कल्याण नहीं है। बोली—जी अच्छा है और क्या। नख़रा किए पड़ी है। तुम औरतों का हाल क्या नहीं जानते।

परिडत जी ने कहा—दाई तो डॉक्टर बुलाने को कहती है। लेकिन मैंने तो कह दिया कि मैं डॉक्टर को बुला कर अपने घर की बेइज़्ज़ती न कराऊँगा। मेम आवेगी तो सबसे पहले शराब माँगेगी। मेरे जीते जी यह अधर्म नहीं होगा?

रात के दस बज गए। गुलाब की उल्टी साँसें चल रही हैं, और सब औरतें बैठी तमाशा देख रही हैं। एकाएक उसने एक हिचकी ली और अपनी जीवन-लीला समाप्त कर दी! बेचारी को बच्चे का मुँह देखना भी नसीब न हुआ!

मैना छाती पीटने लगी—हाय भगवान, मेरी क्यों दुर्दशा कर रहे हो। कितने अरमान से बेटे का ब्याह किया था, मगर कोई हौसला पूरा नहीं हुआ।

लाश कपड़े से ढक कर बाहर लाई गई। घर में रोना-पीटना मच गया।

एक बुढ़िया ने मैना को समझाया—दीदी अब क्यों रोती हो, सलामत रहे बेटा, फिर बहू आ जायगी!!!

प्रणय-प्रभात

[श्री० कविराज उमेशचन्द्र देव]

अवनि से उमड़-उमड़ उच्छ्वास
विकल, कलियों को लेते चूम—
विहँस देती हैं वे सत्वर,
हृदय का करतीं अभिनन्दन!
अरे! यह मादक जड़ जीवन!

इधर से आता अलि बेपीर,
उधर से भावुक मन्द समीर
सभी को देतीं सौरभ दान—
सभी का है समान सम्मान,
प्रणय का अभिरञ्जन ही ध्येय!

सुमन प्यालों में पी यौवन
झूमने लगता है उपवन,
लुटा दें को तन-मन-धन
मचल जाता चञ्चल जीवन!

× × ×

प्रभा का पोषक उद्वर्त्तन,
मयूरों का मादक नर्तन,
मलय लहरी का आवर्त्तन,
प्रकृति का पल-पल परिवर्तन
सभी में यौवन-जीवन-धन!!

कामनाएँ उल्लास विलास
लजाते आते मेरे पास,
पलक भर आजाएँ इस पार,
सजा दें यह बिखरा शृङ्गार
न हारे फिर मेरा मनुहार!

कमल सी कोमल वे कलियाँ
हमारी बनने को उपहार
तरसती हैं प्रभात सुकुमार!
झुका दो अपनी ग्रीवा-मञ्जु
तुम्हीं को पहना दूँ यह हार!

कहानी-कला

[श्री० रामनारायण 'यादवेन्दु', बी० ए०]

कल्पना और भाव

साहित्य की आत्मा कल्पना और भाव हैं। इनके अभाव में साहित्य और जीवन की कल्पना सम्भव नहीं है। संसार में कल्पना और भाव का नाश हो जाय तो मानव-सृष्टि का अन्त ही हो जायगा। मानव-जगत तथा इतर प्राणि-जगत में कोई अन्तर ही न रहेगा। साहित्य में कल्पना द्वारा सौन्दर्य की सृष्टि की जाती है। जहाँ मरुभूमि है, वहाँ कवि-कल्पना रमणीय वाटिका के दर्शन करती है! जहाँ घृणा का अभिनय है, वहाँ प्रेम-राज्य के वैभव का अनुभव करती है। आनन्द और दुःख क्या हैं? हमारे सत्य भावों की अभिव्यक्ति ही आनन्द है। असत्य भावों की अनुभूति में दुःख ही दुःख है।

मनोविज्ञान-वेत्ताओं का कथन है कि कल्पना की सहायता के बिना मनुष्य में उदात्त भावों और सहानुभूति का आविर्भाव नहीं हो सकता। जो मनुष्य अपने आपको दूसरों की स्थिति में पड़ा होने की कल्पना नहीं कर सकता, उसमें कब प्रेम, दया, करुणा इत्यादि मनोभावों की जननी सहानुभूति का सञ्चार हो सकता है? निष्कर्ष यह है कि जीवन और साहित्य में कल्पना का सर्वोपरि स्थान है। परन्तु साहित्य में जिस कल्पना का निर्वाह किया जाता है, वह सरस कल्पना है। जिस कल्पना में भावों का प्राधान्य हो, उसे ही हम सरस कल्पना कहते हैं। साहित्य में सौन्दर्य की अनुभूति इसी सरस कल्पना के द्वारा की जाती है।

जिस प्रकार काव्य में कल्पना का स्थान भाव के समकक्ष है, उसी प्रकार कहानी में कल्पना का स्थान भी सर्वोच्च है। जिस लेखक में सरस भावपूर्ण कल्पना का अभाव हो, वह कवि या कहानीकार नहीं बन सकता। कल्पना के द्वारा कहानी में मौलिकता और नूतनता की सृष्टि की जाती है! भावों के द्वारा आनन्द या रस की उत्पत्ति की जाती है। जिस कहानी में कोई भाव नहीं, वह रसहीन है। भाव से हमारा तात्पर्य ज्ञान-मिश्रित संवेदन से है। संवेदन मन की सुखात्मक और दुःखात्मक दशा है। 'जब विशेष परिस्थिति का ज्ञान संवेदन उत्पन्न करता है, तो वह ज्ञान-मिश्रित संवेदन हमारे अन्दर शारीरिक परिवर्तन पैदा कर देता है। वह शारीरिक परिवर्तन उस संवेदन को तीव्र रूप दे देते हैं, यही तीव्र संवेदन भाव कहलाता है।'*

कहानी की सार्थकता इसी में है कि उसके अवलोकन से पाठक के हृदय में भी तद्वत भाव जाग्रत हो जायँ। यदि लेखक में मानव-चरित्र के सौन्दर्य-दर्शन के लिए दिव्य चक्षु हैं, उसकी विशदता का अनुभव करने के लिए सरस हृदय है, मानव-जीवन के तथ्यों के ज्ञान के लिए मेधावी बुद्धि है, तो उसमें स्वतः भावों का आविर्भाव हो जायगा।

"साहित्य में भावप्रवणता के सब रूपों की उत्पत्ति प्रेमाभास या करुणाभास के जागरण का फल है। जो भाव इस प्रकार सुगमता से जाग्रत किए जा सकते हैं अथवा विवेक-पूर्वक प्रयुक्त किए जाते हैं, उनमें सारहीनता आ जाती है। जिन भावों का प्रादुर्भाव सच्चे कलाविद् द्वारा किया जाता है, वे मानव-जीवन के गम्भीर सत्यों पर निर्भर होते हैं।"†

मनोवैज्ञानिकों ने शारीरिक परिवर्तन में न्यूनाधिक की दृष्टि से भावों को दो भागों में विभाजित किया है। क्रोध, भय, घृणा, ईर्ष्या, शोक और लज्जा को स्थूल भाव माना है और जिज्ञासा, विद्या, प्रेम, सौन्दर्य, कृतज्ञता, सहानुभूति, अनुताप, आत्मग्लानि इत्यादि सूक्ष्म भाव

---

* 'मनोविज्ञान' ले० प्रो० सुधाकर, एम० ए०; पृ० २०८।

† Winchester's 'Principles of Literary Criticisms.

हैं। ये सूक्ष्म भाव ही हमारे साहित्य की अक्षय सम्पत्ति हैं। ये समाज-स्थिति-विधायक भाव हैं। अतः लेखक का कर्तव्य है कि वह इन्हीं भावों का अपनी कृतियों में सन्निवेश करे। प्रेम भाव-साम्राज्य का सम्राट् है। यही कारण है कि समस्त साहित्य में प्रेम का उज्वलन्त वर्णन मिलता है। इसके पश्चात् करुण और हास्य का स्थान है। इन तीनों भावों पर हम विशद रूप से विचार करने का प्रयत्न करेंगे।

प्रेम-भावना

"काव्य की उस भूमि में, जहाँ आनन्द अपनी पूर्णावस्था को प्राप्त दिखाई पड़ता है, प्रवर्त्तक भाव प्रेम है।"

—प्रो० रामचन्द्र शुक्ल

आजकल हिन्दी कहानी-साहित्य में 'प्रेम-कहानी' का प्रचलन बड़े ज़ोर से हो रहा है। ऐसी कहानी में भावुकता के स्थान में कोरी भाव-प्रवणता (Sentimentalism) का प्राचुर्य्य रहता है। यदि 'प्रेम-कहानी' द्वारा प्रेम का दिव्य रूप अभिव्यक्त किया जाय, तो इससे आनन्द की उत्पत्ति हो सकती है। परन्तु 'प्रेम-कहानी' की कथा ही निराली है। काव्य-क्षेत्र में जिस कामुकता का प्रचार विहारी और देव ने किया उसी का प्रचार आजकल के 'प्रेम-कहानीकार' कर रहे हैं! क्या प्रेम की इससे अधिक दुर्दशा सम्भव हो सकती है? फ़्रेञ्च-साहित्य की कृपा से हिन्दी-साहित्य में 'यथार्थवाद' का प्रचार हुआ और इस 'वाद' के साथ प्रेम-भावना के सम्मिलन ने साहित्यिक वाममार्गवाद को जन्म दिया। प्रेम-भावना को कलुषित करने का सारा उत्तरदायित्व यथार्थवादी मनोवृत्ति पर है। प्रेम में अशान्ति, असंयम, विषाद और काम का सन्निवेश 'यथार्थवाद' का परिणाम है। ऐसे प्रेम में द्वेष, घृणा, ग्लानि, विश्वासघात, अमर्ष, शोक, निराशा और दुःख होता है!!

हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि प्रेम विषयी शृङ्गार नहीं है। प्रेम विश्व है; विश्व प्रेम है। जीवन का सार प्रेम है; प्रेम-रहित जीवन मृत्यु है। जीवन का चित्रण साहित्य है; अतः साहित्य में प्रेम का निर्वाह अतीव आवश्यक है।

प्रेम-भावना को इतना कलुषित बना दिया गया है कि हमारे उदीयमान कलाकार प्रेम में अशान्ति और दुःख के सिवाय और कुछ नहीं देखते। वे मानव-जीवन, प्रेम और शान्ति, इन तीनों को एक साथ नहीं देख सकते। विगत प्रकरण में हमने फ़्रेञ्च-कलाविदों की प्रेम सम्बन्धिनी भावना का दिग्दर्शन कराया है। मोपाँसा की दृष्टि में प्रेम में 'विषय-वासना' है। उसमें 'ईर्ष्या', 'सन्देह' और 'बेचैनी' है। उसकी धारणा यह है कि 'प्रेम से मन चञ्चल हो जाता है, ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय दोनों ही शिथिल पड़ जाती हैं, और मस्तिष्क में घबराहट हो जाती है।' 'प्रेम' भयङ्कर और कठोर है। वह 'प्रत्यक्ष दूषित और दूषक भी है।' यह मोपाँसा की, जो फ़्रेञ्च-कला का सर्वश्रेष्ठ कलाकार माना जाता है, प्रेम-भावना है।

वास्तव में यह प्रेम नहीं है, इसका नाम वासना है। इसलिए विशुद्ध, विमल और पुनीत प्रेम को 'दूषित' और 'दूषक' कहना महा अज्ञान और भ्रान्ति है। खेद का विषय है कि हमारे अधिकांश कहानी-लेखक अपनी कहानियों में इसी प्रेम-भावना का प्रदर्शन करते हैं। एक हिन्दी कहानी-लेखक के प्रेम की व्याख्या सुनिए:—

"प्रेम वह ठग है, धोखा है, फ़रेब है, छलिया है, जो भोली-भाली स्त्रियों को, विलास की भूखी-प्यासी विधवाओं को, पानी और ख़ुराक, घर और आराम, समवेदना और सहानुभूति के डोरे डाल कर मर्दों के उस जाल में फँसा देता है, जिसमें फँस कर कुछ तो तड़प-तड़प कर मर जाती हैं और कुछ अपना शरीर बेंच कर जीवन के दिन बिताती हैं।"*

यूरोप और अमेरिका में इस प्रकार की काम-लीला के दृश्य दैनिक जीवन की सामान्य घटना है। यदि उन देशों के लेखक संशोधन करने के उद्देश्य से अपनी कृतियों में कामुक मनोविकारों का प्रदर्शन करें तो क्षम्य भी है। परन्तु भारतवर्ष में, प्रेम-भावना में काम और व्यभिचार का आरोप करना अभिप्रेत नहीं है। इस मलीन मनोवृत्ति का कारण यह है कि हमारी सौन्दर्य-भावना अत्यन्त कलुषित होगई है और इसीलिए उसका प्रभाव प्रेम-भावना पर भी पड़ा है।

कला का उद्देश्य सौन्दर्य के आदर्श को प्रत्यक्षीभूत करना होता है। इस दृष्टि से कहानी में भी सौन्दर्य की सरस सृष्टि की जाती है। यह सौन्दर्य बाह्य प्रकृति

* "प्रेम क्या है?" कहानी 'सरोज' मासिक पत्र कलकत्ता, असाढ़ सं० १९८५ वि०।

में रहता है और अन्तरङ्ग प्रकृति में भी रहता है। कहानियों में वाह्य सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिए भगीरथ-प्रयत्न किया जाता है। यहाँ तक कि रमणी के सुन्दर अङ्गों की उपमा देने में बेचारे उपमान भी हार मान बैठे हैं। परन्तु अन्तरङ्ग प्रकृति की उपेक्षा अनभिप्रेत है। क्योंकि आत्मा के सौन्दर्य का प्रत्यक्षीकरण तो अन्तरङ्ग चित्रण द्वारा ही सम्भव है। रमणी के चन्द्र-वदन, कमल-लोचन, विम्बोष्ठ, कीर-नासिका, चम्पक-कलिका से कर्णद्वय आदि की अपेक्षा उसके शील, सदाचार तथा उदात्त मनोभावों की अभिव्यक्ति विशेष मूल्यवान है। जिस कहानी में वाह्य और अन्तरङ्ग सौन्दर्य के पूर्ण सामञ्जस्य का निर्वाह किया जाता है, वह हमारी रागात्मिका प्रकृति में संशोधन करती है; हमारे मनोविकारों का परिष्कार करती है तथा मानवी हृदय में दिव्य भावों की प्रगतियों को निर्बल पड़ने से बचाती है।

जो प्रेम-भावना शारीरिक सौन्दर्य पर निर्भर रहेगी, उसमें उच्च शील के उत्कर्ष के लिए अवसर ही नहीं रहता। प्रेमी अपने प्रेम को उसी समय तक क़ायम रखता है, जब तक कि शारीरिक सौन्दर्य में क्षीणता नहीं आ जाती। शारीरिक सौन्दर्य नश्वर है; शारीरिक सौन्दर्य देश, समय और स्थिति पर निर्भर है। परन्तु प्रेम अमर है; वह देश, काल और स्थिति के बन्धन में नहीं है। साहित्याचार्य पण्डित लोकनाथ सिलाकारी, साहित्य-रत्न का कहना है कि—"प्रेम भावना की वस्तु होने से स्थूल जगत की वस्तु नहीं है। प्रेम आध्यात्मिक है। एवं जब प्रेम एकनिष्ठ हो—अव्यभिचारी न हो—तभी वह प्रेम कहलाता है। ऐसा प्रेम तो प्रेम की सिद्धावस्था में उन्नत श्रेणी में होता है और उसमें लौकिक नीति के व्यवहार और कर्म का बन्धन नहीं रह जाता। ध्यान रहे कि लौकिक धर्म और नीति के स्थूल आचारों की आवश्यकता मनुष्य को तब तक है, जब तक वह उन्नत भाव में न पहुँच जाय।"※

सौन्दर्य क्या है, इस विषय में एक पाश्चात्य सौन्दर्य-शास्त्री लिखता है:—

"The deeper the mind penetrates into the facts of Aesthetics, the more they are perceived to be based upon an ideal identity between the mind itself and things. At a certain point the harmony becomes so complete and the finality so close that it gives us actual emotion. The beautiful then becomes sublime. The soul rises into the true mystic state and touches the absolute."

—E. RECIJAC, (R. N. P. 72).

अर्थात्—"हम सौन्दर्य-शास्त्र के तथ्यों पर जितनी ही गहराई से विचार करते हैं, उतना ही हमारे सामने यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका अस्तित्व द्रष्टा (मन) और हृदय की आदर्शपूर्ण एकता पर निर्भर है। एक ख़ास सीमा पर जाकर यह सामञ्जस्य इतना घनिष्ठ हो जाता है कि हमारे मन में सच्ची भावना की सृष्टि करता है। ऐसे समय वह सुन्दर ही सत्य बन जाता है और अन्तःकरण एक रहस्य और आनन्द की अवस्था को पहुँच कर 'सम्पूर्ण' का स्पर्श करता है।"

यहाँ तक जो विवेचन किया गया है उसका सारांश यह है कि प्रेम अमर है; प्रेम में अनन्त आशा और प्रतीक्षा के लिए स्थान है; उसमें मिलन की तीव्र उत्कण्ठा और आत्मिक शान्ति का सुखद सन्देश है। परन्तु प्रेम में निराशा, व्याकुलता, दुःख, अशान्ति के लिए स्थान नहीं है और भोग-विलास तथा काम से तो प्रेम सर्वथा अछूता है। शुद्ध सौन्दर्य विरोध और दुःख नहीं, प्राण-प्राण में सामञ्जस्य स्थापित करता है और दुःखी हृदय के उजड़े उपवन में बसन्त-समीर के झोंकों का प्रसार करता है।※

※ 'सम्पादकीय वक्तव्य' 'प्रेमा' पत्रिका का श्रृङ्गार-रसाङ्क, सम्पादक साहित्याचार्य पं० लोकनाथ सिलाकारी, साहित्यरत्न। पृष्ठ ६४६ (अप्रैल-मई १९३२ ई०)

※ स्वीटज़रलैण्ड के महाकवि 'नोबुल-पुरस्कार' के विजेता Carl Spitteler ने अपने 'Laughing Truths' नामक ग्रन्थ में भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किए हैं:—

" . . . It revives and consoles the grief-striken soul. All beauty reconciles and emancipates."

अब हम यह विचार करना चाहते हैं कि कहानियों में प्रेम का निर्वाह कहाँ तक औचित्यपूर्ण है तथा आदर्श प्रेम का निर्वाह कहाँ तक सम्भव है।

अनेक उत्कृष्ट हिन्दी लेखकों ने प्रेम की—सौन्दर्य की—उत्कृष्ट अभिव्यक्ति की है।

इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कहानियों में, यदि लेखक चाहें, तो उस प्रेम और सौन्दर्य की अभिव्यक्ति बड़ी उत्तमता से हो सकती है, जिसका हमने ऊपर विवेचन किया है। कहानियों में अशान्ति और निराशा इसलिए मिलती है कि उनमें यौवन की मादकता से पूर्ण प्रेम की अभिव्यञ्जना होती है। जब तक यौवन की मादकता से ओत-प्रोत विलासी प्रेम को मानव-भाव-मन्दिर से निकाला नहीं जायगा, तब तक पुनीत प्रेम के गम्भीरतम और उत्कृष्ट भावों का विकास सम्भव नहीं। और जब तक कहानियों में उदात्त भावों—कर्तव्य-परायणता, दया-दाक्षिण्य, वीरता, त्याग, हृदय-विशालता, श्रद्धा, भक्ति, सम्मान—को स्थान नहीं मिलेगा, तब तक सुरुचि-प्रेमी पाठकों के लिए प्रेम-कहानियाँ (Love Stories) विदेशी-वस्तु के समान बहिष्कृत रहेंगी।

क्या कहानी की सफलता के लिए प्रेम का निर्वाह अनिवार्य है? इसका उत्तर यह है कि प्रत्येक कहानी के लिए प्रेम-तत्व आवश्यक नहीं है और न प्रेम के ज़बरदस्ती प्रयोग से कहानी में सौन्दर्य ही आता है। हमारी अनुमति में यौवन की मादकता से ओतप्रोत 'प्रेम' (इस प्रेम में काम-वासना रहती है) का कहानी में प्रयोग न करना ही वाञ्छनीय है। पाश्चात्य देशों के साहित्य-सेवी समालोचकों तथा कहानी-लेखकों का भी विश्वास है कि यौवनपूर्ण प्रेम का निर्वाह ही न करना उत्तम है।*

एक बार इटली के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार Manyoni से यह प्रश्न किया गया कि आपके उपन्यासों से प्रेम-तत्व के अभाव का क्या कारण है, तो उसने इस प्रकार उत्तर दिया :—

"Because I am of opinion that we must not speak of love in a way to lead others to that passion . . . I believe that love is necessary in this world, but also that there will always be a sufficient amount of it; we need not therefore take the pains of cultivating it in others, for in cultivating it one helps only to arouse it where it is not wanted. There are other sentiments which the world is in more need of, and a writer may according to his ability, spread somewhat more in the heart of man; such as pity, love of mankind, a kindly disposition, mercifulness and self-denial. These sentiments cannot be too numerous, and all praise to the writers who attempt to increase their strength among men.

× × ×

I am so convinced that if by a miracle, someday, I should be inspired with the most eloquent love-pages that man has ever written, I should not even take pen to get them on paper so certain am I that I should regret it."

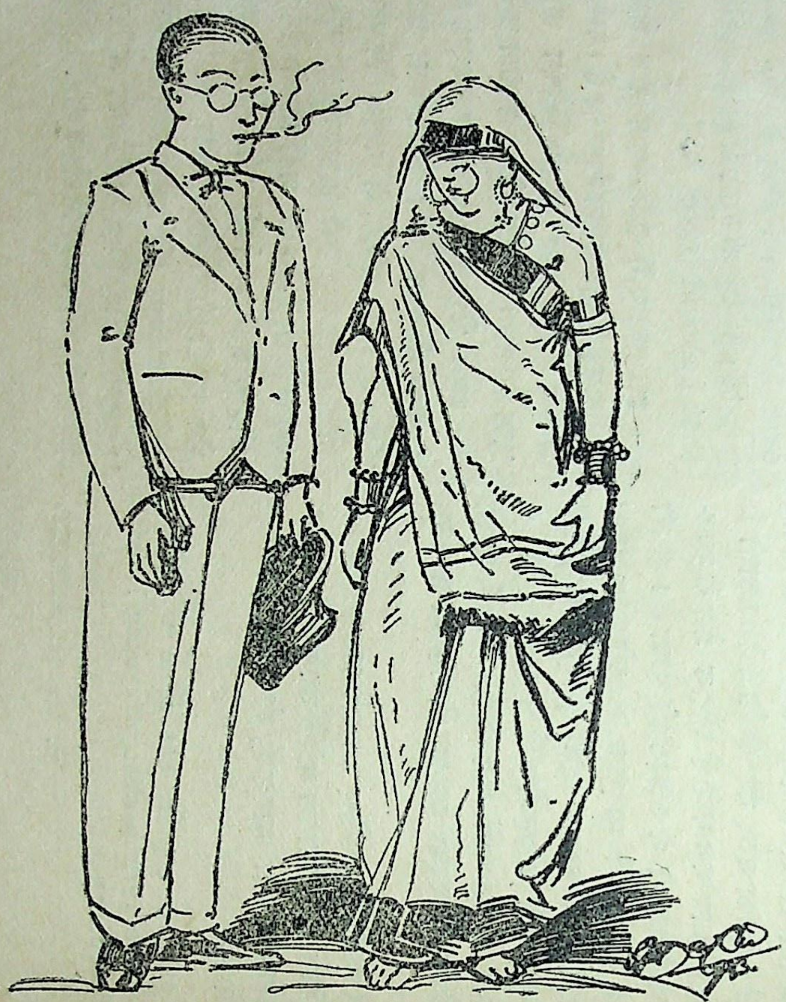
इस मन्तव्य में चरम-पक्ष पर ज़ोर दिया गया है; अर्थात् यह विचार चरमपन्थियों का है। परन्तु इस कथन में तथ्य है; वह तथ्य जिसका विवेचन ऊपर किया जा चुका है। अतः पुनरुक्ति की आवश्यकता नहीं है।

हमने जिस विमल, आनन्द-स्वरूप, आध्यात्मिक प्रेम का विवेचन किया है, उसका, हमारी हार्दिक इच्छा है, प्रेम-कहानियों में निर्वाह होना चाहिए। हमने निम्नलिखित कहानियों में प्रेम-भावना को अति दिव्य रूप में देखा है—डॉ० धनीराम जी प्रेम की 'डोरा', श्री० सूरजबल शर्मा की 'वीर-प्रतिज्ञा', आचार्य चतुरसेन शास्त्री की 'सिंहगढ़ आया, पर सिंह गया', श्री० अवध उपाध्याय की 'ब्रह्मचर्याश्रम' कहानियों में लोक-रञ्जनकारी और विश्व-शान्ति की प्रतिष्ठा करने वाले विमल प्रेम का अच्छा निर्वाह हुआ है।

* Not only the critics, but some writers of fiction believe that passion of young love is a subject best omitted.

—E. M. ALBRIGHT.

वर्तमान समाज के कुछ अपूर्व जोड़े



पति केम्ब्रिज गुरुकुल के स्नातक, जेण्टिलमैन उदार।
पत्नी घूँघट-पट नथवाली, अच्छर हीन—गँवार !



ये विंशति शताब्दि की विदुषी, सुषमा-सुरभित गात।
वे मुचड़ू गोबर-गनेस जी, करै न जानें बात !

वर्तमान समाज के कुछ अपूर्व जोड़े



श्रीमती लाठी सी लम्बी, पति जी कोल्हूराम।
मानों गङ्गा औ' मदार की जोड़ी बनी ललाम।



ये ताड़िका-सहोदर लम्बे, मरकट-वदन विशाल।
वे मानों गठरी गँवार की, या सजीव फुटबाल !

विश्व-रचना

[श्री० सत्यभक्त]

जब हम 'विश्व' शब्द का उच्चारण करते हैं तो हमारा आशय प्रायः अपनी पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा तथा तारागण से होता है। जब हम इन आकाश-स्थित विशाल पिण्डों पर दृष्टि डालते हैं तथा उनकी आश्चर्यजनक रचना पर ध्यान देते हैं तो स्वभावतः हमारे मन में यह प्रश्न उठता है कि उनकी उत्पत्ति कैसे हुई?

इस सम्बन्ध में सबसे पहले एक सिद्धान्त समझ लेने की आवश्यकता है। संसार में किसी भी वस्तु की उत्पत्ति शून्य से नहीं हो सकती। हमको यह मानना ही पड़ेगा कि पृथ्वी, ग्रह तथा सूर्य आदि की रचना जिस उपादान से हुई है, वह अनादि काल से मौजूद है। हम केवल यही कल्पना कर सकते हैं कि सृष्टि-रचना के पूर्व यह सर्वथा अस्त-व्यस्त अवस्था में था और उसका प्रत्येक परमाणु एक दूसरे से असम्बन्धित रह कर शून्य आकाश में स्वतन्त्रतापूर्वक भ्रमण करता था। यह संसार के विकास की सबसे प्रथम और निम्न अवस्था है। ऐसी अवस्था दो मृत-पिण्डों के परस्पर टकराने से उत्पन्न होती है, जिसके परिणाम-स्वरूप केवल वे छिन्न-भिन्न ही नहीं हो जाते, वरन् पृथक्-पृथक् तत्वों के अणु भी नष्ट होकर एकाकार हो जाते हैं। इस प्रकार की एक घटना सन् १९०१ के फ़रवरी मास में देखने में आई थी, जब कि आकाश के उत्तरी भाग में दो मृत-पिण्ड छः सौ मील प्रति सैकिण्ड के वेग से आपस में टकराए और उनसे बड़ी तीव्र अग्निशिखा उत्पन्न हुई। इसके फल से कुछ ही महीनों में हमारे सौर-जगत के क्षेत्रफल से १५० गुना स्थान अत्यन्त सूक्ष्म तत्व से परिपूर्ण हो गया। इस घटना से हम इस सिद्धान्त पर उपनीत हो सकते हैं कि ये सूक्ष्म परमाणु ही जगत के आदि कारण हैं और उन्हीं से विश्व के छोटे-बड़े तथा विभिन्न प्रकार के समस्त पदार्थों की रचना होती है।

यह घटना एक और रहस्य पर भी प्रकाश डालती है। इससे विदित होता है कि जो प्राकृतिक शक्तियाँ इन पिण्डों के नाश का कारण हैं, उन्हीं शक्तियों के द्वारा फिर उनको नवजीवन प्राप्त होता है। इस रहस्य का उदाहरण हम अपने सांसारिक जीवन में भी देख सकते हैं, यद्यपि उसमें तथा विश्व-रचना की घटना में बाह्य दृष्टि से बहुत बड़ा अन्तर है। जब हमारे शरीरों की अधिक से अधिक वृद्धि हो चुकती है, तो धीरे-धीरे उनका ह्रास होने लगता है और अन्त में नाश हो जाता है। अगर वे स्वयम् बिना किसी की सहायता के अपनी परम्परा को स्थिर रखना चाहें तो यह असम्भव है। अपनी जाति का अस्तित्व बनाए रखने के उद्देश्य से एक अनिवार्य नैसर्गिक प्रेरणावश उनमें से दो विभिन्न लिङ्ग (Sex) के प्राणी परस्पर संयुक्त होते हैं और इसके फल से एक नवीन प्राणी की उत्पत्ति होती है, जो जाति की शृङ्खला को स्थिर रखता है। यही विश्वव्यापी प्रेम, जो सांसारिक जीवन की धारा को प्रवाहित रखता है, जड़ समझे जाने वाले तत्व में पाया जाता है। इसी आकर्षण द्वारा शून्य आकाश में निरुद्देश्य चक्कर लगाने वाले दो मृत-पिण्ड परस्पर सहयोग करते हैं और इसके फल से उनके गर्भ में प्रचण्ड उत्ताप उत्पन्न होता है, जो उनके परमाणुओं को स्वतन्त्र करके समस्त दिशाओं में फेंक देता है तथा नवीन जगत की रचना आरम्भ हो जाती है। वास्तव में ये पिण्ड, जिनको हम धरातल पर पाए जाने वाले जीवन के अभाव से मृत समझ लेते हैं, सर्वथा जीवनी-शक्ति-रहित नहीं होते। उनके गर्भ में 'रेडियम'

के समान महाशक्तिशाली तत्व प्रचुर परिमाण में उपस्थित रहता है, पर अत्यन्त भारी आवरण के कारण वह निष्क्रिय अवस्था में पड़ा रहता है। जब दो पिण्डों के टकराने से यह आवरण भङ्ग हो जाता है, तो उस शक्तिशाली तत्व के सुप्रकाशित परमाणु उसी प्रकार चारों तरफ़ फैल जाते हैं, जैसे किसी बीजों से भरे फल के चिटकने पर बीज दूर-दूर जाकर गिर जाते हैं।

शून्य आकाश के एक भाग में सर्वत्र बिखरे हुए परमाणुओं (Electrones) का यह समूह ही, जो दूरदर्शक यन्त्र द्वारा हमको धुएँ के बादल के रूप में दिखलाई पड़ता है, नवीन जगत् की आदि अवस्था है। यद्यपि किसी नर-तन-धारी ने इतनी आयु नहीं पाई है कि वह किसी विशेष पिण्ड के परमाणुओं में होने वाले क्रमशः परिवर्तनों को और उनसे स्थूल जगत् की उत्पत्ति को अपनी आँखों से देख सके, क्योंकि इन परिवर्तनों में लाखों-करोड़ों वर्षों का समय लगता है। पर आकाश-स्थित पिण्डों की संख्या अत्यन्त अधिक है और उनमें प्रत्येक अवस्था (Stage) के उदाहरण पाए जाते हैं। उनका क्रम से निरीक्षण करने से हम आसानी से पिण्डों में होने वाले परिवर्तन का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

अब प्रश्न यह होता है कि जब दो पिण्डों की टक्कर से शून्य आकाश परमाणुओं से भर जाता है, तो कौन सी शक्ति उनका इस प्रकार सञ्चालन करती है जिससे उनके द्वारा विभिन्न तत्वों तथा स्थूल जगत की उत्पत्ति होती है? इन परमाणुओं में एक ऐसी स्वाभाविक आकर्षण-शक्ति होती है, जिससे वे परस्पर मिल कर बड़े आकार में परिणत हो जाते हैं। अनेक परमाणुओं के मिलने से अणुओं की और उनके द्वारा संसार के भिन्न-भिन्न छोटे-बड़े पदार्थों की रचना होती है। एक छोटा सा पत्थर, जिसका बोझ केवल एक पैसे भर है, और हिमालय पहाड़, ये दोनों ही इन अणुओं से मिल कर बने हैं। इतना ही क्यों, आकाश में हम जितने सूर्य आदि ग्रह देखते हैं, जिनमें से बहुतों का आकार हमारी सम्पूर्ण पृथ्वी से सैकड़ों हज़ारों गुना बड़ा है, वे सभी इन्हीं परमाणुओं द्वारा बने हैं। इस प्रकार ये परमाणु जो इतने छोटे हैं कि हम उनकी कल्पना भी नहीं कर सकते, आकर्षण शक्ति के बल से इतना वृहद आकार धारण कर लेते हैं कि वह भी हमारी कल्पना से बाहर है। आरम्भ में इन परमाणुओं का समूह प्रकाशवान होता है और दूरबीन द्वारा वह चमकीले बादल के रूप में दिखलाई देता है। परन्तु जैसे-जैसे परमाणु एक-दूसरे से मिल कर घनीभूत होते जाते हैं तथा उनकी गति में कमी पड़ती जाती है, वैसे-वैसे ही उनका प्रकाश कम होता जाता है और अन्त में उसका दिखलाई पड़ना बन्द हो जाता है। परन्तु घनीभूत होने का कार्य बराबर जारी रहता है और आकर्षण-शक्ति के प्रभाव से परमाणुओं का प्रत्येक समूह सङ्कुचित होने की चेष्टा करता रहता है। घनीभूत होने के कारण पिण्ड की गर्मी भी बढ़ती जाती है और कुछ समय के बाद उसके प्रभाव से वह जलती हुई आग का गोला बन जाता है। अब वह फिर चमकने लगता है, परन्तु इस चमक में तथा प्रारम्भिक अवस्था की चमक में, जब पिण्ड धुएँ के रूप में होता है, बहुत अन्तर होता है। घनीभूत होने से अब पिण्ड उतनी शीघ्रतापूर्वक सङ्कुचित नहीं हो सकता, जितना कि धुएँ की अवस्था में होता था। फल यह होता है कि धीरे-धीरे उसकी गर्मी कम पड़ जाती है। वह शून्य आकाश में जितनी गर्मी फेंकता है, उतनी गर्मी उसके भीतर उत्पन्न नहीं होती, इस कारण वह क्रमशः ठण्डा होने लगता है। यह ठण्डा होने की क्रिया आरम्भ में ऊपरी सतह पर होती है। पिण्ड की अवस्था में परिवर्तन होते-होते ऐसा समय आता है, जब कि वायु-रूपी उपादान द्रव-रूप धारण कर लेता है। यह क्रिया प्रायः उसी भाँति होती है, जिस प्रकार हम अपनी पृथ्वी पर भाप से जल बनते देखते हैं। उस काल में प्रत्येक पिण्ड गैस और द्रव का गोला होता है; जिससे अग्नि की लपट निकलती रहती है। वर्तमान समय में हमारे सूर्य की यही अवस्था है और किसी समय हमारी पृथ्वी भी इसी दशा में थी।

यह कोई नियम नहीं है कि दो मृत-ग्रहों की टक्कर से जिस बादल के समान पदार्थ, जिसे 'नेबुला' कहा जाता है, की उत्पत्ति होती है, उससे केवल एक ही पिण्ड की उत्पत्ति हो। वरन् इस प्रकार की घटना के फल से एक सम्पूर्ण सौर-लोक की उत्पत्ति होती है। कभी-कभी इस प्रकार का नेबुला हज़ारों पिण्डों में बँट

जाता है और कभी केवल दस-बीस पिण्डों में। अँधेरी रात में हमको जो आकाश-गङ्गा दिखलाई पड़ती है, वह इस प्रकार के अनगिनती सूर्यों तथा उनके ग्रह और उपग्रहों से भरी हुई है। इस प्रकार के सौर-लोकों में मूल उपादान का एक बड़ा भाग केन्द्र-रूप से बीच में बना रहता है और शेष छोटे पिण्ड उसके इर्द-गिर्द चक्कर लगाते हैं। इन पिण्डों का न तो कोई निश्चित आकार होता है और न केन्द्र से उनकी दूरी में किसी प्रकार का सामञ्जस्य पाया जाता है। बात यह है कि इन विभिन्न पिण्डों की उत्पत्ति दो पिण्डों की टक्कर से उत्पन्न होने वाली हलचल के कारण होती है और ऐसी हलचल की अवस्था में एकरूपता अथवा समानता की आशा रखना व्यर्थ है। यह भी आवश्यक नहीं है कि इन समस्त पिण्डों की भूमि-रचना एक सी हो अथवा उनमें एक प्रकार की उद्भिज और प्राणिज सृष्टि पाई जाती हो। परिस्थिति के अनुसार प्रत्येक पिण्ड के अणुओं का सङ्गठन भिन्न प्रकार का होता है और उनसे ऐसे पदार्थों की उत्पत्ति हो सकती है, जिनकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते।

जब हमारी पृथ्वी गैस और जलते हुए द्रव पदार्थ का गोला बन जाती है, तो द्रव पदार्थ भीतरी गर्मी के ज़ोर से वाष्प बन कर आकाश में उड़ जाता है और वहाँ से, ठण्डा होकर, मेंह के रूप में पुनः पृथ्वी पर गिरता है। परन्तु भूमि की गर्मी के कारण वह शीघ्र ही फिर वाष्प रूप में परिवर्तित हो जाता है। यह क्रिया निरन्तर बहुत बड़े परिमाण में जारी रहती है और इसके फल से धीरे-धीरे पिण्ड की गर्मी कम होती जाती है। आरम्भ में द्रव पदार्थ का, जो पिघले हुए लोहे की तरह जलता होता है, परिमाण कम होता है और भीतर की गैस उसे बार-बार छिन्न-भिन्न करके बाहर निकालती रहती है। परन्तु कुछ काल में द्रव पदार्थ का परिमाण बढ़ जाता है और वह फल के ऊपरी छिलके की भाँति समस्त पिण्ड को आच्छादित कर लेता है। इस छिलके के भीतर सर्वत्र उष्ण गैस भरी रहती है, जो कभी-कभी विशेष ज़ोर पाने पर द्रव पदार्थ के पतले अंश को छिन्न-भिन्न करके बाहर निकल पड़ती है। जब कि वर्तमान समय में हमारी पृथ्वी के ठोस हो जाने और उसके ऊपर कई मील मोटा पत्थर और मिट्टी का कठोर आवरण पड़ जाने पर भी अन्तरस्थ द्रव पदार्थ उसे तोड़ कर ज्वालामुखी के रूप में प्रकट हो जाता है, तो उस प्राचीन काल में, जब कि यह आवरण केवल द्रव रूप में था, ऐसी घटना नित्य ही होती रहती होगी, यह समझ सकना कठिन नहीं है। आरम्भ में यह बात असम्भव सी प्रतीत होती है कि वायु-रूपी पदार्थ से बना हुआ गोला द्रव पदार्थ के आवरण का भार अधिक समय तक सँभाल सके। इसका कारण यह होता है कि इस प्रकार के बृहदाकार गोले में ऊपरी आवरण का इतना अधिक दबाव पड़ता है, जिससे उसकी गैस को बहुत सङ्कुचित होना पड़ता है। इसलिए यद्यपि अतिरिक्त उष्णता के कारण गैस वायु-रूप में ही बनी रहती है, परन्तु वह द्रव की अपेक्षा भी भारी हो जाती है। फिर यदि द्रव पदार्थ का कोई भाग ठण्डक पाकर अधिक भारी हो जाता है, तो वह नीचे चला जाता है और वहाँ गर्मी पाकर फिर वाष्प के रूप में परिवर्तित हो जाता है।

इस प्रकार पिण्ड के ऊपर जलते हुए द्रव पदार्थ का एक स्थायी आवरण बन जाता है। हमारी पृथ्वी एक समय इस प्रकार के द्रव पदार्थ के भीतर डूबी हुई थी, इसका प्रमाण हमको धार्मिक ग्रन्थों में पाई जाने वाली कथाओं से ही नहीं मिलता, वरन् ज़मीन को अधिक गहराई तक खोदने से भी इसकी पुष्टि होती है। वैज्ञानिकों ने खोज द्वारा सिद्ध किया है कि पृथ्वी के प्रायः सभी पहाड़ों में ऐसे पत्थर पाए जाते हैं जो ज्वालामुखी से निकलने वाले लावा से बने हैं। इससे विदित होता है कि किसी समय समस्त पृथ्वी अवश्य ही लावा से आच्छादित होगी। इसमें भी सन्देह नहीं कि अब भी पृथ्वी का अन्तरस्थ भाग गैस के रूप में है और उसके ऊपर लावा भरा है। यह भीतरी भाग आज भी पृथ्वी के ऊपरी भाग के मिट्टी-पत्थर आदि की अपेक्षा भारी है। क्योंकि समस्त पृथ्वी का वज़न करने से वह लोहे के समान भारी सिद्ध होती है। पर मिट्टी और पत्थर आदि लोहे से हलके हैं, इसलिए स्वभावतः यह मानना पड़ेगा कि पृथ्वी के भीतर की गैस लोहे की अपेक्षा भारी है। दूसरी बात यह है कि जब हम पृथ्वी को खोदने लगते हैं तो प्रत्येक ३३ गज़ के पश्चात् एक डिग्री गर्मी बढ़ जाती है। इस प्रकार हिसाब लगाने से पृथ्वी

के केन्द्र में इतनी गर्मी का होना सिद्ध होता है कि उसमें कोई वस्तु गैस के सिवा और किसी रूप में स्थिर रह ही नहीं सकती। इन परीक्षाओं से भी हमको इसी निर्णय पर पहुँचना पड़ता है कि विश्व में भ्रमण करने वाले पिण्डों का अन्तरस्थ भाग गैस के रूप में होता है।

जब पृथ्वी का द्रव आवरण कुछ और ठण्डा हो जाता है तो उसके ऊपर उसी प्रकार की मलाई सी जम जाती है, जैसा हम लावा की धारा के ठण्डा होने पर जमते देखते हैं। यह ठोस आवरण रवादार होने से लावा की अपेक्षा हलका होता है और उसके ऊपर उसी प्रकार तैरता रहता है जैसे बर्फ़ पानी पर तैरती है। यह सच है कि कुछ पदार्थ ठोस अवस्था में द्रव अवस्था की अपेक्षा भारी हो जाते हैं। ऐसे पदार्थ उसी प्रकार द्रव पदार्थ में डूब कर पुनः द्रव बन जायँगे जैसा कि हम भारी द्रव पदार्थ के गैस में डूब कर गैस बन जाने के उदाहरण में देख चुके हैं। इस सिद्धान्तानुसार पृथ्वी के द्रव आवरण का ठोस आवरण की अपेक्षा भारी होना आवश्यकीय जान पड़ता है। ठोस पदार्थ के टुकड़े द्रव पदार्थ की लहरों में इधर-उधर बहते फिरते हैं और एक-दूसरे से सम्मिलित होकर धीरे-धीरे महाद्वीपों की सृष्टि करते हैं। इस अवस्था को प्राप्त होने पर विश्व के प्रत्येक पिण्ड का कुछ भाग चमकीला और कुछ धुँधला दिखलाई देता है। और चूँकि पिण्ड आकाश में निरन्तर चक्कर लगाता रहता है, इसलिए उसके ये चमकीले और धुँधले भाग क्रम से अन्य पिण्डों के सम्मुख आते रहते हैं। यदि ऐसे पिण्ड को बड़ी दूरी से देखा जाय, जितनी दूरी पर विभिन्न तारे उपस्थित हैं, तो उसका प्रकाश क्रम से घटता-बढ़ता दिखलाई देगा। प्रकाश का यह घटना-बढ़ना कुछ पिण्डों में नियमित रूप से होता है और कुछ में थोड़ा अन्तर पड़ता रहता है। जिनमें अन्तर पड़ता रहता है, उनका ठोस भाग अभी तक एक स्थान में स्थिर नहीं हुआ है, वरन् लावा की लहरों से इधर-उधर हटता रहता है। इसी कारण-वश कितने ही तारे कुछ समय के लिए उदय और कुछ समय के लिए अस्त होते रहते हैं। ऐसा होने के समय उनकी रोशनी घट जाती है और उनका साधारण रूप से आँख द्वारा दिखलाई पड़ना बन्द हो जाता है।

जब पिण्ड का ऊपरी भाग ठोस हो जाता है, तो उसका प्रकाश बहुत कम पड़ जाता है और उसके ऊपर धुएँ और गैस के बादल छाए रहते हैं, जो या तो ठोस सतह से ही निकलता है अथवा सतह को तोड़ कर भीतर से प्रकट हो जाता है। समय-समय पर द्रव पदार्थ के ज़ोर से ऊपरी सतह फट जाती है और एक बड़ा भूमि-खण्ड लावा से भर जाता है। यह लावा इतना अधिक होता है कि उसके सूखने में सैकड़ों-हज़ारों वर्ष लग जाते हैं। हमारी पृथ्वी पर, अब भी लावा की दो झीलें मौजूद हैं, जो ज्वालामुखी के 'क्रेटरों' के रूप में हैं। उनमें से एक अमेरिका के पास हवाई टापू में है और दूसरी सिसली (इटली) में। ये पृथ्वी पर की अनगिनती प्राचीन लावा की झीलों के अवशेष मात्र हैं।

जब तक पृथ्वी का ठोस आवरण स्थायी नहीं होता तब तक उसके छोटे-बड़े टुकड़े लावा की लहरों से इधर-उधर घूमते रहते हैं। ये लहरें कुछ तो सूर्य के इर्द-गिर्द पृथ्वी के घूमने से और कुछ ऊपर के पदार्थ के नीचे जाने तथा नीचे के पदार्थ के ऊपर आने से उत्पन्न होती हैं। कभी-कभी ये लहरें आपस में टकरा कर ठोस पदार्थ के टुकड़ों को ऐसे वेग से धक्के मारती हैं कि वे एक जगह इकट्ठे होकर एक बड़े ढेर के रूप में हो जाते हैं और यदि उसी प्रकार बने रहते हैं, तो भूमण्डल की भली प्रकार रचना हो जाने पर पहाड़ों का रूप धारण कर लेते हैं।

इस प्रकार जब पृथ्वी की ठोस सतह कुछ स्थायी हो जाती है और लावा उसे पूर्णतया नष्ट नहीं कर सकता तो ज्वालामुखी पर्वतों का युग आरम्भ होता है। समस्त भूमण्डल ऐसे पर्वतों से भर जाता है और उनसे लावा निकल-निकल कर पृथ्वी पर फैलता रहता है तथा वहीं जम कर ठोस आवरण को और भी पुष्ट करता रहता है। इन ज्वालामुखियों की अधिकता और संख्या का अनुमान हमको तब होता है, जब हम जानते हैं कि चन्द्रमा में, जिसका आकार हमारी पृथ्वी की अपेक्षा बहुत छोटा है, एक लाख ज्वालामुखी हैं, जिनमें से प्रत्येक पृथ्वी में आजकल पाए जाने वाले ज्वालामुखियों से कहीं अधिक बड़ा है। परन्तु संख्या की अधिकता तथा पृथ्वी की सतह के अधिक दृढ़ न होने के कारण उस युग के ज्वालामुखियों के फूटने का फल अधिक भयङ्कर नहीं होता और उससे वर्तमान समय की भाँति भूकम्प उत्पन्न नहीं होते।

अब जैसे-जैसे पृथ्वी की सतह मोटी होती जाती है, ज्वालामुखियों की संख्या घटती जाती है, पर उनके फूटने से बड़े ज़ोर का धक्का लगता है जिससे प्रायः अनेक नगर-ग्राम नष्ट हो जाते हैं। तो भी अब भूमण्डल पर ऐसा ज्वालामुखी शायद ही कोई बचा होगा, जिसका सम्बन्ध पृथ्वी के मूल द्रव-आवरण से हो। आजकल के ज्वालामुखियों का लावा प्रायः किसी छोटे भण्डार से, जो प्राचीन काल से विभिन्न स्थलों में एकत्रित हो गया है, आता है। ये भण्डार छोटे होने पर भी सैकड़ों मील के घेरे में फैले होते हैं और उनमें इतना लावा भरा होता है कि प्रति दिन ख़र्च होने पर भी वह बहुत वर्षों तक चल सकता है। इनके अतिरिक्त पृथ्वी के कितने ही प्राचीन ज्वालामुखी अब गर्म पानी के सोतों और 'गेसर्स' के रूप में परिवर्तित हो गए हैं।

हम बतला चुके हैं कि आरम्भ में किस प्रकार लावा की लहरों से ठोस आवरण के टुकड़ों के इकट्ठे हो जाने से पर्वतों की उत्पत्ति हुई। पर ये प्राचीन पर्वत वर्तमान समय में पृथ्वीतल पर दिखलाई नहीं देते, वरन् अधिकांश में बड़े-बड़े पर्वतों की नींव अथवा जड़ में पड़े हुए हैं। आजकल पर्वतों का जो भाग हमारे देखने में आता है, वह प्रायः बहुत काल पश्चात् पानी द्वारा बना है। पानी से बने पत्थरों और आग से बने पत्थरों में इतना अधिक भेद होता है कि एक साधारण मनुष्य भी उनकी पहिचान कर सकता है। आग से बने पत्थर जहाँ कणों अथवा रवों के रूप में होते हैं, पानी से बने पत्थर पर्त पर पर्त जम कर तैयार होते हैं। इसलिए वैज्ञानिकगण सहज में इस बात का पता लगा लेते हैं कि पहाड़ का कितना भाग पानी से बना है और कितना आग से।

संसार में पानी की उत्पत्ति तभी हो गई थी, जब गैस का द्रव रूप में परिवर्तन होना आरम्भ हुआ था। पर उस समय वह पृथ्वीतल के बजाय वाष्प-रूप में वायु-मण्डल में अवस्थित था, क्योंकि पृथ्वी की सतह और कुछ दूर तक की हवा इतनी अधिक गर्म थी कि उसमें पानी के द्रव-रूप में ठहर सकने की सम्भावना ही न थी। इसलिए सम्भव है कि आरम्भ में हज़ारों वर्ष तक मेंह बरसते रहने पर भी उसकी एक बूँद भी पृथ्वीतल तक न पहुँची हो और वह गर्म हवा में पहुँचते-पहुँचते भाफ़ बन कर उड़ गया हो। पर अन्त में जब पृथ्वी के ठोस आवरण की बहुत सी गर्मी निकल गई तो उबलता हुआ पानी गढ़ों में एकत्रित हो गया। अब पृथ्वीतल पर आग और पानी का भीषण द्वन्द्व युद्ध आरम्भ हुआ, जो अभी तक जारी है। पर इसमें पानी की बहुत-कुछ विजय हो चुकी है और हम वर्तमान काल में पृथ्वी की जो सुन्दर आकृति देख रहे हैं वह उसी की करामात है। गर्म पानी के गढ़े और झीलें धीरे-धीरे समुद्रों के रूप में परिवर्तित हो गए और इस समय उन्होंने भूमण्डल के अधिकांश भाग को आच्छादित कर लिया है। इस प्रकार हमारी पृथ्वी अब कई आवरणों से ढकी हुई है। उसका अन्तरस्थ भाग गैस के रूप में है। उसके ऊपर जलते हुए द्रव पदार्थ का आवरण है। इस द्रव पदार्थ को ठोस आवरण ने घेर रक्खा है। यह ठोस आवरण पानी से ढका हुआ है। पानी के चारों तरफ़ वायु का आवरण है। भूमण्डल के इस अद्भुत सङ्गठन को समझने के लिए यह जान रखना आवश्यक है कि इन विभिन्न आवरणों की गुरुता भीतर की तरफ़ क्रमशः अधिक होती जाती है।

समुद्रों की उत्पत्ति से प्राचीन पहाड़ों में बहुत परिवर्तन होने लगा। उनकी गर्म लहरों से उनका एक-एक अंश टूट कर पानी में मिलने लगा। इन समुद्रों का पानी खनिज पदार्थों से भरपूर था। जैसे-जैसे पानी की गर्मी कम पड़ने लगी, ये खनिज पदार्थ भी घनीभूत होकर नीचे बैठने लगे। फिर समय-समय पर भूकम्प आदि प्राकृतिक उपद्रवों ने इन पदार्थों की तहों को उठा कर पहाड़ों की चोटी पर पहुँचा दिया। वहाँ मेंह के कारण वे फिर गलने लगे और उनका कुछ भाग तो पहाड़ों के अगल-बगल गिर कर जम गया और कुछ नदियों द्वारा फिर समुद्र में जा पहुँचा। पहाड़ के जिन आग्नेय-पत्थरों पर मेंह का प्रभाव न पड़ा उनको बर्फ़ ने तोड़-फोड़ दिया। इस प्रकार पानी के द्वारा पृथ्वी का ठोस भाग एक स्थान से दूसरे स्थान में परिवर्तित होने लगा और वृक्षों तथा जीवों के निवास योग्य मैदानों तथा घाटियों की उत्पत्ति हुई।

पृथ्वी के उस प्राचीन युग में, जिसमें महाद्वीपों, पहाड़ों और समुद्रों की रचना हुई थी, उसके चारों तरफ़ का वायुमण्डल इतना घनीभूत था कि उसमें होकर आकाश-स्थित अन्य पिण्डों का प्रकाश भीतर

नहीं आ सकता था। उस समय पृथ्वीतल पर जो कुछ प्रकाश था वह केवल ज्वालामुखियों और बहते हुए लावा का था। उस अवस्था में किसी जीवित प्राणी के अस्तित्व की सम्भावना न थी। उस समय वायुमण्डल ज्वाला-मुखियों के वज्र-निनाद से परिपूर्ण रहता था और हवा में कार्बोनिक एसिड गैस, जो जीवधारियों के लिए विष है, बहुत बड़ी मात्रा में पाया जाता था। यह सच है कि यह कार्बोनिक एसिड गैस वृक्षों के लिए जीवनाधार है, पर उनके अस्तित्व के लिए प्रकाश की भी आवश्यकता है, जिसका उस युग में अभाव था। सम्भवतः उस समय सूर्य का भी अस्तित्व न था, अथवा वह अपनी आरम्भिक दशा में अत्यन्त क्षीण रूप में चमकता था। कुछ भी हो उसकी किरणें पृथ्वी के घनीभूत वायुमण्डल को भेद सकने में असमर्थ थीं। हमको स्मरण रखना चाहिए कि जिस युग की बात हम कह रहे हैं, उसे व्यतीत हुए कम से कम पचास करोड़ वर्ष हो चुके होंगे। आकाश-स्थित अन्य सूर्यों के निरीक्षण करने से हम यह कह सकते हैं कि उस समय हमारा सूर्य अब से बहुत अधिक बड़ा, पर अल्प प्रकाशयुक्त अवस्था में था और उससे गर्मी भी बहुत कम निकलती थी। यद्यपि उस समय भी वह हमारे सौर-लोक का केन्द्र था और हमारी पृथ्वी निरन्तर उसके इर्द-गिर्द चक्कर लगाती थी, परन्तु उसका महत्व पृथ्वी तथा अन्य ग्रहों के लिए कुछ भी न था। उस समय हमारी पृथ्वी में ही काफ़ी गर्मी थी और वह स्वयं एक सूर्य के रूप में थी जिसका अन्त पास आता जाता था। उस समय न ऋतुओं का अस्तित्व था, न गर्म और ठण्डे भूभाग पाए जाते थे और न रात-दिन का कोई भेद था। इस युग को भूतत्ववेत्तागण 'आर्केइक' युग के नाम से पुकारते हैं। इसी युग में उन प्राचीन आग्नेय चट्टानों का निर्माण हुआ था जिनका ज़िक्र हम कई बार कर चुके हैं। ये चट्टानें भूमण्डल में सर्वत्र अत्यन्त गहराई पर पाई जाती हैं। वैज्ञानिकों ने अनेक स्थानों पर उनकी परीक्षा की। पर कहीं उनमें चैतन्य अथवा अचैतन्य जीवधारियों का चिन्ह नहीं पाया जाता।

'आर्केइक' युग की ये चट्टानें कहीं-कहीं खनिज पदार्थों की पतली तह से ढकी हुई हैं। यह तह स्पष्टतः समुद्र के नीचे एकत्रित मिट्टी से बनी है। इन्हीं तहों में हमको सबसे प्रथम एक प्रकार के जीवधारी का पञ्जर प्राप्त होता है, जिसे अत्यन्त क्षुद्र श्रेणी का कीड़ा कहा जा सकता है। यह प्राणी वर्तमान समय में भूमण्डल पर पाए जाने वाले समस्त प्राणियों से भिन्न प्रकार का है और उस तरह के कीड़े अत्यन्त गहरे समुद्र में ही रह सकते हैं। इससे अगर हम यह अनुमान करें कि भूमण्डल पर जीवन का प्रथम आविर्भाव स्थल के बजाय जल में हुआ तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। परन्तु प्रश्न होता है कि वहाँ जीवन-तत्व कहाँ से पहुँचा? इतना ही क्यों, प्रत्येक व्यक्ति को यह भी जिज्ञासा होगी कि इस भूमण्डल पर, जो कुछ समय पहले अग्नि का भीषण समुद्र बना हुआ था और जिसमें अत्यधिक उष्णता के कारण जीवन के किसी 'जर्म' (कीटाणु) का बच सकना असम्भव था, जीवन-तत्व का उदय कैसे हुआ?

इसके उत्तर में कुछ लोग कहेंगे कि भूमण्डल पर जीवन का उदय अपने आप हुआ है। पर यह उत्तर ऐसा नहीं है जिसे सब लोग सहज में मान सकें। वैज्ञा-निकों के एक दल का मत है कि जब पृथ्वी की अवस्था इस योग्य हुई कि उस पर जीवधारियों का निर्वाह हो सके तो हवा, पानी और मिट्टी के रासायनिक संयोग से जीवों की उत्पत्ति स्वयमेव होने लगी। पर इस बात के मान लेने में कठिनाई यह है कि अचैतन्य अथवा मृत समझे जाने वाले तत्व में चैतन्यता कहाँ से आई? सृष्टि के मूल उपादान में जो स्वाभाविक गति मानी गई है और रासायनिक परिवर्तन द्वारा उसके जो रूपान्तर होते हैं उनसे प्रकृति की अन्य घटनाओं का तो समा-धान हो जाता है, पर चैतन्यता अथवा अनुभूति का गुण ऐसा है जिसकी उत्पत्ति गति द्वारा हो सकनी सम्भव नहीं जान पड़ती। कुछ जीवतत्व-विशारदों का कथन है कि संसार में कोई वस्तु मृत नहीं है और जीवन-तत्व सृष्टि के उपादान में आरम्भ से ही उपस्थित है। इस मत के अनुसार एक पत्थर में भी जान है और यदि उसे ठोका जाय तो वह इसे अनुभव करता है। पर उसका अनुभव करना अत्यन्त अपूर्व ढङ्ग का है। उसके कोई ऐसी इन्द्रिय नहीं है जिसके द्वारा वह अपनी अनुभूति को प्रकट कर सके। इस सिद्धान्त के अनुसार पेड़ों में भी अनुभूति को प्रकट करने का साधन अत्यन्त अल्प है और इसलिए कुछ समय पूर्व तक उनको अचैतन्य माना जाता था।

वैज्ञानिकों के इस मत में केवल एक त्रुटि यह है कि जिस प्रकार इसे असत्य सिद्ध नहीं किया जा सकता उसी प्रकार सत्य भी सिद्ध नहीं किया जा सकता। क्योंकि मनुष्य को ऐसा साधन प्राप्त हो सकने की सम्भावना नहीं है जिसके द्वारा पत्थर में जीवन-तत्व का निरीक्षण किया जा सके, और इसलिए यह बात भी निश्चयपूर्वक नहीं कही जा सकती कि उसे किसी प्रकार की अनुभूति होती है। उपर्युक्त मत के मानने वाले वैज्ञानिकों का कथन है कि विश्व की प्रत्येक वस्तु सरल से गूढ़ अथवा पेचीदा रूप ग्रहण करती जाती है और यह परिवर्तन विकास-सिद्धान्त के अनुसार बहुत धीरे-धीरे हुआ है। यह बात विश्व के पिण्डों, उन पर बसने वाले प्राणियों, चैतन्यता तथा मानवीय बुद्धि आदि प्रत्येक विषय में लागू होती है। पर इसके विपरीत कुछ लोगों का यह भी मत है कि जब यह पृथ्वी जीवधारियों के निवास योग्य ठण्डी हो गई तो एक चमत्कार अथवा करिश्मे द्वारा भूमण्डल पर जीवन-तत्व का उदय हुआ। क्योंकि यह स्पष्ट है कि जीवन-तत्त्व के 'जर्म' जलती हुई पृथ्वी में मौजूद न थे। इसलिए विश्व के समस्त विकास का आधार इस करिश्मे पर ही है। और सब घटनाएँ, जो इसके पहले और बाद में हुईं, किसी तरह समझी जा सकती हैं, यद्यपि वे भी अभी विवादरहित नहीं कही जा सकतीं।

ये तमाम बातें अनेकांश में धर्म-विश्वास की तरह जान पड़ती हैं। कोई भी पक्ष अपने मत को प्रमाणों द्वारा सिद्ध नहीं कर सकता। सब बातों पर विचार करने के पश्चात् यह मानना पड़ता है कि सृष्टि के उपादान तथा उसमें निहित गति के समान चैतन्यता अथवा जीवन-तत्त्व भी अनादिकाल से मौजूद है। इसी तीसरे तत्त्व को मानने से विश्व-रचना की समस्या सुलझ सकती है। परन्तु यह तीसरा तत्त्व कोई आधिभौतिक अथवा अति प्राकृत (Supernatural) द्रव्य नहीं है। यद्यपि वह अन्य दो तत्वों की अपेक्षा श्रेष्ठ है, परन्तु यह श्रेष्ठता वैसी ही है जैसे कि कोई कहे कि मस्तिष्क का केन्द्रीय स्नायु-मण्डल मांस-पेशियों के स्नायु-मण्डल से अधिक श्रेष्ठ है।

वास्तव में जीवन-तत्व की उत्पत्ति की यह कठिन समस्या इसलिए उत्पन्न होती है कि कुछ लोग यह समझ लेते हैं, हमारी पृथ्वी विश्व के अन्य पिण्डों से सर्वथा अलग है और केवल इसी पर जीवधारियों की स्थिति है। पर जब हम यह जान लेते हैं कि विश्व के समस्त पिण्डों की रचना एक ही भाँति होती है और उनका मूल उपादान कारण भी समान है तो यह कल्पना कर सकना कठिन नहीं कि अन्य पिण्डों में भी जीवधारियों की स्थिति होगी। हमारे पास यह मान सकने का कोई कारण नहीं है कि ब्रह्माण्ड के अनगिनती पिण्डों में से केवल हमारी पृथ्वी को ही जीवधारियों को आश्रय देने का सौभाग्य प्राप्त है और अन्य तमाम पिण्ड जीवन-विहीन दशा में हैं। इस प्रकार यदि हम अन्य पिण्डों में जीवधारियों का होना स्वीकार कर लें तो फिर इसमें कोई शङ्का नहीं रह जाती कि जीवन-तत्व अनादि है और वह कुछ पिण्डों में सदा बना ही रहता है। ये जीवन के 'जर्म' जिनको 'बैक्ट्रिया' भी कहते हैं इतने सूक्ष्म होते हैं कि जब वे हवा द्वारा अधिक ऊँचाई पर पहुँच जाते हैं तो पृथ्वी की आकर्षण शक्ति का भी उन पर प्रभाव नहीं पड़ता। यह परीक्षण द्वारा सिद्ध हो चुका है कि ये 'बैक्ट्रिया' केवल प्रकाश के दबाव से ही एक पिण्ड से दूसरे पिण्ड में पहुँच जाते हैं। यह भी सिद्ध किया जा चुका है कि ये 'बैक्ट्रिया' और अन्य उच्चकोटि के इन्द्रिय-युक्त पदार्थों के 'जर्म' भी बिना किसी क्षति के शून्य आकाश में पाए जाने वाले शीत को सहन कर सकते हैं और अन्य पिण्ड में, जिसकी प्रकृति उनके पिण्ड से सम्बन्ध रखती हो, पहुँच कर विकसित हो सकते हैं। इस प्रकार हमको यह मान सकने में कोई कठिनाई नहीं जान पड़ती कि जीवन-तत्व के 'जर्म' एक लोक से दूसरे लोक में पहुँच कर वहाँ जीवन की सृष्टि किया करते हैं। दूसरे शब्दों में हम इसे यों भी कह सकते हैं कि आकाश से पृथ्वी पर जीवन-तत्व मेंह की तरह बरसता है। यह घटना सदैव होती रहती है और आज भी हो रही है। इस प्रकार के अन्य लोकों से आए हुए जीवन तत्व के 'जर्म' हमारे आस-पास की हवा में प्रचुर परिमाण में पाए जाते हैं।

जब तक पृथ्वी की सतह और आस-पास का वायु-मण्डल अत्यधिक गर्म था तब तक ये 'जर्म' नष्ट हो जाते थे। धीरे-धीरे वे हवा के ऊपरी भाग में जीवित रहने लगे। वहाँ से वे मेंह के साथ नीचे आते थे। पर

उस समय भी पृथ्वी की सतह इतनी गर्म थी कि उनके विकसित होने की कोई सम्भावना न थी। पर धीरे-धीरे समुद्र के पानी की गर्मी घटने लगी, और उसका तल विशेष रूप से ठण्ढा हो गया। तब उन जीवन-कणों को विकसित होने का अवसर मिला और सबसे पहले समुद्र के सबसे गहरे भाग में जीवों का आविर्भाव हुआ। जैसा हम उस काल की चट्टानों में पाए जाने वाले कङ्कालों से पता लगा चुके हैं, ये जीव जल में रेंगने वाले कीड़ों की तरह थे और बहुत बड़ी संख्या में पाए जाते थे। उनकी क़िस्में भी अधिक न थीं। उस काल की चट्टानों में वे बहुत बड़ी संख्या में मिलते हैं। समुद्र के भीतर प्रकाश के अभाव से वे सब बिना नेत्रों के होते थे।

जब हम इस कीड़े वाले पर्त के बाद के पर्तों की जाँच करते हैं, तो उनमें क्रमशः हमको ऐसे प्राणियों के कङ्काल मिलते हैं, जो क्रमशः एक-दूसरे से अधिक इन्द्रिययुक्त हैं। ये प्राणी भिन्न-भिन्न आकृति और आकार के थे। जब हम यह स्वीकार करते हैं कि एक समय था, जबकि पृथ्वी पर जीवधारियों का अस्तित्व ही न था, तो हमको स्वभावतः यह मानना होगा कि उनकी वृद्धि अथवा विकास क्रमशः हुआ। यह परिवर्तन का कार्य किस प्रकार सम्पन्न हुआ, यह बात दूसरी है। हो सकता है कि डार्विन के मतानुसार जीवन-संग्राम में अपना अस्तित्व स्थिर रखने के लिए नीची श्रेणी के प्राणी ऊँची श्रेणी के रूप में परिवर्तित होते गए अथवा लैमार्क के मतानुसार पृथ्वी की प्राकृतिक अवस्था के बदलते जाने से उनमें उसी के अनुसार परिवर्तन होता गया।

कुछ समय पश्चात् स्थल का उत्ताप भी कम हो गया और कुछ पौधे उत्पन्न होने लगे। थोड़े ही काल में उन्होंने महाविशाल जङ्गलों का रूप धारण कर लिया। क्योंकि उस समय वायु-मण्डल में कार्बोनिक एसिड गैस की अधिकता थी, जिसे ग्रहण करके पौधों की इतनी अधिक वृद्धि हुई कि आज उनसे तुलना कर सकने लायक़ पेड़ों और बेलों का कहीं भी मिल सकना असम्भव है। प्राचीन काल के ये जङ्गल प्रायः दलदल की भूमि में उगे हुए थे और अन्त में उसी में मिल कर उन्होंने पत्थर के कोयले का रूप धारण कर लिया, जिसे खानों से खोद कर आज हम अपना समस्त कारबार चला रहे हैं। इन वृक्षों में किसी तरह के फूल नहीं खिलते थे, क्योंकि रङ्ग-बिरङ्गे फूलों को सूर्य की उज्ज्वल धूप की आवश्यकता पड़ती है, जबकि उस काल में धूप बहुत मन्द रूप में थी। इन जङ्गलों में कई तरह के कीड़े भी पाए जाते थे, जिनमें से कुछ दीमकों की तरह थे।

इसके पश्चात् पृथ्वी के धरातल तथा जलवायु की अवस्था जैसे-जैसे परिवर्तित होकर प्राणियों के जीवन-निर्वाह के अधिक उपयुक्त होती गई, उस पर नए-नए जीवधारियों का आविर्भाव होता गया। यह परिवर्तन किस प्रकार हुआ, इसके सम्बन्ध में विभिन्न लोगों की विभिन्न सम्मतियाँ हैं। पर इसे प्रायः सभी विचारवान व्यक्ति स्वीकार करते हैं कि भूमण्डल पर किसी प्राणी का आविर्भाव, चाहे वह मनुष्य हो अथवा पशु, अकस्मात अथवा अलौकिक ढङ्ग से नहीं हुआ। यद्यपि विकास सिद्धान्त का आधार भी बहुत कुछ अनुमान पर है, पर तो भी उसके अनेक प्रत्यक्ष प्रमाण पाए जाते हैं। पर संसार और प्राणियों की उत्पत्ति दैवी रीति से मानना केवल अन्ध-श्रद्धा द्वारा सम्भव हो सकता है।

अनूठे-अगुआ !

[श्री० 'रसिकेन्द्र']

पीटेंगे अवश्य लीक; राह हो भले न ठीक, अपनी ही तानेंगे समाज में विराज के।
कञ्चन की ओट में प्रपञ्च करता है चोट ; कौतुक विचित्र हैं प्रपञ्ची पञ्चराज के।
'रसिकेन्द्र' उनका सुधार कर सके कौन ? दम्भ से मढ़े जो बने खम्भ लोकलाज के।
झूठे किए शिक्षा-ग्रन्थ, रूठे हैं सरस्वती से ; अगुआ अनूठे कहलाते हैं समाज के।

दीप-शिखा

[श्री० प्रमोद]

मेरे जीवन की प्रकाश-रेखा,

किस अदृश्य शक्ति की प्रेरणा से हम एक-दूसरे के जीवन में इतने निकट आ गए, यह मैं कैसे बताऊँ? आज तो यह कहने के लिए बैठा हूँ कि तुमसे अलग होकर, मैं कहाँ का कहाँ जा पहुँचा। हमारा संयोग बहुत ही थोड़े समय का था, और वह समय कब बीत गया, यह तब मालूम हुआ जब हम एक-दूसरे से अनिश्चित काल के लिए अलग हो गए। इसलिए मैं सोचा करता था :—

जी भर कर मिल लो आज, ठिकाना कल का?
युग का वियोग संयोग एक ही पल का।

हम लोग अनेक बार मिले। जी भर कर ख़ूब मिले, परन्तु फिर भी हसरत बाक़ी ही रही, सचमुच जी न भरा। क्यों? इसलिए कि :—

युग-युग का वियोग,
पल भर का प्रियतम का सहवास।
तृषित नयन, मन तृषित श्रवण,
रह गई अपूरन आस॥
सखि री प्रबल प्रेम की प्यास।
तृप्ति असम्भव यहाँ, सदा है,
मृग-तृष्णा का त्रास।
बुझ न सकी है, बुझ न सकेगी,
सजनि प्रेम की प्यास॥

सचमुच आज तुमसे सैकड़ों मील दूर बैठा हुआ इस 'प्रेम की प्यास' को अनुभव कर रहा हूँ। मैं युवक हूँ। मेरा हृदय उमङ्गों से भरपूर है। मेरा जीवन एक विचित्र प्रकार की मस्ती से ओत-प्रोत है, ऐसी मस्ती से जो संसार के कण्टकाकीर्ण पथ में दुःख, शोक, कलह-क्लेश के विषैले वातावरण से प्रतिक्षण घिरा रहने पर भी, अपनी धुन में मस्त है। मेरे नीरस जीवन में प्रवेश कर, तुमने जो ग़ज़ब की बिजली की चमक दे दी, उससे मेरा दीवानापन, अपनी साधारण सीमा को पार कर बड़े वेग से आगे बढ़ा जा रहा है। अब तो मेरे जीवन की सचमुच दूसरी ही दुनिया बन रही है, उस दुनिया में केवल तुम्हारी ही मञ्जुल मूर्ति अपने स्वाभाविक रूप में, थिरक-थिरक कर अठखेलियाँ करती हुई दिखाई पड़ती है। मुझे इससे अधिक और क्या चाहिए? आत्म-विस्मृति का आनन्द सचमुच अपना सानी नहीं रखता।

और मैं? मैं कहाँ हूँ? इसे क्या बताऊँ? कभी अचानक आकर, अगर जी चाहे तो मेरी वास्तविक दशा देख लेना।

जौ वाके तन की दसा, देख्यौ चाहत आप।
तौ बलि नैकु बिलोकिए, चलि औचक चुपचाप॥

कल रात को तुम्हें याद करते-करते, रोते-रोते क्षण भर के लिए आँख झपकी। कहाँ? स्टेशन पर। अचानक सामने आकर तुमने हाथ पकड़ कर आवाज़ देते हुए कहा—कैसी तबियत है?

आधी रात—ठीक बारह बजे तुम स्टेशन पर कैसे आ गईं? कई मिनट तक सोचता रहा, क्या स्वप्न देख रहा हूँ? परन्तु तुम्हारी मञ्जुल मूर्ति सामने थी। मैंने कहा—इस समय तुमने इतना कष्ट क्यों उठाया? तुम बोलीं—आपकी तबियत ख़राब है। बीमारी की दशा में तो ग़ैर को भी देख लेते हैं! मैंने मन ही मन ईश्वर को धन्यवाद दिया और अपने भाग्य की सराहना की।

ऐ दिल, कहाँ ख़बर है शबे वस्ले यार की।
कुछ बेख़ुदी की याद भी आती नहीं मुझे॥

ओह! क्या जीवन है। यही जीवन है। तुम्हारी याद में तड़पने में जो मज़ा है, वह अब कहीं नहीं है। मैंने तुम्हें प्यार किया, तुम मिल गईं! चाहे बहुत थोड़े ही समय के लिए सही। तुम्हारे शब्दों में सचमुच ईश्वर ने मेरी इच्छा पूरी कर दी! परन्तु यह तुम्हारा भ्रम है कि इससे मुझे शान्ति मिल गई! अरे, शान्ति? नहीं,

जीवन में प्रति क्षण की बेक़रारी पैदा हो गई! जीवन में ज्वार आ गया। रोम-रोम एक विचित्र प्रकार की हलचल से ओत-प्रोत हो गया। नस-नस में दीवानापन समा गया।

मिथ्या आचार-विचार, दम्भ, स्वार्थ, मूढ़ता और अन्ध-विश्वासों के गहरे गर्त्त में गिरी हुई बेवक़ूफ़ दुनिया सचमुच मेरे ऐसे दीवानों को देख कर हँसेगी और उपेक्षा की दृष्टि से देखने की मूर्खता करेगी। परन्तु इससे क्या, मेरी मस्ती से भरी हुई हस्ती का कोई मूल्य ही नहीं है?

दीवानापन है पाप? नहीं जीवन है,
ज्ञानी का केवल ज्ञान व्यर्थ क्रन्दन है।
ममता पर निशिदिन हँस-हँस कर घुल-घुल कर
मरने वाले का यहाँ मृत्यु ही धन है।
कामना कसक है और तृप्ति सूनापन,
हँसना ही तो है मृत्यु, रुदन है जीवन।

पता नहीं, तुम मेरे इन विचारों से कहाँ तक सहमत होगी। अरे, मैं कैसी भूल कर रहा हूँ! कहाँ तुम और कहाँ मैं? तुम तो कह चुकी हो कि अब तो मेरे सम्बन्ध की बीती हुई बातों की तुम्हें याद भी नहीं आती। नित्य नए मित्रों के साथ सैर-सपाटा करने और आमोद-प्रमोद में निमग्न रह कर अपने आपको सुखी और सन्तुष्ट रखने की लालसा में तुम व्यस्त हो। तुमने यह कहा भी था कि अगर मेरी तरह तुम भी खाना-पीना छोड़ कर बीती हुई बातों की याद में पड़ी रहो, तो मेरी तरह तुम्हारा स्वास्थ्य भी नष्ट हो जायगा। इस दशा में, फिर भला मैं क्यों तुमसे यह आशा करूँ कि तुम भी घुल-घुल कर मेरे लिए प्राण दे दो? मैंने तुम्हारे लिए क्या किया है, जो तुमसे किसी प्रकार की आशा रक्खूँ। तुमसे बिना किसी प्रकार की आशा रक्खे, मैं तो केवल अपनी ओर देखता हूँ। और आज, केवल अपने ही मनोभाव व्यक्त करने की धुन में दीवाना हो रहा हूँ। तुम्हारे मनोभावों पर दृष्टिपात करने का तो समय ही निकल गया।

जहाँ तुम्हारी इच्छा हो, वहाँ जाओ, और जो इच्छा हो, वह करो। पूरी आज़ादी है। कोई खटका नहीं है। परन्तु ज़रा आँखें खोल कर चलना, यही कहना है। तुम्हारी पुण्य-स्मृति की प्रकाश-रेखा के सहारे मेरे सामने मेरा सुनहला आदर्श स्पष्ट चमक रहा है। भगवान करे, तुम्हारी मधुर स्मृति ही सदा के लिए, मुझे आत्म-विस्मृति के अनिर्वचनीय आनन्द में डुबा कर दीवानों की उस दुनिया में पहुँचा दे, जहाँ सांसारिक वासना, पारस्परिक स्वार्थ, राग-द्वेष, आदि विकारों की गन्ध तक न हो। जहाँ आज की दुनिया की पाप-पुण्य की कोई सङ्कुचित सीमा न हो और जहाँ पहुँच कर मेरा मन और मस्तिष्क नहीं, रोम-रोम सांसारिक कामनाओं से ऊपर उठ कर उस प्रकाश-पुञ्ज की तेजोमय प्रभा से प्रकाशित होकर जगमगा उठे, जिसकी प्रभा इस दृश्य-जगत के कण-कण में व्याप्त है।

हाँ, तो सचमुच मेरी और तुम्हारी दुनिया, मेरा और तुम्हारा दृष्टिकोण बिल्कुल अलग है। यह बात मैं आज, बहुत दिन के बाद जान पाया हूँ। यदि पहले से पता होता कि तुम्हारी मनोवृत्ति, तुम्हारा दृष्टिकोण, तुम्हारे जीवन का उद्देश्य, उस हिन्दू-सभ्यता, शिक्षा और संस्कृति के विपरीत है, जो किसी भी हिन्दू नारी के लिए गर्व से मस्तक ऊँचा उठाने का कारण हो सकती है, तो सचमुच मैं आरम्भ ही से तुमसे बहुत समझ-सोच कर मिलता और ख़ासकर प्रेम का नाम तो बहुत सावधान होकर लेता। परन्तु अब क्या करूँ? उस समय तो तुम्हें देखते ही आँखें बन्द हो गई थीं। ग़ाफ़िल हो गया था।

तुम्हें देखा और मैं तुम्हारा हो गया। और तुम? सच बात तो यह है कि उस समय तुम भी मेरी हो गईं। क्या तुम आज इस सचाई से इन्कार करने का साहस कर सकती हो?

ऐ निगाहे यास यह क्या रङ्गे महफ़िल हो गया,
मैंने जिस दिल की तरफ़ देखा मेरा दिल हो गया।

जो हो गया, सो हो गया। मुझे उसके लिए तनिक भी अफ़सोस नहीं है, इसलिए कि प्रेम का अङ्कुर अपने स्वाभाविक रूप में प्रस्फुटित हो गया। उस समय, जब कि मेरे मन में तुम्हारे दर्शन से प्रेम का अङ्कुर फूट निकला, तब उसमें कोई विकार नहीं था। और स्वार्थ? स्वार्थ की तो उसमें गन्ध तक नहीं थी। हाँ, उसका आरम्भ हुआ है वासना से। किन्तु वासना की भट्टी में गिर कर

भी उसका अन्त नहीं हुआ। वासना पूरी होने पर ही उसका ख़ात्मा नहीं हो गया। यही मेरे प्रेम की ख़ूबी है। सांसारिक वासना की मनोरम बाटिका में उसका जन्म हुआ, किन्तु वह वहाँ पहुँच कर सदा के लिए विलासिता के भँवर में नहीं फँसा। मेरे हृदय का वह प्रेम, वासना की अनुराग-बाटिका से निकल कर बीहड़ वन के दुर्गम पहाड़ी पथ से मुझे बरबस उस ओर लिए जा रहा है, जहाँ पहुँच कर जीव अपने चरम लक्ष्य को पाकर लीलामय के अनन्त रूप में लय हो जाता है।

यदि तुम्हारे अन्दर हृदय हो; वह हृदय, जो दूसरों के दर्द की पीड़ा अनुभव करता है; वह हृदय, जो दूसरों को दुःख में देख कर, अपना सब कुछ देकर भी उसकी व्यथा को दूर कर देने के लिए एकदम तड़प उठता है, तो सचमुच आज मेरे निर्मल और निष्कपट प्रेम की झाँकी देख लो। अब वहाँ वासना की गन्ध तक नहीं है। सांसारिक कामना, स्वार्थ-लिप्सा और वासना की कालकोठरी से बाहर आकर मेरा प्रेम अब अपने स्वाभाविक रूप में प्रकट हो रहा है। यह सब होते हुए भी, न जाने क्यों, तुम्हें प्रतिक्षण देखते रहने की उत्सुकता वैसी ही बनी हुई है। यदि मेरे प्रेम में कोई स्वार्थ है, तो केवल इतना ही है—

दर्शन के प्यासे नयन, लगे तुम्हारी ओर।
नाच रहा नटराज मन, बाँध प्रेम की डोर॥

प्रेम! ऐ मेरे हृदय का सार प्रेम!

प्रेम की हाट का पथ बड़ा दुर्गम है। इस हाट में साधारण आदमी का काम नहीं। यहाँ तो वही आदमी आवे, जो अपने प्राणों की बाज़ी लगा सके। जो हर समय अपना सर हथेली पर लेकर रह सके। क्यों? इसलिए कि प्रेमी को अपने आदर्श को पाने के लिए, प्राण देकर भी उसका पूरा मूल्य चुकाना पड़ता है। स्वार्थ और छल-प्रपञ्चों से भरे संसार के बाज़ार में प्रेम ऐसे दुर्लभ और अनमोल रत्न को ख़रीदने की इच्छा करने वाले लोग याद रक्खें—

यह तो घर है प्रेम का खाला का घर नाहिं।
सीस काटि भुइँ में धरै तब पैठे इहि माहिं॥
सीस काटि भुइँ में धरै तापर राखे पाँव।
दास कबीरा यों कहै ऐसा होइ तो आव॥

इस दशा में प्रेम करना कोरा मज़ाक़ नहीं है। मैंने बहुत दिन पहले एक पत्र में तुम्हें उक्त लाइनें लिख कर, प्रेम के वास्तविक आदर्श की ओर सङ्केत किया था। मेरा यह सब लिखने का मतलब केवल यही था कि तुम युवती हो, प्रेम के नाम पर यौवन की उमङ्गों में कहीं बह न जाओ। संसार-सागर की उत्ताल तरङ्गों में होकर, अपनी जीवन-नौका को सही-सलामत पार ले जाना अत्यन्त कठिन है। और फिर, जिसने प्रेम के कूचे में अपना क़दम रख दिया तो उसने सचमुच अपने लिए बरबस मृत्यु-देवी को अपने निकट बुला लिया। जो मौत से घबड़ाता हो, जिसे दुनिया के राग-रङ्ग में फँस कर उसका क्षणिक मज़ा लूटना हो, वह सब कुछ करे, पर प्रेम के कूचे में क़दम हर्गिज़ न रक्खे! इसलिए कि प्रेम की हाट में तो चारों ओर यही ध्वनि सुनाई पड़ती है—

चातक से सीखो तड़प-तड़प मर जाना,
सीखो पतङ्ग से निज अस्तित्व मिटाना।

वह ज़माना चला गया, जब लोग मधुकर के प्रेम के गीत गाते हुए नहीं अघाते थे। आज की दुनिया तो बहुत आगे बढ़ गई है। आज की दुनिया में, कुछ ऐसे लोग भी मिलते हैं, जिनका प्रेम अब वासना पूरी करने का साधन नहीं रह गया है। वे अब प्रेम को सांसारिक कामना और जीवन को सर्वनाश की भट्ठी में झोंकने वाली वासनाओं के क्षणिक आनन्द से ऊँचा उठा कर, उस अनिर्वचनीय आनन्द-सागर में निमग्न कर देना चाहते हैं, जो अपने विशुद्ध रूप में निस्पृह सेवा, त्याग और बलिदान की भावनाओं से ओत-प्रोत है और जहाँ प्रतिक्षण यह आनन्दमयी प्रतिध्वनि गूँजा करती है—

मधुकर क्या जानें प्रेम, प्रेम है पीड़ा,
पीड़ा है अविकल त्याग, सौख्य की व्रीड़ा।
कलिका का ले सर्वस्व नष्ट कर उसको,
उड़ जाने ही में है मधुकर की क्रीड़ा।
रस में मिल जाना ही है रस का पीना,
जो मिट न सका वह नहीं जानता जीना।

× × ×

लेना पल भर का, युग-युग भर का देना,
निज का देना ही है जीवन का लेना।

बाज़ार उठ रही और दूर जाना है,
जितना बन पावे, कर लो लेना देना।
उर की लाली से मुख की कालिख धोलो,
सर आज हथेली पर है बोली बोलो।
यह खेल नहीं है, प्राणों का विक्रय है,
जीवन पर मिट-मिट जाओ, किसका भय है?

सचमुच प्रेम-पन्थ ऐसा ही है। वे लोग जो मधुकर की तरह कली-कली का रस लेने की अभिरुचि रखते हैं, बेचारे नहीं जानते कि वास्तविक प्रेम क्या चीज़ है। मधुकर की प्रवृत्ति आज युवक और युवतियों दोनों ही के हृदयों में घर कर रही है। यह प्रवृत्ति देश और समाज के लिए बहुत ही ख़तरनाक है। मैं आज इस ओर से तुम्हें बहुत सावधान किए देता हूँ। यदि तुम्हारे अन्दर इतना साहस नहीं है कि प्रेम के कण्टकाकीर्ण मार्ग में, जीवन के अन्तिम क्षण तक, मेरे साथ एक भाव, एक ही उद्देश्य और एक ही साधना में तल्लीन रह कर चल सको, तो मुझसे स्पष्ट कह दो, मैं अपना रास्ता पकड़ूँगा। मैं तुमसे प्रेम करता हूँ और जीवन के अन्तिम क्षण तक उसे निबाहूँगा। परन्तु मेरा प्रेम निरर्थक, आदर्शहीन और महज़ कामुकता और विलासिता का साधन ही नहीं है। मैं स्वयं न तो मधुकर बन कर कली-कली पर मँडराने और उसका रस लेकर सदा के लिए उसे नष्ट कर देने का क़ायल हूँ, और न एक क्षण के लिए भी यह सहन कर सकता हूँ कि तुम हिन्दू नारी के—उस हिन्दू नारी के, जो अपने सतीत्व का मूल्य प्राणों से भी अधिक समझती है—उज्ज्वल और सुनहले आदर्श को तिलाञ्जलि देकर, तितली के रूप में आज एक युवक के साथ मौज उड़ाती हुई उड़ती फिरो, तो कल ही दूसरे के। मैंने तो कभी स्वप्न में भी अपने और तुम्हारे जीवन-निर्वाह के लिए यह निन्दनीय ढङ्ग अख़्तियार करने की कल्पना भी नहीं की। जिस क्षण तुम्हारे अन्दर यह निन्दनीय भाव आवे, उसी क्षण—हाँ, उसी क्षण, भगवान करे, हमारे जीवन का भी अन्त हो जाय!

जिस दिल में किसी के लिए एक बार प्रेम की आग सुलग उठी, वह दिल मधुकर नहीं, पतङ्ग बन सकता है। प्रेमी की तो बिल्कुल दूसरी ही दुनिया हो जाती है, प्रेमी के सामने तो दीप-शिखा पर पतङ्ग के मर मिटने का आदर्श ही हो सकता है। अपनी प्रेमिका को छोड़ कर, कोई दूसरी सूरत तो सच्चे प्रेमी के दिल में समा ही नहीं सकती। प्रेमी तो इस दुनिया से अलग, बिल्कुल एक दूसरी ही दुनिया में जाकर बसेरा ले लेता है।

जो लोग हैं किसी की तमन्ना लिए हुए।
दुनिया से वह अलग हैं यक दुनिया लिए हुए॥

तुम कहोगी कि ऐसा प्रेम भी क्या, जो प्रेमी अपनी प्रेमिका की याद में तड़प-तड़प कर मर जाय! परन्तु क्या तुमने कभी स्वप्न में भी सोचने की तकलीफ़ उठाई है कि आदर्श के लिए मर मिटना, मृत्यु नहीं, बल्कि सचमुच जीवन है।

ख़ाके-परवानः से आती हैं सदाएँ पैहम।
ज़िन्दगी है ग़मे दिलबर में फ़ना हो जाना॥

अपने प्यारे के ग़म में मर मिटने का नाम ही ज़िन्दगी है, इस बात का वास्तविक रहस्य भला आजकल मधुकर और तितलियों के रूप में प्रेम का अभिनय करने वाले नादान लोग क्या समझें? प्रेम का यह सुनहला आदर्श तो उन्हीं लोगों को अपनी ओर खींच सकता है, जिनके अन्दर मनुष्यता है, वास्तविकता है, सचाई है, और है वह दर्द-भरा दिल, जो दूसरों की पीड़ा को दूर करने की पवित्र साधना में तड़प उठता है, और अपना सब कुछ देकर भी, अपनी साधना पूरी करके ही विश्राम लेता है।

एक दिन, जबकि अपने घरेलू पचड़ों से तङ्ग आकर मैंने तुम्हारे सामने कहा कि मैं अपने साथी, तथा सारे परिवार की चिन्ता छोड़ कर मर जाऊँगा, उस समय मेरी व्यथा का अनुभव कर तुम रो पड़ीं। तुम फूट-फूट कर रोने लगीं, इसलिए कि मैं मरने की बात सोच रहा हूँ, और अब मेरा सारा परिवार ही उजड़ जायगा! मैंने मन में सोचा कि तुम्हारे अन्दर सचमुच ईश्वर ने वह दर्द-भरा दिल दिया है, जो तुम मेरी व्यथा को अनुभव कर, उसके दूर करने में सहायता कर सकोगी। तुम्हारे उमड़ते हुए आँसुओं के पारावार को देख कर मेरी व्यथा बहुत कुछ शान्त हो गई थी। परन्तु आज, जबकि तुम मुझे भुला चुकी हो, मेरे दुःखी दिल का दर्द दूर करने के लिए, तुम मेरे पास क्यों आओगी? अब उस दर्द

की दवा करने कौन आवे, जिसका कारण तुम स्वयं ही बन गई हो ?

जो कुछ हो, मेरे मन में तो केवल एक ही बात बसी हुई है—

"Trust love even if it brings sorrow,
Do not close up your heart."

अर्थात्—"प्रेम पर विश्वास करो, अगर यह दुःख ही दुःख लावे तो भी अपने हृदय-प्रदेश का द्वार बन्द मत करो।"

अब तो मैंने यही ठान लिया है कि जीवन के अन्तिम क्षण तक तुम्हारे प्रेम की मादक मदिरा में सराबोर रहूँगा, परन्तु तुमसे कुछ न कहूँगा। तुमसे कुछ चाहूँगा भी नहीं। अब केवल तुम्हारे प्रेम की पुनीत साधना में निमग्न रह कर अपना जीवन बिताऊँगा। सांसारिक प्रलोभनों और तुम्हारी निन्दा-स्तुति से सदा दूर रहूँगा। इस बात की इच्छा भी न करूँगा कि मैं तुम्हें जीवन-संग्राम में पार होने के लिए कुछ काम की बातें सिखा दूँ। तुम स्वयं अपना भला-बुरा समझती हो। चाहो तो, अपना जीवन बना लो, चाहो तो उसे पशु से भी गया-बीता बना कर नष्ट कर डालो। मैंने तुम्हारे या किसी के भी जीवन के बनाने का ठेका थोड़े ही लिया है? यह इसलिए कि एक बात मैंने केवल तुम्हारे भले के लिए कही थी, किन्तु तुमने बड़े गर्व से उसकी उपेक्षा करते हुए कहा—"यदि आप मेरी ज़रूरतें पूरी नहीं कर सकते, तो मैं बाहर के लोगों से क्यों न पूरी करा लूँ?" क्या ख़ूब! अब, इसके बाद केवल तुमसे मेरा एक ही नाता है। वह है प्रेम का। हृदय का सम्बन्ध है। तुम्हारी ओर से नहीं, न सही। तुम तो अपने जीवन का सर्वनाश करने वाली ज़रूरतों के फेर में पड़ कर उसे भुला ही चुकीं। खुल कर तुमने मुझसे कह भी दिया कि तुम मुझे भूल गई हो। इस दशा में अब तुम्हें मुझसे कुछ भी कहने की गुञ्जाइश नहीं रह गई। अब तो केवल मेरी ओर से, मेरे हृदय का प्रेम-सम्बन्ध रह गया है। मेरे सामने अब उस निर्मल प्रेम का सलिल-सागर है, जिसमें डुबकी लगाते ही मानव-जीवन कुन्दन के समान दमक उठता है और भूतल से बहुत ऊँचा उठ कर स्वर्गीय राज्य में विचरण करता है।

"Humble Love,
And not proud reason keeps the door of heaven,
Love finds admission where proud science fails."

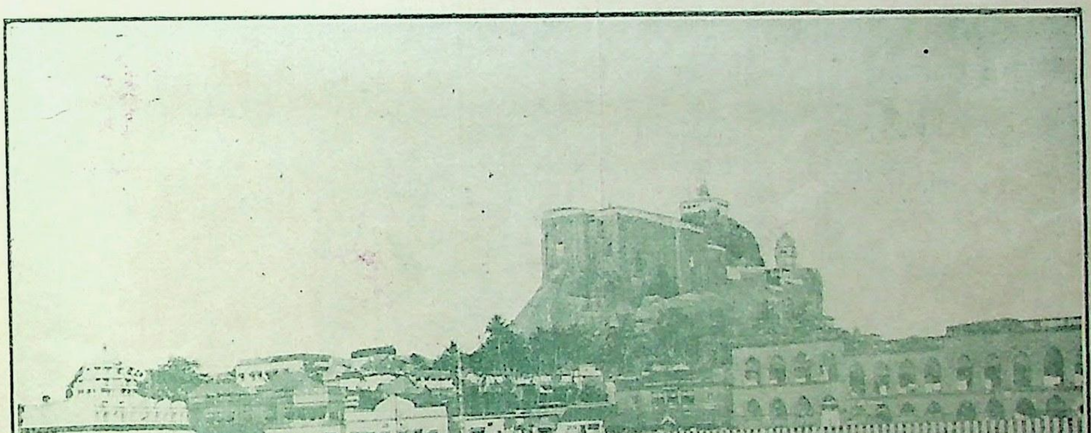
अर्थात्—"विनम्र प्रेम ही स्वर्ग के प्रवेश-द्वार की रक्षा करता है, अभिमान-भरा तर्क नहीं। जहाँ अभिमान भरा विज्ञान असफल होता है, वहाँ प्रेम ही प्रवेश कर पाता है।"

बस इन स्वर्गीय भावों के आनन्द-सागर में डुबकी लगा कर आज से मेरी प्रेम-साधना का श्रीगणेश होता है। तुमसे अलग रह कर, मैं अपनी इस प्रेम-साधना में आजीवन तल्लीन रहूँगा। अब तुम्हारे यहाँ आने का भी समय नहीं रहा। समय होता तो भी अब मैं न आता, इसलिए कि बार-बार जाने पर तुमने मेरा जी भर कर अपमान कर लिया। कभी मुझे गर्व-भरी टेढ़ी-तिरछी नज़र से देख कर, ज़रा सी बात के लिए अँगूठा दिखाया तो कभी झुँझला कर घोर उपेक्षा की हँसी हँस कर कह दिया—"मैं ईश्वर को साक्षी देकर कहती हूँ कि आपको भूल गई!" इस दशा में अब कभी अगर तुम्हारे द्वार पर होकर निकलूँगा और वहाँ तुम्हारी याद कलेजे में एक दर्द-भरी टीस भी पैदा करेगी, तो मैं आज क़सम खाकर कहता हूँ कि तुम्हारे उस घर की ओर देखूँगा तक नहीं! जिस घर में मुझे याद करने वाला कोई नहीं रह गया, वहाँ अब क्यों और किस लिए जाऊँगा? जिस घर की राज-लक्ष्मी मुझसे रूठ चुकी है, वहाँ की दरो-दीवार मुझे काटने दौड़ेंगे। जिस अन्तःपुर की रानी मुझे अपने हृदय से निकाल चुकी है, वहाँ यदि अब मेरे लिए स्वर्ण का राज-सिंहासन भी बिछा हो तो मेरे किस काम का?

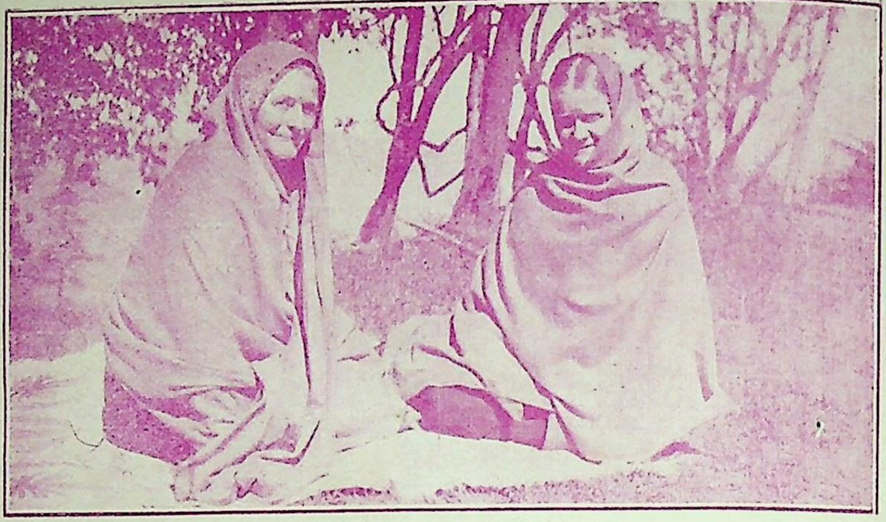
तुम्हारा वही,
—'प्रमोद'



मद्रास हाईकोर्ट-भवन का एक दृश्य।



त्रिचिनापोली (मद्रास) के विख्यात पहाड़ी मन्दिर और विशाल जलाशय का एक मनोरम दृश्य।



दो हिन्दी-प्रेमिनी यूरोपियन महिलाएँ—मिस मेरी इवरसन (बाईं ओर) और मिस वोलवडी वल्ला (दाहिनी ओर)—जिन्होंने अल्प-काल में ही हिन्दी भाषा में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली है। पाठक इनके लेख इस मास के 'चाँद' के 'विविध विषय' में पढ़ें।



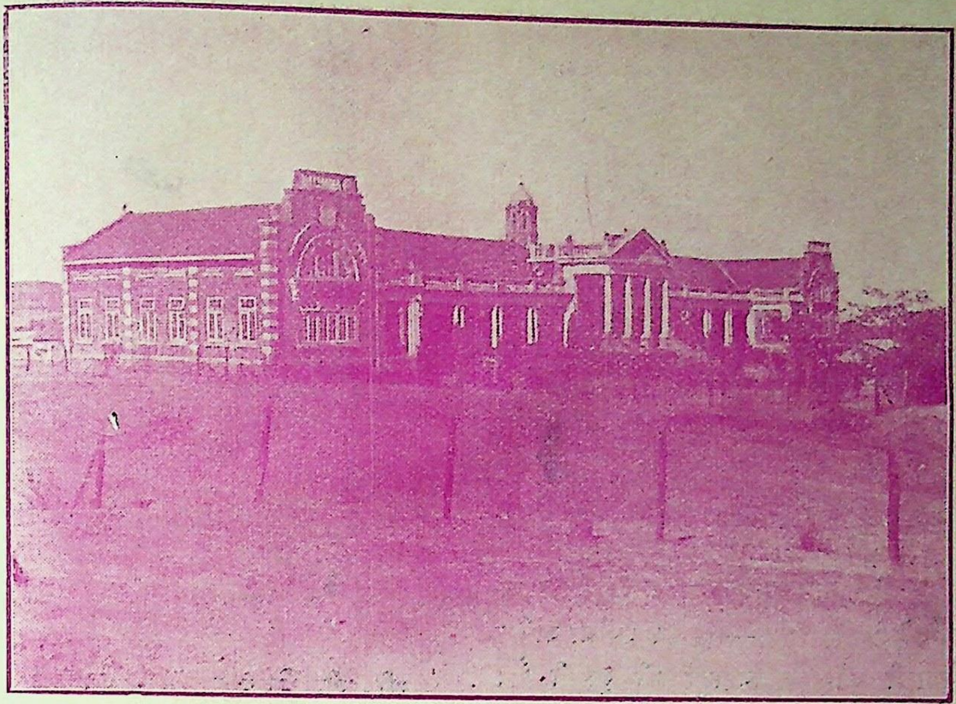
श्रीमती पूनेन लखोसे, बी० ए०, एम० बी० बी० एस०, सीनियर सर्जन

आप ट्रावङ्कोर रियासत के चिकित्सा-विभाग की प्रधाना नियुक्त हुई हैं और दरबार फ़ीज़िशन के पद पर कार्य करती हैं।

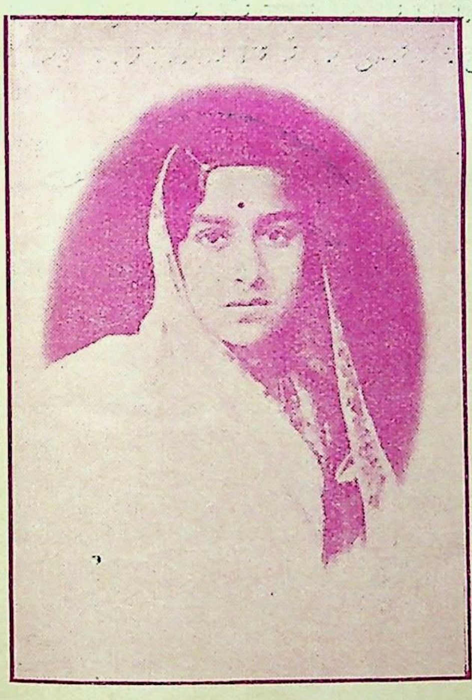


कुमारी के० एस० राधा

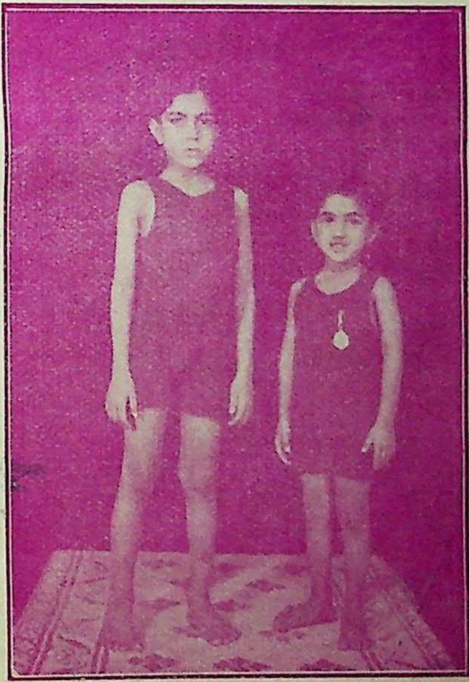
आप दिल्ली के हिन्दू कॉलेज की छात्रा हैं। अखिल भारतीय साहित्यिक तर्क-युद्ध में विजय प्राप्त करने के हेतु आपने उक्त कॉलेज द्वारा निर्दिष्ट 'स्त्री-पुरस्कार' प्राप्त किया है।



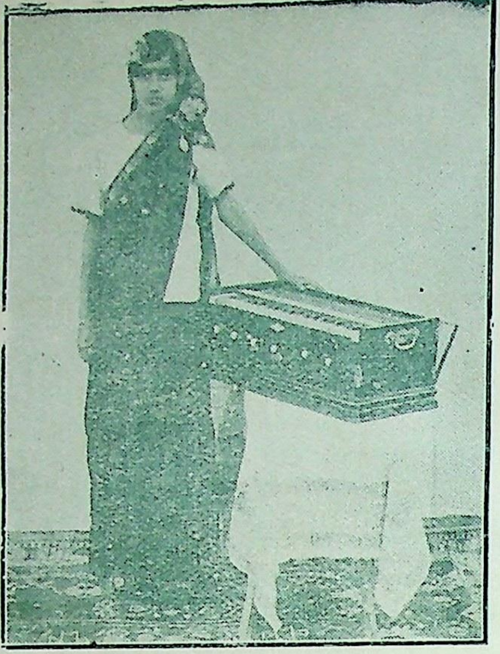
स्वनाम-धन्य प्रोफ़ेसर कर्वे द्वारा स्थापित पूना का विख्यात महिला-विश्वविद्यालय-भवन



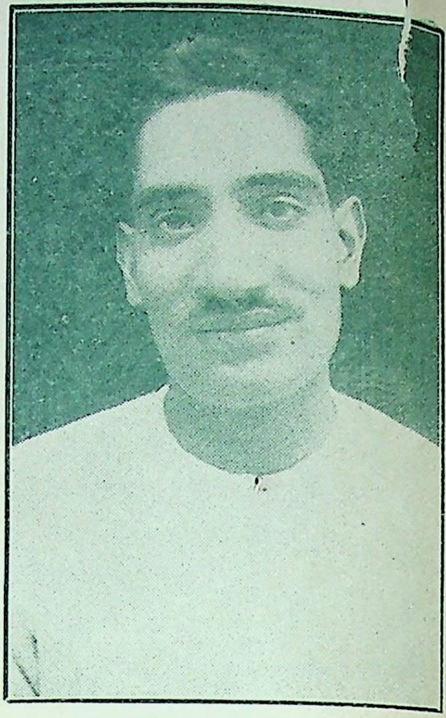
कुमारी सावित्रीदेवी खत्री (उम्र १३ वर्ष)—यह बालिका काशी के श्री० नन्दलाल जी खत्री की पुत्री है। गत ९ अप्रैल को काशी में लड़कियों की एक सन्तरण प्रतियोगिता हुई थी, उसमें इस बालिका का प्रथम स्थान रहा।



चिरञ्जीव जगमोहन (उम्र ४ वर्ष) और चिरञ्जीव राधेमोहन (उम्र ७ वर्ष)—ये दोनों बालक काशी-निवासी श्री० नन्दलाल जी खत्री के पुत्र हैं। इन्होंने गत ५ अप्रैल सन् १९३३ को तैर कर गङ्गा पार किया। इसके लिए इन्हें कई पदक प्राप्त हुए हैं।



कुमारी कान्तिदेवी श्रीवास्तवा—यह ११ वर्षीया बालिका प्रयाग-निवासी श्री० बख़्तबहादुर की सुपुत्री है। इसने मैनपुरी में होने वाली, सन् १९३३ की म्युज़िक-कॉन्फ़्रेन्स में गाने और हारमोनियम बजाने में प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया है।



श्री० वीर विजयकुमार—आप गूजराँवाला (पञ्जाब) की राष्ट्रीय हिन्दू-सभा के प्रधान-मन्त्री हैं और आजकल हरिजनों की सेवा में दिलोजान से लगे हैं। महात्मा गाँधी के उपवास-काल में २१ दिनों तक आपने हरिजनों की गलियाँ साफ़ की थीं। गूजराँवाला के अन्य बहुत से नवयुवकों ने भी आपका साथ दिया था।



श्रीमती एस० नीलावती, बी० ए०—आप त्रिचिनापोली (मद्रास) की एक सम्भ्रान्त कुल की विदुषी महिला हैं और आजकल हरिजनों के उत्थान-कार्य में विशेष दिलचस्पी ले रही हैं।



श्रीमती बलवन्ती देवी वैद्या (स्त्री-चिकित्सिका)—आप 'चाँद' के भूतपूर्व सम्पादक और हिन्दी-संसार के सुपरिचित डॉक्टर धनीराम जी प्रेम महोदय की चचेरी बहिन और दिल्ली के सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता श्री० दामोदरदास जी वैद्य की धर्मपत्नी हैं। दिल्ली की राष्ट्र-सेविका महिलाओं में देवी जी का प्रमुख स्थान है।

गर्भवतियों में भोजन-लालसा

[श्री० व्रजमोहन वर्मा]

कई वर्ष पहले की बात है।

एक प्रतिष्ठित मित्र के यहाँ देखा कि प्रायः नित्य-प्रति दो-चार थालियों में तरह-तरह के फल-फूल, मिठाइयाँ, मेवे तथा अन्य खाने-पीने की चीज़ें आया करती थीं। दरियाफ़्त करने पर मालूम हुआ कि मित्र महाशय की पत्नी गर्भवती थीं। उनकी पहली सन्तान उत्पन्न होने वाली थी। उनके नाते-रिश्तेदारों, सम्बन्धियों, बन्धुओं और व्यवहारियों का दायरा काफ़ी बड़ा था। ये वस्तुएँ उन्हीं लोगों के यहाँ से मित्र महाशय की स्त्री के खाने के लिए उपहार में आती थीं।

इसके बाद भी अनेक अवसरों पर गर्भवती स्त्रियों के लिए इस प्रकार के उपहार भेजते देखा है। वास्तव में भारत की अनेक जातियों में यह प्रथा प्रचलित है कि जब स्त्रियाँ गर्भवती होती हैं—विशेष कर प्रथम बार—तब उनके भाई-बन्धु, सगे-सम्बन्धी और मेली-मुलाक़ाती उन्हें इस प्रकार का उपहार भेजा करते हैं। परन्तु इन उपहारों में एक विशेषता होती है; वह यह कि इस प्रकार की उपहार-वस्तुओं में निन्यानबे प्रतिशत फल-फूल, मिठाइयाँ, नमकीन, दालमोठ और पकवान आदि—खाने-पीने की चीज़ें ही—हुआ करती हैं। हाँ, बुन्देलखण्ड के एक नगर में यह भी देखा है कि गर्मी के दिनों में खाने-पीने की चीज़ों के साथ-साथ एक कोरी सुराही में भरा हुआ पानी और एक दस्ती पङ्खा भी उपहार में भेजा जाता है।

इन उपहारों का आरम्भ कैसे हुआ? यह पद्धति कैसे चली? फिर कपड़े, लत्ते, गहने, श्रृङ्गार-सामग्री आदि हज़ारों वस्तुएँ अन्य अवसरों पर भेंट और उपहार में दी जाती हैं, परन्तु इस अवसर पर दिए जाने वाले उपहार केवल खाद्य-सामग्रियों—विविध व्यञ्जनों—तक ही परिमित क्यों हैं? इसका कारण यही जान पड़ता है कि गर्भावस्था में स्त्रियों का मन भाँति-भाँति की चीज़ें खाने के लिए चला करता है। वे बहुधा कुछ विशेष पदार्थों को खाने के लिए लालायित रहा करती हैं। इसलिए उनकी इस भोजन सम्बन्धी लालसा को तृप्त करने के लिए ही उन्हें नाना प्रकार के सुस्वादु खाने उपहार में देने की प्रथा है।

यों तो सहज ही प्रत्येक व्यक्ति का मन—चाहे वह स्त्री हो या पुरुष—कभी-कभी किसी विशेष भोजन या फल आदि खाने के लिए चल उठता है, मगर गर्भवती स्त्री में किसी विशेष पदार्थ के खाने की इच्छा ख़ास तौर पर दिखाई देती है। उसकी इस लालसा में दो विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। एक तो यह कि उसकी यह लालसा अक्सर उग्र रूप धारण कर लिया करती है। दूसरे यह कि उसकी इच्छा बहुधा ऐसी चीज़ें खाने के लिए चला करती है, जो संसार की किसी भी जाति की भोजन-सूची में नहीं हैं।

यह लालसा साधारण अवस्था में नहीं हुआ करती। साधारण अवस्था में तो अन्य व्यक्तियों की भाँति कभी किसी चीज़ पर मन चल जाना कोई अस्वाभाविक बात नहीं है, मगर वह कभी प्रबल रूप नहीं धारण किया करती। लेकिन गर्भिणी की भोजन-लालसा बहुधा इतनी प्रबल हो उठती है कि वह उसे दबाने में असमर्थ हो जाती है, और उसे तृप्त करने के लिए वह ऐसे काम कर बैठती है—जैसे चोरी आदि—जिसे साधारण अवस्था में वह स्वप्न में भी करने को तैयार न होगी। एक बहुत ऊँचे घराने की यूरोपियन महिला (गर्भावस्था में) अपनी बहिन के साथ 'स्ट्राबेरी' के खेतों के पास से घूमने

के लिए निकली। सहसा उसके मन में 'स्ट्राबेरी' खाने की अदम्य इच्छा उठ खड़ी हुई। बहिन के लाख मना करने और रोकने पर भी वह ज़बर्दस्ती खेत में घुस गई और इतनी 'स्ट्राबेरी' खाई, जिसे देख कर बेचारी बहिन परेशान रह गई! एक सम्भ्रान्त कुल की महिला का खेत में बैठ कर इस प्रकार 'स्ट्राबेरी' खाना बड़ी बेतुकी बात है। साधारण अवस्था में वह ऐसा करना कभी गवारा न करती। इसी प्रकार एक दूसरी युवती स्त्री को गर्भावस्था में तम्बाकू पीने की इच्छा इतनी बलवती हो उठती थी कि जब तक वह तम्बाकू न पी लेती, उसे चैन ही न पड़ता था, यद्यपि गर्भ से पहले न तो उसने कभी तम्बाकू पी थी, और न उसे कभी तम्बाकू पीने की इच्छा ही हुई थी और न प्रसव के बाद भी कभी उसे धूम्रपान की इच्छा हुई। इस प्रकार के लाखों नहीं, बल्कि करोड़ों उदाहरण मिलेंगे। साथ ही यह भी देखा जाता है कि प्रत्येक गर्भिणी में यह लालसा नहीं होती। बहुतों में किसी प्रकार की कोई इच्छा नहीं होती, परन्तु जिनमें यह इच्छा दिखाई देती है, उनकी संख्या भी कम नहीं है।

यह लालसा कोई नई अथवा सभ्यता-जनित चीज़ नहीं है। यह मनुष्य के आदि काल से चली आती है और संसार की सभ्य-असभ्य सभी जातियों की स्त्रियों में एक-सी नज़र आती है।

डॉक्टर और वैद्यों ने भी इसकी छान-बीन की है और उसके पूरे होने और न पूरे होने का फलाफल भी बताया है। भारत के प्राचीन वैद्याचार्यों ने गर्भिणी का मन जिन चीज़ों पर चलता है, उनका एक विशेष नाम ही रख दिया है, वह है "दौहृद", जिसका अपभ्रंश 'दोहद' आज भी कहीं-कहीं देहातों में प्रचलित है। "दौहृद" शब्द का अर्थ है द्विहृदया (गर्भवती) स्त्री का वाञ्छित पदार्थ।

हमारे देश में गर्भिणी स्त्रियों में मिट्टी खाने की इच्छा बहुधा दिखाई देती है। मैंने बहुत सी स्त्रियों को सुराहियाँ, हाँडियाँ, कुल्हड़ आदि तोड़ कर खाते देखा है। कोई-कोई गङ्गा-यमुना की रेतीली मिट्टी खाती देखी गई हैं। बहुतेरी चूल्हे के भीतर की जली हुई मिट्टी स्वाद ले-लेकर खाती हैं। लखनऊ, बनारस, कलकत्ता आदि नगरों में कुम्हार लोग गर्भिणी स्त्रियों की इस मिट्टी की भूख को तृप्त करने के लिए मिट्टी की बहुत पतली-पतली, अँवे में पकाई हुई छोटी-छोटी टिकियाँ बेचते हैं। ये टिकियाँ गर्भिणी स्त्रियों के सिवा दुनिया में और किसी के काम नहीं आतीं। लखनऊ में वे "सनकियाँ" कहलाती हैं। अन्य नगरों में उनके अलग-अलग नाम हैं। मिट्टी के अतिरिक्त खड़िया, लकड़ी की चीपें, कोयला (लकड़ी का) आदि चीज़ें भी खाई जाती हैं। अन्य भोज्य-पदार्थों में, जिनकी ओर महिलाओं की अधिक रुचि हुआ करती है, फलों की बहुतायत है। बेफ़स्ल के फलों की ओर उनका मन अकसर चला करता है। सोंधी चीज़ें गर्भिणी को प्रायः अधिक प्रिय होती हैं, इसलिए सब प्रकार के भुने हुए अन्न—चबेने—विशेषकर भुने हुए चनों की ओर बहुतों की रुचि दिखाई देती है। एक महिला को तेल का अचार बहुत भाता था। एक अन्य महिला गर्भावस्था में महीनों तक एक वक़्त केवल दही खाकर ही रही थी। आलू-कचालू की ओर भी एकाध का मन चल जाता है।

यूरोपियन महिलाएँ भी नाना प्रकार की चीज़ें खाया करती हैं, जिनमें बालू प्रधान है। प्रसिद्ध यूरोपियन विद्वान शूरिग ने अपने किलोजिया (Chylogia) नामक ग्रन्थ में (सन् १७२५) गर्भिणी की इस लालसा के सम्बन्ध में एक पूरा अध्याय ही लिखा है। वे कहते हैं कि एक इटैलियन महिला ने कई पौण्ड बालू बड़े स्वाद से खा डाला था। बालू के अलावा यूरोपियन स्त्रियाँ चूना, कीचड़, खड़िया, कोयला, अल्कतरा आदि भी खाती देखी जाती हैं! एक स्त्री तन्दूर से निकली हुई गरमागरम पावरोटी बहुत परिमाण में खाती थी। एक महिला ने एक दिन में एक सौ चालीस मीठे केक खाए थे! गेहूँ, जौ तथा दूसरे अनाजों और फल-तरकारियों की ओर मन चलना यूरोपियनों में भी साधारण बात है, परन्तु एक लेडी ने गर्भावस्था में दस सेर काली मिर्चों का ख़ात्मा कर डाला था! एक दूसरी महिला अदरक बहुत खाती थी। एक महिला अपने तकिए के नीचे जावित्री रक्खा करती थी। एक ने एक रात में तीस-चालीस नींबू चूस डाले थे। दालचीनी, नमक, राब और बादाम का शरबत भी बहुतों को भाता है।

यूरोपियन मांसाहारी होते हैं। अतः उनमें नाना प्रकार की मछलियों—Mullets, Oyster, Crabes Live-eel (सिप्पी, केंकड़े, साँप के आकार की मछली

आदि)—की ओर बहुधा रुचि देखी जाती है। परन्तु इतने से ही समाप्ति नहीं हो जाती। उनमें मेढक, छिपकिली, मकड़ी और पतिङ्गों तक का स्वाद लेने की लालसा देखी गई है। शूरिंग ने लिखा है कि एक तैंतीस वर्ष की स्त्री ने, जो साधारण दशा में बहुत शान्त और वात-प्रधान स्वाभाव की थी, एक बार गर्भावस्था में एक जीवित पक्षी पकड़ कर बड़े स्वाद से खाया था। चमड़ा, रुई, ऊन, कपड़ा, ब्लाटिंङ्ग पेपर और नाक की रेंट जैसे अखाद्य और घृणोत्पादक वस्तुओं की ओर भी गर्भिणी का मन चलता हुआ देखा गया है। सिरका और बर्फ़ की ओर भी आकर्षण दिखाई पड़ता है। कोई-कोई लोहा और चाँदी आदि धातुएँ भी निगलती देखी गई हैं। एक स्त्री की इच्छा नर-मांस-भक्षण की थी, अतः वह कभी-कभी लोगों का हाथ काट खाती थी!

भारत में निरामिष-भोजियों की संख्या काफ़ी बड़ी है। आमिषभोजियों में नाना प्रकार के जीवों के मांस खाने की इच्छा हो सकती है और होती है। निरामिष-भोजी गर्भिणी में भी कभी-कभी मांस खाने की इच्छा होती है, मगर सैकड़ों में एक-आध को। परन्तु कभी हमारी भारतीय माताओं का मन भी यूरोपियन लेडियों की भाँति मेढक, छिपकिली, पतिङ्गे और मकड़ी आदि की ओर चलता है या नहीं, इसका कहीं 'रेकर्ड' नहीं है।

गर्भिणी में केवल किसी पदार्थ विशेष के खाने की उग्र रुचि ही उत्पन्न नहीं होती, बल्कि किसी पदार्थ विशेष के लिए वैसी ही प्रबल अरुचि और घृणा भी उत्पन्न होते हुए देखी जाती है। कोई दूध पीने में असमर्थ होती है, तो किसी को फल-तरकारी बिल्कुल नहीं भाती। प्रायः दालों के प्रति गर्भिणियों में अक्सर अरुचि दिखाई देती है। मेरी एक परिचित महिला पान-तम्बाकू की बहुत आदी हैं, परन्तु गर्भावस्था में उन्हें पान-तम्बाकू फूटी आँखों नहीं सुहाती। यूरोपियन महिलाओं में जिन वस्तुओं के प्रति अरुचि और घृणा उत्पन्न होते देखी गई है, शूरिंग ने उनकी एक सूची दी है। इस सूची में रोटी, मांस, मछली, चिड़ियों का मांस, केंकड़े, दूध, मक्खन, पनीर, शहद, शकर, नमक, अण्डे, प्याज़, कालीमिर्च, राई, सिरका, बिल्ली, मेढक, मकड़ी, बर्र, तलवार आदि हैं। उसने लिखा है कि बहुतों को सेब बुरा लगता है और बहुतों को उसकी ख़ुशबू। गुलाब और उसकी गन्ध के प्रति भी बहुतों में अरुचि होती है। इस सूची से यह प्रकट होता है कि यह घृणा केवल भोज्य पदार्थों तक ही सीमित नहीं है।

मिस्टर आर्थर गाइल्स ने इस विषय की बड़ी खोज की है। उनका कहना है कि गर्भिणी में केवल खाने-पीने की चीज़ों को छोड़ कर अन्य किसी वस्तु या अन्य किसी काम की प्रबल—अदमनीय—इच्छा उत्पन्न होते हुए नहीं देखी गई। परन्तु उनका यह कथन ठीक नहीं जान पड़ता। एक महिला के तम्बाकू पीने की लालसा का ज़िक्र ऊपर हो चुका है। शूरिंग ने लिखा है कि एक स्त्री को अपने पति के मुख पर अण्डे फेंकने की इच्छा होती थी, तथा एक अन्य स्त्री अपने ऊपर अण्डे फिकवाने के लिए लालायित रहती थी। भारतीय आयुर्वेद के ग्रन्थों में भी यह बताया गया है कि 'दौहृद' केवल खाने-पीने की तृप्ति ही का नहीं होता, वरन् वह शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि इन्द्रियों के सभी भोगों का होता है। अर्थात् गर्भिणी स्त्री में खाने-पीने के अतिरिक्त कोई विशेष शब्द सुनने, किसी ख़ास चीज़ को छूने, किसी पदार्थ विशेष या दृश्य विशेष को देखने अथवा किसी विशेष गन्ध को सूँघने आदि बातों की भी लालसाएँ उत्पन्न हुआ करती हैं।

गर्भिणी की यह लालसा सभी देशों, सभी जातियों और सभी युगों में मिलती है। यूरोप में वह बहुत दिनों से ज्ञात है। पुराने काल के यहूदी वैद्य उससे परिचित थे। भारतीय आयुर्वेद के ज्ञाताओं को उसका पूरा ज्ञान था। 'चरक', 'सुश्रुत', 'वाग्भट्ट' आदि ग्रन्थों में "दौहृद" का वर्णन मिलता है। महाकवि कालिदास के सुप्रसिद्ध काव्य-ग्रन्थ 'रघुवंश' के तीसरे सर्ग के प्रथम श्लोक में सुदक्षिणा के दौहृद का वर्णन है।* उत्तरी-दक्षिणी अमेरिका के रेड इण्डियनों को, अफ़्रिका में सूडान और नील नदी के तट पर बसने वाली बर्बर हब्शी जातियों को, तथा ओशीनिया में मलाया द्वीप-पुञ्ज की असभ्य

---

* अथेप्सितं भर्तुरुपस्थितोदयं
सखीजनोद्वीक्षण कौमुदी मुखम्।
निदानमिक्ष्वाकुकुलस्य सन्ततेः
सुदक्षिणा दौहृद लक्षणं दधौ।
—रघुवंश, ३रा सर्ग, १ला श्लोक

जातियों को उसका पता है। यूरोप में यह लालसा सरल और स्वाभाविक जीवन व्यतीत करने वाले जन-साधारण की स्त्रियों में बहुत पाई जाती है। जिस प्रकार हमारे यहाँ बोल-चाल में "पैर भारी होना" वाक्य गर्भवती का पर्यायवाची समझा जाता है, उसी प्रकार इङ्गलैण्ड के कार्नवाल ज़िले में 'लालसा के पथ में होना' (To be in longing way) वाक्य भी गर्भवती होने के अर्थ में व्यवहार किया जाता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि गर्भिणी स्त्रियों में यह इच्छाएँ क्यों पैदा होती हैं? इन लालसाओं का कारण क्या है? लालसाओं का गर्भिणी के गर्भ से क्या सम्बन्ध है? खाद्य-पदार्थों के अलावा अनेक अखाद्य पदार्थों की ओर गर्भिणी का मन क्यों चला करता है? इन सब प्रश्नों की चिकित्सा-शास्त्र के अनेक विद्वानों ने बड़ी ढूँढ़-खोज की है, और उनके समाधान के लिए पचीसों सिद्धान्त भिड़ाए हैं, परन्तु अब तक इस विषय का कोई पक्का सिद्धान्त निश्चित नहीं हो सका, इसलिए उपर्युक्त प्रश्नों का कोई सर्वमान्य और सन्तोष-प्रद उत्तर भी नहीं मिल सका।

भारतीय आयुर्वेद के आचार्य चरक कहते हैं :—

"माता और उसकी गर्भस्थित सन्तान—दोनों का हृदय रसवाहिनी नाड़ी के द्वारा सम्बद्ध रहता है, इसलिए दोनों में इसी रसवाहिनी नाड़ी के द्वारा इच्छा उत्पन्न होती है।"—चरक, शरीरस्थान, चतुर्थ अध्याय।

वाग्भट्ट ने भी ऐसा ही संक्षेप में लिख दिया है :—

"माता से उत्पन्न सन्तान का हृदय माता के हृदय से सम्बन्ध रखता है, इसलिए गर्भिणी की इच्छा का विघात करना अच्छा नहीं है।"

—वाग्भट्ट, शरीरस्थान, प्रथम अध्याय

परन्तु केवल इतना ही कह देने से ऊपर के समस्त प्रश्नों का समाधान नहीं हो जाता। अच्छा, अब पाश्चात्य विद्वानों के मत सुनिए।

कुछ विद्वानों का कथन है कि गर्भिणी की यह लालसा उसके शरीर की स्वाभाविक प्रेरणा का निदर्शन है। अर्थात् गर्भिणी के शरीर को जिस-जिस वस्तु की आवश्यकता होती है, उसके मन में उसी वस्तु के खाने-पीने की प्रेरणा पैदा हो जाती है। बहुत सम्भव है कि किसी हद तक यह बात ठीक हो, परन्तु यह पूर्णतः ठीक नहीं मानी जा सकती। बड़ी ख़राबी की बात तो यह है कि संसार के शरीर-विज्ञान के आचार्य अभी तक इसी बात का ठीक-ठीक निर्णय नहीं कर सके कि गर्भिणी के शरीर को किन-किन वस्तुओं की आवश्यकता होती है। फिर यह बात भी समझ में नहीं आती कि मिट्टी, बालू, कोयला, रूई आदि अखाद्य-पदार्थों में कौन सा ऐसा सार द्रव्य है, जिसकी गर्भिणी के शरीर को आवश्यकता होती है, और जो साधारण खाद्य-पदार्थों में नहीं पाया जाता? अतः यह सिद्धान्त पूर्णतया मान्य नहीं हो सकता।

दूसरी बात यह कही जाती है कि गर्भिणी की इच्छा उन चीज़ों को खाने-पीने की होती है, जिनमें क़ै और मतली को रोकने के गुण हों। गर्भ के आरम्भिक दिनों में स्त्रियों का जी अक्सर मतलाया करता है, और उन्हें क़ै हुआ करती है। इसलिए यदि उनका मन मतली रोकने वाली चीज़ों की ओर चले, तो यह स्वाभाविक ही है। परन्तु मि० गाइल्स तीन सौ गर्भिणी स्त्रियों की परीक्षा करके, इस सिद्धान्त के विपरीत परिणाम पर पहुँचे हैं। उनकी परीक्षा में लालसा रखने वाली स्त्रियों की संख्या, मतली से पीड़ित स्त्रियों में भी उतनी ही मिली, जितनी उन स्त्रियों में, जिन्हें कभी मतली की बीमारी हुई ही नहीं। दूसरी बात परीक्षा में यह सिद्ध हुई कि गर्भिणी में भोजन की लालसा प्रायः उस समय उत्पन्न होती है, जब उसकी मतली की बीमारी बिल्कुल अच्छी हो जाती है। फिर कीचड़, कोयला, मिट्टी, लकड़ी, बालू, रूई आदि चीज़ें ऐसी हैं, जिनसे मतली बन्द होना तो दरकिनार, उल्टे जिन्हें खाने से भले-चङ्गे व्यक्तियों को भी मतली होने लगे!

इस सम्बन्ध में यह भी कहा जाता है कि गर्भिणी की यह लालसा एक प्रकार की परम्परागत "स्वयं-सूझ" (Auto-Suggestion) है। मतलब यह कि गर्भिणी में, अपने से बड़ी स्त्रियों की देखा-देखी, और उनकी बातें सुन कर, यह लालसा अपने आप उत्पन्न हो जाती है। मि० गाइल्स का कहना है कि अधिकांश स्त्रियों की लालसा इसी परम्परागत "स्वयं-सूझ" का परिणाम है।

इस "स्वयं-सूझ" का एक अच्छा उदाहरण नेपोलियन के प्रसिद्ध सेनापति मार्शल ज़ूनो की पत्नी डचेज़ द

अवेरान्ते के संस्मरण में मिलता है। डचेज़ ने लिखा है कि उसकी प्रथम सन्तानोत्पत्ति के समय किस प्रकार ज़बर्दस्ती उस पर यह लालसा लादी गई थी। उसके मन में पहले किसी प्रकार की कोई इच्छा या लालसा नहीं थी। एक दिन भोजन के समय उसकी माँ ने कहा—"अरे हाँ, मैंने तुमसे आज तक यह तो पूछा ही नहीं कि तुम्हारा मन किस चीज़ पर चलता है?" डचेज़ ने सच्ची बात कह दी कि उसका मन किसी बात पर नहीं चलता। इस पर डचेज़ की माता को बड़ा आश्चर्य और चिन्ता हुई। उसने डचेज़ की सास और पति से इस बात का ज़िक्र किया। बस उसी दिन से उसके पति प्रति दिन भाँति-भाँति के भोजनों के नाम गिना-गिना कर उसकी रुचि पूछने लगे।

एक दिन डचेज़ एक मिठाई खा रही थी, जिसमें अनन्नास की ख़ुशबू दी हुई थी। एकाएक उसके मन में यह विचार आया कि अनन्नास बड़ा बढ़िया फल है, यद्यपि उसने उससे पहले कभी अनन्नास चखा तक नहीं था, क्योंकि उस समय तक भाप से दौड़ने वाली रेलों और स्टीमरों का आविष्कार नहीं हुआ था, इसलिए गर्म देशों में पैदा होने वाले अनन्नास का यूरोप तक पहुँचना दुस्तर होने के कारण, पेरिस के बाज़ार में वह एक दुर्लभ फल था। अब तो डचेज़ को अनन्नास खाने की लालसा उत्पन्न हो गई। जब उसे मालूम हुआ कि अनन्नास पेरिस में नहीं मिलेगा, तब यह लालसा इतनी प्रबल हो उठी कि उसे बोध होने लगा कि यदि अनन्नास न मिलेगा तो वह मर जायगी? उसके पति ने अनन्नास के लिए सारा पेरिस छान डाला। वह एक फल के लिए पचीस अशर्फ़ियाँ देने को तैयार था! अन्त में नेपोलियन की सम्राज्ञी की सहायता से एक फल बड़ी मुश्किल से प्राप्त हुआ। मार्शल रात में उसे लेकर घर पहुँचे। उन दिनों डचेज़ उठते-बैठते, सोते-जागते अनन्नास को छोड़ कर और किसी चीज़ की बात ही न करती थी। अब मार्शल घर पहुँचे, तब वह सोने के लिए जा चुकी थी, परन्तु अनन्नास का नाम सुनते ही उठ बैठी, और उसे उसी समय खाना चाहा। मगर पेरिस के एक बड़े डॉक्टर ने मार्शल से कहा था कि अनन्नास गरिष्ठ होता है, उसे रात में हर्गिज़ मत खिलाना। अतएव मार्शल ने उसे उस समय नहीं खाने दिया। डचेज़ रात भर अनन्नास को पलँग पर रक्खे हुए दुलराती और हाथ फेरती रही। राम-राम करके सवेरा हुआ। फल काट कर डचेज़ के सामने लाया गया। एकाएक उसके मन में अनन्नास के प्रति बड़ी प्रबल अरुचि उत्पन्न हो गई। उसकी ख़ुशबू से उसका जी घबड़ाने लगा। उसने फ़ौरन अनन्नास सामने से हटाने और कमरे के सब खिड़की-दरवाज़े खोलने का हुक्म दिया। बस उसी दिन से डचेज़ ज़िन्दगी भर कभी रुचि से अनन्नास न खा सकी। यदि कभी थोड़ा-सा खाया भी तो अपने ऊपर ज़ुल्म ज़बर्दस्ती करके। हाँ, उसकी ख़ुशबू उसे पसन्द थी।

निस्सन्देह यह मानना पड़ेगा कि इस "स्वयं-सूझ" का बहुत-कुछ प्रभाव गर्भिणी पर पड़ा करता है। यदि इससे उसके मन में लालसा उत्पन्न नहीं होती तो कम से कम बढ़ ज़रूर जाती है और अधिक स्पष्ट हो जाती है। परन्तु यह "स्वयं-सूझ" ही गर्भिणी की लालसा का एकमात्र अथवा पर्याप्त कारण नहीं हो सकती। क्योंकि यदि परम्परा से यानी अपने से बड़ी गर्भिणियों की देखा-देखी ही यह लालसा उत्पन्न होती, तो कई सन्तानों की जन्मदात्री माताओं में वह अधिक होती, नवीना माताओं में कम। परन्तु देखा यह जाता है कि स्त्रियों के प्रथम गर्भ के समय ही यह लालसा अधिक दृष्टिगोचर होती है। मि० गाइल्स की खोज का परिणाम यह निकला है कि प्रथम प्रसव के समय ही यह लालसा बहुत अधिक मिलती है, और बाद के गर्भों में क्रमशः कम होती जाती है, यहाँ तक कि दस या अधिक सन्तान उत्पन्न होने पर यह होती ही नहीं।

मि० आर्थर गाइल्स ने प्रायः तीन सौ गर्भिणी स्त्रियों की परीक्षा की थी, जिनमें उन्हें निन्यानबे स्त्रियों में (अर्थात् ३३ प्रतिशत में) यह लालसा मिली। परन्तु विशेष बात यह है कि इन ९९ में बहुत बड़ी संख्या में—यानी ७१ स्त्रियों में—यह लालसा किसी न किसी प्रकार के फल के लिए थी! फलों में भी सबसे पहला नम्बर सेब का था। चौंतीस महिलाओं ने सेब खाने की इच्छा बतलाई थी। "मैं दिन-रात सेब कुतरा करती थी।" "मैं बिछौने पर बैठी-बैठी सेब खाया करती थी।"—ये वाक्य अक्सर स्त्रियों के मुँह से निकलते थे। सेब के बाद दूसरा नम्बर नारङ्गी का था, जिसे १३ स्त्रियों ने पसन्द

किया था। तरकारियों में टोमाटो (विलायती बैगन) छै स्त्रियों को भाता था। बाक़ी ने भिन्न-भिन्न चीज़ों की इच्छा प्रकट की थी।

मिस्टर हैवलाक एलिस कहते हैं—"हम लोगों को यही समझना चाहिए कि यह लालसा देह-धर्म और मनोवृत्ति के झुकाव (Physiological and Psychic Tendency) पर अवलम्बित है। यह झुकाव जगत-व्यापक और एक स्वाभाविक—नॉर्मल—बात है।"

अब यह सवाल पैदा होता है कि गर्भिणी की लालसा पूर्ण होने या अपूर्ण रह जाने का गर्भिणी या सन्तान पर क्या प्रभाव पड़ता है?

चरक कहते हैं—"गर्भिणी के दौहृद की अवहेलना नहीं करना चाहिए। अवहेलना करने से गर्भ नष्ट या विकृत हो जाता है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि में माता और गर्भ को समान इच्छा होती है, इसलिए गर्भिणी के प्रिय और हित पदार्थों से उसका उपचार करना चाहिए।"

वाग्भट्ट का कथन है—"गर्भिणी की इच्छा का विघात अच्छा नहीं। हित (गुणकारी) वस्तुओं के साथ-साथ यदि अहित (हानिकर) वस्तुओं की ओर गर्भिणी का मन चले, तो उन्हें भी अल्प मात्रा में दे सकते हैं। क्योंकि उसकी इच्छा का विघात होने से गर्भ नष्ट किम्बा विकृत हो जाता है।"

सुश्रुत ने लिखा है—"दौहृद न मिलने से बालक कुबड़ा, लूला, पागल, मूर्ख, बौना और विकारयुक्त होता है; परन्तु दौहृद प्राप्त होने से बालक पराक्रमी, दीर्घायु और उत्तम होता है।"

"गोह के मांस का दौहृद होने से बालक अधिक सोने वाला; गो-मांस के दौहृद से बालक बलवान और कष्ट सहने वाला; महिष के मांस के दौहृद से बालक शूरवीर, लाल नेत्र और रोम वाला; वराह के मांस के दौहृद से बालक सोने वाला, परन्तु शूरवीर; मृग के मांस के दौहृद से बालक बड़ी-बड़ी जाँघों वाला तथा वन-वन में घूमने वाला; तीतर के मांस के दौहृद से बालक डरपोक; और साबर के मांस के दौहृद से बालक उद्विग्न होता है।"

भोजन-सम्बन्धी दौहृद के विषय में सुश्रुत ने केवल उपर्युक्त मांस ही गिनाए हैं। संसार के अन्य सब पदार्थों के लिए एक साधारण सिद्धान्त लिख दिया गया है कि—"इसके सिवा जिन चीज़ों का वर्णन नहीं है, उन पर दौहृद हो तो उनके शरीर, आचार और शील के समान बालक उत्पन्न होता है।"

इस पर एक टीकाकार महाशय कहते हैं—"पहले मांसभक्षी, वनवासी मनुष्य अधिक होते थे, इसलिए सुश्रुत जी ने उनके अनुसार ही दौहृद कह दिए हैं, परन्तु अनेक व्यञ्जन और फलादि, धान्यादि नहीं कहे, इसलिए उनके गुण, प्रकृति आदि देख कर अब के वैद्यों को विचार कर लेना चाहिए।"

भोजन-लालसा के अतिरिक्त अन्य इन्द्रियों के दौहृद के विषय में सुश्रुत कहते हैं—"राजा के दर्शन का दौहृद होने से सन्तान द्रव्यवान, भाग्यशाली होती है; रेशम, पाट और टसर के अच्छे वस्त्र और आभूषणों का दौहृद होने से सन्तान अलङ्कार की इच्छुक और शौक़ीन होती है; आश्रम, मन्दिर और महात्मा आदि के दर्शन की इच्छा होने से पुत्र धर्मशील, सत्पात्र होता है; और सर्पादि हिंसक जन्तुओं को देखने की इच्छा होने से बालक क्रूर और हिंस्र होता है। गर्भिणी की जिस इन्द्रिय की लालसा तृप्त न होगी, सन्तान की उसी इन्द्रिय में विकार हो जायगा।"

भारतीय आयुर्वेद के अन्य आचार्यों ने भी सुश्रुत से मिलती-जुलती बातें कही हैं। परन्तु उनके कथन और निरीक्षण में कितना सत्य है, इसका निर्णय आधुनिक विज्ञान के द्वारा अभी तक नहीं हो सका। यूरोपियन विद्वान तो अभी तक केवल इसी परिणाम पर ही पहुँच सके हैं कि गर्भिणी की लालसा तृप्त न होने से सन्तान पर उसका अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता। उसका क्या कुप्रभाव होता है, अथवा क्या दुष्परिणाम निकलता है, इसका वे अभी तक निर्णय नहीं कर सके हैं। हाँ, यूरोप के जनसाधारण में इसके विषय में एक दूसरा ही विश्वास अवश्य फैला है।

बहुतेरे बच्चों के शरीर (खाल) पर कहीं-कहीं एक धब्बे-सा दाग़ हुआ करता है। इस दाग़ या धब्बे का रङ्ग आस-पास की खाल के रङ्ग से किञ्चित गहरा होता है और उसका आकार नाना प्रकार का हुआ करता है। यह निशान पैदायशी होता है। हिन्दी में उसे प्रायः "लहसुन"

के नाम से पुकारते हैं * और अङ्गरेज़ी में वह 'Mothers Mark'—'माता का चिन्ह'—कहलाता है। यूरोप के जनसाधारण का विश्वास है कि गर्भिणी की लालसा पूरी न होने से ही उसकी सन्तान के शरीर पर यह दाग़—लहसुन—पड़ जाता है। वे यह भी कहते हैं कि गर्भिणी के मन में जिस चीज़ की लालसा होती है, उसके पूरा न होने पर बच्चे के शरीर का लहसुन उसी वस्तु के आकार का होता है। मान लीजिए कि गर्भिणी को नाशपाती खाने की इच्छा थी, जो पूरी न हो सकी, तो बच्चे के शरीर पर नाशपाती की शक्ल का लहसुन होगा।

हमारे यहाँ, युक्तप्रान्त की ओर, बहुत सी जातियों में यह धारणा प्रचलित है कि गर्भिणी की भोजन-लालसा पूरी न होने से उसकी सन्तान की लार बहुत बहा करती है। बच्चों की लार बहते देख कर लोगों को माताओं से यह भी पूछते देखा है—"तुम्हारी किस चीज़ की इच्छा पूरी नहीं हुई, जो तुम्हारे बच्चे की इतनी लार बहती है?"

मैंने देखा है कि बहुधा लोग गर्भिणी स्त्रियों को वंशलोचन खिलाया करते हैं। आयुर्वेद और यूनानी भैषज-शास्त्रों के अनुसार वंशलोचन एक बहुत गुणकारी और पौष्टिक औषधि है। आयुर्वेद की प्रसिद्ध औषधि 'शीतोपलाद चूर्ण' में वंशलोचन एक प्रधान वस्तु होती है। वंशलोचन का स्वाद मिट्टी के स्वाद से मिलता-जुलता है, अतः जिन स्त्रियों में मिट्टी खाने की लालसा होती है, उनकी उस लालसा की किसी क़दर तृप्ति वंशलोचन के द्वारा हो जाती है। लोग कहते हैं कि गर्भिणी को वंशलोचन खिलाने से उसकी सन्तान गोरी और सुन्दर होती है। मालूम नहीं, इस कथन में तथ्य कहाँ तक है, परन्तु एक घटना स्वयं मुझे मालूम है। मेरी एक आत्मीय महिला ने एक बार गर्भावस्था में वंशलोचन बहुत खाया था। उनकी वह सन्तान उनकी अन्य सब सन्तानों की अपेक्षा गोरी और सुन्दर हुई।

कलकत्ते के एक अनुभवी कविराज ने मुझसे बताया कि गर्भिणी स्त्री को कच्चे नारियल की गिरी खिलाने और उसका पानी पिलाने से सन्तान गोरी और बड़ी-बड़ी आँखों वाली होती है। उन्होंने यह भी कहा कि वे स्वयं कई गर्भिणी स्त्रियों पर इसका प्रयोग करके इसे आज़मा चुके हैं।

बहुत सी जातियों में यह लालसा बड़ी पवित्र मानी गई है। यूरोप के ब्लैक फ़ारेस्ट में—जर्मनी और ऑस्ट्रिया के सीमान्त-प्रदेश में—यह दस्तूर था कि गर्भिणी स्त्री किसी भी व्यक्ति के बाग़ में घुस कर जो फल चाहे बिना मूल्य ले सकती थी, बशर्ते वह उसे उसी स्थान पर बैठ कर खा ले। प्राचीन काल में इङ्गलैण्ड में गर्भिणी स्त्रियाँ अपनी लालसा को पूरी करने के लिए जो कुछ कर डालती थीं, उसके लिए वे उत्तरदायी नहीं समझी जाती थीं। मिस्टर कीरनन (Kiernan) ने अपने एक लेख में इस नियम का समर्थन किया है और उसे उचित बतलाया है। फ़्रान्स में राजक्रान्ति के बाद जो क़ानून बने थे, उनमें गर्भिणी स्त्रियों के अनुत्तरदायित्व को स्वीकार किया गया था। कुछ अन्य क़ानून-शास्त्रियों के मतानुसार भी गर्भिणी स्त्रियाँ गर्भावस्था में किसी अदालत के सामने विचार के लिए उपस्थित नहीं की जा सकती थीं। फ़्रान्स में यह नियम नेपोलियन बोनापार्ट के शासन तक प्रचलित रहे। नेपोलियन के समय में वे तोड़ दिए गए, क्योंकि मोशियो पिनार्द का मत था कि गर्भिणी स्त्री की लालसा अदमनीय बात नहीं है। यदि गर्भिणी चाहे तो उसे अपने क़ाबू में रख सकती है। फलतः गर्भिणी अपने कर्मों के लिए पूर्ण रूप से उत्तरदायी है।

---

* जैसे –

तिल, भौंरी, लहसुन, मसा, होय दाहिने अङ्ग।
बन-बन में घूमत फिरे, लछो न छोड़ें सङ्ग॥

—सामुद्रिक लक्षण

वर्तमान मुस्लिम-जगत

[डॉ० मथुरालाल शर्मा, एम० ए०, डी० लिट्०]

(गताङ्क से आगे)

कृषि की उन्नति

पिछले दस वर्ष में मुस्लिम जगत ने कृषि, व्यवसाय, वाणिज्य आदि में भी बड़ी उन्नति की है। भारतवर्ष की भाँति तुर्की भी कृषि-प्रधान देश है। इसलिए वहाँ की प्रजातन्त्र सरकार ने कृषि को उन्नत करने तथा कृषकों की दशा सुधारने के अनेक प्रयत्न किए हैं। राष्ट्रपति कमालपाशा अपने आपको तुर्की कृषक कहता है और उसके पास बड़ा विस्तृत खेत है, जिसमें आधुनिक वैज्ञानिक साधनों के द्वारा खेती की जाती है। कमालपाशा तुर्की का आदर्श कृषक है और उसका खेत कृषकों के लिए आदर्श शिक्षालय है। राष्ट्रपति के लिए यह शोभा की बात है कि वह खेती करता है और अपने को कृषक कहता है। मार्च सन् १९२२ में जब सरकार ने महात्मा गाँधी पर मुक़दमा चलाया था और मैजिस्ट्रेट ने उनसे पूछा था कि आपकी जाति और पेशा क्या है, तो आपने कहा था कि मैं जुलाहा तथा किसान हूँ। मुस्तफ़ा कमालपाशा का खेत अङ्गोरा के पास रेलवे-स्टेशन से सटा हुआ है। इसके निकट एक बड़ा झरना है, जिससे सिंचाई का काम होता है। खेत के पास कई सुन्दर इमारतें बनी हुई हैं। इसमें १८ ट्रैक्टर, ६ कूटने की मैशीनें, २ मोटरें और अन्य छोटी-मोटी कई कलों से काम लिया जाता है। इस खेत में अन्न, तरकारी तथा फल पैदा होते हैं और पशुपालन भी किया जाता है। यहाँ पर ७० सुन्दर और स्वस्थ गाएँ, कई स्विट्ज़रलैण्ड के साँड, पाँच हज़ार भेड़ें, कई हज़ार छुटे हुए बकरे और बकरियाँ और हज़ारों मुर्ग़े-मुर्ग़ियाँ रक्खे जाते हैं। मक्खियों द्वारा शहद भी उत्पन्न किया जाता है। इसके अतिरिक्त ८ सरकारी पाठशालाओं में केवल कृषि-शिक्षा दी जाती है। इनमें कृषि-सिद्धान्त भी बतलाए जाते हैं और व्यवहारिक काम भी सिखलाया जाता है। देश में कई खेतों में राज्य की ओर से नवीन वैज्ञानिक ढङ्ग से खेती की जाती है, जिसके द्वारा कृषकों को उन्नत साधनों का उपयोग करने की शिक्षा मिलती है। कृषि-विद्या के विशेषज्ञ देश में घूम-घूम कर कृषि को उन्नत तथा लाभकारी बनाने के उपाय बतलाते रहते हैं। तुर्की राज्य की जन-संख्या ९० लाख और क्षेत्रफल २ लाख वर्गमील है। सन् १९२४ और १९२६ के बीच १,००० ट्रैक्टर वहाँ बिक चुके हैं। ऐसे छोटे से देश में कृषि-शिक्षा का इतना प्रबन्ध अत्यन्त सराहनीय है। यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि यह सब उन्नति पिछले आठ वर्ष में की गई है। इसके पहिले कृषि की उन्नति का किसी को ख़याल भी न था। तो भी अभी कृषक बहुत पिछड़े हुए हैं।

तीनों स्वतन्त्र मुस्लिम देशों में रेल, तार, डाकख़ाने तथा सड़कों आदि की भी बड़ी उन्नति हुई है। ईराक़, सीरिया, पलस्तीन और मिश्र आदि में भी कुछ इस ओर तरक़्क़ी हुई है, परन्तु उसकी गति मन्द है। स्वतन्त्र देश और सुरक्षित देशों में अन्तर होना ही चाहिए। सुल्तान ख़लीफ़ाओं के शासन-काल में तुर्की में जितनी रेलें बनी थीं, सब जर्मन, फ्रेञ्च या इङ्गलिश कम्पनियों ने बनवाई थीं, जिनसे उनको विपुल लाभ होता था। प्रजातन्त्र सरकार ने यह प्रथा बन्द कर दी और स्वदेशी कम्पनियों द्वारा या सरकारी पूँजी द्वारा रेलें खोली जाने लगी हैं। पिछले १० वर्ष में कितनी ही नई रेलवे खुल चुकी हैं और अब भी खुलती जाती हैं।

सड़कें और रेल

ईरान और अफ़ग़ानिस्तान में भी पिछले १०-१२ वर्षों में कितनी ही नई-नई सड़कें बन गई हैं। महासमर के समय में रूसियों और अङ्गरेज़ों ने अपने मतलब से उत्तर और दक्षिण ईरान में लम्बी-लम्बी सड़कें बनवाई थीं। रूस ने तो रेलवे लाइनों का भी निर्माण किया था। अपने यहाँ राज्यक्रान्ति के बाद रूस ने ईरान से जो सन्धि की, उसके अनुकूल उत्तर ईरान की सब सड़कें और लाइनें बिना मूल्य ईरान को दे दी गईं और जब रिज़ाअली ने स्वातन्त्र्य संग्राम छेड़ा तो अङ्गरेज़ लोग भी अपनी बनाई हुई सड़कों को छोड़ भागे। स्वातन्त्र्य-प्राप्ति के पश्चात् ही ईरान में कई हज़ार मील लम्बी सड़कें बन चुकी हैं। सब प्रधान नगर और क़स्बे इनसे जुड़े हुए हैं और अनेक मोटर लॉरियाँ इन पर दौड़ती हैं। नई रेलवे लाइनें भी प्रति वर्ष खुलती जाती हैं। अफ़ग़ानिस्तान में भी कितनी ही लम्बी-लम्बी, कच्ची और पक्की सड़कें बनी हुई हैं। इस विषय में अमीर अमानुल्ला ने बहुत उन्नति की थी; उन्होंने कई रेलें बनवाने की भी योजना की थी और फ़्रेञ्च तथा जर्मन कम्पनियों को इसके ठेके भी दिए जा चुके थे, पर इस बीच ही में बचासक़्क़ा के उत्पात के कारण उनको देश छोड़ कर जाना पड़ा। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि तुर्की, ईरान और अफ़ग़ानिस्तान में रेलवे लाइनों के ठेके फ़्रेञ्च या जर्मन कम्पनियों को ही दिए गए हैं और अङ्गरेज़ी कम्पनियों का प्रायः बहिष्कार सा रहता है। तुर्की में तो अब कई स्वदेशी कम्पनियाँ भी बन गई हैं और व्यापारियों को मोटर लॉरियों का उपयोग करने के लिए उत्साहित करना आर्थिक दृष्टि से अधिक लाभकारी माना गया है। अफ़ग़ानिस्तान में अभी कोई रेलवे खुली नहीं है और ईरान में जो कुछ खुली है उसमें अत्यधिक व्यय हुआ है।

सड़कें बन जाने से और मोटर का उपयोग होने से राज्य-प्रबन्ध में उत्तमता आ गई है। कर वसूल करना और लूट-मार को दबाना सरल हो गया है। राजधानी में क्या हो रहा है, इसका जनता को शीघ्र पता लग जाता है। प्रान्तिक अफ़सरों के अत्याचार भी इस कारण से मिट से गए हैं। राजनीतिक समाचार देश में शीघ्रता और आसानी से फैल जाते हैं, इसलिए जनता में राष्ट्रीय विषयों पर अधिक बातचीत होती है और सरकार निरङ्कुश नहीं बन सकती। डाकख़ाने लोगों को आधुनिक बनाते जाते हैं। रूस, जर्मन आदि नवीन प्रजातन्त्रों के राजनीतिज्ञों के विचार ईरान और अफ़ग़ानिस्तान की दुर्गम पर्वतमालाओं में भी पहुँच जाते हैं। मुस्लिम-संसार अब वाह्य जगत से पृथक् नहीं है। वह संसार का एक अङ्ग है। पिछले अफ़ग़ानिस्तान-युद्ध में काबुल, क़न्धार तथा हिरात की ख़बरें बात की बात में सारे संसार में फैल जाया करती थीं। इस समय काबुल, क़न्धार, बग़दाद और इस्फ़ान आदि नगरों में यूरोप की कई भाषाओं के दैनिक पत्र पहुँचते हैं। रेडियो (बेतार के तार) द्वारा काबुल, खीवा, बुख़ारा आदि नगर ही क्या, दूरस्थ गाँवों में भी संसार के दैनिक समाचार पहुँचते हैं। सब मुस्लिम देशों में और विशेषकर तुर्की, ईरान और अफ़ग़ानिस्तान में वाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार का व्यापार बढ़ता जाता है। एक स्थान से दूसरे स्थान पर अन्न आदि मोटरों द्वारा पहुँच जाने के कारण दुर्भिक्षों की भयङ्करता घट गई है। काबुल, बग़दाद, बसरा, इस्फ़ान, अम्मन आदि नगरों में तारघर स्थापित हो चुके हैं। इन नगरों में अच्छे ऊँचे दर्जे के आधुनिक अस्पताल बन गए हैं और अन्य छोटे नगरों में भी बनते जाते हैं।

शिक्षा

१९१९ से पूर्व अन्य मुस्लिम-संसार का तो कहना ही क्या, तुर्की, ईरान और अफ़ग़ानिस्तान जो प्रायः स्वतन्त्र देश थे, उनमें भी शिक्षा की कोई अच्छी व्यवस्था नहीं थी। तुर्की में यूनान, फ़्रान्स, रूस और अमेरिका की जो बस्तियाँ या मिल्लतें थीं उन्होंने अपने स्कूल, कॉलेज और एक-दो विश्वविद्यालय खोल रक्खे थे, परन्तु ये संस्थाएँ स्वयं उनके बच्चों के लिए थीं और उनकी भाषाओं में ही वहाँ शिक्षा दी जाती थी। इनमें तुर्की विद्यार्थी भी पढ़ते थे और कई तुर्क नवयुवक यहाँ से अच्छे देशभक्त और विद्वान बन कर निकले थे। पर यह संयोग की बात थी, वरना यहाँ राष्ट्रीय शिक्षा नहीं मिलती थी। सरकार की तरफ़ से शिक्षा-विभाग था और मसजिदों के मकतबों को भी सहायता मिलती थी, परन्तु इनका कोई निरीक्षण न था। पठन-पाठन की वहाँ कोई निश्चित व्यवस्था न थी, मसजिदों में लड़के एकत्र हो

जाया करते थे और मुल्ला उनको बिना समझाए कुरान रटाया करते थे। जो परिवार यूरोप के सम्पर्क में आ चुके थे वे अपने बच्चों को विदेशियों द्वारा स्थापित संस्थाओं में पढ़ाते थे या विदेशों में भेज दिया करते थे। वास्तव में प्रजातन्त्र की स्थापना से पूर्व तुर्की में इन विदेशियों की संस्थाओं से ही जो कुछ शिक्षा का प्रचार होता था वह होता था। ईरान की दशा और भी हीन थी। किसी समय ईरान मुस्लिम सभ्यता का केन्द्र था, परन्तु यूरोप की वैज्ञानिक उन्नति और अङ्गरेज़ तथा रूसियों की हड़प-नीति ने इनको पीस डाला था। जब वहाँ शासन-व्यवस्था ही ठीक न थी तो शिक्षा-प्रचार क्या होता? प्रधान-प्रधान नगरों में परम्परागत पाठशालाएँ थीं, जिनमें कुरान-हदीस और साहित्य आदि विषय पढ़ाए जाते थे। विज्ञान, भूगोल, इतिहास, राजनीति और अर्थशास्त्र आदि उपयोगी विषयों की कोई चर्चा ही नहीं थी। जो लोग विदेशों में घूम चुके थे और विज्ञान-शिक्षा की आवश्यकता को अनुभव करते थे, वे अपने बच्चों को शिक्षा-प्राप्ति के लिए विदेशों में भेजा करते थे। पश्चिमी पुस्तकों का अनुवाद फ़ारसी में होने लगा था और एक समाचार-पत्र भी ऐसा प्रकाशित होने लग गया था, जिसमें वर्तमान राजनीतिक विषयों का ज़िक्र होता था। पर वर्तमान ढङ्ग पर शिक्षा की कोई व्यवस्था सरकार ने नहीं की थी। अमीर अमानुल्ला से पहले अफ़ग़ानिस्तान में भी यही दशा थी। ईरान में तो फिर भी कुछ लोगों में साहित्य-चर्चा हुआ करती थी और काव्य से प्रेम था, पर अफ़ग़ानिस्तान में तो यह भी नहीं था। अफ़ग़ान जनता को विद्या, संस्कृति और कला से कोई प्रेम नहीं था। दस-पाँच परिवारों में यदि सभ्यता और शिष्टता हुई भी, तो यह किस गिनती में। अधिकांश जनता इन गुणों से शून्य थी। धर्म के ठेकेदार मुल्ला लोग भी नाम मात्र के पढ़े-लिखे थे। काबुल और क़न्धार जैसे नगरों में भी गिनती के मकतब थे, जिनकी व्यवस्था की सरकार को कोई चिन्ता न थी।

तुर्की में स्वतन्त्र देशी स्कूल

अस्तु, प्रजातन्त्र स्थापित होते ही विदेशियों की शिक्षा-संस्थाओं पर तुर्की सरकार का आधिपत्य होने लगा। क्योंकि इन संस्थाओं के कारण तुर्की सरकार का शिक्षा-विभाग दबा हुआ था और राष्ट्रीय शिक्षा की व्यवस्था नहीं होने पाती थी। राष्ट्रीय आवश्यकताओं को लक्ष्य में रख कर वहाँ शिक्षा नहीं दी जाती थी। और विदेशी बस्तियों को तुर्की राज्य की आवश्यकताओं से सम्बन्ध ही क्या था। उस समय सब अच्छे स्कूल और कॉलेज विदेशियों के ही थे। सरकारी स्कूलों में उच्च विषयों के पढ़ाने का प्रबन्ध उत्तम नहीं था। इस प्रकार शिक्षा-विभाग अधिकांश विदेशियों के हाथ में होने से एक प्रकार से तुर्की का दिमाग़ ही विदेशियों के हाथ में था। इन स्कूलों में प्रधानता फ़्रेञ्च स्कूलों की थी, जिनमें कई हज़ार तुर्की लड़के पढ़ते थे। यही कारण है कि इस समय तुर्की में फ़्रेञ्च भाषा का इतना अधिक प्रचार है। लोसान की सन्धि के बाद जब तुर्की की विदेशी ईसाई बस्तियाँ तुर्की को छोड़ कर अपने-अपने देश में जाने लगीं तो इन संस्थाओं का रूपान्तर होने लगा। इनका सञ्चालन तो विदेशियों के ही हाथ में रहा, परन्तु ध्येय में परिवर्तन होने लगा। इनमें तुर्की विद्यार्थियों की संख्या बढ़ने लगी और ईसाई विद्यार्थियों की संख्या घटने लगी। इनके पाठ्यक्रम का तथा सञ्चालन का निरीक्षण तुर्की शिक्षा-विभाग के कर्मचारीगण करने लगे। विदेशी मिशनरी स्कूल, जो पहले स्वतन्त्र थे, सब शिक्षा-विभाग के अधीन हो गए। इनमें बहुत से बन्द भी हो गए। १९२२ से पूर्व तुर्की में अमेरिका के तीन कॉलेज, एक विश्वविद्यालय और पाँच सौ से ऊपर अन्य छोटी संस्थाएँ थीं और सब तुर्की सरकार से स्वतन्त्र थीं, पर अब सबका शिक्षा-विभाग निरीक्षण करता था। विदेशी संस्थाओं का रूपान्तर होता जाता है या वे बन्द होते जाते हैं। इन स्कूलों में तुर्की विषयों का अध्ययन और कुछ तुर्की अध्यापकों का होना अनिवार्य कर दिया गया है। किसी धर्म-विशेष की शिक्षा देना, तुर्की राज्य के विरुद्ध किसी प्रकार की बातें बतलाना मना है। जहाँ इन बातों का उल्लङ्घन होता है, उन संस्थाओं को बन्द होना पड़ता है।

नवीन शिक्षा-प्रणाली

वैसे तो यूरोप की नक़ल करने के लिए १८१३ में ही तुर्की राज्य में शिक्षा अनिवार्य कर दी गई थी, पर इसका

पालन नहीं होता था और विदेशी स्कूलों के कारण कोई एक प्रकार का ढङ्ग निश्चित नहीं होने पाता था। अब शिक्षा अनिवार्य कर दी गई है और इस नियम का पालन करवाया जाता है। सात और सोलह वर्ष के बीच के सब बच्चों का स्कूलों में पढ़ना लाज़िमी है। शिक्षा का माध्यम तुर्की भाषा है। ऊँची कक्षाओं में पहुँचने पर फ़्रेञ्च दूसरी भाषा की भाँति पढ़ाई जाती है। सरकारी या अन्य स्कूलों में किसी प्रकार के धर्म की शिक्षा देना मना है। सन् २८ में दो अमेरिकन महिलाओं पर इस नियम का उल्लङ्घन करने पर मुक़दमा चलाया गया था। सन् १९२४ में सब धार्मिक स्कूल तोड़ दिए गए और उनकी सम्पत्ति शिक्षा-विभाग में दे दी गई। क़ुस्तुन्तुनियाँ में पहिले जो नाममात्र का विश्वविद्यालय था वह अब वास्तव में विश्वविद्यालय बन गया। वहाँ पर अनेक उपयोगी विषयों की शिक्षा दी जाती है और उनके विभाग प्रति वर्ष उन्नत तथा विस्तृत किए जा रहे हैं। विज्ञान, राजनीति, इञ्जीनियरिङ्ग और चिकित्साशास्त्र पर अधिक ज़ोर दिया जाता है। देश भर में और विशेषकर एनेटोलिया में कितने ही कृषि-स्कूल भी खोल दिए गए हैं। अब तक तुर्की भाषा अरबी लिपि में लिखी जाती थी, पर अब स्कूल, कॉलेज, दफ़्तर आदि सब जगह तुर्की भाषा रोमन लिपि में लिखी जाने लगी है। तुर्की के अनेक विद्यार्थी फ़्रान्स और जर्मनी आदि देशों में शिक्षा प्राप्त करने के निमित्त भेजे गए हैं। जिन लोगों की आयु स्कूलों में पढ़ने योग्य नहीं है और अपने काम-धन्धों के कारण यथानियम पढ़ भी नहीं सकते, ऐसे लोगों को साक्षर बनाने का विशेष प्रयत्न किया गया है। सन् १९२८ में इस कार्य को करने के लिए चौदह हज़ार अध्यापक थे। तुर्की स्कूलों में ऐसी पुस्तकें पढ़ाना मना है, जिनमें यूनानी वीरों का उल्लेख हो या तुर्की की निन्दा हो।

ईरान और अफ़ग़ानिस्तान में शिक्षा-प्रचार

ईरान में अभी शिक्षा का इतना प्रचार नहीं हुआ है, परन्तु उन्नति अवश्य होती जाती है। ईसाइयों के मिश्नरी स्कूलों में भी फ़ारसी का पढ़ाना अनिवार्य कर दिया गया है और प्रारम्भिक ६ कक्षाओं में शिक्षा का माध्यम भी फ़ारसी ही रक्खा गया है। सरकार ने एक शिक्षा-विभाग की व्यवस्था की है और स्कूलों में यूरोपीय प्रणाली से शिक्षा दी जाती है, जिसमें विज्ञान और राजनीति का स्थान दिन-दिन बढ़ता जाता है। गत वर्ष नौका-विज्ञान की शिक्षा प्राप्त करने के लिए सोलह विद्यार्थी फ़्रान्स भेजे गए थे। अन्यान्य कला और व्यवसाय की शिक्षा के लिए भी विद्यार्थी बाहर भेजे जाते हैं।

अफ़ग़ानिस्तान में शिक्षा का प्रचार अमानुल्ला ने किया था। राज्य-क्रान्ति के पश्चात् जब रूसी सरकार ने पश्चिमी तुर्किस्तान में प्रजातन्त्र राज्य स्थापित कर दिया और वहाँ प्रबल वेग से उन्नति होने लगी, तो अफ़ग़ानिस्तान पर भी इसका गहरा प्रभाव पड़ा। सन् १९२० में अफ़ग़ानिस्तान ने चीन, फ़्रान्स और इटली से सन्धियाँ कीं और रूसी, तुर्की, फ़्रेञ्च तथा इटेलियन अफ़सरों की सहायता से अपने राज्य के विभागों की उन्नति आरम्भ की। इन देशों से कितने ही इञ्जिनियर और अध्यापक बुलवाए गए और अफ़ग़ानी नवयुवक इनसे शिक्षा पाने लगे। छापाख़ाने का प्रचार तेज़ी के साथ बढ़ाया जाने लगा और समाचार-पत्रों को लोकप्रिय बनाने के यत्न होने लगे। सन् १९२३ में अकेले काबुल से ९ पत्र प्रकाशित होने लगे और प्रत्येक उच्च कर्मचारी के लिए कम से कम दो पत्रों का ग्राहक होना अनिवार्य कर दिया गया। सारे देश में प्रारम्भिक और मिडिल स्कूल खोले गए और प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य तथा निःशुल्क कर दी गई। कला-कौशल सिखाने का भी प्रबन्ध किया गया। १९२४ में दो कॉलेज भी स्थापित किए गए। एक में फ़्रेञ्च और दूसरे में जर्मन अध्यापक रक्खे गए। उच्च और सम्पन्न परिवारों के लड़के शिक्षा-प्राप्ति के लिए यूरोपीय देशों में भेजे गए। बच्चएसक़्क़ा के क्षणिक शासन में शिक्षा को गहरा धक्का पहुँचा था। कॉलेज बन्द हो गए थे और पुस्तकालय तथा अजायबघर और पुरातत्व-विभाग का संग्रहालय सब नष्ट कर दिए गए थे। स्कूल बन्द कर देने का आदेश हो गया था।

महिला-स्वातन्त्र्य

महासमर से पूर्व मुस्लिम-जगत में महिलाओं की दशा अच्छी नहीं थी। सर्वत्र घोर परदे का प्रचार था और इस कारण वे अविद्या के अन्धकार में डूबी हुई थीं। तुर्की के कुछ परिवारों में शिक्षा और स्वातन्त्र्य का

आरम्भ होने लगा। पर इसमें अनेक राजनीतिक बाधाओं का सामना करना पड़ा था। एक समय तुर्की में यह दशा थी कि यदि किसी स्त्री की उङ्गली भी बुर्क़े में से दीखती हो या वह किसी पुरुष की तरफ़ कुछ सङ्केत करती हुई जान पड़ती हो या रात में आठ बजे के बाद कहीं घूमती हो, तो उसको पुलिस गिरफ़्तार कर सकती थी। ईरान में भी स्त्रियाँ बिना बुर्क़े के बाहर नहीं निकल सकती थीं और गाड़ी या मोटर में पुरुष के पास नहीं बैठ सकती थीं और न थिएटर आदि देखने जा सकती थीं। सुलतान के अन्तःपुर में तो सैकड़ों स्त्रियाँ भरी ही रहती थीं, परन्तु साधारण तुर्क भी प्रायः एक से अधिक स्त्रियाँ रखता था। कुर्दिस्तान में तो बिरला ही पुरुष ऐसा होता था, जिसके एक ही स्त्री हो। यही प्रथा अरब, मिस्र, ईराक़, ईरान और अफ़ग़ानिस्तान में भी पूर्णरूप से प्रचलित थी। लेकिन परदा सर्वत्र एक सा नहीं था। कुर्दिस्तान में स्त्रियाँ खेतों पर काम करती थीं, अरब में बेदूयी जाति की महिलाएँ भी बाहर निकला करती थीं और मोरक्को आदि राज्यों में तो पुरुषों का सब कार्य स्त्रियाँ करती थीं। परन्तु उच्च कुलों में सर्वत्र परदा था। इतने बन्धन होते हुए भी स्त्रियों के क़ानूनी अधिकार बहुत ऊँचे थे। अन्य देशों की स्त्रियों की अपेक्षा मुस्लिम स्त्रियों को स्वतन्त्रता तो अत्यन्त कम थी—बल्कि नहीं सी थी—परन्तु जायदाद वग़ैरह पर उनके अधिकार काफ़ी अच्छे थे।

स्वातन्त्र्य नियम

यूरोप के सम्पर्क से सबके विचारों में परिवर्तन तो होता जाता था, पर राज-नियम का विरोध करने को किसी का साहस नहीं होता था और अविद्या के कारण अधिकांश लोग परम्परा को भी नहीं त्यागना चाहते थे। तुर्की, मिस्र और ईरान आदि देशों में वर्तमान शताब्दी के आरम्भ में ही अनेक मुस्लिम परिवार सभ्यता के रँग में इतने रँग गए थे कि उनकी महिलाएँ यूरोपीय पोशाक पहिनने लगी थीं और यूरोपीय भाषाओं के उपन्यास पढ़ती थीं। इतनी उन्नत होने पर उनको परदा तो कब पसन्द हो सकता था, परन्तु सामाजिक निन्दा और राज्य-भय उनको रोके हुए थे। महासमर के समय यूरोपीय सभ्यता की चरचा मुस्लिम-संसार में घर-घर होने लगी और मुस्लिम महिलाओं में सामाजिक स्वातन्त्र्य की अभिलाषा बढ़ने लगी। तुर्की में तो स्त्रियाँ इतनी उन्नत और अधीर हो गई थीं कि यदि महिला-स्वातन्त्र्य के विरुद्ध राजनियम बने रहते, तो सामाजिक विप्लव हो जाता। हलीदा अदीब हानुम और लतीफ़ ख़ानुम जैसी उच्च शिक्षिता महिलाएँ परदे की प्रथा को कहाँ तक स्वीकार कर सकती थीं। प्रजातन्त्र स्थापित होने पर कमालपाशा ने इस ओर ध्यान दिया। महिला-स्वातन्त्र्य के महत्त्व को वह पहिले ही समझता था, इसलिए उनमें बढ़ती हुई जागृति से उनको और भी उत्साह मिल गया। परदे के सम्बन्ध में जो राजनियम था वह तोड़ दिया गया और यह राजनियम हो गया कि जब तक एक स्त्री जीवित हो, तब तक दूसरी स्त्री से कोई विवाह न करे। मिस्र में भी परदा-क़ानून तोड़ दिया गया और ईरान के शाह ने भी इस नियम को शनैः-शनैः शिथिल करके अन्त में बिलकुल तोड़ डाला। वहाँ पहले तो यह नियम बनाया गया था कि स्त्रियाँ अपने पति, भाई या पिता के साथ खुली हुई गाड़ी या मोटर में घूम सकती हैं और सिनेमा तथा थियेटरों में भी जा सकती हैं, परन्तु पुरुषों से अलग बैठें। तदनन्तर १९२८ में यह निश्चय हुआ कि जो स्त्रियाँ परदा छोड़ना चाहें वे छोड़ सकती हैं। राजनियम न इसके विपरीत है न अनुकूल। यह व्यक्तिगत आचरण की बात है। अफ़ग़ानिस्तान में भी अमीर अमानुल्ला ने ऐसा राजनियम बनाया और स्वयं महारानी सूरिया ने परदा हटा दिया। ईरान और अफ़ग़ानिस्तान में बहुविवाह के विरुद्ध भी क़ानून बने, परन्तु इनका पूर्ण रूप से अभी पालन नहीं होता।

वर्तमान दशा

मुस्लिम-जगत में तुर्की और मिस्र की स्त्रियाँ सर्वाधिक स्वतन्त्र हैं! परन्तु वहाँ भी अभी गाँवों की स्त्रियों की दशा वैसी ही बनी हुई है। तुर्की में साक्षर स्त्रियों की संख्या सौ में चार है, इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि वहाँ की दशा भारतवर्ष से अधिक अच्छी नहीं है। ईरान में महिलोद्धार का कार्य हो रहा है, पर अभी अन्धकार विशेष न्यून नहीं हुआ है। अफ़ग़ानिस्तान तो अमीर अमानुल्ला के बाद से पुनः उसी

गर्त में गिर गया है, जिसमें वह सन् १९१४ तक था। सीरिया में भी अन्य उन्नत देशों की भाँति स्त्रियों को स्वतन्त्रता है, पर अरब, नज्द और ईराक़ में अभी महिला-सुधार का आरम्भ भी नहीं होने पाया है। उत्तर अफ़्रिका के मुस्लिम प्रदेशों में स्त्रियों की स्वतन्त्रता पर पहले ही घोर बन्धन नहीं थे और अब्दुलकरीम के स्वातन्त्र्य-संग्राम के समय उन्होंने पुरुषों का साथ भी दिया था। परन्तु उनमें आधुनिक संस्कृति तथा शिक्षा का अभाव है। सबसे अधिक हीन दशा अरब स्त्रियों की है और भारत के मुसलमान भी अरब का अनुकरण करने में ही अपना गौरव समझते हैं। रूसी तुर्किस्तान में स्त्रियों का उद्धार अत्यन्त शीघ्र गति से हो रहा है

प्रसिद्ध महिलाएँ

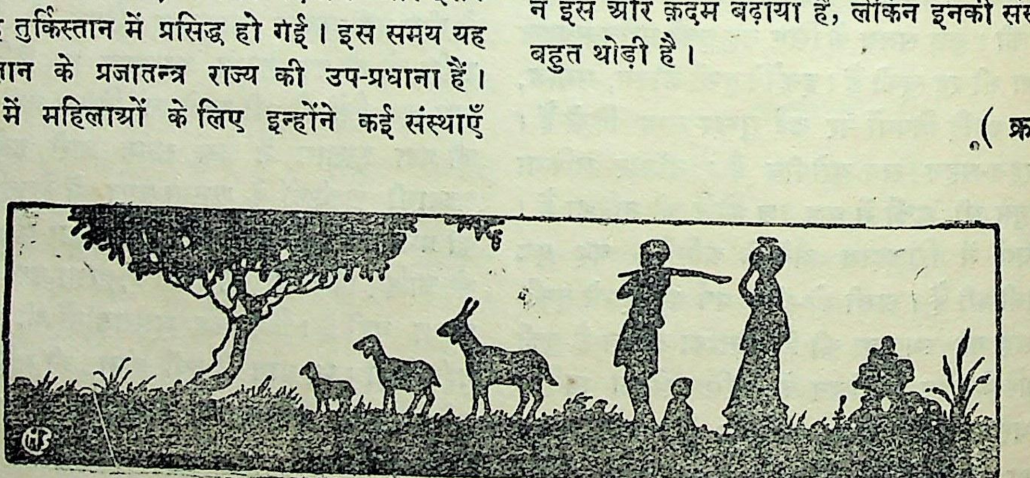
मुस्लिम महिलाओं के स्वातन्त्र्य का श्रेय अधिकतर लतीफ़ा हानुम, हलीदा अदीब हानुम, डॉक्टर सफ़िया अली हानुम, महाराणी सूरिया, मिस ज़करिया सुलेमान और अबीदबा आदि को है। लतीफ़ा हानुम कमालपाशा की योग्य तथा सुशिक्षिता धर्मपत्नी हैं और स्त्री-शिक्षा तथा महिलाओं के अधिकारों को उन्नत करने में लगी रहती हैं। कमालपाशा के राजनीतिक तथा सामाजिक सुधारों में इन्होंने सदैव सहयोग दिया है। हलीदा अदीब हानुम तुर्की महिलाओं की शिरोरत्न हैं। यह तुर्की, अङ्गरेज़ी तथा फ्रेञ्च भाषाओं की पारङ्गत पण्डिता हैं और शिक्षा-प्रचार सम्बन्धी विषयों की विशेषज्ञा हैं। यूरोपीय देशों के अतिरिक्त इन्होंने अमेरिका में भी भ्रमण किया है। स्त्री-शिक्षा के प्रचार में इन्होंने कमालपाशा की गहरी सहायता की। कुछ समय के लिए यह तुर्की मन्त्रि-मण्डल की सदस्या भी रह चुकी हैं। इन्होंने तुर्की जीवन, समाज, राजनीति आदि विषयों पर कई सुन्दर ग्रन्थ लिखे हैं। इनका रहन-सहन सब यूरोपीय है। डॉक्टर सफ़िया अली हानुम भी तुर्की में एक उच्च कोटि की महिला हैं। अपने कार्य में सिद्धहस्त होने के अतिरिक्त यह एक योग्य नेत्री भी हैं। अभी दो-तीन वर्ष पूर्व इसने तुर्की-महिला-सङ्घ की स्थापना की है, जिसका उद्देश्य है तुर्की महिलाओं के लिए निर्वाचन के अधिकारों की प्राप्ति। यह धुरन्धर वक्ता तथा योग्य लेखिका हैं। सन् १९२७ में दमिस्क में इन्होंने पूर्वी महिला-सङ्घ का वार्षिक अधिवेशन करवाया था, जिसमें भारतवर्ष, चीन, अफ़ग़ानिस्तान आदि सब एशियाई देशों की स्त्रियों को अपने प्रतिनिधि भेजने के लिए निवेदन किया गया था। तब से इस सङ्घ का अधिवेशन प्रति वर्ष दमिस्क में हुआ करता है। इस वर्ष इस अधिवेशन में अन्यान्य सुधार-प्रस्तावों के सिवाय यह भी प्रस्ताव स्वीकृत किया गया था कि १८ वर्ष के पूर्व लड़कियों का विवाह न होना चाहिए। महाराणी सुरैया को भारतवर्ष में कौन नहीं जानता? यह अमीर अमानुल्ला की योग्य धर्मपत्नी हैं। इनके पिता का स्थान सीरिया में है और बचपन में इसने फ्रेञ्च अध्यापिकाओं से शिक्षा पाई थी। कट्टर मुसलमानों ने इनके लिए यह अफ़वाह फैलाई थी कि यह ईसाई-धर्म को मानती हैं, पर वास्तव में बात यह है कि वह इस्लाम-भक्त होते हुए भी अन्य धर्मों को आदर की दृष्टि से देखती थीं। इनको फ्रेञ्च सभ्यता से प्रेम है। इन्होंने अफ़ग़ानिस्तान में स्त्रियों की दशा सुधारने के अनेक प्रयत्न किए थे और यदि अफ़ग़ानिस्तान का भाग्य सुलटा होता और अमीर अमानुल्ला को अपना प्यारा देश छोड़ना न पड़ता तो कुछ ही वर्षों में महाराणी सुरैया अफ़ग़ान महिलाओं को उन्नत, शिक्षित, संस्कृत तथा आधुनिक बना देतीं। यूरोप में यात्रा करते समय इन्होंने एक बार एक समाचार-पत्र के प्रतिनिधि से कहा था कि—"महिलाओं के स्थान के विषय में प्रारम्भिक इस्लाम-सिद्धान्त और थे और अब और हो गए हैं। इस्लाम ने स्त्रियों को विचार-स्वातन्त्र्य तथा कार्य-स्वातन्त्र्य दिया था और उनका पद पुरुषों के समान रक्खा था। राजनैतिक विषयों में भी स्त्रियों को पुरुषों से हीन नहीं समझा जाता था। स्त्रियों के लिए अपने शरीर को तो ढका रखना आवश्यक था, लेकिन चेहरा, हाथ तथा पैरों को भी ढकने का विधान नहीं था। परदे की प्रथा इस्लाम में उस समय जारी हुई थी, जब अब्बासी ख़लीफ़ों के शासन-काल में ईरानी सभ्यता की प्रधानता बढ़ने लगी थी। पूर्वी संसार की महिलाओं को चाहिए कि वे परदे को त्याग दें, वरना उन्नति की कोई आशा नहीं है। विशेषकर मुसलमानों की तो उन्नति नहीं होगी। पर साथ ही पूर्वी संसार की महिलाओं को आँखें मूँद कर पश्चिम का अनुकरण भी नहीं करना चाहिए।"

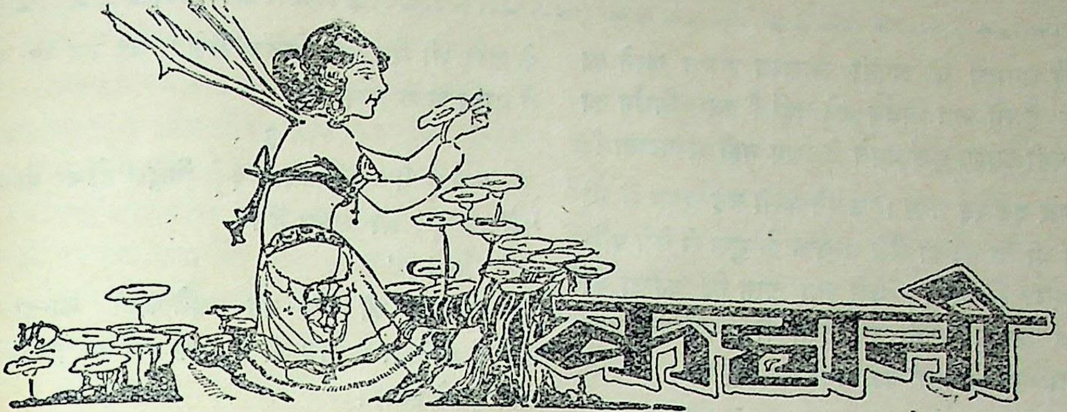
मिस ज़करिया सुलेमान मिस्र के एक सम्पन्न व्यापारी की पुत्री हैं। इन्होंने भी विदेशों में बहुत भ्रमण किया है और छोटे बच्चों की शिक्षा-प्रणाली को सुधारने में अथक परिश्रम किया है। यह किण्डर गारटन और मोन्टीसरी पद्धति पर विशेष ज़ोर देती हैं। यह भारत में भी भ्रमण करने आई थीं। श्रीमती अबीदबा तुर्किस्तान की महिला हैं। इनका जीवन सफल परिश्रम, उत्साह और उद्यम की प्रदर्शिनी है। इस महिला को बारह वर्ष की आयु में उसके सौन्दर्य के कारण एक ६० वर्ष के विलासी मुसलमान सरदार ने ख़रीद लिया था, जिसके तीन स्त्रियाँ पहिले ही से थीं। वहाँ इसको पैर से चोटी तक बुर्क़े से ढक दिया गया और क़ैदी की भाँति रक्खी जाने लगी। उस नरक-निवास में दो वर्ष सङ्कट के साथ बिताने के बाद यह वहाँ से किसी प्रकार भाग निकली। ताशक़न्द नगर में जाकर यह एक पतिता की भाँति छिप कर रहने लगी। यदि इसका पता लग जाता तो इसके प्राण बचना भी कठिन था। ताशक़न्द में इसने लिखना-पढ़ना सीखा और उस समय रूसी साम्राज्य में जो साम्यवाद की लहर फैलती जाती थी, उसमें यह भी सम्मिलित हो गई। धीरे-धीरे उसकी प्रतिभा प्रतिस्फुटित होने लगी और वह अति योग्य महिला बन गई। सन् १९१७ में रूस में राज्य-क्रान्ति हुई और स्त्री-स्वातन्त्र्य की घोषणा कर दी गई। तब अबीदबा प्रकट रूप से रूसी सरकार का साथ देने लगी और साम्यवाद का प्रचार करने लगी। इस कार्य में इसने अपनी अद्भुत वक्तृत्व-शक्ति, प्रचार-योग्यता तथा सङ्गठन-सामर्थ्य का अच्छा परिचय दिया। और इसके कारण यह तुर्किस्तान में प्रसिद्ध हो गई। इस समय यह उज़बेकिस्तान के प्रजातन्त्र राज्य की उप-प्रधाना हैं। समरक़न्द में महिलाओं के लिए इन्होंने कई संस्थाएँ खोली हैं और सारा तुर्किस्तान स्त्री-शिक्षा प्रचार तथा विचार-स्वातन्त्र्य के प्रसार के लिए इनका ऋणी है।

वर्तमान स्वातन्त्र्य

ऐसी योग्य और परोपकार-परायणा महिलाओं के परिश्रम से तथा उन्नत शासन की सहायता से मुस्लिम देशों की महिलाएँ दिन-दिन उन्नति करती जाती हैं। तुर्की में अब परदा नाम को भी नहीं है और ईरान और मिस्र में इसके विरुद्ध जो राज-नियम थे, वे हटा लिए गए। तुर्की में तो परदा करना अपराध है। स्त्रियों का खुले मुँह और यूरोपीय पोशाक पहने हुए बाज़ार में घूमना, पर-पुरुषों से बातचीत करना, स्वयं सौदा करना, भाषण देना, बहस करना आदि तो साधारण बात हो गई है। मिस्र में भी इन बातों का प्रचार होता जाता है। ईरान में यदि स्त्रियाँ बिना नक़ाब पहने हुए बाज़ार में निकलें या पुरुष से बातचीत करें या अकेली गाड़ी या मोटर में बैठी हुई हों, तो अब पुलिस कोई आपत्ति नहीं करती। पहिले यह सम्भव नहीं था। रूसी तुर्किस्तान में रूस की ओर से स्त्रियों की दशा सुधारने का ज़ोरों से प्रयत्न हो रहा है और यूरोप की नक़ल की जा रही है। केवल अफ़ग़ानिस्तान ही एक ऐसा मुस्लिम देश है, जहाँ इस विषय की उन्नति शिथिल पड़ गई है। मिस्र, ईराक़, तुर्किस्तान, ईरान आदि देशों में अभी समाज महिला-स्वातन्त्र्य को प्रायः अच्छा नहीं समझता, पर शिक्षित लोगों में इसके विरोधी इने-गिने ही मिलते हैं। भारतवर्ष में भी कुछ मुसलमान महिलाओं ने इस ओर क़दम बढ़ाया है, लेकिन इनकी संख्या अभी बहुत थोड़ी है।

(क्रमशः)





विवाह और कान्हा

[श्री० पृथ्वीनाथ शर्मा, बी० ए० (ऑनर्स), एल्-एल्० बी०]

गली के अन्त में उसका मकान था। था तो वह एक छोटा सा कमरा, परन्तु लोगों ने उसको मकान की पदवी दे रक्खी थी। उसकी दीवारें किसी आने वाले भूचाल की प्रतीक्षा में खड़ी थीं। वर्षा का पानी पनाले के रास्ते बाहर निकलने की अपेक्षा कोई आधे दर्जन छिद्रों द्वारा छत में से कमरे के अन्दर आना आसान समझता था। वहाँ एक चारपाई, जो बीसियों बढ़इयों की ठोकरें खा चुकी थी, बिछ रही थी। उस पर एक कई रङ्गी गुदड़ी पड़ी थी। यही कान्हा की शयन-शय्या थी। इसी पर पड़ा-पड़ा वह भावी श्रीमती कान्हा के स्वप्न देखा करता था।

कान्हा के वंश का किसी को कुछ ज्ञान न था। उसके विषय में लोगों को केवल यही पता था कि पचीस वर्ष पहले स्थान-स्थान से फटा हुआ बढ़िया गर्म कोट, घिसी हुई रेशमी किनारे की धोती और टूटा हुआ मख़मल का जूता पहिने उसने उस मुहल्ले में प्रवेश किया था और फिर मुहल्ला छोड़ने का नाम तक नहीं लिया। उस समय वह कोई तेरह वर्ष के लगभग होगा।

कोई दस वर्ष तक तो उसने मासिक नौकरी की। गली के प्रत्येक पुरुष को उसका स्वामी बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। दस वर्ष की फुटकल नौकरी के अनन्तर उसने किसी व्यक्ति-विशेष की नौकरी न करने की शपथ ले ली। अब वह उस गली का स्वतन्त्र नौकर था। जिसका काम उसका जी चाहता था, करता था। किसी का उस पर दबाव न था। परन्तु वह गली उससे प्रेम करती थी। वह उस गली पर जान देता था।

२

"क्या बात है कान्हा?"—देवधर ने किताब मेज़ पर रखते हुए पूछा।

"बाबू जी, एक प्रार्थना है।"—कान्हा उसके पैरों में बैठता हुआ बोला।

देवधर चकित हो गया। कान्हा और इतनी नम्रता! कान्हा तो उससे ऐसे बोला करता था जैसे एक बिगड़ा हुआ लड़का बाप से बोलता है और आज यह प्रार्थना? अवश्य कोई भेद है! उसने ध्यानपूर्वक कान्हा की ओर देखा।

आज कान्हा कुछ और था। कपड़े दूध की भाँति श्वेत थे। बढ़ी हुई दाढ़ी ग़ायब थी। अन्दर धँसी हुई आँखों में सुर्मा लग रहा था।

देवधर ने सोचा, आज रङ्ग कुछ बेढब है। पूछा—क्या?

कान्हा ने देवधर की ओर सहानुभूतिकांक्षी मुख से देखा और बोला—बाबू जी, आप जानते हैं, मानवीय हृदय आशावादी होता है। मनुष्य लालसा का पुतला

है। यदि धनाढ्य को अपनी लालसा शान्त करने का अधिकार है तो क्या निर्धन को नहीं? क्या निर्धन का हृदय अपनी आशा पूर्ण करने के लिए नहीं छटपटाता?

देवधर दङ्ग रह गया। उसने कभी यह स्वप्न में भी न सोचा था कि कान्हा जैसे मनुष्य के मुख से ऐसे परिमार्जित शब्द निकलेंगे। उसे क्या पता कि कान्हा की प्रारम्भिक शिक्षा कितनी ज़बरदस्त थी। उसे क्या पता कि कान्हा वहाँ विधाता का पानी भर रहा था।

देवधर ने ज़रा सँभल कर कहा—क्यों नहीं?

"अच्छा यदि यह बात है"—कान्हा बोला "तो क्या मैं अपनी लालसा पूर्ण नहीं कर सकता?"

"तुम्हारी लालसा क्या है?"

"मेरी लालसा?"—उसने उत्तर दिया—"मेरी लालसा × × × यदि आप मेरी हँसी न उड़ाएँ तो बताता हूँ।"

"कहे जाओ।"—देवधर ने कोमल स्वर में कहा।

"मेरी लालसा विवाह करने की है।"

यह तीसरी विस्मयजनक बात थी। देवधर कुर्सी पर बैठा था। उठ खड़ा हुआ। कान्हा की ओर ग़ौर से देखा। फिर बैठ गया। सोचने लगा, क्या किसी पुरुष की प्रकृति जानने के लिए पच्चीस वर्ष भी कम है? क्या कोई पचीस वर्ष तक संसार को पागल बना सकता है? मुझे यह पता न था कि कान्हा इतना रहस्यमय है।

"अच्छा फिर?"

"यदि आप सहायता करें तो सब कुछ ठीक हो सकता है।"

"कैसी सहायता?"

"मुझे सौ रुपए मिल जाएँ तो आठ दिन के अन्दर-अन्दर मेरा कमरा 'घर' बन सकता है?"

सबसे पहिले कान्हा उस गली में देवधर के यहाँ रहा था। उसने जितनी सेवा देवधर की की थी, वह भूला न था। वह कान्हा को सचमुच प्यार करता था। बोला—बस एक सौ?

"हाँ जी।"

"मिल जाएगा।"

कान्हा का हृदय आनन्द से नाचने लगा। छोटी-छोटी आँखों से एक-दो बूँद आँसू टपक पड़े। धन्यवाद के शब्द भी मुँह से न निकल सके। वह उठ कर कमरे से बाहर चला आया।

३

"बाबू जी"—वह आनन्द से विह्वल होकर बोला—"मैं उसे देख भी आया हूँ।"

"किसे?"

"लड़की को।"—यह कहते-कहते कान्हा कुछ लज्जित हो गया। बाबू जी से दृष्टि हटा कर ज़मीन की ओर देखने लगा।

"कैसी है?"—देवधर ने पूछा।

"रङ्ग तो इतना गोरा नहीं, परन्तु मुखाकृति तो सचमुच रानियों जैसी है।"—यह कहते-कहते कान्हा खिल उठा।

कुछ क्षण ठहर कर देवधर ने फिर प्रश्न किया—परन्तु यह तो बताओ, बात कैसे बनी?

"यह कहानी भी ख़ूब रोचक है।"—कान्हा मुस्करा कर कहने लगा—"पुराने अनारकली बाज़ार में रङ्गू तम्बोली की दूकान है। उसकी मेरी बहुत बन आई है। मैं प्रायः उसके यहाँ जाता-आता रहता हूँ। पिछले इतवार को मैं कुछ उदास था। रङ्गू से मिले भी कुछ दिन हो गए थे। इसलिए उसकी दूकान पर जा पहुँचा। परन्तु जाकर क्या देखता हूँ कि दूकान के अन्दर रङ्गू से कुछ दूर एक अधेड़ स्त्री बैठी सुपारी काट रही है। मैं उसे देख कर सकुचा गया। जहाँ खड़ा था, वहीं खड़ा रह गया। मेरी यह अवस्था देख कर रङ्गू मुस्कराया और बोला—घबरा क्यों गए हो? चले आओ, यह तुम्हारी भाभी है। पालागन करो।

"मेरी भाभी?"—मैं हैरान हो गया। यह भी ख़ूब रही। अभी ठीक आठ दिन पहिले उसी दूकान के अन्दर वह और मैं बहुत रात तक बैठे अपने घर बसाने के उपाय सोच रहे थे और अब वह बहू लिए बैठा है। मैं अपने आपको न रोक सका। उसकी स्त्री के सामने ही बोल उठा—"परन्तु तुम तो मुझे शुरू से कहते आ रहे हो कि तुम्हारा विवाह नहीं हुआ?"

रङ्गू खिलखिला कर हँसा और बोला—मेरे विवाह को आज चौथा दिन है।

मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। एक बार उसकी स्त्री की ओर देख कर फिर रङ्गू की ओर देखने लगा।

परन्तु औरत के सामने और कुछ पूछना मैंने उचित न समझा। कुछ देर बैठ कर लौट आया। परन्तु सारी रात जाग कर काटी। कुतूहल और उत्सुकता ने मुझे सोने न दिया। दिन चढ़ते ही रङ्गू की दूकान पर पहुँचा। भाग्य से उसकी पत्नी उस समय अन्दर की कोठरी में थी।

पूछने पर पता चला कि शहर के अन्दर एक 'प्रेम विवाह एजेन्सी' है। सौ रुपया फ़ीस देकर वहीं से रङ्गू बहू ब्याह लाया है। सौ रुपए से मेरा विवाह हो सकता है, जीवन की साध पूरी हो सकती है, यह सुन कर मैं प्रसन्नता से उछल पड़ा। उसी समय एजेन्सी में जाने के लिए रङ्गू से आग्रह करने लगा। उसने दूसरे दिन की तारीख़ डालने की कोशिश की। पर मैं कब मानने वाला था। उसे मना कर ही छोड़ा। भागा-भागा घर आया। बाल आदि बनवा कर तथा नहा-धोकर कपड़े बदले और एक घण्टे के अन्दर-अन्दर ही उसकी दुकान पर लौट गया। वह पहले से ही तैयार बैठा था। उठ कर मेरे सङ्ग हो लिया।

कोई आधे घण्टे में एजेन्सी के दफ़्तर जा पहुँचे। बाबू अभी आकर बैठा ही था। उसने मुस्करा कर हमारा स्वागत किया। बैठने को एक-एक कुर्सी दी। उसके पूछने पर रङ्गू ने सारी बात समझा दी।

"तो ये विवाह कब तक चाहते हैं?"

"बहुत जल्दी!"—रङ्गू ने जवाब दिया—"एक सप्ताह के अन्दर-अन्दर।"

"एक सप्ताह के अन्दर-अन्दर?"

वह मेज़ पर पड़े हुए एक काग़ज़ की ओर देख कर बोला—तो फ़ीस अधिक देनी पड़ेगी। डेढ़ सौ रुपया।

"सौ रुपया मिलने की तो मुझे बहुत कुछ आशा थी। परन्तु डेढ़ सौ रुपया मिले न मिले।" मैंने उदास और उलाहना भरे मुँह से रङ्गू की ओर देखा।

शायद रङ्गू को इसी ने स्फूर्ति प्रदान कर दी। वह इस ज़ोर से मेरी वकालत करने लगा, इस ढङ्ग से अनुनय-विनय करने लगा कि बाबू पिघल ही गया। दस मिनट में ही रङ्गू उसे सौ रुपए पर ले आया।

यह कह कर कान्हा खिलखिला कर हँसा और कई क्षण हँसता रहा।

आवश्यकता से अधिक आनन्द की एक रेखा भी मनुष्य को पागल बना देती है।

४

हलके-हलके बादल छाए हुए थे। ठण्डी हवा कपड़ों को चीर कर शरीर को छूने के लिए बेचैन हो रही थी। कोई दस बजे का समय होगा, जब मुहल्ले वालों को साथ ले लाल-लाल चमकते हुए कपड़े पहिने कान्हा विवाह के लिए निकला। मोटे-मोटे होठों पर रह-रह कर हँसी खेल रही थी। हृदय लगातार धड़क रहा था। एजेन्सी के द्वार पर शीघ्र पहुँचने के लिए उसका मन छटपटा रहा था।

कोई पन्द्रह मिनिट के अनन्तर वे वहाँ जा पहुँचे।

"ऊपर जाने का यही रास्ता है?" कह कर कान्हा उतावली से सब लोगों के आगे-आगे सीढ़ियाँ चढ़ने लगा। परन्तु उपर की सीढ़ी पर पहुँचते ही ठिठक कर खड़ा हो गया। एजेन्सी के दफ़्तर में ताला लग रहा था। कान्हा का हृदय धक् से रह गया।

"क्या मामला है?"—देवधर ने पूछा।

"ताला लग रहा है।"

"हम कुछ सवेरे तो नहीं आ गए!"—यह कह कर देवधर सबके साथ नीचे उतर आया। देखा तो एजेन्सी का साइनबोर्ड भी ग़ायब था। उसे कुछ सन्देह हुआ। कुछ दूरी पर एक दुकान थी। देवधर वहाँ पूछने के लिए चला। दुकानदार देवधर को देखते ही बोला—"क्या आप यह मकान भाड़े पर लेना चाहते हैं?"

"क्या कहा, भाड़े पर?"—देवधर बोल उठा—"एजेन्सी वाले क्या छोड़ कर चले गए?"

"हाँ।"

"अब कहाँ गए हैं?"

"क्या पता"—दूकानदार ने कहा—"हम तो परसों से ढूँढ़ रहे हैं। आज-कल करते-करते हमारा महीने भर का किराया ले भागे हैं।"

कान्हा ने सब कुछ सुन लिया। परन्तु उसके मुँह से एक शब्द भी न निकला। मुँह पर मानों किसी ने मुहर लगा दी हो। पत्थर की मूर्ति की तरह खड़ा एजेन्सी वाले मकान की ओर टुकुर-टुकुर देखने लगा। अपने हृदय का वेग वह किसे बताता?

कुछ क्षणों के अनन्तर इधर से उसने सहसा मुँह मोड़ा। देवधर की ओर देख कर बोला—रङ्गू से मिलना चाहता हूँ।

आवाज़ बेतरह टूटी हुई थी।

देवधर बाक़ी साथियों से छुट्टी ले कान्हा को साथ लिए रङ्गू की ओर चल दिया। पास ही ताँगा मिल गया। कुछ ही देर में वे रङ्गू की दूकान पर जा पहुँचे।

परन्तु वहाँ भी ताला लगा था। परसों से वह भी ग़ायब था।

"रङ्गू के साथ तुम्हारी जान-पहचान कब हुई ?"—देवधर ने पूछा।

"कोई डेढ़ महीना हुआ होगा।"– कान्हा ने जवाब दिया और फिर चुप हो गया।

कुछ क्षण ठहर कर देवधर ने कहा—कान्हा, इन सब लोगों के इकट्ठा ग़ायब होने का रहस्य समझते हो?

"सब समझता हूँ"—कान्हा कहने लगा—"बाबू जी, भला संसार में इतनी दुष्टता क्यों है ?"

कान्हा की दोनों आँखों से एक-एक आँसू ढलक पड़ा। आख़िर हृदय की प्रलय न छिप सकी।

विहग के प्रति—

[श्री० "केसरी"]

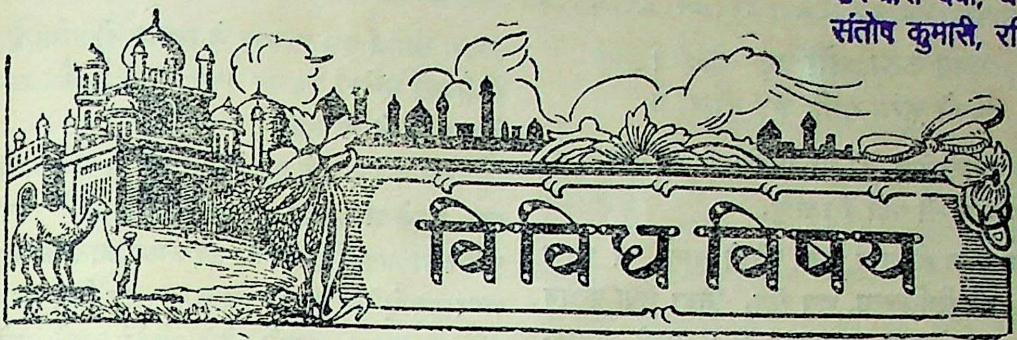
प्रिय ! एक बार फिर गा जा।
छोड़ गगन की शून्य कुटी ; वसुधा में सुधा बहा जा। प्रिय ! एक बार फिर गा जा।

किस अदृश्य की रिक्त गोद में मुक्त गगन-उपवन में।
खोज रहे हो अन्धकार में, भूले सघन गहन में।
जगती के मधुवन के लालन, वह है सुखद बसेरा।
होती है निशि जहाँ वहीं होता है स्वर्ण सवेरा।
शून्य सुप्त है, आ अपने कलरव से उसे जगा जा। प्रिय ! एक बार फिर गा जा।

जीवन का पल-पल बीता जिस ममता सने सदन में,
प्राणों की साँसों से जिसके अकथ अनन्त चयन में।
खर पातों का नीड़ उषा का प्रथम सुहाग-झरोखा।
यही स्वर्ग है हुआ तुम्हें किस झूठ स्वर्ग का धोखा ?
अरे लौट आ लौट विहङ्गम ! खुला पड़ा दरवाज़ा। प्रिय ! एक बार फिर गा जा।

लिपटी है जिसके प्राणों में तेरी ममता माया।
खिंची हुई मानस-पट जिसके तेरी धूमिल छाया।
अरे वेदनामय यात्री क्यों उससे यों घबराया।
ठहर तनिक ओ ठहर अभी क्या खाया है क्या गाया।
ताल-ताल से डाल-डाल विटपों का फिर सरसा जा। प्रिय ! एक बार फिर गा जा।

खोज रहे कब से बेसुध बेचैन पङ्ख फैलाए।
अहो विहग नादान ! अभी सुख-दुख कुछ जान न पाए।
कहाँ शान्ति है वहाँ, वहाँ दुखिया ही दुखिया सारे।
अरे फफोले हैं अम्बर के हिम से झिलमिल तारे।
सपना है सुख-शान्ति कहाँ, अपना है जो अपना जा। प्रिय ! एक बार फिर गा जा।



जातीय क्षय रोग

हमारे मरने-जीने का सवाल

देश के विचारवान् लोगों का ध्यान जब से देश की दशा पर गया है, वे बराबर उसके कारणों की खोज में लगे हुए हैं। यह सभी जानते हैं कि हमारी दशा हर प्रकार से नीचे गिर गई है और दिन प्रतिदिन गिरती ही चली जाती है। हममें से अधिकांश ऐसे बेख़बर हैं कि उन्हें यह भी पता नहीं कि आज हमारी दशा कितनी शोचनीय हो गई है।

हमारी जाति में जो घुन—जो भयङ्कर रोग—सदियों पहिले लग चुका है, वह धीरे-धीरे बराबर हमारी शक्तियों का क्षय करता चला आ रहा है। किन्तु हमें उसका कुछ ज्ञान नहीं। आज उसने भयङ्कर रूप धारण कर लिया है, तब हमारी आँखें कुछ खुली हैं। यदि पहिले ही हम चेत जाते तो हमारी यह दशा न होती। किन्तु जब रोग का आरम्भ था और वह बहुत धीमे रूप में था, हमने उसका कुछ उपाय नहीं किया। यदि उसी समय उस पर नश्तर लग जाता तो आज का दिन न देखना पड़ता। अब जब रोग ने पूर्ण तौर से हमें जकड़ लिया, तब हमारी कुछ आँखें खुलीं! किन्तु अब भी बहुत से अपनी प्यारी निद्रा को नहीं छोड़ना चाहते। पहिले तो निद्रावस्था में हमें रोग लगा था, किन्तु अब रोग ही ने हमारी निद्रा को और भी प्रगाढ़ कर दिया है। यही कारण है कि अभी बहुत से लोग अधखुली आँखों से देखते हैं और फिर सो जाते हैं। इस निद्रा के कारण उन्हें भयङ्कर रोग का पता ही नहीं है। किन्तु जिन लोगों ने उस क्षय रोग की भयङ्करता को समझ लिया है, वे उसका उपाय करने के यत्न में लग गये हैं—वे अपने जाति-भाइयों को उसकी भयङ्करता तथा उसके कारण समझाना चाहते हैं। पर निद्रा के कारण उनकी सुनने को कोई तैयार नहीं होता। इस निद्रा का इतना प्रभाव पड़ गया है कि हम जाग जाने पर भी सोते ही से रहते हैं। गहरी नींद के बाद उठने से जैसी दशा होती है, वैसी ही हमारी भी हो रही है। अपने भाइयों की चिल्लाहट की आवाज़ हमें नहीं जगा सकती। हमें तो बाहर के प्रहार ही कुछ सचेत कर सकते हैं। किन्तु प्रहार पर प्रहार लगने पर भी हमारी आँखें नहीं खुलतीं। हमारा सिर भी ठोकरें खाने का आदी हो गया है। अतः वह मामूली ठोकरों की कुछ परवाह नहीं करता। जो जाग उठे हैं वे कुछ हलचल मचाना चाहते हैं, तो अपने चारों तरफ़ इस तरह की रस्सियाँ जकड़ी पाते हैं कि पैर नहीं हिला सकते। निद्रा के मोह से तथा रोग के प्रभाव से हमारा शरीर इतना शिथिल हो गया है कि हममें उठने की शक्ति नहीं, फिर इन रस्सियों को तोड़ने की शक्ति कहाँ से आ सकती है? अतः जो जाग भी उठे हैं, वे भी पैर फटफटा कर रह जाते हैं।

हम समझते हैं कि शायद किसी के जादू से हमें निद्रा आ गई है। किसी बाहरी शक्ति ने हमको रोग-ग्रस्त कर दिया है तथा किसी ने हमारे हाथ-पैर जकड़ दिए हैं। किन्तु यह सब हमारी ही करतूतों का फल है। अपनी ही लापरवाही से हमने रोग बुलाया है, अपनी ही शिथिलता से निद्रावश हुए हैं तथा अपने ही हाथों से हमने अपने हाथ-पैर दृढ़ बन्धनों से जकड़ लिए हैं। अपने ही हाथ से हमने अपने क़ैदख़ाने की मज़बूत दीवार उठाई है तथा अपनी ही करतूतों से अपने घर को हमने बन्दीख़ाना बना दिया है। हमको इस प्रकार अपने ही बन्धनों में बँधा देख शत्रुओं ने हमारे क़िले पर अधिकार कर लिया है। गुसाईं जी ने ठीक कहा है कि :—

अपने करन डोर दृढ़ कीन्हीं।
अपने करन गाँठि दृढ़ दीन्हीं॥

श्री० रवीन्द्रनाथ की गीताञ्जलि में एक कविता है, जिसका आशय भी यही है। अस्तु,

रूपक बहुत हो गया, अब सीधी बातों पर आना चाहिए। यह शिथिलता, क्षय रोग, निद्रा तथा बन्धन क्या है, यह देखना आवश्यक है। हमारे समाज-रूपी शरीर के भिन्न-भिन्न अङ्गों की एकता नष्ट हो गई है, उनका सङ्गठन बिगड़ गया है। उसके अङ्ग एक दूसरे के सहयोग से काम नहीं करते। अतः वह खड़ा नहीं हो सकता। सङ्गठन-हीनता से इस समाज-रूपी शरीर की दृढ़ता नष्ट होकर शिथिलता आ गई है, जिसके कारण वह कुछ काम नहीं कर सकता। इसी शिथिलता का फल क्षय रोग है, जोकि प्रति क्षण हमारी शक्ति क्षीण करता जा रहा है। हमारे अङ्ग हमसे अलग होकर दूसरों की संख्या बढ़ा रहे हैं। हमारी शक्तियाँ हमसे अलग होकर दूसरों की शक्ति बढ़ा रही हैं। हमारे शरीर को मज़बूत रखने के लिए पाचन-शक्ति की बहुत ज़रूरत है, किन्तु रोग के प्रभाव से हमारा हाज़मा बिगड़ गया है। बाहर के भोजन को पचा कर हम अपने शरीर को पुष्ट नहीं कर सकते। दूसरों को अपने ढाँचे में ढाल कर अपनी ताक़त नहीं बढ़ाना जानते, अपने को ही दूसरों में ढकेल कर—अपने अङ्गों को काट कर दूसरों की शक्तियाँ इतनी बढ़ा दी हैं कि अब वे हमारा सारा शरीर हड़प जाने को तैयार हैं।

यही हमारी जाति का क्षय रोग है। सब शक्तियाँ क्षीण होती जा रही हैं—उनकी पूर्ति का कुछ उपाय नहीं किया जाता। क्षति-पूर्ति के लिए यदि कुछ भी भोजन बाहर से डाला जाता है, तो हम उसे हज़म नहीं कर सकते—अपने में नहीं मिला सकते, आँत इतनी कमज़ोर हो गई है कि बाहर से ज़रा भी चीज़ आते ही हमें क़ै-दस्त जारी हो जाते हैं और हम आए हुए शक्तिदायक भोजन को भी फिर बाहर फेंक देते हैं। इस प्रकार हमारी शक्तियों का क्षय अनन्त काल से जारी है और उसकी पूर्ति का कुछ साधन नहीं है।

हमारा समाज उस ख़ज़ाने के समान हो गया है, जिसमें ख़र्च ही ख़र्च हो और आमदनी कुछ भी नहीं। हमारा समाज उस तालाब के समान हो गया है, जिसमें से सैकड़ों नदियाँ बह कर बाहर जाती हैं और आमद एक बूँद पानी की भी नहीं है।

इस क्षय रोग ने हमारे अनजान में सब शक्तियों का क्षय करके अब हृदय पर हमला किया है—ब्याज खा चुकने पर अब पूँजी ही को हड़प कर जाने का नम्बर है। मगर हम ऐसे अचेत हैं कि आज, जब सिर पर आ पड़ा तब ज़रा करवट बदली। ऐसे ख़र्राटें भरने वाले हैं कि यहाँ घर चाहे लुटता रहे—अङ्गों को कोई काटता रहे, पर हमें ख़बर ही नहीं—चिन्ता ही नहीं।

निद्रावश इस क्षय रोग का पता ही हमें अब तक नहीं लगा। जब इसने पूरा अधिकार जमा लिया, तब कुछ चेत हुआ। बहुत से ऐसे भी हैं, जिनको अभी तक कुछ भान नहीं है। इनकी आँखें चिता पर ही खुलेंगी। यदि क्षय का क्रम इसी प्रकार जारी रहा, तो वह समय भी दूर नहीं है, जब इस प्राचीन सड़े, गले, घुने, प्राण-विहीन समाज के वृहत शरीर का सम्यक् रूप से अग्नि-संस्कार करना पड़ेगा।

ऊपर से देखने में यह बड़ा भारी दीख पड़ता है; किन्तु यह उस खोखले वृक्ष के समान है, जो ऊपर से तो बड़ा मज़बूत दिखता है, किन्तु हवा के एक झोंके से ही धराशायी हो जाता है। हमारे विशाल समाज-वृक्ष की जड़ें भी कट चुकी हैं, उसका मूलाधार नष्ट हो चुका है और वह क्षय रोग से खोखला हो गया है। अब उसे गिराने के लिए बाहरी हवा का एक हलका सा झोंका ही काफ़ी है।

प्रति क्षण मृत्यु उसकी ओर देख रही है। प्रत्येक अङ्ग शिथिल हो गए हैं, पाचन-शक्ति बिगड़ने से शक्ति का सञ्चार बन्द हो गया है। तथा इन दोनों के फल-स्वरूप सारे शरीर में जो गर्म रक्त-सञ्चार होना चाहिए वह बन्द हो गया है। जब सारे समाज-शरीर में एक ही प्रकार का प्रेम-रक्त नहीं बहता, तब हृदय की गति बन्द हो जाने में कुछ भी देर नहीं है। एक से दूसरे अङ्गों को जोड़ने वाली नस ही कट गई, तब रक्त-सञ्चार सब में एक बराबर किस प्रकार हो सकता है? इसलिए जातीय उत्साह रूपी नाड़ी की गति भी बन्द हो गई है और शक्ति की स्वाँस चलना भी बन्द होता जाता है।

एक दूसरे अङ्गों में परस्पर सम्बन्ध की सब नसें कट जाने का ही कारण है कि एक अङ्ग के कट जाने पर दूसरे को उसका दुःख होना दूर रहा, उसका बोध तक नहीं होता। जब पैर, सिर और हाथों में सम्बन्ध होता है और जब वे दोनों अपने को एक ही शरीर का अङ्ग समझते हैं, तभी पैर में काँटा लगते ही सिर को वेदना होती है और वह पैरों पर झुक जाता है तथा हाथ तुरन्त उसे निकालने को दौड़ पड़ता है। नीचे दब कर पैर शरीर को चलाते हैं, उसका सारा भार सहन कर भी कुछ नहीं बोलते। सिर को जो ऊँचा स्थान मिला है, वह पैर के द्वारा ही मिला है; किन्तु वह कन्धों पर चढ़ कर पैर की तरफ़ देखना या उनको छूना भी पाप समझता है। पैरों की वेदना का उसे अनुभव ही नहीं होता। हाथ यह समझने लगे हैं कि पैरों के काँटे निकालने में हम अपवित्र हो जावेंगे। पैर भी क्रोध में कभी-कभी सिर पर चढ़ने की धृष्टता करने लगते हैं।

बात यह है कि सब अङ्गों का विच्छेद हो गया है। अगर सब वर्ण अपने को उसी समाज-शरीर का अङ्ग समझते, तो उनके दुःख-सुख अलग-अलग न रह जाते। यहाँ तो सभी अङ्ग अपने को अलग तथा एक-दूसरे से ऊँचा समझने लगे हैं। ब्राह्मण-रूपी सिर को शूद्र रूपी पैरों के काँटों का अनुभव नहीं होता और क्षत्रिय-हाथ उसके काँटे निकालने में अग्रसर नहीं होता। ये सब अङ्ग एक-दूसरे से अलग-अलग कटे पड़े हैं, फिर एक-दूसरे के कष्ट का कैसे अनुभव हो सकता है? जब सब अङ्ग ही कट गए, तब समाज-शरीर ही स्थिर नहीं रह सकता। उसका जीवन तो सब अङ्गों के सङ्गठन और कर्त्तव्य-पालन पर निर्भर था।

जब सब अङ्ग कट-कट कर अलग हो जावें, शरीर क्षय रोग से बिलकुल अशक्त हो गया हो, रक्त-सञ्चार बन्द हो जावे, हृदय की गति तथा साँस बन्द हो जावे, तब उस शरीर के लिए सबसे अच्छी गति यही है कि जितनी जल्द हो सके, एक सुन्दर चिता बना कर उसको कालाग्नि के सुपुर्द कर दिया जावे। ऐसा शरीर यदि दुनिया में एक मिनट भी रहेगा, तो गन्दगी और बदबू फैलाने के सिवा और कुछ न करेगा।

—व्योहार राजेन्द्रसिंह, भूतपूर्व एम० एल० सी०

जीने का अधिकार सबको

स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक ने गत फ़रवरी के 'चाँद' में "जीने का अधिकार किसको?" नामक एक लेख प्रकाशित करवाया है, जिसमें बहुत सी बातें बड़े मार्के की हैं। फिर भी आपका सिद्धान्त कार्य-रूप में परिणत नहीं हो सकता। मैं आपको यहाँ यह बताने का उद्योग करूँगा कि ये निर्बल और निकम्मे किस प्रकार बलवान और काम के बन सकते हैं। आशा है, आप मेरी धृष्टता को क्षमा करेंगे।

किसान ने आपसे कहा था—"इस खेत में, जहाँ आप काम करेंगे, बहुत से निकम्मे पौधे जम गए हैं, वे मकई की खेती को नुक़सान पहुँचावेंगे, अतएव आप कृपा करके सबसे पहिले इन्हें उखाड़ कर फेंक दीजिए, ताकि वे जमने न पावें × × ×।" वहाँ खेत में दो प्रकार के पौधे थे। एक तो मकई के और दूसरे उन्हें हानि पहुँचाने वाले। इनमें से आपने केवल निकम्मे और फ़सल को हानि पहुँचाने वाले पौधे ही उखाड़े होंगे। एक भी मकई का पौधा नहीं उखाड़ा होगा, चाहे वह दुर्बल ही क्यों न रहा हो। जिस प्रकार मकई के सब पौधे एक समान होते हैं, उनके दाने, पौधे और फल इत्यादि सब एक ही समान होते हैं, मानव-समाज के सब प्राणी भी इसी तरह से समान हैं। अतएव इनमें से कुछ नष्ट नहीं किए जा सकते। आज संसार के सभ्य देश विश्व-भ्रातृ-प्रेम (Universal brotherhood) की न्यूनता का अनुभव कर रहे हैं। आपने भी अपने लेख में अन्याय करने वाले धनवानों को धिक्कारा है। क्योंकि वे अपने दुर्बल भाइयों पर अन्याय और लूट का खड्ग चलाते हैं। ठीक है, आप अपने दुर्बल भाइयों पर होने वाले अत्याचार को कैसे सहन कर सकते हैं? फिर आप इनके नाश करने की बात क्यों सोच रहे हैं? अब रहा निकम्मे पौधे का प्रश्न। वास्तव में हमारे समाज में प्रचलित कुरीतियाँ हैं, जिन्होंने हमारी लापरवाही और हमारे अन्धविश्वास के कारण समाज और देश में अपनी जड़ जमा ली है। हज़ारों मनुष्य-रत्न इसके दाँतों के तले पिस गए हैं। इसके प्रमाण में मैं फिर उसी किसान के कथन को रखता हूँ—"ये पौधे उस खाद को खा

जावेंगे, जो मैं मकई की खेती के लिए इस भूमि में डालूँगा। वे केवल खाद ही को नहीं खाएँगे, बल्कि मक्का की बढ़ती को रोक देंगे और उसके भोजन को स्वयं उड़ा जायँगे। ऐसी अवस्था में इनका उखाड़ फेंकना ही कल्याणकारी है, × × ×।" अब आप स्वयं ही हमारे देश की कुरीतियों और अन्धविश्वास का मिलान निकम्मे पौधों से करके देख लें।

अब यह प्रश्न उठता है कि हम दुर्बल किसको कहें? क्या अन्धे, बहरे, गूँगे आदि दुर्बल हैं? नहीं। किसी भी मनुष्य का एक अङ्ग कमज़ोर होने से वह दुर्बल और निकम्मा नहीं कहा जा सकता। इन्द्रियों का केन्द्र और चालक मस्तिष्क है। क्या अन्धे का मस्तिष्क विकृत है? यदि उन विकृताङ्गों की उचित सहायता की जाय, तो वे हमारे सबल कहे जाने वालों के कान बहुत सी बातों में काट लें। इसका प्रमाण हमें श्रीमती हेलन किलर (Helen Keller) के जीवन-चरित्र से मिलता है। जब उसकी अवस्था केवल ग्यारह महीने की थी, तभी एक रोग (Cerobro-spinal meningitis) के कारण वह अन्धी, बहरी और गूँगी हो गई। आपके सिद्धान्तानुसार तो वह निकम्मी—बिलकुल निकम्मी हो गई थी। अस्तु, उसे उखाड़ फेंकना ही उचित था। क्योंकि शब्दाघात प्राप्त कराने वाली तीनों इन्द्रियाँ—कान, नेत्र और बोलने की शक्ति—विनष्ट हो गई थीं। परन्तु ईश्वर की दृष्टि में मनुष्य की आत्मा का मूल्य बहुत है। एक बार महात्मा ईसा ने कहा था—'यदि कोई मनुष्य सारा संसार कमावे और अपनी आत्मा को खोवे; तो उसे क्या लाभ?' इससे प्रत्यक्ष है कि सारा संसार भी एक मानव प्राणी की बराबरी नहीं कर सकता। अस्तु, हेलन की शिक्षा का प्रबन्ध किया गया। एक शिक्षिका आई और उसने हेलन को सूँघने, चखने और छूने की शक्तियों द्वारा शब्द-ज्ञान कराना आरम्भ किया। जिस समय उसने पहिला शब्द W-A-T-E-R सीखा तो उसके आनन्द की सीमा न रही और उस समय उसे ज्ञात हुआ कि संसार में हर एक वस्तु के पृथक्-पृथक् नाम हैं। कुछ ही महीनों में वह शब्द और फिर वाक्य और बाद में भली भाँति बोलना सीख गई। यही गूँगी, बहरी, अन्धी लड़की युवावस्था में रेड क्लीफ़ (Red-cliffe College) से ऑनर्स में बी० ए० पास हुई। वहाँ पढ़ाई जाने वाली लेटिन, ग्रीक, फ्रेंच, जर्मन और अङ्गरेज़ी भाषाओं में उसने निपुणता प्राप्त की, कविता और इतिहास की पण्डिता बनी, शुद्ध अङ्गरेज़ी लिखने में अद्वितीया रही और दर्शन-शास्त्रियों में ऊँचा स्थान प्राप्त किया। यह है मानवीय प्रयत्न का उज्ज्वल नमूना, जिससे दुर्बलों को नाश करने वालों को शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। हमें याद है कि नाश करने वाले से बचाने वाला बड़ा है। हमारा बलवानपन और आनन्द दुर्बलों का नाश करने में नहीं, परन्तु उनके उत्थान में होना चाहिए। एक समय मैंने एक डॉक्टर महाशय से पूछा—आपको सरकारी नौकरी में बहुत कम आय है, तो भी आप उसे छोड़ कर कोई दूकान लगाने का उद्योग नहीं करते। डॉक्टर साहब बोले—महाशय जी, आपको इस डॉक्टरी का मज़ा मालूम नहीं। मुझे एक ग़रीब रोगी को अच्छा करने में जो मज़ा आता है, वह लाखों रुपए प्राप्त करने पर भी न आएगा।

रही हज़ारों हट्टे-कट्टे मुस्टण्डे साधु-फ़क़ीरों की और वैरागी आदि की समस्या, तो उसे भी भारत चाहे तो एक ही वर्ष में हल कर सकता है। हमारे देश का लगभग एक अरब रुपया ये लोग हड़प कर जाते हैं और लोगों की कोई भलाई इनसे नहीं बन पड़ती। इन लोगों ने जो आडम्बर रच रक्खे हैं, उनका भण्डाफोड़ करना पड़ेगा। साथ में भारतवासियों को धर्म का वास्तविक अर्थ समझा कर इन जालसाज़ों से बचने का उपाय करना होगा। न इन्हें बैठे-ठाले एक पैसा मिले और न ये साधू बन कर समाज का भार बने रहें। इस तरह ये निकम्मे से अच्छे बन जावेंगे।

रोटी का प्रश्न सचमुच बड़ा जटिल है, और होता जा रहा है। हज़ारों मन गेहूँ कोठिलों में सड़ रहा है, फिर भी दुनिया दाने-दाने को तरस रही है। मिल के गोदामों में हज़ारों गाँठें कपड़े कीड़ों का घर बन रही हैं, फिर भी बहुतों को एक हाथ कपड़ा नसीब नहीं हो रहा है। यह भूसे पर बैठे हुए कुत्ते भूखों को भी नहीं खाने देते। हाल ही में एक फ़ोर्ड ने धनी राष्ट्र अमेरिका को लोहे के चने चबवा दिए। यह उसने केवल अपना रुपया बैङ्कों में जमा न करके किया। फल यह हुआ कि अच्छे-अच्छे धनियों को बनियों के हाथ जोड़ने पड़े।

इन पूँजीपतियों की स्वार्थपरता ज्यों-ज्यों बढ़ती जायगी, त्यों-त्यों संसार दाने-दाने को तरसता जायगा। संसार को अपनी नीति में गहन परिवर्त्तन करना होगा, रीतियों में घोर क्रान्ति मचानी होगी, नहीं तो कुछ ही वर्षों में संसार रसातल को चला जायगा।

एक स्थान पर आप लिखते हैं—"भला सोचिए तो सही कि निर्बल, व्याधिग्रस्त और वीर्यहीन स्त्री-पुरुषों को विवाह कर, निकम्मे बच्चे पैदा करने का क्या अधिकार है? × × ×" यह कथन माननीय है, मार्के की बात है। पर इसमें तो समाज ही का दोष अधिक है। इस उत्थान के युग में भी ८५ प्रति सैकड़ा स्त्री-पुरुष, बालकों के सामने बात-बात में भद्दी गालियाँ देते हैं, जिन्हें बच्चे बाल्यावस्था ही से अच्छी तरह सीख लेते हैं। कुछ बड़े होने पर वे उनका अर्थ भी समय से प्रथमही समझने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार वे गालियाँ उन्हें कुप्रवृत्ति की ओर ले जाती हैं और कुप्रवृत्ति पापाचार के दलदल में ढकेल देती है। तब उनकी आँखें खुलती हैं। परन्तु हाय! बहुत देर में, सर्वनाश होने के बाद, मौत के जबड़ों में पहुँचने पर उन्हें अपने पतन—घोर पतन का पता लगता है। हमें समाज में अपनी त्रुटियों ही के कारण वीर्यहीन स्त्री-पुरुष मिलते हैं। गालियाँ बोई गई थीं, अब उसका फल बटोर रहे हैं वीर्यहीन स्त्री-पुरुष के रूप में। हमारी समझ में इसका भी उपाय हो सकता है।

इसके बाद आपने दुर्बलों को लक्ष्य करके कहा है—"भारतवासियों को शीघ्र ही इस कूड़े-कचरे को साफ़ करना होगा, नहीं तो उनकी आबादी उन्हें इस पर मजबूर करेगी × × ×।" तनिक विचार तो करो, क्या यह मानव प्राणी कूड़ा-कचरा हैं। महाशय जी! मनुष्य को आप कचरा बना रहे हैं। कचरा तो हमारी बुरी टेवें हैं, जो समाज में दुर्गन्ध फैला रही हैं। उन्हें छोड़ने से हमारे देश का वायु शुद्ध होगा, न कि इन दुर्बलों को मारने से। हमें समय के अनुकूल चलना होगा, नहीं तो हमारी ख़ैर नहीं। गर्मी आते ही शरीर से गर्म कपड़े उतार कर ठण्डे कपड़े पहिने जाते हैं। क्यों? मौसम बदल गया। बस, यही बात समाज के नियम और क़ानूनों की होना चाहिए। हमारे रीति-रिवाज ऑर्डीनेन्स हैं, जो किसी विशेष दशा को रोकने के लिए बने थे, परन्तु काम निकलते ही उन नियमों की कोई आवश्यकता नहीं। हमारे प्राचीन रीति-रिवाज सब उस समय के लिए ठीक थे। परन्तु अब समय कुछ और है। अब नई समस्या का युग है, इसलिए नए समाज-ऑर्डीनेन्स होने चाहिए।

अब रहा युद्ध का प्रश्न, जिसके सम्बन्ध में आपका मत है—"युद्धों में तो समाज का सर्वश्रेष्ठ तरुण दल ही मारा जाता है, निकम्मे पौधे तो मज़े में चरा करते हैं। × × ×।" मनुष्य युद्ध अपने स्वार्थ के लिए करता है। बलवान राष्ट्र दुर्बल को जीत कर उस पर अत्याचार कर अपना मतलब गाँठने के लिए हज़ारों को मृत्यु देवी की भेंट करता है। यह तरुण दल ही संसार को त्राहि-त्राहि करा देता है। परन्तु, आपके कहे अनुसार, निकम्मे ही मनुष्य का गुण रखते हैं। वे अपने स्वार्थ के लिए दूसरों को कष्ट नहीं देते। जब तक कुछ स्वार्थी जीव ग़रीबों को चतुराई से लूट कर अपनी जेब गर्म करना नहीं त्याग देंगे, तब तक यह रोटी का प्रश्न और युद्ध का भय दिन-दिन बढ़ता जायगा। आपका कथन क्या ही मर्मस्पर्शी है—"वे धन के ख़ातिर दूसरों के मकान नीलाम करा लेंगे। दुधमुँहे बच्चों को उनकी झोपड़ी से निकलवा कर उन पर क़ब्ज़ा कर लेंगे; विधवाओं पर भारी ज़ुल्म करेंगे और नारी जाति के अधिकारों का कभी भी आदर नहीं करेंगे। × × ×" वास्तव में यह धनी, शक्तिशाली और इनका पैसा बलवान है। किसी ने कहा है कि 'राम के भक्त फिरें बन-बन में; रुपया राज करे लन्दन में।' आज यह रुपया (सिक्का) संसार का सम्राट है, ईश्वर बन बैठा है। यही वजह है कि परिश्रम करने वाले ईमानदार एक समय पेट भर रोटी भी नहीं जुटा सकते और बेईमान मज़ा मार रहे हैं। तिस पर भी हम उन्हें बड़े कहते, उनके सामने सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम करते और उन्हें अन्नदाता कह कर पुकारते हैं। समय दूर नहीं है, जब यह धनवान मेहतरों से भी तुच्छ समझे जावेंगे।

तब दुर्बलों के साथ क्या किया जाना चाहिए? अब यही महत्वपूर्ण प्रश्न मन में उठता है। संसार यदि सभ्य बना है तो वह केवल शिक्षा ही के कारण बना है। जन्मते समय बालक और जानवर के मस्तिष्क में कोई अन्तर नहीं होता। यदि आदमी "आदमी" है तो केवल शिक्षा ही से है। यदि दुर्बल भी शिक्षा पा जायँ तो

सबल हो जावेंगे। मेरी तो आप से यही राय है कि आप अपने नाश करने वाले सिद्धान्त को त्याग कर इन दुर्बलों के उत्थान में जी-जान से लग जाएँ, तो देश और समाज का बड़ा उपकार हो।

—योहन सुरेन्द्रपाल 'पाल'

❀ ❀ ❀

क्या रामायण की कथा काल्पनिक है ?

(प्रत्यालोचना)

अक्टूबर (१९३२) के 'चाँद' में मेरा जो "क्या रामायण की कथा काल्पनिक है ?" शीर्षक लेख निकला था, उसकी एक आलोचना मैंने दिसम्बर (१९३२) के 'चाँद' में पढ़ी। आलोचक महाशय ने अपनी आलोचना में बहुत सी ऐसी बेसिर-पैर की बातें लिख मारी हैं, जिन पर विचार करना अपनी शक्ति तथा समय को केवल व्यर्थ नष्ट करना है। अतः इस लेख में हम आपके केवल मुख्य-मुख्य आक्षेपों पर ही विचार करेंगे।

(१) रामायण का रचना-काल

आपका कथन है कि रामायण की रचना ईसा से ५०० वर्ष पूर्व हुई थी। परन्तु स्वयं रामायण का यह दावा है कि उसे ब्रह्मा जी तथा देवर्षि नारद की प्रेरणा से आदि कवि महर्षि वाल्मीक ने, जो रामायण के ही अनुसार रामचन्द्र के समकालीन थे, रच कर पति-प्रत्याख्याता, निजशरणापन्ना, सीता के लव-कुश नामधारी यमज पुत्रों को पढ़ाया और रामाश्वमेध के समय उन्हें अयोध्या ले जाकर रामचन्द्र के दरबार में रामायण गवाया, जिससे यह ध्वनि निकलती है कि यह ग्रन्थ रामचन्द्र के समय में ही रचा गया था। अतः आपका पूर्वोक्त कथन कि रामायण ईसा से ५०० वर्ष पूर्व अर्थात् गौतम बुद्ध के समय में लिखी गई थी, उसके रचना-काल-विषयक दावे को किस प्रकार जड़ से उन्मूलित कर, इस ग्रन्थ के अन्य सभी विवरणों को भी अविश्वसनीय तथा सन्दिग्ध बना दिया, इसे पाठकवृन्द स्वयं देख लें। आपके ही उक्त कथन के द्वारा आपके रामायण-विषयक चिरपोषित मत को कि इसकी सभी कथाएँ सत्य घटनाओं पर अवलम्बित हैं, इस प्रकार खण्डित होते देख मुझे उस मौलाना साहब का लतीफ़ा याद आ गया, जिन्होंने स्वप्न में शैतान को देख उसकी दाढ़ी उखाड़ डाली; पर दाढ़ी के झिटकने से जो आपकी आँखें खुलीं तो देखा कि अपनी ही दाढ़ी का सफ़ाया कर डाला है !!

(२) रामायण की वंशावली

यह कोई आवश्यक नहीं कि जो ग्रन्थ पहले लिखे जाएँ वे पीछे लिखे जाने वाले ग्रन्थों की अपेक्षा अधिक माननीय हैं। मानव-ज्ञान की परिधि उत्तरोत्तर बढ़ रही है। जिस बात को हम पहले सत्य मानते थे, वह अब असत्य सिद्ध होती जा रही है। पहले लोगों की धारणा थी कि पृथ्वी अचल है। प्राचीन ज्योतिषियों ने भी अपने-अपने ग्रन्थों में इसी मत का प्रतिपादन किया है। पर आधुनिक ज्योतिष ने पृथ्वी की स्थिरता-विषयक उक्त मत का पूर्णतः खण्डन कर दिया है। अतः अब हम इस विषय में पूर्वलिखित ग्रन्थों की अपेक्षा नवीन ग्रन्थों को ही सत्य मानते हैं। इस तर्क-पद्धति का आश्रय लेने से तो वंशावलियों के विषय में रामायण की अपेक्षा पुराण ही अधिक प्रामाणिक जँचते हैं, यों तो असम्भव बातें थोड़ी-बहुत दोनों में ही हैं।

वंशावलियों के विषय में रामायण की अपेक्षा पुराण अधिक महत्व रखते हैं; इसके अन्य भी कई कारण हैं। प्रथम तो वंशावलियों का वर्णन करना, पुराणों का विशेष कर्त्तव्य सा है, पर रामायण जैसे पुराण-भिन्न ग्रन्थों का इस विषय में चर्चा करना उनकी अनधिकार चेष्टा है; और यदि उन्होंने किसी कारणवश चर्चा की भी, तो वह प्रमाण-कोटि में स्वीकृत नहीं हो सकती। स्वयं पुराणकारों ने ही पुराणों के लक्षण बताते हुए लिखा है :—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च, वंशो मन्वान्तराणि च।
वंश्यानुचरितं चेति, पुराणं पञ्च लक्षणम्॥

अर्थ—"सृष्टि, प्रलय के बाद पुनः सृष्टि, देवताओं, असुरों तथा मानव राजाओं की विविध वंशावलियाँ तथा उन वंशों में उत्पन्न हुए राजाओं की चरितावली जिन ग्रन्थों में लिखी जायँ वे ही इन पञ्च लक्षणों से युक्त पुराण ग्रन्थ हैं।"

उक्त श्लोक से स्पष्ट है कि वंश-वर्णन पुराणों का विशेष उद्देश्य है; अतः इस विषय में रामायण की अपेक्षा पुराण अधिक माननीय हैं। प्राचीन तथा अर्वाचीन, एवं प्राच्य तथा पाश्चात्य, सभी विद्वानों ने हिन्दू-सभ्यता की आयु और प्राचीन राजवंशों के समय का पता लगाने के लिए, प्रागैतिहासकालीन भारत में किसी स्थिर सन्-सम्बत् के अभाव के कारण, पौराणिक वंशावलियों का ही आश्रय लिया है। जिस प्रकार क़ानून के लिए वकील और बैरिस्टर तथा दवा के लिए हकीम, वैद्य और डॉक्टर अपने-अपने विषय के प्रमाण (Authority) माने जाते हैं, उसी प्रकार वंश-विषय में पुराण ही प्रमाण समझे जाने चाहिए, रामायण नहीं।

द्वितीय, रामायण की वंशावली पर दृष्टिपात करते ही यह बात साफ़-साफ़ मालूम पड़ जाती है कि यह जाली और प्रक्षिप्त है। इस वंशावली में परस्पर पिता-पुत्र का सम्बन्ध रखते हुए नहुष और ययाति रामचन्द्र के समीपी पूर्वज दिखलाए गए हैं, जो पूर्णतः असत्य है। ये दोनों पिता-पुत्र चन्द्रवंश के विख्यात राजा हो गए हैं। नहुष वे थे जिन्होंने ज़बरदस्ती इन्द्राणी से विवाह करना चाहा था और उनके पुत्र ययाति वे थे, जिन्होंने बुढ़ापे में भी विषय-भोग की तृप्ति के लिए अपने पुत्रों से युवावस्था मँगनी माँगी थी। वस्तुतः ये श्रीकृष्ण के पूर्वज थे, न कि श्रीरामचन्द्र के। यदि कोई कहे कि एक नाम के दो भिन्न व्यक्तियों का दो भिन्न वंशों में उत्पन्न होना कोई असम्भव नहीं है, तो ऐसी बात भी यहाँ नहीं है। यहाँ तो दो नामों के साथ-साथ उन नामों के धारण करने वाले एक नहीं दो-दो व्यक्तियों के बीच परस्पर पिता-पुत्र के सम्बन्ध की भी समता दिखलाई गई है, जिसकी सत्यता किसी भी विचारशील मनुष्य की अन्तरात्मा स्वीकार नहीं कर सकती। प्रामाण्य ग्रन्थों के अनुसार प्रतिलोम गणना द्वारा रामचन्द्र के समीपी पूर्वज ये हैं:—राम १, दशरथ २, अज ३, रघु ४, दिलीप ५, खट्वाङ्ग ६ आदि; न कि राम १, दशरथ २, अज ३, नाभाग ४, ययाति ५, नहुष ६ आदि जैसा कि रामायण की वंशावली में लिखे गए हैं। दिसम्बर १९३२ का 'चाँद' पृ० २३१ पढ़िए। रामायण में रघु, दिलीप और खट्वाङ्ग की जगह क्रमशः नाभाग, ययाति और नहुष लिखे गए हैं, जो सरासर झूठ है। जान पड़ता है कि किसी धूर्त ने रामायण को, जिसे आदि कवि ने केवल एक शिक्षाप्रद कहानी समझ कर ही लिखा था, ऐतिहासिक रूप देने के लिए, सच्ची वंशावली का ज्ञान न रखने के कारण, एक जाली तथा झूठी वंशावली पीछे से उसमें घुसेड़ दी।

रामायण की उक्त जाली वंशावली के अतिरिक्त एक और जाली वंशावली का नमूना देखिए। महर्षि विश्वामित्र राम-लक्ष्मण को साथ लेकर जनकपुर जाते हुए मार्ग में रामचन्द्र से अपनी वंशावली का इस प्रकार वर्णन करते हैं—ब्रह्मा १, कुश २, कुशनाभ ३, गाधि ४, विश्वामित्र ५, जिससे विश्वामित्र का ब्रह्मा की ५वीं पीढ़ी में जन्म लेना जान पड़ता है। पर भागवत आदि महापुराणों के अनुसार वे ब्रह्मा की १७वीं पीढ़ी में उत्पन्न हुए थे। यथा:—ब्रह्मा १, अत्रि २, चन्द्र ३, बुध ४, पुरूरवा ५, विजय ६, भीम ७, काञ्चन ८, होत्रक ९, जह्नु १०, पुरु ११, वलाक १२, अज १३, कुश १४, कुशाम्बु १५, गाधि १६ और विश्वामित्र १७। अन्य पुराणों के अवलोकन से भी यही पता लगता है कि गाधि-सुत विश्वामित्र ब्रह्मा की १७वीं पीढ़ी में ही उत्पन्न हुए थे। अतः पूर्वोक्त कारणों से स्पष्ट है कि रामायण की वंशावलियाँ, चाहे वह कभी भी लिखी गई हों, पुराणों की वंशावलियों के मुक़ाबले में कुछ भी मूल्य नहीं रखतीं और उनके बल पर श्रीरामचन्द्र और सीता की समकालीनता सिद्ध करने का प्रयास बालू की दीवार खड़ी करने के तुल्य है।

(३) पीढ़ी और राज्यकाल

मुझे यह देख कर बड़ी हँसी आई कि आप आलोचना करने तो बैठे, पर आपने आयु, पीढ़ी-परिवर्त्तन-काल और राज्यकाल, इन तीनों का अन्तर नहीं समझा। जन्म से लेकर मरण तक के समय को आयु कहते हैं। वंश-परम्परा में प्रत्येक सन्तान वा अनेक समकक्ष सन्तानों का प्रत्येक समूह का नाम एक-एक पीढ़ी है। किसी भी एक पीढ़ी से व्यवधान-रहित दूसरी पीढ़ी में वंश-परम्परा का पहुँचना पीढ़ी-परिवर्त्तन है और राज्यकाल का अर्थ है राजाओं का शासन-काल। मैंने जो अपने मूललेख में सूर्यवंश की प्रत्येक पीढ़ी के लिए औसत (Average) न कि वास्तविक (Actual) रूप से २५ वर्ष माने हैं,

उसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि प्रत्येक पीढ़ी की सन्तान ने राज्य किया और उसका शासनकाल का औसत मान २५ वर्ष था; बल्कि उसका साफ़-साफ़ अर्थ यही है जिसे सभी देख सकते हैं कि प्रत्येक पीढ़ी औसत रूप से हर २५वें वर्ष आगे बढ़ती गई; असमञ्जस जैसे चाहे किसी भी पीढ़ी की सन्तान राजगद्दी पर बैठी हो वा न बैठी हो, इसका यहाँ कुछ भी प्रयोजन नहीं। पर आपने पीढ़ी और राज्यकाल को भ्रमवश एक ही समझ कर भारी गड़बड़ी मचा दी है। इस विषय को पूर्णतः समझने के लिए एक उदाहरण लीजिए—विजयी विलियम् की जन्म-तिथि से लेकर सम्राट् पञ्चम जॉर्ज की जन्म-तिथि तक बीती हुई पीढ़ियों (Generations) न कि विविध राज्यकालों (Periods of reigns) की संख्या से मध्यवर्त्ती वर्ष-संख्या में भाग देने से प्रत्येक पीढ़ी का औसत परिवर्तन-काल निकलेगा। आश्चर्य है कि एक M. A., B. L., D. A. विद्वान् इस मोटी सी बात को न समझ सका और पीढ़ी और राज्यकाल को एक समझ राम-सीता की समकालीनता सिद्ध करने बैठ गया।

—रजनीकान्त शास्त्री, बी० ए०, बी० एल०

❀ ❀ ❀

मेरी बहिन

हम सात बहिनें थीं और एक ही माता की गोद में पली थीं। सबसे पहले हमने उन्हीं के मुख से परमेश्वर का पवित्र वचन सुना था। मेरी जो चौथी बहिन थी, वह सबसे लाड़ली और हर समय मग्न रहा करती थी, साथ ही सहनशील और हर एक से बड़े आनन्द की बातें किया करती थी। इसलिए वह माता-पिता तथा अन्य घराने के लोगों को बहुत ही प्रिय हो गई थी। उसका मन प्रत्येक सुन्दर चीज़ को प्यार करता। मेरी छोटी बहिन, जो उस समय डेढ़ वर्ष की थी, उसके साथ ख़ूब मग्न रहती और वह भी सदा अपनी छोटी बहिन की सहायता किया करती। वह सदा अपनी माता के ही पास रहती। जब पिता जी घर आते तो वह दौड़ कर सबसे पहिले उनकी गोद में आ बैठती और वे उसे अपने कन्धों पर बिठा कर इधर-उधर टहलाया करते। इस प्रकार हमारे दिन ख़ुशी से बीता करते, परन्तु इस सारी ख़ुशी में एक दुर्घटना उपस्थित हो गई।

शरद ऋतु आने को थी। घास-लकड़ी काटने का सब काम-काज ख़तम हो चुका था, भण्डार भर लिए गए थे और किसी प्रकार की विशेष चिन्ता न थी। सर्दी के कारण गाय, बैल, भेड़, बकरी और घोड़े इत्यादि सब पशुओं को अपनी-अपनी गऊशाला तथा घुड़शाल में ही खिलाते-पिलाते हैं, क्योंकि खेत और जङ्गल पाँच-छः महीने तक बर्फ़ से ढके रहते हैं। तितलियों और मधु-मक्खियों से लेकर बड़े-बड़े पशुओं तक अपने-अपने बचाव के स्थानों में जाकर छिपे रहते हैं। सुन्दर और मनोहर चिड़ियाएँ, जो भोर होते ही अपने-अपने घोंसलों में से निकल कर अपनी कोमल और मधुर वाणी से प्रत्येक मनुष्य को आनन्दित किया करती हैं और जिनके गायन से यह प्रतीत होता है कि उस सर्वशक्तिमान ईश्वर का गुणानुवाद कर रही हैं और मनुष्य-मात्र को ईश्वर का धन्यवाद करने की चेतावनी दे रही हैं, वे भी उस विकट सर्दी के आने के पहिले ही हम सबसे बिदा होकर केवल कुछ मास के लिए दक्षिण दिशा की ओर जा चुकी थीं। परन्तु मेरी बहिन इस बिछोह के होने पर भी सदा के समान प्रसन्न और हँसमुख रहती। यह सब कुछ होने के पीछे प्रकृति अपना दूसरा रूप बदलती और इसके बदले में सुन्दर बर्फ़ हमको देती थी। बर्फ़ पड़ते समय ऐसा जान पड़ता था, मानों कई स्वर्ग-दूत श्वेत वस्त्र धारण किए पृथ्वी की ओर चले आ रहे हैं। बर्फ़ पड़ती देख कर हम मग्न हो जाया करते और इस दृश्य को केवल घर की खिड़की में से देख कर हम सब बच्चे तृप्त न होते और बाहर बर्फ़ में खेलने के लिए बहुत बेचैन हो जाते थे। माता-पिता हमको बहुधा डाँटते कि बाहर बर्फ़ में न जाया करो, बर्फ़ में जाने से ठण्ड लगना बहुत सम्भव है और विशेषकर छोटे बच्चों को तो यह ठण्ड बहुत ही हानिकारक है। परन्तु हमारे बहुत हठ करने पर और हमें प्रसन्न करने के लिए वे कभी-कभी आँगन में और घर के आस-पास जाने दिया करते थे। उस साल भी सदैव की भाँति बर्फ़ पड़ी और हम सब बहिनें अवसर पाकर खेलने के लिए बाहर निकल गईं। दुर्भाग्य से माता-पिता की सबसे प्यारी बेटी को, जो उस समय

सात साल की थी, ठण्ड लग गई और अकस्मात् उसका गला सूज गया और बहुत पीड़ा होने लगी। माता-पिता ने डॉक्टर को बुलवाया और उसने रोगिनी की परीक्षा करके नियमानुसार औषधि दे दी। मेरी प्यारी बहिन ने दवा का नाम सुनते ही कहा—"पिता जी, मैं दवा पीना नहीं चाहती, क्योंकि मैं तो स्वर्ग को जा रही हूँ। जिस प्रकार मेरी बहिनें प्यारे यीशू मसीह के पास गई हैं, उसी प्रकार मैं भी जाती हूँ और वहाँ जाकर उनके साथ आनन्द मनाऊँगी।" बच्ची को इस प्रकार गम्भीरता से बातें करते देख कर माँ-बाप घबरा उठे और कुछ न बोल सके; केवल दुःखित होकर रोने लगे। उनको रोता देख प्यारी पुत्री फिर बोली—"प्यारे माता-पिता जी, आप व्यर्थ ही मत रोइए। मैं स्वर्ग को जा रही हूँ। वहाँ हमारे प्यारे यीशू जी हैं, जो बच्चों से बहुत ही प्रेम करते हैं और जैसा आपने मुझे सुनाया और बताया है, मैं उनकी वैसी ही महिमा इस समय देख रही हूँ।" उसको ऐसी बातें करते देख हमको ज्ञात हुआ कि उसको अवश्य वह अद्भुत स्थान दिखाई दे रहा है। माता जी ने गिड़गिड़ाते हुए कहा—"बेटी, तू हमको छोड़ कर कहाँ जा रही है?" "माता जी आप और पिता जी भी एक दिन वहीं आएँगे और यीशू के साथ सदा रहेंगे!" वह बोली। माता जी ने सब बच्चों से कहा कि "तुम्हारी बहिन अब थोड़े ही समय के लिए यहाँ है, अब उसको बिदा करो।" मैंने उसका चमकता हुआ मुख देख कर उसी के साथ मरना चाहा और माता जी के गले लग कर कहा—"मैं भी मरूँगी।" माता जी ने उत्तर दिया—"परमेश्वर की आज्ञा के बिना, समय पूरा होने से पहले तू कदापि नहीं जा सकती।" मेरी छोटी बहिन मरते-मरते बोली कि "सब यीशू पर विश्वास रखिए, हम सब सङ्ग मिल जाएँगे। आप लोग न रोइए, क्योंकि यीशू मेरे सामने है और मैं उसका मुख देख रही हूँ। क्या आप उसे नहीं देख रही हैं? वह मेरे ही लिए आए हैं। आप मेरे लिए न रोइए, मैं सदा के लिए अमर स्थान को जा रही हूँ।" बस यही उसके अन्तिम शब्द थे। इसके पीछे वह हमेशा को मीठी नींद सो गई।

जिस प्रकार सारे जीव-जन्तु उस स्थान को छोड़ कर चले गए थे, उसी तरह मेरी बहिन भी हम सबको छोड़ कर चली गई। वह केवल तीन दिन बीमार रही और अपने स्वभाव के अनुसार बीमारी में भी सदा प्रसन्न ही रही, जिससे माता-पिता तथा अन्य घराने वालों की शान्ति भङ्ग न हुई। वह अपने स्वर्गीय पिता यीशू मसीह की महिमा में मग्न थी। मेरी बहिन का काम इस संसार में पूरा हो चुका था। उस काम का फल हमेशा बढ़ता रहेगा। परमेश्वर का प्रेम उससे बहुत था, इसीलिए वह परमेश्वर को इतनी प्यारी हुई कि उसने उसे हमसे छीन लिया। सबसे बढ़ कर यीशू मसीह का सच्चा प्रेम और अनुग्रह हम पर है, हमें उससे कदापि मुख नहीं मोड़ना चाहिए, क्योंकि यीशू ने कहा है—"बच्चों को मेरे पास आने दो और उन्हें मना न करो, क्योंकि परमेश्वर का राज्य ऐसों ही का है।"

—मिस मेरी इवरसन

सच्ची प्रार्थना का फल

जब हम हिन्दुस्तान को आईं तो हमारी कमाई किसी मनुष्य द्वारा नियत नहीं थी, पर भक्त लोगों ने हमारे साथ प्रार्थना की कि जो कुछ हमारे लिए आवश्यक हो, परमेश्वर की कृपा से हमको अवश्य दिया जाएगा। हमारे मिशनरी बोर्ड ने, जो नया था और जिसके बहुत मिशनरी थे, उन स्टेशनों को जिस पर बहुत काम करने वाले थे, पहले पैसा भेजा और फिर बँगले बनवाने के लिए भी बहुत पैसा दिया। हमारे हिन्दुस्तान आने के एक साल पीछे अलाइन्स बैङ्क, जिसमें हमारे पैसे थे, टूट गया और इससे हमको भी बहुत हानि पहुँची। परन्तु परमेश्वर की प्रतिज्ञाओं के अनुसार सब कुछ हमारे लिए अच्छा हो गया। हमने तो ईश्वर से प्रार्थना की कि यदि तू चाहता है कि हम यहाँ रहें तो हमको काफ़ी पैसा प्राप्त होवे।

हमको भराड़ी में एक बनिया से ढाई सौ रुपया वार्षिक किराए पर मकान मिल गया। उस समय जब पट्टा लिखा गया था तो हमारे पास कुछ भी पैसे न थे। पर परमेश्वर के वचन स्थिर हैं और उसने हमको इस साल के हर एक महीने में मित्रों द्वारा काफ़ी पैसे भेज दिए। एक दिन हमको मोने नामक नगर से जो आलास्का की उत्तरी ओर है, एक चिट्ठी आई जो छै

हफ़्ते पहिले लिखी गई थी। इस चिट्ठी में दो दस-दस डालर के नोट थे। चिट्ठी लिखने वाली हमारे देश की एक स्त्री थी, जिसको बारह वर्ष पहले मिस इवरसन नॉरवे में मिली थी। चिट्ठी में लिखा था कि एक समय जब मेरे पति ने और मैंने साथ-साथ प्रार्थना की तो परमेश्वर ने हमको आज्ञा दी कि बहिनों को, जो हिमालय पहाड़ पर रहती हैं, बीस डालर भेज दो और ऐसा करने से हमको बहुत आनन्द मिला।

यह हमारे लिए एक सच्ची प्रार्थना का फल था, क्योंकि पिछले बारह वर्षों में हमको उन लोगों की दशा का कुछ भी पता न था कि वे कहाँ थे।

—मिस बोलवर्ग वाला*

---

* उपर्युक्त "मेरी बहिन" और "सच्ची प्रार्थना का फल" शीर्षक टिप्पणियों की लेखिकाएँ—मिस मेरी इवरसन और मिस बोलवर्ग वाला यूरोप के नॉर्वे देश की रहने वाली हैं और आजकल शिमला में रहती हैं। इनकी उमर प्रायः ५० वर्ष है। ये ईसाई मिशनरी हैं और इस देश में ईसाई-धर्म का प्रचार करने आई हैं। इन्हें हिन्दी भाषा से बड़ा प्रेम है। इन्होंने इस अवस्था में श्री० जे० डी० जोशी नाम के एक सज्जन की सहायता से हिन्दी सीखा है। उपर्युक्त नोट इनके हिन्दी के नमूने हैं। इन दोनों महिलाओं के चित्र भी इसी अङ्क में अन्यत्र छपे हैं। इनके लेख और चित्र हमें उपर्युक्त श्री० जे० डी० जोशी महोदय की कृपा से मिले हैं। इसके लिए हम आपके कृतज्ञ हैं।

—स० 'चाँद'

अपने मीत से—

[श्री० मोहनलाल महतो, 'वियोगी']

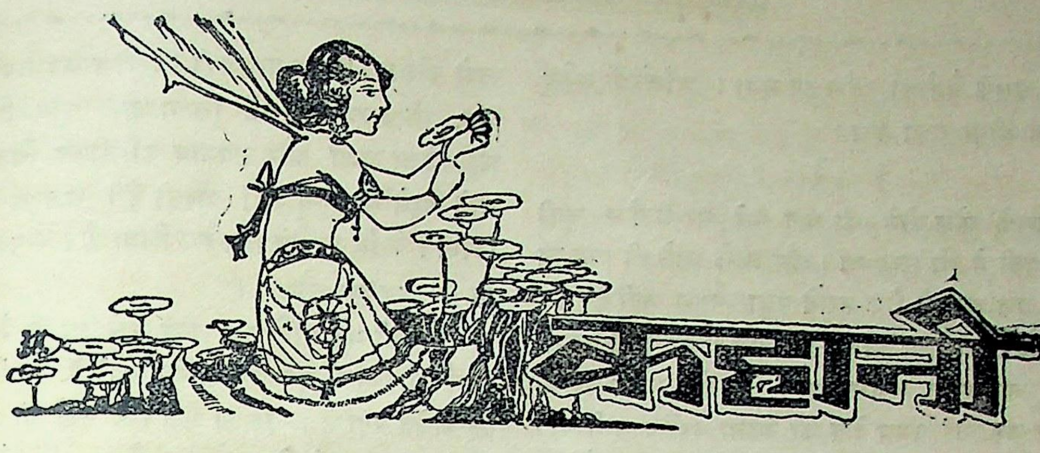
लिखूँगा जल पर अपने गीत,
पढ़ेगा आकर उन्हें अतीत।

अन्धकारमय है भविष्य ये अक्षर भी हैं काले,
सम्भव है लहरी आकर आँचल से इन्हें छिपा ले
याद कर अपनी भूली प्रीत,
लिखूँगा जल पर अपने गीत।

मेरा गत जीवन प्रदीप बन है प्रकाश फैलाता,
इस कारण ही भूतकाल तो है उज्ज्वल कहलाता,
यही है मन को पूर्ण प्रतीत,
लिखूँगा जल पर अपने गीत।

चली जा रही है तरणी क्षणभङ्गुर—रेखा छोड़,
नहीं देखती उसका मिटना पल भर भी मुँह मोड़,
हाय री सरस-सनातन रीत,
लिखूँगा जल पर अपने गीत।

बुदबुद बन कर कभी-कभी ये मेरे सकरुण गान,
क्षण भर हँस अपनापन का फिर कर देंगे अवसान,
हाथ मल कर रह जाना मीत।
लिखूँगा जल पर अपने गीत।



भूल

[श्री० हरिश्चन्द्र वर्मा, विशारद]

कमरे में घुसते ही रानी ने पति से पूछा—कहिए, आज का पर्चा कैसा हुआ?

"बहुत ही अच्छा। फ़र्स्ट डिवीज़न नहीं तो सैकेण्ड तो कहीं गया नहीं है।"—हर्षपूर्वक कौशल ने उत्तर दिया।

"नतीजा कब तक आएगा?"

"अभी आज तो परीक्षा समाप्त हुई है, डेढ़-दो महीने में आएगा।"

२

दो महीने बाद।

प्रातःकाल का समय था। कौशल के पिता रामकिशोर घर के बाहर के आँगन में चारपाई पर बैठे थे। उसी समय हाथ में पत्र लिए कौशल ने प्रवेश किया। उसका मुख उतरा हुआ था। हृदय में उठते विचारों की अस्थिरता पल-पल पर उसके मुख के भावों को बदल रही थी। रामकिशोर के हृदय में भावी अमङ्गल की सूचना सी हुई। उन्होंने उत्सुकतापूर्वक पूछा—नतीजा आया?

"जी!"—उसने हाथ का पत्र पिता के सम्मुख चारपाई पर फेंक दिया।

"पास हुए?"—पत्र के पन्ने लौटते हुए उन्होंने पूछा।

"ना!"—कौशल ने तनिक रुक कर उत्तर दिया। उसके स्वर में कम्पन था।

रामकिशोर ने देखा। वास्तव में कौशल का नाम उत्तीर्ण विद्यार्थियों की सूची में न था। वे कुछ क्षण एकटक पत्र की ओर देखते रहे। फिर उन्होंने सिर उठा कर कौशल की ओर देखा। वह दृष्टि नीची किए अब भी वैसे ही खड़ा था।

"यह बात क्या हुई? पर्चे तो तुम कहते थे, सब अच्छे गए हैं।"

कौशल ने कुछ उत्तर न दिया। उसके पास इसका कुछ उत्तर न था। वह उदास-भाव से उसी प्रकार खड़ा रहा। रामकिशोर ने फिर पर्चे पर दृष्टि डाली।

"अरे! गिरधारी पास है?"

धीरे से सिर हिला कर कौशल ने कहा—हाँ!

"इसी के लिए तो तुम कहते थे कि यह चार बरस तक भी पास न हो सकेगा?"

कौशल फिर चुप रहा। यह भेद स्वयं ही उसकी समझ में न आ रहा था।

"ख़ैर, कोई चिन्ता न करो। अगले साल पास हो जाओगे।"—रामकिशोर ने पुत्र को आश्वासन देते हुए कहा—"तुमने प्रयत्न तो किया, अब भाग्य साथ न दे तो किसका वश है।"

कौशल अभी तक धैर्यपूर्वक अपने अन्तस्तल के भावों को रोके हुए था, परन्तु पिता की सान्त्वना रूपी

ठेस से उसके धैर्य का बाँध टूट गया। आँखों में आँसू भरे वह भीतर चला गया।

३

उसके फ़ेल होने की बात सारे घर में फैल चुकी थी। रानी ने भी सुना था। कौशल के आते ही हाथ का बुनना पल भर को रोक उसने पूछा—पास नहीं हुए?

कौशल ने कुछ उत्तर न दिया। रानी को अभी जीवन का कच्चा अनुभव था। वह कोई बात सोच-विचार कर और समय देख कर कहना नहीं जानती थी। बोली—आप तो कहते थे कि फ़र्स्ट नहीं तो सैकेन्ड तो कहीं गया ही नहीं है।

रानी ने यह बात कुछ ऐसे ढङ्ग से कही कि वह कौशल के हृदय में लग गई। पर वह कुछ बोला नहीं। उसी समय सावित्री ने कमरे में आकर कहा—"भाभी, तुम्हें माता जी बुला रही हैं।" हाथ का रेशम और सलाइयाँ रख कर रानी सास के पास चली गई।

कौशल पलङ्ग पर लेट गया। उस समय उसके मन में सहस्रों प्रकार के विचार उठ रहे थे। आज उसे न खाने की चिन्ता थी, न पीने की। प्रतिदिन के किसी कार्य में आज उसका मन नहीं लग रहा था।

चिराग़ जलने में अभी देर थी। कौशल उसी प्रकार अपने कल्पना-सागर में डूबा हुआ था। उस समय उसके भावों से ऐसा प्रतीत होता था, मानों किसी भयङ्कर कार्य की आयोजना कर रहा हो। सहसा वह उठा। एक गहरी साँस लेकर खड़ा हो गया और हाथ उठा कर अँगड़ाई ली। इस समय उसके मुख पर तनिक स्फूर्ति की आभा थी। वह सीधे बाहर चल दिया। पिता के कमरे में पहुँच कर उसने काग़ज़ निकाला और एक पत्र लिखा। और मेज़ पर पैड के नीचे रख दिया। वहाँ से निकल कर वह एक दूसरे कमरे में गया और आलमारी खोल कर एक नीली शीशी निकाली। इसमें बहुत दिन हुए उसने कॉलेज से विष लाकर रक्खा था। पल भर उसे देखने के उपरान्त उसने कार्क खोल कर उसे मुँह से लगाया और सारी शीशी ख़ाली कर दी। उसके बाद शीशी वहीं फेंक कर अपने कमरे में जाकर पलँग पर लेट रहा।

४

रात्रि के आठ बजे रामकिशोर अपने कमरे में गए। बिजली बत्ती का स्विच दबाते ही उनकी दृष्टि सबसे पहले कौशल के पत्र पर पड़ी। खोल कर ज्योंही उसे पढ़ा, चीख़ उठे। उसमें लिखा था, 'पूज्य पिता जी, फ़ेल होकर लज्जा और अपमान का जीवन बिताने और ताने सहने से मृत्यु कहीं अच्छी है। अतएव उसी को अपनाने के लिए मैंने विष खा लिया है। अपराध क्षमा हो। —आपका कौशल।'

बिजली की भाँति यह ख़बर सारे घर में फैल गई। रामकिशोर झपटे हुए कौशल के कमरे में पहुँचे। देखा, वह अचेत पड़ा है। उसका मुख रक्त वर्ण हो रहा था। वे चीख़ कर उससे लिपट गए। कौशल की माँ की बुरी दशा थी। वह पागल की भाँति सिर पीट रही थी। रानी धाड़ें मार-मार कर रो रही थी। तनिक सुध आने पर रामकिशोर ने डॉक्टर बुलाने को आदमी भेजा। वे रिश्ते में कौशल के कुछ लगते थे। सुनते ही झपटे हुए आए। सबको तसल्ली देकर उन्होंने रोगी की परीक्षा की। रामकिशोर उत्सुक नेत्रों से उनकी ओर देख रहे थे। पूर्ण रूप से परीक्षा कर लेने के उपरान्त वे बोले—"विष तो इसने खाया नहीं है, कोई तेज़ दवा पी गया है, उसी के कारण ज्वर हो गया है।"

पहले तो डॉक्टर की बात पर किसी को विश्वास न हुआ। परन्तु उनके बार-बार कहने पर सबको ढारस बँध गया। रोना-धोना कम हुआ। रामकिशोर दवा वाले कमरे में गए। नीली शीशी नीचे पृथ्वी पर पड़ी थी। उसे देखते ही झपट कर उन्होंने उठा लिया और लाकर उसे डॉक्टर के हाथ में देते हुए बोले—"ठीक है, इसने मेरा वाला मिक्स्चर पी लिया है, जो आपने मुझे दिया था।" उनके स्वर में धैर्य तथा प्रसन्नता थी।

"परन्तु वह इसमें कैसे आ गया?"—डॉक्टर ने पूछा।

"कल आप वाली शीशी का मुँह कार्क लगाते समय टूट गया तो मैंने इसी शीशी को निकाल कर दवा भर दी थी।"

"तो इसमें पहले विष ही रहा होगा?"

"मुझे क्या पता। मैंने यह समझ कर कि कुछ होगा, उसे फेंकवा दिया।"

"ख़ैर भाग्य अच्छे थे। कौशल की भूल ने उसके प्राण बचा दिये।"—कह कर डॉक्टर ने नुस्ख़ा लिखना आरम्भ किया। यह बात सबको ज्ञात होते ही घर भर

के आनन्द का ठिकाना न रहा। कौशल की माँ को तो मानों आँखें मिल गईं।

कौशल को बड़े ज़ोर का ज्वर था। डॉक्टर ने नुस्ख़ा लिखा और घण्टे-घण्टे भर बाद एक दवा पिलाने को और दूसरी सिर पर मलने को कह कर चले गए।

५

एक सप्ताह के उपरान्त।

कौशल का ज्वर कम हुआ। उसे चेत हुआ। आँख खुलते ही उसने चारों ओर देखना आरम्भ किया। पहले तो उसकी समझ में नहीं आया कि वह कहाँ है, परन्तु शनैः शनैः उसकी पूर्व स्मृति लौट आई। एक-एक करके उसे समस्त पिछली बातें याद आगईं। वह सोचने लगा कि मैंने तो विष खाया था। मैं बच कैसे गया। परन्तु जब उसे मालूम हुआ कि किस प्रकार शीशी की दवा बदल जाने से उसके प्राण बच गए, तो वह आश्चर्य में पड़ गया। वह कभी भाग्य पर विश्वास न करता था, परन्तु अब उसे ज्ञात हो गया कि कर्म और यत्न के साथ-साथ भाग्य भी एक बड़ी शक्ति है, जो मनुष्य के जीवन में विचित्र उलट-फेर कर सकती है। आत्म-हत्या करके प्राण त्यागने की बात में भी उसे अपनी भूल प्रतीत होने लगी। भला असफलता के कारण प्राण त्याग देना कहाँ की बुद्धिमत्ता है? जीवन में असफलता की ठोकरें खा-खाकर ही तो सफलता प्राप्त होती है। असफलता से डरने वाला मनुष्य कहीं सफलता पा सकता है?

सन्ध्या का समय था। पं० रामकिशोर बाहर के चौक में कुर्सी डाले पत्र पढ़ रहे थे। उसी समय कॉलेज के चपरासी ने आकर उन्हें एक पत्र दिया।

रामकिशोर ने पत्र खोला। वह पत्र प्रिन्सिपल ने भेजा था। उन्होंने लिखा था कि तार द्वारा यूनीवर्सिटी के रजिस्ट्रार से सूचना मिली है कि कौशल फ़र्स्ट डिवीज़न में बी० एस-सी० की परीक्षा में उत्तीर्ण है, क्लर्क की भूल से उसके नम्बरों में गड़बड़ी पड़ गई थी। पत्र के साथ में तार भी रक्खा था। हर्ष के मारे रामकिशोर उछल पड़े। जेब से एक रुपया निकाल कर चपरासी को दे, बिदा किया और सीधे कौशल के कमरे की ओर लपके। वह आँखें मूँदे चुपचाप लेटा था। चारपाई के पास पहुँचते ही पिता ने कहा—"कौशल! तुम फ़र्स्ट डिवीज़न में पास हो गए। यूनीवर्सिटी से तार आया है।"

कौशल चौंक पड़ा—सचमुच?

रामकिशोर ने चिट्ठी उसकी ओर बढ़ा दी। कौशल उठ कर बैठ गया और पिता के हाथ से पत्र ले, पढ़ने लगा। उसके पढ़ते ही उसकी आँखें खिल उठीं, आनन्द की गहरी लाली उसके मुख पर फैल गई। वह आँखें फाड़-फाड़ कर उसे देखता रहा।

६

आठ वर्ष बाद।

कौशल कैनाल डिपार्टमेण्ट का एकज़ीक्यूटिव इञ्जीनियर था। ऊँचा वेतन था। चैन से कट रही थी।

रानी दो बच्चों की माँ थी। जीवन का अनुभव भी बढ़ चला था। सुख से गुज़र रही थी। रामकिशोर पेन्शन ले चुके थे। अब वे पुत्र के साथ रह कर भगवद्-भजन कर जीवन के अन्तिम दिन बिता रहे थे। कौशल की माँ भी सावित्री का विवाह कर चिन्ता-रहित हो चुकी थीं। वह दोनों पौत्रों को खिला कर अपने जीवन का सुख लूट रही थीं। सभी प्रसन्न थे, सभी सुखी थे।

केवल कभी-कभी उन पिछली बातों की याद कर सब अपनी भूलों पर हँसा करते, परन्तु उस हँसी में भी पश्चात्ताप और वेदना की कितनी गहरी छाप रहती थी?

एक दिन सावित्री ससुराल से आई। उसने रात्रि को अपनी नैकलेस रानी को रखने को दी। रानी जल्दी में थी। उसने कहीं रख दी। प्रातःकाल सावित्री के माँगने पर वह न मिली। रानी उसे ढूँढ़ रही थी।

उसी समय कौशल आ पहुँचा, पूछा—सावित्री, क्या है?

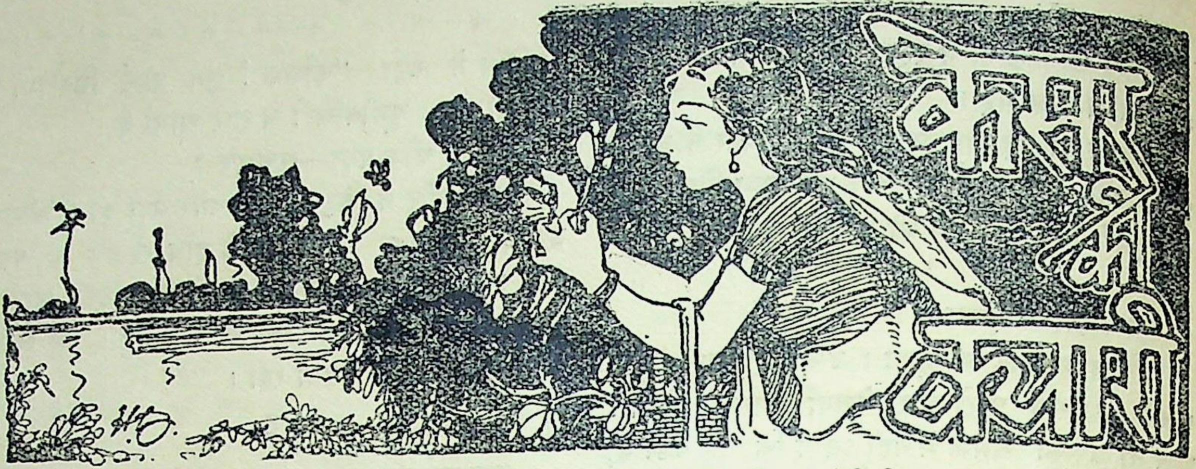
"कुछ नहीं, रात नैकलेस भाभी को रखने को दी थी, कहीं रख कर भूल गईं।"

परिहास के शब्दों में कौशल ने कहा—बड़ी भुलक्कड़ हैं।

रानी अलमारी देख रही थी, पति की बात सुन रुक गई और आँख मार कर हँसती हुई बोली—और आप तो कभी भूल करते ही नहीं हैं न?

कौशल झेंप गए। सावित्री खिलखिला पड़ी।

卐 卐 卐



[जनाब "कुश्ता" साहब गयावी]

क्या कहें किस बेकसी से और किस मुश्किल से हम,
थाम कर अपना जिगर निकले तेरी महफ़िल से हम।
इसको अपने दिल में लाए हैं बड़ी मुश्किल से हम,
अब करें दिल से जुदा बिलफ़र्ज़ तो किस दिल से हम ?
जब यहीं रहना, यहीं जीना, यहीं मरना भी है,
तो कहाँ जायें निकल कर आपकी महफ़िल से हम ?
उनकी महफ़िल में पहुँचने का यही निकला मआल[1],
हो गया हमसे जुदा दिल, और अपने दिल से हम।
उम्र अपनी ख़त्म कर दी, राहे ज़ौक़ो शौक़ में,
लेकिन इस पर भी निहायत दूर हैं मञ्ज़िल से हम।
ले गए पहलू से तुम लेकिन हो फिर भी बदगुमाँ[2],
और को चाहेंगे तो चाहेंगे अब किस दिल से हम ?
सख़्तियाँ सहने से तो बेहतर यह है मर जायें भी,
अब नहीं डरने के हरगिज़ ख़ञ्जरे-क़ातिल से हम।
इसमें जलवा आपका, इसमें है मसकन[3] आपका,
अपने पहलू से जुदा दिल को करें किस दिल से हम ?
जब हैं ख़ुद "कुश्ता" तो मरने से डरें मुमकिन नहीं,
इसलिए बेख़ौफ़ होकर मिलते हैं क़ातिल से हम।

१—नतीजा, २—शक करना, ३—ठिकाना।

[कविवर "बिस्मिल" इलाहाबादी]

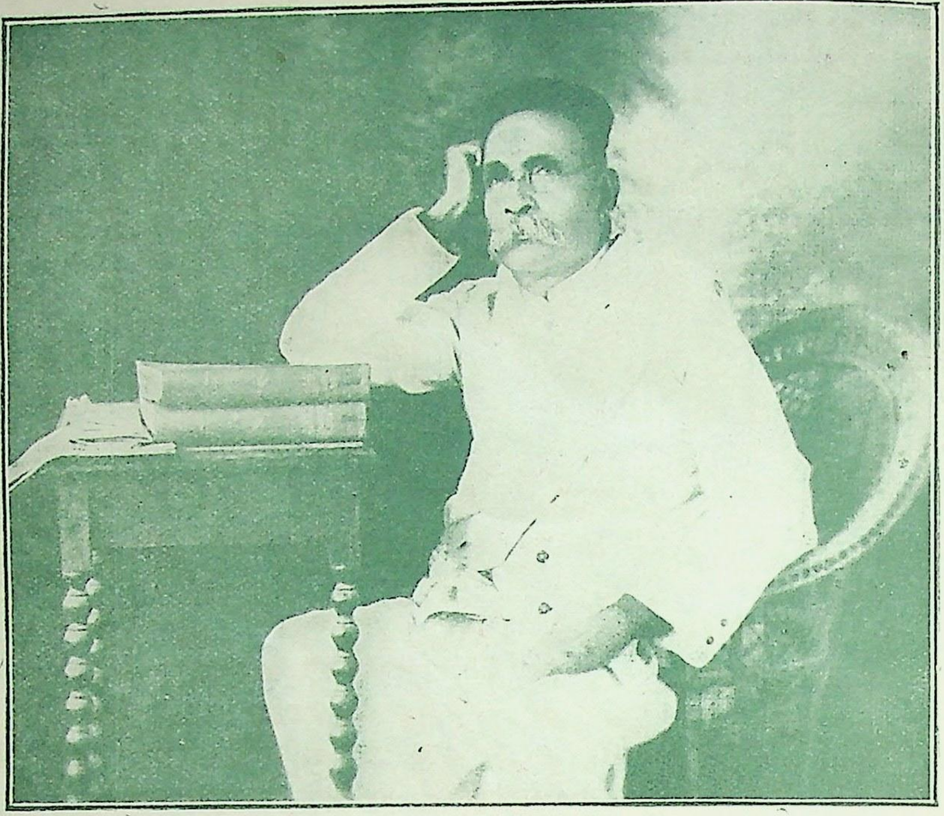
वह हमें उठवा चुके, अब उठ चुके महफ़िल से हम,
आए जिस मुश्किल से, जायेंगे उसी मुश्किल से हम।
इसको देंगे ग़म उठाने के लिए मुश्किल से हम,
दिल न होगा, तो तुम्हें चाहेंगे फिर किस दिल से हम?
दिल नहीं तो अब है, दिल की आरज़ू दिल का ख़याल,
फँस गए दो मुश्किलों में, छुट कर एक मुश्किल से हम।
दिल नहीं मिलता जो दिल से, तो यह मिलना कुछ नहीं,
आप भी उस दिल से मिलिये मिलते हैं जिस दिल से हम।
जादए[4] उलफ़त में क्या-क्या शौक़ ने चक्कर दिए,
थी कहाँ मञ्ज़िल, निकल आए कहाँ मञ्ज़िल से हम।
तेरी नज़रों में नहीं सय्याद[5] क़दरे आशियाँ[6],
कर सके हैं, जम्आ यह तिनके बड़ी मुश्किल से हम।
दिल से वह बातें किसी के दिल की जब सुनते नहीं,
उनसे हाले-दिल कहें भी, तो कहें किस दिल से हम?
आपकी महफ़िल से, उठने का नतीजा यह हुआ,
तङ्ग आकर उठ गए दुनिया की भी महफ़िल से हम,
देखने में चार तिनकों के सिवा कुछ भी नहीं,
अपने होते, आशियाँ को फूँक दें किस दिल से हम?
जोश में आकर कोई क़ातिल यह कह दे तो सही,
कुछ भी हो, लेकिन मिलेंगे हज़रते "बिस्मिल" से हम।

४—राह, ५—घातक, ६—घोंसला।

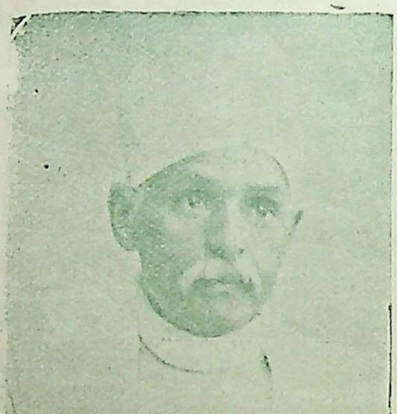


स्वर्गवासिनी डॉक्टर (कुमारी) लीलावती, एल० डी०, एस-सी०, जो भारत की सर्व-प्रथम हिन्दू-महिला दन्त-चिकित्सक (Dental Surgeon) थीं और जिनका अभी हाल में ही स्वर्गवास हो गया है !

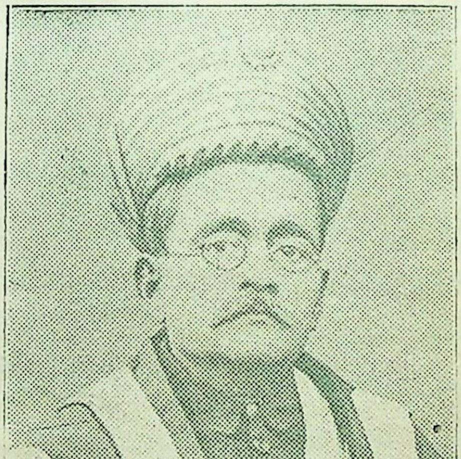
प्रयागस्थ द्विवेदी-मेला चित्रावली



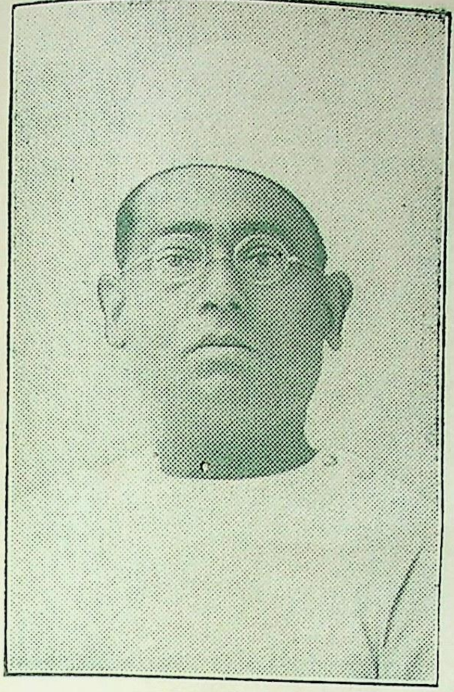
आचार्य पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी



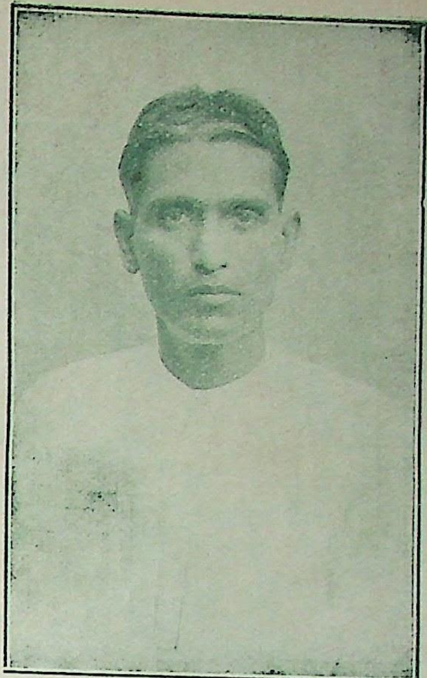
द्विवेदी-मेला के उद्घाटनकर्ता—
देशपूज्य पण्डित मदनमोहन जी मालवीय।
आपके द्वारा ही इस अपूर्व साहित्यिक
समारोह का प्रारम्भ हुआ था।



प्रयाग-विश्वविद्यालय के भूतपूर्व चान्सलर महामहोपाध्याय
डॉक्टर गङ्गानाथ जी झा—जिन्होंने गत द्विवेदी-मेले
के शुभ अवसर पर मान-पत्र द्वारा आचार्य
द्विवेदी जी का अभिनन्दन किया था।

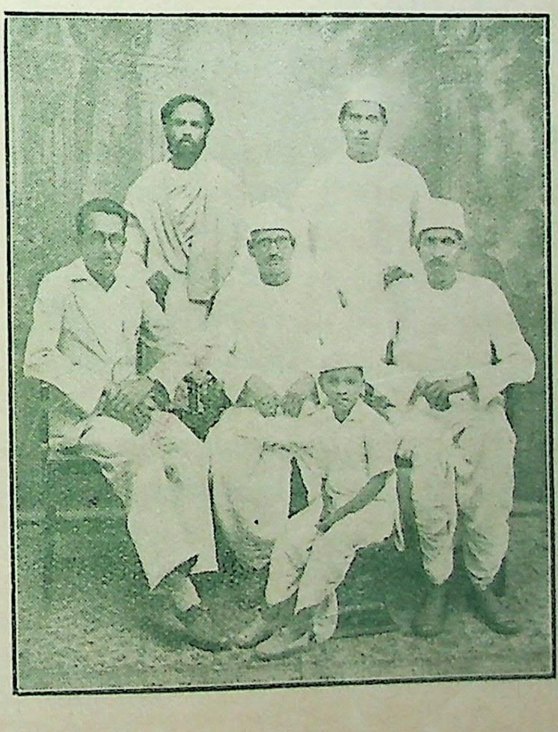


प्रयाग के सुप्रसिद्ध धनवान और देशभक्त—
श्रीमान् पं० निरञ्जनलाल जी भार्गव—
जिन्होंने द्विवेदी-मेला में समागत
अतिथियों के आतिथ्य-सत्कार
का समस्त भार अपने
ऊपर लिया था।

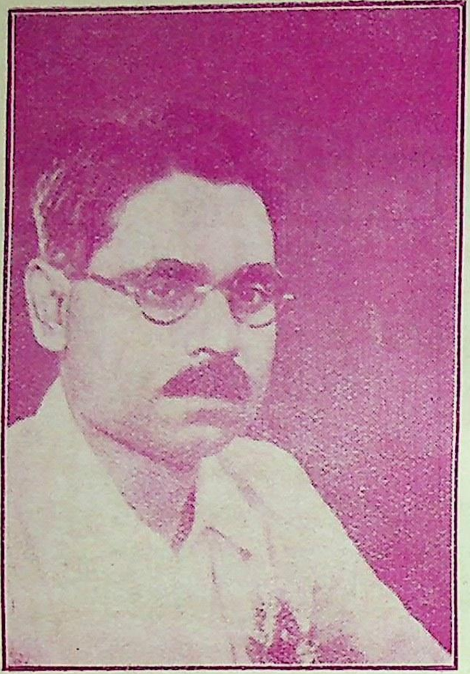


द्विवेदी-मेला (प्रयाग) के प्राण—
पण्डित लक्ष्मीधर जी वाजपेयी—
आपके ही अथक परिश्रम से
यह सुन्दर समारोह सुचारु
रूप से सम्पन्न
हो सका।

द्विवेदी-मेला के अवसर पर होने वाले काव्य-परिहास सम्मेलन के उद्योग-कर्ताओं का परिहासात्मक परिचय—खड़े—(१) दाढ़ीदार बैज़ाबी चेहरेवाले श्री० विद्याभास्कर जी शुक्ल और (२) चिकने चेहरेवाले जिनके मस्तिष्क-कोख ने यह वृहत् मेला प्रसव किया था, श्री० ठाकुर श्रीनाथ-सिंह जी 'बाल-सखा।'



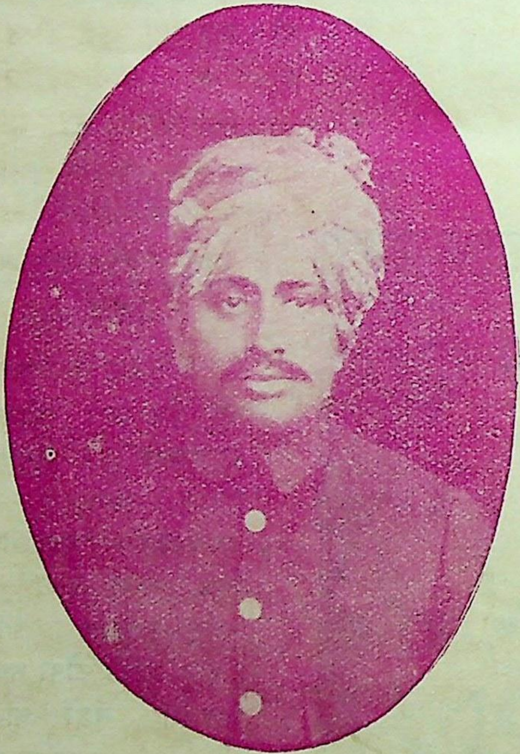
'कुर्सियासीन'—(१) चश्मा-विमण्डित-चक्षु पैण्टधारी पण्डित प्रद्युम्नकृष्ण (वसुदेव नहीं!) कौल, (२) उभय मध्य—"ब्रह्म जीव बिच माया जैसी"—'चाँद'-सम्पादक और (३) गाँधी टोपी तथा 'कतरित' मूँछों वाले श्री० (शुण्डहीन) गणेश पाण्डेय।



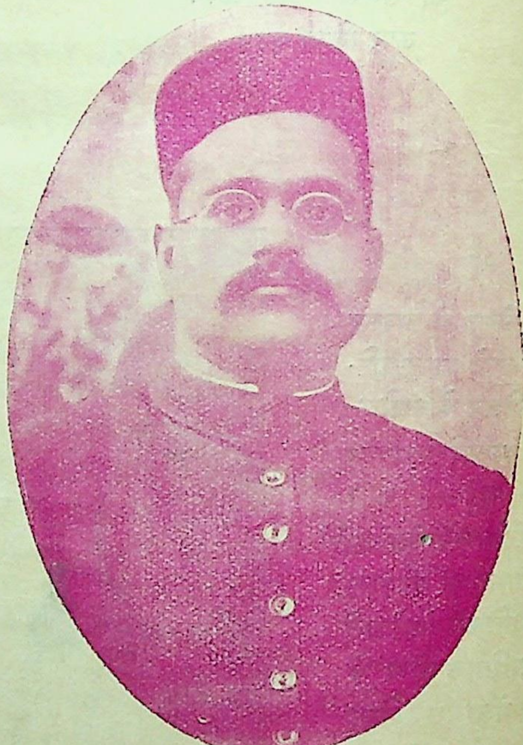
प्रयाग में द्विवेदी-मेला के अवसर पर होने वाले काव्य-परिहास-सम्मेलन के सभापति, हास्यरसाचार्य— श्री० जी० पी० श्रीवास्तव महोदय।



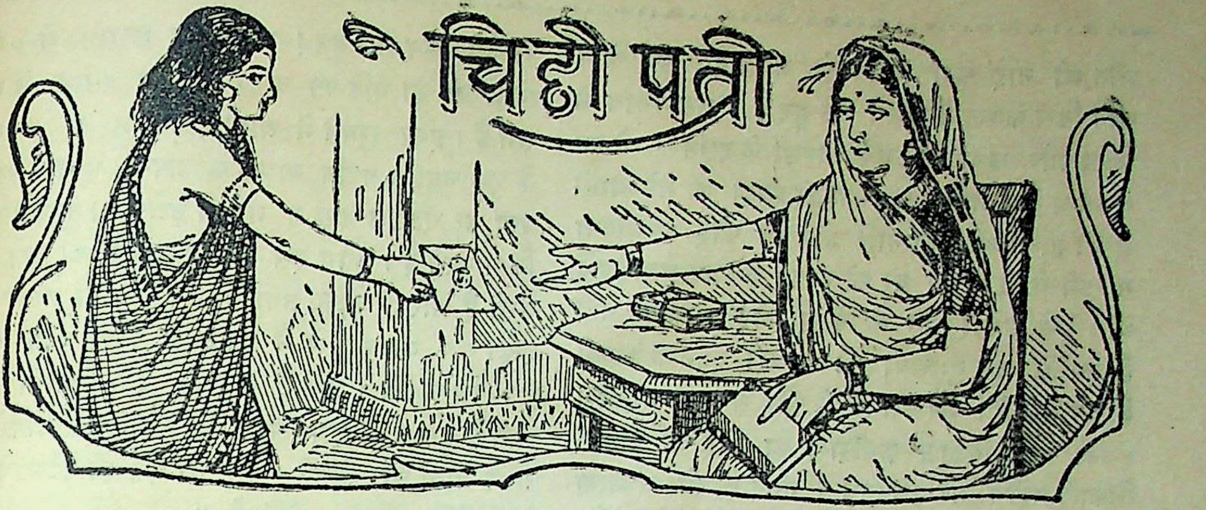
द्विवेदी-मेला-समिति के प्रधान-मन्त्री— पण्डित रघुनन्दन शर्मा।



द्विवेदी-मेला-समिति के स्वागताध्यक्ष— सुप्रसिद्ध साहित्य-सेवी कविवर ठाकुर गोपालशरणसिंह।



मुन्शी कन्हैयालाल जी एम० ए०, एडवोकेट, भूतपूर्व उर्दू 'चाँद'-सम्पादक—जिनके उत्साह, उद्योग और सहायता से द्विवेदी-मेले का कार्य अग्रसर हो सका था।



वहम या मानसिक व्याधि

कलकत्ता से एक जैन युवती ने लिखा है :—

श्रीमान् सम्पादक जी, सादर प्रणाम !

मैं आपका 'चाँद' सदा आदर और प्रेम से पढ़ा करती हूँ। मैं यह भी जानती हूँ कि आप दुखियों का दुःख निवारण करते हैं। मुझे भी एक मानसिक व्याधि लग गई है। आशा करती हूँ कि आप इसका कोई उपाय बतावेंगे, जिससे मुझे शान्ति प्राप्त हो।

मैं जैन जाति के एक धनवान सेठ की पुत्रवधू हूँ। मेरे पति मुझ पर स्नेह रखते तथा प्रेम करते हैं, परन्तु मुझे न मालूम क्यों हर समय उद्विग्नता रहती है और उनका पहरना-ओढ़ना या किसी से बातचीत करना मुझे अच्छा नहीं लगता। मैं इससे जला करती हूँ। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि वे किसी वेश्या या पर-स्त्री से प्रेम करते हैं। इन्हीं विचारों से मुझे हिस्टीरिया का भी दौरा होने लगा है। वे मेरे पास बैठना-उठना भी बहुत कम पसन्द करते हैं। हर समय अपने दोस्तों के पास बैठे रहते हैं या हारमोनियम वग़ैरह बजाया करते हैं। और रात को ११-११॥ बजे तक घर में नहीं आते। मैं क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आता। इसी उधेड़-बुन में हर समय रहने से मेरा स्वास्थ्य भी बिगड़ गया है। अब आप ऐसा उपाय बताइए कि मुझे शान्ति मिले। नहीं तो मेरी ज़िन्दगी बरबाद हो जावेगी।

आपकी,

—कुसुमकुमारी जैन

[हमारी समझ में तो ये किसी भीषण मानसिक व्याधि के पूर्व-लक्षण हैं। इसलिए इस बहिन को चाहिए कि अपना मनोभाव अपने पति तथा अपने अन्य अभिभावकों पर साफ़-साफ़ प्रगट कर दें और इस व्यर्थ के वहम को अपने दिल से निकाल दें। हारमोनियम बजाने से या दोस्तों के साथ बैठ कर बातचीत करने से ही कोई दुराचारी नहीं हो जाता। इसलिए ऐसे सन्देह को मन में स्थान देना उचित नहीं है। कलकत्ता में तो आम तौर से लोग ११-११॥ बजे सोया करते हैं। इस बहिन के पतिदेव को चाहिए कि पत्नी के दिल से यह वहम निकाल देने की चेष्टा करें और उसे भावी मानसिक रोग से बचाने के लिए, उसे विश्वास दिला दें कि उसका अनुमान निराधार और ग़लत है।

—सम्पादक 'चाँद']

❀ ❀ ❀

एक उपेक्षिता पत्नी

श्रीमान् सम्पादक जी, सादर नमस्ते !

मैं भागलपुर ज़िले के एक प्रसिद्ध गाँव की रहने वाली क्षत्रिय जाति की युवती हूँ। मेरे पति एक बड़े ज़मींदार हैं। स्वभाव के बड़े कोमल, सरल और मृदुभाषी हैं। स्त्री-स्वतन्त्रता, युवती-विवाह और सह-भोज आदि के पक्षपाती हैं। पर न जाने उनकी यह ज्ञान-गरिमा और धर्मबुद्धि घर में आते ही गधे के

सींग की नाईं कहाँ ग़ायब हो जाती है ? क्योंकि न जानें किस कारण वे मुझसे रूठे हुए हैं। सुहाग-रात के सिवा और कभी भी उनके चरणों के दर्शन करने का सौभाग्य मुझे नहीं हुआ। पहली शादी जो मेरे स्वामी ने की है, उनसे सन्तानादि होने की कोई सम्भावना न रहने से ही मैं इस घर को बसाने के लिए बुलाई गई थी। मुझे अपनी सौत के विरुद्ध कोई शिकायत नहीं है, क्योंकि उस दुःखिनी की भी वही दर्दनाक कहानी है, जो मेरी है। मेरे स्वामी के कोई सन्तान नहीं है। इतनी बड़ी विशाल ज़मींदारी का कोई भी उत्तराधिकारी नहीं। मेरे एक विधवा ननद हैं, जो अकारण ही मुझ पर कुपित रहा करती हैं। उनकी दो अविवाहिता लड़कियाँ भी हैं, जिनकी अवस्था कोई १८,२० साल की है। इन दोनों की अवस्था को देख कर भी दुःख होता है। न जाने विधाता ने हम ग़रीबिनों को पूर्व-जन्म के कौन से पाप को भुगतने के लिए यह नरक-कुण्ड तैयार कर रक्खा है।

इन सब अनर्थों की जड़ हैं मेरी मनचली सास, जो अपने सर्वाधिकार को सोलहो आने सुरक्षित रखना चाहती हैं। वे अपने इस अनुचित अधिकार में किसी का भी हस्तक्षेप स्वीकार नहीं करना चाहतीं। स्टेट पर के अपने अनुचित प्रभाव के छिन जाने की आशङ्का से वे ही पतिदेव को मेरे पास नहीं आने देतीं।

नाजायज़ ख़र्च के बोझ से स्टेट ऋणग्रस्त हो रहा है। अगर यही चाल रही तो परमात्मा जाने ९-१० वर्ष में उसका नामोनिशान भी रह जायगा या नहीं। कभी-कभी तो ऐसा हुआ है कि हमारी सास की ओर से हमारे ऊपर नियुक्त किए गए पहरेदार लोग मेरी करुणाजनक स्थिति से दुःखी होकर मेरे पतिदेव को मुझसे मिलने का मौक़ा देने के लिए खिसकने लगे हैं; पर हमारे स्वामी जी ने दृढ़तापूर्वक उन्हें फिर से नियुक्त कर मातृ-भक्ति का अनूठा परिचय दिया है। आए-दिन पर्व-त्यौहार के अवसर पर जब दरिद्र घर की स्त्रियाँ भी अपने पतियों के साथ झोपड़ी की रानी बन कर सुख से निवास करती हैं, तब मैं महल की भिखारिन खारी बूँदों की घूँटें पी-पीकर, करवटें बदल-बदल कर, और कराह-कराह कर रातें काटती हूँ। स्वामी को अपनाने की कितनी चेष्टाएँ कीं; पर सब निष्फल! सब व्यर्थ!! ठीक वैसे ही जैसे पत्थर पर दूब! पहिले तो शासन से—पीछे स्वेच्छा से ही पति जी बाहर एकान्त स्थान में रहने लगे हैं। इधर सुनने में आया है कि × × × नाम के एक चतुर्दश वर्षीय बालक को अपना एकान्त साथी बना कर चौबीस घण्टे न मालूम उसे क्या-क्या उपदेश किया करते हैं। लोग इस एकान्त-सङ्गति का बुरा अर्थ करते हैं और मैं लज्जा तथा ग्लानि से गड़ी जाती हूँ। इन्हीं सब कारणों से मैं आजकल पीहर चली आई हूँ। राज-कर्मचारी आते हैं समाचार देने; रिआया लोग आते हैं दुखड़ा रोने; पर सभी लौटते हैं कपाल ठोंकते—अपने भाग्य को कोसते। सभी को एक ही पेटेण्ट उत्तर मिलता है—"अवकाश नहीं है।"

मेरे पतिदेव आपके पत्र 'चाँद' के ग्राहक हैं। अब इस दुःखितावस्था में मुझे आपके सिवा कोई दूसरी शरण नहीं सूझती। अतएव आप मेरे इस पत्र को 'चाँद' में छाप कर मुझे उचित और नेक सलाह देने की कृपा करेंगे। आप हम दुःखिनियों के सहारा हैं; और क्या कहूँ। मेरा नाम-पता गुप्त रक्खेंगे।

आपकी

—एक दुःखिनी बहिन

पुनश्च :—साथ ही मैं अपने पतिदेव के नाम भी एक पत्र भेजती हूँ। आशा है, आप उसे भी अक्षरशः 'चाँद' में छापने की कृपा करेंगे।

प्राणनाथ!

इन्तज़ारी करते-करते आँखें दुख गईं; मिन्नतें करते-करते ज़बान सूख गई। पर आप न पिघले न पिघले! हे मेरे पत्थर के देवता! अब भी तो पसीजो। इस पापिनी के प्राण कब तक दर्शन के लिए घुटते रहेंगे? आशा-पथ पर आँखें बिछा कर बैठी हूँ। एक बार तो चरणों के दर्शन दीजिए। मेरी यही साध है। यही अरमान है। नहीं तो—

बाद मरने के मेरे बादे-सबा बोलेगी,
जान देनी ही पड़ी, कोई भी चारा न रहा!

—आपकी उपेक्षिता

[विदुषी पत्र-लेखिका ने जो कुछ कहना चाहिए, स्वयं ही कह डाला है। अपने पत्थर के 'प्राणनाथ' के सामने उसने अपना कलेजा निकाल

कर रख दिया है। अगर इतने पर वह पत्थर-हृदय न पिघला तो दोज़ख़ की आग ही उसे पिघला सकेगी। मातृभक्ति कोई बुरी बात नहीं है, परन्तु मूर्खा माता के अनुचित दबाव में पड़ कर या उसकी बेहूदी मनःतुष्टि के फेर में पड़ कर अकारण ही अपनी सुशीला पत्नी की उपेक्षा करना तो घोर मूर्खता है। परन्तु हमारा तो ध्यान इस पत्र की उन अन्तिम पंक्तियों की ओर ही बार-बार जा रहा है, जहाँ पत्र-लेखिका ने अपने पतिदेव के 'एकान्त साथी' का ज़िक्र किया है; और ऐसे मनुष्य के प्रति घृणा का एक भयङ्कर भाव हृदय में उठ रहा है। हम नहीं कह सकते कि ऐसे नरक-कीटों की किन शब्दों में भर्त्सना की जाए। हमारी तो राय है कि यदि यह पतित पति अपनी घृणित आदत से बाज़ न आए तो उसकी पत्नी का कर्तव्य है कि वह आजन्म उस नारकीय का मुँह न देखे।

—सम्पादक 'चाँद']

एक अत्याचार-पीड़िता

पटना ज़िला से एक बहिन ने लिखा है :—

प्रिय सम्पादक जी, सप्रेम बन्दे !

आज हिन्दू-महिलाओं की दशा इतनी करुणापूर्ण है कि उन्हें देख कलेजा मुँह को आता है। मेरा सङ्केत उन्हीं महिलाओं की ओर है, जो आजकल क्रूर समाज की बलि-वेदी पर जीवनोत्सर्ग करने को विवश की जा रही हैं, अन्यान्य रूप से सताई जा रही हैं एवं उनकी सारी हसरतों का ख़ून किया जा रहा है। आज एक ऐसी ही दुःखित महिला की दुःख-गाथा आपके सामने रखती हूँ। आशा ही नहीं, विश्वास है कि आप उसकी जीवन-रक्षा का कोई मार्ग प्रदर्शित करेंगे।

पटना ज़िले के एक ब्राह्मण की कन्या का विवाह उन्हीं की तरह सम्भ्रान्त कुल में हुआ, जिनकी मर्यादा पूरे बीघे भर की है। कन्या के श्वसुर महोदय क़ाफ़ी सुशिक्षित हैं, रोज़ ही दो-तीन घण्टे पूजा-पाठ में व्यतीत करते हैं और अपने आगे संसार को तृणवत् मानते हैं। जिस युवक के साथ उस बालिका का विवाह हुआ है, वह तो महान मूर्ख, लम्पट और उद्दण्ड है। माता-पिता एवं ग्रामवासियों से झगड़ा करना उसका मुख्य काम है। व्यभिचार की कुटेव तो उसे विवाह के पूर्व ही से है। दया उसे छू तक नहीं गई है। सत्य से वह कोसों दूर रहता है। झूठ बोलना उसका नित्य-कर्म है।

इन्हीं कुटेवों के विरुद्ध यदि वह लड़की कभी कुछ कहती है, कुछ समझाने की चेष्टा करती है, तो उसे डण्डों की मार खानी पड़ती है और गन्दी गालियाँ सुननी पड़ती हैं। ऐसे भी कभी-कभी अकारण ही उसकी पीठ-पूजा होती ही रहती है। चार-चार पाँच-पाँच दिनों तक लगातार बेचारी अपने पति के भय से भयभीत होकर घर का द्वार बन्द करके छिपी रहती है। यदि कभी सास-ससुर बहू को बचाने की चेष्टा करते हैं, तो बस लड़का उनकी आबरू लेने पर आमादा हो जाता है और उनकी सात पीढ़ियों का श्राद्ध करने लगता है। कई बार वह बालिका मौत के मुँह से बच चुकी है। एक दिन दस बजे रात में वह उस बेचारी अबला पर छुरा चलाने को तैयार हो गया। बेचारी भाग कर अपने जेठ के घर में चली गई। दोष उसका केवल इतना ही था कि वह अपने पति की आज्ञा के अनुसार अपनी ननद को मारने नहीं गई। सुबह होने पर यह ख़बर गाँव में फैली तो लोगों ने उन्हें बहुत-कुछ बुरा-भला कहा। इस पर आप रूठ गए और कहने लगे कि मैं 'साधू' हो जाऊँगा या आत्म-हत्या कर लूँगा। इससे भी हारे तो खाना-पीना छोड़ कर रूठ बैठे। गाँव वालों ने तो उन्हें चुपचाप छोड़ दिया, किन्तु "कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति" इस वाक्य के अनुसार माता अपने सुयोग्य पुत्र को मनाने गईं, तो पुत्र ने ऐसा तौल कर उनके सर पर पत्थर मारा कि सर फूट गया और उससे ख़ून की धारा बह चली।

जब यह शुभ-सम्वाद उनके पूज्यपाद पिता जी को मिला तो आपने बहू को मायके भेज दिया। इसके बाद एक दिन आप ससुराल पहुँचे और सास-ससुर को ऐसा लथाड़ा कि बेचारे ससुर जी उसी शोक में परलोक सिधार गए! अस्तु—

अभी वह बालिका अपने पिता के घर कुछ दिनों तक भी नहीं रहने पाई थी कि उसके श्वसुर महोदय ने

बिदा करा ले जाने के लिए धूम मचाई। आख़िरश दिन नियत हुआ। बिदाई के लिए बालिका के श्वसुर जी आए हुए थे। कुछ समझदारों ने समझाया कि जब तक आपके पुत्र की हालत सुधर न जाए, तब तक के लिए रुख़सती मुलतवी रखिए। इस पर आप क्रुद्ध हो उठे और समझाने वालों पर घृणित आक्षेप करते हुए झुँझला कर बोले—"आप लोग लड़के के अवगुणों के फेर में पड़ कर लड़की को बिदा नहीं करते। परन्तु सज्जन कभी ब्याही लड़की को घर में नहीं रखते। आप लोग ब्याही लड़की को घर में रख कर अपने कुल को कलङ्कित करना चाहते हैं।" पण्डित जी के इस विकट तर्क ने सबको निरुत्तर कर दिया। लाचार रुख़सती कर देनी पड़ी।

सम्पादक जी, इसी अवस्था में वह बालिका पड़ी हुई है; और अपनी वर्तमान अवस्था से ऊब कर अपने जीवन का अन्त कर देना चाहती है। आप दूरदर्शी हैं। क्या आप कोई युक्ति बतलाने की कृपा करेंगे, जिसमें ऐसे दुष्ट पति से उस बेचारी निरीह बालिका का पिण्ड छूटे। यदि आप उचित समझें तो उसे अपने पत्र में स्थान दें। बस!

आपकी,

× × ×

[यह पत्र हमें उक्त अत्याचार-पीड़िता बालिका की बड़ी बहिन ने लिखा है और वे पढ़ी-लिखी तथा समझदार मालूम पड़ती हैं। फलतः वह स्वयं ही सोच सकती हैं कि हिन्दू-समाज के इस मर्ज़ की कोई दवा नहीं है। क्योंकि यहाँ का विवाह-बन्धन अछेद्य है। ऐसी दशा में यही हो सकता है कि बालिका किसी तरह—अगर सम्भव हो तो अदालत और क़ानून की मदद से—उस नरक-कुण्ड से निकाल ली जाए। लड़के के 'पण्डित' पिता ने यह जानते हुए भी कि लड़का नालायक़ है और अकारण ही बेचारी बालिका को सताया करता है, उसे जबरदस्ती रुख़सत करा कर नितान्त मूर्खता की है। उनका कर्तव्य था कि वे बहू को कुछ काल तक उसके माता-पिता के पास छोड़ देते और अपने पुत्र को सुधारने की चेष्टा करते। परन्तु यहाँ तो सारे कुएँ में ही भाँग पड़ी है। जैसे लायक़ पतिदेव हैं, वैसे ही 'पण्डित' उनके पितृ-देव हैं। समाज का कोई धनीधोरी नहीं, ऐसे नालायक़ों से कोई पूछने वाला नहीं कि अगर सज्जन लोग ब्याही कन्या को घर में नहीं रखते तो क्या तुम्हारे और तुम्हारे पुत्र जैसे क़साई को सौंप देते हैं? हमारा तो दृढ़ मत है कि ये 'पण्डित' उपाधिधारी जीव ही इस सारे अनर्थ की जड़ हैं। इनका अस्तित्व जब तक विलुप्त न होगा, तब तक इस तरह के अत्याचार भी जारी रहेंगे।

—सम्पादक 'चाँद']

एक विवाहार्थिनी बाल-विधवा

महाशय,

गत मार्च के 'चाँद' में उपर्युक्त शीर्षक से मेरी चिट्ठी छाप कर आपने जो कृपा की है, उसके लिए मैं आपका आभार मानती हूँ।

इस सम्बन्ध में भारत के सभी प्रान्तों से मेरे पास बहुत से पत्र आये हैं। परन्तु मैं तो उड़ीसा प्रान्त की रहने वाली हूँ। हिन्दी बहुत थोड़ी जानती हूँ। कितने ही पत्र तो बहुत घसीट कर लिखे गये हैं, उन्हें तो मैं पढ़ भी नहीं सकती। इसलिए पत्र-प्रेरकों से प्रार्थना है कि मुझे अङ्गरेज़ी में पत्र लिखें। कुछ लोगों ने अपनी योग्यता का वर्णन स्वयं ही किया है। परन्तु विवाह तो जीवन-मरण का प्रश्न है, इसलिए ऐसे सज्जनों से मेरी प्रार्थना है कि अपना परिचय किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति द्वारा लिखा कर भेजें। लड़की के पास कोई चित्र नहीं है। यहाँ देहात में फ़ोटो खींचने का कोई साधन भी नहीं है। परन्तु जो उसे देखना चाहते हैं, वे सहर्ष मेरे घर आकर देख सकते हैं। इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

निवेदिका,

सरला देवी

पोस्ट जगतसिंहपुर

ज़िला कटक

'अस्तबल की बला बन्दर के सर'

कानपुर से एक सज्जन लिखते हैं :—

प्रिय सम्पादक जी,

यहाँ एक ब्राह्मण सज्जन हैं, जो अपनी आर्थिक दुरवस्था के कारण अपनी बहिन की शादी किसी ऐसे उदार विचार वाले सद्वंशजात ब्राह्मण युवक से करना चाहते हैं, जो सुधारक प्रवृत्ति का हो और तिलक-दहेज़ न ले। परन्तु वे जहाँ कहीं जाते हैं, उनके पीछे-पीछे यह ख़बर भी पहुँच जाती है कि उनके ससुर ने एक नाइन से विवाह कर लिया था और उनकी स्त्री का जन्म उसी नाइन के पेट से हुआ है। बस, लोग हिचिक जाते हैं और उनकी बहिन की शादी नहीं होती। परन्तु यह बात हमारी समझ में नहीं आती कि लड़की के भाई के ससुर की स्त्री यदि नाइन है तो इसमें बेचारी लड़की का क्या अपराध है? भाई के ससुर ने नाइन से ब्याह कर लिया तो इससे उस लड़की के ब्राह्मणत्व में कैसे अन्तर पड़ गया? वह ख़ुद तो ब्राह्मण की कन्या है और कुमारी है। फिर क्या कारण है कि ब्राह्मण-समाज ऐसी कन्या को 'अजाती' समझता है?

मैं स्वयं अविवाहित हूँ और तमाम अर्थहीन सामाजिक रूढ़ियों और दक़ियानूसी विचारों का कट्टर विरोधी हूँ, और तिलक-दहेज़, ठहरौनी और लेन-देन की प्रथा से घृणा करता हूँ। इसलिए मैं उपर्युक्त सज्जन की सुशीला बहिन के साथ बिना तिलक-दहेज़ लिए ही विवाह करने को राज़ी था और कतिपय विशेष कारणों से अन्त में इन्कार भी कर चुका था। परन्तु जब मुझे मालूम हुआ कि बेचारी निरपराध कन्या अपने भाई के ससुर के अपराध के कारण समाज द्वारा ठुकराई जा रही है, तो मेरी अन्तरात्मा मुझे विवश कर रही है कि मैं उससे विवाह कर लूँ। परन्तु ऐसा करने से मैं समाज द्वारा वहिष्कृत किया जाऊँगा; मेरे सगे-सम्बन्धी और नातेदार मुझे 'अजाती' कर देंगे। मुझे इसकी परवाह नहीं। मैं सहर्ष इस विरोध का सामना करने को तैयार हूँ। क्योंकि मैं जानता हूँ कि जब तक देश के नवयुवक साहसपूर्वक पुरानी रूढ़ियों को पददलित करने को तैयार न होंगे, तब तक इस अन्धे समाज की आँखें न खुलेंगी।

इसलिए मैं कानपुर के समस्त शिक्षित नवयुवकों से प्रार्थना करता हूँ कि वे इस कार्य में मेरी सहायता करें। वे मेरे विवाह में उत्साहपूर्वक शामिल हों और पुराने विचार वालों के विरोध और वहिष्कार का मुक़ाबला करने में मेरी भरपूर सहायता करें। साथ ही मैं समस्त हिन्दू-समाज से इस कार्य में सहायता दान करने की प्रार्थना करता हूँ और सम्पादक महोदयों से निवेदन है कि इस सम्बन्ध में अपनी निष्पक्ष सम्मति देकर मुझे आप्यायित करें। आपसे भी मेरी प्रार्थना है कि अपनी उचित सम्मति के साथ इस पत्र को 'चाँद' में प्रकाशित कर दें।

आपका,
रामाधीन शुक्ल
कन्हैयालाल रामगोपाल का फाटक
पटकापुर, कानपुर

[श्री० शुक्ल जी ने उपर्युक्त पत्र हमें अङ्गरेज़ी में लिखा है, जिसका आशय हमने ऊपर दे दिया है। हम उनके उदार विचारों और इस सत्साहस के लिए उन्हें बधाई देते हैं। वे अपने आदर्श कृत्य द्वारा एक निर्दोष कन्या का उद्धार करेंगे और समाज के सामने एक नवीन आदर्श रक्खेंगे। हमें विश्वास है कि केवल कानपुर का ही नहीं, वरन् सारे भारतवर्ष का युवक-समाज उनके साथ होगा। अगर मुट्ठी भर नगण्य, दक़ियानूसी विचार वाले रूढ़ि-रोग-ग्रस्त उनका वहिष्कार करेंगे, तो एक विशाल जन-समुदाय उनका स्वागत करेगा। कानपुर के उत्साही नवयुवकों से हमारा अनुरोध है कि शुक्ल जी का विवाह ख़ूब धूमधाम से हो। ऐसी शानदार बारात निकले कि रूढ़िग्रस्तों की छाती दहल जाय।

आशा है, हमारा निवेदन ख़ाली न जायगा।

—सं० 'चाँद']

द्विवेदी मेला में श्री० जी० पी० श्रीवास्तव

['चाँद' के विशेष प्रतिनिधि द्वारा]

आचार्य द्विवेदी जी की सत्तरवीं वर्षगाँठ के उपलक्ष में प्रयाग का द्विवेदी मेला माननीय मालवीय जी द्वारा प्रारम्भ होकर बड़ी धूमधाम से, ४ मई से ७ मई तक हुआ। यह साहित्यिक मेला अपने ढङ्ग का एक ही हुआ है। हिन्दी के प्रायः सभी प्रमुख साहित्यिकों ने इसमें भाग लिया था। महामहोपाध्याय डॉक्टर गङ्गानाथ झा के सभापतित्व में आचार्य द्विवेदी जी का अभिनन्दन किया गया। इसके उपरान्त कवि-सम्मेलन, वाद-विवाद सम्मेलन, व्याख्यान तथा निबन्ध पाठ, काव्य परिहास सम्मेलन, व्यायाम सम्मेलन और कवि-दरबार बड़ी सफलतापूर्वक हुए।

'काव्य परिहास सम्मेलन' जो 'चाँद' के सुपरिचित श्री० जी० पी० श्रीवास्तव के सभापतित्व में हुआ, वह अत्यन्त ही रोचक हुआ। सभा में काफ़ी भीड़ थी। इस अवसर पर श्रीवास्तव जी ने हास्य-रस पर जो भाषण दिया था, वह हिन्दी के लिए बिलकुल ही नई चीज़ है। लेखों की तरह श्रीवास्तव जी के भाषण भी बड़े ही मज़ेदार होते हैं। गत नवम्बर मास में पटना कॉलेज के हास्य-रस-सम्मेलन में सभापति के आसन से आपने जो साहित्य पर भाषण दिया था, वह भी हिन्दी के लिए अपूर्व वस्तु था। "अमृत बाज़ार पत्रिका" आदि विदेशी भाषा के पत्रों ने भी उसकी प्रशंसा की थी। 'पत्रिका' ने लिखा था :—

"The speech can rightly claim to have created a new era in Hindi literature."

अर्थात्—"यह भाषण सचमुच हिन्दी-साहित्य में एक नया युग पैदा करने का दावेदार हो सकता है।" 'चाँद' के पाठक, जिन्होंने श्रीवास्तव जी का 'लतखोरीलाल' और 'दिल-जले की आह' पढ़ा है, उनकी चुलबुली लेखनी के चमत्कार से परिचित हैं। अस्तु, द्विवेदी मेला में जो आपने हास्य-रस पर सुन्दर भाषण दिया था, उसका सारांश हम नीचे देते हैं। इस भाषण द्वारा आपने "हास्य-रस" पर विशेष प्रकाश डाला है :—

काव्य परिहास सम्मेलन में उपस्थित 'देवियों तथा भलेमानुस गण' के प्रति, अपने को सम्मेलन का सभापति निर्वाचित करने के लिए, अपनी विनोदपूर्ण भाषा में कृतज्ञता प्रगट करने के पश्चात् वक्ता ने साहित्य में हास्य-रस की उपयोगिता का प्रतिपादन करते हुए कहा—"हास्य को, गम्भीरतापूर्ण पण्डिताई बघारने वाले, चाहे कितना ही भ्रष्ट, अश्लील या ओछा बतावें, मगर सच पूछिए तो बुराई-रूपी पापों के लिए इससे बढ़ कर कोई दूसरा गङ्गाजल नहीं है।" आगे चल कर आपने कहा—"मगर हाँ, इसका वश नहीं चलता तो बस जानवरों पर, क्योंकि इसकी बारीकी समझने के लिए ईश्वर ने उन बेचारों की खोपड़ी में न बुद्धि दी है और न हँसने के लिए उनके थूथन में कोई कमानी।"

इसके बाद आपने हास्य-रस की प्रशंसा करते हुए इसके अद्भुत प्रभाव पर विशद प्रकाश डाला और बताया कि तपेदिक़ के रोगियों को हास्य-रस की पुस्तकें दी जाती हैं। हास्य-रस के यूरोपियन लेखकों का उल्लेख करते हुए आपने बताया कि इस अमोघ अस्त्र द्वारा उन्होंने कैसे-कैसे सामाजिक सुधार कर डाले। आपका यह कथन सर्वथा ठीक है कि "सुधार के नाते नहीं, बल्कि निज वर्ण-विचार से भी इसका स्थान साहित्य में सबसे ऊँचा है।" काव्य के नव-रसों में आपने हास्य को सर्वश्रेष्ठ स्थान प्रदान करते हुए, कला की दृष्टि से उसका विवेचन करते हुए, उसकी कठिनाइयों का वर्णन किया और बताया कि हास्य-सेवियों की संख्या अन्य रस-सेवियों की अपेक्षा बहुत ही कम होती है। अर्थात् साहित्य में शृङ्गार, करुण, वीर तथा अन्य रसों की जितनी भरमार है, उतनी हास्य-रस की नहीं।

वास्तव में हास्य-रस का लिखना बड़ा ही कठिन कार्य है। इस रस के लेखक को 'संसार तथा मानवी स्वभाव का' सम्यक ज्ञान होना चाहिए। उसकी दृष्टि गिद्ध सी नहीं, वरन् कबूतर सी तीक्ष्ण होनी चाहिए। साथ ही हास्य-रस के लेखक की भाषा में भी गहरी पैठ होनी चाहिए। ज्ञान तथा भाषा की पूर्ण जानकारी के साथ ही उसे अन्य रसों का भी ज्ञाता होना चाहिए। इसके उदाहरण में आपने शेक्सपियर के मर्चेण्ट ऑफ़ वेनिस के अदालत वाले दृश्य का ज़िक्र किया, "जहाँ लेखक ने 'शाइलाक' की कठोरता द्वारा करुण-रस को सीमा पर पहुँचा कर तब हास्य-रस की झाँकी दिखलाई है।××× उसी तरह गोस्वामी तुलसीदास जी ने परशुराम और लक्ष्मण के सम्वाद में रौद्ररस का तमाशा दिखा कर हास्य की छींटें दी हैं।

इसके आगे हास्य के मुख्य रहस्यों का विस्तृत विवेचन करके वक्ता ने उसे चार भागों में विभक्त किया है और बताया है कि "ये चार रहस्य हास्य के मानों वैसे ही चार स्वर हैं, जैसे बाजे के सात सरगम। इन चारों रहस्यों के आपके दिए हुए नाम ये हैं—(१) पतनपन, (२) बेतुकापन, (३) कठपुतलीपन, और (४) आशा तथा अवसर की प्रतिकूलता।"

इसके बाद ही प्राचीन संस्कृत साहित्य के आधार पर हास्य-रस के भेदों और उपभेदों का विस्तृत वर्णन करते हुए आपने बताया है—

"हमारे यहाँ इसका भेद-विचार, जो स्मित, हसित, विहसित, उपहसित, अपहसित और अतिहसित में किया गया है, वह मुँह की बनावट पर निर्भर होने के कारण, साहित्य की तो नहीं, हाँ महफ़िल के अलबत्ता काम की चीज़ है। इसलिए इसका भेद बाहरी लक्षणों पर नहीं, बल्कि भीतरी गुणों पर स्वभाव और प्रभाव दोनों को देखते हुए करना चाहिए। स्वभाव के सम्बन्ध में इतना ही कहना काफ़ी है कि इसके चार दर्जे हैं—(१) कोमल (२) उदासीन (३) कठोर और (४) निर्दयी। इसलिए कभी यह गुदगुदाता है, कभी सुई चुभोता है और कभी एकदम बरछा ही भोंक देता है। इनको ध्यान में रख कर हास्य के भेद जानने के लिए जब आप हँसने वाले और हँसाने वाले दोनों पर विचार करेंगे, तब सबसे पहिले इसके दो भेद मिलेंगे—१ अज्ञात हास्य, २ ज्ञात हास्य।

अज्ञात हास्य वह है, जिसमें हँसाने वाला अपनी मूर्खताओं या बेतुकेपन से बिलकुल अज्ञात रहता है और वह उन्हें अनजाने प्रगट करके लोगों को हँसाता है।××× इसे अङ्गरेज़ी में 'Ludicrous' कहते हैं। इसमें हँसने वाले का भाव हास्य-पात्र के प्रति उदासीन रहता है। और हँसाने वाला उलटे हँसने वाले ही को बेवक़ूफ़ समझ कर दिल में बिगड़ उठता है। जितना ही बिगड़ता है उतनी ही हँसी बढ़ती है।

ज्ञात हास्य वह है, जिसमें हँसाने वाला जान-बूझ कर हँसाता है। इसके दो अन्तर्भेद हैं—(क) परिहास (ख) उपहास।

परिहास

परिहास वह है, जिसमें हँसाने वाला अपने दोष पर स्वयं भी हँसता है और अपने साथ दूसरों को भी हँसाता है। इसे अङ्गरेज़ी में 'Humour' कहते हैं। इसमें हास्य-पात्र कहने को मूर्ख भी होता है, पर वैसा मूर्ख नहीं जैसा अज्ञात हास्य का पात्र, जो अपने दोष को न जाने। इसमें प्रायः उन दोषों की हँसी उड़ाई जाती है, जिनको धर्म, समाज या सभ्यता ने कुछ न कुछ सबके गले मढ़ रक्खा है। या परिस्थिति इतनी भ्रमपूर्ण होती है, जिसमें पड़ कर हास्य-पात्र ही नहीं, बल्कि हर कोई हास्य-पात्र बन सकता है। इसलिए इसमें हँसी एक तरह से अपने ही ऊपर होती है और इसी कारण इसका स्वभाव कोमल और प्रभाव गुदगुदी की तरह होता है। इसका हास्य-पात्र चिड़चिड़ा नहीं, बल्कि हँसमुख होता है। हास्य का यही एक अङ्ग है, जो नम्रता और मधुरता से कुछ सींचा हुआ रहता है।

मगर अज्ञात हास्य और परिहास बारीकियों में जाकर अक्सर ऐसे गुथ जाते हैं कि दोनों के बीच कोई सरहदी लाइन नहीं खींची जा सकती।

उपहास

उपहास वह है, जिसमें हँसाने वाला अपने पर नहीं वल्कि दूसरे के दोषों पर आक्षेप करके हँसी पैदा करता है। इसके तीन उपभेद हैं—(अ) विनोद (आ) व्यङ्ग (इ) कटाक्ष।

विनोद

विनोद का अखाड़ा वार्तालाप है और वह अपना चमत्कार विशेष कर जवाब में दिखाता है। इसीलिए इसे

'हाज़िर जवाबी' भी कहते हैं। मगर इससे इसका गुण प्रगट नहीं होता। क्योंकि इसमें शब्दों का चुनाव इतना उत्तम होता है, जिसके प्रायः दो आशय निकलते हैं। प्रत्यक्ष और गुप्त। प्रत्यक्ष से यह सवाल का जवाब देता है और गुप्त से यह आक्षेप करने वाले के दिल में ऐसी गहरी चुटकी लेता है कि वह निरुत्तर होकर झेंप जाता है।

व्यङ्ग

व्यङ्ग की ख़ूबसूरत छटा यद्यपि विनोद से बहुत कुछ मिलती-जुलती है, तथापि अपने यहाँ के विनोद और व्यङ्ग के विचार से मेरी राय में व्यङ्ग को विनोद से पृथक् ही स्थान देना उचित है। मगर हास्य में वही व्यङ्ग स्थान पाने का अधिकारी है, जिसका उद्देश्य सुधार है। वरना हास्य-क्षेत्र को व्यङ्ग-वर्षा बरसाने वाली मन्थरा देवियाँ ऐसा छाप बैठेंगी कि बेचारे हास्य-लेखक सभी मुँह ताकते रह जाएँगे। ख़ैर, यही कुशल है कि इनके सौभाग्य से हास्य स्वयं ही सास जी के व्यङ्गों को दूर ही से प्रणाम करता है। इसका पता तुलसीदास जी के दो पदों से चल जाएगा—

"कोउ नृप होइ हमें का हानी।
चेरी छाँड़ि का होउब रानी।"

यह व्यङ्ग का फड़कता हुआ नमूना होने पर भी हास्य महोदय पास नहीं फटकते। क्यों? उनके बैठने के लिए इसमें सुधार का अड्डा ही नहीं है। अब दूसरा नमूना लीजिए—

"कहेउ लखन, मुनि सुयश तुम्हारा।
तुमहिं अछत को बरनै पारा।"

देखिए, इसमें परशुराम की घमण्ड-रूपी बुराई को दूर करने का उद्देश्य देख कर हास्य साहब कैसे कमर कसके आ धमके हैं। व्यङ्ग में जब यह गुण होता है तभी हास्य उसे अपने गले लगाता है।

कटाक्ष

और जब यह सामने से वार करता है, जैसे—

"कोटि कुलिस सम बचन तुम्हारा।
वृथा धरहु धनु बान कुठारा॥"

तब यह कटाक्ष यानी 'Satire' का निर्दयी रूप धारण करके कलेजे में एकदम बरछा ही भोंक देता है।

व्यङ्ग और कटाक्ष दोनों का मुख्य अखाड़ा कथन है। चाहे वह बातचीत के रूप में हो या निबन्ध के।

उपहास

मगर कटाक्ष के एक भाई और हैं, जो साधारणतया अपने बाप ही के नाम से पुकारे जाते हैं यानी उपहास अर्थात् नक़ल, मज़हक़ा या 'Caricature' यह अपनी करामात के चित्रण में 'कार्टून' की भाँति बुराइयों को बहुत बढ़ा-चढ़ा कर दिखाते हैं। मगर इस सफ़ाई के साथ, जिसमें असलियत के पहचानने में धोखा न हो।

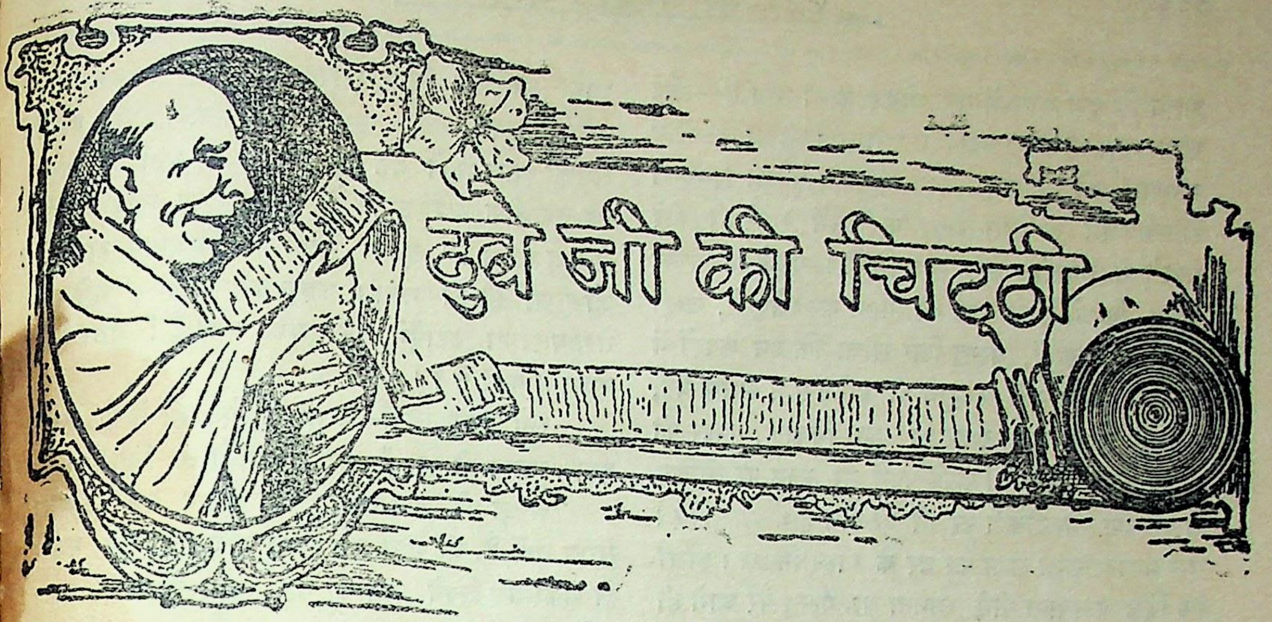
इस प्रकार हास्य-रस की वंशावली (भेद-उपभेद) का वर्णन करके वक्ता ने बताया कि—"यद्यपि हमारे यहाँ इसका भेद-विधान आज तक इस तरह नहीं हुआ है, तथापि इसके भेदों की नामावली से यह पता ज़रूर चलता है कि अब हास्य इतना शक्तिशाली हो गया है कि इसने अपना बँटवारा स्वयं करके अपने भेदों के भाव इन नामों में कूट-कूट कर भर दिए हैं।"

इसके आगे हिन्दी-साहित्य में हास्य-रस के अभाव का ज़िक्र करते हुए आपने बताया कि यह हिन्दी के लिए एक नई चीज़ है, और इसे अपनाने में "हिन्दुस्तानी दिमाग़ भड़क रहा है!" संस्कृत साहित्य में हास्य-रस के अभाव का उल्लेख करते हुए आपने कहा कि गद्य और छापेख़ाने के अभाव के कारण ही ऐसा हुआ। तथापि गोस्वामी तुलसीदास ने लाज रख ली और इन्हीं की कृपा से हास्य-रस का स्थान नवरसों में रह गया, नहीं तो हमारे साहित्यिक उसे वहाँ से भी ढकेल देते।

इसके बाद आपने भारतेन्दु, 'आनन्द' के सम्पादक स्वर्गीय पण्डित शिवनाथ शर्मा और 'मतवाला' आदि का ज़िक्र करके इस बात पर सन्तोष प्रकट किया कि अब हिन्दी वाले इस ओर ध्यान देने लगे हैं।

हास्य पर हिन्दी-साहित्यिकों द्वारा अश्लीलता का दोषारोपण करने का ज़िक्र करके आपने बताया कि "अश्लीलता या वासना के नाम पर इसकी रोक-टोक करना साहित्य में ज्ञान और तत्व का द्वार बन्द करना है। मनोविज्ञान का गला घोंटना है।"

इसके बाद अपनी परिहासपूर्ण भाषा में अपनी त्रुटियों का उल्लेख कर, आपने अपने 'साहित्य का सपूत' नामक प्रहसन से कुछ मनोरञ्जक उद्धरण देकर अपना ललित भाषण समाप्त किया।



अजी सम्पादक जी महाराज,
जय राम जी की!

हरिजनों के उद्धार का कार्य आजकल बड़े ज़ोरों से हो रहा है। जिधर देखिए उधर ही लोग हरिजनों के उद्धार के विरह में व्याकुल दिखाई पड़ते हैं। हरिजनों के उद्धार के लिए बेचारों की जीभें घिसी जा रही हैं। कभी-कभी हरिजनों के घरों में झाड़ू लगाते-लगाते हाथ थके जा रहे हैं, परन्तु फिर भी उद्धार की झलक नहीं दिखाई पड़ती? बड़े आश्चर्य की बात है! भगवान के दर्शन मात्र से मोक्ष मिल जाती है, महात्माओं के दर्शनों से पापों की डायरी के बहुत से पृष्ठ ग़ायब हो जाते हैं, परन्तु बड़े-बड़े देशभक्तों की झाड़ू से हरिजनों का अछूतपन नहीं साफ़ होता, यह संसार का आठवाँ (अथवा नवाँ?) आश्चर्य नहीं तो फिर क्या है? महात्मा जी के आदेशानुसार इच्छा न होते हुए भी लोगों ने हरिजनों के लिए क्या नहीं किया? दो-चार दिन मन्दिर खुलवाने में नष्ट किए, कभी-कभी घण्टे दो घण्टे लेक्चरबाज़ी में गँवाए। अख़बारों के दो-चार कॉलम काले किए। जिस दिन स्वास्थ्य ठीक न होने से स्नान करना वर्जित था, उस दिन हरिजनों के घरों में झाड़ू स्पर्श करने के कारण स्नान भी करना पड़ा। इतना परिश्रम, इतना त्याग करने पर भी हरिजन बेचारे जहाँ के तहाँ ही हैं—इञ्च भर भी आगे नहीं बढ़ते। यह हरिजनों की बदक़िस्मती नहीं तो क्या है? यदि इतना प्रयत्न किसी दूसरे "जनों" के साथ किया जाता तो वे स्वर्ग पहुँच जाते। इसमें सन्देह नहीं कि इस समय हरिजनों के भाग्य का सितारा ऊँचा बहुत है। यदि ऐसा न होता तो बड़े-बड़े पण्डित, शास्त्री, लाला, बाबू इत्यादि झाड़ू लेकर उनके द्वार पर कभी न पहुँचते। उचित तो यह था कि केवल इतने ही से हरिजनों का घोर उद्धार हो जाता, परन्तु जान पड़ता है कि सितारा स्वयम् तो उँचाई पर पहुँच गया, परन्तु उनकी दुम अभी नीचे ही लटकी हुई है। क्योंकि हरिजनों के भाग्य का सितारा दुमदार सितारा है। इसीलिए वह कभी उदय होता है और थोड़े ही दिनों रह कर फिर ग़ायब हो जाता है। सम्पादक जी, एक दिन अपने राम को भी हरिजनों के उद्धार की सनक सवार हुई। सोचा कि कदाचित् ईश्वर ने यह यज्ञ अपने राम के ही भाग्य में रक्खा हो। बस यह विचार आते ही एक ब्रेण्ड न्यू झाड़ू का ऑर्डर दे ही तो डाला। साथ में एक बढ़िया सी टोकरी भी मँगवा ली। दूसरे दिन सवेरे ही उद्धार-कार्य करना था—अतएव रात भर नींद न आई। ऐसा मालूम होता था कि सवेरे कोई बड़ा भारी क़िला फ़तह करना है—भगवान सब प्रकार कुशल रक्खे। ख़ैर साहब, जैसे ही जैसे सवेरा होने लगा वैसे ही वैसे दिल कमबख़्त मदारी के बन्दर की भाँति कलाबाज़ियाँ करने लगा। यदि जीवन-डोर से बँधा न होता तो सीने से निकल कर भगवान जाने किस भाग्यवान के पास चला जाता। ख़ैर! सवेरा होते ही इच्छा हुई कि अच्छी तरह नहा-धोकर ठाठ से चला जाय। परन्तु फिर ख़याल

आया कि इस काम में नहा-धोकर जाना मना है—लौट कर नहाना चाहिए। उस दिन ज़रा सर्दी भी थी, इसलिए भगवान को धन्यवाद दिया कि कम से कम ज़िन्दगी में एक काम तो ऐसा मिला कि जिसमें सवेरे ही सवेरे नहाने की तकलीफ़ से नजात मिली। पहले तो विचार आया कि जो कपड़े रात को पहन कर सोए थे, उन्हीं कपड़ों से चल दें, परन्तु फिर सोचा कि उन कपड़ों में देख कर लोग कहीं सचमुच ही 'हरिजन' न समझ बैठें, इसलिए धुला हुआ खद्दर का कुर्ता निकाल, खद्दर की सफ़ेद टोपी निकाली। कपड़े पहन कर झाड़ू पर तौलिए से पॉलिश की, टोकरी पर भी दो-तीन हाथ मार दिए। इस प्रकार साज सजा कर घर के बाहर निकले। हालाँकि दिल कमबख़्त पीछे भागता था, परन्तु पैर आगे ही बढ़ रहे थे। अपने राम को झाड़ू-टोकरी लिए हुए देख कर कुछ लोगों ने प्रशंसात्मक दृष्टि से देखा। बस फिर क्या था, सुरूर आगया। आगे बढ़े तो दो-चार बदतमीज़ मुँह फेर कर मुस्कराए और आवाज़ें कसने लगे। यह देख कर सुरूर क्रोध में बदल गया। मगर कर ही क्या सकते थे? एक ठण्डी साँस लेकर सोचा कि अच्छे कामों में ऐसी मुसीबतें पड़ती ही हैं। कल जब अख़बार में मोटे टाइप में हमारे इस कार्य का वर्णन छपेगा, तब इन लोगों को पता चलेगा कि हम क्या चीज़ हैं—अभी ख़ूब हँस लेने दो। इसी प्रकार डूबते-उतराते हुए हरिजनों के मुहल्ले में पहुँचे और एक हरिजन के द्वार पर झाड़ू लगाना शुरू किया। हरिजन अपनी ड्योढ़ी में बैठा हुक़्क़ा पी रहा था। वह अपने राम को देखते ही बोला—"इस साले बहुरूपिए ने तो अच्छा पिण्ड पकड़ा है। आज भङ्गी बन कर आया है।" इसके पश्चात् अपने राम से बोला—"भइया बने तो, मगर बनना न आया। भङ्गी इतने सफ़ेद कपड़े पहन कर झाड़ू नहीं लगाते।" इतना सुनना था कि अपने राम को क्रोध आ गया। एक डाँट बता कर उससे कहा—"क्यों बे, आदमी नहीं पहचानता। हम तो तेरे उद्धार के लिए निकले और तू बहुरूपिया बनाता है। बहुरूपियों की सूरत ऐसी ही होती है?"

भङ्गी सिटपिटा कर बोला—माफ़ करना महाराज, मुझे धोका हो गया। तीन-चार दिन से एक बहुरूपिया आता है। एक दिन मेनुसिपलेटी का जमादार बन कर आया था, एक दिन इन्स्पटर बना था, पर हमने हर दफ़ा पहचान लिया। हमारा वही ख़्याल रहा। हमने समझा आज भङ्गी बन कर आया। पर महाराज, आप यह तकलीफ़ क्यों उठाते हैं—मेरे द्वार पर झाड़ू लगाने से क्या होगा?" इतना सुनना था कि अपने राम को जोश आ ही तो गया। कड़क कर बोले—"अबे हम तेरा पाख़ाना उठाएँगे, तूने समझा क्या है? बता तेरा पाख़ाना कहाँ है?"

उसने उत्तर दिया—अभी तो पेट ही में है अन्नदाता, हुक़्क़ा पी रहा हूँ, ज़रा ढीला हो तो निकले।

"अच्छा तो ज़रा जल्दी कर, हमारे पास इतना समय नहीं है, जो व्यर्थ नष्ट किया जाय।" इतना कहते ही अकस्मात् अपने राम को यह ध्यान आया कि हरिजनों से बड़ा नम्र व्यवहार करना चाहिए। यह विचार आते ही अपने राम का क्रोध काफ़ूर हो गया। अतएव उससे बोले—भइया हरिजन जी, हम आज तुम्हारी सेवा करने के लिए निकले हैं। नित्य तुम हमारी सेवा करते हो, आज हम तुम्हारी सेवा करेंगे।"

"अरे महाराज, क्यों काँटों में घसीटते हो!"

"काँटे नहीं, सच बात है।"

"तो महाराज, मेरी सेवा क्या करोगे? मैं तो अभी टट्टियाँ साफ़ करने जाऊँगा।"

"हम तेरी टट्टी साफ़ करेंगे।"

"मैं तो बमपुलिस में जाता हूँ।"

"तो आज बमपुलिस न जाओ—यहीं पास ही कहीं चले जाओ, जिससे हमें तुम्हारी टट्टी उठाने का पुण्य प्राप्त हो जाय।"

"अच्छा तो महाराज, जब आप सेवा करने ही पर उतारू हो तो एक काम करो।"

"बताओ, जल्दी बताओ। आज हम तुम्हारे लिए सब कुछ करने को तैयार हैं।"

"जितने घर मैं कमाता हूँ, उतने सब घर आज आप कमा लीजिए, इससे मुझे एक दिन की छुट्टी मिल जायगी।" इतना सुनते ही अपने राम के कान खड़े हो गए। कमबख़्त ने कैसी कठिन फ़रमायश की है। कुछ साहस करके पूछा—"भला कितने घर होंगे?"

"बस एक बाइस-तेइस घर हैं।" बाइस-तेइस घर! बाइस-तेइस घरों का पाख़ाना ढोना पड़ेगा।

भगवान जाने एक-एक घर में कितने आदमी होंगे। इतने आदमियों का पाख़ाना! और जब कि सबका रङ्ग और सबकी बू अलग-अलग होगी—तोबा! ख़ुदा महफ़ूज़ रक्खे इस बला से। आज न जाने किस कमबख़्त का मुँह देख कर उठे थे। सोचा था कि दो-चार हरिजनों के दरवाज़े पर झाड़ू लगाकर—अधिक से अधिक एकाध का पाख़ाना उठाकर—उद्धार-कार्य समाप्त कर डालेंगे। परन्तु यहाँ तो छः सात घण्टे का, और निहायत ही गन्दा प्रोग्राम बना जा रहा है। अच्छे फँसे चिड़्ढा गुलख़ैरू! अब किसी तरह इससे छुटकारा मिले तो ख़ैर है, वरना अपने राम की मौत तो आज ही हो जायगी—हरिजनों का उद्धार हो या न हो। यह सोच कर उससे कहा—"भाई, अभी तो हमें जितना हुक्म है उतना ही कर सकते हैं।"

"हुकुम किसका महराज?"—भङ्गी ने पूछा।

"हमारे नेताओं का, महात्मा जी का। अब आज हम उनको चिट्ठी लिख कर पूछेंगे। यदि उन्होंने आज्ञा दे दी तो अगले दफ़ा हम तुम्हारी सब टट्टियाँ कमा डालेंगे। यह समझ लो कि जब हमने तुम्हारे उद्धार पर कमर बाँधी है, तो करके ही छोड़ेंगे, मानेंगे नहीं।"

"ऐसे पूछ-पूछ के काम करोगे तब तो महराज हमारा उद्धार हो चुका।"

"भाई, बात यह है कि उद्धार तो जैसे होवेगा ही, इसमें तो तुम रत्ती भर भी शङ्का न करो। रही पूछने की बात, सो पूछना तो ज़रूरी है। मान लो हमने आज तुम्हारे कहने से सब टट्टियाँ कमा डालीं और उन्हें ख़बर लग गई तो वह बहुत ही ख़फ़ा हो जायँगे कि बिना हमारी इजाज़त के ऐसा क्यों किया। इसलिए पूछना तो हर हालत में पड़ेगा।"

भङ्गी एक क्षण तक चुप रह कर बोला—अच्छा महराज, टट्टियाँ न कमाओ तो न सही, एक काम करो।

अपने राम तो भगवान से यही चाहते थे कि किसी तरह पिण्ड छूटे। अतएव झट बोल उठे—बोलो, बोलो! इस समय जो चाहो सो माँग लो।

"आप अपने भङ्गी को क्या देते हैं?"

"चार आना महीना!"

"बस! कितने आदमी हैं आप?"

"यही कोई साढ़े तीन आदमी।"

"मेहमान वहमान आते रहते होंगे?"

"हाँ, साल में नौ महीने दो-एक मुफ़्तख़ोरे डटे ही रहते हैं।"

"तो आप एक काम करें।"

"एक नहीं दो; कह चलो।"

"आप अपने भङ्गी को आज से एक रुपया महीना दिया कीजिए।"

इतना सुनते ही अपने राम के पैरों तले की मिट्टी खिसक गई। उसकी बातचीत के ढङ्ग से अपने राम ने यह अनुमान लगाया था कि वह यह कहेगा कि—"अपना भङ्गी छुड़ा कर मुझे लगा लीजिए—मैं तीन आने महीने में ही काम कर दिया करूँगा।" सो जनाब आशा एक आना घटने की थी यहाँ उलटे बारह आने बढ़ गए। इससे तो अच्छा यह है कि इसकी सब टट्टियाँ ही कमा दी जायँ। एक दिन का काया-कष्ट है, परन्तु बारह आने तो बचेंगे।

अपने राम यह सोच ही रहे थे कि हरिजन महोदय बोले—कहिए महराज, क्या सोचने लगे?

"मैं यह सोच रहा हूँ कि यदि मैंने ऐसा कर दिया तो उसका नतीजा कुछ ख़राब तो न होगा; क्योंकि अभी ऐसा करने का हुक्म नहीं मिला है। कहीं नेता लोग बुरा न मान जायँ कि दुबे जी कमबख़्त भाव बिगाड़े दे रहे हैं। दूसरी बात यह है कि घर का सब लेन-देन और हिसाब किताब लल्ला की महतारी के हाथ में है—अपने राम उसमें कभी दख़ल नहीं देते। हाँ, सिफ़ारिश कर देंगे। यदि भङ्गी का भाग्य लड़ जायगा तो काम हो जायगा। अपने राम तो केवल तुम लोगों का उद्धार कर सकते हैं। उस उद्धार में फ़िलहाल इतनी बातें हैं। तुम नहा-धोकर और कपड़े बदल कर आओ तो तुम्हें छाती से चिपका सकते हैं। तुम्हारे द्वार पर झाड़ू लगा सकते हैं। एकाध आदमी का पाख़ाना उठा सकते हैं। तुम्हारे उद्धार के लिए कोई संस्था स्थापित हो तो उसके मन्त्री या सभापति बन सकते हैं। तुम लोगों के लिए आन्दोलन कर सकते हैं, क्योंकि इसमें कोई जोखिम नहीं है, न जेल जाने का डर न लाठी-चार्ज का खटका। व्याख्यान दे सकते हैं, लेख लिख सकते हैं। इतने काम करने पर भी तुम्हारा उद्धार न

हो, तो इसमें हमारा दोष नहीं, तुम्हारे भाग्य का दोष है—समझे !"

भङ्गी आँखें टेढ़ी करके बोला—तो महराज, ऐसे उद्धार से हम बाज आए। आप छाती से लगा लेंगे तो मुझे क्या मिल जायगा ? आप इतने खूबसूरत भी तो नहीं हैं, जो आपकी छाती से लग कर मुझे कुछ सुख मिले। एकाध आदमी की टट्टी उठाने से मेरा कौन सा उद्धार हो जायगा ? दुनिया भर के काम करेंगे, परन्तु जो काम करने का है वह नहीं करेंगे। हमारी मजूरी बढ़ा दीजिए—बस हमारा उद्धार अपने आप हो जायगा—आपको तकलीफ़ उठाने की जरूरत नहीं। उस दिन एक औंधी खोपड़ी वाले बोले कि—"आज से तुम्हें जूठन नहीं मिलेगी। हरिजनों को जूठन नहीं देना चाहिए।" अब उनसे कोई पूछे कि जूठन मिलेगा नहीं, मजूरी बढ़ेगी नहीं तो फिर हम खायँगे किसे ? अच्छा उद्धार किया ! इससे तो एक तरफ से सबको संखिया ही न दे दो, पूरा उद्धार हो जाय।

अपने राम बोले—जूठन नहीं मिलेगा, परन्तु शुद्ध भोजन तो मिलेगा।

"अजी बस रहने भी दीजिए—शुद्ध भोजन कौन भकुवा देता है। जूठन में तो हमें घर भर का खाना मिल जाता है। तीज-त्योहार, ब्याह-शादी में दस-दस, बारह-बारह दिनों का खाना खाली जूठन में मिल जाता है, उतना कौन दे सकता है ? शुद्ध भोजन में आपने एक रोटी दे दी तो उससे हमारा क्या भला हो सकता है ? तीन-तीन दिन का बासी खाना तो आप चट कर जाते हैं, हमें शुद्ध भोजन आप कहाँ से देंगे, आप ही बताइए, आप मेरे खाने भर को नित्य शुद्ध भोजन देंगे ?"

अपने राम ने सोचा—यदि छटाँक आध पाव खाता होता तो मञ्जूर भी कर लेते, पर यह कमबख़्त सूरत से सेर भर का आसामी दिखाई पड़ता है, इसलिए मामला गड़बड़ है। उससे कहा—भई, देने को तो दे सकते हैं, पर पकाने की मुश्किल है—इतना पकावे कौन ?

"अच्छा आप खाली सीधा दे दिया करना, पका हम लिया करेंगे।"—भङ्गी ने कहा।

अपने राम ने सोचा—कमबख़्त कितना हाज़िर-जवाब है। एक सेकेण्ड के भीतर ही जवाब दे देता है।

अपने राम बोले—"अच्छा अब इस विषय पर फिर किसी दिन बात करेंगे, आज देर काफ़ी हो गई है।"

यह कह कर अपने राम वहाँ से खिसके। जान बची लाखों पाए। सम्पादक जी, अछूतोद्धार का काम अपने राम ने बहुत सरल समझा था, पर वह कमबख़्त भी टेढ़ी खीर ही निकला।

भवदीय,

—विजयानन्द (दुबे जी)

तुम और मैं

[श्री० कपिलदेव नारायण सिंह "सुहृद"]

तुम कोमल विकच कुसुम हो,
मैं रसिक मधुप मतवाला !
पीकर उन्मत्त बना हूँ,
तव रूप-सुधा का प्याला !!
तुम उषा काल के रवि हो,
मैं जलज सुमन हूँ सुन्दर !
तेरे पुनीत दर्शन से,
खिल उठता सदा विहँस कर !!

तुम आँखों की मदिरा हो,
तुम ज्वाला प्रेम-अनल की !
तुम लहर कल्पना की हो,
कविवर के अन्तस्तल की !!
तुम चन्द्र-चारु हो नभ के,
मैं ललित रूप रत्नाकर !
लख मुझे मुदित हो उठना,
पागल लहरें फैला कर !!



सङ्घर्ष—अनुवादक, श्री० कृष्णवल्लभ द्विवेदी, बी० ए०। आकार मझोला, पृष्ठ-संख्या ३२७, मूल्य २), सजिल्द २॥)

'सङ्घर्ष' सुप्रसिद्ध रूसी औपन्यासिक तुर्गनेव के एक विख्यात उपन्यास का हिन्दी अनुवाद है। काउण्ट टॉलस्टॉय की तरह तुर्गनेव भी विश्वविख्यात कलाविद हो गया है। यह उपन्यास रूस के इतिहास-प्रसिद्ध क्रान्तिकारी 'निहिलिस्ट' दल का जन्मदाता कहा जाता है। लेखक ने इसमें आधुनिक प्रगति के साथ प्राचीन मनोवृत्ति के सङ्घर्ष का ज्वलन्त चित्र अङ्कित किया है। अनुवाद की भाषा सरल और बामुहावरा है।

बन्दी—मूल लेखक, रूस के विख्यात औपन्यासिक यूजने चिरकोब; अनुवादक, उपर्युक्त श्री० कृष्णवल्लभ द्विवेदी, बी० ए०; आकार मझोला; पृष्ठ-संख्या १०२, मूल्य ॥)

यह भी रूस का एक मशहूर क्रान्तिकारी उपन्यास है। लेखक ने विद्रोही युवक-हृदय में धधकते विद्रोहानल का ख़ासा ख़ाका खींचा है। बड़ी ही रोचक पुस्तक है और हिन्दी अनुवाद भी अच्छा हुआ है।

उपर्युक्त दोनों पुस्तकों के मिलने का पता—आदर्श ग्रन्थमाला, दारागञ्ज, प्रयाग है।

श्रीतत्वोपनिषद् वा मूल दर्शन—ले० तत्त्ववेत्ता डॉक्टर रामचन्द्र मुनि; प्रकाशक, तत्त्वविज्ञान आश्रम आनन्दकुटी, गजरौला, ज़िला मुरादाबाद। आकार बड़ा, पृष्ठ-संख्या ५२२, मूल्य सर्वसाधारण के लिए १५), ग़रीबों के लिए ११) और बड़े आदमियों के लिए २१) है।

लेखक ने स्वयं अपनी पुस्तक का वर्णन इस प्रकार किया है—"चार काण्ड के चौसठ अङ्क में, पाँच भूत एक लीङ्ग, इस दर्शन में चमक रहे हैं, एक मालिक दो धीङ्ग।" लेखक के कथनानुसार यह पुस्तक सर्व भूत, भविष्यत, वर्त्तमान काल के सब आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक रोगों का सम्पूर्ण गौणिक, कर्मिक और स्वाभाविक चिकित्सा का अपूर्व, अनुपम, अद्वितीय बहुमूल्य कर्मयोग शास्त्र है।

अस्तु, इस बड़ी सी पोथी में लेखक ने सब से पहले ईश्वर, प्रकृति और जीव की समस्याओं पर विचार किया है। इसके बाद चिकित्सा का सार दिया है, जिसमें रोगों के हिन्दी और अङ्गरेज़ी नाम, निदान तथा उपचार बताए गए हैं। प्रत्येक रोग के निवारणार्थ प्राकृतिक उपाय बताए गए हैं। इसका आधार 'ट्रेमोपैथिक' चिकित्सा-प्रणाली है, जिसका आविष्कार अभी हाल में ही हुआ है। इसे वर्ण (रङ्ग) चिकित्सा भी कहते हैं। जिसमें रङ्गीन पानी, रङ्गीन तेल और रङ्गीन रोशनी का प्रयोग किया जाता है। औषधि के स्थान पर पृथ्वी, आकाश, वायु, अग्नि और जल, इन पञ्चतत्वों का प्रयोग किया जाता है। पुस्तक में इन तत्वों के प्रयोग की विधि भी बताई गई है। पुस्तक में भाषा सम्बन्धी भूलों की भरमार है। छपाई भी अच्छी नहीं हुई है। परन्तु लेखन-शैली रोचक और मौलिक है। जो हो, इस विषय से प्रेम रखने वालों को एक बार यह पुस्तक पढ़नी चाहिए।

नारी-जीवन

[कविवर आनन्दिप्रसाद श्रीवास्तव]

पत्र-संख्या ३५

[पत्र वृद्ध-पत्नी की ओर से बाल-विधवा को]

बहिन,

तुम्हारा पत्र प्राप्त कर
मुझको हुआ परम सन्तोष,
कभी क्षम्य है नहीं जगत में
लोलुप कामी जन का दोष।

उस नौकर ने किया तुम्हारे
सँग होता जो दुर्व्यवहार,
उसका फल जो होता, उससे
देता तुम्हें दोष संसार,

सम्मति थी या नहीं तुम्हारी
इस पर देता कभी न ध्यान,
हो जाता बस वहीं तुम्हारी
सब पवित्रता का अवसान।

पूछा है तुमने जब होगा
सम-बल नर-नारी जन में,
होगा तब सम्बन्ध परस्पर
कैसा उनके जीवन में,

जीवन कैसा होगा उनका
किन्तु कठिन इसका अनुमान,
होगा इन प्रश्नों का उत्तर
बस नितान्त कल्पना-प्रधान।

तिस पर भी मैं बतलाऊँगी
सोचा जो मैं करती हूँ,
क्योंकि सोच कर उन बातों को
सोच तनिक निज हरती हूँ।

करें कदाचित मेरी बातें
तनिक तुम्हारा मन-रञ्जन,
स्त्री-समाज के दुख के कारण
जो दुख है, उसका भञ्जन।

नर-समाज, नारी-समाज में
जो कि भीतरी है अनबन,
जिसे जानता गुप्त रीति से
आज उन्हीं दोनों का मन,

नहीं रहेगा तब वह बिलकुल,
यह सम्प्रति अधिकार-विवाद
भी न रहेगा, तब तो होगा
दूर परस्पर-जन्य-विषाद।

अलग-अलग अधिकार रहेगा
उनका, अलग-अलग व्यापार,
एक दूसरे से तब उनका
होगा अलग-अलग संसार।

हो जावेगा दूर उस समय
उनका सतत-मिलन अवसाद,
रह जावेंगे उनमें तब वे
नहीं जो कि है अभी प्रमाद।

अधिक अलग रहने के कारण
दोनों स्वस्थ अधिक होंगे,
जैसे अब हैं, नहीं उस तरह
वे अस्वस्थ अधिक होंगे।

एक तरह से विरह रहेगा,
होगी अतः मिलन की चाह,
बहुत अधिक उस समय करेंगे
एक दूसरे की परवाह।

उनमें होगा ब्याह परस्पर,
पर घर अलग-अलग होंगे,
साथ रहेंगे कम, बहुधा
पत्नीवर अलग-अलग होंगे।

सन्तानों के पालन-पोषण
का ले आधा-आधा भार,
यत्न-सहित वे बना सकेंगे
अपना-अपना सुख-संसार।

बहुत स्वस्थ होगा तब उनका
जीवन उन्नतिशील सदा,
नहीं रहेगा अवलम्बन तब,
नहीं दासता की विपदा।

दोनों स्पर्धा-सहित बढ़ेंगे
चरमोन्नति के शुभ पथ पर,
पृथ्वी उनकी अधिकृत होगी,
अधिकृत यह विस्तृत अम्बर।

बहिन, सुनाती हूँ फिर तुमको
अब अपना आगे का हाल,
सुन कर मेरी बात, युवक की
हुईं क्रोध से आँखें लाल।

मैं भी क्रोधित हुई, कहा यह,
"लज्जा नहीं तुम्हें आती,
इस प्रकार की बुरी भावना
तुमको किस प्रकार भाती?

बहिन बना कर मुझे कर रहे
अब मेरे सँग यह व्यवहार!"
सुन कर ऐसी बात हो गये
उसमें कुछ जागृत सुविचार।

बोला वह, "कह रही ठीक हो,
क्षमा करो मुझको इस बार,
लज्जा है मुझको कृति से जो
प्रकट किया ऐसा कुविचार।"

पत्र-संख्या ३६

[पत्र बाल-विधवा की ओर से वृद्ध-पत्नी को]

बहिन,

मिला शुभ पत्र, उसे
पढ़कर मुझको आनन्द हुआ,
जीवन-सञ्चित-दुख-प्रभाव मन
का मेरा कुछ मन्द हुआ।

लख कर वह सम्बन्ध, और वह,
जीवन-झलक परम सुन्दर
अति प्रसन्न मैं हुई मुग्ध
रह गया हृदय मेरा क्षण भर!

चाहे यह कल्पना मात्र हो,
पर है भव्य चित्र यह एक,
जिसे देख कर हो जावेंगे
मुग्ध मनुज मतिमान अनेक।

ईश्वर करे, बहिन, बन जावे
सच तव-कल्पित यह संसार,
यह होगा उन्नतिमय, बलमय
और चतुरता का आगार।

पर है कुछ सन्देह, दुर्दशा
हो न उस समय शिशुजन की,
पालन-भार बटेगा दो में,
निर्भर गति पर दो मन की।

कन्या-शिक्षा का प्रबन्ध तब
कैसा होगा, और विकाश,
उनके जीवन का होवेगा
कैसे-कैसे ज्ञान-प्रकाश,

डाला जावेगा उनके मन
पर, लिखना अब की यह बात,
लिखना कैसे कन्याओं के
तब व्यतीत होंगे दिन-रात।

बहिन, सुनाती हूँ मैं तुमको
फिर अपना आगे का हाल,
उठी जिस समय, सहम गई मैं
लख कर वह कुदृश्य विकराल।

माँगी मैंने क्षमा नाथ से,
और वहाँ से भगी तुरन्त,
मन में सोच रही थी, होवे
क्या जाने कब दुख का अन्त।

छुरी छिपा ली वस्त्रों में चल
पड़ी तुरत बस्ती की ओर,
दिखता था मेरी विपत्ति के
सागर का उस काल न छोर।

असहाया थी, पता न था यह—
जाती थी किस ओर कहाँ,
सोचा, चलो वहीं पर हमको
जगदीश्वर ले जायँ जहाँ।

दिन चढ़ आया था, मैं पहुँची
बस्ती में सब लोग वहाँ,
अपने-अपने कामों में थे
लगे उन्हें विश्राम कहाँ ?

मैंने सोचा, कहीं नौकरी
करूँ, कहीं दासी बन कर,
कुछ तो जीवन काल बिताऊँ,
ढूँढ़ कोई अच्छा सा घर।

बहुत मिले जो थे कर देते
मुझ पर निज कटाक्ष का पात,
बहुत मिले जो मुझे देखकर
लगा रहे थे मुझ पर घात।

बहुत मिले जो मुझे देख कर
खड़े राह में थे हँसते,
बहुत मिले जो रूप-जाल में
जान पड़ रहे थे फँसते,

मिली न मुझको विमल दृष्टि ही,
बदन-सुलक्षित विमल विचार,
अधिक दोष का, कम गुणकारी
सम्मिश्रण है यह संसार।

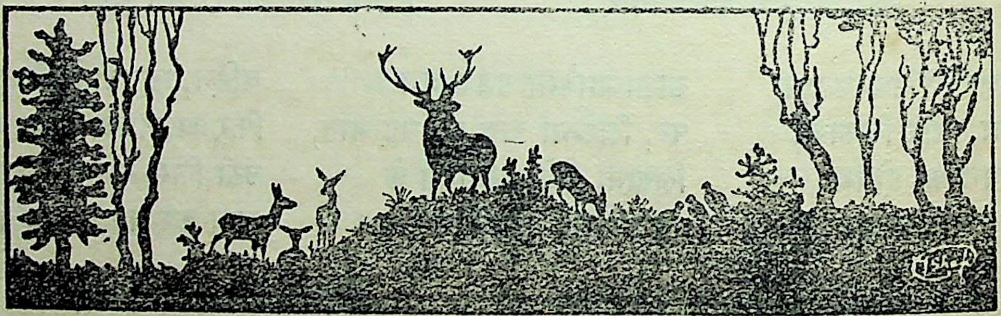
दासी एक निकलती देखी
मैंने एक भले घर से,
उसे रोक कर बोली बस मैं
उससे मृदु-विनीत स्वर से,

"छोटी मोटा एक नौकरी,
बहिन, दिला दो मुझे कहीं,
बड़ी दया होगी तो मुझ पर,
भूलूँगी उपकार नहीं।"

पहले उसने प्रखर दृष्टि से
भली भाँति मुझको देखा,
उसके भव्य वदन-मण्डल पर
उदित दया की थी रेखा।

उसने कहा—"चली आओ तुम
बात कहो घर के भीतर,
चली आ रही अभी कहाँ से
तुम, है कहाँ तुम्हारा घर ?"

भीतर चली गई मैं, उसको
हाल न सच्चा बतलाया,
पर ऐसा बतलाया जिससे
उसने बहुत तोष पाया।



श्रीजगद्गुरु का फ़तवा

[हिज़ होलीनेस श्री० वृकोदरानन्द जी विरूपाक्ष]

यद्यपि भगवान् विष्णुमूर्ति को अछूतों के दृष्टि-स्पर्श से बाल-बाल बचा लेने वाले कालीकट के स्वनाम धन्य ज़मोरिन दादा की यश-गाथा आजकल पट पड़ गई है, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उन्होंने जो अमर-कीर्ति अर्जित कर ली है, वह ईश्वर के 'गार्जियन' मात्र के लिए श्लाघनीय है।

❀

कालीकट के ये ज़मोरिन हमारे अलवरेन्द्र बहादुर की तरह 'राजर्षि' नहीं हैं, काश्मीर के महाराज 'ए' की तरह यूरोप में नाम और यश भी नहीं प्राप्त किया है और न महाराज पटियाला की तरह उनकी गुण-गरिमा रूपी विलुप्त रत्न के उद्धारार्थ कभी कोई कमीशन ही बैठा है।

❀

मगर चूँकि उन्होंने भगवान आनन्द-कन्द की जाति की रक्षा कर ली है, उन्हें पतित होने से—अछूतों के भी देवता होने से बचा लिया है और इसके लिए उन्होंने महात्मा गाँधी और श्री० केलप्पन के प्राणों की भी परवाह न की, इसलिए ऐसा सुयश और ऐसी सुख्याति प्राप्त कर ली कि चाहे इस धराधाम से सनातन धर्म का नाम विलुप्त हो जाय, परन्तु आपके नाम का बाल भी बाँका नहीं हो सकता।

❀

न हर्र लगी न फिटकिरी और रङ्ग चोखा उतरा—न कोई क़िला फ़तह करना पड़ा और न कोई विजय-स्तम्भ बनवाना पड़ा, अथच 'विजय बड़ी' के साथ ही 'कीरति अति कमनीय' आकर पैरों पर लोट गई! यह अपूर्व लाभ देखकर यदि ईश्वर बाबा के अन्यान्य अभिभावकों के मुँह में पानी भर आवे और वे भी दादा ज़मोरिन के पदाङ्क का अनुसरण आरम्भ कर दें तो इसमें सन्देह ही क्या है?

❀

फलतः, जनाब आली, ज़मोरिन का यह सौभाग्य देखकर पुरी के 'उड़िया राजा' के मुँह में भी पानी भर आया हो तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। एक बार कह देने भर की ज़रूरत थी कि पुरी के मन्दिर में अछूत नहीं जाने पाएँगे। बस, चारों ओर धूम मच जाएगी। भारतवर्ष का बच्चा-बच्चा जान जाएगा कि पुरी में जगन्नाथ ही नहीं, वरन् उनके भी 'नाथ' कोई राजा साहब भी रहते हैं।

❀

बात वही हुई साहब, एक दिन एकाएक उड़िया राजा ने घोषणा कर दी कि जगन्नाथ जी के मन्दिर में हरिजन नहीं जाते! पण्डों ने कहा—"धर्मावतार, आपनी कण कउचि? अछूत तो एई मन्दिरे अनादि-काल होइते जाउचि।" पण्डों ने अपने पुराने बही-खाते टटोले। हज़ारों डोमों, चमारों, पासियों और धोबियों के नाम—मय उनकी वल्दियत, क़ौमियत और सकूनत के—पेश करके साबित किया कि इस मन्दिर में कभी भी अछूतों के लिए रोक-टोक नहीं रही। परन्तु राजा साहब इस 'ज़मोरिनी ख्याति' के सुवर्ण सुयोग को हाथ से जाने देना नहीं चाहते! बाप रे बाप! ऐसा मौक़ा फिर मिलेगा कहाँ?

❀

पुरी के प्रायः एक दर्जन पण्डों ने अपने हस्ताक्षर से एक विज्ञापन निकाल कर बताया है कि यहाँ के जगन्नाथ बाबा किसी के बाप की मौरूसी नहीं हैं। ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल तक उनके दर्शन कर सकते हैं। उनका प्रसाद कुत्ते द्वारा उच्छिष्ट होने पर भी अशुद्ध नहीं होता। परन्तु राजा साहब इन बातों को मानने को तैयार नहीं हैं। क्योंकि अभी तक न तो अख़बारों में आपकी धर्मनिष्ठा की पूरी तारीफ़ ही छपी और न चित्र ही छपा। ऐसी दशा में बेचारे सच्ची बात मानें तो कैसे मानें?

❀

देखिए न, पुरी के शङ्कराचार्य ने बात की बात में बाज़ी मार ली। काशी में हरिजनोद्धार के विरुद्ध एक जुलूस निकलवा दिया और कन्याकुमारी से लेकर हिमालय तक नाम हो गया। लोगों को नए सिरे से मालूम हो गया कि पुरी में श्रीमच्छङ्कराचार्य भी रहते हैं। भई, बात तो यह है कि इस विज्ञापनी युग में कुछ करने से ही नाम होता है, चुप रहने से नहीं।

❀

जो हो, अपने राम पुरी के राजा साहब की इस दूरदर्शिता के क़ायल हैं। उड़ीसा के समाचार-पत्र इस मामले में विशेष दिलचस्पी ले रहे हैं। पण्डों में भी चहल-पहल मच गई है और अन्य अख़बारों में भी ईश्वर के इन नए बॉडीगार्ड की प्रशंसा छप रही है। ज़मोरिन के "विष्णु-मूर्त्ति" की अपेक्षा इनके लूले जगन्नाथ की ख्याति भी अधिक है। इसलिए आश्चर्य नहीं कि पुरीपति नामवरी हासिल करने में ज़मोरिन को भी पछाड़ डालें।

परन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि पुरी के इन नए ईश्वर-रक्षक महोदय की चर्चा देश में महीनों से चल रही है, परन्तु अभी तक न तो वर्णाश्रम स्वराज सङ्घ ने ही राजा साहब को 'राजर्षि' की पदवी प्रदान की और न भारत-धर्म-महामण्डल की ओर से ही आप 'धर्मधीर महावीर' बनाए गए! पदवी-प्रदान कार्य में सनातनधर्म की ओर से ऐसी सुस्ती एक अघटन घटना है।

❀

अरे भई, सुना है, अलवर के धर्म-प्राण इस बुढ़ौती में दादा सनातनधर्म को अनाथ करके 'लण्डन-वन' में गौराङ्ग-पद-पद्म पराग प्राप्त करने जा रहे हैं। इसलिए 'राजर्षि' की गद्दी पर बतौर क़ायम मुक़ाम के अगर पुरीपति ही बिठा दिए जाएँ तो क्या हरज़ है! यद्यपि आपके धर्म-कार्यों की तालिका अलवरेन्द्र बहादुर की भाँति लम्बी-चौड़ी नहीं है, परन्तु कम से कम स्थान तो ख़ाली नहीं रहना चाहिए।

❀

"घर रोवैं कतरनी पान, तमोलिन गौने चली!"— परन्तु मथुरा की एक पानवाली मेहतरानी 'कतरनी-पान' के साथ ही, बहुत से हिन्दू जाति के उद्धारक पण्डों को भी रुला कर रफ़ूचक्कर हो गई!

❀

ख़ुलासा यों समझिए कि मथुरा के कोई उच्च कुलोद्भव सज्जन एक ख़ूबसूरत मेहतरानी को कहीं से भगा लाए थे और उसे एक पान की दूकान करा दी थी। बेचारे का घर भी आबाद था और पानवाली बीबी की बदौलत अण्टी भी गरम रहती थी।

❀

शाम को भङ्ग-बूटी छानने के बाद आबेरवाँ के कुर्ते और बतासफेनी दुपट्टे से लैस पण्डा बाबुओं की टोली नवागता तमोलिन सुन्दरी की दूकान पर खड़ी हो जाती थी—जैसे नव-प्रस्फुटित मल्लिका के आस-पास भौरों की भीड़! हँसी, मज़ाक़, चुहलबाज़ी, तत्पश्चात् पान के बीड़े लेते-लेते अँगुली-स्पर्श!—वल्लाह जब यह अनिर्वचनीय सुखद स्मृति यजमान प्रदत्त घृतपक्क से पली तोंद में कुलाँचे भरने लगती है तो कलेजा मुँह को आ जाता है।

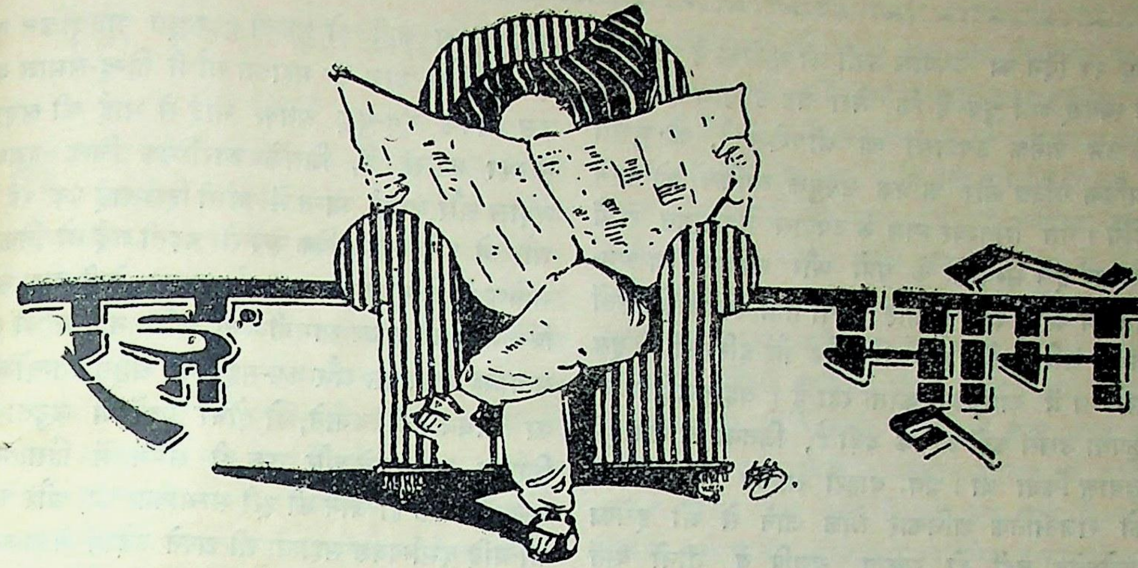
❀

हाँ, तो एक दिन एक मेहतर आया और कहने लगा, 'यह तमोलिन नहीं, मेरी बीबी अर्थात् मेहतरानी है!' बस, उसे लेकर चलता बना! बेचारे मथुरा के पण्डे कलेजा थाम कर रह गए और अब यार लोग जले पर नमक छिड़क रहे हैं, फ़बतियाँ कसी जा रही हैं। हाय हाय!

न ख़ुदा ही मिला न विसाले सनम,
न इधर के हुए न उधर के हुए!

❀

किसी ने ठीक अन्दाज़ा लगाया है कि 'हाथी के दाँत खाने के और होते हैं और दिखाने के और।' सनातनधर्म की इन 'मथुरिया' हाथियों की भी यही दशा है। वे मेहतरानी के पान क्या, चाहें तो उसका जूठन चाट लें, परन्तु मन्दिरों में किसी मेहतर को नहीं जाने देंगे। आख़िर इसी कट्टरता ने ही तो धर्म को अब तक बचा रक्खा है।



[सम्पादकीय]

महात्मा गाँधी का उपवास

यह बात प्रत्येक व्यक्ति को, चाहे वह महात्मा गाँधी का समर्थक हो अथवा विरोधी, स्वीकार करनी ही पड़ेगी कि उनका प्रत्येक कार्य अनूठा होता है और उसके द्वारा सर्वसाधारण का ध्यान उनके अभिलषित उद्देश्य की तरफ़ जितना शीघ्र और जितना अधिक आकर्षित हो जाता है, उतना और किसी उपाय से हो सकना असम्भव है। महात्मा जी की यह एक बहुत बड़ी ख़ूबी है कि वे भारतवासियों की मानसिक स्थिति को पूर्णतया समझते हैं और उसे प्रभावित करने का सच्चा और वास्तविक मार्ग उनको ज्ञात है। यही कारण है कि जहाँ अन्य राजनीतिक और सामाजिक कार्यकर्ता वर्षों तक गला फाड़-फाड़ कर चिल्लाने और पश्चिमी तरीक़ों के अनुसार घोर आन्दोलन करके भी साधारण जनता की निद्रा अथवा उदासीनता जो भङ्ग नहीं कर पाते, वहाँ महात्मा जी एक ही दिन में उसके भीतर वह विद्युत-तरङ्ग प्रवाहित कर देते हैं कि सारा देश फ़ौरन चौकन्ना हो उठता है और प्रत्येक व्यक्ति सोचने लगता है कि यह क्या हो गया और उसका क्या कर्तव्य है? महात्मा जी की इस अपूर्व सर्वतोमुखी प्रतिभा का ही यह फल है कि उन्होंने कुछ ही वर्षों में भारत के राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक सभी क्षेत्रों में ऐसी हलचल तथा जागृति उत्पन्न कर दी है, जिसका उनके आविर्भाव के पूर्व कहीं चिह्न भी दिखलाई नहीं देता था। महात्मा जी का पिछला उपवास भी इस विषय में एक प्रत्यक्ष उदाहरण है। कितने ही लोगों ने उनकी इस कार्य-प्रणाली को नापसन्द किया, कितनों ही ने इस प्रकार भूखों रह कर प्राण देने की सम्भावना को पापपूर्ण बतलाया, कितने ही इसे एक प्रकार की अनुचित धमकी बतलाते थे, पर उन सबको महात्मा जी के त्याग तथा बलिदान के सम्मुख सर झुकाना पड़ा और यह भी स्वीकार करना पड़ा कि इस उपाय से अछूत आन्दोलन को जितना बल प्राप्त हुआ, वह किसी अन्य उपाय से सम्भव न था। वास्तव में अछूत-प्रथा ऐसी सहज अथवा दिखावटी चीज़ नहीं हैं, जिसका नाश अथवा सुधार मामूली चेष्टा द्वारा किया जा सके। यह हज़ारों वर्षों से इस देश में प्रचलित है और हिन्दुओं के हाड़-मांस में घुस चुकी है। अति प्राचीन काल से बड़े-बड़े सुधारक और धर्म-प्रचारक इसमें परिवर्तन करने अथवा इसे मिटा देने की चेष्टा करते आए हैं, पर प्रायः उनको असफलता ही हुई है और हिन्दू-समाज ने उनके अनुयायियों को एक पृथक् सम्प्रदाय के रूप में सीमित कर दिया है। ऐसा महान कार्य किसी महान चेष्टा द्वारा ही सिद्ध हो सकता है और महात्मा गाँधी का

यह २१ दिन का उपवास उसी की भूमिका है। क्योंकि वे स्वयम् बता चुके हैं कि "मेरा यह उपवास इस तरह के उन अनेक उपवासों का श्रीगणेश है, जो मुझसे अधिक पवित्र और अधिक उपयुक्त व्यक्तियों को करने होंगे। गत सितम्बर मास के उपवास के पश्चात् से मैं बराबर इस सम्बन्ध के पत्रों और साहित्य का अनुशीलन करता रहा हूँ और पुरुषों तथा स्त्रियों, शिक्षितों तथा अशिक्षितों, हरिजनों और ग़ैर हरिजनों से इस सम्बन्ध में बातचीत करता रहा हूँ। यह बुराई अथवा कुप्रथा उससे कहीं अधिक बड़ी है, जितना कि मैंने इसे ख़याल किया था। धन, बाहरी सङ्गठन और हरिजनों को राजनीतिक अधिकार मिल जाने से भी इसका मूलोच्छेद नहीं हो सकता, यद्यपि ये तीनों बातें आवश्यक हैं। इनको प्रभावशाली बनाने के लिए उनके साथ ही आन्तरिक सम्पत्ति, आन्तरिक सङ्गठन और आन्तरिक शक्ति दूसरे शब्दों में आत्म-शुद्धि की आवश्यकता है। यह केवल उपवास और प्रार्थना द्वारा प्राप्त हो सकती है।" यह भी असम्भव नहीं है कि इस कार्य की सिद्धि के लिए इसके साधकों को और भी अधिक बलिदान करना पड़े। क्योंकि पुराने विचारों के अनेक विवेकहीन व्यक्ति इस सम्बन्ध में जैसी जड़ता और कट्टरता का परिचय दे रहे हैं और अधिकांश भारतवासियों के हृदयों में अपरिवर्तनशीलता अथवा स्थिति-पालकता का भाव जिस प्रकार गहरी जड़ जमाए हुए है, उसे देखते हुए यह आशा नहीं होती कि इस सम्बन्ध में कोई व्यापक परिवर्तन सुगमतापूर्वक हो सकेगा। ऐसी दशा में, जैसा गाँधी जी ने एक अन्य लेख में कहा है, कोई आश्चर्य नहीं जो इस कलङ्क को धोने के लिए अनेक साधु-चरित व्यक्तियों को अपने प्राण अर्पण करने पड़ें। म० गाँधी स्वयम् इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए आत्म-बलिदान करने का दृढ़ निश्चय कर चुके हैं और यद्यपि इस बार के उपवास को वे सफलतापूर्वक पार कर गए हैं, पर यह असम्भव नहीं यदि यह निष्ठुर प्रथा अन्त में उनकी बलि लेकर ही सन्तुष्ट हो। यद्यपि यह विचार आरम्भ में अत्यन्त अमानुषी जान पड़ता है और किसी भी कोमल हृदय व्यक्ति के लिए यह असहनीय प्रतीत होगा, पर परिस्थिति को देखते हुए इससे अधिक कारगर और प्रशस्त मार्ग दूसरा नहीं हो सकता। अछूत आन्दोलन को इस मार्ग पर डाल कर महात्मा गाँधी हिन्दू-समाज की उस भीषण गृह-युद्ध अथवा भाई से भाई की लड़ाई से रक्षा कर रहे हैं, जिसके आरम्भिक चिन्ह हमको मद्रास और बम्बई प्रान्त में अभी दिखलाई पड़ रहे हैं और जो यदि स्वाभाविक रूप से बढ़ती गई तो निकट-भविष्य में हिन्दू-समाज का सर्वनाश कर देगी तथा उसे विरोधियों की भोज्य सामग्री बना देंगी। यदि गाँधी जी सत्याग्रह, उपवास और कष्ट-सहन को अछूत आन्दोलन का साधन नहीं बनाते, तो दोनों पक्षों में कटुता के निरन्तर बढ़ते जाने और कुछ ही समय में हिंसात्मक कलह आरम्भ हो जाने की पूरी सम्भावना थी; और अब भी यदि दुर्भाग्यवश महात्मा जी अपने उद्देश्य में सफल-मनोरथ न हुए, तो हमको बाध्य होकर इसी परिणाम पर पहुँचना पड़ेगा। आशा का विषय इतना ही है कि अभी इस देश के निवासी तपस्या के महत्व और आकर्षण को सर्वथा भुला नहीं बैठे हैं और महात्मा गाँधी जैसे विश्व के एक सर्वोत्कृष्ट तथा पवित्र मानव का कष्ट-सहन उन्हें बिना प्रभावित किए रह सके, इस बात की सम्भावना बहुत कम है। महात्मा गाँधी के आत्मबलिदान की घोषणा ने और उस सादगी तथा विनयशीलता ने, जिसके साथ वह की गई है, देश के सभी सहृदय व्यक्तियों को अवाक् कर दिया है। महात्मा जी को अछूतों सम्बन्धी मिशन के ईश्वरीय होने पर इतना दृढ़ विश्वास है कि उसके लिए अपना जीवन अर्पण कर देना उनको बिलकुल छोटी बात जान पड़ती है। गत सितम्बर के उपवास के समय उन्होंने लिखा था कि यदि मेरे पास कोई और बड़ी चीज़ होती तो मैं उसे भी इस उद्देश्य के लिए अर्पित कर देता, पर मेरे पास प्राणों से बढ़ कर और कुछ नहीं है। यह कल्पना करना कि इतना बड़ा त्यागभाव व्यर्थ चला जायगा और अछूतों के सम्बन्ध में उच्च जाति वाले जैसे के तैसे पत्थर बने रहेंगे, मनुष्यता के ऊपर से विश्वास हटा लेना है। हमको पूर्ण विश्वास है कि महात्मा जी की यह तपस्या निरर्थक न जायगी और जल्दी या देर में हिन्दू-समाज को इस कलङ्क से मुक्त करके छोड़ेगी।

देशी राज्यों को चेतावनी

भरतपुर और काश्मीर के बाद अलवर-नरेश के राजकीय अधिकारों पर अङ्गरेज़ी गवर्नमेण्ट का हस्तक्षेप होना एक ऐसी घटना है, जो प्रत्येक विवेकशील देशी नरेश के हृदय में खलबली मचा देगी। यह घटना बतलाती है कि देशी नरेशगण अपने स्वाधीन अधिकारों और सम्राट् की सरकार से सीधा सम्बन्ध रखने के विषय में जो बड़ी-बड़ी बातें किया करते हैं, उनका वास्तव में क्या मूल्य है और अवसर पड़ने पर किस प्रकार उनके साथ एक साधारण मनुष्य की भाँति व्यवहार किया जा सकता है। हमारे कहने का आशय यह नहीं है कि इन घटनाओं में जिन नरेशों के अधिकारों में हस्तक्षेप किया गया है वे सर्वथा निर्दोष थे अथवा उन पर जो इलज़ाम लगाए गए हैं, उनमें कुछ भी तथ्य नहीं है। हम भली भाँति जानते हैं कि इन्हीं राजाओं का नहीं, वरन् दस-पाँच को छोड़ कर सभी राजाओं का व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन इतना निन्दनीय और कुत्सापूर्ण है कि यदि उनको एकदम राज्यच्युत करके देश-निकाले का अथवा उससे भी कठोर दण्ड दिया जाय तो भी कुछ अनुचित नहीं है। इन राजाओं में से अधिकांश ऐसे हैं, जिनको अपने भोग-विलास और कामवासना की पूर्ति के सिवा अपनी प्रजा के सुख-दुःख और भले-बुरे की रत्ती भर परवाह नहीं है। जब कि उनके राज्य में हज़ारों व्यक्ति बिना भोजन के मरते रहते हैं अथवा सागपात से पेट की ज्वाला शान्त करते हैं, वे एक बार की यूरोप-यात्रा में दस-बीस लाख रुपए ख़र्च कर देते हैं; और दो-दो लाख की एक मोटर अथवा पचास-पचास हज़ार का एक कुत्ता ख़रीद लाते हैं। वे लोग कष्ट-पीड़ित प्रजा पर नए-नए असहनीय करों का भार लाद कर निरर्थक महल या अन्य इमारतें बनवा कर अपना शौक़ पूरा करते हैं, या थिएटर और नाच-रङ्ग में लाखों रुपए बर्बाद कर देते हैं। ऐसे उत्तर-दायित्व शून्य तथा नीच वृत्तियों के दास मनुष्यों को 'राजा' या 'शासक' के नाम से सम्बोधित करना दरअसल इन शब्दों को कलङ्कित करना है और इस दृष्टि से इन लोगों के साथ जो कुछ भी कठोरतापूर्ण व्यवहार किया जाय उसके लिए हमें किसी प्रकार की शिकायत करने की आवश्यकता नहीं। पर हमको भारत-सरकार की कार्रवाई में जो बात अनुचित अथवा असन्तोषजनक जान पड़ती है, वह यह है कि वह जिस कुशासन के लिए इन लोगों को दण्ड देती है अथवा इनके अधिकारों को थोड़े समय अथवा सदैव के लिए छीन लेती है, उसका अन्त अङ्गरेज़ी अफ़सरों का अमल जारी हो जाने पर भी नहीं होता। इससे शासक के निजी ख़र्च में थोड़ी बहुत कमी अवश्य पड़ जाती है, पर प्रजा की दुर्दशा में नाम मात्र को भी अन्तर नहीं पड़ता। प्राचीन शासन के हानिकारक नियम प्रायः ज्यों के त्यों बने रहते हैं, और ब्रिटिश शासन की अच्छाइयों का प्रवेश होना तो दूर, देशी शासन की दो-चार स्वाभाविक लाभजनक बातों का भी अन्त हो जाता है। इन रियासतों में सरकारी हस्तक्षेप का दूसरा कुफल हमको यह जान पड़ता है कि उसके अधिकारी वहाँ की हिन्दू प्रजा के साथ प्रायः विशेष रूप से कठोर व्यवहार करते हैं तथा मुसलमानों के प्रति अनुचित पक्षपात दिखलाते हैं, जिससे रियासतों में भी उस अनिष्टकारी साम्प्रदायिक भेदभाव का बीज पड़ जाता है, जो ब्रिटिश भारत में इतने प्रचुर परिमाण में मौजूद हैं। क्या यह उचित न होता कि सरकार शासकों को अधिकारच्युत करने के पश्चात् शासन-भार उसी स्थान के योग्य तथा अनुभवी व्यक्तियों के हाथ में देती तथा वहाँ की प्रजा को भी उत्तरदायित्वपूर्ण शासन के कुछ अधिकार प्रदान करती। ऐसा करने से रियासतों की अवस्था का कुछ वास्तविक सुधार हो सकता और समय आने पर वहाँ के निवासी भावी भारतीय फ़ेडरेशन में समुचित भाग ले सकते।

जापान की नृशंसता

'लीग ऑफ़ नेशन्स' और अन्य 'शान्तिवादियों' के लाख हाय-तोबा मचाने पर भी जापान ने चीन को कुचल डाला और आज उत्तरी चीन में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से उसी का प्रभुत्व है। इस अपहरणकार्य में जापान ने जिस निन्दनीय धूर्तता का परिचय

दिया है उसका उदाहरण अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में कहीं नहीं मिल सकता। चीन-जापान के बीच आज तक नियमित रूप से युद्ध-घोषणा नहीं की गई और जापान का राजदूत भी चीन की राजधानी में मौजूद है। पर इसका कुछ ख़याल न करके केवल ऊपरी बहाने बतला कर जापानी सेनाएँ चीन के भीतर बढ़ती गईं और अन्त में चीन की राजधानी पेकिन दस-बारह मील रह गई। यह अवस्था देख कर लाचार होकर चीनियों को जापान से क्षणिक सन्धि करनी पड़ी है और अनुमान से प्रतीत होता है कि अन्त में विवश होकर उसे जापान की तमाम शर्तें माननी ही पड़ेंगी। जिस जापान को एशियाई राष्ट्र अपना नेता बनाने का स्वप्न देख रहे थे, उसकी अपने सब से पास के पड़ोसी के प्रति ऐसी नृशंसता देख कर किसको कष्ट न होगा। यह सच है कि जापान ने थोड़े ही वर्षों में सैनिक, राजनीति और उद्योग-धन्धों की दृष्टि से अपूर्व उन्नति करके यूरोपियन राष्ट्रों को भी मात कर दिया है और आज किसी में यह साहस नहीं कि बिना भीषण परिणाम की आशङ्का किए उसे ललकार सके। उसकी शक्ति का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि इस संसारव्यापी आर्थिक सङ्कट के युग में, जब कि इङ्गलैण्ड और अमेरिका जैसे राष्ट्रों के पैर लड़खड़ा रहे हैं और समस्त देश आत्मरक्षा के लिए व्याकुल हो रहे हैं, जापान निर्भय चित्त से एक ओर युद्ध में करोड़ों रुपए ख़र्च कर रहा है और दूसरी तरफ़ व्यापारिक संग्राम में अपने माल को इस प्रकार मिट्टी के मोल बेच रहा है, जिसे देख कर संसार के व्यवसाय के ठेकेदार यूरोपियनों को भी दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है। पर यह सब होने पर भी वह जिस घोर स्वार्थपूर्ण साम्राज्यवादी नीति का अनुसरण कर रहा है, वह उसके भविष्य के मङ्गलजनक होने की सूचना नहीं देती। वर्तमान समय में संसार में प्रजा-सत्तावाद तथा समानता की एक बलवती लहर फैल रही है और साम्राज्यवादी नीति के प्रति सर्वसाधारण के हृदय में स्वाभाविक रूप से तीव्र घृणा का भाव उत्पन्न हो रहा है। इस युग में साम्राज्यवाद का ऐसे नग्न रूप में बीड़ा उठाना कदापि कल्याणकर नहीं हो सकता। इसमें सन्देह नहीं कि चीन आज असङ्गठित तथा निर्बल दशा में होने से जापान की सुसङ्गठित पाशविक शक्ति का मुक़ाबला नहीं कर सकता, और यूरोपियन राष्ट्र तथा अमेरिका आदि भी अपनी समस्याओं में उलझे होने के कारण झगड़ा मोल लेना नहीं चाहते, पर यह अवस्था सदैव न बनी रहेगी। चाहे चीन इस समय जापान के सामने सर झुका दे, पर यह अपमानपूर्ण ठोकर उसकी तन्द्रा को भङ्ग कर देगी और उसके आन्तरिक भेदभावों तथा फूट को दूर करके उसे अधिक सङ्गठित और शक्तिशाली बना देगी। उधर यूरोपियन राष्ट्र अपने स्वार्थ पर आघात होते देख अधिक समय तक चुप न रह सकेंगे। ज्योंही उनकी समस्या किसी प्रकार हल हो जायगी, और जिसका उपक्रम विश्व-आर्थिक-कॉन्फ्रेन्स के रूप में हो रहा है, त्योंही वे जापान से कैफ़ियत तलब करेंगे। उस अवस्था में जापान का दर्प अधिक देर तक क़ायम रह सके, यह सम्भव नहीं जान पड़ता। जापान की यह विजय अथवा सफलता क्षणस्थायी है और आश्चर्य नहीं कि इसका प्रतिफल उसके लिए विशेष रूप से शोचनीय हो।

❁ ❁ ❁

सिन्ध में शक्कर बनाने की कम्पनी

कराची के सुप्रसिद्ध व्यवसायी रावबहादुर सेठ शिवरतन मोहता और उनके अन्य मित्रों ने सिन्ध में एक नए और लाभजनक कारबार की नींव डाली है। यह प्रान्त अभी तक ख़ासकर खेती-बारी में ही लगा हुआ है और कल-कारख़ानों की वहाँ बहुत कमी है। मोहता जी ने वहाँ पर एक ऐसी शक्कर बनाने वाली कम्पनी क़ायम करने की योजना की है, जो अपने काम के लिए ज़रूरी गन्ना भी ख़ुद ही पैदा करेगी। इसके लिए कम्पनी ने सिन्ध की लायड बारेज नहर के पास एक काफ़ी बड़ी ज़मीन प्राप्त की है, जिसमें सिंचाई की बहुत अधिक सुविधा है और सिंचाई ही गन्ने की फ़सल के उत्तम होने का मुख्य आधार है। कम्पनी को दूसरी बड़ी सुविधा यह है कि वह एक ऐसे प्रान्त में खोली जा रही है जहाँ अभी तक शक्कर बनाने का कारबार बिलकुल नहीं होता और इसलिए यहाँ हानिकारक चढ़ा-ऊपरी का कुछ भी भय नहीं है। पञ्जाब और यू० पी० जैसे अन्य प्रान्तों से, जहाँ शक्कर बनाने का कार्य विशेष रूप से होता

है, यदि शक्कर सिन्ध में भेजी जाय तो रेल का भाड़ा ही डेढ़ से ढाई रुपए फ़ी मन तक लग जाता है। ऐसी हालत में यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि यह कम्पनी दूसरी शक्कर की कम्पनियों की बनिस्बत ज़्यादा सुभीते में रहेगी और इसमें मुनाफ़ा भी अधिक रहेगा। सिन्ध में शक्कर की बिक्री का बहुत बड़ा बाज़ार भी मौजूद है। कराची के बन्दरगाह में प्रतिवर्ष दो लाख टन से अधिक शक्कर विदेशों से आती है, जिसका एक काफ़ी बड़ा भाग सिन्ध में ख़र्च होता है। जब यह कम्पनी उसी स्थान में रह कर शक्कर बनाएगी और रेल या जहाज़ के भाड़े की पूरी बचत हो जायगी तो स्पष्ट है कि इससे कम्पनी के हिस्सेदारों और ग्राहकों दोनों को काफ़ी लाभ हो सकेगा। ऐसे फ़ायदेमन्द कारबार की योजना करने के लिए मोहता जी और उनके सहकारी दूसरे डाइरेक्टरगण अवश्य ही उक्त प्रान्त-निवासियों के धन्यवाद के भाजन होंगे। हमें आशा है कि सर्व-साधारण तथा श्रीमान व्यक्ति इस कम्पनी में, जिसके तमाम सञ्चालक मशहूर और पक्के व्यवसायी हैं, भाग लेकर अपना और देश का हित-साधन करेंगे। इस विषय में ज़्यादा हाल जानने के लिए इसी अङ्क में दूसरी जगह दिया गया कम्पनी का प्रॉस्पेक्टस देखना चाहिए और कम्पनी के प्रधान कार्यालय से, जो मोहता बिल्डिङ्ग मैकलिओड रोड, कराची में है, पत्र-व्यवहार करना चाहिए।

❀ ❀ ❀

द्विवेदी मेला

प्रयाग का द्विवेदी मेला, जिसका अधिवेशन ४ से ७ मई तक स्थानीय अग्रवाल विद्यालय में बड़े समारोह के साथ सम्पन्न हुआ, हिन्दी-साहित्य-जगत के लिए एक सर्वथा अपूर्व घटना है। आज तक शायद किसी हिन्दी-लेखक या सम्पादक का इतना समादर नहीं किया गया और न कभी किसी लेखक की सम्बर्द्धना के लिए दूर-दूर के स्थानों के इतने प्रसिद्ध विद्वान् एकत्रित हुए थे। यद्यपि द्विवेदी जी के अभिनन्दन का सर्वप्रथम सङ्कल्प काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा ने किया था और इसके उपलक्ष में उसने जो 'द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ' प्रकाशित किया है वह विशालता, सुन्दरता तथा उच्च कोटि की साहित्यिक सामग्री की दृष्टि से अपूर्व है, पर प्रयाग के साहित्य-प्रेमियों ने आचार्य द्विवेदी जी के प्रति अपनी आन्तरिक भक्ति का परिचय जिस उत्साह और धूमधाम के साथ दिया उसकी भी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। आरम्भ में इस उत्सव का विचार कुछ स्थानीय हिन्दी-भक्तों के हृदय में साधारण रीति से उत्पन्न हुआ था और उन्होंने काम में हाथ भी लगा दिया। पर जब कार्य की महानता और कठिनाइयों का उनको अनुभव हुआ, तो वे चिन्तित होने लगे और मेले को स्थगित करने की चर्चा सुनाई पड़ने लगी। उस अवसर पर यदि श्री० लक्ष्मीधर जी वाजपेयी अग्रसर होकर अपनी पूरी शक्ति इस कार्य में न लगा देते, तो प्रयाग के गौरव की रक्षा हो सकनी कठिन हो जाती। जब वाजपेयी जी ने हिम्मत की और कार्य सिद्ध करने का रास्ता दिखलाया, तो अन्य लोगों में भी उत्साह का सञ्चार हुआ और निराशाजनक परिस्थिति फिर आशाजनक हो उठी। विशेषकर प्रयाग के प्रसिद्ध रईस और हिन्दी-प्रेमी श्री० निरञ्जनलाल जी भार्गव के आगत सज्जनों के ठहराने, खिलाने-पिलाने और सेवा-शुश्रूषा का भार अपने ऊपर ले लेने से कार्य बहुत कुछ सरल हो गया। अन्य सज्जनों ने भी धन द्वारा सहायता करके और प्रबन्ध तथा व्यवस्था का भार अपने ऊपर लेकर अपना कर्तव्य पालन किया और अन्त में सबके सहयोग से यह महान आयोजन जैसी सुन्दरता और सफलता के साथ पूर्ण हुआ, उसकी स्मृति हिन्दी-संसार में चिरस्मरणीय रहेगी। द्विवेदी जी के अभिनन्दनोत्सव के अतिरिक्त जो कवि-सम्मेलन (सभापति, कविवर पं० गयाप्रसाद जी शुक्ल 'सनेही'), साहित्य-चर्चा और वादविवाद सम्मेलन (सभापति, श्री० पं० जगन्नाथप्रसाद जी चतुर्वेदी), साहित्यिक भाषण और निबन्ध-पाठ सम्मेलन (सभापति, पं० माखनलाल जी चतुर्वेदी सम्पादक 'कर्मवीर'), काव्य-परिहास-सम्मेलन (सभापति, श्री० जी० पी० श्रीवास्तव), खेल-कूद सम्मेलन (सभापति, पं० हृदयनाथ जी कुँज़रू), प्रीतिभोज सम्मेलन, सङ्गीत सम्मेलन, कवि-दरबार आदि अन्य उत्सव हुए, वे भी उपादेयता, मनोरञ्जकता और जनता की उपस्थिति सभी दृष्टियों से पूर्णतया सफल हुए। हमें यह कहने में कुछ भी सङ्कोच नहीं है कि यह मेला आचार्य द्विवेदी जी के महत्व और

स्वरूप के सब तरह के अनुकूल ही हुआ और ऐसे पूजनीय तथा वयोवृद्ध मातृभाषा के सेवक का सम्मान करके प्रयाग के साहित्य-सेवियों ने एक आवश्यक कर्त्तव्य की पूर्ति की।

❀ ❀ ❀

स्वर्गीय डॉक्टर लीलावती

गत १२ मई को लाहौर में डॉक्टर (कुमारी) लीलावती की अकस्मात् मृत्यु हो गई। आपने कुछ ही समय पहले कलकत्ता के सुप्रसिद्ध डेण्टल कॉलेज की सर्वोच्च परीक्षा (एल० डी० एस-सी०) पास करके दिल्ली में दाँतों का एक अस्पताल खोला था। कुमारी लीलावती जी यद्यपि एक बहुत प्रतिष्ठित तथा सम्पन्न घराने की थीं और आपके सभी सम्बन्धी बड़े-बड़े सरकारी पदों पर काम कर रहे हैं, पर आपका ध्यान सदैव धन-वैभव और सुखोपभोग के बजाय देश-सेवा और मातृभूमि के उद्धार की तरफ़ ही रहा। इलाहाबाद, कलकत्ता, दिल्ली जहाँ कहीं भी आप रहीं, राजनीतिक और सार्वजनिक कार्यों से आपका बराबर सम्बन्ध रहा। कलकत्ते में यद्यपि आपका प्रधान कार्य विद्याध्ययन करना था और स्वावलम्बन के भाव के कारण आप ट्यूशन करके अपने लिए कुछ ख़र्च भी एकत्र करती रहती थीं, तो भी आप प्रत्येक राजनीतिक आन्दोलन में भाग लेने के लिए समय निकाल लेती थीं। जिन कामों के करने में पुरुष भी हिचकिचाते थे, उनके लिए लीलावती जी सबसे आगे बढ़ कर खड़ी होती थीं और सब तरह की कठिनाइयों को सह कर भी उनको पूरा करके छोड़ती थीं। षड्यन्त्रों में पकड़े गये राजनीतिक क़ैदियों की सहायतार्थ वे प्रायः चन्दा माँगने का कार्य किया करती थीं और केवल भगतसिंह डिफ़ेन्स-फ़रड में उन्होंने कई हज़ार रुपए की रक़म इकट्ठी करके दी थी। इतना ही नहीं, सरकारी अधिकारियों को इस बात का पूरा सन्देह था कि आप क्रान्तिकारी दल वालों से गुप्त सम्बन्ध रखती हैं और उनके कार्यों में सहायता पहुँचाती रहती हैं। ऐसे ही कारणों से आप बङ्गाल ऑर्डिनेन्स के अनुसार गिरफ़्तार की गईं, बङ्गाल की हद से निकाली गईं और उसके पश्चात् तीन मास तक अपने घर शेखूपुरा (पञ्जाब) में नज़रबन्द रक्खी गईं। दिल्ली में भी अस्पताल खोलने के बाद आपको वहाँ से चले जाने की आज्ञा दी गई, जो बहुत चेष्टा करने के पश्चात् वापस हुई। पर यह सब कुछ होने पर भी आपके देश-प्रेम में कुछ भी अन्तर न पड़ा और आप बराबर किसी न किसी रूप में सार्वजनिक कार्यों में भाग लेती रहीं। दिल्ली में थोड़े ही समय में आपने जो ख्याति प्राप्त कर ली थी, उसका परिचय वहाँ के राष्ट्रीय नेता प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति के उस पत्र से लगता है, जो इस शोकपूर्ण घटना के पश्चात् उन्होंने श्री० आर० सहगल के पास भेजा है। उसमें वे लिखते हैं—"डॉक्टर लीलावती की मृत्यु के सम्वाद ने तो दिल्ली में सनसनी पैदा कर दी है। आपने जो सुना है वह ठीक ही है। वह बेचारी अपने भाई की सगाई के सिलसिले में शेखूपुरा गई थीं, वहाँ बीमार हो गईं। तीन ही दिन में मृत्यु ने आ दबाया। कितनी देशभक्त थीं, कितनी मिलनसार थीं, कितनी होनहार थीं! थोड़े ही समय में दिल्ली के देश-भक्तों की लाडली बन गई थीं। वह तो अधखिली कली ही मुर्झा गई। जिसने सुना आँसू बहाए। स्वर्ग ऐसों ही के लिए है।" निस्सन्देह लीलावती जी की मृत्यु से भारतीय स्त्री-समाज का एक रत्न उठ गया और देश तथा समाज को उनसे जो बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं, उन पर पानी फिर गया। इस गम्भीर शोक के अवसर पर हम इतना ही कह सकते हैं कि परमात्मा उनकी आत्मा को शान्ति दे और उनके शोकाकुल कुटुम्बियों को सान्त्वना प्रदान करे।

Regd. No. A—1154

अवश्य पढ़ें !

हम गारण्टी करते हैं कि बरेली के जगत्प्रसिद्ध चमत्कारी, भारत-सरकार से रजिस्टर्ड "शीतल सुरमा" से तत्काल ठण्डक पड़ जाती है, प्रतिदिन सेवन से जन्म भर आँखें न दुखेंगी, ज्योति बिजली के समान तेज़ हो जावेगी, और चश्मे की आदत भी छूट जावेगी। और धुन्ध, खुजली, रोहे, सुर्ख़ी, जाला, रतौंध, नज़ला, ढरका, तींगुर, परवाल, चकाचौंध, जलन, पीड़ा, आँखों के आगे तारे से दीखना, पानी बहना, एकदम अँधेरा आ जाना, ग्वाइयों का निकलना और दुखती आँखें, इन सबको भी जड़ से आराम न हो, तो सत्यता से केवल एक पत्र लिख देने पर, पूरी क़ीमत मय ख़र्चे के वापस देने की हम गारण्टी करते हैं। एक शीशी मनोहर सलाई सहित १।) ख़र्चा ।।) तीन शीशी मय ख़र्च ३।=) पता :—

शिवराज, कारख़ाना फूल ६, बरेली, यू० पी० Bareilly, U. P.

पुरस्कार-प्रतियोगिता

५०) पचास रुपए नक़द इनाम **Rs. 50**

इस मास की पहेली

१म	धु	■	२		■	३ह
ठ	■	४	त्ता	■	५	
■	६		■	७	र	■
८	■	९	१०	■	११	१२रा
१३	र	■	१४	टट्टू	■	

तालिका
सीधे चलने वाले
(Across)

१—शहद, २—उङ्गली में पहनते हैं, ४—घर की रखवाली करने वाला, ६—माता का भाई, ७—गदहा, ९—धूल, ११—नीला पीला मिल कर जो रङ्ग बनता है, १३—मनुष्य १४—एक खिलौना।

तालिका
नीचे चलने वाले
(Down)

१—साधुओं का निवास स्थान, २—शहद की मक्खियों का घर, ३—जिससे खेत जोतते हैं, ४—अविवाहित पुरुष, ५—एक संख्या, ८—शरीर, १०—पानी, १२—एक अवतार।

प्रथम पुरस्कार (शुद्ध उत्तर पर) २५)   द्वितीय पुरस्कार (एक अशुद्धि पर) १५)
तृतीय पुरस्कार (दो अशुद्धि पर) १०)

नियम :—इस प्रतियोगिता में सभी पाठक भाग ले सकते हैं, और एक पाठक जितने उत्तर चाहे भेज सकता है। प्रत्येक उत्तर के साथ ।।) के (दो आने वाले) टिकट भेजने चाहिए। एक से अधिक शुद्ध अथवा एक या दो अशुद्धि के उत्तर आने पर पुरस्कार के नक़द रुपए भेज दिए जावेंगे। इसमें भाग लेने वालों को प्रत्येक ख़ाने में एक अक्षर अथवा संयुक्ताक्षर लिखना है, सहायता के लिए तालिका दी हुई है। उदाहरणार्थ, सीधा चलने वाला नम्बर १ पहले ख़ाने से बन्द ख़ाने तक है, और नीचे चलने वाला नम्बर १ पहले ख़ाने से नीचे बन्द ख़ाने तक है। कटा-छटा या संशोधित उत्तर अनियमित समझा जाएगा। शुद्ध उत्तर मैनेजर के उत्तर से अक्षरशः मिलने वाला ही होगा। परिणाम अगस्त, १९३३ के अङ्क में प्रकाशित होगा। पहेली का उत्तर आगामी १५ जुलाई, १९३३ तक नीचे लिखे पते पर आना चाहिए।

पता—मैनेजर, शिवराज कारख़ाना फूल ६, बरेली, यू० पी०

Printed and Published for and on behalf of The Chand Press, Limited, by Munshi Naujadik Lal Srivastava, Editor, at The Fine Art Printing Cottage, 28, Edmonstone Road, Chandralok—Allahabad

चित्र सेठ गोविन्ददास जी सपत्नीक पृ० ६० [illegible]

लेख 'रामकलेवा' श्रीमती [illegible] पृ० ८८

'महिला कवि सम्मेलन' लेख पृ० १२४

कहानी 'हत्या' श्रीमती शिवरानी देवी पृ० १६८

हिन्दी शैली चित्रावली पृ० २२२ से आगे

परिहास, उपहास, विनोद, व्यंग्य, कटाक्ष, अतिशयोक्ति [illegible] पृ० २२२